सचित्र विशेषांक।

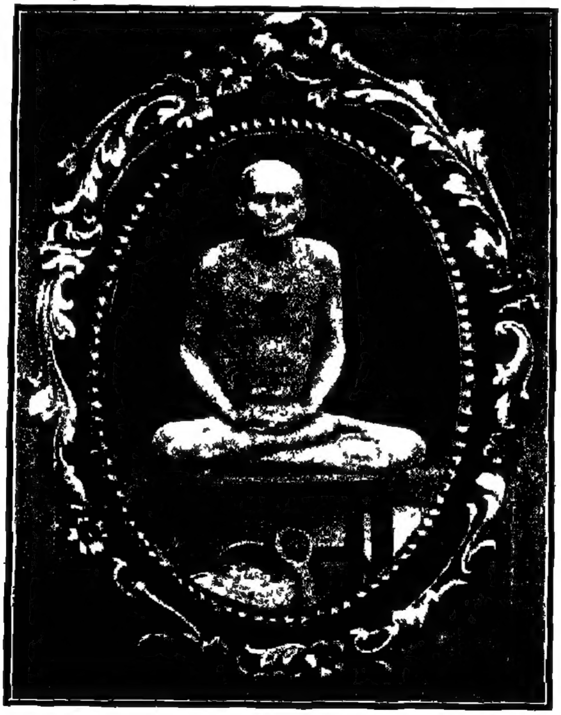
ॐ

दिगंबर जैन

सम्पादक—मूलचंद किसनदास कापड़िया–सूरत।

वर्ष २१ वाँ
अंक १–२

वीर सं० २४५४
कार्तिक मार्गशीर्ष



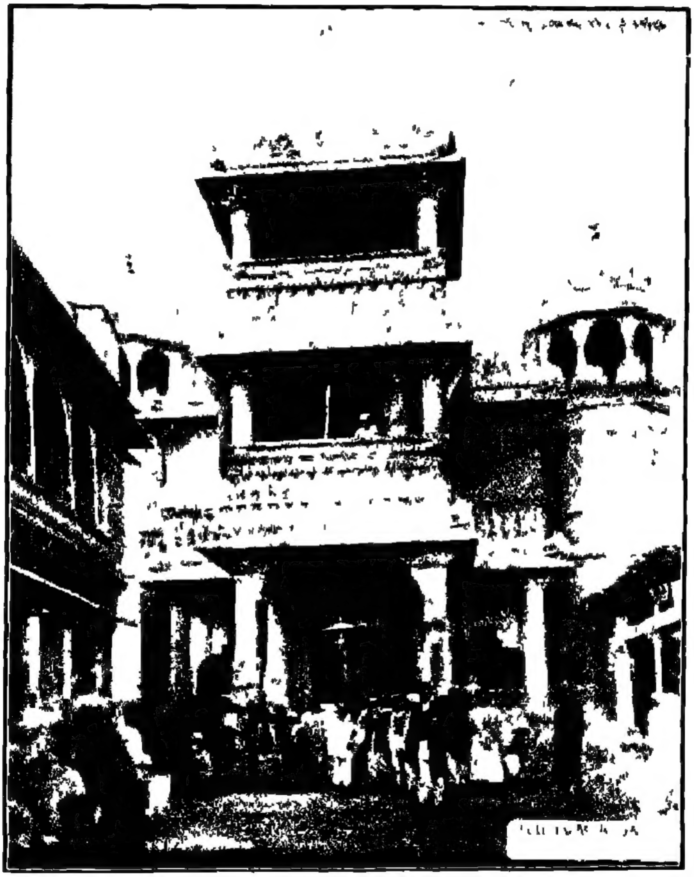
श्री १०८ आचार्य श्री शान्तिसागरजी मुनि महाराज।

(श्री सम्मेदशिखरजीकी यात्राकेलिये पैदल विहारमें)

उपहारके पोस्टेज सहित वार्षिक मूल्य २–२–० व विशेषांक मू० ॥।)

विषयानुक्रमणिका।

चित्र-सूची।



श्री ऋषभदेवजी (केशरियाजी) के मंदिरका आगेका दृश्य।

... Pres, ...

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

दिगम्बर जैन

नाना कलाभिर्विविधैश्च तत्त्वैः सत्योपदेशैस्सुगवेषणाभिः ।
संबोधयत्पत्रमिदं प्रवर्त्ततास्, दैगम्बरं जैन-समाज-मात्रम् ॥

वर्ष २१ वाँ ‖ वीर सम्वत् २४५४, कार्तिक-मगसिर विक्रम सम्वत् १९८४ ‖ अङ्क १-२

आओ त्रिशलानंदन आओ !

पपीहा 'पिउ पिउ' चिल्लाया,
कोकिलाने स्वागत गाया
दक्षिणमे मलयानिलने आ सुरभित किया दिगन्त ।
विटपदल नवदल ले आया
कुसुम कुल सहसा मुसकाया,
पक्व धान्य मिस धरा हस पडी, नचने लगा वसन्त ॥१॥
प्राणियोंमें प्रहर्ष छाया,
अचेतनमे चेतन आया,
कौन कहेगा किया प्रकृतिने किसका स्वागत साज ?
चन्द्रने अमृत वरसाया
मधुर मधुमास आज आया,
हा, हा, इसी समय जन्मे थे तुम सन्मति जिनराज ॥२॥
यही दिवस था, यही रात थी
यही चाप था, यही मान थी
ममता, ममताके वक्षोपर, चलती थी करवाल ।
मत्रधारियोंका चारा था
यज्ञविदोंका पौवारा था
निर्बल, नारी, खग, मृग-गणका जीवन था जंजाल ॥३॥
तुमने आकर उन्हे प्रचारा
उत्तमत्रीदल तुममें हारा,
विश्व-कर्ण-कुहरोंमे फूका, तुमने समता मत्र ।
फिर करुणाका सवक सिखाया-
मुक्तिमार्ग पर विश्व बढाया,
कह डाला हे देव ! तुम्हीने हैं सब जीव स्वतंत्र ॥४॥
अब अपने जीवनसे ऊबे
दु:ख सिंधुमें डूबे ! डूबे !!
त्राहि ! त्राहि !! कर रहे दयामय ! करो शीघ्र उद्धार !
जन्मदिवस पर पुन पधारो,
जैनधर्मको पुनः प्रचारो,
जीवमात्रको पुनः खोलदो देव, धर्मका द्वार ॥५॥
हो सर्वज्ञ बतावें क्या क्या ?
लखलो स्वयं लखावे क्या क्या ?
स्थापित करदो देव ! विश्वमें शान्ति सौख्य-साम्राज्य ।
आओ त्रिशलानदन ! आओ !
हे सैद्धार्थ ! दरश दे जाओ,
कर जाओ पर-इह-लोकोंमें सुलभ सुमुक्ति-स्वराज्य ॥६॥

भगवंत गणपति गोयलीय-जबलपुर ।

"તમે યશ મેળવો ભાઇ"

(ગઝલ)

નવિન વર્ષે વાગ્યા હર્ષે, સહુ આનંદમા મ્હાલી,
હરી દુખડા ગરીબોના, તમે યશ મેળવો ભાઇ;-૧
દયાને દિલમા ધારી, ક્ષમાને સાથમા રાખી,
ભરી આયુ સુકૃત્યોનુ, તમે યશ મેળવો ભાઇ;-૨
વધારી જ્ઞાનમા વૃદ્ધિ, કરો કઇ જ્ઞાતિની સિદ્ધિ,
બજાવી ધર્મની સેવા, તમે યશ મેળવો ભાઈ,-૩
ભણાવી બાળકો રૂડા, અહો આશિષ અંતરની,
સ્થપાવી પાઠશાળાઓ, તમે યશ મેળવો ભાઇ,-૪
કરી શુભ ધર્મના કાર્યો, લઇ લ્યો જન્મનો લ્હાવો,
સુબુદ્ધિ નેહથી માગી, તમે યશ મેળવો ભાઇ,-૫
સુકીર્તિ સદ્‌ગુણો લેઈ, નવિન વર્ષે કરો વૃદ્ધિ,
ગુસપે પ્રેમથી મળીને, તમે યશ મેળવો ભાઇ,-૬
કરો તત્ત્વો તણી શોધો, ધરી શ્રદ્ધા હૃદય માહી,
પ્રભુને પ્રાર્થના મ્હારી, તમે યશ મેળવો ભાઇ-૭

કે૦ એન૦ મીઠાવાલા, ઇડર.

दिगम्बरजैन ।

भाषा जुदी हर प्रान्तकी, गुजरात गुजराती कहै ।
सूरत बसा गुजरातमें, जहांसे प्रगट यह पत्र है ॥
प्रगटा "दिगम्बर जैन" जब था जो दशा थी हालमें ।
उसमें कछुक सुधरी दिखाई दी कछुक ही कालमें ॥
खास वर्षारंभके जब अंक देखो पूर्वके ।
बुद्धि होती चकित है, क्योंकि दीखते नहिं हालके ॥
वर्षमें पहले दिए हैं, इसने दश उपहार तक ।
दानियोंकी खोटने, संकोच कीना एक तक ॥
प्रगटा दिगम्बर जैन जब था, देश–भाषा ही रही ।
कुछ कालतक, जबलों बना गुजरात इस साथी रही ॥
गुजरातका यह पत्र होकर, आज दिखता हिंदमय ।
गुजरातके ग्राहक घटे, जिससे बना यह हिंदमय ॥
आज जितने बचरहे, गुजरातके ग्राहक कहें ।
हिन्दी हुआ वह भाग है, इस पत्रका सब ही कहें ॥
इतनेसे छोटे क्षेत्रमें, हम आज क्या लिख पढ़ सकें ।
ग्राहक बढ़ा दो आप गर, स्थान बहुता बढ़ सके ॥
इतना नहीं, विश्वास कर लो, आप अब इस बातका ।
ग्राहक बढादो आप गर हो जाय फिर गुजरातका ॥
प्रगटे दिगम्बरजैनको, विंशति बरस पूरे भये ।
आजसे परवेश है इकवीसवें शुभ वर्षमें ॥
आज वर्षारंभका शुभ अंक भी यह देखलो ।
सेवा बजाता शक्तिमाफक आज भी यह देखलो ॥
बस "दास"की यह एक अरजी, आज वारंवार है ।
जीवे "दिगम्बरजैन" युगतक, भावना कई वार है ॥

"दा-स" ।

महावीर-महिमा ।

(श्री० नारायणप्रसाद 'बेताब' अजैन देहली द्वारा महावीर जयन्ती उत्सव, देहलीमें पठित)

धन्य धन्य कुण्डलपुरेश सिद्ध अर्थ भूप ।
धन्य पुण्य राज, धन्य पुण्य राजधानी है ॥
लोकमें विख्यात मात त्रिशलाकी कोख धन्य ।
धन्य भी त्रिशला माननीया महारानी है ॥
जिनके सुगर्भ भगवान वर्द्धमान स्वामी ।
पावन दरस विश्वलायनकी डानी है ॥
पीड़ितकी हरे पीर दुःखमें बंधावे धीर ।
शांतिकी कुटीर महावीरकी कहानी है ॥१॥

× × ×

भूख प्यास, राग द्वेष, जन्म जरा, रोग क्लेश ।
चिन्ता भय रहित तीर्थंकर निशानी है ॥
अहिंसाका मित्र दया-भावका है चित्त पूर्ण ।
पावन पवित्र सच्चरित्र निर्वानी है ॥
शैशवकी लीला नागराजको भी कीला-किया ।
पांव राख ढीला भीति नेक हू न मानी है ॥
पीड़ितकी हरे पीर दुःखमें बंधावे धीर ।
शांतिकी कुटीर महावीरकी कहानी है ॥२॥

× ×

हाथी मदमातो एक आतो जो दिखाई दियो ।
टोली बालकोंकी ताहि देख अकुलानी है ॥
मूर्तिमान धीर-वीर जाय बाघ लियो ।
वीर महावीर कियो साहस लासानी है ॥
क्रीड़ा सु पुनीत मीत सङ्ग करें याहि रीत ।
शैशव व्यतीत भयो आई नौ जवानी है ॥
पीड़ितकी हरे पीर दुःखमें बंधावे धीर ।
शांतिकी कुटीर महावीरकी कहानी है ॥३॥

× × ×

यम नियमासनादि अष्ट अंग योग विधि ।
पतञ्जलि मुनिने सुनाई पुण्य वानी है ॥
यमके बताये सांच प्रथम ही पांच भेद ।
तांच देखो तिनमें अहिंसाकी प्रधानी है ॥
यही उपदेश दियो, वर्द्धमान महाराज ।
प्राण सम चाहो चाहे कोई क्षुद्र प्रानी है ॥
पीड़ितकी हरे पीर दुःखमें बंधावे धीर ।
शांतिकी कुटीर महावीरकी कहानी है ॥४॥

× × ×

हिंसासे न दूर है तौरैत या जबूर ग्रन्थ ।
देखो इनजील पढ़ी आयत कुरानी है ॥
नरक नजारा न हो कैसे स्वर्ग द्वारा जहां ।
खंजर दुधारा और पशु कुरबानी है ॥
भक्त भगवानको मिलाप बिना शुद्धि कहां ।
शुद्ध कहां भक्त जहां रक्तकी रवानी है ॥
पीड़ितकी हरे पीर दुःखमें बंधावे धीर ।
शांतिकी कुटीर महावीरकी कहानी है ॥५॥

× × ×

मनसे, बचनसे, शरीरसे न हिंसा करे ।
वेद अनुकूल यह नीति वर्द्धमानी है ॥
याही ते नवाय सीस मान लई जिसे वास ।
जीवको असीर रूप हो मुनासि बानी है ॥
आर्य या सनातनी हैं जैनियोंके साथ साथ ।
मुक्ति हेत तीनोंने अहिंसा मुख्य मानी है ॥
पीड़ितकी हरे पीर दुःखमें बन्धावे धीर ।
शांतिकी कुटीर महावीरकी कहानी है ॥६॥

× × ×

कहे हों कठोर शब्द कछु तो न क्रोध कीजे ।
कारण कि मो अबोधकी असावधानी है ॥
जानत हैं आप है "बेताब महा मद मति ।
जैन-धर्म ग्रन्थनकी महिमा न जानी है ॥
मानस अजैन बोल रह्यो जैन वेदोपर ।
नहो सत्य कथनमें न कोई आनाकानी है ॥
पीड़ितकी हरे पीर दुःखमें बन्धावे धीर ।
शांतिकी कुटीर महावीरकी कहानी है ॥७॥

"बेताब"

"वीर" की वीरता।

(रचयिता-श्री० साहित्यरत्न पं० दरबारीलालजी न्यायतीर्थ-बम्बई ।)

यद्यपि न किसीको ज्ञात रहा तू कब कैसे आजावेगा।
अंधोंकी आंखोंमें अंजनकी सीक तुरन्त लगावेगा॥
अज्ञान-तिमिरको दूर हटाकर नव प्रकाश फैलावेगा।
रोते लोगोंके अश्रु पोंछ गोदीमें उन्हें उठावेगा॥ १॥
तोभी अपना अचल पसार अबलाएं ऊंची दृष्टि किये।
करती थीं तेरा ही स्वागत हाथोंमें स्वागत पुष्प लिये॥
अधिकार छिने थे सब उनके उनको कोई न सहारा था।
तेरी ही आशा थी तू ही उनकी आंखोंका तारा था॥ २॥
पशुओंके मुखसे दर्दनाक आवाज सदैव निकलती थी।
उनकी आहोंसे जगत व्याप्त था और हवा भी जलती थी॥
था "यज्ञार्थ पशवः सृष्टाः" यह मंत्र जगतने मान लिया।
फिर धर्म नामपर ही लोगोंने सत्य धर्मका खून किया॥ ३॥
पशुओंका रोना सुनकर तो पत्थर भी कुछ रो देता था।
पर ढोंगी अक्षर म्लेच्छोंका तो वज्र हृदय रस लेता था॥
था उनका मन मरुभूमि जहां करुणा रसका था नाम नहीं।
थे तो मनुष्यपर था मनुष्यतासे उनको कुछ काम नहीं॥ ४॥
शूद्रोंको पूछे कौन ? जाति मदमें डूबे थे लोग जहां।
"वे प्राणी हैं कि नहीं" इसमें भी होता था संदेह वहां॥
उनकी मजाल थी क्या कि कानमें वेद मंत्र आने पावे।
आवे तो पिघला शीसा उन कानोंमें डाला जावे॥ ५॥
था कर्मकांडका जाल बिछा पड़ गये लोग थे बन्धनमें।
था आडम्बरका राज्य सत्यका पता न था कुछ भी मनमें॥
ले लिये गये थे प्राण धर्मके थी बस मुर्दोंकी चर्चा।
होती थी केवल धर्म नामपर अत्याचारोंकी अर्चा॥ ६॥

पशु, अबला, निर्बल शूद्र मूक आहोंसे तुझे बुलाते थे ।
उनके जीवनके क्षण क्षण भी वत्सर सम बनते जाते थे ॥
तेरे स्वागतके लिये हृदय पिघलाकर अश्रु बहाते थे ।
आखोंसे अश्रु चढ़ाते थे आंखें पथ बीच बिछाते थे ॥ ७ ॥

तूने जब दीन पुकार सुनी दिल पिघला तू दौड़ा आया ।
रोगीने सच्चा वैद्य दीनने मानों चिंतामणि पाया ॥
पशुओंका तू गोपाल बना पाया सबने निज मन भाया ।
तूने फैलाया हाथ सभीपर हुई शान्त शीतल छाया ॥ ८ ॥

तू गर्ज उठा अत्याचारोंको ललकारा सब चौंक पड़े ।
सब गूंज उठा ब्रह्मांड न रहने पाये हिंसाकांड खड़े ॥
फहरादी तूने विजय वैजयन्ती जग बीच अहिंसाकी ।
हिंसाकी हिंसा हुई सहारा रहा नहीं कोई बाकी ॥ ९ ॥

सारे दुर्बंधन तोड़ मोड़ दुष्कर्मकांड सब नष्ट किया ।
उन्मत्त धर्मके ठेकेदारोंको तूने पद भ्रष्ट किया ॥
तूने स्वतंत्रताका झंडा अपने हाथोंसे फहराया ।
समताका डंका पिटा लोक सब तेरे चरणोंमें आया ॥ १० ॥

ढोंगी, स्वार्थी तो "धर्म गया हा! धर्म गया" यह चिल्लाने ।
तेजस्वी रविके लिये कहे कुवचन घूकोंने मनमाने ॥
लेकिन तूने पर्वाह न की ढोंगोंका भंडाफोड किया ।
स्वातन्त्र्य सत्यका पाठ पढ़ाकरके सुधारका मंत्र दिया ॥ ११ ॥

तू महावीर था वर्द्धमान था और सुधारक नेता था ।
तू वीतरागता अनेकान्त स्वातंत्र्य सुधर्म प्रणेता था ॥
पर हम कायर हैं, हीयमान हैं, धर्म बिगाड़क बने हुए ।
हैं एकान्ती पूरे गुलाम विद्वेष-पंकमें सने हुए ॥ १२ ॥

लड़चुके खूब, मरमिटे रूढ़ियोंके चक्करमें खूब पड़े ।
सब वैभव खोकर बने भिखारी अब फिर तेरे द्वार खड़े ॥
भिक्षादे जिससे रहे न जीवन मृतक तुल्य अथवा फीका ।
हम वीर सुधारक बनें मनावें उत्सव वीर जयन्ती का* ॥ १३ ॥

* जैन मित्रमंडल देहलीके 'वीर जयंति' उत्सवमें पठित ।

वीर-महिमा।

दे-कर सत्-उपदेश वीरने, सोये जीव जगाये थे।
ह-र मिथ्यातमको मोक्ष-मार्गपर, भूले जीव लगाये थे॥
लि-या जन्म था इसी दिवस, तब त्रिभुवनमें छाया था हर्ष।
मे-रु इन्द्रने नहुन करापर, वही मोद छाया इस वर्ष॥
वी-र तथा अतिवीर सन्मती, वर्धमान महावीर कहो।
र-क्षक रहो स्व-गुणके हरदम, तथा धर्मके तीर रहो॥
ज-गो जगो अब जगो शीघ्र ही, पड़े समय मत खर्च करो।
यं-त्रण हरो जातिका जल्दी, बाधाओंमे नहीं डरो॥
ती-नो गुणका करो संगठन, वीर-उपासक सब बनो।
म-हावीरका सुमरण करके, सत्मार्गके पथिक बनो॥
ना-हक कलह करत दिन बीते, अब आपसमें मिल जाओ।
ई-र्षित भाव त्यागकर मित्रो, "वीरजयंती" फल पाओ॥
ग-णनामें घटते जाते हो, दश वर्षोमें साठ हजार।
ई-प्सा बढ़नेकी करते हो, पर सोते हो पैर पसार॥
जि-न बातोका महावीरने, करवाया था हमको ज्ञान।
स-ही वही शास्त्रोंमें मिलती, किन्तु न देते उनपर ध्यान॥
मे-ट दिया मिथ्यात्व जगतसे, देकरके सम्यक-उपदेश।
वी-र भक्त बन रहे किन्तु हम, भूल गये उनका उद्देश॥
र-त अति भये विषयभोगोंमें, धर्म कर्म सब छोड़ दिया।
भ-ले बुरेका विवेक तजकर, पापोसे दिल जोड़ दिया॥
ग-फलत नींद न छोड़ी अबतक, नहीं हुआ सम्यक श्रद्धान।
का-रण हुआ इसीसे अबतक, पाया नहीं स्व पद-निर्वान॥
न-ही हुआ यह ज्ञान आजतक, हम हैं कौन? करें क्या काम।
की-मत नही समयकी करते, इससे हुये बहुत बदनाम॥
जी-ना व्यर्थ हमारा जगमे, किया न कुछ आतम कल्यान।
व-जह यही, दुख भोग रहे हैं, पाते नही नेकु उत्थान॥
न-मस्कार कर वीर प्रभूको, कमर कसो अपनी मतिमान।
ज्यो-ति जगाओ जैनधर्मको, मिथ्या तिमिर होय अविसान॥

ति-मरांवतर होगई शक्ति सब, उसका करो संगठन आज।
ज-न्मोत्सव यह महावीरका, इसमें कीजे उत्तम काज॥
गा-य वच्छ सम प्रीति प्रकट कर, बिछुड़े भ्रात मिला लीजे।
ई-र्षा तज सम्भाव जगाकर, ऐक्यामृतको पीलीजे॥
ग-र उन्नतिकी बाट जोहते, तब तो करो फूटका नाश।
ई-श्वरत्व गुण प्राप्त करो तुम, आत्मशक्तिका कर परकाश॥
ज-गमें जैनधर्म फैला दो, तन, मन, धन सब करो निछार।
य-ही श्रेष्ठ कर्तव्य तुम्हारा, वीर वचनका करो प्रचार॥
वी-र बनो परपीर निवारो, विघ्नोंसे नहिं भय खाओ।
र-खो सदा विश्वास यही उर इक दिन उन्नति कर जाओ॥
की-र्ति जगतमें जैनधर्मकी, इस प्रकारसे फैलाओ।
हो-वे "प्रेम" जातिकी उन्नति, जब आपसमें मिल जाओ॥

ब्रह्मचारी प्रेमसागरजी द्वारा 'महावीर जयन्ती' उत्सव-देहलीमें रचित व पठित।

नमहुँ मंगलमय सिंधु मुनिंद!

तुमने पंच महाव्रत धारे।
जग जीवनको भवते तारे॥
घोर परीषह जीतन हारे।
जैवंतो मुनि चन्द॥ नमहुँ॥ १॥
कलिमें जैन-तत्त्व दरशाये।
नर नारी मग मोक्ष लगाये॥
घरघरमें आनंद बरसाये।
नासक जगके फन्द॥ नमहुँ॥ २॥
कवि कोविद कथ कथ कर हारे।
तुम गुण सिंधु तरत नहिं तारे॥
हौ "सरोज" के सदा सहारे।
जै जै जै सुखकंद॥ नमहुँ॥ ३॥

(इटावामें श्री आचार्य १०८ मुनीन्द्रसागरजीके केशलोंचके समय श्री० जातिभूषण कविशिरोमणि प० स्वरूपचन्द्रजी सरोज द्वारा पठित)

નૂતન વર્ષે અભ્યર્થના.

હરિગીત છંદ

૧

ઓ જૈન વીરા ધર્મઘેલા, વાત મારી માનજે,
તમ અંતરે ઉતરે કદિ જો, સ્નેહથી સ્વીકારજો
ગત વર્ષ આજે પૂર્ણ થય, નવ વર્ષની શરૂઆત છે,
વીરા પ્રભુ મહાવીરના નિર્વાણનો દિન આજ છે.

૨

ગુરૂવર્ય ગૌતમ વીર જે, ગણધર હતા મહાવીરના,
જ્ઞાનલક્ષ્મી મેળવીને, નાશ કીધો ઘાતીઆ.
વળી વીર જે વિક્રમ થયા, તેણે જીત્યા શક લોકને,
એ ત્રણેના સંયોગથી, લોકો પૂજે દીવાળીને

૩

પ્રભુ પૂજીને આનંદથી, પસાર કરવો દીન આ,
નિજ દેહને શણગારી દાને લાવવી પ્રફુલ્લતા
સગા સંબંધી મિત્રને આનંદથી બોલાવવા,
સતકાર્યથી સત્કારીને વળી પ્રેમથી જમાડવા.

૪

આનંદ ને આનંદમા, આનંદથી દિન ગાળવો,
આનંદનો અવસર રૂડો, આનંદથી શણગારવો.
આપના સમાજમા, જે જે રિવાજો દુષ્ટ છે
તેહને પકડી પછાડો, તેજ હમણા ઇષ્ટ છે

૫

ઉતરેલ છડા બાળ લગ્નો વૃદ્ધ લગ્ન પિશાચ જે
મતનું મિષ્ટાન્ન ને વેચાય જ્યા કન્યાય છે,
મિથ્યાત્વ રૂઢી અંધ શ્રદ્ધા, દુષ્ટનું દુષ્ટત્વ જે.
છોટી દીએ મોટી હવુ, મોટી દીએ છોટાયને.

૬

આચાર ને વિનય વળીથી, ધર્મ પ્રેમ જણાય ના,
વીરના વચનો રૂડા જે, પ્રેમથી પળાય ના
એવા અને એથી અધિક, જે દુષ્ટ પેઠા કોમમા
મોહન હવે તે દુષ્ટને, ફેંકો ત્રીજા પાતાળમા

મોહનલાલ મથુરાદાસ કાણીસાકર.
કમ્પાલા. (આફ્રિકા)

'નૂતન આ સાલનો સંદેશ.'

પ્રભાતે આજની મંગળ
  ઉગ્યો ભાનુ નૂતન વર્ષનો;
ચાહી મંગળ દીયે આશીશ,
  વળી સંદેશ ચેતનનો;
નૂતન વર્ષના રૂડા દીન સો,
  હો મંગમય તમો સૌને;
સદા સૌ કાર્યમા સિદ્ધિ,
  હો મંગળ મન મુરાદોને,
ઉપાધિ આધિ ને વ્યાધિ,
  ટળી રહેજો સદા સુખી,
ટળો ભય શત્રુ ને સંકટ,
  પ્રભુની સ્નેહિ હો ઝાંખી,
પ્રભુ સંસાર વાડીમા,
  સદા આનંદ સૌ ઝુલજો;
કુટુંબી સ્નેહ સંબંધીમા,
  સદા સ્નેહ ઐક્યતા હોજો;
જગે કીર્તિ અમર પામી
  વધો સંતતી સંપત્તિ
પ્રભુ ગુણ ગાનમા રહી નિત,
  નંડો ન અન્ય આપનિ
તમારા ધર્મ સંભાળી
  સદા સન્માર્ગે ચાલજો,
ગણી પ્રિય પ્રાણથી પ્યારા
  દશાની દાઝ દીલ ધરજો.
અધર્મી જુલ્મી પાપીનું
  વધ્યું છે જોર જ્યાં આજે;
રહો તૈયાર સદા ચેતી,
  સ્વધર્મ રક્ષવા કાજે,
વિજય હોજો સદા મંગળ,
  સત્કૃત્યનો રૂડો આવેશ,
પ્રભુ છે સત્યનો સહાયક
  નૂતન આ સાલનો સંદેશ

રામચંદ્ર માધવરાવ મોરે-સુરત.

संपादकीय वक्तव्य।

नूतन वर्ष। श्री महावीरनिर्वाण सं० २४५३ पूर्ण होकर वीर सं० २४५४ का प्रारम्भ हुआ है उसी प्रकार इस "दिगम्बर जैन" मासिक पत्रने भी २० वर्ष निर्विघ्नतया पूर्ण कर २१वें वर्षमें कार्तिक सुदी १से पदार्पण किया है अर्थात् 'दिगम्बर जैन' पत्रको एक बीसी पूर्ण करके दूसरी बीसीमें प्रवेश करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आज तो हमारे अनेक पत्रोंके विशेषांक निकलने लगे हैं, परंतु १९वर्ष पहिले ऐसा समय था जब कि दिगम्बर जैन समाजके पत्रोंमें बहुत शिथिलता थी, न समाजके श्रीमानो, विद्वानो व संस्थाओंके चित्र व परिचय भी न प्रकट होते थे, उससमय इस पत्रने सचित्र विशेषांक निकालनेका प्रथम प्रयास किया था जिसकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई और आज इसका बहुत कुछ अनुकरण हो रहा है अर्थात् 'वीर', स० हितेच्छु, जैन बोधक, गजट, परवार-बन्धु आदिने अनेक उपयोगी सचित्रांकोंके प्रकट होनेसे समाजमें अनेक प्रकारकी जागृति मालूम पड रही है। इसवार इस विशेषांकमें हिंदी, अंगरेजी व गुजराती भाषाके कुल ६३ लेख व कविताओंका संग्रह १६२ पृष्ठोंमें ८ नवीन व उपयोगी चित्रों सहित हम प्रकट करसके हैं, इनमें श्री० वि० बा० बेरिस्टर चम्पतरायजी, मि० हर्बर्ट वॉरन व ताराचन्द पांड्याके अंगरेजीके लेख इतने महत्वके प्रगट हुए हैं कि उनका हिन्दी अनुवाद भी हम क्रमशः प्रगट करनेकी व्यवस्था करेंगे। हिन्दी लेखोंमें जैनधर्म व ज्योतिषविद्या, वरदान, श्वे० जैनोंके आगम ग्रन्थ, स्वास्थ्य आदि लेखोंसे जैनसमाजमें साहित्यके क्षेत्रमें कुछ विशेष प्रकाश पडेगा। ए० सं० बढ़ानेपर भी कई लेख व कविताएँ छपनेसे रह गये हैं उनको आगामी अंकोंमें क्रमशः स्थान दिया जायगा। जिन२ लेखकोंने इस विशेषांकके लिये परिश्रम-पूर्वक लेखादि भेजनेमें कष्ट उठाया है उनका हम आभार मानते हैं व इसीप्रकार वे 'दिगम्बर जैन' की सेवा करते रहेंगे ऐसी उम्मेद रखते है तथा ग्राहकोंसे इतना निवेदन करते हैं कि वे इस विशेषांकके प्रकट होनेपर उसको समय निकालकर आद्योपांत अवश्य२ पढें व उसपर मनन करें ताकि लेखकोंका व हमारा श्रम सफल हो।

***

उपहार-ग्रन्थ। गत १७ वर्षोंकी तरह इस वर्षके ग्राहकोंको वीर संवत् २४५४ का जैन तिथिदर्पण स्वर्गीय बेरिष्टर जुगमंदिरलाल जैनीके चित्र सहित आश्विनके अंकके साथ भेंटमें भेजा जाचुका है व नवीन ग्राहकोंको इस अंकके साथ भेजा गया है उसे पाठक सग्रहीत रक्खें तथा इस वर्षके ग्राहकोंको भी प्रसिद्ध ऐतिहासज्ञ बा० कामताप्रसादजी लिखित "भगवान पार्श्वनाथ" पूर्वार्ध नामक नवीन ऐतिहासिक ग्रंथ उपहारमें देनेका निश्चित किया है जो दो तीन माहमें तैयार होनेपर सब ग्राहकोंको भेज दिया

जायगा। विशेषांक, तिथिदर्पण व उपहार ग्रन्थ परिमित संख्यामें ही छपाये गये हैं इसलिये नवीन ग्राहक होनेवाले शीघ्रता करें ताकि उनको इन सबका लाभ मिलसके व पीछेसे पछताना न पडे।

**

वियोग। गत वर्षमें दि० जैन समाजको श्री० बेरिस्टर जुगमदिरलालजी जैनी इन्दौर व पं० विहारीलालजी चैतन्य अमरोहाके वियोगसे दो अंग्रजी पढे लिखे संस्कृतज्ञ विद्वानकी कमी हुई है जिसकी पूर्ति होना अतीव कठिन है। बेरिस्टर साहब अनेक जैन ग्रन्थ अंग्रेजी भाषामें प्रकट कर गये है व कितनेक छपने योग्य तैयार कर गये हैं व आपकी लाख डेढ़लाख रुपयेकी मिलकत इसी जैन साहित्य प्रचारके लिये दान करनेका विल कर गये हैं जो जैन इतिहासमे सुवर्णाक्षरोंसे अंकित रहेगा। अब आवश्यकता यही है कि आपके विलके ट्रस्टी आपकी मिलकतकी योग्य व्यवस्था करके बेरिस्टर साहबकी इच्छानुसार उनका उपयोग करनेकी व्यवस्था जहातक हो शीघ्र ही प्रारंभ करें।

प० विहारीलालजी चैतन्यकी अनेक कृतियोंमें "जैनशब्दकोष" का कार्य अतीव आदरणीय है व उनके शेष भाग उनके सुपुत्र शांतिचद्रजी शीघ्र प्रकट करें यह जैन समाजकी आकांक्षा है। आप संस्कृत, उर्दू, अंगरेजी भाषाके ऐसे बेजोड विद्वान थे कि आप इस विद्वत्तासे जैन साहित्यका बहुत कुछ उपकार कागये है। आप दोनोंकी आत्माओंको शांति लाभ हो यही हमारी भावना है।

हत्याकांड। गत वर्ष अक्षयतृतीयाके परम पवित्र दिन हमारे परम पूज्य अतिशय क्षेत्र श्री ऋषभदेवजी (केशरियाजी) में उदैपुर राज्यके सैनिकोंकी प्राईवेट सहायता लेकर श्वेताम्बर जैनों द्वारा मंदिरके भीतर मारपीट करवाके जो ५–७ दि० जैनोकी हत्या करवाई गई व अनेक दि० जैनोंको जखमी कर डाला था उसका न्याय उदैपुर राज्यसे अभीतक नहीं हुआ है न ध्वजादंड केसका निवटारा ही हुआ है जिसकी दि० जैन समाज टकटकी लगाकर राह देख रहा है। जैन मंदिरके भीतर ऐसा अमानुषिक हत्याकाड होना उदैपुर राज्यके लिये भी कलंकरूप है तथा श्वेतांबर जैनोंने प्रेरणापूर्वक यह कार्य कराया था यह भी जैन इतिहासमें काले अक्षरोंसे अंकित रहेगा। अब तो हम यही चाहते है कि इसका न्याय शीघ्र ही प्राप्त हो व केशरियाजी तीर्थमें भविष्यमे किसी प्रकार भी टटा उपस्थित न हो ऐसा स्थायी प्रबन्ध ही उदयपुर राज्यकी तरफसे हो।

**

तीर्थरक्षाका सुलभ उपाय। गत वर्षमें दो हर्षजनक बात जैन समाजके लिये ये हुई कि राजगिरि केस जो श्वेतांबर जैनोंने दिगम्बर जैनोपर दायर कर रक्खा था तथा तारंगाजी केस जो श्वे० जैन व दि० जैन तथा महीकांठा तालुकेदारोंके बीचमें चलता था उन दोनो केसोंका निवटेरा आपसमे इस तरह हो गया है कि अब राजगिरि या तारङ्गाजीमें दि०

व श्वे० जैनोंके बीचमें किसी प्रकारका झगड़ा ही उपस्थित नहीं होसकेगा। इस कार्यका श्रेय हमारी भारत० दि० जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी व उसके कार्यकर्ता श्री० सरसेठ हुकमचन्दजी, ला० देवीसहायजी, बा० अजितप्रसादजी, बा० निर्मलकुमारजी, रा० ब० बा० लखीचन्दजी, भाई रतनचन्दजी चुन्नीलाल जरीवाले आदिको है तथा हमारे इन अगुओंको हम इतना और भी निवेदन करते हैं कि वे इसी प्रकार शिखरजीके शेष दो केस अतरीक्षजी, मकसीजी, केशरियाजी, पावापुरीजी आदिके केस भी आपसमें निवटानेकी पूर्ण कोशिष करें ताकि कोर्ट व वकीलोंमें जैन समाजके हजारो बल्कि लाखो रुपये जानेसे बच सकें व जैन समाजकी शक्ति जो ऐसे कार्योंमे खर्च होरही है वह दूसरे कार्यमें लग सके। इसके लिये अर्थात् स्थायी तीर्थरक्षाके लिये सुलभ उपाय यही है कि दिगम्बर जैनसमाज व श्वेतांबर जैनसमाजमेसे ५-५ प्रतिनिधियोंका स्थायी चुनाव होजाय जो किसी भी तीर्थपर किसी भी प्रकारका दि० श्वे० जैनोंमें झगडा उपस्थित हो तो उसका निर्णय करते रहें व जो सबको मान्य हो। आशा है दि० श्वे० जैन अगुए हमारे इस निवेदनपर ध्यान देंगे।

* *

ब्र० सीतलप्रसादजीका अनुचित कार्य।

श्री० ब्र० सीतलप्रसादजीने गत चातुर्मास खंडवामें किया था व वहां धर्मोन्नतिके अनेक कार्य किये थे व विदाईके समय आपको *खण्डवा हिन्दू समाज व खड़वा दि० जैन समाजकी ओरसे अलग२ मानपत्र भी दिये गये थे वहांतक कि खंडवा समाजको या हमको यह नहीं मालूम था खडवासे वर्धाको विदा होते ही आप अपना रूप पलट डालेंगे व अपनी अगली कीर्तिपर पानी फेरनेवाला अनुचित कार्य कर डालेंगे। खेद है कि आपने अस्वस्थताका कारण बताकर 'जैनमित्र' व 'वीर'की संपादकीसे एक वर्षकी छुट्टी लेली व जिन२ संस्थाओंमें आपका हाथ था उनसे भी अलग होकर व हमको भी अजान रखकर वर्धा जाकर "विधवा विवाह" पर अपना मत प्रकट कर दिया, "सनातन जैन समाज" नामक सस्था इस हेतुके प्रचारार्थ स्थापित करके उसके सभापति बने व उसकी ओरसे "सनातनजैन" नामक एक पाक्षिक पत्र वर्धासे निकालने लग गये तथा वर्धामें एक खडेलवाल विधवाका विवाह कराया गया जिसमे आपने शामिल होकर आशीर्वाद दिया जिसके समाचार जब हमको कोई ८-१० दिनके बाद मालूम हुए तबसे हमें बड़ा दुःख होरहा है कि आपने यह बहुत ही अनुचित व शास्त्रविरूद्ध कार्य प्रारंभ किया है। 'जैनमित्र' (साप्ताहिक पत्र)की संपादकीका कार्य १ वर्षके लिये सेठ ताराचदजीने हमें सुपुर्द किया है उसमें भी हमने प्रकट करदिया है कि ब्रह्मचारीजीके ऐसे मतसे हम कतई सहमत नही है, न ब्रह्मचारीजीके इस विषयके लेख ही हम प्रकट करेंगे, सिर्फ आपके अन्य उपकारी लेख जैसे पहिले छपते थे वैसे ही प्रकट होते रहेंगे तथा विधवाविवाह प्रचारकी आपकी युक्तियोके खंडनके जो लेख सभ्य भाषामें आवेंगे उनको अवश्य स्थान दिया जायगा

जिसका उत्तर ब्रह्मचारीजीको देना हो तो अपने पाक्षिक पत्र 'सनातन जैन' में दे सकते हैं अर्थात आपका इस विषयका एक भी लेख मित्रमें या दिगम्बर जैनमें स्थान नहीं पासकेगा ।

वास्तवमें आपने यह बहुत ही अनुचित प्रयास प्रारम्भ किया है और आपकी इस अनुचित कृतिसे हमें बहुत ही खेद है । अब आपके लिये गालीगलौंज व बहिष्कारकी नीतिसे काम नहीं चलेगा परन्तु विद्वानोंको आपकी युक्तियोंका सप्रमाण खंडन करते रहकर जैन समाजको जाग्रत रखना होगा ।

***

ગુજરાતમાં ધાર્મિક શિથિલતા. જ્યારે હિંદના બીજા ભાગોમા મેળા, પ્રતિષ્ઠાઓ તેમજ અનેક સભાઓના અધિવેશનો થવાની વાતો સાભળવામા આવે છે ને અનેક સ્થળે નવીન પાઠશાળાઓ, આશ્રમો, બોર્ડિંગો, વિદ્યાલયો ખુલવાના સમાચાર મળતા રહે છે ત્યારે આપણા ગુજરાતમા તેમાનું કશુએ જણાતુ નથી માત્ર હમણા ઇડરમા શ્રી ૧૦૮ મુનિશ્રી શાતિસાગરજીના કેશલોચ સમયે ત્યા બોર્ડિંગ ને શ્રાવિકાશ્રમ ખોલવાના વિચારો થાય છે જે જલ્દી આમલમા આવે એમ આપણે ઇચ્છીશું પણ એટલાથી બેસી ન રહેતા સોજીત્રાના શ્રાવિકાશ્રમને મોટા પાયા ઉપર લાવવા પ્રયાસ થવો જોઇએ તેમજ ગુજરાતના દિ જૈનોમા જાગ્રતિ આવે તે માટે એ જરૂરનુ છે કે ગુજરાતના દિગબર જૈનોની એક મોટી સભા—કોન્ફરન્સ સ્થાપન કરવામા આવે આવો પ્રયાસ કરવા માટે ઘણી વખતે લખાઇ ગયુ છે પણ હજુ સુધી તેવો પ્રયાસ થઇ શકયો નથી, એ શોચનીય છે ગુજરાતમા પંડિતો, ઉપદેશકો ને જૈનધર્મના જાણકાર વિદ્વાનો ઉત્પન્ન કરવા માટે એક વિદ્યાલય બ્રહ્મચર્યાશ્રમના રૂપમા સ્થાપવાની જરૂર વર્ષોથી છે તે પર ખાસ લક્ષ આપવાની જરૂર છે, આ માટે જો માહા માસમા પાવાગઢમા મેળા પ્રસગે ગુજરાતના સર્વે દિ જૈનભાઇયોને આમત્રણ કરી બોલાવવામા આવે તો ત્યા પુખ્ત વિચાર થઇ ગુજરાત દિ જૈન કોન્ફરન્સ અને તે દ્વારા એક વિદ્યાલય સ્થાપન કરવાની કોશિશ થઇ શકે આવી એ બાબત ઉપર પાવાગઢના પ્રબધકર્તાઓ, શેઠ તારાચદ નવલચદ ઝવેરી, શેઠ છોટાલાલ ઘેલાભાઇ ગાધી વગેરે આગેવાનોનુ લક્ષ ખેચીયે છિયે

*

ગુજરાતી જૈન સાહિત્ય. ગુજરાતમા ગુજરાતી ભાષામા અનેક હસ્તલિખિત ગ્રન્થો અનેક ગ્રન્થભડારોમા પડેલા છે તેના ઉદ્ધાર ને પ્રચાર કરવા માટે સુરતમા "દિગબર જૈન પ્રાચીન ગુજરાતી સાહિત્યોદ્ધારક ફડ" સ્થાપન થયેલું છે જેનો ઉદ્દેશ પ્રાચીન ગુજરાતી ભાષાના દિ જૈન ગ્રન્થો નવી તે ભાષામા પ્રકટ કરી તેનો લાગત (પડતર) કિમતે પ્રચાર કરવાનો છે તેમજ આ ફડમા ઓછામા ઓછા ૫૧) ભરનારને બધા પડતા પુસ્તકો ભેટ તરીકે મળે છે આ ફડ તરફથી "પ્રદ્યુમ્નકુમાર રાસ તેમજ શ્રીપાળરાસ અને કર્મ વિપાકરાસ" જેની કિમત અનુક્રમે માત્ર આઠ ને ચાર આના છે તે બહાર પડી ચુકેલા છે તેનો લાભ લેવા અમો ગુજરાતના ભાઇઓને નિવેદન કરીયે છિયે તેમજ આ ફડને પગભર કરવા એના ફડમા ૫૧) ૫૧) ભરી એના સ્થાયી સહાયક થવાની જરૂર છે કે જેથી ધીમે ધીમે ગુજરાતી ભાષાના સર્વ દિગબર જૈન હસ્તલિખિત ગ્રન્થોનો ઉદ્ધાર થઇ શકે

જૈન થયા—સીતવાડા નિવાસી મુલસિંહ રાઠોડ રજપૂત જે વૈષ્ણવ ધર્મ પાળતા હતા ને ઇંડરની સ્કુલમા માસ્તર છે તેમણે જૈનધર્મના સિદ્ધાંતો જાણી જૈનના વ્રત નિયમો ગ્રહણ કરી આસો સુદ [illegible] યજ્ઞોપવિત [illegible] ગ્રહણ કર્યું હતુ

जैन समाचारावलि।

श्री शिखरजीकी यात्राके चतुर्विध संघके समाचार—परतावगढ़ नि० सेठ पूनमचद घासीलालजी बम्बईने कुम्भोज (कोल्हापुर)से श्री १०८ आचार्यश्री शान्तिसागरजी आदि मुनिसघ सहित श्री शिखरजीकी यात्राके लिये पैदलसंघ मगसिर वद १से निकाला है उसमें ४ मुनि, ३ ऐलक, ३ क्षुल्लक, २ क्षुल्लिका, १ ब्रह्मचारिणी, ९ ब्रह्मचारी तथा एक दो प्रतिमाधारी ८-१० उदासीन त्यागी मिलकर करीब ३०-३५ त्यागियोंका समुदाय है तथा सघपतिके अतिरिक्त सेठ रावजी सखाराम, जीवराज गौतमचन्द, माणिकचन्द मोतीचन्द, प० उल्फतरायजी आदि करीब १०० श्रावक श्राविकाओंका समुदाय है। साथमें ५०००)के चांदीके समवसरण सहित जिनेन्द्र भगवान हैं व सामान आदि लेजानेको ४ मोटरलारी व २० बैलगाडिया है। जो मुनियोंको आहारदानका प्रबध करते है उनको भोजन सामान व बैलगाडी मुफ्त दी जाती है। मुनिसघ नित्य ७॥ बजे सामायिकसे निवृत्त होकर ८ मील चलते हैं व जहा श्रावकोंने आगेसे जाकर विश्राम किया हो वहा ठहरकर करीब १०॥ बजे आहारको निकलते हैं। फिर दोपहर बाद २ से ५ तक चलते हैं। श्रावक लोग भी भोजनसे निवृत्त होकर मोटर बग्गादी द्वारा दूसरे मुकामपर चले जाते हैं। प० उल्फतरायजी यात्रासघके मत्री हैं।

यह चतुर्विध यात्रासंघ कुम्भोजसे जयसिंहपुरा होकर सांगली पहुंचा था जहां अपूर्व सत्कार हुआ। ५००० आदमी थे। पचायतीने संघपतिको मानपत्र दिया व अनेक प्रकारका उपदेश हुआ। यहांसे सघ मीरज पहुचा जहा भी ऐसा ही सत्कार हुआ। खुद महाराजा साहब अपने राजकीय ठाठसे दर्शनार्थ पधारे थे। अनेक धर्मदेशना हुई। यहासे सघ अथणी, बाबानगर (अतिशयक्षेत्रजी) होकर बीजापुर वदी १४को पहुचा था। अपूर्व स्वागत व मानपत्र आदि दिया गया। यहासे इडी, नागणसुर होकर अकलकोट पहुंचा जहां दो त्यागियोंका केशलोच हुआ। ८०००) चदा होकर गौरक्षिणी सभा स्थापित हुई। यहां महाराणी शासनकर्त्री हैं। दीवान साहब दर्शनको पधारे थे। यहासे संघ वागदरी, गुलबर्गा होकर आलन्द पहुचा यहां निजामका कट्टर मुसलमानी राज्य है जहां भी मुनि-विहारकी आज्ञा औरंगजेब व अकबरके समयके प्रमाण मिलनेपर मिल गई। सब अधिकारी पधारे थे। सब हिन्दू, मुसलमान दर्शनसे प्रसन्न हुए। मुनि वीरसागरजीका केशलोच हुआ। ३०००) चदा अनाथालयको हुआ। कई मुसलमानोंने मांस भक्षणका त्याग किया। एकदिन तो सब मुसलमानोंने जीवोंकी कतल करना व मांस भक्षण करना बद रखा था। यहां गुलबर्गाके कलेक्टरका पत्र आया कि मै योगबलनिष्ठ मुनिसंघके विहारकी सफलता चाहता हू आदि। यहासे लातुर तक १०० मीलका आलंदवालोंने रास्ता ठीक कराया था। आलदसे १२ मीलपर रोशनबाद्के खेतमें मुकाम हुआ जहां इस फकी-

रने आजन्म मांस खानेका व जीवहिंसा करनेका त्याग किया। यहांसे संघ गुंजेटी पहुंचा। खब स्वागत होकर मानपत्र दिया गया। अनाथालयको ५००१) का दान सेठ रेवचन्द धनजीसे मिला। आलंदमें ब्र० सीतलप्रसादजीके विधवाविवाहके मतप्रकाशन पर घृणा व खेदका प्रस्ताव हुआ था। यहांसे संघ अब लातुर पहुच चुका होगा तथा यह भी खबर मिली है कि आगे रायपुरके मार्गसे न जाकर नादेड, कारंजा, बदनेरा, व नागपुर होकर ही सम्मेदशिखरजी जायगा।

रोहतकसे शिखरजीका सुलभ संघ—ला० हरप्रसाद तुलसीराम जैन अग्रवाल रोहतकसे रेलद्वारा श्री शिखरजीकी यात्राका संघ माघ सुदी १९ ता० ५–२–२८ को निकालेंगे जो दिल्ली, मथुरा, सोनागिर, कानपुर, अयोध्या, बनारस, आरा, पटना, राजगृही, कुंडलपुर, पावापुर, मंदारगिरि, सम्मेदशिखरजी (ता० २२–२–२८ से ता० ६–३–२८ तक) कलकत्ता, इलाहाबाद होकर रोहतक ता० ११–३–२८ को वापिस पहुचेगा। शिखरजीमें मुनिसघके दर्शनका भी लाभ होगा। संघपति स्पेशल ट्रेनका प्रबंध करनेवाले है इसलिये इस संघमे जानेवाले पौष सुदी १९ तक सघपतिको रोहतक मंडी (पंजाब) के पतेसे अपनी सख्या सहित सूचित करें। बहुतसा खर्च सघपति ही उठावेंगे इसलिये करीब १। मासमें सुलभतासे शिखरजीकी यात्रा सानद करनेवाले माई बहिन अवश्य पधारनेकी तैयारी करें।

मुनि शांतिसागरजी (छाणी)—ने पौष वदी २ को ईडरमें केशलोंच किया था।

बावनगजाजीका मेला—पौष सुदी ८ से १९ तक होगा।

वेणूरमें महाभिषेक—तीन गोम्मटस्वामीमेंसे वेणूरके श्री गोम्मटस्वामीकी महाभिषेक पूजा माघ सुदी २ से १९ तक होगी। जैनबिद्री मूडबिद्रिकी यात्रा भी साथ २ हो सकेगी।

जयंति व दान—समाजके नामी विद्वान् प० जुगलकिशोरजी मुखत्यारने अपने ५०वें वर्षकी जयंती मगशिर सुदी १९को मनाकर २५१) का दान भिन्न२ सस्थाओंको किया था जिसमें १००) इतिहासविषयक एक पारितोषकके लिये है।

जारखीमें विद्यालय खुला—पद्मावती पुरवाल महासभाकी ओरसे जारखी (आगरा) में पन्नालाल दि० जैन विद्यालयकी स्थापना मगसिर सुदी १९को ला० प्रद्युम्नकुमारजी रईस सहारनपुरके करकमलोसे हो गई। साथमे सभाका अधिवेशन भी न्यायाचार्य प० माणिकचन्दजीके सभापतित्वमें हुआ था व अनेक प्रस्ताव पास हुए। प० बाबूरामजीने सभाको १०१) दिये। यह सभा पद्मावती परिषदसे अलग स्थापित हो गई है व अच्छा कार्य कर रही है।

दानकी व्यवस्था—रा० ब० सेठ केशरीमलजी गयाने अपनी बीमारीके समय १५०००) की जायदाद दानमें निकाली थी उसका आपने अभी ट्रस्ट कर दिया है। इसकी ९०) मासिक आय आती है जिसमेंसे ४०) मासिक स्कोलरशीप देनेमे व शेष सदाव्रत, मंदिर जीर्णोद्धार आदिमे खर्च होगा।

कम्पिलाजी—मे माघ सुदी ४–६ को वार्षिक मेला होगा।

सुसारीवाले—सेठ रोडमल मेघराजजीने छगनलालजीकी पुत्रीके वियोगमें ७१४)का दान किया है।

गिरनारजीका मुनिसंघ—श्री १०८ मुनि मुनींद्रसागरजी, मुनि धर्मसागरजी आदिका मुनिसंघ इटावासे चातुर्मास करके मगसिर वदी ८को श्री गिरनारजीकी पैदल यात्राके लिये विहार कर रहा है। शिकोहाबादसे आगे निकल चुका है।

पावापुरी—में माघ सुदी ५ को नवीन मन्दिरकी प्रतिष्ठा होगी।

श्री केशरियाजीमें हत्याकांड—की स्मृतिके लिये बम्बईके गुलालवाडीके मन्दिरमें सुदी ३को सभा होकर अनेक प्रस्ताव होते है। इस प्रकार आश्विन, कार्तिक व मगसिर सुदी ३को सभायें समयसार वाचनालयकी ओरसे बडे उत्साहसे हुई थी। यह वाचनालय सुबह ६॥ से ९ व सामको ६से ८तक खुला रखनेका मन्दिरके ट्रष्टियोंने स्वीकार कर लिया है। ब्र० शीतलप्रसादके विधवाविवाहके मतपर इसमें खेद करनेका प्रस्ताव भी हुआ था।

प्रशंसनीय दान—ला० मुसद्दीलालजी अमृतसरने जापान व कोरियामें बेरिस्टर चंपतरायजीकी असहमतसंगमकी (अंग्रेजी) ३०० पुस्तकें भेजनेको १००) प्रदान किये हैं।

परवार महासभा बीनाजीमें—अतिशयक्षेत्र बीनाजी (सागर) में परवार महासभाका नवमां वार्षिक अधिवेशन ता० २७-२८-२९ दिसम्बरको श्री० बा० पचमलालजी तहसीलदार जबलपुरके सभापतित्वमें होगा। यह स्थान सागरसे ४० मील व करेलीसे ३५ मीलपर है।

शांतिनिकेतनमें जैनधर्म—रवींद्रनाथ ठाकुरके शांतिनिकेतन विश्वविद्यालय (बोलपुर) में जैनधर्म सिखानेके लिये उपरोक्त लाला मुसद्दीलालजीने अपने खर्चसे पं० मथुरादासजी शास्त्रीको भेज दिये हैं। धन्य!

पं० सुंदरलालजी वैद्य—को उदैपुर अकलंक विद्यालयमें अन्यत्र जाते समय आपको उदैपुर पचानकी ओरसे मानपत्र देकर 'वैद्यरत्न' की उपाधि दी गई थी।

भक्तामर स्तोत्र—के ४२ काव्य प्रचलित करने या न करनेकी चर्चा चल रही है।

उदयपुर—में कार्तिक सुदी १५के दिन पचास भाइयोंने विधिपूर्वक यज्ञोपवीत ग्रहण किया था।

काशी—में समग्र जैन विद्यार्थी संमेलन स्थापित हुआ है इसमें हरकोई सभासद होसक्ता है व १॥) वार्षिक फीस है। ऑफिस भदैनी घाट, काशी है।

ब्र० आश्रम कारंजा—का वार्षिकोत्सव प्रॉ० हीरालालजी अमरावतीके सभापतित्वमें गत ता० २९-३०को बडे ठाठसे हुआ था। यह आश्रम उत्तरोत्तर उन्नति कर रहा है।

आगरा—में वार्षिक रथोत्सव व जीवदया सभाका नै० अधिवेशन होगया। इस समय विद्यावारिधि बेरिष्टर चम्पतरायजी पधारे थे व आपके अभूतपूर्व व्याख्यान हुए थे।

रामटेक—में कार्तिक सुदी १५ को वार्षिक मेला होगया। इस समय यहां नागपुर प्रा० दि० जैन खंडेलवाल सभा होनेवाली थी। वह उसके सभापति सेठ हजारीलालजीके अकस्मात् वियोगके कारण बंद रही थी।

श्राविकाश्रम बम्बई—का १९वां वार्षिकोत्सव कार्तिक सुदी १९को सौ० सगुणाबाईके सभापतित्वमें हुआ था तब अनेक उपयोगी संवाद, गरबे आदि हुए थे।

परिषद्‌की परीक्षा होगी—भारत दि० जैन परिषदके परीक्षालयकी ओरसे इसवार भी बोर्डिंग, स्कूल व कालेजोंमें पढ़ते हुए विद्यार्थियोंकी धार्मिक परीक्षा ता० २२–२३ जनवरीको प्रश्नपत्रों द्वारा हरएक स्थानपर ली जायगी। इसके मंत्री पं० चन्द्रकुमारजी शास्त्री–मरठ हैं।

नागौर—में कार्तिक सु० १९ को पारमार्थिक औषधालय खुलगया। इसकेलिये २००००) निकाले गये हैं।

महाराजा सीकर—ने अपने कुल स्टेटमें कानूनन बलिहिंसा बंद करा दी है। धन्य! यह दानवीर सेठ सुखानंदजीके प्रयासका ही फल है।

"दया"—नामक मासिकपत्र जीवदया सभा–आगरासे प्रकट होने लग गया है। वार्षिक मूल्य १) है।

'वीर' को इनामी लेख चाहिये–परिषदके 'वीर' पत्र बिजनौरने ता० १–१–२८ तक १२ पृष्ठोंका एक लेख मांगा है। सर्वोत्तमको बे० चम्पतरायजीकी ओरसे २९) इनाम मिलेगा। विषय निम्न ९ विषयोंमेंसे कोई एक–(१) जिनेन्द्रकी दिव्यध्वनि, (२) प्रतिक्रमण व शुद्धि, (३) पार्श्वनाथ व महावीरका पारम्परिक संबंध (४) जैनधर्मकी व्यवहारिक उपयोगिता, (९) जैनधर्म व समाजव्यवस्था।

कुंथलगिरि ब्रह्मचर्याश्रम चालू–हर्ष है कि मगसिर सुद १९के मेलेपर ७९ गामोंके ९०० भाइयोंने मिलकर वदी १को श्री० भगवतराय माहुले सोलापुर नि०के सभापतित्वमें सभा करके देशभूषण कुलभूषण ब्रह्मचर्याश्रम फिर चालू करनेका प्रस्ताव होगया। ब्र० पार्श्वसागरजी व सेठ रावजी सखाराम भूमवालोंमें समझौता होगया है। ब्र० पार्श्वसागरजी यहां ही हैं। अब इसकी कमेटीमें ११ मेम्बर रहेंगे जिनमें सेठ रावजी सखाराम भूम व सेठ जीवराज कस्तूरचंद परंडा अवश्य रहेंगे ऐसा प्रस्ताव भी हुआ है व आश्रमका सर्व सामान ब्र० पार्श्वसागरजीको सुपुर्द करनेका भी प्रस्ताव हुआ है। अब दो वर्षोंसे बंद हुआ उपयोगी ब्र० आश्रम फिर चालू होनेके शुभ समाचार मिलरहे हैं।

मुनि श्री चन्द्रसागरजी–ने मुक्तागिरिमें मगसिर सुदी १४ को केशलोंच किया था तब आसपासके बहुत लोग उपस्थित हुए थे।

रतलाम–में माणिकचन्द पानाचन्द दि० जैन बोर्डिंगका वार्षिकोत्सव ता० ९ [illegible]को दीवान सा०के सभापतित्वमें हुआ था।

गीठी-में ब्र० [illegible] अनेक प्रकारसे धर्मलाभ होरहा है।

शिकारपुर (बुलन्दशहर)–में [illegible] अधूरा पड़ा है उसके [illegible] आवश्यकता है।

स्वर्गीय बैरिस्टर जुगमन्दिरलालजी जैनी–के सम्बन्धमें लंदन टाइम्स ता० २५ सितम्बर २७में जो लेख छपा है वह [illegible] जैन (Herbert Warren [illegible]) लंदन द्वारा प्राप्त होनेपर नीचे प्रकट करते हैं कि जिससे पाठकोंको मालूम होगा कि श्री० जैनीके लिये

विलायतके अग्रगण्य वक्ताको भी कितना मान था–

MR. JAGMANDER LAL JAINI.

A leading figure in Jainism has been removed by the recent death, at the age of 46, of Rai Bahadur Jagmander Lal Jaini, Law Member and President of the Legislative Council, Indore, and late Chief Justice of the High Court of the State. In 1903 he stood first in the M. A. examination of the Allahabad University, and was appointed Assistant Professor of English and superintendent of the Government boarding house for the students. In 1906 he came to this country to study for the Bar, and became a member of Exeter College Oxford. With the assistance of Dr. F. W. Thomas and other Sanskritists, he founded the Jaina Literature Society of London. Returning to India, he practised at the Allahabad High Court, and later at Bankipur, and in 1914 he was appointed a Judge of the Indore High Court. In 1922 he was selected for the Chief Justiceship, and later became Law Member and President of the Legislative Council.

To the study, exposition, and promotion of Jainism he devoted the greater part of his leisure; his versatility as a writer also found expression in articles, books and pamphlets on literary, social and political topics. His best known work in the field he made peculiarly his own was his "Outlines of Jainism," edited by Dr. Thomas and published in 1916. It was described at the time as the best handbook available "on the whole circle of Jaina history, theology, metaphysics, ethics, and ritual." In the same year was published his "Jaina Law" based on the very old Sanskrit work, the "Bhadrabahu Samhita." He translated many standard Jain Shastras, both Sanskrit and Prakrit, and he published in 1918 his convenient Jaina Gem Dictionary. He was the author of the exposition of Jainism read at the Conference of Religions of the Empire held in London three years ago. He has left many unpublished works, but these will appear in due course under the provisions of his will, whereby his substantial property, after various deductions and charges, is to be employed by his executors "in preservation and propagation of Jainism for the good of mankind."

ઇડરમાં કેશલોચ ને અપૂર્વ પ્રભાવના– શ્રી ૧૦૮ મુનિ શ્રી શાંતિસાગરજી (છાણીવાળા) પરતાપુરમાં ચાતુર્માસ કરી ત્યાંથી વિહાર કરતા કરતા ઇડર પધાર્યા હતા જ્યાં માગસર વદ૪ ની બપોરે બે વાગતે જૈન અજૈનોની ભારે મેદની વચ્ચે કેશલોચ કર્યો હતો તે પ્રસંગે ઠાકોર સા. મેહતાબસિંહજી, મેજીસ્ટ્રેટ વગેરે પણ પધાર્યા હતા તેમજ મુંબઇવાળા શેઠ લલ્લુભાઇ લક્ષ્મીચંદ ચોકસી તેમજ ઓરાણવાળા શા. લલ્લુભાઇ રાયચંદ પણ હાજર હતા. આ પ્રસંગે મુનિમહારાજના ઉપદેશથી ઇડરમાં મુનિમહારાજના નામથી એક બોર્ડિંગ અને એક શ્રાવિકાશ્રમ ખોલવાનું નક્કી થયું તથા તે માટે કેટલીક રકમો પણ ભરાઇ છે. વળી આ પ્રસંગે નાહગામવાળા મોતીલાલજી ત્યાગી બ્રહ્મચારી થયા તેમજ ભીલોડાવાળા લલ્લુભાઇ ગુલાબચંદ પણ સાતમી પ્રતિજ્ઞા ધારણ કરી ફતેહસાગર બ્રહ્મચારી થયા છે તથા કેટલાકે આજન્મ શીલવ્રતની પ્રતિજ્ઞા લીધી તેમજ અનેકોએ બીડી, અભક્ષ્ય વગેરેનો ત્યાગ કર્યો હતો. કેશલોચ સમયે ફોટો પણ લેવાયો હતો તે પછી ગડીયા પાનાચંદ ગુલાબચંદ જેઓ મુનિમહારાજના અનેરી થાય છે તેમણે આપની ભક્તિમાં એક કવિતા બનાવીને ગાઇ હતી વળી ભાણુદાની પાઠશાળાને કેવળભાઇ રાવજીભાઇ તરફથી ૨૦૦૧) ની મદદ મળી હતી. બોર્ડિંગ ને શ્રાવિકાશ્રમના ધારા ધોરણ ને ફંડની રકમ એકઠી થયેથી જાહેર થશે વળી એજ રાત્રે આદિનાથના મંદિરમાં સભા થઇ હતી જેમાં બ્ર. ફતેહસાગર, લલ્લુભાઇ રાયચંદ, ગડીયા પાનાચંદ ગુલાબચંદ

વગેરેના કેળવણીની આવશ્યકતા પર વ્યાખ્યાનો થયાં હતાં. અત્રેથી મુનિ મહારાજ તારંગાજી વિહાર કરનાર છે. **દોશી કસ્તુરચંદ અમથાલાલ.**

કેશરિયાજીના હત્યાકાંડ—બાબત સપ્ત માસિક સભા માગશર સુદ ૩ ની રાત્રે મુંબઈમાં ગુલાલવાડીના મંદિરમાં સમયસાર વાચનાલય તરફથી શેઠ સુરચંદ શીવરામ ગાંધીના પ્રમુખપણા નીચે મળી હતી જેમાં જગમોહનદાસ હીરાલાલ, કંચનલાલ, પં. રામપ્રસાદજી, મલુકચંદભાઈ વગેરેના વિવેચન પૂર્વક નીચેના ઠરાવો થયા હતા—

(૧) હત્યાકાંડ પર શોક ને સમવેદના (૨) સમયસાર વાચનાલય મંદિરમાં ખુલ્લુ રાખવા દેવાની પરવાનગી માટે ટ્રસ્ટીઓનો આભાર (૩) સાર્વજનિક પત્રોમાં જૈન નામથી ન લખતાં શ્વે. દિ. કે સ્થા. જૈનના નામથીજ લેખ લખવાની સૂચના (૪) બ્ર. સીતલપ્રસાદજીએ પુનર્વિવાહ બાબત મત દર્શાવ્યો છે તે પર ખેદ (૫) તારંગાજીના ઝઘડાની પતાવટ કરવા માટે તીર્થક્ષેત્ર કમેટી ને મેજર મિકનો આભાર

લોહારા—થી ખડકની પાઠશાળાઓના મહામંત્રી ફતેચંદભાઈ તારાચંદ જણાવે છે કે સપ્ટેમ્બર માસમાં અમો ભાણુદા, સાગવાડા વગેરે સ્થળે જઈ પાઠશાળાઓનું નિરીક્ષણ કરી પરતાપુર જઈ મુનિ શાંતિસાગરના દર્શનનો લાભ મેળવી ત્યાંની પાઠશાળાની ઉન્નતિ માટે પ્રયત્ન કર્યો હતો ને ઇનામ માટે કેટલીક રકમો ને પુસ્તકો મળ્યા હતાં. વળી બાવળવાડામાં દોશી થાવરચંદ ઝવેરચંદ ૧૧ વર્ષની વયમાં ગુજરી જવાથી તેમની માએ રૂ ૨૯૩ા) નું દાન કર્યું હતું જેનો ઘણો ભાગ ઉપયોગ ખડકની પાઠશાળાઓ માટે વિદ્યાદાનમાંજ થયો છે. વળી ગત માસમાં અમે નાગજીભાઈ, કપુરચંદભાઈ ને વીરચંદભાઈને તેડી જુદેર જઈ પાઠશાળાની પરીક્ષા લીધી ફળ ઠીક છે. સભા કરી ઉપદેશ આપવાથી ૩૧) મદદ ને ઇનામ ફંડમાં મળ્યા. પરતાપુર પંચ તરફથી બાળબોધ જૈનધર્મ ભાગ ૧ ની ૫૦૦ પ્રતો ભેટ વેંચવા મળી છે.

અંડ (ભીલોડા)માં—કાર્તિક વદ ૧ થી ૮ સુધી અનંત વ્રત અને રવિવાર વ્રતનું ઉદ્યાપન બ્ર મોતીલાલના ઉપદેશથી સારા ઠાઠથી થઈ વરઘોડો પણ નીકળ્યો હતો, ને કેટલાક નિયમો પણ લેવાયા હતા.

વીસામેવાડા મદદ ફંડ—મોરડ નિવાસી શેઠ શીવલાલ તુલસીદાસ સં. ૧૯૭૮ માં મરતાં પહેલાં એક વીલ કરી તેના ૭ ટ્રસ્ટીઓ નીમી ગયેલા છે તેની નકલ તેના એક ટ્રસ્ટી શ્રી મોહનલાલ કાળીદાસ સોલીસીટરે મોકલી છે તે જોતાં જણાય છે કે એ વીલમાં દર્શાવ્યા મુજબ નાણાંની વ્યવસ્થા કર્યા પછી ૫૦૦૦) મેવાડા ફંડ ને ૧૦૦૦) મોરડમાં ધર્મશાળા બંધાય તે માટે મળી ૬૦૦૦) બાકી છે તે પૈકી ૪૪૨૫) ના પોસ્ટલ કેશ સર્ટીફિકેટ લીધેલા છે ને ૨૦૦૦) મુંબાઈમાં એક મકાન પર ધીર્યા છે. હવે **વીસામેવાડા મદદ ફંડ**નું વ્યાજ કોઈપણ વીસામેવાડા ગૃહસ્થ કે વિદ્યાર્થીને વ્યાપારાર્થે અથવા અભ્યાસ માટે મદદની જરૂર હોય તેમાં વાપરવાનું છે માટે જેને મદદની જરૂર હોય તે અથવા ખાસ મદદ કરવાને જેવા લાગતા માણસોના નામ ફોર્મ મેવાડા બંધુ એના બે ટ્રસ્ટીઓ—શા. ત્રીભોવનદાસ રણછોડદાસ ચોકસી મુંબાદેવી મુંબાઈ અથવા મોહનલાલ કાળીદાસ સોલીસીટર તારદેવ પુલ સામે, મુંબાઈને લખી જણાવવાથી બનતી મદદ કરવામાં આવે છે માટે આ ફંડનો લાભ મેળવવા તરફ અમો વીસામેવાડા બંધુઓનું ધ્યાન ખેંચીએ છિયે.

સુરતમાં જૈન લગ્નવિધિ ને દાન—સુરતમાં માગસર વદ ૭ ની રાત્રે શા. કપુરચંદ હીરાચંદ (ખેરગામ)ની પુત્રીના લગ્ન જેઠાલાલ જીવરાજને ત્યાં જૈન વિધિથી પં. છોટેલાલજી પરવારે કરાવ્યા હતા સુરતના દશાહુમડ ભાઈયોમાં હાલ આ વિધિ પ્રથમજ થઈ હતી લગ્નની ખુશાલીમાં કન્યા પક્ષ તરફથી ૫૧) ચાર દાન ને ૨૫) દિ.જૈન પાઠશાળા સુરત તેમજ વર પક્ષ તરફ ૨૫) પાઠશાળાને તેમજ બીજા આશરે ૫૦) મળી કુલે ૧૫૦)નું દાન થયું હતું. વળી એ નિમિત્તે આગલે દિને રાત્રે શા. મલુકચંદ કસ્તુરચંદના પ્રમુખપણા નીચે પં. છોટેલાલજીએ વાદ સભા તરફથી જૈન ધર્મ પર એક જાહેર વ્યાખ્યાન પણ આપ્યું હતું.

चित्र-परिचय।

इस विशेषांकमें प्रगट किये हुए चित्रोंका संक्षिप्त परिचय इसप्रकार है—

(१) श्री १०८ आचार्य श्रीशांतिसागरजी महाराज—आपके परिचयसे तो हमारे पाठक अच्छी तरहसे परिचित है इसलिये वार २ लिखनेकी आवश्यका नहीं है। आपने गत चातुर्मास कुंभोज (कोल्हापुर)में किया था व वहासे फिर आप मगशिर वदी १से श्री शिखरजीकी पैदल यात्राको करीब २९-३० मुनि, ऐलक, क्षुल्लक, अर्जिका ब्रह्मचारीगण तथा २००-२५० श्रावक, श्राविकाओं सहित विहार कर रहे है (जिसका सारा श्रेय इस संघको चलानेवाले संघपति सेठ पुनमचन्द घासीलालजी परतापगढ़ निवासीको है) जो करीब १वर्ष बाद फिर दक्षिण प्रातमें लौटेंगे। आपकी शात प्राभाविक मुद्राका वर्षभर हमें स्मरण रहे इसलिये इस वार आपका यह नवीन चित्र मुखपृष्ठपर प्रगट किया गया है।

(२) श्रीऋषभदेवजीका मंदिर-रिखबदेव।

मेवाड प्रातके पाटनगर उदयपुरसे ३० मीलकी दूर आये हुये धुलेव नामक ग्राममें दि० जैनोंका बनाया हुआ एक अतीव प्राचीन विशाल मंदिर श्री ऋषभदेवजीका ५२ जिनालयोसे युक्त है, जिनके अनेक अतिशयोंके कारण यह प्राचीनकालसे अतिशयक्षेत्र माना जाता है। इस मंदिर व ऋषभदेवजीका यहा इतना प्रभाव है कि जैन तो क्या चारों वर्णोंके लोग श्रीऋषभदेवजीको मानते हैं व उनकी भक्ति करते है तथा उदयपुर राज्य पर भी इसका इतना प्रभाव है कि धुलेव आदि ग्राम भी इस मंदिरको अर्पण किये गये हैं व धुलेव ग्रामका नाम भी रिखबदेव नगर रख दिया है।

यहां केशर अत्यधिक पढती है इसलिये इस मंदिरका नाम भी श्रीकेशरियानाथजीका मंदिर सर्वत्र प्रसिद्ध है। यद्यपि यह मंदिर दिगंबर जैनोंका बंधाया हुआ है व उसमें मूलनायक श्री ऋषभदेवजीकी प्रतिमा तथा अन्य सभी प्रतिमाए दिगंबरी थीं परन्तु पीछेसे श्वेतांबरजैनोंका उदैपुर राज्यमें प्रभाव होजानेसे व दिगंबरियोंकी गरीबावस्थाके कारण श्वेतांबर जैनोंने क्रमशः इस मंदिरमें अपना पैर जमाया व थोडीसी मूर्तियें श्वेतांबरी रख दीं जिससे आज इसमें १०-१२ श्वेतांबरी मूर्तियें हैं जबकि मूलनायक सहित कुल करीब १००-१२५ दिगंबरी मूर्तियां हैं। इसका प्रबंध राज्यकी ओरसे होता है जिसमें विशेष कारोबारी श्वेतांबरी ही होनेसे इस मंदिरकी सारी व्यवस्था जैसे श्वेतांबरी करते हों ऐसा मालूम पड़ता है। इस मंदिरमे श्वेतांबरोंने थोड़ासा नवीन कार्य भी कर दिया था उसका हवाला देकर वे यहांतक कहने लग गये है कि "कुल मंदिर हमारा है व मूर्तियां भी हमारी हैं—दिगंबरियोंका कुछ भी हक नहीं है" इसपर वर्षोंसे दोनोंमें मनमुटाव चल रहा है व ध्वजादंड जो प्रारंभसे दिगंबरी आम्नायानुसार दिगंबरियों द्वारा चढ़ाया जाता था उसमें हस्तक्षेप करके श्वेताम्बरी अपनी रीतिसे अपने द्वारा चढ़ाना चाहते थे जिसका राज्यमें केस चलता था, उसका फैसला न होनेपर भी

श्वेतांबर जैनोंने सैनिकोंकी प्राईवेट तौरपर सहायता लेकर जोरजुल्मसे गतवर्ष बैशाख सुदी ३ को ध्वजा दंड चढ़ानेका पैतरा रचा था तब निर्भीक दिगंबरोंने अपने हककी रक्षार्थ उसपर सत्याग्रह किया था तब अत्यंत निर्दयी मारपीट दिगंबरियोंपर करवाई गई थी जिससे ५—६ दिगंबरोंकी हत्या* मंदिरके भीतर ही हो गई थी व ५०—१०० आदमी कम ज्यादे घायल हुये थे जिससे सारे हिन्दमें हाहाकार मच गया था व श्वेतांबरों व राज्य कर्मचारियोंके इस कृत्यपर सर्वत्र खेद प्रकट कियागया था (सिर्फ श्वेतांबर जैनोंके सिवाय) व न्याय २की पुकार मच गई थी तब बहुत समयकी कोशिषके बाद इस हत्याकांडकी जांचके लिये उदयपुर राज्यने एक जांच कमीशन चार माह हुए नियुक्त किया था जो इसकी जांच कर रहा है। क्या जाने यह कमिशन कब अपनी जांच पूर्ण करता है व कब दिगम्बरियोंको न्याय मिलता है! वास्तवमें यह हत्याकांड उदयपुर राज्यमें एक कलंकरूप हुआ है व उसका अतीव शीघ्र ही न्याय करना उदयपुर राज्यका कर्तव्य है। इस हजारो बल्कि लाखोंकी लागतके इस प्राचीन भव्य मंदिरके आगेके द्वारका यह दृश्य है जो करीब १४—१५ वर्ष पहिले जब सोलापुर निवासी सेठ रावजी नानचन्द गांधी सकुटुम्ब यहां यात्रार्थ गये थे तब उनके पुत्र मोतीलालजीने लिया था जिसको देखकर पाठकोंको मालूम होगा कि यह कितना भव्य व विशाल होगा।

* केशरियाजीका हत्याकांड नामक पुस्तक हिन्दी दश आनेमें व गुजराती छह आनेमें दि० जैन पुस्तकालय सूरतसे मिल सकती है।

(३) कानपुरमें मुनिसंघका दृश्य।

श्री १०८ मुनिश्री शांतिसागरजी (छानीवाले) से दीक्षित मुनिश्री मुनींद्रसागरजीने थोडेसे अर्सेमें अपने प्रभावसे इतनी ख्याति प्राप्त करली है कि आपके अनेक शिष्य होगये है व आप गत वर्ष जब कानपुरमें शिष्यगण सहित पधारे थे तब बडा भारी उत्सव हुआ था व आपको आचार्यकी पदवी दी गई थी उस समयका यह एक दृश्य है जो कविशिरोमणि प० सरोजने लिया था। आपने गत चातुर्मास इटावामें व्यतीत किया था व वहासे अब विहार करके श्री गिरनारजीकी यात्राको सघ सहित पैदल विहार कर रहे है।

(४) स्वर्गिय उदासीन त्यागी लालारामजी।

आपने गत वर्ष परतापगढमें चातुर्मास किया था व वहा ही आपका मुनि अवस्थामें आदर्श समाधिमरण हुआ था तबका अतसमयका यह चित्र है। पासमे इन्दौर उदासीनाश्रमके अधिष्ठाता उदासीन त्यागी पं० पन्नालालजी गोधा शिरपर हाथ रखे बैठे हुए हैं। आपका संक्षिप्त परिचय श्रीयुत जवाहिरलाल जैन वैद्य परतापगढने हमको एक उपयुक्त कवितामें (कवि चुनीलालरचित) भिजवाया था जो नीचे प्रकट करते हैं—

त्यागी लालारामजीका मुनि अवस्थामें-समाधिमरण।

धनि धन्य है फरिहा नगर फिर मैनपुरिके देशको।
धनि धन्य है पद्मावती-परवार दस्सा वेशको ॥
फिर मातृ श्रीवर चौधरी श्रम्मन वहाके धन्य हैं।
उनकी वृहत् भार्या भी भाजन धन्यवाद अनन्य है ॥१॥
सम्वत् गनक उनईस पर चौबीसको निज उदरसे।
कीने प्रसव नररत्न लालाराम सद्गुण—निकरसे ॥

वह निःकषायी सरलचित्त पुनि शांतता–सम्पन्न थे।
सम्यक्त युत श्रद्धानसे जिन ध्यानमें सु प्रसन्न थे ॥२॥
यद्यपि पितावर आपके सुप्रसिद्ध और धनाढ्य थे।
पर यह सदा संन्तोष गुण भूषित विचित्र गुणाढ्य थे ॥
इनको विवाहित करके जननी चल बसी संसारसे।
करते रहे सेवा पिताकी धर्मयुत अति प्यारसे ॥३॥
विषय आतपको क्वचित् जन सहन करते हैं कभी।
द्वितीय भार्या ढूँढकर लाए पिताजी घर तभी ॥
माता विमाता भेद वि उपसर्गहीसे जान लो।
वश औ विवशका ज्यों प्रत्यन्तर स्पष्टतासे मानलो ॥४॥

निजधर्ममें संक्लेश होगा समझकर इस न्यायको।
घरसे पृथक होकर रहे करते निजी व्यवसायको ॥
विद्या–पठन, शास्त्राध्ययनमें प्रेममें संलग्न थे।
दम्पति सदा सन्तोष रहते विराग निमग्न थे ॥५॥
दैवात् जब अर्धांगिनी तज स्वर्गपुरमें जा बसी।
वैराग्य भाव तरंगिनी फिर अधिक हियमें उल्हसी ॥
नय छोड़कर निज नग्रको अन्यत्र कहींको चल दिये।
संसारके सुख पांवोंके तल्वोंमें तब ही मल दिये ॥६॥
आए थे घर पन्द्रह बरसके पूर्व पितुके मरणमें।
कुछ मोहके आवेशमें निज जन्मभू की शर्णमें ॥
त्यौंही विमाताकी कड़ी प्रतिभाग उनको होगई।
वचनशैली मातकी सुनकर उदासी होगई ॥ ७ ॥
संसार सुख है क्षणिक फिर यह चंचला है लक्ष्मी।
चक्रि हरि हरके लिये नहिं साथ देनेको थमी ॥
अह ! आत्मसुख अनुपम्यका आनन्द यह कुछ और है।
झंझट सभी संसारके यह अमित दुखकी ठौर है ॥८॥

ऐसा समझ करके बपौतीकी लिखी फारग खती।
चल दिये राजी खुशी वहांसे लगा सम्वत सिती ॥
करते हुए सब तीर्थ वन्दन आगए इन्दौरमें।
सम्वत उनीसौ था बहत्तर मास फागुन दौरमें ॥९॥

रहकर उदासीनाश्रमी इक वर्षतक ठहरे वहां।
श्रीवर्य पन्नालाल गोधा हैं अधिष्ठाता जहां ॥
सम्वत् तहत्तर नग्र कुण्डलपुरके आश्रममें रहे।
वहां त्यागि गोकुलचन्द्रके अधिपत्यमें व्रतको गहे ॥१०॥
द्वितिय प्रतिमाके हुए धारक श्री लालारामजी।
निज आत्मके कल्याणके अतिरिक्त नहिं कुछ कामजी ॥
आए पुन इन्दौर गोधा महत् जनके निकटमें।
त्रुटि रहित व्रत प्रतिमा धरी अति शुद्धता युत स्वघटमें ॥११॥

असन पान विशुद्ध किरियाकोषके अनुसार थे।
खाते थे अठ पहरी घिरत करते न खांड अहार थे ॥
पशु वाहनादिकके लिये आजीव त्यागी बन गए।
रेल हुए आदि आदिकसे विरागी बन गए ॥१२॥

अपनी प्रतिज्ञा प्रौढ पालनमें बड़े कटिबद्ध थे।
वपुसे विमोही थे निजात्मामें सदा सम्बद्ध थे ॥
इस वर्ष चातुर्मासमें परतापगढ़में आए थे।
त्यागि तत्वानन्दजीको साथ अपने लाए थे ॥१३॥
भाद्रपद सित अष्टमी निशिमें हुए यह ज्वर परे।
प्रात क्रिया पश्चात नवमीको वे यों कहने लगे ॥
वपु–शक्ति मेरी घट गई अब आयु भी निकटस्थ है।
करना समाधीमर्ण ऐसा भाव मेरा प्रशस्त है ॥१४॥
श्रीमान् गोधाजी बुलाओ तार कर इन्दोरसे।
रहेगा न अब यह देह लिख देना हमारी ओरसे ॥
इन दिनों व्रत लीन श्रीमान् सोलहकारनमें थे।
लखि व्याधि वे चिगते न थे दृढ नेमके पालनमें थे ॥१५॥
बढ़ती गई व्याधी षडावश्यक क्रिया करते ही रहे।
घटती गई तन शक्ति तो भी ध्यान जिन धरते रहे ॥
ग्रहण की नहि औषधी लेपन न तन करने दिया।
कहते रहे तन है न मेरा है मेरा केवल जिया ॥१६॥
कॉर पड़वा प्रात श्री गोधा महाशय आगए।
दर्शन उन्हें पुलकित हुए मनु आत्म-सम्पति पागए ॥
यद्यपि कुपित थी वायु रसना बचन करके शांत थी।
स्मरणशक्तिमें न उनके रंचभर भी भ्रान्त थी ॥१७॥

रट लगाई थी हृदयमें एक सोऽहम् शब्दकी।
विधि कालिमा जिनने खिपाई थी असम्मिन अब्दकी ॥
संसारमें विधि अरु विधिमें आपका संग्राम था।
शिवगढ विजयकी प्राप्तिको उत्सुक श्रीलालाराम था ॥१८॥
मरणका भय था नहीं, नहि व्याधिकी परवा रखी।
क्या जौहरी श्रीमान् थे वे स्वात्म–मणिके पारखी ॥
सम्वत् उनीसौपर चौरासी क्वार द्वितिया श्यामको।
धरकर मुनिव्रत चल बसे थे स्वर्गपुरके धामको ॥१९॥
जय २ ध्वनी गुँजने लगी महिमा बटी सब नग्रमें।
यह सूचना देदी गई प्रत्यक्ष समाज समग्रमें ॥

शिविका रची सुन्दर दिगम्बर नग्न मुनिकी देहको।
बैठाल वृद्धिंगत किया परभावनाके स्नेहको ॥२०॥
बाजारसे बाजे सहित लेकर चले थे धूमसे।
पुष्पादि बरसाने हुए जन थे अगण्य हजूमसे ॥
सुन्दर सरोवर तट निकट कर भूमिको प्राशुक वहां।
रचना चिताकी चन्दनादिकसे कराई थी जहां ॥२१॥
वर धूप घृत कर्पूरसे अग्नी ज्वलित कर दी गई।
अस विधि पुनीता देहकी सस्कार किरिया की गई ॥
धन्य धन्य लालाराम तुम शिव रमनिके भागी बने।
कलिकालमें आदर्शरूपी जैनके त्यागी बने ॥२२॥
जुग हाथ जोरे माथ ना शिवनाथ हम विनती करें।
औसर मिले ऐसा समाधिमर्ण कर हम भी मरें ॥
ससार आर्णवके लिये नौका समाधीमरण है।
पतवार, सोऽहम्, 'चुभि'को हो सहज प्रभुका शरण है ॥२३

कवि चुन्नीलाल टोडिया, परतावगढ़।

(५) जैनमित्रमण्डल देहली।

यह मण्डल सन् १९१५से स्थापित होकर आजतक बडी सजीवतासे काम कर रहा है। इसके कार्योंका दिग्दर्शन, समय२ पर उनकी निकाली हुई रिपोर्टों और सूचनाओंसे होसक्ता है। भारतकी जीवित संस्थाओंमें इसकी गिनती है, और इसका उल्लेख केवल बडी सरकारी रिपोर्टोंमें ही नहीं वरन् पाश्चात्य देशोंकी उन सोसाइटियों और ख्यातियोंके वर्णनोंमें भी है जो भारतीय धर्मों और प्राच्यसाहित्य प्रगतिमें तनिक भी दिलचस्पी लेते हैं। सन् २१की भारत सर्कारकी Cencus Reportमें इसे एक chief Litrary Agency(मुख्य साहित्यिक समिति) कहा गया है।

मण्डलने कुछ काम बहुत ही गौरव और महत्वके किये हैं जिनके कारण यह केवल दि० नही वरन् समस्त जैन समाजका प्रिय और कृतज्ञताका पात्र है। डाक्टर गौरने अपने हिन्दू-कोडमें जिन भ्रमपूर्ण बातोंको स्थान दिया था, उसके सम्बन्धमें जबर्दस्त क्रांति उठाना, उनका जोरदार और सयौक्तिक निराकरण करना, समाचारपत्रों, ट्रेक्टों सभाओंके द्वारा और जैनमतको जगाकर उक्त डाक्टरको सशोधनके लिये बाध्य करना, यह सब मण्डलकी ही कार्य–शीलताका परिणाम है। इस सम्बन्धमें मण्डलका भगीरथ परिश्रम और अमूल्य सेवाए समाजकी ओरसे बधाईकी पात्र हैं। इस विषयमें मडलको कितने व्यापक क्षेत्रमें, कितनी कठिनाइयोंमें और कितनी लगनके साथ काम करना पड़ा, हम क्या उसकी उपयुक्त सराहना भी कर सकते है ?

स्वतंत्र जैन–लॉके संग्रह और प्रकाशनका कार्य भी बड़ा श्रमापेक्षी कार्य है। इसे पूर्ण करनेका श्रेय भी 'मण्डल' को ही है।

देहली शास्त्रार्थ, जिसका शोर प्रत्येक जैन अभिमानी तक पहुंच चुका है, और जो वास्तवमें दिल्लीके इतिहासमें एक मार्केकी और अमरवस्तु है वह 'मित्रमण्डल' की धर्मप्रचारकी उत्कृष्ट वृत्तिके कारण ही हुआ था।

Reforms Enquiry Committee (रिफॉर्म इन्क्वायरी कमेटी)के सन्मुख, जैनसमाजके स्वत्वोंका प्रदर्शन और माग, Baby week (बेबीवीक)के बारेमें प्रयत्न, दिल्लीकी प्रसिद्ध बिम्बप्रतिष्ठामें उत्कृष्ट सामाजिक सेवा, समयोचित राजनैतिक कार्य, औषधालय, लायब्रेरी और वाग्वर्द्धिनी सभाओं द्वारा सामाजिक उत्थानमे प्रयत्न आदि आदि, इसके कार्य जितने ही उपयोगी है उतने ही बहु संख्यक भी हैं। हालहीमें इसी 'मण्डल' के प्रयत्नसे अनन्तचतुर्दशीकी सर्कारी

छुट्टी होने लग गई है। यह बात यद्यपि दो शब्दोंमें कह दी जा सकती है, पर वास्तवमें बहुत ही श्रम-साध्य है। इस बारेमें मण्डलने बहुत ही तत्परता और संलग्नतासे काम किया था।

'मंडल'-का यह नवीन-तम कार्य, मंडलके ही योग्य, बहुत ही महत्वपूर्ण और विशाल है। गत २ वर्षोंसे दिल्लीमें जिस भगीरथ पैमानेपर और जिस सज्जित समारोहसे 'श्रीमहावीर जयंती' का पुण्य अवसर मनाया जारहा है वह किसी भी जागृत समाजके लिये गौरवकी वस्तु होसकती है। हमारे पाठक पत्रों द्वारा अवश्य इसके सम्बन्धमें पढ़ते रहे होंगे। गत महावीर जयंतीके उत्सवपर यह ग्रूप चित्र लिया गया था।

मण्डलका सबसे मार्केका काम है ट्रैक्टों द्वारा जैनधर्मके सनातन और अकाट्य सिद्धान्तोंका दिग्दिगांतरोंमें प्रचार। इसके ट्रैक्ट कोनेसे कोनेके देशमें पहुचते हैं। ट्रैक्टोंके सम्बन्धमे श्लाघाकी सम्मतियां और उनके प्राप्त करनेके कामनापत्र यूरोपके प्रतिष्ठित विद्वानोंसे मण्डलको प्राप्त होते है। अबतक ४८ ट्रैक्टोंकी २ लाख प्रतिया इसकी ओरसे प्रकाशित होकर वितरण की गई है। मण्डलके इस समय २००से ऊपर सदस्य हैं जिनमें समाजके बहुत बडे२ श्रीमान् और धीमान् व्यक्ति सम्मिलित है।

मण्डलके कार्यकर्ताओंमें श्री० पन्नालालजी संयुक्त मंत्री और श्री० उमरावसिंहजी मंत्रीका नाम उल्लेखनीय है। इसके सभापति श्रीमान् महावीरप्रसादजी एडवोकेट, बाबू भोलानाथजी मुख्तार बुलन्दशहर उपसभापति हैं जो एक उच्च कोटिके कवि व उर्दू लेखक हैं, सहायक मन्त्री बाबू विशवचंदजी, खजाची ला० विश्वंभरदासजी व आडीटर बाबू बनारसीदासजी हैं। यह 'मंडल' अधिकाधिक कार्य करके जैनधर्म व समाजकी अधिकाधिक उन्नति करे यही हमारी भावना है।

(६) श्रीमहावीर ब्रह्मचर्याश्रम (जैनगुरुकुल)—कारंजा—जिनधर्मप्रेमी, विद्वान् और चारित्रवान् युवकोंको उत्पन्न करनेके लिये इस संस्थाका जन्म वीर निर्वाण संवत २४४४ में अतिशयक्षेत्र कारञामें हुआ है। आश्रमका स्थान स्टेशनके पास उपवनमें है जो करीब १ लाख रुपयेकी लागतसे बना है उसीका यह दृश्य है। वर्तमानमें इस संस्थामें १२५के करीब बालब्रह्मचारी छात्र विद्यालाभ लेरहे हैं। अनिवार्य रूपसे उच्च धार्मिक शिक्षणके साथ संस्कृत, इंग्लिश, मराठी और गणित आदि विषयोंका अभ्यास मैट्रिककी योग्यतातकका कराया जाता है तथा व्यायामके द्वारा शारीरिक शिक्षण भी अच्छी तरहसे दिया जाता है। पढ़ाईके लिये १२ सुयोग्य शिक्षक है जिनमें २ ग्रेज्यूएट हैं। जैनसमाजके सुप्रसिद्ध विद्वान् व्याख्यानवाचस्पति श्री० पं० देवकीनन्दनजी सिद्धांतशास्त्री धर्माध्यापक हैं व अधिष्ठाता ब्रह्मचारी देवचंदभाई बी० ए० हैं जिनको ही आश्रमकी सारी उन्नतिका श्रेय है। व्यवहारकुशल बनानेके लिये संस्थाके प्रबंध विभागका कार्य मॉनिटरोंके रूपमें प्रत्येक छात्रको कुछ न कुछ बांट दिया जाता है जिससे कि उन्हें स्वयं प्रबन्धादिकी योग्यताका अच्छा ज्ञान होजाता है और संस्थाके प्रबंध विभागमें खर्चेकी बचत होजाती है। जैनसद्गृहस्थके लायक धार्मिक आचरण (पूजन स्वाध्यायादि) प्रत्येक

छात्र प्रतिदिन करते हैं तथा तिथिपर्वमें विशेष रूपसे करते हैं।

वक्तृत्वशक्ति सम्पादनके लिये साप्ताहिक सभा तथा लेखनकला सिखानेके लिये एक "वीर तनय" नामक हस्तलिखित मासिकपत्रका सपादन भी छात्रों द्वारा ही कराया जाता है। ब्रह्मचारियोंके योग्य स्वच्छ सादा रहनसहन आदिकी व्यवस्थापर पूर्ण ध्यान दिया जाता है। श्री जिनमंदिर, छात्रालय, विद्यालय, भोजनालय, औषधालय, आरोग्यमंदिर, व्यायामशाला आदिका सस्थामें अलग२ प्रबन्ध है। संस्थाका मासिक खर्च ११००)के करीब है और उपज करीब ८००) मासिक है अर्थात् शेष चालू सहायतासे पूरा करना पड़ता है। सस्थाका ध्रुवफण्ड ८१००४)का है जिसका ट्रस्टडीड होचुका है। गत दो सालसे संस्थाका कार्य बढ़ जानेसे व खर्चसे आमदनी कम होनेसे घाटा पड रहा है जिसकी पूर्ति समाजकी सहायतापर ही निर्भर है जिसपर हम धर्मवत्सल, उदार, धनिक समाजका ध्यान आकर्षित करते हैं कि वह आश्रमके ध्रुवफंडको कमसेकम ३-४ लाख रु०का बनाकर संस्थाको समुन्नत और स्थायी बनावे। दूसरी समाजोंके गुरुकुलोंको देखनेसे पता चलता है कि उनकी समाज उनका कैसा आदर करती है, हर प्रकारकी सहायता करती है परतु अपनी धनिक जैनसमाज इस परमोपयोगी कार्यकी तरफ अभीतक जितना चाहिये उतना ध्यान नहीं देरही है नहीं तो बातबातमें १०-५ गुरुकुल तैयार होजाते। गुरुकुल व्यवस्थासे ही धार्मिक निष्ठावान धार्मिक आचरणवाले विद्वानोंका जन्म हो सकता है इसलिये अपने इस गुरुकुलको अपनाइये और तन मन धनसे यथाशक्ति सहायता कर धर्मप्रेमपूर्वक आश्रमरूपी धर्मवृक्षको सिंचित करते रहिये तथा विवाह, मरण आदि शुभाशुभ अवसरोंपर दान करते समय इस गुरुकुलको भी न भूलिये।

(७) स्वर्गीय पं० बिहारीलालजी चैतन्य-अमरोहा—आपका चित्र व परिचय हम आगे प्रगट कर चुके हैं परन्तु इसबार आपका अतिम चित्र इसलिये प्रगट किया है कि आपका गत वर्षमे हमें असह्य वियोग हुआ है जिससे सारे दि० जैन समाजको एक अंग्रेजी पढ़े लिखे सस्कृतज्ञ विद्वान व साहित्यसेवककी कमी हुई है। आपके रचित व प्रकाशित अनेक ग्रन्थोंमें "जैन शब्दकोश" प्रथम भाग अमूल्य रत्न है जिसका प्रचार जैनसमाजमें होजावे तो उसके शेष भाग भी उनके सुपुत्र शांतिचन्द्रजी प्रगट कर सकें। आपकी आत्माको शांति व कुटुम्बको धैर्य प्राप्त हो यही हमारी भावना है।

(८) पं. मोतीलालजी वर्णी—पपौरा (झांसी)।

आपका जन्म सं० १९२८में जतारा (टीकमगढ)में हुआ था। अल्पवयमें ही आपको पिताका वियोग होगया था। वे साधारण श्रेणीके गृहस्थ थे। आपने जतारामें ही हिन्दीका खासा अभ्यास किया। फिर स० १९९० में श्री० पू० गणेशप्रसादजी न्यायाचार्यके साथ ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया और आपके साथ मथुरा महाविद्यालयमें विद्याध्ययनके लिए चले गये थे। अध्ययनके बाद आपने महरौनी (झांसी)में अध्यापकका कार्य किया। फिर सं० १९६७में दक्षिणयात्राके

समय तारंगाजी क्षेत्रमें आपने नियम लिया कि अब अवैतनिक ही अध्यापकका कार्य करेंगे—सवैतनिक नहीं। आप पंचकल्याणक प्रतिष्ठाकार्यके अच्छे अनुभवी होगये थे। कुछ समय बाद आपने नियम लिया कि २५००)के सिवाय अब हम ज्यादा द्रव्य अपने पास न रक्खेंगे व उसीसे अपनी आजीविका चलायंगे। प्रतिष्ठाका कार्य करेंगे परन्तु उसमें जो प्राप्ति होगी वह बुन्देलखण्डमें विद्याप्रचारके कार्यमें व्यय करेंगे। फिर सं० १९७९में उसीके फलस्वरूप आपने 'पपौराजी अतिशयक्षेत्रमें वीरविद्यालय स्थापित किया और अबतक उसे अपने तन, मन, धनके सहायरूपी जल द्वारा पल्लवित, कुसमित तथा सफलित बना रहे हैं। आप ही इस विद्यालयके संस्थापक व संचालक हैं। समाजको बुन्देलखण्ड प्रांतके कौनेमें आये हुए इस विद्यालयको भी अन्य संस्थाओंको दान करते समय याद रखना चाहिये।

स्वाध्यायके लिये नयेर ग्रंथ।

प्रायश्चित्त समुच्चय (सं० कृत नवीन) १॥)
अनगारधर्मामृत (आशाधर कृत मुनिधर्म स्वरूप) ८)
आदिपुराण (पं० दौलतरामजीकी भाषा वचनिका) १०)
हरिवंशपुराण ८) पद्मपुराण १०)
शांतिनाथपुराण ६) मल्लिनाथपुराण ४)
विमलपुराण बड़ा ६) विमलपुराण छोटा १॥)
पुरुषार्थसिद्ध्युपाय टीका ... ५॥)
बृहत् जैन पदसंग्रह (आठ कवियोंके पद) २)-१॥)
आदिपुराणसार ६) चर्चा समाधान २)
प्रश्नोत्तर श्रावकाचार ३॥) गुणभूषण श्रा० १॥)
भगवान महावीर (संक्षि। जैन इतिहास) १॥)-२)
सर्वार्थसिद्धि टीका प्रथम खंड ६) दूसरा खंड ६)

मैनेजर, दिगंबर जैन पुस्तकालय-सूरत।

विविध जातिभेद।

(रचनार.—शा० हाथीभाई माणेकचंद—सोनासण.)

१ २ ३ ४
खंडेलवाल, अग्रवाल, जैसवाल, अने दशा;
५ ५
परवार पद्मावतीपरवार, जाणीए,
६ ७
दशापरवार अने, परवार चउसके;
८ ९ १०
पल्लीवाल, गोलालारे, विनैक्या वखाणीए।
११ १२ १३
ओसवाल नूतनजैन, वीशा ओसवाल अने;
१४ १५ १६
गंगेरवाल, बडेले, बरैया वखाणीए,
कथे हाथीचंद दिन, प्रतीदिन वाडा वधे;
कुसंपे मचाव्यो केर, शी रीते समेटिये ॥१॥
१७ १८ १९ २०
फतेपुरी दि० जैन, पोरवाल, बुढेले जे;
२१ २२ २३
गोलसिंघारे लोहिया, गोलापूर्व मानीए,
२४ २५ २६
खरौआ, लमेचू अने, पचवीसे गोलापूर्व,
२७ २८ २९
चरनागरे धाकड, कठनेरा धारीए।
३० ३१ ३२
पोरवाड कासार ने, पोरवाड जांगडा जे;
३३ ३४
जांगडा वीशापोरवाड, लाडने संभारीए,
३५ ३६ ३७ ३८
काम्भोज ने कृष्णपक्षी, धवल बघेरवाल;
कथे हाथीचंद भेद, केटला बतावीए ॥२॥
३९ ४० ४१ ४२
समैय्या असाटी, दशाहूमड वीशाहूमड.
४३ ४४
अयोध्यावासी निवासी, तारणपंथी धारीए,

४५ ४६ ४७ ४८ ४९
पंचम चतुर्थ चदनेरा, नैमा गुजर ने;
५० ५१ ५२
भवसागर पापडीवाल, नागदा निहारीए।
५३ ५४ ५५ ५६
नर्सीपरा दशा वीशा, सेतवाल मेवाडा ने:
५७ ५८
दशामेवाडा ने दशा, नागदा सभारीए,
कथे हाथीचद शुद्ध, सरोवर पाणी भाळो,
मलीन बंधेल जळ, नजरे निहाळीए ॥३॥
५९ ६० ६१ ६२
चितोडादशा ने बीसा, श्रीमाल, श्रीमालदशा;
६३ ६४ ६५
सेलवार श्रावक ने, सादर जैन मानीए,
६६ ६७ ६८ ६९ ७०
वैस्य, इन्द्र, बोगार ने, पुरोहित क्षत्रिजैन;
७१ ७२ ७३ ७४
तगर चौबले मिश्र, दिगम्बर भाळीए।
७५ ७६ ७७ ७८
सकवाल खुरसाले, हरदर, उपाध्याय;
७९ ८० ८१
टगर, बोगार, गांधी, ब्राह्मण जैन जाणीए,
८२ ८३ ८४ ८५ ८६
वदई, पोकरा नाई, सुकर महेश्री जैन:
८७
कथे हाथीचंद अन्य, जाति जैन मानीए ॥४॥
चारनी सत्याशी पंच, राशी गया त्राशी बहु,
क्वेवारनी लेणदेण, करे क्यां बतावीए,
९४ ९ ३३ ८ ८०
कैकमां चोराणु नव, तेतरीश के आठ एंशी:
१५ ४५
पंदर के पीस्तालीश, जनसंख्या भाळीए।
वीरना तनुजो मळी, भोजन भावे जमाय,
वरमाळा रोपवामां, केम अचकाईए:

लंकाथी हिमाल्यकोट, कलकत्ताथी कच्छदोट;
नथी भरती के ओट, शा माटे रिबाइए ॥५॥
वर्द्धमान समयमां, चालीश करोड जैन;
सांकडी वृतिए आज, विनाश जणाय छे,
के पलटाई इस्लाम, कई ईसाई बन्या,
कैक आर्यसमाजमा, हाल उभराय छे।
शैव संप्रदाय केक, वैश्य रामानंदी कैक,
कैक धर्मधर्तिगोथी, त्रामी नाशी जाय छे,
श्रीमानो धीमानो कोई, गेज्युएटो खोलो कान;
कथे हाथीचद हाय, आर्यता हणाय छे ॥६॥
लाख अगीआर अने, सत्तावन सहस्र;
बसो आडत्रीश, त्रण, फिरके मनाय छे,
लाख चार ने पच्चाश, हजार पांचसो वळी:
चोरासी दिगबरजैन, गणती गणाणी छे।
बाबुओ, पंडितो मळी, गोळ तोड फोड करी.
क्षमातणी रीत धरी, ऐक्यता वधारशो,
कथे हाथीचद बधु, कैक पड्या गाम नाम
कैक रोजगारे भेद, जुडा पड्या भाळीए ॥७॥

2202



कानपुरमें मुनि-संघका एक दृश्य।

बैठे हुए—(१) श्री १०५ ऐलक नेमसागरजी (२) श्री १०८ मुनि श्री धर्मसागरजी, (३) श्री १०८ **आचार्य श्री मुनीन्द्रसागरजी महाराज,** (४) श्री १०८ मुनि श्री ज्ञानसागरजी, (५) ब्र० आदिसागरजी। **पीछे खडे हुए**—(१) ला० दुर्गाप्रसादजी नारनौलवाले, (२) ला० नेमिचन्द्रजी रईस, (३) ज्ञानिभूषण कविशिरोमणि ब० स्वरूपचन्द्रजी जैन **सरोज** एम० बी० एच०, (४) ला० कपूरचन्द्रजी जैन, (५) बा० नरायनदासजी जैन, (६) जातिशिरोमणि रा० सा० ला० **रूपचंद्रजी** आ० मजिस्ट्रेट कानपुर, (७) ला० चिम्मनलालजी देहली।

Jain Vijay Press, Surat.

HOW I CAME TO BELIEVE THE JAIN DOCTRINES
AND
THE HELP I HAD FROM THE LATE MR. J. L. JAINI.

(By—Herbert Warren Jain, 84 Shelgate road, Battersea London S. W. II)

Nothing in this world is isolated everything is in some way related to something else. The writing of this article is not an isolated event taking place spontaneously without any cause It is written in answer to a request from Mr M K Kapadia, the Editor of this journal

How did I come to believe the doctrines? To make a foolish reply would be to say by exercising this particular function, by believing them! But perhaps a better reply will be to give the events which took place and the circumstances in which I came to believe them.

I first had them presented to me in the years 1900 and 1901 by *Mr Virchand R Gandhi* here in London who most unfortunately died in about the middle of the year 1901 and was in the middle of taking us (—for there were two other people besides myself, two Americans who went back to the United States and whom I have never met or heard of since) the Karma course and the Jain metaphysics, so that both courses were left unfinished

It was, as we say, quite by chance that I happened to hear Mr Gandhi I belonged to the Theosophical Society, and one of the other members with whom I was acquainted asked me if I would like to attend a series of twelve lectures on 'Concentration', to which question I replied that I would They were by Mr Gandhi, and they pleased me so much that after he had finished them and begun another series on 'Karma' I also went to these Only four were given publicly, I then found him out privately and with the two above mentioned Americans induced Mr Gandhi to continue the subject at his own residence, which he did until he had to leave London on account of illness in about May 1901.

The reason probably for believing the teachings was that they seemed to me to be true I liked especially the idea of 'Samyaktva' and the 'Nishchaya' point of view Also the six Dravyas made an understanding of the universe very clear, giving a solid foundation to work upon, and the Syadvada also I was very gl-d to have

After Mr Gandhi had left London I was out of touch with Jainism until Mr *J. L. Jaini* came here in 1907 I saw him a few times, and it was on one of these occasions that I undertook to become entirely *vegetarian*, which I have remained ever since Some two years after, in fact the summer of 1909 Mr Jaini returned to London and it was during this stay of his that he told me more about the Jain doctrines Especially he put forward the seven Tattvas as a subject by itself and made it very clear Mr Gandhi had incidentally mentioned the seven Tattvas but had not given them to us set out as one subject by itself These Tattvas seem to me to give a complete outline of Jain doctrines, both as regard theory and practice, and on that account are very important to my mind It is impossible for me to say what else Mr. Jaini told me of the doctrines, a considerable amount of new matter to me was found in the manuscript of his "Outlines of Jainism", and I have gained information also from his translations and from his articles in the Jain

Syadvada.

(By—*Vidyavaridhi Jain Darshandivakar Baboo* Champatraiji *Jain, Bar-at Law*)

Perhaps no other cause of error in metaphysics is quite so fruitful as the failure to realize that all seemingly contrary statements are not necessarily hostile to one another. For instance, when it is said that the world is *nitya-anitya* (permanent-impermanent), the bewilderment of the untrained mind is great, and it is apt to reject the statement as a piece of bufoonery, if not the outcome of an unsound brain. Nevertheless true metaphysics can only describe the world as *nitya anitya*. For it is *nitya* in so far as the substances of which it is composed are eternal and indestructible, and certainly it is also constituted by things that are seen one day and gone the next! In a word, the world is unperishing and eternal in so far as the substances composing it are concerned, but perishing and non-eternal with regard to the forms in which those substances manifest themselves from time to time. This simple truth when rolled into the form of the pilule formulæ which metaphysicians delight to indulge in, is apt to cause a great deal of confusion, and has to be guarded against by means of certain well defined safe-guards to that aim at ensuring the consistency of subtle abstract thought.

The Jaina doctrine of *Syādvāda* is the system of safe guards which aims at maintaining the proper consistency in metaphysical thought. It proceeds to unravel the theory of contradiction strictly scientifically, and points out that contradictory speech is resolvable ultimately into seven limbs or forms, as follows:—

1. affirmance (of a proposition),
2. denial (of a proposition),
3. indescribability (simultaneous affirmance and denial),
4. affirmance + denial,
5. affirmance + indescribability,
6. denial + indescribability,
7. affirmance + denial + idescribability.

The above are all the possible forms of contradiction that can occur in thought. They may be contradictory in reference to any another or their own contents, as is the case with the compound forms, especially the seventh. It will be noticed that the first three of these forms are simple judgments or predications, and the remaining four their compounds or combinations formed by combining the simple statements in different ways.

The first three are also the possible modes of predication in human speech, for when talking we only talk about some thing

---

Gazette, as well as from the talks we had while he was again in London in the summer of 1913.

It seems to me that all the chief problems concerning life and the universe are solved by the Jain doctrines, and this gives a quiescence or resting place into which we can come whenever the occasion arises to require it. It might be a fitting ending to these few remarks to say that presumably we should not yet have been so fortunate as to discover the truth about the whole universe by ourselves, and had it not been our good fortune to have come into touch with what has been told by those who took the trouble to develop their own science, we should not now have been able to be in this settled state of mind regarding the fundamentals of life.

H. Warren

London Oct 1927

or object, and in talking about an object or thing we either affirm something about it or deny something with reference to it, or say that it is incomprehensible, altogether, which means that it presents, at one and the same time, the two contrary aspects of existence and non-existence, which make it impossible absolutely either to affirm or deny its being. To illustrate, the world is unperishing and eternal with reference to its substances; it is perishing and non-eternal with reference to the forms that the substances assume from time to time, and it is incomprehensible, or rather indescribable, when taken into consideration with respect to its dual constituents, namely, substance and form, *both*. For, when we think of both substance and form at the same time the world presents to the view both perishability as well as unperishingness at once, and as there is no word in our language except indescribability that can represent the existence—non-existence thought that rises uppermost in the mind at the time, we must say that it is indescribable. These three—affirmance, denial and indescribability—then, are the three simple forms of predication in human speech. Their combinations give rise to four other forms which have been enumerated at numbers 4 to 7 in the list given above.

It may be pointed out that the distinction between simultaneous affirmance and denial and in what is put down as affirmance denial is rather important, for in the former the view is held *simultaneously* from both the stand-points (e. g. the reference to substance and form in the example of the world), while in the latter there is a *summing up* only of the results obtained by viewing things *successively* from the two view-points.

The Jaina metaphysician is warned against falling into error by the mere appearance of contradiction in form, for, as is evident from the illustration regarding the nature of the world, not all contradictions are real. In order to constitute a real contradiction the affirmance and denial will both have to proceed from the same stand-point. For instance, of the statements "A is dead" and "A is not dead", when they proceed from the same standpoint, one, or may be both are bound to be false, for it cannot well be that A is both alive and dead, when the question of his death is considered from one and the same point of view. But when taken from different stand-points, there is no necessary contradiction involved in them; for A may be dead as A, but not dead from the point of view of the soul which is immortal. For this reason the student of metaphysics in Jainism is advised to mentally insert the word *syāt* (literally, in some way) before every statement of a fact that he comes across, to warn him that it has been made from one particuler point of view which he should engage himself to ascertain. In this way he is not frightend by the contradictions he sometimes encounters in the course of his study, and is not baffled by them. In other words, where an untrained novice is likely to lose his head in dumb-founding bewilderment produced by such seemingly irreconcilable statements as "the world is *nitya-anitya*," and to spurn or to turn away from truth, the Syadvadist, that is to say, the Jaina Metaphysician, is sure to acquire the true insight into the nature of things, and, ultimately, also mastery over the empire of nature, inasmuch as knowledge is power whereby men have subdued and are now subdueing nature!

The Glory of Jainizm.

(By — *Tarachandra Pandya Jain, Jhalrapatan City*)

How difficult it is to find out the true beauty of a thing ! How much more difficult it is to know wherein the real glory of a religin consists ! Religion, the way to happiness in the life as well as in the life beyond, may be easily defined as the means of self-realisation, but its description cannot be so easily put off. Religion is easy to those who follow it, but difficult to those who merely discuss, and are afraid of putting it into practice It is simple to the simple and the earnest, but complex to the questioner and the learned Their minds were wholly wrapped up in the science of Grammar Their have been many prosodists who had the whole science of Prosody at their fingerends, but who themselves could not write a single live Their minds were engrossed wholly with Prosody and scansion Similarly there have been many learned men who knew all the scriptures by heart but whose hearts ever remained davoid of the light of Faith with the result that while the ignorant but simple-hearted pilgrims have reached the end of their souls' journey, the learned arguers have not advanced a step.

Religion does not consist of one thing. It treats of the soul as well as of the body It teaches us how to live, how to earn, how to move about in this world, how to discharge the various duties with respect to various objects, and at the same time, how to refine our souls It estabilishes a happy harmony between the wants of the soul and the wants of the body It lays down rules of condect for all ages, and for all living beings. It has its own History, own Geography, own Philosophy and Science own Sociology in short, it has its own world—a world which includes our world and also much more, a world which is far greater than the world we know of by means of our senses. Even the outward features of such a vast world cannot be set forth, and yet, as the saying goes, it is the feathers which float on the surface, while the pearls lie deep in the caverns Under such circumstances to talk of beauty and glory would be to hear corn lecturing on philosophy. But a bird may sit upon a window-sill and look at the mountion in front with its dim eyes, and then form some conjecture of its shape and size, and in the same way, a writer, even without being well posted up in the subject, may enumerate the most obvious peculiarities of a religion Below are given a few of such characteristics of Jainism as may be seen even by a casual observer

To begin with, Jainism says that a thing is to be considered *from different* points of view, One sided view cannot give complete knowlege A is A in one respect, but A is not A in another respect Soul changes in size and form according to the body it occupies, but its essential nature is never changed. From the point of view of its embodiment, a soul is changing, but *from* the point of view of its nature, it is changeless and immortal From point of view of its connection with a soul, a body is perishable, but from the point of view of its nature, it is indestructible A gold necklace is melted and tsansformed into a bunch of gold rings. From the point of view of ornament, gold has changed. but *from* the point of view of gold,

it is still gold. Water at 50°C. is cold in comparison with boiling water, but warm in comparison with ice,—and so on *ad infinitum*.

Question may arise that such a consideration would lead to a great confusion and render everything indescribable. But confusion arises only when the words in this respect are omitted, and we need not mention all the qualities of a thing simultaneously. We mention only those which are suited to our purpose at a particular place and time. A man is father to one, son to another, uncle to a third, nephew to a fourth. But when his daughter approaches him, she does not address him as 'Father, Son, Uncle, Nephew' all together, but calls him merely "Father". She is right in doing so, because the relation between the man and her is that of father and child, but they would be wrong if they were to assert that the man is only father in relation to all men.

This is the essence of the septifluous Logic of Jainism-the Sapt-bhangi Naya, which is so much celeberated and at the same time so much misunderstood. It is on account of this Logic that Jainism is named the *Anekantnaya* religion.

This shows how tolerant of other religions Jainism is. In fact it is the most liberal of the liberal. It never denounces any religion as utterly false. All religions are true in one or another respect, but they are in holding that they are true from all points of view. It is right to say, 'An elephant has a trunk,' but it is wholly wrong to say, "An elephant has *only* a trunk." The first great lesson of Jainism is to clear away all narrow mindedness. There is no absolute 'only' in Jainism. A thing is to be considered in various aspects, and while asserting one aspect of a thing, we should not deny its other aspects. A perfect religion describes a thing from all stand points. All views and opinions meet in an Omniscient Being.

If the world were to understand this truth, half of the causes of its miseries would disappear. The germ of our discords and feuds lies mostly in our regarding partial truths as entire truths, and in believing ourselves to be the sole bearer of the Golden key of Truth. Misunderstandings arise partly from the omission of the words in this respect, and partly from taking an insuitable view of things, as in talking of the body as everlasting, though in relation to the soul, it is perishable.

Some maintain that Belief and Devotion alone can lead a man to salvation, regardless of his state of knowledge and conduct. Some hold that a man can attain to Redemption by Knowledge alone though his deeds may be sinful, and though he may not believe even in the soul and salvation. Others persist that only good conduct is required, and that a man can surely reach his destination even by walking blindly and unwillingly on an unknown path. But Jainism harmonises all these views and says that Right Belief, Right Knowledge and Right Conduct combined lead a soul to salvation. Of these, Right Belief is by far the most important. Though knowledge is a cause of Right Belief, yet it is only after Right Belief that knowledge becomes Right knowledge and conduct becomes Right Conduct. Without Right Belief, Knowledge and conduct may give worldly pleasures, but cannot advance the soul, as they are liable to be forgotten. But Right Belief once got is never lost, and leads the soul at once to Right knowledge, and sooner or latter to Right Conduct. The importance of knowledge also is considerable. It is said that the *Karmas* that cannot be got rid of even with the penances and austerities of thousand lives can be removed in a moment by the help of Right knowledge. Conduct also is not a thing to be dispensed with. But no one of these, nor even two,

earning money, earn for the sake of others. If you cannot cease fighting, fight for justice against injustice Jainism says that a king causing the death of thousands of men in a war for justice does not commit *so much* of sin as a man crushing by his feet an unoffending ant It is not our deeds, but our motives and passionate thoughts that subject us to the bondage of Karmas A soul inclines towards the Right Path only when its passions of anger, deceit, pride and avarice become weak. A man who is under the influence of intense passions, a man having great lust for wars, for kingdoms, for worldly objects and sensual pleasures cannot observe the full vow of Ahinsa We can follow the Right Path only so much as our passions have subsided

In the modern Age, the doctrine of Renunciation has been made the scapegoat for bearing all the iniquities of the world But renunciation is not idleness. It is the development of love for limited circles into universal love. In it efforts are made not for momentary and false peace, but for lasting and real peace But it is not for all men Renunciation is renunciation not so much of worldly objects as of the desires and attachment for them, and such renunciation is not easy for all It is true that a soul has power to subdue all passions and destroy all Karmas within a moment but the manifestation and knowledge of such power requires a long practice of self-contemplation and self control Those men whose past life or lives have been devoted to such a practice may easily renounce the world suddenly and successfully, but such souls are rare and the rest are advised to prepare themselves for renunciation by following the rules for householders, by serving their neighbours and country, by offering donations to the needy and in similar other ways.

Step by step. How difficult it is to give up an one—year old habit ! How still more difficult it must be to emancipate the soul from the Karmas that have enchained it from times without beginning ! Step by step, but go on striving, and success will crown your efforts No cause is without effect Sow the seed of Right or Wrong, Good or Evil, and it will gradually but surely grow to a corresponding tree, but the tree of Right being suited to the nature of soul (whose very nature is Right and Good), it will outgrow and uproot the tree of Evil sooner or later, if once implanted firmly If you cannot be Pure and Perfect in this life, do not be disappointed go on making progress, and you will realise your object in the next life, in the life after the next life—surely one day. O you Believers in the transmigration of soul, your pitcher of Hope and Joy is inexhaustible why should you be sad and disappointed ? This is the great message of Hope, Joy, and Perseverence which Jainism gives to the world

Then Jainism teaches the great lessons of Self—help and Self—confidence Since our own actions and thoughts are the cause of our bondage, only we ourselves can free ourselves from the fetters of the Karmas. The *Tirthankars*—the Great Masters simply show us the way, but we shall have to make the efforts The Jain Method of worship in temples is not for craving salvation from God, but for expressing gratitude for the Great Masters, for purifying the thoughts by seeing the image of the Pure Ideal, and for receiving inspiration and stimulus, as its sight awakens a longing for peace and perfection We worship not the Idol, but the Ideal

Then since we are free in forming motives, and our own actions become Karmas, we are the architects of our fate We make our future life according to the actions we do in the present life, and as for the present, though it is determined by the actions of our

past which we can not undo, yet it also can be affected to a great extent by our present actions, as the Karmas capacity of giving fruits being dependent upon the intensity of the passions under which the actions-their causes-were done, the fruits of some Karmas are fixed, while those of some are variable; and the latter can be changed according to our present good or bad actions. Not only this, but by understanding our true nature we can destroy the whole Karmas All souls by nature are Gods All souls have the same qualities, and the difference between the soul of God and that of an animal of even the lowest order consists merely in the degree of manifestation. That one soul is God, shows that all souls can be Gods That we can be perfect shows that our very nature is perfect, since one's nature may be obscured, but neither anything can be subtracted from itself nor anything can be added to itself from outside We all are by nature, omniscient, omnipotent and blissful The glory of the whole universe is insignificant before the glory that lies within ourselves. We are immortal and intangible What power can humiliate us? What want can disturb our peace? What force can do the slightest harm to us? Even the Karmas cannot destroy us Why should we fear anything? We are ever Perfect, Pure, and Free. The gold is covered over with dust Is it not still gold? Is it not even then different from the dust?

Then lastly, the Jain Scriptures have no myths The stories of the Jain *Purans* are illustrations of the Laws of the Karmas They are ennobling and instructive, and yet as true as natural They relate nothing incredulous There is no ten headed Ravan, and no monkey—shaped Hanuman A modern reader may find the Jain Geography unwarranted by the modern Geography, and the Jain accounts of ancient times with men having very tall bodies and very long life as insupportable by the modern History But almost every religion corroborates the Jain accounts, and says that the more backward we look into the past, the taller and more long—lived we find the man. However, a thing is not false merely because the imperfect, fickle, and short-sighted Modern History and Science do not know it Modren History does not know many things even of the Mughal Period, not all events even of the yesterday's Great War are known to it Is it not itself a fable agreed upon, to an extent? A historian scientist of a decade ago would have sneered even at the Jain accounts of hell and heaven, mantras and miracles, super-human souls and living vegetation, spirits, ghosts, and transmigration of soul etc But now all these are admitted to be true History and Science made by human methods can not be the touchstone of knowledge gained by the spiritual power, rather the latter ought to be the touchstone of the former. How can we believe in the conjectures of history made as regards the state of the world millions and trillions of ages ago, when it does not know properly even the events of a century ago?

These few characteristics are pointed out in the modest hope that the reader will understand the necessity of studying Jainism It may be mentioned that most of the Jain Scriptures have been lost, and that whatever fragment of knowledge still remains is in comparison with the lost knowledge not even so much as a ray compared with the whole radiance of the Sun. Still Jainism claims to be the most logical, scientific, clear, consistent and explanatory of all religions, and it can be confidently asserted that any impartial and well-made perutsal of its Scriptures justify this claim

Victory to the Scientific, beneficial and Universal Religion True Knowledge to all

Tarachandra Pandia,

The Ideal of Human Existence.

(By —Manubhai Babubhai Shah Jain B A, Surat)

The Problem—whether life has anything to teach or is it worth living—has disturbed the mental vision of many great psychologists and there, being non-plussed in many intricate problems have given out a judgment of their own accord

It has been well said by a writer that "Man is but a shadow and life a dream," showing thereby the shortness of life and the momentary existence of man on the stage of the world He comes on the stage, plays his part like an actor, and disappears from the world's stage As two clocks do not tally, so also the two minds cannot tally, and the same is the case with many great writers and thinkers Some take life in a brighter aspect while some take a gloomy aspect of the same Generally at the present time we find very little of optimism, but the cup of pessimism with its bitter poison is drunk to the very dregs by the modern thinkers

When we are alive, we all enjoy life to the full thinking it to be a happy boon But it is here that we are blinded and deceived We don't understand the real mission of life By experience in life, we get to know many things, which we realise latter in life Before death, there comes a moment for all, when we understand that the world with its prosperity is a mere bondage and the only thing possible for a man is to return to his self—centred unique temper This world is full of strifes and struggles which only unnerve and exhaust us The shades of prison house begin to close upon us, yet knowing this we never lose the deep love of life

The real mission of life is an appeal to not to be lost in the ephemeral joys of this world, not to forget the ultimate fate to which a man must come, namely that of disappointment at the vanities of earthly joys On the life, there may be brightness of joys interspersed between sorrows of life, but everyone will realise in the end that the ultimate goal for him is grief before death

Then what should be done when a man is placed in such a critical position? He beeing placed in such circumstances must assume a calm, serene, self-scentred temper, and look on life in silent contuncy Like Matthew Arnold's "Gipsy Child" he must realise that there is a majesty in grief—the ultimate go for all before death—which far transcends the earthly joys and prosperity It is all strange to note that we all foreknow the vanity of hope still we plunge in the sea of life and proceed to live

Men sometimes think of doing certain acts but being enable to do them, get exhausted and disappointed But we must understand that there is some spirit working behind us, so can not create enthusiasm at our own will Then men think that they are done gross injustice, but instead of being disappointed should return to their innerself Soul

So what a man should do in such cases is to view life steadily and view it whole, and viewing it remain satisfied with his own inner excellance, all indifferent to all external things of life He should not mourn for what is inevitable The final goal is there, it is to be reached at any rate, so a man must live as long as he is destined to do good acts, and ultimately succumb to the icy hands of death And then at the end he will realise what life has given him by way of renunciation

May Lord Mahavir infuse in us all Joy, peace and enthusiasm, and direct us on the path of truth and bliss

जयचन्द्र और अमृतसागरका संवाद।

(लेखक-धर्मरत्न पं० दीपचंद्रजी वर्णी उप० अधिष्ठाता, ऋ० ब्रह्मचर्याश्रम-जयपुर।)

प्रतिवर्षके अनुसार भादोंका महीना निवृत्तिपूर्वक धर्मध्यानमें बितानेकी इच्छासे मित्र संघ चौरासी (मथुरा)की यात्रा करता हुआ जैनपुरी (जैपुर) आया और सर्वसुखदास खजानचीकी नसियांमें जहां अभी श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम (दिगम्बर जैन गुरुकुल) है, ठहरा। यद्यपि यह स्थान शहरसे बाहर स्टेशनके निकट है तो भी निरापद नहीं है, इसलिये मित्रसंघ कुछ दिन यहां ठहरकर खांनियाकी नसियांमें चला गया और वहां ही दशलक्षण पर्वके अंततक ठहरा। त्यागमूर्ति बाबा भागीरथजी वर्णी और सच्चे उदासीन व्रती बाबा मोतीलालजी भी इन दिनों वहीं थे इसलिये विघ्नबाधाओंके विना इनके व्रत विधान अच्छी तरहसे हुए।

इस समय जैचंद्रका द्वितीय पुत्र अमृतसागर (जो एफ० ए० में पढ़ता है) साथ था सो आश्विन वदी १ को जब कि खाँनियासे लौटकर पुनः ऋषभब्रह्मचर्याश्रममें घर जानेके लिये आकर ठहरे तब रात्रिको उनमें इसप्रकार चर्चा हुई-

अमृतसागर-पिताजी, ये जो ब्र० आ० के विज्ञापन बटे हैं, इनमें लिखा है कि "दिगम्बर जैन गुरुकुल" सो गुरुकुल शब्दका क्या अर्थ होता है? गुरुकुल किसे कहते हैं?

जयचंद्र-चिरंजीव रहो बेटे! तुम्हारा प्रश्न समयानुकूल है। वास्तवमें जहां जाना वहांकी सब व्यवस्था जानना उचित ही है, अच्छा सुनो! मैं इसका वास्तविक रूप कहता हूं।

जयचंद्र-गुरुकुल उसे कहते हैं, जिसमें विद्यार्थीगण रहकर विद्योपार्जन करें और वे कुमारकाल तक संसारके विषयजनित प्रलोभनोंसे बचे रहकर अर्थात् ब्रह्मचर्य पूर्वक सादा जीवन बिताकर सच्चे गृहस्थ अथवा सन्यासी बन सकें।

ये गुरुकुल दो प्रकारके होते थे-एक तो सागारों (गृहीजनों) का और दूसरा अनगारों (साधुजनों) का। इन गुरुकुलोंमें रहनेवाले छात्रगण निरंतर गुरु (आचार्यों तथा उपाध्यायों) जनोंके साथ रहकर उनकी ही आज्ञानुसार चर्या करते हुए विद्याऽभ्यास करते हैं। इनका ध्येय मात्र एक विद्याऽध्ययन करना ही रहता है। ये लोग श्रीपूज्यपादस्वामीके निम्नलिखित आदेश पर पूर्णतया लक्ष्य रखते हैं।

तद्ब्रूयात् यत्परान्पृच्छेत् तदिच्छेत्तत्परो भवेत्
येनाऽविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत् ॥१॥

अर्थात्-उसीको कहना चाहिये, उसीको पूछना चाहिये, उसीके प्राप्तिकी इच्छा करना चाहिये और उसीमय होजाना चाहिये जिससे अज्ञान अवस्था छूटकर केवलज्ञानमई अवस्था होजावे।

सब लोग-अहहा! धन्य हैं वे गुरु और वे शिष्य जो इसप्रकार पठन पाठन करते कराते हैं।

जय०-भाइयो, ऐसा था तभी सद्विद्या प्राप्त होती थी, क्योंकि विद्याके साथ सदाचार और शुद्ध आहार विहार व सादगीका अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है इसलिये उन गुरुकुलोंमें छात्रोंको

आदर्श बनानेके हेतु गुरुजन्यर्य स्वयं आदर्श होते थे, इसीलिये वे छात्र भी उत्तरकालमें आदर्श गुरु बन सके थे, क्योंकि यह सिद्धान्त है कि गुरु वही बनसक्ता है जो स्वयं सच्चा शिष्य बन चुका हो, जो आज्ञा मानता, अपराध स्वीकार करना, गुरुओंकी विनय भक्ति करना जानता है, वही औरोंसे भी उक्त बातें करा सक्ता है।

आपलोग जानते हैं कि क्यों आजकल गुरुओंमें शिष्योंकी भक्ति व आदर नहीं और शिष्योंमें भी अनेकों ग्रन्थोंका अध्ययन करलेने पर भी कुछ योग्यता नहीं देखी जाती ?

सब लोग—इसका कारण यही होसक्ता है कि "गुरुजी खायें काकडी, औरोंको देवें आकड़ी"

ब्र०—बिलकुल ठीक बात है, यही बात है।

अमृत०—पिताजी यह विषय बहुत रोचक और समयोपयोगी है, कृपया और भी कहिये कि उन विद्यार्थियोंकी चर्य्या कैसी होती थी और उनके भोजनादिकी व्यवस्था क्या कैसी रहती थी ?

ब्र०—बेटा, आजकलके लोग उसे पसंद नहीं कर सक्ते, और पाश्चात्य विद्याप्रेमी तो Nonsense (अज्ञानी) कहकर घृणा प्रगट करेंगे तो भी मैं तुम्हारी रुचि देखकर कहता हूं और मेरी यही श्रद्धा है कि विद्याऽध्ययन करनेका वास्तविक उपाय यही है। अच्छा सुनो?

जैन शास्त्रोंमें गर्भाधानादि सोलह संस्कार बताये हैं, उनमें चौदहवीं क्रियाको उपनीति संस्कार कहते हैं सो जब बालक ८ वर्षका होजाता है, तबसे १२ वर्षकी अवस्था तकके बालकको अष्ट मूलगुण धारण और सप्त व्यसनों (महापापों) का त्याग कराकर देव, गुरु शास्त्र, द्विज, अग्नि और गुरुजनोंकी साक्षीसे मंत्रविधान पूर्वक रत्नत्रयका चिह्न यज्ञोपवीत (जनेऊ) पहिराते हैं, और फिर जिस प्रकारकी विद्या पढ़ाना हो, और बालककी जैसी रुचि देखी जाय उस प्रकारके सागार अथवा अनगार गुरुकुलमें भेज दिया जाता है। वहांपर वह बालक १२ या १६ वर्ष तक अक्षुण्ण शील रहकर विद्याऽभ्यास करता है और पश्चात् किसी एक विषयमें निष्णात (आकण्ठ) और शेष विषयोंमें यथायोग्य (जानुपर्यन्त) अभ्यास करके गुरुके प्रमाणपत्र सहित आज्ञा लेकर घर आता है और फिर पाणिग्रहण करके गृह व्यवहार चलाता है तथा समय व कारण पाकर विरक्त होकर यथाशक्ति व्रत तपश्चरणादि करके स्वयोग्यगतिको प्राप्त करता है।

आगममें पांच प्रकारके ब्रह्मचारी (विद्यार्थी) लिखे हैं (ये ब्रह्मचारी नैष्ठिक ब्रह्मचारियोंके भेद नहीं समझना चाहिये, किन्तु इन्हें अव्रती समझना चाहिये। ये तो मात्र विद्याऽध्ययनार्थ ब्रह्मचर्यव्रत रखते हैं और इनमेंसे नैष्ठिकके सिवाय शेष (उपनय, अवलंब, अदीक्षा और गूढ़) चारों प्रकारके ब्रह्मचारी अध्ययन कर चुकने पर अपने पितादि जनोंकी आज्ञासे लग्न करके गृहस्थाश्रम चलाते हैं। एक नैष्ठिक मात्र ऐसा होता है, जो आजन्म ब्रह्मचारी रहकर स्वपर हितमें प्रवृत्ति करता है। यह (१) नैष्ठिक ब्र० मस्तकपर चोटी, हृदयपर गणधर सूत्र और सफेद अथवा अधिकतर लाल रंगका लंगोट व चादरादि वस्त्र रखते और सिंधे हुए वस्त्र नहीं पहिरते हैं। (२) उपनय ब्र० यज्ञोपवीत (गणधर सूत्र)

धारण करके चोटी, लंगोटी और चद्दरादि सफेद रंगकी रखकर विद्या अध्ययन करते हैं। (३) अवलंब ब्र० क्षुल्लकके भेषमें कोपीन और खंड वस्त्र धारण करके मुनिसंघमें रहकर पढ़ते हैं। (४) गूढ़ ब्र० जो मुनिभेष धारण करके अभ्यास करते हैं और मुनिसंघमें रहते हैं (५) और अदीक्षा ब्र० जो यज्ञोपवीत धारण करके सामान्य गृहस्थोंके ही भेषमें गुरुकुलोंमें जाकर अध्ययन करते हैं।

इन ब्रह्मचारियोंमें ब्राह्मण, क्षत्री, और वैश्य (द्विज अर्थात् द्विजन्मा=जिनका द्वितीय जन्म संस्कारोंसे होता है) वर्णके छात्र रहते थे, और राजपुत्रके सिवाय शेष छात्र गुरुकुलोंमें रहकर पढ़ते और भिक्षासे भोजन करते हैं। पूर्वकालमें सभी लोग शुद्ध प्राशुक भोजन करते थे, यही कारण है कि उस समय त्रिवर्णोंमें परस्पर रोटी बेटी व्यवहार था। पश्चात् कालकी कुटिल गतिसे लोगोंके आचार विचारोंमें शिथिलता आती गई और यह परस्पर त्रिवर्णका समूह छिन्नभिन्न होगया। इतना ही नहीं किन्तु एक एक वर्णमें भी अनेकों अंतर्जातियां, कोई प्रदेशके नामसे—कोई ग्रामके नामसे, कोई धंधेके नामसे, और कोई अपने पूर्व पुरुषोंके प्रतिष्ठितपनेसे या राज्य व पंचोंके प्रदान किये हुए पदोंके नामसे बन गई व बनती जाती हैं, तथा इनमें परस्पर रोटी बेटी बंद होगई, जैसा कि हालमें देखा जाता है।

अब समझो, इस प्रकार हजारों विद्यार्थी जहां तहां विद्याभ्यास करते थे और उनके लिये किसीको किसी प्रकारका चन्दा (रुपया एकत्र) करना नहीं पड़ता था, न कोई कमेटी प्रबन्ध करनेके लिये बनाना पड़ती थी।

अमृत०—पिताजी, उनके रहनेको मकान और प्रकाश तो लगता ही होगा।

जय०—बेटा, उनको ऐसी बड़ी२ इमारतोंकी आवश्यकता न थी, उनका सादा जीवन होता था। मुनियोंके संघ (गुरुकुल)को तो मकान बिलकुल भी नहीं लगता था, वे तो वनों उपवनों, छोड़े हुए सूने मकानों व पर्वतकी गुफाओं आदिमें चलते२ ठहर जाते थे। वे चौमासेके सिवाय अन्य समयोंमें किसी भी स्थानमें अधिकसे अधिक ५ दिन ही ठहरते थे, ताकि स्थान अथवा व्यक्तियोंसे मोह न बढ़ जावे, और न उन्हें वस्त्र व प्रकाश ही लगता था, वे सच्चे स्वाधीन थे। रहे गृही गुरुकुल सो इनका स्थान नगरसे दूर किसी जलाशयके निकट उपवन आदिमें घास फूसके झोपड़ोंमें छात्रगण रहते थे, भिक्षा नगरमें कर जाते, दिनको पाठ पढ़ लेते और उसीका मनन किया करते। उन्हें चिरागकी जरूरत ही न थी, कभी जरूरतपर सूखे पत्ते जलाकर उपयोग कर लेते थे। उस समय सब लिखकर पढ़ते थे, इससे पाठ स्मरण अच्छा होजाता था और अपनी पुस्तकपर प्रेम, भक्ति व विनय भी रहती थी। इसके सिवाय वे पुस्तकोंके भरोसे नहीं रहते थे, वे अपनी कंठ विद्याको ही विद्या समझते थे, कंठ विद्या न कोई चुरा सकता न उसे सूर्य, चन्द्र व दीपकादिका प्रकाश ही लगता था। जो लिखते वह भी स्वाधीन सूखे ताड़के पत्तोंपर कांटोंसे लिख लेते या बहुत हुवा तो कागज अर्ककी कलमसे अथवा प्राय:

काठकी पाटीपर लिखकर कंठ कर लेते थे यही समीचीन सरल पद्धति है। उनके अल्प और सादे वस्त्र जिसमें दर्जीकी जरूरत नहीं थी, रहते थे। सिरपर बाल नहीं रखते थे जिससे तैल व कंघीकी भी जरूरत न पड़ती थी। उनके पास धन सम्पत्ति न रहती जिससे चोरोंका भय हो। वे और उनकी पुस्तक १-२ बर्तन व वस्त्र मात्र रहते थे तब निराकुल हो (संसारिक चिंताओंसे रहित हो) कर पढते थे।

सव–वाह कैसा सादा जीवन था !

अमृत–यह तो ठीक है, पर गुरुओंका खर्च कैसे चलता था ?

जय०–ठीक है सुनो, मुनियोंके गुरु आचार्योंको तो कुछ चाहिये ही न था, और गृहस्थाचार्योंको गृहस्थजन सीधा (भोजन सामान और वस्त्रादि) भेंट दिया करते थे तथा उनके बच्चोंके लग्नादिके समय गृहस्थजन सहायता किया करते थे और कहीं२ राज्य व पंचोंकी ओरसे इनको कुछ जागीर रहती थी, इसलिये वे लोग पढ़ाईके बदले कुछ भी द्रव्य न लेकर विद्याका मूल्य कायम करते थे। आजकल जैसा न था–गुरु लोग गुरु ही थे, नौकर न थे। नौकरीमें दीनता होती है। महत्व व भक्तिभाव नहीं रहता।

अ०–पिताजी ! समझा, अब इस ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रमकी बाबत कुछ परिचय पानेकी इच्छा है।

जय०–अच्छा सुनो ! श्री वीर नि० सं० २४४७ में अक्षयतृतियाके शुभ अवसरपर ऐलक पन्नालालजी महा०के करकमलों द्वारा श्री हस्तिनापुर क्षेत्रमें यह आश्रम खुला था। उस समय त्यागमूर्ति बाबा भागीरथजी वर्णी, महात्मा भगवानदीन व ब्र० गेंदनलालजीने इसे सम्हाला, पश्चात्, बाबाजी स्वस्वभावानुसार विरक्त हो चले गये। कई कारणोंसे म० भगवानदीनजीको भी छोड़ना पड़ा। ब्र० गेंदनलालजीका स्वर्गवास होगया। तात्पर्य–प्रारम्भमें ही संरक्षक बिना होगया। बाद ब्र० शीतलप्रसादजीने सम्हाला, परन्तु भ्रमणके कारण फिर भी व्यवस्था न बनी तब ब्र० ज्ञानानन्दजीने बागडोर सम्हाली, परंतु उन्हें भी कालने अपना महिमान बना लिया। तबसे फिर भी डावाडोल स्थिति होगई, सवैतनिक कार्य करनेवालोंमें ऐसा कोई इस बीचमें न मिला जो इसे अपनाकर सच्चे हृदयसे चलाता। हर्ष इतना ही है कि जीवित अभीतक है।

अमृत०–तब जयपुर कब व कैसे आया ?

जय०–आजसे लगभग ९ वर्ष पहिले जलवायु फेरफार करनेको चौमासेमें यहां आया था, क्योंकि वर्षातमें वहां (हस्तनापुर) का जलवायु बिगड़ जाता है, सो तबसे यहीं रहा, यहांवालोंने इतने दिन तक चलाया परन्तु अब आगे.... इसलिये किसी योग्य स्थानकी खोजमें हैं।

अ०–तब अभी इसका कार्य कैसे चलता है ?

जय०–गत ज्येष्ठ मासमें पंडितवर्य गणेशप्रसादजी वर्णी न्यायाचार्यने इसकी संरक्षकी स्वीकार करके, त्यागमूर्ति बाबा भागीरथजी वर्णी और धर्मरत्न पं० दीपचन्दजी वर्णीको क्रमशः अधिष्ठाता तथा उपअधिष्ठाता पदकी स्वीकारता कराकर भेजा है। परन्तु...... ..

अमृ०–परन्तु क्या ?

जय०–बेटा ! ये लोग त्यागी व्रती कहाते हैं,

सो घर छोड़ा और फिर आकुलतामें पड़ना यह तो विपरीत बात है। त्यागी और आश्रम (संस्था)से क्या सम्बंध? इसीसे ये लोग इसे छोड़कर जानेवाले हैं। वास्तवमें ये कार्य गृहस्थ जनोंके हैं। त्यागियोंके माथे डालना अनुचित है।

सब—निःसंदेह त्यागी व्रतियोंको ऐसे जिम्मेदारीके कार्योंमें फंसकर अपने धर्मध्यानमें बाधा नहीं डालना चाहिये।

अमृ०—तब इसका कार्य कैसे चलेगा?

जय०—यदि किसी मथुरा जैसे तीर्थपर कायम होकर रहे और वहांके सज्जन सम्हाल करना स्वीकार कर लेवें तो बराबर चलता रहेगा। अभी इसमें लगभग २० बालक हैं, और आरहे हैं, कार्य ठीक चल रहा है। १ अंगरेजी मेट्रिकवाले मास्टरकी और जरूरत है सो आजावेगा।

अमृ०—आश्रमका उद्देश क्या है?

जय०—छात्रोंको १८ या २१ वर्षकी अवस्था तक ब्रह्मचारी रखकर तथा उनको उच्च धार्मिक संस्कृत और अंगरेजी (व्यावहारिक) शिक्षा देकर सद्गृहस्थके योग्य बनाना।

अमृ०—उद्देश तो अच्छा है।

जय०—हां! अच्छा तो है, परन्तु समाज जब पूरा पाड़े तब न।

अमृ०—क्यों?

जय०—क्योंकि प्रथम तो इसमें लोग २१ वर्षकी उमर तक अपने बालकोंको कुंवारे रखकर रखना नहीं चाहते, दूसरे तीव्रबुद्धि बालक कम आते हैं और आते भी हैं, तो जहां कुछ आगे बढ़नेके योग्य हुए कि भागकर अन्य संस्थाओंमें चले गये। तीसरे निःस्वार्थी सच्चे सेवक (कार्यकर्ता सवैतनिक व अवैतनिक) नहीं मिलते, जो स्वयं आदर्श चरित्र बनकर पुत्रवत् शिक्षा दें व इसे अपना ही समझें, चौथे योग्य स्थानकी कमी, पांचवे द्रव्य (खर्च चलाने)की चिन्ता इत्यादि कारणोंसे उन्नति नहीं पारहा है।

अमृत—तब क्या ये बातें सुधर नहीं सकीं?

जय०—बेटा असंभव कुछ नहीं, समाज दृष्टि दे तो ऐसे कई आश्रम चल सके हैं। लोग तीव्रबुद्धि बालकोंको २१ वर्षकी उमर तक नियमपूर्वक रक्खें, अन्य संस्थाएं यहांके छात्रोंको भर्ती न करें, लोग द्रव्यकी मदद करते रहें, व ध्रौव्यफंड करदें, योग्य सम्हाल रक्खें, सदाचारी वयोवृद्ध चिरपरिचित विद्वान् अल्प वेतन पर कार्य करें, और स्थान मथुरा जैसा हो, बस चल जायगा। असलमें निःस्वार्थ सदाचारी विद्वान् कार्यकर्ताओंकी आवश्यकता सब जगह होती है। सब संस्थाएं समाजसे चलीं व चलेंगी, जहां कहीं बिगाड़ हुआ है, वह कार्यकर्ताओं और कर्मचारियोंके प्रमाद, चाटुकारी व स्वार्थ आदि दुर्वासनाओंके कारणसे ही हुआ है। त्यागी विद्वानोंकी देखरेख मात्र ही काफी है उनपर किसी उत्तरदायित्व पूर्ण पदका भार या द्रव्यादिकी चिंता नहीं डालना चाहिये।

सब लोग—भैया ठीक है, त्यागियोंकी देखरेख रहनेसे और उनकी आज्ञा प्रमाण कार्य चलानेसे धर्माचारकी रक्षा रहती है और कार्य तो ये सब गृहस्थोंके ही चलानेके हैं। अच्छा अब रात्रि बहुत हुई, सोजाइये, बोलो पंचपरमेष्ठी भगवानोंकी जय। दीपचन्द्र वर्णी।

श्वेताम्बर जैनोंके आगम ग्रन्थ।

[ले०—बा० कामताप्रसादजी जैन, सम्पादक "वीर" अलीगंज।]

अपने गत लेखमें हम श्वेतांबरोंके सातवें अंग 'उपासकदशा सूत्र' के प्रथम व्याख्यानका दिग्दर्शन कर चुके हैं। दूसरे व्याख्यानका प्रारंभ चम्पाके गृहस्थ कामदेव और उसकी स्त्री भद्राके कथानकसे होता है। जम्बूस्वामी सुधर्मास्वामीसे प्रश्न करते हैं और उसके उत्तरमें यह व्याख्यान कहा जाता है।

कामदेवने भी आनन्दकी तरह बारह व्रत श्रावकके ग्रहण किये और वह यथाविधि उनका पालन करता रहा। एकदा रात्रिके समय उसको धर्मसे चलित करनेके लिए एक देवने उसपर विशेष उपसर्ग किए। वह चतुर्दशीका दिन था और कामदेव प्रोषधोपवासमें लीन था। उसने धीरतासे देवकृत उपसर्ग सहन किये। देव हताश हुआ और उसने प्रगट होकर कामदेवसे क्षमा याचना की और कहा कि 'देवलोकमें उसके धर्माचरणकी प्रशंसा सुनकर वह परीक्षा निमित्त आया था।' देवके चले जानेपर कामदेव भगवान महावीरकी वंदनाके लिए बाहर 'पुण्णभद्द चैत्य' में गये। वहां भगवानने उसके ऊपर जो घटना घटित हुई थी वह बतला दी। यहां भी भगवानको पुण्णभद्द नामक चैत्य (मंदिर)में अवस्थित बतलाया है; परन्तु चंपाके इस खास मंदिरमें भगवानके समवशरणकी रचना किस तरह होजाती होगी? सारांशतः दिगम्बर शास्त्र इस विवरणसे सहमत नहीं हैं।

अगाड़ी कहा गया है कि उपरान्त भगवानने निर्ग्रन्थ साधु और साध्वियोंसे जोकि उनके साथ थे, कामदेवसे बढ़कर दृढ़ता रखनेका उपदेश दिया। ("अज्जो" इ समणे भगवं महावीरे बहवे समणे निग्गन्थे य निग्गन्थीओ य आमन्तेत्ता एवं वयासी। "जइ ताव, अज्जो, समणो वासगा गिहिणो गिहिमज्झा वसन्ता दिव्व माणुसतिरिक्खजोणिए उवसग्गे सम्म सहंति जाव अहियासेंति, सक्का पुणाई, अज्जो, समणेहिं निग्गन्थेहिं दुवालसङ्ग गणिपिडगं अहिज्जमाणेहिं दिव्वमाणुसतिरिक्खजोणिए सम्मं सहित्तए जाव अहियासित्तए" ॥ ११९ ॥) इससे यह प्रगट होता है कि श्वेताम्बरोंके अनुसार भगवानके साथ केवल मुनि और आर्यिका ही रहते थे। व्रती श्रावकोंको उनके साथ रहनेकी आवश्यक्ता नहीं थी परन्तु दिगम्बर शास्त्र इससे सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार भगवानके संघके साथ मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका चारों ही रहते थे। अस्तु, वह व्रती गृहत्यागी श्रावक श्राविका भगवानके सामान्य श्रद्धानी अनुयायियोंसे अलग समझना चाहिए।

अगाडी कहा गया है कि भगवान महावीरका विहार अन्यत्र होगया और कामदेवने समाधि मरणसे मरण करके स्वर्गलाभ किया। इसपर गौतमस्वामीने भगवान महावीरसे उसकी बाबत पूछा तो मालूम किया कि वह वहांसे चलकर

विदेहक्षेत्रसे मुक्त होगा। इसके साथ ही दूसरा व्याख्यान पूर्ण होता है। इस व्याख्यानसे भी प्रकट है कि गौतमस्वामी भगवानके साथ सदैव रहते थे। उनके लिये यह उचित नहीं था कि वह भगवानसे अलग रहकर विहार करते, जैसे कि श्वे०के 'उत्तराध्ययनसूत्र'में है, जिसका उल्लेख हम पहिले कर चुके हैं।

तीसरे व्याख्यानमें बनारसका उल्लेख है और वहांके भी राजा जितशत्रु बताए गए हैं। बनारसके पास ही 'कोष्ठग' नामक चैत्य (मंदिर) था। वहीं चूलनीपिया नामक गृहस्थ निवास करता था, जिसकी पत्नी सामा थी। एकदा भगवानका समवशरण बनारसमें आया और बहुतसे लोग दर्शनार्थ बाहर गए। इनके विषयमें भी वे सब बातें घटित हुईं जो कि आनन्दके साथ हुई थीं। गौतमस्वामीने इसकी बावत भी भगवानसे पूछा था। वह भी धर्म नियमोंका पालन दृढ़ताके साथ करता बताया गया है। एक रात्रिको एक देवने आकार इनपर भी उपसर्ग किए और इनके पुत्रादिको मारनेका भय दिखाया। इसपर यह ध्यानसे विचलित होगए। मोहके आवेशमें रोषसे यह उस देवको पकड़नेके लिए उठे परन्तु देव लुप्त होगया। उसके चीत्कारको सुनकर उसकी मां वहां आई और सब बातें सुनकर उससे प्रायश्चित्त लेनेके लिए कहा। चूलणीपियाने प्रायश्चित्त स्वीकार किया और धर्म साधन करके स्वर्गलाभ किया। इस तरह यह तीसरा व्याख्यान समाप्त किया गया है।

चौथे व्याख्यानमें भी वहीं बनारसके एक अन्य गृहस्थ सुरादेव और उसकी स्त्री धन्नाकी कथा है। भगवानके समवशरणमें इस गृहस्थने भी आनन्दकी तरह व्रत लिए थे और इसके भी वैसे ही सब बातें घटित हुई थीं, जो कि हम पहिले देख चुके हैं। सुरादेवके समक्ष भी रात्रिके समय एक देव उपसर्ग करने आया था, जिससे वह ध्यानसे चलित होगया अतः अपनी स्त्री धन्नाके कहनेपर प्रायश्चित्त स्वीकार करने और धर्माचरण करनेसे उसने स्वर्ग प्राप्त किया। विदेहसे वह मुक्तिलाभ करेगा यह कहा गया है। इस तरह यह व्याख्यान भी पूर्ण होता है।

पांचवे व्याख्यानमें आलभिया नगरके चुल्लसयग गृहस्थ और उसकी स्त्री बहुलाका कथानक दिया हुआ है। इसमें भी चुल्लसयगके श्रावकके व्रत ग्रहण करने, देवका धन सम्पदा ले जानेका भय दिखानेसे ध्यानसे चलित होने पुनः धर्म साधन कर स्वर्गसुख पानेका उल्लेख है।

छट्टे व्याख्यानमें कंपिलपुरके कुंडकोलिय और उनकी स्त्री पूसाकी कथा वर्णित है। कंपिलपुरके भी राजा जियसत्तु बतलाए गए हैं। इस ग्रंथमें सर्वत्र जियसत्तु राजाका ही उल्लेख आया है जो ठीक नहीं है। तथापि कंपिलपुरके पास 'सहस्र आम्र वन' भी बतलाया है। कनिंघम साहबने कंपिलपुरको दक्षिण पांचाल देशकी राजधानी बतलाई है और लिखा है कि यहां अब भी कई जैनमंदिर हैं—

(See Cunningham's Arch. Reports, Vol. I. p 255 (Plate II), & Vol. XI p. p. 11, 12. Also Ind. Ant. Vol IV. p. 111).

यह कुंडकोलिय जैन श्रावक था। एक रोज

दोपहरके समय इसने उपाश्रयके पवित्र पदपर अपने नामकी अंकित मुद्रा और दुपट्टा रख दिया। उपरांत वह भगवान महावीरसे ग्रहण किए हुए प्रश्नोंको पालता हुआ आनन्दसे रहा। फुटनोट द्वारा बतलाया गया है कि इस तरह मुद्रा रखनेका रिवाज पहिले था। जैन स्तूपों आदिकी खुदाई होनेपर ऐसी मुद्रायें निकली हैं। डॉ० हार्नलेने पंजाबसे प्राप्त मुद्राओंका विवेचन 'Proceedings of the Asiatic Society of Bengal for Sept. 1884में किया है। उससे भी यह बात प्रकट है तथापि कनिंगघम साहबकी Arch: Survey Reports Vol. XI. pp. 35, 89, Vol. III, p. 157, Vol. X, p. 5 से भी यही प्रकट है। आजकल भी ऐसे पट्ट (चबूतरे) शत्रुंजय आदि तीर्थोंपर मिलते हैं। अस्तु,

इस तरह जब कुन्दकोलिय धर्मसाधन कररहा था तब एक देव उसके समक्ष आया बतलाया गया है। इस देवने कुण्डके रक्खे हुए मुद्रा और दुपट्टा उठा लिए थे। उसने कुन्दसे कहा कि 'मक्खलिगोशालका धर्म अच्छा है। तू उसका अनुयायी बन जो पुरुषार्थको नहीं मानता है—सब वस्तुओंको परिणामाधीन बतलाता है। महावीरका धर्म अच्छा नहीं है जो पुरुषार्थको मानते हैं। इसपर कुन्दने देवको युक्तियोंसे पुरुषार्थका होना आवश्यक बतलाया। देव लाजवाब हुआ और उसने मुद्रा और दुपट्टा वहीं रख दिया और वह विदा हो गया। इससे यह विदित होता है कि यह मुद्रा आदि शास्त्रार्थकी घोषणारूपमें उसी तरह जाती होंगी जिस तरह वादके लिए नाद करना। डॉ० हार्नलेने फुटनोट द्वारा मक्खलिगोशाल और महावीरका पारस्परिक संबन्ध प्रकट किया है और श्वे०के भगवतीसूत्र १५ का अनुवाद भी दिया है जिसमें गोशालका विवरण है। इसका दिग्दर्शन भी यथावसर करना आवश्यक है। अस्तु;

अगाडी कहा गया है कि इसी समय भगवान महावीरका आगमन कंपिलपुरमें हुआ। कुण्डकोलिय उनकी वंदना करने गया। भगवानने उसे देवकृत वार्ता ज्योंकी त्यों बतला दी। पुन: अपने 'साथियों' (his venerable companions)को लक्ष्यकर उनसे कहा, जिनमें मुनि और आर्यिका थे, कि 'तुमको भी इसी तरह विधर्मियोंकी मिथ्या मानताओंका खण्डन करना चाहिये।' यहां भी भगवानके समवशरण व विहारमें साथ रहनेवाले केवल मुनि और आर्यिका ही बतलाये गये हैं। श्रावकोंको घरमें रहनेवाला (गिहिमज्झावसत्ता) बतलाया गया है किन्तु यह समझमें नहीं आता कि श्रावकोंका आदर्श विशेष चारित्रके धारी निर्ग्रन्थ मुनियोंके समक्ष रखना किस तरह उचित था? जिस संघके श्रावक इतने दृढ़ थे उस संघके मुनिजन तो और अधिक दृढ़ होना चाहिये। उनके चारित्रका प्रभाव श्रावक, श्राविकाओंपर पड़ना चाहिये, परन्तु यहांके उक्त वर्णनसे ऐसा मालूम होता है कि जिन मुनिजनोंको लक्ष्य कर यह कहा गया है, उनमें इतनी दृढ़ता नहीं थी। और यह है भी ठीक क्योंकि यह शास्त्र उन आचार्यों द्वारा संकलित हुआ है जो प्राचीन मार्गसे स्खलित होगये थे और जिनमें पूर्वापेक्षा



स्वर्गीय उदासीन त्यागी लालारामजी–उदासीनाश्रम, इन्दौर।

(मुनि अवस्थामें गत वर्षमें परतावगढ़में समाधिमरण; पासमें उदासीन त्यागी पं० पन्नालालजी गोधा बैठे हुए हैं।)

Jain Vijaya Press, Surat.

शिथिलाचार आगया था। यदि यह बात इस प्रकार न होती तो उक्त प्रकारका उपदेश होना असंगत था। अस्तु;

उपरान्त कुन्दकोलियने धर्मसाधन करके इस गंभुख ध्यान किया, जिस प्रकार आनन्द आदिने किया था, वह कह गया है और इसके साथ ही यह व्याख्यान पूर्ण किया गया है।

इसके बाद डॉ०सा०ने संक्षेपमें 'भगवतीसूत्र' के सप १५ उद्देश १का संक्षिप्त अनुवाद दिया है, जिससे मंखलिगोशालका चरित्र प्रकट है। कहा गया है कि गोशाल मंखलिपुत्रका जन्म श्रावस्तीके निकट स्थित सरवण सन्निवेसमें हुआ था। इसका बाप मंखलि और मां भद्दा थी। गऊशालामें जन्म हुआ इस कारण माता पिताने इसका नाम गोशाल रक्खा था। बड़े होनेपर वह भी 'मंख' (भिखारी) बन गया। इसी समय भगवान महावीरने भी गृह त्यागकर मुनिभेष धारण किया था। मुनि अवस्थाके दूसरे वर्षमें वे राजगृहके निकट नालन्दामें विराजमान थे। गोशाल भी घूमता फिरता वहीं पहुंच गया। राजगृहके प्रख्यात धनिक विजय द्वारा भगवानका विशेष आदर होता देखकर गोशालने भगवानका शिष्य होनेकी अभिलाषा प्रकट की, परन्तु भगवानने इन्कार कर दिया। भगवान कोल्लाग पहुंचे जहां ब्राह्मण बाहुलने उनको आहार दिया। गोशाल उनको राजगृहके आसपास ढूंढता रहा। उनको न पाकर उसने अपने कपड़े-लत्तों आदिका त्याग करके सर्वांग विदाई ली। रास्तेमें उसे कोल्लाग भी पड़ा और वह वहां ठीक उसी समय पहुंचा जिस समय बहुतसे लोग बहुलके उक्त आहार दानकी प्रशंसा कर रहे थे। यहां फिर गोशालने भगवान महावीरसे अपना शिष्य बना लेनेकी प्रार्थना की। उसकी यह प्रार्थना भगवानने स्वीकार कर ली और फिर वे दोनों जने साथ २ छः वर्षतक पणियभूमिमें रहे। डॉ० सा० कहते हैं कि 'भगवती' का यह कथन कल्पसूत्र (१२२)से ठीक नहीं बैठता। वहां कहा गया है कि भगवानने पणियभूमिमें केवल एक वर्ष ही व्यतीत किया था। इसके अतिरिक्त यह भी ठीक नहीं है कि भगवान जब स्वयं छद्मस्थ थे तब उन्होंने गोशालको अपना शिष्य बनाया हो। श्वे०के एक अन्य मान्य ग्रन्थसे हम पहिले देख चुके हैं कि भगवान छद्मस्थ अवस्थामें बोलते नहीं थे, मौनव्रतका अभ्यास करते थे। इस अवस्थामें उनके इस अन्य अंग ग्रन्थका उक्त कथन बाधित होता है और इन मतभेदोंसे भी हम यह कहनेको बाध्य होते हैं कि उपलब्ध श्वे० आगम ग्रन्थ वास्तवमें द्वादशांग श्रुत नहीं हैं।

उपरांत 'भगवतीसूत्र' में बतलाया गया है कि एकदा वे दोनों जने सिद्धत्थगामसे कुम्मगामको जा रहे थे। मार्गमें उन्हें एक लताविशेष फूली हुई मिली। इसे देखकर गोशालने भगवानसे पूछा कि 'लताका नाश होगा या नहीं और फिर उसके बीज कहां प्रकट होंगे?' महावीरजीने उत्तरमें कहा कि 'लताका नाश होगा, किंतु उसके बीजोंसे फिर उसकी उत्पत्ति होगी।' गोशालने इसपर विश्वास नहीं किया। उसने लौटकर लताको नोंचकर फेंक दिया। इनीके सिर इसी समय वर्षा भी होगई, जिससे उसकी

यह हरी होगई और उसमें बीज लग आए। उधर महावीर और गोशाल कूर्मग्रामको चले गए। ग्रामके बाहिर उन्होंने वेश्यायन नामक तपस्वीको उल्टे खड़े हुए धूपमें तपते और जुओंसे भरा देखा। गोशाल इस दृश्यसे भीत हुआ और उसपर कटाक्ष किया। वेश्यायनने क्रोधमें आकर उसे मंत्रसे नष्ट करना चाहा, परन्तु महावीरजीने दया लाकर उसको बचा लिया। दिगम्बर शास्त्र इस कथनसे सहमत नहीं होंगे और न उनमें गोशालकी कथा इस ढंगपर दी हुई है। खैर।

यहांपर भगवानने गोशालको तपस्याके बल मंत्रादि जाननेका रहस्य समझाया। उपरान्त वे सिद्धार्थग्रामको लौटे तो रास्तेमें वही लतावशेष फिर दृष्टि पड़ी। गोशालने भगवानको उनके कथनकी याद दिलाई कि उनका कहा ठीक नहीं हुई हैं और [illegible] रहे हैं। महावीरने कहा कि उनका कथन ठीक उतरा है। गोशालने ही उसको नष्ट किया था, किंतु वर्षाके कारण वह लता पुनः जीवित होगई और उसमें बीज भी पड़ गए हैं। सब पेड़ोंकी यही हालत है।" गोशालने इसपर भी विश्वास नहीं किया और पेड़के बीजोंको खुद देखा तो वहां प्रकृत रूपमें दाने मौजूद थे। इस प्रकार भगवानका कथन ठीक पाकर उसने यह परिणाम निकाला कि केवल वृक्षलता ही नष्ट होनेपर फिर उसी शरीरमें जीवित होती हों यही बात नहीं है, बल्कि प्रत्येक जीवित प्राणी इसी तरह पुनः उसी शरीरमें जीवित (Re animate) होजाता है। भगवान महावीर गोशालकी इस मान्यतासे सहमत नहीं हुए। गोशाल इसपर उनसे अलग होगया और सद्श्रावकका अभ्यास करके उसने मंत्रवाद (magic)में कुछ योग्यता पाली। इसपर वह अपनेको 'जिन' कहने लगा और आजीविक सम्प्रदायका मुखिया बन गया। उसका मुख्य स्थान श्रावस्ती था। गोशाल जब अपने साधुजीवनके २४ वें वर्षमें वहां ठहरा हुआ था तो छह दिशाचर उसके निकट आए थे। उनसे साथ उसने सिद्धांतोंके विषयमें निश्चय किया था। उसने अपने सिद्धांत 'पूर्वों'के एक भाग 'महानिमित्तों'से लिया था। इस सम्बंधकी खबर भगवान महावीरको उनके मुख्य शिष्य इन्द्रभूति गौतमने दी थी, जब वे श्रावस्तीमें आगए थे। गोशालने महावीरजीसे कहला भेजा था कि यदि वे उसके शिष्योंसे छेड़छाड़ करेंगे तो वह उनको मंत्रशक्तिसे नष्ट कर देगा। भगवानने उसका जिनत्व स्वीकार नहीं किया था और उन्होंने अपने अनुयायियोंको उससे मिलनेको मनाई कर दी थी, यह कहा गया है।

उपरान्त बतलाया गया है कि गोशालने स्वयं भगवानके निकट आकर कहा था कि "तुम मुझे अपना शिष्य मानते हो; परन्तु वह तुम्हारा गोशाल शिष्य तो मृत्युको पा चुका है। मैं जो हूं सो वास्तवमें कुण्डियायणीय हूं जो अपने सातवें और अंतिम भवमें है और जो गोशालके शरीरमें प्रविष्ट होगया है। उसी शरीरको मैं अभी भी धारण किये हुए हूं।" फिर उसने अपने मन्तव्यों आदिको प्रगट किया, भगवानने उसके इस कथनको स्वीकार नहीं किया इसपर गोशाल भगवानको गाली देने लगा।

भगवानके शिष्य सुनक्षत्रमुनिने गोशालको इस नीचतामें रोका; जिसपर गोशालने उसे अपनी मंत्रशक्तिसे नष्ट कर दिया। इसी कारण भगवानके एक अन्य शिष्य सुनक्षत्तको भी उसने नष्ट कर दिया था। यह देखकर स्वयं भगवान महावीरने उसको रोका, बतलाया गया है। जिसपर गोशालने अपनी नाशकारिणी विद्याका प्रयोग उनपर भी किया; किंतु विद्याने भगवानका कुछ न बिगाड़कर स्वयं उसको ही जला दिया। गोशालने समझा कि उसकी विद्या कारगर हुई है सो वह कहने लगा था कि भगवान छह मासके भीतर ही बुखारसे मृत्युको प्राप्त होंगे किन्तु भगवानने कहा कि उनकी मृत्यु होना कठिन है वह अभी १६ वर्ष और जिनरूपमें जीवित रहेंगे, पर गोशाल सात दिनमें जीवनान्त कर जायगा। दिगम्बर जैनशास्त्र श्वे०के इस ग्रंथके उक्त कथनसे किसी हालतमें भी सहमत नहीं होंगे। जैन सूत्र और दिगम्बर तीर्थंकर भगवानका चारित्र इष्ट-अनिष्ट, शत्रु-मित्र, सबमें सम और समान और हितपूर्ण होता है। वह रोषसे परे और बदला लेनेके भावसे दूर हैं। यह बात श्वे०के आचाराङ्गसूत्रके कथनसे भी स्पष्ट है। वहां जैन मुनिके लिए समभाव रखनेका स्पष्ट उपदेश दिया हुआ है, जैसे कि हम पहिले अपने एक लेखमें देख चुके हैं। किन्तु यहांपर उसका कुछ भी ध्यान नहीं किया गया है और भगवानको एक साधारण पाखंडीकी भांति लड़ते-झगड़ते प्रगट किया गया है। इसलिए श्वे०के इस ग्रन्थ-भगवतीसूत्र के वर्णनके यथातथ्यको स्वीकार करना यथार्थताका गला घोंटना है। हम नहीं समझते श्वेताम्बराचार्यका इस तरह पूर्वापर विरोधित और तीर्थंकर भगवानकी अवज्ञा करनेवाले वर्णन लिखनेमें क्या भलाई इष्ट है? श्वे०के अन्य प्राचीन ग्रंथों—आचाराङ्गसूत्र, कल्पसूत्र आदिमें जहां भगवानका चरित्र दिया गया है, वहां उपरोक्त बातोंका कहीं जरा भी उल्लेख नहीं है। इससे यही समझ पड़ता है कि उक्त श्वे० सूत्रके रचयिताने अपने मनोनुकूल गोशालकी नीचता जाहिर करनेके लिए इसप्रकारकी रचना की है। वैसे दिगंबर और बौद्ध ग्रंथोंसे प्रमाणित है कि गोशाल भगवान महावीरका शिष्य नहीं था। वह पहले पार्श्वनाथजीकी शिष्य-परंपराका एक जैनमुनि था। इस विषयका विवेचनात्मक वर्णन 'वीर' वर्ष १ अंक १२-१३, और 'दिगम्बर जैन' के २४५१ के विशेषांकमें तथा हमारे "भगवान महावीर" नामक पुस्तकमें देखना चाहिए। अस्तु;

आगे ही कहा गया है कि गोशाल और महावीरजीके उक्त झगड़ेकी शुहरत नगरभरमें होगई। सत्यपुरुष भगवानके कथनको मान देने लगे। भगवानने अपने शिष्योंको गोशालके पास जाकर वाद करनेको कहा, क्योंकि वह इस समय अस्वस्थ अवस्थामें था। इसपर वे गये और उनने शास्त्रार्थ किया। गोशालको क्रोध तो बहुत आया, परन्तु वह अपने पक्षकी पुष्टि नहीं कर सका। इसपर उसके आजीविक अनुयायियोंने आकर भगवानकी शरण ली। भगवतीसूत्रके इस सूत्रसे भी हमारे उक्त कथनकी पुष्टि होती है। श्वेताम्बराचार्यको गोशालको हरतरहसे नीचा दिखाना इष्ट है और अपनी इस धुनमें वह

योग्य अयोग्य बातोंको भी भूल गए हैं। क्या यह संभव है कि भगवान महावीर जो कि तीर्थंकर थे, वह गोशालकी अस्वस्थावस्थामें उसे खिझाने और दिक करनेके लिए अपने शिष्योंको उत्साहित करते? क्या यह उनके लिए शोभनीय और उनके चारित्रके अनुकूल था? सचमुच श्वेताम्बर लेखक गोशालके ऐसे मानी दुश्मन मालूम होते हैं कि वह अपनी दुश्मनीके कथेले रंगमें सत्यको भी रंग गए हैं। अनुचित वर्णन करते भी नहीं हिचके हैं। ऐसी दशामें उनके कथनपर विश्वास करना भी कठिन हो जाता है। दि० शास्त्रोंकी समानतामें गोशालका यह वर्णन बिलकुल असत्य दीखता है। इतना कहनेका साहस हमको उसके अयथार्थ, पूर्वापरविरोधित और अनुचित वर्णनोंको देखकर होगया है। वरन् हम सहसा ऐसी कोई भी बात नहीं कह सकते थे।

अन्तः गोशालके बाबत कहा गया है कि वह श्रावस्तीमें जाकर बुरी तरहसे नाचते, गाते, सुरापान करते, हालाहला नामक कुम्हारिनसे प्रेमालाप करते आदि रीतिसे अपनी अंतिम गतिको प्राप्त हुआ। इस समय आजीविकोंके 'अट्ठचरमाइम' आदि सिद्धांत भी गोशालके ऐसे ही कार्योंसे स्वीकृत हुए थे। गोशालने अन्तमें अपने जिनत्वसे अस्वीकारता भी प्रगट कर दी थी, और कह दिया था कि भगवान महावीर ही अंतिम तीर्थंकर हैं। इस घटनाके बाद कहा गया है कि भगवान श्रावस्तीसे विहार कर गए और वे घूमते फिरते मिथिलगामके निकट अवस्थित साणकोट्ठय नामक चैत्यमें आए। इस ग्राममें रेवती नामकी एक गृहस्थिन रहती बतलाई गई है। यहींपर कहा गया है कि भगवानको एक प्रकारका सक्रामक ज्वर चढ़ आया था। इसपर लोग यही समझने लगे थे कि गोशालका कहना ठीक होगा। श्रावक भयभीत होगए। सीह नामक उत्कृष्ट श्रावकको इतना भय हुआ कि वह फूट २ कर रोने लगा। इसपर भगवानने उसको सान्त्वना दी और कहा कि अभी तो हम १६ वर्ष तक और जीवित रहेंगे। इस कथनसे यह स्पष्ट है कि इस समयके पहिले ही भगवान सर्वज्ञावस्थाको प्राप्त होगए थे। क्योंकि श्वे० और दि० दोनों ही शास्त्र भगवानकी कुल आयु ७२ वर्षकी और उनका सर्वज्ञ होना करीब ४२ वर्षकी अवस्थामें मानते हैं। डॉ० हार्णले साहिबने 'भगवतीसूत्र' के अनुसार भगवानका जीवनक्रम इस तरह बतलाया है:—

भगवानने गृहत्याग किया....३० वर्षकी अवस्थामें
,, का गोशालसे समागम....२ ,, के बाद
,, और गोशालके साथ रहना....६ वर्ष तक
गोशाल जिन होनेतक अकेला रहता है....२ ,,
,, जिनरूपमें रहता है........१६ वर्षतक
भगवान गोशालके उपरांत जीवित रहे....१६ ,,
भगवानकी पूर्ण आयु........७२ वर्ष

इसको डॉ० सा० कल्पसूत्रकी गणनासे ठीक बैठते बतलाते हैं तथापि वे यह भी कहते हैं कि छद्मस्थावस्थाके १२ वर्षोंमेंसे भगवानने एक वर्षसे कुछ अधिक समय तक वस्त्र धारण किया था, उपरान्त वे नग्न होगए थे। यह कथन 'कल्पसूत्र' (११७) के अनुसार है, जिसका विवेचन हम पहले कर चुके हैं। इसी समय

गोशालका समागम हुआ था और भगवानने उसको शिष्य बनाया था यह 'भगवतीसूत्र'का कथन है। बाकीके १० वर्षोंमें भगवानने ६ वर्ष गोशालके साथ बिताये और फिर वे अलग हो गए। अलग होनेके ४ वर्ष बादतक भगवान छद्मस्थ ही रहे। दूसरी ओर प्रकट है कि भगवानसे अलग होनेके दो वर्षके भीतर ही गोशाल ने अपनेको 'जिन' प्रकट किया था। अतएव इससे स्पष्ट है कि जिस समय भगवान सर्वज्ञ हुये थे उस समय गोशालको अपने आपको 'जिन' प्रकट किए हुए २ वर्ष होचुके थे। इस तरह इस विवरणसे स्पष्ट है कि भगवानने छद्मस्थ अवस्थामें ही गोशालको शिष्य बनाया था, जो ठीक नहीं है जैसे कि हम पहले देख चुके हैं। दूसरे यहांपर यह भी दृष्टव्य है कि कतिपय विद्वानोंका कहना है कि जब दूसरे वर्षमें महावीर गोशालसे मिले तब उनने नग्न भेष धारण किया था, इसलिए गोशालसे ही उनने यह नग्न भेष स्वीकार किया था। परन्तु उनका यह कथन 'भगवतीसूत्र'के उपरोक्त वर्णनको जरा होशियारीसे पढ़नेसे बाधित होता है क्योंकि वहां कहा गया है कि जबतक गोशाल भगवानको मिला नहीं था तबतक वह नग्न नहीं था—भगवानसे मिलनेके बाद ही उसने कपड़े लत्तोंका त्याग किया था। यथा:

"Gosala thinking that Mahavira had again gone into Rājagrha, vainly sought him in the city and its suburbs. Failing to find any trace of him, he returned to the weaver's shed, gave away his clothes vessels shoes and pictures to a brahman, shaved off his hair and beard and in despair Departed" p 1212 Vvasag: App p 2.

इस दशामें यह नग्न नहीं माना जासक्ता, जिसका प्रभाव भगवान पर पड़ा हो। अन्य श्रोतोंसे अवश्य ही यह प्रमाणित है कि आजीवक नग्न रहते थे; परन्तु 'भगवती' में गोशालको आजीवक संप्रदायसे संबंधित भगवानसे अलग होनेके उपरान्त बतलाया है अतएव गोशालका प्रभाव भगवानपर पड़ा स्वीकार नहीं किया जासक्ता। अस्तु;

ऊपर जो 'भगवतीसूत्र' में सर्वज्ञ भगवानको बुखार आया लिखा है, वह "दिगम्बर जैन मान्यताके खंडनरूपमें है।" दि० शास्त्रोंका कथन है कि तीर्थंकर भगवानके उदयमें वेदनीय कर्मका अभाव होजाता है, इसलिए वे रोग, शोक, भूख, प्यास आदिसे परे हैं।

आगाड़ी कहा गया है कि भगवान महावीरने सीहसे यह भी कहा था कि वह रेवतीके पास जाकर उससे कहे कि दो कबूतरोंकी आवश्यक्ता नहीं है जो वह भगवानके लिए पका रही है, बल्कि वह उन मुर्गोंका मांस भेजदे जिसको एक रोज पहले एक बिल्लीने मार डाला है। यह कथन जैनधर्मके अहिंसा सिद्धान्तके बिल्कुल विरुद्ध है। दि० और श्वे० दोनों संप्रदायोंके गृहस्थ इसप्रकारके हिंसा उपदेशसे आज सहमत नहीं होंगे। सचमुच अपने शैथिल्यको पुष्टि देनेके लिए एव अपने शास्त्रोंको प्राचीन सिद्ध करनेके लिए ही इस तरहका विवेचन किया मालूम होता है। हम अपने एक पहलेके लेखमें

यह कह चुके हैं कि श्वे० के आगम ग्रंथ बौद्धोंके त्रिपिटक ग्रंथोंके ढापर लिखे गए हैं और यहांपर भी वही सदृशता है। बौद्धोंके यहां मृतपशुओंका मांस खानेकी मनाई नहीं है। म० बुद्धने कईबार मांसाहार किया था। वही नकल यहां भगवतीके उक्त कथनमें दृष्टि पड़ रही है, परन्तु यह बात स्वयं बौद्धग्रन्थोंके जैनधर्मके अहिंसा सिद्धान्तके वर्णनसे भी बाधित है, जैसे कि हमने अपनी पुस्तक "भगवान महावीर और म० बुद्ध" में प्रकट किया है तथापि 'भगवती' का उक्त कथन कि मृगमांस भगवानने मंगवाया था, वह श्वे० के 'आचाराङ्गसूत्र' और सूत्रकृताङ्ग' के कथनसे भी बाधित है। आचाराङ्गसूत्रमें 'औद्देसिक' आहार ग्रहण करना मना है और यहां 'भगवती' में भगवानने स्वास अपने लिए आहार बनवाते दिखाया गया है। और 'सूत्रकृताग' में बौद्धोंके मृतमांस ग्रहण करनेका निषेध किया गया है। इस दशामें 'भगवती' का यह कथन बिल्कुल ही अटपटासा दीखता है। इसी कारण शायद श्वेताम्बर संप्रदायमें भी इस विषयपर मतभेद है। डॉ० सा० फुटनोटद्वारा बतलाते हैं कि उक्त प्रकार जो भाव है वह शब्दार्थ है, जिससे कतिपय विद्वान् सहमत हैं परन्तु कतिपय विद्वान ऐसे भी हैं जो इसका भाव और तरह बतलाते हैं। वे शब्द 'कबोय' (सं० 'कपोत'=कबूतर)का अर्थ कुष्मांडसे लेते हैं और 'मज्जार' (सं० 'मार्जार'=बिल्ली)को एक प्रकारका पौधा बतलाते हैं तथापि 'कुक्कुड़' को 'बीजपुर' का समवाची ठहराते हैं। इस तरह वे यहां मांसका निषेध करते हैं, परन्तु औद्देसिक और बासी शाक ग्रहण करनेकी ओर वे भी चुप हैं। एक तीसरा मत 'मज्जार' का अर्थ 'वायु' का लगाता है और कहता है कि 'बीजपुर' वायुके शमन करनेके लिए आवश्यक है। सारांश यह कि टीकाकार मूलको सुधारनेका प्रयत्न करते हैं। इससे भी यह स्पष्ट है कि जैन अहिंसामें किसी प्रकारका भी मांस किसी अवस्थामें भी ग्रहण करना उचित नहीं बतलाया गया है और जैनमुनि तथा भगवान महावीर उस प्राचीनकालमें भी इसका पालन इसी तरह करते थे, यह बौद्ध पुस्तकोंके उद्धरणोंसे हमारी 'भगवान महावीर और म० बुद्ध' नामक पुस्तकमें प्रमाणित किया गया है। इस दशामें भगवतीसूत्र अथवा श्वेताम्बरोंके अन्य किसी ग्रंथका ऐसा वर्णन कि प्राचीन जैन मुनि मांस खाते थे, कभी भी ठीक नहीं कहा जा सकता। दिगम्बर शास्त्रोंके यह बिल्कुल विरुद्ध है। एक तरहसे यहां खुल्लखुल्ला हिंसा और शिथिलाचारका पोषण किया गया है, जो जैन धर्मको कलंकित करनेवाला है। जिन भगवान महावीरने हिंसाकाण्डका अन्त भारतसे कर दिया, उन्हीं अहिंसाके अवतार भगवान महावीरको हिंसा कार्य करते दिखलाना उनका घोरतम अपमान करना है। यदि जैनियोंको उनमें विनय है तो उनके प्रति इस अपमानको शीघ्रतम धो डालना चाहिये।

श्वेतांबर भाइयोंको यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि वेदनीय कर्मके उदयाभावमें तीर्थंकर भगवानको रोग, शोक भूख, प्यास आदि साधारण कमजोरियां कैसे सता सक्ती है, जो

उन्हें अमुक२ प्रकारके भोजनकी आवश्यकता हो? इसलिये उनको दृढ़ताके साथ ऐसे कथनोंका सुधार कर देना उचित है। साथ ही यह भी न भुला देना चाहिये कि इन श्वेताम्बर आगम ग्रन्थोंकी पुनरावृत्ति ईसाकी सातवीं शताब्दिमें की गई बतलाई जाती है तो उस समय अपने शिथिल आचरणको पुष्टि देनेके लिए किसीने ऐसे विवरण रख दिये हों तो कोई आश्चर्य नहीं। इसपर गंभीर विचार करके हमारे श्वे० भाइयोंको भगवान महावीरके अभिराम पवित्र और दिव्य जीवनपर जो झूठा धब्बा लगता है, वह मेट देना चाहिये—अपने शास्त्रोंका सुधार कर देना लाजमी है; क्योंकि उनके यह कथन दि० सम्प्रदायके शास्त्रोंमें ही नहीं, बल्कि स्वयं उनके और बौद्ध शास्त्रोंके कथनोंसे असत्य सिद्ध होते हैं, जैसे कि हम ऊपर और अन्यत्र अपने 'भगवान महावीर और म० बुद्ध' नामक पुस्तकमें प्रमाणित कर चुके हैं। अस्तु!

उपरान्त 'भगवती'में कहा गया है कि सींहने वही किया और रेवतीके बनाया हुआ माल भगवानको लाकर दे दिया, जिसको खाकर वे एकदम स्वस्थ हो गये! कितना असत्य वर्णन है! जब एक सामान्य साधु भी अपने रोगको शमन करनेकी चिंतासे औद्देशिक वस्तु ग्रहण नहीं करता है, तो फिर भला तीर्थंकर भगवानके लिए यह कैसे संभव है? और फिर भी मांस! संभव है इसका ठीक अर्थ वही शाकादि हो जैसे कतिपय विद्वानोंका कथन है; परन्तु इस दशामें भी भगवानका यह कार्य उनके आदर्शके अनुकूल नहीं है।

आगाड़ी मक्खलिगोशालका स्वर्गलाभ और वहांसे चयकर पुण्ड्रदेशके शतद्वार नामक नगरका महापद्म नामक राजा होना, निर्ग्रन्थ साधुओंको त्रसित करने और अन्तः सुमंगल नामक जैनसाधु द्वारा उसका नष्ट होना वर्णित है। फिर उसके अनेक भवोंका उल्लेख किया गया है और कहा गया है कि वह विदेहसे 'मुक्तिलाभ करेगा।' इस तरह 'भगवतीसूत्र' में गोशालका कथानक वर्णित है, जिसकी कल्पना गोशालको नीचा दिखानेके लिए अच्छे ढंगसे की गई है। इस रूपमें उसको ऐतिहासिक सत्य स्वीकार करना मुश्किल है। यही मत आधुनिक विद्वानोंका है। (देखो डॉ० बाहमाकी 'आजीवक्स' नामक पुस्तक)। अस्तु;

ज़िन्दगी।

किसकामकी भला है, तुझको ये प्यारी ज़िन्दगी?
क्या कभी सोचा है यह, योंही गुज़ारी ज़िन्दगी?
इश्क़में फंसकर बुतोंके, दरबदर मारा फिरा।
हाथ क्या आया तेरे? आख़िर बिगाड़ी ज़िन्दगी॥
छोड़कर भगवद्भजन, दुनियांके धंधोंमें फंसा।
आजकल करते ही करते, खोई सारी ज़िन्दगी॥
क्या देशकी तरक़्क़ी, क्या क़ौमकी भलाई।
कुछ भी करी न तूने, नाहक़ गुज़ारी ज़िन्दगी॥
क्या पता दमका अरे, जाने निकल कब जायगा।
तोभी ख़बर कुछ भी नहीं, क्या है हमारी ज़िन्दगी?
सैकड़ों आए यहांपर, और यों ही चल बसे।
लेकिन न कुछ उनका निशां है कैसी ख़्वारी ज़िन्दगी॥
यों तो कुत्ता भी भरे है, पेट अपना देख लो।
पेट ही बस भरचुके तो, क्या तुम्हारी ज़िन्दगी॥
बस तुझे लाज़िम है 'प्रिय', नेकी करनेपै उतर।
ताकि हो तेरी जहांमें, सबसे प्यारी ज़िन्दगी॥

पन्नालाल जैन "प्रिय",
पांडेल हर्ड-पन्यावन।

नवयुवकोंकी जिम्मेदारी।

(लेख०- ब्र० जैनधर्मभूषण धर्मदिवाकर ब्र० शीतलप्रसादजी महाराज)

जैन समाजकी दशा अतिशय शोचनीय है, यह बात सर्व जैनियोंको मान्य है। बड़े बूढ़े भी कहते हैं कि हमारे ग्राममें इतने घर थे अब इतने रह गए। हम लोग बड़े मजबूत थे। हमारे लड़कोंमें दम नहीं—हम लोक बड़े निराकुल थे, अब तो बड़ी आकुलता है।

किसी शोचनीय दशाका सुधार करनेके लिये साहस और पुरुषार्थकी जरूरत है। यदि किसी संगमर्मरके घरमें कूड़ा कचरा बहुत भरा हुआ हो जिससे वह घर महान् गंदा दिखता है तो उस घरको शुद्ध करनेके लिये यदि साहस और पुरुषार्थ किया जायगा तो वह सारा कूड़ा घरसे बाहर फेंक दिया जायगा और वह घर साफ होजायगा। इसी तरह जैन समाजमें जो अविद्या, अनैक्य, घोर जातिमद, घोर कुलमद, घोर विद्यामद, व्यर्थ व्यय, मिथ्यात्व, कुरीति आदि कूड़ा भरा हुआ है इसके निकालनेके लिये भी घोर साहस और पुरुषार्थकी जरूरत है।

यह साहस और पुरुषार्थ शिथिल खूनवालोंमें नहीं होसक्ता है। ये उनहीमें पाया जासक्ता है जिनका बढ़ता हुआ, खौलता हुआ, चञ्चल तरंगें लेता हुआ जोशवाला रुधिर है।

अर्थात् नवयुवक ही इस साहस और पुरुषार्थके अधिकारी हैं, उनहीके आश्रय है व उनहीकी जिम्मेदारी है कि वे कमर कसें और शिथिल शरीरवालोंकी आलस्ययुक्त बातोंको न सुने कि कूड़ा पड़ा है तो क्या होता है, यह घर तो ऐसा ही चला आया है। हम तो ऐसे ही घरमें रहते हुए सुखी हैं किन्तु उनकी ढीली पोची प्रमादयुक्त बातोंको अनसुनी कर दें और वे यदि तिरस्कार करें, गालियां दें, दंड दें व अपने पास बैठनेसे मना करें तौभी उनकी बातोंमें न आवें किन्तु जिस तरह हो कूड़ा समाजसे बाहर कर दें। जैसे स्वच्छ संगमर्मरका घर देखकर कौन ऐसा है जिसको आनन्द व सन्तोष न होगा? उसी तरह निर्मल समाजको देखकर कौन ऐसा है जो प्रसन्न न होगा?

चीन देशमें जो क्रांति होरही है और स्वातंत्र्य अपना उदय जमा रहा है, उसके कर्ता धर्ता बहुतेक विद्यार्थी नवयुवक ही हैं। अतएव जैन समाजके नवयुवकोंको निर्भीक होकर उठना चाहिये और कमर कसकर इस सब कूड़ेको निकाल बाहर करना चाहिये। सबसे पहिले अविद्याको मिटाना चाहिये क्योंकि सर्व बुराइयोंकी जड़ अविद्या है। ज्ञान ही हमें सत् असत् विचार करनेकी शक्ति प्रदान करता है। ज्ञानहीसे मनमें दृढ़ता आती है जिससे हम किसी बुराईको छोड़ सकें व किसी गुणको ग्रहण

कर सकें। बिना उच्च विद्याके उच्च विचार नहीं होसकते। धर्मकी रक्षा धार्मिक ज्ञानसे तथा धनका आगम लौकिक ज्ञानसे होता है इसलिये उभय धार्मिक और लौकिक ज्ञानके लिये एक किसी मध्यस्थानमें एक सेन्ट्रल जैन कालिज या महाविद्यालय स्थापित कराना चाहिये जिसमें उभय प्रकारकी विद्या सेवनेके उच्च साधन हों। जैन कौमके प्रवीण विद्वानोंको उचित है कि इसकी सेवामें अपना जीवन अर्पण कर दें। या तो बिना कुछ लिये ही सेवा करें या अपना नित्य खर्च मात्र लेकर काम करें। इस महाविद्यालयमें ऐसा नियम किया जावे कि किसी भी छात्रसे फीस नहीं ली जायगी इस कारण जैन छात्र व अजैन छात्र अधिक संख्यामें आवेंगे। रहनेको आश्रम हो चाहे झोंपड़ियें ही क्यों न हों जिसमें सर्व भारतके छात्र आकर सुखसे रह सकें व विद्या लाभ कर सकें। जैनधर्म सीखना सबके लिये आवश्यक रक्खा जावे। स्वतंत्र विद्यालय हो, सर्कारसे सम्बंध न रक्खा जावे। भिन्न२ विभागोंके द्वारा शिक्षा अनेक प्रकारकी ऐसी आवश्यक दी जावे जिससे विद्यार्थी स्वतंत्रतासे अपनी आजीविका कर सकें। इसमें दो विभाग हों—एकमें ऐसे छात्र तैयार हों जिनको धार्मिक मुख्य व लौकिक गौण शिक्षा दी जावे, दूसरे लौकिक मुख्य व धार्मिक गौण शिक्षा दी जावे। जो जैन छात्र हों उनको धर्माचरण भी कराया जावे। यदि हमारी समाजके विद्वान भाई तैयार होजावें तो यह कार्य कुछ भी कठिन नहीं है। इस कार्यमें सर्व जनोंको मिल जाना चाहिये। मिल करके ही इस महान कार्यको सम्पादन करना चाहिये। दिगम्बर व श्वेताम्बर अपनी२ आम्नायके अनुसार धर्म साधें ऐसी स्वतंत्रता कर देनी चाहिये। इस कार्यके साधनमें लाखोंके धनकी भी जरूरत है जो भिन्न२ सम्प्रदाय कदाचित् न पूरा कर सकें किंतु यदि सब मिलके करेंगे तो अवश्य पूर्णता हो जायगी। दि० व श्वे० कुछ पूर्ण विद्वान नवयुवकोंको इस कामका बीड़ा उठाकर ऐसे कार्यकी योजना (scheme) तय्यार करके भारतमें एक दौरा लगा देना चाहिये। पर्याप्त धन संग्रह होना दुर्लभ नहीं है।

२—समाजमें ऐसा उद्यम करना चाहिये कि हरएक लड़का व लड़की विद्याभ्यास करे, उनका शरीर दृढ़ बनाया जावे। उनका मन साहसी व वीर बनाया जावे, उनकी आत्मामें आत्मज्ञान भरा जावे, उनको आत्म—रक्षाका उपाय बताया जावे।

३—योग्य सम्बंध मिलानेके लिये विवाहका क्षेत्र विशाल करना चाहिये। जितने जैन हैं वे परस्पर सम्बंध कर सकें, ऐसा मार्ग खोल देना चाहिये। लड़की लड़केको भी परस्पर अपना भेद समझा देना चाहिये जिससे जीवनमें अनमेल न हो। ११ वर्ष व २० वर्षके पहिले क्रमसे लड़की व लड़केकी शादी नहीं करनी चाहिये।

४—शादीमें विवाहकी एक रस्म करनी चाहिये, और उसमें यह नियम होजाना चाहिये कि एक मासकी आमदनीसे अधिक कोई खर्च न करे। यदि कोई २५) माह कमाता है वह इतने हीमें सर्व काम पूरा करे। एक दफे अपने सम्बंधियोंको जिमावे। यदि २५) में न

होसके तो केवल उनको जलपान ही करावे। अधिक धनशाली व्यक्ति मामूली विवाहकी रस्ममें कम खर्च करे व शेष धनको लड़की व लड़केको दें तथा विवाहकी स्मृतिमें दान करें।

५—यदि कोई इस उम्रसे पहले विवाह करे उसमें तथा यदि कोई अनमेल विवाह और वृद्ध विवाह करे व पैसाका ठहराव करके विवाह करे या मरणका जीमन करे तो ऐसे कार्योंमें कोई नवयुवक बिल्कुल शामिल न होवे। यदि घरमें भी ऐसा काम हुआ हो तो उस दिन कहीं बाहर चला जावे। अन्याय व अयोग्य वर्तावसे असहयोग किये विना समाजकी आंखें नहीं खुल सक्ती हैं।

६—सर्व नवयुवक यह नियम करें कि हम स्वदेशी वस्तु ही यथासम्भव काममें लेंगे। यथा संभवका अर्थ यह है कि जो वस्तु आवश्यक है पर वह देशमें नहीं बन रही है उसको छोड़कर सर्व स्वदेशी वस्तु ही काममें लेवें। कपड़े तो वे ही पहनें जो हाथके बुने हुए हों—मिलोंकी परतंत्रताका जिनमें सम्बन्ध न हो। ऐसे ही कपड़े स्त्रियोंको पहनावें। रेशमी, विदेशी व मिलके कपड़ोंका त्याग करें।

७—परदेका रिवाज बिलकुल हटा दें। स्त्रियोंका मन स्वच्छ करावें। उनको साहस देवें कि वे अपना काम स्वयं कर सकें व अपनी रक्षा स्वयं कर सकें। दो चार स्त्रियें मिलकर स्वच्छ हवामें घूमने जाया करें। घरका कैदखाना उनके शरीरको पनपने नहीं देता है। उनमें परिश्रमकी आदत डलवावें। बाजारकी पनचक्कियोंके पिसे आटेका त्याग करें। मांसाहारी, मद्यपायी धीवरोंके हाथके भरे पानीका त्याग करें। स्त्रियोंके ही आधीन यह काम करें कि वे स्वयं पानी भरकर लावें, आहार तय्यार करें व रसोई बनावें, इससे शरीर परिश्रमी होगा, पराबलम्ब मिटेगा व शुद्ध आहारपान प्राप्त होगा।

८—बासी भोजन—पानकी प्रथाको हटावें। बालकोंको भी ऐसा भोजन दें। ताजा मर्यादाका भोजन ही लाभकारी होता है।

९—घरमें गाय भैंस पालें, उनहींसे जो दूध पैदा हो उसीको ही पियें व उसीसे ही घृत आदि निकालकर खायें। बाजारका अशुद्ध घी, दूध त्याग करें, ये शरीरको लाभकारी नहीं होते क्योंकि मिश्रित व अशुद्ध होते हैं। नवयुवकोंको कमर कसना चाहिये और ये सारे सुधार जो आवश्यक हैं उनको बलपूर्वक जारी कर देना चाहिये। जैसे तुर्कमें मुस्तफा कमालपाशाने अपने समाजकी काया पलट कर डाली, परदा हटा दिया, शिक्षाका प्रचार किया आदि आदि। उसने आज्ञासे किया। नवयुवक नमूना बनकर करा सक्ते हैं। हरएक नवयुवक अपने कुटुम्बमें सुधार करे, देखादेखी रीतियें प्रचलित होजायंगी।

नवयुवकोंको यह ध्यान रखना होगा कि वे निन्दासे न डरें। बिलकुल निडर होकर अपना कर्तव्य पालन करें। जो अपनी स्त्री किसी बातको न माने उसके साथ सत्याग्रह करके उसे ठीक करदें।

हम पहले ही कह चुके हैं यदि साहस और पुरुषार्थके साथ नवयुवक तय्यार होजायंगे तो जैन जातिका सुधार १० वर्षके भीतर बिलकुल

कुछसे कुछ होजायगा। इसमें सन्देह नहीं कि उनको बहुत उपसर्ग सहने पड़ेंगे। पंचायतें बहिष्कार करेंगी, इस बातको भी सहकर सर्व देशके नवयुवकोंको अपना अलग ही संगठन कर लेना चाहिये। बहिष्कार पाए हुए ही जब बहुत संख्यामें होजांयगे और बलपूर्वक अपना काम करते ही चले जांयगे तब उनके वृद्ध पिता माताको भी उनहीकी बातको कबूल करना पड़ेगा और अविचारसे भरा हुआ पंचायती बलका सत्यानाश होगा।

क्या यह अन्याय नहीं है कि छिंदवाड़ेके नाथूलालको जिसने जैनशास्त्रोंकी साक्षीसे विरुद्ध कोई अयोग्य काम नहीं किया है मंदिरमें पूजा करनेसे रोका जावे, जातिसे अलग किया जावे? नवयुवकोंको इसका साथ देना चाहिये व अलग चैत्यालय स्थापित कर इस वीर उपजाति-विवाह करनेवाले नाथूलालके साथ होकर पूजा शुरू कर देनी चाहिये। सब नवयुवकोंको पुरानी पंचायतसे स्तीफा देदेना चाहिये। जब-तक ऐसी दृढ़ता व वीरता नवयुवक न वर्तेंगे कभी भी समाजका सुधार न होगा। पुरानी लकीर-पर चलनेवालोंका नाकमें दम कर देना चाहिये तब ही वे ठिकाने आयंगे और समाजमें सुधारके सुहावने फूल खिल सकेंगे।

प्यारे नवयुवकों! समाजकी नैय्या तुम्हारे हाथमें हैं। तुम चाहो तो उन्नतिके तटपर पहुंच सक्ता है अन्यथा अवनतिके गर्तमें डूब तो रही ही है—१००वर्षमें डूब जायगी। बौद्धोंके समान जैनियोंके मंदिर व मूर्तियां तो मिलेंगीं परन्तु जैनी कोई नहीं मिलेगा। यदि इस जैन समाजको मरणसे बचा-नेकी कुछ भी दया है तो कमर कसो—और अपना संगठन बना डालो। बातें न बनाकर काम शुरू करदो, रहन सहन सादा रखके अपना मन मात्र समाजको शिक्षित बनानेमें ही व्यय करडालो—समाजको बलपूर्वक घसीटकर उन्नतिके मार्गमें लेजाओ। जो रोके उसकी बात मत सुनो। कष्ट दें कष्ट सहो पर अपने सच्चे संकल्पको वीर आत्माओंकी तरह पूरा करो। यदि तुम श्री महावीरस्वामीके सच्चे भक्त हो तो वीर बनो और जैसे श्री महावीरस्वामीने उपसर्ग सह किसी भी तरह कर्मशत्रुओंका संहार करके स्वा-त्मोन्नति कर डाली वैसे तुम भी कष्ट सहकर समाजोन्नतिके विरोधियोंका दमन करके समाजो-न्नति करडालो, प्रमादको त्यागो, बाट मत देखो, संकोच मत रक्खो, सत्य मार्गपर आरूढ़ होजाओ और वीर भगवानका नाम लेते हुए बढ़े चले जाओ।

कवित्त घनाक्षरी।

क्योंरे मसताना दिल, देखि क्या लुभाना,
ये जाना ना जमाना, पलदमका ना ठिकाना है॥
खाना नहि देत खाना, ओढ़त है तू बजाना,
सेर यहीं छोड़ जाना, सङ्ग खाना नहि जाना है॥
तेरो दिल जाना, और भाई बन्धु नाना,
सब चाहत कमाना, प्यार झूठा दिखलाना है॥
यातें समझाना ठोक जाना, चेत जाना 'प्रिय',
फेरिहु न माना तो, काम ना बनाना है॥

पन्नालाल जैन "प्रिय"।

स्वास्थ्य।

(ले०—आयुर्वेदाचार्य पं० सत्यंधरजी जैन वैद्य, छपारा)

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनं"

वास्तवमें दुनियामें सब प्राणियोंके शरीरसे उत्कृष्ट मनुष्यका शरीर ही है। अधिकतर मनुष्य शरीरहीके साधन संसारमें बहुत पदार्थ हैं क्योंकि समस्तप्राणियोंकी अपेक्षा मनुष्य ही सबसे अधिक ज्ञानवान् है क्योंकि मनुष्य शरीरसे ही निराकुलतामय मोक्ष—सुख प्राप्त होता है इसलिये समस्त प्राणियोंको चाहिये—कि इस मनुष्य शरीरकी सदैव रक्षा करते हुए निरोग रहें तथा मोक्षाभिलाषी होकर ज्ञानपूर्वक संयम पालते हुए इस मनुष्य जीवनको सफल बनावें, क्योंकि मोक्ष प्राप्ति करना ही मनुष्य जीवनकी सार्थकता है। यदि हमने इस उत्तम मनुष्य जन्मको पाकर भी मोक्ष प्राप्ति तथा उसके उपायोंको नहीं खोजा तो यह मनुष्य जीवन पाना वृथा ही है।

शरीरको स्वस्थ रखनेका सबसे पहिला उपाय ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्मणि=आत्मनि चर्यते इति—ब्रह्मचर्यम्—अर्थात अपने उपयोगको, मनकी प्रवृत्तिको, आत्मध्यानको विषयवासनाओंसे तथा संसारके इतर पदार्थोंसे हटाकर केवल अपने आत्मामें ही रमण कराना सच्चा ब्रह्मचर्य है। इसका खुलासा इसप्रकार है कि अपने और परायेका स्वरूप जानकर अपनी वस्तुको ही अपनी वस्तु मानकर उसीमें रमण करना और दूसरी वस्तुको दुखदायी जानकर उससे सदैव पृथक् रहना—बस इसीका नाम ब्रह्मचर्य है।

वास्तवमें दुनियामें प्राणी तब ही दुःखी होता है जबकि दूसरेकी वस्तुमें अपनापना करता है। लोकव्यवहारमें ब्रह्मचर्य दो प्रकारसे पालन होता है—पहिला पूर्ण ब्रह्मचर्य, द्वितीय अर्ध-ब्रह्मचर्य। जो मनुष्य अपनी मनोवृत्तिको वशमें करके संसारभरकी स्त्रीजाति मात्रको पुत्री, बहिन माताके समान समझता है तथा स्त्री संबन्धी कथा, राग बढानेवाली कथाएं कहना, कामोद्दीपक पदार्थोंका सेवन करना, शरीरका श्रृंगार करना इत्यादि बातोंका सम्पूर्ण त्यागकर अपने आत्मामें ही रमण करता है वह पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत पालनेवाला है. तथा दूसरा जो अपनी स्त्रीमें ही सन्तोष धारण करता है और यथाशक्ति बाह्य साधनोंको भी पालन करता है वह दूसरा ब्र०व्रत पालनेवाला कहलाता है।

वास्तवमें संसारमें ब्रह्मचर्य ही एक ऐसी वस्तु है जो इस लोक तथा परलोक सम्बन्धी दोनों सुखोंको देनेवाला है। अद्यावधि यावत् प्राणियोंने मोक्ष सुख प्राप्त किया है तथा संसारमें प्रतिष्ठा प्राप्त की है वह सब ब्रह्मचर्यके माहात्म्यसे ही। आज स्वामी अकलंक निकलंक-देवजीका नाम संसारमें समस्त प्राणियोंके हृदयमें अंकित है। सेठ सुदर्शनका नाम आज संसारमें जाग्रत है। श्रीसीताजी, राजुलजीका इत्यादि सतियोंका नाम संसारमें क्यों २ प्रख्यात है? बस ब्रह्मचर्यहीके माहात्म्यसे। हम प्रत्यक्षमें अनुभव करते हैं कि जितने भी इन्द्रियोंके विषय हैं वे सब आपातरम्य हैं—अर्थात सेवन करनेके आरंभमें ही कुछ भ्रमात्मक अच्छे मालूम होते हैं। जैसे शहद लपेटी तलवारकी धार परन्तु

अंतमें जैसे तलवार जिह्वाका छेदन करती है उसी प्रकारसे ये विषय भी हमारे शरीरको नष्ट करते हैं इसलिये इन विषयोंसे बहुत दूर रहना चाहिये। जबतक हम इनको बुरी वस्तु समझकर इनका परित्याग न करेंगे तबीतक हमको असली आत्मीक सच्चे सुखकी प्राप्ति नहीं हो सक्ती इसवास्ते मानवसमाजका कर्तव्य है कि इन इंद्रियजनित विषयोंको दुखदायी जानकर दूरसे ही इनका परिहार कर देवें और अपनी मनोवृत्तिको वशमें करके सच्चा जो निराकुलता-मय मोक्ष सुख है उसको प्राप्त करें।

स्वास्थ्य ठीक रखनेका दूसरा साधन शुद्धता तथा स्वच्छता अर्थात् सफाई है। वास्तवमें हमारा देश धार्मिक स्थान है और इसी तरह धार्मिक शुद्धता तो बहुत है किन्तु सफाईका तो बिलकुल ध्यान नहीं है, बल्कि विना सफाईके हमारी वह धार्मिक शुद्धता भी व्यर्थ होकर अनेक तरहके विकार पैदा करती है और वास्तवमें विचार किया जाय तो सफाई और शुद्धताका अविनाभावी सम्बन्ध है—अर्थात् विना सफाईके शुद्धता हो ही नहीं सक्ती और जहांपर स्वच्छता विना शुद्धता है वह वास्तवमें शुद्धता नहीं है। वह केवल दिखावा मात्र है। स्वास्थ्य ठीक रखनेके लिये शुद्धता और सफाई भी बहुत प्रधान कारण है। विना सफाईके स्वास्थ्य ठीक रहता ही नहीं है, जैसे—१ शरीर शुद्धि, २ भोजन शुद्धि, ३ वस्त्र शुद्धि इत्यादि अनेक प्रकार शुद्धि हैं किन्तु मुख्यतया ऊपर लिखी तीन प्रकारकी ही शुद्धि पालन करनेसे तथा व्यायाम करनेसे ही हमारा स्वास्थ्य ठीक रह सक्ता है।

१—शरीर शुद्धिको ही लीजिये। मल त्याग करके मल निःसरण स्थानको अच्छी तरहसे साफ करना चाहिये। चाहे वह बड़ा पुरुष हो चाहे स्त्री हो चाहे वह बच्चा हो, और बाद हाथोंको स्वच्छ मट्टीसे, स्वच्छ जलसे या उष्ण जलसे साफ करना चाहिये। बहुतसी स्त्रीसमाज प्रायः बच्चोंके मलस्थानको अच्छीतरह जलसे साफ न करके केवल कपड़ेसे ही साफ कर देती हैं जिससे पूर्ण सफाई नहीं होसकी। दूसरे मलक्षेपण स्थान हमारे रहनेके स्थानसे बहुत दूर होना चाहिये जहांसे कि अपने रहनेके स्थानमें वहांसे गंध भी नहीं आ सके क्योंकि वह मलकी गंध हमारे घरोंकी शुद्ध वायुको भी मलीन कर देती है।

हमलोग मूत्र त्याग करके तो प्रायः शुद्धि भी नहीं करते। मूत्र त्याग करनेपर मूत्रका कुछ अंश मूत्रके स्थानपर अवश्य ही लगा रहता है। जबतक वह स्थान जलसे साफ न किया जाय तबतक सफाई व शुद्धि नहीं होसकी इसलिये जिस तरह हम लोग मल द्वारको जलसे स्वच्छ करके बाद फिर अपने हाथोंको शुद्ध करते हैं उसी तरह मूत्र त्याग करके भी करना चाहिये तभी हमारी शुद्धता ठीक है। मुखकी स्वच्छतामें प्रति मानव प्राणीको प्रतिदिन बबूलकी या नीमकी दतोनसे अपने दांतोंको साफ करके जिह्वाको भी साफ करना चाहिये। तथा समस्त मुखको साफ करना चाहिये। स्नानकी रीति भी हमारे देशमें नाम मात्रको रह गई है।

स्नानका मतलब यह है कि संपूर्ण शरीरका अच्छी तरह प्रक्षालन करना जिससे शरीरपर जो मैल हो वह सब साफ होजावे। वह ऋतुके अनुसार उष्णकालमें शीतल जलसे और शीतकालमें उष्ण जलसे स्नान करे–इत्यादि। प्रकारसे तो प्रति मानव प्राणीको नित्यप्रति शरीरशुद्धि करना चाहिये तभी उसका मन भी पवित्र रह सक्ता है।

२–दूसरी भोजन शुद्धि–भी परम आवश्यक है क्योंकि इसका प्रभाव मनपर भी होता है। मनका परिणमन भोजनके अनुसार होता है। अतएव मनुष्यको चाहिये कि भोजन बहुत शुद्ध और स्वच्छ ही काममें लावे। जैसे बीधा हुआ अन्न नहीं काममें लाना चाहिये। अनबीधे अन्नका आटा भी वर्षाकालमें तीन दिन तकका, उष्णकालमें ५ दिनका, शीतकालमें ७ दिनका ही काममें लाना चाहिये। इस अवधिसे अधिक अवधि होजानेपर उस आटेमें असंख्यात छोटे २ कीड़े पैदा होजाते हैं। ऐसी अवधिपूर्वक आटेसे बनी पानी मिश्रित जो पुरी कचौड़ी इत्यादि जो भी कुछ भी पक्वान्न हैं वह भी १२ घंटे तक ही शुद्ध है और स्वास्थ्यको हितकारी है। १२ घंटेके बाद उसमें भी नानातरहके विकार पैदा होजाते हैं और उससे स्वास्थ्यमें हानि होती है। भोजन जलमें सम्मिलित है इसलिये जलशुद्धि भी यहांपर बता देना उचित समझकर लिख देता हूं कि जल समस्त कार्यमें शुद्ध स्वच्छ वस्त्रसे (जो वस्त्र किसी कार्यमें नहीं लिया जाय) छानकर ही काममें बर्तना चाहिये ऐसा जल ४८ मिनट तक ही शुद्ध रहता है बाद फिर छानकर काममें लाना चाहिये। जिस जलका स्वाद लवंग कालीमिर्च वगैरह औषधिसे यदि परिवर्तन कर दिया हो ऐसे जलकी शुद्धता ६ घंटे तक है तथा जिस जलको थोड़ा औंट लिया जाय अर्थात् उबाल लिया जाय उसकी अवधि १२ घंटेकी है। तथा जो जल अच्छी तरह खूब उबाल लिया जाय उसकी अवधि २४ घंटेकी है। अतएव इस विधिसे ही जल व्यवहारमें लाना ठीक है।

३–वस्त्र–शुद्धि–पर तो हमारे देशमें बहुत कम ध्यान देते हैं। कपड़ा चाहे वह कम कीमती हो चाहे खादी हो किन्तु यदि वह स्वच्छ और साफ है तो वह अति श्रेष्ठ है। मैले वस्त्र पहिननेसे मनुष्यकी बुद्धिपर बुरा असर पड़ता है उसकी मनोवृत्ति स्वच्छ नहीं रहती। अतएव जहांतक होसके शुद्ध स्वदेशी वस्त्र ही धारण करना चाहिये–जिनमें कि पशुओंकी चर्बीका समावेश न हो। ऐसे वस्त्रोंके पहिरनेसे हमारा कल्याण तथा हमारे देशका कल्याण है।

४–व्यायाम–भी एक स्वास्थ्यके लिये परम आवश्यकीय वस्तु है। व्यायाम करनेसे शरीर सुडोल बनता है, पाचनशक्ति अच्छी रहती है, मन प्रसन्न रहता है, आलस नहीं रहता इत्यादि व्यायाम करनेसे अनेक लाभ हैं अतएव सब मानवोंका प्रधान कर्तव्य है कि वह नित्यप्रति कसरत करे। इस प्रकार मैंने जिन२ बातोंका दिग्दर्शन कराया है यदि मानव अपना स्वास्थ्य ठीक रखना चाहता है तो अवश्य उन बातोंपर अमल करें। आगे समय मिलनेपर फिर कभी इस लेखको विस्तृत करूंगा। (सम्पूर्ण)

अधिष्ठाता कैसे हो ?

(ले०-म० ओ० कंकुबाई-सागवाड़ा)

हितचिन्तक मुख्य अधिकारी हो उनको अधिष्ठाता कहते हैं। सम्पूर्ण देशोंका स्वामित्व जिसको हो वह देशाधिकारी महाराजा कहलाता है, जो प्रान्तका अधिकारी हो उसको राजा कहते हैं, समाजका अधिष्ठाता हो उसको गृहस्थाचार्य अथवा पट्टाचार्य या भट्टारक कहते हैं और जातिके अधिकारियोंको सेठ व संस्थाके अधिकारीको संचालक तथा मुनिसंघके धर्माधिकारीको आचार्य नामसे संबोधते हैं लेकिन ये सब एकार्थवाची शब्द हैं अर्थात् अधिष्ठाता पदको ही सूचित करनेवाले हैं।

यह पद बड़ा जिम्मेदारीका है। उपर्युक्त जिस२ पदके जो२ पदाधिकारी होते हैं उनमें नीचे लिखे हुए मुख्य आठ गुणोंकी बड़ी भारी आवश्यक्ता है—१ आधारवान, २ आचारवान, ३ व्यवहारवान, ४ प्रकर्ता, ५ अपायोपायदर्शी, ६ अपरस्रावी, ७ अवपीड़क तथा ८ निर्यापक। इनका विशेष खुलासा इस प्रकार है:-

१—आधारवान—प्रत्येक अधिष्ठाता अपने२ योग्य कार्योंको तथा शास्त्रोंके व परंपराके कानूनके आधारको जाननेवाला हो क्योंकि आधारके साथ काम न करनेवाला हो तो मनमानी ऊटपटांग चलाने लग जांय।

२—आचारवान—अधिकारी स्वयं सच्चारित्री, सन्मार्गी और धर्मशील होना चाहिये। विचारके साथ आचार पालनेवाला होना चाहिये और ऐसा होनेपर ही दूसरोंको उन्मार्गसे रोक सकता है क्योंकि जो कोई अपनेको बनाना जानता हो वही दूसरोंको बना सकता है।

३—व्यवहारवान—वर्तमान द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावको जाननेवाला हो अर्थात् देशपद्धति, ऋतुमान तथा व्यक्तिकी परिस्थिती व उनकी स्थिति इत्यादि बातोंका जानकार न हो तो स्वयं भ्रष्ट होकर आश्रितोंको भी भ्रष्ट कर देता है।

४—प्रकर्ता—जो अपने आश्रितोंका हितचिंतक होकर अहर्निश उनका हित करनेमें दत्तचित्त हो, उनको दु:खोंके समय सहायता पहुंचानेवाला हो कि जिसको देखते ही दूसरे भी सहायता करने लग जांय। आपत्तियोंपर घबरानेवाला न हो, कष्ट सहनेमें धीरवीर हो, दूसरोंका कष्ट दूर करनेमें समर्थ हो। उसका असर इतर सज्जनोंके मनपर अङ्कुर होता है और वह अनुकरणीय होता है।

५—अपायोपायदर्शी—आश्रितोंको उनसे बने हुए बुरे कामोंसे होता हुआ अपाय (नुकसान) बताकर उससे सुधरनेका उपाय बतानेवाला हो। मार्गदर्शीके विना सामान्य जनताको सन्मार्ग सूझता ही नहीं। अहितको समझाना तथा हितका उपाय बताना यह भी एक बड़ा भारी गुण है।

६—अपरस्रावी—आश्रितोंके दोषोंको सुनकर अपने मनमें रख लेना, मुंहसे बाहर नहीं निकालना, उन दोषोंका गुप्त रीतिसे प्रायश्चित्त देकर शुद्ध निर्दोषी करना, फिर कभी भी उस दोषोंका स्राव न करना क्योंकि विश्वास दिलाकर पूछे हुए गुप्त दोषोंको प्रगट करनेसे विश्वासघातका दोष लगता है और फिर आगे ऐसे दोषोंको कह नहीं सकता और दोष नहीं कहनेसे निर्दोष होनेका उपाय भी नहीं बन सकता इसलिये प्रेमके साथ विश्वास दिलाकर पूछे हुए

दोषोंको सुनकर प्रसिद्ध नहीं करना यह अधिकारियोंका आवश्यक गुण समझा जाता है।

७—अवपीड़क—आश्रितोंके दोष सरल उपायसे नहीं निकल सकें तो जबरीसे निकालनेमें प्रभावशाली हो; रौबदार, तेजस्वी होके धमकी देकर हितकी इच्छासे दोषोंको निकालनेमें समर्थ हो। जैसे कि "सिंहको देखते ही स्याल अपना खाया हुवा मांस वमन कर देता है" वैसे ही प्रभावशाली अधिष्ठाताको देखते ही अपराधी अपने किये हुये अपराधको उगल देवें।

निर्यापक—यह आठवां निर्यापक नामा गुण अत्यंत आवश्यक है, जो अपने आश्रितोंको ऐहिक तथा पारमार्थिक सुखके साधनमें निर्विघ्नता प्राप्त करनेवाला हो अर्थात् धर्म, अर्थ और काम ये तीनों पुरुषार्थोंको साधकर इस दुःखमय संसार रूपी समुद्रसे पार करनेवाले मोक्ष पुरुषार्थका साधन करनेमें खेवटियाके समान निर्वाहक हो, इस गुणके प्रसादसे जनताको लौकिक और पारमार्थिक याने धार्मिक कार्योंमें सफलता होकर परम सुख होता है।

इन उपर्युक्त आठ गुणोंके न होनेसे यह छः सात मुख्याधिकारियोंके अपने २ अधिकारमें रहनेवाले जीवोंको इह लोक संबंधी तथा परलोक संबंधी सुखका साधन नहीं बनसक्ता है। एक कहावत भी है "जिसका अगुआ अंधा उसका कटक कुएमें" इसलिये जिसको जिस२ कामका अधिष्ठाता बनाया जाय उसके कुलपरंपराको और आचार विचारको तथा उसके शारीरिक, मानसिक तथा वचनकी सुदृढ़ताको देखके और आगे पीछेकी परिस्थितिकी जांच करे।

जोकि लोकप्रिय, प्रभावशाली, लोकमान्य, इत्यादि गुणोंकर सहित होनेपर अनुभवी विद्वानोंके द्वारा ही अधिकार दिया गया हो वही अधिकारी अपना राज्य तथा देश, प्राम, समाज, संस्था और मुनि संघ इत्यादिकी रक्षा करके अपने इष्टसाध्यकी सिद्धि करता हुवा आगेके लिये अनुकरणीय होता है।

उपर्युक्त गुणोंके बिना जांच किये, विधिसे—जैसे तैसे किसीको कोई भी अधिकारी बना देवे, ग्राम या नगरका मुखिया बना देवे और संस्थाओंके संचालक कर देवे तथा आचार्य सरीखे ऊंचे पदको कि जिसको बड़े विद्वान् अनुभवी, संघाधिपति आचार्य ही अपने संघमें परिचित शिष्यको प्रभावशाली देखके उसकी परीक्षा करके और संघकी संमतिसे सबको मान्य ऐसे व्यक्तिको आचार्यपद देकर आत्मध्यानमें लग जाते हैं अथवा संल्लेखना धारण करनेके लिये अन्य संघमें जाते हैं और उनकी आज्ञानुसार ही नूतन आचार्य अपने संघका निर्यापक गुणके द्वारा निर्वाह कर सकता है, नहीं तो वे पदाधिकारी अपनी पदवीको पाकरके जनताको नुकसान पहुंचाते हैं। आजकल पदवियों और अधिकार देनेवाले तथा लेनेवाले बहुत बढ़ गये हैं परंतु शास्त्राधारसे पुरानी पद्धतिका विचार करनेवाले बहुत कम नजर आते हैं। अपनी नामवारीके लिये विशेष विचार न करते हुए जैसे तैसे अधिकारी बना देनेसे समाजका नुकसान हुआ है, हो रहा है, और आगामी अधिकतर होनेवाला है इसलिये अब "गई सो गई, अब राख रहीको" सोच विचार करके अधिकारी बनानेकी कोशिश करें।



जैन मित्र मंडल-देहलीके महावीर जयंती उत्सव (वीर सं० २४५३) के समयका ग्रूप।

कुर्सीपर बैठे हुए-१-ब्र० भगवानसागरजी, २-मनोहरलालजी, ३-गेंदनलालजी, ४-प० रामचंद्रजी, ५-प० जुगलकिशोरजी मुख्त्यार, ६-ब्र० शीतलप्रसादजी, ७-लाला ... जज, सभापति (ता० १३-४-२७, ८-रा० बा० मोतीसागरजी, सभापति (ता० १५-४-२७), ९-महावीरप्रसाद एडवोकेट, सभापति मंडल, १० नहारसिंह ऑडिटर, ११-ज्योतिषरत्न प० जियालालजी, १२-भोलानाथ मुख्त्यार सभापति, १३-महावीरप्रसाद उपसभापति, १४-प० अजवासीलालजी, १६-रा० ब्र० पारसदासजी।

कुर्सीके पीछे खडे हुओंमें ११वें-उमरावसिंहजी ऑ० सेक्रेटरी, १३वें-हीरालाल पन्नालाल, जोइन्ट सेक्रेटरी, मंडल।

जैनधर्म और ज्योतिष विद्या।

(लेखक:—आयुर्वेदमार्तंड ज्योतिषरत्न पं० जीयालाल चौधरी राजवैद्य रईस फर्रुखनगर)

आज हम अपने प्यारे पाठकवृन्दोंको एक ऐसा नवीन समाचार सुनाते हैं, जो आजतक उनके देखने और सुननेमें भी नहीं आया होगा और इसको देखकर सर्वसाधारण क्या बडे बड़े विद्वान् भी आश्चर्य्य करेंगे, परन्तु जो कुछ लिखा जाता है, वह पुरातन और सनातन ही है, नवीन या मनोक्त इसमें एक अक्षर तक भी नहीं है।

ज्योतिषविद्या जो संसारमें प्रचलित है, और भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीन कालका पता देती है, यह तीर्थंकर भगवानकी ग्यारह अङ्ग चौदह पूर्वके ग्यारहवें कल्याणवादपूर्व (जिसमें छब्बीस करोड़ पद हैं) की कथित विद्या है, और यह आठ ग्रहोंके आधार पर ही निर्भर है।

और निमित्तके स्वप्न-(१) अंतरिक्ष, (२) पृथ्वी (भौमि), (३) अंग, (४) व्यंजन, (५) लक्षण, (६) स्वर, (७) छिन्न, (८) ये आठ भी ज्योतिषके ही अंग हैं, और इनका ही नाम अष्टाङ्गनिमित्त है। हिन्दूमात्र ज्योतिषविद्याको ब्रह्माका चक्षु कहते हैं और मुसल्मान नजूम व अंग्रेज इस्टरलोजी कहते हैं, और असंख्य प्राणी इस विद्याद्वारा आजीविका भी करते हैं, परन्तु आजकल इस विद्याका विश्वास इसके यथार्थ स्वरूपको न जाननेवालोंकी भूलसे कुछ कम होगया है, इसका कारण हम इसके दूसरे भागमें दिखलावेंगे। यहां तो हमको यह दिखलाना है कि यथार्थमें ज्योतिषविद्या क्या वस्तु है? और इसमें तीन कालका ज्ञान प्रकट करनेकी शक्ति क्यों है?

उपरोक्त प्रकार विचार करनेपर हमको अधिक दिनोंकी खोज और बडे२ महात्माओंकि सत्संगसे जो कुछ प्राप्त हुआ उसको विद्वानोंके समीप रख निवेदन करते हैं कि इसको पक्षपात रूपी अज्ञानका चश्मा हटाकर निर्मल शुद्ध भावसे अवलोकन कर मेरे परिश्रमपर ध्यान देवें।

कोई ऐसा भी उत्तम समय था जब सर्व संसारमें जैनधर्मका सूर्य ही प्रकाश करता था, और मिथ्या अज्ञानरूपी अमावस्याकी डरावनी रात्रिका सर्वथा अभाव ही था, कारण कल्पवृक्षोंके उजालेमें सूर्य, चंद्र, तारागण कोई भी दृष्टिगोचर नहीं होता था।

आज हमारा यह कहना कि पुराना और सनातन यह जैनधर्म ही है, तो इसको सब कोई स्वीकार करे ऐसा कब निश्चय है।

धर्मार्थकाममोक्षाणाम्!

भावार्थ—धर्म १, अर्थ २, काम ३, मोक्ष ४, ये चार साधन मनुष्य मात्रको अपनी जीवन लीलाके अन्ततक क्रमशः करने योग्य हैं, सो प्रथम ही धर्मका लाभ मुख्य है, परन्तु धर्म क्या वस्तु है? इसको ही ध्यानपूर्वक विचारना

चाहिये । संसारी प्राणी दान देना, दया पालना, पवित्र रहना, तपस्या करना इत्यादिकको ही धर्म समझते हैं, यह उनकी बहुत बडी भूल है । क्योंकि दानादिक देना, व्रत नियमादिकका करना यह धर्मकी आज्ञा पालन मात्र है । ऐसा करनेवाला प्राणी दयावान सुशील धर्मात्मा तो कहा जासकता है परन्तु उसको धर्म शब्दका जानकार नहीं कह सकते, यह बलपूर्वक कहना ही पड़ता है, क्योंकि " वस्तु स्वभावो धर्म " भावार्थ—जिस वस्तुका जो स्वभाव है, वही उसका धर्म है । संसारमे जीव १, पुद्गल २, धर्म ३, अधर्म ४, आकाश ५, काल ६' ये षड्द्रव्य सनातन हैं, इनमें केवल रूपी पुद्गल ही दृष्टिगोचर होता है, शेष पांचोंका जानना केवलज्ञानचक्षुके द्वारा ही निर्भर है । अब हमको यहां पुद्गलहीकी चर्चा करनी है, इसलिये प्रथम उसहीका कथन करते हैं । यद्यपि पुद्गलके सिवाय हमको इस लेखमें कालद्रव्यका भी सहारा लेना होगा, परन्तु प्रथम पुद्गलका विषय पूराकर फिर काल द्रव्यकी भी यथोचित व्याख्या करेंगे ।

पुद्गल नाम उस वस्तुका है, जिसको हम संसारमें अपने चर्मचक्षुओंसे देख उसके स्पर्श रस गंधादिक गुणोंका उपयोग निज इंद्रियोंद्वारा लेते रहते है, परन्तु इसका उपयोग जीव आत्मा शरीरमे निवास करता हुआ ही ले सकता है, और पौद्गलिक शरीरका आत्मासे कर्म्मोंके सयोगसे सम्बन्ध है और कर्म जड़ हैं। इनके छूटनेपर जीव निर्मल सिद्ध स्वरूप होजाता है, इसमे जड़ कर्म्मोंका पौद्गलिक स्वरूप दिखलाना ही हमारे इस लेखका मुख्य हेतु है ।

पुद्गलको नाना रूप रंगवाला देखते हुए भी हम यहां उसको आठ भागोंमें विभाजित करते है और ऐसा करना सनातन कुदरतका ही काम है। हम अपनी कल्पनासे नहीं कहते हैं— "भावार्थ" पीत १, श्वेत २, रक्त ३, हरित ४, पांडव ५, धूसर ६, नीला ७, काला ८, यह उसके मुख्य रंग हैं और पीत १, श्वेत २, रक्त ३, हरित ४, पाडव ५, धूसर ६, नीला ७, काला ८, यह उसकी मृतिकाके भी रंग और गुण हैं। जैसे पीली मृतिका गोपीचन्दन १, श्वेत मृतिका श्वेत सुरमा २, रक्त माटी लाल गेरू ३, हरित जगार ४, पाडव मेनसिल ५, धूसर खडिया ६, नीली कर्दम माटी ७, काली कोयल ८ तथा पुष्प—सूर्य्यमुखी १, चन्द्रमुखी कुमुदनी २, लाला ३, नागर ४, गैंदा या हारशृङ्गार ५, मोतिया ६, अलसी ७, धन्वन्तरी ८, औषधि-केशर १, कमल २, कुशुम ३, तिलक ४, जावित्री ५, सिन्दूरिया ६, नीलोफर ७, नीला ८, तथा पीत जड १, श्वेत चन्दन २, रक्त चन्दन ३, आमलकी ४, मंजिष्ठ ५, असगन्ध ६, अगस्त ७, अमलतास ८, तथा धातु—स्वर्ण १, चान्दी २, ताम्र ३, मयूरतुत्थ ४, सार ५, पारे ६ नीला सुरमा ७, लोहा ८, तथा उपधातु—स्वर्णमाक्षी १, रूपामाक्षी २, हिङ्गुल ३, तृतिया ४, हरिताल ५, फटकडी व सुहागादि ६, शिलाजीत ७, काला अभ्रक ८, तथा रत्न—माणिक १, मुक्ता २, लाल ३, पन्ना ४, पुखराज ५, हीरा ६, नीलम ७, लहसनियां ८, इत्यादि कहांतक लिखें। अष्टप्रकार पुद्गल विभागका संबध आकाशमें विचरनेवाले ज्योतिषी

देवोंके विमानों (व्योमयानों) से इस प्रकार है। जैसा—कागज़का पतङ्ग (गुड्डी) बना आकाशमें उड़ानेवालेके हाथमें उसकी डोरी रहती है। और सूर्य्य १, चन्द्र २, मंगल ३, बुध ४, बृहस्पति ५, शुक्र ६, शनि ७, राहु ८ ये आठों ही क्रम क्रमसे अपनी अपनी पूर्वोक्त वस्तुओंसे मिश्रित हैं। भावार्थ—ऊपर जो हमने पुद्गलके आठ भाग किये, वे आठो ही ज्योतिषी देवोंके विमान भी क्रमशः उन ही पुद्गल द्रव्योंसे बने है। और यह तो मानी हुई बात है कि जीव चैतन्य और कर्म्म जड हैं। बस ज्ञानावरण सूर्य्य १, दर्शनावरण चन्द्रमा २, वेदनीय—मङ्गल ३, मोहनीय बुध ४, आयु बृहस्पति ५, नाम शुक्र ६, गोत्र शनि ७, अंतराय राहु ८ ये आठों ही हानि, लाभ, सुख, दुःखका बोध करानेवाले जीवोंके साथ अनादि कालसे लगे हुए हैं और जीव शरीरमें—ज्ञान १, दिव्यदृष्टि २, रक्त ३, बुद्धि ४, प्राण ५, वीर्य्य ६, मृत्यु ७, रोग ८ तथा प्रकाश—सूर्य्य १, मन चन्द्रमा २, शरीर मङ्गल ३, ज्ञान बुध ४, जीव बृहस्पति ५, काम शुक्र ६, विनाश शनिः ७, कष्ट राहु ८ ये आठो ही प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हैं।

हमारा इतना विस्तारपूर्वक लिखनेका तात्पर्य यह है कि जिस शरीरमें प्रथम कर्म ज्ञानावरणीयकी विशेषता होगी—भावार्थ इस कर्मका अधिक सद्भाव पाया जायगा, उस शरीरमें सूर्यांश विशेष होगा। इसी प्रकार आठों कर्मोंका आठों ही ज्योतिषी विमानोंसे सम्बन्ध है, और इन ज्योतिषी विमानोंकी ऊंचाई तथा विस्तार तो बहुत है परन्तु हम सूक्ष्मरूपसे अपने कार्यके योग्य नीचे लिखते हैं—

पृथ्वीतलके सम भागसे सातसौ नव्वे (७९०) योजनकी दूरीपर आकाशमें सबसे नीचे तारागण हैं, और उससे नौसौ (९००) योजनकी दूरीपर ज्योतिष पटलका अन्त हुवा है। यह ज्योतिष पटल एकसौ दश (११०) योजन मोटा है, और इसके चारों ओर बनोदधि है। तारागणके पटलसे दश योजनकी ऊंचाईपर सूर्यविमान है। उससे अस्सी ८० योजनकी ऊचाई पर चद्रमाका विमान है। इससे चार योजनकी ऊंचाईपर नक्षत्र पटल है, इससे चार योजन ऊंचाईपर बुद्धका पटल है, बुद्धसे तीन योजन ऊचाईपर शुक्र विमान है, शुक्रसे तीन योजनकी उचाईपर बृहस्पति और बृहस्पतिसे तीन योजन ऊचा मंगल और मगलसे चार योजन ऊंचा शनिश्चर है।

सूर्य, चन्द्र नक्षत्र जो जो नाम ऊपर लिखे गये वे नाम उक्त विमानोमें रहनेवाले ज्योतिषी देवोके हैं। यह सब सूर्य १, चद्रमा २, नक्षत्र ३, तारा ४, ग्रह ५, ऐसे पाचों ही प्रकारके हैं, इनमें चद्रदेवकी आयु एक लाख वर्ष अधिक एक पल्यकी है, सूर्यदेवोंकी एक सहस्र वर्ष अधिक एक पल्यकी है, और शुक्रदेवोंकी सौ वर्ष अधिक एक पल्यकी है, और बृहस्पतिदेवोंकी पौन पल्यकी तथा मङ्गल, बुध, शनि आधा पल्य, तारागणकी पाव पल्य उत्कृष्ट आयु है सो यह आयु देवोंकी है, विमान तो पौद्गलीक रत्नमई जड ही हैं।

यह हम तुम सब प्रत्यक्ष देख रहे है कि कमल वा सूर्यमुखी पुष्प सूर्यके उदयमें प्रफुल्लित

होते हैं, कुमुदिनी चन्द्रमांको देखकर खिलती है, अगस्तका फूल अगस्त मुनिके उदय होनेपर खिलता है, आतशी शीशा सूर्यके प्रकाशमें सूर्यसे अग्निका आकर्षण करता है, चुम्बक पाषाण लोहेको खेंचता है तथा सूर्य्यकांतमणिसे अग्नि, चन्द्रकांतिमणिसे मिष्टजल टपकने लगता है। पार्श्वपाषाण लोहेका स्पर्श मात्रसे ही स्वर्ण बना देता है यह सब पुद्गलहीका स्वाभाविक विचित्र गुण है।

शब्द जड है, पौद्गलिक है। छन्दोग्रन्थ "पिङ्गल" में आठ गण—मगण १, भगण २, जगण ३, सगण ४, नगण ५, यगण ६, रगण ७, तगण ८, और इनके स्वामी-मङ्गल१, चन्द्रमा २, सूर्य ३, शुक्र ४, बृहस्पति ५, बुध ६, शनि ७, धूम्र ८, इनका वासा—भूमि १, चन्द्रमां २, सूर्य ३, वायु ४, स्वर्ग ५, जल ६, अग्नि ७, भानु मंडलमें। इनका फल लक्ष्मी १, कीर्ति २, रोग ३, देशाटन ४, आयु ५, बृद्धि ६, मृत्यु ७, उन्माद ८ हैं।

तथा रागमालामें सात स्वर १ खरज (स), २ ऋषभ (र), ३ गन्धार (ग), ४ मध्यम् (म), ५ पंचम् (प), ६ धैवत् (ध), ७ निषाद (नि), यह हैं, इनके स्वामी—१ चन्द्रमां, २ बुध, ३ शुक्र, ४ सूर्य, ५ मगल, ६ बृहस्पति, ७ शनिश्चर ये माने गये हैं।

यहां कोई यह शंका करे कि जब पृथ्वीपर कल्पवृक्षोंके सद्भावमें ग्रहादिक तारागण थे ही नहीं उस समय पुद्गलका स्वभाव रूप धर्म कहा था उसका उत्तर यही है, कि यह ज्योतिषचक्र उस समय कल्पवृक्षोंके प्रकाशमें दबा हुआ था परंतु इसका अभाव नहीं था। जैसे—सूर्यके प्रकाशमें तारागण नजर नहीं आते तो उनका अभाव नहीं माना जाता।

प्रत्येक वस्तु अपने स्वभावको लिये हुए सदा सर्वदा उपस्थित रहती है, कालचक्रके द्वारा उसमें उलट पलटका होते रहना वा स्थूलता सूक्ष्मता दृष्ट पडना यह उसके स्वभाव धर्ममें बाधक नहीं होसकता, इस समय काल द्रव्यका वर्णन करना उचित जान पडता है।

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श इन मूर्तीक गुणोंसे रहित अमूर्तीक न भारी न हलका एवं वर्तना लक्षणका धारक, कालद्रव्य है। इसके निश्चय और व्यवहार ये दो भेद हैं। जिस प्रकार जीव और पुद्गलके गमन करनेमें धर्मद्रव्य, ठहरनेमें अधर्मद्रव्य और समस्त द्रव्योंको अवकाश देनेमें आकाशद्रव्य सहकारी कारण है, उसी प्रकार समस्त द्रव्योंके परिवर्तनमें कालद्रव्य सहकारी कारण है और जिस प्रकार धर्म अधर्म और आकाश इंद्रियगोचर न होनेपर भी आगम प्रमाणसे माने गये हैं उसी प्रकार कालद्रव्यका भी आगम प्रमाणसे सद्भाव मानना।

जीव और पुद्गलोंका परिवर्तन सदा भिन्न२ रूपसे होता रहता है, उसका कारण निश्चय कालद्रव्य है, और घंटा मिनट, सैकिंड, घडी, पल, विपल आदि उसीकी पर्यायें हैं।

समस्त द्रव्योंके परिणमन आदि व्यापार अंतरंग और बहिरंग दो कारणोंसे हुआ करते हैं, उनमें अन्तरंग कारण वस्तुका स्वभाव (योग्यता) है, और बहिरंग कारण निश्चयकाल है।

कालपरमाणुओंको निश्चयकालद्रव्य कहते हैं,

सो यह कालाणु एक दूसरेमें प्रवेश न कर असंख्यात प्रदेशी इस लोकाकाशके प्रत्येक प्रदेशमें स्थित हो समस्त लोकाकाशमें व्याप्त हैं। द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा कालाणु विकृत नहीं होते इसलिये ये उत्पाद और नाशसे रहित होनेके कारण कथंचित् नित्य हैं और सदा अपने स्वस्वभावमें ही स्थित रहते हैं। कालाणुओंमें अगुरुलघु नामका गुण रहता है, उसमें प्रति समय इनकी पर्यायें पलटती रहती है। इसलिये पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा समस्त कालाणु कथंचित् अनित्य भी हैं। समयोंका व्यापार भूत, भविष्यत् और वर्तमानके भेदसे व्यवहार कालके भी तीन भेद होजाते हैं। कालाणु ये अनत समयोंकी उत्पादक हैं इसलिये वे अनन्त शब्दसे पुकारी जाती है। ये कालाणुयें समयकी उत्पत्तिमें कारण हैं, इसलिये इनसे समय उत्पन्न होते रहते हैं, क्योंकि विना कारणके कार्य कभी भी नहीं होता।

कोई कहे कारण विना स्वत. ही कार्य उत्पन्न होजाते हैं तो गधेके शृंग भी होने चाहिये क्योंकि वहां भी कारणोंकी आवश्यकता नहीं है।

समय आदि काल द्रव्यके कार्योंकी यदि काल द्रव्यसे भिन्न किसी अन्य कारणसे उत्पत्ति मानें सो ठीक नहीं क्योंकि चावलके बीजसे मूंग, उडद उत्पन्न नहीं होसकते। यदि कहींपर कार्यकी उत्पत्तिमें अन्य कोई विजातीय कारण हो भी जाय तो वह सहकारी कारण ही होता है, उपादान कारण नहीं। इस प्रकार व्यवस्था पूर्वक निश्चय कालका सद्भाव माना है।

समय, आवलि, उच्छ्वास, प्राण, स्तोक और लव आदि व्यवहार काल हैं, उनमें गमनशील पुद्गलका परमाणु मन्दगतिसे जितने कालमें अपने प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें जाय और जिसका भाग दूसरा न होसके उसे समय कहते हैं।

असंख्यात समयकी एक आवलि होती है, संख्यात आवलियोंका एक उच्छ्वास और निश्वास होता है, इन्हींको प्राण कहते हैं। सात प्राणोंका एक स्तोक, सात स्तोकका एक लव, सात लवोंका एक मुहूर्त, तीस मुहूर्तोंका एक अहोरात्र, पंद्रह अहोरात्रका एक पक्ष, दो पक्षका एक मास, दो मासकी एक ऋतु, तीन ऋतुओंका एक अयन, दो अयनोंका एक वर्ष, पांच वर्षका एक युग, दो युगके दश वर्ष, इनके दशगुणे सौ (१००) सौके दशगुणे लाख, इनके सौगुणे करोड़ और चौरासीलाख वर्षका एक पूर्वांग और चौरासीलाख पूर्वांगका एक पूर्व होता है। इसी प्रकार गणितका विशेष विस्तार लिखनेकी यहां आवश्यकता नहीं। कालाणुओंके विषयमें एकमत ऐसा भी माना जाता है।

आंखके अष्टादश (१८) टिमकारेका समय एक काष्टा कहलाता है, तीस (३०) काष्टाकी एक कला, तीस (३०) कलाकी एक क्षण तथा बारा (१२) क्षणोंका एक मुहूर्त इत्यादि। शेष पूर्ववत्।

अब कालद्रव्यकी संख्या कहांतक लिखें।

आदि, मध्य और अंतरहित अविभागी, अतीन्द्रिय मूर्त और एक प्रदेशी परमाणु कहा गया है। इस परमाणुमें एक समयमें एक रस एक वर्ण एक गन्ध और दो स्पर्श रहते हैं, और यह अभेद्य अर्थात् दूसरोंसे भेदा नहीं जासकता है। शब्दका कारण है, किन्तु स्वयं शब्दका धारक नहीं है और इसके सूक्ष्म होनेका एक यह साधारण

दृष्टांत है कि एक हजार नागरपान ले एक दूसरेके ऊपर रख एक लोहेकी सलाईसे उनमें एक प्रहारसे छिद्र करे तब यह निश्चय मानना पडेगा कि सलाई एक पानसे दूसरेमें होती हुई क्रमशः अन्ततक पहुंची। बस ख्याल करो एक पानसे दूसरे तक पहुंचनेका समय कितना सूक्ष्म है?

संसारमें पुद्गलका परिवर्तन जो प्रकट देखनेमे आता है, उसको ही ध्यानपूर्वक विचारनेसे पाया जाता है कि कुदरतके खेल सनातन नियमानुसार चलते हैं, उनसे अनुभव करिये। जैसे पुरुष स्त्रीके योगसे संतान उत्पन्न होती है, परन्तु गर्भ स्त्री ही धारण करती है पुरुष नहीं कर सकता, तथा प्रथम बतलाया गया वस्तुका स्वभाव वही उसका धर्म उसमें फेरबदल नहीं होसकता। ऊपर जो हमने कालविभागमें पुद्गलके एक समय आवलि आदि बतलाकर दिन, रात्रि, पक्ष, मास ऋतु, अयन, वर्षका वर्णन किया, उसका कर्मोंसे क्या क्या सम्बन्ध है, सो भिन्न भिन्न बतलाते हैं!

एक वर्षके १२ मास, २४ पक्ष, ५२ सप्ताह, ६ ऋतु, २ अयन होते हैं। इनका नाम अपनी अपनी बोलीमें देश भेदसे पृथक२ माना जाता है। जैसे—हमारे क्षेत्रमें चैत्र शुक्लपक्षसे वर्षारम्भ करके चैत्र कृष्णा ३० तक इसप्रकार पूरा करते हैं कि चैत्र शुक्लपक्ष १ से वैशाख कृष्णा ०)) तक इसप्रकार पूरा करते हैं। कि चैत्र शुक्लपक्ष १ वैशाख कृष्ण तथा शुक्ल ३ ज्येष्ठ कृष्ण व शुक्ल ५, आषाढ कृष्ण व शुक्लपक्ष ७ श्रावण कृष्ण व शुक्लपक्ष ९, भाद्रपद कृष्ण व शुक्लपक्ष ११, आश्विन कृष्ण व शुक्लपक्ष १३, कार्तिक कृष्ण व शुक्लपक्ष १५, मार्गशीर्ष कृष्ण व शुक्लपक्ष १७, पौष कृष्ण व शुक्लपक्ष १९, माघ कृष्ण व शुक्लपक्ष २१, फाल्गुन कृष्ण व शुक्लपक्ष २३, चैत्र कृष्णपक्ष २४,। दक्षिणके देशोंमें एक भिन्न भेद है, भावार्थ—जिसको हम चैत्र शुक्ला कहते हैं उसको तो वह भी चैत्र शुक्ला ही कहते हैं, परंतु जिसको हम वैशाख कृष्णा कहते हैं, उसको वह चैत्र कृष्णा कहते हैं। इसी रीतिसे हमारा उनका शुक्लपक्ष तो एक परंतु कृष्णपक्षमे एक मासका अंतर रहता है।

और सूर्य राशिसे मेष वैशाख, वृष ज्येष्ठ, मिथुन आषाढ, कर्क श्रावण, सिंह भाद्रपद, कन्या आश्विन, तुल कार्तिक, वृश्चिक मार्गशीर्ष, धन पौष, मकर माघ, कुम्भ फाल्गुन, मीन चैत्र, यह बारह महीने विभाजित है, परन्तु यह दक्षिणवालोंके हिसाबसे ठीक होते हैं। भावार्थ—इसके लिये हमको चैत्र शुक्लपक्ष और वैशाख कृष्णपक्ष मिलाकर मेषका सूर्य मानना होगा, और यह चन्द्रमासका स्थूल मत है। सूर्यसंक्रांतिके हिसाबसे तो मेषसे लेकर मीन पर्यंत १२ मास तथा वृष मिथुन ग्रीष्म, कर्क सिंह पावस, कन्या तुला शरद, वृश्चिक धन हेमंत, मकर कुंभ शिशिर, मीन मेष वसंत, ये ६ ऋतु हैं, और कर्क, सिंह, कन्या, तुल, वृश्चिक, धन, इन ६ राशियोंमें सूर्य दक्षिणायण कहलाता हुआ दक्षिणको झुका हुआ उदय होता है, और मकर, कुम्भ, मीन, मेष, वृष, मिथुन इन ६ राशियोंमे सूर्य उत्तरको झुकता हुआ उदय होता है और उत्तरायणका कहलाता है। सूर्यकी चालपर ३६५$\frac{1}{4}$ दिन ३१ पल ३० विपलका एक वर्ष होता है। यूरुपियन (अंगरेज) लोग भी ३६५$\frac{1}{4}$ दिनका

एक वर्ष मानते है और उनके १२ महीने—जनवरी दिन ३१, फेब्रुवारी २८, मार्च ३१, अप्रैल ३०, मई ३१, जून ३०, जौलाई ३१, अगस्त ३१, सितम्बर ३०, अक्टूबर ३१, नवम्बर ३०, दिसम्बर ३१ दिनके होकर ३६५ दिन पूरे करते हैं। अंगरेजोंका जो वर्ष चारपर पूरा बट जाय उसमें फेब्रुआरी २९ दिनका होजाता है इससे ३१ पल ३० विपलका अन्तर इनकी और सूर्यकी चालमें रहता है। १३ अप्रैलके निकट मेषका सूर्य होता है।

अब देखिये, एक वर्षमें मेषसे लेकर मीन तक १२ सूर्य व्यतीत होते हैं और वही १२ महीने सूर्य मास कहलाते हैं। चन्द्र मासके १२ महीने कभी ३५४ कभी ३५५ दिनके हुआ करते हैं और यह भी कभी तीसरे वर्ष अधिक मास होनेसे कुछ पूरी होजाती है। भावार्थ—३३ वर्षमें १२ अधिक मास होते हैं।

एक सप्ताहके रवि, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर ये ७ दिन होते है। अंगरेजीमें इनको वीक और मुसलमानीमें हफ्ता कहते हैं और अंगरेजीमें इनके नाम संडे, मंडे, ट्यूसडे, वेडनसडे, थर्सडे, फ्रायडे, सेटरडे और मुसलमानीमें इनके नाम यकशम्बः १, दोशम्बः २ सेशम्बह ३, चहारशंब ४, पंजशंब ५, जुमअ ६, शंब ७, सात वारोंको सात ग्रह मानकर ही संपूर्ण ज्योतिषको विचारा जाता है। यद्यपि ग्रह नव (९) माने जाते है परन्तु उक्त सातोंके सिवाय एक राहु और है जो यथार्थमें इनका ही एक भेद है जिसका वर्णन हम आगे चलकर करेंगे और दूसरा केतु यह थोड़े कालसे कल्पित बनाया गया है। दर असल तो यह राहुका ही छायारूप भेद है इसका ज्योतिषके नामी वसंततिलकादि अनेक ग्रन्थोंमें नाम तक नहीं है और आजकल राहु, केतु दो कहलाये।

ऊपर जो १२ राशि कही गई उनका विचार ऐसा है कि जैसे एक दिन रात्रिके २४घंटे होते हैं उनमें मेषसे लेकर मीन पर्यंत १२ लग्न व्यतीत हो जाते हैं और इन १२ लग्नोंका समय देशभेदानुसार जुदा२ है। भावार्थ ऊपर जो हमने १२ राशि मेषसे मीनतक बतलाई वे एक दिन रात्रिमें भी अपना भ्रमण पूरा करती हैं, और उनका ही नाम लग्न है और मेष मीनका एक समान काल, वृष कुम्भका समान, मिथुन मकरका समान, कर्क धनका समान, सिंह वृश्चिकका समान, कन्या तुलका समान है और दिल्लीमें मेष, मीन लग्न ३ घडी ३३ पलके होते हैं। वृष कुम्भ ४ घडी ७ पलके होते हैं, मिथुन, मकर ५ घडी १ पलके, कर्कधन ५ घडी ४३ पलके, सिंह वृश्चिक ५ घडी ५१ पलके होते है, कन्या तुल ५ घड़ी ४५ पलके होते हैं, और लङ्कामें मेष मीन ४ घड़ी १८ पलके, वृष कुम्भ ४ घड़ी ५९ पलके, मिथुन मकर ५ घडी २३ पलके, कर्क धन ५ घडी २३ पलके, सिंह वृश्चिक ४ घडी ५९ पलके, कन्या तुला ४ घडी १८ पलके होते है। और सूर्यके उदय अस्तके विचारसे प्रत्येक नगरके लग्न प्रमाणमें अन्तर होता है, और यह तो मानी हुई बात है कि जिस लग्नमें सूर्य उदय होता है। उससे सातवें लग्नमें अस्त होता है, और जिस लग्नमें उदय होता है अगले दिन उसका एक अंश कम होजाता है। यह भी निश्चय है कि १२

अप्रेलके अगले दिन सम्पूर्ण भारतमें प्रातःकाल सूर्योदयके समय मेष लग्न होता है, और वह एक अंश रोज घटता हुआ ३० दिनमें ३० अंश भोगकर रात्रिमें चला जायगा, और अगले दिन सूर्योदय वृष लग्नमें होगा। भावार्थ यह है कि जिस लग्नमें सूर्य उदय होता है अगले दिन उसका एक अंश रात्रिमें चला जाता है, और ३० अंश पूरे होनेपर सूर्यका उदय दूसरे लग्नसे प्रारम्भ होता है और जिस लग्नमें सूर्य उदय होता है, उसीके पौद्गलिक स्वाभावानुसार ही मौसम होता रहता है।

अब और देखो—मेषराशिका स्वरूप मेष (मैंढे) के आकारका माना गया है। इसका तात्पर्य यह है कि मौसममें न शीत न उष्णता सामान रहे इसमें १३ अप्रेलसे १३ मई तक सूर्योदय प्रातःकाल मेष लग्नमें रहता है फिर क्रमशः रात्रिमें चला जाता है, मेषराशिका स्वामी मङ्गल है। इसको वेदनीकर्म माना है। इस महीनेमें सर्व जीवोंके वेदनीकर्मका उदय पाया जाता है और जिस प्राणीके शरीरमें वेदनीकर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले परमाणु न्यूनाधिक होंगे वैसा ही उदय आवेगा, इसी प्रकार वृषराशिका स्वामी शुक्र (नाम कर्म), मिथुनका स्वामी बुध (मोहनीय कर्म), कर्कका चंद्रमा (दर्शनावरणीय कर्म), सिंहका सूर्य (ज्ञानावरणीय कर्म), कन्याका बुध, तुलका शुक्र, वृश्चिकका मगल, धन मीनका बृहस्पति (आयु कर्म), मकर कुम्भका शनिश्चर (गोत्र कर्म) ऐसे १२ राशि किंवा १२ महीनोंके स्वामी यह सात ग्रह सूर्यसे शनिश्चर तक जानने, केवल राहु जो उपग्रह है, वह किसीका स्वामी नहीं है।

सूर्य एक वर्षमें १२ राशियोंको भोग करता है, चन्द्रमा २७ दिनमें ११ राशिका भोग करता है। इसी प्रकार मंगल १८ महीनेमें, बुध १२ महीनेमें, बृहस्पति १३ वर्षमें, शुक्र १ वर्षमें, शनिश्चर ३० वर्षमें, राहु १८ वर्ष पीछे फिर उसी राशिपर आते हैं। और ज्योतिषमें २८ नक्षत्र, २७ योग, २८ उपयोग, ११ कर्ण, आदिक अपने अपने स्वरूप स्वभावको लिये एकरूप इनके भी अनेक भेद हैं, जिनका विस्तार सहित वर्णन हम किसी दूसरे लेखमें लिखेंगे।

यह हम प्रथम बतला चुके हैं कि २ मासकी १ ऋतु और ६ ऋतुओंका एक वर्ष होता है, और ऋतुओंके नाम और समय भी बतला दिया है, अब यहां यह बतलाना चाहते हैं कि मुनिराज जो ग्रीष्मऋतुमें सरोवरके निकट ध्यान धरते हैं, इसका क्या कारण है? और उसमें कोई गूढ भेद अवश्य है, और क्या समय विपर्यय होनेपर वे भी उसी प्रकारसे तप करते हैं? भावार्थ—वर्षाऋतुमें वृष्टि न हो, शीतकालमें शीत न पडे, ग्रीष्ममें उष्णता नहीं और शीत पडने लगे या जल वर्षे तो वे क्या करें?

सो हमारे इस सपूर्ण लेखका साराश इसी स्थानपर निकल आवेगा कि मुनिराज अपने कर्मोंके नाश करनेमें उद्यमी होकर ही तप करते हैं, सो जिस जिस कर्मका उदय होता है, उसीके नष्ट करनेका उपाय मुख्य जान उसीरूप प्रवर्तते हैं।

हमने ऊपर बतलाया है कि ग्रह नाम कर्मका है और कर्मोंका सम्बध सूर्यादिक ज्योतिषीदेवोंके विमानों (व्योमयानों)के स्वभावसे है उन विमा-

नोंमें निवास करनेवाले देवोंसे नहीं है। विमानोंकी चाल ही अपने स्वभावसे भला बुरा करनेका उपादान होजाती है। जिस सूर्यका प्रकाश ज्येष्ठ मासमें कष्टकारी होता है वही प्रकाश माघमें अधिक प्यारा जान पड़ता है। इन विमानोंका स्वभाव निज नामानुसार दिन दिन भी प्रकट होता रहता है।

इन सात विमानोंसे जुदा एक राहुका विमान भी माना जाता है यह चर्म चक्षुसे नहीं दीखता। गुप्त सातों दिन भ्रमण करता है, जिसको काल राहु कहते हैं। दूसरा भेद इसका दिक्शूल भी है। दिक्शूल रविवार तथा शुक्रवारको पश्चिम दिशामें, चंद्रवार शनिश्चरवारको पूर्वमें, मगल बुधको उत्तरमें, बृहस्पतिको दक्षिणमें तथा काल, राहु, रविवारको उत्तरमें, चंद्रवारको वायव्यमें, मंगलवारको पश्चिममें, बुधको नैऋत्यमें, बृहस्पतिवारको दक्षिणमें, शुक्रको अग्निकोणमें, शनिश्चरको पूर्व व ईशानमें रहता है फिर योगिनी, चन्द्र, तारा, आदि अनेक भेद हैं और इन सबमें सूर्य ही प्रधान माना जाता है। यह सूर्यरूपी अंजन सर्व सांसारिक रचना रूपी मशीनको चलाता है। यद्यपि चद्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, अपना२ कार्य करते दृष्टि पड़ते हैं। यह सब पुद्गलका ही इंद्रजाल है जिसको हम पुनः पुनः फिर विस्तारपूर्वक लिखेंगे। अब यह लेख यहां ही समाप्त किया जाता है।

दोहा—

अंक खंड ग्रह चन्द्रमा चैत्र स्याम दशतीन।
गुरु दिन ज्योतिषरत्नने रचना लिखी नवीन॥

हमारी वीरता।

वीरकी सन्तान हम घर वीरता दिखला रहे।
परसे फिरें धर्मी हुये अरु निबल होके लुप रहे॥
नित पार्टियां तैयार कर बाबू विशारद बन रहे।
वीरकी सन्तान हम घर वीरता दिखला रहे॥१

पार्टियोंका सुलह सुन अति हर्ष हो चकरा रहे।
ऐक्य हो हममें सदाका भावना यह भा रहे॥
हा! खेद है इस फूटपर ये 'मित्र" जो दर्शा रहे।
वीरकी सन्तान हम घर वीरता दिखला रहे॥२

ज्ञात नहीं कब नष्ट हो संग्राम जैन समाजका।
प्रोवाले प्रोवा कब मिले चमके सितारा धर्मका॥
दोनों तरफके द्वेषसे अब कृष्ण कालम हो रहे।
वीरकी सन्तान हम घर वीरता दिखला रहे॥३

पर दोष-दर्शनके लिये प्रतिदिन समस्या कर रहे।
भक्ति बगुलेसे बड़ी कर घोत चिन्ह दिखा रहे॥
परको कपटसे खुश करै विषयाभिलाषी बन रहे।
वीरको सन्तान हम घर वीरता दिखला रहे॥४

प्रभु वीरने वर्णन किया विकराल पंचमकाल है।
ह्रास होगा धर्मका उद्योग करना व्यर्थ है॥
थोडे ही उत्तम हम सभी जो वीर संतति बन रहे।
वीरकी सन्तान हम घर वीरता दिखला रहे॥५

उद्देशको हद्द शेष है कौन किसका क्या करे।
उद्योग क्या अब धर्ममें हो ह्रासमें दिन दिन रहे॥
होंगका हग हद है बस पठन व्यय क्यों कर रहे।
वीरकी सन्तान हम घर वीरता दिखला रहे॥६

श्रीमान् हम धीमान् हम, हम धर्म-ठेकेदार हैं।
यह मान सूबा सब हमारा सर्व तावेदार हैं॥
क्यों 'मनोहर' वाक्य ये सज्जन हृदयपर बस रहे।
वीरकी सन्तान हम घर वीरता दिखला रहे॥७

मनोहरलाल जैन म० वैद्य (शिवपुरकलां)।

जैन समाजका सुधार कब होगा ?

[लेखक-ब्र० प्रेमसागरजी रेपुरानिवासी-पिपरईगांव।]

"सोचते सोचते तीन वर्ष व्यतीत होगये किन्तु आजतक इच्छाकी पूर्ति न हुई" इस बातको राजाराम बार बार विचार रहा था, कि आभ्यन्तरसे ही यह "क्या सोचते सोचते!" किसीने कहा, राजारामने सुना और फिर अपने पूर्व विचारमें निमग्न होगया। कुछ देरके बाद ही फिर वही शब्द सुनाई दिया। राजारामने उसे विस्मरण कर दिया किन्तु जब तीसरी बार भी वही शब्द सुनाई दिया, तब तो राजारामको निश्चय हुआ और समझ गया कि-सचमुच ही कोई मुझे यह "क्या सोचते सोचते" कहकर पुकार रहा है। आभ्यन्तरकी उस तीसरी आवाजने राजारामपर अपना असर जमा दिया तब तो राजारामको उसका उत्तर देना पड़ा। उत्तर था-"जैन समाजका सुधार कब होगा" बस यही सोचते सोचते मुझे तीन वर्ष बीत गये किन्तु आजतक किसीने भी मेरे इस प्रश्नका समाधान न किया। राजाराम यह कह ही रहा था कि उसी समय उसका प्यारा मित्र रामेश्वर आगया और क्षणएक बैठकर बोला-मित्र! आज आप किस विचार-सागरमें गोते लगा रहे हो? क्योंकि आपके चहरेसे ही मुझे ऐसा प्रतीत होता है।

मित्रकी बातको सुनकर राजाराम बोला-प्रियवर, मैं बराबर तीन वर्षसे इस बातको सोच रहा हूं कि-"संसारकी समग्र जातियां जगकर सचेत होगई और अपनी अपनी तरक्की कर रहीं हैं, लेकिन जैन जाति ही एक ऐसी जाति है जो इस जाग्रतिके जमानेमें भी नहीं जगी, न मालूम इसका होनहार क्या है? इसे इतना भी ज्ञान नहीं है कि-संसार किस अवस्थामें जारहा है और मैं उसीमें रहती हुई किस अवस्थामें पड़ी अपने दिन काट रही हूं।" इस मेरे प्रश्नका समाधान अभीतक किसीने नहीं किया और मैं बराबर इसी सोचमें हूँ, आशा है आप इसका कुछ प्रयत्न करेंगे।

ऐसा कौन होगा जो अपने प्यारे मित्रको अप्रसन्न रक्खे? नहीं नहीं, यह प्रत्येक मानवका कर्तव्य है कि वह अपने मित्रके साथ "दुग्ध पानी जैसा" प्रेम रक्खे और समयपर उसके दुःखमें सहायक बने।

रामेश्वर इसी प्रकारका मित्र था, वह अपने प्रिय मित्र राजारामके साथ दुग्ध पानी सी ही मित्रता रखता था और चाहिये भी ऐसा, क्योंकि ऐसे मित्रोंके द्वारा ही दूसरोंका उपकार होता है। अतएव राजारामका प्रश्न सुनकर रामेश्वर

उसका निम्न प्रकारसे समाधान करने लगा—

प्रिय मित्रवर! आपका प्रश्न अत्यंत प्रशंसनीय और उपयोगी है। मैं उसका हृदयसे स्वागत करता हूं तथा जोर देकर कहता हूं कि वर्तमानमें ऐसे ही प्रश्नोंकी आवश्यक्ता है क्योंकि योग्य प्रश्नोंके द्वारा ही धार्मिक व सामाजिक त्रुटियोंका सुधार होता है व एक बहिरात्मा मानव अन्तरात्मा होकर मोक्षका पात्र बनजाता है।

आपके शुभ प्रश्नका समाधान करना वास्तवमें कठिन है किन्तु मैं जो समझा हूं उसे कहता हूं, आप ध्यानपूर्वक सुनिये।

जिन लोगोंने ऐसा समझ रक्खा है कि—"जैन समाजकी नींद महानींद है, उसे जगाना टेढ़ी खीर है" ऐसा समझनेवालोंकी भूल है। हां, यदि यह कहा जावे कि "जैन समाज सोती हुई जग सकती है, परन्तु उसे जगानेकी कोरी दम भरनेवालोंके पास वह शक्ति नहीं है जो उसे जगा सके और जो जगा सकते हैं वे उसे जगानेका भरसक प्रयत्न करते हैं, किन्तु जगानेकी कोरी दम भरनेवाले हुल्लड़बाज लोग जगानेवालोंके मार्गमें रोड़े अटकाते हैं इस कारण समाजके जगनेमें देर होरही है।

आपको ज्ञात होना चाहिये कि वर्तमानमें श्रीमान् पू० ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी समाजकी कितनी सेवा कर रहे हैं? प्रत्येक वर्ष १-२ प्राचीन ग्रन्थका अनुवाद व नवीन पुस्तक लिख कर जैन समाजको उसका सच्चा मार्ग दर्शा रहे हैं तथा दो पत्रोंकी सम्पादकी व अन्य कई उपयोगी कार्य ब्रह्मचारीजी कर रहे हैं परन्तु विरोधी लोग उनकी इस सेवाकी कदर न करते हुए उनका स्वागत गालियोंसे व निंदक वचनोंसे कर रहे हैं। ये लोग ब्र०जीके सर विधवाविवाहका टीका लगानेकी जीतोड़ परिश्रम कर रहे हैं तथा अपने "जैनगजट" में उन्हें "बाबू शीतलप्रसाद" ऐसा लिखकर उनकी इज्जतको घटाना चाहते हैं। प्रियवर! जिस प्रकार ये लोग भी ब्र०जीको कोसते हैं उसी तरह सभी सुधारकोंके पीछे पड़े हैं किन्तु सुधारक लोग इसी "श्वानोंके भूखनेपर हाथी पीछे नहीं लौटता" नीतिका अवलम्बन कर इन हुल्लड़बाजोंकी बातोंपर ध्यान न देते हुए अपने मार्गपर बढ़ते हुए जारहे हैं। बस, समाजके न जगनेका यही एक प्रबल कारण है।

राजाराम—प्रियवर! जगानेकी कोरी दम भरनेवाले कौन हैं? और वो जगानेवालोंके मार्गपर कैसे रोड़े अटकाते हैं? सो सविस्तार सुननेकी उत्कण्ठा है। आशा है कि आप मुझे इसका ठीक और सरलतासे समाधान करावेंगे जिससे मैं यह समझ सकूं कि समाजके न जगनेमें कोई दूसरा ही बाधक कारण है।

रामेश्वर—समाजको जगानेकी कोरी दम भरनेवाले वे सज्जन हैं जो अपनेको समाजका सर्वेसर्वा समझ चुके हैं, और कष्टतासे उसे अपने ही आधीन रख उसके द्वारा अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं। इनमें कुछ इनेगिने पंडित महाशय हैं जो कि—अपने ही भक्तों द्वारा नाम धारी बड़ी बड़ी पदवियोंकी डिगरी हासिल कर चुके हैं और जो शास्त्री, धर्मरत्न, धर्मवीर, धर्मधीर आदि नामोंसे उनके भक्तों द्वारा पुकारे जाते हैं। ये लोग बराबर अपने जालमें भोरी

समाजको फंसानेकी चेष्टा करते हैं किन्तु उन्हें इस अटूट परिश्रम करते हुए भी फलकी प्राप्ति नहीं होती ।

ये लोग धनवान वर्गको अपने हाथमें रख उसके द्वारा अपना काम निकालते रहते हैं। इत्यादि कहां तक कहूं । तात्पर्य यह कि इन नामधारी पंडितोंने सुधारकोंके मार्गमें ऐसा रोड़ा अटका रक्खा है कि जिससे समाजके जगनेमें देर होरही है ।

समाजको जगानेवाले सुधारक लोग हैं। इनमें इंग्रेजी पढ़े हुए विद्वान् तो हैं ही किन्तु कई दर्शन संस्कृत पढ़े न्यायतीर्थ और धर्मशास्त्री पंडित भी हैं तथा कई त्यागी ब्रह्मचारी भी शामिल हैं। इस पार्टीमें परोपकारकी बुद्धि रखनेवाले, स्वार्थकी बूसे रहित, सच्ची सेवा करनेवाले ही लोग हैं ।

सुधारक लोग समाजको आर्ष वचनानुकूल ही उन्नतिके मार्गपर ले जानेका प्रयत्न कर रहे हैं, किंतु उनको ये नामधारी धर्मके ठेकेदार उन्हें विधवाविवाह पोषक, जातिपांति लोपक, धर्मभ्रष्ट(!) आदि नामोंसे पुकारते हैं और जैनगजट, स्याद्वादकेशरी आदि पत्रोंमें उनकी मनमानी निन्दा करते नहीं हिचकते ।

प्रियवर ! सुधारक लोगोंका सिद्धांत है कि जैनसमाजकी बड़ी तेजीसे घटती होरही है। यहां तक कि २१ आदमी दिन प्रतिदिन घटते हैं। इस हिसाबसे १०० या १५० वर्षमें समाजकी इतिश्री होजावेगी। अतः उसको सजीवित रखनेके उपाय प्रत्येक समाजसुधारकको सोचने चाहिये ।

सुधारकोंने निम्न उपाय शास्त्रानुकूल और आर्ष वचनोंके पोषक सोच रक्खे हैं। जैसे कि-१-अन्तर्जातीयविवाह, २-जैनधर्मको सर्वव्यापी धर्म बनाना, ३-समाजमें एक उच्च शिक्षाका कालेज खोलना। बस, इन उपायोंके द्वारा ही सुधारक लोग समाजको तरक्कीके शिखरपर चढ़ाना चाहते हैं किन्तु स्थितिपालक लोग उनके मार्गको रोकते हैं। बताइये ऐसी अवस्थामें यदि समाजका पतन होता है तो कौनसी आश्चर्यकी बात है।

प्रियवर ! पहिला उपाय अन्तर्जातीयविवाहका है। यह प्रथा नवीन नहीं है और न नवीन चलानेको कहते हैं। यह तो बहुत ही प्राचीन प्रथा है जिसके साक्षी आदिपुराण आदि आर्ष ग्रन्थ हैं। शास्त्रोंमें तो यहांतक वर्णन है कि पहिले जमानेमें तीन वर्णोंमें याने ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्योंमें परस्पर विवाह सम्बन्ध होता था जिसका प्रमाण श्री धर्मसंग्रहश्रावकाचारमें इस प्रकार है कि—

परस्परं त्रिवर्णानां विवाहः पंक्तिभोजनम्।
कर्तव्यं न च शूद्रैस्तु शूद्राणां शूद्रकैः सह ॥

प्रियवर ! प्रथम जमानेमेंकी तो यह बात है। आज तो सुधारक लोग केवल एक ही वर्णमें और उसमें भी जिनके साथ परस्पर कच्चे पक्के भोजनका खाना पीना है तथा जो सह धर्मके पालनेवाले हैं उनमें ही परस्पर वैवाहिक संबंध होनेको कहते हैं किन्तु स्थितिपालक दलके स्वार्थी नेता इस बातको नहीं मानते। उनका मत शास्त्रोंकी बातको न मानकर भी समाजके कर्णधार और धर्मके ठेकेदार बन बैठनेका है। हा ? लकलोग ! ? ?

समाजको अन्तर्जातीय विवाहकी अत्यन्त आवश्यक्ता है किंतु स्वार्थी पंडितोंके द्वारा विचारी उसका लाभ नहीं उठाने पाती।

राजाराम—अन्तर्जातीयविवाहके द्वारा समाजको कौन २ लाभ होंगे, कृपया दो एकके नाम बताइये ?

रामेश्वर—मित्रवर ? यह आपका प्रश्न बुद्धिमानीको लिए हुए है। सुनिये—

अन्तर्जातीयविवाहके द्वारा अनेक लाभ होंगे किन्तु समय ज्यादे न होनेके कारण कुछके नाम बताता हूं, आशा है आप उन्हें सुनेंगे और उनपर विचार करेंगे। अन्तर्जातीयविवाहसे पहिला लाभ तो यह होगा कि अनमेल विवाह रुकेंगे, दूसरे निर्धनोंके बालक जो कुंवारे रह जाते हैं वे विवाहे जा सकेंगे, तीसरे परस्परमें प्रेमकी वृद्धि होवेगी जिससे एकताकी जड़ मजबूत होवेगी और फूट रोगका पतन होकर समाजमें एक नवीन सुखका संचार होगा, आदि लाभ होंगे।

राजाराम—और दूसरा उपाय कौनसा है जिसके द्वारा सुधारक लोग समाजको उन्नतिके सिंहासन पर विराजमान करना चाहते हैं।

रामेश्वर—मित्रवर, दूसरा उपाय है अपने धार्मिक क्षेत्रको विस्तृत करना। श्री १००८ महावीर भगवानके झंडेके नीचे जीव मात्रको आश्रय देना और जैनेतर लोगोंको श्री महापुराणमें लिखी दीक्षान्वय क्रियाके अनुसार उनका वर्ण स्थापित करके उन्हें जैनी बनाना। सुनिये— श्री महापुराणके ३९वें अध्यायके नीचे लिखे श्लोक इसी बातकी पुष्टि करते हैं:—

वर्णलाभस्ततोऽस्य स्यात्संबन्धं संविधित्सतः।
समानाजीविभिर्लब्ध वर्णैरन्यैरुपासकैः॥६१॥

भावार्थ—तब उस अजैनको वर्णलाभ दिया जाता है जो समान आजीविका करनेवाले अन्य समान वर्णके उपासकोंके साथ सम्बंधको कर सके।

इत्युत्युक्त्वैनं समाश्वास्य वर्णलाभेन युज्यते।
विधिवत्सोऽपि तं लब्ध्वा याति समकक्षताम्॥७१

इसका भाव आदिपुराणमें यह दिखाया है कि "तुम सारिखे सम्यग्दृष्टीनिके अलाभ विषे मिथ्या दृष्टिनिसों सम्बंध होय है। इस तरह कहे और फिर वे श्रावक इसको वर्णलाभ क्रियासे युक्त करें।"

आदिपुराणकी यह आज्ञा होते हुए यदि किसी क्षत्री कर्मवालेको व किसी वैश्य कर्मवालेको अजैनसे जैनी बनाया जावे तो क्या यह बात शास्त्रके विरुद्ध है ?

यदि ऐसी आज्ञा न होती तो गौतम ब्राह्मण अजैन, जैनधर्मका द्रोही उसी दिन जैनी होकर मुनि न होता और शीघ्र ही सर्व मुनिसंघका शिरोमणि गौतम गणेश न होगया होता।

परन्तु इसको सुनता कौन है, यहां तो अपने स्वार्थको सिद्ध करनेकी पड़ी है। जो धर्मके ठेकेदार बन बैठे हैं वे इस कामको भी नहीं होने देते, और श्री महावीरके बताये हुए सच्चे मार्गपर (जिसपर सुधारक लोग गमन कर रहे हैं) रोड़े डालते हैं। ऐसा करनेवालोंसे सवाल है कि क्या श्री महावीर भगवानने समवशरणमें उन्हीं जीवोंको उपदेश दिया था जो उस समय उनके अनुयायी थे ? नहीं नहीं। शास्त्र तो इस विषयमें यही बताते हैं कि श्री महावीर

भगवानने अपने समवशरणमें जीवमात्रको धर्मो पदेश दिया और उन्हें वस्तुका यथार्थ स्वरूप समझाकर उसका सच्चा ज्ञान कराया । अतएव श्री महावीर भगवानके उपदेशको सुनकर तिर्यञ्च भी व्रतोंमें लीन हुए, उन्हें भी जैनधर्मने अपनेमें स्थान दिया ।

जैनधर्म आत्मा मात्रका धर्म है, तब समझमें नहीं आता कि इन लोगोंने उसके संकोच करनेमें क्यों आर्षवाक्योंकी लीपापोती करना शुरू कर दी है ? क्या इसमें भी इन लोगोंका कुछ स्वार्थ सिद्ध होता है । जब कि एक चांडाल भी जैनधर्मका पात्र हो सकता है तब समझमें नहीं आता कि महा मिथ्यात्वरूपी आतापसे संतप्त प्राणियोंको यदि श्री महावीरकी अमृत वाणीका पान कराया जावे तो कौनसी शास्त्रीय आज्ञाका लोप करना है ?

धर्मकी दुहाई देनेवाले धर्मके ठेकेदार श्री प्रातःस्मरणीय स्वामी समन्तभद्राचार्यके इस "न धर्मो धार्मिकैर्विना" वाक्यकी भी अवहेलना करते नहीं डरते । जब यह बात भली भांति निश्चित होचुकी है कि—जैनधर्मके माननेवाले केवल ११॥ लाख ही हैं और उनमेंसे दि० करीब ६-७ लाख हैं तथा इन सबमें प्रतिदिन २१ आदमीकी घटी होती जाती है । यदि यही क्रम कुछ दिनों और जारी रहा तो सचमुचमें १०० या १५० सौ वर्षमें जैनियोंका भारतसे कूच होजावेगा और उनके साथ यह जैनधर्म भी चला जावेगा कारण यह कि—धर्मात्मा जीवोंके आश्रित ही धर्म ठहरता है । ऐसी अवस्थामें यदि हम श्री महावीर भगवानके बताये हुए धर्मरत्नको तिजोड़ीमें रखे रहें तो हमारे समान और कौन मूर्ख होगा किन्तु नहीं, धर्मके ठेकेदारोंको यह बात भी पसंद है । हम उनसे केवल यही एक बात पूछना चाहते हैं कि क्या आप लोग अपने इस पवित्र और उदार धर्मको केवल ११॥ लाख ही मनुष्योंमें रखना चाहते हैं ? यदि हां, तो मैं कहूंगा कि आप अभीतक श्री महावीर भगवानके पवित्र उदेशको नहीं समझ पाये । यदि समझे हो तो इसवक्त स्वाभिमानी बन "भगवान महावीरके बताए हुए मार्गके ठेकेदार हो ।" सच तो कहिये क्या आप इस सार्वधर्मके सचमुच ही ठेकेदार हैं ? या आपने इसकी रजिष्ट्री करा ली है ?

अरे भाइयो ! जरा होश सम्हालो और अपनी मान कषायको मन्द कर सच्चे दिलसे श्रीमहावीरकी वाणीका प्रचार संसारमें करो और उसके प्रचारमें हमारा साथ दो तभी आपका यह पवित्र धर्म दुनियांमें रहेगा, नहीं तो २१ की घटीमें यह भी घटता हुआ एक दिन न मालूम कहां चला जावेगा ।

राजाराम—प्रियवर ! सुधारक दलके दो उपाय तो मैं समझ गया किन्तु अब तीसरा उपाय भी शीघ्र सुनानेकी कृपा कीजिये क्योंकि अब समय अधिक होगया है ।

रामेश्वर—मित्रवर ! घबड़ाइये नहीं, अभी तो घड़ीमें १० बजके ७ मिनट ही हुए हैं, सुनिये—तीसरा उपाय है समाजके अन्दर एक "जैन कालेज" की स्थापना करना । यदि इस उपायको समाज शीघ्र स्वीकार करले तो उसकी उन्नति अति निकट है । देखिये बड़ कालेजोंका

ही फल है, जो आज आर्यसमाज दुनियांमें अपनी जागृतिका चमत्कार दिखा रहा है।

एक महर्षि दयानन्दने लाखों मनुष्योंको आर्य धर्मका अनुयायी बना दिया। इसी थोड़ीसी समाजने थोड़ेसे कालमें वह चमत्कार जनताके समक्ष उपस्थित कर दिया कि, प्रत्येक प्राणीके मुखसे यही निकलता है—आर्यसमाजने अल्प ही कालमें बहुत ही उन्नति कर ली है। पढ़े लिखे मनुष्योंको आर्यसमाजसे च्युत नहीं होने दिया तथा अनेकों गुरुकुल और कालेज स्थापित कर दिये जिनमें लाखों छात्र विद्याध्ययन कर रहे हैं।

मुसलिम समाजमें एक सर सय्यदको देखिये कि जिसने अपने ही पुरुषार्थसे अलीगढ़में मुसलिम विश्वविद्यालय स्थापित कर दिया। आज जिसके द्वारा वह कार्य हो रहा है जो बड़ी बड़ी बादशाहतें न कर सकीं। देवबन्दमें उनके धार्मिक कालिजको देखिये, हजारों मुसलिम छात्र वहांपर मुसलिम धर्मकी उत्तम शिक्षा पा रहे हैं। कहांतक लिखें अरबस्तान, मिश्र, रूसके भी छात्र वहांपर मुसलिम सिद्धान्तोंके जाननेको आते हैं।

एक अद्वितीय पुरुषरत्न माल्वीयजीको देखिये कि जिन्होंने संसार मात्रकी विद्याओंके पढ़नेका सुभीता हिन्दू यूनीवर्सिटीमें कर दिया। कोसोंमें जिसकी बिल्डिंग है, २००० से अधिक छात्र वहांपर विद्याध्ययन कर रहे हैं।

कहनेका तात्पर्य यह है कि इस समय समाजको 'जैन कालेज" की अत्यन्त आवश्यक्ता है किन्तु अफसोस है कि आपसके कलहसे वह भी स्थापित नहीं होने पाता। स्वार्थी लोग उसके स्थापित करनेमें भी रोड़े अटकाते हैं। मित्र समझे, उक्त तीनों उपाय ही सुधारक लोग जनताके साम्हने रखते हैं और उन्हींके द्वारा उसका उद्धार करना चाहते हैं किन्तु स्थितिपालकदल बीचमें रोड़े अटकाकर समाज हित नहीं होने देता। मित्र, मैं दावेके साथ कहता हूं कि स्थितिपालकदलकी अब दाल नहीं गल सकती। कारण, समाज उसकी करतूतोंसे सचेत होगई है। समाज अब पड़े२ अपने दिन नहीं काटना चाहती, वह चाहती है कि मैं भी अन्य समाजोंकी तरह अपनी तरक्की करूं किन्तु क्या करे? उसे इस (बाबू पंडितकी फूट) आपसके कलहने कमजोर बना दिया है। समाजकी दशा इस कहावतको चरितार्थ कर रही कि—

"सांड सांड लड़ें बाड़ीके धुर्रे उड़ें।"

रामाराम—मित्रवर ठीक है; दर असलमें यही बात ख्यालमें आती थी कि संसारकी समग्र जातियां सचेत होगईं किन्तु यह जैन जाति क्यों अभीतक अचेत होरही है? मेरा यह भ्रम आज साफ होगया। मुझे अब निश्चय होगया कि सुधारक दल वास्तवमें समाजका सुधार सच्चे रूपमें चाहता है जब कि स्थितिपालक दल उसमें रोड़े अटकाकर समाजके उठनेमें बाधा डाल रहा है किन्तु इतना और जानना चाहता हूं कि ऐसी दशामें सुधारक दलका क्या कर्तव्य है, आशा है आप इसका भी शीघ्र समाधान करेंगे।

रामेश्वर—मित्रवर, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है कि सुधारकोंकी निंदा की जा रही है,

उन्हें गालियां दी जा रही हैं, उनके सर झूठे दोष मढ़े जा रहे हैं क्योंकि यह बात तो स्वाभाविक है। जब तीर्थंकर सरीखे लोकोत्तर पुरुषोंके प्रयत्नमें भी विघ्न बाधाएं उपस्थित हुई—अनेक मिथ्यादृष्टि लोग उनकी निन्दासे नहीं चूके, तब आजकलके सुधारकोंको भी इन विघ्न बाधाओंका साम्हना करना ही पड़ेगा।

अतएव सुधारकोंको विघ्न बाधाओंकी परवा न करते हुए अपने उद्देशपर कायम रहना चाहिये—उससे किंचित् भी नहीं चिगना चाहिये। सुधारककी अब सभा उस सेनापतिके समान होना चाहिये, जो सेनाको पीछे किये हुए गोलीकी परवा न करता हुआ शत्रुका साम्हना करता है।

सुधारक लोग भी जंगके मैदानमें है। उनके हाथमें श्री १००८ महावीरके पवित्र उद्देशोंका झण्डा है, उन्हें विघ्न—शत्रुओंसे विजय करना है। अतएव उन्हें निर्भय होकर आगे बढ़ते जाना चाहिये।

सुधारक लोगोंको सर्वस्व अर्पण कर इस भोले समाजकी सेवा करनी चाहिये। उनके भोलेपनसे अपने स्वार्थको पूर्ण करनेवाले लोग तो "धर्म डूबा, धर्म डूबा" चिल्लावेंगे ही। ईसाईयोंकी एक कहावतका मतलब है कि 'दुनियांको ठगनेके लिये शैतान भी ईश्वरका नाम ले लेता है" अगर इस चालको आज सुधारके विरोधी भी चलें तो कुछ आश्चर्य नहीं है।

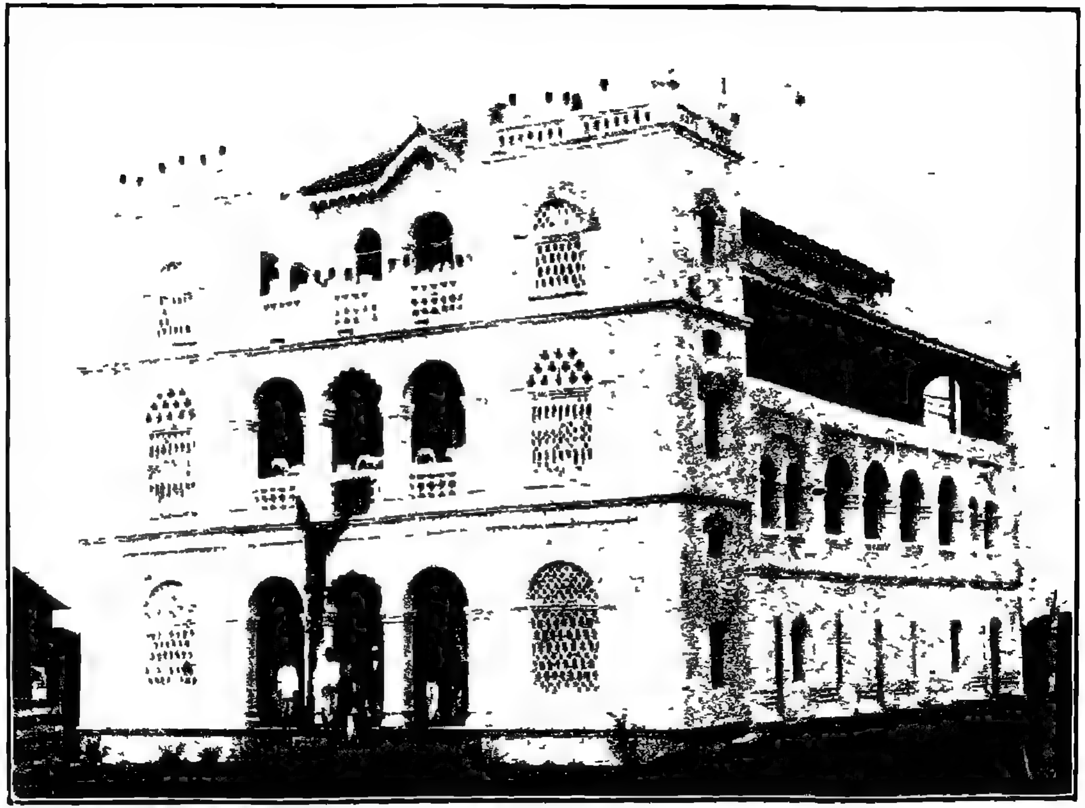
प्रियवर ! अब आप तो समझ ही गये होंगे कि सुधारकोंका ऐसी अवस्थामें क्या कर्तव्य है।

रामाराम—मित्रवर, आपने जो बताया है वह मैं भली भांति समझ गया। मुझे विश्वास है कि समाजका सुधार सुधारकवर्गोंके द्वारा अवश्य ही होगा और इसके सुयशकी पताका उन्हींके हाथमें रहेगी। अच्छा, अब मैं जाता हूं और आशा करता हूं कि आप फिर भी कभी इसी तरह सम्बोधन करेंगे। जुहारु।

फिर कहाँ ?

तू याद कर भगवानकी,
नर तनका पाना फिर कहां ?
यह चन्दरोज़ा ज़िंदगी है,
हाथ आना फिर कहां ?
खेलमें खोया लड़कपन,
ऐशमें जवानी गई।
बूढ़ा हुआ बेकार है,
तेरा ठिकाना फिर कहां ?
बोल शीरीं बात हरदम,
सबसे हिल मिलकर रहो।
भूलकर, इतरा न हरगिज़,
यह ज़माना फिर कहां ?
राम कहां ? रावन कहां ?
कौरव कहां ? पांडव कहां ?
कूंचका जब हो नक़ारा,
यां ठिकाना फिर कहां ?
नेकी करो, धर्मी बनो,
साबित रहो ईमानपर।
नाम कर जाओ जहॉमें,
होगा आना फिर कहां ?
मत सता 'प्रियवर' किसीको,
सबको प्यारी जान है।
जान ही जब ले चुके तो,
जानजाना फिर कहां ?

पन्नालाल "प्रिय", बिंद्रावन।



श्री महावीर ब्रह्मचर्याश्रम—कारंजा (बरार)

(इसके इस छात्रालय, भोजनालय, जैन मंदिर, औषधालय, आरोग्य मंदिर व व्यायामशालाके भवनमें करीब १०००००) रु० लगे हैं

वरदान।

(नाटक)

(ले०-श्री सा०रत्न पं० दरबारीलालजी न्यायतीर्थ)

प्रथम दृश्य।

(मिथ्यात्वका प्रवेश-आर्तस्वरमें गायन)

क्या करूं ! जाऊँ कहाँ ? किसका शरण लूं आज मैं।
भाग्य फूटा, खोचुका, साम्राज्यके सब साज मैं॥
फिर रहा दर दर भिखारी-सा बना मैं आजकल।
हा ! खड़ा होना कठिन है, होगया इतना निबल॥
ढोंग सारे उड़ गये हैं, रूढ़ियां भी मिट चुकीं।
बेवकूफीसे भरीं, थोथी क्रियायें पिट चुकीं॥
अब न आडम्बर रहे, सर्वत्र सम्यग्ज्ञान है।
हाय मेरी मौतका, सर्वत्र ही सामान है॥

आह ! क्यासे क्या होगया। मेरी सारी शान धूलमें मिल गई। अब न पशुयज्ञ होने है, न शूद्रोंके साथ घृणा की जाती है न स्त्रियोंके अधिकार छीने जाते हैं, न गिरोंको गिराया जाता है, उस महावीरने सर्व नाश कर दिया। सुनते हैं उसकी सभाओंमें सब पशुओंके लिये एक ही सभा है, वहीं शेर बैठने है, वहीं हरिण, वहीं बिल्लियां, वहीं चूहे। मनुष्योंमें भी ऐसी ही संकरता फैलाई है, सब एक ही कोठेमें बैठने हैं। जहां ब्राह्मण वहीं शूद्र, जहा घृत वहीं अमृत। आह ! लोगोंके हृदयमें बैठे हुए घमडको उसने इस तरह चूरचूर कर दिया है, फिर भी दुनियां उसे मानती है और मुझे पैरोंसे कुचलती है।

(मूर्खताका प्रवेश)

मूर्खता-प्राणनाथ ! बचाइये ! बचाइये !! मैं मारीमारी फिर रही हूं, मुझे सहारा दीजिये। अपनी गोदमें मेरे बैठनेलायक जगह कीजिये!

मिथ्यात्व-आह ! प्रिये ! प्रिये !! तुम्हारी भी यही दशा ! हाय ! मैं आज अपनी प्रियाको थोड़ीसी जगह भी नहीं देसकता ? प्रिये ! जगह कैसे दूं ? मैं बैठ सकूं तो तुम्हें गोदीमें बिठलाऊं परन्तु आज तो सुखसे मरनेके लिये भी जगह नहीं है।

मूर्खता-हाय ! अब मैं कहां जाऊं ? यज्ञमंडप उजड़ चुके हैं। लोगोंके हृदयमें अंधकार नहीं है, धर्मको सब लोग अपनी चीज समझने लगे हैं। न अब कोई ढोंगोंकी पर्वाह करता है और न मेरे आधारपर जीवित रहनेवाले क्रियाकांडकी कहीं पूँछ है। सर्वत्र ज्ञान और विवेककी दुन्दुभि बज रही है। वह महावीरकी छोकरी जिनवाणी आज इठलाती फिरती है उसने आज संसारको पागल बना दिया है।

मिथ्यात्व-प्रिये ! सचमुच प्रलय काल उपस्थित हो गया है। अब न संस्कारोंकी धूम है न पितृ तर्पण, न यज्ञपूजा न आडम्बर, न कन्यादान, न गोदान। सर्वत्र स्वतन्त्रता और विवेक राज्य कर रहे हैं।

हमने सद्धर्म छिपा करके जो झूठा धर्म बताया था।
सकुचित बनाकर लोगोंको ढोंगोंसे मन बहलाया था॥
सब छिन्न हो गया जाल न उसका एक तन्तु बचने पाया।
हा ! सारा भंडाफोड हुआ खुल गई हाय ! मेरी माया॥

मूर्खता-प्राणनाथ ! सत्य है—

नहीं अब मूर्ति पूजाकी क्रियायें भी दिखातीं हैं।
न झूठी कल्पनाएं अब हृदयके पास आती हैं॥
न मनक पातकोंकी गीति अब धार्मिक कहानी है
न डरने मूतनेमें अब सुरोंकी पर्न आती॥
नहीं अब अन्धश्रद्धाशील पंडित भी दिखाते हैं।
जहा देखो वहीं ज्ञानी विवेकी तम हटाते हैं॥

न यक्षोंकी न वृक्षोंकी न भूतोंकी कहीं अर्चा।
जहां देखो वहीं है आज सम्यग्ज्ञानकी चर्चा॥

मिथ्यात्व—प्रिये, अब इस दुर्दशासे हमें कौन बचायेगा ? अब किसकी आशा करें ?

मूर्खता—प्राणनाथ ! कुदेव ही आजतक हमारे रक्षक रहे हैं, उन्हींके पास चलकर फर्याद करना चाहिये ।

मिथ्यात्व—(गहरी सांस लेकर) प्रिये ! तुम्हें नहीं मालूम कि आजकल उनकी कौन सुनेगा ? परन्तु अब वहां तो चलना ही पड़ेगा, जैसी सलाह होगी, वैसा काम किया जायगा ।

(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य ।

(कुगुरुका प्रवेश)

कुगुरु—सन्ध्या होनेवाली है । दिनभर चक्कर लगाते लगाते थक गया लेकिन एक मुट्ठीभर आटा न मिला । जहां जाता हूं धुतकारा जाता हूं । जहां धर्मके नामपर मनमानी मौज करता था वहीं भीखके नामपर सूरत दिखलाना भी मुश्किल होगया है । (साम्हने देखकर) अरे ये कौन लोग हैं ? कहीं सुधारक न हों नहीं तो मेरा कचूमर निकाल लेंगे (भागनेका नाट्य करता है फिर गौरसे देखकर) नहीं ! नहीं ! ये सुधारक नहीं हैं । ये लोग भी किसी विपदाके मारे हुए हैं, तभी तो मुंह लटका हुआ है ।

(मिथ्यात्वियोंका प्रवेश)

सब—महाराज ! महाराज ! देखो ! अपने भक्तोंकी दुर्दशा देखो !

कुगुरु—क्या देखूं ! जब मैं स्वयं मर रहा हूं तब भक्तोंकी दुर्दशाका क्या कहना ? दैव बिल्कुल प्रतिकूल है ।

एक भक्त—महाराज ! अब तो हम लोग भूखों मर रहे हैं । अगर पीठपर मार होती तो सह लेते परन्तु पेटपर मार तो नही सही जाती । विवाह शादियोंमें, जन्म मरणपर सैकड़ों ढोंग प्रचलित थे इसलिये हम लोगोंकी गुजर होती थी, अब सब मिट गया है—न पितृतर्पण है न गृहदेव-पूजा, न देवता तर्पण है न कुलदेव पूजा । अब तो विद्यादेव, यक्षदेव, वास्तुदेव, तिथिदेव, वार-देव, दिक्पाल आदि सभी धक्का खाते हैं । पहिले हम बात बातमें लोगोंको अपवित्र बना देते थे, मूर्खता देवीके प्रतापसे वे लोग मिथ्या भयके चक्करमें आजाते थे तब हमारी मौज थी। अब उन्होंने यह मिथ्यात्व दूर कर दिया है, स्त्रियाँ भी दुष्टा जिनवाणीके प्रतापसे समझदार हो गई हैं, उनने सब ढोंगोंको बता बता दी है, अब वे शास्त्र बांचती हैं, मर्दोंके साथ बैठकर धर्मचर्चा करती है, सामाजिक व्यवस्थामें पुरु-षोंके साथ मिलकर बराबरीसे काम करती हैं । अब कहिये हम लोगोंकी दाल कैसे गले ?

कुगुरु—किसी तरह इनको कुराहपर लाना चाहिये ।

भक्त—ये लोग किसीकी नहीं सुनते ।

कुगुरु—फिर भी कोशिष तो करनी चाहिये ।

भक्त—कीजिये ! देखिये, ये साम्हनेसे श्रावक लोग आरहे है । छिपकर इनके रंगढंग तो देखना चाहिये ।

कुगुरु—बहुत अच्छा ।

(छिपनेके लिये सबका प्रस्थान)

तीसरा दृश्य।

(श्रावकोंका प्रवेश)

सर्वज्ञ त्रिलोकीश्वरके दर्शन पाये।
अब खुले हमारे भाग्य वीर प्रभु आये॥

जगमें मिथ्यामत अन्धकार था छाया।
मदमस्त जनोंने जगको यों भरमाया॥
सद्धर्म छिपाकर झूठा धर्म बताया।
हा! क्रियाकांडका कैसा जाल बिछाया॥

बहकेंगे अब हम किसीके न बहकाये।
अब खुले हमारे भाग्य वीर प्रभु आये॥

कृत्रिम बंधनमें अखिल जगत जकड़ा था।
हो मंत्रमुग्ध सा पैरों तले पड़ा था॥
सब जगह एक जातीय घमंड कड़ा था।
सद्गुणसे भी ब्राह्मणका नाम बड़ा था॥

अन्धेर देखकर थे सब ही घबराये।
अब खुले हमारे भाग्य वीर प्रभु आये॥

छिन गये रहे सारे अधिकार हमारे।
अधिकार मांगने गये, गये बस मारे॥
पिघले शीसकसे दोनों कान बिदारे।
निश दिन विप्रोंसे पिसे शूद्र बेचारे॥

थे दुष्ट धर्मको भी कैदी कर लाये।
अब खुले हमारे भाग्य वीर प्रभु आये॥

प्रभुका है सच्चा धर्म सभी पा सकते।
उसमें पशु, अबला, शूद्र सभी आ सकते॥
प्रभुके चरणोंके पास सभी जा सकते।
सुनकर दिव्यध्वनि धर्म रत्न ला सकते॥

हां! रविने आकर उल्लू मार भगाये।
अब खुले हमारे भाग्य वीर प्रभु आये॥

जय! भगवान महावीरकी जय!

(भक्तोंके साथ कुगुरुका प्रवेश)

कुगुरु-(श्रावकोंसे) भाई! हमारी दो बातें सुनोगे?

एक श्रावक-माफ करो बाबा! सुनते सुनते जनम बीत गया है, अब कुछ चैन लेने दो।

दूसरा-अजी सुन लो! बिचारा नम्रतासे बोल रहा है।

तीसरा-बिलकुल गौ है।

चौथा-थोंद पिचक गई है। अब गौ न होगा तो क्या होगा?

पांचवां-अजी सुननेसे क्या हानि है। देखें तो क्या कहता है?

(कुगुरुसे) कहो बाबा क्या कहते हो?

कुगुरु-क्या कहें? तुम्हारे ढंग देखकर कहनेको जी नहीं चाहता।

पांचवा-खैर! यह आपकी खुशी (साथियोंसे) चलोजी चलें।

कुगुरु-अरे भाई! क्यों इतनी जल्दी करते हो?

पांचवा-आप तो बात भी नहीं कहना चाहते।

कुगुरु-मुझे ज्यादा कुछ नहीं कहना है। बात इतनी ही है कि तुम लोग एक सुधारककी बातोंमें फसकर प्राचीन धर्मको खो रहे हो। जब पुराने रिवाज नष्ट होजावेंगे तो फिर बचेगा क्या? तुम्हारी इन करतूतोंसे समाज रसातलमें चली जायगी।

पांचवां-माफ कीजिये! हम ऐसा पुराणपंथी बनना पसंद नहीं करते। हम परमार्हत परम सुधारक भगवान महावीरके शिष्य हैं। भगवानने हमको ऐसा रास्ता बता दिया है कि अब हमें कोई भुला नहीं सकता। धर्म अधर्मका निर्णय हम स्वयं कर सकते हैं। अब हम कोल्हूके बैल नहीं हैं कि आंखोपर पट्टी बंधवाकर एक ही जगह चक्कर लगाते रहें।

कुगुरु-इस तरहकी स्वतंत्रता स्वच्छन्दता है इससे तुम्हारा अनिष्ट होगा। हमने सुना है कि

अब तुम लोग पितृतर्पण, देवतर्पण आदि नहीं करते हो। गृहदेव, कुलदेव, विद्यादेव, यक्षदेव, वास्तुदेव, तिथिदेव, वारदेव, दिक्पाल आदिकी पूजा तुमने बंद कर दी है, परन्तु याद रक्खो! जब ये कुपित होजावेंगे तो सर्वनाश कर देंगे।

पांचवां–ऊह ! हम लोग ऐसे कल्पित देवोंसे नहीं डरते। हम लोग अपने पुरुषार्थके भरोसे जीते हैं, किसी देवी देवताके आगे सिर फोड़कर नहीं। अगर ये देवता सच भी होते तौभी हम इनकी पूजा नहीं करते। रास्तेसे अभी कोई डाकू हमको सताता है या सता सकता है तो क्या हम उसे देव समझकर पूजने लगेंगे? उसको तो सजा देनेकी और दिलानेकी कोशिष करेंगे यही बात उपर्युक्त देवोंके विषयमें भी है।

कुगुरु–अरे भाई ! पितृतर्पण तो न दूर करो ! जिनकी तुम संतान हो परलोकमें तुम उन्हींको भूखा मारना चाहते हो ?

पांचवां–बस ! बस ! इन गप्पोंको रोको ! अपने २ कर्तव्यके अनुसार सभी जीव नाना योनियोंमें जन्म ले लेते हैं। वे हमारी रोटियां खानेके लिये पितृलोकमें जाकर नहीं बैठते। अपने भक्तोंका पेट भरनेके लिये तुम चाल चलते हो लेकिन हम लोग अब ऐसे मूर्ख नहीं है कि पितृ तर्पणके जालमें पड़कर तुम्हारे भक्तोंका और पचोंका पेट तर्पण करने लगें।

कुगुरु–अरे ! तो कुछ शौचधर्मका भी ख्याल है।

पांचवां–हां ! उसका तो पूरा ख्याल है। जहांतक बनता है लोभको दूर हटानेकी कोशिष करते हैं।

कुगुरु–अरे भाई ! लोभ त्यागका शौच नहीं, लौकिक शौच।

पाचवां–अभी तो तुमने शौच धर्म कहा था न ? अब लौकिक शौच कहने लगे। लौकिक शौच तो जरूरत और सुविधाके अनुसार करते रहते है। उसका धर्मके साथ क्या सम्बंध ?

कुगुरु–शास्त्रोंमें तो लिखा है।

पांचवा–लिखा होगा ! अब उन शास्त्रोंका मलीदा बनाकर पेट पूजा कर डालो ! शास्त्रोंका क्या ठिकाना ? जिसको जहां जब जैसी जरूरत हुई वहीं वैसे शास्त्र बना दिये और बिलकुल लौकिक बातोंको भी धर्मका रूप दे दिया तथा अन्धश्रद्धाके जालमें फंसाकर सबको पथभ्रष्ट कर दिया, परन्तु मनुष्य तो मनुष्य है वह पशु नहीं है कि शास्त्रोंमें अगर दुनियाभरका कूड़ा कचरा आजाय तो भी आंख मीचकर मानता रहे। वह अपनी बुद्धिसे विचार करता है फिर सत्यासत्यका निर्णय करके मानता है। भगवान महावीरकी शिक्षाका यही मूल मत्र है। भगवानका धर्म वैज्ञानिक है। विज्ञानकी इस झांकीके साम्हने उल्लुओंको अंधा ही होना पडेगा।

कुगुरु–(गहरी सांस लेकर) खैर भाई, जैसा तुम्हें सूझे वैसा करो। कमसे कम एक बातका ध्यान अवश्य रक्खो ! नहीं तो समाजमें अव्यवस्था पैदा हो जायगी।

पांचवा–कहो ?

कुगुरु–जो धर्म तुम्हें रुचे वही मानो ! लेकिन ब्राह्मणोंकी आजीविका क्यों छीनते हो ? अध्ययन अध्यापनका काम तुमने अपने हाथमें ले लिया है, पूजा अर्चा भी अब तुम्हीं कर लेते हो, यहां तक कि इस विषयके सर्वाधिकार तुमने स्त्रियोंको भी दे दिये हैं। इससे वर्णव्यवस्था बिगड़ती है

उसके बिना धर्म बिलकुल भी नहीं बच सकता।

पांचवा—नहीं महाराज! अब धर्मकी ओटमें रोटियाँ खानेका मौका नहीं दिया जा सकता। वर्णव्यवस्था लौकिक रिवाज है। जिस तरह सुविधा होगी हम उसे रक्खेंगे। एक लौकिक बातके लिये हम धर्मकी हत्या नही कर सकते हैं। खासकर ब्राह्मणोंका कार्य तो सभी वर्णोंका कार्य है उन्हें उसका ठेकेदार कैसे बनाया जा सकता है? महाराज भरतने भूलसे कुछ लोगोंको यह ठेका दे दिया था लेकिन भगवान ऋषभदेवके वाक्योंसे जब उन्हें मालूम हुआ कि ये ठेकेदार नुकसान पहुँचायेंगे तो वे ठेका छीननेकी तैयारी करने लगे। उस समय कुछ नुकसान नहीं था इसलिये वे लोग बच गये, नहीं तो उसी दिन ब्राह्मणोंका ब्राह्मणपन मिट्टीमें मिल जाता। अब उनका समय बीत चुका है इसलिये अब सुखके साथ ब्राह्मणत्वको समाधिमरण करने दीजिये।

कुगुरु-तो क्या तुम जातिपांति नहीं मानते हो? कमसे कम ऋषभदेव तीर्थंकरका अपमान तो न करो।

पांचवा—भगवान ऋषभदेवके मानापमानका हमें ख्याल है। यह बात तुमसे सीखनेकी नहीं है। वर्णव्यवस्था अर्थात् जातिव्यवस्था तीर्थंकर ऋषभदेवने नहीं की थी, किन्तु महाराजा ऋषभदेवने की थी। अगर यह तीर्थंकर प्रणीत व्यवस्था होती तो एक भरत तो क्या, हजारों भरत भी उसमें परिवर्तन नहीं कर सकते थे।

कहा जाता है कि दान देनेके लिये भरतने ब्राह्मण बनाये, क्या इतने विशाल परिवर्तनका सिर्फ इतना ही कारण था? दान देनेके तो सैकडों उपाय हैं और तब भी थे लेकिन इस तरह परिवर्तन करनेका खास उद्देश यह था कि वर्णव्यवस्था ऐसी सनातन न हो जावे कि जरूरत पड़नेपर बदल न सके। दूसरी बात यह कि महाराज भरतने इस प्रकार परिवर्तन करके सिद्ध करना चाहा था कि वर्णव्यवस्थाका बनाना बिगाडना धर्माचार्योंका नहीं, किन्तु समाजके नेताओंका काम है।

कुगुरु—अरे बाबा रे बाबा। हम नहीं समझते थे कि तुम लोग ऐसे नास्तिक हो। तुम्हारे पास तो खडे होनेका धर्म नहीं है। ऐसी बातें करके तुम समाजसे माफी मांगो और अपने शब्द वापिस लो नहीं तो ठीक नहीं होगा।

पांचवा—जैसा होगा हम भोगेंगे, अब आप प्रस्थान कीजिये! नहीं तो लेनेके देने पड जांयगे।

(सबका प्रस्थान)

चौथा दृश्य।

(महिलाओंका गाते हुए प्रवेश)

चलो सखी दर्शन कर आवें महावीर प्रभुजी आये।
वीतराग सर्वज्ञदेवके सब ही ने दर्शन पाये॥
हैं वे परम वीतरागी प्रभु उनमें नहीं मोहमाया।
परम शत्रुओंपर भी करते शांतिमयी शीतल छाया॥
जगत धर्मका प्यासा था प्रभुने धर्मामृत बरसाया।
ऊंचनीच नरनारी खग पशु सारा जगत वहां आया॥
ज्ञान और चारित्ररूप मणिजटित हार हमको लाये।
चलो सखी दर्शन कर आवें महावीर प्रभुजी आये॥
कानोंमें सन्मत्र रूप वे कर्णफूल पहिराते हैं।
आखोंमें अज्ञान विनाशक अंजन ज्ञान लगाते हैं॥
दान धर्म रूपी कँकण हाथोंके लिये बताते हैं।
मन मनके आभूषण पाकर लोग खुशी होजाते हैं॥
चलो सखी पहिने हम, प्रभुजी शीलमयी साड़ी लाये।
चलो सखी दर्शन कर आवें, महावीर प्रभुजी आये॥

समदर्शी हैं पुत्र पुत्रियोंमें प्रभुको कुछ भेद नहीं।
सबको किया स्वतंत्र जगतमें रहा किसीको खेद नहीं॥
जन्म जन्मके पाप नाथके पास कटेंगे नहीं कहीं।
दर्शन, ज्ञान, चरित्र रूपशिव-पथ मिलेगा चलो वहीं॥
सर्व सिद्धियां वहीं खड़ी हैं प्रभु हमको देने लाये।
चलो सखी दर्शन कर आवें महावीर प्रभुजी आये॥

(कुगुरुका प्रवेश)

कुगुरु—(स्त्रियोंसे) तुम लोग किसकी उपासना करने जा रही हो ?

एक वृद्धा—भगवान महावीरकी।

कुगुरु—लेकिन वह सुधारक हैं उसके कहनेमें लगोगी तो तुम्हारा मनुष्य जीवन नष्ट होजावेगा।

वृद्धा—अर्थात् स्वर्गीय जीवन प्राप्त होजावेगा, यह तो कोई बुरी बात नहीं है।

कुगुरु—हैं! तुम लोग चार दिनमें ही इतनी वाचाल होगई! जो रीतिरिवाज या धर्म, जन्मसे आरहा है उसे तोड़कर क्या तुम समझती हो कि तुम्हारा कल्याण होगा ?

वृद्धा—जन्मकी रीतियोंको कौन पाल सकता है? जन्मसे लोग नङ्गे पैदा होते हैं, लेकिन जीवन-भर नङ्गे नहीं रहते, जन्मसे भाषा ज्ञान नहीं रहता है, फिर भी वह सीखा जाता है, जन्मसे मनुष्य कमजोर, परावलम्बी और अज्ञानी रहता है है लेकिन पीछे वह बलिष्ठ, स्वावलम्बी और ज्ञानी बनता है। अगर मनुष्य जन्मकी स्थितिका पालक बना रहे तो मानव जीवनमें और पाशव जीवनमें क्या अन्तर रहे ?

कुगुरु—देखो! यह तुम्हारी स्वच्छन्दताका परिणाम है जो तुम मर्दोंके साम्हने इस तरह मुंह चला रही हो, यह स्वच्छन्दता तुम्हें अभी अच्छी मालूम होती होगी, लेकिन इसका फल बहुत बुरा होगा। तुम्हारा जीवन अपवित्र हो जायगा। अच्छा! मै पूछता हूं तुम अपने भगवानकी पूजा करती हो ?

वृद्धा—अवश्य!

कुगुरु—प्रक्षाल या अभिषेक भी अपने हाथसे करती हो ?

वृद्धा—अवश्य! इसके लिये भाडेतू आदमीकी क्या जरूरत है?

कुगुरु—अब तुम्ही सोचो! तुम एक नग्न मनुष्यके दर्शन करती हो, उसकी मूर्तिका अभिषेक करती हो क्या इसतरह तुम्हारा ब्रह्मचर्य्य सुरक्षित रह सकता है ?

वृद्धा—आः! अपनी मा बहिनोंके विषयमे मिथ्या कलङ्क लगाने वाले नादान! मैं पूछती हूं कि जब तुम बाल्यावस्थामे नगे रहते थे और तुम्हारी माताएं तुम्हें गोदमें लेकर, छातीसे लगाकर खिलाती थी तब क्या उनका शील नष्ट होजाता था? क्या तुम सब शीलभ्रष्ट माताओंकी सन्तान हो? क्या तुमसे मिलनेवाली तुम्हारी बहिनें और पुत्रिया शीलभ्रष्ट हैं? धिक्कार है तुम्हारी इस कल्पना बुद्धिको और पंडिताईको। ऐसी कल्पना करनेके पहिले तुम्हारा हृदय फट जाना चाहिये, ऐसी बात करते समय तुम्हारी जिह्वाके सैकड़ों टुकड़े हो जाना चाहिये और अब भी अगर कुछ लज्जा हो तो पानीमें डूब मरो और पापका प्रायश्चित्त करलो! (कुगुरुका और उनके भक्तोंका सिर नीचा हो जाता है)

एक भक्त—माताजी! आप उत्तेजित न हों। हम लोगोंने किसी बुरे अभिप्रायसे यह बात नहीं कही थी। आपने जो बालकोंका उदाहरण दिया

है वह विषम है, बालकमें और बड़े आदमीमें बड़ा अन्तर है।

वृद्धा—क्या बड़ी उमरमें बहिनसे भाई, पितासे पुत्री, मातासे पुत्र आदि नहीं मिलते ?

भक्त—मिलते हैं ! परंतु उनके भावोंमें अंतर है।

वृद्धा—तो क्या भगवानके दर्शनोंमें और पूजन प्रक्षालमें भावोंका अन्तर नहीं है ? जरा तुम अपने ही ग्रंथोंको देखो ! जिन अप्सराओंने वृद्ध ऋषिको सवस्त्र देखकरके भी परदा कर लिया था वे ही युवक और नग्न शुकदेवको देखकर नग्नी खेलती रहीं। क्या शुकदेव बच्चे थे या अप्सराएं बच्चियां थीं ? आश्चर्य है कि भावोंके माहात्म्यकी यह मोटी बात पंडित होकर भी तुम्हारी समझमें नहीं आती ! आखिर यह पंडिताई है किस मर्जकी दवा ?

भक्त—माताजी ! हम लोग आपकी विद्वत्ताका लोहा मानते हैं। फिर भी इतनी प्रार्थना अवश्य करते हैं कि स्वतन्त्रतासे भारतीय संस्कृतिको धक्का लगेगा।

वृद्धा—भाई ! हमें संस्कृति मात्रका पुजारी न होना चाहिये। पुजारी होना चाहिये हमें सत्य, शिव और सुन्दरका। अगर हमारी संस्कृतिमें सत्यता, शिवता (कल्याणकारिता) और सुन्दरता नहीं है तो वह हेय है। हमें उस संस्कृतिको दूर हटाकर सत्य शिव सुन्दर संस्कृतिको पैदा करना चाहिये। खैर ! मुझे जो कहना था सो कह चुकी: अब जाती हूं (साथकी स्त्रियोंसे) चलो बहिनो।

भक्त—माताजी ! हम अन्धोंकी आंखें खोलकर कहां जाती हो ? आंखें खोली हैं तो सत्पथपर भी ले चलो। मेरे धन्यभाग्य ! कि आज मैं इस कुगुरुके जालसे निकल रहा हूं।

कुगुरु—(चौंककर) ऐं ! तुम लोग एक औरतकी ही बातोंमें आगये ?

भक्त—महाराज ! धर्म और विद्वत्ताका ठेका सिर्फ पुरुषोंको ही नहीं मिला है। अब आप यहा अरण्यरोदन न कीजिये ! और अपना रास्ता नापिये।

(कुगुरुका प्रस्थान, थोड़ी देर निस्तब्धता)

वृद्धा—बेटा !

भक्त—मां !

वृद्धा—चलो ! भगवानके दर्शनोंको चलें।

भक्त—चलिये !

(भक्तका प्रस्थान)

पांचवां दृश्य।

(कुगुरुका प्रवेश, आर्तस्वरमें गायन)।

हाय मेरे राज्यका होता यहीं अवसान है।
पहुंचता हूं मैं जहां होता वहीं अपमान है॥
उदित होते सूर्यके होती दशा जो घूककी।
हो रही वह आज मेरी धूल होती शान है॥
भक्त लोगोंकी मुझे आशा जरा थी बच रही।
वे निराशा दे गये अब तो तपड़ती जान है॥
राज्य होगा सत्यका पर मैं मरूंगा भूखसे।
हाय ! लोगोंका यहां दिखता न एक निशान है॥
हाय ! खानेके लिये विष भी यहा मिलता नहीं।
है पिचकती तोंद यह हा ! पेट पीठ समान है॥
क्या करूं जाऊं कहां मैं किस तरह जीवित रहूं।
कौन दे सकता मुझे हा ! आज जीवनदान है॥

(मिथ्यात्व और मूर्खताका प्रवेश)

मिथ्यात्व—फिर चुका हूं सब जगतमें पर कहीं आश्रय नहीं।
भक्त मेरे मिट गये कोई न दिखता है कहीं॥
मूर्खता—नाश हो जिनवाणि तेरा क्यों सताती है मुझे।
दिन फिरेंगे दुष्टताका फल चखाऊंगी तुझे॥

(कुगुरु इन दोनोंको थोड़ी देर तक आश्चर्य-चकित होकर देखता है फिर मिथ्यात्वके पैरों-पर गिरकर कहता है)

कुगुरु–कौन ? मेरे परमाराध्य पिताजी ?

मिथ्यात्व–हां ! बेटा।

कुगुरु–आपकी यह दशा !

मिथ्यात्व–और तेरी ?

कुगुरु–हाय ! हम सबका भाग्य एक ही साथ फूट गया।

मिथ्यात्व–बेटा ! अब इसका क्या उपाय है ?

कुगुरु–पिताजी ! मैं तो किंकर्तव्यविमूढ होरहा हूं, जी चाहता है आत्मघात करलूं।

मिथ्यात्व–नहीं बेटा ! ऐसा भूलकर भी न करना। नहीं तो मेरी कमर टूट जायगी।

कुगुरु–तो क्या करें ? कैसे जियें ? किसके शरण जायें ?

मिथ्यात्व–अब एक ही उपाय है।

कुगुरु–वह क्या ?

मिथ्यात्व–कुदेवोंके दर्बारमें जाना।

कुगुरु–क्या कुछ सफलता होगी ?

मिथ्यात्व–कुछ न होगा तो आश्वासन तो मिलेगा।

कुगुरु–अच्छा ! चलिये !

(सबका प्रस्थान)

छठवां दृश्य।

(पर्दा उठता है, कुदेवोंका दर्बार, सब कुदेव यथास्थान बैठे हैं)

(रूढ़ियोंका गायन)

जय कुदेव ! जय कुदेव ! जगत करत सेव,
हमारी न खबरें विसारियो !
दुनियाको ढोंगोंमें फांस रखो देव।
भूखों न दासियोंको मारियो ॥ जय० ॥
तुम ही हो राजाधिराजा हमारे,
अँखियोंके तारे।
आवें सुधारक जो घात करें देव !
विपदासे हमको उबारियो ! ॥ जय० ॥
आये सुधारक विघातक हमारे,
उन्नतिके प्यारे।
तब पुराण पंथियोंकी सृष्टि करो देव।
रक्षा हमारी विचारियो ! ॥ जय० ॥

(मिथ्यात्वादिका प्रवेश, कुदेवोंका स्वागत करना)

कुदेव–कहिये ! आज तो आप बहुत रंजीदे मालूम होते हैं।

मिथ्यात्व–देव ! क्या कहें ? अब तो हम लोगोंको प्राण बचाना भी मुश्किल है।

कुदेव–आप इतनी चिन्ता न करें, हम सब लोग अमर हैं पराजित होसकते हैं, मगर मर नहीं सकते।

मिथ्यात्व–लेकिन हमारा यह जीवन तो मर-नेसे भी बुरा है।

कुदेव–संसारमें ऐसा होता ही है, सबके दिन एकसे नहीं जाते। एक समय घूरेके भी दिन फिरते हैं।

मिथ्यात्व–फिर भी कबतक इस तरह दिन कटेंगे? हमारी दुर्दशापर नजर डालिये ! कुगुरु और मूर्खतापर दया कीजिये ! और हमें समुन्नत होनेका वरदान दीजिये।

कुदेव–देखो ! अभी दो चार सौ वर्षतक तो कुछ नहीं हो सकता, इसके बाद धीरे२ तुम्हारी विजय होने लगेगी। दो हजार वर्षके बाद तुम्हारा साम्राज्य पूरा जम जायगा जो कि सैकड़ों वर्षों तक रहेगा।

मिथ्यात्व—महाराज ! इन लोगोंने मुझे परेशान किया है, घरमें घुस घुसकर मुझे मारा है। इसलिये इनका योग्य बदला लेनेकी इच्छा है।

कुदेव—एवमस्तु ! इनके लिये हमलोग खुद इनके घरमें अवतार लेंगे और अनेक देवी देवताओंके रूप धरकर वीतरागकी उपासनाको ढीला कर देंगे उस समय तुम काफी बदला लेसकोगे।

मूर्खता—महाराज, जिनवाणीने मुझे बुरी तरह मारा है इसलिये मैं चाहती हूं कि भविष्यमें मैं इसके घरमें घुस जाऊं।

कुदेव—एवमस्तु। सिर्फ तुम ही नहीं किन्तु तुम्हारे साथी ढोंग भी जिनवाणीके अंग बन जावेंगे, उसकी चेतना नष्ट हो जावेगी, उसका संस्थान हुंडक हो जावेगा, उसके शरीरसे दुर्गंध आने लगेगी।

कुगुरु—महाराज ! हमारे लिये भी ऐसा ही वरदान दीजिये !

कुदेव—एवमस्तु ! तुम उत्तम, मध्यम, जघन्य वेषोंको धारण करके अपने शत्रुओंमें पूजित होगे, उस समय तुम्हारे अच्छे बुरे नाना रूप होंगे, उन सबमें तुम अपमानका बदला लेसकोगे और मिथ्यात्व तथा मूर्खताको सहायता देसकोगे।

मिथ्यात्वादि—धन्य है देव ! धन्य है !

जय ! कुदेवमहाराजकी जय !

(पटाक्षेप)

सातवां दृश्य।

(मूर्खताका प्रवेश।)

मूर्खता—

दो दिनका उत्थान फिर, बहो पतनकी बात।
चार दिनाकी चांदनी, फेर अंधेरी रात॥

(नेपथ्यमें)

है न अंधेरी रात वह, घबड़ानेकी बात।
सूर्य चन्द्र बदले कभी फिरते हैं दिन रात॥

मूर्खता—आह ! मेरे मर्मको छेदनेवाली, मेरी आशापर पानी फेरनेवाली यह आवाज कहांसे आई ? चिंता नहीं ! अभी इन लोगोंके दिन हैं इसलिये चकलेने दो फिर देखा जायगा। (नेपथ्यकी ओर देखकर) देखिा यह साम्हनेसे कौन आ रही है ? अरे ! यह तो जिनवाणी आ रही है। अब कहां जाऊं ? अब यह मुझे न छोडेगी (भय नाट्य करती है)

(जिनवाणीका प्रवेश)

जिनवाणी—क्यों री ! अभीतक तू जीवित है ?

मूर्खता—जिनवाणि, इतना न इठलाओ ! सबके दिन एकसे नहीं जाते, तुम्हारे पतनका समय भी आनेवाला है।

जिनवाणी—हमारे पतनका ?

मूर्खता—हां ! हां तुम्हारे पतनका। जिस समय तुम्हारा अंग सड़ जायगा, उसके भीतर दुनियां भरका मवाद इकट्ठा हो जावेगा, तुम्हारी सूरत हुंडक होजावेगी, उस समय तुम्हारी छातीपर बैठकर मैं कोदों दरूंगी।

जिनवाणी—जा, जा ! (पैरोंकी ठोकरसे मूर्खताको गिरा देती है) छोटे मुह बड़ी बात ! मानों किसीने वरदान दे दिया हो !

मूर्खता—सताले ! सताले ! इस विपदाके समय खूब मनाले ! परन्तु मुझे वरदान ही मिला है। गिन गिनकर बदला लूंगी।

जिनवाणी—वरदान ! किसका वरदान ?

मूर्खता—जाकर अपने बाप महावीरसे पूछ !

(जल्दीसे प्रस्थान)

जिनवाणी—भाग गई ! हत्या टली । (कुछ विचार कर) लेकिन यह वरदान क्या बला है, चलूं पिताजीसे पूछूं ।

(प्रस्थान)

आठवां दृश्य ।

(भगवान महावीर गौतम आदि यथास्थान बैठे हैं, श्रावक लोग स्तुति कर रहे हैं) ।

जय ! जय ! जय ! वीरदेव ।
सुरनर मुनि करत सेव ॥
मिथ्यातम नाशक दुःखापहारी ।
हिंसाको दूर किया ।
पापोंको चूर किया ॥
जय ! जय ! जिनेन्द्रदेव सौख्यकारी ।
पतितोंके उद्धारक ।
समताके सचारक ॥
निबल बलदायक, सुज्ञानधारी ।
पाखण्ड दूर किया ।
रूढ़ियोंको चूर किया ॥
तोड़ डाले बन्धन, विनाशकारी ।

× × ×

जय ! जय ! जय महावीर !
जय ! जय ! जय ! महाधीर ! !
दूर करो जगत पीर !
जय ! जय ! जय !
सबका उद्धार करो !
मिथ्यामय बुद्धि हरो ! !
जीवनमें शान्ति भरो !
जय ! जय ! जय ! !

(जिनवाणीका प्रवेश)

गौतम—बहिन ! आज तुम्हारा मुख उदास क्यों है ?

जिनवाणी मुझे अपने भविष्यके विषयमें बुरी आशंका होरही है ।

गौतम बहिन ! तुम्हारे ऊपर कौन अंगुली उठा सकता है ?

महावीर-गौतम ! सबके दिन एकसे नहीं जाते।

जिनवाणी—(महावीरसे) पिताजी ! तो क्या जो कुछ मूर्खताने कहा है वह सत्य है ?

महावीर—बिलकुल सत्य ।

जिनवाणी—हाय ! तो आपने इस क्षणिक जीवनके लिये मुझे क्यों पैदा किया ?

महावीर—बेटी ! तुम्हारा जीवन क्षणिक नहीं है, परन्तु किसीका भी जीवन आपत्तियोंसे रहित नहीं होता। दिन और रात कैसा चक्कर लगता ही रहता है।

जिनवाणी—पिताजी ! अगर कुदेव उन पापियोंको वर देसकते हैं तो क्या आप मुझे नहीं देसकते ?

महावीर-बेटी ! भविष्यको बदलकर कोई किसीको वर नहीं दे सकता ।

जिनवाणी माना ! लेकिन भविष्यको न बदलकर तो आप वरदान देसकते हैं । जिसे आप भविष्य कहते हैं वही मुझे वरदान है ।

महावीर—“ एवमस्तु ”

जब मिथ्यात्व रूढ़ियाँ तुझको करदेंगी पूरा हैरान ।
तेरे पुत्र मूर्खता वश हो छोड़ चुकेंगे सम्यग्ज्ञान ॥
तब तेरे सुपुत्र कुछ तेरे लिये करेंगे जीवन दान ।
उन सुधारकोंसे ही होगा तेरी विपदाका अवसान ॥

गौतम—धन्य है प्रभो ! धन्य है ।

सब—भगवान महावीरकी जय !
जैनधर्मकी जय !

दरबारीलाल ।

सती दर्शन—

कुमारी चंदना।

[लेखक—पं० मूलचन्द्र जैन "वत्सल"]

महाराजा चेटक धर्म तथा न्यायके साथ २ अपनी प्रजाका पालन करते थे, अपनी न्यायशीलतासे वे अत्यंत ही प्रसिद्ध थे।

राजकन्या चंदनाकुमारी परम स्वरूपवान थी। वह नवयौवन संपन्ना सुन्दरी अपनी मनमोहक सुन्दरतासे रतिके सौन्दर्यको लज्जित करती थी।

सद्विद्या, दया, क्षमा, लज्जा तथा विनय आदि अनेक उत्तमोत्तम गुणसे भूषित वह सुन्दरी धर्मादि कार्योंके संपादनमें सदैव निरत रहती थी।

वह सत्पात्रोंको सदैव दान देती, दुःखित और दीन प्राणियोंके ऊपर दयाभाव धारण करती हुई, जिनपूजन, दर्शन और स्वाध्याय आदिक नित्य कृत्योंका योग्यतासे परिचालन करती थी।

अनेक सिद्धांत ग्रन्थोंका उसने उत्तमतासे अध्ययन किया था, तथा चारित्रके महत्वको प्रदर्शन करनेके लिए उसने ब्रह्मचर्य व्रतको धारण किया था।

वह सुन्दरी एक दिन संध्यासमय अपनी उच्च अट्टालिकाके छतपर सरलभावसे क्रीडा कर रही थी। वह प्रकृतिकी अद्भुत छटाका दिग्दर्शन करती हुई, अनेक दिव्य विचारोंमें तन्मयसी होरही थी।

उसी समय आकाशमार्गसे क्रीड़ा करता हुआ, एक सुन्दर विद्याधरकुमार अपने विमान द्वारा जा रहा था। अनायास उसकी दृष्टि मनको मोहित करनेवाली सुन्दरी चंदनाके ऊपर आ पड़ी। उस रति सदृशी युवतीका अवलोकन करते ही वह कामके तीक्ष्ण बाणोंसे जर्जरित होकर उसे प्राप्त करनेकी इच्छा करने लगा।

वह विचारने लगा—अहो! संसारमें ऐसी सुन्दर रमणीका दर्शन अत्यंत दुर्लभ है। अस्तु, इस रमणीरत्नको किसी उपायसे प्राप्त कर इसके द्वारा स्वर्गीय भोगोंका संपादन करना चाहिए।

उपर्युक्त विचारको अपने हृदयमें धारण करता हुआ वह दुर्बुद्धि उस बालिकाके हरण करनेकी चेष्टा करने लगा। किसी विद्वान्ने सच कहा है कि-"कामके बाणों द्वारा वेधित पुरुषके हृदयसे ज्ञान, विवेक, सद्बुद्धि और लज्जा भाग जाती है, वह कार्याकार्यके विचारसे सर्वथा शून्य होजाता है।" अस्तु, वह मदांध विद्याधर आकाशसे अपने विमानको नीचे लाकर, सरल स्वभाववाली उस कुमारिकाको बलात् उस शीघ्रगामी विमानमें बैठाकर आकाशमार्गमें चलने लगा।

इस दैविक दुर्घटनासे पवित्रहृदया चंदनाका मन भावी विपत्तिकी आशङ्कासे व्यथित होने लगा। वह अपने हृदयमें विचार करने लगी—अहो! यह दुरात्मा मुझे बलात्कार लेजाकर मेरे ब्रह्मचर्य व्रत भंग करनेका दुष्प्रयत्न अवश्य करेगा। देखो यह पापी अपने अमूल्य धर्मको नष्टकर अपने हाथोंसे दुर्गतिका बीज बोरहा है, किन्तु मैं प्राण जाते हुए अपने ब्रह्मचर्यका रक्षण करूंगी।

अहा! देखो, पूर्वमें सीता आदि सतियोंके ऊपर कितनी घोर आपत्तियां आईं, उन्हें कितनी प्रलोभनाओंका सामना करना पड़ा, भय, क्रोध और अनेक अत्याचारों द्वारा उनका मन विकलित

करनेका कुप्रयत्न किया गया, किंतु वे सतियां किंचित् भी अपने दृढ़ व्रतमे चलायमान नहीं हुई थीं। अहा! ऐसी सतियोंके द्वारा ही महिलाओंका गौरव विश्वमें विस्तीर्णताको प्राप्त होता है। वास्तवमें नारियोंका महत्व अपने पुनीत धर्मके पालनमें ही है। वे स्त्रियां कितनी नीच और दुर्गतिकी उपासिनी हैं, जो किंचित् विषय सुखोंके लिए, थोड़े समयकी इन्द्रिय तृप्तिके लिए अपने अमौलिक रत्न पतिव्रत धर्मको नष्ट कर अनंत संसारकी दुःखज्वालामें पड़नेका प्रयत्न करती हैं। जो नारियां नश्वर प्रलोभनोंमें पड़कर, आपत्तियों अथवा भयके सम्मुख अपने धर्मपर दृढ़ नहीं रहतीं वे संसारमें घोर अपयशको प्राप्त होती हैं। ऐसी नारियोंकी कायरता और विषयचेष्टाओंको धिक्कार है तथा उस कामदेवको भी धिक्कार है जिसके वश होकर मनुष्य अपने समग्र धर्मकृत्य और लोकलज्जाको तिलांजुलि दे बैठता है।

अस्तु, अब मेरा कर्तव्य है कि मैं अपनी इस परीक्षाके समय अपनेको अत्यन्त दृढ़ रक्खूं। वह इस प्रकार अपने हृदयमें विचार कररही थी, उधर उस विद्याधर कुमारने उसे अनेक प्रकारकी कामचेष्टाएं करके तथा बहुतसे प्रलोभनों द्वारा उसके हृदयमें काम विकार उत्पन्न करनेका अनुचित प्रयास किया किन्तु उसकी इन चेष्टाओंसे चंदनाका हृदय तनिक भी विचलित नहीं हुआ।

तब वह उसकी बहुत प्रकारसे विनय एवं शुश्रूषा करता हुआ बोला—देवी! मैं तुम्हारी किंचित् कृपाका अभिलाषी हूं। मुझ अकिंचनके ऊपर प्रसन्न होकर मुझे संतोषित कीजिए। हे सुन्दरी! तुझ कोमलांगीको मुझपर इतनी निष्ठुरता धारण नहीं करना चाहिए। मैं तेरी तनिक प्रसन्नतासे ही जीवित रह सकता हूं। अन्यथा यह जीवन कुछ समय पश्चात ही नष्ट हो जावेगा।

उसके इसप्रकार कौशलपूर्ण वचनोंका भी उसपर तनिक प्रभाव नहीं पड़ा। वह बोली- हे भाई, तू किंचित् लालसाके वश होकर क्यों इसप्रकार निंद्य कृत्य करनेके लिए उद्यत होरहा है? यह कार्य तेरे दोनों लोकोंके लिए घोर आपत्तिप्रदायक है। तुझे एक कुमारी बालिकाको इसप्रकार हरण कर उसके ब्रह्मचर्य नष्ट करनेका उद्योग करना अत्यन्त निंदनीय है। अस्तु, तेरा कर्तव्य है कि तू मुझे शीघ्र मेरे स्थानपर पहुंचा दे।

कुमारीकी इन शिक्षापूर्ण बातोंसे उस विद्याधरको किंचित् भी संतोष नहीं हुआ। वह और कुछ कहना चाहता था कि उसकी दृष्टि साम्हने आते हुए एक विमान पर पड़ी। उसको देखते ही उस निष्ठुरने भयभीत होकर शीघ्रतापूर्वक उस कोमलांगी कुमारिकाको विद्याद्वारा नीचेके घोर जंगलमें छोड़ दिया।

पाठकगण समझ गए होंगे कि उस विमानमें उसकी पत्नी इसके समीप आरही थी। अस्तु, विद्याधरने अपने इस घृणित कार्यका भेद प्रकट होजानेके भयसे उसे भयानक अटवीमें गिरा दिया!

(२)

कुमारी चंदना क्रूर जंतुओंसे व्याप्त उस भयानक वनमें पूर्वकृत कर्मोंके अशुभ फलोंको चिंतवन करती हुई अपने हृदयको आश्वासन देने लगी। वह विचार करने लगी—अहो! कर्मोंकी लीला बड़ी विचित्र है। संसारी प्राणियोंके

ऊपर इसका अरोक चक्र निरन्तर चल रहा है। यह अनेक महामण्डलेश्वर राजाओंसे सेवित अधिपतियोंको क्षणमात्रमें पथ का भिखारी बना देता है।

मानव जो पूर्व शुभ, अशुभ कार्य करते हैं उनका फल देनेमें यह कर्म बड़ा ही निष्ठुर है।

यह चक्रवर्ती महाराजा आदि किसी पर किंचित् भी दया नहीं करता, पूर्व कर्मफल भोगना प्रत्येक व्यक्तिके लिए अनिवार्य है।

खेद है मनुष्य इस प्रकार जानते हुए भी, कि उपार्जित कर्मोंका फल भविष्यमें अवश्यमेव भोगना पड़ेगा, पाप कृत्योंसे मुह नहीं मोड़ते। देखो, कुछ समय प्रथम मैं अपने शोभापूर्ण राजप्रासादमें सानंद विनोद कर रही थी, किंतु कुछ समय पश्चात् ही मुझे इस भयानक अटवीमें पड़ना पड़ा। अस्तु, अब मेरा कर्तव्य है कि इन पूर्वोपार्जित कर्मफलोंको शांतिपूर्वक सहन करूं। क्योंकि जो आपत्ति मानवोंके ऊपर जिस समय आकर पड़ती है उसे वह अवश्य ही भोगना पड़ती है। कर्मफल भोगनेमें व्यक्ति पराधीन है। यदि हृदयमें खेदपूर्वक उसे सहन किया जावे तो आपत्ति किंचित् भी न्यून नहीं होती किन्तु उत्कटता ही प्राप्त होती है।

इत्यादि विचारोंको हृदयमें धारण करती हुई वह किसी योग्य स्थान प्राप्तिकी इच्छासे उस बनमें यत्र तत्र भ्रमण करने लगी। उस बनके समीप ही एक छोटीसी भीलोंकी वस्ती थी। उस भीलपल्लीका एक अधिपति भील था वह अत्यंत क्रूर बुद्धि और धनलोलुप था। उस दिन अनायास वह उपरोक्त बनमें भ्रमण कररहा था।

भ्रमण करते हुए उसने कुछ दूरसे लावण्यवती चन्दनाकुमारीको देखा। उसे देखते ही उसके हृदयमें किंचित् करुणा तथा कुछ हर्ष उत्पन्न हुआ। वह दयापूर्वक उस सुन्दरीके समीप जाकर उसे सान्त्वना देता हुआ अपने स्थान पर ले आया।

कुमारी चन्दनाको लानेके पश्चात्से ही उसके हृदयमें एक नवीन भाव उत्पन्न हुआ। उसने विचार किया कि यह अत्यन्त स्वरूपवती कन्या है। यदि यह सुंदरी किसी योग्य धनिक व्यक्तिको सौंप दी जाय तो उसके द्वारा मुझे इच्छित धनकी प्राप्ति हो सकती है। इस भावके उदित होते ही उसका मुख-मण्डल अत्यन्त प्रसन्न हो उठा। वह अपने भावको अत्यन्त सराहने लगा और उसने उसी समय जाकर कौशाम्बी नगरीके प्रसिद्ध धनिक श्रेष्ठी वृषभसेन द्वारा यथेच्छ द्रव्य प्राप्तकर चन्दनाकुमारीको उसके सुपुर्द कर दिया।

श्रेष्ठी वृषभसेन अत्यंत दयालुहृदय तथा सच्चरित्र व्यक्ति था। उसने उस कुमारीको सम्मानपूर्वक लेजाकर अपनी गृहिणीकी संरक्षतामें रख दिया और उसको कहा। प्रिये! यह कुमारी कुलीन और सच्चरित्रा प्रतीत होती है, अतः इसे अपने समीप उचित व्यवहार पूर्वक रखना। चंदनाकुमारी श्रेष्ठीके गृहमें कुछ काल पर्यंत सुखपूर्वक समय व्यतीत करने लगी।

अधिकांश नारियोंका हृदय स्वभावतः द्वेषपूर्ण होता है। द्वेषके साथ२ उनके मनमें अविश्वास सदैव निवास किया करता है। वह किसी अत्यंत रूपवती महिलाको देखकर निष्प्रयोजन ईर्षा धारण कर लेती हैं और यदि कोई रूप गुणसम्पन्ना महिला उनके कुटुम्बमें निवास करती हो

और अन्य सुहृद जन यदि उसके साथ योग्य ताका व्यवहार करते हो तो उन्हें कई प्रकारकी आशंकाएं होने लगती हैं। अस्तु, कुछ समय पश्चात् ही कुमारी चंदनाके अभूतपूर्व रूप लावण्यका पूर्ण विकाश होता अवलोकन कर श्रेष्ठीकी पत्नीको उसके प्रति घोर ईर्षा उत्पन्न होने लगी।

उसका हृदय इस घृणित आशंकासे व्याप्त रहने लगा कि कुमारी चंदनाके रूप लावण्यपर संभवतः मेरा पति आसक्त न होजाय। यदि कभी ऐसा हुआ तो मुझे सदैवके लिए घोर दुःखकी ज्वालामें जलना पडेगा। इन असत् विचारोंके उदय होते ही उसने उस कुमारीके रूप लावण्यको नष्ट करनेका संकल्प किया, वह उसे एक प्रच्छन्न स्थानमें रखकर उसे अनेक यातनाएं देने लगीं।

उसे प्रकृतिविरुद्ध तथा अरुचिकारक भोजन दिया जाने लगा। इतना ही नहीं किन्तु उस निर्दय हृदयाने उस कोमलांगीके नम्र हाथ पैर लोहेकी कठोर सांकल द्वारा जकड़वा दिए। इस प्रकार बेचारी चन्दना पुनः नवीन विपत्तियोंके चक्रमें पड़ गई। यह निर्विवाद सिद्ध है कि जो वस्तु मनोज्ञ पुरुषोंके लिए आनंदवर्द्धक तथा सुख देनेवाली होती है वही सुखद सामग्री कभी२ अत्यंत हानिकर होजाती है।

स्त्रियोंमें अनेक गुणोंके साथ२ सुदर रूपका होना भी प्रशंसनीय है, किंतु चंदनाके दुर्भाग्यसे उसका मनोहर सौन्दर्य ही उसके लिए आपातिका स्थान बन गया। इस असहनीय आपत्तिके संमुख भी वह अपने धार्मिक कृत्योंका किंचित् भी परित्याग नहीं करती थी, प्रत्युत इस घोर संकटमें उसके पवित्र हृदयमें धर्मके प्रति दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न होगई। वह अपना प्रत्येक समय आत्मचिंतनमें व्यतीत करने लगी। इस आपत्तिमें भी उसका हृदय गभीर और मुख सदैव प्रसन्न रहता था सो ठीक है—सज्जन पुरुष विपत्तिमें दृढ़ साहस धारण कर धर्म भावनाका ही चितवन करते हैं।

(३)

ऋजुकूला नदीके किनारे भगवान महावीर घोर तपश्चरणमें निरत थे। वे सुमेरु सदृश निश्चल और वज्रके समान दृढ़ थे, उनके पवित्र हृदयमें अध्यात्मिक रसका सरस स्रोत प्रवाहित होरहा था, अनेक उपसर्गों और आपत्तियोंके साम्हने उनका हृदय किंचित् भी चलित नहीं हुआ था। वे दृढ योगी अपने आत्मोद्धारमें पूर्ण मग्न थे। मध्याह्नका समय होनेपर उन्होंने अपने ध्यानको समाप्त किया। यद्यपि उन्हें नश्वर शरीरसे किंचित् भी ममत्व नहीं था, तो भी उसके द्वारा पूर्ण आत्मोद्धारकी उत्कट इच्छासे उन्होंने आहारार्थ प्रस्थान किया।

समस्त त्रस स्थावर जंतुओंपर पूर्ण करुणा दृष्टि रखते भूमिका निरीक्षण करते हुए उन योगीराजने कौशांबी नगरीमें प्रवेश किया।

लोहेकी दृढ़ सांकलसे जकडी हुई चंदना अपने स्थानपर बैठी हुई थी, भोजनका समय होनेके कारण उसके समीप नित्यप्रतिके अनुसार भोजनकी सामग्री लाकर रख दीगई थी। प्रत्येक दिवसके नियमानुसार वह द्वारपर खडी होकर योग्य पात्रका निरीक्षण किया करती थी।

अनायास ही उसने कुछ दूरसे योगिराज

भगवान् महावीरको आहारार्थ आते हुए अवलोकन किया। उन्हें देखते ही उसका हृदय अनन्य भक्तिसे गद्गद् होउठा। उसका समस्त शरीर हर्षसे रोमांचित हो गया। उसके मनमें शीघ्रतः अत्यंत पवित्र भावनाएं जागृति हो उठीं। प्रबल इच्छशाक्तिके वशवर्ती होकर उसका हृदय बलात् भगवानको आहार देनेके लिए लालायित हो उठा।

वह भोजनकी वस्तुओंको सम्हाल कर भगवानके सन्मुख उपस्थित हुई। उसकी उत्कट भक्ति और ऋषीश्वर महावीरकी दृढ़ आत्मशक्तिके प्रभावसे द्वारके कपाट स्वत: उदघाटित होगए, कठोर सांकलकी कड़िएं क्षणमात्रमें छिन्नभिन्न हो गई और वह उसी समय बंधनमुक्त हो गई।

उसने पवित्र भावोंसे, अनन्यभक्तिसे दृढ़ श्रद्धासे योगी महावीरको आहार दिया। भगवान महावीर आहार लेकर वनको चले गए।

इधर पात्र—दानके प्रभावसे उसी समय देवो द्वारा कुमारी चन्दनाका लक्षित शब्दोंमें यश कीर्तन किया जाने लगा। मन्दपवनसे समस्त दिशाएं सुगंधित होउठीं।

सुगंधित पुष्पवृष्टिसे वहाकी पृथ्वी इसप्रकार ज्ञात होने लगी, मानो चंदनाकुमारीकी अविरल वीरभक्ति देखकर हर्षसे प्रफुल्लित ही हो उठी हो, दिव्य नादसे समस्त आकाशमंडल गूंज उठा और देवताओंके द्वारा किए गए जयजय शब्दसे पृथ्वीमंडल ध्वनित होगया।

महारानी मृगावती अपने राजमहलके झरोखेपर बैठी हुई थी, उसने कौतुकपूर्ण दृष्टिसे यह अभूतपूर्व दृश्य देखा। वह उस महान् व्यक्तिके विषयमें जाननेके लिए उत्सुक हो उठी जिसने भगवानको आहारदान देकर महान् पुण्यका संचय किया था। कुछ समय पश्चात् ही उसे यह जानकर आश्चर्यके साथ २ अत्यंत हर्ष हुआ कि एक सुन्दरी महिलाने यह परम पुण्य कार्य किया है।

अस्तु, उसने सन्मानपूर्वक उस कुमारीके अवलोकनार्थ उसे अपने राजमहलमें बुलवाया। वह इसकी रूप सुन्दरता तथा शांति एवं गम्भीर आकृतिको देखकर अत्यंत प्रसन्न हुई।

उसने कुमारी चंदना द्वारा उसका पूर्व वृत्तांत ज्ञात किया। चंदनाने अत्यन्त दारुण शब्दोंमें अपनी पूर्व आत्मकथा कह सुनाई। चंदनाकी घोर दु:ख पूर्ण व्यवस्था श्रवण कर महारानीका हृदय स्नेह तथा करुणासे आर्द्र हो उठा। उसने बडे स्नेहसे उसको अपने गलेसे लगा लिया और मिष्ट मनोहर वचनों द्वारा उसे पूर्ण सान्त्वना दी। वह बोली—आह बहिन! तू तो मुझे किंचित् भी नहीं पहचान सकी मैं तेरी बहिन मृगावती हूं। मुझे इस बातका अत्यंत खेद है, कि तुझे मेरे ही नगरमें रहकर अत्यंत आपत्तियोंका साम्हना करना पडा। प्रिये! अब प्रसन्नता पूर्वक इस राजमहलमें निवास कर। कुमारी चंदना यह जानकर अत्यंत प्रसन्न हुई और अपनी बहिनके समीप सानंद समय व्यतीत करने लगी।

समयकी गति बडी विचित्र है, रहटकी घटिकाओंके सदृश उसका चक्र प्रति समय चलता रहता है। दु:खग्रस्त मानवोंको सुख और सुखसंपन्न व्यक्तियोंको दु:खरूपमें परिवर्तित करना इसका सरल क्रीड़ा विनोद है। जो व्यक्ति

कम गोंको कोमल शय्यापर भी शारीरिक पीड़ाका अनुभव करते हैं, जिनको अनेक सुश्रूषा तथा आग्रह करने पर स्वादिष्ट, मिष्ट और उत्तम पकवानोंके ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं होती है, जिन्हें चित्रामोंसे चित्रित उन्नत राज्य प्रासादोंमें कामनियोंके सरल क्रीड़ा विनोद द्वारा तृप्ति नहीं होती, वही व्यक्ति समयके परिवर्तन होनेपर, घोर अरण्यमें मध्याह्नकी तीव्र धूपमें एकाकी रहकर कठिन श्रम द्वारा प्राप्त हुए वृक्षोंके किंचित् फल और झरनोंका जल पीकर अपने हृदयको संतोषित करते हैं।

जो चंदना समयके चक्रमें पड़कर इसी कौशांबीनगरीमें, कठिन बन्दीगृहमें व्यस्त थी, अरुचिपूर्ण और अन्य व्यक्ति द्वारा अवज्ञा पूर्वक दिये जानेवाला कोदन ग्रहण करती थी और परतंत्रतामें बद्ध थी वही उसी कौशांबी नगरीमें समयके परिवर्तनसे सन्मानपूर्वक राज्य प्रासादोंमें अनेक सुखसामग्रियों द्वारा प्रसन्न रक्खी जाने लगी।

(४)

भगवान् महावीरने शुक्लध्यानकी तीव्र ज्वालासे कर्म इंधनको भस्म कर दिया। सुवर्ण अग्निकी तीव्र ज्वालामें पड़नेसे जिस प्रकार मल रहित होकर निर्मल होजाता है, तीक्ष्ण बेड़ियोंसे जकड़ा हुआ कठिन बंदीगृहमें पड़ा व्यक्ति बंधनमुक्त होकर जिसप्रकार स्वतंत्र होजाता है, कर्दम मिश्रित जल निर्मली बीजके द्वारा शुद्धकर रत्न पात्रमें रक्षित जिसप्रकार पवित्र होजाता है, भगवान महावीरका आत्मा उसी प्रकार घातिया कर्मों रूपी मेलके नष्ट होनेसे पवित्र होगया।

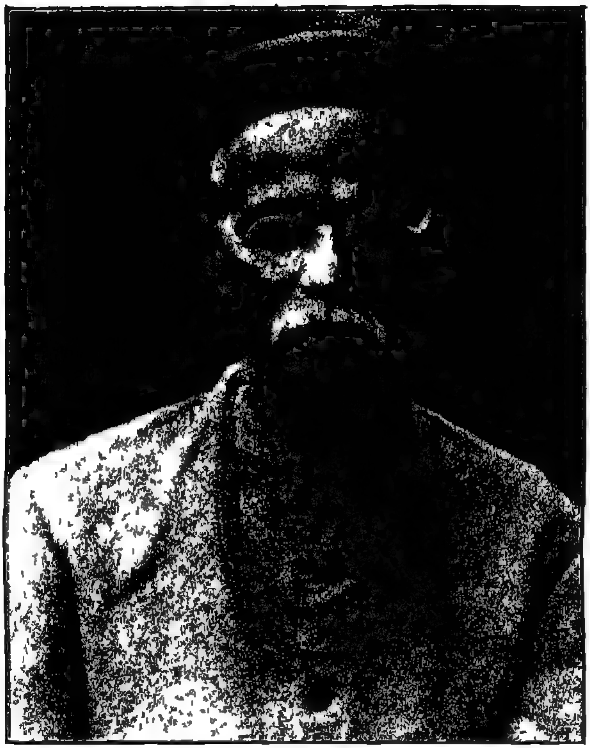
जिस प्रकार अंधकार पूर्ण निशाके अवसान होते ही प्रचंड किरणोंवाला मार्तंड अखिल विश्वको प्रकाशित कर देता है उसी प्रकार कर्मसमूहके नष्ट होते ही त्रैलोक्य-प्रकाशक दिव्य केवलज्ञान जागृत हुआ। उसके अलौकिक प्रभावसे संसारके समस्त पदार्थ दर्पणवत् प्रतिभासित होने लगे।

कुबेरने उनके अनेक मनोज्ञ उपदेश श्रवणार्थ आए हुए भव्यात्माओंके हितार्थ शोभापूर्ण समवशरणकी रचना की।

देव, मानव, और पशु आदि समस्त प्राणी उनका उपदेशामृत पान करनेके लिए उपस्थित हुए।

कुमारी चंदना भी अपनी बहिन मृगावतीके साथ धर्म श्रवणार्थ भगवान्के समवशरणमें गई और भक्तिपूर्वक स्तुति नमस्कार कर विनीत भावोंसे धर्म उपदेश श्रवण करने लगी।

भगवान् मोक्ष प्राप्तिका उपदेश दे रहे थे। उन्होंने उस दिनके विस्तृत व्याख्यानमें पूर्ण प्रामाणिकताके साथ यह बतलाया था कि यह संसार अनेक दुःख और यातनाओंसे पूर्ण है। इसमें रहनेवाले व्यक्ति निरंतर आशा तृष्णा और और विषयेच्छाओंकी तीव्र ज्वालासे जलते रहते हैं। उन्हें यहांपर किंचित् भी वास्तविक सुख और शान्ति प्राप्त नहीं होती। अस्तु, पूर्ण सुख और शांतिइच्छुक व्यक्तिको अपने आत्मोद्धारका निरंतर प्रयत्न करना चाहिए। किन्तु यह उसी समय होना संभव है, जब मनुष्य इन घृणित विषयोंकी तीव्र वासनाको नष्ट कर दे। उनका उपदेश बहुत विस्तृत रूपसे था कुमारी चंदनका हृदय पूर्वकी अनेक घटनाओंसे संसार तथा विषय से उन्मुख होरहा था, उसने इस अल्प अवस्थामें ही समयके अनेक परिवर्तनोंका



स्वर्गीय पं० बिहारीलालजी चैतन्य-अमरोहा।
(जैन शब्दकोष आदि अनेक ग्रन्थोंके रचयिता अंग्रेजी पढ़ेलिखे संस्कृत विद्वान्)

Jain Vijaya Press, Surat

सान्त्वना किया था, अस्तु वह संसार उसे क्षणिकसा प्रतीत होने लगा था तथा आध्यात्मिक ग्रंथोंका मनन करते २ उसकी उत्कट इच्छा आत्मोद्धारकी ओर आकर्षित होचुकी थी। अतः भगवान्‌के इस उपदेशका उसकी आत्मापर विलक्षण प्रभाव पड़ा। उसके हृदयमें वैराग्यकी तीव्र लहरें उदित होने लगीं और उसने विनीत होकर भगवान्‌से जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करनेकी प्रार्थना की।

भगवान्‌ने उसे भव्यात्मा समझकर दीक्षा प्रदान की। वह विषयेच्छाओंका दमनकर केवल एक श्वेत वस्त्र धारणकर व्रतोंके पालनमें मग्न हुई। भगवान्‌के समवशरणकी वह प्रथम आर्यिका हुई। उसके इस पवित्र कार्यका अनेक विदुषी महिलाओंने अनुकरण किया।

कुछ समय पश्चात् ही आर्यिकाओंका एक बृहत् संघ बन गया। तपश्विनी चंदना इस संघकी अधिष्ठात्री बनाई गई। उसने तीव्र तपश्चरणके द्वारा और ज्ञानकी गंभीरताके द्वारा निमग्नताके द्वारा, उस समयकी अखिल महिला समाजमें उच्चपद प्राप्त किया था।

वह अपनी आत्मशक्तिके द्वारा महिलासमाजके गौरवको उज्वल करती हुई, धर्मके महत्वको प्रदर्शित करती हुई, आत्मध्यानमें पूर्णत. मग्न होकर अन्त समयमें स्वर्गके श्रेष्ठ साम्राज्यकी अधिष्ठात्री हुई।

हमारी दृढ़ भावना है कि इस भारतमें ऐसी विदुषी, धर्मशीला कुमारिएं पुनः उत्पन्न होकर महिलाओंकी प्रतिष्ठाको सुरक्षित रक्खें।

दिवालीसे शिक्षा।

[ले० पं० जुगमंदिरदास जैन-सूरत।]

श्री महावीर प्रभुके अनुयायी बंधुओ! आप दीपमालिकाका त्योहार मना चुके, श्रीवीरप्रभुके नामपर निर्वाणलाडू चढ़ाकर अपनी भक्ति (!) का परिचय दे चुके, स्वयं भी आपने लड्डुओं एवं अन्यान्य मिष्टान्नोंका रसास्वादन किया होगा, परन्तु बंधुओ! आपने यह भी विचार किया कि यह दीपमालिकाका त्यौहार क्यों तो आया और यह हमको क्या शिक्षा देगया?

हमारा ख्याल है कि ऐसा विचार तो बहुत ही थोड़े सज्जनोंने किया होगा। प्रत्येक त्यौहार (विशेष दिवस) कुछ न कुछ महत्वको लिये हुए है इस बातको कोई भी सहृदय व्यक्ति अस्वीकार नहीं कर सकता। इसी प्रकार दीपमालिकाका विशेष दिवस भी हमको बहुतसी शिक्षाएं देगया है। उन शिक्षाओं पर यदि विचार किया जाय तो हमारा विश्वास है कि वह हमारी अत्यल्प शक्तिके बाहर है क्योंकि जिस दीपमालिकोत्सवके प्रधान नायक श्रीवीर प्रभुके गुणोंका वर्णन करनेको इन्द्रका गुरु बृहस्पति भी समर्थ नहीं है फिर भला हमलोग किसप्रकार उनके गुणोंका विचार कर सकते हैं? ताहम भी:—

हम वीरप्रभुके गुणोंका अनुसरण करनेके लिये स्वयं भी भावना भाते हैं तथा अपने बंधुओंसे भी निवेदन करते हैं कि आप भी भग-

वान वीरप्रभुके गुणोंके अनुसार चलनेके लिये तैयार होजावें।

बंधुवर्य! आपमें कोई भी ऐसा व्यक्ति न होगा जो अपने देश, जाति व धर्मकी रक्षा व वृद्धि न चाहता हो परन्तु ऐसी भावना होनेपर भी अपने देशको तो रहने दीजिये, अपनी जाति व धर्मकी रक्षा एवं वृद्धि होना भी कष्टसाध्य होरहा है इसका क्या कारण है? यदि आप गंभीरतासे विचार करेंगे तो मालूम होगा कि जिसप्रकार अग्नि वस्तुको जलाती है परन्तु जब उसके समीपमें चन्द्रकान्त मणि रख दी जाती है तो उसकी शक्ति दब जाती है और दग्ध क्रियाका होना बन्द होजाता है उसी प्रकार हमलोग देश, जाति व धर्मकी रक्षा एवं वृद्धिकी इच्छा रखते हैं व तदनुसार कुछ कार्य भी करते हैं परन्तु उसके बीचमें कुछ कारण ऐसे उपस्थित हैं जिनके कारण अपनी अभिलाषा पूर्ण नहीं होती है। उन कारणोंसे पहिला कारण स्वावलंबनका अभाव है।

किसी इतर व्यक्तिकी सहायतापर निर्भर न रहकर स्वयं ही कष्टोंके मार्गको तय करते हुए कार्य करना स्वावलंबन कहलाता है। जो व्यक्ति स्वयं अपने पैरोंपर खड़ा होकर कार्य करता है उसकी अन्य व्यक्ति तो क्या परमात्मा भी मदद करता है। जैसा कहा है किः—

God helps those who help themselves. भगवान महावीरस्वामीने अपने पैरोंपर खड़े होकर ही अपनी आत्माका उद्धार किया था, उन्होंने अन्य किसी भी व्यक्तिकी मददकी स्वप्नमें भी आशा नहीं की थी।

बंधुओ! स्मरण रखो कि कोई भी किसीकी मदद नहीं करता है। जिन लोगोंने अपनी मददसे ही अपना कार्य किया है उन्होंने ही अपने कार्यमें सफलता प्राप्त की है तथा वे ही अन्य लोगोंको अपना अनुयायी बना सके हैं।

जिन महाशयोंने अमेरिकाका पता लगानेवाले या हिन्दुस्तानमें आनेके मार्गके संशोधक क्रिस्टोफर कोलम्बसका इतिहास पढ़ा होगा वे अच्छी तरह जानते होंगे किः—उसकी मदद करनेवाला एक भी व्यक्ति नहीं था प्रत्युत उसके कार्यमें विघ्न उपस्थित करनेवाले या उसको मदद देनेका विश्वास देकर, उसको मदद देनेसे इनकार करनेवाले पृथ्वीकलंक, विश्वासघाती मनुष्योंकी ही संख्या अधिक थी, तिसपर भी उस स्वावलम्बी वीर पुरुषने अपने पैरोंपर खड़े होकर अपना कार्य किया व उसमें सफलता प्राप्त की एवं दुनियांमें अपना नाम अमर कर दिया।

यह बात अवश्य है कि जो मनुष्य स्वावलंबी होते हैं उनको बड़े२ कष्टोंका सामना अवश्य करना पड़ता है कारण कि स्वावलम्बी पुरुष दूसरेकी मददकी तो आशा रखता ही नहीं है, वह तो यह विचार करता है कि "मैं यदि स्वयं कष्ट सहनकी परीक्षामें उत्तीर्ण होकर अपना कार्य करूंगा तब ही मेरा कार्य हो सकेगा।" इसीलिये स्वावलम्बी पुरुष अपने ऊपर आये हुए कष्टोंको बड़ी खुशीके साथ सहन करते हुए अपने प्रारंभित कार्यमें संलग्न रहता है।

वीर कोलम्बस जिस समय हिन्दुस्तानका पता लगानेके लिये जहाजोंपर सफर कर रहा था उस

समय उसके साथमें आये हुए लोगोंने उसको समुद्रमें डालकर जहाज वापिस ले आनेका इरादा कर लिया था। कहिये पाठको! इससे अधिक कष्ट और क्या हो सकता है?

स्वावलंबियोंको यह बात भी ध्यानमें रखनी चाहिये कि:—विना कष्ट सहन किये कोई भी कार्य नहीं होसकता है। मामूली कार्य भी जब थोड़े बहुत कष्ट सहनके विना सम्पन्न नहीं हो सकते तो देशोद्धार, जात्युन्नति एवं धर्मरक्षा जैसे महान् कार्योंमें तो विशेष रूपसे कष्टोंका सामना करनेकी आवश्यक्ता है।

बौद्धधर्मका खण्डन करके संसारमें जैनधर्मका सितारा चमकानेवाले स्वामी श्री अकलंकदेवका कौन मददगार था? केवल उनका स्वावलंबन ही ऐसा सहायक था कि उनको अन्य किसी मदद-गारकी आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती थी।

दूसरा कारण स्वार्थ साधना है। जैनधर्म अनेकांतका प्रतिपादक है इसलिये स्वार्थ साधना हानिकारक भी होसकती है और लाभकारक भी। यदि जिस प्रकार दीपमालिकोत्सवके प्रधान नायकने संसारभरका कल्याण करना ही अपना प्रधान लक्ष्य बनाकर अपनी आत्माका उद्धार पहले किया, पश्चात् अपनी दिव्यवाणीके द्वारा जगतके जीवोंका उद्धार किया उसी प्रकार यदि जात्युन्नति तथा धर्मरक्षाके पवित्र उद्देश्यसे अपना स्वार्थसाधन किया जाय तो कुछ हानि-कारक नहीं है परन्तु जिस तरह चींटियां एवं दीमक अपनी बुभुक्षा शांतिकी गरजसे दरख्तों एवं अन्यान्य वस्तुओंका सत्यानाश कर डालती हैं उसी प्रकार जिस स्वार्थ साधनाके कारण समाज रसातलको पहुंच जावे या धर्मका अस्तित्व ही मिट जावे वह स्वार्थ साधना लाभकारक न होकर प्रत्युत हानिकारक ही कहलावेगी।

क्रिस्टोफर कोलम्बसने हिन्दुस्तानका पता लगाते समय जिन वस्तुओंको प्राप्त करके स्पेनको भेजकर अपना परिश्रम तत्रस्थ राजाको बतला-नेका प्रयत्न किया था उस समय स्पेन देशके पृथ्वीकलंक कुछ स्वार्थान्ध लोगोंने राजाके समक्ष अनेक प्रकारकी झूठी सच्ची बातें बना-कर उसके परिश्रम पर पानी फेरनेका भरसक प्रयत्न किया था।

अमरकोषके विषयमें यह बात प्रसिद्ध है कि अमरसिंह महाकवि धनंजयके साले थे। धनं-जयजीने अमरकोषकी रचना की थी परन्तु अमरसिंह, राजा भोजसे पारितोषिक प्राप्त कर-नेकी गरजसे धनंजयकी धर्मपत्नी (अपनी बहिन) के पाससे अमरकोषको मांग लाये और राज-सभामें उपस्थित कर अपनी स्वार्थसाधना की। धनंजयजीको जब यह समाचार मालूम हुवा तो उन्होंने एक रात्रिमें ही धनंजय नाममालाका निर्माण करके उसे राजसभामें उपस्थित किया। पाठको! इससे बुरा एवं घृणित स्वार्थसाधनाका दूसरा नमूना और क्या होसकता है?

बन्धुओ! स्वार्थ साधनाके और भी घृणित एवं अत्याचार पूर्ण नमूनोंका दिग्दर्शन करना हो तो एकबार टामकाकाकी कुटिया नामक पुस्तकका अवश्य अध्ययन कर जाइये। इस पुस्तकमें उस समयका हाल वर्णित है जिस समय लोग अपने ही जाति भाईको गुलाम (Slave)के तौरपर खरीदते थे और उनके द्वारा

पैसा कमाकर आप तो मौज एवं गुलछर्रे उड़ाते थे तथा उस कर्ज चुकानेपर नाना प्रकारके अत्याचार करते हुए भी नहीं शर्माते थे। यद्यपि वह जमाना बदल गया है तथापि ऐसे२ अत्याचारियोंकी अब भी कमी नहीं है।

जिस समाजके अन्दर अपने इष्टदेवके स्वार्थ-त्यागकी अवहेलना करके अपनी२ स्वार्थ साधनाका प्रयत्न किया जाता हो उस समाजकी त्रिकालमें भी उन्नति होना असंभव है।

इसके अतिरिक्त पारस्परिक वैमनस्य भी समाजोन्नतिमें बाधक है। परन्तु निश्चय रखिये कि यदि समाजमें लोग अपनी स्वार्थसाधनाको एक तरफ रखकर भगवान वीरनाथकी तरह सच्चे एवं पवित्र हृदयसे समाजकी उन्नति एवं धर्मकी रक्षा करनेका प्रयत्न करें और ग्रहदल पेटी तलवार न चलावें तथा समाजसेवाके भावसे नेता बननेका इरादा करें तो पारस्परिक वैमनस्य तो एक दिनमें दूर होसकता है।

सज्जनों! इन तीनों अवगुणोंका सर्वथा दीपमालिकोत्सवके प्रधान नायक भगवान महावीरमें नहीं था, यही कारण था कि वे अपनी आत्माका उद्धार करके जगतका भी उद्धार कर सके थे और इन तीनोंका जैन समाजपर प्रभाव होनेसे प्रयत्न करनेपर भी जैन समाजकी मिट्टी पलीत होती जारही है।

अन्तमें हम अपने बंधुओंसे इतना निवेदन अवश्य करेंगे कि यदि आप भगवान वीरप्रभुके अनुयायी कहलाकर सच्चे हृदयसे जैन समाज व जैनधर्मकी उन्नति एवं रक्षा चाहते हैं तो किसीकी बातोंपर ध्यान न देकर अपने पैरोंपर आप खड़े हों, हानिकारक स्वार्थका त्याग करें और आर्षग्रंथोंका स्वाध्याय करके अपनी आत्माका कल्याण करते रहें। व्यर्थके वितण्डावादमें आपके धन, धर्म, एवं समयकी बड़ी भारी हानि होगी। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी २ उन्नति कर सकेगा तो समाज व देशकी उन्नति एवं धर्मकी रक्षा होनेमें किंचिन्मात्र भी विलम्ब न होगा। यद्यपि दिवालीसे शिक्षा तो बहुत कुछ मिल सकती है परन्तु हमको जो शिक्षा मालूम हुई है व जिसको अपने लिये भी उत्तम एवं आवश्यक समझा है वही आप लोगोंके सामने उपस्थित कर दी है। यदि आप इन शिक्षाओंके साथ ही साथ और भी शिक्षाओंकी खोज करके उनके अनुसार चलेंगे तो हम समझेंगे कि आपने असलमें दीपमालिकोत्सव मनाया। किमधिकम्!

कर्मवीर।

हिल जाते हैं सुमेरु जैसे,
　　यह भूतल फट जाता है।
मिट जाती है रात अँधेरी,
　　तपा सूर्य हट जाता है॥
स्वार्थ पङ्क उड़ जाता है जब,
　　सुन्दर मन बन जाता है।
पाता है संक्लेश जगत जो,
　　वही चैनको पाता है॥
जब समाजमें कर्मवीर,
　　बन कोई आगे आता है।
उसकी छायासे समाज,
　　सब तरह चैन पाता है॥

भुवनेन्द्र,
श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम-जयपुर।

रात्रि-भोजन।

[ले०-मिलापचन्द कटारिया जैन-केकड़ी]

ऐसा कौन प्राणी है जो भोजन बिना जीवित रह सके। जबतक शरीर है उसकी स्थितिके लिये भोजन भी साथ है। और तो क्या वीतरागी निस्पृही साधुओंको भी शरीर कायम रखनेके लिये भोजनकी आवश्यकता पड़ती ही है, तो भी जिस प्रकार विवेकवानोंके अन्य कार्य विचारके साथ सम्पादन किये जाते हैं उस तरह भोजनमें भी योग्यायोग्यका खयाल रक्खा जाता है। कौन भोजन शुद्ध है, कौन अशुद्ध है, किस समय खाना, किस समय नहीं खाना आदि विचार ज्ञानवानोंके अतिरिक्त अन्य मूढ़ जनके क्या होसक्ता है। कहा है-"ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः" वास्तवमें जो मनुष्य खाने-पीने मौज उड़ानेमें ही अपने जीवनकी इतिश्री समझे हुये हैं उन्हें तो उपदेश ही क्या दिया जासक्ता है किन्तु नरभवको पाकर जो हेयोपादेयका खयाल रखते हैं और अपनी आत्माको इस लोकसे भी बढ़कर परजन्ममें सुख पहुंचानेकी जिनकी पवित्र भावना है उनके लिये ही सब प्रकारका आदेश उपदेश दिया जाता है। तथा ऐसोंहीके लिये आगमोंकी रचना कार्यकारी है।

आगममें श्रावकोंके आठ मूलगुण कहे हैं, जिनमें रात्रिभोजन त्याग भी एक मूलगुण है जैसा कि निम्न श्लोकसे प्रगट है—

आप्तपंचनुतिर्जीवदया सलिलगालनम् ।
त्रिमद्यादि निशाहारोदुम्बराणां च वर्जनम् ॥
धर्मसंग्रह ॥

इसमें देव वंदना, जीवदया पालन, जल छानकर पीना, मद्य, मांस, मधुका त्याग, रात्रिभोजन त्याग, और पंचोदंबर फल त्याग, ये आठ मूलगुण बताये हैं। जब रात्रि भोजन त्याग श्रावकोंके उन कर्तव्योंमें है जिन्हें मूल (खास) गुण कहा गया है तब यदि कोई इसका पालन नहीं करता तो उसे श्रावक कोटिमें गिना जाना क्योंकर उचित कहा जायगा ? यदि कोई कहे कि रात्रिभुक्ति त्याग तो छठवीं प्रतिमामें है इसका समाधान यह है कि-छठवीं प्रतिमाको कई ग्रन्थकारोंने तो दिवामैथुन त्याग नामसे कही है। हां ! कुछने रात्रिभुक्ति त्याग नामसे भी वर्णन की है, जिसका मतलब यही होसक्ता है कि इसके पहिले रात्रि भोजन त्यागमें कुछ अतीचार लगते थे सो इस छठवीं प्रतिमामें पूर्ण रूपसे निरतिचार त्याग होजाता है। यदि ऐसा न माना जावे तो रात्रिभोजन त्यागको मूलगुणोंमें क्यों कथन किया गया बल्कि वसुनंदि श्रावचारमें तो यहांतक कहा है कि-रात्रि भोजन करनेवाला ग्यारह प्रतिमाओंमेंसे पहिली प्रतिमाका धारी भी नहीं होसक्ता। यथा—

एयादसेसु पढमं विजदो णिसिभोयणं कुणइ तस्स ।
ठाणं ण ठाइ तम्हा णिसिभुत्त परिहरे णियमा ॥३१४॥
वसुनन्दिश्रावकाचार ॥

छपी हरिवंशपुराण हिन्दी टीकाके पृष्ठ ५२९ में कहा है कि—

"मद्य, मांस, मधु, जूआ, वेश्या, परस्त्री, रात्रि-भोजन, कन्दमूल इनका तो सर्वथा ही त्याग

करना चाहिये। ये भोगोपभोग परिमाणमें नहीं हैं।" मतलब कि हरएक श्रावकको चाहे वह किसी श्रेणीका हो रात्रि भोजनका त्याग अत्यंत आवश्यक है। यहां भोजनसे मतलब लड्डू आदि खाद्य; इलायची, तांबूल आदि स्वाद्य; रबड़ी आदि लेह्य; पानी आदि पेय इन चारों प्रकारके आहारोंसे है। रात्रिके समय उक्त चार प्रकारके आहारके त्यागको रात्रिभोजन त्याग कहते हैं। शास्त्रकारोंने तो यहांतक जोर दिया है कि सूर्योदय और सूर्यास्तसे दो घड़ी पूर्व भोजन करना भी रात्रिभोजनमें शुमार किया गया है यथा—

वासरस्य मुखे चांते विमुच्य घटिकाद्वयम् ।
योऽशनं सम्यगाधत्ते तस्यानस्तमितव्रतम् ॥

प्रथमानुयोगकी कथनी पद्मपुराणमें कथन है—जिस समय लक्ष्मणजी जाने लगे तो उनकी नवविवाहिता वधू वनमालाने कहा कि—"हे प्राणनाथ ! मुझ अकेलीको छोड़कर जो आप जानेका विचार करते हो तो मुझ विरहिणीका क्या हाल होगा।" तब लक्ष्मण क्या उत्तर देते हैं सुनिये—

स्ववधूं लक्ष्मणः प्राह मुंच मां वनमालिके ।
कार्यं त्वां लातुमेष्यामि देवादिशपथोऽस्तु मे ॥२८॥
पुनरूचे तयेतीशः कथमप्यप्रतीतया ।
ब्रूहि चेत्त्वमपि लिप्येऽहं रात्रिभुक्तेरघैस्तदा ॥ २९ ॥
धर्मसंग्रह ॥

भावार्थ—हे वनमाले ! मुझे जाने दो, अभीष्ट कार्यके हो जानेपर मैं तुम्हें लेनेके लिये अवश्य आऊंगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि अगर मैं अपने वचनोंको पूरा न करूँ तो जो दोष हिंसादिके करनेसे लगता है उसी दोषका मै भागी होऊं।

सुनकर वनमाला लक्ष्मणसे बोली—मुझे आपके आनेमें फिर भी कुछ संदेह है इसलिये आप यह प्रतिज्ञा करें कि—"यदि मैं न आऊं तो रात्रि भोजनके पापका भोगनेवाला होऊं।

देखा पाठक ! रात्रिभोजनका पाप कितना भयंकर है। प्रीतंकरके पूर्व भवके स्यालके जीवने मुनीश्वरके उपदेशसे रात्रिमें जल पीनेका त्याग किया था जिसके प्रतापसे महा पुन्यवान् समृद्धिशाली प्रीतंकर हुआ था। वास्तवमें बात सोलह आना ठीक है कि रात्रिभोजन अनेक दोषोंका घर है। जो पुरुष रात्रिको भोजन करता है वह समस्त प्रकारकी धर्म क्रियासे हीन है, उसमें और पशुमें सिवाय सींगके कोई भेद नहीं है। जिस रात्रिमें सूक्ष्म कीटादिका संचार रहता है मुनि लोग चलते फिरते नहीं, भक्ष्याभक्ष्यका भेद मालूम नहीं होता, आहारपर आये हुये बारीक जीव दीखते नहीं ऐसी रात्रिमें दयालु श्रावकोंको कदापि भोजन नहीं करना चाहिये। जगह जगह जैन ग्रन्थोंमें स्पष्ट सख्त निषेध होते भी आज हमारे कई जैनी भाई रात्रिमें खूब माल उड़ाते हैं। कई प्रांतोंके जैनियोंने तो ऐसा नियम बना रक्खा है कि रात्रिमें अन्नकी चीज न खानी—शेष पेड़ा, बरफी आदि खानेमें कोई हर्ज ही नहीं समझते। न मालूम ऐसा नियम इन लोगोंने किस शास्त्रके आधारपर बनाया है। खेद है जिन कलाकंद, बरफी आदि पदार्थोंमें मिठाईके प्रसंगसे अधिक जीव घात होना संभव है उन्हें ही उदरस्थ करनेकी इन भोले आदमियोंने प्रवृत्ति कर अपनी अज्ञानता और जिह्वा लंपटताका खूब परिचय दिया है। श्री सकलकीर्तिजीने श्रावकाचारमें साफ कहा है कि—

भक्षितं येन रात्रौ च स्वाद्यं तेनान्नभंजसा ।
यतोऽन्नस्वाद्ययोर्भेदो न स्याद्व्यामादियोगतः ॥ ८३ ॥

अर्थ—जो रात्रिमें अन्नके पदार्थोंको छोड़कर पेड़ा बरफी आदि स्वाद्य पदार्थोंको खाते हैं वे भी पापी हैं क्योंकि अन्न और स्वाद्य पदार्थोंमें कोई भेद नहीं है। तथा और भी कहा है कि—

दंशकीटपतंगादि सूक्ष्मजीवा अनेकधाः ।
स्थालमध्ये पतन्त्येव रात्रिभोजनसंगिनाम् ॥ ७८ ॥
दीपकेन विना स्थूला दृश्यन्ते नांगिनः क्वचित् ।
तदुद्योतवशादन्ये प्रागच्छन्तीव भाजनें ॥ ७९ ॥
पाकभाजनमध्ये तु पतन्त्येवांगिनो ध्रुवम् ।
अन्नादिपचनाद्रात्रौ म्रियन्तेऽनतराशय. ॥ ८० ॥
इत्येव दोषसयुक्त त्याज्य सभोजनं निशि ।
विषान्नमिव नि.शेष पापभीतैर्नरैः सदा ॥ ८१ ॥
भक्षणीय भवेन्नैव पत्रपूगीफलादिकम् ।
कीटाढ्य सर्वथा दक्षैर्भूरिपापप्रद निशि ॥ ८४ ॥
न प्राह्य प्रोदक धीरैर्विभावर्या कदाचन ।
तद्घातये स्वधर्माय सूक्ष्मजतुसमाकुलम् ॥ ८५ ॥
चतुर्विध सदाहार ये त्यजन्ति बुधा निशि ।
तेषां पक्षोपवासस्य फल मासस्य जायते ॥ ८६ ॥

अर्थ—रात्रिमें भोजन करनेवालोंकी थालियोंमें डास, मच्छर, पतंगे आदि छोटे२ जीव आपड़ते हैं। यदि दीपक न जलाया जाय तो स्थूल जीव भी दिखाई नही पड़ते और यदि दीपक जला लिया जाय तो उसके प्रकाशसे और अनेक जीव आजाते हैं। भोजन पकते समय भी उस अन्नकी वायु गंध चारों तरफ फैलती है अतः उसके कारण उन पात्रोंमें अनंत जीव आ आकर पड़ते हैं। पापोंसे डरनेवालोंको ऊपर लिखित अनेक दोषोंसे भरे हुये रात्रिभोजनको विष-मिले अन्नके समान सदाके लिये अवश्य त्याग कर देना चाहिये। चतुर पुरुषोंको रात्रिमें सुपारी, जावित्री, तांबूल आदि भी नहीं खानी चाहिये क्योंकि इनमें अनेक कीड़ोंकी संभावना है अतः इनका खाना भी पापोत्पादक है। धीर-वीरोंको दया धर्म पालनार्थ प्यास लगनेपर भी अनेक सूक्ष्म जीवोंसे भरे जलको भी रात्रिमें कदापि न पीना चाहिये। इस प्रकार रात्रिमें चारों प्रकारके आहारको छोड़नेवालोंके प्रत्येक मासमें पंद्रह दिन उपवास करनेका फल प्राप्त होता है।

रात्रिभोजनके दोषोंके वर्णनमें जैनधर्मके ग्रन्थोंके ग्रन्थ भरे पड़े हैं। यदि उन सबको यहां उद्धृत किया जावे तो एक बहुत बड़ा ग्रन्थ हो सकता है अतः हम भी इतनेसे ही विश्राम लेते हैं।

रात्रिभोजन खाली धार्मिक विषय ही नहीं है किन्तु यह शरीर शास्त्रसे भी बहुत अधिक सम्बन्ध रखता है। प्रायः रात्रिभोजनसे आरोग्यताकी हानि होनेकी भी काफी संभावना हो सक्ती है—जैसे कहा है कि—

मक्षिका वमनाय स्यात्स्वरभंगाय मूर्द्धजः ।
यूका जलोदरे विष्टिः कुष्टाय गृहकोकिली ॥ २३ ॥
मेधावी ।

अर्थ—रात्रिमें भोजन करते समय अगर मक्षिका खानेमें आजाय तो वमन होती है, केश खानेमें आजाय तो स्वरभंग, जूंवा खानेमें आजाय तो जलोदर और छिपकली खानेमें आजाय तो कोढ़ उत्पन्न होती है। इसके अलावा सूर्यास्तके पहिले किया हुआ भोजन जठराग्निकी ज्वालापर चढ़ जाता है—पच जाता है इसलिये निद्रापर उसका असर नहीं होता है। मगर इससे विपरीत करनेसे रातको खाकर थोड़ी ही देरमें सो जानेसे चलना फिरना नहीं होता अतः पेटमें तत्कालका भरा हुआ अन्न कईबार गम्भीर रोग उत्पन्न कर

देता है । डाक्टरी नियम है कि भोजन करनेके बाद थोड़ा२ जल पीना चाहिये यह नियम रात्रिमें भोजन करनेसे नहीं पाला जासकता है क्योंकि इसके लिये अवकाश ही नहीं मिलता है। इसका परिणाम अजीर्ण होता है। हरएक जानता है कि अजीर्ण सब रोगोंका घर होता है। "अजीर्ण प्रभवा रोगाः" इसप्रकार हिंसाकी बातको छोड़-कर आरोग्यका विचार करनेपर भी सिद्ध होता है कि रातमें भोजन करना अनुचित है।

इसतरह क्या धर्मशास्त्र और क्या आरोग्य-शास्त्र सब ही तरहसे रात्रिभोजन करना अत्यंत बुरा है। यही कारण है जो इसका जगह २ निषेध जैन धर्मशास्त्रोंमें किया गया है जिनका कुछ दिग्दर्शन ऊपर कराया गया है। अब हिंदु ग्रन्थोंके भी कुछ उद्धरण रात्रिभोजनके निषेधमें नीचे लिखकर लेख समाप्त किया जाता है क्योंकि लेख कुछ अधिक बढ़ गया है।

अस्तगते दिवानाथे आपो रुधिरमुच्यते ।
अन्नं मांससम प्रोक्त मार्कंडेयमहर्षिणा ॥
　　　　　　　　　　मार्कंडेयपुराण ।

अर्थ—सूर्यके अस्त होनेके पीछे जल रुधिरके समान और अन्न मांसके समान कहा है यह वचन मार्कंडेय ऋषिका है।

महाभारतमें कहा है कि—

मद्यमांसाशन रात्रौ भोजन कंदभक्षणम् ।
ये कुर्वन्ति वृथा तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः ॥ १ ॥
चत्वारिनरकद्वार प्रथम रात्रिभोजनम् ।
परस्त्रीगमनं चैव सधानानंतकायकम् ॥ २ ॥
ये रात्रौ सर्वदाहार वर्जयंति सुमेधसः ।
तेषां पक्षोपवासस्य फल मासेन जायते ॥ ३ ॥
नोदकमपि पातव्य रात्रावत्र युधिष्ठिर ।
तपस्विनां विशेषेण गृहिणा ज्ञानसपदाम् ॥ ४ ॥

अर्थ—चार कार्य नरकके द्वाररूप हैं। प्रथम रात्रिमें भोजन करना, दूसरा परस्त्री गमन, तीसरा संधाना (अचार) खाना और चौथा अनंतकाय कंद मूलका भक्षण करना ॥२॥ जो बुद्धिवान एक महीने तक निरंतर रात्रिभोजनका त्याग करते हैं उनको एक पक्षके उपवासका फल होता है ॥३॥ इसलिये हे युधिष्ठिर ! ज्ञानी गृहस्थको और विशेषकर तपस्वीको रात्रिमें पानी भी नहीं पीना चाहिये ॥४॥ जो पुरुष मद्य पीते हैं, मांस खाते हैं, रात्रिमें भोजन करते हैं और कंदमूल खाते हैं उनकी तीर्थयात्रा, जप, तप सब वृथा है ॥१॥ और भी कहा है कि—

दिवसस्याष्टमे भागे मदीभूते दिवाकरे ।
एतमक्त विजानीयात्त नक्त निशिभोजनम् ॥
मुहूर्तोन दिन नक्त प्रवदति मनीषिणः ।
नक्षत्रदर्शनान्नक्त नाहं मन्ये गणाधिप ॥

भावार्थ—दिनके आठवें भागको जब कि दिवा-कर मंद होजाता है (रात होनेके दो घड़ी पहलेके समयको) "नक्त" कहते हैं। नक्त व्रतका अर्थ रात्रिभोजन नहीं है। हे गणाधिप ! बुद्धिमान् लोग उस समयको "नक्त" बताते हैं जिस समय एक मुहूर्त (दो घड़ी) दिन अवशेष रह जाता है। मैं नक्षत्रदर्शनके समयको "नक्त" नहीं मानता हू। और भी कहा है कि—

अभोदपटलच्छन्ने नाश्नन्ति रविमडले ।
अस्तगते तु भुजाना अहो भानोः सुसेवकाः ॥
मृते स्वजनमात्रेऽपि सूतक जायते किल ।
अस्तगते दिवानाथे भोजन क्रियते कथम् ॥

अर्थ—यह कैसा आश्चर्य है कि—सूर्यभक्त जब सूर्य मेघोंसे ढक जाता है तब तो वे भोजनका त्याग कर देते हैं परंतु वही सूर्य जब अस्त-

दशाको प्राप्त होता है तब वे भोजन करते हैं। स्वजन मात्रके मरजानेपर भी सब लोग सूतक पालते हैं यानी उस दशामें अनाहार रहते हैं तब दिवानाथ सूर्यके अस्त होनेके बाद तो भोजन किया ही कैसे जासका है? तथा कहा है कि—

नैवाहुति र्न च स्नान न श्राद्धं देवतार्चनम्।
दानं वा विहितं रात्रौ भोजनं तु विशेषत.॥

अर्थ—आहुति, स्नान, श्राद्ध, देवपूजन, दान, और स्नान करके भोजन रातमें नहीं करना चाहिये।

कूर्मपुराणमें भी लिखा है कि—

न द्रुह्येत् सर्वभूतानि निर्द्वन्द्वो निर्भयो भवेत्।
न नक्तं चैव भक्षीयाद् रात्रौ ध्यानपरो भवेत्॥

२७ वा अध्याय ६४५ वां पृष्ठ।

अर्थ—मनुष्य सब प्राणियोंपर द्रोह रहित रहे। निर्द्वंद्व और निर्भय रहे तथा रातको भोजन न करे और ध्यानमें तत्पर रहे। और भी ६९९ वें पृष्ठ पर लिखा है कि—

"आदित्ये दर्शयित्वान्नं भुञ्जीत प्राङ्मुखो नरः"।

भावार्थ—सूर्य हो उस समय तक दिनमें गुरु या बड़ेको दिखाकर पूर्वदिशामें मुख करके भोजन करना चाहिये।

इस विषयमें आयुर्वेदका मुद्रालेख भी यही है कि—

हृन्नाभिपद्मसंकोचश्चण्डरोचिरपायत।
अतो नक्तं न भोक्तव्यं सूक्ष्मजीवादनादपि॥

भावार्थ—सूर्य छिप जानेके बाद हृदयकमल और नाभिकमल दोनों संकुचित होजाते हैं और सूक्ष्म जीवोंका भी भोजनके साथ भक्षण होजाता है इसलिये रातमें भोजन न करना चाहिये।

रात्रिभोजनका त्याग करना कुछ भी कठिन नहीं है। जो महानुभाव यह जानते हैं कि "जीवनके लिये भोजन है भोजनके लिये जीवन नहीं" वे रात्रिभोजनको नहिं करते है।

कर्तव्य—संदेश।

वीरके संदेशको, सबको सुनाना चाहिये।
जैनका झंडा जहांमें, फिर उड़ाना चाहिये॥
महा मिथ्याके तिमिरमें, भूलता जग जारहा।
जैनका दीपक जहांमें, अब जलाना चाहिये॥
ठीक रास्ता भूल प्राणी, वाम मारगमें फँसे।
जैनके रास्ते पै उनको, शीघ्र लाना चाहिये॥
जैनदर्शनका तजुर्बा, जिनको कुछ भी होगया।
उनको उसका तथ्य, दुनियांको सुनाना चाहिये॥
धर्मपर अधिकार, रहता है सभीका एकसा।
वीरका संदेश यह, घर घर पठाना चाहिये॥
जैन युवको तुम उठो, कर्तव्य अपना सोचलो।
बुजदिलीको छोड़कर, आगेको आना चाहिये॥
वीरकी सन्तान होकर, मत बनो कायर कभी।
वीरश्री अकलंकसे, तुमको भी बनाना चाहिये॥
रामसे धर्मात्मा, लक्ष्मणसे भाई तुम बनो।
सज्जनो! श्रीपालसा, साहस बढ़ाना चाहिये॥
कौम मरती जारही है, धर्म गिरता जारहा।
यत्न रक्षाका तुम्हें, अब शीघ्र करना चाहिये॥
नाश हो सारी कुरीती, कौमको करदो सुखी।
जैन तरुवरको सुजन, फिर हरित करना चाहिये॥
धर्मसे च्युत होरहे, जो भाई अपने आज हैं।
बन्धु, उनको शीघ्र ही, तुमको उठाना चाहिये॥
सती सीता द्रोपदी, मैना मंजूषा अञ्जनी।
अब मनोवति-आदिसी, माताएं होना चाहिये॥
सद हजारों बार वीरो! कर चलो कर्तव्यको।
खौफ हर्गिज मत करो, साहस बढ़ाना चाहिये॥
दिल तुम्हारा पाक हो, वचनोंमें होवे सत्यता।
जिस्ममें शुभाचरणका, बीज बोना चाहिये॥
शुष्क दिल प्यासे पड़े हैं, फूटकी आतापसे।
"प्रेम" का प्याला उन्हें, भर भर पिलाना चाहिये॥

निवेदक—ब्र० प्रेमसागर, रैपुरा (पन्ना) निवासी।

दिवाली।

(के-प० शोभाचन्द्र भारिल्ल न्यायतीर्थ बीकानेर।)

दिवाली आ रही है। पत्र सम्पादक अपने अपने पत्रोंके सुन्दर २ विशेषाङ्क निकालनेकी धुनमें हैं, लेखकोंको लेख लिखनेके लिए लिखा जा रहा है, 'ग्राहक' बढ़ानेका यह अच्छा अवसर है। राजा—रंक, सम्पन्न—विपन्न सभी अपने महलों और झोंपड़ियोंकी लीपापोती, झाड़ाबुहारी कर—कराकर कूड़ा कचरा निकाल रहे हैं, लेकिन, कितने सम्पादक दिवालीके तत्त्वको समझनेमें तनतोड़ परिश्रम करते हैं? कौन अपने हृदयका कूड़ा कचरा निकालकर उसे साफ करते हैं? लोग दीपक जलाते हैं। पर कौन कह सकता है अमुकने हृदयके सच्चे 'स्नेह' से प्रेमदीप जगाए हैं? आह! हृदयके अन्धकारको दूर करके कौन प्रकाशित होता है?

भला, बताइये तो, क्या यह दिवाली है? दीपावलिके होते हुए भी कभी अन्धकार रह सकता है? जब अन्धकार, अविवेक, अज्ञान, ज्योंका त्यों बना है तो इसे दीपावलि कैसे कहा जाय? इसे दीवाली न कहकर 'दीपारि' क्यों न कहें? अहा! दीवाली तो वह थी, जब जीते जागते धर्मसूर्य भगवान् महावीरके निर्वाण होनेपर देवोंने—दिव्य पुरुषोंने लोकको 'अलौकिक आलोक' से आलोकित कर दिया था। लेकिन, लोक आज उन मिट्टीके दीपकों—पवित्र हृदयों—में 'स्नेह' भरनेसे जगनेवाली 'ज्योति' के रहस्यको नहीं जानते! आज हम उस ज्योतिको जगाते नहीं, जलाते हैं, भस्म करते, नष्ट करते हैं। बताइये क्या यह दिवाली है?

यदि यह दिवाली होती, तो बार २ आकर हमें इस कदर क्यों चिढ़ाती? सफेद २ दांत निकालकर हमारी अज्ञानदशापर क्यों खिल खिलाती? माता कभी अपने पुत्रोंपर इतनी निष्ठुर होसकती है? यदि यह दिवाली होती, तो दिवालीको पूजनेवाले दिवालिया—ज्ञान-लक्ष्मीसे कोरे कैसे बनते?

हां! यह दिवाली नहीं है। तो क्या है, बच्चोंका खेल? बेशक, यह बच्चोंवाले अज्ञानियोंका खेल ही है। दिवाली मनाते हैं 'दिव्य पुरुष' और बच्चे उससे खेलते हैं। चतुर चित्रकार किसी सुन्दर आदर्शको चित्र द्वारा चित्रित करता है, पर वह बच्चोंका खेल बन जाता है!

बालक! आखिर बालक ही है न! अरे! यही दिवाली है।

हैं, तो हृदयका अन्धकार क्यों नहीं मिटाती? हृदयमें दिवाली नहीं मनाते, इससे। वह बार-बार आकर चिढ़ाती क्यों है?

चिढ़ाती नहीं, आती है। तुम उसे निराश कर देते हो, वह मन मसोसकर चली जाती है। आखिर माता ही ठहरी, ममता नहीं मरती, फिर चली आती है। यह निष्ठुरता नहीं मातृ सुलभ वत्सलता है। वह हंसती क्यों है?

अरे! हंसती नहीं, अमावास्यके घनघोर धुन्धमें कल्याण पथका अनुसरण करनेके लिए, तुम्हें प्रकाश दिखलाती है।

बालको! जब तुम दीपावलिका हृदय समझोगे, तो वह तुम्हारे हृदयमें आ विराजेगी। समझो उसके स्वरूपको।

याचना।

(रचयिता—ताराचन्द्र पांड्या, "चन्द्र")

द्वार द्वार न भटक कर, मांगू तेरे द्वार।
तुझसे भी ना जो मिले, और कौन दातार॥

पूजें पदोंको अमरेन्द्र आके,
नरेन्द्र योगीजन पूजते हैं।
हूँ नाथ, मैं भिक्षुक जन्मका ही,
क्यों माँगनेमें तुझसे लजाऊँ? ॥१॥

देवे न देवे मुझको सुने ना,
तजूँ न मैं तो मम याचनाको।
आकाश चाहे नट जाय तो भी,
त्यागे पपीहा निज टेकको क्या? ॥२॥

सर्वार्थदाता यह नाम तेरा,
कुहानि होगी तब ही न दे तो।
प्रार्थी न पावे सुर-वृक्षसे तो,
हो वृक्षकी ही अपकीर्ति भारी ॥३॥

हूं तुच्छ, मानूं, मुझसे खड़े हैं,
असंख्य, तो भी दिखला दयाको।
सर्वत्र ही सूरज रश्मि फैंके,
देखे न छोटे जन वा बड़ेको ॥४॥

हूँ घोर पापी यह जानता हूँ,
निष्पाप तू है पर पाप-हारी।
सोना करे पारस हेम तो क्या?
सोना करे लोह तभी बड़ाई ॥५॥

ना भक्ति है किंचित, है न चिन्ता,
न दाम माँगू पर दान मांगूं।
दानी न चाहे कुछ भी दियेसे,
दे म्लेच्छको भी पयदान गंगा ॥६॥

ज्ञानी न निष्पाप न पुन्यशाली,
न पास आता यदि होउँ मैं ये।
ईहा न उद्योग करे कृतार्थी,
लेवे न नीरोग यथा दवाई ॥७॥

आया नहीं मैं स्तुति गान वास्ते,
करूँ प्रशंसा पर वेवशीसे।
सौन्दर्य देखे अनुराग होता,
वाणी न माने कहती उसे है ॥८॥

तारीफ की है तुझको न वांछा,
करूँ स्वयं मैं सुख-लालसासे।
आनन्ददाता यश-गान तेरा,
थोडा करूँ हूं निज शक्तिसे सो ॥९॥

ना दण्ड दे निंदकको कभी तू,
प्रसन्न ना हो स्तुति गानसे तू।
दे दुःख निन्दा सुख भक्ति तेरी,
देता तरू ज्यों फल योग्य अपने ॥१०

तेरी कृपा मानव जन्म वाणी,
करूँ स्तुती मैं तव वस्तुसे ही।
दूं अर्घ गंगाजलका उसीको,
होवे कभी जो मम पूर्ण होवे ॥११॥

है कर्म तेरा जगकी नसोंमें,
कहूं अनावश्यक सो कथा है।
शोभा उषाकी किसको न भावे?
तोभी करे वर्णन शब्द-शास्त्री ॥१२॥

ना सोच जो ना स्तुति-पद्य अच्छे,
कवीश, जानूँ नही छन्दको मैं।
है नाम तेरा कवि-दोष नाशी,
केन्द्रे बली ज्यों गुरु रिष्टहर्ता ॥१३॥

पी ना सकी पूर्ण सरस्वती भी,
तव स्तुती अमृत; ना सकूँ मैं।
है कौन क्षीरोदधि पूर्ण पीवे?
क्यों ना उसे शक्ति समान पीवे? ॥१४

तेरी करूँ सत्य गुण-प्रशंसा,
न लोक माने गिन चापलूसी।
अर्थी बताते गुन सौगुना ही,
जाने न कोई अपवाद मैं तू ॥१५॥

पूजूँ सराहूँ गुण दिव्य तेरे,
गिनूँ न मैं तो कुछ लोक-निन्दा।
झूँठा कहे मैंढक कूपका तो,
ना हंस छोड़ नदिनाथ माने ॥१६॥

तेरी निराली महिमा विराजे,
समानता ना जिसकी सके हो।
वांछा बढ़ावे सबकी हि वांछा,
वांछा विनासै तव पाद-वांछा ॥१७॥

तू क्रोध-हन्ता, मद-लोभ-जेता,
तथापि तू द्वेष-विहीन शोभे।
तू विश्व-रागी फिर भी न रागी,
त्यागीश विश्वाधिप भी सदा है ॥१८॥

है कालमें, काल परे रहे तू,
सदा युवा वृद्ध अनादि भी तू।
साकार तेजोमय है अरूपी,
निष्पाप हो एक अनेक भी तू ॥१९॥

आनन्द भोगे निरवाध पूरा,
न भोग भोगे कुछ लोकके गो।
है कर्म-नाशी, अरु कर्मशाली,
आश्चर्य है देव विचित्रताको ॥२०॥

धूली लगा मस्तकपै पदोंकी,
जगत्रयीका विभुवंद्य होवे।
हो दास तेरा सम शीघ्र तेरे,
कैसी अनोखी समुदारता है ॥२१॥

कैसे बखानूँ उनके सुखोंको,
प्रत्यक्ष देखे छवि जो तिहारी?
तुरन्त पावे मनकामना को,
जो स्वप्नमें ही तव मूर्ति देखे ॥२२॥

सोहै प्रभा शान्त सुदीप्त तेरी,
निरीह योगी-मन जो लुभावे।
पाके असंख्यों अनिमेष आँखें,
ना तृप्त है देख हरी, कथं मैं? ॥२३॥

आश्चर्य क्या जो दिन रात तेरे,
पदाब्जको देव सुसेवते हैं?
देवत्वको भक्ति-विचार ही से,
था पा लिया मैंढक तुच्छसे ने ॥२४॥

दी त्याग तैंने कमला तभीसे,
अनाथ होके निज नाथ ढूंढे।
ना योग्य पाके पति नित्य घूमे,
लक्ष्मी तभी तो चपला कहावे ॥२५॥

हो दीन सेवे वह भक्त तेरे,
तुझे कि पाले उनके सहारे।
राजा कृपार्थी नृप-दास सेवे,—
देखें उसे ना पर भक्त तेरे ॥२६॥

शृङ्गार तू, अद्भुत, वीर, शांत,
वीभत्स योगी, भयकार, रौद्र।
है होठ पै जो करुणात्म नाचै,
सुहास्य है वत्सल लोक पै वो ॥२७॥

तारा-प्रभा कारण सूर्य जैसे,
प्रभाव तेरे रवि इंद्र चक्री।
तू राजसी, सात्विक, तामसी भी,
तू तेज, तू जीवन, शक्ति भी तू ॥२८॥

पूजें तुझे सर्व अनेक भांति,
है मान तेरा मतिमें सभीके।
यों व्याप्त है तू सब विश्वमें ही,
है विश्वव्यापी वर ज्ञानरूपी ॥२९॥

दे कर्म, ना तू, सुख दुःखको तो,
गया बताया तुझसे सुमार्ग।
उसे न माने दुख, सुक्ख माने,
कर्त्ता कहें यों तुझको हि हर्ता ॥३०॥

सर्वज्ञ आनन्द अचिन्त्य है तू,
जिनेश कालंजय ईश है तू।
ध्यानी विधाता शिव बुद्ध है तू,
चैतन्य आत्मस्थ भवान्त है तू ॥ ३१॥

अल्लाह है, आहुरमज्द तू है,
रहीम, ॐ ह्रीं, हरि गौड तू है।
ना नामका अन्त न ज्यों गुणोंका,
तू निर्विकारी, चित, सत्य, पूर्ण ॥३२

ज्ञानी हुआ दिव्य त्रिलोक चक्री,
न वस्तु जो ना तव भक्त पावे।
तेरा लिया नाम सुमेरु पै तो,
होके सहस्राक्ष सुरेश शोभा ॥३३॥

आनन्द है सन्मुखता पदोंके,
प्रकाश होना रवि सामने ही।
है दुःख होना विपरीत तेरे,
है रात, ना हो जग सूर्य आगे ॥३४॥

हैं भाग्य फूटे उनके नहीं जो,
हैं भक्त तेरे पद-पंकजोंके।
सौभाग्य आवे जब मानवोंके,
सूझे उन्हें है तब भक्ति तेरी ॥३५॥

तू ध्यान, ध्याता, अरु ध्येय भी तू,
तू ज्ञान, ज्ञाता, अरु ज्ञेय भी तू।
आदर्श तू दीपक तू सखा तू,
नेता, पिता तू, जगका हितैषी ॥३६॥

जो देह दाहे तप-दाह मांही,
अपार शास्त्रांबुधि तैर जावे।
ज्ञान-प्रभा जो फिर भी न पावे।
देवे उसीको तव पाद-धूली ॥३७॥

आश्चर्य है क्या भवसिन्धु सोखा?
आश्चर्य है क्या यम-पाश तोड़ा?
आश्चर्य है क्या तृण दाव दा है?
आश्चर्य है क्या करि फूल तोड़े? ॥३८

सम्राट्-सम्राट् हिये पधारो,
हियेश, आह्वानन हूं करूँ मैं।
रक्खूं हियेमें पद-पद्म तेरे,
रक्खूं यथा दीपक अन्धकारे ॥३९॥

शोधे प्रभू-गर्भ तत्वार्थ देवी,
जो इन्द्रने हुक्म दिया, दिया हो।
सकूँ बना ना मन शुद्ध मैं तो,
शुद्ध्यर्थ ही तो तुझको बुलाऊं॥४०॥

तेरे पदोंने यह विश्व मापा,
कैसे समावे हिय मांहि मेरे?
अनन्त व्यापी कर सूर्यके हैं,
क्या ना समावे लघु ठौरमें वो? ॥४१॥

विश्वेश माँगू तव पादसे क्या ?
वरांगना वैभव राज्यको क्या ?
दुष्प्राप्य चिन्तामणि पाय मागूं,
क्या काण कोड़ी अति मूर्ख होके ॥४२॥

पापी, पराधीन, दुखान्त, मिथ्या,
सशंक हैं, नश्वर हैं, विजाती।
ना तृप्ति देते, थिरता न धारें,
हैं व्यर्थ सारे सुख लोकके तो ॥४३॥

माँगू न तेरी कुछ वस्तुको मैं,
सुबोध माँगू मम आत्मही का।
भूला नशेमें निजको सुरा पी,
मोहान्ध घूमूं भव-चक्रमें हा ! ॥४४॥

ये द्वेष मोहादि मुझे सतावें,
अशान्त रक्खें निजको भुलावें।
रक्षार्थ आया, कर देव रक्षा,
राजा बचावे खलसे प्रजाको ॥४५॥

ना देह मेरी न कुटुम्ब मेरे,
न मौत मेरी दुख ना मुझे है।
दौड़ूँ कराटूँ इन अर्थ तो भी,
आपत्ति कैसी यह नाथ मेरी ॥४६॥

त्रैलोक्यके आश्रय, तार तू माम्,
दयानिधे ! ईश ! उबार तू माम्।
नासै न जो भानु निशान्धको तो,
क्या धूम नासै सघना तमिस्रा ? ॥४७॥

नाना भवोंमें धर रूप नाना,
अनादि औ शाश्वत लोकमाँही।
हूँ घूमता काल अनादिसे मैं,
अनन्तको सान्त बना मुनीन्द्र ॥४८॥

तेरे हियेमें रहता सदा मैं,
मेरे हियेमें रहता नहीं तू।
तेरा हिया तो मुझमें कृपालु,
मेरा हिया ना तुझमें परन्तु ॥
मेरे हियेमें तुव पाद तो हैं,
मेरा हिया ना तुव पादमें है।
विचित्र दीखें पर सत्य ये है,
वैचित्र्य खोटा कर दूर ऐसा ॥४९-५०

जानूं महापाप निदान तो भी,
निशंक माँगू फल मैं थुतीका।
साक्षात हो दर्शन ईश तेरा,
हो भक्ति तेरे पद-पंकजोंमें ॥५१॥

हूँ दास जौलौं तुव दास मानूं,
हूँ मुक्त ज्योंही तव तुल्य जानूं।
स्वबोध पावे तुव भक्तिसे ही,
माँगू इसीसे तव पाद-सेवा ॥५२॥

जो तू मिला तो सब ही मिला है,
जो तू मिला ना, कुछ भी मिला ना।
तेरे विना क्या धन, ज्ञान, सत्ता,
एका विना बिन्दु असंख्यमे क्या ?

है मेघ जैसे कृषि-जीवियोंको,
दिनेश है ज्यों नलिनीदलोंको।
है प्राणपोषी पति ज्यों सतीको,
त्यों पाद तेरे मम प्राणको हैं ॥५४॥

शोभै पुरी पूर्ण तड़ागसे ज्यों,
तड़ाग शोभै नभ-छत्रसे ज्यों।
शोभै भला ज्यों नभ चन्द्रमासे,
मेरा हिया त्यों तुझसे सुशोभै ॥५५॥

शोभै पुरी सुन्दर बागसे ज्यों,
शोभै सदा बाग सुपुष्पसे ज्यों।
सुशोभते पुष्प सुगन्धिसे ज्यों,
मेरा हिया त्यों तुझसे सुशोभै ॥५६॥

नाना सुखोंका रस-पान करतां,
निशेष की सैर जहां सभीकी।
आसक्त हूँ मैं अब तो तुझीमें,
हे सर्व-शोभे, अलि पद्ममें ज्यों॥५७॥

हे विश्वके मोहन आ पिलादे,
अमूल्य आत्मामृत-पूर्ण प्याला।
छोड़ूँ जिसे पी भय मान चिन्ता,
हो मस्त भूलँ सब कष्ट काँटे ॥५८॥

चाहे न आवे, मुझको न तारे,
जपूँ सदा मैं तुव नामको ही।
चाहे न हो पास सुपोत मेरे,
नौका ही लेके नाद्रिको तिरूंगा॥५९॥

तारै सभी आपद नाम तेरा,
पिशाच, हाथी, ग्रह, जन्तु भागे।
है शक्ति साधारण मंत्रमें भी,
है मंत्रका मंतर नाम तेरा ॥६०॥

क्रोधादि है शत्रु-चमू तभी लौं,
निराशता दर्द करे तभी लौं।
संसार देवे भयको तभी लौं,
लेती न जिह्वा तव नाम जोलौं॥६१॥

तूफान है अन्ध, पषान भी है,
अथाह अम्भोनिधिमें पड़ा हूं।
लाटें उठें चक्र कुनक्र भी हैं,
निर्भीक तो भी तव नामसे हूं॥६२॥

है सर्प बिच्छू, दुखकार काटें,
सिंहादि दौड़ें चहुँओर भूखे।
पड़ा हुआ हूं वनमें अकेला,
तथापि खेलूँ तव नाम लेके॥६३॥

ऐश्वर्य है चँचल, कीर्ति मिथ्या,
असार सत्ता परिवार आशा।
निस्सार संसार शरीर सारा,
है सारसारा बस नाम तेरा॥६४॥

चाहे पड़ूँ म नरकाग्निमें ही,
मनुष्य कोढ़ी कुल नीच पाऊँ।
कीड़ा, मकोड़ा, पशु, वृक्ष, होऊं,
ना शांति दाता तव नाम भूलूँ॥६५॥

पूरे करूँ जीवन कर्म सारे,
विचित्र भोगूँ फल भाग्यके मैं।
देखूँ तुझीको सब वस्तुओंमें,
देखे सुमक्षी मधु फूलमें ज्यों॥६६॥

मृत्यू समै भी जब दर्द पीड़े,
सुनाम तेरा मन शान्त रक्खे,
नैराश्यके-उन भयके पलोंमें,
हो नाम तेरा निशिचंद्रिकावत्॥६७॥

मै डूबता सा भव-सिन्धुमें था,
पा पाद तेरे पकड़ूँ प्रभो मैं।
हूँ जोरहीसे पकड़ूँ उन्हें मैं,
कि छूट जावे करसे कहीं ना॥६८॥

जो स्तोत्र तेरा दिलसे पढ़ेगा,
उसे वरेंगीं सब सिद्धि आके।
सो है नरोंमें नर-रत्न वो ही,
तारा सु चन्द्र-द्युति पूर्ण जैसे॥६९॥

दीपावली।

(१)

अहा ! आया दीपावलि पर्व,—
सभी पर्वोंके शिरका ताज।
काम, छल, छिद्र, दुःखोंसे व्याप्त,
हृदयको शान्त बनाने आज॥

(२)

इसी दिन कर्मोंका कर नाश,
गये थे प्रभो ! आप निर्वाण।
सभी लोगोंने मिल तब खूब,
किया था भक्ति पूर्ण गुणगान॥

(३)

अहो ! पर इस अवसरपर नाथ,
अश्रुओंकी अविरल अति धार।
निकलती है नयनोंसे शीघ्र,
दुखीकर मनको विविध प्रकार॥

(४)

कहो कैसे तब करुणागार,
मनावें दीपावलिको आज।
भुलाकर तुमको जब जिनवेश,
गमाया अपना सब सुख साज॥

(५)

प्रभो ! जबसे तुम छोड़ा देश,
मचा तबसे ही हाहाकार।
द्वेष, दुख, दैन्य, कलहका हाय !
राज्य अति विस्तृत हुआ अपार॥

(६)

कपट, कायरतासे परिपूर्ण,
होरहा सारा जैनसमाज।
नष्ट करके वैभव, विज्ञान,
अहो ! सब खोई अपनी लाज॥

(७)

प्रभो ! इस मृतक जातिमें शीघ्र,
करो नव जीवनका संचार।
और सब भेदभाव कर दूर,
भरो उसमें अब सुखद विचार॥

(८)

हृदयको स्वच्छ बनाओ देव !
समझ करके अपना प्रिय वास।
पढ़ाओ "विश्वप्रेम" का पाठ,
कलुषताका करके ही नाश॥

(९)

कृपा करके अब हे करुणेश !
पधारो मनमंदिरमें आप।
दिखाकर सुखका सच्चा मार्ग,
करो सब दूर दुखद संताप॥

(१०)

सबल जन करके अत्याचार,
सताते दीनोंको दिन रात।
दुखी होकर वे करें प्रलाप,
तदपि नहीं पूछें उनकी बात॥

(११)

सतत कर पापाचरण महान,
डुबोया प्रभो ! तुम्हारा नाम।
छिपाकर "सार्वधर्म" को खूब,
न बतलाया जगको सुखधाम॥

(१२)

कहानी कहें कहा तक नाथ,
दुखी हर तरह बने हैं आज।
झटिति आओ अब दया निधान,
सुखी करदो फिर शीघ्र समाज॥

हजारीलाल जैन न्यायतीर्थ, बीनाइटावा।



श्रीमान त्यागी पं० मोतीलालजी वर्णी।

संस्थापक व संचालक "वीरविद्यालय"–पपौरा (टीकमगढ़, झांसी)

Jain Vijaya Press, Surat

નૂતન વર્ષ મુબારક.

(લેખક:—મોતીલાલ ની. આવરી, બારશેઠ)

આજે પ્રાતઃસ્મરણીય જગતવન્દનીય વિશ્વોપકારી મહાનુભાવ મહાવીરસ્વામીને નિર્વાણપદ પામ્યાને ૨૪૫૩ વર્ષ પૂર્ણ થઈ ૨૪૫૪ ના નૂતન વર્ષનો પ્રારંભ થાય છે એ મહાનુભાવે જગતને અહિંસા, સત્ય, દયા, ત્યાગ આદિ નીતિના સામ સિદ્ધાંતોનો ઉપદેશ કરી પોતાના આત્માનું અને જગતના લોકોનું કલ્યાણ કરી જૈનધર્મનો પુનરોદ્ધાર કર્યો.

બન્ધુઓ, ગતવર્ષ પૂર્ણ થયું ને આજે નૂતન વર્ષનો પ્રારંભ થાય છે. ગઈકાલના દિવસને દરેક દિવાળી કહેતા, દિવાળીનો દિવસ આ પણને કેવા આનંદ આપે છે, ન્હાના બાલકો પડેલી ચોપડીનો પહેલો પાઠ શીખતા ઘણા આનંદથી ગાય છે કે—'દિવાળીના દિવસમાં, ઘરઘર દિવા થાય; ફટાકડા ફટફટ ફુટે, આનંદ બહુ હરખાય. પણ એ હરખ એકલા બાળકનોજ નથી, ન્હાના મોટા સ્ત્રી, પુરૂષ, સર્વ કોઈના હૃદયમાં ગો દિવસે હર્ષ વ્યાપી રહે છે, વસ્ત્રભૂષણ સજીને કંઈક અભિમાન સાથે આમતેમ ફરતા છોકરાઓ જુઓ! નુપુરના ઝણકાર કરતી હરખતી ન્હાની ન્હાની છોકરીઓ જુઓ! રંગબેરંગી સાડીઓ પહેરીને પિયેરથી સાસરે જતી અને સાસરેથી પિયેર આવતી યુવતિઓની પ્રફુલ્લ મુખ-મુદ્રા નિહાળો! ઉમંગથી સાસરે જમવા જતા યુવાન જમાઈરાજ તરફ દૃષ્ટિ ફેંકો! કામની ધમાધમમાં પણ એકાન્ત શોધતા નવ પરિણિત દંપતીના વિશ્રંભ કથાઓ તરફ લક્ષ ફેરવો! ક્યાં આનંદ નથી? મનુષ્યનો મોટામાં મોટો આનંદ તે દિવાળીના આનંદ સાથે સરખાવાય છે. તમે કોઈ મોટી પરીક્ષામાં પસાર થયા હો, તમને કોઈ સારી નોકરી મળી હોય, તમને કોઈ વ્યાપારમાં લાભ થયો હોય, તમારે ત્યાં વિવાહ યા લગ્ન આદિનો કોઈ શુભ પ્રસંગ હોય, તો તેના આનંદ—"દિવાળીના જેવો" ગણાય છે. એ શુભ દિવસો તે ભગ ભેગના દિવસો નથી, પણ હમેશાના શ્રમથી મુક્ત થઈને રે જનું, ... ઘડીક છોડી દઈને, નિત્યની નમજમાગી પમેડી ... [illegible] ... હરેમા છે

દિવાળી ... [illegible] ... અર્થ શું? એ ... [illegible] ... એ ઉત્સવ પાળવો. એટલે શું ... શું? અને શું કરવું? એવા પ્રશ્નો શું ... [illegible] ... દિવાળીના દિવસ ધન પૂજન ... [illegible] ... ફટાકડા ફોડવા ... [illegible] ... પહેરવા મેવા ગાડી ... [illegible] ... એવા સહેજ મારવી, એટલેથી શું ... વરગનો ઉત્સાહ પૂર્ણ થાય છે!

નહિજ ત્યારે સાંભળો? દિવાળીના દિવસે જગતવન્દનીય વિશ્વોપકારી મહાનુભાવ અન્તિમ તીર્થંકર મહાવીરસ્વામી જે આ શુભ દિવસે નિર્વાણપદને પ્રાપ્ત થયા હતા, અર્થાત મોક્ષપદને પામ્યા હતા. જન્મ જરા, મરણને તજી—અજર—અમર પદને પામ્યા હતા, અને ગૌતમ સ્વામીને કેવળજ્ઞાન ઉપજ્યું હતું. આ શુભ દિવસથી આપણે વીર પ્રભુ (મહાવીર સ્વામી)નો સંવત ગણવા લાગ્યા છીએ દિવાળીનો સર્વોત્તમ તહેવાર તે આપણા આ મહાન પિતા સમા શ્રી મહાવીર દેવની "જયંતી" રૂપે છે, આજે તે જયંતિનું નવું વર્ષ બેઠું છે, એની જયન્તીના ઉત્સવ આપણે અઢીહજાર વર્ષથી ઉજવીએ છીએ જે હજુ સુધી ઉજવાય છે, મોટી ધામધુમથી ઉજવાય છે. આ મહા પુરૂષના નામની જયન્તી કરવી એટલે દિવાઓ કરવા અને ફટાકડા ફોડવા એટલુંજ શું બસ છે? દુનિયામાં પરોપકારી પુરૂષોજ—નારકા દુઃખો ટાળનાર પુરૂષો પૂજાયા છે—ધનના ઢગલા પૂજાયા નથી! પણ પૂજવું એટલે શું? કેસર, ચંદન, પુષ્પ આદિથી

તેમની મૂર્તિઓ અને છબીઓની પુજા કરવી, એટલુંજ નહી પણ ધૂપ, દીપ, નૈવેદ્યના ઉપચારોથી શુષ્ક પુજા (ખરા મનથી નહિ પણ લોકોને દેખાડો કરવાની) કરી, એથી પુજાઓની હદ આવી જાય છે? નહિજ.

પુજા કરવી અથવા માન આપવું, એનો અર્થ તો એ છે કે, એ મહાનુભાવોના ઉત્તમ ચારિત્રનું અનુકરણ કરવું, તેમણે જે પરોપકારનાં કાર્યો કર્યાં, તે કાર્યો કરવા તરફ આપણી વૃત્તિઓને દોરવી અને તેટલા માટેજ આ મહાન પુરૂષોના ઉત્સવ થાય છે, પણ ઉપર ગણાવ્યા પ્રમાણે આપણે મિષ્ટાન્ન ઉડાવવું, વસ્ત્રાલંકારો પહેરવા, એકથી અનેક દિવસોની રોશની પ્રગટાવવી, ઉપરાંત વિશેષ કાંઇ કરતા નથી. ધનતેરસના દિવસે ધનની પુજા કરી, રાત્રે ઘરના ઘરેણાં ઉજળ્યા, દિવાળીની રાત્રે સરસ્વતિ અને લક્ષ્મી–ધનની પુજા કરી અને બેસતા વર્ષને પહેલે દિવસે સારૂં સારૂં ખાવા પીવાના શુકન કર્યાં, ધન લાભ હોજો? કોથળીઓ ભરાજો, એવી રીતે લક્ષ્મી દેવીની પ્રાર્થના કરી! પણ કાંઇ દુઃખી દર્દીઓને મદદ કરવા સબંધી કંઇ તમે કર્યું? જે જ્ઞાનની પ્રજાને હાલ ખરેખરી જરૂર છે, એનો કાંઇ વિચાર કર્યો? જરા ઉભા રહો? વિચાર કરો કે–આપણા મહાન પિતા મહાવીરસ્વામી આવી ઉજ્જ્વળ અને અમર કીર્તિને શી રીતે પામ્યા? તેનો ટુંકા શબ્દમાં ઉત્તર આપુ તો કહીશ કે–"યોગબળથી." યોગ એટલે શું? હૃદયની સમતુલના અને વિશાળતા. તમારૂં અને મારૂં જુદું નથી એ ફીલસુફી? અહા! આર્યાવર્તમાં વીરોની આ ફીલસુફી હૃદયને આનંદમાં રસબોળ કરે છે! તમારૂં અને મારૂં જુદું નથી, હું અને તમે એક છીએ. અહો! આ શબ્દોમાં કેવો અદ્વિતીય પ્રભાવ લાગે છે? આપણી પ્રાચીન ફીલસુફીનો આ એક મુખ્ય પાઠ હતો. ગૌરવ હજી છેક નાશ પામ્યું નથી. ત્યારે તે છે કયાં? જૈન બંધુઓના–હૃદયમાં હજી તે વારસો છે, પરન્તુ થોડાજ અપવાદ બાદ કરતાં ઘણા જૈન બંધુઓમાંથી એ તત્વજ્ઞાન કેટલેક અંશે નાશ પામ્યું છે, અથવા શૂન્યવત્ થયું છે. જમાના સાથે અને કહેવાતા સુધારા સાથે "મારૂં અને તારૂં" એ એનું પ્રબળ હદ ઓળંગીને વધી ગયું છે આ માન્યતામાં કેટલેક અંશે અતિશયોક્તિ હશે પણ અસંભવિતતા તો બિલ્કુલ નથી.

લેવું અને આપવું. To take and to give એ વ્યવહાર અનાદિ કાળથી ચાલ્યો આવે છે, પણ ચડતા ઉતરતા ત્રાજવા સાથે કાંઇ પલ્લામાં લેવાનો ભાર વધી જાય છે અને આપવાનો ભાર ઓછો થાય છે. આધુનિક સુધરેલા સમાજમાં આ ત્રાજવાના બે પલ્લામાંનુ એકજ પલ્લુ લેવાનુ પાતાળ તરફ નમે છે, ત્યારે બીજું પલ્લુ આપવાનુ આકાશ તરફ ઉંચુ ચડે છે "મારૂં તે મારૂંજ, તમારૂં તે મારૂં મારૂં તમારૂં–હું મારૂં સંભાળું છું, તમો તમારૂંજ સંભાળો, અને ફોડી લ્યો." એ કાયદાની બારીકી જાણનાર સુધરેલા સમાજનું વર્તમાન છે? હાલ તો એમ મનાય છે કે–હું લઉં તે મારૂં અને આપું તે બીજાનું. પ્રાચીન સમયમાં આ ફીલસુફી એથી જુદી હતી "હું આપું એજ મારૂં અને લઉં તે મારૂં નહિ" બીજાનું આપણને જે મળે છે તે આપવાના બદલા તરીકે મળે છે, અને જેમ વધારે આપાય તેમ તેમ વધારે મળે છે, આ સિદ્ધાંત હાલમાં ભૂલી જવાય છે, જેઓનો આપણે શક ગણીએ છીએ અને આનંદના જયનાદ સાથે જેઓના નામ આપણે લઇએ છીએ તે મહાપુરૂષો આપવામાંજ બહાદુર હતા, લેવામાં અને બીજાનું લુંટવામાં નહિજ.

મહાપુરૂષોના જયન્તિ આદિ દરેક ઉત્સવમાં પ્રત્યેક મહાપુરૂષના ગુણાનુવાદ ગાવા અને એમના ગુણો ગ્રહણ કરવાની પ્રતિજ્ઞાઓ લેવી એજ મુખ્ય હેતુ છે. દિવાળીના ઉત્સવમાં આ મહાન ગણાતા પર્વમાં–તો અવશ્યે–ગરીબ ગરબાંઓ, દુઃખી અને અનાથ તેમજ પોતાના નિરાધાર સ્નેહી સંબંધીઓને મદદ આપવી, ગુપ્તદાન કરવું, અને લેવાની વૃત્તિ

છોડી દઈને આપવાની વૃત્તિ ધારણ કરવી. બેસતા વર્ષે ઘોડાગાડીના પૂજન કરવાથી ઘોડાગાડી મળનાર નથી, ધનતેરસને દિવસે લક્ષ્મી પૂજન અને ઘરેણાંની પૂજા કરવાથી તેમજ દિવાળીના દિવસે ચોપડા અને રૂપીઆની પૂજા કરવાથી ઘરેણા કે રૂપીઆ મળનાર નથી. ચાલતી આવેલી પ્રથા પ્રમાણે ભલે વરસો વરસ તેમ કરે જાઓ, પણ તે કાર્ય એવા ભાવથી કરો કે મને વધારે ધન પ્રાપ્ત થશે તો હું તેનો પરોપકારમાં-ગરીબોની મદદમાં ઉપયોગ કરીશ, અને એ ભાવના પ્રમાણે વર્તન કરીને બેસતા વર્ષે-એવું કાંઈ કાર્ય કરીને ધનનો ચાર દાન પૈકી અભયદાન, જ્ઞાનદાન, આહારદાન, ઔષધદાન આદિ દાનમાં સદુપયોગ કરો તેનું નામ દિવાળી છે. હિસાબના ચોપડા રાખો છો અને નફાટોટાના સરવૈયાં કાઢો છો તો ભલે, પણ એક વરસમાં સારૂં નરશું શું કર્યું તેનું સરવૈયું કોઈ દહાડો કાઢો છો? મિત્રો, દરેક દિવાળીનો ઉત્સવ એવું ચેતાવે છે કે-આપણા આયુષ્યમાંથી એક વરસ ઓછું થયું, એમ દરેક દિવાળીએ તે આપણને તેવીજ રીતની ચેતવણી આપે છે. આ દુનિયામાં આપણે શા માટે આવ્યા છીએ અને આપણું શું કર્તવ્ય છે, તેનો દરેક માણસે શું વિચાર નહિ કરવો? અને વિચાર કરવો તો ક્યારે કરવો? વર્ષ પર વર્ષ પસાર થતા જાય છે, અને કરવાનું રહી જાય છે? આ વાતનો હમેશાં વિચાર કરો, અને આજે શું કર્યું, અને કાલે શું કરવું, તેનો રોજ હિસાબ કરો. કદિ રોજ ન બને તો બાર મહીને એકવાર તેનો બે કલાક તો એકાન્તમાં બેસીને વિચાર કરો. અને ગત વર્ષમાં શું સારાં ખોટાં કર્મો કર્યા તેનો હિસાબ તમારા અંતર આત્મા સન્મુખ તપાસી હવે આવતા વર્ષમાં શું કરવું જોઈએ, તેનું બજેટ નક્કી કરો.

સત્કર્મો અને દુષ્કર્મોનું સરવૈયું કાઢીને તપાસો કે આમાંથી ક્યાં કર્મો વધે છે? આ જીંદગી-મનુષ્ય દેહ સત્કર્મો માટે છે. બીજા પ્રાણિઓને ઉપયોગી થવા માટે છે. ડાહ્યા માણસો એટલા માટે લાંબા આયુષ્યને ઇચ્છે છે, અને વડીલો પોતાથી નાનાઓને "ચિરંજીવ" એટલે લાંબુ આયુષ્ય ભોગવો એવો આશીર્વાદ આપે છે.

પ્રિય બંધુઓ ?

વિશ્વોપકારી મહાનુભાવ વીર પ્રભુ મહાવીરે આ બાબતમાં ઘણો કિંમતી બોધ આપેલો છે. જગતમાં દયા અને પ્રેમ એ બાબતમાં કોઈપણ ધર્મ જૈન ધર્મની સ્પર્ધા કરી શકે તેમ નથી, વીર પ્રભુ મહાવીરને તો સમસ્ત વિશ્વ એ પોતાનું કુટુંબ હતું. અને કુટુંબ પ્રેમ હતો, તો પછી તેજ વીર પ્રભુના શાસનને માનનારા દરેક જૈને પોતાના કુટુંબમાં, ભાઈઓ બાઈમાં, પોતાના જ્ઞાતિ બંધુ સાથે, પોતાના મિત્રોની સાથે, અને જૈન તો શું પણ જૈનેતર કોમ સાથે, એક બીજામાં પરસ્પર પ્રેમ વધે, હૃદયના સંકોચ વિના એકસે ઉદાર દિલથી એક બીજાના સુખ દુઃખમાં ભાગ લેવાનો નિર્મળ વ્યવહાર વધે એવા વર્તનને અંગિકાર કરીને નૂતન વર્ષનો આરંભ કરો.

આ નૂતન વર્ષ આપ, આપના કુટુંબ સમુદાય અને મિત્ર વર્ગને સર્વત્ર શાન્તિ, આશા અને ઉત્સાહની પુષ્પ કારક પુષ્પોથી જગતનું વાતાવરણ પવિત્ર કરી—

शिवमस्तु सर्व जगतः परहित निरता भवन्तु
मूतगणा: ।
दोषा: प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवन्तु लोका:॥१॥

ભાવાર્થ—સર્વ મનુષ્યો દુઃખોને તરી જાઓ! સર્વ મનુષ્ય કલ્યાણ જુઓ. સર્વ મનુષ્ય ઇષ્ટ વાંચ્છનાને પ્રાપ્ત કરો! સર્વ મનુષ્ય સર્વ સ્થળે આનંદ પામો! અસ્તુ!

કન્યાવિક્રયની કરૂણ કથા.

લેખિકા:-પ્રભાવતી, બહેન, શ્રાવિકાશ્રમ-સોજીત્રા

અમરસિંહ નામે એક રજપુત હતો. તેને એક કુંવર તેજસિંહ હતો, તેનો વિવાહ નાનપણથી કરેલો હતો, પણ લગ્ન થયા નહોતા. અશુભ કર્મના ઉદયે ને રજપુતને ગરીબાઇ આવી ગઇ હતી. એક દિવસે વેવાઇને ત્યાંથી સંદેશો આવ્યો કે રૂપીઆ એક હજાર લઇને વૈશાખ સુદ ૫ મે હથેવાળે પરણાવવા કુંવરને લાવજો, રૂપીઆ નહિ લાવો કે પાંચમની છઠ થઇ કે તરત બીજાની સાથે ચાર ફેરા ફેરવી દઇશ.

વેવાઇ શું તૂટશે? પાંચ પાંચ વરસના ધૂળમાં રમતાં હતા ત્યારથી પંદર પંદર વર્ષ સુધી જેનું ધ્યાન ધરેલું તે રાજબા શું આજ બીજાને જશે? એવા એવા અનેક વિચારો તેજસિંહને આવતા ને નિરાશ થતો, પણ તેને એક રસ્તો જડયો.

એ વાણીઆને ત્યાં એની જાગીર ગડાણમાં હતી તેના શરણ આધીન અમરસિંહ કરગરી ઉઠયો: ભાઇ, આજ મારી લાજ રાખો. એક હજાર રૂ. આપો. મારો કુંવર પોતાની જાત વેચીને પણ દેવું અદા કરશે, વાણીઓ પીગળ્યો નહી. રજપુત વ્યાપારીના હાથ ઝાલી ખૂબ રોયો. પછી વિચાર કરી—

'વ્યાપારીએ કાગળ લીધો ને કંઇક લખ્યું લ્યો ભાઇ, કરો આમાં સહી, કાગળ વાંચીને રજપુતનું લોહી સુકાઇ ગયું. એમાં લખ્યું હતુ કે "રૂપીઆ એક હજાર પુરા ન ભરે ત્યાં સુધી તેજસિંહ રાજબાને બ્હેન બરાબર ગણે" બીજો કંઇપણ ઉપાય નહોતો એટલે શું કરે? રજપુતે તેના પર કુંવર પાસે સહી કરાવી. તેજસિંહે સહી કરી પણ હાથ ધ્રુજતો હતો ને હૃદય કંપતું હતું.

વૈશાખ સુદ પાંચમને દીવસે કોમળી લઇ જઇ લગ્ન મંડપમાં મૂકી. સર્વ મંડપના લોકોને ખબર પડી કે સસરાએ ગરીબ જમાઇને આપઘાત કરવા જેવો મામલો કર્યો છે. ધીક્કારો દેતા કુંવરીને વેચી રૂપીઆ લેનાર કસાઇ જેવા પિતાને ધિક્કાર આપતા, મંડપમાંથી ઉભા થઇ ગયા. કુંવરીના પિતાનું મોં લેવાઇ ગયું, અને ઓરડાને ખૂણે આંખોમાંથી શ્રાવણ ભાદરવો વરસાવતી રાજબા કપવા લાગી કે હાય હાય! આનું વેર મારો સ્વામી મારા ઉપરજ ઉતારશે. અને મને મેંણા મારી દુ:ખી કરશે લગ્ન થયા પછી.—

સાસરાના ગામને છેલ્લામાં છેલ્લા નમસ્કાર કરી રાજબાને લઇ ગાડીમાં બેસાડીને ઘેર લાવ્યો. કુમળી રજપુતાણીએ ઘરમાં સર્વ કામકાજ હાથેજ સુઘડતાની સાથે મનમાં જરાએ ઓછાપણું ન આણતા કરી લીધું.

તે રાત્રે પથારી પાથરી સ્વામીની રાહ જોતી બેઠી. સ્વામી આવ્યો. તલવાર ખેંચીને પોતાની અને રજપુતાણી વચ્ચે રાખી સુઇ ગયો. એક નાનકડી તલવાર છતાંએ જાણે કરોડો ગાઉનું અંતર ભાસવા લાગ્યું. એવી એવી રાતો એક પછી એક વીતવા લાગી. આખો દીવસ એક બીજાની આંખોમાંથી અમીના મધુરા ફુવારા ઉડે છે. અબોલ પ્રીતડી એક બીજાના અંતરમાં સાત તાળાની રમતો રમે છે, પણ રાતે પથારીમાં કાળી નાગણ જેવી નાગી તરવાર કેમ મૂકાય? રાજબા આ સમશ્યા કેમેએ કરીને સમજી ન શકી. એણે જોયું કે તેજસિંહના આચરણમાં પોતા પ્રત્યે રીસની એક પણ નિશાની નથી. શું કંઇ મારી પરીક્ષા કરતા હશે? કે મંત્ર સાધતા હશે? કંઇ નથી કળાતું. હૈયું વિંધાય છે, ને કંઇ કંઇ થાય છે.

એક બે ને ત્રણ રાત્રિ આમજ વીતી ગઇ. ચોથી રાત્રે તેજસિંહ આવીને સુતો, પણ રાજબા ખાટને અઢેલીને ઘણીવાર લગી ઉભીજ રહી, સ્વામીએ પૂછ્યું કેમ ઉભા છો? રાજબાની આંખોએજ ટપક ટપક આંસુ પાડીને મુંગો ઉત્તર વાળ્યો કે: તમે રજપુત છો તો હું પણ રજપુતા-

ણીનું દૂધ ધાવી છું. આખું જીવતર તલવારના અંતર રાખીને નહિ બેઠું! "ત્યારે આ શું કરો છો ?" ફક્ત તમારા અંતરનો ભેદ જાણવા માગું છું. ભેદ શેનો? આ મારો શોક તલવારનો. રજપુતાણી, લ્યો આ દસ્તાવેજ વાંચો. વાંચતા વાંચતા તો રાજપુતાણીની આંખો દિવામાં નવું તેલ પુરાય તેમ ઉજળી તેજ વાળી બની ગઈ. રંગ છે તમારા માત પિતાને! એમજ હોય તો વાંધો નહીં અને પોતાના પિતાને હજારવાર ધિક્કાર આપ્યો અને આ કન્યાવિક્રયનું મોં કાળું કરવા દૃઢ સંકલ્પ કર્યો.

હવે આમ કેટલા દિવસ ચાલશે અને ક્યા સુધી નિરાંતે બેસી રહેશો? ત્યારે શું દોડાદોડ કરૂં?

આ લો, કહી રજપુતાણીએ પોતાના બધા ઘરેણાં કાઢી આપ્યાં. આને શું કરૂં? કરજ ચુકાવી નાખું? બાયડીના પાલવડા વેચીને ઘર છોડવાં એનું નામ વ્યભિચાર કહેવાય સમજ્યા, "ઉતાવળું બોલી નાખો મા" આમાથી બે ઘોડીઓ બન્ને જોડ પોશાક કરાવો ને બે જોડ હથીઆરની બીજી જોડ. કોને માટે! મારે માટે, તમારે માટે? હા મારે માટે. નાની હતી ત્યારે બહુ પહેર્યાં છે, હથિઆરો અંગે સજીને કાળી રાતે મેં એકલીએ ઘરની ચોકી કરી છે. આજ સુધી છોકરાની રમતો રમતી હતી. હવે સાચો વેષ સમજી તમારો નાનો ભાઈ થોડા વખત માટે કહેવાઈશ.

અંગે વીરના વસ્ત્ર સજી પહેરીને બન્ને ઘોડેસ્વાર કોઈ મોટા રાજ્યમાં ચાકરી ખોળવા નીકળ્યા, રાજબા એવી દેખાવવા લાગી જાણે બીજો કોઈ રાજકુંવરજ હોય.

કોઈ એક રાજધાનીના દરવાજામાં બન્ને ઘોડા નાચ કરવા પેસતાં હતા તે વખતેજ બાદશાહ સલામતની સવારી સામી મળી. રાજા આ બન્ને કુંવરોને જોઈ રાજી રાજી થઈ ગયો ને પૂછ્યું—કોણ છો તમે? ઉત્તર મળ્યો. "રજપુત છીએ." કેમ નીકળ્યા છો? નોકરી ખોળવા. અહીં રહેશો? બન્નેએ નમ્રતાથી હા પાડી. સગા થાઓ છો? હા, મામા ફોઈના ભાઈઓ છીએ. રાજાએ બન્નેને નોકરીમાં રાખ્યા.

બન્નેએ પોતપોતાની ચતુરાઈથી રાજાનું મન આકર્ષી લીધું અને બન્ને રાજાના વિશ્વાસપાત્ર બન્યા તે એટલે સુધી કે તેમને રાજાના શયનગૃહનો પહેરો દેવાનું સોંપાયું. આખી રાત ચોકી દેતા દેતા આ રજપુતોને એક વર્ષ વીતી ગયું. હજુ હજાર રૂપીઆનો જોગ થયો નહોતો.

આષાઢ માસમાં વરસાદ વરસતો હતો, મેઘ ગાજતો હતો, વીજળીઓ ચમકતી હતી તેવે વખતે ઝરૂખાની પરસાળમાં આપણા રજપુતોની કેવી ગતિ થઈ રહી હતી! ભાલાનો ટેકો લઈ ઉભેલા તેજસિંહની આંખો જરા મળી ગઈ. હાથમાં ભાલા સાથે એકલા રાજબા ટેકે છે. એની આંખો આભમાં મંડાઈ ગઈ છે, અને યાદ આવ્યું કે આષાઢ આવ્યો બીજો એટલે ૧૨ મહિના વીતી ગયા. આખા સંસારમાં આજ જાણે કોઈ એકલું ન હોય! વિયોગણ તુંજ એકલી. રંગભીનો સામે ઉભો છે તોએ જાણે સો યોજનનો અંતર દેખાવવા લાગ્યું.

વાદળાનો ગડગડાટ ફરી સાંભળ્યો. વીરાંગના કોઈ દિવસ નહોતી ડરી, વાઘથી પણ ન ડરે તે આજે એકદમ ચમકીને દોડી. સ્વામીને ભેટવા તસુ એકનુંજ અંતર રહી ગયું. પચાસ ગાઉ આઘેના એક નાના ગામડામાંથી દસ્તાવેજ કરાવી લેનાર વાણીઆએ જાણે આંચકો માર્યો હોય, તેમ સ્તબ્ધ થઈ ગઈ. તે શું જોયું? સુતેલા કંથના મોં ઉપર કદિ ન જોએલું રૂપ! વિયોગી વેદનાભર્યું અને રીસાતું એ રૂપ!

રજપુતાણી પાછા કદમ ભરવા લાગી. વીરત્વ બધું જાણે એની છાતી ભેદી, નીસાસા રૂપે બહાર આવ્યું એક નીસાસો! એકજ નીસાસો કેટલો તોલદાર હશે. ધરતી ઉપર જાણે ધમ દઈને પડ્યો તે વખતે પાછો પપૈયાના પિઉ પિઉનો શબ્દ સાંભળ્યો. તેણે પપૈયાને ઉત્તર આપ્યો—

"દેશ બીજો પિયુ પરદેશમાં, પિયુ બાંધવારે વેષ.
જે દિન જાણશું દેશમાં (તે દિન) બાંધવ પિયુ કરેશ"

મારા શરીર દેશમાં આજ વીજળી થાય છે પણ પ્રિયતમ તો પરદેશમા છે. અરે ! નહિ મારો પાસેજ છે પણ ભાઇના વેષે. જ્યારે રૂપીઆ કમાઇને દેશમા જાણશું ત્યારે બાંધવ મટાડી પતિ બનાવીશ.

સવાર પડી. હૈયામાં વાત સમાતી ન હોય તેમ રાણીએ રાજાની આંખ ઉઘાડતાજ વાત કરી કે આ બન્ને રજપુતોમાં કંઇક ભેદ છે.

"શું કકડા કરી નાંખુ ?" નાના કકડા કરવા જેવો ભેદ નથી પણ સાંધવા જેવો છે. આ જોડીમાં એક પુરૂષ છે અને બીજી સ્ત્રી છે. બન્નેની અંદર કોઇ ગુપ્ત વિયોગ છે.

દિવાની થા મા દિવાની ? જોતી નથી બન્ને પુરૂષ જેવાજ દેખાય છે. પરીક્ષા કરો પછી દિવાનુ કોણ છે તે સમજાશે. તે શા પરથી જાણ્યું ?

મધરાતે મારી ઉંઘ ઉડી હતી તે વખતે અટારીમાંથી એક ઉંડો નીસાસો સાંભળ્યો. દીવાલો પણ એ નીસાસાના અવાજથી જાણે કાંપતી હતી. એક દોહો પણ એ બોલી હતી. એવો દોહો અને એવો નીસાસો તો નારીના હૈયામાંથીજ નીકળી શકે. તેની પરીક્ષા કરવી હોય તો કરો. તેની પરીક્ષા કરવા માટે રાણીએ ઉપાય દેખાડયો.

બન્નેને દૂધ પીવા બોલાવજો. એમની સામેજ દૂધની તપેલી દેવતા ઉપર મુકી દૂધ ઉભરાવવા દેજો. એમાંથી જે રજપુત દૂધ ઉભરાતુ જોઇ ન શકે તે તમને ટોકશે તેને સ્ત્રી સમજજો, કારણ સ્ત્રીનો સ્વભાવજ એવો અધીરો હોય છે.

રાજાએ બન્નેને બોલાવ્યા, દૂધ સગડીએ મુકાવ્યું. દૂધને ઉભરો આવ્યો. રાજબા બોલી ઉઠયા, એ...એ દૂધ ઉભરાય ! તેજસિંહે એને કોણી મારી કહ્યું–"તારા બાપનુ ક્યાં ઉભરાય છે ?" પણ ભેદ બહાર પડી ગયો. રાજા તેમને રાણીના ખંડમાં લઇ ગયો. રાણીએ પુછી લઇ કહ્યું; બોલો બેટા બન્ને કોણ છો ? સાચું કહેજો, બીશો નહી. અભય વચન છે.

ગદ્દગદ્દ કંઠે તેજસિંહે ખાનગી વાત બોલી વાણીઆના દસ્તાવેજની વાત કરી. વાહ ! રજપુત વાહ ! ઉચ્ચારતો રાજા મોમા આંગળી નાખી સ્થિર થઇ ગયો. રાજાએ કહ્યું–તમે મારા પુત્ર પુત્રીઓ છો કે હું હમણાજ તમારે માંગ વાણીઆને રૂપીઆ મોકલાવું છું. તમે બન્ને જણા મારા બીજા મહેલમા રહો અને આજે મારે ઘેરથીજ યુગ સંસાર માંડો

ત્યા તો રાણીએ રજપુતાણીને છાજતા મહા મુલ્ય વસ્ત્ર હાજર કર્યાં, ને કહ્યુ "બેટા, આ પહેરી લે." બન્નેના આંખમા આંસુ આવ્યા. અંજલી જોડીને રાજબા બોલ્યા,–અમારા સાચા માબાપ તમેજ છો. કારણ તમે અમને વિયોગ દુઃખમાંથી છોડાવ્યા. જે જન્મદાતા હતા તેમણે તો દુઃખમાજ ડુબાડેલા હતાં. એવા કસાઇ જેવા પિતાને હજારવાર ધિક્કાર હો કે જે એક શત્રુ જેવા કાર્યથી શોભે છે !

અમે પોતેજ જ્યારે વાણીઆને રૂપીઆ ચૂકવીશુ, દસ્તાવેજનો કાગળ હાથો હાથ લઇ ફાડી નાખીશું ત્યારે અમારું વ્રત પુરૂં થશે રાજાએ બન્નેને ગાડા ભરી ભરીને સરપાવ આપ્યો, અને તેમને વિદાય કર્યા વાણીઆનુ કરજ ચૂકાવી, બધી જમીન છોડાવી લીધી ને તે દિવસે વિવાહનો પહેલો દિવસ રાત ઉજવ્યા ને સુખી થયા.

ગુજરાતના બંધુ બગિનીઓને વિનંતી કરવામાં આવે છે કે સોજીત્રામા બે વર્ષથી સ્ત્રીઓપયોગી દિ. જૈ. શ્રાવિકાશ્રમ ઉઘાડવામાં આવ્યુ છે તે આપ સર્વને વિદિતજ છે. તેમાં પોતાના પુત્રી, વહુઓ, વિધવા બ્હેનો વગેરેને મોકલી લાભ લેતી કરો. અજ્ઞાનતાથી ઘણુજ દરેક રીતે નુકશાન થાય છે તે અજ્ઞાનતાને દૂર કરવા શિક્ષણની જરૂર છે. પોતાની બાળા વિધવા, સધવા ગમે તે હોય તેને દૂર દેશ મુંબઇ, આરા, ઇન્દોર વગેરે તો ન મોકલી શકો પણ ઘરને આંગણે આવેલા

સોજીત્રા શ્રાવિકાશ્રમમાં મોકલી લાભ ઉઠાવો અને આ વર્ષે વીર નિર્વાણનું સ્મરણ કરી નૂતન વર્ષાભિનંદન સ્વીકારી તમો પોતાથી બનતી ફુલ નહીં ફુલની પાંખડી જેટલી પણ મદદ આપવા ચૂકશો નહીં અને પોતાનો દાનો લાભ લખાવશો એવી આશા રાખું છું.

મહાવીર ભગવાન સાક્ષાત્ સર્વ જગત જીવોને કલ્યાણનો માર્ગ બતાવી સર્વને સત્ય સુખના ભોક્તા બનાવી ગયા છે. આપણાથી કંઇ બનતું નથી તો આવો બંધુ ભગિનીઓ ! વીર પ્રભુને સ્મરણ કરી નૂતન વર્ષને દીવસે સર્વ જીવોને અભિનંદન આપીએ અને ભાવના ભાવીએ કે—

"सुखी रहे सब जीव जगतके कोई कभी न घबरावे।
वैर पाप अभिमान छोड जग, नित्य नये मंगल गावे"

મૂલસંઘ અને કાષ્ટાસંઘ સંબંધી પ્રશ્ન.

૧—શ્રી મૂલસંઘ મતથી શ્રી કાષ્ટાસંઘ મત નામ કયા સંવતથી અને કયા રાજાના સમયથી શાથી પડયું ?

૨—મૂલસંઘી અને કાષ્ટાસંઘી વચ્ચે કેટલા શબ્દનો ફેરફાર છે કારણકે જેમ શ્વેતાંબર અને દિગંબર વચ્ચે ૮૪ શબ્દનો ફેર છે, તેમ આમાં પણ હોવો જોઇએ.

૩—૮૪ જ્ઞાતિના વાણીઆ કહેવાય છે, તેમાં આ કઇ કઇ જ્ઞાતીના વાણીઆ કાષ્ટસંઘ ધર્મ પાળે છે, અને તે કયા કયા દેશના છે ?

૪—તેમની ગાદીઓ મૂળ કેટલી અને કયા કયા સ્થાને છે ? ઉપરના પ્રશ્નોનો ઉત્તર વિદ્વાનોએ તથા ભટ્ટારકોએ શાસ્ત્ર પ્રમાણ સાથે દિગમ્બર જૈન તથા જૈન મિત્રમાં આપવા જોઇએ કારણ કે ઘણા તીર્થ સ્થાને મૂલસંઘ તથા કાષ્ટાસંઘ મતના યાત્રાર્થે આવે છે તે વખતે ઘણો વાદવિવાદ થાય છે, તેથી આ ખુલાસાની જરૂર છે.

તલકચંદ રાજકરણ ગાંધી.
નવોવાસ (મહીકાંઠા,)

પુરૂષાર્થ.

(લેખક—જૈન મહિલારત્ન શ્રીમતી મગનબ્હેન, શ્રાવિકાશ્રમ, મુંબઇ.)

આ સંસારમાં ધર્મ, અર્થ અને કામ એવાં ત્રણ પુરૂષાર્થના સાધન વિના મનુષ્યનું આયુષ્ય નિષ્ફળ ગણાય છે, વળી તેમાં પણ ધર્મ પુરૂષાર્થને પ્રધાન કહ્યો છે, કેમકે તેના વગર અર્થ અને કામ પુરૂષાર્થ કદિપણ સાધી શકાતા નથી. અર્થાત્ શોભાને પામતા નથી

સંસારમાં સર્વ મનુષ્યોએ અને પ્રાણી માત્રએ પુરૂષાર્થવાન બનવું જોઇએ, એ ઉદ્દેશથી હું આ પુરૂષાર્થના ઉપર કંઇક ટુંકમાં થોડું લખું છું.

પુરૂષ—આત્મા, સર્વે ચાર ગતિના જીવોને પુરૂષ કહી શકાય છે તેનું જે પ્રયોજન અર્થાત્ પુરૂષ અને અર્થ—આમ બે શબ્દોથી બનેલા મહાન અર્થવાળા પુરૂષાર્થ શબ્દમાં ઘણો ગંભીર અર્થ સમાયલો છે. પહેલો અર્થ તો એ છે કે આત્માના શુદ્ધ સ્વરૂપને પ્રાપ્ત કરવું. આત્મામાં રહેલી અનન્ત શક્તિઓને ખીલવવી, અને બીજો અર્થ વ્યવહારમાં ચાર પુરૂષાર્થ કહેલા છે—ધર્મ, અર્થ, કામ, અને મોક્ષ. મોક્ષ પુરૂષાર્થ વર્તમાનકાળમાં પ્રાપ્ત કરાતો નથી, માટે ત્રણ પુરૂષાર્થને માટેજ પ્રયત્ન કરવાનો છે. તેમાં ધર્મ પુરૂષાર્થ મુખ્ય છે.

त्रिवर्गसंसाधनमन्तरेण, पशोरिवायुर्विफलं नरस्य ।
तत्रापि धर्मं प्रवरं वदन्ति, न तं विना यद्भवतोऽर्थकामौ ॥

ધર્મ એ મનુષ્યનું જીવન છે, વિશ્રાન્તિ સ્થાન છે. સંસારના મોહ જંજાળમાં ફસાયલા જીવોને સન્માર્ગમાં દોરવનાર પણ એક ધર્મજ છે ધર્મનું સ્વરૂપ ઘણાં પ્રકારે કહેલું છે. તેમાં વસ્તુ સ્વરૂપ, ધર્મ, અહિંસામય ધર્મ, રત્નત્રય રૂપ ધર્મ, અને દશ ધર્મ રૂપ ધર્મ, આ બધા

બધાઓમાં એકજ વાત છે કે જે પોતાના સ્વભાવને છોડતો નથી તેજ ધર્મ. એ પાછળના પુરૂષાર્થ અર્થ અને કામ, ધર્મ પુરૂષાર્થના ફળ રૂપ છે જો આપણે નિશ્ચય સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ કરવી હોય તો આ ત્રણેની પ્રાપ્તિ અવશ્ય કરવી પડશે. ધર્મની સિદ્ધિમાં, તેને ઉપાર્જનના સાધન દરેક માણસે નીત્ય પ્રતિ કરવા જોઇએ. આપણે થોડા શ્રાવકની આવશ્યક ક્રિયા કરવા અભ્યાસ પાડે તો સહેજમાં ધર્મ પુ૦ સિદ્ધ થઇ જાય.

देवपूजा गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयमस्तपः ।
दानं चेति गृहस्थानां, षट् कर्माणि दिने दिने ॥

પ્રત્યેક બ્હેન ભાઇની ફરજ છે કે, રોજ જિન મંદિરમાં જઇ અષ્ટ દ્રવ્યથી શ્રી જિનેંદ્ર દેવની પૂજા કરે. જો પ્રત્યક્ષ ગુરૂ હોય તો દર્શન કરે અને ન હોય તો પરોક્ષમાં તેમનાં ગુણોની સ્તુતિ કરે. દરરોજ એક ગ્રન્થને આદિથી અંત સુધી વાંચવાની પ્રતિજ્ઞા કરી તેને થોડો થોડો વાંચીને પુર્ણ કરે. આનાથી પોતાના ધર્મની અટલ શ્રદ્ધા વધતી જાય છે. ષટ્ રસ કે કોઇપણ નિયમ લેવાની ટેવ પાડે જેથી થોડો થોડો સયમ થતો રહે અને સહન શક્તિ વધતી જાય. તપ, બાર પ્રકારના છે તેમાથી જે બને તે કરે. અને ઉત્તમ તપ "ઇચ્છા નિરોધસ્તપ" અર્થાત્ કાંઇપણ એકાદ ઇચ્છાને રોકવી તે પણ તપ છે. માટે ઇચ્છાઓને રોકવાની ટેવ પાડવાથી ભવિષ્યમા મોટા તપ કરવાની પણ શક્તિ આવી જાય છે. હવે છેલ્લું દાન આ તો શ્રાવકનું એક મોટું કર્મ છે. શક્તિ પ્રમાણે રોજ કંઇ ને કંઇ દાન કરે. અને જો ચાર પ્રકારના દાન રોજ ન થઇ શકે તો રોજ એક પૈસો દાનમા એક જુદી પેટીમાં તે નિમિત્તે કાઢવો અને વર્ષ દીવસે તેને ચારે દાનમાં ભાગ પાડી નાખે તે શીવાય તીર્થયાત્રા કરવા જવું, રોજ શુદ્ધ ભાવોની પ્રાપ્તિને માટે સામાયક કરો. એ તો કહેવુંજ પડશે કે તીર્થયાત્રા એક મહાન પુણ્યનું કાર્ય છે. જે ભાવ આપણાં ઘરમાં નથી થતા તેવા અપૂર્વ ભાવ તીર્થ વંદનાથી થાય છે. સંયમમાં પણ વધારો થાય છે. આ પ્રમાણે ધર્મના અંગોને સેવવાથી ધર્મ પુરૂષાર્થ થાય છે, અને તેનાં ફળ રૂપ—અર્થ યાને ધર્મની પ્રાપ્તિ થાય છે, અને અર્થથી કામ એટલે ભોગોપભોગની સામગ્રી સહેજે આવી મળે છે. એટલુંજ નહી પણ પુણ્યવાન જીવોને ઇચ્છા કરવાથીજ ભોગોપભોગની સામગ્રી સહેજે આવી મળે છે. એટલુંજ નહીં પણ પુણ્યવાન જીવોને ઇચ્છા કરવાથીજ ભોગોપભોગની વસ્તુઓ સામે ચાકરની માફક સેવા કરે છે. જેવાંકે ચક્રવર્તી રાજાઓ, સ્વર્ગના દેવો, ભોગભૂમિના દાની જીવો, જેઓએ પ્રથમ ઘણાં જન્મોમા પાપ કરેલાં હોય છે પણ જ્યારે પુરૂષાર્થવાન બની વ્રત, સંયમ, પાળી ઉગ્ર તપશ્ચર્યા કરીને સ્વર્ગના સુખ ભોગવી પરંપરાએ મોક્ષમા જાય છે, ત્યારે તમને અવિનાશી સુખ પ્રાપ્ત થાય છે માટે ધર્મ પુરૂષાર્થને પ્રથમ વર્ણવ્યો છે.

એક કવિ કહે છે કે—

अपारे संसारे कथमपि समासाद्य नृभवं ।
न धर्मं यः कुर्याद्विषयसुखतृष्णातरलितः ॥
ब्रुडन्पारावारे प्रवरमपहाय प्रवहणं ।
स मुख्यो मूर्खाणामुपलमुपलब्धुं प्रयतते ॥

અર્થ—આ અગાધ સંસારમા ઘણી કઠિણતાથી મનુષ્ય જન્મ પ્રાપ્ત કરીને જે મનુષ્ય વિષય સુખોની તૃષ્ણામા આસક્ત થયેલો ધર્મ સેવન નથી કરતો, તે મૂર્ખ શિરોમણિ ધર્મરૂપી નૌકાને છોડી દઇને સંસારરૂપી સમુદ્રમા પથ્થરની નૌકાથી તરવાને પ્રયત્ન કરે છે.

માટે ધર્મ સેવનમાં કદિપણ પાછા પડવું નહીં. આ લોક અને પરલોકમાં યશ કીર્તિ અને સ્વર્ગ મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે, વર્તમાનમાં પણ લોકો લાખો કરોડોનું દાન કરે છે. તેમની કીર્તિ આખું જગત પોતાની મેળે ગાય છે સ્વ. દાનવીર શેઠ માણેકચંદજી મુંબઇવાળા, ઇન્દોરના શેઠ હુકમચંદજી, કલકત્તાના શેઠ ખાડવાં રામેશ્વરદાસ

બળદેવદાસજી જેઓ લાખો રૂપીઆ ખરચી પાઠશાળાઓ, ઔષધાલયો, મંદિરો, ધર્મશાળાઓ, વિગેરે પ્રકારથી ધર્મ-કાર્યમાં પોતાના પુરૂષાર્થથી કમાયલી લક્ષ્મીનો સદુપયોગ કરી રહેલા છે. આ શું દેખાડે છે કે તેઓ પૂર્વે કમાવલા પુણ્યનું ફળ ભોગવે છે અને ભવિષ્યને વાસ્તે પુરૂષાર્થ કરી રહ્યાં છે, તેમજ પારસી જેવી કોમ ઘણી થોડી છે, તોપણ વિદ્યા અને પુરૂષાર્થના બળથી એક લાખ જેવી નાની સંખ્યા કેટલી આગળ વધી છે. આજે તેની એક વર્ષની દાનની રકમ આશ્ચર્ય ઉત્પન્ન કરે તેવી–પચાસ લાખની છે. શું આપણા જૈનોમાં ધની નથી? છે, ઘણા છે. વળી કેટલીક બ્હેનો પાસે પણ ઘણું ધન હોય છે પણ તેનો ઉદારતાથી ઉપયોગ કરી શકતી નથી. કેટલીક બ્હેનો પરાધીન હોવાથી તેના કુટુંબીઓ તેને દાનધર્મમાં વિઘ્ન નાખે છે, તેમજ કેટલીક કૃપણ બ્હેનો ધનની રક્ષકજ હોય છે તે માત્ર ધનની રક્ષાજ કર્યા કરે છે, પોતાની સમ્પત્તિનો હિસાબ ન જાણવાથી કોઇ ફંડમાં કે સંસ્થાઓને સહાયતા આપવા ઘણાં પાછા પગલા લે છે, તેમને એક પણ પુરૂષાર્થની સિદ્ધિ થતી થતી નથી તેમ પોતાના આત્માની પણ ઉન્નતિ કરી શકતી નથી, રત્નત્રય આત્માનું સ્વરૂપ જાણી શકવા અસમર્થ બને છે, માટે પુરૂષાર્થવાન બનવું દરેક સ્ત્રી પુરૂષનો ધર્મ છે.

ભાઇઓ! પુરૂષાર્થથીજ પાંડવો યુદ્ધ જીત્યા, પુરૂષાર્થથીજ રામચંદ્રજીએ લંકા વશ કરી, પુરૂષાર્થથીજ સીતાજી, અંજના, અનંતમતીએ શીળની રક્ષા કરી, તેમજ રાજપુત રાણીઓએ પોતાની ઇજ્જત મુસલમાનોથી બચાવી. વળી વર્તમાનમાં પણ જે સ્ત્રીઓ કે પુરૂષોમાં શૂરાતન છે તેઓ પોતાની રક્ષા પોતાને હાથે કરી શકે છે. આજે પણ કેટલાક સમાચાર પત્રોમાં સાંભળીએ છીએ કે અમુક સ્ત્રીએ રેલ્વેમાં પોતાનો બચાવ કર્યો અથવા સ્ટેશન પર બચાવ કર્યો, જુલમ કરતાં પુરૂષોના હાથમાંથી છુટી ગઇ, તે શું દાખવે છે, એ માત્ર આત્મબળનું પુરૂષાર્થજ છે, તેથી જ્યાં આત્મબળ પ્રગટ થાય છે ત્યાં કર્મ, દૈવ, કે ઇશ્વર કંઇ કરી શકતા નથી.

હવે અંતમાં મારે એજ કહેવાનું છે કે વર્તમાન કાળમાં અમારી બ્હેનોને પરાધીનતાની બેડીમાં જકડી બાંધી છે, પુરૂષાર્થહીન બનાવી દીધી છે અને બનાવી રહ્યાં છે, તેઓ પોતાને પણ પુરૂષાર્થ હીન પોતેજ બનાવી રહ્યાં છે. માટે બ્હેનોને જ્ઞાન દાન આપો, આપત્તિમાં આવે ત્યારે હથિયાર ચલાવી પોતાનું રક્ષણ કરી શકે એવી વિદ્યા શીખવો, પડદામાંથી બહાર કાઢી ફરવા હરવા જવાની થોડી છૂટ વાપરો, શરીર સારા સ્ત્રી શિક્ષાના પ્રેમી ઉપદેશદાતાઓ પાસે ઉપદેશ સંભળાવી તેમના હૃદય તયાર કરો. વળી કન્યાઓને પાઠશાળામાં ગોખણ વિદ્યા ન શીખવી, કસરત, ઉદ્યોગ વિગેરે શીખવી પુરૂષાર્થવાન બનાવો, જેથી તેની સંતતિ પણ પુરૂષાર્થવાન બને. કહેવત છે કે:—

"જનની જણજે એક તું, કાં દાતા કાં શૂર.
નહીં તો રહેજે વાંઝણી, મત ગમાવીશ નૂર."

બધુંઓ! તમે ગરીબ હો, સંતાનની રક્ષા કરવા અસમર્થ હો, તેને પરાક્રમી બનાવવા નિરૂદ્યોગી હો તો તમે બ્રહ્મચર્ય પાળો અને પોતાના વીર્યની રક્ષા કરી એક કે બેજ પરાક્રમી સંતાનોને પેદા કરો જે દેશનું, ધર્મનું, જાતિનું રક્ષણ કરી શકે, દુ:ખી જીવોના દુ:ખ ભંજન કરવા શૂરવીર યોદ્ધા તૈયાર થઇ પોતાનું ને પારકાનું કલ્યાણ કરી શકે. તથાસ્તુ.

મહિલા મહિમા.

(લેખક—જૈનમહિલારત્ન શ્રીમતી લલિતાબ્હેન, અધિષ્ઠાત્રી, મુંબાઇ.)

મહિલા—સ્ત્રી અને મહિમા એટલે કીર્તિ, ગૌરવ અથવા માહાત્મ્ય. સ્ત્રીનાં માહાત્મ્યને મહિલા મહિમા કહે છે. નારી રત્નની ખાણ છે. નારીમાંથીજ મોટા મોટા નર રત્નો ઉત્પન્ન થયા છે. ૨૪ તીર્થંકર, ૧૨ ચક્રવર્તી, ૯ નારાયણ, ૯ પ્રતિ નારાયણ અને ૯ બલભદ્ર એ ૬૩ શલાકા પુરૂષોને જન્મ આપનાર મહિલાજ હતી અને તેથીજ મહિલાની મહિમા અપાર છે. વળી એ પુણ્ય પુરૂષોના પવિત્ર જીવનને ઘડનાર સ્ત્રી હતી. તેમને શૂરવીર, ધૈર્યવાન અને ધર્મપરાયણ બનાવનાર પણ તેમની માતાજ હતી જો કે સદસદ્‌ગુણોની પ્રાપ્તિના અનેક કારણો છે તથાપિ તેમાં વિશેષ કારણ પુરૂષોનાં જીવન ઘડવામાં, સદાચરણી તથા દુરાચરણી બનાવવામાં સ્ત્રી એ મુખ્ય કારણ છે.

સ્ત્રી જો જ્ઞાનવતી, ચારિત્રવતી, ધૈર્યવતી તેમજ કલાવતી હોય તો તેમની સંતાન પણ જ્ઞાનવાન્ ચારિત્રવાન્, ધૈર્યવાન્ અને કલાવાન ઉત્પન્ન થાય. આથીજ બાળાઓને નાનપણથી ભણાવી ગણાવીને યોગ્ય ભવિષ્યની માતા બનાવવી જોઇએ.

વર્તમાનમાં સરકારી સ્કુલો તથા મુનિસીપાલીટીની સ્કુલો ઘણે ઠેકાણે થઇ ગઇ છે છતાં પણ નાના નાના ગામડામાં જુદી કન્યાશાળાઓ હોતી નથી તેથી ગામડાંની કન્યાઓ તદ્દન અભણ રહે છે. શહેરની છોકરીઓ વ્યવહારિક શિક્ષણ તો પ્રાપ્ત કરી શકે છે, પણ તેમને ધાર્મિક જ્ઞાન કે ગૃહવ્યવસ્થાનું જ્ઞાન મળતું નથી, માટે ગુજરાતના ગ્રામીણ ભાઇઓએ પોતાની બાળાઓને સોજીત્રા આશ્રમમાં કે મુંબઇ આશ્રમમાં જ્યાં અનુકુલતા પડે ત્યાં રાખીને વ્યવહારિક, ઉદ્યોગિક, ધાર્મિક જ્ઞાન અપાવવું જોઇએ જેથી એ ભવિષ્યની યોગ્ય માતા બની નરવીરોને જન્મ આપે, તથા તમારા પુત્રો તેની સાથે જોડાઇ વ્યવહાર સુખ અનુભવ કરે.

ભાઇઓ અને બ્હેનો ? તમે તમારા પુત્રને જેમ બોર્ડિંગમાં રાખી તેમની શક્તિને ઉન્નત બનાવો છો તેજ પ્રમાણે તમારી બાળાઓને પણ આશ્રમમાં મુકવાનું સાહસ કરશો તોજ તમારા દેશની, જ્ઞાતિની, અને ધર્મની ઉન્નતિ થશે. નારી નરકની ખાણ છે એમ કોઇ સ્થાન પર ઉલ્લેખ વંચાય છે પણ ખરી રીતે નારી નરકની ખાણ નથી પરંતુ કામાન્ધ પુરૂષોની દુર્વાસના પુરૂષોને નર્કમાં નાખે છે. સ્ત્રીઓ સ્વભાવે ધર્મિષ્ઠ હોય છે એ વાત પ્રત્યક્ષ સિદ્ધ થાય છે. પુરૂષોના કુરીવાજો જેવા કે બાળ લગ્ન, વૃદ્ધ વિવાહના કારણથી નાની નાની બાળાઓ વિધવા થાય છે, તેમને પણ જો સારા સંસ્કાર મળે તો એ નાની નાની વિધવાઓ આખી જીન્દગી પવિત્ર જીવન ગાળે છે. કદાચિત્ ધૂર્ત પુરૂષના ફંદામાં આવીને તેને કાંઇ ડાઘ લાગે તો તેની લોક ઘણી નિંદા કરે છે એટલે સુધી કે તેની ચાલ સુધારે, થએલી ભૂલનો પશ્ચાતાપ કરે અને ફરી એ ભૂલ ન પણ કરે તો પણ તેને હલકી ગણાય છે. પુરૂષ તેનો ત્યાગ કરે છે, ત્યારે પુરૂષો પરસ્ત્રી લંપટી હોય કદાચિત્ વેશ્યાસક્ત હોય, સપ્ત વ્યસન સેવન કરતો હોય તોપણ સ્ત્રી તેનો ત્યાગ કરતી નથી. ન્યાત જાતના લોકો પણ તેમને વિશેષ પુછતા નથી, આનુ કારણ શુ ?

ભાઇઓ, તમે નિષ્પક્ષપાતથી એ વિચારજો અને પછી મહિલાની મહિમા મોટી છે કે કમ તેની તુલના કરજો. અખંડ શીલવ્રત પાળીને અગ્નિનું પાણી કરનાર પવિત્ર સતી **સીતા** સ્ત્રીજ હતી. બાવીશ વરસના પતિ વિયોગનુ દુઃખ સહન કરી પતિ પ્રેમમા લીન રહેનાર સતી અંજના પણ સ્ત્રીજ હતી અનેક દાખલા પુરાણમાં મળે છે તેમાં સ્ત્રીઓને શીલના પ્રભાવે દેવતાઓએ સહાયતા કરી હતી આ બધું શુ દેખાડે છે કે સ્ત્રીઓની ધાર્મિક લાગણી પુરૂષો કરતા વિશેષ છે. સ્ત્રી ધર્મને વિશેષ ચહાય છે, સ્ત્રીનું હૃદય દયાળુ હોય છે. પોતે પરગજુ સ્વભાવવાળી હોવાથી સ્ત્રી સેવાધર્મનુ કામ સારી રીતે કરી શકે છે. અને

તેથીજ નર્સનું કામ સ્ત્રી કરે છે. પુરૂષ ? કરી શકતા નથી. સ્ત્રીઓ બાલ ઉછેરનું કામ કેટલું સારી રીતે કરે છે. એમનામાં સહન શીલતાનો મોટો ગુણ રહેલો છે, નાના છોકરાં અનેક હઠ કરે, રડે, પજવે પણ એ જરા પણ ગભરાતી નથી અને સુખે મહોટું બાળ ઉછેરે છે. કોઇ અજ્ઞાન માતામાં બાળ ઉછેરનું યોગ્ય કામ નથી દેખાતું તો તે કાંઇ એ સ્ત્રીનો દોષ નથી પણ મારા ભાઇઓએ એને જ્ઞાન પ્રાપ્તિની તક આપી નથી તેનો દોષ છે.

જો બાળકના કમનસીબે બાળકની માતાનું મરણ થાય તો બાળક ઉછેરનુ કામ પુરૂષ પર આવી પડે તો તે ગમે તેટલી હોસીયારી અને બહાદૂરી ધરાવતો હોય તો પણ ઠીક રીતે કરી શકશે નહિ અને એક કે બે દિવસમાંજ ગભરાઇ જશે. આવા અનેક મહત્વનાં કામો સ્ત્રી કરે છે કે જે હું અત્રે મારી લેખની વડે લખી શકું તેમ નથી અને આજ કારણથી સ્ત્રીની મહિમા મહાન્ છે. કોઇ કહેશે કે ઠીક અમે એ વાત કબુલ કરીયે છિયે કે કન્યા ભવિષ્યની માતા થવાની તેથી એની મહિમા મહાન્ છે, અને સૌભાગ્યવતી વર્તમાનમા માતા છે તેથી એની પણ મહિમા મહાન્ છે કેમકે એ જનોપયોગી છે પણ વિધવા તો કંઇ કામની નથી એની કિમત શી ? આમ માનનારની મોટી ભુલ છે.

વિધવા તો આખા જગતને ઉપયોગી જનસમાજની સેવિકા બને તેમ છે, માટે ભાઇઓએ એ વિધવાઓને પોતાના ઘરમાં વિષયવાસનાની જાળમાં ન ફસાવતા પવિત્ર આશ્રમોમાં રાખી તેમનુ જીવન પરોપકારમય જન સમાજને ઉપયોગી બનાવવુ જોઈએ. તથા એ વિધવા પોતે પોતાના પરિણામ શુદ્ધ રાખે, પરમાત્માનુ ધ્યાન કરે અને તત્ત્વવિચાર, તત્ત્વનિર્ણય કરીને આત્મ ચિન્તન કરી પોતાની જીન્દગીને સાર્થ બનાવે એવા સંસ્કારમાં રાખવી જોઇએ અને તેમને નીતિનું, ધર્મનુ, વ્યવહારિક, ઉદ્યોગિક જ્ઞાન આપીને સમાજ સેવાના કામમા લગાડવી જોઇએ. આવી રીતે મારી અનેક વિધવા બ્હેનો તૈયાર થઇ સમાજ સેવા કરશે તો આપણા દેશની ઉન્નતિ આપણી જાતિની ઉન્નતિ, આપણા ધર્મની ઉન્નતિ થોડાજ વખતમા થઇ જશે. આપણા ઘરની શોભા વધશે.

આપણે પ્રાચીન મહિલાઓના ચરિત્ર વાંચીએ છિયે તેમ વર્તમાનમાં પણ એવી અનેક સ્ત્રીઓ કામ કરે કે જેથી તેમનાં પણ ચરિત્ર લખાય-તેમનું લોક અનુકરણ કરે.

અંતમાં મારા ભાઇઓ અને બ્હેનોને મારી એજ નમ્ર પ્રાર્થના છે કે તમે તમારી બાળાઓને નાનપણથી ભણાવી તેમની મહિમા વધારો, સધવાઓને પણ જ્ઞાનની વૃદ્ધિ માટે તક આપો તથા વિશેષે કરી વિધવાઓને પવિત્ર આશ્રમોમાં મુકી ભણાવો અને સમાજ સેવિકા બને એવી શક્તિ પ્રગટાવો. સ્ત્રીઓને હલકી ન ગણો પણ એ એક જગત જનની અને સર્વોપયોગી રત્નની ખાણ છે એ વાત ભૂલશો નહિ.

— ❧ —

જૈનીઓ જાગો.

(રાગ-ખુને જીગરકા પીતે હૈ)

જાગો તમે તો જાગો, જૈનીઓ જાગો યાર-ટેક.
ત્યાગો તમે તો ત્યાગો, નિંદ્રાઓ તમારી યાર-૧
આ કેશરિયાજી જાએ, ધર્મ ના સચવાએ,
તમારૂં નામ બદ થાએ રે, ને અમર કરો રે યાર
જાગો તમે-૨
મોટા દીગંબરો કહેવાઓ, ધર્મની વ્હારે ના ધાઓ
શ્વેતથી શું બ્હીજાઓ રે, હિંમત ધરો રે યાર
જાગો તમે.-૩
પંડિત ગિરધારી આગળ આવ્યા, વીરનામ
કહેવરાવ્યા,
એથી શુ તમે તો શરમાયા, કઇ મદદ કરો યાર
જાગો તમે-૪
દિગમ્બર નાબુદ થાશે, કેશરીયાજી જાશે,
પછી કંઇ ઉભા રહેવાશે, એ તો કહોને યાર
જાગો તમે.-૫
આ ફુલચંદ કહે છે સાચું, પછી રહેશે નાચુ કાચું,
પછી ગુલામ થઇને નાચું, એવુ કહેશો તમે રે
યાર. જાગો તમે-૬

ફુલચંદ કેશવલાલ દિ. જૈ. બો. બોર્ડિંગ.

નૂતન વર્ષની ઉષા.

(લેખકઃ—ચુનીલાલ વીરચંદ ગાંધી-મુંબઈ)

મુબારક હો ! એ મંગળ પ્રભાતની મધુરી ઉષા ! સરસ્વતિ દેવીનાં પૂજન, રત્નો પ્રાપ્તિની મહદ્ ઇચ્છા, સહોદર, પ્રેમી જનો સાથેનો અપૂર્વ આનંદોત્સવ, નાના મોટાનાં સત્કારો, વર્ષ સફળતાના માર્ગોની વ્યુહરચના, સંસાર નૌકાના મુસાફરોની સફર સફળ કરવાની તાલાવેલી, એ સર્વ ઇચ્છા સફળ થાઓ, અમારી એ ભાવના છે. પરંતુ તેની સફળતાનો એકજ માર્ગ પુન્ય માર્ગ છે ક્ષમા, દયા, પ્રેમ, અને ધર્મ, એ તેના દિવ્ય રસ્તા છે.

"સુવર્ણમય...પ્રભાકરની...સહચરી એ ઉષા યશમાર્ગી નીવડો."

દિવ્ય સમૃદ્ધિ પ્રાપ્ત કરવાની ઊર્મી પ્રગટો,
પરંતુ સદુપયોગ કરવાની ભાવના ન ભુલો,
દિવ્ય સિદ્ધિઓ, અને શક્તિ વડે—કુટુંબ,
સમાજ, અને દેશને મદદગાર થાઓ અને પોષો.

એ દિવ્ય સિદ્ધિઓ અને સમૃદ્ધિ તમારી કૃતિ છે, એ ન માનતા. એ તો તમારા પુન્યની પ્રસાદી છે. એને અમર બનાવવા પરોપકાર અને પુન્ય સંચય કરતાજ રહો.

આત્માઓ પ્રત્યે સમ દ્રષ્ટિ રાખો. ભેદનીતિ ન રાખો. યાદ રાખજો કે તમે જેને તીરસ્કારશો તેનાપર પ્રભુની અમી દ્રષ્ટિ હોય છે. તમે બીજાને ધિક્કારતાં શીખશો તો તમારૂં પતન થશે.

તમારા પવિત્ર પર્યુષણ પર્વના મંગળમય દિવસોમા તમોએ સર્વ જીવોને ખમાવ્યા હશે ? છતા કદાચે કરી દિલમાં કંપ રહી ગયો હોય તો નૂતન વર્ષે ક્ષમા કરી દેજો. ભીરૂતા, શઠતા, અને સ્વાર્થતા ન છુટે ત્યાં સુધી ક્લેશને દૂર નહિ કરી શકો, ક્લેશ દૂર નહિ થાય ત્યાં સુધી તમારી સંસાર વાટિકા નન્દન વન કેમ બની શકે ? સંસારને સ્વર્ગ બનાવવાને તમારે ચોવીસે કલાક આત્મા અને પરાત્માઓ સાથે લાગણીના પુર વહેવડાવવાં પડશે. પ્રેમ સંન્યાસ સ્વીકારી સંસારના સુયજ્ઞો રચી પ્રમાણિક જીવનના મંત્ર ધ્વનિ ભણવા પડશે. સુઘડ, સંતોષી, અને સહનશીલ બનવું પડશે આજની ઉષા તો નિરંતર આનંદ રસની રસધાર નીવડશે. જેને સારૂ તમે પુજન આદર્યાં, તે શક્તિની પ્રાપ્તિ એ તો તમારા વિશુદ્ધ આત્માની દિવ્ય કૃતિ છે.

જ્યાં હું પદ છે, જ્યાં મારૂં છે, જ્યાં મમતા છે, જ્યાં અધર્મ છે, ત્યાંની ઉષા અમર નથી. એ ન ભૂલતા.

કોનું પુન્ય તપે છે ? કોણ પુરૂષાર્થ કરે છે ? કોણ ઉપભોગ કરે છે ? જે પોતાને ઓળખે છે. તેને સોની કીંમત છે. તે બીજાને સારૂ દુખી બને છે. પરાઇ પીડા વહોરવી એને લ્હાવ માને છે નીતિ પૂજકો તે દિવ્ય આત્માને પુજે છે. ચારિત્રહીન મતલબીજનો તેને નીંદે છે.

ક્ષણભંગુર માટીના પુતળાઓ કર્મ યજ્ઞને ભુલે છે. સ્વાર્થને સાથી બનાવી પુન્યમાર્ગને છોડી પાપમાર્ગે પુરૂષાર્થના દાવ ખાલી જતાં રૂદન માંડે છે, પતિત બને છે, ડુબે છે, અને ડુબાવે છે.

ગુલામી એ તો પાપની શિક્ષા છે. એ પાપ પૂરૂં થતા તે છૂટે છે, પરંતુ હે ગાફીલ મુસાફર, તું સ્વતંત્ર હોવા છતા આજીવિકા, વૈભવ પ્રાપ્તિના અર્થે તું મન વચન અને કાયાએ ગુલામીમાં ન બંધાય તે સારૂ સાવધ રહે.

મહાત્માઓ કહે છે કે—

આગ, ચોરી, મરણ, એ પાપના ઉદયમાં દુઃખદાયક છે, કમકમાટી ઉપજાવનારા છે, એમ લાગે છે, છતા તે પાપના અસ્ત પછી પુન્ય ઉદય વખતે લાભપ્રદ છે. કોઇ સમય ખોટું પણ સારાને માટે હોય છે.

"ક્રોધ મારે આપને ને ક્ષમા મારે બીજાને"

એ સુત્ર યાદ રાખી શાન્ત પરિણામી રહો. ચારિત્ર ખીલવો અને તમારૂં ભાવી જીવન સુકૃત્યોથી ઉત્કર્ષ નીવડો. એજ પ્રાર્થના

અવળે પંથે પ્રયાણ.

[લેખક—જે. એચ. પટવા, મુંબાઈ]

जे त्रिभुवनमें जीव अनंत, सुख चाहैं दुःखते भयवंत ।
तातैं दुःखहारि सुखकारि, कहैं सीख गुरु करुणाधार ॥
(छहढाला)

સંસારના સર્વે મનુષ્યો સુખની ઇચ્છા કરે છે, અને દુઃખથી ડરે છે પોતે દુઃખી ન થાય તે માટે બનતા પ્રયત્નો કરે છે છતાં એવા શા કારણો છે, જે અનેક પ્રયત્નો કરવા છતા તે સુખ પ્રાપ્ત કરી શકતાં નથી અને ઉલટા દુઃખી થાય છે ?

સર્વે મનુષ્યો પોતાની (૧) આત્મિક (૨) ધાર્મિક (૩) સામાજીક તથા (૪) લૌકિક ઉન્નતિ ચાહે છે, છતાં એ દરેક બાબતમાં પોતાની ઉન્નતિ ન કરી શકતા પડતી દશાએ પહોંચે છે. આમ થવાનું કારણ શું ? કારણ એજ કે મનુષ્યો અવળે પંથે પ્રયાણ કરે છે.

દૃષ્ટાંત—એક માણસ વ્યાપારાર્થે દિલ્લી જવાની ઇચ્છાથી નીકળે છે, પરંતુ માર્ગ ન જાણવાથી તે દક્ષિણ તરફના માર્ગે ગમન કરે છે, રસ્તામાં મળનાર મુસાફરને તે પુછે કે ભાઈ, ક્યાં જવા ધારો છો ? તે કહે દીલ્હી, પેલો ભલો મુસાફર કહે, ભાઇ આ રસ્તો દક્ષિણ તરફ જાય છે માટે તમો પાછા ફરો. તે માણસ પોતાની ભૂલ ન સમજતો આગળ વધે છે અને કહે છે કે નહિ, હું બરાબર રસ્તે જઈ રહ્યો છું. એમ ચાલતા ચાલતાં તે કદિપણ પોતાના ઇચ્છિત સ્થાને નથી પહોંચવાનો, પરંતુ ઉલટો, ચાલવાનો થાક, ટાઢ તડકો અને ભૂખના દુઃખથી દુઃખી થશે અને પોતાની ભૂલ સમજાશે ત્યારે જરૂર પસ્તાશે, કારણ કે તેનું—'અવળે પંથે પ્રયાણ હતું.'

તેજ પ્રમાણે સર્વે મનુષ્યો ઉપરોક્ત ચારે બાબતમાં પોતાની ઉન્નતિ ચાહે છે, છતાં માર્ગ ચુકતાં પોતે ઉન્નતિને બદલે પડતી દશાએ પહોંચે છે. હવે આપણે અનુક્રમે વિચારીએ કે મનુષ્યો એ ચારે બાબતમાં ચાહે છે શું ? અને કરે છે શું ? ભવિષ્યમાં શું શું કરવાથી ઉન્નતિ પ્રાપ્ત કરી શકે ?

૧—આત્મિક ઉન્નતિ.

આત્મિક ઉન્નતિ સૌ ચાહે છે, અને તે મેળવવા માટે રૂઢી રૂપ માત્ર દેવ દર્શન આદિ કાર્ય કરવામાં પુર્ણતા માને છે. હવે આપણે વિચારીએ કે આત્મોન્નતિ (સાચું સુખ) પ્રાપ્ત કરવા માટે કરવું શું જોઇએ ? સૌથી પહેલા 'સાચું સુખ' કયું કહેવાય તે જાણવું જોઇએ અને તે પર અટલ શ્રદ્ધા રાખવી જોઇએ. કવિ દૌલતરામ કૃત છ:ઢાલામા છે કે—

आतमको हित है सुख सो सुख, आकुलता बिन कहिये ।
आकुलता शिवमाही न तातें, शिव मग लाग्यौ चहिये ॥

આત્માની આકુલતા રહિત અવસ્થા એજ સાચું સુખ છે. આકુલતા થવાના મળ કારણ વિષય અને કષાય, તેનો સંપૂર્ણપણે અભાવ થવો તે મોક્ષ કહેવાય છે. એ આત્મિક અનુપમ સુખ કોઇ બીજી જગ્યાએ નથી મળતું, પરંતુ એ પોતાના આત્મામાંજ છે. આત્મનો મૂળ સ્વભાવજ એ સુખરૂપ છે. પ્રશ્ન ઉઠશે કે તો પછી હમારી આવી દુઃખી અવસ્થા કેમ ? એનું કારણ એજ કે અનાદિ કાળથી કર્મના સંયોગ વડે આત્મા પોતાનું એ સુખ ગુમાવી બેઠો છે; અને સંસારના વિષયભોગ આદિ ક્ષણિક પદાર્થોમા સુખ માની તેમા રાચી રહ્યો છે. જેમ એક માણસ તલવારની ધાર પર ચોપડેલુ મધ જીભ વડે ચાટે, તો પ્રથમ તો તેને મધની મીઠાશ જરા લાગે પરંતુ બીજીજ પળે ધારથી જીભ કપાઇ જાય તેનું અસહ્ય દુઃખ ભોગવવું પડે છે, તેના જેવીજ સ્થિતિ ભોગ-વિલાસમાં મમત્વ રાખી રહેલા સંસારી જીવની થાય છે. જે માણસ પોતાની પાસેની ઉત્તમ

ચીજ છોડી બીજાની પર ચીજો મેળવવા ચાહે તેના જેવીજ મૂર્ખાઈ અજ્ઞાનતા કરે છે. અને એમ 'આવળે પુંછ પ્રવાણું' કરી દુઃખી થાય છે.

સાચું સુખ પ્રાપ્ત કરવા ઇચ્છનાર જીવોએ સૌની પહેલાં પર પદાર્થોમાંથી પોતાનો મમત્વ ભાવ દૂર કરી, આત્મા અને શરીર તથા શરીર સાથે સબંધ ધરાવનાર બીજા બધા પદાર્થો એ બન્ને જુદા જુદા છે, બન્નેનો સ્વભાવ પણ જુદો છે, એક અમર, અવિનાશી, અને અનંત સુખરૂપ છે; જ્યારે બીજા શરીર આદિ પર પદાર્થો, વિનશ્વર, ક્ષણિક, અને દુઃખ રૂપ છે, એવી દૃઢ શ્રદ્ધા કરવી જોઇએ. પછી વિચારવું જોઇએ કે આયુ પૂર્ણ થયે આત્મા એક શરીર છોડી બીજા શરીરમા, બીજાથી ત્રીજામા એમ જ્યાં સુધી સંપૂર્ણ કર્મોનો નાશ ન થાય અને મોક્ષ પ્રાપ્ત ન કરે ત્યાં સુધી એમ શરીર ધારણ કરી જુદી જુદી ગાતઓમાં ભ્રમણ કરે છે.

એ ઉપરથી જાણી શકાય છે કે શરીર નાશવંત છે. જ્યારે શરીર નાશવંત છે તો પછી તેની સાથે સબંધ રાખનારી ભોગોપભોગની સામગ્રી સ્ત્રી, ધન, મકાન, અને સંપદા પણ નાશવત અને દુખકારી છે. એવી રીતે આકુલતા અને કલેશની ખાણરૂપ ભોગ સામગ્રી મારે માટે દુઃખકારી છે, અનેક વખત ભોગવવા છતા જેનાથી સંતોષ થતો નથી, ઉત્તરોત્તર ઇચ્છા વધતી જાય છે તે સર્વે મારે ત્યાગવા યોગ્ય છે અને તેના ત્યાગ વડેજ મારા આત્માની સાચી ઉન્નતિ થશે. એમ અટલ શ્રદ્ધા કરવી જોઇએ અને હંમેશા એ સાચું સુખ પ્રાપ્ત કરવા માટે પ્રયત્ન કરવો જોઇએ.

એક માળ ઉપર જવા માટે જેમ સીડીના પગથીઆ અનુક્રમે ચઢવા પછી પહોંચાય છે, તેમ આત્મ સુખ પ્રાપ્ત કરવા માટે પણ એવી સીડીની જરૂર છે. સૌથી પહેલા જે મહાન આત્માએ એ અનુપમ સુખ પ્રાપ્ત કર્યું હોય, તેમની સેવા કરવી જોઇએ. એવા મહાન આત્મા શ્રી વીતરાગ દેવ છે. કે જેમણે ચાર કષાય-ક્રોધ, માન, માયા, અને લોભનો સંપૂર્ણપણે ત્યાગ કર્યો છે અને આત્માનો જે અનંત જ્ઞાન (કેવળ જ્ઞાન) અનંત સુખ રૂપ નિજ સ્વભાવને પ્રાપ્ત કર્યો છે તેની પૂજા સેવા કરવી જોઇએ, તેમના ગુણોનું હંમેશા સ્મરણ કરવુ જોઇએ અને તેમણે પોતાની દિવ્ય ધ્વનિમા વર્ણવેલા ધર્મનુ પાલન કરવું જોઇએ.

કોઇપણ ચીજનો થોડો નમુનો જોયા પછી તે ઉપરથી તેના આખા સ્વરૂપનો થોડો યા ઘણો ખ્યાલ આવી શકે છે. તેવી રીતે સાચું આત્મિક સુખ કેવું આનંદ મય હોય છે. તેનો નમુનો અનુભવમા લાવવા ઇચ્છનાર મનુષ્યે પોતાનુ મન અને ઇંદ્રીઓ કાબુમાં રાખતા શીખવુ જોઇએ, અને તેને કાબુમા રાખવા માટે, માણસે સદાચારી થવું જોઇએ. સાત વ્યસન તથા અભક્ષ ખાન પાનનો ત્યાગ કરવો જોઇએ. અને રોજ સવારમાં સૂર્યોદય પહેલા અને સાંજે સૂર્ય અસ્ત થવા વખતે સંધ્યાકાળે સામાયક કરવું જોઇએ. સામાયિક એટલે—

समता सर्वभूतेषु, संयम शुभ भावना ।
आर्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकं व्रतम् ॥

અર્થ—આર્તધ્યાન, રૌદ્રધ્યાન, આદિ ખોટા ધ્યાનનો ત્યાગ કરી સંયમ અને શુભ ભાવના ધારવી તથા સર્વે પ્રાણી માત્રની સાથે સમતા ભાવ રાખવો તેજ સામયિક કહેવાય છે. આવી નિર્મળ ભાવનાઓ ચિત્તમા ધારણ કરી શાન્ત અને એકાંત સ્થાનમા બેસવું અને પછી મનને એકાગ્ર કરી જેટલો વખત બની શકે તેટલો વખત એક ધ્યાનથી વિચારવુ કે—૧ હું કોણ છું? ૨—હું ક્યાંથી આવ્યો? ૩—મારૂં શું સ્વરૂપ છે?

૪—મેં અજ્ઞાનતાથી પોતાના માની લીધેલા સર્વે સંસારી પદાર્થો (ચેતન યા અચેતન) સાથે વાસ્તવિક રીતે મારે શું સંબંધ હોઇ શકે? આ ચારે પ્રશ્નો તમારા મન સાથે વિચારશો અને તેના નીચે મુજબના જવાબ રૂપ ભાવ તમારા

અંતર આત્મામાં ઉદ્‌ભવશે ત્યારે તમને એ અનુપમ આનંદ (સાચા સુખ)ની જરા ઝાંખી થશે અને તમારો અભ્યાસ દિન પ્રતિ દિન એ વિચારણામાં વધારશો તો તમોને વધુ ને વધુ આનંદ અનુભવમાં આવશે.

જવાબ ૧—હું મનુષ્ય છું કે જે પર્યાયની દેવો અને સ્વર્ગના ઇંદ્રોપણ વાંછા કરે છે. મનુષ્ય પર્યાય સાથે હું ઉચ્ચ કુળમાં જન્મ્યો છું તે સાથે સંપૂર્ણ આંગોપાંગની પ્રાપ્તિ સાથે આરોગ્ય મેળવી શક્યો છું તથા પરમોપકારી જૈનધર્મ પ્રાપ્ત કરી શક્યો છું.

જવાબ ૨—નરક, તિર્યંચ, દેવ, અને મનુષ્ય એ ચારે ગતિમાં અનંત વાર ભ્રમણ કરી તિવ્ર પુણ્યના ઉદયથી મનુષ્ય ભવમાં આવ્યો છું.

જવાબ ૩—મારૂં નિજ સ્વરૂપ અખંડ, અવિનાશી, અનંતજ્ઞાન, દર્શન સુખ અને અનંત વીર્ય સ્વભાવવાળું છે. મારૂં સ્વરૂપ સંસારના સર્વ ક્ષણિક પદાર્થોથી તદ્દન જુદા પ્રકારનું અનુપમ છે.

જવાબ ૪—સ્ત્રી, ધન, પુત્ર, મહેલ, સગા સંબંધી તથા બીજી સર્વે સામગ્રી એ સર્વે મારા નથી, ન હું તેમનો કદિ થઇ શકું. મારા આત્માથી સર્વે જુદા છે. તેમનો સ્વભાવ પણ વિનાશિક છે. એ સર્વેને મેં આજસુધી પોતના માની તેમાજ તલ્લીન થવામાં મેં ઘણી ભુલ કરી છે તેમના સંબંધથી મારા આત્મનું અહિત થયું છે અને થશે માટે હવે તે સર્વમાં મમત્વ બુદ્ધિ ન રાખતા મારા આત્મિક સ્વભાવને પ્રાપ્ત કરવાનો પ્રયત્ન કરવો જોઇએ. તેના સબંધ વડેજ મેં ચારેગતિમાં અનંત ભવ ધારણ કરી દુઃખ ભોગવ્યું હવે મારે એ-અવળે પંથે પ્રયાણ ન કરતા મોક્ષ માર્ગ તરફ વળવું જોઇએ.

આવા જવાબો આપોઆપ તમોને અંતરમાંથી મળશે તેને અંતરમાં કોતરી રાખો જો તમો તમારૂં ચારિત્ર દિન પ્રતિ દિન નિવૃત્તિ માર્ગ તરફ દોરશો તો નિશ્ચયથી જાણજો કે વહેલા મોડા જે નિરાકુલ પદની તમે વાંચ્છા કરો છો તે જરૂર પ્રાપ્ત કરી શકશો માટે જેમ બને તેમ તમને કરવા પડતાં દરેક કાર્યમાં પ્રવૃત્તિ ઘટાડી નિવૃત્તિ તરફ આગળ વધજો, તમો મનોવાંછિત ફળ પ્રાપ્ત કરી શકશો, તમારો આત્મા ઉન્નતિના શિખરે પહોંચશે.

૨—ધાર્મિક ઉન્નતિ.

દુનીઆના સર્વે મનુષ્યો પોત પોતાના ધર્મની ઉન્નતિ કરવા ચાહે છે, અને તેમ કરવા માટે, ઉપદેશકો, ધર્મ ગુરૂઓ દ્વારા પ્રયત્ન કરે છે. સ્યાદવાદ નયથી જગતના સર્વે પદાર્થોનું સાચું સ્વરૂપ સમજાવનારો જૈન ધર્મ સર્વોત્કૃષ્ટ ધર્મ છે, એ અનેક પ્રમાણોથી સિદ્ધ થઇ ચુક્યું છે. જૈન સમાજ પોતાના એ ધર્મની ઉન્નતિ કરવાનો પ્રયત્ન કરે છે. એ ધર્મના પ્રતાપે જૈન સમાજ પોતાને બીજા સર્વે સમાજો કરતા જ્ઞાનમાં, ચારિત્રમાં, સમૃદ્ધિમાં આદિ દરેક વાતમાં ઉચ્ચ સ્થાને માની રહ્યો છે; અને દુનિઆને તેમ મનાવવા પ્રયત્ન કરે છે. જૈન ધર્મનું મૂળ અહિંસા (દયા) છે. બીજા ધર્મોની અપેક્ષા 'અહિંસા' એ સિદ્ધાંત જૈન શાસ્ત્રોમાં આદ્યોપાંત, પહેલેથી ઠેઠ સુધી સંપુર્ણ પણે જણાવાયેલો છે. "આખા જગતભરમાંના સર્વે સુક્ષ્મ તથા સ્થુલ જેમાં એક ઇંદ્રિય વનસ્પતિથી માંડી, પશુ, પક્ષી, મનુષ્ય આદિ પંચેંદ્રિય જીવો સુધા સર્વેની મન વચન અને કાયા વડે દયા કરવી, તેમના પ્રત્યે હમેશા પ્રેમ ભાવથી વર્તવું, તેમને કોઇપણ પ્રકારે દુઃખ થાય તેમ કદિ ભૂલેચુકે પણ કરવું નહિ. અહિંસાનો આવો વિસ્તૃત અર્થ સમજાવનારો જૈન ધર્મ છે.

ધાર્મિક ઉન્નતિ કરવા ઇચ્છનારે સૌથી પહેલા પોતાના ધર્મના મૂળ સિદ્ધાંતો જાણી તેના પર દૃઢ શ્રદ્ધા કરવી જોઇએ. પોતાના સમાજમાં, ધર્મશાસ્ત્રોનું સંપૂર્ણ જ્ઞાન ધરાવનાર, વિદ્વાનો જોઇએ તથા ધર્મોપદેશ કરનાર, મુનિ ધર્મના પંચ મહાવ્રતનું સંપૂર્ણ પાલન કરનારા ધર્માચાર્ય અને

સાધુ સારી સંખ્યામાં હોય તે સમાજ પોતાના ધર્મની ઉન્નતિ કરી શકે છે. તેજ પોતાના ધર્મને વિશ્વ ધર્મ બનાવી શકે છે.

આપણો જૈન સમાજ વિચારશે કે પોતાના કલ્યાણકારી જૈન ધર્મની વર્તમાનમાં કેવી ઉન્નતિ અને પ્રચાર થઇ રહ્યો છે તો તેને માલમ પડશે, જે બીજાઓની અપેક્ષા પોતાનો ધર્મ પોતાના જ્ઞાન, અને ચારિત્રની શિથિલતા તથા પ્રમાદ અને કુસંપને લઇને દિન પ્રતિદિન બહુજ સંકુચિત ક્ષેત્રમાં આવી પડયો છે. જે ધર્મ લગભગ ૧૫૦૦ વર્ષ પહેલા વિશ્વ ધર્મ હતો તે આજે ફક્ત પોણા બાર લાખ જેટલી નાની સંખ્યામાંજ પ્રચલિત છે. આટલી હીન દશા થવાનું કારણ એજ કે તેના (ધર્મના) અનુયાયીઓનું અવળે પથે પ્રયાણ છે.

વર્તમાનમાં પૂર્વ કાળની માફક સેંકડોની સંખ્યામાં ચારિત્રવાન મુનિઓ નથી જેઓ દરેક જગ્યાએ વિહાર કરી ધર્મોપદેશ કરે અને એ રીતે ધર્મનો પ્રચાર કરી શકે. તો હવે વિચારીએ જે વર્તમાનમા કઇ કઇ રીતે ધર્મપ્રચાર થઇ શકે—

૧—જેટલા મુનિ, ઐલક, ક્ષુલક, બ્રહ્મચારી આદિ ત્યાગીગણ હોય તે સર્વેએ ગામે ગામ ફરી જૈન ધર્મનો ઉપદેશ આપવો જોઇએ.

૨—સ્થળે સ્થળે સારા વિદ્વાન ઉપદેશકો, મોકલી ધર્મોપદેશ કરાવવો જોઇએ.

૩—અઠવાડિક, પાક્ષિક યા માસિક પત્રો કાઢો કે હોય તેને ઉત્તેજન આપી તે દ્વારા ધાર્મિક વિચારનો ફેલાવો કરવો જોઇએ.

૪—ધર્મોના દરેક અંગોને જુદા જુદા પુસ્તક આકારમા દરેક ભાષામા લખાવી યા છપાવી તેનો પ્રચાર કરવો જોઇએ. દરેક ગામમાં એવા પુસ્તકોના સંગ્રહ રૂપ પુસ્તકાલય જોઇએ તથા તે સાથે વાચનાલય પણ અવશ્ય જોઇએ કે જે વડે જનતા સહેલાઇથી પોતાના વિચારો કેળવી શકે.

વર્તમાન કાળમાં. પુસ્તકો અને પત્રો જનતામાં જેટલો જ્ઞાન પ્રચાર કરી શકે છે તેટલો બીજાથી થઇ શકતો નથી. વળી જનતા (સમાજ) એટલો શિથિલ છે કે તેને મોઢામા કોળીયો કોઇ મૂકે તો ખાય અર્થાત્ પોતાના વિચારો કેળવવા માટે, પોતાનું આચરણ સુધારવા માટે તથા દુનિયામાં બીજી કોમો દરેક બાબતમા પોતાની ઉન્નતિ કેવી રીતે કરી રહી છે તે જાણી તેનું અનુકરણ કરવા માટે પુસ્તકો અથવા પેપરોમા મહીને ૫–૭ રૂપીઆ ખરચ કરી ઘેર મંગાવી વાંચે તેવી તેનામા લાગણીજ નથી. માટે આવી શિથિલતા ધીરે ધીરે દૂર કરવા માટે દરેક ઠેકાણે વાંચનાલય ખોલવાની જરૂર છે અને જયા હોય ત્યાં તેને ચિરસ્થાયી કરવાની ત્યાના સમાજની ફરજ છે.

૫—દરેક ગામે ગામ ધાર્મિક શિક્ષણ બાળકોને અપાય તે માટે પાઠશાળા ખોલવી જોઇએ, છોકરાઓ અને કન્યાઓમા ધાર્મિક સંસ્કાર ત્યાંથીજ પાડવા જોઇએ. કુમળી વયમા પડેલા સંસ્કાર કદિ ભુંસાતા નથી. અને ભવિષ્યમા તે સસ્કાર તેની દરેક પ્રકારે ઉન્નતિ કરે છે, આજ કાલ બાળક ૫–૬ વરસનો થયો કે તેને વ્યવહારિક શિક્ષણ માટે નિશાળે મુકે છે એવી પ્રથા માબાપના અજ્ઞાનતાને આભારી છે. માબાપોએ પોતાના બાળકને સૌથી પહેલા ધાર્મિક શિક્ષણ અવશ્ય આપવું જોઇએ. ધાર્મિક ઉન્નતિના ઉપરોક્ત કામો સમાજના નેતાઓએ હાથ ધરવાને બદલે આજે તેઓની દૃષ્ટિ જુદી તરફજ છે. તેમના પ્રમાદને લીધેજ ચાલુ સંસ્થાઓ પણ પડું પડું થઇ રહી છે, તેને ફરી સારા પાયા પર ચાલુ કરવી જોઇએ તથા જયાં જયા જરૂરીઆત હોય ત્યા સ્થાપન કરવી જોઇએ

૬—ધર્મોપદેશ કરવા માટે વિદ્વાનો જોઇએ, તે કયાંથી? લાવવા મોટે ભાગે જવાબ મલશે કે ઉત્તર પ્રાંતમાંથી કોઇ પંડિતને બોલાવો અને પાઠશાળાઓ ચલાવો. હું કહીશ શુ તમે તમારા પ્રાંતોમા વિદ્વાન નથી બનાવી શકતા? તમો જો ધારો

તો તેમ કરી શકો છો. જેટલું ધ્યાન અને શ્રમ હાલનો યુવક વર્ગ પાશ્ચાત્ય કેળવણી લેવા પાછળ આપી રહ્યો છે તેનો થોડો પણ ભાગ પોતાના ધર્મનું જ્ઞાન ધરાવવા તરફ આપે તો ગુજરાતનો દિ. જૈન સમાજ થોડા વખતમાં વિદ્વાનો મેળવી શકે જેવી રીતે બનારસ, જેપુર, કારંજા, મોરેના, બ્યાવર, સાગર, આદિ અનેક સ્થળોએ વિદ્યાલયો છે, તેવી રીતે ગુજરાતના એક બે મુખ્ય સ્થળોએ એવા વિદ્યાલયો અને બ્રહ્મચર્યાશ્રમો સ્થાપવા જોઇએ. આ તકે અંકલેશ્વરવાળા શ્રીયુત છોટાલાલભાઇને તથા આ પત્રના સંપાદક શ્રીયુત મૂલચંદભાઇને વિનંતિ કરૂં છું કે, જે અડચણોને લીધે પાવાગઢ પર બ્રહ્મચર્યાશ્રમ સ્થાપન થવાનું ખોરંભે પડ્યું છે તે અડચણો તુરતમાં દૂર કરી અને ગુજરાતના પ્રાણ રૂપ એ સંસ્થાને સજીવન કરો. ગુજરાત (અમદાવાદ વિભાગ) ના દશાહુમડ, નૃસિંહપુરા ભાઇઓ તથા સોજીત્રા વિભાગના મેવાડા બંધુઓ તથા ઇડર અને દાહોદના ભાઇઓએ આ સંસ્થા સ્થાપન કરવામાં તન મન ધનથી મદદ કરવી જોઇએ અને એ સંસ્થાનો પુરો લાભ લેવો જોઇએ. એ સંસ્થા સ્થપાયે ગુજરાત આખામાં ઘણી સારી પ્રગતિ થશે. મુંબાઇ તેમજ સુરતના આગેવાન ગૃહસ્થો પણ પોતે દીલની લાગણીથી આવા અતિ મહત્વના કામમાં મદદ કરી જરૂર કૃત કૃત્ય થશે, એવી આશા છે.

(સામાજિક અને લૌકિક ઉન્નતિ પર હવે પછી)

શ્રી અમીઝરા—પાર્શ્વનાથ તીર્થ.

આ દિગંબર જૈન મંદિર ખેડબ્રહ્મા લાઇનમાં વડાલી ગામમાં આવેલું છે, તે એક પ્રાચીન ચમત્કારિક મંદિર છે. અગાઉ અત્રે શ્રી પાર્શ્વનાથજી મહારાજની પ્રતિમામાંથી અમી ઝરતી હતી. તેથી શ્રી અમીઝરા પાર્શ્વનાથજી કહેવામાં આવે છે. અગાઉ આ ગામમાં દિગંબર જૈનોની વસ્તી મોટા પ્રમાણમાં હતી હાલમાં એક પણ ઘર ત્યાં હયાત નથી, પણ તે ગામના પાસેના ગામોમાં દિગંબર જૈનોની વસ્તી સારા પ્રમાણમાં છે, પણ કેળવણીમાં પછાત તથા ઘણા ભોળા લોકો છે, તે લોકોને વડાલીના શ્વેતામ્બર ભાઇઓએ સમજાવ્યું કે તમારી અહીંયાં બિલકુલ વસ્તી નથી, માટે મંદિરનો બધો વહીવટ અમને સોંપો તો અમે તમારા દિગંબર જૈન મંદિરનું કામ સારી રીતે બજાવીશું, ને આવક જાવકનો હિસાબ તમોને દર વરસે રજુ કરીશું, તમે જે પ્રમાણે કહેશો તે પ્રમાણે સુધારો વધારો કરીશું, અમે તમારા ધર્મને ખલેલ પહોંચે તેવું કામ કદિ કરીશું નહિ; આ પ્રમાણે બિચારા અજ્ઞાન ભોળા ભાઇઓને સમજાવી મંદિરની કુલ સત્તા, વડાલીના ખટપટીયા શ્વેતામ્બર આગેવાનોએ પોતાના હાથમાં લીધી અને દિવસે દિવસે શ્વેતામ્બરો પોતાનો હક જાથુકને માટે જમાવવાના મૂળ ઘાલવા લાગ્યા. મૂળ નાયકની પ્રતિમા શ્રી અમીઝરા પાર્શ્વનાથ ભગવાનની છે. દિગંબર મૂર્તિને કોઇપણ જાતનો પરિગ્રહ લગાડવામાં આવતો નથી, એ વાત તદ્દન સ્પષ્ટ છે, છતાં પણ તે મૂર્તિને શ્વેતામ્બરો પોતાની આપખુદી સત્તાને અંગે આંગી, મુગટ વગેરે દિગંબર મંદિરના પૈસાથી લગાવે છે, આ કેવી દુઃખની વાત છે, કે દિગંબર મૂર્તિને આભૂષણ ચઢાવવામાં આવે છે, એ આપણા દિગંબર ભાઇઓના પ્રમાદનું આ પરિણામ છે. ઘણા દૂરના લોકો બાધા

કરવાને માટે અત્રે આવે છે અને તે ભંડાર, કેશર, પૂજન, આરતી, બાધા વગેરેના હજારો રૂપિયા દિગંબરી યાત્રાવાસીઓના શ્વેતામ્બર શ્રી આણંદજી કલ્યાણજીની પેઢીમાં જાય છે ને કોઇ દિગંબર જૈન જાત્રાવાસી હિસાબ જોવા માગે તો પોતાની બંધારણને અંગે બતાવતા પણ નથી." તેમજ પબ્લીક છાપામાં પણ તેનો હિસાબ પ્રગટ કરતા નથી, આ મંદિરને અંગે ધર્મશાળા ઘણી વિશાળ છે. રસ્તા પરની ધર્મશાળાની ઓરડીઓ ભાડે અપાય છે; તેથી વરસે ભાડાની પણ સારી આવક છે, તેનો પણ કંઇ હિસાબ કીતાબ બતાવતા નથી, એટલે સુધી શ્વેતામ્બર ભાઇઓની બંધાઇ છે, તે આપણે કેશરીઆજીની તાજી ઘટના ઉપરથી સહેજમા ખ્યાલ કરી શકીશું. અમૃતસરના જલીયાનવાલા બાગમા જેવુ જનરલ ડાયરે કાળું કામ કર્યું હતું, તેવાજ કામની યાદી અહિંસા પરમો ધર્મ પાળનારા શ્વેતામ્બરોએ શ્રી કેશરીઆજીના મંદિરમાં, નિર્દોષ દિગંબરોના ખુન કરાવી જનરલ ડાયરનુ નામ ફરી શ્વેતામ્બરોએ યાદ કરાવ્યું. આવો ઘોર કેશરીયાજીનો હત્યાકાંડ કદિ ભૂલાય તેમ નથી. અરે! અહો શો જુલમ! અરે ઓ વીતરાગ દેવ! તારા ભક્તોની આવી દુર્દશા! તેમની આવી ઘાતકી લાગણી કે પોતાના ભાઇઓ પર છરી ચલાવાવતા અચકાયા નહિ, તે ઘણો શરમની વાત છે.

* * * *

આ ઉપરથી સર્વે દિગંબરોએ હવે ધ્યાનમાં રાખી આગ લાગવા પહેલાં કુવો ખોદવો જોઇએ, જેથી ભવિષ્યમાં કેશરીઆજી જેવો હત્યાકાંડ બનવા પામે નહિ માટે તેનો વહીવટ ભારતવર્ષીય દિગંબર જૈન તીર્થક્ષેત્ર કમેટી મુંબાઇના હસ્તમાં રહે તેવો ઉપાય કરવો જોઇએ અને કમેટી તરફથી એક દિગંબરી મુનીમ ત્યાં રાખવો જોઇએ જે મંદિરની તેમજ ધર્મશાળાની દેખરેખ રાખે અને યાત્રાળુઓ તરફથી ભંડાર, કેશર, પુજન, આરતી, બાધા, બાલકના વગેરેના જે પૈસા આવે તેના હિસાબ કીતાબ રાખે, અને તેની દેખરેખ તીર્થક્ષેત્ર કમેટી રાખે, મંદિરમાં સુધારો વધારો, કમેટીની ધ્યાનમાં આવે તે પ્રમાણે કરે અને બધા દિગંબરોને છાપા દ્વારા જણાવવું કે વહાલીની યાત્રાએ જનારાઓએ જે કંઇ મંદિરમા આપવું હોય તે દિગંબર મુનિમની ઓફીસમાં રીતસરની પહોંચ લઇ આપવું. શ્વેતામ્બર પેઢીના મુનીમને કંઇ પણ આપવું નહિ. આ પ્રમાણે કરવાથી ધીમે ધીમે કુલ સત્તા આપણને પાછી મળી શકશે.

* * * *

ગત સાલ વર્ષાદના તોફાનથી વાવ તરફથી ધર્મશાળાનો કરો પડી ગયો છે, જે તાકીદથી સુધરાવવા જેવો છે, નહિતો તે અંગે ધર્મશાળાના બીજા ભાગોને વધારે નુકશાન થાય તેમ છે.

× × × ×

વ્હાલા દિગંબરો! હવે ઉંઘવાનો વખત નથી, તમારાં પરમ પવિત્ર તીર્થો પારકાના હાથમા જતાં બચાવો, સાવધાન રહો, હવે જમાનાને અનુસરી કામ કરો. આ વખતે પોતાની ફરજ કોઇએ ભૂલવી જોઇએ નહિ, દરેકે યથાશક્તિ મદદ કરવી જોઇએ. દિગંબરોમા જે મતભેદ પડી ગયા છે, તેનું સમાધાન કરી કાઢી નાખવા જોઇએ, અને બન્ને પાર્ટીઓએ (બાબુ અને પંડિત) એકત્ર થઇ જવુ જોઇએ. જો આ વખતે એકત્ર નહી થઇએ તો કુસપનો લાભ શ્વેતામ્બરો લઇ જશે, અને આપણા બાપદાદાઓએ મહા મહેનતે લાખો રૂપીયા ખર્ચી બનાવેલા તીર્થો બીજાઓના હાથમા જશે, માટે શેઠ સાહુકારોને મારી અરજ છે કે આ વખતે દરેક મતમતાંતર છોડી દઇ એક સંપ થઇ કાર્ય કરવું જોઇએ.

* * * *

દિગંબરો! તમે બધા એકજ છો, દ્વેષ બુદ્ધિને તીલાંજલી આપી દો. ઉપલક નહિ પણ ખરૂ ઐક્ય સાધો, કોઇપણ અયની સામે થવા, તત્પર નહિ થાઓ ત્યાં સુધી, તમારા ઉપર આક્રમણો અને અત્યાચારો થયાજ કરશે, પણ

શ્રી કુંદકુંદસ્વામી પર નવીન પ્રકાશ.

(લેખક—લલ્લુભાઈ રાયચંદ શાહ, ઓરાણુવાળા.)

શ્રી કુંદકુંદાચાર્ય એ તત્વાર્થસૂત્રના રચનાર શ્રી ઉમાસ્વામી ના (જેને શ્વેતાંબર ભાઈ ઉમા-સ્વાતિ કહે છે તેમના) ગુરૂ હતા. એમનો જન્મ માળવા દેશમાં બુંદી કોટાની પાસે બારાપુર સ્થા-નમાં વિક્રમરાજાના જન્મથી ૫ વર્ષ પાછળ એટલે વીર નિર્વાણ સંવત ૪૭૫મા થયો હતો. એમના પિતાશ્રીનું નામ કુંદશેઠ અને માતાનું નામ કુંદલતા હતું. એમણે ૧૧ વર્ષની ઉમરમા મુનિ દીક્ષા લીધી હતી ને ૩૩ વર્ષ સુધી અઘોર તપ કર્યા બાદ ૪૪ વર્ષની ઉમરમા—વિક્રમના જન્મ સંવત ૪૯ ના માગસર વદ ૮ (મારવાડી પોષ વદ ૮) ના રોજ પોતાના ગુરૂ શ્રી જિનચંદ્ર-સ્વામી ના સ્વર્ગવાસી થયા પછી એમનીજ ગાદીના પટ્ટાધીશ થયા. બાદ ૫૧ વર્ષ ૧૦ માસને ૧૦ દિવસ પટ્ટાધીશ રહીને અને ૫ દિવસ સમાધિમરણમા પૂર્ણ કરી ૯૫ વર્ષ ૧૦॥ માસની ઉમરમા વિક્રમ જન્મ સં. ૧૦૧ના કારતક સુદ ૮ (અઠ્ઠાઇની આઠેમ)ના રોજ સ્વર્ગ સીધાવ્યા ને એજ દિવસે શ્રી ઉમાસ્વામી એમનીજ ગાદીએ બેઠા હતા.

વહીવટકર્તાઓ તમારૂં બળ, અને સંગઠન જોશે, ત્યારે તમારો વાળ વાંકો કોઈ કરી શકશે નહિ.

* * * *

દિગંબરો ! જો તમને પ્રાણ કરતા ધર્મ વ્હાલો હોય તો જાગૃત થઇ એકત્ર થઇ જાઓ અને તીર્થસ્થાનોને બચાવો.

ઉપરોક્ત ભારતવર્ષીય દિગંબર જૈન તીર્થ ક્ષેત્ર કમેટીને મારી અરજ છે કે આ વાત ધ્યા-નમાં લઇ તેનો યોગ્ય બંદોબસ્ત કરવા માટે ગોઠવણ કરશે એવી પૂર્ણ આશા છે.

સંઘવી વિઠ્ઠલદાસ અમથાલાલ—પ્રાંતિજ.

આ કુંદકુંદસ્વામીનાં ૫ નામ પ્રસિદ્ધ હતાં ૧ કુંદકુંદાચાર્ય, ૨ પદ્મનંદિ, ૩ એલાચાર્ય, ૪ ગૃદ્ધપિચ્છ અને ૫ વક્રગ્રીવ. એ પલ્લીવાલ જાતિના હતા. એમનો નંદી સંઘ, પારિજાત ગચ્છ, અને બલાત્કાર ગણ હતો. એમણે ૮૪ પાહુડ ગ્રંથ રચ્યા હતા, જેમાંના ૧ અંગ પાહુડ, ૨ અષ્ટ પાહુડ, ૩ આચાર પાહુડ, ૪ આલાપ પાહુડ, ૫ આહારણા પાહુડ, ૬ ઉદ્યાત પાહુડ, ૭ ઉત્પાદ પાહુડ, ૮ એયંમ પાહુડ, ૯ કર્મવિપાક પાહુડ, ૧૦ ક્રિયા પાહુડ, ૧૧ ક્રિયાસાર પાહુડ, ૧૨ ક્ષપણ પાહુડ ૧૩ ચરણ પાહુડ, ૧૪ ચૂર્ણી પાહુડ, ૧૫ ચૂલી પાહુડ ૧૬ જીવ પાહુડ, ૧૭ જોણીસાર પાહુડ, ૧૮ તત્વસાર પાહુડ, ૧૯ દિવ્ય પાહુડ, ૨૦ દૃષ્ટિ પાહુડ, ૨૧ દ્રવ્ય પાહુડ, ૨૨ નય પાહુડ, ૨૩ નીતાય પાહુડ, ૨૪ નિયમસાર પાહુડ, ૨૫ નો કર્મ પાહુડ, ૨૬ પંચવર્ગ પાહુડ, ૨૭ પંચા-સ્તિકાય પાહુડ, ૨૮ પયદ પાહુડ. ૨૯ પુન્ય પાહુડ, ૩૦ પ્રકૃતિ પાહુડ, ૩૧ પ્રમાણ પાહુડ, ૩૨ પ્રવચનસાર પાહુડ, ૩૩ બંધ પાહુડ ૩૪ બુદ્ધિ પાહુડ, ૩૫ બોધિ પાહુડ, ૩૬ ભાવસાર પાહુડ, ૩૭ રત્નસાર પાહુડ, ૩૮ લબ્ધિ પાહુડ, ૩૯ લોક પાહુડ, ૪૦ વસ્તુ પાહુડ, ૪૧ વિદ્યા પાહુડ, ૪૨ વિહિયા પાહુડ, ૪૩ શિક્ષા પાહુડ, ૪૪ ષટ્ પાહુડ, ૪૫ ષટ્ દર્શન પાહુડ, ૪૬ સમયસાર, પાહુડ, ૪૭ સમવાય પાહુડ, ૪૮ સંસ્થાન પાહુડ ૪૯ સ્વામી પાહુડ, ૫૦ સિદ્ધાન્ત પાહુડ, ૫૧ સૂત્ર પાહુડ, ૫૨ સ્થાન પાહુડ...આદિ પાહુડ ગ્રંથ તથા દ્વાદશાનુપ્રેક્ષા વીગેરે બીજા કેટલાક ગ્રંથ પ્રાકૃત ભાષામાં છે. પાહુડને પ્રાભૃત પણ કહે છે જેનો અધિકાર એવો અર્થ થાય છે.

શ્રી કુંદકુંદાચાર્યના જન્મ સમયે માલવા દેશમાં કે જેને તે વખતે અવંતિ દેશ કહેતા હતા, શક-વંશી જૈન ધર્મી રાજા કુમુદચંદનું રાજ્ય હતું, જેને ધારાનગરીના ધાર રાજાના દોહીત્ર અને ગધર્વસેન ના પુત્ર વિક્રમાદિત્ય (વિક્રમરાજા) એ

કેટલાંક ને કોઇ પ્રકારથી વશ સાધીને ૧૮ વર્ષની ઉમરમાં પોતાને કબજે કરી લીધું અને ઉજ્જૈની નગરીને પોતાની રાજધાની બનાવીને વીર વિક્રમાદિત્ય આદિ નામ રાખીને પોતાનો રાજ્યાભિષેક કરાવ્યો. અને એ દિવસથી એમણે પોતાના વિજયની સ્મૃતિમાં પોતાના નામનો "એક સંવત ચાલુ કર્યો" પછી થોડાજ દિવસોમાં એમણે પોતાના બાહુબળથી ગુજરાત, મગધ, બંગાળ, અને ઉડીસા (કલિંગના પ્રાંત) વગેરે અનેક દેશોને જીતી પોતાના રાજ્યમાં મેળવી બહુ ભારે પ્રસિદ્ધિ મેળવી અને ૨૨ વર્ષની ઉમરમાં તો એણે રાજાધિરાજ પદ પ્રાપ્ત કર્યું.

આ રાજા વિક્રમ પાકો શૈવધર્મી અને જૈન ધર્મનો દ્વેષી હતો, તેથી એના રાજ્યમાં શૈવમતનું જોરજુલ્મ બહુ જોર વધી ગયું કે જૈનધર્મ ઘણું કરીને લોપ થવા સમાન જણાવા લાગ્યો. એમના રાજ્યાભિષેકના વખતે શ્રી કુંદકુંદસ્વામીની ઉમર ફક્ત ૧૪ વર્ષનીજ હતી. શૈવ સમ્પ્રદાયનું દિન અને બળ અનુચિત રીતથી દિન પ્રતિદિન વધતું ગયું અને પવિત્ર જૈન ધર્મીઓ ઉપર અનેક જુલ્મો થતા જોઇને કુંદકુંદસ્વામીનું મન દુઃખિત થયું. જ્યારે ૧૧ વર્ષની ઉમરમાં મુનિ દિક્ષા લીધા પછી ગુરૂની પાસે એ સારી પેઠે વિદ્યા-ધ્યયન કરી રહ્યા અને અઘોર અઘોર તપ કરી એમણે પોતાનું આત્મબળ ઘણુંજ ઉંચ પ્રકારનું બનાવી લીધું, ત્યારે ગુરૂજીની આજ્ઞા લઇને શૈવ મતના તથા બીજા પણ ધર્મ માન-નારાઓથી ભારે ભારે શાસ્ત્રાર્થ કરી આખા ભારતવર્ષમા પોતાના જૈન ધર્મનો વિજય વાવટો ફરકાવ્યો. અન્યમતી મોટા મોટા દિગ્ગજ વિદ્વાનો એમની વિદ્વત્તા અને તપોબળના ચમત્કાર અને મહિમાને જોઇને એમના શિષ્ય થયા, જેથી લુપ્ત થયેલો પવિત્ર સ્યાદ્વાદમયી જૈન ધર્મ પ્રાણી માત્રના આત્માઓથી પાછો અમલ કરતો સારી સ્થિતિ પર આવ્યો.

(बृहत् जैन शब्दार्णव ऊपरथी)

શ્રાવિકાશ્રમ-સોજીત્રા.

સુજ્ઞ ભાઇઓ તથા બ્હેનો,

સોજીત્રા એ વિશા મેવાડા સંઘનું એક કેન્દ્ર સ્થાન છે, જેની આજુબાજુના ચોસઠ ગામ પૈકી પાંચશો ઘરવાળા સંબંધ ધરાવે છે. એ સ્થળમાં શ્રીમતી મહિલારત્ન લલિતાબ્હેનના શુભ હસ્તે બે વર્ષ થયાં શ્રાવિકાશ્રમની સ્થાપના થઇ છે. આ સંસ્થાની અંદર મુંબઇ શ્રાવિકાશ્રમમાં કેળવાયેલ ટ્રેઇન્ડ અને ચારિત્રવાન શ્રીમતી પ્રભાવતી બ્હેન તથા શ્રીમતી નહાનીબ્હેન કામ કરી રહેલાં છે, જેમાં ભરત, ગુંથણ, શીવણ, ડ્રોઇંગ, સંગીત, પાકશાસ્ત્ર, વાચન, લેખન, આરોગ્ય વિજ્ઞાન, ધાર્મિક વિગેરે વિષયોનું જ્ઞાન નિયમિત ઉત્તમ પ્રકારનું આપવામા આવે છે. સદર આશ્રમમાં ભોજન ફીના ફક્ત માસિક રૂ. ૫) પાંચજ લઇને જૈન બ્હેનોને દાખલ કરવામા આવે છે. વિના ફીથી કે અર્ધી ફીથી પણ દાખલ થઇ શકાય છે. સધવા, વિધવા, કુંવારિકા સઘળી બ્હેનો આ સંસ્થાનો લાભ લઇ શકે છે.

આજ દિન સુધી આપણે સ્ત્રી કેળવણી તરફ તદ્દન દુર્લક્ષ આપ્યું છે એનુંજ પરીણામ આપણા સમાજની પડતીનુ એક મુખ્ય કારણ છે. બાળ વિવાહ અને બાળ લગ્ન-કજોડાએ કરી કેળવણીને અટકાવી દીધી છે. સમાજમા નાની વિધવાઓનો વધારો થવો એ આપણીજ ખામીઓ છે.

વિધવા બ્હેનોને ધર્મના સુસંસ્કાર આપ્યા હોય અને સમાજ સેવિકાનાં કાર્યો તરફ જીવન અર્પણ કરાવરાવ્યું હોય તો ત્હેઓના દુઃખો કમી થઇ પોતાના આત્માની તેમજ બીજાની સાચી ઉન્નતિ સાધી શકે છે.

બ્હેનો માટે સોજીત્રા શ્રાવિકાશ્રમથી આ તકલીફ દૂર થઇ છે, માટે હવે દરેક ભાઇને મારી નમ્ર વિનંતી છે કે બ્હેનોને સાચી કેળવણી અને ધાર્મિક સંસ્કાર આપો. સોજીત્રા આશ્રમમાં કુંવારી

કન્યાઓને તથા વિધવા બ્હેનોને જલદી મોકલો કે જેથી કુંવારી કન્યાઓ ભવિષ્યની સાચી માતાઓ બને ને સાચા જૈન ધર્મી પુત્રરત્નો પ્રાપ્ત કરી સમાજની ખરી ઉન્નતિ કરી શકે. તેમજ વિધવા બ્હેનો પોતાના આત્માની ઉન્નતિ સાધી શકે અને સમાજ સેવિકા બની ઘણું સુંદર કાર્ય કરી શકશે.

પાંચશો ઘરવાળાજ ધારે તો સોજીત્રા શ્રાવિકાશ્રમને મુંબઇ શ્રાવિકાશ્રમ કરતાં હરેક રીતે આગળ લાવી શકે તેમ છે.

આવા આશ્રમોથી સંગઠનની પ્રવૃત્તિ આપોઆપ વૃદ્ધિગત થાય છે.

ભાઇઓને મારી નમ્ર વિનંતી છે કે જ્યાંસુધી શ્રાવિકાશ્રમમાં ઓછામાં ઓછા ત્રણથી પાંચ વર્ષ સુધી આપણી બાલિકાઓ સાચી કેળવણી ન લે ત્યાંસુધી આપણે તેમને પરણાવવાનો વિચાર લાવવો જોઇએ નહીં. જ્ઞાતિ ભોજન, મહોત્સવો ઉજવવા પાછળ કરકસર કરી કેળવણી પાછળ વિશેષ દ્રવ્ય ખર્ચવાની જરૂર છે. આપણે આપણી પુત્રી પાછળ કેળવવા શું પ્રયાસ કર્યો છે, કેટલુ દ્રવ્ય ખરચ્યું છે તે પણ વિચારવા વિનંતી છે. કન્યાને કન્યાદાન દેતી વખતે ઘરેણાં તથા દ્રવ્ય ન અપાય તેની હરકત નહીં પણ એજ સમયે સમ્યક્જ્ઞાન આપેલ હશે તો આખી જીંદગી માતા પિતાને આશીષ આપશે. પુત્રને હરેક પ્રકારનો વારસો આપણે આપીએ છીએ, તો એકજ માતાના સંતાન પુત્ર ને પુત્રી બન્નેઉ તરફ ભિન્ન ભેદ ન રાખતાં સમાન દ્રષ્ટિ રાખી કેળવણીનો વારસો પુત્રીઓને આપવા જરૂર લક્ષ આપશો.

હરેક પ્રસંગે ગુજરાતના ભાઇઓ આ સંસ્થાને યથાશક્તિ મદદ કરે, આ સંસ્થા પોતાની જાની મેબર બને અને દિગંબર જૈન સમાજની કન્યા કેળવણીના મહાન પ્રશ્નનો ઉકેલ કરે; તો જરૂર આપણા સમાજની ઉન્નતિ થતા વાર લાગશે નહીં.

સમાજ સેવક—

નહાનચંદ ભગવાનદાસના વંદેજિનવરમ્.

સેવા ધર્મ.

(લેખકઃ—ફુલચંદ સુરચંદ દોશી, ઇડર)

સેવા ધર્મ એ એક જીંદગીનો મહાન પ્રશ્ન છે. આ સૃષ્ટિની અંદર જેટલા જીવો ઉત્પન્ન થાય છે તે દરેકને સેવા ધર્મનો પાઠ શીખવો જરૂરનો છે, ભલે તે ઓછાવત્તા પ્રમાણમાં હો પરંતુ દરેકને માટે સેવા કરવી એક કુદરતી ફરજ છે. હવે સેવા ધર્મ એટલે શું અને તે કેવી રીતે હોઇ શકે તે જાણવું જરૂરતું છે.

બંધુઓ! આ સૃષ્ટિની અંદર ઘણા જીવો એવા હોય છે કે તેઓ નીચ સ્વાર્થ સેવા પસંદ કરે છે, અને આ સ્વાર્થમાં તેઓ ન કરવાનાં અનુચિત કાર્યો પણ કરતાં અચકાતા નથી. આવી રીતની સેવા મનુષ્યને નરકના ઉંડા ખાડામા નાખે છે, આ સેવા પવિત્ર આત્મા કે જે અનંત દર્શન, અનંત જ્ઞાન, અનંત બળ, અનંત વીર્યમય છે તેને તેની પવિત્રતામાંથી હડસેલી મૂર્ખતાને સાધનભૂત બને છે. સ્વાર્થને લીધેજ મનુષ્યોમાં ક્રોધ, લોભ, માન, ઇર્ષા, અદેખાઇ વીગેરે દુષ્ટ રિપુઓનું સામ્રાજ્ય સ્થપાવાથી આત્માને અનંતાનંત ભવની ફેરીમાં ફરવું પડે છે, કે જ્યાંથી નીકળતાં મહાન યોગીશ્વરોને પણ સોસવું પડે છે. ઉપર બતાવેલી સ્વાર્થ સેવા પ્રાણીયોને દુઃખરૂપ નીવડે છે, ત્યારે પરમાર્થ સેવા સુખને માટે સાધનભૂત થાય છે

પરમાર્થ સેવાનો ઇચ્છુક પ્રથમ પોતાના આત્માની અને પોતાના શરીરની પૂર્ણ રીતે સેવા બજાવે ત્યારેજ તે પરમાર્થ સેવા કરી શકે છે. કારણકે આત્માને જેવી રીતે કેળવવામાં આવે તેવી રીતે તેની ભવિષ્યની પ્રવૃત્તિ હોય છે. આત્માની સેવા એટલે જ્ઞાન સંપાદન કરવું, શાસ્ત્ર સ્વાધ્યાય કરવો, ધર્મ પ્રત્યે સ્નેહ રાખવો, આત્માનું ચિંતવન કરવુ વીગેરે વીગેરે છે. જ્ઞાન સંપાદન કર્યા સિવાય કદાપિ પણ ઉત્તમ થઇ શકાતું નથી. આ સૃષ્ટિની અંદર જેટલા મહાન પુરૂષો થઇ ગયાં છે અને થતા જાય છે તે દરેક જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરીનેજ શુદ્ધ સેવા કરી શકે છે. વળી શાસ્ત્ર સ્વાધ્યાયથી હંમેશાં

નવીન નવીન પવિત્ર વિચારો સ્ફુરે છે. ધાર્મિક અંશોની જાગૃતિ થાય છે. અને તેથીજ બીજા પ્રાણીઓ મારા જેવા છે, મારે આ સંસારમાં આવી તેમની સેવા કરવી જોઈએ વીગેરે વીગેરે વિચારો પેદા થાય છે, વળી આત્મ ચિંતવનથી એ ભાવ પેદા થાય છે કે હું ક્યાંથી આવ્યો છું, મારે શું કરવાનું છે, મારે ક્યાં જવાનું છે, હું શું કરૂં છું, મારો આત્મા શુદ્ધ, પવિત્ર, અનંત દર્શન, અનંતજ્ઞાન, અનંતબલમય હોવા છતાં જન્મ મરણરૂપ પ્રચંડ અગ્નિમાં દગ્ધ થાય છે, માટે મારૂ કર્તવ્ય બજાવવું જોઈએ. દરેક પ્રત્યે દયા ભાવ રાખવો જોઈએ બીજાના દુઃખે દુઃખી અને સુખે સુખી થવું જોઈએ, વીગેરે ભાવ પેદા થતાંજ દુઃખી જીવોનાં દુઃખ દૂર કરવા મન પ્રેરાય છે.

આ વૃત્તિ પરમાર્થ સેવા કરવાની નીસરણી કહો કે મોક્ષ સુખ મેળવવાની મોટર ગાડી કહો તે આજ છે. દરેક બંધુઓએ આત્મ ચિંતવન માટે સવારમાં ઉઠતાંજ પોતાનું મન સ્થિર કરવું જોઈએ. પરમાર્થ સેવાના ઇચ્છુકને શરીર સેવા પણ જરૂરની છે. શરીર સેવા હંમેશા શુદ્ધ, સાદો, તાજો અને પુષ્ટિકારક ખોરાક ખાવાથી તેમજ વ્યાયામ આપવાથી થઈ શકે છે. શુદ્ધ ખોરાક ખાવાથી પોતાનાં મન તેમજ વિચાર શુદ્ધ બને છે. અત્યારના સમયમાં હોટેલના ખાનપાન, ચાહ, બીડી, વગેરે અશુદ્ધ અને વ્યસની પદાર્થોને લીધેજ મનુષ્યો પોતાનું ધારેલું કાર્ય પૂરૂં કરી શકતા નથી. કારણકે અશુદ્ધ ખાનપાન મનને ભ્રષ્ટ બનાવે છે. કહેવત છે કે "જેવું ખાય અન્ન તેવું થાય મન અને જેવું પીએ પાણી તેવી બોલે વાણી." આ ઘરડાં મોટેરાની કહેવતો કંઇ ગટરોમાં પધરાવવા જેવી નથી, પરંતુ સોનેરી અક્ષરે તેને કોતરી રાખવા જેવી છે. માટે હંમેશા દરેક શુદ્ધ, સાદો અને પુષ્ટિકારક તાજો ખોરાક લેવાની જરૂર છે.

હવે પરમાર્થ સેવા એટલે શું ? કે "પોતાની જીંદગીનો એવો કાર્યક્રમ કે જેથી દરેક પ્રાણીઓ ઉપર સ્નેહભાવ રાખવો, ક્ષમાભાવ રાખવો, બીજાના દુઃખે દુઃખી અને સુખે સુખી થવું, દુઃખી પ્રાણીઓને દુઃખમાંથી મુક્ત કરી સુખી બનાવવા; દરેકને સુખ અને સંતોષ ઉપજે તેવી પ્રવૃત્તિ રાખવી, અજ્ઞાની જીવોને સદુપદેશ દ્વારા જ્ઞાની બનાવી આત્મોદ્ધારનું ભાન કરાવવું, રોગી પ્રાણીઓને રોગમાંથી મુક્ત કરાવવા, અનાથને આશ્રય આપવો તેમજ દરેકને પોતાનાથી બનતી મદદ કરવી વગેરે પરમાર્થ સેવાનો કાર્યક્રમ છે.

આ દુન્યામાં એવા ઘણા મનુષ્યો દ્રષ્ટિગોચર થાય છે કે જેઓ પોતાના આત્માને મોક્ષ સુખનું આસ્વાદન કરાવવાને પ્રયત્ન કરતા જણાય છે. તેઓને નથી હોતી દુનીયાની પરવા કે નથી હોતી બીજાના દુઃખોની પરવા; પરંતુ તેઓનો એજ ધ્યેય હોય છે કે ક્યારે તેઓ મોક્ષ સુખને મેળવી શકે, પરંતુ આવી રીતે પોતાના આત્માનું ભલું કરનાર પોતાના આત્માનું ભલું કરી શકતો નથી. પોતાનું ભલું બીજા દુઃખી પ્રાણીઓના ભલામાંજ સમાયેલું છે. પરમાર્થ જીવનથી મનુષ્ય દરેકમાં પૂજ્ય બની શકે છે. દાખલા તરીકે અરહંત ભગવાન કરતા સિદ્ધ ભગવાનનું પદ ઉચ્ચ હોવા છતા પંચ નમોકાર મંત્રમાં અરહંત ભગવાનનું પદ પ્રથમ પંક્તિએ આવે છે તેનું મુખ્ય કારણ એજ છે કે તેઓ આ સૃષ્ટિની અંદર રહી દરેક પ્રાણીઓને સદુપદેશદ્વારા બોધ દઈ પરમાર્થ વૃત્તિનું પાલન કરે છે તેથીજ રીતે મહાત્મા ગાંધીજી પણ પરમાર્થ તેમજ નિસ્વાર્થ સેવાને લીધેજ દરેક કરતા ઉચ્ચ ગણાય છે ભલે મનુષ્ય ચક્રવર્તી હોય કે વિદ્વાન હોય કે મંત્ર તંત્રનો જાણકાર હોય પરંતુ સેવા વિના કદાપિ કોઈ પૂજ્ય થઈ શકતો નથી. જેણે સ્વાર્થ શબ્દને પોતાનાથી હંમેશને માટે અળગો કરેલ છે તેજ ખરેખર સેવા કરવાને ભાગ્યશાળી થાય છે. પરમાર્થ સેવા દરેકનો પ્રેમ જીતી લે છે. જ્યારે તેને દરેક પ્રાણીઓ માનની નજરે અને પૂજ્ય ભાવનાથી જુએ છે ત્યારે તે જે આનંદ અનુભવે છે તેનું વર્ણન કરવું અશક્ય છે. નિસ્વાર્થ સેવાથી અજ્ઞાની મનુષ્યો તો શું પરંતુ પશુ પક્ષી જેવા પ્રાણીઓ પણ શત્રુ મટી મિત્ર બને છે.

મને આ વખતે એક બનાવ યાદ આવે છે કે થોડા વરસો પહેલાં દીલ્હી શહેરમાં નીચ

લોકોના આવાસ આગળ એક એવો સર્પ નીકળ્યો. સર્પને જોતા તે લોકો તેને મારવાની તૈયારીમાં હતા ત્યાં આગળ થઈને પસાર થતા દયાળુ હૃદયના એક જૈન ભાઈએ આ બનાવ જોયો અને મનમાં નિશ્ચય કર્યો કે ગમે તેમ પણ સર્પને મરતાં બચાવવો. તેણે તે લોકોને જણાવ્યું કે સાપને મારશો નહી, મારવાથી પાપ લાગશે, બિચારા અજ્ઞાન સર્પે તમારૂં શું બુરૂં કર્યું છે કે તમો તેને મારો છો ? આ સાંભળી ગામના લોકો તેના તરફ હસીને જવાબ આપ્યો કે જુઓ, આ મોટા દયાના સાગર આવ્યા છે, અને વળી ઝેરી જનાવર હોવા છતાં કહે છે કે "તમારૂં શું બગાડે છે ?" એવી દયા ભાવના હોય તો હાથમાં પકડીને લઈ જાઓ એટલે જાણી શકાય કે શું બગાડે છે ? તુરતજ તે દયાળુ સજ્જને સર્પની પાસે જઈ પાસે રાખવાનો ખેસ તેની આગળ પાથરી તેને કહ્યું 'બેટા, આ ચાદર ઉપર આવી બેસ હું તને નિર્ભય સ્થાને લઈ જઈશ"...સર્પે તેના ભાવમય શબ્દોથી આ જાઈ પાથરેલી ચાદરમાં આવી કુંડલું વાળી બેસી ગયો. તુરત તે સજ્જને ચાદરના છેડા મજબુત બાંધી ગાંસડી બાંધી પોતાના માથે મુકી ચાલતો થઈ ગયો. આ બનાવ સાચે સાચો બનેલજ છે તેમાં શંકા છેજ નહી

સુજ્ઞો ! આમાં કંઈ આશ્ચર્ય થવા જેવું છેજ નહી. પ્રેમ એવી વસ્તુ છે કે મહાન હિંસક પ્રાણીઓ પણ કુદરતી હિંસક સ્વભાવ છોડી દે છે. અત્યારના સમયમાં ઘણા એવા મનુષ્યો જોઈએ છિએ કે તેઓ પોતાના બાળકોનાં લગ્ન કરી મોટી દશ હજારો રૂપીયા ખર્ચ કરી પોતાની સેવાને સાર્થક માને છે પરંતુ આ તેમની ખરેખરી સેવા તો છોકરા છોકરીઓને ઉચ્ચ કેળવણી આપી તેમની ભવિષ્યની જીંદગી સુખરૂપે પસાર થાય તેવી રીતે કેળવવા તેમાંજ સમાયેલી છે અલબત તેમને યોગ્ય ઉમરે વિવાહિત કરવા પરંતુ યોગ્ય કેળવણી આપ્યા પછીજ.

દેશ સેવા એ પણ પરમાર્થ સેવા છે. દેશી-ઓને દુઃખમાંથી મુક્ત કરવાં, પરદેશીઓના જુલમી હુમલાઓથી બચાવવાં, તેમને સુખ મળે તેવા સાધનોને અમલમાં લાવવાં તે ખરેખરી દેશ સેવા છે. રેંટીઓ કાંતવો, હાથે કાંતેલા સુતરનાં વસ્ત્રો હાથે બનાવી પરિધાન કરવાં તેમાં અહિંસા ધર્મનું પાલન થાય છે કારણકે મીલોમાં વણાતાં વસ્ત્રો કે જેમાં હજારો જીવોનો ઘાત થાય છે, તેમાં નાખવાની ખેળ તેમજ ચરબી વાપરવાને લાખો જીવોને મારી તેની ઉપયોગમાં લેવામાં આવે છે, તે હાથે બનાવેલા વસ્ત્રોના લીધે તેમનો બચાવ કરી શકાય છે. આવી રીતે દરેક બંધુઓ પોતાના નિત્ય ખર્ચ માટે પોતાના હાથે તૈયાર કાપડ કરી પહેરે તો લાખો જીવોનો ઘાત થતો બચી જાય અને તેના બદલ પુણ્ય પ્રાપ્ત થઈ શકે. મહાનુભાવો ! આ સેવા ધર્મ નાના બાળકથી ઘરડા સુધી દરેક કરી શકે છે. સ્કુલમાં ભણતો વિદ્યાર્થી પોતાનાથી નાના તેમજ અભણ વિદ્યાર્થીને શિક્ષણ આપી પોતાનો ધર્મ બજાવી શકે છે. ધનવાન મનુષ્યો પોતાના દ્રવ્યથી ગરીબ નિ-સહાય વિધવાઓને પોષવા માટે મહિલાશ્રમ, નિસઃહાય બાળકોને માટે સ્કુલો પાઠશાળાઓ ખોલી વિદ્યાદાન દેવામાં તેમજ વાવ કુવા ટાંકા પાંજરાપોળ આદિ અનેક પરોપકારી સંસ્થાઓ ખોલી સેવા કરી શકે છે. દરેક ધનવાન બંધુઓએ પોતાના દ્રવ્યનો આવા માર્ગે સદુપયોગ કરવો જોઈએ. દ્રવ્ય વાપરતા ખમણું વધે છે જે માણસ પોતાની પાસે રહેલી ચીજનો સદુપયોગ કરતો નથી તેને માટે કુદરતજ યોગ્ય નસીયત કરે છે. આ દુનીયામાં જેવું વાવે તેવું લણે, એ અબાધ્ય નિયમ છે. પૈસાદાર થઈ પોતાના દ્રવ્યનો વ્યય કોઈપણ સારા કાર્યમાં ન કરે તો તેના દ્રવ્ય કરતાં ગરીબ પરંતુ ભાવનાશાલીના ઘરમાં ભરેલા કાંકરા પણ વધારે શ્રેષ્ઠ છે એક ગરીબ માણસ કહે છે કે "દાનભોગહીનેન, धनेन धनीनो वयम्, दृष्टवी जात नीलातेन धनेन धनीनो वयम्" ત્યારે પૈસાદાર તેજ કહેવાય કે જે પોતાના દ્રવ્યનો સદુપયોગ કરીને સંતોષ મેળવે. પૈસાદાર મનુષ્ય પોતાના દ્રવ્યથી સેવા કરે છે ત્યારે ધનહીન પણ તન અને મનથી ધનવાન કરતાં પણ વધારે સેવા

તીર્થયાત્રા માટે વિદ્વાનોની પ્રશંસા

વડોદરા વરિષ્ઠ કોર્ટના માજી જડજ સાહેબ પણ હાલ નાયબ દિવાન સાહેબ રા. બા. ગોવિંદભાઈ હાથીભાઈ દેશાઈ. બી. એ. એલ. એલ બી. લખે છે કે હિંદુસ્તાનની તીર્થયાત્રાનું મોટું અને સુશોભીત છપાઈ તથા બાંધણીવાળું પુસ્તક હું ઘણી ખુશાલીથી વાંચી ગયો છું. આવા એક જાત્રાળુના ભોમીયા તરીકે ગરજ સારે એવા પુસ્તકની દેશી ભાષામાં ખોટ હતી તે આપે પૂરી પાડી છે, રેલ્વે રસ્તા વિગેરેની માહિતી સંપૂર્ણ છે.

એટલુંજ નહિ પણ દરેક તીર્થસ્થાનનું વર્ણન, જોવા લાયક જગાનો ઈતિહાસ એ વગેરે બાબતની માહિતી પણ જોઈએ તેટલી સંપૂર્ણ સરળ અને વિગતવાર છે આ પુસ્તક જાત્રાએ નકળતા દરેક સંઘને માટે ખાસ ઉપયોગી છે અને તે દરેકે પોતાની સાથે રાખવા જેવું છે આવા સારાં અને ઉપયોગી પુસ્તક તૈયાર કરવામાં આપને ઘણો શ્રમ પડતો હશે તથા ઘણું ખર્ચ કરવું પડતું હશે તે તમામ ઉઠાવી આપ જનસેવા બજાવો છો તેને માટે આપને ધન્યવાદ ઘટે છે, આપના પુસ્તકો બહોળો ફેલાવો થાય અને તેનો લાભ સર્વ કોઈ લેઈ આપનો શ્રમ બર લાવે એમ અંતઃકરણપૂર્વક ઇચ્છું છું.

ભાવનગર સ્ટેટના માજી વિદ્યાધિકારિ સાહેબ મે. કૌશીકરામ વિઘ્નહરરામ મહેતા બી. એ. લખે છે કેઃ—હિંદુસ્તાનની તીર્થયાત્રા એ પુસ્તક વાંચી આનંદ થયો, યાત્રા કરવા ઇચ્છનારને તેમજ સામાન્ય વાચકવર્ગને આપનું પુસ્તક અવશ્ય બહુજ ઉપયોગી થઈ પડશે એમ હું માનું છું. અમારા રાજ્ય માટે ૭ નકલો મોકલાવશો

હિંદુસ્તાનની તીર્થયાત્રામાં આવેલા વિષયો.

જેની અંદર આબુ અંબાજી, અજમેર, પુષ્કરતીર્થ સિંધ, કરાંચી. હીંગળાજમાતા, ઉદેપુર, જોધપુર, બિકાનેર, જેસલમીર, શ્રીનાથદ્વારા, કાંકરોલી, ઉજ્જન, ઓંકારેશ્વર, ઇંદોર, મથુરા, આગ્રા, દીલ્હી, હરદ્વાર, લાહોર, અમૃતસર, પંજાબ, બદ્રિકેદારનાથ શ્રીનગર-કાશ્મીર, લખનૌ અયોધ્યા, કાશી, ગયાજી, સમેતશિખર, વૈજનાથ મહાદેવ, કલકત્તા. જગન્નાથપુરી, મદ્રાસ. શ્રીસેતબંધુ રામેશ્વર, શ્રીરંગજી, શિવકાંચી, વિષ્ણુકાંચી, સાક્ષીગોપાળ, કોચીન, હુબલી, નાશક, ત્ર્યંબક, પુના, મુંબાઈ, ચાણોદ, શુકલતીર્થ, ડાકોર, દ્વારકા, પ્રભાસપાટણ. ગીરનાર પર્વત. પાલીતાણા વિગેરે યાત્રાના સ્થળોનું વર્ણન, ત્યાં શું શું યાત્રા કરવાનું ધામ છે, શું જોવા લાયક જગ્યાઓ છે, તેપારની કઈ કઈ ચીજો ત્યાં થાય છે, ત્યાં ઉતરવાની શી વ્યવસ્થા છે, ગાડી ક્યાં બદલાય છે વિગેરે જાત્રાળુઓને ઉપયોગી સંપૂર્ણ માહિતીનો આ પુસ્તકમાં સમાવેશ છે

જેમાં—કાશી જગન્નાથપુરી, બદ્રીનાથ, કેદારેશ્વર, શ્રી સેતબંધુરામેશ્વર અને દ્વારકા એ ચારે ધામની યાત્રા, કાશી, કાંચી, (શિવકાંચી અને વિષ્ણુકાંચી) અવંતિકા, ઉજ્જન અયોધ્યા, મથુરા માયા (હરદ્વાર) અને દ્વારકા એ સાતપુરી; ત્ર્યંબકેશ્વર, ઘૃષ્ણેશ્વર, ઓંકારેશ્વર, મહાકાળેશ્વર, સોમનાથ, કેદારેશ્વર, વિશ્વેશ્વર, વૈજનાથ, નાગેશ મલ્લિકાર્જુન રામેશ્વર અને ભીમાશંકર એ ૧૨ જ્યોતીર્લિંગો આ શંકરાચાર્યોના ચાર મઠો, શ્રીવૈષ્ણવોની યાત્રાના સ્થળો, કેશરીયાજી, પાલીતાણા સમેતશિખર, શેત્રુંજય, ગીરનાર, પાલીતાણા વિગેરે જૈનોનાં યાત્રાના સ્થળો તેમજ અજમેર વિગેરે સ્થળનાં મુસલમાનોના યાત્રાના અને પારસીઓના દેવાલય વિગેરે સ્થળોનું વર્ણન છે.

દરેક દેવસ્થાનની જાત્રા કરી પછી બીજી જાત્રા કરવા માટે કયે રસ્તે જવાથી સુગમ પડે, તેનું ભાડું રેલ્વે સ્ટેશનોના નામ અને ટાઈમ વચ્ચે ઉતરવા લાયક સ્થળ હોય તો તેનું નામ અને વર્ણન બહુ વિસ્તાર સાથે આપેલું છે. એટલે યાત્રા કરવા જનાર આ પુસ્તક પાસે રાખશે તો હિંદુસ્તાનમાં ગમે ત્યાં વગર પૂછે જઈ શકશે અને ત્યાં દરેક યાત્રાના દેવસ્થાનની સારી રીતે યાત્રા કરી શકશે, એટલુંજ નહિ પણ તે તે સ્થાનોનું શાસ્ત્રાનુસાર માહાત્મ્ય જાણી શકશે તે દેવસ્થાન કોણે સ્થાપ્યું, તેનું મહાત્મ્ય, કયા કારણથી આટલું વધ્યું છે, તેની યાત્રા કરવાનું ફળ શું. વિગેરે જાણી શકશે

દરેક માણસે આ ઉપયોગી પુસ્તકને પાસે રાખવાની જરૂર છે જેની અંદરથી યાત્રાનાં સ્થળોનું વર્ણન, ત્યાં જોવા લાયક સ્થળો, જવા આવવાની સગવડ, ઉતરવાની સગવડ વિગેરે છે વળી યાત્રા કરવા લાયક સ્થળો, દેવો, તેના ઐતિહાસીક માહિતી અને તે તે દેવો સંબંધી પુરાણો અને શાસ્ત્રોમાં જેનું મહાત્મ્ય છે તે વાંચવાથી પોતાના દેવતીર્થોમાં શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થવાની. થોડી નકલોજ છે. માટે તુરત મંગાવી લેવું. કીં. રૂ ૭-૦ જાડા ગ્લેઝ કાગળ પા ૮૫૦ પાકું પુંઠું. વિશ્વનાથ વિગેરેના ચિત્રો ન રેલ્વેના નકશા છે.

હાલ તરતમાં મંગાવી લેનારને માત્ર રૂ. ૫—૦ સાજ આપશે.

જેઠાલાલ દેવશંકર દવે, તંત્રીઃ ભાગ્યોદય—ખાડીયા—અમદાવાદ.

આરોગ્ય પ્રેસ—અમદાવાદ

નૂતન વર્ષાભિનંદન.

પુ-લકાર અર્પુ નૂતન વર્ષે સ્નેહ આશીષ હૃદયની;
લ-ઇ ધ્યાન હૃદયે ધારજો, આનંદ ને ઉલ્લાસથી.—૧

ચં-દ્ર સમ મનહર પ્રકાશો, રાગ દ્વેશ દૂરે કરો;
દ-મી મન વચ કાયને, અકલંક સમ ગુણીયલ બનો.—૨

સુ-ખ સંપત્તિ આરોગ્ય તનનો, નૂતન વર્ષે સુખકરી
ર-હી સંયમી ધરી ખાદીને, આગળ વધો સૌ સત્પથી.—૩

ચં-ચલ વૃત્તિ રાખીને, ઉદ્ધાર કરજો દેશનો,
દ-ઇ છોડીને ગત કર્મને, દુઃખમાહી પાછા નવ હઠો.—૪

દો-હલો માનવ ભવ આ, કઠીન છે ફરી પામવો;
શી હવે વૃથા ગુમાવવો ? ઉદ્ધાર આત્માનો કરો—૫

ઈ ઉપદેશ આને લઇ, હૃદય કરજો નિર્મળાં,
ડ-ગવાનું છોડી દઢ કરો, તમ ધર્મના કાર્યો રૂડાં—૬

ર-હી સત્પથી મહાવીરનું, શાસન તમે દીપાવજો,
મ-હાવીર પ્રભુના મત છે, જે દયા ધર્મને પાળજો—૭

હિંસા આદિ પાપો પાંચ છે, ધકેલી જનારાં નર્કમાં;
કાં-તિ અંશ એ પાપથી, તત્પર બનો એ માર્ગમાં.—૮

રાગ દ્વેષ આદિ છોડજો, જે હોય તેજ ઉચ્ચારજો.
હે-મેન્દ્ર સાધક છ દર્શીનું, અચળ સુખને પામજો.—૯

—⁂—

દિગંબર જૈન અપનાઓ.

દિ-વસમાં ઝાંખ શું જવા, વિચારો આ તમે ભાઇ,
ગ- મનમાં જ્યાં તમે જાઓ, પ્રતાપ સાથ લે જાઇ. ૧.

અ-નાવો આપ મિત્રોને, કરો પરચાર શુભ રીતિ,
ર-માવો આપ અન્તરમાં, કરે ઉપદેશ જે રીતિ. ૨.

જૈ-નો ગુજરાતમાં વસતા, હશે હજારો સંખ્યામાં;
ન-થી હજાર કિમ લાખો, બનાવો આજ હજારો. ૩.

અ-મારી છે વિનય ઠીક આ, કરો સ્વીકાર તમ ભાઇ;
પ-ડ્યો છે ભાગ્ય દરિયામાં, ઉગારો પત્ર પરચારી. ૪.

ના-વિક બની તેને લગાવો, પાર કરી ઉપદેશ લઇ;
ઓ જ કછુ પ્રગટાવ્યા અબ, આ દેશનો પ્રાચીન કઇ. ૫.

"દા-સ"

प्रेम-पुष्पाञ्जलि ।

(ले०—जातिभूषण कविशिरोमणि प० स्वरूपचन्दजी "सरोज"—कानपुर ।)

चातुरमास वास करके प्रभु आज इटावा छोड़ चले ।
कर निराश हम दीन जनोंको सारी आशा तोड़ चले ॥
क्या अपराध हुआ दासोंमे जो हमसे मुख मोड़ चले ।
क्रम २ मे परिपूर्ण प्रेमघट उसको इकदम फोड़ चले ॥
दीनबन्धु ! भवसिंधु पड़े हम ले चलिये गुरुवर सत कूल ।
हे भगवन्त ! हृदयमें रखना कहीं न जाना हमको भूल ॥ १ ॥

दिनकर होते विदा देखकर अब सरोज मुर्झाते हैं ।
तव वियोगमें ये नर-नारी नैनन नीर बहाते हैं ॥
निरालम्ब हो जानेमे सब असहनीय दुख पाते हैं ।
तन पिंजरमे प्रान पखेरू मानो निकले जाते हैं ॥
तव सुमरणमे ही मुनि-नायक शूल होगये सुरभित फूल ।
हे हृदयेश ! हृदयमें रखना कहीं न जाना हमको भूल ॥ २ ॥

सदा सहायक अमृत प्याले बन जायँ चाहे विष घूट ।
संचित रत्न-राशिकी क्यों नहिं हो जाये इक क्षणमें लूट ॥
रहें सदा सब विमुख विश्वमें और जाय सारा जग छूट ।
स्वामी सेवकके नातेका तांता कहीं न जाये टूट ॥
तुम स्वामी हम दास रहें अरदास यही बस होय कबूल ।
हे गुरुदेव ! हृदयमें रखना कहीं न जाना हमको भूल ॥ ३ ॥

आंखोंमेंसे जाते हो पर नहीं निकलने पावोगे ।
मेरे हृद-मंदिरमें आसन इतना साथ जमावोगे ॥
दीन दुखी अपने 'सरोज' को जो न नाथ अपनावोगे ।
"दीनबन्धु" नहिं कहलावोगे अपनी हँसी करावोगे ॥
करो कृपा करुणा कर गुरुवर कट जाय ये कर्म बबूल ।
हे ऋषिराज ! हृदयमे रखना कहीं न जाना हमको भूल ॥ ४ ॥

[illegible] मुनीन्द्रसागरजी, मुनिश्री धर्मसागरजी, मुनिश्री श्रुतसागरजी [illegible]

'जैनविजय' प्रेस सूरतमें मूलचन्द किसनदास कापड़ियाने [illegible]
[illegible] चन्दावाड़ी-सूरतसे प्रकट किया

सचित्र विशेषांक।

ॐ

दिगंबर जैन

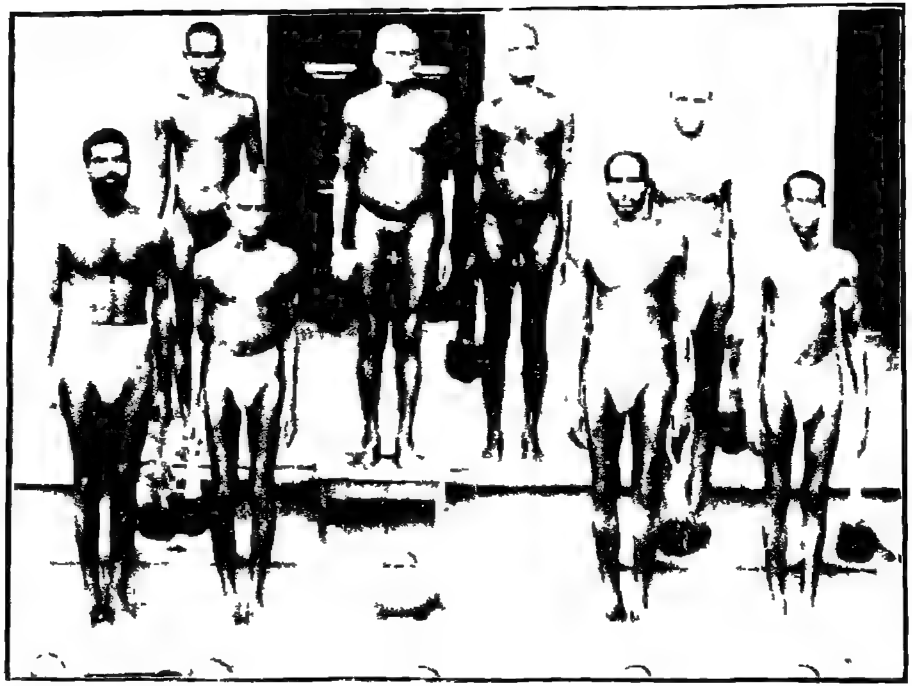
संपादक-मूलचंद किसनदास कापड़िया, सूरत।



उपहारके पोस्टेज सहित वार्षिक मूल्य २।) विशेषांक मूल्य ।।।)

विषयानुक्रमणिका।

चित्र–सूची।



श्री १०८ आचार्य श्री शान्तिसागरजी मुनिमहाराज व संघ।

(कटनीमें चातुर्मास स्थित का नवीन चित्र)

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

दिगम्बर जैन

नाना कलाभिर्विविधैश्च तत्त्वैः सत्योपदेशैस्सुगवेषणाभिः ।
संबोधयत्पत्रमिदं प्रवर्त्तताम, दैगम्बरं जैन-समाज-मात्रम ॥

वर्ष २२वां | वीर सम्वत् २४५५, कार्तिक-मगसिर विक्रम सम्वत् १९८५. | अङ्क १-२.

महावीरका मोक्षगमन ।

दी–न दुखियोंके थे आधार ।
पा र करनेको पारावार ॥
व–सुन्धरा पर था अत्याचार ।
ली–ना तभी वीर अवतार ॥
आ–र्त ध्वनि सुन जीवोंकी वीर ।
ई–की सुखद चलाई समीर ॥
न–हीं फिर रही तनिक भी पीर ।
व–ही थी दया–दवा अकसीर ॥
सं–सार त्रयके थे वीराधार ।
व–ही थे जीवोंके आधार ॥
त–भी तो छाया सुयश अपार ।
ला–ये थे जगमें नवयुग सार ॥
ई–श थे सच्चे जगदाधार ।
आ–त्म हित सुपथ दिखावन हार ॥
द–लन कर शत्रु वरी शिवनार ।
र–ही तब यही अमावस्यासार ।
की–जिये स्वागत उसका आज ।
जि–गरमें जगा नया उत्साह ॥
ए–क दिल होकर करो सुधार ।
जी–र्णि करलो सारी तकरार ॥

ब्र० प्रेमसागर, रैपुरा निवासी।

बलिदान ।

(१)

बात लोक प्रसिद्ध है अरु जानते भी हैं सभी ।
भीरुता अरु स्वार्थसे उन्नति न होसकी कभी ॥
उत्थानमें भारी जरूरत है महा 'बलिदान'की ।
मान मर्यादा तभी रहती सुधर्म सु-मानकी ॥

(२)

धर्मपर 'बलिदान' हो नहि! कोई मर सका कभी ।
कीर्ति है उसकी अमर यह जानता है जग सभी ॥
धर्म गौरवके लिये मरना नहीं जो जानता ।
उस भीरु नरको कीजिये पशुसे रचित समानता

(३)

धर्म हित निज प्राण देदेना अहो! क्या बात है ।
कीर्ति जैनोंकी इसीसे विश्वमें विख्यात है ॥
धन्य है 'निकलंक' वे जो वीर ऐसे हो गये ।
देखते ही देखते जो धर्म पर "बलि" होगये ॥

(४)

साहसी अरु स्वार्थत्यागी क्यों न जगको मान्य हो ।
वीर हो निकलङ्क सम जगका न क्यों कल्याण हो ॥
पुत्र ऐसे ही यद्यपि निज गर्भसे उत्पन्न हों ।
क्यों न फिर हम त्याग अरु वीरत्वसे सम्पन्न हो ॥

(५)

स्वार्थ तज उनसे सभी निःस्वार्थ शिक्षा लीजिये
और दृढ़तापूर्वक अनुकरण उनका कीजिये ॥
भीरुताका लेश भी आसन न मनमें दीजिये ।
धर्म गौरवके लिये बलिदान होना सीखिये ॥

× × × ×

—कल्याणकुमार जैन शशि–रामपुर स्टेट ।

भगवान महावीर।

(लेखक:-पं० गुणभद्रजी [illegible]-कलोल)

आओ आओ त्रिशलानन्दन, हम सब शीश झुकाते हैं।
विना तुम्हारे निशिदिन स्वामी, हम कितना दुख पाते हैं ॥
छाया सान्द्र तिमिर भूतलमें, ज्ञान भानु क्यों अस्त हुआ।
सुख वैभव सब दूर हुआ है, विपदाओंका खुदा कुआ ॥ १ ॥
व्यापक विश्व धर्मका तेरा, होता जाता नाश यहां।
असली तत्त्व मेटते जाते, है कुरीतिका वास महा ॥
पहिना उसे रूढ़िकी माला, हम अब बहुत सजाते हैं।
धर्म धर्म डूबा कहते हैं, स्वयं डुबाते जाते हैं ॥ २ ॥
परम अहिंसा तत्त्व प्रसारक, कुछ क्षणको तो आजाओ।
हाय दुर्दशा निज सन्ततिकी, आंखोंसे अब लख जाओ ॥
तू है अद्भुत सुभट प्रतापी, काम सुभट तूने मारा।
त्याग सकल आडम्बर जगका, उपकारी व्रत ही धारा ॥ ३ ॥
हाय धर्मके नाम यहां पर, प्राणी मारे जाते थे।
पकड़ पकड़ कर लाखों योंही, मख (यज्ञ) में डाले जाते थे ॥
विना मौतके वे मरते थे, उन्हें न कोई सहारा था।
उनके रक्षण हेतु विश्वमें, प्रभुवर जन्म तुम्हारा था ॥ ४ ॥
होते जगमें आप न स्वामिन ? होती जाने कौन दशा।
बहुत संभाल दिया था तुमने, तो भी फिर है वही दशा ॥
तेरे उपकारोंका प्रभुवर, जब विचार आजाता है।
उपकारोंके ऋणमें मेरा, नाथ हृदय दब जाता है ॥ ५ ॥
बने हुए थे शत्रु तुम्हारे, शरण ईश वे भी आये।
निज अपराध क्षमा करवाकर, मस्तक चरणोंमें लाये ॥
जो तेरी उपदेश वृक्षकी, शीतल छायामें आया।
मिटा [illegible] आधार हृदय [illegible] सुख तुमने पाया ॥ ६ ॥
जा [illegible] तुम, [illegible] हृदयमें रखते थे
दया निधे सबके प्रति मनमें, दया भाव तुम रखते थे ॥

सरल भावसे सब जीवोंको, दिखलाया सन्मार्ग सदा।
निज पथमें निश्चल सुमेरुवत, डिगे नहीं प्रभु आप कदा ॥ ७ ॥
आज हृदयकी प्रबल वेदना, सुनने वाला कौन कहो।
आते क्यों नहीं वीर प्रभो तुम, दर्शन देने आज अहो ॥
प्रभो तुम्हारी राह देखते, काल हमारा जाता है।
विना तुम्हारे दर्शनसे यह, हृदय आज अकुलाता है ॥ ८ ॥
हम लोगोंकी सुधि लेनेको, जो न प्रभु तुम आओगे।
तो कुछ दिन उपरान्त यहांपर, सन्तति नहीं लख पाओगे ॥
द्वेषानलसे जलकर स्वामी, निशि दिन अब हम मरते हैं।
न्याय कीजिये आप पदोंमें जीवन हम सब धरते हैं ॥ ९ ॥
हे गुणखान करो करुणा, इस भांत हमें मत आप बिसारो।
हे करुणानिधि कौन यहां, तुमको तजके अब नाथ हमारो ॥
पार करो दुखसागरमें, प्रभु आज गहा यह पांव तुम्हारो।
है जगमें सब जीवनका, निरनाथका नाथ गरीब सहारो ॥ १० ॥

हृदयकी पीर हरो भगवान।

भूला, भटका, दीन पथिक मैं, फंसा विपदमें आन ॥ टेक ॥
सीधा, सुगम, निकट, निःकंटक, निर्भय मारग छोर।
ऐसी विकट भयानक अटवी, फंसा न पावे ओर ॥ भूला० ॥ १ ॥
फूल सुवास, मधुर, प्रिय पावन, तिनसे मुखको फेर।
चला कंटकाकीर्ण झाडकी ओर लिया तिन घेर ॥ भूला० ॥ २ ॥
निर्मल शीतल मधुर सालल तज, फंसा कीचमें आन।
प्रेमामृत पी "अमर" भयो नहीं, कियो मोह विष पान ॥ भूला० ॥ ३ ॥
आत्महितैषी हित मित भाषी, संत समागम त्याग।
छली, कृतघ्नी, अघी, स्वारथी, जनमें कीना राग ॥ भूला० ॥ ४ ॥
सत्पथ शा[illegible] सुखा[illegible] शशिका तजकर [illegible] प्रकाश।
मिथ्यामतके घो[illegible] बंधे, भाग [illegible] हू [illegible] ॥ भूला० ॥ ५ ॥
ऐसे दुखमग[illegible] तुम बिन, [illegible] न ले [illegible]।
हरो तात सन्ताप हृदयका, गहो "ज्यो[illegible]" [illegible] ॥ भूला० ॥ ६ ॥

—ज्योतिप्रसाद जैन कवि, देवबन्द

प्रार्थना।

जातिकी रक्षा करो भगवान ॥ टेक ॥
जैन जातिकी नैया डूबी, पार होनकी नैहा खूबी।
आकर होउ सहाय नाथ अब, जासें बचे प्रिय प्रान ॥
जातिकी० ॥ १ ॥
उंगली पर गणना रह गई है, फिर भी फिकर नहीं कोई है।
सोती हुई इस जैन जातिको, शीघ्र दीजिये ज्ञान ॥
जातिकी० ॥ २ ॥
दिगंबरी श्वेताबर भाई, तीर्थ हेतु वे करें लड़ाई।
आपसमें ना करें मिताई, कैसी गति भई आन ॥
जातिकी० ॥ ३ ॥
दिगंबरीके ही फिरकोंमें, बहुत पार्टी हो रही उनमें।
बाबू पंडित बीच कलहमें, अस्त हो रहा भान ॥
जातिकी० ॥ ४ ॥
चक्षु खोलकर जो देखोगे, जाति दशापर फिर रोओगे।
घटते जैनी बाइस प्रति दिन, कैसे हो उत्थान ॥
जातिकी० ॥ ५ ॥
प्रेम भावसे हृदय मिलाओ, द्वेष भावको दूर भगावो।
आपसमें हिल मिल सब गावें, वीर प्रभुका गान ॥
जातिकी० ॥ ६ ॥
'देवकरन'की अरज सुनीजे, नहीं विलंब इसमें प्रभु कीजे।
जैन जातिकी जरजर नौका, पार करो भगवान ॥
जातिकी० ॥ ७ ॥

छैकोड़ीलाल जैन (देवकरन) मोहपानी।

विद्यार्थी-जीवन।

(लेखकः—परमानंद न्यायतीर्थ—सूरत।)

(१)

वीर हुये नरवीर जगतमें किन२ कर्तव्योंको साज।
पतित पुनीत बने वे कैसे, क्यों कहलाये त्रिभुवनराज ॥
कौन अभी हम करते क्या हैं, क्या कर्तव्य हमारे आज।
कौन लक्ष्य है लक्षित करना, क्या है उसका हेतु समाज ॥

(२)

रात दिवसके पूर्ण समयमें, ज्यों सुन्दर है प्रातःकाल।
शारीरिक अंगोपांगोंमें, ज्यों प्रधान है मुख अरु भाल ॥
गुणसमूहमें ज्यों विद्वज्जन, विनय प्रधान बताया है।
विद्यार्थी जीवनको त्यों ही उत्तम जीवन गाया है ॥

(३)

जो कुछ तुमको जीवन भरमें, करने अच्छे अच्छे काम।
उन सबके साधन मिलते हैं, करलो आज उन्हें इकठाम ॥
साहस-विद्या-विनय-सुजनता, अरु शारीरिक बलसाज।
प्रेम-सभ्यता आदि युक्त हो करना होगा गृहका राज ॥

(४)

गुरुभक्ति-सहपाठि शिष्टता अरु सहवासी व्यवहार।
बीजभूमि शारीरिक पुष्टि सबसे पहिले है दरकार ॥
आत्मतेजका पहिला साधन, ब्रह्मचर्य है बतलाया।
जगमें यही एक लोकोक्ति, 'पहिले सुःख निरोगी काया' ॥

(५)

नाना भांति क्लेश पाकर भी पा लेते जो अनुभव-ज्ञान।
नाना भांति योग सम्पतिका, पालेते हैं वे वरदान ॥
पाते आदर जगह जगहमें, मिले स्वयं जगकी माया।
इस जीवनसे लब्ध समस्या, 'दूजे सुख हो घरमें माया ॥'

(६)

ज्ञानी नम्र प्राण सुत अपना, मात-पिता अरु अधिकारी।
सुखी होत कर्तव्यशील सुत, लख उद्योगी विद्याधारी ॥
फल फूलोंसे सुरभि विपन ज्यों, त्यों यशमय करते घरबारी।
ऐसे पुत्र रत्न लख कहते, 'तीजे सुख पुत्र अधिकारी ॥'

(७)

गृहिणीसे गृह चलता कैसे, कैसे हो वह शीलवती।
गृहको स्वर्ग बनावे कैसे, कैसे समझे प्राणपती ॥
ज्ञान करें हम इन बातोंका, कौन धर्म जग नरनारी।
इसी ज्ञानसे साधे समस्या, 'चौथे सुःख सुशीला नारी ॥'

(८)

जितने उच्च लक्ष्यको लेकर नींव बनाई जावेगी।
उतने ही आदर्श रूपसे, तैयारी वह पावेगी ॥
दुर्गम दुर्ग बने गृह जीवन, रहे अभेद्य जिसका परकोट।
चेतन राजा शान्ति लाभ ले, पहुंचे जिससे लेश न चोट ॥

(९)

विद्यार्थी जीवनसे होती, गृह-सुराज्यकी तैयारी।
सावधान हो! जीवसमरको बनो अन्तमें यशधारी ॥
अनुभव अरु शारीरिक बल ही दानवीर दाता सुखकंद।
वांछित दाता कल्पवृक्ष ये देता सबको 'परमानन्द ॥'

नव वर्ष स्वागत।

आ-ज नव साल सुहावनि आई ।
ज-गतमें नवयुग लाई ॥ टेक ॥
न-ही पङ्क पृथ्वीपर दीषत, नभ नहीं मेह दिखाई ।
व-रवि किरण नहीं है तीक्षण, दूर भई गरमाई ॥१॥
सा-फ भयो आकाश देखलो, निर्मल सोम सुहाई ।
ह-गत सभी प्रिय असन वसन अरु अग्नि तपन शुभ-भाई ॥
सु-नो सुनो तुम कान लगाकर, प्यारे जैनी भाई ।
हा-र्दिक स्वागत करो इसीसे, होगी आत्म-भलाई ॥३॥
व-ह, यह, हम, तुम करना छोडो, छोडो सर्व लडाई ।
नि-श्चय प्रकट करो आभ्यन्तर, मिललो भाई भाई ॥४॥
आ-ज कौमकी नाव पडी मझधार न कोई सहाई ।
ई-र्ष तजो ' प्रेम" प्रकटाओ, यह स्वागत सुखदाई ॥५॥

ब्र० प्रेमसागर-रोठी ।

જૈનોની ઉન્નતિ કેમ થાય ?

જ્યારે વિરામે કટુતા કલેશ, પામે પ્રંદશે વળી રાગ દ્વેષ;
સુસંપ થાય કૃપણત્વ જાય, જૈનોતણી ઉન્નતિ એમ થાય.
શું થાય સુભાવણુને વદેથી ' જાયે નહિ જન જડતા રૂદેથી,
સેવાથકી જો હદે ધરાય. જૈનોતણી ઉન્નતિ એમ થાય
મદાષ્ટથી અંધ બને બધાય. જુવે નહિરે ઉરમા જરાય;
સંપી સહુ સ્નેહ વડે વસાય, જૈનોતણી ઉન્નતિ એમ થાય.
સાધુ મળીને કરશે સુધારા, આચાર વિચાર વિષે વધારા;
કદાગ્રહો સાધુ વિષેથી જાય, જૈનોતણી ઉન્નતિ એમ થાય;
શ્રીમંત લોકો બનશે ઉદાર, કંજુસતાને કરશે ધિક્કાર;
પ્રેમે સુપંથે ધન વાવરાય, જૈનોતણી ઉન્નતિ એમ થાય,
અર્હતણો પાઠ જશે ભુલાઈ, ઈષ્ટ જશે ને વધશે ભલાઈ,
પવિત્ર થાય મનવાણી કાય, જૈનોતણી ઉન્નતિ એમ થાય,
નીતિતણા પંથ વિષે ચલાશે, અનીતિના મારગને તજાશે;
હાનિકરા જે કુરિવાજ જાય, જૈનોતણી ઉન્નતિ એમ થાય,
શિક્ષા સુણો જૈન બંધુ અમારા, નકી સુપંથે કરજો સુધારા;
વદે ભુલાખી પ્રભુનો દાસ, જૈનોતણી ઉન્નતિ એમ થાય;

માસ્તર-ભુલાખીદાસ રવચંદ શાહ-નરોડા;

કુસંપમાં સુતેલા જૈનોને !

યોજક:—ત્રીભુવનદાસ ર. માલવી-કરમાલા.

(ગઝલ)

(૧)

અરે ! ઓ ? જૈન બંધુઓ ?, મિથ્યા ઝગડા નહિ સારા,
અરે ! ઝઘડા અને રઘડા, વિષે વર્ષો વિત્યા સઘળાં;
કુસંપીના બની સાથી, અરે ! હા ! શૌર્ય ગુમાવ્યું,
છતા ઓ ? જૈન બંધુઓ !, દયા દિલે જરા લાવો.

(૨)

હર્ષોમા ગુમાવ્યું સૌ, અરે ધૃતરાષ્ટ્રના સુતે,
ડુબાવ્યા પાંડુ પુત્રોને, અને રણવાસ રોળાયા;
અરે ! હા ? સત્યને માટે, શુરાના શિર છેદાયા,
ગયા કંઇ વિરલા એવા, તનુજ તેના છુપાયા છે.

(૩)

ગુમાવો ન્યાય મન્દિરે, હજારો રૂપિયા ભાઇ,
છતા ના શ્રેય કંઇ થાયે, ગઈ બરબાદ જીંદગાની;
અરે ! હા ? જૈન બંધુના, ગયા લક્ષો રૂપૈયા કંઇ,
અરે ? સરકારની ખાલી, તીજોરી સૌ ભરાઇ ગઇ.

(૪)

લઢાઇમા બની મશગુલ, નકામા શિર ફોડો છો,
તમારા બંધુઓ માટે, દયા દિલેજ દર્શાવો;
અરે ! શ્વેતામ્બરી જો હો ! અગર દિગમ્બરી યા હો ?
ભલે સ્થાનકવાસી હો ? હૃદયમા રહેમ વર્ષાવો.

(૫)

તમારો પંથ જુદો છે, અમારો ધર્મ ન્યારો છે,
અરે ! કહેનાર મૂર્ખાઓ, શિતળ કાંઇ ગુજારો છો,
ભલે કો શ્વેત કે ભગવા, અગર વસ્ત્રો પીળા પહેરે;
બધા મહાવીરના કદમે, ન્યાયાશન અર્પનાર છે.

(૬)

દુ:ખી ભ્રાતા તણા સારૂ, અનાથાશ્રમ નિકાલોને,
વિદ્યાલય બાળના સારૂ, ઉઘાડો પાઠશાળાઓ;
અશક્તાશ્રમ વળી કાઢી, અપંગોને અહા ? પાળો,
શ્રાવિકાશ્રમ ખોલીને, રીબાતી શ્રાવિકા પાળો.

(७)

અજ્ઞાન બંધુઓ માટે, ઉઘાડો રાત્રિશાળાઓ,
કળા-કૌશલ્ય ને હુન્નર, તણી શાળા સ્થપાવોને,
બિચારાં બાળકો તેથી, તમોને દે ઘણી આશિષ,
અનાથોની દુવા લઇને, સ્વર્ગમાં હા ! સીધાવોને

(૮)

શુભાશિષ દ્વાર વિભુના, લખાશે લેખમાં તારી,
ખલકમાં કીર્તિ ફેલાઈ, અહા ! આનંદ રેલાશે,
હૃદયની ઉર્મિઓ મારી, વિભુ ક્યારે સ્ફુરે આવી,
કહે 'ત્રીભુવન' વિભૂ વ્હાલા, સર્વમાં શાંતિ દે સારી

वृथा हैं जीवनी गाळी.

(યોજક—શાહ મોતીલાલ જી માલવી (બાકરોલ)

અહિં આ વિશ્વમાં આવી, વૃથા હે જીંદગી ગાળી,
પ્રભુને ઓળખ્યા ના ત્યે, વૃથા હેં જીંદગી ગાળી ૧
દુઃખીનું દર્દ ના જાણ્યું, અંકું સુખ તો માણ્યું,
ગરીબ પર લક્ષ ના આપ્યું, વૃથા હે જીંદગી ગાળી. ૨
બાળકપણ ખેલમાં ખોયું, જુવાની નિંદ ભર સુતો,
વિચારી ના જરા જોયું, વૃથા હે જીંદગી ગાળી ૩
બુઢાપણ ખેદમાં આવ્યું, હૃદયનું પાપ નહિ બાળ્યું;
નકામું દ્રવ્યને પાળ્યું, વૃથા હે જીંદગી ગાળી ૪
ત્રિયાના પ્રેમમાં નાચી, રહ્યો ના ભક્તિમાં રાચી,
પ્રભુની મ્હેર ના યાચી, વૃથા હે જીંદગી ગાળી ૫
અધર્મે હા ! વિપથ લીધો, વિલોક્યો રાહ ના સીધો;
પ્રભુ આજ્ઞા નહિ માની, વૃથા હેં જીંદગી ગાળી ૬
અભિમાને બની અંધો, કર્યો અતિ પાપનો ધંધો;
પ્રભુ ભજને થયો કાયર, વૃથા હે જીંદગી ગાળી ૭
નીતિનાં બંધનો તોડી, મતિ વ્યભિચારમાં જોડી,
કર્યાં સઘળે કજીત ખોડી, વૃથા હેં જીંદગી ગાળી ૮
રહ્યો મોહે સદા રાજી, બગાડીને બધી બાજી,
અરે ઓ ! નીચ નર પાપી, વૃથા હે જીંદગી ગાળી. ૯
રીબાવી દીનને મ્હાલ્યો, વૃથા હે કાળને ગાળ્યો,
દીધેલો કોલ ના પાળ્યો, વૃથા હે જીંદગી ગાળી ૧૦
ન જોયાં જ્ઞાનના પોથા, ગણ્યા સહુ શાસ્ત્રને થોથા,
હવે તું ખાય છે ગોથા, વૃથા હે જીંદગી ગાળી ૧૧
કહે છે ત્રીકમ સુત મોતી, પ્રભુના પ્રેમની પ્યાલી,
પીધી ના હાથમાં આવી, વૃથા હેં જીંદગી ગાળી. ૧૨

नूतन वर्षनी भावना.

જાગો હવે સૌ જૈનોરે, દિગંબર જૈન સમાજ.—ટેક
નિદ્રા લીધી બહુ ભારી, કંઇ કુંભકર્ણથી ગાઢી,
બહુ કરી ધર્મની હાનિરે, દિગંબર જૈન સમાજ
કર્યાં કામ બહુએ ભારી, પણ ધર્મ મૂક્યો વિસારી,
જેથી થઇ બદનામીરે, દિગંબર જૈન સમાજ.
આ સાલ હવે બદલાયે નવું વર્ષ શરૂ પણ થાયે,
તે સાથ તમો બદલાજો, દિગંબર જૈન સમાજ
જ્યાં ત્યાં વિખવાદો થાયે, એ પંથ બહુ અથડાયે
કંઇ દ્વેષ કમી નવ થાયેરે, દિગંબર જૈન સમાજ.
જ્યાં તીર્થ સ્થાન પૂજાના, ત્યાં થયા કુંડ હોમોના,
ત્યાં હોમાયા કંઇ લોહીરે, દિગંબર જૈન સમાજ
કંઇ રાજ્ય જુલ્મ ગુજારે, દર્શનની બંધી થાયે,
જેથી અંતરાય બહુ થાયેરે, દિગંબર જૈન સમાજ
સહુ સજ્જ થઈ જાવોને, ધર્મોના ક્ષેત્રો માટે,
અર્પો તન મન ધન સઘળુંરે, દિગંબર જૈન સમાજ.
આ નવલ વર્ષમાં માગો, સહુ શાંતિતણાં વરદાનો,
ધર્મ વૃદ્ધિ પણ પામોરે, દિગંબર જૈન સમાજ.
મહાવીર તણાં સંતાનો, કંઇ દાઝ ધર્મની આણો,
"મનુ" અરજ કરે સૌ જનનરે, દિગંબર જૈન સમાજ

મનુભાઈ બાલુભાઈ બી. એ.—સુરત.

नूतन वर्षे विभु वंदन.

ગઝલ—કવ્વાલી.

નૂતન આ વર્ષને વ્હાણે, સ્વિકારો શ્રી વિભૂ વંદન
દિયો ધન ધાન્ય ને કીર્તિ, સહુને શ્રી અભિવંદન.
દયાળુ રહેમ વર્ષાવી, દયા અમ ઉરમાં સ્થાપો,
અમારી વાન્છના છે કે, અમારી ક્રુરતા કાપો
અપંગા અંધ ને દુ:ખીયા, અનાથો પર દયા લાવી,
નિવારણ તેહનું કરજે, ક્ષમા તપ દાન વર્ષાવી.
પ્રેરો સુભાવ અમ ઉરમાં, કુભાવો જગથી કાપી,
નવલ આ વર્ષના ટાણે, નિરંતર હર્ષ રહો વ્યાપી.
અમારી યાચના વ્હાલા, ગ્રહી લેશો વિભુ વંદન,
સ્થળે સ્થળ સ્થાપજો પ્યારા, સકળ આ ભૂમિપર આનંદ.

ત્રીભુવન રણછોડદાસ માલવી;
કંપાલા—યુગેન્ડા(બ્રિ. ઈ. આફ્રિકા)

सम्पादकीय वक्तव्य ।

नूतन वर्ष ।

देखते २ इक्कीस वर्ष व्यतीत होगये और हर्ष है कि 'दिगंबर जैन' आज बावीसवें वर्षमें प्रवेश करता है। गत २१ वर्षोंमें 'दिगम्बर जैन' ने अपने पाठकोंको लेख, नये २ समाचार व बहुतसे उपहार ग्रन्थों द्वारा जो २ लाभ पहुचाया है उससे पाठक अपरिचित नहीं हैं। नवीन वीर संवतके प्रारम्भसे ही 'दि० जैन' का नवीन २२वां वर्ष भी प्रारम्भ होता है यह भी एक अपूर्व आनन्दका विषय है। इस वर्षमें भी "दिगम्बर जैन" अपने ग्राहकोंकी बराबर सेवा बजाता रहेगा ही इसलिये इसके पाठकोंका भी कर्तव्य है कि वे भी इसकी ग्राहक संख्या बढ़ानेका पूर्ण प्रयत्न करें।

* * *

गत वर्ष ।

गत वर्षमें सारे दि० जैन समाजमें एक अभूतपूर्व कार्य हुआ था वह वर्षोंतक भुलाया न जासकेगा व जैन इतिहासमें अमर रहेगा, वह कार्य है—सम्मेदशिखरजीमें मुनि संघका आगमन व महामेला कि जिसमें करीब पौनलाख आदमी उपस्थित हुये थे व बड़ी भारी धर्मप्रभावना हुई थी। एक समय ऐसा भी आगया था कि दि० जैन मुनिके शायद ही दर्शन होते थे तथा उनको ब्रिटिश राज्य या देशी राज्यमें बिना रोकटोक विचरने नहीं देते थे। परन्तु आज आचार्य १०८ श्री शांतिसागरजी मुनि महाराज आदिके यत्रतत्र विहारसे यह रोकटोक निर्मूल होगई है व मुसलमानी (नीजाम) राज्य तकमें आप बड़े स्वागतपूर्वक विहार कर सके थे। व शिखरजी तक मुनिसंघको ले आनेवाले संघभक्त-शिरोमणि श्री० सेठ पूनमचन्द घासीलालजीका नाम भी हम नहीं भूल सकते क्योंकि आपने करीब२ वर्षभर व्यापार धंधा छोड़कर मुनिसंघकी सेवामें ही लगे रहे थे व तन, मन, धन लगाकर अपूर्व धर्म सेवा की है। ऐसे वीर नर विरले ही होंगे।

दूसरा हर्ष श्री शत्रुंजयकी यात्रा जो दो वर्षसे बंद थी खुली होनेका है। यह अपने दृढ़ त्यागका ही परिणाम है। यह तो हुई हर्षकी बात अब शोककी बात सुनिये। गत वर्षमें दिगम्बर जैन समाजमेंसे एक ऐसा नररत्न उठ गया है जिसकी पूर्ति वर्षोंमें भी होना असम्भव है। वह है श्री० आयुर्वेदमार्तंड ज्योतिषरत्न पं० जैनी जियालालजी चौधरी राजवैद्य फरुखनगरका स्वर्गवास। आप सारे जैनसमाजमें जैन ज्योतिष, जैन वैद्यक, जैन मंत्र तंत्र आदिमें अपूर्व नाम पागये हैं। आपका 'जैन कल्पतरु पंचांग' तो अजैन समाजमें भी प्रख्यात है। वास्तवमें गत वर्षमें आपके वियोगसे जैन समाजको एक जैन ज्योतिषी व जैन मंत्र तंत्र शास्त्रोंकी बड़ी भारी कमी हुई है जो भुलाई नहीं जासकती।

*

विशेषांक ।

सारे जैन समाजमें सबसे प्रथम सचित्र विशेषांक निकालनेका प्रयास इस दिगम्बर जैनने १६-१७ वर्ष हुए किया था जिसको अपूर्व आदर मिला था व हर्ष है कि

यह अभीतक बराबर ऐसे अंक निकाल रहा है। इसके २२वें वर्षका यह सचित्र विशेषांक है जिसमें ७ चित्र व अनेक लेखकोंके व कवियोंके हिन्दी, गुजराती, संस्कृत व अंग्रेजी ऐसी ४ भाषाके करीब ४० लेख व कविताओंका संग्रह इसमें प्रकट होसका है। आशा है कि पाठक इसको अवश्य अपनावेंगे व समय निकालकर आद्यंत पढ़कर लाभ उठाकर हमारे परिश्रमको सफल करेंगे। जिन२ लेखकोंने अपना अमूल्य समय बचाकर इसके लिये लेखादि भेजनेका कष्ट उठाया है उनके हम अत्यन्त आभारी हैं। करीब ५० संख्या १२५ करनेपर भी आये हुये कई लेख व कविताएं हम नहीं प्रकट कर सके हैं उनको आगामी अंकोंमें अवकाशानुसार अवश्य प्रकट करेंगे।

***

जैन तिथिदर्पण। नूतन वीर सं० २४५५का 'जैन तिथिदर्पण' भी गत १८ वर्षोंके अनुसार सचित्र प्रकट कर चुके हैं व आश्विनके अंकके साथ सब पाठकोंको भेज चुके हैं उसको पाठकोंने सम्हाल कर गत्तेपर लगाकर संग्रहित रखा ही होगा। इसवार तो शिखरजीमें मुनिसंघके विहारके कारण आचार्य १०८ श्री शांतिसागरजीका ही नवीन चित्र फिर प्रगट किया है। [इस वर्षके नवीन ग्राहकोंको यह तिथिदर्पण इस विशेषांकके साथ भेजा गया है उसे वे सम्हाल कर संग्रहित रखें।]

***

उपहारग्रन्थ। दिगम्बर जैनके इस २१वें वर्षका उपहारग्रंथ श्री भगवान पार्श्वनाथ उत्तरार्द्ध करीब २५० पृष्ठोंमें छप चुका है व शीघ्र ही तैयार होकर आगामी मासमें सब ग्राहकोंको वार्षिक मूल्य २।)की वी० पी० से भेजा जायगा जिसको प्रत्येक पाठक अवश्य२ स्वीकार करलें। किसीको नये वर्षमें ग्राहक रहना अस्वीकार हो तो वे इस विशेषांकको बांचकर भी वापिस करें व एक कार्ड द्वारा वैसी सूचना अवश्य२ लिख भेजें ताकी वी० पी० खर्च न मारा जाय। इस वर्षका उपहार ग्रन्थ तो गत वर्षसे डेढा हो गया है जिससे बहुत खर्च लग गया है। आशा है कि ग्राहक संख्या बढ जानेसे इसकी पूर्ति हो जावेगी। २=) वार्षिक मूल्यमें तो विशेषांकके अतिरिक्त यह उपहार ग्रन्थ करीब १।।) के मूल्यका मिलनेवाला है उसको जानकर हमारे पाठक अतीव हर्षित होंगे और दि० जैनको विशेष अपनावेंगे ऐसी पूर्ण आशा है।

***

हत्याकांडका स्मरण। जब२ हमें श्री केशरियाजीके पवित्र मंदिरमें श्वेता० जैनोंकी प्रेरणासे उदयपुर स्टेटके राज्यकर्मचारी द्वारा दिगम्बर जैनोंपर किये हुये कपिण हत्याकांडकी याद आती है तब आखमें अश्रु आये विना नहीं रहते। कैसी अन्धाधुन्धी है कि हत्याकांड जांच कमेटी नियुक्त हुए १।। वर्ष होचुका तौभी उसकी कुछ रिपोर्ट तक प्रकट नहीं हुई है तथा हमारी ओरसे नियुक्त हत्याकांड निवारक कमेटी क्या जाने

कहां सोरही है कि यह भी १ वर्ष हुवे क्या कर रही है उसका कुछ पता ही नहीं है। हमारी तीर्थ क्षेत्र कमेटीने यह कार्य अजमेरके श्री० रा० ब० सेठ टीकमचन्दजी सोनी डॉ० गुलाबचंदजी पाटनी आदिकी कमेटीको इसलिये सौंपा था कि वे तनतोड़ परिश्रम करके इसका जहां तक हो शीघ्र न्याय प्राप्त करेंगे। परन्तु अतीव दुःख है कि यह अभी चूँतक नहीं करती। क्या हम आशा करें कि इसके मंत्री डॉ० गुलाबचंदजी इस विषयमें आज तककी अपनी रिपोर्ट प्रकट करेंगे? उदयपुर महाराणाका भी क्या फर्ज नहीं है कि दि० जैनोंपर होते हुए ऐसे अत्याचारपर उचित न्याय अतीव शीघ्र प्रकट करें? आशा है अब तो आप भी अपनी जांच कमेटीको सचेत करेंगे।

***

स्वर्गीय लोकमान्य तिलक महाराजकी कोटिमें बिठा सके ऐसे एक प्रसिद्ध

पंजाब-सिंहका वियोग।

निडर देशभक्त लाला लाजपतरायजीका गत ता० १६ दिसम्बरको ६३ वर्षकी आयुमें लाहौरमें अकस्मात् वियोग होगया। लाहौरमें सायमन कमीशन आनेके समय उसके बहिष्कार जलूसके आगे आप थे तब पुलिसने आपपर लाठियें चलाई थीं इससे ही १८ दिन बाद आपका अकस्मात् देहावसान हुआ ऐसा माना जाता है। कुछ भी हो आप जैसे प्रतिभाशाली देशनेता आज इस संसारमें नहीं हैं। आप जन्मसे जैन (स्था०) थे परन्तु पीछे आर्यसमाजी होगये थे व कितनेक वर्षोंसे आर्यसमाजको भी छोड़ा था। आपकी देशसेवा अपूर्व थी व विद्याप्रेम अपार था। आपसे ब्रिटिश सरकार इतनी डरती थी कि आपको विना पैरवीके एक दोवार कैद कर दिये थे तथा देशपार भी किये थे तब आपने दो वर्ष तक अमेरिकामें रहकर भारतकी अपूर्व सेवा की थी। आपका साहित्य सेवा कम न थी। मिस मेयो (अमेरिका) की मदर इंडिया पुस्तकका मुंह तोड़ जवाब आपने अनहेपी इंडिया (दुःखी भारत) नामक पुस्तक लिखकर दिया है जिसके लिये भारत आपका सदा कृतज्ञ रहेगा। यदि आप विशेष जीवित रहते तो आपसे भारतका और भी उपकार होता। आपके स्मरणमें पांच लाख रुपयेका चंदा किया जारहा है। आपकी आत्माको शांतिलाभ हो, यही हमारी भावना है।

***

श्रीजम्बूस्वामी (चौरासी, मथुरा) के मेलेपर

मनमानी महासभा।

कार्तिक वदीमें मनमानी महासभाका वार्षिक नाटक बहुत जल्दी२ होगया। अन्ततक कोई सभापति भी न मिले तब एक दिन आगे बढ़ाया और जैसे तैसे पं० श्रीलालजी पाटनी अलीगढ़को राजी करके सभापति बनाये व मामूली १३ प्रस्ताव पास किये थे। इसका बहिष्कारका हथियार तो बेकाम होगया है इससे अबकी बार तो बहिष्कारका नाम भी सुनाई नहीं दिया। वास्तवमें जहांतक महासभा सर्वांगी नहीं होगी अर्थात् सभी दि० जैनोंको महासभामें प्रवेश करनेका मार्ग खुला न करेगी वहांतक यह मनमानी, एकांगी व पंडितोंकी कठपुतली ही है और इसका प्रभाव नामशेष ही रह गया है।

चित्र-परिचय।

इस विशेषांकमें दिये हुए चित्रोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(१) स्वर्गीय आयुर्वेदमार्तंड ज्योतिषरत्न पं० जीयालालजी जैनी चौधरी राजवैद्य, फर्रुखनगर—आपका जन्म ता० १०-२-१८५२ ई० मिती माघ शु० २ सं० १९०९ को फर्रुखनगरमें एक प्रतिष्ठित घरानेमें चौधरी सुमेरचन्द्र जी अग्रवाल जैनके घरमें हुआ था। उस समय यह नगर एक मुसलमान नवाबके आधीन था और आपके पिता



श्रीमान् चौधरी माणकचंदजी विद्यमान थे जो नवाबके दरबारसे चौधरातके पदसे विभूषित व सर्वमान्य थे। जब सन् १८५७के गदरमें नवाब पकड़ा गया और फर्रुखनगर अंग्रेजी जिला गुरगांवमें शामिल किया गया तो अंग्रेजी राज्यसे भी चौधरात आपके घरानेमें रही जो अबतक है। सन् १८६९में आपके पिताका स्वर्गवास होगया तब आप विद्याध्ययनमें लग रहे थे। आपने १६ वर्षकी उमर तक अच्छी योग्यता प्राप्त करली थी व छन्दशास्त्रके भी आप योग्य जानकार होगये थे। आपने सम्वत् १९१४में कई स्वांग व छन्दके ग्रन्थ रचे जो अबतक प्रचलित हैं। आपने जितनी विद्या पढ़ी है सब निजमें पढ़ी, किसी स्कूलमें नहीं पढ़ी थी।

आपने सं० १९२८ से अबतक कई स्तोत्र रचे जिनमेंसे प्रातःस्मरण मंगलपाठ, बारहमासा मुनिराज, चतुर्विंशति स्तोत्र, श्री शीतलनाथ स्तोत्र, नित्यनियम पूजन आदि बहुत ही पाठ छप चुके हैं तथा दिगंबर जैन पुस्तकालय सूरतसे मिलते हैं।

आपको सं० १९२७ में ज्योतिषका शौक हुवा तो आपने उसमें भी अच्छी मिहनत की। तथा सं० १९३२में एक जैन पंचांग रचा जो सं० १९३४का बनाया गया जिसकी ब्राह्मणोंने बड़ी मुखालफत की परन्तु जब उसका फल दिन२ का मिला तो आक्षेप ढूंढा भी न मिला। आपके पंचांगकी इतनी उत्तमता देख श्री गुरुमहाराजने आपको ज्योतिषरत्नकी उपाधि प्रदान की। आपने सं० १९२८ से १९५२ तक सरकारी नौकरी कैसी उत्तमतासे की उसकी सनदें काफी हैं जो समय २ उनको मिलती रही हैं।

सन् १८८४ में आप कमेटी फर्रुखनगरके मेम्बर बनाये गये जो सन् १९०२ तक बराबर रहे। बादमें आपने स्वतः छोड़ दी, बीचमें आप चेयरमेन वाइस चेयरमेन भी रहे थे। आपने सन् १८८४में "जैनप्रकाश" नामका अखबार भी निकाला जिसमें आपको बड़ी बड़ी कठिनाइयां उठानी पड़ीं कारण उस समयतक जैनियोंमें

कोई अखबार न था फिर भी आपके हानि उठाते हुए अखबारोंके बराबर भारी रकमका नीम सफलता पाई। आपने सं० १९४७से पुस्तक-दयानंद कंठकपट दर्पण रचना शुरू किया जिसके लिये आप ९—१० वर्ष गुजरात प्रांतमें रहकर वहांसे आर्यसमाजके कुल हालात लाये और बहुत कष्ट सहलेकर १९५१ में यह पुस्तक छापकर प्रकाशित हुई जिसका उत्तर आजतक आर्यसमाजी भाइयोंसे नहीं लिखा गया। आपने आर्यसमाजके खिलाफ दयानंदछलकपटदर्पण, जैन सुधाबिन्दु (सत्यार्थप्रकाश खण्डन) भी रचे। आपने सं० १९५२में निजी चैत्यालय भी स्थापन करके उसका मेला भी धूमधामसे किया था। आप सदैव परउपकारमें तैयार रहते थे। सन् १९०३ के कारोनेशन दरबारमें आप बुलाये गये थे और आपको उस दर्जेका टिकट दिया गया था जिसमें इटली, फ्रांस आदिके मेहमान बैठे थे। आपको सन् १९११ के दरबारमें भी बुलाया गया और प्रायः हर जिलेके सब दरबारोंमें आप बुलाये जातेथे।

बीचमें आपको वैद्यक विद्याका शौक हुआ तो उसमें भी आपने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। आपने वैद्यकके कई ग्रंथ भी रचे जो अबतक संसारमें प्रचलित हैं। आपकी योग्यता देख वैद्यक सम्मेलन नाशिकमें आपको "आयुर्वेदमार्तंड" की उपाधि दी गई। आप अनेक सभा सोसाइटियोंके मेम्बर रहे व हरएक जलसेमें शामिल भी होते रहते थे। सं० १९३७ से १९६७-तक आप अकेले ही रहे और पर उपकार करते रहे। तथा अवैतनिक उपदेशक बन कर बहुत समय आपने धर्मोपदेश दिया। सं० १९६७में आपने एक पुत्र दत्तक लिया उसकी गोदकी रसम सं० १९६९में देहलीमें की थी उस समय तथा दत्तकपुत्रके विवाह समय भी दान दिया था, तथा समय२ दान देते रहते थे।

जैन समाजमें आप एक ही मनुष्य थे जो ज्योतिष विद्याको जानते थे। आप मारवाड़ी, गुजराती, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अरबी, डोगरा, गुरमुखी, कैथी, रोमन, इंग्रेजी आदि अनेक भाषा जानते थे।

आपने सन् १९१०में नसीराबाद छावनी जाकर बहुत बीमारोंका उपकार किया था तथा वहां बिरादरीमें आपसमें कहा सुनी रहती थी उसको मिटाकर १३ पंथ २० पंथका मेल कराया था। वहां ६ मास रहकर जब आप चलने लगे तो सहस्रों मनुष्य आंसू बहाते हुए स्टेशन छोड़ने आये तथा आपको वहां भोज व मानपत्र भी दिया। आपको समय २ पर मानपत्र बराबर मिलते रहे हैं जो हरएक जलसे व सोसाइटियोंसे दिये गये थे। सन् १९१०में जिलेसे आप आनरेरी प्लेग एडवाईजर बनाये गये तथा आपने प्लेगके दिनोंमें बहुत उपकार किया था। आपको इन्दौर, अलवर, दिल्ली आदि रजवाड़ोंसे भी सम्मान मिलता रहा था।

मंत्रशास्त्र—में भी आप पूर्ण दक्ष थे। आपके समान इस समय दिगम्बर जैन समाजमें शायद ही कोई हो परन्तु आपका नियम था कि मंत्र प्रयोग केवल धर्मकार्यमें ही करेंगे, गृह कार्यमें नहीं करेंगे। आपने बहुतसे उत्सवोंपर मंत्र द्वारा उपद्रवोंको हटाया था। जैनलॉमें आपने अच्छी कोशिश करके दायभागकी पुस्तक खोजी थी जिसका जिकर जैन लॉ कमेटीकी रिपोर्टसे वि-

जित होता है तथा आपको सदैव रायमागके मामलोंमें बुलाया जाता था तथा आपकी मम्म्त्यनुसार फैसला होता था। आपने वैद्यकके भी दो मासिक—मीषाकाक प्रकाश (हिंदी) व रिसाला तदाकर तन्दुरस्ती (उर्दू) १० सालतक निकाला थे। आपका एक खास नियम था कि भाद्रपदमें बाहर रहेंगे तथा जितना होगा परोपकार करेंगे। आपकी रची हुई पुस्तकें १०से अधिक हैं इनमेंसे बहुतसे देहली, मथुरा, मेरठ, सूरत, बंबई, बनारस आदिमें छपचुकी हैं। आपने सन् १९२७—२९ में श्री सम्मेदशिखर पूजन कंवके लिये १—१॥ माह अनुष्ठान भी किया था। आप इस वर्ष भी भाद्रपदमें पावागढ़ पधारे थे। आपको तीर्थयात्राका बड़ा शौक था। गत फाल्गुनमें श्री सम्मेदशिखरजी चौथीबार गये थे। आप जब जब पावागढ़ गये और वापसीमें लड़के आपको बुखारकी वेदना हुई उसी वेदनाकी हालतमें आप रतलाम ठहरे और मुनि अनतसागरजीके दर्शन कर फिर फर्रुखनगर लौटे जहां आश्विन सुदी १४को आपका स्वर्गवास होगया।

आपके वियोगसे जैन समाज सूना होगया है। आपकी विमानका हाल पहले लिखा जा चुका है। फर्रुखनगरमें ऐसा विमान किसीका न बना और न इतनी देर बाजारमें रहा था व अनेक स्थानोंपर आपका शोक मनाया गया था।

आपके सुपुत्र श्रीयुत शिखरचन्दजी भी ज्योतिष व वैद्यक विद्यामें निपुण हैं व प०जीका सब कारोबार चलाते हैं। आपका जैन कल्पतरु पचांग बराबर निकलता ही रहेगा ऐसा मालूम हुआ है। हम तो कहते हैं कि ज्योतिषरत्नजी जैन संसारमें अपना नाम अमर कर गये हैं। आपकी आत्माको शांति लाभ हो।

(१) श्री १०८ आचार्य श्रीशांतिसागरजी व संघ—आचार्यश्रीका परिचय हम अनेकबार प्रगट कर चुके हैं इससे यहां दुहरानेकी आवश्यकता नहीं है। गत चातुर्मास आपके संघने कटनीमें किया था उस समयका यह कायोत्सर्ग नवीन चित्र है जिसमें प्रथम लाईनमें मुनि नेमिसागरजी, आचार्यश्री शांतिसागरजी व मुनि वीरसागरजी व ऐलक चन्द्रसागरजी हैं व दूसरी लाइनमें ऐ० पार्श्वकीर्तिजी, ऐ० नेमिसागरजी, ऐ० पायसागरजी व क्षु० अनंतकीर्तिजी हैं। आपका संघ अभी जयपुरमें विराजित है।

(१) श्री० तीर्थभक्त, दयानिधि रा०ब० बाबू लखीचन्दजी जैन कैसरेहिन्द, विहारभूषण, भा० पुलिस कमिश्नर—विहार। पुरी निवासी आप महोदयका परिचय हम क्या लिखें ! आपका नाम व आपकी योग्यता सर्वत्र जगजाहिर है। और जैन समाजमें आपके जैसी पदवियें व योग्यता किसीको नहीं मिलीं। अंग्रेजोंको ही मिलनेवाला भा० पुलिस कमिश्नरका पद आप प्राप्त कर सके हैं। अभी आप रिटायर हुए हैं व समाज-सेवामें संलग्न हैं। हमारी भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषदके गत पांचवें अधिवेशन (श्री सम्मेदशिखरजी) के आप ही सभापति बनाये गये थे व अभी आप ही सभापति हैं। हम आपसे आशा करेंगे कि आप अब रिटायर्ड जिंदगीमें जैन समाजकी विशेष सेवा करें व आप दीर्घायु होकर जैनसमाजकी उन्नतिमें सहायक हों।

(४) श्रीमान् जिनवाणीभक्त ला० उम्मेदसिंह मुसद्दीलालजी जैन सिंहल, अमृतसर–आपका चित्र व परिचय प्रकट करनेको करीब १० वर्षसे हम व अन्य पत्रकार लिखापढ़ी करते थे तौभी कभी भी आपने स्वीकार नहीं किया था परन्तु इसवार तो अतीव आग्रह करनेपर फोटो तो भेज दिया परन्तु जीवन परिचय अनेक चिट्ठियें लिखनेपर भी नहीं भेजा। अंतमें बहुत जोर देनेपर सिर्फ इतना ही लिखा कि–"मैं अपनी नामवरी करना नहीं चाहता हूं। मैं इतना ही लिखता हूं कि मेरा जन्म सं० १९१९ सन् १८९८ में हुआ। ११ वर्षकी आयुमें हिन्दी लिखना पढना सीख गया व जैन धर्मपर श्रद्धा होगई। १२ वर्षकी अवस्थामें तत्वार्थसूत्र व गुणस्थानकी चर्चा अपने हाथसे लिखकर उनका अच्छीतरह मनन किया था उसी रोजसे अभीतक धर्म परिणाम बढते ही गये हैं। आप स्वाध्यायमें मेरा विशेष समय व्यतीत होता है। २९ वर्षसे शास्त्रदान, जिनवाणी, जैनधर्म, जीवदया प्रचारका काम यथाशक्ति करता हूं और जबतक जिन्दा हूं इन्हीं तीनों कार्योंको करता रहूंगा। आजतक इन कार्योंमें मैंने कितना खर्च किया मैं प्रगट करना नहीं चाहता हूं।" बस इतना ही परिचय हमें आपसे प्राप्त हुआ है। इससे अनुमान लगाया जासकता है कि आप विद्यादान, शास्त्रदान, व जीवदयामें २९ वर्षसे अपने तन, मन, धनकी अपूर्व शक्ति लगा रहे हैं जिससे ही किसी भी सभा द्वारा आपको पदवी न मिलनेपर भी आप 'जिनवाणीभक्त' सर्वत्र पुकारे जाते हैं। विद्यादान व शास्त्रदानमें जहांतहां आपका नाम तो दृष्टिगोचर होता ही है। हमारे रुयालसे तो आप प्रतिवर्ष विद्यादान व शास्त्रदानमें चार पांच हजार रुपये तो खर्च करते ही होंगे। आप चिरायु होकर जिनवाणीकी विशेष२ सेवा करनेको भाग्यशाली हों यही हमारी भावना है।

(५) श्रीमती पंडिता चंदाबाईजी आरा–बाबू रामकृष्णदासजी एक प्रतिभाशाली मनुष्य थे, जो पहिले कलकत्तेमें रहते थे। इस समय इनके सुपुत्र बाबू नारायणदासजी बी० ए० वृन्दावनमें रहते हैं। आप श्रेष्ठ देशभक्त, परोपकारी सज्जन हैं, आप अंग्रेजीके सुयोग्य एक लेखक भी हैं, आपकी वक्तृता व लेख जनता बडी उत्सुकतासे सुनती और पढ़ती है। आप एक अच्छे जमींदार गण्यमान व्यक्ति होनेपर भी बहुत ही सादी चालसे रहते हैं। आप असेम्बलीके मेम्बर भी रहे थे। परन्तु स्वराजिष्टोंके साथ आपने स्तीफा दे दिया है, इन्हीं नर-रत्नके घरमें सम्वत् १९४६ अषाढ शुक्ला ३को जेष्ठ पुत्री श्रीमती चंदाबाईजीका जन्म हुआ। बाईजीको संस्कृत विद्यासे व परोपकारसे अनुराग बालकपनसे ही है, और उसी प्रकार गृहस्थीके कार्यमें भी दक्ष हैं। आपका विवाह सुप्रसिद्ध धर्मात्मा और धनिक घरानेमें बाबू चन्द्रकुमारजीके सुपुत्र आरा निवासी बाबू धर्मकुमारजीके साथ हुआ था, परन्तु दैवगतिसे एक वर्ष बाद ही आपको वैधव्य दुःख उठाना पड़ा। आपका यह कुटुम्ब जैन समाजमें सुप्रसिद्ध है और बड़े २ परोपकारी कार्य कर चुका है व कर रहा है। इस प्रकार बाईजी भी इसी लगनमें लग रही हैं,

आपको विद्यासे अति अनुराग है इसका साक्षात् उदाहरण यह है कि आप संस्कृतमें पंडिता है, सिद्धान्त कौमुदीमें परीक्षोत्तीर्ण हैं व आपने अन्यान्य धर्मोंके महाभारत आदि ग्रन्थोंका अध्ययन भी किया है और जैन ग्रंथोंके तत्त्व विवेचनमें तो आप बहुत अच्छी योग्यता रखती हैं। गोमटसारादि बड़े २ ग्रंथोंको देखा है। आपकी वृत्ति सदासे उदासीन है। लक्षाधीश होकर भी आप सादे वस्त्र पहनती हैं—व आभूषण आदि नहीं पहनतीं। आरा विहार उड़ीसा प्रान्तमें पर्देकी कड़ी प्रथा होनेके कारण आपको पढ़नेमें बहुत २ कठिनाइयां उठानी पड़ी थीं। तो भी आप अपनी ज्ञानोन्नतिसे हताश नहीं हुई। आपने सन् १९१२ में उपदेश-रत्नमाला नामकी पुस्तक लिखी जिसका मराठी भाषामें भी उल्था प्रकाशित हुआ था। इसी वर्ष आपने बालिकाओंके लिये बालिकाविनय नामक पुस्तक लिखी फिर १९१४ ई० में सौभाग्य—रत्नमाला लिखी तथा १९२१ में निबंध रत्नमाला लिखी ये तीनों पुस्तकें बड़ी ही उपयोगी हैं। आपने गत वर्ष कर्तव्य-रत्नमाला नामक पुस्तक लिखकर तैयार रक्खी थी परन्तु दुर्भाग्यवश इस देशकी भयंकर बाढ़के कारण नष्ट होगई। आपकी एक और पुस्तक आदर्श निबंध छपकर शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली है। ७ वर्षोंसे आप जैन महिलादर्श नामक मासिक पत्रका सम्पादन अतीव उत्तमतासे करती हैं। इसमें केवल स्त्रियोंके ही लेख रहते हैं। आप केवल लेखिका ही नहीं है समाजकी एक सच्ची सेविका भी हैं। लग भग ७ वर्षसे आपने आरा नगरसे एक कोसकी दूरीपर श्री जैन बालाविश्राम नामक संस्था खोल रक्खी है। वहांपर दक्षिण, पंजाब आदि दूर २ से छात्राएं जा२ कर विद्यालाभ करके जन्म सार्थक करती हैं। बाईजी प्रातःकाल ३ घंटे धर्मसाधनमें लगाती हैं। व सामायिक आदि नित्य नियमोंसे बचा हुआ समय समाज—सेवामें लगाती हैं। आप श्रावकके १२ व्रतोंका पालन बड़ी सावधानीसे करती हैं। आप सन् १९०७ में सकुटुम्ब मैसूर जिलेमें पधारी थीं वहांपर सभाएं तथा कई पाठशालाएं स्थापित हुईं तभीसे आप पंजाब आदि प्रांतोंमें गई व परोपकारार्थ जाया करती हैं व समाजसेवा करती रहती हैं। आपको व्याख्यान देनेका अच्छा अभ्यास है। विश्रामकी पाक्षिक सभामें छात्राओंके व्याख्यानोंकी त्रुटियां समझा कर व्याख्यान विषयिक गूढ़ बातोंको बड़ी खूबीसे समझा देती हैं। आपके जेठ स्वनाम धन्य बाबू देवकुमारजी रईस थे। जिनकी स्थापित सिद्धान्तभवनादि कई संस्थाएं समाजहित कर रही हैं। उनके सुपुत्र बाबू निर्मलकुमारजी व बाबू चक्रेश्वरकुमारजी सदा आपकी आज्ञामें रहते हैं तथा सुपुत्रोचित भक्ति करते हैं। बाईजीके प्रतिदिनके कार्य कुछ न कुछ उल्लेखनीय होते हैं। निरंतर समाजसेवा और पत्र सम्पादन व पुस्तक प्रकाशन आदिसे कभी २ स्वास्थ्य खराब होजानेपर भी कुछ परवाह न कर आप अपने कर्तव्योंमें ही लगी रहती हैं। व आश्रममें अपना बहुतसा धन भी लगाया है। यदि ऐसी महिलाएं समाजमें होती रहें तो शीघ्र ही हमारा उत्थान हो सकता है। श्रीमतीजीसे समाज भली भांति

परिचित हैं तो भी अभीतक आपका चित्र अनेकानेकबार पत्र सम्पादकोंके मांगनेपर भी प्राप्त नहीं हुआ था। इस बार आपने श्री० संपादक 'दिगंबर जैन'के आग्रह व हमलोगोंकी प्रार्थनावश अपना चित्र प्रकाशित करनेकी आज्ञा देदी है, जो कि दिगम्बर जैनके इसी अंकमें प्रकाशित है। सितारादेवी।

(६) प्राचीन दि० जैन मंदिर केकड़ी—केकड़ी (अजमेर) के इस मनोहर प्राचीन मंदिरमें सं० १२२९ की श्री मुनिसुव्रतनाथकी मूलनायक प्रतिमा विराजमान है जो ढाई फुट ऊंची पद्मासन उत्कृष्ट शिल्पकारीको प्रदर्शित करनेवाली बडी ही मनोज्ञ और दर्शनीय है। इसीलिये इसे 'श्री मुनि सुव्रतस्वामीका मंदिर' इस नामसे पुकारते है। और भी कई प्रतिमायें यहां विराजमान हैं। इनमेंसे अधिकतर 'घनोप' ग्रामसे जमीनके अंदरसे निकली हुई यहां आई हैं। यह 'घनोप' यहांसे चौदह मीलपर शाहपुरा राज्यमें छोटासा ग्राम है, जहांकी भूमिसे निकली हुई सेकड़ों प्रतिमायें शाहपुरा, केकड़ी, नसीराबाद, अजमेर आदि आसपासके ग्रामोंके मंदिरोंकी शोभा बढ़ा रही हैं। अब भी इस 'घनोप' में खोज करनेपर जैनधर्मके कई अतीत स्मारक मिल सक्ते हैं। कहा जाता है कि पहिले यहां जमीनकी खुदाई करानेसे विशाल मंदिरके चिह्न नजर आये थे। पर अफसोस है कि कुछ आगे उसके ऊपर ग्रामवासियोंके मकानात आजानेके कारण विवश हो खुदाई रोक देनी पड़ी थी।

उक्त श्री मुनिसुव्रतस्वामीकी प्रतिमा भी 'घनोप' से आई हुई है। तथा स्थानीय एक दूसरे मंदिरकी श्री शांतिनाथजीकी मूलनायक प्रतिमा भी 'घनोप' की ही है जो सं० ११७९ सालकी प्राचीन है। कहते हैं कि उक्त श्री मुनिसुव्रतस्वामीके मंदिरके बनाये जानेका जब काम शुरू हुआ था तो "श्रेयांसि बहु विघ्नानि" के अनुसार अन्य मतावलंबियोंने उसके विरुद्ध बड़ा भारी झगड़ा खड़ा किया था और मरने मारनेके लिये तय्यार होगये थे। उस समय श्रीमान् हंसराजजी सोनी मंदिरके मुख्य कार्यकर्ता थे। आपकी एक अंगरेजसे मुलाकात थी। सौभाग्यकी बात है कि उन्हीं दिनों उस अंगरेजका यहां आना हुआ। उसे सब हकीकत समझाई गई और जैनियोंपर होते हुये इस जुल्मको दूर करनेकी उससे प्रार्थना की गई। धन्य है उस अंगरेजको कि जिसने उसीदम वहां तोप लगादी और हुक्म दे दिया कि जो कोई बलवा खडा करे वह तोपके मुंह उडा दिया जावे। फिर क्या था अन्यायका दमन हुआ और उसके फलस्वरूप यह ऊँचा मस्तक उठाई हुई जैनधर्मके गौरव स्वरूप मंदिरकी खड़ी हुई इमारत आज भी मानों उन अशांति मचानेवालोंको शांतिका पाठ पढ़ा रही है। कारीगरोंने इसके बनानेमें कमाल किया है। जी चाहता है इसे देखा ही करें। इसके आसपास जैन गृहस्थोंकी खासी वस्ती है व प्रतिदिन शास्त्रसभा होती है इसके प्रबंधक आज भी उन्हीं हंसराजजीके वंशज हैं और बडी योग्यतासे इसका प्रबंध कर रहे हैं।

(७) पं० मूलचंद्रजी जैन वत्सल बिजनौर—उत्तम भावपूर्ण कविता व लेखोंकी रचनाके लिये

आपको कौन नहीं जानता ? आपका जन्म विलाई ग्राम (जि० दमोह)में सिंघई हीराचंदजीके यहां हुआ था। बाल्यावस्थासे ही आपकी बुद्धि तीव्र व धार्मिक कार्योंमें अग्रसर थी। बहुत भ्रमण व विद्वानोंके समागमसे आपने जैनधर्म व साहित्यमें अच्छी योग्यता प्राप्त की है। आप अपना अधिक समय ग्रन्थावलोकनमें ही व्यतीत करते रहे हैं। दमोहमें ६ साल तक एक व्यापारी फर्ममें कार्य किया था तब वहां सार्वजनिक वाचनालय व हिन्दी भाषण समिति स्थापित कराई व अपने जन्मस्थान विलाई ग्राममें भी ग्रामीण जैन सभा स्थापित की है। आपने कई स्थानोंपर उपदेश देकर जैन पाठशाला भी खुलवाई हैं। कुण्डलपुरमें गोलापूर्व जैन महासभाका अधिवेशन हुआ वहां तक आपका जीवन विलास पूर्ण था परन्तु उस समय असहयोग आन्दोलनके कारण सादा वेष धारण करके आप असहयोग आन्दोलनमें शामिल हुए व अपने मित्र घनश्यामदासजीकी सहयोगतासे राष्ट्रीय विद्यालय स्थापित किया था। फिर साहित्य सेवाका शौक आपको इतना लगा कि जैन पाठशालामें अध्यापन कार्य करते२ जैन पत्रोंमें अनेक लेख व कवितायें भेजने लगे जिसकी उत्तमतासे आपका नाम कवि 'वत्सल' प्रसिद्ध होगया। आपने सतीचरित्र, महिला गायन, वीर गायन, सुदर्शननाटक, आदर्श जैन महापुरुष आदि अनेक पुस्तकें नवीन शैलीपर गद्य पद्यमय रचकर प्रसिद्ध की हैं व 'आदर्श जैन चरितमाला' नामक मासिकपत्र भी एक वर्ष हुए निकाला है। आप चिरायु होकर विशेष २ योग्यता प्राप्त करें।

जैन समाचारावलि।

बड़गांव-निंबाळकर (पुना)में माघ सुदी ४-६को वार्षिक मेला होगा।

वियोग-सेठ लल्लुभाई लक्ष्मीचन्द चौकसी (बम्बई) की धर्मपत्नीका देहान्त होगया। ९२५) दान किया गया है।

वेदी प्रतिष्ठाएं-मुशरिया (सिरोंज) में माघ सुदी ८से १२ तक वेदी प्रतिष्ठाएं होंगी।

पावागढ-का वार्षिक मेला माघ सुदी ११को होगा।

बेरिस्टर साहब आपहुंचे-श्री० विद्यावारिधि पं० चम्पतरायजी बेरिस्टर साहब विलायतमें स्वास्थ्य ठीक न रहनेसे ता० ४ जनवरीको बंबई आपहुंचे थे व स्वास्थ्य पहिलेसे अच्छा है। ता० १० जनवरीको आप बंबईसे गजपंथाजी रवाना हुए वांहसे मांगीतुंगी, सिद्धवरकूट, बड़वानी आदि यात्राएं करके इन्दौर पहुंच गये हैं जहां आप डेढ माह रहकर स्वास्थ्य लाभ करनेवाले हैं।

जयंती-श्री० जैन महिलारत्न बहिन मगनबहिनकी ४९वीं जयंती ता० ९ जनवरीको बंबई श्राविकाश्रममें पूजन प्रभावना सभा खेल आदि द्वारा मनाई गई थी।

केस उठ गया-बड़गांववालोंने ब्र० प्रेमसागरजी, हम आदिपर कटनीमें मानहानिका केस मांडा था वह उन्होंने ता० ९ दिसंबरको उठा लिया था। सिर्फ पं० मूलचंदजी भेलसापर केस मुल्तवी रखा है।

आचार्य संघ—श्री १०८ आचार्य श्री शांतिसागरजी व मुनिसंघ कटनीसे अनेक स्थानोंपर विहार करता हुआ जबलपुर पधारा है व अभी वहां ही विराजमान है।

ब्र० आश्रम कुंथलगिरि—का वार्षिकोत्सव मगसिर सुदी १५को वार्षिक मेलेके समय हो गया। आश्रमके बालकोंने ड्रामा, गायन और व्यायामके अनेक खेल किये थे। सहायता भी ठीक मिली थी। यहांके तीर्थका प्रबंध ठीक नहीं है। आय कम व बहुतसा खर्च फालतू है।

आगरा—में दिसम्बर मासमें सेठ गोपीनाथजी द्वारा रथयात्राका मेला होगया तब जैन भ्रातृ सम्मेलनका उत्सव जैन बोर्डिंग हाउसमें हुआ था जिसमें वाणीभूषण प० तुलसीरामजी व सेठ भरोसेलालजी आदिके प्रयत्नसे बोर्डिंगमें कमरों व चैत्यालय आदिके लिये १००००) मिले।

इन्दौर कालेज—में सेठ शोभाराम गंभीरमलने १२०००) देकर अपने नामसे १२ कमरे विद्यार्थियोंको मुफ्त रखनेके लिये बनवा दिये हैं।

मुनि सूर्यसागरजी—कोडरमासे विहार करके बनारस होकर कटनी पधारेंगे।

खंडेलवाल महासभा—की वार्षिक बैठक मौजाबादमें फाल्गुन वदी ५-१० तक होनेवाली प्रतिष्ठाके समय होगी। तथा शास्त्रिय परिषद भी वहां पहुंच जायगी ऐसा मालूम हुआ है।

कलकत्ता—में कार्तिकी रथयात्रा महोत्सवपर जीवदया सभा आगराके मंत्री पं० बाबूरामजीने अच्छा प्रकार कार्य किया था व करीब १५००) सहायता मिली तथा बगाल विहार उड़ीसा प्रांतके लिये प्रांतिक सभा स्थापित कर दी है।

साहूजीका वियोग—नजीबाबाद निवासी श्रीमान् साहू सलेखचन्दजी जैन रईसका ता० ८ दिगम्बरको ८७ वर्षकी आयुमें स्वर्गवास हो गया। आपकी आत्माको शांतिलाभ हो!

मुनि श्रीशांतिसागरजी (छानी)—का ईडरसे मगसिर वदी १को विहार हुआ था व आप अभी गुजरातमें भ्रमण कर रहे हैं। विदाई धूमधामसे हुई थी।

लखनऊ—में 'मुन्नेलाल कागजी जैन धर्मशाला' ५००००) लगकर बन चुकी है व स्टेशनके पास ही है। साथमें चैत्यालय भी बना है। यात्रियोंको यहां ही ठहरना चाहिये।

बयाना—में रथयात्रा निकालनेका हुकुम भरतपुर स्टेटने दिया था व अजमेरसे रथ भी मगाया गया, तैयारी भी होगई, तौ भी वैष्णव लोगोंने सत्याग्रह आदि द्वारा रथयात्रा निकालनेमें बाधा डाली इससे रथयात्रा बंद रही थी।

कटनी—में मिरजापुरवाले सिं० हीरालाल कन्हैयालालजीके ४००००)के दानसे बोर्डिंगके लिये 'शांतिनिकेतन' भवनका उद्घाटन होगया उसी समय ८०००) और दान मिला था।

श्राविकाश्रम—बम्बईका १६वां वार्षिकोत्सव मगसिर वदी १को हुआ था तब श्राविकाओंके मराठी, गुजराती, हिन्दी, गीत गरबे सम्वाद व व्यायामके खेल भी हुए थे।

बम्बई—में कार्तिक सुदी १३को श्री० जडावबाई विधवा सेठ चुन्नीलाल जवेरचंदजी जौहरीकी ओरसे अष्टानिका उद्यापनमें रथयात्रा उत्सव हुआ था तथा पौष वदी ५ को वार्षिक रथोत्सव भी फिर हुआ था।

उखलद अतिशयक्षेत्र–का मेला माघ सुदी ५ से ८ तक होगा । परभणी (नीजाम) जिलेमें यह क्षेत्र है व अब तीर्थक्षेत्र कमेटीके प्रबंधमें आया है ।

मक्सीजी–में श्वेतांबरोंने दिगंबर जैनोंपर ५००००)का दीवानी दावा किया था वह ता० १९ जनवरीको खारिज होगया है । फोजदारी मुकदमाका फैसला तो अभी शेष है ।

झालरापाटन–में ज्ञानसागर पुस्तकालय खुला है।

आदर्श दान–सेठ सुरचद माघवजी (बीजापुर) अपने मृत्यु समय ५०००) विद्यार्थियोंको स्कालरशीप देनेके लिये निकाल गये हैं ।

अलिया सन्तान कानून रद्द–दक्षिण कर्नाटकमें ३६० वर्ष हुए भूतलपांडि नामक जैन राजासे एक ऐसा कायदा था जिससे पिताकी मिलकियतका मालिक पुत्र नहीं परन्तु भानजा होता था। इस कानूनको श्री० धर्मस्थल मंजय्य हेंगडे (भूतपूर्व सभासद धारासभा) आदिने प्रयत्न करके मद्रास कौंसिलसे हटवा दिया है । इससे अब पिताकी जायदादपर पुत्रका हक हो सकेगा ।

बेरिस्टर चंपतरायजी–साहब अभी ता० ४ से १० जनवरी तक बम्बई रहे थे तब दि० जैनयुवक मंडलने आपका अच्छा स्वागत किया था तब बेरिस्टर साहबने मंडलके सभ्योंको उत्तम उपदेश दिया था ।

प्रांतिज–में चन्द्रसागर दि०जैन बोर्डिंग पुनः चालू करनेको शेठ भगवान छगन घनजी (भावनगर) ने १००) मासिककी सहायता देना स्वीकार किया है ।

दाहोद–में जैन पाठशालाका वार्षिकोत्सव पचमहालके कलेक्टर मि० हार्टशोनके सभापतित्वमें ता० १९ जनवरीको होगया। तब छात्र छात्राओंने सम्वाद ड्रामा भजन आदि उत्तमतासे किये थे व पं० हरिश्चन्द्रजीका अच्छा व्याख्यान हुआ था ।

ઈડર–વાળા દોશી કેવળભાઈએ કેશરિયાજીની યાત્રાથી પાછા ફરતા ભૂદેર અને ભાણુદાની પાઠશાળાઓની મુલાકાત લઈ ઈનામ વેચ્યું હતુ તથા જમણુ આપ્યું હતું.

સોજીત્રા–શ્રાવિકાશ્રમમા તા૦ ૨૩ દિસેંબરે માસિક સભામા ઉત્તમ ક્ષમાપર વ્યાખ્યાન અપાયું હતુ. આશ્રમની નવીન કાર્યવાહક કમેટી નીમાઈ છે.

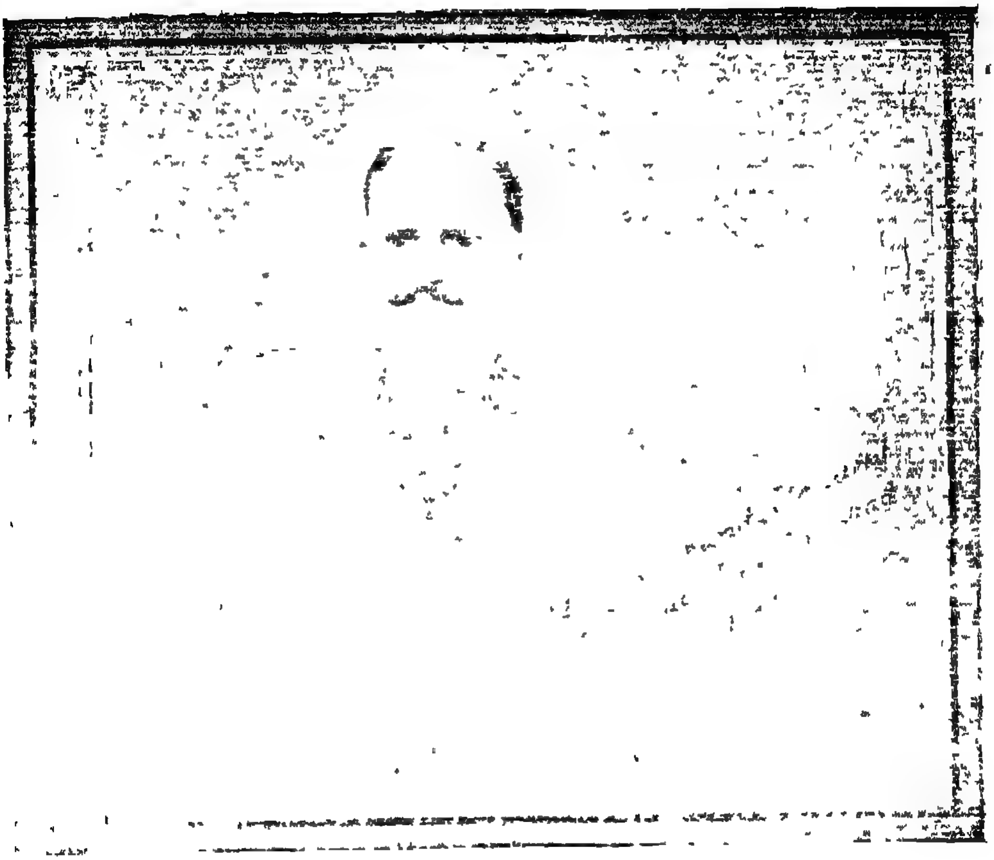
ત્યાગી દેવેંદ્રસાગરજી–પલાસિયાના વિદ્યાલયની સહાયતા માટે ૬ વિદ્યાર્થિયોને સાથે લઈ ગુજરાતમા ભ્રમણ કરી રહ્યા છે

ઈડર–મા મુનિશ્રી શાંતિસાગરજીના ચાતુર્માસથી ત્યા બોર્ડિંગ, શ્રાવિકાશ્રમ, પુસ્તકાલય, ગ્રંથમાલા વગેરે અનેક સંસ્થાઓ સ્થાપન થઈ છે

ચાંદ નથી મળ્યા–તારંગાજીમા ચૈત્ર માસમા થયેલા મેળા વખતના સ્વયંસેવકોને શેઠ જીવણલાલ ગોપાળદાસ અને શેઠ લલ્લુભાઈ લક્ષ્મીચન્દજી તરફથી ચાંદ મળવાના હતા તે હજી સુધી કેમ મળ્યા નથી તેનો તેઓ સાહેબો ખુલાસો કરશે કે ?

ભાવનગર–મા સંતોકબ્હેન દિ૦ જૈન પાઠશાળાનો ઇનામનો મેળાવડો શેઠ અમરચંદ ચુનીલાલ જરીવાલાના પ્રમુખપદે તા૦ ૨૮ દિસેંબરે થયો હતો આ પાઠશાળા માટે એક અધ્યાપિકાની આવશ્યકતા છે.

જોઇએ છે–ચંદ્રસાગરજી દિ૦ જૈન બોર્ડિંગ પ્રાંતિજને માટે ધર્માધ્યાપકનુ કામ પણ કરી શકે એવા સુપ્રીન્ટેન્ડેન્ટની તાકીદે જરૂર છે પગાર ૩૦) થી ૫૦) માસિક યોગ્યતા પ્રમાણે તથા ભોજનનો પ્રબંધ લખો–ભગવાનદાસ એન્ડ બ્રધર્સ, ત્રાંબા કાંટા ઝવેર ગુમાનના માળામા બીજે દાદરે, મુંબઈ.



श्री० [illegible] निरि [illegible] रायबहादुर बाबू [illegible]जी जैन वै[illegible]रेहिन्द,
भूतपूर्व आ० पुलिस [illegible]—हिसार।
([illegible] दिगम्बर जैन [illegible] व
जैन [illegible] ।)

Vir Vijay P. Sorab.

जैनधर्म क्या है ?

लेखक-श्री० ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजी

जैनधर्म उस विज्ञानको कहते हैं जिसके द्वारा यह प्राणी अज्ञान और क्षोभसे छूटकर आत्मज्ञान और शांतिको प्राप्त कर सके। अथवा जिसके द्वारा यह प्राणी सर्व प्रकारकी परतंत्रताओंको जीतकर पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त कर सके।

इसमें संदेह नहीं कि संसारी प्राणी क्रोध, मान माया, लोभ, काम, भय, शोक आदि औपाधिक भावोंके कारण तथा पूर्ण ज्ञान न होनेके कारण आकुलित चिंतित तथा क्षोभित रहते है। ऐसा होनेमें किसी उपाधिका निमित्त है। वह उपाधि पौद्गलिक सूक्ष्म कर्मवर्गणाओंका बंध है। इस बंधके कारण यह आत्मा अशुद्ध है। या स्वतंत्रताका यथार्थपने भोक्ता नहीं है। इस कर्मबंधका नाश जिस उपायसे होता है वही जैनधर्म है।

कर्मबंधके कारण मिथ्या श्रद्धान, मिथ्याज्ञान तथा मिथ्या चारित्र है तब कर्म नाशके उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यग्चारित्र हैं।

अपने आत्माके स्वरूपको तथा उसके गुणोंको ठीक श्रद्धान करना व अन्यथा जानना तथा आत्मशुद्धिके विपरीत आचरण करना मिथ्या श्रद्धान, ज्ञान तथा चारित्र हैं। अपने आत्माके स्वरूपको तथा उसके गुणोंको यथार्थ श्रद्धान करना व संशय रहित यथार्थ जानना तथा कर्म नाशके कारण शुद्ध आत्मीक ध्यानके अभ्याससे वीतरागभावको प्राप्त करना सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र हैं। आत्मा सत् द्रव्य है, गुण पर्यायवान है, उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूप है। किसी मूल द्रव्यका जगतमें निर्माण नहीं होता। क्योंकि यह जगत् अनादि अनन्त अकृत्रिम तथा अनेक मूल द्रव्योंका समुदाय है। अतएव सत् रूप है इससे आत्मा भी सत् पदार्थ है। इसके विशेष गुण चेतना, सम्यक्त, चारित्र, सुख, आत्मवीर्य आदि हैं इन्हीं गुणोंमें जो परिणमन होते रहते हैं उनको पर्याय तथा अवस्था कहते हैं। आत्मा नित्य ही गुणोंको और उनकी पर्यायोंको रखनेवाला है। इस ही कारणसे उत्पाद, व्यय ध्रौव्य स्वरूप है। पर्याय पुरानी छूटती व नवीन होती रहती है गुण सदा ही बने रहते हैं। पर्यायोंके बदलनेकी अपेक्षा उत्पादव्यय रूप है। सहभावी गुणोंकी अपेक्षा ध्रौव्यरूप है। इसही कारण आत्मा नित्य और अनित्य उभयरूप है। पर्यायोंके बदलनेकी अपेक्षा अनित्य है जबकि गुणोंके सहभावकी अपेक्षा नित्य है। यदि सर्वथा नित्य हो तो सदा समान ही रहे—भावोंमें अन्तर न पड़े, तब कभी भी आत्मामें रागद्वेष मोह न झलके, न संसार अवस्था हो और न मोक्ष हो। यदि सर्वथा अनित्य हो तो क्षणभरमें सत्ता ही खो बैठे फिर यह ज्ञान ही न हो कि मैं वही हूँ जो कल था। इसलिये स्यात् या कथंचित् या किसी अपेक्षासे नित्य है तब ही स्यात् या अन्य किसी अपेक्षासे अनित्य है।

इस ही बातको समझानेको स्याद्वाद कहते हैं जिस शब्दका अर्थ है किसी अपेक्षासे किसी बातको कहना। आत्मामें चेतना गुण है जिससे

यह सर्व जानने देखने योग्य द्रव्यगुण पर्यायोंको एक ही समयमें देख जान सक्ता है। यह स्वपर प्रकाशक है। यह अपनेको भी जानता है और दूसरोंको भी जानता है। सम्यक्त गुणसे यह इस प्रकारकी दृढ़ प्रतीति रखता है कि आत्माका हित अपने स्वरूपमें निवास करना है। रागद्वेष मोहमें फंसना आत्माका अहित है। इन्द्रियजनित सुख सुखाभास है, अतृप्तिकारक तथा दुःखमय है। अतीन्द्रिय स्वाभाविक आनन्द ही सच्चा सुख है तथा मेरी सत्ता स्वतंत्र है, मैं अविनाशी द्रव्य हूं।

चारित्रगुण वह है जिससे आत्मा कभी रागीद्वेषी न होकर सदा ही शांत, वीतराग व स्वरूपमग्न बना रहता है। सुखगुण वह है जिससे आत्माको अपने अनाकुलतारूप अपूर्व आनंदका स्वाद आता है, यह सुख वचनोंसे कहा नहीं जासक्ता। यह मात्र स्वानुभवगोचर है।

आत्मवीर्य वह गुण है जिससे यह आत्मा अनेक कारणोंके होते हुए भी अपने गुणोंके शुद्ध परिणमनमें सदा विलास किया करता है। इन गुणोंका धारी मैं शुद्ध द्रव्य हूं ऐसा श्रद्धान तथा ज्ञान सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान है जबकि इसके विपरीत मैं अल्पज्ञानी हूं, संसारीक सुखको भोगनेवाला हूं, मैं रागी द्वेषी हूं, मैं नाना शरीररूप हूं ऐसी कर्मजनित आत्माकी अशुद्ध अवस्थाको आत्माका सच्चा स्वरूप श्रद्धान करना व जानना मिथ्यादर्शन व मिथ्याज्ञान है। अपने शुद्ध व सच्चे स्वरूपमें तन्मय होना व तन्मय होनेका पुरुषार्थ करना सम्यक्चारित्र है जबकि अपने शुद्ध स्वरूपका अनुभव न करके रागद्वेष मोहरूप अशुद्ध भावोंमें वर्तन करना व उन्हींके अनुकूल उद्यम करना मिथ्याचारित्र है।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमई जैनधर्मको रत्नत्रयमई धर्म कहते हैं। ये ही रत्नत्रय परमोपकारी हैं और ग्रहण करने योग्य हैं। ये सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय हरएक आत्माके स्वभाव हैं। जिसने अपने स्वभावको पाया उसीने रत्नत्रयमई जैनधर्मको पाया। इसलिये जैनधर्म आत्माके स्वभावको कहते हैं। यह जैनधर्म आत्मीक भावोंमें रहता है। बाहरी क्रियाकांडमें व मंदिर, प्रतिमा, शास्त्रमें व किसी तीर्थस्थानमें जैनधर्म नहीं है। जो आत्माको पहचानता है वही जैनी है। जो आत्मानुभव करसक्ता है वही जैनधर्मी है। जो आत्मध्यानका अभ्यासी है वही जिनमार्गी है। आत्मध्यानका साधन जिन बाहरी क्रियाकांडके सहारेसे व जिन बाहरी पदार्थोंके संयोगसे होसक्ता है उनको भी व्यवहारमें जैनधर्म कह देते हैं।

इस हेतु मुनि व श्रावकका बाहरी चारित्र व जिनमंदिर व वीतराग मुद्रामई जिनप्रतिमा व जिनशास्त्र व जिनतीर्थ ये सब धर्मके अंग हैं। जिसकी दृष्टि आत्मधर्म पर है उसके लिये ये सब धर्मके अंग हैं। यदि आत्मधर्म पर दृष्टि नहीं है तो ये सब धर्मके अंग नहीं हैं। आत्माके भावोंका परिणमन तीन प्रकार है—शुद्ध, शुभ, तथा अशुभ। शुद्ध परिणमन वीतराग रूप, आत्मध्यानरूप, आत्मानुभवरूप है यही कर्मबंधका नाश करनेवाला भाव है। मंद कषायरूप भाव शुभ परिणमन है जहां दया, क्षमा, विनय, संतोष, सत्यवाद, संयम, दान, तप, ममता त्याग तथा ब्रह्मचर्यमें परिणमनरूप व परोपकाररूप भाव है वह सर्व शुभ भाव है अथवा

जहां शुद्ध आत्माके गुणोंमें रागरूप भाव है वह शुभ भाव है। अरहंत सिद्ध परमात्माकी भक्ति, निर्ग्रंथ गुरुकी सेवा, शास्त्रज्ञानमें अनुराग, प्राणी मात्रकी रक्षारूप भाव शुभ भाव हैं। इनमें मद राग होता है इससे ये शुभ भाव पुण्यकर्मका बंध करते हैं। तीव्र कषायरूप भाव अशुभ परिणमन है जहां हिंसा, क्रोध, मान, माया, लोभ, असत्य, असंयम, अपकार, विषयलोलुपता, ममत्व व कुशीलमें परिणमन है वह सर्व अशुभ भाव है। इससे पापकर्मका बंध होता है।

जगतमें पापकर्म असाताकारी है पुण्यकर्म साताकारी है इसलिये पापकर्म त्यागने योग्य है, पुण्यकर्म ग्रहण करने योग्य है। साताकारी सम्बन्ध भी आत्माको आत्मस्वरूपकी मगनता-रूप आत्मानुभवके भावसे दूर रखनेमें निमित्त होसक्ता है अतएव पुण्यकर्म भी त्यागने योग्य है। मात्र कर्मरहित शुद्ध आत्माकी परिणति ही ग्रहण करने योग्य है। इसलिये एक जैन धर्मीको मात्र स्वानुभवका ही प्रेमी होकर उसहीकी प्राप्तिके लिये एकान्तवासके द्वारा आत्मध्यानका अभ्यास करना चाहिये। साधु हो तो रात्रिदिन इसका साधन करे, मौनसे रहे, प्रयोजनवश अल्प बोले, व्यवहार प्रपंचसे बचे। यदि गृहस्थ हो तो कमसे कम थोड़ी देर प्रातःकाल व सायंकालको अवश्य आत्मध्यान करे। आत्मध्यानमें जब मन न लगे तब शुभ भावोंमें वर्तना योग्य है। अशुभ भावोंसे तो बिल्कुल बचना चाहिये। इसीलिये एक साधारण ग्रहस्थको भी संकल्पी त्रस हिंसा, असत्य वचन, चोरी, परस्त्री रमण तथा परिग्रहकी अमर्यादरूप प्रवृत्तिसे बचना चाहिये। न्यायसे धन कमाकर संतोषपूर्वक व दयापूर्वक गृही कर्तव्य बजाना चाहिये।

आत्मानुभवसे प्रत्यक्षमें सुख शांतिका स्वाद आता है, आत्मबलकी वृद्धि होती है, अशुभ कर्मोंका नाश होता है इसलिये जैनधर्मी वही है जो आत्मानुभवका अभ्यासी है। जो अपना हित चाहे उसे आत्मध्यानके साधक ग्रंथोंका विशेष मनन करना योग्य है जैसे पर-मात्मप्रकाश, इष्टोपदेश, समाधिशतक, ज्ञानार्णव, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, समयसार, नियमसार, योगसार, आत्मप्रबोध, तत्वज्ञानतरंगिणी, अनु-भवप्रकाश, अनुभवानन्द, स्वसमरानन्द, निश्चय धर्मका मनन, सुखसागर भजनावली, अमिति-गति कृत सामायिक पाठ, आत्मधर्म, आदि। अपनेहीसे अपना हित व अपनेहीसे अपना अहित होता है। हमारी उन्नति व अवनति हमारे ही पुरुषार्थ व आलस्यपर निर्भर है। कोई परमात्मा हमारे झगड़ोंमें अपनेको नहीं डालता है। हम आप ही अपने संसारको बनाते, आप ही फल भोगते व आप ही अपने संसारका नाश कर सक्ते हैं। हम आप ही ब्रह्मा हैं, आप ही विष्णु हैं व आप ही रुद्र हैं।

हमें उचित है कि हम जैनी नाम धराकर सच्चा जैनधर्म पालें, अपना जीवन जैनधर्ममई बनावें, हम दया, शील, संतोष व सत्यकी मूर्ति बनें और इस जगतमें स्वदेश परदेशमें जैन-धर्मका प्रचार करें। जो जैनधर्मकी शरणमें आवे उसे प्रेमपूर्वक अपनावें, उसे अपना धर्मभाई बना लें, उसे अपनी जैनसमाजमें मिला लें व उसके गृहस्थजीवनके सब सुभीते कर देवें। जैनधर्मका दान परम दान है। जैनधर्मका ज्ञान परम ज्ञान है।

हर्षसे हम मानते वर वीर नूतन वर्षको।

था जन्म श्री जिन वीर प्रभुका पाप किल्विष हरनको।
पशु यज्ञ थे होते अनेकों मूक जीवन हननको ॥
प्रबल आतम बल दिखाया अभयपद दे सर्वको।
हर्षसे हम मानते वर वीर नूतन वर्षको ॥ १ ॥

अज्ञानतमसे व्याप्त हो भूले पड़े निज मार्गको।
अति त्राहि त्राहि हो रहा था कौन रक्षा करनको ॥
तुम ज्ञान ज्योति थे अपूरव अज्ञानतमके कर्षको
हर्षसे हम मानते वर वीर नूतन वर्षको ॥ २ ॥

मृत तुल्य आशाहीनके तुम निष्प्रयोजन बन्धुको।
अब शांतिका साम्राज होगा, धार अति आनंदको ॥
सच्चे "अहिंसा" धर्मकी भेरी बजाई सर्वको।
हर्षसे हम मानते वर वीर नूतन वर्षको ॥ ३ ॥

थी अपूर्व अनन्य महिमा कौन कवि है कहनको।
ले ब्रह्मचर्य अलभ्य औषध विषय ना गन दमनको ॥
भव जलधिसे जन उतारे कर ज्ञानके उत्कर्षको।
हर्षसे हम मानते वर वीर नूतन वर्षको ॥ ४ ॥

दर्शा जगतमें आत्मशक्ति कर्म अरिके हननको।
सत ज्ञान बिन होगा नहीं कल्याण आतम सबनको ॥
सच्चे "दिवाकर" उदित थे तुम भव्य वारिज शर्मको।
हर्षसे हम मानते वर वीर नूतन वर्षको ॥ ५ ॥

जग हितैषी तुम पिता उपकार सबके करनको।
तुम बिन दुखी जग जीव थे पाई न समता नामको ॥
पापियोंके मान मारे करके विजय कंदर्पको।
हर्षसे हम मानते वर वीर नूतन वर्षको ॥ ६ ॥

दीपावली निर्वाण ये जीव कर्म मल दलनको
भूलो न भाई ये सदा मन परम पावन पर्वको ॥
[illegible]।
हर्षसे हम मानते वर वीर नूतन वर्षको ॥ ७ ॥

—वैद्यभूषण पं० मनोहरलाल जैन वैद्य, शिवपुरकलां।

Lord Mahavir.

(By—Tarachandra Pandya Jain—Jhalrapatan.)

The Night is over Rosy Aurora is spreading out the foot-cloth of roses on the path of the Sun There is joy in the sky; there is joy in the heart of Aurora which is reflected on her lips in the form of pure smile The influence of this joy of Heaven is felt on the Earth also where the breeze is blowing gently and refreshingly, the birds are singing melodiously, and the blossoms are pouring forth the sweetness of their fragrance

I get up from my bed, bathe myself, and then turn towards thy image O Lord Mahavir.

Thy image! How beautiful and soul-inspiring is thy image of stone! An innocent but majestic smile is playing on thy lips, and from thy eyes seems to be flowing a ceaseless stream of Universal Love, Perfect Bliss, and Compassion at the sufferings of the world. From every part of it is beaming forth the light of serene equanimity and eternal tranquility which reveal thy infinite Power and all-compassing Knowledge. It teaches in a language too divine to be reduced into the letters of Earthly languages, but quite clear to the ears of the Willing and the Faithful it teaches in such a language the glory of Virtue as contrasted with the ignominy of Vice, draws one's attention away from the trifling and momentary objects to lasting and important ones, and calls in to dwell in the domain of True Peace and True Happiness. My whole heart is moved. I cannot remain standing With profound reverence I naturally fall down at the feet of thy image, O. Lord Mahavir.

Why do I call thee 'Lord'? Is it because thou wast born a great prince? Is it because thou wast worshipped, O God of Gods, by the King of Gods? No. None of these. I call thee 'Lord' not because thou wast attended on by the Rich and the Great, but because thou wast friend of the Poor, Strength of the weak, Elevator of the Low, and solace of the sufferers

Thy palace was abounding with the richest luxuries of the world. The gem-inlaid floor of thy chamber was resounding with the sweet sounds of the anklets of the beauteous damsels that gracefully walked to and fro before thy eyes The air of thy palace was tuneful with the music that constantly rang there But I do not bow to thee on account of these. I bow to thee because thou didst detect the hollowness that lay underneath all these luxuries, because while sitting amidst the music of thy palace, thou didst listen to the cries of mortal agonies that pierced the out-side world, and because surrounded by the earthly felicities on all sides, thou didst not fail to perceive the misery that lay beyond thy palace-windows.

Thou becamest poor. But this does not move my admiration. There have been innumerables who have lost greater kingdoms in war or greater wealth in trade, and have been reduced to beggary But O King of kings, thy glory is this that thou castst aside all that the world holds dear and gladly becamest the poorest of the poor It is easy to become rich, but it is difficult to become willingly poor. To renounce is always far more difficult than to gain.

O King of the triple-storied Universe, thy little finger had the power to upset the whole terrestrial sphere. But thou art esteemed not on account of this strength, but on account of this that notwithstanding such strength thou forgavest thy enemies, and borest calmly all their unjust and severe cruelties, desiring not for the least moment the desire of revenge, and lifting never even thy finger in thy defence. The sight of a freind or foe could make no alteration in thy countenance

Thou wast more beautiful than Beauty herself. But what is it to me? I do not honour thee for it, but I adore thee because thy beauty could neither allure thee to the gilded pleasures of the world, nor deter thee from the hardships of asceticism

Thou art omniscient, But mere this fact does not bring down my head in thy worship. What causes me to fall down at thy feet is this that the knowledge was for the good of all, giving light to the Blind and guiding aright the strayed souls

The Indras bathed thee on the golden mount of Meru with the fresh water of the Kshyiro-dadhi ocean, the denizens of the celestial regions placed the lotus-flowers under thy feet when thou walkedst, and carried on their shoulders the diamond-palanquin in which thou satst. Kuber made for thee the lecture-hall of the richest materials, and the kings, and beasts and all creatures came there to listen to thy Word, and prostrated themselves before thee But thy glory does not lie in these. Thy glory is this that seated amidst all this pomp and splendour, thy mind remained calm, and indifferent, and free from pride

Thou didst follow a path which while serving thee, served the world. The Truth that was preached by thee is eternal. The position attained to by thee is Perfect. Thy very life is associated with Purity, calmness and freedom. Thy very name fills the mind with calmness and nobleness, and drives away the ghosts of foolish Passions and evil Desires.

As a man who has been living since his birth, in the company of wolves thinks himself a wolf and imitates their ways, so from times without beginning the soul being forgetful of itself, has been forming strange conceptions of itself and hankering after the trivial and mean objects of the world. It is thy greatness which makes it conscious of its own greatness and inspires it with self-respect and self-confidence

Twenty five eventful centuries have rolled away since thou leftst this Earth, and the ages have been tolling the bells, every evening and morning, in thy temples and pining for seeing thy like

The circling waves of Time cannot affect thee. Thy throne is beyond the reach of Death, old Age and Wants—O Thou, the calm spectator of the stage of Universe

T C Pandia

Christian Theology.

(By—Herbert Warren, London.)

I am requested to "send an article on Jain Belief", to do so will be but to gramophone out in a quite mechanical way stereotyped records void of life and known already only too well by those for whom they would be written. I prefer, therefore, to write, if I can, something hot from the internal volcano

"For my part, I must confess that he seems to me, in my ignorance, to have put down on paper, with a gentlemanly independence, whatever came first into his head, but you, perhaps, are aware of some law of composition which guided his sentences into that particular order."

This is quoted from Plato's dialogue between the dramatic character Socrates and his friend Phaedrus in the dialogue headed Phaedrus. In writing this article I also must be allowed to put down on paper whatever comes first into my head, whether or not it be with a gentlemanly independence I cannot say. But one might very well ask the question, Why should that which first comes into one's head be the wrong thing? Why should not the fact of its coming first be a sign that it is the right and proper thing with which to begin?

However, all that is nothing but talk, and perhaps introductory. Miss Marie Corelli wrote a book called "Open Confession to a Man from a Woman." It was her last romance. I feel that I would like to, if I dare, write an open confession to myself about the belief in God in which I was brought up, the belief which all the people now round me still hold, the belief which all orthodox printing presses here in London always support and expose, and the belief found in the novels of good writers of recent times; it is a belief which I have for forty years been trying to get rid of, and still I find it lingering in me, still feel that these people are speaking the truth, whereas I know they are not, still feel some shame and guilt when reading or hearing pious Christians proclaiming their God, how can I clear myself of this self-accusation and plant the accusation in its right place upon these proclaimers? Are they really right, and am I wrong? Whose is the infidelity, theirs or mine? Who is false to the truth, they or I? Christian theology, as I understand, it teaches that God will punish me if I behave in accordance with the nature he gave me.

What is it,—to start anew,—that Christians appreciate, cling to, and revere in their belief in their God? Joseph Addison in his essay "Trust in God" says "Man, considered in "himself, is a very helpless and very wretched "being. He is subject every moment to the "greatest calamities and misfortunes. He is "beset with dangers on all sides, and may "become unhappy by numberless casualties "which he could not foresee, nor have pre-"vented had he foreseen them. It is our "comfort, while we are exposed to so many "accidents, that we are under the care of "One who directs contingencies, and has in "His hands the management of everything "that is capable of annoying or offending

"us; who knows the assistance we stand in "need of, and is always ready to bestow it "on those who ask it of Him."

Here is clearly set out what it is that Christian will not relinquish, he will not relinquish the thought that there is someone looking after him and protecting him, the feeling of need of a protector is in this case the cause of the belief in the theology that one finds all around one here in this part of the world. And in the Bible we find "The Lord is my shepherd, I shall not want," Psalms 23, first verse."

Here again is the feeling of comfort and safety in the thought of there being someone else upon whom to rely for things we believe ourselves incapable of procuring And George Macdonald, in his novel "Donald Grant" makes the remark about the hero that he had confidence in God and his own powers as the gift of God.

Powers are not the kind of thing that can be given; they inhere. Powers are the ways in which things behave Why be content to let other people do things for you? Why not do them oneself? Why belittle the powers of one's own soul? And surely the doings of another being are no concern of ours when we want to be doing things ourselves; that which is done by others is not done by me; what is done by me matters If any other being called God does things, his doing is not my doing and my doing is not his doing, if I cannot get the things I want because of weakness I should (I will not say I am) be content to go without the things I am too weak to procure. And Addison must have forgotten when he wrote the above that the very calamities he wishes to be relieved of are, upon the current theological doctrine, themselves the doings of the One who directs the universe; otherwise it must be assumed that things happen against his will, and if he is content to allow such events, how foolish to ask him not to?

Of course, it is a serious business, and we need to know upon what we can rely and place our trust in; and the belief held by the few readers for whom this is written as well as by myself is that our own right life, the belief on which I am asked to write an article, accompanied by a right belief can be quite well relied upon to bring us all that those who believe in the ordinary Western theology hope to get; and here of course comes the need of knowing what is right life and what is right belief, and who can tell us these things when we ourselves do not know them? The answer, the Jain answer, of course is, those souls who have by their own efforts reached omniscience and are able to tell us all about it That's all

H Warren, London 8 October 1928

Jainism-a few words.

(By — A. N. Upadhye, Willingdon College, Satara)

All men that live are one in circumstance of birth,
Diversities of works give each his special worth.

— *Kural.*

No clime nor country can extinguish man's burning desire, for happiness and freedom, which is natural in every human heart. It is no crime to be independent of the external forces to which we are yoked from times immemorial. It is not meant here to write about the political freedom, the discussions about which are afloat in the atmosphere of the day. Mere desire for happiness can not make any one happy. Mere desire for food can not quench any one's hunger. Every one speaks about happiness but what is this happiness after all? A snarling dog is satisfied with a piece of dry bread, a weeping child is satisfied into silence by a toy, a failure-student is satisfied when he is promoted to the higher standard, a candidate who has appeared for the University examination is satisfied with a brilliant success therein, a merchant given to speculation is satisfied with a large profit, a youth is satisfied when he finds a fair companion for his worldly career, a scholar is satisfied with a garland of fame. If mental satisfaction means happinees, wherein does it consist then? From the above quoted examples one can see how satisfaction varies from individual to individual, and all the time it is transitory and ephemeral. Then is it this happiness that we want? No. No happiness can be said to be eternal as long as it depends upon external conditions. Who knows when the hand of eternal time, will snatch away our object of satisfaction and we would be left to weep in the wilderness? Man is not always the master of what are called external conditions. Then, Man if he wants to enjoy real happiness, should not depend upon the satisfaction that arises out of external conditions. The real happiness is lying dormant in every one of us but it is not displayed in all its effulgence as it is eclipsed by external forces foreign to its own nature. Thus we come to the conclusion that the ideal of Man is eternal happiness which is not dependent upon external conditions, and to attain that ideal, the gross dust of external forces should be completely removed so that the inner nature of Man would be clear and transparent where the Omniscient and Omnipotent divinity can be developed ultimately into fullness.

When a man is struggling hard to attain this end, various ultimate problems he will have to solve. Man possesses a brain with inverted commas and hence these ultimate problems lie beyond the pale of his solution. These problems are not material entities which can be dealt without physical senses. Neither the eye can see them nor the hand can feel them. Even the domain of reasoning is not sufficiently comprehensive to cope with these transcendental problems. Reason, however forcible and systematic, has its field limited, for "Reason" says Jeremy Taylor "is such a box of quick silver that it abides nowhere, it dwells in no settled mansion; it is like a dove's neck, and if we inquire after the law of nature by the rules of our

reason we shall be as uncertain as the discourses of the people or the dreams of the disturbed fancies "* Everey one must admit his mental incapacity and kneel humbly before those saviours of mankind who have reached the ultimate ideal with practicable means; from them we must get guidance and directions. The scope of the solution of these problems lies far beyond some material calculus and even the field itself stretches far beyond the boundaries of this mundane existence. The laws that are applicable here are not the same as those that modern discoverers have found out, The glass that can see the distant stars cannot see the living star that is in every one of us Newtons and Galileos are pigmies in this field, They are only deciphering the preface, the body of the book is yet greek and latin to them This field begins where various sciences stand ashamed with their heads stooped. These problems cannot be solved by merely stamping them as pure myths of lazy and idle, oriental brains Inspite of the materialistic atmosphere all about, the scientists are now gradually getting glimpses of something beyond this world, but that something is only a something as yet. We must courageously face all these problems Humbly we should receive the directions from those who are professors of this field.

Who am I? What is my relation with this world? What would become of me afterwards? What is my ideal? These are some of the questions which every of us must solve India has been often called a cradle of religions and it is really so Without religion humanity has no better prospect before it Here I may quote a brilliant modern thinker 'Civilization" says G Bernard Shaw " cannot survive without religion It matters not what name we bestow upon our divinity—Life force, Elan vital, creative evolution—Without religion life becomes a meaningless concatenation of accidents I can conceive of salvation without God but I cannot conceive of it without religion .... Evolution is a mystical process. Darwinism, a mechanical doctrine, destroyed religion but gave us nothing in its place It gave an air of science to moral and political opportunism and to struggle-for-life, militarism It engulfed Europe yesterday in the world war The cause of Europe's misery is its lack of religion" Many religions have sprung from the fertile field of India and the ultimate aim of all religions to help individuals to solve the above proposed questions.

* quoted in Salmond's Jurisprudence, Page 43.

Jainism, as a religion belonging to the most ancient period of Indian history has attempted all such ultimate problems Jainism stands as a champion of liberal spirit, all-sided thinking, and critical inquiry in the course of the solution of these problems Let us first see what is the method of inquiry that Jainism teaches. Various religions of India have quarreled over the colour of the shield and the shape of the elephant being baffled by the drink of orthodoxy and prejudice. But Jainism says 'All of you are right and all of you are wrong' Some might object to this as self contradiction But there is no self contradiction A man makes some observation and thinks that his view is the only possible view. Partially he may be true but after all it is partial To declare a part as whole is wrong When Vedantins say 'I am Brahman' Jainism pities them as one sided and Jainism interprets it by saying that every individual soul has the potentiality to attain Brahman Thus it is on the stage of Jainism—as Vidyavaridhi Champat Rai remarks somewhere—that all such onesided views can be conciliated, Hegel's philosophy created wonder in western countries and Jainas might

say that Hegel had to learn something more from Jainism Even the staunch opponent of Jainism—I mean Sri Sankaracharya-had to take help of the Jaina system of stand-point reasoning when he had to read his Absolute Monism in the philosophy of Upanishads. The very fact, that the different schools of Vedanta base their tenets on Upanishads and yet differ among themselves on some of the cardinal doctrines, shows that Upanishads do not contain any systematic philosophy as such, but rather they contain a collection of deep philosophical reflections springing from the fertile and intuitive heads of Indian sages, at various periods of Indian history In establishing his Absolute monism Sri Sankaracharya had to explain many passages of contradictory import and he has explained them on the stregth of व्यवहारत: and परमार्थत: which are nothing but the व्यवहार and निश्चय नय of the Jains Many Jaina philosopher-saints who lived long before Sankaracharya, have adopted such stand-points of reasoning These are two essential stand-points which Jainism uses to explain the above proposed questions. Their application in the course of inquiry we must see

This world consists of substances whose characteristic is existence Take a living man and a dead body What difference is observed? This one instance shows that man is not mere flesh and bones, There is something—something—intangible behind these and this something cannot be perceived by our senses And this is what we call 'I'. Jainism calls this as जीव or soul. The characteristic of this soul is consciousness, attended by tendency (?) towards Cognition and Knowledge, it is formless, it is the architect of its own fortune; it is often found embodied, it is wandering in this worldly whirlpool of births and deaths because of its being in the company of gross forces, created by the mental, verbal and physical activities, what are technically called as Karmas. The ultimate aim of the soul is full freedom from these forces that are eclipsing its natural qualities of Omniscience and Omnipotence Such is the short story about this 'I' embodied in various births and acting on the stage of this world.

The soul, being in association with various Karmas, is moving on in the wheel of transmigration, taking on new bodies and leaving the old ones as its Karmas would have it. Fresh Karmas the characteristic of which is contradictory to that of the soul inflow into the soul on account of mental, verbal and physical activities Just as it is easy for particles of dust to stick to the body of a person when it is be smeared with oil, so it is more easy for particles of matter to inflow into a soul when its original nature is ruffled by certain thought activities First then there are the "reprehensible thought activities" which are followed by the inflow of gross matter and thus various types of Karmas are produced Jainism teaches humanity how to stop this inflow of Karmas by means of restraining mind, speech and body and by carefulness of activities and so on. Mere stoppage of inflow will not suffice. We must always struggle to remove the already deposited Karmas by performing penances and so on. The soul, which was like a dim mirror dusted by Karmic-accumulation, now becomes transparent and clear when all the Karmic dust is removed Such is the outline of the natural path which Jainism has taught to the world in order that every being should be free from the clutches of Karmas. Then what is called Liberation or Moksha is attained The complete annihilation of, and the full freedom from, the clutches of Karmas is known as Moksha This end-the ultimate ideal-cannot be attained through the favour or some imaginary being. "Jainism aims not at turning mankind into an army of hungry beggars

complete liberation every soul attains the for ever begging for boons" At the stage of status of ideal Divinity, In this highest state the soul is enjoying, (?) eternal freedom This whole course has been chalked out by Tirthankaras who were men like ourselves-ofcourse in response to the circumstances of that hoary antiquity; they followed this path of spiritual progress and attained the glorious ideal which is hoped for every aspiring soul Thus they stand as ideals to the workers on this path. They are our Gods, not as creators,—the idea of creation by some agency is but a fancy of the primitive mind based upon false analogy—, but as guides on the path of salvation. The Jainas worship them not with any desire of boons but that "Lives of great men all remind us, we can make our lives sublime." Look at the Jaina prayer :—

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये॥

श्रीमत्पूज्यपादाचार्य।

The routine theological conception of a God distributing favours and frowns to his votaries is lacking in philosophical profoundity and logical acuteness It is only an anthropomorphistic idea based on the analogy of a king distributing favours and punishments. Practically it may appeal to the mass but this is very low and poor estimation of a philosophical criterion, Inspite of all those lame explanations, vain would be human effort if God is to bestow favours

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा।
फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्॥
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटम्।
स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा॥

—श्री अमितगति।

Such is the ideal, individual independence that Jainism has taught to the world—with no distinction of nationality, caste or creed.

What is this world? This physical world as the modern scientists say is uncreated and eternal. This is in no way new to the votaries of Jainism Jainism teaches that this Universe is the automatic outcome of activities of substances, governed by the laws of motion and rest, undergoing formal changes due to time in the vast dome of space. As pointed out above the idea of creation by an agent is not rational and as such it is never accepted by Jainism Some people say that this world is the only reality and there being nothing beyond this, one should take the full advantage of worldly enjoyments Thus they are irresponsibly given to various kinds of pleasures and thereby they incur various Kamas and suffer various kinds of miseries There are others who say that this world is unreal and everything is unreal as though this very statement of theirs can escape this stamp of unreality which they irrationally throw on the whole existence This is arguing from two poles and they are not sure of their very stand from which they declare their tenets But Jainism takes its stand on the equator and declares what is the real nature of this world Things of this world cannot be said to be absolutely real or absolutely unreal True nature of things cannot be explained by rushing rashly into absolute statements Thus the things of this world are in a sense real and in a sense unreal From the stand point of their substance (निश्चय नय often known as द्रव्यार्थिक नय in this particular case) the things of this world are eternal and real and from the standpoint of their form व्यवहार नय often known as पर्यायार्थिक नय in this particular case) they are unreal and transitory. Take a golden ring, melt it, the ringness which was only a momentary form vanishes away but all the while the reality of goldness is maintained everywhere That, matter is indestructible, was is laid down by Jaina-philosophers thousands of years ago

As it is often misunderstood, Jainism does

not ask its votaries to renounce the world at once as full of misery. Lead the life and lead it well but do not forget the sublime ideal which is the ultimate end of all aspiring souls. Jainism teaches that salvation is not attainable only with Right Faith in your Guide and his words and the Right Knowledge of what I am, of what this world is and of what I have to be, but this Right knowledge preceded by Right Faith should be accompanied by Right conduct and then alone one is liberated. The internal purity, so much essential for the annihilation of Karmas, cannot be efficiently sustained without external purity And with this end in view Jainism has taught many principles of conduct to the whole humanity. Jaina teachers have laid down two sections in the Code of conduct, one for house—holders and the other for those who have renounced worldly ties. There are gradually rising stages on these paths of conduct, these stages are not the creations of any human head, not even of Tirthankaras but these stages are the systematic analysis of the development of the qualities in the soul. Jaina ethics is as sublime as anything, it is important from both social and spiritual standpoints of view Jaina ethical injunctions are not the orders of any military man who would punish us if we do not follow them. Jaina ethics is an ethics of universal brotherhood. Inspite of its importance it is very simplicity itself. Every man is asked to observe these five vows in their preliminary aspects: i अहिंसा, ii सत्य; iii अस्तेय, iv ब्रह्मचर्य and v अपरिग्रह. It is these very vows that become more and more severe when man rises step by step on the ladder of spiritual development What should be the ideal of conduct before every man is beautifully put in the following verse.—

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव॥
—श्री अमितगति।

There is no scope for irresponsibility and irregularity in the whole-field of Jaina ethics. As we rise to the higher stages of development the course appears rather hard But to one who is sincere nothing is difficult in this world. In spite of the charges of impracticability, Jaina ethics has wielded a great influence on many a master mind and "has produced excellent types of men-both monks and householders-and has offered real guidance and solace to many a seeking and believing votary."* Many Jainas, nay even non-jains, have followed and are following the Jaina rules of conduct even to this day Any man who sincerely follows them should not be afraid of The criminal procedure code. The Jail reports show how the number of Jaina prisoners is comparatively small. The Jainas are a peace-loving community all over India. They are found in all parts of India and in spite of the majority of orthodox people, to speak comparatively, their social status is in no way low And no City-street can produce a Jaina beggar. These are some of the direct effects of the high moral standards of Jaina ethics placed before its votaries. In the end I cannot remain without warning my Jaina brothers that the Jaina community is not sufficiently enthusiastic in keeping fresh, their moral standards, and on account of this the Jaina community is gradually falling a victim to many a moral corruption.

The influence of अहिंसा is very well seen in some of the modern movements such as 'Non violent—Non-co-operation', 'The golden order' and many others What are these? These are completely based upon the principle of अहिंसा of which Mahatma Gandhiji speaks.

*Dr. Belvalkar.

in honorific terms in his 'Experiments with Truth' The history of the influence of अहिंसा on other religions is in itself an interesting problem. It is this principle which stopped the blood-floods of Vedic ritual. The principle of अहिंसा was long patronized by kings of various dynasties both in Southern and Northern India The principle 'Do not kill' is very narrow when compared with the all embracing principle of अहिंसा the father and fountainhead of Jaina ethics Some think it is impracticable, it is the owl that, has no power to open its eyes in the broad day light, hates the sun The principle of अहिंसा is not a practical absurdity But it appears so only to him who has not tasted its true spirit from Jaina philosopher—saints like अमृतचन्द्राचार्य the famous author of पुरुषार्थसिद्ध्युपाय

Inspite of the idealistic spirit, predominantly breathing in Jaina literature, Jainism in general, and Jaina literary writers in particular, are not blind to the necessity of mental recreations and physical comforts of an ordinary lay-man The proof lies in the fact that Jaina literature is not only confined to the fields of dry philosophy, but there are many valuable Kavyas and many works on other branches of literature—on politics, medicines, mathematics, architecture, cookery and such other branches Two of the important languages of the South had been almost monopolised by Jainas and they have attained their present stage of dignity only through the efforts of Jaina writers and thinkers Jainas are not blind to the appreciation of beauty as can be seen from the fact that Jaina Architecture plays an important part in the history of Indian Architecture

Jainism has taught its votaries how to live a responsible life in this world and how to evolve out of oneself, the Divinity that is hidden under the sway of Karmic forces. Our world—the modern mechanical world has to learn much from Jainism and this end can be easily attained only when the rich Jainas of India undertake the work of publishing Jaina works many of which have not seen even the day light It is really a matter of pity that many valuable books of Jaina Metaphysics are lying buried in the deep and dark caves of Southern India—some of our Bhattarakas have become mere money markers in the name of these books Money they want ; Valuable works are being reduced to dust We are proving ungrateful to our ancient Acharyas whose back-bones were bent when working over these Books. Jaina books must be published in various languages. Thus alone the brilliant gems of Jainism can enlighten the aspiring souls.* Jaya Jinendra.

अज्झयणमेव झाणं पंचेंदियणिग्गहं कसायं पि।
तो पंचमकाले पवयणसारब्भासमेव कुज्जाहो ॥
— रयणसार ९५.

दिव्य दीपावली ।

कुटिल कुरूढ़ियोंका जाल विघटाते चलो,
लाते चलो जातिमें नवीन जीवनावली ।
सरल अहिंसा तत्व विस्तृत बढ़ाते चलो,
विश्वको सुनाते चलो वीर विरदावली ॥
कलुषित कायरता शीघ्रतः हटाते चलो,
गाते चलो वीरताकी मंजुल पदावली ॥
सत्य ज्ञान जागृतिकी ज्योतियां जगाते चलो,
बंधु यों मनाते चलो "दिव्य दीपावली ॥"

वत्सल ।

*My readers will please excuse me for my inability to quote original texts and authorities. I would have done it most gladly but all my texts, cuts and notes which I should have quoted word by word, are beyond my reach as I am out of my station at present,

छपरौलीकी स्त्रियोंमें चरखासे प्रेम व दस्तकारी।

यों तो असहयोगके जमानेसे भारतके अधिकांश प्रान्तोंमें विस्मर्ण किया हुआ चर्खा पुनः चालू होगया है परन्तु उत्तर प्रान्तके मेरठ जिलेमें उसका काफी प्रचार दृष्टिगोचर हुआ। वहांपर कपासकी पैदावारी भी अच्छे रूपमें होती है। इस प्रान्तके ग्रामोंमें ऐसे बहुतसे मनुष्य हैं जो चर्खा कातकर ही अपनी आजीविका चलाते हैं। मैंने तो वहांतक सुना है कि कपासको औटना और धुनकर उसकी रुई बनाना तथा पोनी बनाना आदि काम यहांके लोग खुद कर लेते हैं।

इस प्रान्तका हाल अन्य प्रान्तों सरीखा व खासकर मध्यप्रान्त सरीखा चर्खेके लिए नहीं है। जहां दूसरे प्रान्तोंमें व हमारे मध्यप्रान्तमें नीच लोग ही चर्खा चलाते हैं ऐसा हाल इस प्रान्तका नहीं है। यहां तो ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य सभी वर्णवाले चर्खा चलाते हैं और उत्साहपूर्वक चलाते हैं।

छपरौली (मेरठ जिला) एक अच्छा कस्बा है जिसकी जनसंख्या सातहजार है उसमें दोहजारसे ऊपर चर्खे चलते हैं इसी प्रकार अन्य ग्रामोंका भी हिसाब समझिये। इसका जबरदस्त कारण यह है कि यहां अमीर और गरीब सभी चर्खासे प्रेम रखते हैं।

पाठकोंके विश्वासके लिए मैं छपरौलीके जैन गृहोंके चर्खोंका कुछ परिचय कराता हूं। तथा वहांकी जैन मा बहिनोंमें चर्खेमे कितना प्रेम है व उनकी दस्तकारी कैसी है इसपर भी कुछ कहनेका साहस करता हूं। आशा है पाठक महाशय उसका मनन करेंगे।

छपरौलीमें जैनियोंकी कुल गृह संख्या ७० है। सभी दालरोटीसे आनन्दमें हैं बाकी कोई इतना मुहताज नहीं है जो चर्खेपर ही अपना बसर करता हो। उनका तो चर्खेका चलाना यही बतला रहा है कि—"अकर्मण्यताको छोड़ो, उद्योग करो। चर्खा भारतवासियोंका पुराना उद्योग है इसलिए इसे अपनाना प्रत्येक भारतीयका प्रथम कर्तव्य है" तभी तो लिखते हर्ष होता है कि छपरौलीके ७० घर जैनियोंमें १०से ऊपर चर्खे चलते हैं। ऐसे बहुत कम घर हैं जिनमें केवल एक ही चर्खा चलता हो परन्तु अधिकांश घरोंमें २ चर्खे चलते हैं तथा कोई २में तीन तक चलते हैं। अब मैं यह बताऊंगा कि इतने चर्खे घरोंके अंदर कौन चलाता है। चर्खोंको चलानेवाले पुरुष नहीं हैं। उनको चलानेवाली हैं उद्योगशील उन घरोंकी (स्त्रियां) देवियां। वहांपर उन्होंने चर्खेको अपने हाथमें ले रक्खा है। वहां कोई भी ऐसी स्त्री देखनेमें नहीं आई जो चर्खा चलाना न जानती हो। वे अन्य कामोंको गौणतासे सम्पादन करती हैं परन्तु चर्खेको उन्होंने प्रधानता दे रक्खी है। किसी किसीके घर १ वर्षमें २००)का और किसी२के घर १००)का सूत तैयार होता है। और तयार करनेवाली वहांकी उद्योगी स्त्रियां ही हैं।

चर्खेपर सूत निकालनेके अलावा वे दस्तकारीका भी अच्छा काम सम्पादन करती हैं। जैसे—सुजीनी (पलंगपोस), गलीचे, रूमाल—चार तरहके, बनयायन (करसियासे बनाती हैं) और

गणराज गौतम ।

(लेखक—पं० मूलचन्द जैन वत्सल—बिजनौर)

(१)

भारत वर्षके समस्त प्रदेशोंकी सुन्दरता नष्ट करनेवाले मगधदेश अन्तर्गत वेदपाठियोंकी उच्च ध्वनिसे निरंतर ध्वनित रहनेवाले ब्राह्मण नामक रमणीक नगरमें ब्राह्मणोचित कर्तव्योंमें निरत श्रुतविज्ञ शांडिल्य विप्रराज अपनी शील गुण-भूषिता स्थंडिला पत्नी समेत सुख शांति पूर्वक निवास करते थे।

विप्रराज शांडिल्यके ज्योतिष्, वैद्यक, अलंकार न्याय, सामुद्रिक, आदि समस्त लौकिक शास्त्रोंके पारंगत, क्रियाकांड और वैदिक धर्म शास्त्रोंमें अद्वितीय ज्ञान और प्रतिभा धारण करनेवाले गौतम, गार्गीय और भार्गव नामक तीन पुत्र थे। यद्यपि तीनों पुत्र समस्त शास्त्रोंमें निपुण थे, किन्तु महात्मा गौतमकी ज्ञान शक्ति, प्रतिभा और विद्वत्ता अत्यन्त हृदयग्राही और सर्व-श्रेष्ठ थी। उसने अखण्ड विद्वत्ताके प्रतापसे उस समयके बड़े २ विद्वान् ब्राह्मण पंडितोंको परास्तकर अपनी विद्वत्ताका डंका बजा दिया था। पांचसौके लगभग विद्वानोंने उसके शिष्यत्वको स्वीकार किया था किन्तु ब्राह्मणराज गौतम बड़े अभिमानी और उग्र स्वभावके व्यक्ति थे, उन्हें अपनी चमत्कारिणी विद्याका बड़ा अहंकार होगया था। वह संसारमें अपनी विद्याके सामने किसीके ज्ञानको कुछ समझते ही नहीं थे इस प्रकार वह उच्छृंखल और महा अहंकारको धारण करनेवाले गौतम अपनी शिष्य मंडलीके सम्मुख अपने विद्वत्तापूर्ण व्याख्यानोंको देते हुए और समस्त शिष्य मंडली द्वारा विनय, नमस्कार पूजा और प्रशंसाको प्राप्त होते हुए कालक्षेपण करते थे।

(२)

प्रातःकालका समय था, प्रकृति निस्तब्ध और शान्त थी, भगवान् महावीर प्रातःकालीन दृश्यका अवलोकन कर रहे थे। उन्होंने देखा प्रातः-कालीन रक्तलालिमा क्रमशः नष्टप्रायः होगई, इस दृश्यसे अनायास संसारकी नश्वर अवस्थाकी ओर उनका हृदय आकर्षित हुआ। वह विचारने लगे—ओह! यह सांसारिक अवस्थाएं कितनी नश्वर हैं किन्तु यह अज्ञानी संसारीक मानव महा बलवान मोह सम्राटके आधीनस्थ हुए सांसारिक विलास-वासना और विषयप्रलोभमनोंमें अनुरक्त हुए—तन्मय हुए—अपने आत्मज्ञानसे—सत्कर्तव्यसे वास्तविक सुख साम्राज्यसे किस प्रकार उन्मुख होरहे हैं—आह! स्वार्थके वशवर्ती हुए—नश्वर धन वैभवमें ही सुख कल्पना करनेवाले यह अज्ञानी प्राणीसमुदाय अपनी किंचित् स्वार्थ-पूर्तिके लिए किसप्रकार अत्याचार, अनाचार और अन्यायको अपना शस्त्र बना रहे हैं, निर्बल, और असहाय जंतुओंपर किसप्रकार कष्टका समुदाय ढा रहे हैं। ओह! केवल मात्र किंचित् पुरित लालसा तृप्तिके लिए ही न यह इतना कुकृत्य कर रहे हैं। वास्तवमें यह मानव समु-दाय अत्यन्त अज्ञानी है, यह धर्मके वास्तव रहस्यसे ज्ञानसे अनभिज्ञ है, इन्होंने केवल क्रि-याकांडमें ही ज्ञानशून्य कायक्लेशमें ही आत्मो-द्धारकी, मानव कर्तव्यकी इतिश्री समझली है।

ओह ! मानव कितना अज्ञ है। वह सांसारिक बंधनोंमें किस प्रकार जकड़ा हुआ है।

तब ऐसी परिस्थितिमें मेरा कर्तव्य क्या है, क्या मैं इन संसारी मानवोंको इस प्रकार अज्ञानताकी गोदमें गाढ़ निद्रा लेते हुए अवलोकन करता रहूं ? इन्हें इस अन्याय इस अत्याचार इस आत्मपतनके पथपर सानंद क्रीड़ा विनोद करने दूं नहीं। मैं यह नहीं देख सका, नहीं मैं अब कदापि देख सका। मैं इन भोले मानवोंको सत्कर्तव्यका दिव्य, सरल पथ प्रदर्शित करूंगा, इनके हृदयोंमें सद्ज्ञानके दिव्य प्रकाशको प्रकाशित करूंगा, इन्हें सच्चे आत्मसुख और सच्चे कल्याणके मार्गपर ले जाऊंगा। वह कैसे ? सत्य उपदेशक बनकर सन्मार्ग प्रदर्शक बनकर, हां तब उसके लिए मुझे इन सांसारिक राज्य प्रलोभनोंकी रस्सियोंको चकनाचूर करना पड़ेगा। इस गृहस्थाश्रमके पूर्ण आत्मोन्नतिरोधक संकीर्ण क्षेत्रसे विस्तृत महाव्रतके क्षेत्रमें पदार्पण करना पड़ेगा। तब हां वही होगा कि मैं तपस्वी बनूंगा, इस समस्त राजवैभवका परित्याग करूंगा।

एक क्षणमें उनका हृदय वैराग्यकी तीव्र तरंगोंसे आविर्भूत होगया। उन बालब्रह्मचारी उन अद्वितीय आत्मविजयी उन प्रबल आत्मबलशाली मदनविजयी महावीरने उसी क्षण सांसारिक माया जाल त्यागनेका संकल्प करलिया। देवताओंने उनके इस जगदोद्धारक कार्यकी इस विश्वकल्याणकारिणी प्रतिज्ञाकी पूर्णरूपसे अनुमोदना की। एक रत्नजड़ित सुन्दर पालकीमें आरूढ़ कराकर महा महोत्सव पूर्वक जय २ शब्दसे गगनको पूरित करते हुए रमणीक काननकी ओर ले चले।

(३)

विशाल पादपों और दीर्घ चोटियोंसे संयुक्त पहाड़ोंसे भूषित विपनमें देवताओंने भगवानकी पालकीको उनकी आज्ञानुसार रख दिया। वह पालकीसे उतरे और समस्त रत्नजड़ित बहुमूल्य दिव्य आभूषणोंको जीर्ण तृण सदृश अकिंचन समझकर उन्हें उसी समय उतार कर फेंक दिया। अपनी सुकुमार किन्तु बलशाली भुजाओं द्वारा समस्त केश पाशोंको उपाड़कर दिगम्बर मुद्राको धारण कर विशाल शिलाके उपर ॐ नमः सिद्धेभ्यः का उच्चारण करते परम जैनेश्वरी दीक्षाको धारण किया। वह कठिन तपश्चरणमें तन्मय होगए। देवता तथा मानवोंने उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणामकर अपने स्थानको प्रस्थान किया।

भयंकर वनजन्तुओंसे परिपूर्ण वनमें भगवान् महावीर तीव्र तपश्चरणमें तल्लीन थे, सुमेरुशिखर सदृश उनका निश्चल, निश्चेष्ट, निर्भय और निर्विकार घोर तपस्याकी उज्वल प्रभासे उद्दीप्त समस्त शरीर दर्शनीय था, उनके मुखमण्डलसे अनिर्वचनीय शांति और प्रकाशकी ज्योति स्फुरित हो रही थी। प्रलय, तूफान, वर्षा, हिम, उष्णकी अनेक असहनीय बाधाओंका उनके अविनश्वर आत्मापर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था। तो क्या पाषाण स्तम्भ था नहीं। सम्भव है पाषाण स्तम्भ प्रलयकाल की तीव्र आंधीसे भग्न होजाय ज्वलित होजाए, किंतु उनका हृदय अडिग अडोल और अचल था।

भ्रमण करते हुए रुद्रने उन्हें ध्यानमें इस प्रकार मग्न देखा, वह पूर्व जनित कुसंस्कारसे उनकी इस प्रकार शांति सरलता और निष्कंपताको

सहन नहीं कर सका, पूर्व जन्मके प्रबल प्रकोपके कारण उनका अवलोकन कर उसके कुत्सित हृदयमें दारुण द्वेषकी दाह दहकने लगी, वह उन्हें उस निश्चल ध्यानमुद्रासे विचलित करनेका प्रयत्न करने लगा। भगवान् महावीरको ध्यान च्युत करनेमें उसने अपनी समस्त दानवी शक्तिका प्रयोग कर डाला, किंतु उसे अपने समस्त दुरितपूर्ण कुकार्योंमें असफल मनोरथ होना पड़ा। भयानक उपसर्गों और आपत्तियोंकी आंधीके सम्मुख भगवान् महावीरका हृदय सुमेरु अविचल और अडिग बना रहा।

रुद्र पराजित हुआ। उसे अपने दुष्कृत्यपर बड़ी ग्लानि और लज्जा हुई। वह पश्चाताप करता हुआ उनके चरणकमलोंके समक्ष अपने अपराधोंकी क्षमा याचना करता हुआ अपने स्थानको चला गया।

दृढ़ व्रती महावीर अनंत शक्तिशाली भगवान् महावीरने कठिन आपत्तियोंके सम्मुख पूर्ण विजय प्राप्त की और आत्मशक्तिसे बढ़े हुए उन भगवानने अपनी समस्त आत्मीय दिव्य शक्तियोंका कर्मजेता ध्यानकी संरक्षकतामें पददलित हुए—क्षीण हुए, मोह सुभटपर संपूर्ण शक्तिसे आक्रमण किया। ध्यानकी उस महानशक्तिके सम्मुख मोह अपनेको अब एक क्षणभर भी स्थिर नहीं रख सका। वह अपने संज्वलन लोभ सन्मित्र संयुक्त वहां सुरक्षित नहीं रह सका। उसका पतन हुआ, वह समूल नष्ट होगया।

भगवानके निर्मल आत्मामें क्रमशः सम्पूर्ण आत्मीय गुणोंका विकाश हुआ, केवलज्ञान और केवल दर्शनकी दिव्यशक्तियोंसे भूषित होकर वह समस्त पदार्थोंकी त्रिकालवर्ती पर्यायोंका अवलोकन करने लगे, उनके ज्ञान दर्पणमें संपूर्ण विश्व पदार्थ स्पष्ट झलकने लगे।

आत्मविजयी भगवान महावीरका अलौकिक केवलज्ञान साम्राज्य प्राप्तिका महा महोत्सव मनानेके लिए स्वर्गाधिपति इन्द्रने समस्त देवताओंके समूह संयुक्त आश्चर्यजनक विभूति भूषित होकर मानवलोकको प्रस्थान किया एवं उनके अभूतपूर्व केवलज्ञान साम्राज्यकी महान महिमा प्रदर्शित करनेके लिए उसने अपने कोषाध्यक्ष कुबेरको भगवानका त्रैलोक्य मनोहर समवशरण रचना करनेकी आज्ञा दी।

कुबेरने क्षण मात्रमें मानवोंके नेत्रों और हृदयोंमें आश्चर्य हर्ष और सुखकी सृष्टि करनेवाले दर्शनीय समवशरणका निर्माण किया। मानव, पशु, पक्षी और देवताओंका समूह भगवानके समवशरणमें आकर उनके संसार तारक चरणकमलोंमें अपने मस्तकको झुकाकर भक्तिमें तल्लीन होने लगा।

समस्त प्राणी भगवानका दिव्य उपदेश श्रवण करनेके लिए लालायित हो उठे। क्रमशः तीन घंटे व्यतीत हुए किन्तु यह क्या ? भगवानकी दिव्य ध्वनि प्रकट नहीं हुई। महामना इन्द्रके हृदयमें आशंकाएं उदित होने लगीं, उसने उसी समय अपने दिव्यज्ञान द्वारा इस विषयमें विचार किया, उसे एक क्षणमें इसका कारण विदित होगया। वह अपने हृदयमें कहने लगा—बस यही एक कारण है कि भगवान्‌की दिव्यध्वनिका व्याख्यान करनेवाला कोई भी गणधर इस स्थानपर उपस्थित नहीं

है। यही कारण है कि उनकी दिव्यध्वनि प्रकट नहीं हुई। तब इसका क्या उपाय है। हां उपाय है और केवल एक ही उपाय है वह यही है कि उस अभिमानी गौतम ब्राह्मणको यहां लाना होगा। वही इस सभाका प्रथम गणधर होगा। तब मुझे यह कार्य शीघ्रतः करना होगा। सुरराज गौतमको अपने कौशलद्वारा लानेके लिए समोशरणसे चल दिए।

(४)

शिष्यमंडलीसे सुशोभित मुखमंडलमें प्रतिभाके प्रबल तेजसे मंडित पांडित्यका अतुलित अभिमान धारण किए दीर्घ शिखाधारी गौतम अपनी व्याख्यानशालामें विराजमान थे। उनका हृदय अत्यंत प्रसन्न और सुखमग्न था। उन्होंने अपनी समस्त शिष्यमंडलीकी ओर गंभीर दृष्टिसे अवलोकन किया। समस्त शिष्यगण सरल और गंभीर भाव धारण किये हुए गुरुराजके मुखारविंदसे निकलनेवाले गंभीरतम उपदेशको श्रवण करनेके लिए उत्सुक दिखलाई पड़े। कुछ समय पश्चात निस्तब्धताको भग करते हुए ब्राह्मणोत्तम गौतमने अपना पांडित्य पूर्ण व्याख्यान देना प्रारम्भ किया। इसी समय एक जराक्रांत ब्राह्मणने व्याख्यान सभामें प्रवेश किया और व्याख्यान श्रवण करनेकी इच्छासे वह एक स्थान स्थित होकर व्याख्यान श्रवण करने लगा। व्याख्यान प्रारम्भ हुआ, ब्राह्मणराजने अनेक सुयुक्तियों और उदाहरणोंसे अपने व्याख्यानके पुष्ट करनेका पूर्ण प्रयत्न किया था। उनकी व्याख्यान शैली, उनकी युक्तियों साधारण ज्ञानधारी व्यक्तियोंके हृदयोंमें आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली थी। सभा स्थित समस्त मंडलीने शांति पूर्ण व्याख्यान श्रवण किया। क्रमशः व्याख्यान समाप्त हुआ, धन्य धन्यकी ध्वनिसे आकाश मण्डल गूंज उठा, समस्त शिष्य गणोंने अपना मस्तक हिलाकर उस विद्वत्ता पूर्ण व्याख्यानकी पूर्ण प्रशंसा और अनुमोदना की। वृद्धब्राह्मण स्थिर रहा। महामानी गौतम अपनी इस अवज्ञाको सहन नहीं कर सका। उसने समझा संभवतः मेरा यह व्याख्यान उसे नहीं रुचा होगा। अस्तु; उन्होंने पुनः व्याख्यान देना प्रारम्भ किया। समस्त शिष्यगण मंत्र मुग्धकी भांति स्तब्ध होकर व्याख्यान श्रवण कररहे थे। ओजस्विनी भाषामें धारा प्रवाह रूपसे व्याख्यान देते हुए वह गौतम सरस्वती पुत्रसे प्रतीत होते थे। भाषण समाप्त हुआ। सभा स्थित मानवोंने पुनः जयघोष करते हुए व्याख्यानका उच्च स्वरसे समर्थन किया। वृद्ध ब्राह्मण स्थिर रहा। इसबार महामना गौतम अपने आश्चर्यकी सीमाको नहीं रोक सके। वह वृद्ध ब्राह्मणकी ओर तीक्ष्ण दृष्टिपात करते हुए तीव्र स्वरसे बोले—

ब्राह्मण, तुमने मेरे इस पांडित्यपूर्ण व्याख्यानका अनुमोदन नहीं किया और न अपनी संमति ही प्रगटकी तब क्या मेरा व्याख्यान तुझे सत्य प्रतीत नहीं हुआ? तब क्या मेरे सदृश महावक्ता इस भूमण्डलमें कोई विद्यमान है?

वृद्ध ब्राह्मणने कहा—हां! है।

समस्त शिष्य अपना मस्तक हिलाते हुए क्रोधपूर्ण स्वरमें कहने लगे—नहीं, कदापि नहीं। गुरुराजके सदृश प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति इस पृथ्वीमण्डलमें अन्य कोई नहीं होसका।

वृद्ध ब्राह्मणने शांति स्थापित करते हुए उसी प्रकार निश्चल स्वरमें कहा—हां है। मैं तुम्हें इसका प्रमाण अभी दे सकता हूं।

गौतमने कहा—अच्छा! मुझे विदित कीजिए वह अपने पांडित्यको स्थिर रखनेवाला कौन व्यक्ति है?

वृद्ध ब्राह्मणने गंभीरतापूर्ण स्वरमें कहा—गौतम! अपने पांडित्यका अहंकार मत करो। तुम्हारा ज्ञान है ही कितना? हां जब तुम जानना चाहते हो वह संपूर्ण श्रुतपूर्ण महान् पुरुष कौन है। अच्छा तब श्रवण करो वह हैं मेरे गुरुराज।

गौतमने उत्कंठापूर्वक कहा—वह कौन हैं? कहां हैं? उनकी विद्वत्ताका मुझे परिचय दो, मैं उनसे शास्त्रार्थ करूंगा।

वृद्ध ब्राह्मणने कहा—उनका परिचय? अच्छा ठहरो। मैं अभी तुम्हें उनका परिचय दूंगा। उनसे शास्त्रार्थ करोगे? तुम उनसे शास्त्रार्थ करोगे? अच्छा प्रथम मुझसे शास्त्रार्थ करो मेरे एक प्रश्नका उत्तर दो। फिर मेरे गुरुराजसे शास्त्रार्थ करना।

गौतमने कहा—तुम्हारे प्रश्नका उत्तर? हां दूंगा विप्रराज कहो! वह कौनसा प्रश्न है जो महामना गौतमकी तीक्ष्ण बुद्धिके सम्मुख उपस्थित रह सके।

ब्राह्मणने कहा—मेरा प्रश्न? आप उसका उत्तर देंगे? अच्छा श्रवण कीजिए। किन्तु इसके प्रथम आपको मेरी एक प्रतिज्ञा स्वीकार करनी होगी।

गौतमने कहा—ब्राह्मण कहो निःसंकोच रूपसे कहो, मुझसे क्या प्रतिज्ञा स्वीकार कराना चाहते हो, कहो। गौतम जिस प्रकार अपनी अखंड विद्वत्ताके विश्वासपर स्थिर हैं, उसी प्रकार आप अपनी प्रतिज्ञापर भी स्थिर रहियेगा।

ब्राह्मण—अच्छा! तब मेरी प्रतिज्ञा श्रवण कीजिए। "मेरी प्रतिज्ञा यही है कि यदि आप मेरे प्रश्नका प्रमाणीक एवं संतोषजनक स्पष्ट उत्तर प्रदानकर मेरी शंकाएं नष्ट करदें तब मैं आपका बनकर यावज्जीव आपकी सेवा करूंगा अन्यथा आप मेरे प्रश्नका समुचित उत्तर नहीं दे सकेंगे तब आपको निश्चयतः अपनी समग्र शिष्यमंडली समेत मेरे गुरुका शिष्य ही बनना पड़ेगा।"
कहिए आप मेरी उक्त प्रतिज्ञा स्वीकार करते हैं?

गौतमने कहा—ब्राह्मण अपने प्रश्नको निर्भयतापूर्वक कहो। गौतम इस प्रतिज्ञाको सहर्ष स्वीकार करता है। ब्राह्मणने उच्चस्वरसे अपना प्रश्न उपस्थित किया।

त्रैकाल्यं द्रव्य षट्कं नवपदसहितं जीवषट्काय लेश्या- ।
पंचान्ये चास्तिकाया व्रतसमितिगतिज्ञानचारित्रभेदाः ॥
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवनमहितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः ।
प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मतिमान् यः सवैशुद्धदृष्टिः ॥

उपरोक्त काव्य कह चुकनेके पश्चात् ब्राह्मण रूपधारी इन्द्रने कहा—विप्रराज गौतम? मेरे इस काव्यका आशय स्पष्ट भाष्य समेत प्रकट कीजिए।

प्रश्न श्रवण कर महामानी गौतमका हृदय अचानक विक्षुब्ध होगया, शुष्कपात्र समूह तीव्र आंधीके वेगसे जिस प्रकार पृथ्वी मंडलके ऊपर चक्कर लगाने लगता है, समुद्रकी तीव्र लहरोंमें जहाज जिस प्रकार झोंके खाने लगता है, विप्रराज गौतमका मन उसी प्रकार संशयकी तीव्र तरंगोंमें गोते खाने लगा। वह विचारने लगे—यह छह द्रव्य क्या? नव पदार्थ कौनसे? छह कायके जीव कौन? छह लेश्या क्या? पंचास्तिकाय

क्या ? ओह ! यह क्या है ? इस प्रश्नका उत्तर इस ब्राह्मणको मैं क्या दूं ? तब क्या मैं वास्तवमें अज्ञ हूं ? हां ज्ञात तो यही होता है। यदि मैं अज्ञ न होता तो क्या प्रश्नका उत्तर न दे सकता ! इसी प्रकारके विचारोंमें गौतम एक क्षणको विलीन होगया। उन्हें इस प्रकार विचारमें मग्न और निरुत्तर होते हुए देखकर वृद्ध ब्राह्मणने कहा—महाभाग गौतम ! मेरा प्रश्न श्रवण कर आप मौन क्यों होगए ? विप्रराज, अपनी समस्त बुद्धिकी शक्ति लगाकर मेरे इस प्रश्नका ही उत्तर दीजिए। अथवा क्या आप इसका उत्तर नहीं देसके हैं, तब पूर्व प्रतिज्ञानुसार मेरे गुरुका शिष्यत्व स्वीकार कीजिए।

गर्वित होते हुए गौतमने कहा—ब्राह्मण ! इस तुच्छ प्रश्नका उत्तर ! हां इस तुच्छ प्रश्नका उत्तर मैं तुझे क्या दूं ? चल मैं तेरे गुरुके समक्ष चलकर इस प्रश्नका उत्तर देते हुए उन्हें समझाऊंगा। किन्तु हां यह तो बतला तेरे गुरु हैं कौन ?

ब्राह्मणने कहा—मेरे गुरु ? क्या आप मेरे गुरुके नामसे अपरिचित हैं ? क्या उनकी विश्वविख्यात कीर्तिध्वनिने आपके कर्णकुहरोंमें प्रवेश नहीं किया ? तब क्या वास्तवमें आप मेरे गुरुका परिचय चाहते हैं ? अच्छा तब श्रवण कीजिए। " विश्वके अखिल पदार्थोंको हस्तामलक सदृश प्रदर्शित करनेवाले—अलौकिक दिव्य ज्ञानसे विभूषित, मानव एवं सुरसमूहसे सेवित पाद-पद्म, त्रैलोक्येश्वर भगवान् महावीर मेरे गुरु हैं। कहिए ! उनके विषयमें आपको कुछ शंका है ?

गौतमने कहा—अच्छा समझ गया। अरे ! वह अपने इन्द्रजाल विद्याके चमत्कारद्वारा मानवोंको विमोहित करनेवाला अपनेको सर्वज्ञ प्रदर्शित करनेवाला महावीर ही तेरा गुरु है ? अच्छा चल ! मैं उनसे अवश्य शास्त्रार्थ करूंगा और वहीं तेरे प्रश्नका उत्तर दूंगा। सुरराज यह तो चाहते ही थे। मन चाही बात श्रवण कर उन्होंने शीघ्रतः विप्रराज गौतमको अपने साथ लेकर समवशरणकी ओर प्रस्थान किया।

(५)

इन्द्रके साथ२ चलते हुए ब्राह्मणराज गौतमने दूरसे ही मानस्तम्भका विलोकन किया। भगवानकी समवशरणकी शोभा बढ़ानेवाले दिग्गज वादिगजोंके अहंकार पर्वतको नष्टभ्रष्ट करनेवाले उस विशाल मानस्तम्भका अवलोकन करते ही उनका समस्त मिथ्यामद विनष्ट होगया। उन्होंने सरलता पूर्वक भगवानके दिव्य समवशरणके अंदर प्रवेश किया। समवशरण मध्यमें बिराजे हुए दिव्य कीर्तिधारी भगवानके प्रभापूर्ण मुखमण्डलका अवलोकन कर गौतमका हृदय भगवान् महावीरकी दृढ़ श्रद्धासे आविर्भूत होकर नम्र हो उठा और उनका मस्तक भगवान्के चरणोंपर अपने आप झुक गया उसका समस्त ज्ञानगर्व गलित होगया।

मिथ्याभिमान नष्ट होनेके साथ ही उसके हृदयमें सद्विचारकी तरंगें उमड़ने लगीं। वह विचारने लगा—अहो ! जिन महात्माका इतना प्रभाव है, जिनके समवशरणकी इतनी महिमा है, समस्त देव, ऋषि महात्मा तथा मानव समूह जिनकी चरण सेवामें इस प्रकार उपस्थित रहता है—उन महात्मा महावीरसे मैं वादविवाद करके किस प्रकार विजय प्राप्त कर सका हूं ? खेद है, कि मुझे अपने

किंचित् अक्षर ज्ञानका इतना अभिमान था। किन्तु अब मेरा समस्त अभिमान इन दिव्य द्युतिधारी महात्माके ज्ञानके सम्मुख नष्ट होगया—मुझे ज्ञात होगया। वास्तवमें सत्य ज्ञानसे रहित होते हुए मैं अपनेको पूर्णज्ञानी समझता था, वह मेरा मिथ्या अभिमान ही था। मेरा वह भ्रम इसी प्रकार था जिस प्रकार मैंढकको समुद्र ज्ञानसे शून्य कूपकी विस्तीर्णताका क्षुद्र अभिमान पूर्ण भ्रम होता है। आज मेरा वह भयंकर भ्रम नष्ट होगया। अब मेरा कर्तव्य है कि इनके साम्हने व्यर्थ विवाद करके अपनी किंचित महत्ताको नष्ट न होने दूं क्योंकि यह निश्चय है कि इनसे विवाद करनेको मेरी बुद्धि किसी प्रकार भी समर्थ नहीं है। अस्तु इस विवादमें मुझे हास्य तथा अभिमान प्राप्त होनेके अतिरिक्त कुछ लाभ नहीं होगा। ओह! जब मैं इनके शिष्य पूर्व ब्राह्मणके ही उत्तर देनेमें असमर्थ रहा तब इनके समक्ष मेरे जैसे क्षुद्र ज्ञानीका विसंवाद करना कैसा? अस्तु मुझे अपनी पूर्व प्रतिज्ञानुसार इनका शिष्य बन जाना चाहिए और ऐसे सर्वविद् म०का शिष्य होना भी मेरे लिए बड़े गौरवकी बात है!! उपरोक्त विचार धाराओंके वेगको वह न सम्हाल सका और समस्त शरीरको कमलनाल सदृश झुकाकर भगवान् महावीरको उसने साष्टांग प्रणाम किया। भगवानकी भक्तिसे उसका हृदय एक क्षणमें ही परिपूर्ण होगया। इस महत् पुण्यके प्रभावसे उसके चारित्र मोहनीय कर्मका प्रबल पहरा हट गया और भगवानके सत्य गुणोंमें अविचल श्रद्धा होनेके साथ२ सम्यग्ज्ञानके प्रकाशसे उसका हृदय प्रकाशित होगया। उसने उसी समय भगवान महावीरकी स्तुति, (प्रशंसा) करते हुए उनका शिष्यत्व स्वीकार किया। भगवान महावीरने उसी समय उस महानुभावको जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान की, उनके साथ ही उसके अन्य भाई तथा समस्त शिष्योंने भी जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की। जैनधर्मकी जयके नादसे एकबार समस्त आकाश मण्डल गूंज उठा।

ऋषिराज गौतमके इस सुकृत्यकी समस्त उपस्थित देव विद्याधर मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करने लगे। अभिमानी गौतम ब्राह्मण एकक्षण मात्रमें ऋषिराज भगवान महावीरके समवशरणके सर्व प्रथम गणईश बनगए। धन्य भगवान महावीर! आपकी सर्व हितैषिता जो कि स्वधर्मके रहस्यसे शून्य मिथ्याज्ञानमें आसक्त महामानी गौतमको एक क्षणमात्रमें मानवों द्वारा वंदनीय मोक्षलक्ष्मीका पात्र बना दिया! धन्य भगवान महावीर! आपकी सर्व प्रेममयी दृष्टि और धन्य महात्मा गौतम आपका सौभाग्य!

(६)

समस्त पाखंडोंका ध्वंस करनेवाली, मिथ्यावादियोंका मद मर्दन करनेवाली और सत्यार्थ धर्मका रहस्य प्रकट करनेवाली भगवान महावीरकी दिव्य ध्वनि मानवगणोंके कर्णोंमें आनंद अमृतकी वर्षा करने लगी। उनकी दिव्यध्वनि द्वारा क्रमशः सप्ततत्व, पंचास्तिकाय, तीनकाल, नवपदार्थ, षट्कायके जीव, छहलेश्या और मुनियोंके पंचमहाव्रत, पंचसमिति, तीन गुप्ति, श्रावकके बारह व्रत और लोक अलोकका विभेद विवेचन किया जाने लगा। मानवोंके हृदयोंकी समस्त आशंकाएं-समस्त मिथ्या भ्रम विनष्ट होने लगे। "जयतीति

जैन शासन"की पताका अखिल विश्वके प्रतापमय उन्नताकाशमें फहराने लगी। बड़े बड़े वादी, मिथ्याभिमानी अपना समस्त मिथ्या अभिमान, अहामद त्याग भगवानके शासनकी शरणमें आए, कोरी क्रियाकांडका प्रभसाक अज्ञानताकी आंधी और अत्याचार या अनाचारोंका अकांड तांडव समाप्त हुआ, भगवानके उपदेशसे समस्त प्राणी सत्य सुख और शांतिका अमृतपान करने लगे।

महात्मा गौतमने भगवानके दिव्य उपदेशोंका भलीप्रकारसे विवेचन किया और उनकी दिव्य ध्वनि द्वारा प्रकट हुए महान् धर्मके रहस्योंको ग्यारह अंग और चौदह पूर्वके रूपमें प्रकट किया। गणराज गौतम भगवानकी समस्त सरस्वतीरूपी महान् गंगाके अवगाहन करनेमें समर्थ श्रुतसागरके पारगामी और सर्व तत्वोंके वेत्ता होगए थे। वह ऋषिराज गौतम, मुनियों देवताओं और मानवों द्वारा बड़ी पूज्य दृष्टिसे देखे जाते थे।

(७)

कार्तिक कृष्णपक्षकी अमावस्याके नष्टप्राय: रजनीके किंचित् अंधकारमय जीवनमें उसके अंधकारमय साम्राज्यके नष्ट होनेका संदेश सुनानेवाले तारागण क्षीण प्रकाश संयुत नृत्य कर रहे हैं, शीतल पवन मंदगतिसे विचरण कर रही थी, पक्षीगण अपनी मूक भाषाके कलरव द्वारा प्रभातके साम्राज्यका गौरव गान करनेको उत्सुक हो रहे थे, ठीक इसी समय सौधर्म इन्द्रका रत्नमई सिंहासन कंपित होने लगा। असमयमें अपने सिंहासनको कंपित होते विलोक सुरराज बड़े आश्चर्यमें पड़ गए। वह शीघ्र ही अवधिज्ञान द्वारा इस विषयमें विचार करने लगे। उन्हें अपने सिंहासन कंपित होनेका कारण विदित होगया, उनका हृदय प्रसन्न होगया। वह अपनी प्रसन्नताको नहीं रोक सके। अनायास उनके मुंहसे निकल पड़ा—"अहा ! आज भगवान महावीरके निर्वाणका समय उपस्थित होगया है। भगवानका दिव्य आत्मा आज इस मध्य लोककी स्थिति त्यागकर लोकके अंतिम शिखरमें प्रविष्ट करेगा। आज वह चार अघातिया कर्मोंको भी नष्ट कर अनंत सुखमय अष्टगुण संयुक्त मोक्षस्थानके साम्राज्यमें पदार्पण करेंगे।" उसने शीघ्रत. समस्त देवताओंके समूह संयुक्त शीघ्र पावापुरके उद्यानमें उपस्थित होकर भगवानके चरणकमलोंपर अपना मस्तक झुकाया। उसने ललित स्वरोंमें भगवानकी स्तुतिका यशोगान किया। उसका हृदय भक्तिके वेगसे आविर्भूत होगया, इसी समय अग्निकुमार जातिके उत्तम वेषधारी देवने अपना दिव्यरत्नोंकी प्रभासे प्रकाशित मस्तक भगवानके सन्मुख नम्रीभूत किया। उसके प्रभा पूर्णसे तीक्ष्ण अग्निकी चिनगारियां निकलने लगीं। भगवान अंतिम उन चिनगारियोंके प्रकाशमें विलुप्त होगया—भस्म हो गया। उनका आत्मा कर्मोंसे रहित होकर लोकके अंतिम भागमें निश्चल और अचलरूपसे स्थित होगया। इन्द्र संयुत समस्त देवों और मानव समूहोंने भगवानके उस निर्वाण स्थानका उत्तम रीतिसे पूजन संस्कार किया। उनके गुणोंका स्मरण किया और इस प्रकार निर्वाण कल्याण मनाकर उन्होंने स्वर्गको प्रयाण किया।

संध्या समय हुआ। गणराज गौतम अपने आत्मध्यानमें निश्चल थे। उन्होंने अपने आत्माको अपने आत्म स्वरूपमें तन्मय कर दिया था।

उन्होंने पूर्ण शक्तिसे मुक्तात्मा अवरोध करनेवाले, संसारी मानवोंके निरन्तर घातियाकर्मोंको ध्वंस करनेका दृढ़ संकल्प किया। तत्काल ही शुक्लध्यानकी दिव्यज्वाला प्रकाशित की, घातिया कर्मरूपी अन्धकार उस दिव्य प्रकाशके सन्मुख विलय होने लगा और शीघ्र ही उन्होंने अपने अनंत प्रकाशसे विश्वप्रदर्शित करनेवाली केवलज्ञान लक्ष्मीको प्राप्त किया।

देवताओंने, मानवोंने दिव्य प्रकाश संयुक्त रत्न दीपकोंको प्रज्वलित कर गणराज गौतमकी केवलज्ञान लक्ष्मीका महा महोत्सव किया, उनकी भक्ति की, उनकी स्तुति की, पूजा की और केवलज्ञान लक्ष्मीका अनुमोदन किया।

कार्तिक कृष्णा अमावस्या तिथि युगल महात्माओंके महा महोत्सवोंसे विश्व-पूज्या बन गई। कार्तिक कृष्णामावस्या तिथि तू धन्य है। तूने समस्त तिथियोंमें सर्व श्रेष्ठ गौरव प्राप्त किया। तूने अपने सुनहरे प्रभात कालके धुंधले प्रकाशमें चिरस्मरणीय जगत पूज्य महावीरके निर्वाणका गौरव प्राप्त किया और संध्या समय गणराज गौतमकी दिव्य केवलज्ञान लक्ष्मीसे विभूषित हो संसारको प्रकाशमान किया।

केवलज्ञानके पश्चात् गणराज गौतमने भगवान् महावीरके धर्म शासनका पूर्ण प्रचार किया और अपने संसार तारक उपदेशों द्वारा महावीरके आदर्शको विस्तृत किया। वह केवलज्ञान लक्ष्मी विभूषित गणराज गौतम हमारे हृदयोंमें सम्यक्ज्ञानका प्रकाश प्रकाशित करें-हमें सद्बुद्धि प्रदान करे।

वत्सल।

रोग विज्ञान।

(रोगकी परीक्षा किस तरह करनी चाहिये उसका सरल उपाय।)

(ले०—आयुर्वेदभूषण आयुर्वेदाचार्य पंडित धर्मधर जैन वैद्य काव्यतीर्थ-छपारा)

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ।
सम्प्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पंचधा स्मृतम् ॥
—माधवाचार्य ।

विज्ञवर पाठकगण! तथा समस्त वैद्यगण! आपकी सेवामें जिस विषयकी समालोचना करने जारहा हूं, वह विषय कोई नवीन नहीं है। किन्तु वह हमारे परम पूज्य प्रातःस्मरणीय प्राचीन चरक सुश्रुत आदि महर्षियोंका बताया हुआ, तथा हमारे प्रतिदिन कार्यमें आनेवाला और लाभदायक है। यदि हम लोग उसको अच्छी तरह समझ लें और उस तरीकेपर चलें तो हम कभी रोगी भी न हों जैसा कि वाग्भट्टने कहा है—नित्यं हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः, दाता समः सत्यपरः क्षमावान् भवत्यरोगी, इत्यादि। तथा यदि हम पूर्व कर्मवश रोगसे ग्रसित भी होजांय तो उससे शीघ्र ही मुक्त होसकें। तथा साथमें वह व्याधि किस कारणसे हुई इसका भी ज्ञान होसके और वह व्याधि सरलतासे किस प्रकार पृथक् होसकती है, इसका भी थोड़ा बहुत ज्ञान होसके तथा हमारे मान्यवर कुछ चिकित्सक गण भी इस लेखसे लाभ उठा सकें और यदि कुछ त्रुटि हो तो कृपया शीघ्र ही बतलानेकी सम्मति कीजिये करें, बस इतना ही ध्येय इस लेखका है।

जो आर्यश्लोक ऊपर कहा गया है वह महा महोपाध्यायश्री माधवाचार्य (जो कि वाग्भट्टके पीछे तथा भाव प्रकाशके कर्ता भावमिश्रजीके प्रथम हुए हैं) का है और इस लेखमें उसी श्लोकका भावार्थ स्पष्टतया समझाऊँगा। वास्तवमें माधवाचार्यजीने माधवनिदानकी रचना करके वैद्य संसारका जो असीम उपकार किया है उसके लिये वैद्य संसार यावच्चन्द्र दिवाकर ऋणी रहेगा और हम लोग भी त्रिकाल तक उनके ऋणी रहेंगे।

ऊपरके श्लोकका भावार्थ—निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशम, संप्राप्ति, इन पांच बातोंसे ही रोगका पूर्ण पूर्ण ज्ञान होसक्ता है।

१—प्रथम निदानका ही विस्तृत व्याख्यान करता हूं। "निदानं त्वादि कारणम्" इत्यमरकोषमें कहा है।

अर्थात् सबसे पहिले कारणका नाम है निदान। जैसे किसी पुरुषने पहिले जो कुपथ्य किया और बाद कोई रोग उत्पन्न हो गया तो रोगके पैदा करनेका प्रधान कारण निदान ही कहलाया। व्याधि अर्थात रोग २ तरहसे होता है। १ दोषज, २ कर्मज—दोषज रोगमें तो खाना-पीना ही कारण है, किन्तु कर्मज व्याधिमें अपना पूर्वकर्म ही कारण है। इस तरह निदानके २ भेद होजाते हैं।

तथा दोषज व्याधिमें भी निदानके २ भेद हैं। १ संन्निकृष्ट निदान, २ विप्रकृष्ट निदान, १ सन्निकृष्ट निदान जैसे—किसीने शामको अधिक भोजन कर लिया प्रातःकाल उसको अजीर्ण होकर ज्वर आगया। यह तो सन्निकृष्ट निदानका उदाहरण हुआ।

२ विप्रकृष्ट निदान जैसे "हेमन्ते निचितः श्लेष्मा वसन्ते कफरोग कृत्" अर्थात हेमन्तकाल (अगहन पूष) में इकट्ठा हुआ जो कफ है वह कफ वसन्तकालमें (चैत वैशाखमें) कफ जन्य रोग पैदा करता है। तथा और भी "वर्षासु चीयते पित्तं शरत्काले प्रकुप्यति" वर्षाकाल अर्थात (सावन भादों) में इकट्ठा हुआ जो पित्त है वह कंवार कार्तिकमें वातपित्तज्वर अर्थात् मलेरियाज्वर पैदा करता है। इस तरह ये २ दृष्टांत विप्रकृष्ट निदानके हुए। उपर्युक्त निदानका ज्ञान लेना बहुत जरूरी है क्योंकि यदि हमको निदानका पूर्ण ज्ञान हो जाय कि हमको अमुक पदार्थके सेवनसे अमुक रोग होगया है तो उस पदार्थका परित्याग कर दें। जिससे उससे होनेवाली व्याधि भी शान्त हो जाय।

अतएव प्रत्येक गृहस्थको इन बातका अवश्य ही ज्ञान होना चाहिये जिससे अपने बालबच्चोंकी स्वास्थ रक्षामें प्रवीण होसके। क्योंकि छोटे २ बच्चोंको कई रोग ऐसे होजाते हैं जिनका ज्ञान वैद्यको सहसा नहीं होसक्ता। अतएव बच्चोंकी माताओंको निदानके ज्ञान लेनेसे बच्चोंके रोगका परिज्ञान करा सक्ती हैं। कारण बच्चे तो अपनी व्याधि अपने मुखसे बता नहीं सक्के अतएव निदानका ज्ञान लेना प्रत्येक गृहस्थ तथा खासकर हमारी माताओंको ज्ञान लेना बहुत जरूरी है।

२—पूर्वरूप अर्थात् रोगके लक्षण प्रगट होनेकी

अव्यक्त अवस्था। निदान हो जानेके बाद जब कोई व्याधि उत्पन्न होनेको तय्यार होती है तब उस रोगके कुछ २ अव्यक्त लक्षण होते हैं जिनसे कि रोगका कुछ ज्ञान कर सके हैं जैसे कि जिसको ज्वर आनेको होता है उसको थकावट सी मालूम होती है, मन बिगड़ासा लगना, शरीरमें ग्लानि होना, बदजायका हो जाना, नेत्रोंमें आंसूसे आना, कभी घाममें बैठनेकी इच्छा होना कभी ठंडे स्थानमें बैठनेकी इच्छा होना, जंभाईका आना, शरीरमें पीड़ा होना, रोमोंका खड़ा होजाना, अरुचि होना, आंखोंके साम्हने अंधयारीसी आजाना इत्यादि। प्रायः सभी प्रकारके ज्वरोंमें ये लक्षण होजाते हैं। इसलिये इनको सामान्य पूर्वरूप कहते हैं। विशेष पूर्वरूप वातज्वरमें जंभाई आती है। पित्तज्वरमें नेत्रोंमें जलन होती है, कफज्वरमें अरुचि होती है। इस प्रकार पूर्वरूपसे रोगका सामान्य ज्ञान होजाता है। कई रोग ऐसे भी होते हैं कि यदि उन रोगोंके पूर्व रूप न देखे जाय तो रोगका निश्चय नहीं कर सके। जैसे कि—रक्तपित्त और प्रमेह इन दोनों रोगोंमें रोगीकी पेसाब पीली तथा रुधिर वर्णकी होती है। सो यदि उस रोगीको प्रमेहके पूर्व रूप हैं तब तो उसे प्रमेही कहेंगे और यदि उसे प्रमेहके पूर्व रूप नहीं हैं, तो उसे रक्तपित्त रोगवाला कहेंगे जैसाकि चरक चिकित्सा स्थान अध्याय ६में कहा है " हारिद्रवर्णं रुधिराभमूत्रं विना प्रमेहस्य हि पूर्वरूपैः, यो मूत्रयेत्तन्नवदेत्प्रमेहं रक्तस्य पित्तस्य हि स प्रकोपः" इति। अतएव पूर्व रूपका जानना ही बहुत जरूरी है।

३-तीसरा है रूप—अर्थात् रोगका सम्पूर्ण स्वरूप प्रगट होजाना। इसीको रूप कहते हैं जैसा कि कहा है—"तदेव व्यक्ततां याति रूपमित्यभिधीयते। संस्थानं व्यञ्जनं लिंगं लक्षणं चिह्नमाकृतिः"। अर्थात् पूर्व रूपावस्थामें जो लक्षण अप्रकट झलकतमें थे, वे ही जब प्रगट हालतमें होजाते हैं तब उनको रूप कहते हैं। यह रूप तब ही होते हैं जबकि जिस दोषसे ज्वर आनेवाला होता है वह दोष प्रकट होजाता है तब ही वैद्य उस दोषके खास चिन्होंको देखकर यह निश्चय करता है कि यह वातज्वर है या पित्तज्वर है या कफज्वर है—या द्विदोषज है या त्रिदोषज है। जितने दोषके लक्षण मिलते हैं वैसा ही निदान करता है।

जैसे जिस मनुष्यको वातज्वर है तो उसके नीचे लिखे लक्षण होंगे। १—शीत लगकर कंपन होना, २—ज्वरका वेग कभी कम कभी अधिक, ३—कंठ तथा ओठोंका सूखना, ४—निद्राका नहीं आना, ५—छींकका नहीं आना, ६—शरीरका रूखासा होना, ७—शरीरमें पीड़ाका होना, ८—जीभमें स्वादका न होना, ९—पाखाना नहीं होना, १०—पेटमें दर्दका होना, ११—पेटका फूलना, १२—जंभाईका आना। यदि ये १२ लक्षण हों या कुछ कम भी हों तो मानना चाहिये यह वातज्वर है।

जिस मनुष्यको पित्तज्वर है उसको नीचे लिखे लक्षण होंगे। १—ज्वर बहुत जोरसे आना, २—दस्तोंका लगना, ३ थोड़ी नींद का आना, ४—वमनका होना, ५ कंठ ओष्ट मुख नासिका इनका पकासा होजाना, ६—पसीनाका आना,

७–प्रलाप करना, ८–मुखमें कडुआपन होना, ९–चक्करसे आना, १०–दाहका होना, ११–पागलसा होजाना, १२–पियासका लगना, १३–नेत्रोंका पीलापन होना, १४–पेसाब तथा मल भी पीलासा होना, १५–तथा भ्रमसा होजाना। ये सब लक्षण हों या कुछ कम हों तो जानना चाहिये इसको पित्तज्वर है।

जिस मनुष्यको कफज्वर है उसके निम्नलिखित लक्षण होंगे। १–ज्वरका वेग बहुत धीरा होना, २–शरीरमें गीलापनसा होना, ३–बहुत आलसीपन होना, ४–मुख मीठसा होना, ५–पेशाब पाखाना सफेद रंगका होना, ६–शरीरके सब अंगोंका जकड़सा जाना, ७–भोजनमें अरुचि होना, ८–शरीरमें भारीपन होना, ९–वमन करनेकी इच्छा होना, १०–शरीरमें पीड़ाका होना। ये सब लक्षण हों या कुछ कम भी हों तो जानना चाहिये कि इसको कफज्वर है। या दो दोषके लक्षण हों तो द्विदोषज कहना चाहिये या तीनों दोषोंके लक्षण हों तो त्रिदोषज समझना चाहिये। इस प्रकार दोषोंकी न्यूनाधिकतासे रोगका पूर्ण निश्चय करना चाहिये। यहांपर मैं इस बातका निर्णय और कर देना चाहता हूं कि बहुतसे लोग यह समझते हैं कि केवल नाड़ीकी गतिसे ही रोगका पूर्ण विज्ञान होजाता है, और किसी बातके देखनेकी आवश्यकता नहीं है बल्कि यहांतक एक किंवदन्ती है कि पुराने वैद्य रोगीकी नाड़ीसे सूत बांधकर रोगका निश्चय करते थे। और रोगीको विना देखे रोगका पूरा स्वरूप केवल सूतपरसे ही कर लेते थे। ऐसी किंवदन्ती पर कमसे कम मेरा विश्वास तो नहीं है और यदि होसका है तो एक ज्योतिषके बलसे अवश्य ही ऐसा जान सके हैं किंतु आयुर्वेदके सिद्धान्तसे तो मेरी समझसे ऐसा नहीं जान सके। क्योंकि प्रथम तो ऐसा वर्णन किसी शास्त्रमें नहीं आया–दूसरे रोगके जाननेके लिये जो शास्त्रोंमें बहुतसे लक्षण बतलाये हैं वे व्यर्थ होते हैं। यथा योगरत्नाकरमें कहा है—

रोगाक्रान्तशरीरस्य स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत्।
नाडी-मूत्रं-मलं-जिह्वां-शब्द-स्पर्श-दृगाकृतीः॥

अर्थात्–जिस मनुष्यको जो रोग हुआ हो यदि उसके रोगका ठीकर निश्चय करना है तो उस रोगीकी ८ बातोंके देखनेसे ही रोगका पूरा ज्ञान होगा।

वर्तमानके अनपढ़े वैद्यगण प्रायः इन सब बातोंको नहीं देखते हैं, केवल नाड़ीसे ही रोगका पूरा ज्ञान करना चाहते हैं–जोकि यथेष्ट हो नहीं सक्ता। और जबतक रोगका ठीकर निदान नहीं होजाता तबतक उसकी चिकित्सा भी नहीं होसक्ती। यदि चिकित्सा भी की जाय तो उसको यथेष्ट लाभ भी नहीं हो सक्ता। अतएव हमारी समस्त वैद्य महाशयोंसे सादर प्रार्थना है कि वे प्रत्येक रोगका शास्त्रोक्त विधिसे निदान करें। जिससे यथेष्ट लाभ हो तभी आयुर्वेदका व्यापी प्रचार होगा। तथा संसारका कल्याण होगा। मैंने इस लेखमें पंच निदानमेंसे केवल ३ निदानका ही वर्णन किया है बाकी बचे–उपशय और सम्प्राप्ति, इन दोनोंकी व्याख्या आगके उसी दिगंबर जैनके सामान्य अंकमें अवश्य ही करूंगा।

भवदीय–सत्यन्धर।

भरतैरावतमें वृद्धिह्रास किसका है ?

(श्रीमान् पं० मिलापचंद्र कटारिया जैन केकड़ी)

श्री भगवदुमास्वामी कृत तत्वार्थसूत्रके तीसरे अध्यायमें एक सूत्र है कि 'भरतैरावतयो वृद्धि-ह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ।' इसका शब्दार्थ ऐसा होता है कि-उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके छह कालोंमें भरत और ऐरावतका वृद्धि ह्रास होता है । इस सामान्य वचनके दो अभिप्राय होसके हैं। एक तो यह है कि-'भरत और ऐरावतका क्षेत्र घटता बढ़ता है और दूसरा यह कि 'भरतैरावतमें प्राणियोंके आयुकायादि घटते बढ़ते रहते हैं । 'भरतैराव-तयोर्वृद्धिह्रासौ ..' और 'ताभ्यामपरा भूमयोऽ-वस्थिताः' इन सूत्र वाक्योंसे न मालूम सूत्र-कारका असली अभिप्राय क्या था ? तत्वार्थसूत्र पर जो राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि, तत्वार्थसार जैसी विशाल टीकायें हैं वे भी एक-मत नहीं है और इन टीकाओंके अतिरिक्त अन्य जैनग्रंथोंका भी प्रायः यही हाल है । इन सबमें कोई ग्रंथकर्ता तो 'आयुकायादिकी वृद्धि ह्रासका कथन करते हैं किंतु 'भूमिका वृद्धि ह्रास नहीं होसका, या होसका' ऐसा कुछ नहीं कहते । कोई आयुकायादिकी ही वृद्धि ह्रास बताते हैं और भूमिके वृद्धि ह्रासका स्पष्ट खंडन करते हैं । तथा कोई ऐसे भी हैं जो क्षेत्रकी घटाबढ़ीका मुख्य उल्लेख करते हैं व आयुकायादिकी घटाबढ़ी गौणरूपसे बताते हैं और कोई सूत्रकारकी तरह केवल सामान्य ही विवेचन करते हैं । नीचे हम पाठकोंकी जानकारीके लिये इसी बातको ग्रंथोंके उद्धरण देकर स्पष्ट करते हैं । आचार्य नेमिचंद्र त्रिलोकसारमें कहते हैं कि-

"भरहेरावदेसु य ओसप्पुस्सप्पिणित्ति कालदुगा ,
उस्सेधाउबलाण हाणीवड्ढी य होंतित्ति ॥ ७७९ ॥

अर्थ-भरत और ऐरावत क्षेत्रमें जीवोंके शरी-रकी ऊंचाई आयु बल, इनकी उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीकालमें क्रमसे वृद्धि हानि होती है।

सकलकीर्ति कृत मल्लिनाथपुराणके ७वें परि-च्छेदमें लिखा है-

"उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यो. षट्काला हानिवृद्धिला. ।
आयुःकायादि भेदेन सर्वे प्रोक्ता जिनेशिना ॥ ८८ ॥"

अर्थ-उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके छह काल आयुकायादिकी हानिवृद्धिको लिये हुये हैं ऐसा जिनेन्द्रने कहा है। इन अवतरणोंसे इतना ही सिद्ध है कि 'आयुकायादिकी हानिवृद्धि होती है' किन्तु इससे क्षेत्रकी हानिवृद्धि विषयक कुछ भी विधिनिषेध प्रकट नहीं होता । अस्तु आगे देखिये-

तत्वार्थ राजवार्तिकके तीसरे अध्यायमें उक्त सूत्रकी व्याख्या करते हुये श्रीमद्भट्टाकलंकदेव कहते हैं कि-

"इमौ वृद्धिह्रासौ कस्य भरतैरावतयोर्नतु क्षेत्रे व्यवस्थितावधिके कथं तयोर्वृद्धिह्रासौ अत उत्तरं पठति ।"

अर्थ—यह घटना बढ़ना भरत और ऐरावत क्षेत्रोंका है। यदि यहांपर यह शंका हो कि—भरत और ऐरावतक्षेत्र तो अवधिवाले स्थित हैं कभी उनका बढ़ना घटना नहीं होसक्ता फिर यहां उनके वृद्धिह्रासका उल्लेख कैसा? वार्तिककार इसका उत्तर देते हैं—

"तात्स्थ्यात्ताच्छब्द्यसिद्धिर्भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासयोगः ॥१॥ इहलोके तात्स्थ्यात्ताच्छब्द्यं भवति यथा गिरिस्थितेषु वनस्पतिषु दह्यमानेषु गिरिर्दाह इत्युच्यते। तथा भरतैरावतस्थेषु मनुष्येषु वृद्धिह्रासावाप्नमानेषु भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासावुच्येते।"

अर्थ—संसारमें तात्स्थ्य रूपसे ताच्छब्द्यका अर्थात् आधेयभूतपदार्थोंका कार्य आधारभूत पदार्थोंका मान लिया जाता है, जिस प्रकार पर्वतमें विद्यमान वनस्पतियोंके जलनेसे गिरिदाह माना जाता है उसी प्रकार भरत और ऐरावत क्षेत्रोंके मनुष्योंमें वृद्धिह्रास कह दिया जाता है।

" अधिकरणनिर्देशो वा ॥ २ ॥"

"अथवा भरतैरावतयोरित्यधिकरणनिर्देशोयं स चाधेयमाकांक्षतीति भरते ऐरावते च मनुष्याणां वृद्धिह्रासौ वेदितव्यौ।"

अर्थ—अथवा 'भरतैरावतयोः' यह अधिकरण-निर्देश है। अधिकरण सापेक्ष पदार्थ है वह अपने रहते अवश्य अधेयकी आकांक्षा रखता है। भरत और ऐरावत रूप आधारके आधेय मनुष्य आदि हैं इसलिए यहांपर यह अर्थ समझ लेना चाहिये कि भरत और ऐरावत क्षेत्रोंमें मनुष्योंका वृद्धि और ह्रास होता है।

इसी सूत्रका विवेचन करते हुए पूज्यपादाचार्यने सर्वार्थसिद्धिमें ऐसा कहा है—

"वृद्धिश्च ह्रासश्च वृद्धिह्रासौ। काभ्यां षट्समयाभ्यां। कयोः भरतैरावतयोः। न तयोः क्षेत्रयोर्वृद्धिह्रासौस्तः। असंभवात्। तत्स्थानां मनुष्याणां वृद्धिह्रासौ भवतः। अथवा अधिकरणनिर्देशः भरते ऐरावते च मनुष्याणां वृद्धिह्रासाविति। किंकृतो वृद्धिह्रासौ? अनुभवायुःप्रमाणादिकृतौ।"

भावार्थ—षट्कालोंमें जो वृद्धि ह्रास होता है वह भरतैरावतके क्षेत्रका नहीं होता, क्योंकि यह असंभव है, किन्तु भरतैरावतमें स्थित मनुष्योंके भोगोपभोग आयुकायादिका होता है। यही अधिकरण निर्देशसे भरतैरावतका कहा जाता है।

इन उल्लेखोंसे साफ प्रकट है कि 'भरतैरावत क्षेत्रकी हानि वृद्धि नहीं होसक्ती। बल्कि सर्वार्थसिद्धि कर्ताने तो उसे बिल्कुल असंभव बताया है। अब सामान्य कथन देखिये—

महाकवि वीरनंदिने चंद्रप्रभचरित काव्यके १८ वें सर्गमें कहा है कि—

" भरतैरावते वृद्धिह्रासिनी कालभेदतः।
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ कालभेदावुदाहृतौ ॥ ३५ ॥"

तथा अमृताचार्य विरचित तत्त्वार्थसारमें लिखा है कि—

"उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ षट्समे वृद्धिहानिदे।
भरतैरावतौ मुक्त्वा नान्यत्र भवतः क्वचित् ॥२०८॥"

इन श्लोकोंमें वही सामान्य कथन किया है जैसा कि तत्त्वार्थसूत्रमें है। इसी ढंगको लिये हुये ऐसा ही अस्पष्ट कथन हरिवंशपुराणमें जिसमें कि तीन लोकका खूब विस्तृत वर्णन है, जिनसेनने लिखा है। यथा—

सातवें सर्गके ६२वें श्लोकका हिन्दी अनुवाद ऐसा—'उत्सर्पिणी अवसर्पिणीमें भरतैरावतके पदार्थोंका वृद्धि ह्रास होता है' (संस्कृत ग्रन्थ सामने न होनेके कारण श्लोक नहीं दिया गया)।

अब क्षेत्रकी हानि वृद्धि माननेवालोंकी सुनिये। विद्यानंद महोदय अपने श्लोकवार्तिकमें 'ताभ्यामपराभूमयोऽवस्थिताः' सूत्रकी व्याख्या करते हुये कहते हैं कि—

"न हि भरतादिवर्षाणां हिमवदादिवर्षधराणां च सूत्रत्रयेण विष्कंभस्य कथनं बाध्यते प्रत्यक्षानुमानयोस्तदविषयत्वेन तद्बाधकत्वायोगात्। प्रवचनैकदेशस्य च तद्बाधकस्याभावत् आगमांतरस्य च तद्बाधकस्याप्रमाणत्वात्। तत एव सूत्रद्वयेन भरतैरावतयोस्तदपरभूमिषु च स्थिते भेदस्य वृद्धिह्रास योगायोगाभ्यां विहितस्य प्रकथनं न बाध्यते।" (पृ० ३९४)

इसका भाव ऐसा है कि—भरतैरावत क्षेत्रका वृद्धिह्रास माननेपर ऊपर तीन सूत्रोंमें जो भरतादिक्षेत्र और हिमवदादि वर्षधर पर्वतोंका विस्तार वर्णन किया है उसमें बाधा आयगी। शंकाकारकी इस शंकाका उत्तर देते हुये विद्यानंदि लिखते हैं कि—'उसमें कोई बाधा नहीं आसक्ती क्योंकि वह प्रत्यक्ष अनुमानका विषय नहीं है। रही आगम प्रमाणकी बात सो प्रवचनका एक देश तो उसमें कोई बाधा नहीं देता और जो उसके बाधक आगमांतर हैं वे अप्रमाण हैं इसलिये सूत्रद्वयसे जो भरतैरावत और अपर भूमिके वृद्धिह्रासके योग अयोगका किया कथन है वह अबाधित है।

जो लोग इसका विपरीत भाव निकालते हैं उन्हें श्लोकवार्तिकके पृष्ठ ३७८ की निम्नस्थ पंक्तियोंपर ध्यान देना चाहिये—

"भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्यां इति वचनात् तन्मनुष्याणामुत्सेधानुभवायुरादिभिर्वृद्धिह्रासौ प्रतिपादितौ न भूमेरपरपुद्गलैरिति न मन्तव्यं, गौणशब्दप्रयोगान्मुख्यस्य घटनादन्यथा मुख्यशब्दार्थातिक्रमे प्रयोजनाभावात्। तेन भरतैरावतयोः क्षेत्रयोर्वृद्धिह्रासौ मुख्यतः प्रतिपत्तव्यौ, गुणभावतस्तु तत्स्थमनुष्याणामिति तथा वचनं सफलतामस्तुते प्रतीतिश्चानुल्लंघिता स्यात्"।

भावार्थ—"भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ...." इत्यादि सूत्रकारके वचनोंसे क्षेत्रस्थित मनुष्योंके आयुकायादिका वृद्धिह्रास प्रतिपादन किया है न कि पौद्गलिक भूमिका। प्रतिवादीका ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि गौण शब्दके प्रयोगसे मुख्य अर्थ घटित होता है वर्ना निष्प्रयोजन मुख्य शब्दका अर्थ क्यों छोड़ा जावे। अतः भरतैरावतके क्षेत्रका वृद्धिह्रास मानना ही मुख्य है और उन क्षेत्रस्थ मनुष्योंका वृद्धिह्रास मानना गौण है इस प्रकार कहना ही ठीक है और यही प्रतीतिमें आता है।

श्लोकवार्तिकके इस कथनसे साफ है कि विद्यानंदस्वामी भूमिकी घटी बढ़ीको मुख्य रूपसे मानते हैं साथ ही उनकी उक्त कारिकासे यह भी प्रकट होता है कि उस समय क्षेत्रकी हानि वृद्धिको माननेवाले और न माननेवाले दोनों प्रकारके आगम मौजूद थे, जिसे उन्होंने 'प्रवचनैकदेशस्य च तद्बाधकस्याभावात् आगमांतरस्य च तद्बाधकस्याप्रमाणत्वात्' शब्दोंसे प्रकट किया

है और लोगकी हानिवृद्धिके समान आगमको अप्रमाण कोटिमें डाल दिया है। न केवल यही बल्कि श्लोकवार्तिकमें आर्यखंडके भूमिको प्रलयके समयमें भी इंकार किया है जैसा कि आपकी निम्न पंक्तियोंसे जाहिर किया है—

'न च वयं वर्धनकल्पकालेन भूमि मन्यामहे प्रतीतिविरोधात् तस्याः कालाविवक्षानुपपत्त्यापत्तिदोषोऽतिलोकमात्रावस्थानात्' पृष्ठ १७७।

पुनः—

'तथापि भूमिनिमज्जनोन्मज्जनविशेषमात्रस्यैव गतेः तस्य च भरतैरावतयोरुपलब्धात्' पृ० १७८

ऐसे ही गुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराणके इस श्लोकसे ध्वनित होता है। यथा—

" ततो धरण्या वैषम्यविगमे सति सर्वतः।
अभेदचित्रा समा भूमिः समाप्तावसर्पिणी ॥ ४५२ ॥
पर्व ७६ "

अर्थ—इसके बाद पृथ्वीका विषमपना सब नष्ट होजायगा और चित्रा पृथ्वी निकल आवेगी तथा यहां ही पर अवसर्पिणी काल समाप्त हो-जायगा।

श्लोकवार्तिकमें अन्य भी कई ऐसी बातें हैं जो ग्रंथान्तरोंसे एकमत नहीं रखतीं, उनका विशेष विवेचन अन्य स्वतंत्र लेखद्वारा बताया जासकता है। श्लोकवार्तिकमें एक खास उल्लेख योग्य विषय यह है कि—'मेरुप्रदक्षिणा नित्य-गतयो नृलोके' सूत्रके निरूपण करते हुये भूगोल भ्रमण पर अच्छा विचार किया गया है इसप्रकारका वर्णन अन्य संस्कृत प्राकृत ग्रन्थोंमें नहीं मिलता है। यह खूबी श्लोकवार्तिकमें ही है। ऐसी महान् उपयोगी पुस्तकका हिंदी अनुवाद न होना सचमुच जैनियोंके लिये शर्मकी बात है। यद्यपि श्लोकवार्तिककी रचना दुर्गम है तथापि अगर कोई अच्छासा विद्वान् कोशिश करे तो इसका हिंदी अनुवाद बनना असंभव नहीं है। मगर हमारे जैनपंडितोंको तो इधर उधरके झगड़ोंसे ही फुरसत कहां जो वे ऐसा कर प्रवचनका माहात्म्य प्रसिद्ध करें। हम फिर भी कहते हैं कि—यदि इसका हिंदी अनुवाद प्रकट हो तो कई सैद्धांतिक विषयोंपर अच्छा प्रकाश पड़ सक्ता है—कई नई बातें जाननेमें आसकती हैं (यदि इसकी लिखित हिंदी टीका कहीं हो तो हमें सूचित करनेकी कृपा करें) इस विषयमें श्वेतांबरोंका आगम निम्नप्रकार है—

आत्मारामजी कृत 'सम्यक्त्व शल्योद्धार' पुस्तकके पृष्ठ ४९ में लिखा है कि—

'शाश्वती वस्तु घटती बढ़ती नहीं है सो भी झूठ है क्योंकि गंगासिंधुका पाट, भरतखण्डकी भूमिका, गंगासिंधुकी वेदिका, लवण समुद्रका जल वगैरह बधते घटते हैं।'

इस सारे विवेचनमें जो ऊपर दि० जैनोंके आगम वाक्य उद्धृत किये गये हैं उनमें करीब२ सब ही विद्यानंदसे सहमत नहीं मालूम होते, खास कर अकलंक और पूज्यपाद तो बिलकुल ही विरुद्ध हैं। हरिवंशपुराणका कथन श्वेतांबरोंके सम्यक्त्व शल्योद्धारसे कुछ समता रखता है। हां, अलबत्ता सूत्रकारके वचन जरूर विद्यानन्दकी तरफ झुकते ज्ञात होते हैं और श्वेतांबरोंके उक्त कथनके साथ तो विद्यानंदका अति साम्य है ही। किंतु दि० जैन ग्रन्थ ऐसा देखनेमें नहीं आता जिसमें विद्यानंदकी तरह

क्षेत्रकी हानि वृद्धिका स्पष्ट उल्लेख हो। विद्वानोंका कर्तव्य है कि वे इस विषयके प्राचीन ग्रन्थ टटोलें। खोज करनेपर जरूर कुछ इस विषयके रहस्यका उद्घाटन होगा। विद्यानंदजीके "प्रवचनैकदेशस्य च तद्बाधकस्याभावात्" वाक्यसे तो वैसा कथन मिलनेकी और भी अधिक संभावना है।

स्वामी विद्यानंदजी बड़े नैयायिक विद्वान थे इसलिये तर्क बलसे वैसा कथन कर दिया होगा ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है। विद्यानन्द जैसे एक ऊँचे आचार्यके प्रति वैसी भावना रखना एक बहुत बड़ा दुर्भाग्य समझना चाहिये। किसी सिद्धान्तकी बातको स्वरुचिसे निरूपण करना स्वयं विद्यानन्दजीने अनादरणीय कहा है। यथा -'स्वरुचिविरचितस्य प्रेक्षावतामनादरणीयत्वात्' श्लोकवार्तिक पृ० २।

पुनः—

'न पूर्वशास्त्रानाश्रयं यतः स्वरुचिविरचितत्वादनादेयं प्रेक्षावतां भवेदिति यावत्' श्लोकवार्तिक पृ० २।

जिन्होंने विद्यानंदजीके ग्रन्थोंका मनन किया है वे मानते हैं कि जिनशासनका जो कुछ भी गौरव है उसका श्रेय विद्यानंद जैसे आचार्य महोदयोंको ही है। अतः विद्यानंदजीकी कृतिपर अश्रद्धा प्रकट करना निःसार है। बल्कि हमें तो उनसे अपनेको धन्य समझना चाहिये कि—ऐसे२ तार्किक दिग्गज विद्वानोंने भी परमपावन जिनेन्द्रके शासनका आश्रय लिया है और जब कि विद्यानंदस्वामीने खुद अपने कथनको प्रवचनके एक देशसे अबाधित लिखा है तो फिर स्वरुचिरचनाकी कल्पना उठानेको स्थान ही कहां है?

मिलापचंद कटारिया।

नोट—जैन भूगोलपर अभीतक गवेषणा पूर्ण तुलनात्मक दृष्टिसे किसी भी विद्वान्‌ने अध्ययन किया हो, यह मालूम नहीं है। इस दशामें पं० मिलापचन्दजीके उक्त लेखके लिये हम आभारी हैं। जो विद्वान् जैन भूगोलमें तनिक भी 'चूं चरा' करनेकी गुंजाइश नहीं बताते उन्हें देखना चाहिये कि इस विषयमें कितना मतभेद आज नहीं पहलेसे चला आरहा है। वे वृथा ही 'धर्मचक्र'का भय दिखाकर पदार्थ निर्णयसे लोगोंको विमुख करते हैं। आशा है—पंडित मिलापचन्द्रजी भूभ्रमण विषयमें भी तुलनात्मक दृष्टिसे प्रकाश डालनेकी कृपा करेंगे। सं०।

गजल।

इकदिन मिलेंगे सबको, जोरो सितमके बदले।
आखिर बचे न कोई, ऐसे जुरमके बदले॥
बनकर हबीब, दुश्मन, वोहो हुए हमारे।
क्या खूब मोविजा है, फजलो करमके बदले॥
इन्साफकी नजरसे, देखा अगरचै जावे।
क्या जुल्म ये रवा है, जालिम रहमके बदले॥
सरपै घटाऐं गमकी, सबके घिरी हुई हैं।
हंसते हो क्या हमारे, रंजो अलमके बदले॥
इंसांको ठोकरोंसे, आती है अक्ल देखो।
पीते हैं छाछ डरकर, शोरे गरमके बदले॥
भूलेंगे हम न हरगिज, ये भी अदाऐं उनकी।
कफनी मिली है हमको, जाहो हशमके बदले॥
कायम रहेंगे "प्रियवर", पीछे नहीं हटेंगे।
चाहे बलासे जाये, जां भी धरमके बदले॥

भवदीय-पन्नालाल जैन, प्रिय, विन्द्रबन।

वीर निःकलंकका बलिदान।

(ले०-प्रदी० बा० ज्योतिप्रसादजी जैन सं० जैन-देवबद)

प्रत्येक धर्माचार्य, धर्मगुरु या धर्मप्रस्थापकने अपने धर्मकी नीव प्रेम, सत्य, शील, संजम, त्याग और अहिंसा आदि शुभ गुणोंपर रक्खी है। चूंकि धर्मका संबंध आत्मीक उन्नति और कल्याणसे है इसलिये यह गुण आत्मीक हितके सहायक और साधक हैं, हिंसा असत्य, द्वेष, कषाय आदि दुर्गुण आत्महितके नाशक और बाधक हैं इसलिये वे त्याज्य हैं, बस यही धर्मका मूल मंत्र है। संसार परिवर्तनशील है इस सिद्धांतके अनुसार संसारमें हमेशा परिवर्तन होता रहता है। धर्मगुरुओंके अभावसे धर्मका स्वरूप बदल जाता है, उसका मूल मंत्र पक्षपातकी चक्कीमें पिस जाता है। धर्मश्रद्धाकी जगहको धर्मान्धता आ घेरती है और अपने धर्मप्रचारका ऐसा पागलपन छाजाता है कि एक धर्मका अनुयाई अपने अधिकार और पाशविक बलसे अन्य किसी भी धर्मके व्यक्तिकी सत्ताका कुछ भी मूल्य नहीं समझता। वह धर्मके अंधे जोशमें उसको भांति २ की पीड़ा देने और उसकी जीवनलीला समाप्त कर देनेको अपना सौभाग्य और कर्तव्य समझता है और अपनी तमाम शक्तिको इस ही पुण्य कार्यमें लगाकर अपने ईश्वरका प्रशंसापत्र और स्वर्गलोक जानेका टिकट मिलजाना ख्याल करता है।

धर्मान्ध पुरुषोंकी इन काली करतूतोंसे इतिहासके कितने ही पवित्र पन्ने कलंकित हुये दिखाई देते हैं, इन्हीं धर्मान्ध पुरुषोंकी द्वेषाग्निमें वीर निःकलंकने किस प्रकार अपने प्राणोंकी आहुति दी और किस प्रकार धर्मकी यज्ञवेदीपर उनका बलिदान किया गया, यह समाचार "दिगंबर जैन" के सुयोग्य पाठक ज़रा ठंडे दिलसे पढ़ें—

यह उस जमानेकी बात है जब कि बौद्धमतकी कड़ी दोपहरी भारतवर्षमें विद्यमान थी। महात्मा बुद्धका उच्चादर्श, सत्योपदेश, और प्रेमसिद्धांत, ठुकराये जाचुके थे। बौद्धमतकी अहमन्यता और धर्मान्धता बौद्धोंकी नस २ में प्रवेश कर चुकी थी। बौद्धोंके कहे जाने वाले धर्मगुरू केवल धर्मपक्षके कारण हृदयहीन और कठोरचित्त होकर अन्य मतावलंबियोंके प्राण क्षुद्र पशुओंकी भांति लेलेनेकी सम्मति देने हुये ज़रा संकोच भी नहीं करते थे। इनकी इस सम्मतिका मूल्य वर्तमानकी प्रिवीकौंसिलकी आज्ञासे कहीं अधिक बढ़ा चढ़ा होता था। बौद्धराजा इनकी आज्ञाका पालन करना अपना धार्मिक कर्तव्य समझते थे। बहुतसे धर्माचार्योंने धर्मरक्षार्थ धर्मद्रोही समझे जाने वाले मनुष्योंके प्राण लेलेनेका स्वतः अधिकार प्राप्त था। उस समय जैनधर्मका सूर्य प्रायः अस्तसा होचुका था। जो मनुष्य जैनधर्मके राग गाता देखा जाता था उसके प्राण लेलेना पुण्यकार्य समझा जाता था। जैनोंकी पूज्य प्रतिमायें खंडित और जैनधर्मके ग्रंथोंको जला देनेकी आज्ञा दी हुई थी। अतः धर्मान्धताका पूरा २ साम्राज्य छाया हुआ था। ऐसे निःकृष्ट समयमें "मान्यखेट" नगरीके राजमंत्रीकी सुशीला धर्मपत्नीके उदरसे दो धर्मवीर उत्पन्न हुये। बड़े

भाईका नाम "अकलंक" और छोटे भाईका "निःकलंक" रक्खा गया। इनके माता पिता श्री वीर भगवानके अनन्य भक्त और जैनधर्मके पूर्ण श्रद्धालु थे। इन दोनों भाइयोंकी प्रारम्भिक शिक्षा भी जैनधर्मके पवित्र सिद्धांतोंके आधारपर हुई थी। इसलिये इनको जैनधर्मसे उतना ही प्रेम था कि जितना आत्मोन्नतिके अभिलाषियोंको होना चाहिये।

जब यह दोनों भाई कुछ बड़े हुए तब जैनोंपर होनेवाले बौद्ध लोगोंके अत्याचारोंपर इनका ध्यान गया। इन्होंने देखा कि जैनोंके विशाल देव मंदिरोंपर बौद्ध लोग अपना अधिकार जमा रहे हैं, पूज्य देव मूर्तियोंका अविनय करनेपर तुल रहे हैं और धर्मग्रंथोंको जलप्रवाह या अग्निदेवकी भेंट चढ़ा रहे हैं तब इनको अत्यंत कष्ट हुआ और आंखोंसे अश्रुधारा बह चली। उस समय जैनोंकी जो धार्मिक दुरावस्था थी उसका अन्दाज केवल इससे लग सकता है कि इन्होंने अपनी पूज्य मूर्तियोंको इन दुष्टोंके हाथोंसे बचानेके लिये पृथ्वीकी गोदमें देना और धर्म ग्रन्थोंको अलमारियोंमें बन्द करके छुपे हुए अंधेरे तहखानोंमें रखना शुरू कर दिया था। उस समयकी दबाई हुई जैन मूर्तियें पृथ्वीकी गोदसे प्रायः अब भी निकलती रहती हैं और शास्त्रोंके उन छुपे भंडारोंपर कीड़ोंने अपना अधिकार जमा लिया है। इन दोनों धर्मवीरोंने धर्म और समाजकी यह दुरावस्था देखकर निश्चय किया और प्रतिज्ञा धारण की कि हम जीवन पर्यंत "ब्रह्मचारी" रहकर और बौद्ध शास्त्रोंकी शिक्षा पाकर श्री वीर प्रभूके धर्मका प्रचार करेंगे और जैनधर्मका झंडा फहरायेंगे।

एक सच्चा वीर पुरुष प्रतिज्ञाबद्ध होकर भला क्या नहीं कर सकता? और फिर उसकी वह प्रतिज्ञा भी धर्मप्रचारके भावोंको लेकर की गई हो तब तो फिर कहना ही क्या है "सोना और सुगंध"। इन वीर बालकोंने अपने व्रतको पूरा करनेके उद्देश्यको लेकर अर्थात् बौद्ध धर्मकी शिक्षार्थ "बौद्ध विद्यालय"में प्रवेश किया और एक प्रसिद्ध धर्माचार्यसे शिक्षा पाने लगे। बालक तीव्र बुद्धि और परिश्रमी थे। इससे धर्माचार्यको बड़ी प्रसन्नता हुई, बड़े ही उत्साहके साथ पढ़ाया, बौद्ध धर्मकी तमाम बातें और सिद्धान्त भलेप्रकार समझा दिये और इन्होंने भी समझनेमें कोई कमी नहीं की। हां! यह बात जरूर थी कि अकलंककी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण थी वह एकबारके समझानेमें सब कुछ समझ जाता था इससे अकलंकका ज्ञान बहुत कुछ बढ़ गया था। एक दिनकी बात कि धर्माचार्यजी किसी धार्मिक ग्रन्थका स्वाध्याय कर रहे थे। एक तात्त्विक चर्चा जैनधर्म सम्बधी ऐसी विकट समस्याके रूपमें आखड़ी हुई कि विचारे बहुत कुछ प्रयत्न करनेपर भी न सुलझा सके, ग्रन्थके पन्नेपर निशान लगाकर कुछ देरके लिये बाहर जाकर टहलने लगे। इनके चले जानेपर अकलंकने (जो धर्माचार्यकी इस घबराहटको देख रहे थे और मन ही मन समझ रहे थे कि जरूर कोई न कोई कठिन समस्या उपस्थित है जिसको गुरूजी सुलझानेका प्रयत्न करते हुये भी नहीं सुलझा सके और थक कर बाहर चले गये)

मस्तकके पन्नेको उठाकर देखा और समस्याको झट सुलझा दिया और उसकी व्याख्या बालळिपिमें लिखकर वहींपर रख दी। कुछ देर पीछे गुरुजी आये और आते ही उस पन्नेको देखने लगे। देखते क्या हैं कि जिस समस्याको वे बहुत कुछ दिमाग लड़ानेपर भी न सुलझा सके थे वही समस्या किसी व्यक्तिने सुलझा कर रख दी है, तब बड़े घबराये और दिलमें निश्चय कर लिया कि मेरे विद्यालयमें जरूर कोई जैन सिद्धांतका जाननेवाला बालक मौजूद है। अन्यथा इस तरहकी गुत्थीको सुलझाना किसी साधारण बोधका काम नहीं है। भय यह हुआ कि यदि कोई जैन बालक बौद्ध ग्रन्थका ज्ञान प्राप्त करके फिर बौद्ध धर्मका खण्डन करनेके लिये मैदानमें आ डटा तो बड़ी मुश्किल पेश आवगी, बौद्ध धर्मको बड़ा भारी धक्का लगेगा। संसारमें जैनधर्मका छिपा हुआ सूर्य फिर उदय होजायगा। इस जैन विद्यार्थीका जीवन बौद्ध धर्मकी मृत्युसे किसी प्रकार भी कम नहीं है, और वह मृत्यु भी कैसी, अत्यंत भयानक। इस विद्यार्थीका जीवन सोनेके लिये कसौटी और बौद्ध धर्मकी पोल खोलने और मायाजाल रूपी अन्धकारको नाश करनेके लिये प्रकाशका काम देगा। इसलिये इस जैन बालकका शीघ्र पता लगाकर इसकी जीवनलीला समाप्त कर देनी चाहिये। क्योंकि दुश्मनको जीनेका अवसर देना अपने जीवनको संकटमें डालना है।

अब वीर बालकोंको पकड़नेके लिये भांति२के उपाय किये जाने लगे। परन्तु सब व्यर्थ गये। तब एक जैन देवताकी पूज्य प्रतिमा मंगाई गई और तमाम विद्यार्थियोंको उसपरसे लंघनेकी आज्ञा दी गई। बारी२ से कुछ विद्यार्थी उलघ गये। हमारे धर्मवीर भी मूर्तिपर सूतका धागा डालकर उसको दिगम्बरत्वसे रहित और परिग्रह सहित पत्थरकी मूर्ति मान कर कूद गये। जब आचार्यजी इसप्रकार भी सफलमनोरथ न हुये तब अत्यन्त विचारके पश्चात् एक उपाय ढूंढ निकाला और वह उपाय था भी बहुत कुछ उपर्युक्त अर्थात् विद्यालयमें कांसीके बहुतसे वर्तन मगाये गये और निश्चित किया गया कि रातके पिछले पहरमें यह वर्तन ऊपरकी मंजिलसे पटक दिये जांय। तब बहुत बड़ा धमाका होगा उस समय विद्यार्थीगण भयभीत होकर अपने२ इष्टदेवका नामोच्चारण करेंगे। तब जैनी बालक सुभीतेके साथ पकड़े जा सकेंगे और हुआ भी ठीक ऐसा ही, वर्तन गिरते ही बड़े जोरका धमाका हुआ। सब बालक भयभीत होकर प्रेमके अवतार बुद्ध भगवानका नाम लेते हुये बाहर निकले, हमारे दोनों धर्मवीर भी अपने इष्टदेव श्री वीर भगवानका नाम लेते हुये उठ खड़े हुये। अभी यह उठकर बाहर आना ही चाहते थे कि धर्मांधपुरुषोंके द्वारा फौरन ही बंदीकर लिये गये व धर्माचार्यके सन्मुख पेश किये गये। इस पापी आचार्यने धर्मके अन्धे जोशसे प्रेरित होकर और अपने मजिष्ट्रेटी अधिकारसे काम लेकर आज्ञा देदी कि "इन दोनों विद्यार्थियोंको सात मंज़िलवाले मकानसे रातके समय नीचे पटक दिया जाय" न्यायका अभिनय समाप्त हुआ और दोनों भाइयोंको बन्दीगृहमें डालकर पहरा लगा दिया गया।

बन्दीघरमें बैठे २ छोटा भाई निःकलंक बड़े

भाई अकलंकसे विनम्र होकर कहने लगा—पूज्य भाई, आप बड़े हैं मैं आपके सामने कुछ कहते हुये बहुत संकोच करता हूं; परन्तु अब जैनधर्म और जैन समाजके जीवन, मरणका प्रश्न हमारी आंखोंके सामने भयानक रूपमें खड़ा हुआ है। हम दोनों भाई जैनधर्म और समाजके हितार्थ अपना२ जीवन प्रतिज्ञा रूपमें समर्पण कर चुके हैं, हमने बहुत दिनोंतक गुप्तरूपसे बौद्ध विद्यारूपमें शिक्षा पाकर बौद्धधर्मके शास्त्रोंका अध्ययन किया है और उसके कपोलकल्पित सिद्धांतोंसे भलीभांति परिचित होगये हैं और मुझसे आपका ज्ञान बहुत कुछ बढ़ा चढ़ा है, आप जैनधर्मका प्रचार बहुत कुछ कर सकते हैं। अब पूज्य भाई, कुछ ऐसा उपाय करो कि जिससे हमारा वह मनोरथ सिद्ध हो कि जिसके लिये हमने आजन्म ब्रह्मचारी रहकर सेवा करनेका संकल्प उठाया हुआ है।

यह सुनकर बड़े भाई अकलंकने कहा—प्यारे भाई, तुम्हारा कहना सर्वथा सत्य है। वीरप्रभूने बतलाया है कि जिस मनुष्यने आत्मज्ञान पाकर उसके प्रकाश द्वारा मिथ्याती जीवोंके दुखरूपी अंधकारका नाश न किया—शक्तिशाली और सामर्थ्यवान होकर दीन दुःखी और असहायोंकी सहायता न की और धन पाकर दया दानमें टका खर्च न किया, उस मनुष्यका जीवन निष्फल और निष्काम है। जिस देश या समाजमें ऐसे अधम पुरुषोंका अस्तित्व पाया जाय उसका जीवित रहना सर्वथा आश्चर्यजनक है। भाई निःकलंक, हम पर द्रव्य नहीं है जो दया दानमें लगा सकें। हम ऐसे बलवान भी नहीं हैं कि जो असहायोंकी कुछ सहायता कर सकें। परन्तु हां, किसी शुभके उदयसे कुछ ज्ञान जरूर पाया है यदि इससे भी मिथ्यातके अन्धकारको दूर न कर सके तो हमारा मनुष्य जन्म पाना ही निरर्थक है। वैसे तो मनुष्य मात्रका कर्तव्य है कि तन, मन, धन, लगाकर धर्मकी सेवा करे और संसारके दुःखी जीवोंको उनके हितका मार्ग दिखलाये। फिर हमने तो इस पुण्यकार्यका बीड़ा ही उठाया हुआ है।

इन बातोंके पश्चात यह दोनों धर्मवीर बंदीगृहसे निकलनेका उपाय सोचने लगे। कुछ देर पीछे पहरेदारोंके अचेत होनेपर यह दोनों वीर बालक मौका पाकर निकल भागे और भागे भी बहुत कुछ जीतोड़कर। उधर ये भागे जारहे थे इधर यह मालूम होनेपर कि दोनों अपराधी जेलखानेसे भाग गये हैं चारों तरफ घोड़ेके सवार दौड़ाये गये। इन सवारोंकी म्यानसे बाहर हुई खूनी तलवारें किसी निरपराधीके रक्तपानकी प्यासी दिखाई देती थीं। अभी२ इन धर्मवीरोंको घोड़ोंकी टापें सुनाई पड़ीं और पृथ्वीकी धूल उड़ती दिखाई दी। सोचा कि हो न हो अत्याचारियोंकी फौज आरही है। निष्कलंक बोला—पूज्य भाई, दुष्ट लोग सरपर आगये हैं, अब हमारी मृत्यु निकट है। इन पापियोंकी खूनी तलवारें जरूर हमारा खून पियेगी। और हम अपने व्रतको पूरा न करके इस असार संसारसे योंही चल बसेंगे। यह अच्छा नहीं है। पूज्य भाई, अब मोहजालको तोड़ दो। मोह ममत्वमें फंसकर धार्मिक कर्तव्यकी इतिश्री न करो। आवो भैय्या आगे आवो। और इस सरोवरके कमल दलमें छुप जाओ। आप विद्वान हैं,

साहसी हैं, पराक्रमी हैं, चतुर हैं, और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके अनुसार प्रवर्तनेवाले हैं। आपके द्वारा जैनधर्मका बहुत कुछ चमत्कार और समाजका बहुत कुछ उपकार होगा। जाओ भैय्या जाओ, देर न करो, क्योंकि दुश्मनोंका लश्कर बहुत ही निकट आगया है।

अकलंक देव कुछ बोलना ही चाहते थे कि वीर निःकलंकने फिर वीरतापूर्ण शब्दोंमें कहा कि भैय्या, जीवन क्षणभंगुर है, जीवनके साथ मृत्यु लगी हुई हैं परन्तु देखना यह है कि मृत्यु होती किसकी है। आत्मा तो अजर अमर है वह तो मरता ही नहीं। मृत्यु होती है इस अपवित्र और घिणावने शरीरकी। फिर होने दो इसकी क्या चिन्ता। मेरा और आपका इस शरीर सम्बन्धी इतना ही सम्बन्ध था। अब समाप्त होनेवाला है। अतः जाओ जाओ अब भी समय है अन्यथा समय चूककर पछताना पड़ेगा—अत्याचारियोंकी तलवारें हम दोनोंकी जीवन लीलायें समाप्त कर देंगी। फिर धर्मका उद्धार और हमारा पवित्र व्रत कैसे पूर्ण होगा। लीजिये मैं चला। प्रणाम!

यह कहकर वीर निःकलंक भाग पड़ा। अकलंक देव देखते देखते रह गये। भाईके मोहकी प्रबलताने आखोंमें दोचार पवित्र आंसू छलका ही दिये। इधर भ्रातृ वियोगका शोक और उधर धर्मपर बलिदान होनेका सौभाग्य, बस अब इतना भी समय नहीं है कि जो हमेशाके लिये बिछुड़नेवाले भाईसे दो बातें ही कर ली जांय। मन मसोस कर अकलंक देव कमलोंके झुंडमें जा छुपे और प्यारे भाईसे हमेशाके लिये जुदा हो गये।

वीर निःकलंक भागा जारहा है। जो इसको भागकर जाते और पीछे घुड़सवारोंको आते देखता है वही घबराकर जिधर मौका पाता है, भाग पड़ता है। यहां तक कि इस अत्याचारसे जंगलके पशु पक्षी भी न बच सके। उनको भी घबराहटके साथ भाग दौड़ करनी पड़ी। सबने देखा कि जरूर कोई बड़ी भारी मुसीबत आरही है जो सब ही जीव व्याकुल नजर आरहे हैं।

वीर निःकलंकके पीछे एक अपरिचित और गरीब पथिक भी भाग पड़ा। बस फिर क्या था। शिकारियोंने अपना शिकार पा लिया। इनको चाहिये था क्या? दो आदमियोंका एक साथ होना। बस इन दोनोंको एकसाथ भगते समझ लिया कि भागे हुये बन्दी यही दोनों हैं।

कहते छाती फटती है कि इन जालिमोंकी खूनी तलवारें वीर निःकलंक और दीन पथिकके निरपराधी शरीरोंपर क्षणमात्रमें आपड़ी। देखते ही देखते दोनों जनोंके पवित्र शीस कट कर पृथ्वीकी छातीपर आ गिरे, मृत शरीर धूलमें लोटने लगे और खूनके फव्वारे छूट निकले।

अत्याचारियोंके धार्मिक कर्तव्यकी इतिश्री हुई। दोनों कटे हुये शीस धर्मान्ध और पापी आचार्यके सन्मुख लेजाकर रखे गये। इस दुष्टके आनन्दकी कोई सीमा न रही। इसने समझ लिया कि सचमुच बाजी मारली। और पृथ्वीसे बौद्ध धर्मके विरोधियोंका सर्वथा अंत कर दिया। अब सुख चैनकी नीन्द सोनेका सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा।

परन्तु जिस प्रकार बन्दीगृहमें कर्मयोगी श्रीकृष्ण जन्मे और लालनपालनके लिये सुरक्षित स्थानपर पहुचा दिये गये, पापी कंसको ज़रा भी खबर न हुई, इस ही प्रकार इस धर्मान्ध गुरुको क्या खबर है कि बौधधर्मकी धज्जियां उड़ानेवाला अभी संसारमें जीवित है और कमलदलमें विराजमान है। यह निरपराधियोंका खून अवश्य रंग लायगा और वह समय बौद्ध धर्मके लिये शीघ्र आयगा जब कि इसकी सत्ता भारतवर्षसे सर्वथा ही मिट जायगी। क्योंकि—

"अत्याचारका कटुक फल अत्याचारियोंको अवश्य ही भोगना पड़ता है।" "ज्योति"

श्रीवीर-स्तुति।

हे वीर जिनवर आपने जब ज्ञान अनुभवको किया।
तब सुःखके साम्राज्यपर स्वामित्व अपना करलिया
अरु वीर्य तुलनातीत लहकर अजित भूपति होचुके।
तब मुक्ति लक्ष्मीके स्वयं स्वोकृत पती तुम बनचुके
इस वर्षके प्रारंभमें इक प्रार्थना करता विभो।
अब मेटकर अज्ञानरज ज्ञानांशुको विस्तृत करो॥
अरु हृत्सरोवर अब हमारे पङ्क रहित बनाइये।
सद्भाव सरसिजका उन्होंमें द्रुपयको दिखलाइये। ४
शान्तिके सौन्दर्यकी आभा झलकती नित रहो।
अरु फूटका हो नाश जड़से प्रेमस्रोत बहा करे॥५
हम ऐक्य बंधन बद्ध होकर भेद भाव न दृष्टि दें।
अरु प्रकृति देवी गोदमें आनंद अनुभव नितलें॥६
निर्भीक हो स्वातंत्र्य पथसे धर्म प्रसरण हम करें।
अरु नव विवेक विचारसे आत्मोक उन्नति नित करें
हो आत्मत्याग सुभावना उपकार परमें दृढ़ रहें।
मानव जनमके मिष्ट फलको अब विभो हम पासकें॥

रवीन्द्रनाथ जैन वि०, इन्दौर।

मनो-विकार।

प्रहसन।

(ले०-पं० शोभाचन्द्र भारिल्ल न्यायतीर्थ-बीकानेर)

(धनीराम अपनी बैठकमें)

कलिकाल! घोर कलिकाल! प्रभो! बहुत सहा, अब नहीं सहा जाता। दीनानाथ! दया करो, यह दुःखद दृश्य अब नहीं देखा जाता। हम सब कुछ सह सकते हैं, पर किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं सह सकते। यही गनीमत हुई कि आप सर्वज्ञ थे, इस हुंडावसर्पिणी कालके इन आतताई सुधारकोंके मंसूबोंको भलीभांति जानते थे, इसीसे आपने मुक्तिका फाटक बन्द कर लिया। नहीं, तो ये भले मानुस आपके पास पहुंचकर न जाने क्या गजब ढा देते। प्रभो! आप सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं, लेकिन विना कहे रहा नहीं जाता। आपने साफ़ २ बता दिया है कि पांचवें कालमें धर्मकी अवनति होती जायगी। परन्तु ये परम पापी धर्मकी उन्नतिकी डींगें मार रहे हैं। आपकी आज्ञाको मुर्दा समझकर दफना देना चाहते हैं। जिनदेव! इस समय सुधारोंकी मूसलधार वर्षासे सुधारक नामके कीड़े, डांस, मच्छर और मेंढकोंकी तरह दिन दूने रात चौगुने बढ़ने जाते हैं। इनकी टर्र २ की आवाज कानोंके पर्दे फाड़े डालती हैं। देव! मैं सर्वज्ञ नहीं हूं—अल्पज्ञ हूं। नहीं जानता इन्हें क्या २ उपमाएं देकर आपकी स्तुति करूं। इनका जाल मकड़ीके जालको मात करता है। मकड़ीके जालमें

मक्खी ही फँसती है पर इनके जालमें बुद्धिमान् और विचारक फँसते हैं। मकड़ीके जालमें फँसनेसे मक्खीका एक ही जन्म बिगड़ता है, पर इनके जालमें फँसनेसे वह जन्म और आगेके सावसौ सत्तर जन्म बिगड़ जाते हैं। मैं इनके जालमें फँसूं, इससे पहले ही, हे जगदीश्वर! अनुग्रह करके मुझे यहांसे उठा लो। मुझे अधर लटकना मंजूर है, पर इनकी बातें मंजूर नहीं।

(गाता है)

सनातन जो नियम अबतक, चले निर्विघ्न आते हैं।
उन्हींके खूनके प्यासे, सुधारक होत जाते हैं॥
प्रभो! इनको सुमति दीजे, कुमति या शीघ्र हर लीजे।
बने ये आपके दुश्मन, मजा इनको चखा दीजे॥

(दर्वाजेमें खटखट शब्द होता है)

(स्वागत) अरे! कोई सुधारक तो नहीं आमरा है! (प्रगट) ठहरिये, ठहरिये, आता हूँ।

(जाकर दर्वाजा खोलता है, महावीरप्रसादका प्रवेश)

धनीराम—आओ, पधारो। तुम तो नीलकण्ठ होगये। दिखाई ही नहीं देते। किसी मामले मुकद्दमेमें तो नहीं उलझे?

महा०—हाँ, उलझा हुआ तो हूँ, पर मामले मुकद्दमेमें नहीं। समितिका अधिवेशन बिल्कुल समीप आगया है। कार्यकी भरमार है। इसीसे आपके दर्शन न कर सका। अब आपकी सहायताकी भी आवश्यकता है, आशा है आप जैसे वृद्धोंके अनुभवसे अवश्य ही हमें बहुत सहायता मिलेगी।

धनी०—अजी! आजकल बूढ़ोंको पूंछता कौन है! कलियुगी डाक्टर कहते हैं कि बूढ़ोंकी अक्ल मारी जाती है। आखिर उन बुद्धिके सागरोंसे पूछो कि पुराने जमानेमें भी कभी बुद्धि नष्ट होती थी या अभी होने लगी है? कोई भी तीर्थंकर ७०—७५ सालसे कमके नहीं हुए तो क्या उन सबकी बुद्धि मारी गई थी? कलिकाल! घोर कलिकाल!!

महा०—नहीं साहिब! पहली बात तो यह है कि तीर्थंकरोंको कभी बुढ़ापा आता ही नहीं, अतः उनका उदाहरण देना व्यर्थ है। दूसरी बात यह कि, जब लम्बी २ उम्र होती थी तब बुढ़ापा भी देरसे ही आता था। अस्तु, इस वादविवादको यहीं समाप्त कीजिये। हाँ, तो आप मेम्बर हैं न?

धनी०—क्या कहा, मेम्बर हो? छोटी मुँह बड़ी बात? कलिकाल न होता तो तेरी जीभ गलकर गिर जाती। नादान! तेरे जैसे अंग्रेजी पढ़नेवाले सुधारक बनकर पापकी पोटली बांधनेवाले ही मेमोंको बरते हैं—वे ही किरस्तानोंकी जूठन चाटते हैं—मैं तो साहब मेमोंको छूता तक नहीं और मुझसे कहता है मेम बर हो!

महा०—ओहो! साहिब, मेरा यह मतलब न था, जो आप समझ गये हैं। मेम्बर तो सभाके एक अंग होते हैं।

धनी०—फिर भी मुझे साहब कहता जाता है? बड़ा बेमतलबी आया कहींका? हम बूढ़े तो बेवकूफ ही हैं जो तुम्हारे मतलबको नहीं समझ सकते। अंग-अंगकी सफाई रहने दो, नहीं तो वृथा ही अंगभंग हो जायगा।

महा०—आप वृद्ध हैं, मैं नवयुवक—आपके पुत्रके समान हूं। शांति धारण कीजिये। मैं जाता हूं, अधिवेशनके समय दर्शक रूपसे तो पधारोगे।



श्रीमती पंडिता चन्दाबाईजी-आरा।

("जैन महिलादर्श" की सुयोग्य सम्पादिका, जैन बालाविश्रामकी संचालिका, व जैन स्त्रीसमाजमें अनन्य विदुषी पंडिता)।

Jain Vijaya P. Surat

धनी०—फिर वही बात ? तुम सुधारकोंमें ही सर्वज्ञ सर्वदर्शक बननेकी क्षमता है हममें नहीं। हम तो ईश्वरको ही दर्शक समझते हैं। मेरा अपमान किया सो किया, पर भगवानका अपमान न करो। मैं तुम्हारी बहकावटमें नहीं फंसनेका।

महा०—आना न आना तो आपकी इच्छापर ही निर्भर है। परन्तु आप स्थानीय संघके पंच हैं। इसीलिए आपका पंचत्व इस समय भी बहुत आनन्दप्रद होगा।

धनी०—क्या कहा, मेरा पंचत्व ? चाहे तुम लोगोंको मेरा पंचत्व आनन्दप्रद हो या न हो, पर मुझे तो वह अवश्य आनन्दप्रद होगा। यह अपवित्र पृथ्वी अब मेरे रहनेलायक है ही नहीं।

महा०—आप तो उल्टा ही उल्टा मतलब निकालते हैं। मेरे कहनेका आशय 'डेलीगेट'से है। हम चाहते हैं आप स्थानीय संघके डेलीगेट बनें तो हमारा बोझा बहुत हलका होसकता है।

धनी०—तो क्या मुझे देहलीका फाटक बनाता है ? चल हट यहांसे, मेरे घर बैठा हुआ मुझे ही न जाने क्या२ बना रहा है ?

(बाहर निकाल देता है)

ये सुधारक बड़े ही ऊत, कलियुगी भूत, यमराजके दूत, माता—पिताके कुपूत और धुमकेतुओंके सबूत हैं। भगवान् इनसे बचावे।

(गाता है)

आओ आओ हे जगदीश !
सुधारक जगको अति दुख देत।
जगको अति दुख देत सुधारक,
धर्म डुबोएं देत ॥ आओ० ॥
सब रूढ़ी रहें निरन्तर,
पड़ने ना पावे अन्तर,
दुष्टोंका चले न मन्तर,
इनमें है हम सबका हेत ॥ आओ० ॥
सब रीति-रिवाज अनोखे,
लगते हैं हमको चोखे,
इनके बिन होवें खोखे,
सुधारक इन्हें मिटाये देत ॥ आओ० ॥

(भोंदूरामका आवाज देना)

धनी०—(स्वगत) हायरे ! सुबह उठते ही किसका मुंह देखा था। फिर कौन आ धमका ? (प्रगट) कौन ?

भोंदू०—मैं हूं भोंदूराम, दर्वाजा खोलिये।

धनी०—अजी, आइये, आपके लिए थोड़े ही दर्वाजा बन्द है। वह तो है भिड़के हैं।

भोंदू०—सांकल बन्द है, किस प्रकार आऊं ?

धनी०—अच्छा अच्छा, आया। पहले ही क्यों न कह दिया ? आओ। भुवनेन्द्रसिंहजी, कहो कुशल मंगल तो है ?

भोंदू०—आज सदा प्रसन्न रहनेवाले चेहरेपर उदासीकी सूक्ष्म रेखा क्यों दिखाई पड़ती है ?

धनी०—कुछ तो नहीं। यों ही। इन सुधारकोंने नाकमें दम कर रक्खा है।

भोंदू०—हां ! एक सुधारक मेरे पास भी आया था और समितिमें आनेको कहता था।

धनी०—आपने क्या जवाब दिया ?

भोंदू०—(मूछोंपर हाथ फेर कर) अजी, भोंदू कहीं सुधारकोंके चक्करमें आनेवाले हैं। मैंने उसे खूब लथेड़ा, आखिर अपनासा मुंह लेकर नौ दो ग्यारह हुआ। मैंने प्रश्न पूछा—समितिमें क्या२

होगा ? उसने एक छापा पकड़ा दिया। उसमें सामायिक वगैरह धार्मिक कामोंका नाम निशान न था। मैंने कहा—समितिमें धार्मिक काम होंगे नहीं तो मेरे आनेकी जरूरत भी नहीं मैं हर्गिज न आऊंगा। सब आरम्भ परिग्रहकी बातें होंगी।

धनी०—अच्छा फिर क्या हुआ ? वह क्या बोला ?

भोंदू०—फिर क्या कहता अपना सिर ? मरणासन्न रोगीकी तरह दबी जबानसे मिनमिनाते बोला—जब आपको आरम्भका कोई काम पसंद ही नहीं तो घरमें चूला-चक्की क्यों रख छोड़ी है ? वहां चौबीसों घंटे सामायिक क्यों नहीं किया करते ?

धनी०—अच्छा फिर क्या हुआ ? तुम क्या बोले ?

भोंदू०—फिर क्या, कुछ नहीं। मैंने ज्यादा माथापच्ची करना उचित न समझा। मैं चला आया और फिर वह भी चला गया ?

धनी०—तुमने उसकी अंतिम बातका जवाब ही क्यों न दे दिया ?

भोंदू०—आपसे अबतक कोई बात नहीं छिपाई, भला यह बात कैसे छिपा सकता हूं ? बात यह हुई कि इसका उत्तर उस समय सूझा नहीं ?

धनी०—ओहो ! यदि मुझसे पूछ लेते तो ऐसा जवाब देता कि बच्चू गूंगे बन जाते।

भोंदू०—मगर आप तो वहां थे नहीं न ?

धनी०—हां ! यही तो मुश्किल हुई ?

भोंदू०—अब कहीं मिला तो यही उत्तर कह दूंगा। फरमाइये।

धनी०—अजी, ऐसा वैसा उत्तर नहीं है, इसे सुनकर सुधारकोंके गुरु भी चकरायगे। शास्त्रोंका प्रमाण है—शास्त्रोंका। सुनो—जैसे सभा और समिति अभी तीन दिनोंसे होने लगी हैं वैसा चूला नहीं है। चूला बहुत पुराने कालसे चला आया है। पुराने जमानेके लोग मूर्ख तो थे ही नहीं। देखो, कहा भी है—

> मानावनामसुरमानवदानवेन।
> चूलाविलोलकमलालिमालितानि।
> सपूरिताभिनतलोकसमीहितानि,
> काम नमामि जिनराजपदानि तानि॥

इस श्लोकमें चूला आया है। यह श्लोक पुराना है इसलिये चूला भी प्राचीन कालसे चला आ रहा है। पुराने कालमें होता था, इसीलिए अब भी होता है। कहो, कैसा प्रमाण है ?

भोंदू०—वाह ! वाह !! क्या कहना ? धन्य है आपकी बुद्धिको। आजसे आप बुद्धि-वारिधि हुए।

जान देना चाहिये, हंसकर वतनके वास्ते।

है जवानी, ऐ जवानो ! चार दिनके वास्ते।
क्या लुटाना चाहिये, यों गुलबदनके वासते॥
काम कर जाओ जहांमें, जिससे पैदा नाम हो।
वाहवा होती रहे, इस बांकपनके वासते॥
सब लुटा दो मुल्ककी तुम, बहतरीको मानो ज़र।
परवाह नहीं, कौड़ी न हो, पीछे कफनके वास्ते॥
उफ् तलक निकले न मूंसे, जो मुसीबतें हों हज़ार।
जान देना चाहिये, हंसकर वतनके वास्ते॥
देशी चीजें काममें लाओ, जहां तक हो सके।
ये ही समझ देते रहो, देशी चलनके वासते॥
होगा भला जब देशका, होगा हमारा भी भला।
ये ख्याल सबके दिलमें हो, अब मर्दोंजनके वास्ते॥
देशसे बढ़कर हमें, प्यारा नहीं कोई 'प्रिये'।
ये है हमारे वासते, हम हैं वतनके वासते॥

पन्नालाल प्रिय।

" महाबाहु बाहुबली "।

(रचयिता-पं० के० भुजबली शास्त्री-आरा)

आराध्यदेवमभिवन्द्य बुधोत्तमानाम्।
श्री दोर्बलीशचरितं कथयामि भक्त्या॥
श्रुत्वा त्रिलोकविनुतं चरितं यदत्र।
मुञ्चन्ति कर्मरजसो भुवि भव्यजीवाः॥१॥
अस्त्यत्र भारते वर्षे जम्बूद्वीपस्य भूषणे।
कोशलाख्यो महादेशः सर्वसद्गुणमण्डितः॥२॥
आसीत्तत्रपुरे रम्ये नाभिराजो महाप्रभुः।
नृपसद्गुणसम्पन्नो नीतिशास्त्रविशारदः॥३॥
नियोज्य वृषभं राज्ये वृषदं वृषनायकम्।
स राजा विरतिं प्राप गुरुसाम्राज्यक्लेशतः॥४॥
आस्तां तस्य सुनाथस्य वृषभस्य महात्मनः।
यशस्वती सुनन्दाख्ये पत्न्यौ पत्निगुणान्विते॥५
अजनिष्ट यशस्वत्याः सूनवो भरतादयः।
पुत्री च ब्राह्मी संजाता रूपलावण्यमंडिता॥६॥
सुनन्दापि प्रलेभे हि पुत्रं बाहुबलं बलम्।
पुत्रीं च सुन्दरीं लब्ध्वा सुशीलगुणभूषिताम्॥
मत्वा सकलसाम्राज्यमेकदा नश्वरं ध्रुवम्।
स राजा चिन्तयामास सर्वं हेयं विवेकिना॥
एवं विचिंत्य तत्सर्वं सक्तराज्यो महीपतिः।
बभार जिनदीक्षां तां लोकद्वयसुखावहाम्॥
दीक्षोन्मुखेन तातेन प्रदत्ता प्रमुखा मही।
सुयोग्याय सुजेष्ठाय भरताय विवेकिने॥१०॥
एवमन्यान्यपुत्रेभ्यो दत्तं राज्यं सुवेधसा।
सुयोग्यसम्पदं प्राप्य ते सर्वे सुखिनोऽभवन्॥
एकदा भरतो राजा चिन्तयामास स्वहृदि।
जित्वा षट्खंडपृथ्वीं तां भविष्यामि नृपोत्तमः॥
इत्थं विचिन्त्य सन्नाहं विजयार्थं महीपतिः।
कृतवान् सर्वयत्नेन मंत्रिभिः स्वनृपैः सह॥१३॥
जित्वा षट्खंडपृथ्वीं तां यदा प्रत्याययौ पुरीम्।
तदा तस्य पुरीं चक्रं न प्रविष्टं तदाज्ञया॥१४
दृष्ट्वा भरतराजोऽयमचलं चक्रमद्भुतम्।
आहूय पृष्टवान् तस्य कारणं स्वपुरोहितम्॥१५
पुरोहितेन तेनोक्तं भरतं सुविचारिणा।
स्वारब्धजयसिद्धिस्ते न प्राप्ता नृकुलोत्तम॥१६
तदा तं भरतेनोक्तं सत्त्वा मम सहोदरान्।
निर्जिता निखिला भूपा राज्यादिमदगर्विताः॥
ततो ऽत्यापत्प्रतीकारः किमस्ति सुपुरोहित।
स्वानुजानान्तु तातेन दत्तं राज्यं पुरैव हि॥१८
तच्छ्रुत्वा तेन तं प्रोक्तं भरतं भुवि विश्रुतम्।
उपायेन विजेतव्या विजेया तव सोदराः॥१९
श्रुत्वा विप्रवचो राजा प्रेषयामास तत्क्षणे।
दूतान्नीतिविदो राज्ये सोदराणां दयानिधिः॥
ज्ञात्वा भरतसंदेशं सुदूतैः सुविवेकिभिः।
पुत्रास्सर्वे यशस्वत्याश्चिन्तयामासुरसत्वरम्॥
अवश्यं खलु नश्यन्ति भुक्त्वापि विषयाश्चिरम्।
ततस्त्याज्या हि मोक्षाय राज्यादिविषयाः स्वयं॥
इत्थं विचिन्त्य ते सर्वे सुदीक्षां प्रतिपेदिरे।
सत्सं स्वचलसौख्याय मोक्षाय स्पृहयेन्न कः॥
मत्वा भरतभूपालः स्वदूतैः वृत्तमीक्षम्।
अधिकं विह्वलो जातो बन्धुप्रेमा हि तादृशः॥२४
पश्चादखिलनीतिज्ञः सोऽयं भरतभूपतिः।
प्रेषयामास संचिन्त्य स्वदूतं पौदनं पुरं॥२५॥
पौदनेशसभामेत्य स दूतो मर्मभेदकः।
बोधयामास भूपं तं स्वेष्टसम्पादनेच्छया॥२६॥
स राजापि तदा मत्वा तंत्रं भरतभूभुजः।
प्रेरयामास क्रोधेन कथ्यतामिति भूपतिः॥२७
तवानुजस्तु न्यायेन संग्रामेणैव दास्यति।
करं दुर्नीतिसम्प्राप्तं नान्यथा दातुमिच्छति॥
पुनरावृत्त्य दूतोऽयं भरतं भुवनेडितम्।
प्रार्थयामास तत्सर्वं यदुक्तं पुरुसूनुना॥२९॥

तच्छ्रुत्वा भरतो राजा स्वानुजे स्वाभिमानिनि।
क्रुध्यन् चक्रयभिलाषोऽयं घोषयामास संगरम्॥
यथोचिते विशालेऽत्र प्रदेशे पूर्वनिश्चिते।
सोमई विपुला सेना सज्जिता समरश्रियै॥
तदोभयविपक्षास्ते मन्त्र्यादिहितकांक्षिणः।
प्रार्थयामासुरेवं हि सोदरौ समरत्रये॥१२॥
भुजबल्येव तं जित्वा दृष्ट्यादिसमरत्रये।
प्रपेदे जयलक्ष्मीं तां देवमानवसम्मुखम्॥१३
तद्दृष्ट्वा भरतो राजा महामोहप्रबोधितः।
चालयामास चक्रं तत् स्वानुजं हन्तुमिच्छुकः॥
किन्तु तच्चालितं चक्रं पौदनेशस्य सन्निधौ।
निर्वीर्यमभवल्लोके दुःखदं किं महात्मनाम्॥१५
अग्रजस्येदृशं कृत्यं दृष्ट्वा बाहुबली मुदा।
प्रपेदे गुरुनिर्वेगं लोकद्वयसुखप्रदम्॥ १६॥
तदा तत्र स्थितास्सर्वे प्रार्थयामासुरुन्नतम्।
संग्रामजयलक्ष्मीस्सा भुज्यतामिति सादरम्॥
नृपस्तान्वत्समीपस्थान् देशयामास सम्मुदा।
भुक्तेयं पृथवी भव्या असकृद्बहुजन्मसु॥१८
तस्मादिदं निजं राज्यं ध्रुवमुच्छिष्टवन्मतम्।
नातोऽहं प्रतिगृह्णामि दुःखदां राज्यसम्पदम्॥
विनश्वरशरीरेण लभ्यते यदि शाश्वतम्।
सौख्यं तत्प्राप्तये लोके यत्नं कुर्वीत सर्वदा॥
भुक्तपूर्वमिदं सर्वं यन्मया बहुयोनिषु।
त्यज्यते मोक्षसौख्याय नश्वरं सौख्यमिन्द्रियम्॥
इत्थं विबोध्य तत्रस्थान् मुदा बाहुबली तदा।
अग्रजं प्रार्थयामास क्षमस्वेति पुनः पुनः॥४२॥
स्वयं च क्षमतामेत्य निजं राज्यं स्वसूनवे।
दत्त्वासौ त्वरमापेदे दीक्षां तां जिनपोदिताम्॥
सोऽयं बाहुबली स्वामी पुण्यान्मम समीहितम्।
येन कर्मवनं दग्धं शुक्लध्यानोग्रवह्निना॥४४

जैनसमाज ?

(लेखक:-पं० परमेष्ठीदासजी जैन-इन्दौर)

हे पतित पावन जैनसमाज! कहां तो तेरे सपूतोंने धधकती हुई यज्ञ ज्वालाओंसे दीन हीन पशुओंको निकाल कर एवं नरमेध यज्ञ सरीखे अमानुषीक कार्योंका काला मुहकर समस्त संसारको "सत्वेषु मैत्री" का पाठ पढ़ाया था और कहां आज आपसी कलह यज्ञमें भाई २ बलिदान होकर उस परम पूजनीया कीर्तिमें धब्बा लगा रहे हैं। कहां तो पहिले इस समाजके बच्चे २ की हृदयस्थलीमें "गुणिषु प्रमोदं" का भाव भरा हुआ था और कहां अब अपनी दुर्नीतियों एवं स्वार्थान्धतासे प्रेरित होकर अनेकों हृदयहीन तुच्छ व्यक्ति उद्भट विद्वानोंके साथ भी अत्यन्त नीचताका व्यवहार करते हैं और गुरु भक्तिपर गोबरलीप कर अपने आपको ही सर्वे सर्वा समझते हैं। कहां तो "क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्" का वह पवित्र सिद्धान्त ज्ञानी ध्यानियोंसे लेकर महा अज्ञानियों तक पाया जाता था और कहां अब सच्चे समाजहितैषियों और धर्मके सत्य निःस्वार्थ सेवकोंपर वाग्बाण चला चलाकर उनके विशाल हृदयको भेद किया जाता है और वे स्वयं ही महा कष्ट एवं चिन्ताओंकी भट्टीमें पटक दिये जाते हैं।

कहां तो "माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ" का पालन कर विश्वमें शांतिका साम्राज्य था और कहां आज मतभेद होनेसे ही एक महान धार्मिक व्यक्तिका भी सर्वस्व स्वाहा करनेका भी

जानसे प्रयत्न करते हैं । उन सब सुख शांति-कारी कार्योंका विनाश और अन्याय अत्याचारोंका दिन दिन विकाश होरहा है जिन उदार चेताओंने धर्म एवं समाजके हेतु अपना सर्वस्व अर्पण कर डाला है उनको भी कुछ स्वार्थी एवं ईर्षालु लोग दिन रात भला बुरा कहकर अपनी द्वेषाग्निको द्विगुणित करते हुये उसीमें जलते रहते हैं।

"इस जैन जाति को धर्महेतु जिनने तन मन धन दे डाला।
हा शोक उन्हें उपहार वही गाली गलौजकी है माला ॥
जिनकी सत्कृतियां देख देख धन देश विदेश खुशी होते।
पर पक्षपात परिपूर्ण हृदय अपने मन ही मनमें रोते ॥"
"जैनमित्र ता० ९-८-२८"

हा हन्त ! अब कुशल नहीं दिखाई देती। चारों ओरसे पक्षपातके पत्थर बरस रहे हैं अब। निराशाकी घनघोर घटा छागई है। अपनी काली करतूतोंके अंधियारमें लोग अन्धे होगये हैं। गदा पक्षीकी गाज गिरना चाहती है, सुधारका सिंह अपनी गर्जनासे हृदयमें उथल पुथल मचा रहा है। विधवाविवाहकी बिजलीने आंखोंके आगे चका-चौंध मचा दी है, उच्छृंखलताकी हद होचुकी है।

हाय ! अब क्या होगा। कहां जावें ! कैसी दुर्दशा होगी ! वर्तमान परिस्थितिको देखकर तो मालूम होता है कि अब धर्मको पातालमें पहुंचानेके लिये पापका पानी बरसेगा और सर्वोच्च जातियां भी लौकिककी गंगामें गोते लगाकर सदाको डूब जावेंगी। अब कोई रक्षक नहीं दिखाई देता, जो हैं भी और स्वाधिकारोंकी रक्षाके निमित्त अनेक प्रयत्न करते भी हैं मगर कुछ कलही द्वेषी असहिष्णु लोग उनके उन प्रशंसनीय महान कार्योंको नहीं देख सकते। इतना ही नहीं किन्तु उनपर अनेकानेक दोषा-रोपण भी किये जाते हैं। जिससे वे हतोत्साह होकर बैठ जाते हैं और कहते हैं कि—"अब मुझे जैन समाजमें रहकर शान्ति नहीं मिल सकती इसलिये अन्यत्र कहीं देखूंगा कारण कि सामाजिक झगड़ोंमें मैं अपनी शान्तिको नहीं खो सकता !"

हा ! कैसे हृदयभेदी वाक्य हैं ! दुष्टोंके अत्या-चारोंसे संतप्त होकर समाजके सामने रखे हुये सच्चे हार्दिक भाव हैं। अब बात यही है और ऐसा ही पक्षपात एवं वैयक्तिक द्वेष समाजमें रहा तो सचमुचमें सच्चे वीर कार्यकर्ता अपने हाथ ढीले करके बैठ जावेंगे, और हे जैनजाति ! तेरा सर्वस्व स्वाहा होजावेगा। कारण कि—

आपसके ही झगड़े तेरा, अब ऐसा नाम मिटावेंगे।
दुनियामें पता लगाने पर, फिर तेरा नाम न पावेंगे ॥
कारण जब अत्याचार अधिक, भूमण्डलमें होजाते हैं।
तो "दास" जाति अरु धर्म कर्म स्वयमेव नष्ट होजाते हैं॥

इसलिये हे प्यारी जैन समाज ! अभीसे तन तोड़कर पापियोंके विपक्षमें खड़ी होकर उनका युक्ति बलसे सामना कर, और यदि न होसके तो उस बिजली चमकनेके पहिले अथवा गाज गिरनेके पूर्व ही सोजा ताकि तुझे बुरी तरह अपमानित होकर न मरना पड़े।

हा ! यह कैसी विकट परिस्थिति है ! एक दूसरेका व्यक्तिगत द्वेष सारी समाजको धक्के लगाकर रसा-तल पार धकेलना चाहता है, एक विद्वानकी विद्वत्ता दूसरेको असह्य है, यदि एक व्यक्ति तीन और दो पांच कहता है तो ठीक दूसरा उसके विरुद्ध खड़ा होकर सात सिद्ध करनेकी धुनमें लगजाता

है । जब ऐसी परिस्थिति है तो—

कौन कहता है कि अब आपकी उन्नति होगी ।
देख ऐसी दशा अब तुमसे हमारी न गई ॥
आपकी द्वेषमें निज शक्तियां खोते अफसोस ।
कोशिशें होके भी जड़ फूटकी मारी न गई ॥
" जैनमित्र ता० ११-८-२८ "

जिस बारहलाख जन संख्यावाली समाजके तेरह लाख टुकड़े होरहे हैं और एक दूसरेको गिरानेकी धुनमें प्रयत्नशील होरहे हैं तो क्या यह विश्वास नहीं किया जा सकता है कि यह बहुत ही शीघ्र छट्ठे कालका तमाशा दिखानेकी तैयारियां हैं । जो हो मगर—

मरणोन्मुख होजानेपर भी रोग दूर होजाता है ।
यथायोग्य औषधि मिलनेपर रोगी सुख फिर पाता है॥
इसी तरह मैत्री प्रमोद औषधि समाज पाजावेगी ।
कलह द्वेष आमय विनाश कर पूर्ण सौख्यको पावेगी ॥

इसलिये हे जैन जातिके सच्चे सपूतो ! विघ्नबाधाओंसे मत डरो, सत्य सिद्धांतोंको बाधाओंसे डरकर मत छिपाओ, जिस तरह भी हो सके, भगवान महावीरस्वामीके "सत्वेषु मैत्री" के सिद्धांतका विश्व प्रचार करो। "श्रेयांसि बहुविघ्नानि" की नीतिको सामने रखकर पापसे भय खाते हुये और वीर भगवानके सच्चे गीत गाते हुये संसारमें फिर उसी शांतिका नाद बजाओ और अन्याय अत्याचारोंको रोकनेके हेतु अपना तन, मन, धन सर्वस्व लगाओ ।

फिर देखिये, सत्यकी विजय कैसे नहीं होगी ? सोती हुई जैनसमाज फिर सचेत होगी और इसीकी छत्र छायामें समस्त संसार विश्राम लेकर अपनी आत्माको शांति धाम पहुंचायेगा और एक स्वरसे भगवान वीरके गुण गायेगा ।

बोलो भगवान महावीरस्वामीकी जय ! ।

शान्तिकी शोधमें !

(अनु०—बा० कामताप्रसादजी जैन, अलीगंज)

(१)

रायबहादुर रमाशंकर पांड्याकी ज्योंही प्रौढ़ावस्था विलीन होकर जीवनकी संध्याकालरूपी वृद्धावस्था आकर खड़ी हुई कि उनका स्वभाव चिड़चिड़ा होगया । स्वभाव चिड़चिड़ा होनेका कारण भी केवल एक था । अनेक प्रकारके सांसारिक सुख उन्हें प्राप्त थे परन्तु तो भी उनके हृदयमें शांतिका संचार न था । मनुष्य हृदय अति शांति प्रिय है ही ! वह सर्वदा शांतिकी तृष्णामें व्याकुल रहता है । बस इसके सिवाय रायबहादुरके किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं थी। धनकी कमताई नहीं थी । कुटुम्ब परिवारसे भरपूर सुखी थे । पुत्र-पुत्री-पौत्र आदि सब ही थे । अभाव था तो केवल शांतिका ।

रायबहादुर एक दिवस हृदयको किसप्रकार शांति मिले इस विचारमें मग्न बैठे थे । विचारमग्नतामें वह अपने गत जीवन पर दृष्टिपात करने लगे । विचारोंकी कड़ी प्रारम्भ हुई कि— " मैं एक समय यह कहता था कि जो मैं लखपती होगया तो मेरे दिन शांतिसे कटेंगे; क्योंकि तब मेरे किसी बातका अभाव नहीं रहेगा । किसी प्रकारका अभाव न होना ही मैं शांति समझता था । जब जब शुभोदयसे संपत्ति आई, लखपती होनेकी मेरी इच्छा पूरी हुई तो फिर इच्छाने आ घेरा । मनने कहा, जो कहीं एक उपाधि मिल जाय तो फिर मुझे किसी

बातकी आकांक्षा न रहे। और शेष जीवन शांतिपूर्वक व्यतीत हो। दैवाधीन वह अभिलाषा भी पूर्ण हुई और मैं "रायबहादुर" होगया। मैंने फिर अपने हृदयको टटोला, परन्तु तब भी वहां शांति न पाई। एक वासनाकी पूर्तिके साथ ही दूसरेका जन्म होते मैंने देखा। पुत्रकी अभिलाषा हुई, तो उसकी पूर्तिपर पौत्र मुखदर्शनकी इच्छा उत्पन्न हुई। सब मिथ्या है। लोग कहते हैं सांसारिक सुखमें—विलासमें शांति है—वासनाओंकी तृप्तिमें शांति है—परन्तु सच तो यह है कि इनमें किसीमें भी शांति नहीं है। जो शांति है तो केवल संसार त्यागनेमें है—सन्यास ग्रहण करनेमें है। यदि यह ऐसे न होता तो बड़े २ योगी और ज्ञानी संसार छोड़ क्यों साधुवृत्ति ग्रहण करते? ठीक है। इस संसारको छोड़ देनेमें ही मुझे विश्राम मिलेगा।....

रायबहादुर इस प्रकार अपनी बैठकमें विचारमग्न थे कि बैठकके एक ओरका द्वार खुला और उनका ज्येष्ठपुत्र कृष्णशंकर भीतर आया। रायबहादुर चौंकसे गये। उन्होंने पूछा—कृष्ण, क्या है?

कृष्णशंकर आवेशमें था। पिताके इतने पूछते ही वह कर्कश स्वरमें बोला:—

"है क्या? विष्णु (कृष्णका छोटा भाई) ने नाकमें दम कर रक्खा है। उसकी मर्जी है कि उसका ही हुकुम चले। आज मुझे एक जरूरी कामसे जाना था; सो मैंने कह रक्खा था कि मोटर कहीं न जाय। लेकिन उसे इस बातकी क्या परवा! किसीका काम बनें या बिगड़े—उसे इसकी क्या पड़ी है।"

रायबहादुर—"आखिर उसने क्या किया?"

कृष्ण—"किया मेरी अकमनसाहतका दुरुपयोग! मोटर ले अपनी चलती पकड़ी। ड्राइवरने मना किया, पर नौकरकी कौन सुनता है?

रायबहादुर अति विनम्र भावसे बोले—भाई खैर! अब तो ले ही गया। तुम गाड़ी जुतवाओ या घोड़ा कसवाओ।

कृष्ण—वाह खूब! आपकी ही इन बातोंको देखकर उसका दिमाग चढ़ता जाता है। वह जानता है आप तो कुछ बोलते नहीं—जो मर्जी आये सो करो!

रायबहादुर—"तो फिर तुम्हारी क्या इच्छा है?"

कृष्ण—"मेरी इच्छा क्या! आप मेरे लिये दूसरी मोटर मंगा दीजिये। गाड़ी—घोड़ा मुझे पसन्द नहीं और मोटरपर विष्णुका अधिकार है। मैं तो गम खाता हूं। वरन् रोज लड़ाई झगड़ा हो।"

रायबहादुर—ठीक, मैं उसे समझ ऊंगा और नहीं मानेगा तो तुझे दूसरी मोटर मंगवा दूंगा बस।

कृष्णशंकरके जाने पश्चात् रायबहादुर एक गहरा निःश्वास छोड़ कहने लगे—"मुझे इतनी भी तो स्वतंत्रता नहीं कि क्षणभर एकांतमें शांतिसे बैठ सकूं। मैं तो इस संसारसे भर गया हूं।" कृष्णशंकरके जाते ही बैठकके दूसरी ओरका द्वार खुला और रायबहादुरकी दो रूपवान पुत्रियां रुमझुम करती अन्दर आईं। वह बातें करतीं आरहीं थीं। एक कहती थी चाहे कुछ हो मैं तो आज ही बाबूजीसे कहकर बनवा लूंगी।

दूसरी बोली—तेरे लिये बनेगा तो क्या मैं रह ही जाऊंगी?

रायबहादुरने जो घूमकर देखा तो दोनों कुमारियें उनके निकट खड़ी थीं। रायबहादुर मुंह बनाकर बोले—"क्या है सविता! क्या बनवानेकी चाह है?"

सविता—बाबूजी, आज मैं दिनकरकाकाके यहां गई थी। उन्होंने सुभद्राके लिये हीराके जड़ाऊ कड़े बनवाये हैं। मैं क्या कहूं, बाबूजी, बड़े बड़े ही खूबसूरत हैं। मेरे लिये भी बाबूजी, एक वैसे ही कड़े बनवा दो।

दूसरी पुत्री—बाबूजी, मेरे लिये भी बनवादो।

रायबहादुर—तुम दोनोंके पास तो कई जोड़ी कड़े हैं। अब औरका क्या करोगी? उनको भी तो अकेले नहीं पहिनती हो।

सविता—हैं तो जरूर, बाबूजी, लेकिन वैसे नहीं है। (प्यार करती) वैसे जरूर बनवा दो।

रायबहादुर—अच्छा, पहिले उन्हें देख तो लेने दे! नमूना मिलनेसे ही तो बन सकेंगे।

सविता—नमूना मिलना कुछ मुश्किल थोड़े ही है। आदमी भेज दो वह ले आवेगा।

रा० ब—भला, मंगवा देंगे।

स०—नहीं, बाबूजी, अभी मंगवा लीजिये। फिर आप भूल जावेंगे।

रायबहादुरकी इच्छा इस समय एकांतमें रहनेकी थी, परन्तु कन्याओंने ऐसा हठ पकड़ा कि उन्हें उठना ही पड़ा और कड़ोंका नमूना मंगानेकी व्यवस्था करनी ही पड़ी।

(२)

रायबहादुर रमाशंकर पांड्याने अपने मित्र दिनकरशंकरसे कहा—"आपका यह कहना तो ठीक है कि गृहस्थावस्थासे बढ़कर ऐसी औमंआईसे कि जिसमें किसी प्रकारका कोई अभाव न हो—कोई वस्तु अधिक सुखदायक नहीं, परन्तु मुझे इसमें सुखके बदले दुःख ही अधिक मिलता है। कहीं किसी कामकाजकी चिन्ता होती है तो कहीं किसी जागीरके प्रबंधकी फिकर लगती है। मैं अकेला क्या २ करूँ! क्या २ देखूं? घरकी दशा ऐसी है कि एक दूसरेकी बनती नहीं। एकका कहना करता हूं तो दूसरा तिउरी बदलता है। रोग—शोगने तो हमारे यहां अड्डासा ही जमा लिया है। किसीको बुखार आता है तो किसीका सिर दुखता है। एक उठता है तो दूसरा पड़ रहता है। मतलब यह कि कोई क्षण चिंता रहित नहीं जाती। घड़ीभर भी मुझे शांति नहीं मिलती। कहो, अब ऐसी स्थितिमें मैं क्या करूँ?"

दिनकर बाबू जरा संभल कर बोले—"भाई, गृहस्थीका सुख ही यह है। इसको दुःख समझना तो मेरे ख्यालमें एक बड़ी भूल है।

रा० ब०—संभव है किन्हीं लोगोंको इससे सुख मिलता हो, परन्तु मुझे तो यह असह्य दुःख प्रतीत होता है।

दिन०—तो आपकी क्या इच्छा है?

रा०ब०—मैं तो इन चिन्ताओंसे छूटना चाहता हूं और चाहता हूं कि शेष जीवन शांतिसे प्रभुभजनमें व्यतीत करना।

दिनकर बाबू यह सुनकर खूब हंसे और बोले—तो यूं कहो कि मोक्षकी तैयारी करना चाहते हो।

रा०ब० गंभीरतासे कहने लगे—यह हंसनेकी बात नहीं। मोक्षके लिये तैयारी करना तो बड़ी

कठिन बात है। मैं तो केवल यही चाहता हूं कि मेरे हृदयमें शांतिका संचार हो।

दिन०—हृदयको शांति रखनेका आधार मनुष्यकी प्रकृतिपर निर्भर है। बहुतसे ऐसे मनुष्य हैं जो सब ही सांसारिक कार्योंमें फंसे रहनेपर भी कभी अशांतिकी शिकायत नहीं करते। और बहुतसे आप समान हैं जिन्हें किसी भी स्थितिमें शांति नहीं मिलती।

रा०ब०को दिनकर बाबूकी यह बात पसंद न आई। वह बोले—संभव है ऐसे मनुष्य हों जिनको अशांतिकी शिकायत न हो परन्तु मुझे तो आज पर्यन्त ऐसा कोई व्यक्ति मिला नहीं।

दिन०—एक तो मैं ही आपके समक्ष उपस्थित हूं।

रा०ब० मुस्कराते हुये बोले—अभी आपकी अवस्था ही कितनी है। आपको तो अभी संसारका बहुत कुछ देखना है। आपके हृदयमें अभी अभिलाषायें हैं, उमंगें हैं। इसलिये आपको शिकायतका भी कोई कारण नहीं है। जब आप मेरी उमर पर पहुंचोगे और तब भी अशांतिकी शिकायत न होगी तब ही मैं आपको इस प्रकृतिका मनुष्य समझूंगा।

दिन०—खूब, तो आप ही बताइये। आपने क्या निश्चय किया है?

रा०ब०—मेरी तो यह इच्छा है कि सन्यास ग्रहण कर लूं।

दि० (नेत्र खोलकर बोले)—सन्यास क्या कहते हो?

रा० ब०—जो कुछ मैं कहता हूं वह मेरे हृदयकी तीव्र आकांक्षा है?

दिनकर बाबू कुछ क्षण विचार करके बोले—मेरे ख्यालमें तो यह आता है कि आप थोड़े दिनोंमें अर्थात् तीन चार महीनेमें अपनी जमीनदारीके किसी रमणीक मनोहर स्थानमें जाइये। थोड़े दिनों वहां ठहरनेसे आपकी यह सब अशांति दूर होजायगी।

रा० ब०—हां, वहां जाऊँ तो जरूर परन्तु यहांका कारभार कौन संभाले?

दिन०—और जब आप सन्यास ले जायगे तब कौन संभालेगा?

रा० ब०—तब कोई संभाले या न संभाले इससे मुझे क्या! जबतक मैं अपना सम्बंध ससारसे रक्खूंगा तबतक मुझे उसकी देखभालकी अवश्य आवश्यक्ता पड़ेगी।

दिन०—खैर! दो चार महीनेका काम तो आपका कार्यकुशल मुनीम ही चला लेगा। इसलिये आप मेरे कहे मुजिब इस बातकी आजमाइश तो कर लीजिये। उसमें सफलता न मिले तो जो चाहो सो करना। चलो, यह भी सही। मै भी आपके साथ चलूंगा और साथ रहूंगा!

रा० ब०—आप चलें तो यह भी सही।

(३)

शामके पांच बज गये हैं। ग्रामीण किसान दिनभर जीतोड़ परिश्रम करके आनंदमें गीत गाता निजगृह जारहा है। इसी समय रायबहादुर और उनके मित्र दिनकर बाबू वायुसेवन करते विचर रहे हैं। सूरनिवास रायबहादुरकी जमीदारीका ग्राम है। दोनों ही मित्र मंदगतिसे एक ओर जारहे हैं।

रायबहादुर बोले—भाई, इसमें तो तनिक भी

सन्देह नहीं कि जो आनन्द ग्राम्य जीवनमें है उसका सौवां भाग भी शहरमें नहीं है। देखो! कैसा सुंदर दृश्य है। चहुंओर हरियाली ही हरियाली! इसपर सूर्यकी किरणें कैसी शोभा फैला रही हैं। पवन कितना मन्द और शीतल है!

दिन०-इसमें क्या शक! शहरमें यह आनंद कहां रक्खे। वहांके बाग बगीचोंमें कृत्रिम ठाठ-बाठ है। यहां बनावटका नाम नहीं जो कुछ है वह प्राकृतिक है।

रा० ब०-निःसंदेह परन्तु इस खेतहरको तो देखो। कितना प्रसन्न है, दिनभरका थका है तोभी राग अलाप रहा है। परन्तु भाई इन लोगोंमें दरिद्रता बहुत है।

दिन०-दरिद्रता न होय तो और क्या होय? सारे वर्षभरमें ज्यों त्यों कर बिचारे जो पैदा करते हैं उसमेंसे कुछ तो लगानमें चला जाता है, कुछको महाजन हड़प लेता है और रचे बचेमें चौकी-दार पटवारीकी पूजा तथा कुटुम्बका पालनपोषण होता है। इस प्रकार बिचारोंको पेट भरना भी मुश्किल है। तो फिर दरिद्रता क्यों न हो? इसके अतिरिक्त वे इतने बुद्धिशाली और साधन-सम्पन्न नहीं कि अपनी भूमिकी उपज अधिक बढ़ा लेवें और बढ़ावें भी तो किस भरोसे पर? आठो पहर मालिकोंके जुल्मका डर लगा रहता है। किसानको मालूम नहीं कि उसके अमुक खेतका पट्टा कब खतम होजाय! फिर भला वह परि-श्रम करके क्या करे? न मालूम जमीन्दार कब उसके खेतपर अपना कब्जा करले तो सब परि-श्रम ही वृथा जाय!

रा० ब०-हां, यह सब बातें हैं तो ठीक। आइये, इस वृक्षकी छायामें बैठें।

निर्दिष्ट स्थानपर दोनों ही मित्र एक पत्थरपर जा बैठे। उनके चारोंओर वृक्षों और झाड़ियोंका समूह था।

दिन०-आपनेको यहां आये करीब १०-२० रोज होचुके हैं। अब कहिये इतने दिनोंमें आपको कुछ शांति मिली?

रायबहादुर कुछ कालतक तो कुछ विचारते रहे परन्तु उपरान्त बोले-सुख तो जरूर मिला परन्तु यह वास्तविक शांति नहीं है। मन किसी तरह उद्विग्न रहता है।

दिन०-खैर, अभी दिन ही कितने हुये हैं। धीरे२ आपको शांति मिल ही जायगी।

रा० ब०-ऐसा होना संभव है परन्तु मुझे आशा नहीं है। मेरा हृदय तो कहता है कि इस तरह शांति नहीं मिलेगी?

दिन०-बस समझा, आप कुछ निराशावादीसे दिखते हैं।

रा० ब०-मेरी जैसी दशा आपकी भी होती तो आप भी जरूर ही निराशावादी होजाते!

दिन०-तो आपकी यह धारणा है कि आ-पको इस प्रकार शांति नहीं मिलेगी?

रा० ब०-हा, मेरी तो यही धारणा है।

दिन०-जो इस प्रकार नहीं तो किस प्रकार शांति मिलेगी?

रा० ब०-जिस प्रकार मैं कह चुका हूं उस ही प्रकार मिलेगी।

दिन०-अर्थात्—

रा० ब०-संसार त्याग कर सन्यास लेनेसे—साधु होजानेसे!

रायबहादुरके यह वाक्य खतम भी नहीं हुये थे कि एक ओरसे किसीके अट्टहासकी आवाज सुनाई दी। दोनों मित्रोंको आश्चर्य हुआ दोनों ही परस्पर एक दूसरेकी ओर ताकने लगे।

रा० ब०—यह हंसनेकी आवाज कहांसे आई?

दिन०—(सामनेकी ओर) इस ओरसे आई मालती है।

रा० ब०—हास्य, परन्तु बड़ा गंभीर प्रतीत होता था।

दिन०—यहां तो कोई किसान भी नहीं—घना जंगल है।

रा० ब०—हंसीपरसे तो यह नहीं कहा जा सक्ता कि वह कोई ग्रामीण .. ..।

ठीक इस ही समय थोड़ी दूरीपर सामने एक वृद्ध पुरुष आता दिखलाई दिया। उसके वस्त्रोंसे प्रगट होता था कि वह कोई भिखारी है। दिनकर धीमे स्वरसे बोले:—

अहा! ठीक है, छह सात दिन पहिले एक गांववालेने कहा था कि इस जंगलमें एक वृद्ध भिखारी कुछ दिनोंसे आकर रहने लगा है। वह सदैव जंगलमें रहता है। मात्र दिवसमें एक बार बस्तीमें........। दिनकर बाबू यह वाक्य पूरा भी न कर पाये कि वह वृद्ध उनके निकट आगया। दोनों मित्र उसकी ओर एकटक निहारने लगे। वृद्धका बहिर्वेश मलिन था। मुख पर एक लम्बी श्वेत दाढ़ी थी। सब बाल भी बढ़ रहे थे। रक्तवर्णी बड़ी२ आंखोंमें एक विचित्र प्रकारकी चमक थी। वर्ण श्याम था, तो भी मुखमण्डलपर इतना तेज विद्यमान था कि यह दोनों मित्र अद्भुत् उनके समक्ष उपस्थित थे। वृद्ध सामने आकर खड़ा होगया और जरा मीठी हंसी हंसकर बोला:—

कौन संसारको झूठा—असार कहता है? कौनसा जीव संसारसे रूठ गया है? कौन संसार छोड़के सन्यासी होना चाहता है? इस कलिमें साधु होनेकी विडम्बना कौन करना चाहता है? मुनिधर्मका कठिन धर्म पालन करनेका कौन दम भरता है?

वृद्धने यह शब्द इतनी निर्भीकता और निश्चलतासे कहे कि मानो कोई पिता अपने बालकोंसे कुछ पूंछ रहा हो। रायबहादुरको वृद्धकी यह धृष्टता अच्छी न लगी। परन्तु उन्हें उसके मुखपर कुछ कहनेका साहस नहीं था। दिनकर चुपचाप बैठे थे। वृद्ध फिर बोला:—

अभी मैंने सुना था कि किसीने संसार छोड़ सन्यासी होनेकी बात कही थी।

अबकी दिनकर प्रयत्न करके बोले:—इन हमारे मित्रका चित्त गृहस्थीके जंजालसे ऊब गया है। वही कहते थे कि सन्यासी होनेको मेरा जी करता है। केवल इतनी ही बात थी और कुछ नहीं। वह कहते हैं, हमारे हृदयमें शांति नहीं।

वृद्ध कुछ क्षणतक रायबहादुरकी ओर निहारता रहा। उपरान्त हंसकर बोला:—

शांति चाहते हो? संसार त्यागकर जंगलके भटकनेमें अथवा किसी पर्वतकी गुफामें शांति पानेकी इच्छा रखते हो?—मूलमें पड़ी आत्मा है। भ्रममें भ्रमा हृदय है। संसारसे परे और कुछ नहीं है। जो कुछ है वह संसारमें—जगतमें है। जंगल भी संसारमें है। तो पर्वत भी संसारमें है। और तुम भी संसारमें हो। गृहस्थी भी संसारमें है। पहाड़में संसार है, जंग-

कमें संसार है। किसे छोड़ते हो! संसार अगत छूट नहीं सक्ता। गृहस्थी और बस्तीसे अलग रहकर शांति पाना चाहते हो? यह भूल है। इस प्रकार शांति मिलेगी अवश्य परन्तु यह मार्ग अति दुर्गम है। तुम्हारे जैसे मनुष्य कि जिनकी आयुका अधिकांश भाग विषयवासनामें व्यतीत हुआ है इस मार्गको ग्रहण करके कभी भी शांति प्राप्त नहीं कर सके। जिस वस्तुको तुम कदम बकदम चलकर प्राप्त कर सक्ते हो उसके लिये तुम एकदम गांवके गावका लम्बा सपाटा लगाना चाहते हो। आज दुनियांमें ऐसे पाखण्डियोंकी कमी नहीं है। साधुका वेष धारण करके वह अशांति और उपद्रवके बन्ध बने हुये हैं। भला आत्मवंचनासे कहीं काम चलता है? यह भूल है, भारी भूल है। शांति तुम्हारे पास है। तुम चाहो तो तुम्हें मिल सक्ती है। सबसे सरल मार्ग शोधनेकी आवश्यक्ता है। जो तुम्हारे पास धन है तो तुम उसके द्वारा भी शांति प्राप्त कर सक्ते हो! तुम्हारे हजारों देश-बन्धु निर्धन-दरिद्र हैं। उनको धनवान और बलवान बनानेके प्रयत्न करो। उनको औद्योगिक शिक्षा दो—विद्यालय, पाठशालायें स्थापित करो। अनाथोंके लिये अनाथालय और विधवाओंके लिये विधवाश्रम खोलो। गरीब किसानोंकी खेतीके काममें सहायता पहुंचाओ—तुम्हें शांति मिलेगी। यदि तुम्हारे पास विद्या है तो अपने हजारों अज्ञान भाइयोंको ज्ञानवान बनाओ—तुम्हें शांति मिलेगी। जो तुम बलवान हो तो अपने निर्बल भाइयोंको बलिष्ट बनाओ-तुम्हें शांति मिलेगी। कितना सुगम रास्ता है। कितना सरल उपाय है! भूल है, भूल है, संसारसे अलग रहकर शांतिकी शोध करना भूल है, भ्रममें पड़े हृदयकी मिथ्याभावना है। गृहस्थ हो तो पहिले परमार्थ करो—परोपकार करो—शांति तुम्हारे कंठमें वरमाला डालेगी!

इतना कह वृद्ध कईबार हंसा और "भूल है—भूल है" कहता एक ओरको चला गया। दोनोंमित्र एक दूसरेकी ओर देखने लगे। रायबहादुरने सांस छोड़ कहा—बेशक मैं भूलमें था।

* * *

इसके दो वर्ष उपरांत दिनकरबाबूने रायबहादुरसे पूछा—अब तो शांति और उद्वेगकी शिकायत नहीं?

रायबहादुर प्रसन्नचित्त बोले—जरा भी नहीं। इन दो वर्षोंमें मैंने गावोंमें दस-पंद्रह पाठशालायें खोली हैं, छः सात अनाथालय स्थापित कराये हैं। बहुतसे गरीब विद्यार्थियोंको छात्रवृत्तियां दे उनका आगामी अध्ययनका मार्ग साफ किया है। अपने आसामियोंको बिल्कुल निर्भय किया है। किसानोंकी आर्थिक सहायता करके उनकी खेतीकी उन्नति की है। अब मैं अनाथालयमें अनाथ बालकोंको हंसते खेलते देखता हूं, गावोंमें विद्याप्रचार और खेतीकी उन्नति पर दृष्टि करता हूं और जिस समय मैं गरीब विद्यार्थियोंको शिक्षा लेते देखता हूं तब मुझे जो सुख मिलता है—जो शांति मिलती है वह अकथनीय है! उस वृद्धके शब्द—शब्द याद आते हैं।+

+"साबरमती" में प्रकाशित टालस्टॉयकी गुजराती कहानीका हिन्दी अनुवाद।

जैन समाज कैसे जगे ?

(रचयिताः-श्री० ब्रह्मचारी प्रेमसागरजी-रोठी)

[१]

मित्र नेमिचन्द्रजी, ज्ञात होता है कि जैन समाजका भविष्य खराब है क्योंकि उसकी वर्तमान अवस्था सन्तोषदायक नहीं है। जब कि अन्य समाजें सजग होकर कर्तव्यके मार्गपर उत्साह एवं वीरताके साथ कदम बढ़ा रही हैं तब जैनसमाज चादर ताने ऐसी सोरही है मानो उसको कुछ करना ही नहीं।

अन्य जातियां उन्नतिके शिखरपर चढ़ती जा रही हैं। जो जातियां बहुत जमानेसे पीछे पड़ी थकित हो रहीं थीं, आज वह भी अपनी ताकतका परिचय संसारको देरही हैं अर्थात् वह भी उन्नतिके शिखरपर चढ़नेकी तैयारी कररही हैं। लेकिन जैन जाति ही एक ऐसी जाति है जो शक्तिहीन सी होकर अपना अस्तित्व खोरही है।

नेमिचन्द्र—मित्रवर, आपने जो कहा है वह अक्षरशः सत्य है—किन्तु मैं इस बातको कदापि स्वीकार नहीं कर सकता कि जैन समाजमें जग जानेकी शक्ति नहीं है। शक्तिका अभाव तो उस अवस्थामें ही कहा जासकता है जबकि वह एक मरीजकी तरह कुछ नहीं कर सके और एक ही साधारण अवस्थामें पड़ी रहे। लेकिन जब वह कुछ करती है और शक्तिके अनुसार अपने कर्तव्य मार्गपर भी गमन करती है, तब उसे यह दोष कैसे दिया जासकता है कि उसमें जगनेकी शक्ति नहीं है एवं वह कुछ कर ही नहीं सकती।

समाजके न जगनेका कोई दूसरा ही कारण है और वह यह है कि जगानेवाले उसे जगाकर नहीं जानते। मेरी ज्ञात अवस्थाके अनुकूल तो मैं यह समझता हूं कि जगानेवाले खुद सोरहे हैं। जगानेवालोंका काम है कि वे खुद अपनी नींदको त्यागदें और अपनेको इतना निरालसी एवं कर्मवीर बनावें कि जो कठिनसे कठिन उपसर्गोंको भी शांतिपूर्वक सहन कर सकें। अगर जगानेवाले इसी प्रकार सोते रहे तो याद रखिये कि समाज भी अपना करवट नहीं बदल सकेगी।

खेमचन्द्र—मैं आपकी बातका समर्थन नहीं कर सकता कारण मैंने समझ रक्खा है कि अधिकांश भूल समाजकी है क्योंकि वह जगानेवालोंकी आवाजको स्वीकार नहीं करती। स्वीकार क्यों नहीं करती ? इस प्रश्नका उत्तर देना मुझ सरीखे अज्ञानियोंकी अक्लके बाहर है परन्तु समझानुकूल कुछ कहता हूं सुनिये—समाज, पहिले कुसंस्कारोंमें इतनी मजबूतीके साथ बंधी है कि उसका छूटना असंभव प्रतीत होता है। तभी तो वह अपनी संतानको न विद्या-अध्ययन कराती, न उसको प्रौढ़ अवस्था तक अविवाहित रखती और न फिजूल खर्चोंको बन्द करती आदि

...शिक हूं। समाजने तो यही समझ रक्खा है कि सन्तानको ज्यादा विद्या अध्ययन कराना उसकी अक्लको बरबाद करना है तथा अपनेसे जुदा करना है क्योंकि जिनकी संतान ज्यादा विद्या-अध्ययन कर जाती है वह अपने मां बापको कुछ नहीं समझती।

समाजका यह कुसंस्कार सबसे बड़ा है कि-वह समझ बैठी है कि-

"मृत्युका क्या भरोसा। आज मरे कि कल इसलिए अपने साम्हने ही सन्तानकी शादी कर जावें तो अच्छा हो क्योंकि हमारे मरनेके बाद उसकी शादी होती है व नहीं" सन्तानके हितार्थ जैसा गहरीभाव समाजका रहता है यदि वैसा भाव सच्चा रहे तो मैं दावेके साथ कहता हूं कि समाजका शीघ्र ही उत्थान नजर आने लगे अर्थात् जैसी भावना वह संतानकी शादीकी भाती है अगर वैसी भावना उसे विद्वान बनानेकी भावे तो फिर वह दिन दूर नहीं है जब कि भगवान् महावीरके बताये मार्ग पर अधिकांश संसार गमन करता न दिखे।

नेमिचन्द्र-प्रियवर, आपका कहना तो मेरी समझमें नहीं आया क्योंकि मैं ऐसा मानता हूं कि-तमाम समाजोंको उन्नतिका मार्ग प्रदर्शक कराने वाले उनके-प्रधान, मुखिया, पंच, नेता और चौधरी होते हैं जैसे-जिस समय संसार धर्मको भुला बैठा था और अधर्मको याने हिंसाको ही अपना धर्म समझता था अर्थात् पशुओंको यज्ञोंमें हवन करना एवं मूक जीवोंकी गर्दनोंपर तलवारका वार ही धर्म माना जाता था, उस समय भगवान् महावीरने भूले हुए संसारको सच्चे धर्मका मार्ग बताया था। इसी प्रकार जिस समय दुनिया बौद्धके रंगमें रंग चुकी थी एवं क्षणिकवादियोंके चुंगलमें फंस अपने आत्मधर्मको खो बैठी थी राजा और प्रजा सभी बौद्धमतको मानने वाले थे और जैनधर्मके कट्टर विरोधी थे, जैनीका नाम लेना भी दुस्तर था ऐसे जमानेके अंदर स्वामी अकलंकने अवतार लिया और भूले हुए संसारको सच्चे धर्म (जैनधर्म) का मार्ग बताया और बौद्धमतके क्षणिक सिद्धान्तोंका जोरोंसे खंडन किया।

मौजूदा जमानेमें हिन्दुस्तान गुलामीकी जंजीरसे जकड़ा है, उसका व्यापार परदेशियोंके हाथमें है इसलिये जो कभी विद्या, व्यापार-आदिमें सबका गुरु था वही आज दूसरोंका शिष्य होकर परतंत्र बन रहा है। हिन्दुस्तान दूसरोंका गुलाम क्यों हुआ, उसके हकोंको सरकार कहां तक हड़प गई और उसकी गुलामीकी जंजीर कैसे टूट सकती है अर्थात् हिन्दुस्तान स्वतंत्र कैसे होसकता है इत्यादि सिद्धान्तोंके प्रणेता महात्मा गांधी हुए। उन्होंने सोते हुए हिन्दुस्थानियोंको जगाया, उनका भूला हुआ चर्खा उन्हें प्राप्त कराया और अहिंसात्मक असहयोगका सबसे बड़ा प्रयोग हिन्दुस्तानको स्वतन्त्र होनेमें सहायक बताया।

यह महात्मा गांधीजीके ही सिद्धांतोंका फल है जो कि वर्तमानमें गरीब लोग बेगारकी महान् बीमारीसे मुक्त होकर सुखी होरहे हैं तथा लाखों चरखे चलते नजर आरहे हैं और हजारों मनुष्य गाढ़ेके सच्चे भक्त दिख रहे हैं।

एक जमाना वह था जब कि पाश्चात्य विद्या-

लोगोंने जैनधर्मको बौद्धमतकी शाखा समझ रक्खा था तथा बहुतोंने नास्तिक समझ रक्खा था लेकिन श्रीमान् विद्यावारिधि दर्शनदिवाकर पं० चम्पतरायजीने लोगोंके इस भ्रमको हटा दिया और जैनधर्मका सिद्धांत अपनी लिखित किताबों द्वारा व भाषणों द्वारा—ऐसी खूबीके साथ संसारके साम्हने रक्खा। जिसका फल यह हुआ कि वही पाश्चात्य विद्वान जो जैनधर्मको बौद्धकी शाखा और नास्तिक समझते थे आज वे उसे स्वतंत्र आस्मीक एवं बहुत प्राचीन और आस्तिक मानते हैं।

मतलब यह है कि किसी भी धर्म एव राष्ट्र और समाजको उन्नतिके शिखरपर चढ़ाने वाले उनके मुखिया, नेता और प्रधान ही होते हैं इसलिए मानना पड़ेगा कि जैनसमाजको जगाने वाले मुखिया एवं नेता ही होसकते हैं लेकिन हमारी समाजके नेता वर्तमानमें एक ऐसे कलह कीचड़में फंसे हुए हैं कि उनको खुद जगनेकी जरूरत है, खुद अपनेमें एकताका भाव लानेकी जरूरत है—तभी वे समाजको जगा सकते हैं और समाज जग सकती है।

खेमचन्द्र—मैं मानता हूं कि समाजको जगानेवाले उसके मुखिया एवं नेता हो सकते हैं और साथमें यह भी मानता हूं कि जैन समाजके नेताओंने भी जैन समाजके जगानेमें कोई कमी नहीं की। सुनिये, जैनियोंके लिए एक जमाना वह था जब कि वे विद्यासे रीते ही दिखा रहे थे, उनमें कोई विद्वान धर्मशास्त्री नहीं था, वे तो इतनी ही विद्या पढ़ेको धर्मशास्त्री मानते थे कि जो मंदिरजीमें पूजनपाठ पढ़ सके और सभामें पद्मपुराण व पांडवपुराणकी कथा कह सके लेकिन समाजके नेताओंने इस रोगको दूर कर दिया और मुख्य २ स्थानोंमें विद्यालय और ग्राम२में जैन पाठशालाएं खुलवाईं जिसका फल आज यह दिख रहा है कि दर्जनों पंडित हमारी समाजमें तैयार हैं और होते जारहे हैं।

मोरेनाका विद्यालय, स्याद्वाद विद्यालय काशी, सत्तर्कसुधातरंगिनी पाठशाला सागर, ब्रह्मचर्याश्रम मथुरा, महाविद्यालय ब्यावर, ब्रह्मचर्याश्रम कारंजा आदि कितने ही ऐसे विद्यालय हैं जिनके द्वारा प्रत्येक वर्ष धर्म एवं न्यायके विद्वान उत्पन्न होते हैं तथा ग्रामोंकी पाठशालाएं भी बहुत कुछ जाग्रति कर रही हैं।

दूसरी बात यह है कि उसी अविद्याके जमानेमें जैनी लोग इतने मिथ्यात्वके कीचड़में फंसे हुए थे कि उनका निकलना एक प्रकारसे असंभव था। लोग अजैनोंकी तरह अपने घर ब्राह्मणोंसे मिट्टीके महादेव (रुद्र-शंकर) की मूर्ति बनवाकर उसकी पूजा करवाते थे, हनूमानको नारियल भेट करते थे, पितर जिमाते थे और श्राद्ध भोज्य करते थे तथा उसमें ब्राह्मणोंको भोजन खिलाना पुण्य कार्य समझते थे। ग्रहणको मानते थे और उसमें दान देते थे। इसी तरह स्त्रियां भी देवी, दुर्गा, खेर, बहेर आदिको पूजती थीं तथा उनसे सन्तान होनेका वर्दान मांगा करती थीं। भादोंवदी ६ को अजैन स्त्रियोंकी तरह उपवासी रहती और उसमें बिना बोए (पसईधान्य) धान्यके चावल और दूध खाया करती थीं तथा जंगली बेरके दरखत डाली और ढ़ाक (छोहला) की डाली तथा कांस (एक प्रकारका

कोस-का मूल) के तृण समूहको एकत्रित कर उसकी पूजा करती थीं और ब्राह्मणोंद्वारा उसकी कथा सुनती थीं आदि कहांतक कहें। यदि पूर्ण कहूं तो संभव है कि एक पुस्तक बन जावे।

आशय यह कि हमारे नेताओं एवं मुनियोंने भी समाजके जगानेका भरसक प्रयत्न किया है और कररहे हैं इतनेपर भी समाज न जगे तो इसमें नेताओंको दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इसमें तो समाजका ही दुर्भाग्य ज्ञात होता है।

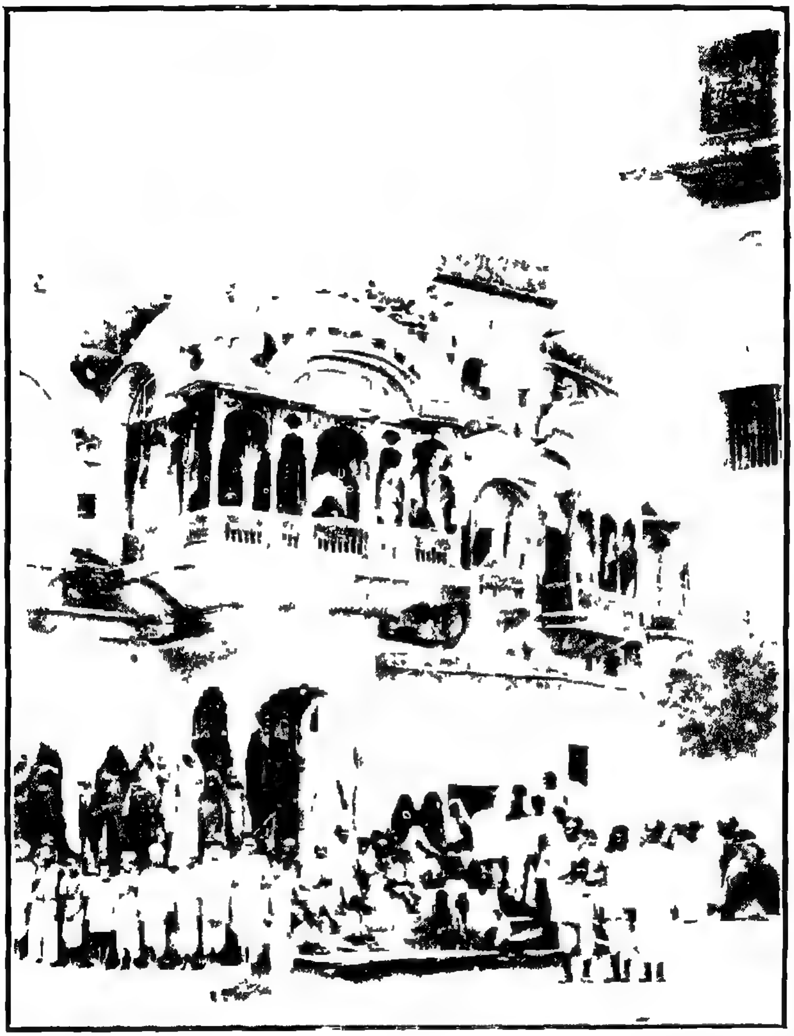
नेमिचन्द्र—प्रियवर, आप जरा विचारशक्तिसे काम लीजिये, मैं आपकी बात मानता हूं कि मुनियोंने विद्यालय खुलवाए, मिथ्यात्व हटाया और सभाओंकी भी स्थापना कराई, लेकिन जैसी आप उनकी कामयाबी बयान करते हैं, उसे माननेको मैं तैयार नहीं हूं। सुनिये—हमारे मुनियोंने विद्यालय खुलवाये और उनमेंसे दर्जनों पंडित पैदा किए लेकिन समाजकी वास्तविक तरक्कीका दर्शन तो अभीतक नहीं हुआ। अब इसमें किसे दोषी ठहराया जावे ?

विद्यालयोंके द्वारा तरक्की होना सत्य संभव है लेकिन नेताओंने जैसा रूप विद्यालयोंको होना चाहिये उस रूप उनको नहीं बनाया, उनमें व्यवसाय और कलाकौशलकी शिक्षाको कतई स्थान नहीं दिया गया, तभी तो देखा जाता है कि जितने भी पंडित महानुभाव विद्यालयोंसे उत्तीर्ण होकर आते हैं वे सब नौकरी ही पेशा करते हैं, उनकी जिन्दगी पाठशालाओंकी अध्यापकी करते२ ही पूर्ण होजाती हैं इस लिहाजसे वे अपनी सारी जिन्दगी ३०) या ४०) में विद्यालयोंको बेच देते हैं। उनके पास स्वतंत्रता कभी अपना घर नहीं करती इसलिए उनके भावी विचारोंका घात हुए विना नहीं रहता।

धर्म एवं समाजका उत्थान विज्ञ महानुभावोंके द्वारा ही होसकता है और उसमें कुछ (धनकी) सहकारिता धनिक वर्गकी भी मानी जाती है लेकिन हमारे विज्ञवर्ग और धनिकवर्गको धर्म एवं समाज उत्थानका अवकाश नहीं है, क्योंकि धनिकवर्ग तो अपने व्यवसायमें ऐसा रक्त होरहा है कि उसे सुखसे भोजन प्राप्त करनेकी भी फुरसत नहीं है। इसी प्रकार अधिकांश विज्ञवर्ग परतन्त्रताकी पक्की जंजीरमें ऐसा जकड़ा है कि कुछ कर ही नहीं सकता ऐसी अवस्थामें हमें कहना पड़ता है कि—धार्मिक एवं सामाजिक उत्थान हमारे लिए कोशों दूर है।

खेमचन्द्र—समाजके अन्दर दो तरहके मनुष्य हैं—एक धनिक दूसरे निर्धन। इनमेंसे धनिकवर्ग तो अपनी सन्तानको विद्यालयोंसे सर्वथा पृथक् रखता है। हा निर्धनवर्गकी सन्तान अवश्य ही विद्यालयोंमें प्रवेश होती है। अब जरा सोचिये जब कि निर्धनवर्गकी ही सन्तान ज्यादातर विद्वान बनती है तो फिर अगर वह विद्यालयों एवं पाठशालाओंमें अध्यापकीका कार्य सम्पादन तनख्वाह लेकर करती है याने परतंत्र रहती है तो इसमें कौनसी असमवनीय बात है क्योंकि नीतिकारोंने कहा है—"सरस्वती माता और लक्ष्मी माताका आपसमें वैर है, इसलिये जहांपर सरस्वती माता होंगी वहां लक्ष्मी माता नहीं आ सकती और जहां लक्ष्मीजी होंगी वहां सरस्वतीजी नहीं आ सकती।"

धनिक वर्गकी सन्तान विद्वान हो तो संभव



अपूर्व कारीगिरीका प्राचीन दि० जैन मंदिर-केकड़ी।

है कि व्यापारके कार्यमें बहुत कुछ सहायता प्राप्त हो ऐसा होना असंभव है कारण धन-वान लोगोंको सन्तानके पढ़ानेकी परवाह नहीं है क्योंकि उन्होंने समझ रक्खा है कि—विद्या केवल नौकरीके लिए ही पढ़ाई जाती है और उनका कहना भी ठीक है क्योंकि ऐसा हो रहा है। कवि मैथिलीशरणजीका कहना भी है—

अब नौकरीके ही लिए विद्या पढ़ी जाती रही।
बी० ए० न हो तो फिर कहो डिप्टीगिरी रक्खी कहा॥
किस स्वर्गका सोपान है तू हायरी डिप्टीगिरी ?
सीमा समुन्नतिकी हमारे चित्तमें तू ही भरी॥

बस, इसी भावको समझकर वनिकवर्ग अपनी सन्तानको ज्यादे नहीं पढ़ाते क्योंकि वे समझते हैं कि हमारे पास काफी धन है, हमें अपनी संतानको पंडित बनाके क्या करना है ? क्या कहीं नौकरी कराना है ?

नेमिचन्द्र—प्रियवर, आप भूलते हैं। वनिक-वर्ग इस भावको लेकर अपनी सन्तानको अपढ़ नहीं रखता कि—अब नौकरीके लिए ही विद्या पढ़ाई जाती है व उससे परतंत्रता उत्पन्न होती है और स्वतंत्रताका नाश होता है। वनिक-वर्गके दिमागमें स्वार्थका अंकुर पैदा होगया है इसलिए वह अपनी सन्तानको विद्वान नहीं बना सकता। सुनिये—सबसे ज्यादा फिकर तो वनिकोंको यह रहती है कि अगर हम अपनी संतानको पंडित बना देंगे तो वह हमारे हाथसे चली जावेगी और अन्य पंडितोंकी तरह विद्या-लयोंकी नौकरी व सभाओंकी उपदेशकी करेगी क्योंकि—पंडितोंको ज्यादातर नौकरी ही प्रिय मालूम होती है। वनिक वर्गका स्वार्थ केवल यही है कि व्यापारकी वृद्धि हो, भलेर पैसा पैदा करने लगें। इसलिये उनको छोटीसी ही उम्रमें व्यापारिक धंधेमें फसा देते हैं, ऐसी अवस्थामें उनके बच्चे थोड़ीसी हिन्दी व गणितकी शिक्षा ही पाकर मूर्ख रह जाते हैं। कहीं२ तो केवल गणित और मुड़िया भाषा ही बच्चोंको सिखाते हैं जिससे वे मात्र भाषा (हिन्दी)में अनुवादित शास्त्रोंका स्वाध्याय भी नहीं कर पाते।

मुड़िया भाषा कोई साहित्य भाषा नहीं और न उसे किसी ऋषीने जन्म दिया। उसे तो स्वार्थ व्यवसायी वर्गने ही स्वार्थसिद्धिकी गर्जसे उत्पन्न किया है, ऐसा ज्ञात होता है। किसीने सच कहा है—"वणिक पुत्र कागद लिखत, काण मात्र नहीं देत। हींग, मिरच, जीरो लिखत, हग, मर, जर लिख देत।

प्रियवर ! दूसरी बात आपने जो यह कही है कि मुनियोंने मिथ्यात्वको हटाया, मैं इसे कतई नहीं मान सकता। क्योंकि मिथ्यात्वका किंचित् भी हटना मुझे नहीं दिख रहा है। सुनिये-जैनियोंमें बही गंगा, यमुना आदि नदियोंमें पर्वके दिन स्नान करना अभीतक जारी है। इसी वर्षकी बात है जब कि शिखरजीका कुंभ मेला था, मेरा साथ कटनीसे एक ताजे सिंघईजीके साथ होगया और उनके साथ इलाहाबाद गया तब आप मुझे त्रिवेणी दिखानेको गंगा ले गये वहां आपने गंगामें डुबकी लगाई और गंगामाईको कुछ पैसे भी चढ़ाये। मैं सिंघईजीकी यह गंग-भक्ति देखकर दंग रह गया, कुछ कह नहीं सका। लेकिन मैंने मनमें सोचा कि शायद सिं-घईजीने इस अभिप्रायसे शामको ४ बजे गंगा-स्नान किया है जिससे पाप मैल धो जावे और

शुद्ध होकर शिखरजीकी वंदना की जावे।

स्त्रियोंका वही खेर, बद्देर, दुर्गा, चण्डी आदिका पूजना व पीर पैगम्बरोंसे सन्तानकी आशा का पूजन जारी है आदि कहांतक कहें, मतलब यही है कि अभी समाजसे मिथ्यात्व घटा नहीं बल्कि बढ़ता ही दिखाई देरहा है।

खेमचन्द्र—आपने तो अपनी कुशाग्र बुद्धिके द्वारा मेरी सारी बातें काट दीं। लेकिन यह मैं दावेके साथ कहता हूं कि सभाओंके द्वारा विद्वानोंने बहुत कुछ समाज हित किया है, आप इसे स्वीकार करें या न करें।

नेमिचन्द्र—प्रियवर! आप कैसी बात कहते हो मेरा अभिप्राय आपको परास्त करनेका नहीं है और न मैं अपनी बातको पुष्ट करना चाहता हूं। लेकिन मैं स्वतंत्र विचारवाला आदमी हूं। इसलिये केवल उन्हींके रखनेका प्रयास सभी समाजसुधारकोंके सामने रखता हूं। कोई उन्हें माने या न माने यह तो उसीके आधीनकी बात है। बस, इसी अभिप्रायसे आपका कुछ हृदय दुखाया है, क्षमा करें।

खेमचन्द्र—आप यह शंका तो दिलसे कतई निकाल दें। मैं किंचित भी बुरा नहीं मानता। आप तो अपने विचारोंको सुनाते जाइये और मेरी शंकाओंका समाधान करते जाइये।

नेमिचन्द्र—जब आपका इतना उदार हृदय है तब मैं भी अपने विचारोंको स्वतंत्रतापूर्वक रखनेको तयार हूं। सुनिये—आप कहते हैं कि मुखियोंने सभाएं स्थापित कर समाजका बड़ा उपकार किया है लेकिन मैं आपको आगे चलकर बताऊंगा कि सभाओंद्वारा मुखियोंने समाजका कितना उपकार किया है।

मैं इस बातको मानता हूं कि मुखियोंने समाजके अंदर सभाओंको जन्म दिया परन्तु इसे कदापि नहीं मान सकता कि सभाओंद्वारा समाजका कुछ उद्धार हुआ है। सभाओंका जन्म समाज हितके लिए ही होता है। लेकिन हमारी सभाओंके मुखियोंके दांत खानेके और दिखानेके और ही रहे। उन्होंने कभी भी निष्कपटतासे किसी सभाका काम सम्पादन नहीं किया। उन्होंने तो सभाओंकी एक प्रकारका अभिनय बना दिया जैसे कि अभिनयमें एक्टों व पात्रोंका रूप दिखाकर उन्हें तबदील किया जाता है उसी प्रकार हमारी सभाओंका हाल रहा। नाटकोंमें एक्टोंका रूप बदला जाता है तो यहां प्रस्तावोंका।

मुखियोंने अपनी प्रधानतामें जिन२ प्रस्तावोंका पाठ खेला और जनतासे पास कराया उन्होंको अपने पैरों कुचल डाला। बस, ज्यादे क्या कहूं। सभाओंका तमाम कलेवर इसी प्रकारका है और उनपर दिखाउटी टाइटिलोंकी भरमार है।

अगर मुखियोंने सभाओंके द्वारा कुछ भी समाजका सुधार किसी रूपमें किया होता तो आज उसके जीवन मरणका प्रश्न संसारके सामने उपस्थित न होता। आज समाज मरणासन्न है, उसे कुप्रथाओंके रोगने घर दबाया है जिसके कारण उसकी गोदसे उसके प्रिय २१ लाल रोजीना उठकर मृत्युकी गोदमें चले जाते हैं। यदि मुखियोंने कुप्रथाओंको निकालनेका प्रस्ताव सच्चे रूपमें किया होता और उसपर खुद अमल किया होता तो आज समाज अपने अबोध छोटे २ बच्चोंको जिनके कि दूधके

हाथ भी नहीं छूटे उन्हें विवाहकी वेदी पर बलिदान न करती तथा अपनी छोटी २ अबोध कन्याएं यानिंद पशुओंके बुड्ढोंको न देखती और न बुड्ढे भी मरणकालमें शादीकी इच्छा करते। बड़े दुःखके साथ कहना पड़ता है कि—समाजको कुरीतियोंने इतना तंग किया है, इतना अधमा गुआम बनाया है कि जिसका कुछ ठिकाना ही नहीं है।

कुरीतियां रोग हैं, जो जैन कौमपर आक्रमण किए हुए उसे नष्ट कर रही हैं। इनके द्वारा सन्तानोत्पत्ति मारी गई, विधवाओंकी वृद्धि भई और गरीब घरानेके नौजवान विवाहरहित रह गये। कुरीतियोंका किस्सा बड़ा है अगर मैं साराका सारा बयान करूं तो बहुत समय लगे इसलिए आप इतनेहीमें समझ जाइये कि कुरीतियोंके द्वारा समाज कितनी पतित दशाको प्राप्त होचुकी है।

खेमचन्द्र—मित्रवर, अब मैं समझ चुका कि सचमुच ही समाजको जगानेवाले उसे जगाके नहीं जानते क्योंकि वे खुद सोरहे हैं। अब आप मुझे इस बातको और समझा दीजिये कि—समाजका सुधार कैसे होसकता है?

नेमिचंद्र—समाजसुधारके कई उपाय हैं किन्तु मुख्यतः मेरी समझके अनुकूल ६ उपाय उपयोगी हो सकते हैं। जैसे—१ संगठन, २ कालेज, ३ धार्मिकक्षेत्रको बढ़ाना, ४ कुरीतियोंको हटानेकी अमली कार्रवाई करना, ५ वैवाहिक क्षेत्रको विशाल बनाना, ६ स्त्रीशिक्षाका पक्का प्रबंध करना।

खेमचंद्र—अब इनको क्रमशः २ व्याख्या कर दीजिये क्योंकि मैं अभी आपके अभिप्रायको पूरी तौरसे समझ नहीं पाया।

नेमिचन्द्र—जब ऐसी आपकी मंशा है तो सुनिये मैं आपको सुनाता हूं किन्तु यह याद रखिये कि केवल सुनना ही उपयोगी नहीं होता बल्कि मनन करना और आचरण करना ही उपयोगी होता है। अच्छा तो सुनिये—

समाज इस समय मोतियोंके दानोंकी तरह बिखरी पड़ी हुई है उसे एकताके सूत्रमें पुरोनेकी बड़ी भारी आवश्यकता है अर्थात उसे संगठित बनानेकी खास जरूरत है क्योंकि बिना संगठनके समाजका सुधार होना बालूसे तेलकी आशा करना है। दि० श्वे० और स्थानकवासी आदि कोई भी हों सभी मिलकर रहें और अपनेर धर्म सिद्धांतोंका पालन करते हुए श्रीवीर शासनका सिक्का संसारमें जमा दें लेकिन यह काम तभी होसकता है जब कि हमारे नेता आपसी कलहका अंत कर आपसमें प्रेमपूर्वक मिल जायें।

दूसरा उपाय है—कालेज, जैन समाज राजनैतिक क्षेत्रसे बहुत दूर है, आज सरकारी कौंसलोंमें उसके सुपुत्रोंकी पहुंच नहीं है। इसीसे जैनसमाजके हकोंकी रक्षा नहीं होरही है तथा दुनियां जैनामृत पीनेकी इच्छुक होरही है लेकिन हम उसे वह तबतक नहीं पिला सकते जबतक अपनेमें कालेजकी स्थापना न कर लें क्योंकि उसके द्वारा उस प्रकारके विद्वान उत्पन्न होंगे।

आर्य, ईसाई, फारसी और मुसलमान जो आज तरक्कीके मैदानमें दौड़ लगा रहे हैं वह सब उनके कालेजोंका ही महत्व है।

तीसरा उपाय है धार्मिक क्षेत्रको बढ़ाना अर्थात् जो जैनधर्मको छोड़ बैठे हैं उन्हें पुनः इसमें लाना और जैनेतर (अजैनों) भाइयोंको जैनधर्ममें दीक्षित करना। आज शिक्षित संसार धर्मके सामने परीक्षा-प्रधानी होरहा है। हमको चाहिये कि हम अपने धर्मके अकाट्य सिद्धान्तोंको शिक्षित संसारके सामने रक्खें और संसारको जैनी बना डालें।

मान्यवर बैरिष्टर चंपतरायजीने जो करके दिखाया है उसीका हम समर्थन करें और कालेज खोलकर उन्हीं सरीखे विद्वान पैदा करें तभी जैनधर्मकी वास्तविक तरक्की होसकती है।

चौथा उपाय है—वैवाहिक क्षेत्रको विशाल बनाना, यह इलाज मरणासन्न समाजके लिए रामबाण है क्योंकि यह बहुत पुराना इलाज है, नवीन नहीं। उपश्रेणिक सरीखे क्षत्रिय राजा भीलकी कन्याको परणते हैं जिससे कि चिलाति पुत्रकी उत्पत्ति होती है तथा उन्हींके पुत्र श्रेणिक ... पुत्रको परणते हैं जिससे अभयकुमारजी होते हैं मतलब यह है कि यह "अन्तर्जातीयविवाहकी" प्रथा नवीन नहीं है बल्कि प्राचीन है।

आज जैन समाजकी छोटी छोटी जातियां अपने जीवनको कायम रखनेके लिये ... [illegible]

[illegible]

बेटीव्यवहार शुरू होजावे तो सम्भव है कि समाजके जीवनमरणका प्रश्न बहुत कुछ हिस्सेमें हल हुए बिना न रहे।

पांचवां उपाय है-कुरीतियोंके हटानेकी अपनी गाढ़ी रचना—देखा जाता है कि ज्यों ज्यों कुरीतियोंका घटानेका प्रयत्न किया जाता है त्यों त्यों वे बढ़ती नजर आती हैं इससे तो लाजिम यही है कि उन्हें हटानेके लिये पंचायतकी तरफसे कुछ दंड नियत किया जावे तभी संभव है कि कुरीतियोंकी चुंगलसे समाज बच सके।

छठवां उपाय है—स्त्रीशिक्षाका प्रबंध, समाजकी उन्नतिमें बाधक स्त्रियोंका अशिक्षित रहना भी है अगरचे स्त्रियां पढ़ी हों तो हम बड़ी आसानीसे अपनी धार्मिक एवं सामाजिक तरक्की कर सकते हैं। जिन नवयुवकोंके द्वारा लोग समाजकी भावी उन्नतिकी आशा करते हैं उनको योग्य बनानेवाली माताएं होना अति आवश्यक है। जब हम सीता आदि महा स्त्रियोंकी जीवनीपर विचार करते हैं तो हमें मालूम होता है कि आधुनिक समाजकी स्त्रियां उनकी किंचित् मात्र समानतामें मुकाबला नहीं कर सकतीं।

अगर हम चाहते हैं कि हमारा समाज तरक्की पावे और धर्मात्मा बने तो हमारा फर्ज होगा कि हम बालकोंकी तरह बालिकाओंको भी पढ़ानेकी ठीक व्यवस्था करें।

खेमचन्द्र—आपका कहना अक्षरशः सत्य है। आपने जो जो बातें आजके सम्वादमें समाजके लिए बतलाई हैं। यदि उन सबका उपाय योग्य ... [illegible] ... अवश्य होजावे।

नेमिचन्द्र—प्रियवर, अब समय शयन करनेका होगया है अतएव आज्ञा दीजिये मैं घर जाऊं।

खेमचन्द्र—अच्छा मित्रवर, फिर कभी भी ऐसी कृपा करना।

दिवाली व हमारा कर्त्तव्य।

(ले०-बाबू ताराचन्द्र पांड्या, झालरापाटन)

बेच दिया चिन्तामणि जिनने कौड़ीमें वे मूरख हैं।
जला दिया ईंधन सम जिनने कल्प-वृक्ष वे मूरख हैं॥
पर वे भी हैं अकूलमन्द उस मूर्ख शिरोमणिके आगे।
जो नरभव विषयोंमें खोवे, मोह-नींदसे नहीं जागे॥

कोई ढाई हजार बरसोंकी बात है। महावीर भगवान इस असार संसारको छोड़कर परम धामको सिधार गये थे। पावापुरके सरोवरके तीरपर चमकते हुए मुकुटोंको धारण करनेवाले देवगण अंतिम तीर्थंकरका अंतिम कल्याणोत्सव कर रहे थे। उस समय सब ज्ञानी मनुष्योंने विचार किया कि महापुरुषोंका जीवन जैसा चमत्कारिक होता है उनकी राख भी उससे कम चमत्कारिक नहीं होती है। तीनों लोकोंका कल्याण करनेवाले श्री वीरप्रभु आज चले गये हैं। उनकी कीर्ति अमर है। विद्वान लोग तो उनके उपदेशोंको कभी भूलनेके नहीं। परन्तु कालान्तरमें कालचक्रके प्रभावसे सांसारिक कार्योंमें फँसी हुई साधारण जनता उनके उपदेशोंके प्रति उदासीन हो जावेगी। इसलिये आओ हम सब मिलकर आज भगवानके निर्वाणके दिन कोई ऐसा उपाय सोचें कि जिससे लोकका कल्याण होवे अर्थात् लोगोंके हृदयोंमें वीर प्रभुकी पावन स्मृति भलीभांति जागृत रहे और समय २ पर लोगोंका ध्यान भगवानके उपदेशोंकी ओर आकर्षित होता रहे।

यह विचार कर उन सबने आपसमें सलाह की और सबकी सम्मतिसे दीपमालिकाकी उत्पत्ति की गई। यह नियत किया गया कि दीपमालिका प्रतिवर्ष आकर लोगोंको भी श्री वीर प्रभुकी स्मृति और आज्ञाकी याद दिलाया करे और लोगोंको उपदेश दिया गया कि वे प्रतिवर्ष दीपमालिकाका स्वागत दीपोंसे किया करें। भगवानकी अन्तरंग विभूति सर्व-प्रकाशक केवलज्ञान और बाह्य विभूति समवशरणकी ओर झुकते हुए अमरेन्द्रोंकी कांति इन दोनोंका भान ज्योतिसे होता है, इसीलिये दीपकोंका विधान किया गया।

भारतके उस समयके सात महाराजाओंने मिलकर इस कार्यका श्रीगणेश किया।

तबसे श्री वीर स्मृतिकी दूती दीपमालिका सालमें एकबार आती है और सोये हुए अर्थात् सांसारिक कार्योंमें डूबे हुए लोगोंको जगाकर चली जाती है।

हम इसका स्वागत करनेमें तो कोई कमी नहीं रखते। दीपक ऐसी धूमधामसे जलाते हैं कि रातका दिन होजाता है और आकाशके दीपकोंको लज्जित होजाना पड़ता है। इन दीपकोंको देखकर हमें भक्त अमरोंके झुकते हुए मुकुटोंकी मणियोंकी याद आ जाती है।

परन्तु दीपमालिकाके उद्देश्यको हम बिलकुल बिसार बैठे। कोई तो इसकी उत्पत्ति ही भिन्न प्रकारसे मानते हैं तो कोई इसको सिर्फ वैश्योंका त्योहार समझते हैं। उत्सव चलाया था सांसारिक भोगोंपरसे चित्त हटानेके लिये और हमने इसको भोगोंका उत्सव बना दिया। इस दिन जुवा खेला जाता है, संयमके स्थानपर भोगविलासकी सामग्रियें जुटाई जाती हैं और सबसे बढ़कर काम यह होता है कि संसार-चक्रकी

मातृभूमिका झण्डा फहराया जाता है। इन्हींकी पूजाको यहां भी घुसेड़ दिया गया। हम सोते हैं। दीपमालिका आकर हमको जगाती है। जैसे किसी चींटीने काटा हो वैसे हम जगते हैं और आंख फूंककर हाथमें लड्डू लेकर मंदिरोंको दौड़ते हैं और कुछ पूजापाठ गड़बड़ा कर वापिस लौट आते हैं।

परन्तु इस तरह कुछ काम नहीं होता है। महापुरुषोंकी स्मृतियें इसी उद्देश्यसे मनाई जाती हैं कि उनके गुणोंका स्मरण हो, उनके गुणोंके स्मरणसे उनके गुणोंमें भक्ति हो, उनके गुणोंमें भक्तिसे उन गुणोंको प्राप्त करनेकी इच्छा जागृत हो और उनके गुणोंको प्राप्त करनेकी इच्छासे उनके समान बननेका प्रयत्न किया जावे।

महावीरस्वामी संयमशील, ब्रह्मचारी, करुणासागर और पतितपावन थे। हमें चाहिये कि कमसेकम दिवालीके अवसरपर तो अवश्य ही उनके चित्र (मूर्ति), चरित्र और चारित्रपर विचार करें। मंदिरोंमें जाकर उनकी पूजा करें, उनके पुराणको पढ़ें और उनके चारित्रपर मनन करें। हम यह सोचें कि किस मार्गपर चलकर उनने नरत्वसे परमात्मत्वका उच्च पद प्राप्त कर लिया।

हमको चाहिये कि उपवास व्रत आदि कर दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओंका, अनित्य अशरण आदि बारह वैराग्य भावनाओंका और मैत्री, प्रमोद आदि चार शुभ भावनाओंका चिन्तवन करें और उत्तम क्षमा आदि दशधर्मोंकी तरफ मन लगावें। जिस तृष्णा और स्वार्थसे संसारमें गरीबों और गुलामोंकी संख्या बढ़ रही है, जिस लोभसे मनुष्य अपने ही जैसे मनुष्यका नौकर बननेको विवश होता है उसको त्याग करें या मंद करें।

समाजमें बहुतसे भाई दुःखी व बेकार हैं। हमको चाहिये कि हम यथाशक्ति उनकी सहायता करें।

जो अज्ञानी हैं उनको ज्ञान-दान करें या करावें, और जो रोगी हैं उनकी सेवा सुश्रूषा करें, और नहीं तो कमसेकम उसके पास जाकर उनसे मीठे और सान्त्वनाके वचन बोलें।

जुआ, शराब और तमाखू सिगरेटके व्यसनसे लोगोंको छुड़ावें। जिस सट्टेने हमारे समाजकी आर्थिक स्थिति खराब कर दी है उसको बंद करें।

मंदिरोंकी उचित व्यवस्था करें और उनकी टीम टाम (सजावट)में लगनेवाले रुपयोंको पाठशालाओं, अनाथालयों, औषधालयों आदि अधिक उपयोगी कामोंमें खर्च करें।

व्यक्तिकी, कुलकी, जातिकी, देशकी और विश्वकी अनैक्यताको दूर करनेका प्रयत्न करें। ब्रह्मचर्य और व्यायामको प्रोत्साहन दें और फैसनसे बाज आवें, चमड़ेको और रेशमको छोड़ें।

स्त्रियोंको भोगकी वस्तु न समझें। यहां ख्याल करें कि उनके भी मन है, हृदय है, सुख दुःख है, विचार और इच्छायें हैं। उनके भी हमारे जैसी आत्मा है और उनको भी आत्म-श्रद्धा, आत्मज्ञान और आत्मकल्याणकी आवश्यक्ता है।

धर्म और दयाके खातिर हम विधवाओंको देवी समझें। गृहस्थाश्रममें रहकर वे दुर्धर शीलव्रतका पालन करती हैं। उनकी अवज्ञा धर्मकी

अच्छा है अर्थात् धर्म है। वे दरिद्रता, अपमान आदिसे दुःखी हैं, उनका तिरस्कार करता है। हम उनमें सादे जीवनको प्रोत्साहन दें, उनको जीवन निर्वाहके लिये उपयोगी निर्दोष हुनरोंको सिखावें और माताके समान समाजसेवा करनेके लिये उनसे कहें। हम सब उनको प्रतिष्ठाके सिंहासनपर स्थापित करें क्योंकि वे शीलधर्मका पालन करती हैं। ताराचंद्र पांड्या।

वीर-विनय।

वीर प्रभु शीघ्र करो उद्धार ॥
महावीर मम झंझरी नैया, अटक रही मझधार।
पार लगादो नाथ एक बस, तुम ही हो पतवार ॥
वीर प्रभु शीघ्र करो उद्धार ॥
ज्ञान नेत्र मुंद गये पापका छाया निविड़ अंधकार।
हितका मार्ग सूझता नाहीं कहां मोक्षका द्वार ॥
वीर प्रभु शीघ्र करो उद्धार ॥
हे सन्मति! अब सन्मति दीजे कीजे नहीं अबार।
करुणानिधि लीजे उतार अब भवका बोझ अपार ॥
वीर प्रभु शीघ्र करो उद्धार ॥
मैं तो दीन दुखी हूं स्वामिन्! तुम करुणा भंडार।
इन पापी कर्मोंका भगवन्! कैसे हो संहार ॥
वीर प्रभु शीघ्र करो उद्धार ॥
एक बार हस्तावलंब दो, हो जाऊँगा पार।
हे अतिवीर! वीर होजाऊँगा लो तनिक सम्हार ॥
वीर प्रभु शीघ्र करो उद्धार ॥
चारशतक चौबीन वर्षों पर बीते दोय हजार।
वर्द्धमान भगवान "दास"को अब तो दीजे तार ॥
वीर प्रभु शीघ्र करो उद्धार ॥
परमेष्ठीदास जैन म० वि०-इंदौर।

महावीरस्वामी अहिंसा च।

(रचयिता–परमेष्ठीदासो जैनः–इन्दूरम्।)

सार्द्धद्विसहस्रवर्षपूर्वं भारतवर्षेऽस्मिन् महती विशृंखलताऽऽसीत्, सामाजिकनियमपरिशिथिलाः ये हि पुरातनमहर्षिभिः प्रदर्शितास्ते विलुप्ता बभूवुः, वर्णाश्रमव्यवस्थायाः सुन्दरस्वरूपमपि कालेऽस्मिन् नष्टप्रायमासीत्। ब्राह्मणाः ब्राह्मणत्वं विस्मृत्य स्वसत्तायाः दुरुपयोगं चक्रुर्यो तैरनेकमनर्थकं प्रवृत्ताऽऽसीत्, क्षत्रियाश्च स्वकर्तव्याकर्तव्यम् विस्मृत्यात्याचारपूर्वकप्रवृत्तिं स्वीचक्रुः, समाजस्य राजदंडः अत्याचारस्याधिकारे आसीत्, सत्ता यार्हंकारस्य दासीत्वं स्वीचकार, सत्यमुक्तं चाधर्मस्य शिरसि स्थितिमकरोत्।

वैश्याश्च स्वकीयसत्कृत्यं स्वाजीविकां च विस्मृत्यान्यायमार्गं स्वीचक्रुः सर्वत्र त्राहि त्राहीति श्रूयतेस्म। भारतवर्षस्य सामाजिकधार्मिकेतिहासे च समयोऽयम् भयंकर आसीत्।

तदा मनुष्याः मनुष्यत्वविस्मृता आसन्, सत्ताधारिणः सत्तायाः दुरुपयोगं चक्रुः, निर्बलेषु सबलतरास्त्वनुत्तम एव स्थिताः बभूवुः, येषामुपरि समाजस्य पवित्रसेवाकार्यमासीत्तेऽत्यन्तदुःखिताः आसन्।

सर्वत्रात्याचारवह्निः प्रज्वलित आसीत्, धर्मे स्वार्थस्य राज्यमासीत्, कर्तव्यम् पापस्य करुणा च पाशविकतायाः दासीभावं स्वीचकार, मनुष्यत्वं तु अत्याचारस्यानुगामि बभूव, मैत्रीप्रमोदकारुण्यादिगुणानां नाममात्रमेव ग्रन्थेषु अवशिष्टमासीत्।

तात्पर्यमिदमेव यत् सर्वे एकस्य महापुरुषस्य

ण्डीवा कुर्वन्तः स्थिताः आसन् यो हि जगतो भारस्य प्रज्वलितां ज्वालां शमयेत् शांतिं च स्थापयेत्, यश्च पथभ्रष्टाज्जनान् सत्पथे प्रवर्तयेत्, तथा च स्वोपदेशामृतेनाज्ञानसंतप्तानां नराणामात्मपिपासां शमयेत् मनुष्येषु च मनुष्यत्वं स्थापयेदिति ।

प्रकृतिस्तु समयानुसारेणावश्यकतां परिपूरयत्येव, तदनुसारेणैव एको हि महापुरुषः भारतेऽस्मिन् कुण्डलपुरनाम्नि नगरे त्रिशलादेविनाममहाराज्ञ्याः गर्भेऽवतीर्णो बभूव ।

तया तदा षोडशस्वप्नाः दृष्टाः फलेन च ज्ञातं यदि भूभारहरणसमर्थस्य तीर्थंकरस्य श्रीमहावीरस्य जन्म भविष्यति यो हि वर्तमानकालीनामशांतिं शीघ्रमेव दूरीकृत्य सर्वत्र शांतिं च करिष्यतीति ।

एवं ज्ञात्वा सर्वे जनाः हर्षमापुः । पुनश्च स ईसायाः ५९९ वर्षपूर्वं चैत्रशुक्लात्रयोदश्यां सोमवासरे उत्तराफाल्गुनिनक्षत्रे जन्मावाप । सौख्येन शैशवावस्थामत्यवाहयत् । भगवानयम् मनुष्य एवासीत् न तु कश्चिद्देवः मनुष्यातीतो वेति ।

जन्मतस्सहजेव सः गमने स्थितौ आचारे व्यवहारे प्रवृत्तिं करोतिस्म, जैनधर्मेऽस्मिन् अयमेव विशेषः यत् मनुष्य एव क्रमशः सत्कार्यं कृत्वा परमात्मा भवति न तु कश्चिद्देवादिकः, अन्यथा महावीरस्योपासनमेव कथं स्यात् ! मनुष्य एव मनुष्याणां शिक्षकः आदर्शः—सुधारकः भवितुमर्हति । तस्मादेवोक्तं यत् श्रीमहावीरस्वामी मनुष्य एव आसीदिति ।

पुनश्च जन्मानन्तरमायुषः ३० वर्षाणि गार्हस्थ्यावस्थायां व्यतीतानि, नानाप्रकारेण सुखसंपत्यादिना मित्रहितैषिभिः विद्वद्भिश्च सहकालयापनं कृतं तेन । अत्यन्तानुरोधेऽपि न हि भवभ्रमणकारकं विवाहबंधनं स्वीकृतम्, किन्तुकारणवशात् वैराग्ये संजाते मगशिरशुक्ल–दशम्यां जिनदीक्षां धारयामास ।

द्वादशवर्षपर्यन्तं घोरतरं तपः तप्त्वा लोकालोकप्रकाशकं कैवल्यमवाप । तदनन्तरं भगवता समस्तसंसारस्य कल्याणहेतवे दिव्यध्वनिनोपदेशः प्रदत्तः ।

तेनोक्तमासीत् यत् प्रत्येकप्राणी य अज्ञानाग्निदुःखज्वालासु ज्वलितस्तिष्ठति सः ममोपदेशं श्रुत्वा कल्याणाधिकारी वर्तते ।

अज्ञानचक्रेण ग्रसितः प्राणी मनुष्यः तिर्यग्वा आर्योऽनार्यो वा स्त्री पुरुषो वा ममोदारधर्मशरणं गृह्णातु ।

घोषणामुदारामेनां श्रुत्वा भवस्य बुभुक्षिताः अनेकप्राणिनः भगवतः महावीरस्वामिनः शरणमापुः । तस्योपदेशं च श्रुत्वा तैरात्मकल्याणं कृतमिति । परिणामस्तस्यैवं संजातः यत् सर्वत्रात्याचारस्य नाममात्रमपि नावशिष्टं, यज्ञस्य पवित्रवेद्यां लक्षाणां पशूणामात्मबलिभवनमपि च रुद्धम्, भारतवर्षस्येतिहासे पुनरपि स्वर्णयुगस्योपस्थितिः संजातेति ।

शनैः शनैः बहवोऽनुयायिनः संजाताः, आसन् भगवता कैवल्यावस्थायामेव ३० वर्षपर्यन्तं विहारो भारतवर्षे कृतः । तस्योपदेशः सर्वप्राणिकल्याणकारी "सत्त्वेषु मैत्री" इत्यादिकः "अहिंसापरमोधर्मः इत्यादिरूपेण वा संजातः । तस्योपदेशसमर्थकास्तु अन्यमतानुयायिनोऽपि संति सर्वे किन्तु तत्रापि न हि सम्यक्प्रकारेणाहिंसापरिपाल्यते । यथा—पातंजलयोगदर्शने "अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः" इत्युक्तं तथा च व्यासभाष्ये—

"तत्राहिंसा सर्वदा सर्वथा सर्वभूतानामनभिद्रोहः" इत्याद्युक्तं महाभारतानुशासनेऽपि च १४२तमे पर्वणि—

ऋषयो ब्राह्मणाः देवाः प्रशंसन्ति महामते ।
अहिंसा लक्षणं धर्मं वेदप्रामाण्यदर्शनात् ॥

इत्यादिप्रकारेणाहिंसायाः समर्थनं कृतं किन्तु तत्रैव "यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः" इत्याद्युक्तं तस्माद्विचार्यते यत्—

यथाजनाकूतमथ प्रवृत्तः परस्परार्थं प्रतिकूलवृत्तः ।
विधौ निषेधे च न निश्चयोऽस्ति
कथं स वेदो जगतः प्रमाणम् ॥

कस्मिंश्चित्प्रकरणे तु अहिंसायाः समर्थनं वर्तते वेदादौ, कस्मिंश्च मांसभक्षणेऽपि अदोषः प्रदर्शितः यथा—

क्रीत्वा स्वयं वा प्युत्पाद्य परोपहृतमेव च ।
अर्चयित्वा पितॄन् देवान् खादन्मांसं न दुष्यति ॥

तथा च तदनुयायिभिर्महर्षिभिरपि तत्र प्रवृत्तिः कृता एव यथा—

"गौतमो नाम महामुनिः प्राणत्राणार्थं आत्मोपकारिणमपि वानरं जघान, विश्वामित्रश्च सारमेयमिति एवमन्येऽपि शिबिदधीचिबलिबाणासुरप्रभृतीनामवनिपतीनां सुमितनयादीनामितरेषां च सत्वानामुपालम्भनेनात्मनः शान्तिकर्माणि सम्पादयामासुरे।" यशस्तिलके १२५ तमे पृष्ठे प्रदर्शितं सम्यक् प्रकारेणोदाहरणमेवमेवेति।

इत्येतेषां कथनतात्पर्यमिदमेव यत् हि जैनधर्मादन्यत्र हिंसोपदेशः सुदुर्लभो वर्तते।

इस्लामादिधर्मेष्वपि अहिंसासमर्थनं वर्तते, यथा शेखसादिनोक्तं—

"मयाजार मोर कि दाना कशस्त।"

इत्यस्यार्थः—यत् सूक्ष्मानपि जन्तून् मा पीडयन्तु, ते वराकाः कणादिकं गृहीत्वा स्वस्य पोषणं कुर्वन्ति तथा चात्मवन्त एव सन्ति ते। तस्मादेव "मजीमां मुर्गी माहारी म्याजार नवाशीता सगक तु पेशोद वार" । अर्थात्—

भो प्रियाः! कुक्कुटमत्स्यादीनपि मा पीडयन्तु येन परमात्मनः समीपे भवन्तो लज्जिताः न भवेयुः। इत्याद्युक्तं किन्तु तत्रापि हिंसा प्रचुरतरा धर्मार्थं व्यवहारार्थं वा समर्थिता दृश्यते चास्माभिः प्रत्यक्षेण। किन्तु भगवता महावीरेण या अहिंसा प्रतिपादिता न हि तत्र पारस्परिकविरोधो वर्तते "प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा" इत्यादिप्रकारेण भगवता महावीरेण तदनुयायिभिर्महर्षिभिर्वा हिंसालक्षणं प्रतिपादितं तथा च जीवोत्पत्तिकारणं स्थानमपि च प्रदर्शितं येन तत्र प्रवृत्तिं मा कुर्युः दयाप्रतिपालकाः। तदनुसारेणैवाद्यावधि महावीरस्वामिनोऽनुयायिभिर्जैनैरेव सर्वसमाजेभ्यः उत्कृष्टा अहिंसा परिपाल्यते।

भगवता महावीरेण मिथ्यात्वतमावगाढे निचिते घोरहिंसायुते काले एवानेका अहिंसकाः कृताः आसन्, अधुना पर्यन्तम् २४६४ वर्षेषु गतेष्वपि तस्य मार्गानुयायिनः द्वादशलक्षसंख्यकाः वर्तन्ते।

किन्तु दुःखेन लिख्यते मया यत् बहुजनानां हृदयहीनानां मकुचितदृष्टिकारणेन नहि तेषां अहिंसा प्रतिपालकानां सत्यजैनानां वृद्धिर्भवति। अन्यथा वीरमार्गानुयायिनः अल्पेष्वेव वर्षेषु कोटिसंख्यकाः भविष्यन्ति।

वीरनाथस्योपदेशस्तु प्राणिमात्रस्य कल्याणनिमित्तमासीत् नहि कस्योपरि वैश्यानामेव तथापि च परंपरागतानां जैनानामेवाधिकारो वर्तते स तु भगवान् "सार्वः" आसीदिति।

इत्यादि सर्वम् ज्ञात्वापि तुच्छचेता नहि तस्योपदेशस्य सिद्धान्तस्य वा प्रचारं कुर्वन्ति । करोति चेत्कश्चित्सदा ने त बहुप्रकारेण परिनिन्दयंति इति महद्दुःखकरं । अस्तु नाम किन्तु विश्वासो मम वर्तते यदवश्यमेव वीरसिद्धान्तस्य प्रचारो भविष्यति पुनरपि च भविष्यति ।

भगवान् महावीरः सर्वप्रकारेणाशांतिमपसार्य अज्ञानान्धान् सदुपदेशदीपके सत्यमनुभवयं समस्तकर्मणां निर्जरां कृत्वा ईस्वीतः ५२७ वर्ष पूर्वं कार्तिककृष्णामावास्यायाम मोक्षमवाप ।

इत्यादिचरित्रादस्माभि शिक्षाग्रहणीया यत् प्रत्येकेषु प्राणिषु महती शक्तिर्वर्तते । यदि कश्चित् सत्प्रवृत्तिं कुर्वीत मनसः इंद्रियाणामुपरि चाधिकारं कुर्वीत्तदावश्य महावीरपदं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ।

भोपतितपावनजैनसमाज !—अन्तिमनिवेदनमिदमेव यत् भगवतः महावीरस्य चरित्र विशदरूपेण शास्त्रैर्ज्ञात्वा तस्य सिद्धान्तस्य सम्यक्रीत्या प्रचारं करोतु । प्रत्येकप्राणिनो हृदयस्थल्यामहिंसा परमो धर्म " इत्यस्योपदेशस्य बीजारोपण करोतु । यदि सन्ति भवन्तो महावीरानुयायिनस्तदा पारस्परिककलहम् परित्यज्य धार्मिकैर्जैनैः सह प्रीतिं कुर्वन्तु ।

"सत्वेषु मैत्री" मित्यादिवाक्यस्य स्मरणं कृत्वा मिथ्यात्वसंतप्तजनान् जैनमार्गं दर्शयन्तु तथा च भगवतः महावीरस्याहिंसाछत्रस्यातिशीतलछायायामाह्वयन्तु । इत्यलमतिविस्तरेण—

परमेष्ठिदासो जैनः म० वि०—इन्दूरम ।

—⊱⊱✣⊰⊰—

स्वामी समन्तभद्र ।

(लेखक-पं० गुणभद्र जैन-कलोल)

वाणी है कृपाणी तीक्ष्ण मिथ्यावादियोंके लिये ।
भव्य कुमुदोंके लिये, चन्द्रमा समान हो ॥
छाया अज्ञान तम स्वामी अति भूतल पर ।
दूर करनेको तुम भानु दीप्तिमान हो ॥
मदी जो प्रवादी गजराजके समान अति ।
मान मर्दनके हेतु केहरि प्रधान हो ॥
पूज्यवर विद्यमान आपमें अनेक गुण ।
एक मुख कैसे उन गुणका बखान हो ॥

(१)

विश्वके सहारे नित्य नयनोंके तारे आप ।
स्वामी हो हमारे हम दास भी तुम्हारे हैं ॥
नहीं हैं कुभाव चित्त नित ही पवित्र भूरि ।
शत्रु मित्र है समान कलिमल टारे हैं ॥
बड़ी बड़ी परिषदोंमें पाई है प्रशंसा महा ।
वे भी नर आपसे सदैव शीघ्र हारे हैं ॥
पड़ते दुःख गर्त मध्य ज्ञान लवलेश नहीं ।
स्वामिन तुम्हारे कर रक्षक हमारे हैं ॥

(२)

मैं हूं मतिमान अति मानते कुवादी गण ।
मानके विवश वच कठिन सुनाते थे ॥
आते करि कुंजरके समाने सदैव वे ही ।
सरल स्वभावी मृदु भाषी बन जाते थे ॥
प्रवर समन्तभद्रके विलोकने लिये ।
दूर दूर देशसे अनेक भूप आते थे ॥
अद्वितीय विद्वत्ता देखकर महान कवि ।
दांतो तले विस्मयसे अंगुली दबाते थे ॥

(३)

सागर समान स्वामी सतत गम्भीर अहो।
मेरुके सदृश ईश अटल महान थे॥
शारदा विचरती मन मंदिरमें प्रेमयुत।
न्याय नभो मण्डलके चन्द्र कांतिमान थे॥
भद्र व्यवहारी मन भद्रभावसे ही भरा।
भद्र परिणामी बहु नित्य ज्ञानवान थे॥
भूषण समन्तभद्र भद्र वचनोंके लिये।
अनुपम माने जाते एक ही निधान थे॥

(४)

योगियोंके शिरोमणि स्याद्वाद चूड़ामणि।
प्राणि हित आपके समस्त शुभ काम हैं॥
परोपकार, दया, उदारता, सहानुभूति।
विशद विरागमें सदैव अभिराम हैं॥
विश्व वस्तुओंसे कभी रागद्वेष लेश नहीं।
स्वामिन सदैव आप चन्द्रसे ललाम हैं॥
बीत गया काल बहु आज भी प्रत्यक्ष हमें।
बारबार बहु अंघ्रि युगमको प्रणाम हैं॥

(५)

मुनिवंद्य, विश्ववंद्य, योगिराज आओ यहां।
देखो जग मध्य आप छाया क्या अंधेरा है॥
मानव मनोंमें बहु तिलके समान तेल।
उसी भांति किया अब पापने बसेरा है॥
अज्ञान-रात्रिका नित बढ़ना साम्राज्य महा।
विस्मय महान नहीं ज्ञानका सवेरा है॥
जगत-समुद्र बीच तारिये हमें हे ईश।
अटल भरोसा पूर्ण आज एक तेरा है॥

(६)

होते अटवीमें ध्यान लीन जब आप योगी।
स्थाणु जान मृग निज खाजको खुजाते थे॥
देख शांति मुद्रा मृगराज क्रूर भाव तजे।
वैरी वैर जन्मका समस्त भूल जाते थे॥
आता उपसर्ग यदि दैव वश आप पर।
पा करके क्लेश नहीं लेश अकुलाते थे॥
ऐसे ऋषिराजके पदारविन्दमें अनेक।
मानव सप्रेम निज शीशको नवाते थे॥

(७)

वन पशु-पक्षिवृन्द मानके तुम्हें ही निजी।
निकट निशङ्क निर्भीक बैठ जाते थे॥
सुधा भरा शांत उपदेश सुननेके लिये।
चित्त लालसाको निज कृत्यमें दिखाते थे॥
जान दुखिया भी उन्हें घोर भव काननमें।
आननसे आप उपदेशको सुनाते थे॥
शशीकी किरण सम वचन आल्हादकारी।
सुना आप प्राणियोंको पंथमें लगाते थे॥

समस्या-पूर्ति।*

परम समाधि धार अन्धकारको निवार,
चार चतुरंग चक्रचूर कर डारे हैं।
ज्ञान-पर ध्यान धर केवलिज्ञान-भान,
उदित भये ही तीनों जगत निहारे हैं॥
ध्यान ध्येय ध्याता ज्ञान ज्ञेय अरु ज्ञाता गुण,
गुणी पर्याय सब भेद निनिवारे हैं।
वीर आत्म-सूर्य-जोतिमय जब ऐसे भये,
"नभ नाहिं मेघ निशि चंद्र है न तारे हैं॥"

—शोभाचन्द्र भारिल्ल न्यायतीर्थ।

* जैनमित्र मण्डल देहलीमें महावीरजयन्ती समय किये हुए कवि सम्मेलनमें पठित।

प्रचलित जैन सम्वत् शुद्ध व सही है।

(लेखक—श्री० भोलानाथ दरखशा जैन कवि, बुलन्दशहर।)

आधुनिक विद्वानोंके लेखोंमें कतीप प्रचलित वीर निर्वाण सम्वत और विक्रम सम्वतके विषयमें संदेह प्रकट किया जाता है। श्री महावीरस्वामी हमारे अंतिम तीर्थंकर थे और विक्रमादित्य जैन धर्मानुयायी मालव देशके एक लोकप्रसिद्ध तथा प्रभावशाली सम्राट होगये हैं। इन दोनों हीके सम्वतोंमें जैन जाति और जैन शासक गौरवान्वित हैं। इन सम्वतोंके परमावश्यकीय विषयका संदिग्ध अवस्थामें अनिश्चित रहना हमारे लिये लज्जाकी बात है। इस विचारसे ही इस विषयकी विवेचना की जाती है।

वीर सम्वतकी अयथार्थताके प्रमाण प्रायः दो दिये जाते हैं—एक यह कि बौद्ध जनता महात्मा बुद्धके परिनिर्वाणका समय ईसासे ५४३ वर्ष पूर्व मानती है। जो कि सर्वमान्य मत यह है कि भ० महावीरका निर्वाण म० बुद्धसे पूर्व होचुका था। वीर निर्वाणका समय कुछ नहीं तो २ वर्ष पूर्व तथा ५४५ वर्ष ईसासे पूर्व अवश्य समझना चाहिये परन्तु उनका ५२७ वर्ष पूर्व माना जाता है जो अशुद्ध है और इस हिसाबसे उन विद्वानोंकी अनुमतिके अनुसार प्रचलित वीर नि० सम्वतमें १८ वर्ष और जोड़ देने चाहिये। दूसरा प्रमाण यह दिया जाता है कि विक्रमप्रबन्ध नामक ग्रन्थमें वीर निर्वाण और विक्रम जन्मके मध्य ४७० वर्षका अंतर दिया गया है वह गाथा इस प्रकार है--

सत्तरिचदुसद जुत्तो जिणकाले विक्कमो हवइ जम्मो।
अठ वरस बालकीला, सोडसवासेहिं भम्मये देसो॥
रसपण वीसा रज्जो कुणंति मिच्छोपदेससंजुतो।
चालीस वरस जिणवर धम्मं पालेय सुरपय लहियं॥

अर्थात्—महावीर भगवानकी मुक्ति प्राप्तिसे ४७० वर्ष पश्चात् विक्रमका जन्म हुआ उसके आठ वर्ष बाल क्रीडामें, १६ वर्ष देशाटनमें व्यतीत हुये। वह २१ वर्ष अन्य धर्मावलम्बी रहा और ४० वर्ष पर्यंत जैनधर्मका पालन करके स्वर्ग पदको प्राप्त होगया।

यह अनुमान लगाकर कि विक्रम महाराजका १८ वर्षकी अवस्थामें राज्याभिषेक हुआ और तब हीसे उनका सम्वत् चालू है, वीर निर्वाण और प्रचलित विक्रम सम्वतमें ४७० की जगह ४८८ वर्षका अन्तर होना चाहिये। इस हिसाबसे भी प्रचलित वीर स० में १८ वर्ष और जोड़नेकी आवश्यक्ता है। जिन उपरोक्त प्रमाणोंपर विद्वानोंने यह अनुमति प्रकट की है और प्रचलित सम्वतोंकी यथार्थताको संदेहका ग्रास बनाया है वह स्पष्टतः दुर्बलाधारपर ही निर्भर है। मालूम होता है कि उन्होंने कुछ गहरी खोज नहीं की, बल्कि बाह्यदृष्टिसे ही इस अत्यावश्यक विषयको शंकास्पद कर देनेमें ही उन्होंने अपनी मान्यता समझी।

म० बुद्धके परिनिर्वाणका कोई सम्वत चालू नहीं है जिससे कोई तुलना की जासके। उनके दिवंगत होनेकी तिथिकी पाश्चात्य विद्वानोंने पूर्ण गवेषणा की है। मि० स्मिथ साहबने (जिन्होंने पहिले म० बुद्धके निर्वाणका समय ईसासे ५४३ पूर्व दिया था) स्वरचित भारत इतिहासकी तीसरी आवृत्तिके ३३ पृष्ठपर म० बुद्धका परिनिर्वाण ईसासे ४८७वर्ष पूर्व लिखा है और मि० फरगुसनने ४८१ वर्ष, मि० किंगहमने ४७८ वर्ष, मि० मेक्समूलर तथा मि० वेनरजीने ४७७ वर्ष, डॉ० व्हीलर तथा डा० तुकाराम कृष्ण लाडूने ४८३वर्ष निश्चय किया है। अतः इतिहास वेत्ताओंकी बहुसम्मतिसे अब म० बुद्धका जन्म ५६३ वर्ष ई० पू० और निर्वाण ४८३ वर्ष ई० पू० निश्चय होगया है। जिससे मालूम होता है कि म० महावीरके निर्वाणके समय म० बुद्धकी अवस्था २६ वर्षकी थी और उनको उस समयतक बोधज्ञान भी प्राप्त नहीं हुवा था। इन दोनों महापुरुषोंके निर्वाणमें ४४ वर्षका अंतर सिद्ध होता है।

म० बुद्धके निर्वाण समय सम्बंधी किम्वदंतियोंके आधारपर वीर नि० सम्वतको अयथार्थ कहना नितान्त निर्मूल है। इसके अतिरिक्त जब म० बुद्धका निर्वाण समय ही अनिश्चित और संदिग्ध है तो वह वीर नि० सं०को निश्चयात्मक करनेके लिये किसी रीतिसे प्रमाणरूप उपस्थित नहीं किया जासकता।

अब दूसरे प्रमाणको लीजिये। जो गाथा विक्रम प्रबंधकी ऊपर दी है उसमें कोई कम सुदृढ़ रूपसे विक्रम जीवनीका नहीं दिया। केवल यह बताया है कि वीर मुक्तिसे ४७० वर्ष पश्चात् विक्रमका जन्म हुवा। नहीं मालूम होता कि इसका अभिप्राय क्या है। विक्रम नामक व्यक्तिका शारीरिक प्रसव हुवा या राज्यासन होकर राजारूपसे विक्रमका जन्म हुवा या विक्रम सम्वतका उत्पाद हुवा सो कोई बात निश्चयरूपसे नहीं कही जासकती।

श्री देवसेनसूरिने स्वरचित "दर्शनसार"में जहा कहीं विक्रम संवत दिया है उसके साथ विशेषण रूपसे "विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स" अर्थात् विक्रमराजाके मरण पश्चात् शब्दोंका प्रयोग किया है। जैसे—

एकसये छत्तीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।
सोरट्ठे वलहीये उप्पणो सेवडो संघो॥
पत्रसये छव्वीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।
दक्खिण महुराजादो दाविडसंघो महामोहो॥
सत्तसये ते वण्णो विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।
नदयडे वरगामो कट्ठसंघो मुणेयव्वो॥

इससे ख्याल होता है कि उक्त आचार्यके मतानुसार विक्रम सवतकी गणना विशेषरूपसे विक्रम राजाकी मृत्युसे की गई है। जन्म या राज्याभिषेकके समयसे नहीं।

श्री अमितगति आचार्यने भी "सुभाषित-रत्नसंदोह" की समाप्तिपर ऐसा ही निरूपण किया है—

समारूढे पूतत्रिदशवसति विक्रमनृपे।
सहस्रे वर्षाणां प्रभवति हि पञ्चाशदधिके॥
समाप्ति पंचम्या मवति धरणी मुंजनृपतौ।
सिते पक्षे पौषेबुधहितमिदं शास्त्रमनघम्॥

इस पद्यमें आचार्यवरने स्पष्टतः लिखा है कि विक्रम राजाके स्वर्गारोहणके बाद जब

१०५०वां वर्ष बीत रहा था और राजा मुंज पृथ्वीका पालन कर रहा था उस समय पौष शुक्ला पंचमीको शास्त्र समाप्त किया। इन आचार्य महोदयने भी वि० सं० को विक्रमराजाके मरण पश्चात्से प्रचलित होना माना है। इस पद्यमें राजा मुंजके शासनका भी उल्लेख इस विषयको पूर्णरूपसे स्पष्ट कर देता है क्योंकि इतिहासज्ञोंने राजा मुंजका राजसमय प्रचलित वि० सं० के अनुसार १०४० से १०७८ तक निश्चय किया है।

पं० वामदेवने भी भाव संग्रहमें निम्नप्रकारसे श्लोक दिया है—

षट्त्रिंशे शतेऽब्दानां मृते विक्रमराजनि।
सौराष्ट्रे वल्लभीपुर्यामभूत्तत्कथ्यते मया॥

अर्थात् राजा विक्रमकी मृत्युके १३६ वर्ष पश्चात् सौराष्ट्रके वल्लभीपुरमें जो कुछ हुवा वह कहा जाता है।

प्रचलित वि० सं० की उत्पत्ति विक्रमादित्यके मरण पश्चात् होनेका समर्थन इस बातसे भी होता है कि राजा विक्रमके शासन समयके दानपत्रों, शिलालेखों तथा ग्रंथरचनाओंमें या अन्य किसी राजकीय व्यवहारमें विक्रम संवतका कहीं उल्लेख नहीं पाया जाता। यहांतक कि उनके राज्यरत्न वराहमिहिरने अपनी बृहत्संहितामें विक्रम संवत् कहीं नहीं दिया। यदि कोई संवत् विक्रमके राज्यकाल या जीवन समयमें प्रचलित हुवा होता तो उनके राज्य सदस्य अवश्य ही उसको अपनी कृतियोंमें प्रयुक्त करते।

प्रत्युत इसके वराहमिहिरने स्वरचित बृहत्संहितामें विक्रमके प्रतिपक्षियों अर्थात् शकोंका पूर्व प्रचलित संवत् दिया है। शायद उसकी यह रचना विक्रम संवत्के प्रचारसे पहिलेकी कही जासके परन्तु उस पुस्तकके अवलोकन करनेपर यह संदेह भी नहीं रहता है। वराहमिहिर जैसे दूरदर्शी राज्यरत्न विद्वान ऐसी धृष्टता कदापि नहीं कर सकते थे कि अपने स्वामीका संवत् छोड़कर राज विरोधियोंके संवत्को अपनी प्रसिद्ध रचनामें स्थान देते।

बृहत्संहिता अध्याय १३—१ के २ श्लोक इसप्रकार हैं—

एकनायकोपदेशान्नरिव यथा योजना भ्रमन्ति मघा।
यैश्चारं महर्षयो कथयिष्ये गर्गमतात॥
आसन्मघासु मुनयः शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्द्विकपंचद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च॥

कुछ वेदानुयायी सज्जनोंका यह मत है कि महाराज विक्रमके दिवंगत होनेके बाद उनके राजद्रोही शकोंके बौद्धधर्मानुयायी राजा शालिवाहनका नवीन शाका संवत् अधिक प्रचलित होगया तो उसके भुलानेके लिये इसके प्रतिपक्षियोंने उज्जयिणीमें मालव संवत्की स्थापना की उस नवीन सम्वत्का साभिप्राय विशेषण "शकारि" भी रक्खा गया क्योंकि राजा विक्रमने शकोंको पराजित किया था परन्तु शकोंके उत्कर्षकालने शकारि मालव सम्वत्के प्रचारको अधिकांशमें रोक दिया था। इसका जीवित-प्रमाण यह है कि २८१ शाका संवत् तथा (२८१+१३५=) ४१८ वर्ष विक्रम मृत्युके पश्चात्के शिलालेखसे पूर्व कहीं और स्थानमें उस मालव सम्वत्का उल्लेख नहीं पाया जाता।

राजा यशोधर्मदेवने जिसका शासन प्रचलित विक्रम संवत्के अनुसार ५८९ से ६२६ तक रहा, विक्रम राजाकी मृत्युसे ५८० वर्ष पीछे फिर शकों और हूणोंको नष्टभ्रष्ट किया और इस समर विजयके उपलक्षमें उसने विक्रमादित्यका विरुद धारण किया तो अपने पूर्वज विक्रमादित्य (शकारि) के नामसे या अपने विरुद प्रत्यय नामसे उस मालव सम्वत्का पुनरुद्धार किया। इन सब विवेचनोंसे सिद्ध होता है कि प्रचलित विक्रम सम्वतकी गणना अन्य विक्रमके स्वर्गारोहणसे की गई। विक्रम प्रबन्धमें विक्रम जन्मका अभिप्राय विक्रम सवतके उत्पादसे ठीक मालूम होता है। यदि विक्रमके देहरूपसे जन्म धारण करनेका भाव है तो भ्रमपूरित है। संभव है कि प्रबन्धमें विक्रम जन्म तिथि किसी भट्टारककी सोलहवीं शताब्दिमें लिखी हुई पट्टावलीसे उद्धृत की गई हो जो प्रायः किम्वदन्तियों या निराधार स्वनुमानोंसे लिखी गई थी और इस कारणसे वह सहसा अविश्वसनीय है। सिद्धान्त-चक्रवर्ती श्री नेमचन्द्राचार्य रचित त्रिलोकसारकी ८९०वीं गाथासे वीर सम्वतकी यथार्थता प्रमाणित होजाती है वह इसप्रकार है—

पणछस्सयवस्सं पणमासजुदं गमिय वीर णिव्वुइदो ।
सगराजो तो कक्की चदुणवतियमहिय सगमास ॥

अर्थात्—वीरनाथके मुक्ति कालसे ६०५ वर्ष ५ महीने पीछे शक राजा हुवा और उससे ३९४ वर्ष ७ मास पीछे कल्की अवतारित हुवा। यह प्रसिद्ध है कि शक महाराजके राजारूढ़ होनेसे उनका सम्वत् प्रचलित है और इस गाथाके अनुसार शक नामका व्यक्ति वीरनिर्वाणसे ६०५ वर्ष पीछे राज्य हुवा था। त्रिलोकप्रज्ञप्ति ग्रंथकी निम्न गाथासे भी इसका समर्थन होता है।

णिव्वाणे वीरजिणे छव्वाससदेसु पंचवरिसेसु ।
पणमासे सुगदेसु संजादो सगणिओ अहवा ॥

इन गाथाओंके अनुसार प्रचलित शाका संवत् और वीरनिर्वाण संवत्में ६०५ वर्ष ५ महीनेका अन्तर होना चाहिये सो ही है।

कल्कीके होनेके विषयमें उक्ताचार्यने गाथा ८५७ दी है—

इदि पडि सहस्स वस्सं वीसे कक्कीण दिक मे चरिमो ।
जल मथणो भविस्सदि कक्कीसम्मग्ग मत्थणओ ॥

अर्थात्—इस प्रकार प्रत्येक सहस्र वर्षमें एक कल्की होता है ऐसे बीस होचुके। अब जलमंथन नामका कल्की भविष्यमें सन्मार्गको मंथन करनेवाला होगा।

इस पहली गाथाका अर्थ और भी स्पष्ट हो जाता है कि वीरनिर्वाणसे ६०५ वर्ष ५ महीने पीछे शक राजा हुवा और तत्पश्चात् ३९४ वर्ष ७ मास पीछे कल्की हुवा अर्थात वीरनिर्वाणसे १००० वर्ष पीछे कल्की हुवा।

इन सब उद्धृत प्रमाणोंसे शाका प्रचलित सम्वत् निःशंकित है चाहे वह शक व्यक्तिके जन्मसे चालू हुवा हो या उसके राज्याभिषेकसे, यह विषय विवादास्पद नहीं है अतः उसकी गणनाके अनुसार प्रचलित वीर नि० सं० भी शुद्ध और सही है उसकी यथार्थतापर शंका करना केवल भ्रम पूरित प्रयास मात्र है तथा विक्रमाब्दिको अविश्वस्त प्रतिपादन करना भी नितांत निर्मूल है।

वीर बोनापार्टकी मां सच्ची मां थी। उसकी गर्भ-अवस्था वीरता एवं धर्म-नीतिके भावोंसे भरी थी। उसने अपने पुत्रको शैशव अवस्थामें वीरताकी शिक्षा, वीरताके भावोंसे भरी कहानियां सुनाकर दी थी, तभी तो उसका पुत्र-रत्न (बोनापार्ट) सच्चा वीररत्न हुआ जिसने फ्रांस तथा सारी इंग्लैंडमें अपने बलसे राज्य स्थापित कर लिया।

बोनापार्टकी मां हमारी आधुनिक माताओं सरीखी सन्तानको जूजू और हौवा एवं बाबा और भूतादिकका भय बताकर उसे कायर बनानेवाली नहीं थी! प्रायः अनन्त माताएं ऐसी हैं जो अपनी सन्तानको हौवा आदिका भय बताकर डरपोक बनाती हैं।

माताकी दी हुई शिक्षा अन्तमें मजबूती पकड़ जाती है। इसलिए अच्छी व खराब शिक्षाकी देनेवाली प्रायः माता है। माता चाहे तो सन्तानको योग्य बना सकती है चाहे तो अयोग्य, यह सब उसीके अधिकारमें है।

पुत्रको सुयोग्य बनानेकी शिक्षा मांद्वारा मांके गर्भस्थ कालमें ही शुरू होती है। गर्भकालमें माताके जैसे भाव रहेंगे उनके ही अनुसार संतानका संस्कार होगा। इसलिए प्रत्येक मांका यह पहिला फर्ज है कि वह अपने गर्भकालके शुरूसे आखरी तक अपने परिणाम ठीक रक्खे क्योंकि माताके परिणामोंका असर गर्भस्थ बालकपर अवश्य पड़ता है। अगर गर्भकालमें माताके परिणाम धर्मरूप हैं तो निश्चय रक्खो सन्तान धर्मात्मा होगी और पापरूप हैं तो पापी होगी।

सन्तानकी शैशव अवस्थामें मांका सावधान रहना अत्यन्त आवश्यकीय है। शैशव कालमें माताको चाहिये कि वह बालकके पालनपोषणमें सदैव तत्पर रहे तथा उसे बीमारियोंके चुंगलसे बचावे। इसके लिये आप ऐसे पदार्थोंका सेवन न करे जिससे उसका दुग्ध विकारी हो बालकको बीमार बनानेका कारण बन जावे। बहुतसी मूर्ख माताएं विकारी पदार्थोंको खाकर बालकको बीमार बना देती हैं जिसका परिणाम यहांतक होता है कि उनकी गोदसे बालक चल बसता है तब तो यही "अब पछिताए होत क्या चिड़ियां चुग गईं खेत" कहावत उनपर लागू होजाती है। बहुतसी माताएं बालकको अफीम खिलाकर उसकी बुद्धिको नाश करती हैं। माताएं बालकोंको अफीम क्यों खिलाती हैं? इसका उत्तर सिर्फ यही है कि इसमें उनका स्वार्थ सिद्ध होता है याने रोता हुआ बालक, जागता हुआ बालक और खेलता हुआ बालक अफीमके नशेमें घूमने लगता है और उसी वक्त निन्द्रादेवीकी गोदमें केल करने लगता है जिससे उनको अपने कार्य सम्पादनमें कोई विघ्न नहीं आता। ऐसी माता यह नहीं विचारती कि जब मादक वस्तुओंका सेवन युवक जवान और बूढ़ों तथा मनुष्य मात्रको हानिकारक बताकर उनसे बचनेका उपदेश विद्वानोंने बताया है तो फिर शिशु जोकि बिलकुल ही नरम हृदय एवं बुद्धिवाला है उसे क्योंकर हितकर होगा? माताओंकी इस मूर्खतापर अत्यन्त दुःख होता है इसीसे तो कहता हूं कि स्त्रीसमाज पढ़ी होना चाहिये। अपढ़ स्त्रियां माता बननेकी हकदार नहीं हैं।

अशिक्षित मां पुत्रको हठी, अभिमानी, झूठा, असत्य बोलनेवाला, चोरी करनेवाला, क्रोध करनेवाला आदि दुर्गुण सिखा देती है। पुत्र जब किसी खास बातके वास्ते रीझ जाता अर्थात् मचल जाता है तो अशिक्षित मां उसे धमकाती, मारती और गाली देने लगती है लेकिन उनके बालकको मिष्ट शब्दों एवं उदाहरणों द्वारा हल करनेका उपाय नहीं करती। पुत्रको मां गाली देकर गाली सिखाती है, गुस्सा एवं क्रोध करके क्रोध करना सिखाती है और झूठ बोलकर झूठ बोलना सिखाती है आदि दुर्गुणोंको पुत्र मांके सिखानेपर ही सीखता है।

लेकिन शिक्षित मां अपनी सन्तानके सुधारक शब्दोंको भली प्रकार जानती है अतएव वह उसे सभी बातोंमें योग्य बनानेका प्रयत्न करती है।

सच्ची मां समझती है कि सन्तानको छोटी उम्रमें विवाहना उसकी आत्मिक एवं बाह्य शक्तियोंको नष्ट करना है इसलिए उसे वह पहिले विद्या पढ़ाती है याने लौकिक एवं धार्मिक विद्या ज्ञाता बनाती है और प्रौढ़ अवस्थामें उसे विवाहती है। सच्ची मां पुत्रके समान पुत्रियोंको विद्याध्ययन कराती है—उन्हें मूर्ख नहीं रखती।

मां सन्तानकी सच्ची हितैषिणी होना आवश्यक है। उसे चाहिये कि वह सन्तानके सुधारमें किसी प्रकारकी कमी न रक्खे। अन्तमें मैं निवेदन करता हूं कि—प्रत्येक मां इस मेरे छोटेसे लेखका अवश्य ही अवलोकन करे।

—⋘⋙—

जैनसमाजकी वर्तमान दशा और उन्नतिके उपाय।*

ले॰ बाबू कामताप्रसादजी जैन सं॰ वीर—अलीगंज

"टपकता आह दिलमें जोश ज्यों आतिशके अंगारे।
यह सब जिसके लिये है कुछ खबर उसको नहीं प्यारे॥
यही वे वक्त है जब तो हम भी चुप बैठे हैं बेचारे।
मगर हमसे न[illegible] नहीं कहते हैं ऐ प्यारे॥
कि वह कभी करके गर्मीपाक सहराको निकलती है।
कभी घबराके फिर घरकी तरफ लाचार चलती है॥
लगी है आग जिसके शमियां जलकर पिघलती है।
गुमां करता है आहोंका धौंये मोम गलती है॥
बदनमें देखकर शोले मरकते हाथ मलती है।
भभूके तनसे उठने है पतीकी तरह जलती है॥
मानके अंग हुये सुलगते उसके जोश हैं।
यह आग बरपा है कि दिनों ही दिन सुलगती है॥
बस कहांतक हाय गम अब तो गम खाया नहीं जाता।
दिले बेताबको बातोंमें भुलाया नहीं जाता॥
कदम रखती है वह जिस जा कदम सरकाया नहीं जाता।
यह पत्थर तिलभर भी हाथसे सरकाया नहीं जाता॥
पड़ी है बदनमें रस्ता कहीं पाया नहीं जाता।
कर तदबीर क्या मुश्किलसे कुछ पेश नहीं जाता॥
फिर गुजारा किस तरह जीना हो कैसे जिन्दगी आवे।
दरोदीवारसे क्यों कर न कोई सरको टकरावे॥
लगी जो आग दिलमें फिर वह बुझने किस तरह पावे।
गजब है एक तो समझे न दिल और जी भी घबरावे॥
—इसलिये संभल जा ऐ कौम, मरनेसे मत तू घबरावे—
जमाना तेरा मुखालिफ हो रहा है।
तुझे भी खबर है कि क्या हो रहा है?

---

* स्वर्गीय श्री॰ रा॰ ब॰ दानवीर सेठ कल्याणमलजी इन्दौरकी जांच कमेटीद्वारा प्रथम नंबरपर स्वीकृत और पुरस्कृत निबन्ध।

वकीलोंसे तेरे मिला हो रहा है ।

यह क्या कर रहे हैं यह क्या होरहा है ?
यह अच्छा हुआ है वह अच्छा है देख ।

कि चरचा तेरा आ बजा हो रहा है !

हां, चरचा तेरा मानना होरहा है । तेरे घुन लगे हुये शरीरकी दवा करनेको हरकोई तैयार होरहा है । तेरे आहोजारसे जला हुआ हरएक दिल तेरे दुःखोंको दूर करनेको छटपटा रहा है । तलमलाये हुये दिलको हाथमें लेकर ज्योंही तेरी तीमारदारीके लिये तेरी रोग-शैयाके निकट वह तेरे बुलाने जाते हैं कि अपनी उत्सुकता और तीमारदारीके ढङ्गके पक्षमें मुठभेड़ हो जाते हैं—तुझे भूल जाते हैं—तेरी दशाको भूल जाते हैं । अपने रंग और अपने ढंगको सर्वतोभद्र स्थान देने और तेरे जर्जरित शरीरसे लागू करनेमें लड़ मरते हैं । कुछ तेरे कपूत, ऐसे समाज, ऐसे भी हैं जो बिल्कुल ही तेरी परवा नहीं करते और अपने स्वार्थमें रत रहते हैं तो कुछ ऐसे भी तेरे निरीह भोलेभाले परम्परीण भक्त हैं जो सब ओरसे उदासीन हुये अपनी निराली ही धुनमें मस्त हैं ।

ऐसी दशामें सच पूछे तो तेरा जीवन बड़ा सङ्कटापन्न है । और इसमें आश्चर्य नहीं जो तू उक्त प्रकार विलाप करे—प्रलाप करे—और अपने दुःखोंके आलापमें जीवन नष्ट करे ।

दुनियामें आग लगती है तो उसे बुझानेके लिये सब समझदार दौड़ते हैं । और जो नहीं दौड़ते और वहीं पासमें कुआं खोदने लगते हैं उन्हें उनके पड़ोसी बिल्कुल पागल ही कहते हैं । परन्तु समाज ! आज तेरे लाड़ले इन दोनों-नीति कार्योंकी उपेक्षा करके तेरे जलते हुये शरीरपर घी छिड़क रहे हैं ! अब कहो हम इन्हें क्या कहें ? क्या यह तेरे सपूत हैं ? क्या यह तेरे ही लाल हैं ? हाय ! जिनको दुनिया आसरा, भरोसा, जीवनका सहारा समझती है वही जब तेरे जलते शरीरको देखकर ताण्डव नृत्य नाचते हैं और उसपर भरभर कटोरा घी डालते हैं, तो फिर तेरा कहां ठिकाना ? तेरे जीवनकी कहां आश ! वह तो मृत्यु-भंवरमें पड़ा मंडरा रहा है । और वह इस ढंगसे भरमा भरमाके तड़फा तड़फाके ऊपर नीचे झटका झटकाके उसको निस्तेज—बिल्कुल निर्जीव कर रहे हैं कि यह देखकर स्वयं निष्ठुरताके भी नेत्रोंसे अश्रुओंकी झड़ी लग सकी है । तेरी इस दयाई दशामें हम तो वर्तमान जीवनपर एक दृष्टि डालनेका साहस करते हैं और उसे तेरे लाड़ले बिगड़े दिल दुलारोंके समक्ष रखते हैं । मस्तकी आभा और विश्वासकी रेख ऐसा करनेमें यही है कि तेरी दुःखपूर्ण गाथा—करुणाजनक स्थिति उनके होश ठिकाने कर दे । उन्हें वस्तुस्थिति देखनेके लिये बाध्य कर दे । जिससे तेरा कल्याण और उनका उद्धार होसके ।

जैनसमाजके वर्तमान बाह्य शरीरपर दृष्टि डालते ही हमें उसके दो विशाल अंग दिगम्बर और श्वेताम्बर दृष्टि पड़ते हैं । यह दोनों अंग इस समाज रूपी समूचे शरीरमें कबसे हैं यह इतिहाससम्बद्ध बात है । इसलिये उसके विषयमें अधिक कुछ न लिखकर इतना ही लिखना पर्याप्त है कि भगवान महावीरके तीर्थ-संघमें यह दो भेद ईसाकी प्रथम शताब्दिमें हुये थे ।

[illegible] ही आपसमें इन दोनोंके मतभिन्नता अवश्य थी, क्योंकि दोनों सम्प्रदायके शास्त्र इस विषयमें पूर्ण साक्षी हैं। परन्तु यह मतभिन्नता क्या द्वेष रूपमें थी? इस प्रश्नके उत्तरमें हमें अवश्य ही कहना होगा कि वह द्वेषरूप नहीं थी। यदि वह विद्वेषरूप होती तो यह कभी संभव नहीं था कि वह एक ही समान दोनोंको पूज्य तीर्थस्थानों और मंदिरोंमें या तो श्वेतांबरोंका ही प्रबन्ध हो या श्वेताम्बर मूर्तियोंके साथ २ दिगम्बर मूर्तियां हो। यही नहीं कतिपय दिगम्बर शास्त्र भंडारोंमें मुझे श्वेतांबर ग्रन्थ भी मिले हैं। कतिपय श्वेतांबर प्रतियां तो दिगम्बर रचनाओंके साथ २ लिपिबद्ध हैं। यह शास्त्रीय सम्मिलन हमें उस समयके परस्पर प्रेमके दिग्दर्शन कराते हैं यद्यपि विचार विभिन्नता दोनों सम्प्रदायोंमें उस समय भी अबसे कुछ कम न थी। परन्तु समयके साथ यह प्रेम लुप्त होता गया।

भारतमें जो उच्च भाव परस्पर राष्ट्रीयताके ईसाकी प्रथम शताब्दियोंमें व्याप्त थे वह मध्यकालमें शंकराचार्य प्रभृति कट्टर स्वमत पक्षपातियोंके आन्दोलनसे करीब २ बिल्कुल ही नष्ट सरीखे होगये। और रहे सहे जो कुछ थे वह ब्रिटिश राज्यके स्थापित होनेके समय मिट्टीमें मिल गये। सारा वातावरण स्वार्थपरतामें लिप्त होगया। और यह मानी हुई बात है कि जहां स्वार्थका प्राबल्य होता है वहीं अनर्थ और अनाचार, ईर्षा और द्वेष अपना साम्राज्य जमा लेते हैं। भारतवर्षमें यही हुआ था, यह इतिहाससिद्ध बात है। उधर जैनसमाज भारतके इन परिवर्तनोंसे बची नहीं रह सकती थी। उसपर भी इनका विषद प्रभाव पड़ा बल्कि एक रीतिसे उसहीको सबसे अधिक परिणाम तत्कालीन दशाका भोगना पड़ा। क्योंकि उस समय इसकी दशा अबसे कहीं अच्छी और समृद्धशाली थी। इस कारण उस उलटफेरमें उस हीकी ओर सबकी दृष्टि जाती होगी और उसके व्यक्ति अपनी अपनी रक्षामें संलग्न हो धार्मिक सिद्धांतोंको पालन करनेमें असमर्थ रहे होंगे। अपनी सन्तानमें वह पारस्परीण वात्सल्यके संस्कार नहीं डाल सके होंगे। जिससे स्वयं संस्कारित हुये थे। उस समय उनको एक मात्र अपनी, अपने संतान और धन—सम्पत्तिकी ही रक्षाकी फिकर रही होगी। जिसका ही परिणाम आज यहि दृष्टि पड़ रहा है कि जो दोनों सम्प्रदाय बिना किसी आपसी विद्वेषके जीवन-यापन कर रही थीं वही आज परस्परमें तुले हुये शत्रु बन रहे हैं। एक ही धर्मवाले, एक ही महान् उत्कृष्ट आत्माके उपासक आज परस्परमें लड़ झगड़ रहे हैं। प्रसंगवश यहांपर हम पाठकोंको यह भी बतला देना चाहते हैं कि जिस संकटापन्न दशामें भारतके साथ २ जैन समाजके दोनों अंग में विद्वेष विष फैल रहा था, उस ही समयमें जैनजातिके दिगम्बर सम्प्रदायकी अनुयायी व्यक्तियोंमें और भी आपसी प्रतिभेद पड़ रहे थे। उस प्रतिभेदके बढ़ानेमें भट्टारकगण ही विशेषरूपसे सहायक थे, क्योंकि वह अपने २ अनुयायियोंको अलग संज्ञा देते थे। करीब २

रूप ही अंकित उल्लेखित पहाड़ोंकी पंक्तियोंके साथ२ "खंडेलवाले" अथवा "बघेरवाले" शब्द मिलता है। अन्तमें जब वह शिथिल होगये तो एक२ जातियोंके कई भेद होगये, क्योंकि वह उनकी व्यवस्था करनेमें असमर्थ थे और गृहस्थोंमें अज्ञान और स्वार्थकी मात्रा बढ़ गई थी। इसके पहिले उनके सत्ताकालमें मालूम होता है कि भारतके मध्यकालीन राजकीय परिवर्तनमें जो क्षत्रिय जातियां राज्यभ्रष्ट होती गईं वही क्षत्रिय वृत्तिको त्यागकर अपनी आजीविका वैश्यवृत्ति द्वारा करती गईं, जिसके परिणाम स्वरूप वे वैश्य होगये, अधिकांश ऐसी ही जातियां हमको आज दिखाई पड़ रही हैं, यद्यपि मूल वैश्य वर्णकी भी जातियां अवश्य ही कतिपय होंगी। जिस प्रकार अलग २ क्षत्रिय वंशके वह थे उस ही प्रकार उनकी अलग २ जातियां बन गईं वही सब जातियां फिर आगाड़ी चलकर देशभेद, रीतिभेद और मतभेदके कारण और भी विभाजित होती चली गईं।

जिसप्रकार हरिवंशसे उत्पन्न हुई लम्बकंचुक (लमेचू) जातिमें अब कई भेद होगये हैं। जो पहिले उनके गोत्र थे वह अब स्वतंत्र जातियां बनी हुई हैं। ऐसे ही गोलालारे अथवा गोला-पूर्व अपनेको इक्ष्वाकुवंशसे उद्भूत हुये प्रगट करते हैं। कतिपय लेखोंसे भी इसकी पुष्टि होती है। इन्हींका एक गोत्र आज खरौआ जाति बनी हुई है। सारांश यह है कि समयके अनुसार जिसप्रकार मनुष्योंमें पारस्परिक विचार स्वातंत्र्य कम होता गया और वह प्राकृतिक बातोंको देखनेमें असमर्थ होते गये उसी तरह उनमें स्वार्थ और संकोचकी मात्रा तथा आपसी कल-हप्रियता बढ़ती गई। जिसके ही फलस्वरूप आज अनेक जातियां दृष्टि पड़ रही हैं। हां! इस विषयमें इतनी बात अवश्य विचारणीय है कि उस उपाध्यायकी पुष्टिमें लेखकको जो कुछ प्रतिमा लेख व यंत्रलेखादि मिले हैं वह ईसाकी १२वीं शताब्दिके इधरके ही हैं। इसके पहिलेके उसके देखनेमें अभीतक नहीं आये हैं। इस विषयका पूर्णोल्लेख यहांपर करना दुष्कर है। इसके लिये तो पाठकोंको वर्तमान लेखककी प्रगट हुई "प्राचीन जैन लेख संग्रह" नामक पुस्तक देखनी चाहिये।

हां! तो हम देख चुके हैं कि आजकल जैन जातिके दो मोटे अंगोंमें परस्पर विद्वेषकी अग्नि जोरोंपर धधक रही है। जो तीर्थक्षेत्र पुण्यबंध और कर्मक्षयके कारण होना चाहिये वे अब आपसी विद्वेष और कर्मबंधके कारण बनरहे हैं। लाखों रुपया पानीकी तरह इनके नामपर दोनों सम्प्रदायोंका नष्ट होचुका है। इस शोचनीय दशाको देखकर जैनोद्धारक धर्मवत्सल श्री० बा० चंपतरायजी बार-एट-लाने महान् कष्ट सहनकर इस संबंधमें एक मुख्य केसका फैसला बिल्कुल न्याय संगत ढंगसे करा दिया है। परन्तु दुःख है कि उसपर भी उभय पक्षोंको संतोष नहीं है। सबसे बड़ा कांटा जातीय ह्रासमें यही है।

अब आगाड़ी चलकर यदि हम दिगम्बर संप्रदायकी ओर लक्ष्य करते हैं, जिसके विषयमें ही पूर्ण जानकारी प्राप्त करनेके लिये शायद यह निबंध लिखाया जारहा है, यद्यपि इसका खुलासा

जिनमतके चोटिसमें नहीं किया गया है, तो हमें दिगम्बर-श्वेताम्बर प्रभेद बनाये कुछ कम हठ-ग्राहके दर्शन यहां नहीं होते ।

दिगम्बर जैन समाजपर दृष्टि दौड़ाते ही हमें उसमें पहिले हीसे स्थित तेरापन्थ, बीसपन्थ आदि भेद दिखलाई पड़ते हैं। परन्तु वह समय-प्रभावके अनुरूपमें नष्ट प्रायः हो चुके हैं, यद्यपि कतिपय विद्वान् कभी २ उनका पक्ष लेकर बेसुरा राग आलापने लगते हैं । इनके अतिरिक्त समाजमें पारस्परिक उन्नतिमें बाधक अनेक जातियां हैं, जो किस प्रकार स्वार्थ और संकोच भावोंकर अस्तित्वमें आई हैं यह हम पहिले ही देख चुके हैं । यह अग्रवाल, खंडेलवाल, परवार आदि उपजातियोंमें विभक्त दिगम्बर समाज एकत्वरूपमें कोई भी कार्य करनेको इस समय समर्थ नहीं है, क्योंकि इन जातियोंके मनुष्योंमें अपनी जातीय पक्षकी मात्रा बढ़ जाती है और उसमें वह समूचे "जैनत्व" को भूल जाते हैं । इसलिये जातियोंमें परस्पर ऊंच नीचका भेद—डाह और अप्रेम फैल रहा है । इसका परिणाम मनुष्योंके चारित्रोंपर यह पड़ता है कि वह अप्रेम, द्वेष और झगड़ेकी प्रतिमूर्ति ही होते जाते हैं, क्योंकि यह मानी हुई बात है कि संस्कारों—व्यवहारोंका प्रभाव चारित्रपर पड़ता है । Deeds must have their reaction on character इस सबका फल यह होरहा है कि दिगम्बर समाजमें अज्ञानका साम्राज्य कायम है और ईर्ष्या, द्वेष और डाह मनोमालिन्यका बाजार गरम है । समाजरूपी शरीर इस अग्निसे धधक धधककर जल रहा है ।

इस दृष्टिकी उपेक्षा करके अब हम उसको उसकी वर्तमान प्रगतिके ढंगसे देखते हैं तो उस (दि० समाज) के शरीरको एक मोटी रेखासे दो भागोंमें बटा हुआ पाते हैं। इन दो भागोंको हम (१) ग्रामीण परम्परा भक्त (Masses) और (२) शिक्षित नवयुगी, संज्ञा देंगे । ग्रामीण परम्परा भक्त विभागकी संख्या बहुधा करके हमें ग्रामों और कस्बोंमें ही मिलेगी, जब कि दूसरे विभागके लोग अधिकतर शहरोंमें ही पाये जायगें । ग्रामीण परम्पराभक्त विभागकी प्रगति धार्मिक आचरणोंमें किसी अंशमें दूसरे विभागसे अच्छी है । वह अपने पूर्वजोंके ढंगसे धार्मिक कर्मोंका यथावश्य पालन करते हैं, यद्यपि वे उसके अर्थ और महत्वसे पूर्णतया वाकिफ नहीं होते हैं । यही कारण है कि अब उनमें भी इस धार्मिक प्रवृत्तिकी ओर शिथिलता घुसती जाती है । उनमें भी हमें पूजन प्रक्षाल तकके लिये "नारिया" रखनेकी आवाज सुनाई पड़ती है । उनका जातीय और पारस्परिक व्यवहारिक मूल-ता बना पूर्ण कट्टरताको लिये पक्षपात और मानपर अवलम्बित है । इसका कारण उनको उत्तरदायित्वमें मिले साम्प्रदायिक कट्टरताके भाव ही हैं जिनका उल्लेख हम कर चुके हैं । इनके वशीभूत हुए यह आपसमें प्रेमसे नहीं रह सके हैं ।

आजकलमें गऊशार्दूलवत् प्रेम होता है यह अब केवल शास्त्रीय व्याख्या ही है । यह पहिले ही जातीय पक्षपातमें अंधे हुये मिलते हैं । फिर इन्हें अपनी शान और अपने मानका भूत आ लगता है । इस कारण यह आपसमें लड़ मरते हैं । यही कारण है कि हमें करीब २ प्रत्येक

ग्राममें और प्रत्येक शहरमें दलबन्दी और धड़ेबाजी मिलती है। इस पारस्परिक मनोमालिन्यसे यह भाव समाजमें आने ही नहीं पाते जो वह प्रेमसे साथ रह सकें और कोई कार्य कर सकें। मुझे ऐसे कुलोंका—एक ही जातिके-पता है जो वृथा ही एक दूसरेके कट्टर विरोधी हैं। और उस विरोधसे वह अपनी संतानको भी वाकिफ करते जाते हैं। इसका परिणाम यह है कि उस ग्राममें कोई भी कार्य परस्पर सहयोगसे करना दुष्कर होरहा है। इसके अतिरिक्त दलबंदियोंका कारण मुख्यतः धार्मिक और लौकिक ज्ञानकी कमताई भी है। उनमें न वह धार्मिक प्रवृत्तियां पाई जाती हैं जो उनके पूर्वजोंमें थी और न उचित दर्जेका लौकिक ज्ञान ही उनमें है। फलतः वह धर्म, अर्थ काम पुरुषार्थोंका पालन यथोचित रीतिसे नहीं कर सके हैं जिसके परिणाममें समाजमें अनेकों अनर्थ होते हैं। तीनों ही पुरुषार्थोंकी छीछालेदर होरही है। जिसमें बहुधा काम पुरुषार्थको ही लेकर इस विभागमें आपसी धड़े बन जाते हैं, जो एक दूसरेके कट्टर द्वेषी-शत्रु होजाते हैं। इस ही विभागमें कुछ ऐसे परस्पराण अन्ध विश्वास भी घर किये हुये है कि जिनसे सामाजिक कुप्रथायें बलवती होरही हैं। स्त्रियोंको हेय दृष्टिसे देखना, उनको छोटीसी उमरमें ही (अपनेसे अलग करनेके लिये बहुधा) विवाह देना, अथवा रुपये लेकर बेच देना, विधवाओंको दासीसे भी बदतर समझना, उनको धार्मिक ज्ञान तक भी न होने देना, लड़कोंको उच्च प्रकारकी धार्मिक वा लौकिक शिक्षा दिलानेके विरोधी होना, थोड़ा पढ़ाकर दुकानदारीमें डाल देना और विवाह कराके गृहस्थीमें जूटा देना आदि झूठे अज्ञान दि० समाजकी उन्नतिमें बाधक होरहे हैं।

अब जब हम उसके दूसरे अंगकी ओर दृष्टिपात करते हैं तो वहां भी वही बेढंगा ढंग पाते हैं। हमने उनको नवयुगी शिक्षित समुदायकी संज्ञा दी है परन्तु वह अपने ग्रामीण भाइयोंसे किसी बातमें पिछड़े हुये नहीं हैं। धार्मिक प्रवृत्तिमें ले लीजिये तो बहुत कम ही महानुभाव ऐसे मिलेंगे जो श्रावकोंके षटावश्यकोंका पालन करते हों। अपनेको विद्वान समझनेवाले तथा पंडितगण तो शायद वर्षभरमें एकबार इन कर्मोंको करके ही छुट्टी पालेते हैं। जब षटावश्यकोंके पालनकी ही यह नौबत है तब पंच अणुव्रतोंका पालन समाजमें होता होगा यह आशा करना तो दुराशा मात्र है। यही कारण है कि शिक्षित होनेपर भी इस अंगमें भी वह धार्मिक भाव और आचरण नहीं है जो एक जैनीमें होना चाहिये। यह अंग भी उस ही अवेमेंसे निकला है जिसमें कि पहिला अंग अथवा भाग संमिलित है। अतएव इनका भी आचरण और पारस्परिक व्यवहार बहुत कम ही उदार सरल और प्रेमपूर्ण पाया जाता है। आपसी मनोमालिन्यकी मात्रा इन्होंमें भी खूब अड्डा जमाये हुये है, यही कारण है कि यह भी अपनेको कई भागोंमें बांटे हुये हैं। एक दृष्टि दौड़ाते ही हमें इनके तीन रूप दिखाई देते हैं। (१) पंडित अथवा स्थिति-

(१) बाबू अथवा सुधारक सम्प्रदाय (२) पंडित अथवा सुधारक Newter और तीसरी नहीं है कि यही तीनों शक्तियां समाजकी बागडोर अपने हाथोंमें थामे रखनेका दम भरती हैं और इस हीके लिये आपसमें खूब लड़ती झगड़ती हैं। इनकी वर्तमान स्थितिसे हम इनका रूप (१) अग्नि (२) पानी और (३) घीसे देखें। इन तीनोंका मेल होना वर्तमान परिस्थितिमें बड़ा कठिन होरहा है।

उनका स्वभाव एक दूसरेके विभिन्न होरहा है। पंडितदल बहुधा ग्रामीण सामान्य स्थितिके संकीर्ण कुलोंमेंसे आकर समाजकी ओरसे स्थापित विद्यालयोंमें विद्याध्ययन करते हैं, वहां उनकी शिक्षा दीक्षा १६ वीं शताब्दिके ढंगसे की जाती है। धर्मग्रंथों अथवा अन्य विषयकी, जो बहुधा तर्क शास्त्र ही होता है उनको खंडनात्मक रूपमें शिक्षा दी जाती है। जिससे उनका स्वभावसा ही कुछ ऐसा पड़ जाता है कि वह दूसरेकी बातका खंडन करनेमें ही अपना महत्व समझने लगते हैं। उनका पहिलेसे ही साम्प्रदायिक प्रभेदसे रंगा हुआ हृदय यहां आकर और भी कटुतामय भेद-विषसे भर जाता है। तिसपर उनकी शिक्षाकी रीति और संरक्षकता ऐसे आदर्शहीन मनुष्योंके हाथमें ही विशेष कर होती है कि उनका चारित्र संगठन उस प्रकारका हो ही नहीं पाता है। विद्यार्थी जीवनमें भी वह आपसमें कलह झगड़ेको बुरा नहीं समझते। उनके विद्यार्थी जीवनमें कोई भी ऐसा कार्यक्रम नहीं है जो उनको परस्पर सहयोगिताका महत्व दर्शा सके। इस ही रंगसे रंगे हुये वह जीवन संग्राममें आते हैं और उसमें भी वह उस ही नीतिका पालन करते हैं, जिससे परस्परमें कलह ही बढ़ती है। उधर बाबू लोग आजकलके सरकारी वा Aided शिक्षालयोंमेंसे शिक्षा पा करके निकलते हैं जिनमें बहुधा जैनधर्मके ज्ञानसे अनभिज्ञ ही होते हैं, यद्यपि जैन बोर्डिंग हाउससे निकले हुए इस लाञ्छनसे मुक्त होते हैं।

लौकिक शिक्षालयोंमें इतना तो अवश्य है कि वह परस्परमें भेदभावको बहुत कुछ भूल जाते हैं और परस्परमें सहयोग करनेका महत्व समझ जाते हैं। वहांसे उन्हें यह जोश सवार हो जाता है कि हम भी अपनी जातिको संसारकी अन्य जातियोंकी समान कोटिमें ला रक्खें, क्योंकि वह देखते हैं कि अन्य संसार जैन जातिको उतना आदर नहीं देती जो उसको देना चाहिये तथा जैनधर्मके विषयमें उतना भी ज्ञान नहीं रखती जो स्वयं उसके लिये ही लाभप्रद हो। ऐसे भावोंसे प्रेरित होकर वह लोग समाजसेवाके लिये कर्मक्षेत्रमें आते हैं और वहांपर उनसे और पंडितोंसे मुठभेड़ हो जाती है। इसके अन्य कारणोंका उल्लेख हम महासभाका वर्णन करते हुए लिखेंगे। इस दलमें पहिले पहिल तो बहुत कम लोग समाजसेवाकी ओर लक्ष्य देते थे। परन्तु जीवके जमानेसे (महासभासे) यह विशेष रीतिसे उस ओर आकर्षित होने लगे हैं।

(अपूर्ण)



श्रीमान् पं० सुमतचन्द जैन वकील बिजनौर।

પુનર્લગ્નના પડઘા.

(લે—ચુનીલાલ વીરચંદ ગાંધી-મુંબઇ.)

આજે સત્યયુગ નથી પરંતુ કર્મ યુગ છે. વર્તમાન યુગનાં ફળ એ આપણીજ કૃતિ છે, એ યુવક અને યુવતિએ સમજી લેવું જોઇએ જેમ જેમ નતિનો નાશ થતો જાય છે, જેમ મોજ શોખમાં સ્વછંદતા, અને અતીશયતા સત્તાધીશ બનતી જાય છે, તેમ તેમ આત્માનાં પતન પણ સત્વર થતાં જાય છે.

પુનર્લગ્ન એટલે વ્યભિચાર છે—એમ કોઇ પણ નીતિવંત માનવ સમજી શકે છે આપણે એટલુંજ સમજીને કોઇપણ અપ્રમાણિક પ્રથા ઉપર ઉહાપોહ કરીએ, ઠરાવો કરીએ તો તેની કીંમત અત્યાર સુધી કંઇ અંકાઇ હોય, એમ સમજવામા નથી આવતું. સમાજે કડાનું મૂળ જોયાજ વિના જીભનું જોર ચલાવે રાખશે તો—સમાજ તેનું સારૂ ફળ મેળવવાને બદલે કડવાં ફળ મેળવે છે. તીરસ્કારથી અશાન્તિ વધે છે. અને જીત પરાજયમાં ફેરવાય છે. પંડિતો અને જનતાનો ઘણો ભાગ એમ તો જરૂર માની શકે છે કે—પુનર્લગ્નને આવકાર આપવો એ સમાજની નીતિનું ખુન કરવા બરાબર છે. હું આ માન્યતા માનવાવાળામાંનું એક છું, છતાં એટલીજ માન્યતા માનીને હું અન્યની સાથે ઝઘડા કરવામાં માનું ? અને મારી ખામીઓ, મારા ચારિત્રને વીશે ઉદાસીન રહું તો પરિણામ એ આવે કે મારે મૂર્ખતાની પોથીમાં નામ લખાવવું પડે.

આપણે તો જે દર્દ જે કારણથી ઉપસ્થિત થાય ત કારણો શોધી તેને નાબુદ કરવા માટે ડોક્ટર બનવું જોઇએ, તેમજ દરદનું દુઃખ સમજવા દરદી પણ બનવું જોઇએ. આપણી ચારિત્રતામાં કંઇ ખામી હોય તો તરત સુધારીએ. અનેરા વ્રત લઇએ તો એવો પ્રસંગ કદી ન આવે કે પુનર્લગ્નના ચર્ચા પણ કરવાની આવશ્યતા સમાજને જણાય ?

"આજે સમાજો બે જવાબદાર છે."

"આજે પંચાયતોની નીતિ કલેશમાં સળગી રહી છે"

"આજે દુઃખ . . . . દા સાભળવાને સમાજને અવકાશ ન . . . . મારે યોગ્ય માર્ગ લેવાની સમાજોને . . . .

વૃદ્ધ—વિવાહનો પ્રતિબંધ નથી તે . . . . ને બાળ વિવાહ પર અંકુશ નથી. કન્યાઓ અને માનવ જીવનની સંપૂર્ણતાની પ્રાપ્તિના સાધનો માટે બે કરપારી છે. સમાજો હજુ બે ચેવી—વિધવાઓનું પ્રમાણ ઘટાડી શકવાના માર્ગો નક્કી કરે, અને વિધવાઓની સંરક્ષણની યોજના વિના વિશે પુરી પાડે.

લગ્નની વેદી પર—આગિકા અને બાળક હોમાતાં કન્યા વધુ ભાગે મોટીજ હોય. એનું કારણ કુળવાનની અને ધનવાનની મોટાઇની હતી, કુળવાન અને ધનવાનના દીકરાઓની કન્યાનું વય વધુ ભાગે મોટુંજ હતી. કુળવાનના કુળમાં અને ધનવાનના ધનમાં કન્યાના જીવનનો ઉદ્ધાર મનાતો, આજે એ ઘટનાનો મોહ કંઇક ઓછો થતો જાય છે. સમજુવર્ગમાં અને ઘણે સ્થળે કન્યા કરતાં વરની ઉમર વધુજ જોવામાં આવે છે. અને એનું પાલન સમાજના થોડા કારકોથી થઇ શકે છે, છતાં આજે ગુણ દોષ અને ચારિત્રતા વિશે કોઇ જોવાય છે.

કુંભારને ત્યાં મટકી ખરીદનારી યુવતી અને ઘર માટે જોઇતી સામગ્રી ને વેપાર અર્થે જોઇએ માલ ખરીદનારો યુવક—ગ્રાહક અને હુન્નરીઓનું સરટીફીકેટ દુનીયાની પાસેથી મેળવવાને ભુખ તરસ વેઠીને ફાયદા પડતો ને સારો માલ ખરીદે છે. મટકીને ટકોરા મારી તપાસી તપાસી લે છે, પરંતુ—

યુવક—સ્નેહરાગી માટે—અને યુવતી પોતાનું જીવન સુકતી . . . ની પ . . . . યુવાનો જોગ બને છે, બહેરક . રહે છે, મા . . . . વડીલો સ્વાર્થતાના આછા ભાવનાઓ—લ્હાવાની લ્હાણ માને છે.

કુમારીકા કુમારીકા મટી યુવતી થવાની, સૌભાગ્યવંતી સૌભાગ્યવતી નીરંતર રહે એવું સૌ કોઇ ઇચ્છે છે, પરંતુ અશુભ કર્મ બળે એ વિધવા પણ બને છે. એ વિધવા બને તો તેનું રક્ષણ તે કરી શકશે કે કેમ? તેની આજીવિકા પુરતી મળી શકશે કે કેમ? તે પોતાની નીતિ સાચવવા સબળ છે કે કેમ? અથવા તે પોતાની જવાબદારી સમજી શકે તેને માટે ધાર્મીક શિક્ષણ અપાયું છે કે કેમ? તે સ્ત્રી અને પુરૂષ વીચારી જોશો ખરા કે? જે સમાજે સ્ત્રીઓની ઉન્નતિ, તેઓની નીતિ માટે ઉદાશીન છે, જે કુટુંબો પોતાનાજ ઘરની બાળાઓ અને વિધવાઓ પ્રત્યે ક્રૂર છે ફરજ ચુકેલ છે. તેને વિધવા વિવાહનો વિરોધ કરવા સાથે પોતાની ફરજ ભુલે તો તે અસત્ય કહેવાય (!)

સ્ત્રી શિક્ષણનો હીમાયતી, વિધવાઓના દુઃખો પર આંસુ સારનારો પછી યુવક હો યા યુવતી હો, પરંતુ તે ઉહાપોહ ન કરતાં પોતાની ફરજ મૌન રહી અદા કરશે. કદાચ સમયાનુંસાર ઉહાપોહ કરવામાં વ્યાજબી જણાશે તો તેમ કરવા છતાં–તીરસ્કારને બદલે પ્રેમને પ્રથમ સ્થાન આપશે. પરભોગ કરતા આત્મભોગ સર્વ શ્રેષ્ટ લેખશે.

જેને સત્ય શોધવું છે તેને તો કાળી અને ધોળી બંન્ને બાજુ તપાસવીજ જોઇશે. જે અંધ શ્રદ્ધાળુ છે, જે દુરાગ્રહી છે, તેજ એકજ કાને બુંટયા કરશે. અને જેને અન્યની દલીલ સાંભળવામાં પણ ઘૃણા છે, તેઓ સમાજનું સદાને માટે અહિતજ કરતા રહેવાના.

આજે ધર્મધ્વજો પોકારી કહે છે કે–પરસ્ત્રી લંપટતા છોડો, એ મહાપાપ છે. સ્ત્રી ધર્મની મહત્તા એકજ પતિ ભક્તિમાં સમાયેલી છે. આપણે એમ માનીએ છીએ કે ધર્મશાસ્ત્રોની સત્યતા અચળ રહેવાની અને જ્યાંસુધી સત્યને સત્ય તરીકે ઓળખી પરિવર્તન ન કરીએ ત્યાંસુધી મુક્તીજ નથી.

સમયાનુંસારે તમો તમારી વલણ ફેરવશો છતા તેથી ધર્મ ફરે છે, એમ કેમ કહેવાય? મનુષ્યનું આત્મબળ હણાય છે, તેની નીતિનો ભંગ થાય છે. એટલેજ એ ધર્મની શક્તિમાં શંકા લાવે છે

એ સર્વ સાચું છે, છતાં તેમ માનવાથી કે બેસી રહેવાથી પાખંડના સેવવાથી કે, તીરસ્કાર વધારવાથી, ધર્મનું રક્ષણ કરવાનો જે દાવો કરતા હોય તો તે બેવડું પાપ કરે છે. આજે આપણે હીંદની રંગભુમિ પર દ્રષ્ટિ કરીએ, અને અવલોકીએ તો...સાફ સાફ જણાઇ આવશે કે સાચી સેવા, વિના સાચા આત્મ ભોગ વિના લોકમતના ઉલટા પ્રવાહને રોકી શકતાજ નથી.

પુનર્લગ્નના અજ્ઞાન હિમાયતીઓ કહે છે કે–છુપા વ્યભીચાર કરવા, લાચાર અબળાઓના ગેરલાભ લેવા, ગર્ભપાત કરાવવા, અને કંઇ ન ફાવે તો વીષપાન કરાવી દેવાની નીર્દયતા ચલાવે છે, તેના કરતાં પુર્નલગ્નની મહત્તા ઓછી શા માટે લેખાય છે? આવા છુપા અધર્મી આડંબરીઓ પોતાને ધર્મમાં ખપાવવા સારૂ પત્નીવ્રત કે પરસ્ત્રી વ્રતના ઉપાસક ખપાવવા–સમજ્યા વગર્યા ઉહાપોહ આદરે છે.

પુર્નલગ્નના વીરોધીઓ કહે છે કે પુર્નલગ્નની પ્રથા ધર્મ વિરૂદ્ધ છે. અને તેથી હમો તેને સમંત નહી થવાના ત્યારે—

હીમાયતીઓ કહે છે કે–તમે સમત નથી થવાના એમાં હમોને વાંધો નથી, પરંતુ તમો તમારી નીતિ સુધારો, સ્વાર્થત્યાગ કરો, બાળકોને બરાબર ધર્મ લાભ–આપો, સ્ત્રીયોપયોગી શિક્ષણ આપી સ્ત્રી ધર્મનું ભાન કરાવો, અબળાઓનું રક્ષણ કરો, બાળલગ્નને વૃદ્ધ વિવાહ અને કજોડા બધ જીવનમાં સળગી જતા સંસારમાથી બાળા અને બાળિકાઓને બચાવો અને અનાથ, અશરણ, અને કુટુંબોના જુલમ નીચે કચરાતી બાળાઓના રક્ષણના જોખમદાર કાયદાઓ બાંધો.

બાળાઓ, અને બાળકો માટે જુદા જુદા બ્રહ્મચર્યાશ્રમો સ્થાપો અને તેમાં બાળાઓનુ સ્ત્રીઓદ્વારા અને બાળકોનું પુરૂષોદ્વારા બન બાળકોનુ પુરૂષોદ્વારા ચારિત્ર ઘડો.

આશ્રમોને નીભાવવા, વધુ પડતી જમણવારો

બંધ કરો, મરચું પણીના ભારમાં ખાવાનું છોડી દો, અને મોટાઇ વહોરવા માટે લગ્નમાં થતા વધુ ખરચાઓ પર કાપ મુકો, તે બચત આશ્રમમાં મોકલી આપવા કામશ ધરો. લગ્નની વરેઠી પચે તે આપવીજ પડે છે, તેવીજ રીતે મદદ કરી શકો છો.

એક એક યુવક અને યુવતીએ-વિધવાઓની નીતિ અને આજીવિકા માટે અનેરા વ્રત લેવા જોઇએ—

બોલો તમારે કબુલ છે!

આપણે એકાંતમાં બેસી ખુબ વિચાર કરી નિર્ણય કરીએ કે જે તલવારની ધાર સમાન જીવન ગુજારીએ તોજ વિધવા વિવાહનો ટીસ્ત્રો છિન્ન ભિન્ન કરી શકીએ.

જો આમા હા કહે તો-વ્રત લઇ જાહેર કરો કે વિધવાઓની ત્યાગવૃત્તિને જીવત રાખવા હમો હમારી સ્વચ્છંદતા અને મોજ શોખોને દફનાવી દેવા મગરૂર છીએ.

આજે આટલી ઉહાપોહ ને સખત વીરોધ હોવા છતાં સમાજમાં સડો વધતા જાય છે. એ સગી આંખે આપણે જોઇ રહ્યા છીએ. તમાચો મારી મો લાલ ક્યાંસુધી રાખવાના?

આ ભાવનાને ઘડીભર પુર્ણીન વીચારીએ તો સત્ય દેખાઇ આવશે કે વર્તમાન યુગ બોલવાના નથી પરંતુ પરિવર્તન કરવાનો છે. આજે આપણી નજર આગળ એવી બાળાઓ વિધવા બને છે કે જે બાળ લગ્નની, બાળ વિવાહના અધમ પ્રથાને આભારી છે. આવી પ્રથાને સદંતર બંધ કર્યા સિવાય આપણે આગળ કુચ કરીશુ તો થાકી જઇશું.

મહીનાના જેને ઉપવાસ થયા હોય છતાંએ જેના મુખપર હાસ્ય ફરકતું હોય છે, એવા ત્યાગ વૃત્તિના પુજ્ય મુનિ મહારાજને મારા નમન.

એવા તપેશ્વના હરોળમાં એકજ દીવસનો ભુખ્યો યુવક-અગર યુવતીને નીહાળીએ તો મોઢા ઉપર નરી ઉદાસીનતાજ દેખાશે.

ખાવાની વૃત્ત છે છતાં પરાણે પ્રતિષ્ઠાન સાચવી રાખવા ના, મારે જમવું નથી એવી જીદ સાચી વૃત્તિને અકમ-ચારિત્ર અને ધર્માભિમાન સિવાય ક્યાસુધી ટકી શકે?

આજે સમાજોની બેપરવાઇમા ચારિત્ર ભ્રષ્ટ થતી બાળાઓને ઝેર પીવાં પડે છે, વિધર્મીઓને ત્યાં વટલાઇ જાય છે આવી પતિત થતી અબળાઓના રક્ષણનો એકે રસ્તો નથી કર્યો છે? તેમના માટે કોઇ આશ્રયસ્થાન નિર્માણ છે?

દાખલા તરીકે-ઢેડ ભંગી એ મનુષ્યજ ન હોય તેમ પુરાણા વિચારનાઓ માની બેઠા છે. છતાં જ્યારે એ અસ્પુશ્ય કોમ હીંદુ મટી મુસલમાન કે ક્રીશ્ચીયન બની તમારે ઘેર આવે છે, ત્યારે માન પુર્વક તેને સલામી ભરીએ પરંતુ એક હીંદુ તરીકે રહેનારો, ગૌને પુજનારો એ શાક હીંદુ હીંદુ હોય ત્યાં સુધી તમારા પડછાયાને અડકવાનો પણ અધિકાર તે નથી ધરાવતો એ શોચનીય છે. વર્ણાશ્રમનો ભ્રમ એ વર્તમાન યુગને આભારી છે. તેમાંથી રક્ષણ મેળવવાની ગતિમા દંભ છે, ખોટી ઊહાપોહ છે, તિરસ્કાર છે, વેર છે. અને તેથીજ આજે હીંદનો આત્મા અધ્ધ ગતિએ ધર્મ ભ્રષ્ટ બની રહ્યો છે. ખોરની મીશનના વડાને પુછવામાં આવ્યું કે-હીંદમા ધર્મ પ્રચાર કરતા કટલો વિજય મેળવ્યો?

મીશનના વડાએ કહ્યુ કે-હીંદનો તેત્રાસ કરોડ માનવ વાણી-વર્તન-ખાવામાં-પીવામા થોડે ઘણે અંશે ભ્રષ્ટ થયો છે. અને તેથી પુરી અથવા થોડી છાપ દરેકના જીવનમાં પડી છે.

આ ઉપરથી જોઇ શકીશું કે-ઊહાપોહ કરતાં શાન્ત અવરોધ, ત્યાગ, પ્રેમ એજ વિધવા વિવાહના ખંડનની દિવ્ય શક્તિઓ છે નીતી પળાતી ના હોય ને નીતીને નામે કોઇનાં બલીદાન ન લેવાય; આજે વાણી ને કલમમા ઝેર નીતરે છે. અને મલીન ભાવનાએ બીજાને ઝેર કરવા જતાં પોતેજ ઝેર થાય છે.

દર્દનું મૂળ શોધી પછી દવા કરીએ અને કરી પાળીએ તો તેજ કરીના સંયમના શક્તી દવા કરતાં વધુ મદદ કરતા, વળી રોગને નિર્મુળ બનાવે છે.

...માં શ્રીમ ...ત મ્હેસી ...ધવા વિવાહ થયાં, તેના મુખ્ય મુખ્ય કારણો તે ઝેર હતા દૂર કરવાના લેવા જોઈતા ઉપાયો, રૂઢીના અનુ-સરણો આડરો રૂઢા વળગી રહી, બાળ વિવાહ વૃદ્ધવિવાહ અને કજોડા જેવા કુરીવાજોને કેવી રીતે પોષી રહ્યા છે, અને તેને પરિણામે સમાજના બાળકોની કેવી અજ્ઞાન દશા થાય છે. તથા વિધ-વાઓ ઉપર સીખીયા આડંબરી રીતે કેવો જુલમ ગુજરે છે, અને તે અબળાઓની કેવી શોચનીય દશા થાય છે. વીગેરે વર્ણન કર્યું. હવે વિધવા વિવાહ, એ ધર્મ વીરૂદ્ધ, અને તે સાથે વ્યવહાર વિરૂદ્ધ. જૈન સમાજ તો શું પરંતુ આખા ભાર-તની જનતા માટે સમજી શકાય તો ઝેરી ગેસ છે.

વિવાહ એ ઇંદ્રીઓની વાસના પોષવાનું સાધન નથી, પરંતુ એ એક ધાર્મિક કાર્ય છે.

લગ્નની ક્રિયા સમજ શક્તિની બાહેરની ન હોવી જોઈએ. વિવાહ કરવાના અધિકાર મા બા-પને એટલા સારૂ આપેલો છે કે—વર કન્યાનું ગુણાંગલ જોડું શોધી શકે, રૂપ, ગુણ, વિવેક, કુલીનતા, અને કેળવણી વીગેરે તેની શક્તિ વિચારી શકે, તેટલાજ માટે નાહાન બાળકોના વિવાહની જુવાબદારી માબાપોને શીરે રાખી. માબાપોએ એ જુવાબદારી પર ઓછું ધ્યાન આપી વધુ ધ્યાન તો બે બાળ કરી નાખી કાર્તિના કળશ મેળવી લેવા તરફ નાખ્યું પરિણામે આજે સંતતિ રચના કાયદો પસાર કરવાની પ્રજા અને સરકારને જરૂર લાગે છે.

અંતઃકરણની લાગણી, ભાવી પંથ—અને આત્મભોગ વિના—સાચા પંથો પર પડદા પડે છે અને વર્તમાન યુગ—મંદમંદ અતિએ—કુચ કરે છે.

સમાજો અને નાયકો વેળાસર અંદરના સડા-ઓનો નાશ કરવા બનતું કરશે. અને સૌના જીવન સરખા છે, સૌની આશા સરખી છે અને આજના યુગના સ્વતંત્રતા અમર સ્વચ્છંદને ઓળખી ...ધારક કાયદા ઘડ ...ના ...હાપીક ક ...વિધા ... ...

સમયની કદર.

(લે—જૈનમહિલારત્ન લલિતાબ્હેન, મુંબઇ)

સમય એટલે વખત, સમય એટલે આત્મા અને સમય એટલે શાસ્ત્ર; આમ સમયના જુદા જુદા અર્થ થાય છે. હવે સમય એટલે વખત એ અમુલ્ય છે. એક ક્ષણ નકામી ગાળી તો તે પાછી કરોડો રૂપીઆ ખર્ચ કરતા પણ મળતી નથી. માટે વખતને ગપ્પા સપ્પામા, પરનિંદામા તથા પાપાચરણમાં ન ગુમાવતા શુભ કાર્યમા વિતાડવો જોઇએ. દરેક મનુષ્યે સમય નકામો ન જાય તે માટે દરરોજનું કાર્યક્રમ બાંધી કાયમ ટેબલ રાખી તે પ્રમાણે કામ કરવું ઘર કામમાંથી વખત મળે ત્યારે આપણે કાંઇપણ કલા હુન્નર, વિદ્યા આવડતી હોય તો તે બીજાને બતાવીને ઉપયોગી થવું એ સમયની કદર છે, તથા શાસ્ત્ર સ્વાધ્યાય કરવો, પ્રભુ ભજન કરવું અરહંતદેવની પૂજા કરવી, દુઃખીને વચનથી દિલાસો આપી તેમનું મન શાંત કરવું એ સમયનો સદુપયોગ છે. મુનિ સંઘને આહાર આપવો, મુનિની નવધા ભક્તિ કરવી, પોતાના દોષોને જોતા શીખવું પરના ગુણોને જોઇને પોતાના અંતરમાં ભરવા, અજ્ઞાની જીવોને જ્ઞાનને માર્ગે લગાડવા, પોતે જ્ઞાનની પ્રાપ્તિમાં સમય વિતાડવો શાંત મનથી આત્માનું ધ્યાન કરવું એ સમયની કદર છે.

સમય એટલે આત્મા, આત્માની કદર કરવી એ સમયની કદર છે, આત્માની કદર અર્થાત્ આત્માને પર રૂપથી રમવા ન દેવો એ આત્માની કદર છે. રાગદ્વેષ કરવાથી આત્મા સ્વરૂપથી ચ્યુત થાય છે, ક્રોધ, માન, માયા, અને લોભ એ ચાર કષાય આત્માના ગુણોને ઘાતે છે માટે સમયની કદર કરનારે ક્રોધનો ત્યાગ કરીને ક્ષમા ધારણ કરવી જોઈએ.

માનનો ત્યાગ કરીને માર્દવગુણ ધારણ કરવો જોઇએ. વિનય એ વશીકરણ વિદ્યા છે તેને ધારણ

કરવાથી આત્મા લોકને વશ કરી શકે છે અને આત્મામાં સ્થિર રહી શકે છે. તેમજ માયા અર્થાત્ માયા કપટનો ત્યાગ કરીને મનસા વચસા અને કર્મણા એક ભાવથી વર્તાવ રાખીને આર્જવ ગુણનો આશ્રય લેવો જેથી આત્મા પોતાના આર્જવગુણમાં સ્થિર રહે. તેમજ લોભનો ત્યાગ કરીને શૌચ ગુણનો આશ્રય કરવો, કારણ લોભ પાપનો બાપ છે માટે લોભ જ્યાં સુધી હોય ત્યાં સુધી આત્મા પોતાના ગુણોમાં, સ્વ સ્વરૂપમાં સ્થિર રહી શકતો નથી. જો કે સંસારી પ્રાણીઓનો લોભ એકદમ જતો રહેતો નથી તો તેને અશુભ વાસનાઓનો, લોભ, અર્થાત્ અભક્ષ ભક્ષણનો લોભ, પરસ્ત્રી પરત્વેનો લોભ તેમજ પરપુરૂષ પરત્વેનો લોભ, પરધનનો લોભ ત્યાગ કરવો અને એ લોભની દશા શુભ કામમાં ફેરવવી જોઈએ અર્થાત્ શાસ્ત્ર, સ્વાધ્યાયનો લોભ, દાન કરવાનો લોભ. પરોપકાર કરવાનો લોભ, પરોપકારના ખાતાઓમાં દ્રવ્ય વૃદ્ધિ કરવાનો લોભ રાખવો, જો કે એ લોભ પણ શુભરાગનું કારણ હોવાથી શુભબંધ કરે છે પણ જ્યાં સુધી પૂર્ણ કષાય ઘટે નહિ ત્યાં સુધી શુભરાગ સારો છે, એ સમય એટલે આત્માની કદર છે.

હવે સમય એટલે શાસ્ત્રની કદર અર્થાત્ શાસ્ત્રને ધ્યાનપૂર્વક શુદ્ધ ઉચ્ચારણથી વાંચવું, શાંતિથી તે શાસ્ત્રમાં આવેલા શબ્દોનાં અર્થો પર ધ્યાન દેવું, વારંવાર વિચાર કરવો, ગુણ દોષોનો વિચાર કરીને ગુણોને ગ્રહણ કરવા ને દોષોનો ત્યાગ કરવો, શાસ્ત્રમાં શંકા પડે તો વિશેષ જ્ઞાનીને પુછીને નિર્ણય કરીને સત્ય અર્થ હૃદયમાં ધારણ કરવો. તેમજ આપણાથી અજ્ઞાની જીવો હોય તો તેમને ધર્મનો ઉપદેશ આપી અનીતિને માર્ગેથી છોડવીને ધર્મને માર્ગે લગાડવા, એ શાસ્ત્રની કદર છે.

અંતમાં સાર એ કહેવું છે કે સમયના ત્રણ અર્થ છે-આત્મા, વખત, અને શાસ્ત્ર એ ત્રણની કદર કરવાથી આપણી પોતાની કદર થાય છે, માટે સમયની કદર કરવીજ જોઈએ.

સત્સંગ.

લે-મીસ. મહિલાબેન મગનલાલ જૈન જે. પી. મુંબઈ.

સત્—એટલે સારો, સંગ એટલે સમાગમ. જગતમાં જે જે કંઈ ચેતન અચેતન સારા પદાર્થો હોય તેમનો સમાગમ કરવો તે સત્સંગ છે.

સત્સંગ મેળવવાને થોડા દુનિયામાં કેટલાએ ભગીરથ પ્રયત્નો કરી રહ્યા છે. જેમકે શરીરને પવિત્ર બનાવવા રોગોથી મુક્ત કરવા શુદ્ધ આહાર, સ્વચ્છ પાણી, અને શુદ્ધ હવાની સંગતિમાં રાખવું જોઈએ. અને વાત, પિત્ત, કફથી બચાવવું જોઈએ. જો શરીરમાં રોગ હોય તો મનમાં પણ કંઈ સારા વિચાર આવતા નથી. શરીરની સાથે મનનો ઘણો નિકટ સંબંધ છે. વળી શરીરમાં કંઈ વ્યાધિ હોય તો વેદનાથી હાય, હાય, ના ઉદ્ગારો નિકળે છે ને કોઈ પ્રકારે ચેન પડતું નથી, પરંતુ જો આ વેદનાના કાળમાં પણ કોઈ જ્ઞાની પુરૂષોનો સમાગમ હોય તો તેમનાં વચનરૂપી અમૃતથી શાંતિ થઈ જાય છે. ને આકુલતા મંદ પડે છે. જેનાં સમાગમમાં આપણે રહેવાનું હોય તેમનાં વચનો હિતકર, શુદ્ધ ભાષાથી ભરેલા, વિવેકવાળા અને વિનય, સભ્યતાને ઉદ્યોત કરતાં હોય તો થોડે સમયે આપણી ભાષા પણ તે રૂપ પરિણમી જાય છે. જેમ પોપટનું દ્રષ્ટાંત જગતમાં જાહેર છે કે જો તેને ગાળો દેનારાના ઘરમાં મૂકે તો ગાળો દેતા શીખશે અને ડાહ્યાના ઘરમાં મૂકે તો રામ, રામ કહેશે તેમજ મનુષ્યનું પણ સમજવું જોઈએ. જેવી સોબત તેવી અસર થાય છે.

મનમાં જો ખોટા વિચાર આવે તો તે મનને સારાં વિચારના નિમિત્ત મેળવી આપવા, જેમકે સદ્ગુરૂ સમાગમ, શાસ્ત્ર અવલોકન, સ્વામીની સેવા, સાચા દેવમાં ભક્તિ, આવા સમાગમોથી મન પણ શુભ ભાવનામાં રંગાઈ જાય છે અને સદુપયોગ બની સંસારને સ્વર્ગ બનાવે છે.

સદ્ગુરુનો સમાગમ—જે જીવ સંતસમાગમ કરે છે, તેઓમાં ઘણા સદ્ગુણો પ્રગટ થાય છે. જેવા કે વિનય, વિવેક. અનેક ખોટી ટેવો નાશ થાય છે. દુર્વ્યસનો ટળી જાય છે, તેમ મન પવિત્ર થતુ જાય છે જેથી પાપ વાસનાનો ક્ષય થાય છે. સત્સંગથીજ દેડકો સ્વર્ગમાં દેવ થયો. ફૂલ એકેન્દ્રિય છે પણ દેવના ચક્રવર્તીઓના સમાગમથી શોભાને યોગ્ય બને છે લોઢું પારસમણિના સમાગમથી સુવર્ણ બની જાય છે. જળ મંત્ર પ્રવેશથી સર્પના વિષને નાશ કરે છે, તેમજ સત્સંગતિથી મનુષ્ય દેવ બની શકે છે, પરંતુ અનાદિ કાળથી મિથ્યા દર્શનના પ્રભાવે પરમાં આત્મબુદ્ધિનો ભ્રમ થઇ રહ્યો છે. રાત દિવસ નાશવંત દેહ ગેહ અને વિષયવાસનામાં લીન બની ગયો છે. જો આવી લીનતા એક વખત આત્મામાં થાય તો મનુષ્ય જીવન સાફલ્ય થઇ જાય પણ હોય કયાથી! જે જીવોનું કલ્યાણ થવાનું હોય છે તેના પૂર્વના કંઇ સારો સંસ્કાર પણ હોય છે.

જેથી કોઇ સાચા ગુરુનો સમાગમ થતાંજ તેનામા આત્મશ્રદ્ધા પેદા થાય છે. સાચા શાસ્ત્રનું વાંચન મનને આનંદ આપનારૂં થાય છે. સાધર્મીજનોમાં પ્રેમની લાગણી ઉશ્કેરાઇ આવે છે જે સત્સંગના પિપાસુ જીવો હોય છે તેઓજ તેના આનંદનો અનુભવ કરી શકે છે. જે વખતે સંતસમાગમમાં ભક્તિરસ જામે છે ત્યારે ભૂખ દુ:ખ ટાઢ અને તડકો આવી બાહ્ય ઉપાધિઓ કંપણ કરી શક્તિ નથી પણ સત્સંગતિ સાચી હોવી જોઇએ—દાંભિક સ્વાર્થી ન હોવી જોઇએ. એક નીતિકાર કહે છે કે—

क्षणमपी सज्जनसंगतिरेका, भवति भवार्णवे तरणे नौका।

ગુજરાતની પાઠશાળાઓ માટે—

ચારિત્ર અને વિચાર.

લે:—શાહ મોતીલાલ ત્રી. માલવી—બાકરોલ.

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

"મનુષ્યને બંધ અને મોક્ષનું કારણ મનજ છે." આ નીતિસૂત્ર મનુષ્યની અમુક સ્થિતિના સંબંધમાં યોગ્ય છે એટલુંજ નહિ પરન્તુ તેના જીવનના પ્રત્યેક પ્રસંગ અને પરિસ્થિતિને સંપૂર્ણપણે બંધ બેસતું છે. ખરી રીતે જોતા મનુષ્યની વર્તમાન સ્થિતિ તેના પોતાના મનમાં ઉદ્ભવી પ્રવર્તતા વિચારાનુસાર બને છે, અને તેનું વર્તન તેના સર્વ વિચારોના સમૂહનું રૂપાન્તર છે.

જેવી રીતે બીજમાથી વૃક્ષ ઉગે છે અર્થાત્ બીજ વિના વૃક્ષનો જન્મ હોતોજ નથી, તેવીજ રીતે મનુષ્યના પ્રત્યેક કાર્યો તેના વિચારરૂપી ગુપ્ત બીજમાથી જન્મ પામે છે. આ નિયમ વિચારપૂર્વક આદરેલા કાર્યોને લાગુ પડે છે વસ્તુતઃ કાર્ય એ વિચારનું એક પુષ્પ છે, અને સુખ વા દુઃખ તેના ફળ છે, તેનાથીજ મનુષ્યો આ સંસારમા સારાં માઠાં ફળોનો સંગ્રહ કરે છે.

મનુષ્યનો ઉત્કર્ષ કર્માનુસાર થાય છે, કૃત્રિમ સાધનોથી થતો નથી. કાર્ય કારણના નિયમનું સામ્રાજ્ય ભૌતિક દ્રષ્ટિથી દૃશ્ય વસ્તુઓમા જેમ અસ્ખલિત પ્રવર્તે છે તેમ વિચારના ગુપ્ત પ્રદેશમા પણ તે નિયમ સ્વયં પ્રવર્તે છે. ઉત્તમ દિવ્ય ચારિત્ર કોઇ એકાએક ભાગ્ય તથા કૃપાનું ફળ નથી હોતું: પરન્તુ સત્ય વિચારના અવિરત પ્રયત્નનું સ્વાભાવિક પરિણામ હોય છે. દીર્ઘ કાળથી ઇચ્છિત પવિત્ર વિચારના સંસર્ગનું તે ફળ છે, અને તે અનુસાર અધમ તથા મલિન ચારિત્ર પણ દુષ્ટ વિચારના નિરંતર સ્મરણનુંજ પરિણામ છે.

આ સંસારમા જે દુઃખો પ્રતિત થાય છે તે ઇચ્છાઓના વિરૂદ્ધપણાને લીધેજ. મનની એક ઇચ્છાનું વલણ અમુક દિશામા હોય છે ત્યારે

બીજી ઇચ્છાનું વલણ તેથી ઉલટી દિશામાં હોય છે. એક વિચાર સન્માર્ગે જવા સૂચવે છે, ત્યારે બીજો વિચાર ઉલટો રસ્તો પકડવાનું બતાવે છે. પરિણામે એકેય વિચાર–ઇચ્છા પરિપૂર્ણ તૃપ્ત થતા નથી અને તેથીજ દુખાનુભવ થાય છે. સંશયાત્મા વિનશ્યતિ આ સૂત્ર એમજ સૂચવે છે કે–જેઓના વિચારોમાં નિશ્ચિતતા હોતી નથી તેમનો વિનાશ હોય છે, એટલુંજ નહિ પણ પોતાની સાથે બીજાઓને–પોતાના સહચારીઓને નબળા બનાવે છે અને પોતાનું તેમજ બીજા કુટુંબીઓનું અહિતજ કરે છે.

મનુષ્ય પોતેજ પોતાનો પોષક તેમજ શોષક છે. પોતાના વિનાશના શસ્ત્રો તે પોતાના વિચાર રૂપી પ્રચંડ કારખાનામાં પોતેજ ઘડે છે. પોતાને માટે આનંદ, સામર્થ્ય, તથા શાન્તિદાયી ભવ્ય પ્રાસાદો રચવાના સાહિત્યો પણ તેવીજ રીતે તેજ કારખાનામાં તૈયાર કરે છે. વિવેકસર ગ્રહણ કરેલા અને યોગ્ય માર્ગે યોજેલા વિચારોથી મનુષ્ય દૈવી સંપત્તિ પ્રાપ્ત કરી શકે છે. જ્યારે દુષ્ટ અને અયોગ્ય માર્ગે પ્રવર્તતા વિચારોથી મનુષ્ય પશુથી પણ અધમ કોટિમાં આવી પડે છે. આ બંને અન્તિમ માર્ગ વચ્ચે ચારિત્રની સર્વ પરિસ્થિતિઓ આવી જાય છે. મનુષ્ય તે સર્વનો ઉત્પાદક તેમજ અધિષ્ઠાતા છે.

સામ્પ્રત કાળમાં આત્મા સંબંધી જે જે નવીન સત્યો જન સમાજ સમક્ષ મુકાયાં છે તે સર્વમાં મનુષ્ય પોતાના વિચારોનો અધિષ્ઠાતા છે, અને તે પોતાના ચારિત્રનો ઉત્પાદક છે. પોતાની સ્થિતિ, આજુબાજુના વાતાવરણ તથા ભાવિનો કર્તા છે. તેનાથી વધારે આનંદદાયી તથા ભવિષ્યમાં દૈવી સંપત્તિ તથા વિશ્વાસ આપનાર અન્ય કોઇ નથી.

'મારૂં જીવન મારી ઇચ્છાનુસાર રચીશ, અથવા મારી ભાવનાના જેવોજ હું ભવિષ્યમાં થઇશ ' એમ પ્રત્યેક મનુષ્ય હિંમતપૂર્વક કહી શકે તેમ છે, અને પ્રત્યેક મનુષ્યે તેમ કહેવું પણ જોઇએ. મનુષ્યનું સઘળું જીવન અંદરથીજ બહાર પ્રગટ થાય છે. શાશ્વત નિયમ આપણને જણાવે છે કે–" જેવું અંદર તેવું બહાર " એ નિયમ પ્રમાણે જોવામાં આવે છે.

મનુષ્ય શક્તિ પ્રેમ, અને જ્ઞાનનું પાત્ર હોવાથી તેમજ પોતાના વિચારોનો આધિષ્ઠાતા હોવાથી પ્રત્યેક પ્રસંગ પોતાને આધીન રાખી શકે છે, અને પોતાની ઇચ્છા પ્રમાણે પોતાની જાતને અનુકૂળ બનાવનાર, રૂપાન્તરજનક અને પુનરુદ્ધારક શક્તિ પોતાનામાં વ્યાપ્ત રાખે છે. મનુષ્ય પોતાની એક નિરાધાર અને કંગાળ સ્થિતિમાં પોતાની જાતનો હમેશા અધિકારી હોય છે, પરન્તુ પોતાની અધમ સ્થિતિમાં તે મૂર્ખ અધિકારી બને છે અને તે પોતાનું ગૃહતંત્ર ઉંધે માર્ગે દોરે છે. જ્યારથી તે પોતાની સ્થિતિ વિષે વિચાર કરવાનું તથા પોતાના અસ્તિત્વના આધારભુત મહાન નિયમ ઉત્સાહપૂર્વક શોધવાનું શરૂ કરે છે ત્યારથી તે પોતાની શક્તિઓને બુદ્ધિપૂર્વક દોરનાર અને પોતાના વિચારોને ફળદાયી બનાવનારૂ વિવેકી અધિકારી બને છે. મનુષ્ય પોતાના આન્તર વિચારોના નિયમોનુ સંશોધન કરવાથીજ તેવો બની શકે છે. તેમ કરવામાં એકાગ્રતા આત્મપૃથક્કરણ અને અનુભવની ખાસ આવશ્યકતા છે.

" મનુષ્ય એ વિચારની કૃતિ છે, જેવો તે વિચાર કરે છે તેવો તે બને છે. " અર્થાત્ મનુષ્ય જેવો હૃદયમાં વિચાર કરે છે તેવો તે છે. પોતાની જેવી ભાવના હોય છે તેવોજ મનુષ્ય થઇ શકે છે. દરેક મનુષ્યનું જીવન તેના પોતાનામાંજ રહેલું છે. મનુષ્ય પોતાની મરજી અનુસાર પોતાનું ચારિત્ર, બળ, આત્માનુભવ અને બીજાપર અસર કરવાનું અગાધ બળ પ્રાપ્ત કરી શકે છે. જે વસ્તુઓની તે ઇચ્છા કરે છે તે જો તે ખરેખરા આગ્રહી હોય છે તો તેનીજ થાય છે. આ બાબતમાં વિશુદ્ધાત્મન મહાનુભાવ મહાત્મા ગાંધીજીનો આગ્રહ–સત્યાગ્રહ આપણને સંપૂર્ણ રીતે ટેકો આપે છે.

નિયમપૂર્વક કસરત અને કામનો અભ્યાસ કરી પોતાની બુદ્ધિ અને શરીરનો યોગ્ય ઉપયોગ કરી પોતાના તેમજ અન્યના જીવન પ્રમાણે ... વિચારની અસર પ્રમાણે પોતાના વિદ્યાર્થીને આગ્રહપૂર્વક વિષયમાં રાખી ફેરવતા જોઈએ તો તે પોતાના આત્મિકના ઉત્પાદક છે. 'જે કોઈ ... કરશે અને જે સાંભળ કોઈ તેને માટે ... છે." એ સર્વમાન્ય નિયમ સત્ય છે. ... પૈસો; અભ્યાસ અને અવિરત પ્રયત્નશીલ મનુષ્ય ... કાર્યમાં પ્રવેશ કરી શકે છે.

પ્રિય બંધુઓ! એકટમાં હું એટલુંજ જણાવવા માગું છું કે—જેવા તમારા વિચારો હશે તેવા તમો બનશો કારણ કે મન બીજ સમરસ છે. એક અંગ્રેજ કવિ રસ્કીન જણાવે છે કે—"વિચારો અને સુવિચારના આશ્રય સ્થાનરૂપ બનાવો." પોતે શું કરે છે અને પોતાને શું કરવાનું છે તેનું જેને ભાન નથી એવો અર્ધદગ્ધ મનુષ્ય પોતાનું જીવન વ્યર્થ ગુમાવે છે. પૂર્ણ વિચાર કર્યા સિવાય ઇચ્છાશક્તિને પુષ્ટિ આપવી નહિ. અંતમાં જે પ્રમાણમાં આપણે આપણા મનને ઉચ્ચ શક્તિઓ પ્રત્યે ખુલ્લું રાખીશું તેટલાજ પ્રમાણમાં આત્મિક પ્રેરણાઓના બળથી આપણે મનુષ્ય જાતિના અને અરસ પરસ એક બીજાના ઉદ્ધારક બનીશું. અતિ સુજ્ઞેષુ કિમ્ બહુના!

શરીરોપયોગી નિયમો.

(લે:—મોહનલાલ ર. માલવી—કમ્પાલા)

૧—વ્યાયામશાળામાં દાખલ થતાંજ પોતાનાં જોડા કાઢી નિયત સ્થાને મુકવા.

૨—હાથ પગ અને મોઢું ધોઇ કસરત શરૂ કરવી.

૩—વ્યાયામશાળા સ્વચ્છ ન હોય તો સ્વચ્છ કરી કસરત કરવી.

૪—કસરત કરતી વખતે મોઢું બંધ રાખવું, અને કોઈની સાથે વાત ન કરવી.

૫—કસરત કરતી વખતે પહેરવાનાં વસ્ત્ર લંગોટ ચડ્ડી પહેરવાં, બીજાનું વસ્ત્ર કદી ન પહેરવું.

૬—પરસેવો થવા લાગતાં પહેલાંજ લુછી નાખવો.

૭—કસરત કર્યા પછી તરત કોઈપણ જાતનું પીણું ન પીવું.

૮—ઠંડા પાણીથી નહાવાની ટેવ પાડવી.

૯—અઠવાડીઆમાં એકવાર શરીર જરૂર માલીશ કરવું.

૧૦—ઓછામાં ઓછા ૬ા કલાક અવશ્ય નિદ્રા લેવી.

૧૧—નાટક, તમાસા, નાચ, ગાન તાન, વગેરેના નાદમાં કદિ ન પડવું. તે આરોગ્યનો નાશ કરે છે.

૧૨—અંતઃકરણ પૂર્વક બ્રહ્મચર્ય પાલન કરવું.

૧૩—સંઘશક્તિ વધારવી અને સ્વાર્થત્યાગી થવું.

૧૪—તમે શિખેલી વિદ્યા બીજાને શીખવતાં કદી આનાકાની ન કરશો.

૧૫—તમારાથી વધુ જાણનાર પાસે શીખતાં કદિ શરમાશો નહિ

૧૬—ઉત્તેજક પદાર્થો ત્યાગ કરો.

૧૭—જે શિખો તે તમારી નિત્ય નોંધ (ડાયરી) માં લખી લ્યો.

૧૮—જાતે નિયમિત સ્વચ્છતા પ્રિય બની બીજાને તેવા બનાવો.

૧૯—ઓછામાં ઓછાં પચ્ચીસ વર્ષ પર્યંત વિવાહ-લગ્ન બંધનમાં ન પડો.

૨૦—તમારા શિક્ષક પ્રતિ સન્માનપૂર્વક વર્તો.

આથમતા સમાજસૂર્યનો ઉદય ક્યારે થશે !

(લે:—શા. જગમોહનદાસ હી. પરવા-મુંબઈ.)

મહાવીરસ્વામીનો સમય.

આજથી પચાસો વરસ પૂર્વે જે વખતે મહાવીર પ્રભુ ધર્મોપદેશનું પાન કરાવતા સમોશરણ સહિત વિહાર કરતા હતા તે વખતે જૈન ધર્મનો કહું કે જૈન સમાજનો સૂર્ય જગત રૂપી આકાશમા મધ્યાન્હે હતો; અને સર્વ જગતમા પોતાનો અપૂર્વ પ્રભાવ પ્રસરાવી રહ્યો હતો ઘોર મિથ્યાત્વ અંધકારમા પડેલા ગૌતમ (બ્રાહ્મણ) જેવાનો આત્મા પ્રભુના સમોશરણની દિવ્ય વિભુતિ જોતા વેત એક ક્ષણમા સમ્યગ્દષ્ટિ થઇ પ્રભુનો પ્રથમ ગણધર થવા પામ્યા અને તેમના કલ્યાણકારી ઉપદેશથી સસાર-સમુદ્ર તરી ગયા પ્રભુના નિર્વાણ સમય પછી એ તેજોમય પ્રભા ધીરે ધીરે મદ થવા લાગી અને મિથ્યાત્વ રૂપી અધકાર ધીરે ધીરે ફેલાવા લાગ્યો અર્થાત્ ટુકમા કહીએ તો નિવૃત્તિ માર્ગે પ્રયાણ કરવાને બદલે સસારી જીવો પ્રવૃત્તિ તરફ વળવા લાગ્યા, મોક્ષ માર્ગ ચુકી અધોગતિ તરફ ગમન કરવા લાગ્યા, **દેહને આત્મ કલ્યાણનું સાધન સમજવાનું ભૂલી દેહનેજ સાધ્ય માની તેનીજ આળ પંપાળમાં રાચવા લાગ્યા**—સરળ રસ્તો ભૂલી **અવળે પંથે પ્રયાણ કરવા લાગ્યા.**

પ્રભુના નિર્વાણ બાદ કેવલી શ્રુત કેવલી થયા ત્યા સુધી તો ધર્મનો ઉદ્યોત સારો રહ્યો. ત્યાર બાદ થયેલા પ્રભાવશાળી જ્ઞાન ધારક આચાર્યોએ ભાવિષમા કાળદોષ અને એવા બીજા કારણોસર ધર્મજ્ઞાનની હીનતા થશે એમ જાણીને ધવલ, જય ધવલ અને તેવાજ બીજાં અનેક શાસ્ત્રો, પ્રભુએ દિવ્ય ધ્વનિ દ્વારા ઉપદેશ કર્યાં અનુસાર રચ્યા અને ભવિષ્યની જનતાનો મહાન ઉપકાર કર્યો. વર્તમાનમા જૈન ધર્મની જે અપુર્વ છાપ બીજા ધર્મો, તેમજ દેશ તથા વિદેશનાં અનેક વિદ્વાનોના મન પડી છે; તે એ મહાન આચાર્યોના અવિશ્રાંત પરિશ્રમ અને પ્રભાવશાળી જ્ઞાનનેજ આભારી છે

ધર્મ તથા સમાજની ઉત્તરોત્તર હીનદશા.

જે વીર પ્રભુના કલ્યાણકારી જૈન ધર્મનો ઉપર જણાવ્યા મુજબ અપૂર્વ પ્રભાવ હતો; તે પ્રભુના બાળકો (જૈનો) ની વર્તમાનમા કેવી શોચનીય દશા છે, તે જરા વિચારીએ આખો જૈન સમાજ સાગરમા બિંદુવત્ કેવળ પોણાબાર લાખની સંખ્યાજ છે. અને તેના વળી ૩ ભાગ પડી ગયા એ ત્રણ ભાગમા વેચાયેલા એકજ પ્રભુના બાળકો, દયા અને પ્રેમના અનુપમ સિદ્ધાતના અનુયાયીઓ આજે એક બીજા પ્રત્યે શત્રુત્વની લાગણી ધરાવે છે જૈનત્વ તો દૂર રહ્યું, મનુષ્યત્વને ન છાજે તેવા 'હત્યાકાંડો' રચાવવાના નીચ પ્રયત્નો કરતા પણ અચકાતા નથી. વળી એટલી અજ્ઞાન દશામા તે પડેલો છે કે પોતાના કહેવાતા આગમોમા પણ ધર્મનું સ્વરૂપ શુ લખ્યું છે તે જાણ્યા વિના, મનન કર્યા વિના પોતેજ તેની અવહેલના કરી રહ્યો છે. દુનીઆમા અહિંસા ધર્મના પાલક હોવાનો ખોટો દંભ દેખાડી રહ્યો છે.

ઇતિહાસપ્રસિદ્ધ વાત છે કે મૌર્ય સમ્રાટ ચન્દ્રગુપ્તના વખતમા બાર વર્ષનો ભયકર દુકાળ પડ્યો, તે વખતે આચાર્યશ્રી **ભદ્રબાહુ સ્વામીની** આજ્ઞાને ન ગણકારી જે સાધુઓ દુકાળવાળા દેશમા રહ્યા તેઓ પોતાના ચારિત્ર પાલનની અશક્તિને લીધે ભ્રષ્ટ થયા બાદ ખોટા દુરાગ્રહને વશ થઇ વસ્ત્ર થામ વાદની કલ્પિત પ્રણાલી શરૂ કરી સગઠિત સમાજમા ભગાણ પાડ્યું અને ત્યારથી તે '**શ્વેતાંબર**' નામથી ઓળખવા લાગ્યો. પ્રથમ કોઇપણ જાતના પક્ષ ભેદ વિના જૈન સમાજ એકજ હતો, એ વાત શ્વેતાંબર આમ્ના-

મના આગમોમાનું આચારાંગ સૂત્ર, કલ્પસૂત્ર પણ સાક્ષી પુરે છે. તેમા લખેલું સાધુનું સ્વરૂપ 'અચેલક' અર્થાત્ 'નિર્ગંથપણું" ઉપરોક્ત વાતની સત્યતા પુરવાર કરે છે. જો એ વાતની વિચારણા શ્વેતાંબર સમાજના વિદ્વાન નેતાઓ અને સત્ય મહાવ્રતના પાલક સાધુઓ શાન્તપણે વિચારે અને નિઃશલ્યપણે પવિત્ર હૃદયથી સ્વીકારે અને પોતાના સમાજને સત્ય વાત સમજાવે તો વર્તમાનમા એક બીજામા જે કલહ નજરે પડે છે તે સ્થિતિનો અંત સત્વર આવી જાય તીર્થોના ઝગડામા જે લાખો રૂપીઆ બરબાદ થાય છે તે અટકે અને કલહરૂપી અગ્નિમા નાશ થતી શક્તિ અને ધન વીર પ્રભુના કલ્યાણકારી ધર્મના આખા ભારત વર્ષમા અને જ્યા જૈન ધર્મના સિદ્ધાંત સબધી બીલકુલ જ્ઞાન નથી એવા યુરોપ અમેરિકા આદિ દેશોમા વિદ્વાનો દ્વારા પ્રચાર કરવામા ખરચાય તો થોડાજ વખતમા જૈન ધર્મનો પ્રચાર સર્વત્ર થાય અને જગતના અસખ્ય આત્માઓ અજ્ઞાન રૂપી અધકારમા અથડાતા અટકી સાચુ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી આત્મ કલ્યાણ કરે.

જૈન ધર્મના એવા સર્વત્ર પ્રચારના કાર્ય માટે સર્વેએ પોત પોતાના માહોમાહેના નાના મોટા ક્લેશને એકદમ દૂર કરી દેવા જોઇએ, અને સર્વેએ એકત્ર થઇ સુયોગ્ય વ્યવસ્થિત યોજનાઓ દ્વારા તે કાર્ય હાથ ધરી સફળતા પ્રાપ્ત કરવી જોઇએ

સંપૂર્ણ જૈન સમાજની સામુદાયિક પરિસ્થિતિનો ટુંકમા આપણે ઉપર વિચાર કરી ગયા.

જૈન સમાજની વર્તમાન દશા.

હવે આપણા દિગબર જૈન સમાજની પરિસ્થિતિ પર જરા વિચારીએ આ સમાજમા કુસપરૂપી પિશાચે જડ ઘાલી કેવો નાશ કર્યો છે એ વાતનો જ્યારે વિચાર કરીએ છિએ ત્યારે કંપારી છુટયા સિવાય નથી રહેતી. કુસપ અને ક્લેશના બીજા કારણોમા છેલ્લા દશેક વરસ થયા સુધારક (બાબુ) અને સ્થિતિપાલક (પડિત) એ બે પક્ષોનો સદ્ભાવ મુખ્ય કારણ છે જ્યા સુધી એ બન્ને પક્ષો વચ્ચે ઐક્ય નહિ સંધાય ત્યાં સુધી ક્લેશિત વાતાવરણ દૂર થશે નહિ હવે વિચારીએ કે એ બન્નેમા કુસંપની જડ કયા છે? પંડિત દલના નેતાઓ પોતાના વિચારોની વિરૂદ્ધ મત ધરાવનાર સર્વેને ધર્મભ્રષ્ટ અને અજ્ઞાની કહી તિરસ્કારે છે, સર્વેને પોતાનો સ્વતંત્ર વિચાર રજુ કરવાના કુદરતી હક સામે ભા. દિ. જૈ. મહાસભા કે જે ભારતના બધા દિગબર જૈનોનું પ્રતિનિધિત્વ ધરાવવાનો દાવો કરે છે, તેના દરવાજા બધ કરે છે" સુધારક દલનુ વિનય પૂર્વક અને દૃઢતાથી કહેવુ છે કે તમારો આવો પ્રતિબધ એ કેવળ અન્યાયજ છે. ભારતની મહાસભા (કોંગ્રેસ)મા, પરસ્પર વિરૂદ્ધ વિચાર ધરાવનાર સર્વ પક્ષો થતી ભૂલો સુધારે છે, તે પ્રણાલી ભા દિગબર જૈન મહા સભાએ રાખવી જોઇએ.

મારૂ એમ કહેવું નથી કે સુધારક દલમા ધર્માનુકૂલ વિચાર ધરાવનાર બધાજ છે. કોઇ ધર્મ વિરૂદ્ધ વિચારવાળા પણ હોય તે પણ આપના જેવા 'પારસમણી'ના સગથી સમાગમમા આવવાથી જરૂર 'સોના' જેવા થઇ જશે આવા સુધારકો ધર્મ પથથી ચ્યુત થનારને ધર્મમા સ્થિર કરવો એ સ્થિતિકરણ અંગનું પાલન છે. એવા નેતાઓને તરછોડવા એ તદન અયોગ્ય કહેવાય.

જો ઉપર મુજબ મુખ્ય વિવાદગ્રસ્ત તકરારનો સરળતાથી નિવેડો લાવવામા આવે તો ક્લેશ હમેશ માટે શાન્ત થઇ જાય આશા છે કે બન્ને પક્ષના નેતાઓ સરળ હૃદયથી પુખ્તપણે વિચાર કરી ઐક્યતા સ્થાપશે. છેલ્લા બાર માસમા ઇદોર અને પછી ફાગણ માસમા તીર્થરાજ શ્રી સમેદ શિખરમાં તે માટે કોશીષ થઇ હતી, પરંતુ તેમા સફળતા મળી નહોતી પણ ફરી પ્રયત્ન ચાલુ રાખવામા આવશે તો જરૂર સફળતા મળશે. પૂજ્યશ્રી જબુસ્વામીની નિર્વાણભૂમિ ચૌરાશી (મથુરા)મા આ બાબત કંઇપણ હિલચાલ ન

થઇ એ શોચનીય છે. અસ્તુ આપણે સામાજીક કલેશનુ મુખ્ય કારણ વિચારી ગયા. હવે બીજા પણ પરિણામમા એટલાજ તીવ્ર પરંતુ સમાજની દ્રષ્ટિએ જણાતા નાના કારણો વિચારીએ

લગભગ બધી જ્ઞાતિઓમા પંચાયતી કુસંપ નજરે પડે છે, અને તે કુસંપને લીધે તેમા થવા જોઇતા સુધારા અને પાઠશાળા, બોર્ડીંગ, શ્રાવિકાશ્રમ, આદિ સંસ્થાઓનુ કામ ચાલતુ મંદ પડી અંતે તે બંધ થવા પામે છે. ગુજરાતમા ઓરાણ પ્રાંતિજ વિભાગમા છેલ્લા ૪ વરસથી પંચાયતી ઝગડાને લઈ ત્યા બે પક્ષ પડી ગયા છે અને તે બન્ને પક્ષો એવી મનોદશામા મુકાયેલા છે કે એક બીજા પ્રત્યે શત્રુત્વની લાગણીથી વર્તી રહ્યા છે જે પંચાયતની સુવ્યવસ્થા એ વિભાગના જૈન વર્ગ પર સારી છાપ પાડનાર અને અનુકરણીય નીવડી હતી તેની કુસંપને લીધે શોચનીય દશા થઇ છે આ કુસંપરૂપી ઝેરી હવામાથી પ્રાંતિજમા ચાલતી મુનિશ્રી ચંદ્રસાગર બોર્ડીંગ બચવા ન પામી અને ગુજરાતના અજ્ઞાન સમાજમા કેળવણીનો ફેલાવો કરતી આ સંસ્થા મૃતવત્ સ્થિતિમા છે, તેને કાયમ રાખવા માટે થયેલુ પચાસ હજારનુ ગંજાવર ફંડ કાગળ પરજ રહ્યુ, અને એ રકમ છેલ્લા દશ વર્ષોમા પણ તેના સંચાલકો ન વસુલ કરી શક્યા. કલેશનુ વાતાવરણ એટલે સુધી ફેલાયુ છે કે બાળકો, સ્ત્રીઓ મુગ્ધાના હૃદયમા પણ એ હવા ભરાઇ છે જો ત્યાના બન્ને પક્ષના વિચારવંત ભાઇઓ કલેશ દૂર કરવાનો ઉપાય સત્વર નહિ યોજે તો ભવિષ્યની પ્રજામા પોષાતા એ ઝેરી વિચારો સમાજનુ ઘણુ અનિષ્ટ કરશે અત્રે તો છે કે એ વિભાગના કેળવાયેલા ઉંચુ શિક્ષણ પ્રાપ્ત કરેલા ભાઇઓ જેઓમાના ઘણા મુંબાઇ અને સુરતમા વેપાર ચલાવી રહે છે તેઓ બીજી જ્ઞાતિઓ જેવી કે દુબળા, કોળી, ભીલ, અને બહુત વર્ગ આદિમા પણ ક્રમશ: કેવી ઉન્નતિ કેવી થઇ રહી છે, કેવો જ્ઞાન પ્રચાર થઇ રહ્યો છે, અને ભારતની લાખંડી ચોખઠાવાળી બ્રીટીશ સરકારને પણ, પોતાની ઐક્યતા, (અને તે ઐક્યતા કેવી એંસી હજાર મનુષ્યોનો પરસ્પર સગા ભાઇ બહેન જેવો પ્રેમ તહેવાર,) અને આત્મ બળ, વડે નમાવી, **બારડોલી તાલુકાની વીર પ્રજાએ** પોતાની વીરતાનો આખા જગતને પાઠ શીખવ્યો તે બોધ પાઠ શીખવવા, અને એ ભ્રાતૃભાવ ગુજરાતના સમાજમા ઉત્પન્ન કરવા તન મન ધનથી પોતાની ધાર્મિક ફરજ સમજી કાર્ય ઉપાડી લે.

પંચમહાલ જીલ્લામા આવેલા દાહોદમા પણ સો ઘરમા ત્રણ પક્ષ અને તેઓમા પણ પરસ્પર તીવ્ર દ્વેષ બુદ્ધિ અને વેરની લાગણી દેખાય છે પંચાયતી ઝગડાઓએ આ શહેરમા પણ કલેશની જડ ઘાલી છે વળી જમણ જમવાનો કે, જમાડવાનો પ્રસંગ આવે દરેક પક્ષ જુદા જુદા વરઘોડા કાઢી સ્ત્રીઓ અને બાળકોમા પણ એ ઝેર પ્રસરાવે છે અને વળી હરમાવાને અલ્પ આનંદ માને છે. આશા છે કે દાહોદના સમજુ યુવક વર્ગ ત્યા ઐક્યતા સ્થાપવા જરૂર પ્રયત્ન કરશે, અને આવા નિર્લજ વરઘોડા કઢાવવા તુરત બંધ કરી દ્વેષ ફેલાતો અટકાવશે

સામાજીક પત્રોની વિચિત્ર મનોદશા.

સમાજ સુધાર અને જ્ઞાન પ્રચાર માટે બીજા સાધનોમા પત્ર એ મુખ્ય સાધન છે દિગંબર સમાજની પાંચ લાખ વસ્તીને યોગ્ય રસ્તે દોરવા માટે સાપ્તાહિક, પાક્ષિક, માસિક મળી દશ પંદર પત્રો પ્રગટ થાય છે તેમાના કેટલાક પત્રો તો સમાજના વધતો કલેશ અને કુસંપ અટકાવવાને બદલે પોતેજ સ્વય કલહ વર્ધક અને નિંદક પ્રવૃત્તિ આદરી રહ્યા છે અને એ રીતે સમાજના કલેશાગ્નિમા ઘી હોમવાનુ કાર્ય કરી રહ્યા છે વાડ જ્યારે ખેતરને ખાય ત્યારે પછી બીજુ રક્ષક જ કોણ રહ્યુ ? ધર્મની અને સમાજની રક્ષા કરવાની ફરજ ચુકી તદન ઉલટી પ્રવૃત્તિ પત્રોમા ચર્ચાય એ ઘણીજ દીલગીરીના વાત છે.

અનેક ઉપાધિ પ્રાપ્ત વિદ્વાન પંડિત દરબારી-

લાલજીના સંપાદકપણા નીચે 'જૈન જગત' કે જે પત્રે પૂર્વ અંતર્જાતીય વિવાહ જેવા અટપટા પ્રશ્નને ઘણી આગળની દ્રષ્ટિએ સારૂં અજવાળું પાડ્યું હતું અને બીજી કેટલીએ રીતે સમાજની સેવા કરી હતી, તે પત્ર વર્તમાનમા મુનિ નિંદા કરે, 'સવ્યસાચી' જેવા મૂર્ખના વ્યભિચાર ફેલાવનારા લેખો પ્રગટ કરે એ ઘટના અવશ્ય સાશ્ચર્ય દુઃખ પેદા કરે એમા જરાએ નવાઈ નહિ ખરેખર તીવ્ર કષાય ભલભલા મહાન વ્યક્તિને ભુલાવે છે, દીપાયન જેવા મુનિને અધોગતિએ પોંચાડ્યા તો પં. દરબારીલાલ શી વીસાતમા ? પ્રભુ, સમાજના ખેવટીઆ થવા લાયક આવા વિદ્વાનોને સદ્બુદ્ધિ આપો, અને ફરી તેઓ સન્માર્ગે દોરાય તેમ કરો, એવી તમને પ્રાર્થના છે

ગુજરાતના સમાજમા ધાર્મિક અને સામાજિક પ્રશ્નો ચર્ચતુ એકે ગુજરાતી પત્ર નથી બીજા પ્રાંતોની અપેક્ષા ગુજરાતમા અજ્ઞાન અને કેળવણીનો અભાવ વધારે છે તદર્થ માટે સારા શિક્ષિત, નિડર અને સમાજ સેવાની ધગશવાળા પ્રભાવશાળી વ્યક્તિના નત્રીત્વ નીચે એક અઠવાડીક પત્ર શરૂ કરવાની અનિવાર્ય જરૂર છે. 'દિગંબર જૈન' પોતાથી બનતું કામ બજાવે છે, પરંતુ તે પુરતુ નથી. અને એ ખોટ પુરી ન પડે ત્યાંસુધી 'જૈન મિત્ર'મા ગુજરાતી લેખ પ્રકટ થવાની જરૂર છે.

સામાજીક સંસ્થાઓની દશા.

આપણા સમાજમા બાળકો અને યુવકોને ધાર્મિક તેમજ વ્યવહારિક ઉચ્ચ શિક્ષણ આપવા માટે ૩ મહાવિદ્યાલયો, ૩ બ્રહ્મચર્યાશ્રમ અને ૬ બોર્ડિંગો છે અનાથ બાળકો પાળી પોષી ઉછેરવા અને તેમને વિદ્યાભ્યાસ કરાવી આશ્રયદાન અને [illegible] 'અનાથાલય' પૂર [illegible] વરસ [illegible] ઉચ્ચ ચારિત્ર ઘડનારી, બ્રહ્મચર્યનો ઉત્તમ પાઠ શીખવનારી અને સમાજને ઉત્તમ રત્નો આપવા ફક્ત ત્રણ સંસ્થા બ્રહ્મચર્યાશ્રમ છે. અને ખાસ કરી વિધવાનું જીવન, ધાર્મિક શિક્ષણ આપી ઉંચ બનાવવા માટે ત્રણ શ્રાવિકાશ્રમ છે ઉપર મુજબ કુલ્લે ૧૭ સંસ્થાઓ છે.

આ સત્તરે સંસ્થાઓમા અડધા ઉપરાંત સંસ્થાઓ પાંગળી છે—સમાજની મદદ પરજ તેની હયાતી છે આ રીતે સામાજીક સંસ્થાઓ છે તેમા ગુજરાતમા બાળકોને કે યુવકોને ધાર્મિક અને વ્યવહારિક શિક્ષણ આપનારી તો એકે સંસ્થા નથી પ્રાંતિજની બોર્ડીંગની સ્થિતિ હું ઉપર વર્ણવી ગયો તેવી છે. એટલે **ગુજરાતના કોઈ મધ્ય સ્થળે વિદ્યાલય અથવા બ્રહ્મચર્યાશ્રમની જરૂર છે.**

છલ્લા ૩ વરસ ઉપર આ પત્રના સંપાદક અને અંકલેશ્વરવાળા ગાંધી છોટાલાલ ઘેલાભાઈના પ્રયત્નથી અને મેવાડા ભાઈઓની મદદથી પાવાગઢ મુકામે એક 'બ્રહ્મચર્યાશ્રમ' સ્થાપન કરવાની વાતો થઈ હતી લગ્નસરા પ્રસંગ બધાએ સોજીત્રા મુકામે ભેગા મળ્યા હતા તે વખતે તેના નિયમો, દરેક ગામમાથી જનાર છોકરાઓની સંખ્યા તથા મદદ ફંડ વગેરેની બધી સામગ્રી તૈયાર [illegible], પણ એ યોજના વિસ્તવત ક્યા ચાલી ગઈ તેની કોઈને ખબર નથી. ક્યા અનિવાર્ય કારણસર આ અતિ ઉપયોગી કાર્ય પડતુ મુકાયુ [illegible] તે વાત બહાર આવી નથી. ખર સંજોગ વશાત્ કે પ્રમાદ વશાત્ ગમે તે કારણસર એ કાર્ય પાર ન પડયાને ૩ વરસ વીતી ગયા ફરી મેવાડા જ્ઞાતિના [illegible] પ્રમાદ [illegible] જેવા અગ્રેસરો અને બોરસદ તથા સોજીત્રા અને મુંબાઈમા રહેતા એ જ્ઞાતિના શિક્ષિત અને ઉત્સાહી યુવકો, મનસુખલાલભાઈ, મોહનલાલભાઈ જેવા ધારા શાસ્ત્રીઓ લાગણી પૂર્વક આ કામ હાથ ધરે અને ગુજરાતના બધા સમાજ, હુંમડ, [illegible] યથાશક્તિ મદદ કરે તો થોડા દિવસમા 'બ્રહ્મચર્યાશ્રમ' સ્થપાય,

આશા છે, કે મારી આ સુચના તરફ પોતાનાજ બાળકોના હિતાર્થે, સર્વે ભાઇ જરૂર લક્ષ આપશે.

પાશ્ચાત શિક્ષણમાં ધાર્મિક, સામાજીક સ્થિતિ તરફ બેદરકારી.

સમાજની હીન દશાના કારણોમાં એક કારણ એ પણ છે કે સમાજનો શિક્ષિત વર્ગ ધાર્મિક તેમજ સામાજીક સ્થિતિ માટે બેદરકાર તથા અજ્ઞાત છે. પોતાના વિદ્યાભ્યાસના વખતમા ધાર્મિક શિક્ષા પ્રાપ્ત ન કરી શક્યા, અને ફક્ત પાશ્ચાત શિક્ષણ અને તેની સાથે મોજશોખ અને વિલાસમાજ બધો વખત પસાર કર્યો અને ત્યારબાદ ગ્રહસ્થાશ્રમમા જોડાયા અને તેમાજ રાત દિવસ મશગુલ રહ્યા. ગૃહસ્થના ૬ આવશ્યક કર્મ–દેવપૂજા, ગુરૂપાસના, સ્વાધ્યાય, સયમ, તપ અને દાન એને બીલકુલ વીસરી ગયા. આત્મ કલ્યાણની એ નીસરણી છે. ખાવુ, પીવુ, અને વ્યાપાર કરવો એ જેમ નિત્ય કરવાની જરૂર છે તેમ આ છ આવશ્યક કર્મ હમેશા સર્વ કાર્યની પહેલા કરવાની જરૂર છે, એ વાત હૃદયમા ઉતરી નથી. ધર્મ, અર્થ, કામ, અને મોક્ષ એ ચારે પુરૂષાર્થમા ધર્મ બાકીના ત્રણ પુરૂષાર્થના પાયો છે તેના વડેજ અને તેના ફળરૂપ બાકીના અર્થ એટલે ધન અને કામ એટલે ભોગાદિ સામગ્રી અને છેલ્લે મોક્ષ અર્થાત કર્મ મળ રહિત આત્માની નિર્મળ અવસ્થા, એ સર્વ ધર્મ સાધન કરવાથીજ પ્રાપ્ત થય છે દેહ અને આત્મા એ બન્ને જુદીજુદી વસ્તુ છે. બન્નેના સ્વરૂપ એક બીજાથી તદ્દન જુદા છે. આત્મા અનત દર્શન, અનતજ્ઞાન, અનત સુખ અને અનત વીર્ય એમ અનત ચતુષ્ટયના ધારક સિદ્ધ ભગવાન સમાન ગુણધારક છે; અને દેહ ક્ષણિક અને નાશવત છે. એ નાશવત દેહના પોષણ અર્થે એકત્રિત કરેલી સર્વે ભોગોપભોગની સામગ્રી પણ નાશવત અને આત્માનુ અહિત કરનારી છે. સંસારી જીવ અજ્ઞાનતાથી આ સર્વ સામગ્રી પોતાને સુખ રૂપ માને છે. ખરી રીતે એ સુખ નહિ, પણ ખાલી સુખાભાસ છે. સાચું સુખ નિરાકુલ અવસ્થામા છે. અને સપૂર્ણ નિરાકુલ અવસ્થા એજ મોક્ષ છે. મનુષ્યપર્યાય પ્રાપ્ત કર્યાની સફળતા એ પરમ ધ્યેય મોક્ષના પથે પ્રયાણ કરવામા છે. એ પથે પ્રયાણ શરૂ કરી જેટલો રસ્તો કાપ્યો તેટલાજ પ્રમાણમાજ આત્મ કલ્યાણ થયું સમજવું. હમેશા અનુભવીએ છીએ તે પરથી ત્યા શાંત ચિત્તથી ગંભીર પણે વિચાર કરવાથીજ માલમ પડશે કે ઇદ્રિય જનિત વાસનાઓને સંતોષવા જેમ જેમ સામગ્રી મેળવશું તેમ ઉત્તરોત્તર લાલસા વધતીજ જશે અને એ વધતી જતી લાલસાઓ, અગ્નિ જેમ સેંકડો મણ લાકડા નાખીએ છતાં કદિ તૃપ્ત નથી થતી, તેમ કદિ તૃપ્ત નહિ થાય અને પરિણામે ચિંતા અને કલેશ યુક્ત પરિણામ રહેશે, અને એ રીતે એ સર્વ પરિશ્રમનુ પરિણામ સદૈવ આકુલતામાંજ રહેશે.

સારાશ એ નીકળે છે કે જેમ જેમ પ્રવૃત્તિ વધારે તેમ તેમ આકુલતા વધારે. જેમ જેમ પ્રવૃત્તિ ઘટાડશો તેમ તેમ પરિણામ નિરાકુલતામય થશે માટેજ આત્માર્થી જનોએ બને તેમ ક્રમશ પરિગ્રહ ઓછો રાખવો અને સતોષી થવુ એમ શાસ્ત્રોમા કહ્યું છે. આપણે વ્યવહારમાં પણ જોઇએ છિએ કે રોજ આઠ આના કે રૂપીઓ કમાનાર સતોષી મજુર જેટલો ચિંતામુક્ત અને સુખી હોય છે તેનાથી શતાશ સુખી અનેક વ્યાપારમા વ્યગ્રચિત્ત લક્ષાધિપતિ નથી હોતો. આ પ્રમાણે બેદ વિજ્ઞાન સંસારના સર્વે જીવોને થાય તો, ભોગ વિલાસમા મગ્નતા, અને તેમા મમત્વતા, વ્યાપાર આદિને અંગે થતો પ્રપંચ, વિશ્વાસઘાત, જુઠ, ચોરી આદિ અનેક પાપો સ્વયં બંધ થઇ જાય. જે દેશમા પોતે જન્મ્યા તેના પ્રત્યે પોતાની ફરજ, પોતાના સમાજ પ્રત્યેની ફરજ અને ધાર્મિક ફરજ એ સર્વેનુ ભાન થાય અને તે ફરજો અદા કરવાના કામમા પરોવાય.

મારા આ લખવાનો હેતુ એવો નથી કે પાશ્ચાત શિક્ષણ સર્વ પ્રકારે દુષિત છે. તેમા

રહેલા ગુણ, સ્વચ્છતા, વિનય, ઉદ્યોગીપણું, વિલાસતાનો અભાવ, સ્ત્રી પુરૂષ બન્નેમા કેળવણીનો શોખ આદિ ગુણો આવ્યા છે પરંતુ તેમા આત્મિક જ્ઞાનનો અભાવ હોવાને લીધે તે શુષ્ક છે.

સમાજ તથા ધર્મની ઉન્નતિના ઉપાયો. હવે આપણે ધર્મ તથા સમાજની ઉન્નતિના ઉપાયો ક્યા ક્યા છે તેનો વિચાર કરશું. તેના સંબંધમા પ્રથમ "જૈન મિત્ર' વર્ષ ૨૯ અંક ૪૮ માના સંપાદકના વિચારોનો મુખ્ય ભાગ અત્રે આપીશ—"દિગંબર જૈન ધર્મ માનવાવાળાની રક્ષા એજ દિ. જૈન સમાજની રક્ષા કહેવાય. જૈન ધર્મની ઉન્નતિ માટે ચાર પ્રસિદ્ધ સંરક્ષકોની જરૂર છે પૂર્વે જૈન ધર્મની ઉન્નતિના સમયમા બરાબર લેખ થતુ આવ્યું છે મહાવીર સ્વામીના વખતમા મુનિ સંઘમા **ગૌત્તમસ્વામી,** આર્યિકાઓના સંઘમા **ચંદના** આર્યિકા, ગ્રહસ્થોમા **શ્રેણીકરાજા** અને મહિલાઓના સંઘમા **મહારાણી ચેલના** એ ચારે મુખ્ય હતા. તેમના ઉદ્યોગ અને પ્રભાવથી ધર્મ રક્ષા સારી રીતે થતી હતી વર્તમાનમા જો વિદ્વાન, ખંતીલા, ધર્માત્મા અને પ્રભાવશાળી ચારે સંઘના ચાર નેતા મળી આવે અને અંતરની તીવ્ર લાગણી પૂર્વક કામ કરે તો **ધર્મ** તથા **સમાજની** ઉન્નતિ જરૂર થાય તેઓનુ કર્તવ્ય એજ રહે કે—

अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथं ।
जिनशासनमहात्म्यप्रकाशः स्यात् प्रभावना ॥

અર્થાત્ જે જે ઉપાયો વડે બને તેના વડે, અજ્ઞાનરૂપી અંધકારને દૂર કરે; અને જૈન ધર્મની અપૂર્વ પ્રભાવના કરવામા આવે. જો એવા પ્રભાવશાળી ચાર વ્યક્તિ જ્યા સુધી ન મળે ત્યાસુધી સંગઠિત સંસ્થાઓ દ્વારા જૈન ધર્મ તેમજ સમાજની રક્ષા કરવી જોઇએ. એ સંસ્થાઓની યોજના નીચે મુજબ થવી જોઇએ.

દરેક ગામ અથવા કસ્બાની એક સ્થાનિક સભા સ્થપાય, તેની રક્ષા માટે તે જીલ્લાની જીલ્લા સભા સ્થપાય, અને જીલ્લા સભાની રક્ષા માટે એક ભારતવર્ષીય સભા સ્થપાય આવી રીતની સંગઠીત સંસ્થાઓની **'સમાજ સૂર્યના ઉદય'** માટે અતિ આવશ્યકતા છે. મનમાની મહાસભાના સંચાલક કંઈ સુધારો કરવા ચાહતા નથી અને આશા રાખવી પણ ફોગટ છે. પ્રાંતિક સભાઓ કામ કરી રહી હતી તે કેટલોક વખત થયા નિદ્રાવસ્થામા છે મુંબાઈ, માલવા, દક્ષિણ મહારાષ્ટ, મૈસુર, દક્ષિણ કેનેડા, રજપૂતાના, સંયુક્ત પ્રાંતીય, પંજાબ, બરાર, અને મધ્ય પ્રાંત એ પ્રાંતિક સભાઓ કામ કરતી હતી, તેમાથી હાલ ફક્ત દક્ષિણ મહારાષ્ટ્ર સભા કંઇક જાગ્રતીનુ કાર્ય કરી રહી છે બાકી બધી ઘોર નિદ્રાવશ છે આ બધી સભાઓની નિંદ્રા જો દૂર કરવામા નહિ આવે અને કંઈ કામ કરવાને પ્રેરિત કરવામા નહિ આવે તો એ બધી આપો આપ મરણ શરણ થઇ જશે"

ધર્મ અને સમાજ રક્ષાનુ કાર્ય કરતી ૧૦ પ્રાંતિક સભાઓમા નવ સભાઓની શોચનીય દશા આપણે જોઈ, તેમા આપણને ગુજરાતના એટલે ગુજરાતની પ્રતિનિધી રૂપ સંસ્થા 'મુંબાઇ પ્રાંતિક સભા' ની પણ આવી દશા માટે આપણને ઘણુ દુઃખ થાય એ સ્વાભાવિક છે આશા છે, કે એ સભાના ઉપપ્રમુખ માનનીય **શેઠ તારાચંદ નવલચંદ ઝવેરી** સભાનુ કામ ફરી ચાલુ કરી, ગુજરાત કે જ્યા આખા સમાજની અપેક્ષા ઘણુ અજ્ઞાન છે, તેમા જાગ્રતી લાવશે

સંસ્થાઓની યોજના કેમ થવી જોઇએ એ વિચારી ગયા હવે એ સંસ્થાઓએ સમાજ ઉન્નતિના ઉપાય શા શા લેવા શું શું કાર્ય કરવું તે વિચારીએ—

૧ બાલવિવાહ, વૃદ્ધ વિવાહ, કન્યા વિક્રય, અનમેલ વિવાહ, અને રૂઢીવશાત્ નકામો ખરચ કરવો, આવા **કુરીવાજો** સમાજમાથી શાંન્ત સત્યાગ્રહદ્વારા દૂર કરવા.

૨ જુગાર, ખોટા વ્યસન, ગુપ્ત વ્યભિચાર વગેરે સત્યાગ્રહદ્વારા દૂર કરવા.

૩. જૈન કોલેજ અને જૈન યુનીવર્સિટીની સ્થાપના કરવી.

૪. **જૈન ધર્મ સંબંધી પુસ્તકો** અનેક ભાષાઓમા છપાવી દરેક જગ્યાએ સસ્તી કિંમતે પ્રચાર કરવો.

૫. જૈન ધર્મ સબંધી પરિક્ષામા પાસ થયેલા અનુભવી કુશળ વિદ્વાનોને **દેશ વિદેશમાં** મોકલી ધર્મોપદેશ કરાવવાની ગોઠવણ કરવી

૬. જૈન પત્રો અને **ધાર્મિક સાહિત્ય** અજૈન વિદ્વાનોને **મફત** મોકલવાની ગોઠવણ કરવી.

૭. અનાથ અને ગરીબ ભાઇઓને તેમની યોગ્યતા અનુસાર ઉદ્યમે લગાડવા તથા **આર્થિક** મદદ કરવાની ગોઠવણ કરવી.

૮ દરેક સ્થળે **વ્યાયામશાળાઓ** સ્થાપન કરવી.

૯ ગુજરાતના સારા મધ્ય સ્થાનમા એક બ્રહ્મચર્યાશ્રમ સ્થાપન કરવું અને દરેક જગ્યાએ બાળાઓ તથા છોકરાઓ ધાર્મિક શિક્ષા પ્રાપ્ત કરે તે માટે **પાઠશાળા** સ્થપાવવાની યોજના કરવી,

૧૦ સર્વે યુવકોએ **રાષ્ટ્રીય કાર્યોમાં** સપૂર્ણ રીતે મદદ કરવી

૧૧ શિક્ષિત હોશીયાર સાધારણ સ્થિતિના યુવકોને જુદા જુદા વિષયોનો અભ્યાસ કરવા આર્થિક મદદ કરી દેશ દેશાનરમા મોકલવાની યોજના કરવી.

૧૨. સમાજમા ધર્મ વિરૂદ્ધ ફેલાતા વિચારોને અટકાવવા માટે પૂર્ણ કોશીશ કરવી અને તેને માટે એક ગુજરાતી ભાષામા સાપ્તાહિક પત્ર કાઢવું.

૧૩ સમાજ સેવા તથા દેશ સેવા માટે સ્વયસેવક મડળ સ્થાપવુ

૧૪ સમાજમા ધાર્મિક તથા સામાજીક વિચાર કેળવવા સ્થળે સ્થળે વાચનાલય સ્થાપન કરાવવા.

૧૫. ધાર્મિક, આર્થિક તેમજ રાષ્ટ્રીય દ્રષ્ટિએ ત્યાજ્ય એ પરદેશી કાપડનો વપરાશ સમાજમાથી બધ કરાવી **ખાદીનો પ્રચાર** કરવો.

ઉપર મુજબના પદર મુખ્ય કાર્યો ધર્મ તથા સમાજની ઉન્નતિ માટે શરૂ કરવાની અતિ આવશ્યક્તા છે. મારા મત મુજબ દરેક ગામ, જીલ્લા, પ્રાતમાના ઉપર જણાવ્યા મુજબ યુવક મડળની સ્થાપના થવી જોઇએ, અને ભારતના બધા દિગંબર જૈન યુવકોએ આ કાર્ય ઉપાડી લઈ પાર પાડવુ જોઇએ સર્વે પ્રાતીક યુવક મંડળની સભાળ માટે **'ઓલ ઈન્ડીઆ દિગંબર જૈન યુથ લીગ'** ની સ્થાપના પણ થવી જોઇએ. યુવકોના નેતા પં. જવાહરલાલ નેહરૂ કહે છે કે "દેશની સ્વતત્રતાનો આધાર ભારતના યુવક વર્ગ પરજ છે."

સમાજની શોચનીય દશાનું રેખા ચિત્ર હુ બતાવી ગયો તે પરથી વાચક વર્ગ સમજશે કે આ પરિસ્થિતિમાથી સમાજનો ઉદ્ધાર કરવા માટે યુવકોએજ કમર કસવી જોઇએ. તન મન ધન સર્વસ્વ તેને માટે અર્પણ કરવા તત્પર થવુ જોઇએ. ધર્મની અને સમાજની ઉન્નતિમાંજ આત્મોન્નતિ છે એટલે સૌએ પોતાની ફરજ સમજી કાર્ય કરવા મંડી જવું જોઇએ.

મુંબઈ દિ૦ જૈન યુવક મંડળ કે જે ચુનીલાલ વીરચદ ગાધી જેવા સારા લેખક અને ઉત્સાહી કાર્યકર્તાના મત્રીપણા નીચે ચાલે છે, તેણેજ આ કાર્ય હાથ ધરવું જોઇએ અને મુંબાઇના સર્વે યુવકોએ લાગણી પૂર્વક કામ કરવા તેમાં સારી સખ્યામા ભળવુ જોઇએ વખતનો ભોગ આપી મડળના મળતી મીટીંગમા ટાઇમસર હાજર રહી, મડળના દરેક કાર્યમા મદદ કરવી જોઈએ. 'મડળ, અને સભા એ નવરાનું અને સાધારણ વર્ગનું કામ' એવો ખોટો ખ્યાલ મનમાથી દૂર કરી થોડો પરિશ્રમ વેઠી મુબાઈના શ્રીમત યુવકોએ મડળને દરેક રીતે મદદ કરવી જોઇએ. અને વડીલોએ પણ તેને દરેક રીતે મદદ કરી મડળનો ઉત્સાહ વધારવો જોઇએ. મંડળના કાર્યકર્તાઓએ તો પોતાની ફરજનું પાલન કરવામાં કદી પાછી પાની ન કરતા, કદિ ઉત્સાહહીન ન થતા ગમે તેવા સંજોગોમા ટોલટપ્પા અને ટીકાખોરોની વાતો પર ધ્યાન ન આપતા પોતાનું કર્તવ્ય બજાવવું અને દ્રઢ વિશ્વાસ રાખવો કે **'નિઃસ્વાર્થ સેવાનો પ્રયત્ન કદિ નિષ્ફળ નથી જતો.'** સાધારણ સ્થિતિનો નેપોલીયન બોનાપાર્ટ એક સિદ્ધાન્ત કે 'મનુષ્ય માટે અશક્ય એવી કોઇ વાતજ દુનીઆમા નથી ' યુરોપ આખાને

મુજાવી શકયો, આશા છે કે મુંબાઈ યુવક મંડળના પ્રમુખ તથા મંત્રી તેમજ બીજા યુવકો મારી આ સૂચના પર જરૂર ધ્યાન આપશે. અને પોતાની ફરજ બજાવવા તૈયાર થશે.

શ્રાવિકા પાઠશાળા. આપણા સમાજના અને ખાસ કરીને ગુજરાતના સ્ત્રી વર્ગમાં વિદ્વાનો બીલકુલ અભાવ છે. એ ઉણપ પુરી કરવા માટે શ્રીયુત ઠાકોરદાસ ભગવાનદાસ ઝવેરી તથા શ્રીમતી મચનબ્હેન જેવાના પ્રયાસથી મુંબાઇમા ગુલાલવાડી મંદિરમાં છેલ્લા બાર માસ થયા એક 'શ્રાવિકા પાઠશાળા' સ્થપાઈ છે. પરતુ તેને સારા પાયા પર ચલાવવા માટે કંઈ મજબુત યોજના નથી યોજાઈ અને તેને લીધેજ તેનું કામ મદ ચાલે છે. આશા છે કે શેઠ ઠાકોરભાઇ આ અતિ ઉપયોગી પાઠશાળાને માટે હમેશા ૨ કલાક શિક્ષણ આપવા માટે એક પેડ શિક્ષિકા નિમવાની યોજના કરશે અને પાઠશાળાને સારી સ્થિતિમા મુકશે.

સમયસાર વાંચનાલય. મુંબાઇની ગુલાલવાડી મદીરની પચાયતની સહાયતાથી છેલ્લા ૪ વરસ થયા ત્યા એક વાચનાલય ચાલે છે, તેમા ૪ સામાજીક, ૩ હિન્દી, ૩ રાષ્ટ્રીય અને ૨ દૈનિક પેપરો આવે છે અને ઘણા માણસો તેમા વાચનનો લાભ લે છે. પરતુ સસ્થા માટે કાયમનુ ફડ નથી અને વ્યવસ્થા કરવા માટે કાયમનો માણસ ન હોવાથી પુસ્તકાલય કે જેની આવશ્યકતા માટે ઘણા ભાઈ મારૂં ધ્યાન ખેચે છે પરતુ સાધનોના અભાવે તે બની શકતું નથી, આશા છે કે મુંબાઇના ગૃહસ્થો આ તરફ પોતાનુ લક્ષ્ય આપશે અને સંસ્થાને મજબુત બનાવશે

પત્રો એ વિચારો કેળવવાનુ અને અનેક બોધક વાતો જાણવાનુ અજોડ સાધન છે સાધારણ વર્ગ દરેક જાતના પત્રો મગાવી શકે એ સ્થિતિમા હોયજ નહિ અને એ જરૂરીઆત પુરી પાડવા માટે દરેક સ્થળે વાચનાલય કાઢવાની ખાસ જરૂર છે, જેના વડે ધાર્મિક તથા સામાજીક અને વ્યવહારીક વિચારો કેળવવાનું, બીજી કોમો અને ધર્મો કેવા સાધનો વડે પોતાની ઉન્નતિ કરી રહ્યા છે તે જાણી શકાય અને પોતાના કર્તવ્યનુ ભાન થાય. મારા જોવામાં આરાનું સરસ્વતી ભવન ઘણુ વિશાળ છે ત્યા અનેક ભાષાઓના અને જુના હસ્ત લિખિત પુસ્તકો તથા છાપેલા પુસ્તકો સારા સ્ટોકમા છે ને તેની વ્યવસ્થા આકર્ષક છ. મુબાઇનુ સરસ્વતી ભવન સામાન્ય છે ને તેમા ઘણા સુધારા વધારાની જરૂર છે જૈન સાહિત્ય કેવું વિશાળ છે તે જાણવા માટે જીજ્ઞાસુઓએ જરૂર આ સરસ્વતી ભવનો જોવાની તક લેવી જોઇએ.

ઉપસંહાર. છેવટમા મારી સમાજના અગ્રગણ્ય નેતાઓને વિનતી છે કે તેઓએ સમાજમાથી કલેશ ને કુસુપ દૂર કરવા યોગ્ય ઉપાય તુરતમા યોજવા. મારા વહાલા યુવક બધુઓને પ્રાર્થના છે કે ધર્મ અને સમાજની સેવા બજાવવા માટે તમારે સર્વસ્વ અર્પણ કરવા તત્પર થવું અને સમાજની ઉન્નતિ માટે સુચવેલી યોજના તથા ઉપાયો તરફ પુરતુ લક્ષ આપી તેને યોજવા શરૂઆત કરવી જોઇએ, બાળવિવાહ, વૃદ્ધ વિવાહ અને કન્યા વિક્રય જેવા સમાજનુ સર્વસ્વ નાશ કરનારા અને સમાજમા જડ ઘાલી બેઠેલા કુરિવાજોને સત્યાગ્રહ કરીને પણ દૂર કરવા જોઈએ. કુરીવાજોના સદ્ભાવેજ આજ ૧૭ માસ થયા સમાજમા વિધવા વિવાહની ધર્મભ્રષ્ટ અને નાશકારક ચર્ચા ચલાવી છે આ પ્રશ્નનો સારી સમજથી વિચાર કરતા જણાશે કે તે તદ્દન ધર્મ વિરૂદ્ધ અને વ્યવહારવિરૂદ્ધ પણ છે આવા વ્યભિચારપોષક વિચારને બ્ર શીતલપ્રસાદજી જેવા વિદ્વાન અને સમાજનેતાએ સમતિ આપી તેનો પ્રચાર કરવાનું કાર્ય હાથ ધરી ખરેખર ઉલટે પથે તેઓ પ્રયાણ કરી રહ્યા છે તેઓએ જો આ કુરીવાજોનો નાશ કરવા માટે સગઠીત કાર્ય હાથ ધર્યું હોત તો તે ક્રમશ જરૂર પાર પાડત. અને સમાજનો મહાન ઉપકાર થાત આશા છે કે તેઓ પોતાની ભૂલ સુધારી ફરી આ સમાજના સુધારની યોજનાની આગેવાની લઈ **સમાજના** ઉદયના કામમા મદદ કરશે. અને સમાજના ઉપકારક થશે આ સબધમા મારા વધુ વિચાર હવે પછી લખીશ

ॐ શાન્તિ.　શાન્તિ.　શાન્તિ

उत्तम क्षमा.

લેખક—મોહનલાલ મથુરદાસ શાહ, કાપુરિઆકર કંપાલા, આફ્રિકા.

ધારી સુકંઠે—ઉત્તમ ક્ષમાને,
ઇચ્છું ક્ષમા જગતના જીવ માત્ર કેરી.
જે જે જનોએ ઉર ધર્મ ધાર્યો,
પાયે નમી ભક્તિ ધરૂં સદાએ.

વહાલા વાચક વૃંદ?

આજે આપણા અંતિમ તીર્થંકર શ્રી મહાવીર-સ્વામીને નિર્વાણ ગયાને ૨૪૫૪ વર્ષ પુરા થાય છે. તેમના નિર્વાણ ગમન બાદ આપણે તેમના ક્યા ક્યા ઉપદેશો, ક્યા ક્યા સદ્ગુણો, ક્યાં ક્યા સુત્રો, ક્યા ક્યા મત્રો સાચવી રાખ્યા-ધારી રહ્યા છીએ, તેનો વાસ્તવિક અંદાજ કાઢવો, તે આપણી આ દીવાળીએ ખાસ ફરજ છે. હું નથી ધારતો કે, કોઇપણ વ્હેપારી પોતાની પેઢીના નફા ટોટાનો અદાજ દર દિવાળીએ ન કાઢતો હોય? કદાચ કોઇ વહેપારીને થોડા ટાઇમ બાદ દુનિયાનાં નાણા હજમ કરી જવા હોય, નામ પર પાણી ફેરવવુ હોય, પારકે પૈસે, વગર મહેનતે લક્ષાધિપતિ થવુ હોય, તો સરવાયું ન કાઢે, તે જુદી વાત છે. બાકી સારી લાઇન પર રહેતા, દરેક વહેપારીની ફરજ છે કે તેણે પોતાનો નવી સાલનો વહીવટ ચાલુ કરતા પહેલા જુની સાલનું સરવાયું જરૂર કાઢવું.

જ્યારે વ્હેપારી પેઢીને માથે આમ વર્ષના કામનો અંદાજ કાઢવાની ફરજ છે, તો શું આપણા સમાજ રૂપી ધર્મની પેઢીને શિર કાઇ પણ ફરજ નહિ હોય?

છેલ્લા પદર વર્ષના દિગંબર જૈન-શ્વેતાંબર જૈન અને તેઓની અંદર ગચ્છ મત વાડા, સંઘ, પથ વગેરે પડેલા ભેદોના વ્યવહારિક ધાર્મિક પેઢીઓ, સભાઓનાં કામકાજ, તીર્થોના મેળાઓ, પ્રતિષ્ઠાના જલસાઓ, વ્રત ઉજવવાના જલસાઓ, પાખીઓ, આદિ તપાસતાં એકજ વસ્તુ દ્રશ્યમાન થાય છે અને તે મહાવીર-સ્વામીના ઉપદેશનું હળાહળ અપમાન, જૈન સુત્રોનું ભયકર અધ:પતન અને જૈન શબ્દને લજવનાર વિખવાદો સિવાય મને તો કાઇ પણ નજરે આવતું નથી?

આ લખાણ હું પર્યુષણની સમાપ્તિને દિવસે લખતો હોઇ-લક્ષબિંદુ ઉત્તમ ક્ષમા તરફ હોવાથીજ લખાણને ઉપરના નામથી દીપાવ્યું છે.

આપણા સમાજને મે નીચે મુજબ વિભાગોમાં વહેચી નાખ્યો છે, કે જેથી આપણે સમાજના હાલના વાતાવરણ સંબંધે ઠીક ઠીક વિચાર કરી શકીએ—

૧—જૈન પટ્ટાવલી પર આરૂઢ થતા ધર્મગુરૂઓ.

૨—સાધુ શબ્દને શોભાવનાર બંન્ને સમાજના યતિ-મુનિઓ.

૩—બ્રહ્મચારી, ઐલક, ક્ષુલ્લક, ઉદાસીન, ત્યાગી, વર્ણી, આર્જીકા.

૪—અને જૈન સુત્રોના રહસ્યને સમજનાર પંડિતવર્ગ.

૫—વર્તમાન ભટ્ટારક અને ગોરજીઓ.

૬—હમેશ તીર્થસ્થાનોમા યાત્રાએ જનાર—તીર્થભક્તનો ફાંકો રાખનાર.

૭—તીર્થ માટે મરી ફીટનાર ગૃહસ્થવર્ગ.

૮—ગ્રેજ્યુએટ અને એથી પણ વધુ આગળ વધેલ વિદ્વાન વર્ગ.

૯—આણું ન જાણું-તાણ્યું ન જાણ્યું પણ શેઠનું વચન પ્રમાણ વાળું સુત્ર પકડયા જેમ અમુક બાબતને દ્દઢ પકડી બેઠેલ ધનિક વર્ગ.

૧૦—લેખકો અને કવિઓ

૧૧—તીર્થના નામે ઉભી થએલી કમીટીઓ. અને તેના માનવતા મેમ્બરો.

૧૨—સુધરેલ સમાજથી દૂર રહેતો શ્રદ્ધાળુવર્ગ.

ઉપર મુજબના વિભાગોમાં આપણો સમાજ

વહેંચાએલો છે, જે વાસ્તવિક રીતે જૈન ધર્મના થાંભલાઓ અર્થાત્ જૈન ધર્મને હૃદય પર ધારણ કરનાર વિભુતિઓ માની શકાય '

આપણા પરમ પૂજ્ય શ્રીમહાવીર સ્વામીએ આપણને પહેલામાં પહેલું એજ શીખવાડયુ છે કે—જીવ માત્ર સરખા જાણો. એટમે કે—કોઇએ કોઇની લાગણી દુખાવવાનુ કાર્ય કરવુ નહિ—એટલે કે મનુષ્ય માત્રે ઉત્તમ ક્ષમા રૂપી ઢાલ હમેશ હૃદય પટ પર ધારણ કરવી.

જયા જીવ માત્ર સરખા હોય ત્યા કોઇએ કોઇની પર ક્રોધ કરવાપણું હોયજ નહિ. એટલે ત્યાં ઉત્તમ ક્ષમા આપોઆપજ પ્રસરેલી છે.

જયારે જીવ માત્ર સરખા છે. ત્યારે આપણો સમાજ કે—જે એકજ પુજ્ય પુરૂષને માનનો હોઇ બે વિભાગોમા વહેંચાએલો છે, તે આપણી મદ બુદ્ધિ અને અજ્ઞાનતાજ સુચવે છે.

પહેલા એક એકો એવો આવેલ કે—તે વખતે આપણા ધર્મોપદેશોમા વિખવાદ ઉભો થયો ને તેના ફળરૂપે સમાજ તેમના ઉપદેશથી દૂર રહ્યાં અને અજ્ઞાનતામા ગરકાવ થયો તે વખતે રાજકીય ઉથલપાથલોને લઇ આપણે સુખે રોટલા ખાઇ શકતા નહોતા, તો ધર્મ સાધના તો કયાથી થાય ? તે વખતે આપણે કેટલાક જણ દેવમદિર, ધર્માચાર્ય, ઉપદેશકોથી દૂર જૈન સિવાયના સ્થાન પર પણ રહેવા ગયા, જેથી આપણુ અજ્ઞાન વધી ગયુ ત્યાર બાદ રાજ્યકીય શાંતિ થઇ અને આપણે વિખવાદ ઉત્તેજક ધર્માચાર્યના ભોગ થઇ પડયા અર્થાત્ આપણું અધઃપતન થયુ એટલે કે—આપણા સમાજના બે વિભાગ પડી ગયા અર્થાત્ ચાલુ સમયને ઓળખનારો વર્ગ એક વિભાગમા વિભક્ત થયો ત્યારે મૂળ સત્યને પકડી રાખનાર વર્ગ બીજા વિભાગમા પ્રથિત થયો અને એ રીતે મહાવીર સ્વામીના સ્થાપેલા સપ્રદાયની પાતીના ગણેશ મંડાયા.

મહાવીર સ્વામીએ જગતના જીવ માત્રને ઉપદેશ આપી ધર્મિષ્ટ બનાવ્યા હતા. તેમણે કોઇ જગ્યાએ દિગંબર કે—શ્વેતામ્બર શબ્દથી ઉપદેશ કર્યો નથી. તેમજ આપણા પ્રાચીન શાસ્ત્રોમા કોઇ જગ્યાએ બે પંથ હોય તેમ દર્શાવ્યું નથી.

દુનિયાની દરેક કોમ અત્યારે સુધારા તરફ આગળ વધવા લાગી છે, તે ટાઇમે આપણો સમાજ હજી વધુ વિખવાદ ઉત્પન્ન કરી, આથીએ વધુ ઉડા ખાડામા પડવા તમતમી રહયો છે.

બંધુઓ ? ઉઠો, કમર કસો ? ને જૈનધર્મ એ એકજ ધર્મના આશ્રય નીચે આવી, દુનિયાને બતાવી આપો કે હમે વૈશ્ય હોઇ કદાપિ રાક્ષસી પ્રકૃતિ નહિ ધારીએ ?

વિખવાદ, ટટો, તડ, દ્વેષ એ રાક્ષસી પ્રકૃતિનાં લક્ષણો છે. અસહકારના આ જમાનામા હિંદુસ્થાનમા જન્મ લેનાર માત્ર એકજ રાષ્ટ્રીય ઝંડાના આશ્રય નીચે પ્રાણ અર્પણ કરવા તૈયાર થાય છે, ત્યારે આપણે જૈનો તીર્થ માટે માહે-માહે વિખવાદ ઉભો કરી રહ્યા છિયે

હવે આપણે ઉપર બતાવેલ જૈન સમાજના ચાલુ વાતાવરણના સચાલકોના વર્તન, કરેલા સુધારા. તેમણે હવે કરવો જોઇતો પ્રોગ્રામ વિગેરે ઉપર દ્રષ્ટિ નાખી પછીજ આગળ વધીશુ !

પૂર્વાચાર્યના પદપર આરૂઢ થએલ ધર્મગુરૂઓ.

આ શ્રેણીના આચાર્યો જો કે—આપણા સારા નશીબે હાલ આપણા સમાજમા લગભગ છેજ નહિ, બાકી આ આચાર્યોએ જેટલી ધર્મ પ્રભાવના દૈવી ચમત્કારોથી કરી છે, તેટલી ભાગ્યેજ બીજાઓએ કરી હશે, પણ તેની સાથેજ તેમણે કરેલા સારા કૃત્યો પર પાણી ફેરવવાજ આપણા સમાજને બે વિભાગોમા વહેંચી નાખ્યો, છે. કે જેને પ્રતાપેજ અત્યારે આપણે અંદરો અંદર લઢી મરીએ છીએ

મન્દિરનો માલિક ગમે તે હોય તેમાં પૂજન, ભજન, દર્શન કરવાનો દુનિયાના હરકોઇ માણસને હક છે, પછી તે ક્રિયા વિધાન ગમે તે વિધાનથી શુદ્ધ રીતે કરતો હોય ! આપણે જે તીર્થંકરની સમક્ષ તેમના વીતરાગ ભાવની ભાવના ભાવવાની

છે, તેમના સામ્યભાવને હૃદય પર ધારણ કરવાનો છે, તેમની શાંત મુદ્રાનું અવલોકન કરી તેમના જેવું ઉત્તમ ક્ષમા વ્રત ધારણ કરવાનું છે, તેમનાજ મંદિરમાં (કેશરિયાજીમાં) તેમનીજ સન્મુખ રાજ્યની મદદ લઇ હત્યાકાંડ કરાવવો તે તેમનું અપમાન નહિ ? આખા ધર્મનો વિદ્રોહ નહિતો બીજું શું ગણાય ?

યતિઓ અને મુનિઓ.

મન, વચન, કાયાનું જતન કરે-કાબુમા રાખે તેજ જતિ-મનસા-વાચા-કર્મણાએ કરી અધર્મનો ત્યાગ, પ્રાણી માત્ર પર સમભાવ, આત્મધ્યાનની સાધના વ્યવહાર તરફ ઉદાસીનતા રાખે તેજ મુનિ. છેલ્લા પાંચ છ વર્ષથી તો અનેકને મુનિ થવાનો મોહ લાગ્યો છે કેમકે આપણા પૂર્વાચાર્યની જીવન કથાઓ વાંચી તેમણે કરેલા વિહારથી થયેલો ધર્મ પ્રચાર જાણી અચાનકજ મુનિ થવા ઘણા લલચાય છે પણ અત્યારના સમયમા મુનિ ધર્મ ધારણ કરવા કરતા ઉદાસીન ગૃહસ્થ કે-બ્રહ્મચારીનો ધર્મ સ્વીકારવાથીજ સમાજ સેવા-ધર્મ સેવા વિશેષ રીતે થઇ શકે

અત્યારના મુનિઓને પણ નવા મુની મુડવાનો મોહજ લાગ્યો હોય તેમ જણાય છે છેલ્લા બે ત્રણ વર્ષના સમયમા આ ચેપ વધુ ફેલાવાથી કેટલાક યોગ્યતા વગરના માણસો પણ એ મુનિસંઘ દ્વારા મુડાઇ જાય ને તેઓ પોતાની ક્રિયાહીનતાથી સમાજ અને મુનિ સંઘને નીચું જોવરાવે છે. કારણ કે મનની પુરી ઉદાસીનતા સિવાય મુંડ મુડાવી લે છે ને વર્ષ કે છ મહિના બાદ મુનિધર્મ સહન નહિ થવાથી કે-કોઇ કારણસર ભ્રષ્ટ થઇ જાય છે આ બાબત ખાસ કરીને શ્વેતામ્બર જૈન સંપ્રદાયને ઉલ્લેખીને કરવામા આવેલી છે.

છેલ્લા મેલમાં અત્રે આવેલ વર્તમાનપત્રોમા એક આવાજ પ્રસંગને મળતી સાચી બનેલી કથા મારા વાચવામા આવી છે જેને અક્ષરશઃ નામ સિવાય અત્રે આપું છું કે જેથી વાંચકને કાંઇક ખ્યાલ આવે !

દક્ષિણમાં એક શહેરમા એક શ્રીમંતને ત્યાં તેમના પુત્ર પુત્રીઓને ભણાવવા એક ગ્રેજ્યુએટ માસ્તર રાખ્યા. પોતે વિદ્વાનની સાથે સ્વરૂપવાન પણ હતા. શેઠની પુત્રી પણ શ્રીમંત માબાપની પુત્રી હોઇ સ્વરૂપવાન હતી. વાત એમ બની કે માસ્તર છોકરા અને છોકરીઓને અલગ અલગ શિક્ષણ આપતા. એકાંતનો લાભ લઇ માસ્તરની નજર શેઠતનયા પર પડી, કામદેવ જાગૃત થયો, થોડે દિવસે વિષયમા ગરકાવ થયા. શેઠ તનયાને ગર્ભના ચિન્હો જણાયા એટલે માસ્તરે નિર્દય રીતે શેઠ પુત્રીનુ ખુન કર્યું, ને ત્યાંથી પલાયન થયા !!!

પછી આ માસ્તર દૂરના બીજા શહેરમા જઇ નગ્ન વેષ ધારણ કરી પંચાગ્ની તાપવા લાગ્યા. વિદ્વતા અને કાય કષ્ટથી શહેરના લોક આકર્ષાયા. તેમા પણ સ્ત્રીઓ વધુ શ્રદ્ધાળુ બની બીજા થોડોક દિવસ એમ ચાલ્યુ હોત તો ત્યાં પણ નીચ ધંધો ચાલુ થાત, પણ કુદરતને તે નહિ ગમતું હોય, જેથી શેઠ તનયાના ખુની તરીકેના વોરંટમા સાધુ-રાજ સપડાયા, ને લોખંડી સાંકળોથી બંધાયા.

બીજા એક સાધુ કેટલાક સાધુઓ સાથે પગે ચાલી હિંદુસ્થાનના તીર્થોની યાત્રાએ નીકળ્યા દરમ્યાન એક સ્ત્રી સાધુ તરફ એ સાધુની નજર બગડી હતી.

આ દ્રષ્ટાંતો લખવાનો આશય એટલોજ છે કે-આવા ભેખધારી અને અપાત્રે દીક્ષા આપવાથી થએલા બાળ મુનિરાજો ભ્રષ્ટ થઇ સમાજને અધઃપતન કરતા બચાવે એજ છે

અત્યારે તો પ્રખર વિદ્વાન, ત્યાગી બ્રહ્મચારીઓનાજ વિહારની જરૂર છે કે જેના ઉપદેશથી સમાજના સડા દૂર થાય. આજના વિહાર કરતા મુનિરાજો કદાચ એમ કહે કે-અમે અમારા ભ્રમણમા રાત્રિ ભોજન ત્યાગ કરાવીએ. કંદમૂળ છોડાવીએ, દર્શન કરવા ઉપદેશ દઇએ, તીર્થ માટે ફંડ કરવા કહીએ, વિગેરે, તો શું તેટલાથીજ જૈન સમાજનો ઉદ્ધાર થવાનો છે. ?

જૈન સમાજમા વિખવાદના ઉંડા મૂળ જે ઘર કરી બેઠેલાં છે. તે તથા બાળ લગ્ન, વૃદ્ધ લગ્ન, કજોડાં, કન્યાવિક્રય અયોગ્ય ખરચા વિગેરે જે જે રાક્ષસી રિવાજોએ સમાજનું સત્યાનાશ કાઢયું છે, તે રાક્ષસોને દૂર કરવાની જરૂર છે.

જો મુનિવર્ગ બંન્ને ગચ્છને એકત્ર કરે, તીર્થંપરના વિખવાદો દૂર કરે કોર્ટમા જવા લાખો રૂપીયા બચાવે ત્યારેજ તેમણે લીધેલો મુનિ-ધર્મ સાર્થક ગણાય ? નહિ તો તેમણે વિહાર કમી કરી કોઇ એકાંત જગ્યાનો આશ્રય લઇ હજી આત્મધ્યાનમા દ્રઢ થવાની જરૂર છે.

એલક, ક્ષુલ્લક, બ્રહ્મચારી, પંડિત આદિ !

ઘણીજ ખુશી ઉપજે છે, કે-આ વર્ગે સમાજની કાઇક સેવા કરી છે. જૈન સમાજમા ઉધ-ઇથી સડી જતા ગ્રંથોનો જો કોઇએ ઉદ્ધાર કર્યો હોય અગર ચાલુ ભાષામા મુદ્રિત કરાવ્યાં હોય, તો તે આ વર્ગેજ છે.

આ વર્ગે દુનિયાની પરિસ્થિતિ તપાસી-ભવિ-ષ્યનો વિચાર કરી જૈન શાસ્ત્રોને ભંડારોમા માફક સાચવી નહિ રાખતાં પ્રકાશન કર્યાં છે. હજી પણ આ સમાજ જો ધારે તો પોતાના એકત્ર બળથી જરૂર જૈન સમાજને એકત્રિત કરે ?

જો જૈન ઉદાસીન વર્ગ પોતાનો એક સંઘ નિયુક્ત કરે અને તેઓ જૈન સમાજની પડતીના કારણ તપાસે તથા જૈન સમાજમા કયા કયા કુચાલો છે તેને કેવા સ્વરૂપમા ગોઠવીએ તો દિગંબર, શ્વેતાંબર એકત્ર વ્યવહાર કરે, કયા કયા સુધારા દાખલ કરવા હિતકારી છે, કયા કયા જુના રિવાજ બન્ને ગચ્છને માફક છે, કયા કયા નવા સુધારા દાખલ કરવાથી વર્તમાન જૈન સમાજ એક એકત્ર સમાજ બને, વિગેરે બાબતોનો વિચાર કરે, અને તે પ્રમાણે ગામે ગામ ફરી ઉપદેશ આપે અને એક જનરલ સભા બન્ને સમાજની સંયુક્ત સ્થાપન કરાવે. ને જૈન સમાજને નવા તંત્ર પર નિયત કરે, તો હું નથી ધારતો કે-આવા સુધરવાના જમાનામાં દિગંબર કે શ્વેતાંબર પાછા હઠે ?

જૈન સમાજમાં એવાં કેટલાં એ હૃદયો છે કે જે દિગંબર-શ્વેતાંબર ઐક્યને ઇચ્છે છે, એવા કેટલાય જણ છે કે જે જૈન સમાજને નવી ધરી પર જોવાને રાજી છે, પણ આજના કહેવાતા મુનિરાજો (શ્વે.) પંડિતરાજો, શ્રીમંતાઇના મોહમા ખેંચાએલા કેટલાક શેઠીયાઓજ તેમા આડે આવે છે.

જો ત્યાગી વર્ગ ધારે તો જૈન સમાજને તેની મૂળ સ્થિતિ પર લાવી શકે તેમ છે, પણ તે ત્યારેજ બને કે-જ્યારે બન્ને સમાજો અન્યોન્ય આગળ-પાછળ લગાડેલા નવા નામો-દિગંબર-શ્વેતાંબરનો ત્યાગ કરી જૈન શબ્દના ઝૂંડા નીચે એકત્ર થાય ત્યારે ?

આપણને બારડોલીની અસહકારની લડતે બતાવી આપ્યું છે કે આત્મબળ અને સંપ સિવાય કોઇ પ્રજા પોતાનો અભ્યુદય કરી શકી નથી

જો આપણે બંન્ને સમાજ તરફથી શ્રીયુત વલ્લભભાઇ કે મહાત્મા ગાંધીજી જેવા દેશનેતાને આપણા સર પંચ નીમી દિગંબર-શ્વેતાંબરના સઘળા ઝઘડાનો અંત આણી બન્ને ધર્મને એકજ ધર્મ તરિકે ઓળખાવીએ તો હું નથી ધારતો કે-એકે સમાજ તેથી વિરૂદ્ધ થાય !

ભારતવર્ષમા જ્યારે હિંદુ-મુસ્લીમ ઐક્ય સધાય છે, ત્યારે આપણે મહાવીર પિતાના બંન્ને પુત્રો વધારે ઝઘડે ચઢી દ્વેષાગ્નિમા હોમાઇ સમા-જને પડતીને પંથે લઇ જઇએ છિએ !

મારા મત મુજબ આપણા સમાજમાં મંદિ-રોના અને તીર્થ સ્થાનોનાજ ઝઘડા છે. જો આપણે એકત્ર થઇ એકજ સમાજ તરિકે વર્તીશું તો તે ઝઘડા તો આપોઆપજ શમી જશે.

મંદિરોન વળગી રહેવાથી ને તીર્થોને સાચવી રાખવાથીજ માત્ર જૈન સમાજનો ઉદય અને પર-ધર્મમા જૈનધર્મનો પ્રચાર થવાનો નથી, પણ મંદિરોની નકામા ઝઘડાવાળી સ્થિતિના ફેંસલો આણી-બન્ને સમાજના સૂત્રો એકત્ર કરી સમાજના હાનિકારક રિવાજોને નાબુદ કરેજ જૈન સમાજ ઉત્કર્ષ પામશે. ને તોજ બીજી પ્રજાઓ જૈની થવા લલચાશે ! બાકી મંદિરો બાંદર ઝઘડા

ચાલતા હોય ત્યાં કદાપિ શાંતિ અને ઉત્કર્ષતા આવતાજ નથી, એ વાત ધ્યાનમા રાખશો ?

ભટ્ટારક અને ગોરજીઓ.

સમાજના આ ધુરંધરોને તો નથી પડી સમાજની કે—નથી પડી શ્રાવકોની ! તેમને તો આ મારો ગચ્છ અને આ બીજાનો ગચ્છ, એવું સંભાળવાનીજ પડી છે. સાથેજ શ્રાવકોમા પરિભ્રમણ કરી સુપૂજ ઉઘરાવી ધન સચય પણ કરવો તેમને ઠીક આવડે છે. વળી જો કોઇ સ્થળે તેમને ઉપદેશ આપવા સુચવવામા આવે તો તેઓ કોઇ વ્રત કથા કે રાસ વાચી બાધાઓ આપી પોતાને કૃત કૃત્ય માને છે.

પહેલાના સમયમા જૈન સમાજના આ ભટ્ટારકોએજ જૈન સમાજને દુનિયાના આ છેડાથી પેલા છેડા સુધી ઝળકાવ્યો હતો. આ બહાદુર આચાર્યોએજ હિંદુસ્થાન અને તેની બહારના રાજાઓને ઉપદેશો આપી જૈન બનાવ્યા હતા. ત્યારેજ તેમને તે વખતના બાદશાહોએ જૈનના પાદશાહની પદ્વિ પ્રદાન કરેલી કે જે હજી પણ પળાતી આવે છે. અત્યારે તો તેમને કયા પદ્વિ લેવા જવું છે કે ઉપદેશ કરે કે સમાજને એકત્ર કરો ? તેમને તો મળેલી પદ્વિ ભોગવવી છે, ને સમાજને પૈસે તાગડધીન્ના કરવા છે.

હજી જો આપણા ગોરજીઓ પોત પોતાના ગચ્છના શ્રાવકોને સમજાવી તીર્થોના ઝઘડાનો અંત આણે તો જૈન સમાજને એકત્ર થતા વાર લાગે નહિ ? બન્ધુઓ ? તમે તેમને ફરજ પાડો કે જે કથાનું શાસ્ત્ર વાચવું બંધ કરી, આપણામા સંપ આવે, બીજા દેશોમા જઇ લક્ષ્મી સંપાદન કરી સાથેજ ધર્મ પ્રચાર કરી શકીએ, એવુ જ્ઞાન આવે એવા શાસ્ત્રો વાચે, ન હોય તો નવા તૈયાર કરે અને જૈન સમાજને તારે ?

રાતની બાધા—ગામ પર ગામ છુટ, સાજે માદે છુટ.

આઠમ ચોદશ લીલોતરીની બાધા—ગામ પર ગામ છુટ. સાજે માંદે છુટ.

કંદ મૂળની બાધા—ગામ પર ગામ છુટ. સાજે માદે છુટ.

એવી અને એવીજ બીજી બાધાઓ આપવી એ શું આપણા આચારની હાસી કર્તા નથી ? (આવો રિવાજ શ્વેતાબરીમાંજ છે.)

બંધુઓ ? વિચાર કરો કે ગામ પરગામ છુટ એટલે શું ? સાજે માદે છુટ એટલે શુ ? જો ગામમાય છુટ અને પરગામમાય છુટ; સાજેય છુટ અને માદેય છુટ તો એ બાધા ક્યારે પાળવી ? જ્યારે બાધા પાળવાનું સ્થળ કે ટાઇમ નક્કી નથી, તો પછી એવી નકામી પીછી હાથ પર ફેરવી શાસ્ત્રનું અપમાન કરવાથી લાભ શો ?

હવે તો સ્થુલ વ્રત લેતાં પહેલા શ્રાવકે આપણીજ વિચારવાનું છે. જમાનો બદલાય છે, તેમ બધું બદલાવું જોઇએ. જેમ ધર્મના મૂળ સિદ્ધાંતોને સમજ્યા પછી માણસ જેમ શાસ્ત્ર વાચનમાં આગળ વધે છે, તેમ આચાર પણ પોતાના હાથેજ સુધારે છે. તેને પછી પીછી ફેરવવાની કે તેના ઉપર દબાણ કરવાની જરૂર રહેતી નથી. કંદમૂળનો ત્યાગ કરે જૈન થવાતું હોય તો તે ભટ્ટારકો કે તેવા ઉપદેશકોનેજ મુબારક રહે ? આ જમાનો એવો નથી કે—આ ખાવું ને તે ન ખાવુ એ સમજાવેજ માત્ર ધર્મ પ્રચાર થાય ? અત્યારે તો ધર્મના ઉંડા રહસ્યો, તત્ત્વો, વીર પ્રભુના અમુલ્ય ઉપદેશોને સમાજને અને દેશને અનુકૂળ શબ્દોમા ગોઠવી તેનો ઉપદેશ કરવાનો છે.

પૂર્વે રાવણ, હનુમાન, રામ, કૃષ્ણ એ બધા મહાપુરૂષો જૈન હતા, એમ આપણાં પુરાણો બતાવે છે, પણ કોઇ પુરાણ કે કોઇ શાસ્ત્ર એમ બતાવતું નથી કે શ્વેતામ્બર—દિગમ્બર જુદા હતા. પૂર્વના સમયમા કેટલાક આચાર્યોના મતભેદને લઇ આપણા સમાજને જે ફટકો લાગ્યો છે, તે અકથનીય છે જ્યારે રાવણ, હનુમાન આદિ નરવીરો જૈન ધર્મનું પાલન કરતા હતા, ત્યારે તેમની રાજ્યધાની રૂપ યુરોપ, આફ્રિકા, અમેરિકા તરફ પણ જૈન ધર્મનો પ્રચાર હશે એ સ્પષ્ટ થાય છે. હાલ તેમાનું કાંઇપણ નજર આવતું નથી.

સુપ્રસિદ્ધ ઇતિહાસજ્ઞ બાબૂ કામતાપ્રસાદજી જૈને લખેલા શ્રી ભગવાન પાર્શ્વનાથના મત મુજબની પાતાળ લંકા અને સીતા માતાએ પવિત્ર કરેલ અશોકવાડીથી દક્ષિણભાજ (આફ્રિકામાં) હજાર માઇલના અંતર પર હાલ હું નિવાસ કરૂં છું. આંહી રહી મેં તે સ્થાનો તરફ નજર નાખી છે તો મને ત્યાં પૂર્વે સુધરેલી પ્રજા હશે, એ સ્પષ્ટ જણાઇ આવ્યું છે, જેથી માની શકાય કે શ્રી બાબૂ કામતાપ્રસાદનું કથન સત્ય હોય?

જ્યારે આમ આપણો ધર્મ હિંદુસ્તાનથી પાંચ હજાર માઇલ દૂર સુધી ફેલાએલો હતો ત્યારે અત્યારે ખુદ હિંદુસ્તાનમાં પણ વાણીયા સિવાય કોઇ ભાગ્યેજ જૈન ધર્મ પાળે છે. આ બધાનું મૂળ મને તો આપણા આચાર્યોના દ્વેષ ભર્યા વિચારજ જણાઇ આવે છે.

અત્યારે પણ આપણા પંડિત વર્ગમાં ઘણા મતભેદ વધી ગયા છે ને તેમણે જૈન સમાજને કોડીનો બનાવી દીધો છે. દિગંબરના બધા ગળસંઘ, વીસપંથી, તેરાપંથી, તારનપંથી, નવઘરા; શ્વેતાંબરના બધા-તપા ગચ્છી, ખરતર ગચ્છી, ધર્મ ગચ્છી, સ્થાનકવાસી, મુર્તિપૂજક, રાજચંદ્ર પંથી વિગેરે, આમ કરી આપણા સમાજના ટુકડે ટુકડા થઇ ગયા છે, એ બધો પ્રતાપ આપણા પંડિતો ને ગોરજીઓનોજ છે. ને ત્યાર બાદ આપણા અજ્ઞાન સમાજનો કે જેમણે આજ સુધી તેમની દરેક વાતનો સ્વીકાર કરી, પોતાના પગ પર કુહાડી મારવા જેમ કર્યું.

શ્વેતાંબર અને સ્થાનકવાસી ત્યાગી વર્ગને ધન્યવાદ છે કે તેમણે પોતાના સમાજને અનુકુળ નવાં શાસ્ત્રો છપાવી પોતાના સમાજને ટકાવી રાખ્યો છે. અર્થાત્ પોતે ભાવસાર, પટેલ આદિ કોમોને પણ ઉપદેશ આપી જૈન બનાવ્યા છે, જ્યારે મારા દિગંબરી સાધુઓ અને પંડિતો તો વાડા બાળવામાજ ધન્ય ભાગ્ય સમજે છે. મે સાંભળ્યું નથી કે દિગંબરી વિદ્વાને કોઇ બીજી કોમવાળાને જૈન બનાવ્યા હોય? પૂર્વે આપણા આચાર્યો અમુક જણને જૈન બનાવ્યા સિવાય આહાર પણ લેતા નહોતા.

મારા પૂજ્ય સાધુ વર્ગને મારી નમ્ર અરજ છે કે તેમણે દીક્ષા લીધા બાદ અમુક કાળ વિહારને છોડી દઇ આત્મ ધ્યાનમાં લીન થવું ને ત્યારબાદ યોગ બળે જૈન સમાજનું ભવિષ્ય જાણ્યાબાદ વિહાર કરવો ને **જૈન સમાજને આદર્શ સમાજ બનાવવા** પોતાના જ્ઞાનનો ઉપયોગ કરવો.

તીર્થભક્ત ગૃહસ્થો.

આ પાચમી પર્યાયના શ્રાવકોને પોતાના તીર્થનીજ પડી છે. તેઓની હમેશની જીજ્ઞાસા એમ હોય છે કે—આ તીર્થ મારા ગચ્છમાં નથી તે કેમ કર્યે મારૂં થાય, આવીજ તેમના અંતરની ભાવના હોય છે ને તેજ મોહનીય કર્મ તેમને નર્કમાં ધકેલી જાય છે. તે વખતે તેમની યાત્રાઓ, તીર્થ સેવાઓ કામ લાગતી નથી

હજારો યાત્રાઓ કરી હોય, હજારો નવિન તીર્થ બંધાવ્યા હોય, બીજા ગચ્છના હજારો મંદિર પચાવી પાડયા હોય, હજારો રૂપીયા સંઘ કાઢવામાં ખર્ચ્યા હોય, હજારો રૂપીયા તીર્થના કેસ જીતવામાં ખર્ચ્યા હોય, છતાં જો તેનામાં **ઉત્તમ ક્ષમા નથી, પ્રાણીમાત્ર પર સમભાવ નથી, વીર પ્રભુનાં વચનો પર વિશ્વાસ નથી,** તો તેના સર્વે પુણ્ય કાર્યો મિથ્યા થાય છે, ને તેની સદ્‌ગતિ થતી નથી

બીજાનું પચાવી પાડવાની નૈયતવાળા ફિરકાએ ખાસ વિચારવું જોઇએ કે—તીર્થ સ્થાન કોઇના બાપનું નથી. જૈન તો શું પણ દરેક ધર્મ, દરેક સમાજ, દરેક મનુષ્ય અને પ્રાણી માત્રનો તે તીર્થ પર જન્મસિદ્ધ હક્ક છે, માટે વિચારવું જોઇએ કે જો તીર્થસ્થાનો પર એક સંઘનો હક હોત તો મહાવીરસ્વામી જરૂર તેમની દિવ્ય-વાણીમાં પ્રકાશિત કરત, પણ ઉલટું મહાવીર-સ્વામીના સમોસરણમાં તો દેવ, દાનવ, માનવ, પશુ, પંખી કોઇનામાં ભેદ ભાવ નહોતો? ત્યાં તો દરેક પોતપોતાને લાયક આસન પર બેસી

ધર્મવચન શ્રવણ કરતા હતા. વળી ભગવાને પણ કોઇ સંઘ કે-કોઇ ધર્મને ઉદ્દેશી ઉપદેશ કર્યો નથી પણ દુનિયાને સદ્ધર્મ તરફ વાળી સત્ય પંથનોજ ઉપદેશ કર્યો છે કે-જેને "જૈન" એવું નામ વિદ્વાનોએ આપ્યું જેણે ક્રોધ-માન-માયા-લોભ આદિ શત્રુઓને જીત્યા છે, તેજ જૈન પછી તે ગમે તે કોમનો હોય

સાંભળવા પ્રમાણે આપણા શ્વેતાંબર બંધુઓ તરફથી ઘણા તીર્થોમા તે તીર્થ પોતીકા કરી લેવા જબરો હીલચાલ ચાલે છે એ દિલગીરી ભરેલુ છે

જ્ઞાતિજન નિરાધાર હોય તે ટાઇમે મંદિરોમાં લાખો ખરચવા તે મૂર્ખાઇ નહિ તો બીજુ શું સુચવે છે ???

જૈન સમાજની દિન પ્રતિદીન પડતી થાય છે, તેવા ટાઇમે નવા મંદિરો બનાવવાં તે શુ યોગ્ય છે ?

અત્યારે તો પડી જતા મંદિરોને સમારી-નવા ને સાચવી સમાજને સુધારવા તરફ કટ્ટીબદ્ધ થવાની જૈન માત્રની મુખ્ય ફરજ છે.

પશ્ચિમાત્ય વિદ્યાથી વિભૂષિત યુવાનો.

જૈન સમાજમા સેંકડો ગ્રેજ્યુએટ અને પાચ પચાસ કે તેથી વધુ વકીલ-બારીસ્ટર છે. આ બધા વિદ્વાનો જો એક સપી કરી જૈન સમાજને એકત્ર સમાજ બનાવવા ધારે તો અલ્પ સમયમાંજ થઇ શકે, પણ આ વિદ્વાન બંધુઓને તો કેટલીક વખત બોલવાનુ જુદું હોય છે ને કરવાનુ જુદું હોય છે એટલે કે ભાઇ સાહેબ કોઇ પ્રાંતિક સભા કે જ્ઞાતિ મંડળના સભાસદ કે સેક્રેટરી હોય ? કે પછી પ્રમુખ તરીકે ચુંટાયા હોય ? ને પછી સમાજમાં પેસી ગએલા કુધારા વિરૂદ્ધ પોતાને બોલવાનું થાય, તો તે વખતે ઉંધું ચત્તું વેતરી નાખે છે ને પછી પોતાને ઘેર તેથી ઉલટુજ ચાલવા દે છે એટલે કે પોતે બાળ લગ્ન વિરૂદ્ધ બોલ્યા હોય, તો પોતાનાજ સંતાનોને આઠ કે દશ વર્ષે પરણાવે છે અર્થાત્ પારણામાંજ ઝકડાવે છે. જો વૃદ્ધ લગ્ન વિરૂદ્ધ બોલ્યા હોય, તો પોતેજ, પીસતાળીશ કે-પચાસ વર્ષની ઉમરે લગ્ન કરવા નીકળી પડે છે. એટલે આપણે જેની પાસે સુધારાની આશા રાખીએ તે વ્યર્થ થાય છે કેમકે નેતા જો ચારિત્ર્યવાન હોય, તોજ તેની અસર શ્રોતા ઉપર પડે છે.

બંધુઓ ? ચાલુ સમયમા તમારાથી જેટલો સમાજ સુધારો થઇ શકે તેટલો ભાગ્યેજ કોઇ મુનીઓથી થઇ શકે તેમ છે ? તમો એટલે વિદ્વાનો, ધારો તો જૈન ધર્મને દુનિયાના દરેક દેશમા ફેલાવી શકો તેમ છો. તમારા અંતરના મેલોને દૂર કરી જૈન સમાજને ઐક્યતા શિખરે સ્થાપી બધા ફીરકાને એકત્ર કરો તોજ તમારી લીધેલી ઉંચી કેળવણી સાર્થક થાય.

સમાજમા તમારા જેવા સુધારાને પંથે આગળ ધપવાની આશા વાળા સજ્જનોની હયાતિ છતાં જૈન સમાજ અંદરો અંદરના ઝઘડામા લાખો રૂપીયા દરસાલ બરબાદ કરે છે તે શરમાવા જેવું નથી !

તમે જો અધ શ્રદ્ધાળુ વૃદ્ધોને ફટકારી તેમની પાસેથી સમાજનું નામ ચલાવવાના હલેસા રૂપી સત્તા છીનવી લઇ સમાજને એકજ ફિરકા જૈન નામથી જગતમાં જાહેર કરો, તો તમારી લીધેલી ઉચી કેળવણી સાફલ્ય ગણાય ને સમાજ પડતીમાથી કાઇક ઉન્નતિને પંથે પગ માડી શકે ? બાકી જો આપણા સમાજની વર્તમાન દશા ચાલુ રહેશે, તો આપણી ઉત્તરોત્તર અધોગતિજ થવાની,

સેંકડો સંકટો વેઠી સાચવી રાખેલ જૈન કિલ્લાની દિવાલો દુબળી પડી ગઇ છે, તેને સંપ રૂપી સીમેંટ ચડાવી રિપેર કરવાની જરૂર છે. તો તમે સુધરેલા કારીગરો તમારા જ્ઞાનનો સાર રૂપી સંપને અગ્ર રાખી તમારા પડી જતા સમાજ-રૂપી કિલ્લાને મજબુત બનાવી, તમારૂ ઐક્યતામય જૈન સમાજ રૂપી એકત્રિત રાજ્ય સ્થાપી સમાજને ચાલુ વાતાવરણને લાયક બનાવો, તમારા

સમાજના શાસ્ત્રોનું શોધન કરી તેને વધુ સરળ બનાવી જુદી જુદી ભાષામા મુદ્રિત કરાવો ? ચાલુ સમયને અનુકૂળ ફેરફાર કરવા ઠીક લાગે તો તેમ કરી જૈન ધર્મને વિશ્વવ્યાપક બનાવો ? તોજ તમારી લીધેલી કેળવણી સાફલ્ય ગણાય ?

અમુક સિદ્ધાંતોને પકડી બેઠેલ ધનિકો.

આ વર્ગના શ્રીમંત ગૃહસ્થો સમાજના સદાને જાણતાય નથી તેમ જોવાની દરકાર પણ કરતા નથી. છતા જો કોઇ ઉત્સાહી યુવક સુધારા બાબત કાંઇપણ આંદોલન કરે તો તરતજ તેઓ તેને દાબી દે છે. આ ઘણા વર્ગેજ ચાલુ સમયમા જૈન સમાજની અધોગતી આણેલી છે. તેઓ એટલા તો અંધ-શ્રદ્ધાળુ છે કે પોતે જૈન હોવા છતા કેટલાક મિથ્યાત્વી દેવ–દેવીઓને માને છે,–ભૂત–પિશાચની માન્યતાઓ કરે છે. પૂર્વજ–પિત્રાઇનુ શ્રાદ્ધ કરે અને કાઇક જણ પીર–પેગંબરને પણ માને છે. ખેદ છે કે આ વર્ગ અનેક ઉપદેશો આપવા છતા સુધરતો નથી

વળી જૈન સમાજમા બાળ લગ્ન, વૃદ્ધ લગ્ન, કન્યોડા, બાળ વિધવાની વૃદ્ધિ, ખોટા આડંબરવાળા જમણો અને વરઘોડાના નાહક ખર્ચો વિગેરે કુચાલો, તેમજ કુળવાન એટલે ધનવાન પણ અનીતિમાનને કન્યા આપવા તથા નીતિમાન પણ ગરીબને કુંવારા રાખવાના અનર્થો પણ તેજ વૃદ્ધ વર્ગ કરે છે કે જે સમાજને હળાહળ ઉંધે રસ્તે લઇ જનારા છે

આવી ખોટી સમજને લઇનેજ તેઓ સમા-જનું સત્યાનાશ વાળી નાખે છે. તેમના આવા વર્તન સંબંધે કે–સમાજમા ચાલતા કુરિવાજો નાબુદ કરવા તે સબધે જો કોઇ ઉત્સાહી લેખક ખુલ્લા પત્રોમા લખાણ કરે તો તેઓ તેને પહે-લાંજ નીચે પાડે છે.

આ લેખકને પહેલાં વૃદ્ધ લગ્ન નિષેધક લખાણ માટે તેમના આંદોલનનો કડવો અનુભવ આમ થયેલ છે, તે વખતે આ અંધ શ્રદ્ધાળુ વર્ગ ઉપરાંત ગ્રેજ્યુએટ અને વિદ્વાનનો ફાંકો રાખનાર કેટલાક આગેવાનો પણ તે જલ્સામાં ભળ્યા હતા. તેમ-નાથી મારી ચણેલી એકે ઇંટ ઉખેડી શકાઇ નહિ પણ ગુજરાતમા દિ૦ જૈનોમાથી વૃદ્ધ લગ્ન નાબુદ થયા તે હું નથી ધારતો કે ફરી દાખલ થાય.

દરેક જ્ઞાતિ કે–સમાજમા સચોટ લખાણ કરનાર હોય છેજ, પણ સાથેજ તેમને દાબી દેનારા તેમની પહેલાજ સમાજમાં જન્મેલા હોય છે, જેથીજ સમાજનો ઉત્સાહિત વર્ગ સમાજ સેવા કરી શકતો નથી, પણ જો તે ઉત્સાહિત યુવાન વર્ગ વૃધ્ધોની જીભને ફફડવા દઇ પોતાના કાર્યમા આગળ વધે તો જરૂર જૈન સમાજ ઉત્કર્ષતાને પામે ?

સમાજના આગેવાન અંધશ્રદ્ધાળુ શેઠીયાઓને મારે નમ્ર ભાવે જણાવાનું પડે છે કે–તમે હવે તમારો મમત્વ મુકો, ને ઉત્તમ ક્ષમા ધારણ કરી તમારા બન્ને ફિરકાને એકત્રિત કરો ? અન્યોન્ય ધાર્મિક જોડાણની સાથેજ વ્યવહારીક જોડાણ પણ કરો કે–જેથી અન્યોન્ય વિશ્વાસ ઉત્પન્ન થાય ને તમારો ધર્મ એક સર્વોપરિ ધર્મ બને ?

(વધુ હવે પછી)

દિગંબરો શું કામના ???

જ્ઞાતિવરા મોટા કરી, લ્હાવા બહુએ માણીયા.
પણ જ્ઞાતિબંધુ ભુખે મરે, દિગંબરો શુ કામના ???–૧

પૈસો અતિશય વાપરી, મંદીર મોટા બાંધીયા.
પણ સહાય ના કરી રંકને, દિગંબરો શુ કામના ???–૨

સોના અને ચાંદી થકી, મંદિર ઘણા શણગારીયા.
પણ પાઠશાળા ના કરી, દિગંબરો શું કામના ???–૩

સુંદર અને અતિ ઉચ્ચ કુળની પુત્રવધુઓ મેળવી,
નિજ જ્ઞાતિ જન વહુહીન રહ્યા, દિગંબરો શુ કામના ???-૪

પદવી અનેકો મેળવી, બહુ જ્ઞાન સંપાદન કર્યું
નાબુદ કર્યાં ના કુરિવાજો, દિગંબરો શું કામના ???–૫

મોહનલાલ મથુરાદાસ શાહ.–કંપાલા.

शोक ! शोक ! महाशोक !!!

श्री० चवरे वकीलका दुःखदायक वियोग !

अभी तो हम ज्योतिषरत्न पं० जैवी जियालालजीके वियोगको नहीं भूले है इतनेमें ही दि० जैन समाजपर एक और वज्र गिर पड़ा है—वह है—दक्षिणके दि० जैनोंके एक स्तम्भ स्वरूप-सेठ जयकुमार देवीदास चवरे बी० ए० बी० एल० वकील (अकोला) का असमयमें स्वर्गवास !!! सम्मेदशिखरजीके मेलेके बाद आप १० माहसे बिमार थे परन्तु बीचमें स्वास्थ्य अच्छा होगया था तो भी फिर पल्टा खाया और अंतमें ता० २३ जनवरीको दुपहरको करीब ५० की आयुमें आप कालके ग्रास होगये है, यह जानकर सारे दि० जैन समाजको अपार दुःख होगा; क्योंकि आप अंग्रेजी पढे लिखे विद्वान होनेपर भी आपका धार्मिक ज्ञान, धार्मिक श्रद्धा, धर्मसेवा व जातिसेवा अपूर्व थी तथा आप ऐक्यके पूर्ण उपासक थे। आप बम्बई दि० जैन प्रांतिक सभा, दक्षिण महाराष्ट्र जैन सभा, भारतवर्षीय दि० जैन परिषद आदि अनेक सभाओंके सभापति होचुके थे व महासभाके दोनों पक्षोंमें समझौता करानेके लिये आपने अटूट परिश्रम किया था। आपने अकोलामें निजी खर्चसे जैन बोर्डिंग वर्षोंसे खोल रखा है व खुद ही चलाते थे। आप महावीर ब्रह्मचर्याश्रम कारंजाके तो प्राणस्वरूप ही थे। अंग्रेजी पढे लिखे तो धर्ममें हीन व आचारमें भ्रष्ट होजाते है ऐसे कतिपय पंडितोंके आक्षेपका सीधा उत्तर देनेवाला आपका जीवन साक्षीरूप है। आपने बी० ए० की परीक्षा समय संस्कृतमें अव्वल नंबर प्राप्त किये थे जिससे आपको भा० जैन महामंडलसे बा० देवकुमारजी मेडल मिला था। आपने चार वर्ष तक "जैन भव्योदय" नामक मराठी मासिक भी चलाया था। आपकी तीर्थभक्ति व तीर्थसेवा भी अपार थी। अंतरीक्षजी केस २५ वर्षोंसे आप ही निस्वार्थ वृत्तिसे चला रहे थे व प्रिवी कौंसिलतक आप ही लेगये है। दि० जैन समाजको आपका वियोग चिरकाल तक भुलाया नहीं जा सकेगा। आपके जन्मस्थान कारंजामें आपके करीब ५०—६० कुटुम्बीगण है वे सब इकत्र व्यापार करते हुए एक-साथ रहते हैं व महावीर ब्र० आश्रमके खास आश्रयदाता हैं। आपकी आत्माको शांति व कुटुंबीगणको धैर्य प्राप्त हो यही हमारी श्रीजिनेन्द्र देवसे प्रार्थना है।



श्रीमती मगनब्हेन जयंति.



श्रीमती मगनब्हेन चीरंजीवो

श्रीमति मगनब्हेन! "चिरंजीवो", अगणित गुणरत्नोनी खाण;
महिलाओनी उन्नति अर्थे, तन मन धनना दीधां दान-श्रीमति० १
तीरथ समजी सकल संघनी, फरज गणीने करो छो सेव;
मन, वच, काया, निर्मल करवा, भजो छो भावे जिनवर देव-श्रीमति० २
मनना गमन निवारण कारण, धरो छो ज्ञान ध्यान पर प्रेम;
नरभव दुर्लभ सार्थक करवा, राखो छो रंको पर रेम-श्रीमति० ३
ब्हेन! विषम आ कलिकाल छे, सुसंगमां रहेजो दिनरात;
भाव धरजो दुर्ध्यान कदापि, 'जनता' मां जोजो "जगतात"-श्रीमति० ४
चित्तडुं चंचल अचपल करवा, भक्ति सुधारस करजो पान;
रंक रायमां समचित्त राखी, सम गणजो मानापमान-श्रीमति० ५
जीवननो ल्हाई लेवा ल्हावो, सहायक गणजो त्याग-वैराग;
घोटर वारि (शाब्दिक) झगडा त्यागी, धरजो 'शिव' पदपर अनुराग-श्री० ६

नोटः—श्राविकाश्रम बम्बईमें ता० ९ जनवरीको श्रीमती जैनमहिलारत्न मगनब्हेन जे० पी० की ४० वीं जयती मनाई गई थी तब उपरोक्त नवीन काव्य श्री० शीवजी देवशीने सुनाया था।

'जैनविजय' प्रेस सुरतमें मूलचन्द किसनदास कापडियाने मॉडलकर चन्दावाडी-सुरतमें प्रकट किया।

ॐ

दिगम्बर जैन

वर्ष २४
अंक १-२

वीर सं० २४५७
कार्तिक मार्गशीर्ष

सचित्र विशेषांक।

सम्पादक और प्रकाशक

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
सूरत।



श्री० विट्ठलभाई पटेल।



सरदार वल्लभभाई।



पं० मोतीलाल नेहरू।



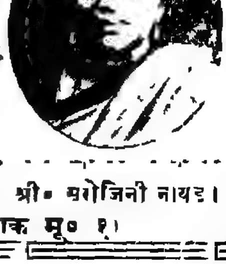


पं० जवाहरलाल नेहरू।

अहिंसाके आदर्श उद्धारक-
भारतके भाग्यविधाता-
महात्मा गांधीजी।



पं० मदनमोहन मालवीय।



श्री० सरोजिनी नायडू।

उपहारोंके पोस्टेज सहित वार्षिक मूल्य २।) विशेषांक मू० १)

विषयानुक्रमणिका।

चित्र-सूची।

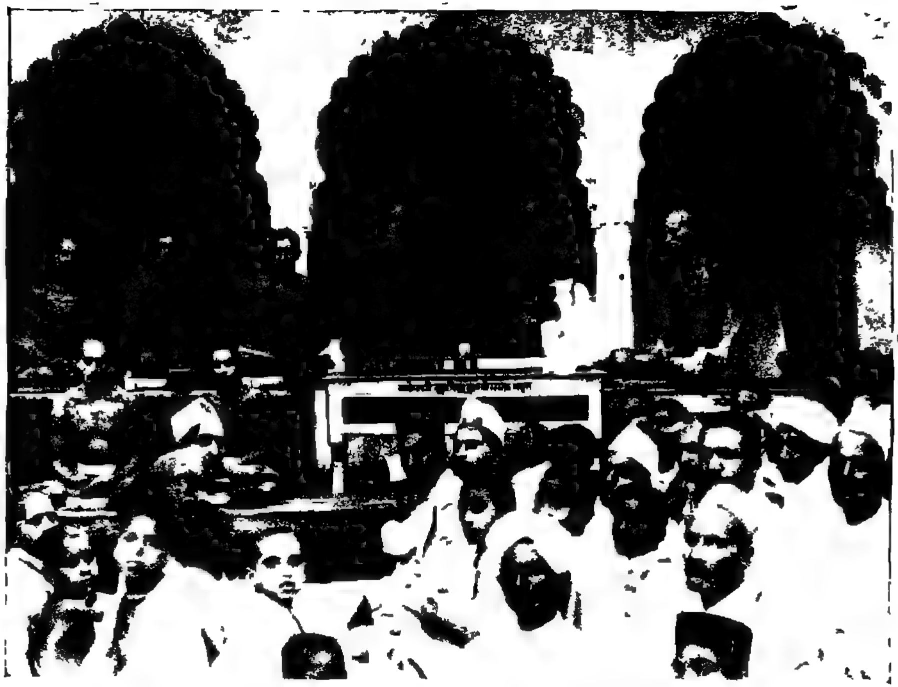
સુરપોર (ડુંગરપુર)માં માગસર વદ ૯–૧૦ને દિને દોશી મોરાચંદ વેલજી તરફથી રવિવાર વ્રત ઉદ્યાપન થયું હતું જે પ્રસંગે ૫૦૦–૭૦૦ ભાઇઓએ લાભ લીધો હતો અને સભા ભરાઇ હતી તેમાં વીંછીવાડાના માસ્તરે કુરીવાજો દૂર કરવા ભાષણ આપ્યું હતું ને વખતે નાગગાં પંચ તરફથી વીંછીવાડા પાઠશાળાને ૩૪) મળ્યા હતા. આ પાઠશાળાના સ્વયંસેવકોએ સારી સેવા કરી હતી.

પાલમાં મહોત્સવ-ઇડરની પાસે આવેલા પાલ ગામમાં પ્રાચીન નેમીનાથ સ્વામીના મંદિરપર ધ્વજારોહણ અને કલશારોહણ ઉત્સવ મહા સુદ ૫ થી ૮ સુધી થશે જેમાં સુદ ૬ મહેતા રેવચંદ અને ગડિયા મહેશ્વરભાઇ તરફથી ધ્વજાદંડ ને છગનલાલ સખમલ તરફથી કલશ ચઢશે સુદ ૭ ટાકાટુકાવાળા શેઠ કોદરલાલના પ્રમુખે સુભઙ કોન્ફરન્સ મળશે ને સુદ ૮ જલયાત્રાનો વરઘોડો છે. આ સ્થાને ઇડર કે ખેડબ્રહ્માથી મોટર દ્વારા જવાય છે. કેશરિયાજી અત્રેથી પાસેજ છે.

लखनउमें–वार्षिक रथयात्राका मेला माघ सुदी १से ८ तक होगा।

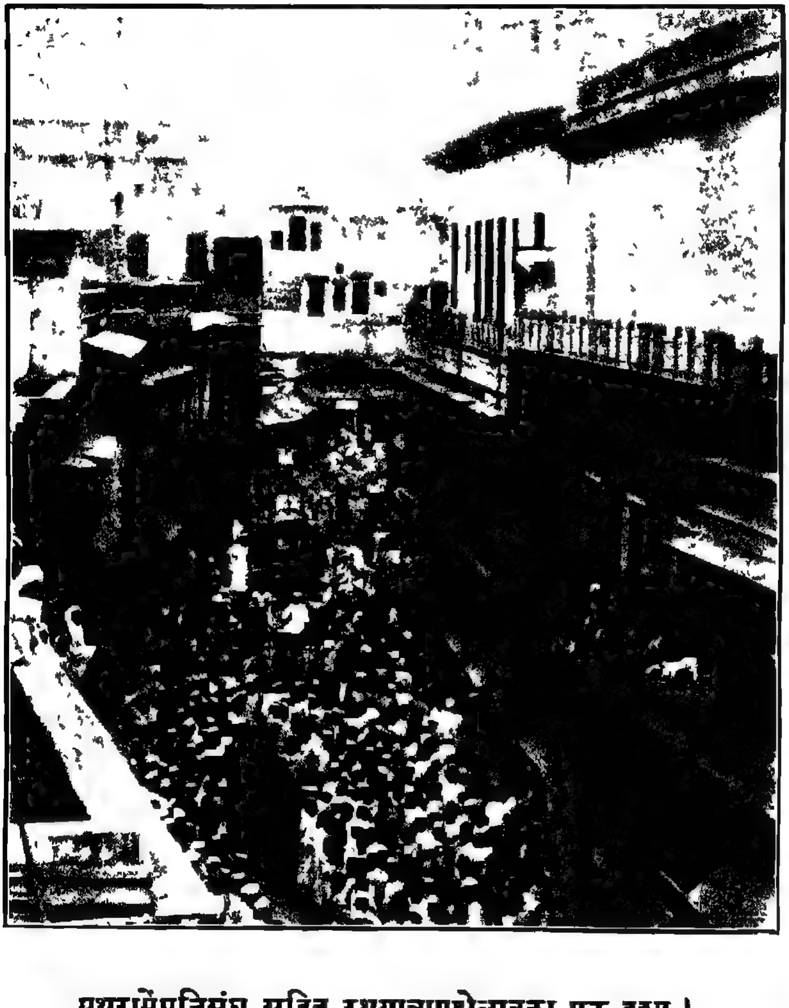
इटावामें–पं० चन्द्रसेन वैद्यकी पुत्रीका अन्तर्जातीय विवाह फाल्गुन वदी ४ को होगा। तब विनयसागर समाधि स्थान पर मेला भी भरेगा।

कुंडलपुरमें–फाल्गुन वदी १ से ५ तक विमानोत्सव होगा।



चौरासी (मथुरा) में मुनिसंघ (वीर स० २४९६)

(१) मुनि श्री नमिसागरजी, (२) मुनि श्री कुंथुसागरजी, (३) मुनि श्री नेमिसागरजी, (४) आचार्य श्री शांतिसागरजी, (५) मुनि श्री वीरसागरजी, (६) मुनि श्री चन्द्रसागरजी, (७) मुनि श्री श्रुतसागरजी, (८) क्षुल्लक अजितसागरजी, (९) क्षुल्लक ज्ञानसागरजी।



मथुरामेंमुनिसंघ सहित रथयात्रामहोत्सवका एक दृश्य ।

जैनविजय प्रेस, सूरत।

॥ श्रीवीतरागाय नमः ।

दिगम्बर जैन

नाना कथाभिर्विविधैश्च तत्त्वैः सत्योपदेशैस्सुगवेषणाभिः ।
संबोधयत्पत्रमिदं प्रवर्तताम, दैगम्बरं जैन-समाज-मात्रम ॥

वर्ष २४वां | वीर सम्वत् २४५७, कार्तिक-मर्गसिर विक्रम सम्वत् १९८७. | अङ्क १-२.

आह्वान ।

(रचयिता-पंडित मूलचन्द्र जैन "वत्सल" काव्य-कलानिधि-बिजनौर ।)

पधारो ! आओ दयानिधान !
अनुपम अक्षय पवित्र पुण्यमय, यह शुभ दिवस महान ।
स्वर्णाक्षर अङ्कित स्वधर्मका, उज्ज्वल धवल निशान ॥ पधारो०
आत्मवीर सद्धर्म प्रणेता, सन्मति गुणगण खान ।
हृदयनाथ ! भगवान आपने, पाया था निर्वाण ॥ पधारो०
किया अहा ! निर्वाण महोत्सव, शचीनाथने आन ।
वह अनन्त स्फूर्ति किरण, करती नव जीवन दान ॥ पधारो०
किन्तु आज वह दृश्य न अवगत, नहीं वही सामान ।
क्या ? निर्वाण महोत्सव है यह, अथवा विपत्तिविधान ॥ पधारो०
मानव हृदयप्रदीप अन्तर्गत, धर्म स्नेह अवसान ।
दिव्य ज्ञानमय विमल ज्योतिका, प्राप्त न अनुसन्धान ॥ पधारो०
दुरितम मिथ्यातम फैला है !, अन्त आत्मविज्ञान ।
सत सरल पथ विस्मृत है विभु !, करो पुनः कल्याण ॥ पधारो०

हृदयोद्गार।

[रचयिता–पं० परमेष्ठीदासजी जैन न्यायतीर्थ–सूरत ।]

कब प्रभो ! यह देश स्वतंत्र हो, सुखसमृद्धिमई फिरसे बने ।
कर सके अपने व्यवसायको, भर सके फिर भी निज कोषको ॥ १ ॥
दुख रहे न यहाँ अब अन्नका, जन न चिन्तित हों निज वस्त्रको ।
सब गुणी बनके सुखसे रहें, फिर परस्पर प्रेम बढ़े सदा ॥ २ ॥
अति दुखी अब हैं हम होचुके, सुख मिला न कभी पर-तंत्रसे ।
इस लिये निज तंत्र नियुक्त हो, अब न शासन है प्रिय अन्यका ॥ ३ ॥
दुखित हो निजबंधु कराहते, न मिलता उनको जल अन्न है ।
कुछ न ध्यान दिया हमने अहो ! बिगड़ते दिनरात चले गये ॥ ४ ॥
मिट गये अब तो हम खूब ही, लुट गये अपनी अति भूलसे ।
ब्रिटिश वस्तु न जो हम चाहते, न इतने दुखियां बनते कभी ॥ ५ ॥
अब न लें हम वस्तु विदेशकी, उधरसे मम चित्त विरक्त हो ।
प्रिय लगें सब वस्तु स्वदेशकी, गुजर हो इसमें अपनी सदा ॥ ६ ॥
न हमसे जगको दुख लेश हो, न कुछ भी व्यवहार असत्य हो ।
न पर वैभवकी कुछ चाह हो, शुचि सु-संयम शील बना रहे ॥ ७ ॥
हम नहीं पहिले कुछ जानते, इसलिये चुपचाप पड़े रहे ।
लग चुका जब दीमक खूब ही, अजब 'मोहन'-नींद खुली तभी ॥ ८ ॥
फिर जगा उसने हमको दिया, सजग भारतवर्ष किया सभी ।
छिड़ गया तब युद्ध अपूर्व ही, उधर शस्त्र यहांपर शांति है ॥ ९ ॥
अगर युद्ध अहिंसक ही रहा, विजय निश्चय है तब धर्मकी ।
तुरत "दास" मिटाकर दासता, फिर स्वतन्त्र सु भारतवर्ष हो ॥१०॥

जैनोंने नूतन वर्ष मुबारकबादी।

जैनीओ निशदिन नूतन बरस सुखमय गाळजो,
आपत्ति जे जे जैननी शान्ति प्रभु निवारजो.
नूतन नरोत्तम वर्षमां सिद्धि अने सिद्धि थशे,
एवा दिगंबर जैन सुखमय नविन बरस निभावजो-१

स्वराज्य केरो वावटो जे जैनीओ ऊंचो धरो,
नाम वंदे मातरम् जे प्रातःकाळे समहरो.
जेवी वृती तम मात प्रत्ये तेवी नित्य धारजो.
एवा नरोत्तम जैन सुखमय नविन बरस वितावजो-२

विद्या वधारो बाळकोनी वस्त्र पण बदलावजो,
जे विदेशी वस्तुओ छे ते स्वदेशी लावजो
माता तणी भक्ति भुले नहि खादीने सभाळजो,
एवा दिगंबर जैन सर्व किर्तीने छलकावजो-३

करजो हमेशा सार्थ निजे हिंदनु दुख टाळवा,
पण नहि रमजो कदि गरीबन कमलथी रीबावबा.
जनम्या तमारा देशमा जे मातृ-भक्ति न भुलजो,
एवा दिगंबर जैननी कीर्ति जग जश जामजो-४

होळी जमण दारु तणा जे कुरिवाजो काढजो,
ए दुर्व्यसन नाटको भावता चाल चित्त नव लावजो.
धन धान्य करता विद्वता ऊंची गणीने पाळजो,
एवा दिगंबर जैननो जश विश्वमा वरतावजो-५

वळी धर्मने सौ पाळजो नहि आत्मथी जुदा गणो,
धर्म स्थापी टेवी कापी मोक्ष पथे चालजो.
धर्म धुरंधर बनी हा धर्मनो धाडे वरो,
एवा कृपाळु जैन नित्ये मात वंदे उच्चरो-६

धन धान्यनी वृद्धि थजो वृद्धि थजो विद्यातणी,
विपत्ती टळजो न लहेरे लग्नी नूर तणी घणी.
नेक टेक विवेक धारि खादीना हित चाहजो,
हिंदी दिगंबर कोमनु जे धर्म छे दीपावजो-७

रहेजो कुशळ वळी क्षेमताथी वस्तीने वधारावजो,
जड देश वेश विदेशमा हा विद्वताने लावजो.
संप जंपनी सहायता हा निश्चय लेवावजो,
एवा दिगंबर जैनीओ तुम पितृ भक्ति बतावजो-८

आरोग्यताने जाळवी संसारना सुख भोगवो,
वदन वदावा मातनु हा बाळकोने केळवो.
इन्कीलाब जीन्दाबाद जे जय जगतमां प्रकटावजो,
एवा दिगंबर जैनीओ नृज विजय जंग वधारजो–९
हे तारनार उगारनार कृपानिधार विचारजो,
कहे लाल चंदु जैनीओ नूतन हरेक नितावजो.
सर्व वाते भरतखंडी जन तणा सुखडां थजो,
हिंदी दिगंबर हरख उरथी खादी अंगे धारजो–१०

चंदुलाल हाथीभाई (सोनासण नि०) वि० इडर बोर्डिंग ।

रामराज्यनो चमत्कार ।

उथल पाथल थाय, अवनिमां हाहाकार वरताय.
अरध लाख गया जेल महेलमां, हैयुं फाटी जाय. अवनिमां०–१
मनस्वि कायदा दबाववाने, निशदीन नविन जणाय,
रामराज्य कहेता सौ मुखथी, खुल्लो खेद जणाय. अवनिमां०–२
स्वतंत्रता छे सौने प्यारी, महासभा फरमान,
गेर कायदे आज ठरावी, भारतनुं अपमान. अवनिमां०–३
राष्ट्रध्वज त्रीरंगी झुंडो, फरकावो धरी मान,
हिंदु मुस्लिम जैन पारसी, राखो एज निशान. अवनिमां०–४
धन वैभव आहुति आपो, देह करो कुरबान,
विनय भंग अहिंसामय जंगे, सर्वस्व द्यो बलिदान. अवनिमां०–५
तीर किरच भाला ने तोपो, जोई करो सनमान,
बाल युवक नरनार डरो नहि, भजो राम रहेमान. अवनिमां०–६
भले मरो मारो नहि कोने, खादी पर धरी टेक,
ब्रिटीश गुडस बॉयकॉट करीने, राखी एज विवेक. अवनिमां०–७
घेर घेर कॉंग्रेस हाऊस स्थापना, जंगल झाड तमाम,
नदी नाळां दरीआ पर बांधो, अन्तर राखी हाम. अवनिमां०–८
बत्रिस कोटी आझादी लेतां, भले फना थवाय,
रामराज्य सहेजे सांपडशे, विजय आपणो थाय. अवनिमां०–९

हाथीभाई माणेकचन्द, सोनासण.

नूतन वर्ष ।

शुं कृत्य सुकृत्य कर्यां ! गत वर्ष हाथे ?
शुं देश-प्रेम प्रभुता ! प्रही प्रेमी साथे ?
शुं आत्मभाव विलस्यो ! वीर तें विचारी,
दीवाळी आ दिन रुडो कर तुं दीवाळी.

× × ×

शुं रिद्धि सिद्धि बुद्धि धैर्य विद्या वधारी !
शुं मातथी अधिक शांति बीजी विचारी !
जाण्युं-विचार्युं वीर तें कृतिमां निहाळी,
दीवाळी आ दिन रुडो कर तुं दीवाळी.

× × ×

आ देह ते धरी करे वधवा विवेके !
शुं सिद्ध ते करी ठर्यां सुखना प्रदेशे !
शुं मेळव्युं जीवन आयु सटे विचारी,
दीवाळी आ दिन रुडो कर तुं दीवाळी.

× × ×

प्रारब्धनी प्रबळता सुखमां वधी शुं !
शुं योग भूमि पुरुषार्थो थतां मळी शुं ?
शुं आश सर्व सुख इप्सितमां सुहाणी ?
दीवाळी आ दिन रुडो कर तुं दीवाळी.

× × ×

स्नेहार्द अंतर शुचि चितनी वधी शुं ?
शान्ति प्रशान्ति तनु कान्ति वीरा वधी शुं ?
शुं स्नेह भूमि उर आ बनी छे रसाळी ?
दीवाळी आ दिन रुडो कर तुं दीवाळी.

× × ×

सौन्दर्य सृष्टि सुविचार रूपे प्रसारी,
व्हालो थयो सुजन योगी वियोगी भारी ?
'हुं' मां उपाधि धरी वीर 'हुं' मां विलावी,
दीवाळी आ दिन रुडो कर तुं दीवाळी.

मोतीलाल त्रीकमदास मालवी-वाकरोद ।

प्रबोधन ।

बढ़ो आगे नवयुवक उदार !

शंख बजाओ नव जागृतिका,
अंत करो नाशक अवनतिका ।
मोह तजो अब डायन क्षतिका,
कुशल तभी है एक इन अब बढ़े न स्वेच्छाचार ॥
बढ़ो आगे० ॥

आकृति* का अपमान होरहा,
बहिनोंका बलिदान हो रहा ।
रथका बन्द पयान हो रहा,
हुआ दीखता है क्षणभरमें सारा बण्टा ढार ॥
बढ़ो आगे० ॥

अब तुम पर ही हैं आशायें,
कहती ये मुकुलित भाषायें ।
पर-डरना न निरख बाधायें-
जाती सदा रहेगी यह तो बन २ कर साकार ॥
बढ़ो आगे० ॥

यदि तुमने खोया ये अवसर,
'अमर कलङ्क' रहेगा तुमपर ।
समझदार हो कहो समझकर-
क्या उलाहना 'शशि' न तुम्हें ही देगा सब संसार ॥
बढ़ो आगे नवयुवक उदार !

कल्याणकुमार जैन 'शशि' ।

*-मूर्ति, -उद्धृति न करें, -उधर ।

देशभक्तोने चरणे.

(सुमङ्गी वृत्त)

पनीने शुरा वीर सत्याग्रहीओ,
झुक्या देश उद्धारमां आज जेओ;
करे धैर्यथी देशना प्रेमी वीरा,
नमस्कार ते देशभक्तोने म्हारा.

× × ×

गुलामी थकी देशने मुक्त करवा,
शुरो साच स्वतन्त्र डङ्को गजववा;
पड्या सत्यना जंगमां थई अधीरा,
नमस्कार ते देशभक्तोने म्हारा.

× × ×

न परवा धरी कीधुं सर्वस्व अर्पण,
जितेन्द्रु खरा देशना आप्युं जीवन;
करभिक्षा थई शत्रु धुजावनारा,
नमस्कार ते देशभक्तोने म्हारा.

× × ×

हीरामणी ज्यां हस्ते शृंखला ने बेडी,
दीधा बंधनो सर्व अन्यायी तोडी;
सहे दुःख कारागृहे जे अनेरा,
नमस्कार ते देशभक्तोने म्हारा.

× × ×

सुको रोटलो ने सुवा ज्यां गमे त्यां,
चडे जोर सत्ता छुंदाय ठोकरे ज्यां;
गणी जेलने म्हेल थतां सौथी न्यारा,
नमस्कार ते देशभक्तोने म्हारा.

× × ×

सजी देशनी उन्नति खादी अंगे,
स्वतंत्र करवा हिन्द माताना जंगे;
बलिदानो आप्या वहे रक्त-धारा,
नमस्कार ते देशभक्तोने म्हारा.

× × ×

त्रिरङ्गी ध्वजा ने मुखे वंदेमातरम्,
गुणो गाय हिंद मातना शौर्य हरदम;
स्वदेश कारणे जाय जे धन्य वीरा,
नमस्कार ते देशभक्तोने म्हारा.

× × ×

विभु देश सौ दीपकने सहाय थाजो,
दई धैर्यने बुद्धि बळ कष्ट हरजो;
हजो दीर्घ आयु भूमि मातृ प्यारा,
नमस्कार ते देशभक्तोने म्हारा.

रामचन्द्र माधवराव मोरे-सूरत.

निवेदन।

सुनो जैन वीरो अहिंसाके धारी।
बनो तुम अहिंसाके सच्चे पुजारी॥
सताना किसीको महा जुर्म कहते।
लटो व पिपीलोंकी रक्षा विचारी॥

× × ×

पियो छान पानी जिवानी बनाते।
उसीमें छुड़ाते जहांका है पानी॥
तथा शुद्ध भोजनका करते समर्थन।
उसीपर बहिस रोज होती तुम्हारी॥

× × ×

नहीं लेकिन इसपर जरा ध्यान देते।
पहिनते हो चर्बीसे तर वस्त्र भाई॥
मिलोंके सभी वस्त्र चर्बीसे तर हैं।
इसीसे करो छोड़नेकी तैयारी॥

× × ×

सभी स्त्रियां शुद्ध खादीको धारें।
न उनके लिये होवे रेशमकी सारी॥
सभीके ही तनपर हो खद्दर पियारा।
यही "प्रेम" गांधीकी आज्ञा है जारी॥

ब्र० प्रेमसागर-पीठी।

नवीन वर्षे ऐक्य करो.

निर्वाणनो छे दिन आ, प्रभु वीरजी जीणंदनो,
लोको बधा दिपमाळथी, उज्वळ करे संसार तो.
जैनो तणा जैनत्वने, जेणे प्रकाश्युं पृथ्वी,
एवा प्रभु महावीरने, सौ आज वंदो भावथी–१
जागी जुओ जैनो तमे, जगमां बधा जागी गया,
जेने गणेला जैनीओ, ते आज तो पाछळ रह्या.
समाजना रणक्षेत्रमां, पंडित अने बाबू पड्या,
जैनो तणी जयवेलने, चीमळावबा शत्रु थया–२
छे समय आजे आपणो, सौ संपथी सुधारवा,
पंडित ने बाबु तणा बे, भेदने संहारवा.
छे वृक्ष एकनी डाळ बन्ने, मानशो जो दिलथी,
एकत्र थई अजवाळशे, जैनो तणा सत्संपथी–३
वीरे कदी नव भाखीयुं के, पुत्र हे ! लडजो तमे,
पण आपणे अज्ञानताथी सौ भेद पाड्या छे अरे.
जैनो जगे झळकावजो, सौ जैन एकज सुमथी,
दिगम्बरी श्वेतांबरी ए, भेद छोडो स्नेहथी–४
हृदये जरा जो लागणी, होए कदी महावीरनी,
आजे बधा एकत्र थई, गती सुधारो आपणी.
स्वराज्यना रणक्षेत्रमां, आपो वळी फाळो सखा,
नूतन बनेला वर्षमां, सौ संपजो मोहन सदा–५

मोहनलाल एम० शाह, कार्णसाकर–कम्पाला (युगान्डा)

मरदाने हैं ।

किसको बताते आप, जेलका कहो तो खौफ़, दारपै चढ़ाओ–दगवाओ तोपखाने हैं ।
लाठियोंसे मारि मारि, प्रान हू निकारि डारो, आह ना करेंगे, हम देशके दिवाने हैं ॥
आफतें हज़ारों–बरदाश्त भी करेंगे सब, आज़माय देखो, यार जैसे अजमाने हैं ।
अब तो अज़ाद होके, हिंदमें रहेंगे 'प्रिय', देख लेना हिंदुवाने, कैसे मरदाने हैं ॥

'प्रिय' वृन्दावन ।

बूढ़े बाबा गांधीने ।

सोते भारतको खूब जगाया, बूढ़े बाबा गांधीने ।
हिन्दू-मुसलिमका प्रेम बढ़ाया, बूढ़े बाबा गांधीने ॥ टेक ॥
ले शस्त्र अहिंसाका करमें, और स्वार्थ त्यागको धारण कर ।
निज आत्मिक बल कैसा दिखलाया, बूढ़े बाबा गांधीने ॥ सोते० ॥
जो वस्त्र विदेशीके कारण, दुर्दशा देशकी होती थी ।
इसका परिचय हमको करवाया, बूढ़े बाबा गांधीने ॥ सोते० ॥
आजादी पानेके खातिर, क्या खूब मार्ग बतलाया है ।
तकली चरखाका चक्र बताया, बूढ़े बाबा गांधीने ॥ सोते० ॥
भारतवासी निज कर्म भूल, गहरी निद्रामें सोते थे ।
हठ करके उन्हें जगाया है बस, बूढ़े बाबा गांधीने ॥ सोते० ॥
दासत्व हमारी नस नसमें, फैला था विदेशी शिक्षासे ।
अनुभव इसका हमको करवाया, बूढ़े बाबा गांधीने ॥ सोते० ॥
हे 'हंस' निवेदन है आखिर, हो सफल सत्य संग्राम यही ।
है धर्म अहिंसा बता दिया उस, बूढ़े बाबा गांधीने ॥ सोते० ॥

केसरीमल लायब्रेरियन-डूंगरपुर ।

विपरीत बुद्धि ।

अहा हा ! जुओने विपरीत क्रांति ।
दीसे न आजे हिंद मांहि शांति ॥
सरकारने पण नव रहेनी शुद्धि ।
विनाश काळे विपरीत बुद्धि ॥
ज्यारे जुओने राजाज पोते ।
पाडी रह्यो छे शुं जुलम आ ते ॥
कल्पाकनी ज्यां थई रही छे वृद्धि ।
विनाश काळे विपरीत बुद्धि ॥
स्त्रीओने उपर ज्यां लाठी ने गोळी ।
मारे छूरे छे रहुं हिंद डोळी ॥
सत्ता ने शस्त्र बळ जुलमे मदाधि ।
विनाश काळे विपरीत बुद्धि ॥
सत्याग्रहीओ शूर सत्य वीरा ।
स्वदेश माटे सहे दुःख अनेरा ॥
रे ! रे ! हवे तो थई रही छे अवधि ।
विनाश काळे विपरीत बुद्धि ॥
बाळक, युवा, स्त्री, वृद्धनुं न भान ।
सौ पर सितम छे भले हो महान ॥
वहे लोही आंसु प्रमाने न सिद्धि ।
विनाश काळे विपरीत बुद्धि ॥

रामचंद्र माधवराव मोरे-सुरत ।

सम्पादकीय व

" दिगम्बर जैन " को सा..

नूतन वर्ष ।

आज २३ वर्ष निर्विघ्न व्यतीत होचुके हैं और अब यह २४ वें वर्षमें पदार्पण करता है । पाठक इस बातको स्वीकार करेंगे कि आजसे २० वर्ष पूर्व हमने ही दिगम्बर जैन समाजमें विशेषांक निकालनेका प्रारम्भ किया था और अनेक उपहार ग्रन्थ प्रदानकर इस प्रथाको चलाया था, जो आजतक अविकलरूपसे चालू है । वैसे तो दिगम्बर जैनके अनेक बढ़ियासे बढ़िया विशेषांक निकल चुके हैं, मगर इस विशेषांकमें कुछ और ही विशेषता है-कुछ चित्रोंको छोड़कर बाकी तमाम फोटो उन दिगम्बर जैन वीर और वीरांगनाओंके दिये गये हैं जिनको वर्तमान अहिंसात्मक सत्याग्रह संग्राममें जेल जानेका अवसर प्राप्त हुआ है । दिगम्बर जैन समाजमें यह हमारा प्रथम ही प्रयास है । हमारी इच्छा तो थी कि ऐसे चित्र सैकड़ोंकी संख्यामें निकाले जावें । इसीलिये दो माह हुये समाजसे जेलगत वीरोंके चित्र भेजनेके लिये सूचित करते रहे थे। मगर खेद है कि करीब १० दिगम्बर जैनोंके ही फोटो प्राप्त होसके हैं । फिर भी जिन महानुभावोंने यह फोटो भेजे हैं उनके हम हृदयसे आभारी हैं । प्रकाशित चित्रोंका यथायोग्य परिचय संक्षेपमें अन्यत्र प्रगट किया गया है ।

हमारे पास एक फोटोका बनाया हुआ ब्लाक तथा किसी भाई द्वारा भेजा गया एक ब्लाक परिचय (नामादि) न मालूम होनेसे योंही पड़ा रहा है । खेद है कि इसी लिये हम उसे प्रकाशित नहीं कर सके हैं । जिन लेखकों कवियों और उत्साही सज्जनोंने इस विशेषांकमें हमें किसी तरहसे भी सहायता की है, हम उनका हृदयसे आभार मानते हैं । चित्रोंकी आयोजनामें यह अंक निकालनेमें आशातीत विलम्ब हुआ है, इसलिये पाठक क्षमा करेंगे व स्थानाभावसे अनेक विद्वानोंके लेख हम इस अंकमें प्रगट नहीं कर सके हैं, इसलिये भी क्षमा चाहते हैं । अब आगामी पौष और माघका संयुक्त अंक हम बहुत जल्दी निकालनेका प्रयत्न करेंगे । जिसमें खास अंकके लिये आए हुए शेष लेख अवश्य प्रगट होंगे ।

* * *

उपहार ।

वैसे तो 'दिगंबर जैन' उपहार ग्रन्थ देनेमें प्रसिद्ध है ही, मगर इस वर्ष तो हमने इसकी अच्छी योजना की है । नये तथा पुराने ग्राहकोंको यह १) का विशेषांक दिया जावेगा । साथमें ही "आध्यात्मिक सोपान, ऐतिहासिक स्त्रियां, व सल्लेखना और मृत्युमहोत्सव" इन ३ ग्रन्थोंके देनेका भी निश्चय किया है । जिनका मूल्य करीब १॥) होगा । इस प्रकार मात्र २।) वार्षिक मूल्य लेकर ३॥) की भेट तो इस प्रकार आपके पास पहुंचेगी । साथ ही दिगंबर जैनके और १० अंक मुफ्त ही पढ़नेको मिलेंगे । इसलिये आप इसका १-१ नया ग्राहक बनानेका प्रयत्न अवश्य करिये । विशेषांक बहुत थोड़े ही हैं । यदि

ग्राहक बनेंगे तो यह अंक मुफ्तमें ही मिल सकेगा।

***

जैन समाज और राष्ट्रीय संग्राम।

यह बात तो स्पष्ट ही है कि वर्तमान राष्ट्रीय संग्राम जैनधर्मके मूलतत्व अहिंसापर चल रहा है। इसीलिये जैनसमाजने भी इसमें आशातीत बलिदान दिया है। हमारा अन्दाज है कि मात्र ११॥ लाख संख्यावाली जैन समाजमेंसे कमसेकम १००० वीर जेल अवश्य गये होंगे। इनके साथ ही साथ और भी तन, मन, धनसे देश सेवा करनेमें जैन समाज पीछे नहीं है। यह बड़े ही गौरवकी बात है।

यह बात आबाल वृद्धको विदित है कि पराधीन देशमें भलीभांति धर्मका प्रतिपालन नहीं होसक्ता और न समाजोन्नति ही होसकती है। कारण कि विदेशी राज्यके होनेसे देशकी आर्थिक परिस्थितिका बिगड़ जाना अवश्यंभावी है। और ऐसा होनेसे दीनता बढ़ती है, समाज अवनत होती है तथा धर्म मार्ग नहीं सूझता। इसीलिये देशमें आज आजादीकी अग्नि प्रज्वलित हुई है। एक ओर सरकारका दमन बढ़ता जाता है तो दूसरी ओर भारतीय सर्वस्व बलिदान करनेको तैयार होरहे हैं। अनेक जगह पुलिसने लाठीप्रहार और गोलीबार किये है, धन और मकान जप्त किये गये हैं, कुटुम्बके कुटुम्ब जेल भेजे गये हैं, करीब पौनलाख वीर कारावासमें जाचुके हैं। जानमालकी खराबी होरही है, अनेकों आजादीके दीवाने लाठीप्रहारादिसे मरणको प्राप्त हुए हैं, फिर भी स्वतन्त्रताकी लड़ाई बड़े ही वेगसे बढ़ती जारही है। हर्ष तो इस बातका है कि एक ओरसे सब तरहका दमन होनेपर भी दूसरी ओर उपसर्ग सहिष्णु भारतवासी अहिंसक और शांत रहकर लड़ रहे हैं। यही तो अहिंसाधर्मकी अपूर्व विजय है।

***

हमारा कर्तव्य।

हम जैनसमाजसे निवेदन कर देना चाहते हैं कि ऐसी विकट परिस्थितिमें कमसेकम प्रत्येक घरमें स्वदेशी वस्त्रका प्रचार होजाना चाहिये, किसी भी जैन मन्दिरमें हिंसाजन्य अपवित्र विदेशी वस्त्रका एक भी टुकड़ा न रहने पावे। घर२ में चर्खेका प्रचार होजावे। और आपके पड़ोसी या ग्राममें मद्यपानी (शराब आदि पीने वाले) कोई न रहें। प्रत्येक जैनका कर्तव्य है कि दूसरोंको व्यसनोंसे मुक्त करे। क्या हम आशा करें कि आप इतना करके देशकी स्वतंत्रतामें भागी होंगे?

***

मनुष्य गणना व जैन समाज।

गत प्रत्येक दश वर्षोंकी भांति इस वर्ष भी सर्कार भारतवर्षकी मनुष्य गणना कर रही है। २६ फर्वरी सन् ३१ की रात्रिको सर्वत्र मर्दुमशुमारी होनेकी घोषणा हुई है। बड़े ही खेदके साथ लिखना पड़ता है कि अनेक पत्रकार, हिन्दू महासभा और जाति पांति तोड़क कितनी ही सस्थायें, संगठनके बहानेसे जैनियोंको हिन्दू लिखानेका अनुचित प्रयत्न कर रही

हैं !!! इसलिये हम समस्त जैन समाजसे निवेदन कर देना चाहते हैं कि इस बातको वह कदापि स्वीकार न करें। कारण कि हिन्दू जाति या हिन्दू धर्मसे जैन जाति या जैन धर्म बिलकुल भिन्न है। हिन्दू महासभावादी जैनियोंको हिन्दू लिखाकर 'जैनधर्मको हिन्दू धर्मकी शाखा' कहनेमें फिर बिलकुल ही नहीं हिचकिचायेंगे। हम भी एकताके पक्षपाती हैं, लेकिन संगठनके खोटे प्रलोभनमें जैनियोंको हिन्दू कदापि नहीं लिखा सकते। जो बात यथार्थ हो उसको स्वीकार करनेमें हमें किंचित मात्र भी संकोच नहीं है।

जब हमेशासे जैन जाति व जैनधर्मका खाना भिन्न रहा है और इस वर्ष भी है तब हम जैनियोंको हिन्दू कैसे लिखा सकते हैं? हिन्दू सिख, जैन, बौद्ध और ईसाई आदि धर्म व जातिकी अपेक्षा भिन्न २ हैं, मगर राष्ट्रीयताके नामपर हम सब एक हैं। इसी लिये देश सेवा या वर्तमान राष्ट्रीय संग्राममें जैनियोंने आशातीत बलिदान दिया है। मगर जहां कौमी प्रश्न खड़ा होजाता है वहां तो हम जैन समाजसे स्पष्ट निवेदन कर देना चाहते हैं कि मर्दुमशुमारीके धर्म व जातिके खानेमें 'अपनेको जैन ही लिखावे और किसीके बहकावे या दबावमें आकर हिन्दू कदापि न लिखावे, मर्दुमशुमारीके फार्ममें मनुष्यगणना करनेवालोंको भी जैनियोंको जैन ही लिखनेकी सख्त सूचना सरकारकी ओरसे की गई है। इसलिये यदि आप अपनी परिस्थितिसे परिचित होना चाहते हों, अपनी घटी बढ़ीको जानना चाहते हों, तो अपनेको जैन ही लिखावें। और भाइयोंने जो जैन भाई इस बातको न जानते हों उनको भी प्रयत्न करके यह बात समझा देना चाहिये कि वे अपनेको जैन ही लिखावें।

* * *

मुनिवेषी मुनीन्द्रसागरजी!

दिगम्बर जैन मुनियोंका परीषहजय, चारित्र और इंद्रियविजय, त्रिगुप्तिसाधन तथा पंच समितिपालन और महाव्रतका धारण करना संसारको आश्चर्यचकित कर देनेवाला है। ऐसे तपस्वियोंको देखकर प्रत्येक मानव हृदय कह उठेगा कि बस, सच्चे साधु तो दिगम्बर जैन मुनि ही हो सकते हैं। इस पदको प्राप्त करके असंख्य महात्मा संसारसमुद्रसे पार होचुके हैं और उनमें अनेकोंका कल्याण किया है। लेकिन बड़े ही दुःखके साथ लिखना पड़ता है कि अनुकूल समय और योग्यता न होनेपर भी कोई२ इस महान् पदको ग्रहण करके यथारीति पालन नहीं करते! उदाहरणार्थ मुनिवेषी मुनीन्द्रसागर जबसे गुजरातमें आये हैं तबसे उनकी अनेक लीलायें बाहर आरही हैं। हमें विश्वस्तरूपसे पता लगा है कि उनकी प्रवृत्तियां शास्त्रानुकूल नहीं हैं। फिर भी गुजरातके भोलेभाले....भक्त जैन भाई उनको बराबर पूजते जारहे हैं!

साधारण मनुष्योंसे लेकर साधुओं तकको बिगाड़नेमें प्रधान कारण पैसा ही है। दि० जैन साधुओंको किसी प्रकारसे भी रुपया पैसासे संबंध नहीं रखना चाहिये, ऐसी जैनागमकी आज्ञा है। मगर मुनिवेषी मुनीन्द्रसागरजी भोली समाजसे

रुपयोंकी अपील करते हैं और अमुक रकम न मिलने तक उपवास (लंघन) भी ठान लेते हैं। इसलिये हम जैन समाजसे निवेदन कर देना चाहते हैं कि चाहे मुनि उपवास करे या पारणा, मगर किसी हालतमें भी उनके पीछे एक पाई खर्च न की जावे !

हमें यह भी मालूम हुआ है कि आप पीछीकी बोली बुलाकर रुपया एकत्रित कराते हैं। तथा यंत्र-मंत्र और जादू टोना आदि करते हैं, जो कि मुनिपदके बिलकुल विरुद्ध है। इसके अलावा और अनेक पदबाह्य प्रवृत्तियां इनमें पाई जाती हैं। यह सब बंद होना चाहिये। मात्र पेथापुर (गुजरात) में ही चातुर्मास करके आपने वहांकी भोली जैन जनतासे हजारों रुपया खर्च करवाये हैं। समझमें नहीं आता कि नानाप्रकारकी लीलाओंसे प्राप्त किये हुये यह हजारों रुपया किस२ कार्यमें खर्च किये जाते हैं।

हम गुजरातके दिगम्बर जैन भाइयोंसे सादर निवेदन करते हैं कि आप मुनींद्रलीलासे सावधान रहें। ऐसी अन्धभक्तिसे पूज्य और पूजक दोनों दुर्गतिमें जाते हैं। इसलिये जबतक मुनींद्रसागरकी उच्छृंखल प्रवृत्तियां बंद न होजावें और धर्मानुकूल प्रवृत्ति न करने लगें तबतक उनको कोई मुनि न माने।

हमें मालूम हुआ है कि पावागढ़के मेलेपर मुनींद्रसागर दो मुनि और दो क्षुल्लिकाओं सहित पहुंचनेवाले हैं। वहांपर गुजरातके अनेक जैन भाई एकत्रित होंगे। उस समय समझदार भाइयोंका कर्तव्य है कि उनको शास्त्रानुकूल प्रवृत्ति करनेके लिये समझावें। यदि वे न मानें तो आप भी उनको मानना छोड़ दें। कारण कि एक मुनि वेषीके कारण और भी मुनियोंकी बदनामीका होना संभव है।

मुनींद्रसागर आत्मप्रशंसाके भी इच्छुक हैं। इसी लिये वे अपनेको 'आचार्य' आदि अनेक पदवियोंसे विभूषित बतलाते हैं, जो कि शास्त्रानुसार सर्वथा अयोग्य है। आचार्य जैसे महान पदके लिये बड़ी भारी योग्यताकी आवश्यकता है, जो कि मुनींद्रसागरमें बिलकुल भी नहीं है। इस मेलेपर विद्वानोंको ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे वे अपनी पद विरुद्ध पदवियोंको छोड़ देवें और बाह्याडंबरका परित्याग कर धर्मानुकूल चलने लगें। हमारे इतने निवेदनपर भी यदि समाज सावधान नहीं होगी तो इसका परिणाम बहुत भयंकर आनेकी संभावना है।

***

जैन समाजको मालूम होगा कि जबसे भा० दि० जैन महासभाने रोहतकमें परिषद। मनमानी कार्रवाहियां करना शुरू की हैं तबसे 'भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद' समाज सेवाका आदर्श कार्य कर रही है। इसको स्थापित हुये आज आठ वर्ष व्यतीत होचुके हैं। इसने अपने भिन्न २ विभागों द्वारा समाजकी अपूर्व सेवा की है। इसके मंत्री श्री० बा० रतनलालजी वकील और सभापति सिंघई पन्नालालजी अमरावती देश सेवा करते हुये जेलमें गये हैं! वर्तमानमें ला० राजेन्द्रकुमारजी मंत्रीके

रूपमें अच्छा कार्य कर रहे हैं। परिषदके प्रचारक विभागसे एकविद्वान देशमें घूमकर धर्मप्रचार दो और समाज सुधारका प्रयत्न करते हैं। इसके स्थापक व संरक्षक श्री० विद्यावारिधि बैरिष्टर पं० चम्पतरायजी सा० आजकल विलायतमें जैन धर्मका प्रचार कर रहे हैं। शिखरजी केसमें आपने ही सफलता दिखाई है। ट्रैक्ट विभागसे अनेक ट्रैक्ट मुफ्त भी बांटे जाते हैं। परीक्षालय विभागसे विद्यार्थियोंकी परीक्षा ली जाती है और पारितोषिक दिया जाता है। स्कालरशिप फंडसे विद्यार्थियोंकी सहायता की जाती है। इत्यादि अनेक कार्य परिषद द्वारा बराबर होरहे हैं।

इसका ८ वां वार्षिक अधिवेशन ता० २०-२१-२२ फरवरीको रोहतक (पंजाब) में होनेवाला है। इसी समय वहांपर बड़ा भारी मेला-रथयात्रा उत्सव भी होनेवाला है। आप ऐसी धर्मप्रचारक और समाज सुधारक परिषदके सभासद बनिये और इस होनेवाले अधिवेशनमें पधारकर उसे सफल बनाइये। आशा है कि परिषद दिन प्रतिदिन उन्नत होती हुई जैनधर्म और समाजकी उन्नति कर सकेगी।

***

પાવાગઢનો મેળો.

સિદ્ધક્ષેત્ર શ્રી પાવાગઢમા આવતી મહા સુદ ૧૩ થી ૧૫ સુધી વાર્ષિક મેળો ભરાનાર છે જે પ્રસંગે આ વખતે અમારા સાંભળવા પ્રમાણે પેલા મુનિવેશધારી મુનીંદ્રસાગરજીનો સંઘ ત્યા પહોચી ગયો છે જેથી ગુજરતના ભોળા ભાઇયો અને બ્હેનો જે આ મેળામા પહોચે તેમને સચેત કરવાની જરૂર જણાય છે કે એ મુનીંદ્રસાગર ખરા મુનિ નથી. એમણે પેથાપુરમાં ચોમાસું કરી શ્રાવકોનું હજારો રૂપિયાનું પાણી કરાવ્યું છે, એમની રીતભાત, વર્તન, આચારવિચાર, એક દિ. જૈન મુનિને યોગ્ય નથીજ. જે ભાઇઓ શિખરજીના મોટા મેળાના સમય દરમ્યાન મહાવીરજીમાં એનો ગીરનારજીનો સંઘ તુટી ગયો હતો તે વખતના એમના એક ગ્રહસ્થને પણ ન છાજે તેવા વર્તનથી કોણ અજાણ્યું છે! એમની સાથે બે મુનિ બે આર્જિકાઓ વગેરે રહે છે તે પણ પુરા યોગ્ય નથી માટે પાવાગઢના મેળામાં આ વેશધારી મુનિસંઘ પાછળ ભોળવાઇ જઇ એ નિમિત્તે એક પૈસો પણ ન ખરચવાને અમો ગુજરાત ભાઇઓને નમ્ર સૂચના કરીએ છીએ આ મુનિ નામધારી મુનિને પણ યોગ્ય નથી તો આચાર્ય તો એને કોણ કહે, પરંતુ પાવાગઢક્ષેત્ર કમેટીના મંત્રીએ આમંત્રણ પત્રિકામાં એમને આચાર્ય લખી દેવાની જે ભૂલ કરી છે તે સુધારી લે અને એમનાથી સાવધ રહે એજ ઇચ્છવા યોગ્ય છે.

***

ભ. સુરેંદ્રકીર્તિ ને સુરતની ગાદી.

સુરતની જુની ગાદીના ભટ્ટારક ૧૦૮ શ્રી સુરેંદ્રકીર્તિજીનો પોષ માસમા સોજીત્રામા લાંબી બિમારી પછી સ્વર્ગવાસ થયો છે એટલે એ ગાદી હાલ ખાલી પડી છે પણ એ ખાલી ન રહે માટે ભ० સુરેંદ્રકીર્તિજી, એક શાંતિલાલ નામે ૧૨ વર્ષના સિવનીથી પરવાર જાતિના એક બાલકને અમુક સારી રકમ આપી બેક માસપર અને તેને માટે માલમિલકતનું વીલ કરી તેના ટ્રસ્ટીઓ નીમી ગયા છે ને આ શિષ્યને યોગ્ય થવે યોગ્ય વયે ગાદીપર બેસાડવા કહી ગયા છે. આ બાબતમા અમારી સુચના માત્ર એટલીજ છે કે હવે ભટ્ટારકોનો જમાનો વહી ગયો છે અને હવે ભટ્ટારકોથી શ્રાવકોને વિશેષ લાભ થતો હોય એમ જણાતું નથી. ઇડરની ગાદીપર સ્વ. ભ. કનકકીર્તિ પછી ખાલી ગાદીપર ઇડરની પંચે મોતીલાલ ઉર્ફે વિજયકીર્તિને અમારા

પ્રબળ વિરોધ છતાં ગાદીએ બેસાડયા હતા તેના પાછળથી કેવા ગંભીર પરિણામ આવ્યા તે ગુજરાતના ભાઇઓ સારી પેઠે જાણે છે ને જે ભાઇ ન જાણતા હોય તે જાણી લે કે એ ભાઇ પોતાના આવી પતીત થયા ને ગાદી છોડી નાશી જવુ પડ્યુ ને આજે ગ્રહસ્થ બની પરણ્યુ કરીને મુંબાઇમાં વૈદનો ધંધો કરે છે. આવા દાખલા પરથી ચેતીને અમે આ ગાદીના ટ્રસ્ટીઓને તથા એ ગાદીને માનનારા ભાઇઓને નમ્ર સૂચના કરવાની જરૂર સમજીએ છીએ કે આ શિષ્યને બોર્ડિંગમાં ઓછી ૨૦-૨૫ વર્ષની વય સુધી કેળવણી આપી યોગ્ય બનાવવો અને પછી એનામા ભટ્ટારક થવાની-ત્યાગધર્મ પાળવાની પૂર્ણ યોગ્યતા જણાય તોજ એને ભટ્ટારકી અનેક આડંબરોમા સુધારો કરી સાદા રૂપમાંજ આ ગાદીપર બેસાડવાનો વિચાર કરવો. અમને ખબર મળી છે ત્યા સુધી ઉપરોક્ત ટ્રસ્ટીઓ પણ એવાજ વિચાર ધરાવે છે ને આ બાળકને પણ કરી કારંજા આશ્રમમાં ભણવા માટે મુકવામા આવનાર છે જે યોગ્યજ ગણાશે.

सुमेरचन्द दि० जैन बोर्डिंग–इलाहाबादमें कामोंके लिये २० अधिक कमरे बननेकी शीघ्र आवश्यकता है जिसमें १४ कमरोंके लिये स्वीकारता मिल चुकी है व शेष ६ कमरोंके लिये ६ दानीकी आवश्यकता है । फी कमरा ६००) चाहिये । इसके सिवाय रसोईघर आदिके लिये भी ४०००) की आवश्यकता है ।

मालवा प्रां० दि० जैन सभाका अधिवेशन–आगामी माघ सुदी ६ व ८को बड़वानीमें महा मेलेके समय श्री० रावराजा सरसेठ हुकमचंदजीके सभापतित्वमें होगा ।

लखनऊ–में वार्षिक रथयात्राका मेला माघ सुदी ९ से ८ तक होगा ।

चित्र-परिचय ।

इस विशेषांकमें प्रकट किये गये चित्रोंका परिचय नीचे दिया जाता है । अनेके चित्र बहुतसे है इसलिये स्थानाभावसे जहांतक हो संक्षेपमें ही लिखना पड़ा है ।

(१-७) महात्मा गांधीजी, श्री० विट्ठलभाई, सरदार वलभभाई, पं० मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहिरलाल नेहरू, मालवियाजी और सरोजिनी नायडू-भारतके भाग्यविधाता इन सब महापुरुषोंसे आज सारा संसार परिचित है । महात्मा गांधीजीने जैनधर्मके मूल सिद्धांत अहिंसाका पुनरुद्धार किया है । उक्त सातों महारथियोंने अहिंसाके बलपर एक विराट् राजसत्ताके सामने अभूतपूर्व युद्ध छेड़ा है । समस्त भारत आपकी आज्ञानुसार सर्वस्व समर्पण करनेके लिये तैयार है । भारतीय स्वतंत्रताके लिये यह सातों महा योद्धा जेल जाचुके हैं । इनमें वयोवृद्ध पं० मदनमोहन मालविया, श्री० विट्ठलभाई पटेल, और प० मोतीलालजी नेहरू असाध्य रोगसे ग्रसित होजानेके कारण सजा पूरी होनेके पहिले ही छोड़ दिये गये हैं और महात्माजी तो अमर्यादित समय तक कारावासमें रखे जावेंगे !!! फिर भी वे प्रत्येक भारतीयके हृदयमें विराजमान है । राष्ट्रपति श्री० पं० जवाहिरलाल नेहरू दुसरीवार २॥ वर्षके लिये और सरदार वल्लभभाई पटेल तीसरीवार ९ माहके लिये जेलमें

गये हैं। तथा भारत-कोकिला श्रीमती सरोजनी नायडू धरासनाकी चढ़ाईके फल स्वरूप ९ माहकी सजा पूरी कर रही हैं। ये भारतीय नर-रत्न चिरायु रहे और भारतको पूर्ण आजाद करें।

(८) चौरासीमें मुनिसंघ-गत वर्ष श्री १०८ आचार्यश्री शांतिसागरजी महाराजने संघ सहित मथुरामें चातुर्मास किया था। यह चित्र उसी समयका है। इसमें ७ मुनि और २ क्षुल्लक विराजमान हैं। इस चातुर्मासमें अच्छी धर्मप्रभावना हुई थी।

(९) रथयात्रा महोत्सव मथुरा-मुनिसंघके चातुर्मासके समय आश्विन मासमें रथयात्रा निकाली गई थी। मथुराके इतिहासमें जैन रथका चौरासीसे शहरमें धूमधामसे आने जानेका यह प्रथम ही अवसर था। इस समय अच्छी धर्म प्रभावना हुई थी। इस चित्रमें आगे मुनिराज और ऊपरको रथ तथा उसमें जिनबिम्ब और आसपास जनसमूह दृष्टिगोचर होरहा है।

(१०) कुडचीकी भग्न प्रतिमा-कुडची (बेलगाव) में १७ जून सन् २९ को मुसलमानोंने ६ दिगम्बर जैन प्रतिमाओंको तोड़ डाली थी। उनमेंसे मूलनायक श्री पार्श्वनाथजीकी खण्डित प्रतिमाको एकत्रित करके लिया हुआ यह हृदयविदारक चित्र प्रगट किया गया है। इसके भिन्न २ खण्डोंका फोटो दिगम्बर जैनके अंक १२ में निकाला जाचुका है। खेद है कि सरकारकी तरफसे अभीतक इस अत्याचारके करनेवालोंको जांचकर उचित दण्ड नहीं दिया गया है। परन्तु इस अत्याचारकी जांच कमेटीने जो रिपोर्ट प्रगट की थी उसको सरकारने क्यों जप्त करली है। यह समझमें नहीं आता।

(११) सेठ पद्मराजजी रानीवाले कलकत्ता-आप दि० जैन समाजके एक निर्भीक कार्यकर्ता रहे हैं। तथा हिंदु महासभाके मंत्री हैं। राष्ट्रसेवामें आपका बलिदान अतीव प्रशंसनीय है। ६ माहकी सजा भोगकर कारावाससे मुक्त हो आप अभी आये हैं। आपकी सुकुमार पुत्री इन्दुमती भी वर्तमानमें कारावासके कष्ट सहन कर रही हैं।

(१२) बाबू रतनलालजी जैन वकील-बिजनौर-आप भारतवर्षीय दि० जैन परिषदके उत्साही मंत्री हैं। अनेक वर्षोंसे राष्ट्रसेवा करते१ आपको वर्तमान सत्याग्रह संग्राममें १ वर्षकी सजा तथा ५००) दण्ड हुवे हैं। आपने वकालत छोड़कर देशसेवामें अपना जीवन अर्पण कर दिया है। व आपकी समाजसेवा भी कम नहीं है।

(१३) बाबू नेमीशरण वकील, बिजनौर-यह नरवीर दूसरीवार सरकारी मेहमान बने हैं। वकालात छोड़कर आप देशकी आजादीके लिये खूब प्रयत्न कर रहे थे। इसीलिये आपको १ वर्षकी सजा तथा ५००) दण्ड हुवे हैं। आप रोहतक कांग्रेसके प्रधान कार्यकर्ता हैं।

(१४) श्री० सिंघई पन्नालालजी रईस अमरावती-आप भा० दि० जैन परिषदके सभापति, व परवार समाजके अग्रगण्य नेता हैं। आपने प्रांतीय कौंसिलसे स्तीफा देकर देशसेवाका खूब कार्य किया है। आपने बर्गीयोंमें

राष्ट्रीय सैनिकोंको ठहरानेके अपराधमें ही आपको १०००) दण्ड और ६ माहकी कड़ी सजा हुई है। आप अमरावती शहर तो क्या बरार प्रान्तके आभूषणरूप हैं। परवार डिरेक्टरीका आपका कार्य चिरस्थायी होगया है।

(१५) सेठ चिरंजीलालजी वर्धा—आप सुप्रसिद्ध राष्ट्रनेता हैं। दिगम्बर जैन समाजके आप निर्भीक सुधारक हैं। देश आपकी राष्ट्रसेवासे भली भांति परिचित है। आपको जंगल सत्याग्रहमें ६ माहकी सजा हुई है।

(१६) ला० तनसुखरायजी रोहतक—आप एक उत्साही कार्यकर्ता हैं। रोहतकमें आपका व्यक्तित्व बहुत ऊँचा है। आपसे कांग्रेसके जलूसमें सम्मिलित होनेके कारण जमानत मांगी गई थी, इसको स्वीकार न करनेसे ९ माहकी सजा हुई है।

(१७) बा० अर्जुनलालजी सेठी—आप पुराने सम-जसेवक व निर्भीक समाज-सुधारक और सुप्रसिद्ध राष्ट्रनेता हैं। आप अजमेर कांग्रेस कमेटीके डिक्टेटर थे। एक भाषणके कारण आपको कड़ी सजा हुई है। आप पहिले भी जातिसेवा व देशसेवा करते हुये जेल हो आये हैं।

(१८) श्रीमती पं० गजाबेवी मुरादाबाद—आप एक श्रीमान् घरानेकी राष्ट्रसेविका दि० जैन महिला हैं। जवाहिर दिनके उपलक्षमें जलूस निकालनेके कारण आपको ४ माहकी सजा तथा ६०) जुर्माना अथवा १॥ मासकी अधिक सजा हुई है। और ए क्लासमें रखी गई हैं। जेल जानेवाली आप दिगम्बर जैन समाजकी दूसरी महिला हैं।

(१९) सौ० इन्दुमती गोयनका—आप देशभक्त श्री० पदमराजजी रानीवाले (कलकत्ता)की सुपुत्री और बा० केशवदेव गोयनका ग्रेजुएट कलकत्ताकी धर्मपत्नी हैं। विवाह हुये अभी ६ माह ही हुये हैं। मारवाड़ी सेठ घरानेकी यह लाड़ली कन्या १८॥ वर्षकी सुकुमार वयमें ही कालेज छोड़कर राष्ट्रीय संग्राममें कूद पड़ी। आपने राष्ट्रीय महिला समितिकी स्थापना की थी। पिकेटिंगके कारण उक्त बालाको ९ माहकी सजा हुई है। बंगालसे और दि० जैनसमाजसे जेल जानेवाली यह प्रथम महिला हैं। आपके पिताकी सेवाका प्रभाव इस सुकुमारीपर पहिलेसे ही पड़ा था। इसीलिये यह भी देश सेवामें जुट गई है।

(२०) श्रीमती अंगूरीदेवी आगरा—आप श्रीयुत 'महेन्द्र' आगराकी वीर धर्मपत्नी हैं। आपने अपनी राष्ट्रसेवाके कार्योंसे आगरामें अपूर्व जागृति उत्पन्न की है। दिन रात आसपासके ग्रामोंमें घूमकर स्वराज्य आन्दोलन करना आपका मुख्य कार्य है। पर्देकी प्रथाको तोड़कर स्त्रीसमाजमें आपने अच्छा सुधार किया है। आपकी देशसेवा प्रशंसनीय है।

(२१) श्रीमती कस्तूरीदेवी, आगरा—आप बाबू कपूरचंदजी जैन, मालिक महावीर प्रेसकी धर्मपत्नी हैं। पर्देकी प्रथाको तोड़कर आप देश सेवामें खूब कार्य कर रही हैं। आगरामें आपने अच्छी हलचल उत्पन्न करदी है। अहर्निश आप राष्ट्रसेवामें समय व्यतीत किया करती हैं।

(२२) कुंवारी कंचनबाई आगरा—आप उपरोक्त बा० कपूरचंदजीकी ही वीर पुत्री हैं।



कुडचीका भीषण अत्याचार।

[मूलनायक श्री पार्श्वनाथकी तोडी गई मूर्तिका, जोड करके लियाहुआ हृदयभेदक चित्र।]

जैनविजय प्रिंटिंग प्रेस-सूरत।

देशसेवामें इस सुकुमारीने कमाल किया है। आपकी माता श्री० कस्तूरीदेवी और श्री० अंगूरीदेवीके साथ जैन मंदिर पर पिकेटिंग करके दर्शनार्थ आनेवाले भाई बहिनोंको देशी वस्त्र उपयोग करनेकी प्रतिज्ञा लिवाई हैं। आगरेमें यह तीनों दि० जैन महिलायें आशातीत कार्य कर रही हैं। इनकी राष्ट्र सेवा प्रशंसनीय है।

(२३) बा० कपूरचन्द जैन आगरा-आप एक उत्साही देश-सेवक हैं और महावीर प्रेसके मालिक हैं। आप अपने तन मन धन और प्रेस द्वारा खूब देश सेवाका कार्य कर रहे हैं। आपकी पत्नी तथा पुत्री आश्चर्यकारक देश-सेवाका कार्य कर रही हैं। आप आगराकी कई संस्थाओंके कार्यकर्ता हैं तथा आगरेमें स्वयंसेवकोंके सर्वेसर्वा आप ही हैं। आप बड़े ही निर्भीक, धर्मप्रेमी, व समाज सुधारक भी हैं। आपने जमानत मांगनेपर ६ मास तक अपना बड़ा भारी प्रेस बन्द कर दिया था। अर्थात् आपका आत्मभोग भी कम नहीं है।

(२४) श्रीयुत 'महेन्द्र' आगरा-आपने अपने देशसेवाके कार्योंसे मात्र आगरामें ही नहीं किंतु इसके आस पासके ग्रामोंमें भी खूब जागृति उत्पन्न की है। इसीलिये भिवानी ग्राममें आपको सरकारने १४४ दफाके अनुसार जाना बंद किया है। आप सैनिक पत्रके द्वारा भी खूब सेवा कर रहे हैं। वीर संदेश और जैन बाल मैनके संपादक रह चुके हैं। आप एक अच्छे लेखक व भाषणकर्ता भी हैं। आपकी धर्मपत्नी श्री० अंगूरीदेवी तो आशातीत कार्य कर रही हैं। आप आगराकी अनेक जैन संस्थाओंके उत्साही कार्यकर्ता व सार्वजनिक कामोंमें भी अग्रगण्य हैं।

(२५) श्री० बाबू जैनेन्द्रकुमार, देहली-यह उत्साही युवकरत्न हिंदी साहित्यके प्रतिभाशाली लेखक हैं। आप महात्मा भगवानदीनजीके भानजे व पं० रामदेवीबाईके सुपुत्र हैं। आपकी वक्तृता भी हृदयको हिला देनेवाली है। वर्तमानमें आप स्पेशल जेल गुजरातमें ९ माहकी सजा भोग रहे हैं।

(२६) ला० श्यामलालजी जैन एडवोकेट रोहतक-आप एक प्रतिष्ठित दिगंबर जैन वीर तथा जिला कांग्रेस कमेटीके प्रेसीडेन्ट हैं। आपको दो वर्षकी कड़ी सजा हुई थी। मगर आपके भाई द्वारा अपील किये जानेके समाचार सुनकर इस वीरने जेलसे ही एक पत्र वकीलको दिया जो कोर्टमें हाजिर किया गया था। उसका भाव यह था कि 'जबतक महात्माजी जैसे नेता जेलमें हैं, सरकारी दमननीति बढ़ रही है, तबतक मैं अपील करनेका विचार तक नहीं कर सकता, इसलिये मेरी अपील वापिस ली जावे'। इस पत्रको सुनकर भी जजने सजा घटाकर ६ माह कर दी। आप उसे पूरी करके आगये हैं। बधाई!

(२७) बा० अमोलकचन्दजी खंडवा-आप पोरवाड़ दिगम्बर जैन समाजके उत्साही युवक हैं। वर्तमानमें खण्डवा कांग्रेसके प्रधान कार्यकर्ता हैं। आपके कारण खण्डवामें अच्छी जागृति हुई है। आप बड़ी ही कुशलतासे कार्य कर रहे हैं।

(२८) श्री० वैद्यभूषण डा० अभयकुमारजी–मण्डला–आपकी आयु २७ वर्षकी है। आपके मनमें सन् २० से देश सेवाकी लगन लगी है। इसी लिये कुछ दिन साबरमती आश्रममें भी रहे हैं। वैद्य विद्यामें तो आप सिद्धहस्त है। आप जल-चिकित्साचार्य-शिरोमणि, आर० ए०, कविराज, वैद्यभूषण, एच० एम० डी० एल० एम० एम० आदि पदोंसे विभूषित हैं। वर्तमान सत्याग्रह युद्धमें आपने मण्डला जिलेका प्रथम डिक्टेटर पद लिया था और खूब आन्दोलन उठाया। जिसके फल स्वरूप आपको ६ मासका कारावास मिला है। आपका अंतिम फोटो नहीं मिल सका परन्तु यह प्रारंभिक अवस्थाका चित्र मिल सका है। आज तो आप सादे वेशभुषामें ही हैं।

(२९) श्री० बाबूलाल जैन परवार–यह वीर गौरझामरनिवासी है। आप व्यायामकुशल तो हैं हीं, मगर एक घण्टेमें १० मील तक दौड़ते भी हैं। इसीलिये करीब २९ पदक आपने प्राप्त किये हैं। बी० ए० की पढ़ाई छोड़कर आप सत्याग्रह-संग्राममें कूद पडे और धारासणा तथा वडालाके नमकपर चढ़ाई करने गये। वहां घायल होकर बम्बई कांग्रेस हॉस्पिटलमें उपचार कराया। बादमें आप कुछ साथियोंको लेकर ग्राम्य प्रचार करते२ बारडोली आये। वहां आश्रमकी जप्तीके साथ ही साथ आप भी गिरफ्तार करके सूरत लाये गये! और ९॥ महीनेके लिये कारावासमें भेज दिये गये हैं। आप बड़े ही उत्साही और होनहार युवक हैं।

(३०) सेठ गिरधारीलाल हजारीलाल गढ़ाकोटा–आप गोलापूर्व दि० जैन समाजके उत्साही युवक हैं। सन् १९२० से ही आप देशसेवाका कार्य कर रहे हैं। कुछ दिन जिला कांग्रेस कमेटीके स० मंत्री भी रहे हैं। आपको जंगल कानून तोड़नेके अपराधमें १ वर्षकी कड़ी कैद हुई है।

(३१) सेठ छोटालाल घेलाभाई गांधी अंकलेश्वर–गुजरातके दि० जैनोंमें आप बड़े धर्मप्रेमी, समाज सुधारक व राष्ट्रसेवामें अग्रगण्य नेता हैं। अंकलेश्वरमें राष्ट्रीय कार्यके आप ही प्रधान हैं। गुजरातमें दि० जैनोंमें प्रथम धर्म जागृति फैलानेवाले आप भी थे। कई वर्षोंसे आप राष्ट्रसेवामें ही संलग्न हैं। आपको नमक सत्याग्रहमें १ वर्षकी सजा हुई है। आप यरोडा जेलमें धार्मिक व परिश्रमी जीवन व्यतीत कर रहे हैं व बहुत सूत कातते हैं।

(३२) सेठ छगनलाल उत्तमचन्द सरैया सूरत–आप सूरतके दि० जैनोंमें अच्छे कार्यकर्ता हैं तथा म्यू० मेम्बर भी हैं। सूरतमें १६–१७ वर्षसे आप सार्वजनिक कार्योंमें आशातीत योग दे रहे हैं। आपने व्यापारकी भी परवाह न की और आप देशसेवामें संलग्न रहें। आपको सूरतके महोल्लोंमें व्याख्यान देनेके कारण १ वर्षकी सजा हुई है व नासिक जेलमें धार्मिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

(३३) बालवीर साकेरचन्द मगनलाल सरैया सूरत–उपरोक्त सरैयाजीके आप उत्साही भतीजे हैं। दुकानका कारोबार काकाके बाद

आप सम्हालते थे परन्तु अपनी दुकानपर राष्ट्रीय समाचारोंका पाटिया लगानेके कारण आपको १५०) जुर्माना हुआ जो न देनेपर १ मासकी कड़ी सजा हुई। तथा दो राष्ट्रीय फोटो बेचनेके अपराधमें एक वर्षको अधिक अर्थात १४ मासकी सजा वह वीर बालक यरोडा जेलमें भोग रहे हैं। आपका जुर्माना वसूल करनेको पुलीसने घरकी कुडकी थी जहां कुछ न मिलनेपर पुलिस खाली तीजोरी ही तोड़कर लेगई है।

(३४) श्रीयुत डी० आर० पलमे-आप हिन्दुस्थानी सेवादलके केप्टन हैं। और गढ़वाली डे के जलूसमें अपने संघके अगुवा थे। पुलिसके लाठी प्रहारसे आप बहुत घायल हुये थे। वर्तमानमें आप बड़े ही उत्साहसे कार्य कररहे हैं।

(३५-३६) श्रीयुत पद्माकर रणदिवे-इस दिगम्बर जैन युवकने बम्बईमें रहकर खूब राष्ट्र-सेवा की है। नमक कानून भंग करनेके कारण आप ३ माह बीसापुर जेलमें रह आये हैं। वहांसे छूटकर खाद्य प्रचार करते हुये बारडोली आये और वहां रातको सोरहे थे। उसी दिन आश्रम जप्त होनेके साथ ही साथ आप भी गिरफ्तार कर लिये गये और ४ माहकी कड़ी सजा हुई है। आपके बायें हाथकी ओर आपके भाई श्री० रंगनाथ रणदिवे खड़े हुये हैं। यह युवक भी राष्ट्रीय संग्राममें भाग लेरहे हैं।

(३७) श्री०वृन्दावन इमलथा ललितपुर-यह उत्साही युवक श्री परमानन्दजी इमलयाके पुत्र हैं। आपकी आयु मात्र १९ वर्षकी हैं। ललितपुर स्वराज्य आश्रममें कार्य करके आपने अच्छी जागृति उत्पन्न की है। हालहीमें आपको एक वर्षकी सजा हुई है।

(३८) वैद्यभूषण पं० मथुराप्रसादजी ललितपुर-आप एक उद्योगी और उत्साही दि० जैन वैद्य तथा बुन्देलखण्ड आयुर्वेदिक फार्मेसीके मालिक हैं। शराब पिकेटिंगके अपराधमें आपको ९ माहकी कड़ी सजा हुई है। इधर आपके पिताजीका अभी ही स्वर्गवास होगया है। हम उक्त वीरके इस इष्ट वियोग-जन्य दुःखमें सहानुभूति प्रगट करते हैं।

(३९) केशवलाल वकोरदास लिम्बासी-गुजरातके परियेज नि० १९ वर्षके इस युवकने लिम्बासीके राष्ट्रीय जीवनमें क्रांति उत्पन्न कर दी है। १० वर्षसे आप खद्दर पहिनते हैं व ४ वर्षसे राष्ट्रीय कार्यमें अपूर्व योग देरहे हैं। आपको ता० १४-८-३० को पुलिसके कार्यमें हरकत करनेके कारण १४३ कलम अनुसार मातरमें १ माहकी सजा व २०) जुर्माना अथवा और दो सप्ताहकी सजा हुई थी। आप १८-१०-३० को छूटकर आये थे और फिर लिंबासीकी जनतामें अपूर्व जाग्रति लानेके कार्यमें संलग्न है।

(४०) सुन्दरलालजी परवार खुरई-आप कुछ समयसे नांदगावमें कार्य करते थे। जंगलकानून तोड़नेके कारण आपको ४ माहकी कड़ी सजा हुई है।

(४१) दीपचन्दजी खण्डेलवाल नांदगांव-आपको जंगलकानून तोड़नेके अपराधमें ४

माहकी कड़ी सजा हुई है। आप एक बड़े उत्साही कार्यकर्ता हैं।

(४२) शांतिलालजी खंडेलवाल नांदगांव–सत्याग्रह संग्राम प्रारंभ होते ही आप इसमें खूब योग दिया करते थे। आखिरकार जंगल कानून तोड़नेके कारण आपको ४ माहकी कड़ी सजा की गई है।

(४३) बाबू विश्वंभरदासजी गार्गीय झांसी–आप बलवन्त प्रेसके मालिक तथा दि० जैन समाजके पुराने सुप्रसिद्ध कार्यकर्ता व समाज सुधारक हैं, आपने जातिप्रबोधक पत्र कितनेक वर्षतक चलाया था। आपकी गिरफ्तारी राजनैतिक कार्यमें कुछ सदेह होनेसे हुई थी और १ वर्षकी सजा की गई है।

(४४) देशभक्त श्री० हरिश्चंद्रजी पलसपुरे-काटोल–यह २२ वर्षके दि० जैन नवयुवक एफ० ए०की पढ़ाई छोड़कर सत्याग्रह संग्राममें कूद पड़े, और जंगल कानून भंग किया। इसीलिये आपको ९ माहकी कड़ी सजा हुई है। अभी आप नागपुर जेलमें हैं।

(४५) ला० चांदबिहारीलाल अमरोहा–आप वहांपर देशसेवाका अच्छा कार्य कर रहे थे। इसीलिये ४ माहका कारावास भोगना पड़ा। अब आप सजा पूरी करके आगये हैं। बधाई।

(४६) ला० बुधसेनजी अमरोहा–यह एक उत्साही युवक हैं। आन्दोलन युद्धमें आपने खूब कार्य किया है। ४ माहकी सजा पूरी करके आप अभी ही छूटे हैं।

(४७) कवि कल्याणकुमार 'शशि' रामपुर–आप दि०जैन समाजके एक प्रतिभाशाली उदीयमान कवि हैं। अक्टूबरमें काश्मीरसे लौट रहे थे कि रावलपिण्डी बोम्ब केसके संदेहमें आप गिरफ्तार कर लिये गये। आखिरकार नवम्बरमें निर्दोष छोड़ दिये गये। आप मुरादाबाद कांग्रेसके प्रमुख कार्यकर्ता हैं।

(४८) पं० देवेन्द्रकुमारजी इन्दौर–आप खण्डेलवाल जातिके एक उत्साही युवक हैं। आपके नायकत्वमें एक सत्याग्रही जत्था अजमेर ता० ६ मई सन् ३० को गया था। वहांपर आपने १००० जनताके समक्ष नमक कानून तोड़ा था। फिर २ माह तक सख्त पिकेटिंगका कार्य किया। अन्तमें आप २८ जुलाईको झंडा सत्याग्रहमें पकड़े गये और ६ माहकी सजा हुई। अब भी आप इन्दौरमें देशसेवाका कार्य कर रहे हैं।

(४९) बा० कीर्तिप्रसादजी वकील गुजरानवाला–आप बिनौली (मेरठ) के रईस व जमीन्दार हैं। सन् २१ में वकालत छोड़कर मेरठ कांग्रेसके मंत्री रहकर खूब काम किया। सन् २६ से जैन गुरुकुल पंजाबके अधिष्ठाता हैं। गुजरानवाला कांग्रेस कमेटीने आपको War tribunal का जज नियुक्त किया था। इसलिये १४ जुलाईको गिरफ्तार किये गये। किन्तु पुलिस कोई सबूत न देसकी इसलिये आप ता० २१ जुलाईको निर्दोष मुक्त कर दिये गये। शायद आप श्वे० जैन हैं तौभी दिगम्बर श्वेतांबरमें कोई भेदभाव नहीं रखते हैं व सारे जैन समाजकी उन्नतिकी आपकी भावना है।

(१०) ला० तिलोकचंदजी गुजरानवाला—आप सन् २१ से ही देशसेवाका कार्य कर रहे हैं। तथा आल इंडिया कांग्रेस कमेटीके सदस्य और गुजरानवाला कांग्रेसके जनरल सेक्रेटरी हैं। आपको १ वर्षकी सजा ४ जुलाई सन् ३०को हुई है। जैन गुरुकुल पंजाबके आप सन् २६से मानद मंत्री रहे हैं। आप भी शायद श्वे० जैन हैं परन्तु आपमें भेदभावका नाम ही नहीं है।

(११) बा० अयोध्याप्रसादजी गोयलीय "दास" देहली—आप दि० समाजमें अच्छे लेखक व कवि हैं। राष्ट्रीय युद्धमें आपने शक्तिभर कार्य किया है। जिसके परिणाम स्वरूप २।) वर्षकी कड़ी सजा हुई है। वर्तमानमें आप माउण्टगुमरी जेलमें हैं। आपकी "दास पुष्पाञ्जलि" नामक कविताकी पुस्तक लोकप्रिय है।

(१२) चंदुलाल जमनादास वखारिया बम्बई—कलोल (गुजरात) नि० नृसिंहपुरा ज्ञाति, आप उत्साही कार्यकर्ता हैं। व बम्बईमें व्यापारार्थ निवास करते हैं, वहां वडालामें नमक कानून सत्याग्रहमें आप पकड़े गये थे व तीन मासकी सख्त सजा हुई थी जो वीसापुर जेलमें पूर्ण करके १ सितम्बरको छूटे थे। आप अंतर्जातीय विवाहके पूर्ण पक्षपाती हैं व निर्भीक समाज सेवक हैं तथा बम्बई दि० जैन युवक मंडलके एक कार्यकर्ता हैं।

(१३) हीरालाल परशोत्तमदास शाह बम्बई शहेर (गुजरात) नि० नृसिंहपुरा ज्ञाति वय २० वर्षके उत्साही युवक हैं। आपने भी राष्ट्रीय कार्यमें योग दिया व वडाला नमक कानून सत्याग्रहमें आप पकड़े गये व तीन मासकी सख्त सजा हुई थी जो वीसापुर जेलमें पूर्ण करके ४ सितम्बरको छूटे थे। दि० जैन युवक मंडल बम्बईकी स्थापनामें आपका ही मुख्य प्रयास था।

(१४-१६) जवेरीलाल कस्तूरचंद, पन्नालाल दाड़मचन्द, व कचरालाल पृथ्वीराज, दाहोद—इन तीनों दि० जैन तथा हुमड़ युवकोंको मालकी दुकानों पर पिकेटिंग करनेसे क्रमशः २, २ और ४ माहकी कड़ी सजा हुई थी। श्री० जवेरीलालको १०) दण्ड भी किया गया था। उसकी वसूलीमें पुलिस करीब ८०) का सामान घरमेंसे कुड़क करके लेगई थी। तीनों वीर सजा पूरी करके आगये हैं। धन्य !

(१७) यादवराव दाजीबा श्रावणे सिरपुर—आपने वर्षोंसे जैन आश्रमकी स्थापना की थी, और सन् २१से राष्ट्र सेवा कर रहे हैं। आप नागपुर सत्याग्रहमें भी जेल गये थे। अतिशय-क्षेत्र श्री अन्तरीक्षजीके आनरेरी कार्यकर्ता ४-५ वर्षोंसे हैं। आपको जंगल सत्याग्रहमें एक वर्षकी सजा हुई है। जेलमें जाते समय आपको हार पहिनाया गया था, उसी समय यह फोटो लिया गया था। जेलके अन्दर अपने मित्र श्री. शिवनारायण शर्माके साथ खड़े हैं, और एक बाजूमें सिपाही खड़ा है, कैसा अनोखा दृश्य है !

(१८) श्री० पं० मोतीलालजी वर्णी पपौरा—आपका जन्म वि०सं० १९२८में जतारा (टीकमगढ़)में हुआ था। पं० गणेशप्रसादजी वर्णीके सहवाससे आपने विद्याभ्यास किया। और सं०

१९५९में महरौनीकी जैन पाठशालामें अध्यापन कार्य करने लगे। बादमें आप ललितपुर रहने लगे। वहांपर बीमारीके समय जतारामें पाठशाला स्थापित करनेके लिये १९०१) प्रदान किया। बादमें साहूमलमें भी एक पाठशाला खुलवाई। बुन्देलखण्डमें घूमकर द्रव्य एकत्रित किया और सं० ७५में पपौरामें भव छात्राश्रमके वीर विद्यालय स्थापन किया और सं० ७८ में जतारामें पाठशाला खोल दी। आप वेदीप्रतिष्ठाओंसे प्राप्त द्रव्य विद्याप्रचारमें ही लगाते रहे। कुछ वर्ष पूर्व आचार्य संघके समक्ष आपने विधिपूर्वक सप्तम प्रतिमा धारण की है। आपके प्रयत्नसे बुन्देलखण्डमें खूब विद्या प्रचार हुआ व होरहा है। पपौरा विद्यालय आपकी ही अमरकीर्ति हैं। आप चिरायु रहकर विशेष समाजसेवा करते रहें।

(५९) शांति निकेतन कटनी–इस भव्य भवनको बने हुये अभी थोड़े ही वर्ष हुये हैं। इसमें दिगंबर जैन विद्यार्थी निवास और विद्याध्ययन करते हैं। इसके बनवानेमें करीब ९० हजार रुपया व्यय हुआ होगा। खेद है कि हमें इसका विशेष परिचय प्राप्त नहीं होसका।

(६०) पं० के० भुजवली शास्त्री आरा–आप काशीपट्टन (मद्रास) के रहनेवाले दि०जैन क्षत्रिय विद्वान हैं और सिद्धांतशास्त्री, न्यायाचार्य और न्यायकुसुमभूषणकी उपाधियोंसे युक्त हैं। आप एक अच्छे ऐतिहासिक लेखक हैं। मातृभाषा कनाडी होनेपर आपका हिन्दी पर अच्छा अधिकार है। आपने ५–६ ऐतिहासिक एवं धार्मिक पुस्तकें भी लिखी हैं। वर्तमानमें जैन सिद्धांत भवन आराके पुस्तकालयाध्यक्ष हैं। आपसे प्राचीन जैन साहित्यकी सेवा होनेकी बहुत कुछ आशा की जाती है।

(६१) ला० मुंशी गेंदनलालजी जैन मुरादाबाद–आप उर्दू भाषाके कवि, साहसी सुधारक और स्थानीय कांग्रेसके उत्साही कार्यकर्ता हैं। मुरादाबादमें जागृति उत्पन्न करने वाले आप एक प्रभावक व्याख्याता हैं। १४४ दफाका भंग करनेसे आपको ६ महिनेकी कठिन सजा हुई है। आपका फोटो बहुत पुराना और खराब होनेसे ब्लाक ठीक नहीं बन सका इसलिये हम उसे नहीं छाप सके हैं उसका खेद है।

લાકરોડાની પાઠશાળાનો પુનરોદ્ધાર:— અત્રે સં ૧૯૭૨ ના સાલથી જે પાઠશાળા કોટડિયા સોમચંદ ઉગરચંદ ને પચ તરફથી ચાલતી હતી તે બંધ પડવાની તૈયારીમા હોવાથી તેને કોટડિયા નેમચંદ રવચંદ ૫૦૦૧) આપી પોતાના નામથી ફરી ચાલુ કરી છે જેનું મુહુર્ત માગસર સુદ ૧૧ રેવચંદ ખ્ખેચરદાસના હસ્તે થયુ હતું. આ પ્રસગે પં. દીપચંદજી વર્ણી, પ સિદ્ધસેનજી, પં. બુદ્ધચંદજી, ચુનીલાલ ઉગરચંદ વગેરેના ભાષણો થયા હતાં તથા ઉજેડિયા પાઠશાળાના વિદ્યાર્થીઓએ સંવાદ ગાયન વગેરે કર્યા હતા. આ વખતે પ્રમુખે ૧૦૧) ને લાકરોડાના ભાઇઓએ ૪૩૦) તથા બહારના પધારેલા ભાઇઓએ આશરે ૪૦૦) તથા ગુનમરના મહંતે ૨૬) મલી કુલ્લે ૯૫૭) સહાયના મળી હતી. વળી સ્ત્રી સભા પણ થયેલી જેમા ચંચળબ્હેન વગેરેએ સ્ત્રી કેળવણી પર ભાષણો આપ્યા હતા. **કેશવલાલ વૈદ્ય.**

महिला परिषद्–सिद्धक्षेत्र राजगिरिमें फाल्गुन सुदी २ से ५ तक होनेवाली वेदीप्रतिष्ठाके साथ२ वहां भारतवर्षीय दि० जैन महिला परिषदका अधिवेशन होगा।

सार्वधर्म या जैनधर्म ?

[लेखक:—पं० परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ—सूरत ।]

जो प्राणियोंका उद्धारक हो उसे धर्म कहते हैं। इसी लिये धर्मका व्यापक या सार्व होना आवश्यक है। जहां संकुचित दृष्टि है, स्वपरका पक्षपात है, शारीरिक अच्छाई बुराईके कारण आन्तरिक नीच ऊँचपनेका भेदभाव है, वहां धर्म नहीं हो सकता। धर्म आत्मिक होता है शारीरिक नहीं। कारण कि लोग जिस शरीरको ऊँचा समझते हैं उस शरीरवाले कुगतियोंमें भी गये हैं या जासकते हैं तथा जिनके शरीर नीच समझे जाते हैं वे शरीरी भी सुगतिको प्राप्त हुये हैं और हो सकते हैं। इसलिये यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि धर्म चमड़ेमें नहीं होता किन्तु आत्मामें होता है। इसी लिये जैन धर्म इस बातको स्पष्टतया प्रतिपादन करता है कि प्रत्येक प्राणी अपनी सुकृतिके अनुसार उच्च पद प्राप्त कर सकता है। जैन धर्मकी शरण लेनेके लिये उसका द्वार सबके लिये सर्वदा खुला है। यथा—

अनाथानामबन्धूनां दरिद्राणां सुदुःखिनाम् ।
जिनशासनमेतद्धि परमं शरणं मतम् ॥रविषेण॥

अर्थात्—जो अनाथ हैं, बांधवविहीन हैं, दरिद्री हैं, अत्यन्त दुखी हैं उनके लिये जैन धर्म ही परम शरणभूत है।

यहांपर कल्पित जातियोंका उल्लेख न करके सर्वसाधारणको जैन धर्म ही एक शरणभूत बतलाया गया है। इसी लिये यह बात निःसंकोच कही जासकती है कि जैनधर्म कहो या सार्वधर्म, एक ही बात है। जिस जैनधर्ममें मनुष्योंकी तो बात ही क्या, प्राणी मात्रके कल्याणकी भावना कीगई है वह तो सार्वधर्म स्वतःसिद्ध ही है।

लेकिन खेद लिखना पड़ता है कि कुछ संकुचित या कलुषित बुद्धिवाले जैन कहलानेवाले बन्धुओंने जैनधर्मकी सार्वधर्मताको बुरी तरह नष्टभ्रष्ट कर डाला है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहलाकर व आजीविकासे सम्बंध रखनेवाले भेदोंको यथार्थ और आत्मिक भेद समझकर सार्वधर्मपर खूब पानी फेरा है।

ढाई हजार वर्ष पूर्व जब लोग जातिमदमें मस्त होकर मनमाने अत्याचार कर रहे थे, मात्र ब्राह्मण ही अपनेको धर्माधिकारी मान बैठे थे, तब भगवान महावीर स्वामीने अपने दिव्योपदेशसे यह मूढ़ता जनतामेंसे निकाल दी और तमाम वर्ण एवं जातियोंको धर्म धारण करनेका अधिकार बतलाया था। यही कारण है कि आधुनिक बड़े२ विद्वानोंने भी भगवान महावीरके इस कार्यकी खुले दिलसे सराहना की है। लोकमान्य श्री० बालगंगाधर तिलकने एकवार मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करते हुये कहा था कि—

"ब्राह्मणधर्ममें दूसरी त्रुटि यह थी की चारों वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको समानाधिकार प्राप्त नहीं था। यज्ञ यागादिक कर्म केवल ब्राह्मण ही करते थे। क्षत्रिय और वैश्योंको यह अधिकार नहीं था, और शूद्र बेचारे तो ऐसे बहुत विषयोंमें अभागे थे। जैनधर्मने इस त्रुटिको भी पूर्ण किया है।"

इसमें कोई संदेह नहीं कि जैनधर्मने महान् अधमसे अधम और पतितसे पतित शूद्र कहलानेवाले मनुष्योंको उस समय अपनाया था जबकि ब्राह्मणजाति उनके साथ पशुतुल्य ही नहीं किंतु इससे भी अधम व्यवहार करती थी। जैनधर्मका दावा है कि घोर पापीसे पापी या अधम कहलानेवाला व्यक्ति जैनधर्मकी शरण लेकर निष्पाप और उच्च हो सकता है। श्री नेमिदत्तने इस बातको स्पष्ट कह दिया है कि—

"महापापप्रकर्ताऽपि प्राणी श्रीजैनधर्मतः।
भवेत् त्रैलोक्यसंपूज्यो धर्मात्किं भो परं शुभम्॥

अर्थात् घोर पापको करनेवाला प्राणी भी जैन धर्म धारण करनेसे तीनलोकमें पूज्य होजाता है।

इत्यादि आर्षतुल्य वाक्योंसे घोर पापी या नीच पुरुषको भी जैनधर्ममें आनेका खुला आह्वान किया गया है। ऐसी विशालदृष्टि और कहां है?

जैन धर्मकी सार्वधर्मता इसी बातसे स्पष्ट है कि इसको देवलोकसे लेकर सातवें नरकके नारकी तक धारण कर सकते हैं। जैनधर्म पापका विरोधी है, पापीका नहीं। अगर वह पापीका भी विरोध करने लग जावे, उनसे घृणा करने लगे तो फिर कोई भी अधम पर्यायवाला उच्च पर्यायमें नहीं आसकेगा और शुभाशुभ कर्मोंकी तमाम व्यवस्था ही बिगड़ जावेगी। अगर आप कथाग्रन्थोंको उठाकर देखेंगे तो मालूम होगा कि—

दृढ़सूर्य नामक महापापी चोर जब फांसीपर लटकाया गया तब वह णमोकार मंत्र जप रहा था, मात्र इसीलिये वह सौधर्म स्वर्गमें ऋद्धिधारी देव हुआ। अनंगसेना वेश्या जिनदीक्षा ग्रहण करके स्वर्ग लोकमें गई। महापातकी मृगसेन धीवर जैनधर्मके प्रभावसे उत्तम श्रेष्ठि कुलमें उत्पन्न हुआ। यमपाल चाण्डाल तो उसी भवमें देवोंके द्वारा पूजा गया था। कपिल ब्राह्मणने गुरुदत्तमुनिको आग लगाई और पीछे वही पापी अपने पापोंका पश्चात्ताप कर स्वयं मुनि होगया। ज्येष्ठा अर्जिकाने भ्रष्ट होकर पुत्र प्रसव किया और फिर अर्जिका हो गई। राजा मधुने अपने माण्डलिक राजाकी स्त्रीको अपने यहां रखा और बहुत दिनोंतक भोग भोगता रहा। अन्तमें दोनोंही दीक्षा लेकर अच्युत स्वर्गमें गये। शिवभूति ब्राह्मणकी पुत्री देववतीके साथ शंभूने व्यभिचार किया। देववतीने विरक्त होकर हरिकांता नामक आर्यिकाके पास दीक्षा ग्रहण करली (पद्मपुराण पर्व १०६) वेश्यालंपटी अंजनचोर उसी भवसे मुनि होकर मोक्ष गया। मांसभक्षी मृगध्वज राजकुमारने मुनिदीक्षा लेली और उसी भवसे मोक्ष गया। मनुष्यभक्षी सौदास राजा मुनि होकर मोक्ष गया। इत्यादि बातोंसे सिद्ध है कि जैनधर्म पतितपावन और सार्वधर्म है।

मनुष्योंके अलावा जैन मुनियोंने हाथी, सिंह, श्रृगाल, शूकर, बंदर और नौला आदि तुच्छ जंतुओंको भी धर्मोपदेश दिया, जिसके प्रभावसे वे देवगतिमें गये। (देखिये आदिपुराण पर्व १० श्लोक १४९ से १५१ तक) जैनधर्मकी सार्वधर्मता सिद्ध करनेके लिये क्या इतने ही प्रमाण पर्याप्त नहीं हैं?

धर्म धारण करनेका ठेका अमुक जाति या वर्णके हाथमें नहीं है। मगर मन, वचन, कायसे सभी प्राणी धर्म धारण करनेके अधिकारी हो सकते हैं। यथा—

मनोवाक्कायधर्माय मताः सर्वेऽपि जन्तवः।
—श्री सोमदेव सूरिः।

ऐसी२ आज्ञायें, प्रमाण और उपदेश जैन शास्त्रोंमें स्पष्ट मिलते हैं; फिर भी संकुचित दृष्टिवाले जातिमदमें मत्त होकर इन बातोंकी परवाह न करके अपनेको ही सर्वोच्च समझकर दूसरोंके कल्याणमें जबरदस्त बाधा डाला करते हैं। उनको मात्र भय इतना ही रहता है कि यदि नीच कहलानेवाला व्यक्ति भी जैनधर्म धारण कर लेगा तो फिर हममें और उसमें क्या भेद रहा? मगर उन्हें इतना ज्ञान नहीं है कि भेद होना ही चाहिये, इसकी क्या जरूरत है? जिस जातिको आप नीच समझते हैं उस जातिमें क्या सभी लोग पापी अन्यायी या अत्याचारी होते हैं? अथवा जिसे आप उच्च समझ बैठे हैं उस जातिमें क्या सभी लोग धर्मात्मा और सदाचारके अवतार होते हैं? अगर ऐसा नहीं है तो फिर आपको किसी वर्गको ऊँच या नीच कहनेका क्या अधिकार है?

हां! अगर भेदव्यवस्था करना ही हो तो जो दुराचारी है उसे नीच और जो सदाचारी है उसे ऊँच कहना चाहिये। यथा—

चातुर्वर्ण्यं यथान्यच्च चाण्डालादिविशेषणं।
सर्वमाचारभेदेन प्रसिद्धं भुवने गतम्॥
—पद्मचरिते श्री रविषेणः।

अर्थात्—चार वर्ण या चाण्डालादिक सभी आचारके भेदसे ही लोकमें प्रसिद्ध हुये हैं। और भी—

आचारमात्रभेदेन जातीनां भेदकल्पनम्।
न जातिर्ब्राह्मणीयास्ति नियता क्वापि तात्त्विकी॥
गुणैः संपद्यते जातिर्गुणध्वंसैर्विपद्यते॥ अमितगतिः॥

अर्थात्—शुभ और अशुभ आचरणके कारण ही जातियोंमें भेदकल्पना की गई है। लेकिन ब्राह्मणादिक जाति कोई वास्तविक निश्चित नहीं है। कारण कि सद्गुणोंके होनेसे ही उच्च जाति होती है और गुणोंके विनाश होनेसे ही जातिका भी विनाश होजाता है।

श्री अमितगति आचार्यने यहांपर बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है कि जातिकल्पना वास्तविक नहीं है। इसलिये किसी भी जातिका कहलानेवाला व्यक्ति जैनधर्म धारण करके पवित्र बन सकता है—आत्मकल्याण कर सकता है। जबकि अन्य अनेक धर्मोंमें जाति या समूह विशेषका पक्षपात है तब जैनधर्म इससे बिल्कुल अछूता है। यहांपर किसी जाति विशेष पर दृष्टि नहीं रखी गई है। किन्तु मात्र आचरणका ही विचार किया गया है। कारण कि—

अनार्यमाचरन् किंचिज्जायते नीचगोचरः॥ रविषेणः।

अर्थात्—दुराचरण करनेसे मनुष्य नीच होजाता है। इसलिये जैन समाजसे निवेदन है कि मैं

रही है। श्री० रावराजा सर सेठ हुकमचंदजी साहब आदि स्वागतके लिये सनतोड परिश्रम कर रहे हैं। इस मेलेपर मालवा प्रांतिक दि० जैन सभाका वार्षिक अधिवेशन भी श्री० सर सेठ हुकमचंदजी सा०के सभापतित्वमें होनेवाला है तथा श्री० १०८ मुनिश्री शान्तिसागरजी (छाणी) व मुनिश्री मल्लीसागरजी भी पधारे हैं। कार्यक्रममें सुदी ९ से गर्भकल्याणक प्रारम्भ होगा तथा सुदी १०को प्रतिष्ठा, रथयात्रा व महामस्तकाभिषेक है। बड़वानी जानेके लिये इन्दौरसे महु आना चाहिये वहांसे १।) फी आदमी हरवक्त मोटर तैयार मिलेगी। इन्दौरसे भी ३।।)में मोटरमें आ सकते हैं। दूसरा मार्ग खंडवासे है वहांसे भी बराबर मोटर ३।।) फी आदमीसे जाती है व खंडवावालोंने खास प्रबंध किया है। तीसरा रास्ता नरडाना या धूलियासे भी है। यहांसे भी मोटरका खास प्रबंध होनेवाला है। परन्तु विशेष सुभीता इन्दौरसे ही है। तथा अब तो बड़वानीसे चूलगिरि पहाड़ तक भी मोटर चालू होगई है।

हमारे पाठकोंको यह मौका कभी भी चूकना न चाहिये और अवश्य बड़वानीके इस मेलेपर पधारना चाहिये। यहां आनेसे पासमें ही सिद्धवरकूट, बनेड़ा, तालनपुर, मक्सीजी, इन्दौर आदिकी यात्रा भी हो सकेगी। बड़वानीमें ऐसा मेला ५० वर्षके बाद होरहा है व श्री बावनगजजी जैसी ऊंची अवगाहनाकी मूर्ति सारी दुनियामें नहीं है। इसलिये इस भव्य मूर्तिके दर्शनार्थ अवश्य पधारना चाहिये।

दक्षिण महाराष्ट्र दि० जैन सभा—का ३३वां वार्षिक अधिवेशन श्री स्तवनिधि अतिशय क्षेत्रपर वार्षिक मेलेके समय ता० १७-१८-१९ जनवरीको होगा।

भट्टारकजीका स्वर्गवास—सूरतकी जूनी गादीके सुप्रसिद्ध भट्टारक श्री सुरेन्द्रकीर्तिजीका पौष सुदी ६को सोजित्रामें स्वर्गवास होगया। अंतिम क्रिया ठाठबाठसे हुई थी। शोकसभा भी हुई थी व ग्राममें हड़ताल पड़ी थी। आप शांतिलालनामक एक शिष्यको भविष्यका भट्टारक बनानेके लिये रख गये हैं व ११ आदमियोंका एक ट्रस्ट भी कर गये हैं। जिसे शिष्यको योग्य बनानेकी पूर्ण सत्ता दीगई है।

इन्दौरसे बडवानीके लिये बैलगाडीका संघ।

बड़वानीके महामेलेमें जानेके लिये इन्दौरसे ता० १७ जनवरी माघ वदी १४ की रात्रिको बैलगाड़ीका एक संघ निकलेगा जिसमें समय अधिक लगेगा परन्तु मोटरसे कम खर्च व सुभीता अच्छा रहेगा। ७ सवारीकी एक गाड़ी ५) में मिलेगी। व फी सवारी २) है। इसमें रास्तेमें आनेवाले ग्रामोंके मंदिरोंके दर्शन भी होंगे। इस संघमें जानेवाले परमानद हीरालालजी गोधा, मल्हारगंज, इन्दौरसे पत्रव्यवहार करें।

उदासीनाश्रम इन्दौर—में पौष वदी ५ को बड़वाह नि० दानशीला केसरबाईकी ओरसे स्याद्वाद मंदिरकी स्थापना विधिपूर्वक होगई, शास्त्र व उपकरणके लिये ९००) का दान भी हुआ तथा ८-१० उदासीनोंने पहलीसे तीसरी तक प्रतिमाएं धारण कीं।

कलकत्ते—में श्री० सेठ मदनचन्दजी पांड्या (चैनसुख गंभीरमलके भाई) का स्वर्गवास होगया है। आप औषधालय, विधवा सहायता फंड आदि२ के लिये (३००००) का स्थायी दान कर गये हैं।

गंगादेवी जेलमें—मुरादाबादमें दि० जैन विदुषी महिला श्री गंगादेवीजीको ६॥ मासकी सजा सत्याग्रह संग्राममें हुई है।

पं० सिद्धिसागर वैद्य—ऋषितपुरको सामन्तगढ़ स्टेटसे 'राजवैद्य' की पदवी तथा (८८) वार्षिक मिला है।

कासगंजसे यात्राकी स्पेशल—गत वर्षके अनुसार इस वर्ष भी कासगंजसे गुजरातकी यात्राको एक स्पेशल ट्रेन (जिसमें हरएक प्रकारका उत्तम सुभीता रहता है) माघ सुदी ९ के करीब छूटेगी जो २ दिन जैपुर, १ दिन अजमेर २ दिन आबू, २ दिन तारंगा, २ दिन शत्रुंजय व १० दिन गिरनारजी ठहरेगी। इसके लिये छद्देतीलाल जैसवाल जैन आ० स्टेशन मास्टर—कासगंज (एटा)से शीघ्र ही पत्र व्यवहार करें।

मुनिश्री शांतिसागरजी—विगत मासमें सिद्धवरकूट पधारे थे तब वहां ब्र० मोतीलालजीने उनसे दिगम्बरी दीक्षा ले मुनि मल्लीसागरजी नाम रखा है। सनावदमें औषधालयके लिये (१००००)का चंदा हुआ तथा पंचोंने १ वर्षतक संघमें एक पंडित रखनेका खर्च उठालिया है। महेश्वरमें जैन अजैनोंने अनेक नियम लिये हैं।

राजगिरिमें—ला० डालचंद तुलसीराम फिरोजपुर छा०की ओरसे वेदी प्रतिष्ठा फाल्गुन सुदी २ से ९ तक होगी। अवश्य २ पधारें।

रोहतकमें परिषद् व रथयात्रा।

रोहतकमें रथयात्रा महोत्सव व अपकी भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद्का ८वां अधिवेशन ता० १९ से २१ फर्वरी तक होगा। सब भाई अवश्य२ पधारनेकी तैयारी करें। स्वागतकमेटी भी नियुक्त होचुकी है जिसके सभापति ला० लालचन्दजी एडवोकेट व मंत्री बा० उग्रसेन जैन वकील हैं। रोहतकके भाई परिषद्की सफलताके लिये अतीव प्रयत्नशील हैं।

श्रीमान श्रीमंत सेठका सिवनीमें स्वर्गवास!

परवार समाजके मुकुटमणि, राजमान्य व समाजमान्य सिवनीके सुप्रसिद्ध धनिक सेठ पूरनसावजीका ६९ वर्षकी आयुमें पौष वदी ८को धर्मध्यानपूर्वक स्वर्गवास होगया। आप लाखों रुपये धर्मकार्य व विद्यादानमें खर्च कर गये हैं। शिखरजीमें २० वर्षपर बड़ा मेला आपने ही किया था। सिवनीमें औषधालय, पुतलीबाई महिलाश्रम, व सरस्वतिभवन आपके दानके जीते जागते उदाहरण हैं। आपके कुंवर श्री० बिरधीचंदजीने आपका कार्य सम्हाल लिया है। स्वर्गीयकी आत्माको शांति व कुटुम्बको धैर्य लाभ हो यही हमारी आंतरिक भावना है।

बम्बईमें—अबकी बार पौष वदी ९को वार्षिक रथयात्रा बिल्कुल स्वदेशीमय ही हुई थी। मंदिरमें तथा रथयात्रामें विदेशीवस्त्रका नाम मात्र भी नहीं था। बेन्ड भी वोलंटियरोंका ही था।

मगनव्हेन स्मा० फंड बम्बई—में (१९३१॥।=) भर चुके हैं।

ब्र० गमनीबाईजी—का परतापुर (बांसवाड़ा)

में मगसिर सुदी १०को समाधिमरणपूर्वक स्वर्गवास होगया।

रायराजा सर सेठ हुकमचन्दजी-की पारसत्वार्थ इन्दौरका वार्षिकोत्सव ता. ६ दिसम्बरको हुआ था जिसमें आपको रायराजाकी पदवीके उपलक्षमें मानपत्र भी दिया गया था।

कोसी (मथुरा) में-मुनिसंघके समक्ष पं० मक्खनलालजी व पं० गौरीलालजीने सातवीं, पं० खूबचन्दजीने तीसरी व पं० मक्खनलालजीने दूसरी प्रतिमा धारण की है।

बम्बईमें-कोटके म्यूजियममें कई दि० जैन प्रतिमाएं अरक्षित भी हैं उनको प्राप्त करनेके लिये कोशिश करनेकी आवश्यकता है।

लंदन (विलायत) में-श्री० बेरिस्टर चम्पतरायजी साहब ऋषभ जैन लाइब्रेरी कायमेरी द्वारा व्याख्यानें देकर जैनधर्मका खूब प्रचार कररहे हैं।

बड़वानीमें-गत मासमें श्री० ब्र० सीतलप्रसादजी पधारे थे तब सर सेठ हुकमचंदजी, सेठ फतेहचंदजी, सेठ हरखचंदजी व सेठ कस्तूरचंदजीको 'बड़वानी तीर्थोद्धारक' व मुनीम गुलाबचंदजीको बावनगजाजी तीर्थभक्तकी पदवी देनेका प्रस्ताव हुआ था।

कुड़ची अत्याचार-जांच कमेटीकी रिपोर्ट सरकारने प्रगट करदी है। वहांके जैन लोग मंदिर संबंधमें अबतक दुःखी ही हैं।

रा० ब० डॉ० सर मोतीसागरजी-दि०जैन लाहौर जो एक समय लाहौर हाईकोर्टके जज थे व देहली यूनिवर्सिटीके वाईस चेन्सेलर थे उनका हृदय बंद होनेसे ता० १० नवम्बरको स्वर्गवास होगया।

भारत० दि०जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी-गवर्नमेंटसे रजिस्टर्ड कराली गई है।

म्हैसूर-के सीतलदुर्गसे २ मील चन्द्रावलीकी घाटोंमें खुदाई करनेसे म्हैसूर सरकारको १००० से अधिक वस्तुएं मिली हैं जिसमें राष्ट्रकूटोंके कई ताम्रपत्र मिले हैं। जिनकी खोज करनेसे राष्ट्रकूट वंशीय प्राचीन जैन राजाओंका इतिहास प्राप्त होसक्ता है।

पं० मूलचन्द जैन वत्सल-बिजनौरको काव्यकलानिधिकी पदवी मिली है।

अमरोहामें-श्री ब्र० सीतलप्रसादजीने चातुर्मासमें ठहरकर स्वर्गीय पं० बिहारीलालजी चैतन्यके जैन शब्दकोषका महान कार्य पूरा किया, वृ० स्वयंभू स्तोत्रकी टीका लिखी व गोमटसार कर्मकांड अंग्रेजीका उल्था पूरा किया था। अपने स्वास्थ्यकी पर्वा न करके भी ब्रह्मचारीजीने यह महान् कार्य पूर्ण किये हैं।

नागपुर-में ठहरनेके लिये इतवारी बाजारमें "परमानंद धर्मशाला" बहुत ही योग्य खुली है।

परिषद्की परीक्षा-अबकीबार १९ फर्वरीसे होगी। बोर्डिंगके छात्र शीघ्र ही फोर्म भरकर भेजें। मंत्री परीक्षाबोर्ड-बड़ौत (मेरठ)।

विना मूल्य-संघ सहित यात्रा आनेवालेको गिरनार, मुक्तागिरि व सोनागिर यात्राकी पुस्तक द्वारकाप्रसाद जैन डे० पोस्ट मास्टर जैपुरसे विनामूल्य मिलेगी।

आचार्य शांतिसागरजी-के स्मारकमें चौरासी (मथुरा) में कोट बनानेके लिये चन्दा होरहा है जिसमें २०००) भरे जा चुके हैं। इसके मंत्री बाबू गुलाबचन्दजी टोंग्या-मथुरा हैं।

राष्ट्रीय सत्याग्रह-संग्राममें जेल जानेवाले दि० जैन वीर।



सेठ पदमराज रानीवाले।



बाबू रतनलाल वकील।





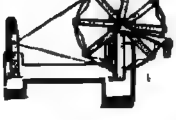
बा० नेमीशरण वकील।



सिंघई पन्नालालजी अमरावती।



सेठ चिरंजीलालजी वर्धा।





तनसुखरायजी-रोहतक।



राष्ट्रीय सत्याग्रह-संग्राममें जेल जानेवाले दिगम्बर जैन वीरः—



यादवराव श्रावणे-सिरपुर।
(पासमें आपके मित्र खड़े हैं।)



हरिश्चंद्र पलसपुरे-काटोल।
[आपके नामका पृ० ६५ पर छपा हुवा फोटो किसी दूसरेका छपगया है।]

जैनविजय प्रेस–सूरत।

The Naked Saints.

(By:—Babu Kamtaprasad Jain M. R. A S)

THE knowledge of sin is a sin itsself; Man is born without its knowledge whatsoever and consequently no one has ever been found to abhor with this natural attire Men and women gladly take the baby in their laps and the baby itself do not mind the nakedness, with which it bas been ushered in this world. But what happens next? The baby comes of age and with it the feeling of good and bad grows in it. Now the very nakedness, which was a simple thing of enjoyment to it uptil the feeling of sin dawned, becomes a thing of abhorrence to it It means the very knowledge of sin is the cause of all the worldly entanglements Hence one who wants to get rid of all such entanglements, should adopt a baby-like attitude in every respect of life The Jaina **Tirathankaras** understood this simple **Truth** and they in order to get emancipated from the bondage of matter or world, lived a life of simple living and high thinking They severed the connections of world and even let go the knowledge of sin from mind They became naked—wore the very dress, which the Dame Nature gave them and became free. They shone like a brilliant sun of Knowledge and Perception and after all became the worshipable **Sidcha Parmatmans** The Hindu tradition do, al o, support our this view, since we find their **"Bhagawat"** proclaiming **Sri Rishabhadeva**, the first Jain **Tirathankara**, as a preacher of the **Paramahansa** (naked) status of Indian Saints. It seems therefore that the Hindu religion, has borrowed the tenet of nakedness for saints from the Jains themselves' *

And it is not, indeed, the case with the Hindus only, but the ancient Greeks,‡

* "एवमनुशास्यात्मजान् स्वयमनुशिष्टानपि, लोकानुशासनार्थं महानुभाव परमसुहृद्-भगवानृषभो देव उपशमशीलानामुपरत-कर्मणाम् महामुनीना भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षणम् पारमहंस्य धर्ममुपशिक्षमाण स्वतनयशतज्येष्ठ परमभागवतं भगवज्जन-परायण भरत धरणीपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोर्वरित-शरीरमात्रपरिग्रह उन्मत्त इव गगनपरिधान प्रकीर्णकेश आत्म-न्यारोपिताहवनीयो ब्रह्मावर्तात प्रवव्राज ॥२९॥

—भागवतस्कन्ध ५ अ० ५

In the above passage, Rishabhadeva is clearly said to have preached the *Paramhansa* (naked) status of the saints and no doubt, he was the Jain Tirthankara (See Hindi Vishwa Kosha, Vol III P. 444). Besides in the *"Jabalopnishad"* (Sutra 6) of the " Atharva-veda, " the *Paramhansa Sadhus* are described as *"Nirgranthas"* and *"Shukla-Dhyana—Parayanas."* These both terms are of the Jains exclusively and are not found in any of the philosophical schools of the Hindus. And as such, it is obvious that the Jain Tirthankar were the first preachers of nudity for the Saintship

‡ Greeks used to worship naked deities (See The Journal of Royal Asiatic Society, Vol. IX. PP 232)

Christians and Moslems† could not be an exception to it. They had also preached the tenet of nakedness at a time in one form or other and none of them, of course, could claim to be the predecessors of the Jains. The following passages in the Holy Bible speak of nudity, as the mark of saint-ship—

> "And he stripped off his clothes also, and prophesied before Samuel in like manner, and lay down naked all that day and all that night. Wherefore they said, "Is Saul also among the prophets?"
>
> "At the same time spake the Lord by Isaiah, the son of Amoz, saying, 'go and loose the sack cloth from off thy loins, and put off thy shoe from thy foot. And he did so, walking naked and barefoot." (—Isaiah XX 2)

Thus we see that the nudity as a mark of saintship, was first preached by the Jain Tirthankaras and it was adopted in the same sense by almost all other important religions of the world. It has been looked with respect and upheld with honour with the saviours of Mankind.

But with the changes of the 20th century, the people have also changed their ideas about it. The major portion of them abhor it now and despise the minority, which still stick to it It is a false notion of theirs of course and so could not stand long. Europe, the cradle-land of the modern civilisation itself is showing signs of its upliftment. I mean to refer to the German Colony, in which many a modern & civilised Europeans live in the dress of nature. In India too, the Digambara Jain Saints are keeping alive this ancient tenet and there are a few **Nagas** in the Hindu community as well, who go about naked. But inspite of this, There are Hindus & Hindus, who worship the naked **Shiva** and **Dattatrya**, yet take objections to such **Yogis**! They would not let go such Saints openly, if it lies within their power! Indeed, it is a pity and I wonder at their fanatic attitude! The saints, who have been worshipped and welcomed by one & all from ancient times, who have attracted the attention of the westerners and brought laurels to India—and who have ever been entertained for their goodness, piety and knowledge by Rajas and Maharajas, are now being objected to! And for, merely being naked! It is awfully bad! The mutual tolerence is the only link, which can join the different sects together. And so we should not forget this simple truth—for the sake of our common good in the least!"

To close, I take this opportunity to place before the readers a few historical facts, in the below, which speak highly in favour of the naked saints and show that how much good, they have done to India in the past and who were never objected to from going about —

1. The Buddhist book **"Mahavagga"** of the Mauryan times says: At that time a great number of the Niganthas (naked Jain saints) running through Vaisali, from road to road, crossway to crossway etc"

—(Vinaya Texts, S. B. E. XVII. P. 116)

2. "They went out for alms naked and (received alms) with their hands"

—(Ibid. XIII. P. 223).

3. Another ancient Buddhist book the "*Dhammapadatthakatha*" (Vol 1, pt. 2 pp. 434-44) shows that the naked Jaina saints were used to be entertained within the premises of highly respectable families and they used to impart useful instructions to them.

4. In the classical Sanskrit literature we find in the "*Mudra—Rakshasa—Nâtaka*"

---

† Nudity was also a sign of world-renunciation amongst the Arabs. (Supplement to Confluence of Oppos. P. 27).

that one naked saint Jivasiddhi worked as spy and roamed about in cities for Chandragupta Maurya. (Hindu Dramatic works by H. H. WILSON 1901). Such saints have access to respectable families and were useful for the Nation's Cause!

5 The "*Harshacharita*" mentions *Digambara* (naked) *Arhat* saints, who were living in forests observing fasts etc. They were capable of holding disputations on philosophical topics and were invited by King Harsha himself.

6. When Alexander the Great came to India, he found many naked saints (gymnosophists), who were Jainas, (Ency Brit 11th ed. Vol. XV, P. 128) near *Taxilla* on the N. W Frontier and was much impressed with their Knowledge and penance. He at last persuaded one of them to accompany him to Greece. The Greek writer says about them: "These men went about naked, inured themselves to hardhips and *were held in highest honour*. That when invited they did not go to other persons. Every wealthy house is open to them, even to the apartments of the women."

-(McCrindle's, Ancient India PP. 70-71).

7 King Emperor Chandragupta Maurya entertained such Jain recluses (J R A S, IX P 176) and he himself became a naked saint in his after life. (Early History of India, P 154) Emperor Asoka, also, honoured such Jain Saints.

8. Naked, Jain saints even went to Nubia and Abyssinia, Central Asia and Greece†, Sweden and Norway‡, Java and Ceylon§, and preached their religion there.

9. Eight naked servants carried gifts from the Indian Prince to the Greek King Cæsar. "They were accompanied by the man, who burnt himself at Athens. He with a smile leapt upon the pyre naked etc"... Zarmanochegas seems to be the Greek rendering of *Sramanacharya* or Jaina guru and the self inimolation, a Variety of Sallekhna vow of Jainas." —(Indian Historical Quarterly, II, P. 293).

10 The Chinese Traveller Hieun Tsang (St. Julien, Vienna, P. 224), who came to India in 7th century A. D. called the Jain saints Li-hi and found them scattered all over India and in Afganistan. He says, "The Li-hi (Nirgranthas) distinguish themselves by leaving their bodies naked and pulling out their hair."

11. European Traveller Marco Polo says about them "Some Yogis went stark naked, because, as they said, they had come naked into the world and desired nothing that was of this world 'Moreover,' they declared, we have no sin of the flesh to be conscious of, and therefore, we are not ashamed of our nakedness, any more than you are to show your hand or your face You, who are conscious of the sins of the flesh, do well to have shame and to cover your nakedness." (Yule's Morco Polo, II P. 366)

12. Many a Hindu King such as Bhoja, Jayasingha etc., honoured the naked Jain saints.

13. Malik Muhammad Jayasi, an official of the King Shershah (16th century A. D.) Mentions naked saints.*

14. No less an Emperor than Aurangzeb and King Allauddin, too, honoured the Digamber Saints. ‡

* Asiatic Researches III P. 6, and ... पृ० ... † Lord Mahavira and Some other Teachers P. 36 ‡ The "Hindu" of 25th July 1919 § Mahavansa P. 49

* 'कोई ... ...।
कोई ... ... ॥ १० ॥"
—... ...

‡ Studies in South Indian Jainism, PT. II, P. 132.

The Message of Mahavira.

(By–Baboo Ajitprasadji M. A., LL., B, Advocate, Lucknow.)

SELF-determination, Swaraj, or complete Independence is the inherent right, the essential attribute, the final evolution, the ultimate perfection of every Soul.

"Disease and deformity, health and beauty, privation and poverty, peace and plenty, strength and power, weakness and distress, are circumstances brought about by varying conditions, and actions of the Soul. They are impermanent. Perfection is permanent. Soul shall attain salvation. Sooner or later is the only question. And that depends on one's efforts.

The soul is self-purifier, self protector, and self-redeemer. Eternal perdition is a fiction invented unnecessarily to create dread of evil. Eternal perfection, however, is a fact, and every soul may attain this.

The path to perfection is easy. Love all, hate none. Be cheerful even in disease and distress, affliction and destitution. Suffer all physical pain and mental anguish with fortitude and equanimity, and remain calm and undisturbed. Befriend all, man or animal, beast or bird, worm or insect. Rejoice when you see one better qualified, better situated, happier, stronger, and mightier than you are. Have compassion for the afflicted and do what you can to relieve his misery. And be tolerant even to one perversely inclined, and bent towards evil, do not feel vexed and resentful to him, but pray for him.

and you will be happy now, and your happiness will increase ever, here and hereafter, until the Soul attains its ultimate destination of unceasing, unending continuous, all-pervading Happiness, All power, and Knowledge Absolute, Omniscience, Omnipotence, and omnipresence.

Some Questions.

(By Shangvi Ratnalal Jain, Jaipur)

THE Jaina Metaphysics divides space into Loka-Kasa and Aloka-Kasa. Loka-Kasa forms the limit of our Universe which measures Fourteen Rajus and has the shape of a headless man with his legs spread and arms akimdo. This shows that Loka-Kasa is Finite and Limited. Now a Finite and Limited space can give abode to Finite and Limited Substances. As such Matter and Soul become Finite and Limited, For after all Matter and soul do occupy some space and a Finite and Limited space cannot contain Infinite and Unlimited entities. If this is so, the Jaina theory of an Infinite and Eternal Universe in its popular sense does not hold water. For souls are individually seperate from one another and they are getting salvation from time to time, so all the Bhavya Souls would come to an end, except the Abhavya ones, at some distant future however remote it may be. At that Ultimate moment the Gates of Salvation would be locked for ever and the drama of Good and Evil would come to a close. Please account for the Conclusion which goes quite against the doctrine of Jainism.

2 Matter is said to have Infinite Modes or Unlimited Changing forms, and Omniscients have Infinite Knowledge. How can omniscients apprehend the Infinite Changing forms of Matter in full? For the moment They know them in full, the Matter becomes Limited and Finite. As such either Matter is Finite and Limited, If Omniscients can know the Forms of matter in full, or Omniscients have Finite and Limited knowledge, they can not know Matter in full. Kindly explain the disparity.

3 If anywhere the Connotation of the Infinite and Unlimited becomes that of the

Karmas.

(By:—*Baboo Tarachandra Jain Pandia, Jhalrapatan*).

THE word Karma is used in various senses in Sanskrit language. It means, (1) all actions in general, (2) only past actions whether of this life or of pre-natal life or lives. In the region of Grammar, it has a meaning corresponding to that denoted by the objective case of English. Other meanings also can be quoted. But in Jain terminology, 'Karma' is used in a very peculiar sense, i. e. the subtile matter which interfuses with a soul in a state of passion and causes it to undergo various modifications. It is in this last sense that I propose to write some words about Karmas in the present article.

Is it possible to believe in the existence of any such thing as Karmas? In trying to find out an answer to this question, we may try either to perceive the Karmas or to know them through what are said to be their effects. Unfortunately, the former course is not open to us. Because the Karmas, though matter and therefore possessing all the common properties of matter, i. e., colour, taste, smell and tacility are yet too fine to be capable of perception by our senses; and reflect how subtile that thing must be which interfuses with such an immaterial substance as soul and brings about modifications in it. But the mere fact of the Karmas being imperceptible to our senses should not lead us to a denial of their existence, because the power of our senses is very much limited and imperfect, and things have been known and proved to exist in spite of our senses failing to perceive them. To say nothing of such things as soul, space and Karmas, our eyes cannot see even innumerable such things as are open to a microscopic vision, and everybody knows that even the most powerful microscopes made hitherto are very far from perfection.

So, without being dis-couraged by the imperceptibility of Karmas, we should turn to their effects for their study, just as we become aware of electricity by its actions.

A glance at the world shows that there are many differences between conditions of living beings. Some are poor, some are rich. Some are healthy and handsome. Some are born sickly and ugly. Some are intelligent, others are idiots or insane. Some are virtuous and noble, others are vicious and mean. Some are rational, while others are irrational, so much so that but for persons like J. C. Bose, the cons-ciousness of such low forms of living beings as trees would not have been manifest to the people

---

Finite and Limited, please give reasons why a spade is not called a spade. Why are the terms of Infinite and Unlimited used for those of Finite and Limited?

Any one and every one may throw light upon these questions, but I particulaly request and invite the pen of Acharya Ganesh Prasadaji, Acharya Maneckchandji, Pandit Jugal Kishoreji, Pandit Darbarilalji, Brahmachari Shital Prasadji, Barrister Champat Raiji, Pandit Makkhan Lalji, and Pandit Khubchandji.

of the present century except through the outward signs of growth or self-devlopment. In fact there are infinite kinds of differences in every respect, and these are within the knowledge of every man, so that, no two living bodies can be said to be similar. How can these differences be accounted for? Only two explanations are possible, and only one of them can be true. either the differences must be belonging to the inherent nature of the souls, i. e, every soul must be essentially different from another, or they must be due to some extraneous cause. The former alternative is not possible, because had differences been the very nature of soul, then the soul-the life dwelling in the temple of body—would have never felt dis-comfortable on account of them, rather would have felt happiness in them But it is not so. The souls instead of remaining content with these differences, actually wish and try to remove them and establish equality in a better way between the conditions of soul and soul, so that the less happy they are when they try to become more happy, the poor aspire to become rich, and the ignorant long for perfect knowledge Some might reply that these are the stages of evolution in the condition of a living being But, why should one wish to change one's own nature and how can alteration be possible in it? Besides this, how is it that one has made great programme while the other is lagging far behind? If circumstances like heredity and surroundings are brought forward to explain it, then the question arises, why have all not been favoured with equal and similar circumstances? Moreover, if living beings had been the work of only circumstances, then the persons born of the same parentage and under the same circumstances would have been similar. The circumstances also do not always lead to the same results, An attempt which brings one into affluence reduces another to beggary. A man becomes bad by keeping a bad company, but there are also instances to show that a vicious society has produced different results. The same thing stirs up anger at one time, and love at another times. This theory cannot explain also the advent of a genius whose ideas go against his time and society. All these demonstrate that there is a power in the living body-the soul which can overrule the circumstances.

The idea of a creation by Divine will also does not have a better fate Considering the qualities of justice, mercy, omniscience and omnipotence which are associated with Divinity it is inconceivable that a Divine Being should have a hand in the formation or the management of this sinister and unhappy world Some are born poor, sickly, dumb and blind. Many die in their infancy, while several die while yet in their mother's wombs What sins had these committed? Even the conditions of grown up persons can not all be explained by the actions of their life. Thus, to hold a Divine being responsible for the differences between the conditions of living beings would be to make him either childish or cruel and mischievous. We are obliged to belive in the existence of soul even before its incarnation in the present body. But in the past life also, the soul must have been moved to action only by certain unnatural conditions, because, who would act against his own nature in a pure state and thus debase himself by self-choice? But to find out a reason for the unnatural conditions of the past life, we are led to trace back to a more prior life, thus we have to become the supporters of the transmigration of soul and to believe that soul is eternal Some combine this theory of the transmigration of soul with the assumption of a Divine Judge and hold that it is

God who punishes or rewards each living being according to its deeds whether of its present life or its past life or lives.

But, as has been pointed out above, the function of dispensing justice is contrary to the well-known virtues of a Divine Being. Neither is it possible for a perfect being to be the creator of this miserable world nor can an omniscient creator feel it necessary to judge his own works. How can he punish a soul when he himself has so constituted it as to be able or likely to commit a sin? If he judges from a desire to do so then this desire indicates some want, and want imports uneasiness which is against the blissful nature of a God. He must be feeling it a very disgusting duty to cause bitter pain to his own children, or it must have been panging his merciful heart very much to see his children committing sins inspite of his judgments and reformative or deterrent punishments. There is an infinite number of souls in this universe and almost all are constantly engaged in some work or other. To keep a record of all of them and to decide their cases and execute sentences on them would be a very burdensome task. If he delegates his duties to others, then these beings inferior to him and therefore imperfect, can not be expected to discharge their functions always rightly.

Is it with his own hands or through the agency of others that he carries out his sentences? If with his own hands, then, why do the living beings receive injuries at the hands of others also? If through the agency of others, then why are his tools condemned for the deeds? Moreover, the object of punishment is to prevent the repetition of the offence. But it is surprising that the corrective measures of even an omniscient and omnipotent being should fail in their purpose, because most mundane souls do not seem to cease from sins. In fact, the punishments or rewards ought to have been instantaneous, or at least the doers ought to have been kept informed of the acts the fruits of which they are made to reap. It may also be argued that when by way of punishment one receives injuries at the hand of another, the instrument of God, then one is excited to anger or revenge, and thus leads to further commission of sins; thus God becomes the abettor of sins, and his punishments have a demoralising effect.

Similarly, his rewards also necessitate or encourage the commission of sins in enjoying and preserving them. Besides this, God must be dispensing justice in conformity with some fixed rules. If these rules are nothing but the inherent nature of things, then nature itself can have its course, and there is no necessity of a Divine interference. But if these rules are arbitrary, i.e. made by God to suit his will, then what right had he to frame unnatural laws and desire the souls to follow them with threats of punishments and temptations of rewards, and thus to cast them into a state of unhappiness and make a chaos of everything in this world? If God were to possess the dangerous power of ordaining anything against nature then is it not be feared that one day his sweet divine will could turn his Godhead into beastliness or even nonentity? In short, the theory of a Divine Judge is open to thousand objections, and I hope that the arguments put forth above, though few, and a few they must be considering the limited space at my disposal, yet will convince the reader of the utter untenability of a God judging the affairs of the world.

Thus, failing to find out, in the outside world, any cause of the differences between the conditions of living beings, we should turn again to the soul itself. As has been

these before, these differences cannot be the pure nature of soul, because, had it not been so, then, apart from their improbability to cause unhappiness, they could not have been removable. On the contrary, every soul delights in knowledge and happiness, and proper conditions being fulfilled, what one soul has achieved can be and is seen to be achieved by another soul also. All these go to demonstrate that happiness and knowledge are the essential nature of soul, and that all souls are potentially equal. These truths are self-evident But if diversity, and imperfect knowledge etc, are not the essence of the souls, then it may be that they are due to a debasement or impure modification of the pure nature of the souls. Because, it is the nature of every substance to undergo some modification every moment. If it is self-caused then it is termed pure because it does not degrade or alter the qualities of the substance, in as much as pure nature cannot be self-degrading. But if the modification is brought about with the aid of a foreign substance then it is called impure, because it causes some degradation or alteration in the qualities of the substance, just as Hydrogen and Oxygen combined undergo a new condition called water. It might be added here that though it is the nature of every substance to undergo its pure modification yet the impure modification is not universal.

Now, unhappiness etc. being clearly the unnatural conditions of soul, these cannot be said to be its pure modification, but must be supposed to be its impure modification. But to suffer an impure modification, the soul must possess a capacity for it, because nothing can affect any thing in manner without the latter being susceptible of being so affected.

Similarly, there must be another kind of substance also to affect and to be affected by it. Because to cause an impure modification, mere contiguity of substances is not sufficient. There must be an intercombination so that both may be mutually affecting and be mutually affected In short the combining substances should become one and in a new condition Such a combination of soul with an immaterial substance being impossible, we have to conclude that the impure condition of soul is the result of the combination of soul with matter. The actual facts also lead to the same truth that the living bodies generally found or seen in this world are neither pure matter nor pure souls, but a combination of both Consciousness, feeling of 'I' ness as expressed in fear etc, and such other symptoms point out to the soul beaming, though faintly, across the clouds of matter, just as milk is traceable in a mixture of milk and water. Similarly, experiencing of pain and pleasure from material objects dependance of knowledge and perception on material organs of senses, the state of embodiment, and such other signs bear testimony to the existence of matter in union with soul It is generally noticed that under passions as anger etc, the colour of the eyes and face changes, mental worries bring on consumption, sorrows move tears to flow from eyes, cheerfulness & gloominess produce different effects on the countenance, often eyes betray the character and secret intentions of a man How could these have been possible if there had been no element of matter in passions, desires etc ? A close analysis of the desires of a soul reveals that it feels some kind of uneasiness while under their influence, and that mere objects do not cause happiness or unhappiness to soul It is its attachment or aversion that makes it happy or unhappy But no one can put attachment or aversion in another person The e are the affectations of one's own-self . This also testifies that the inherent nature of soul also has undergone impure modification.

Nevertheless, neither soul has become matter nor matter has become soul, because the essential qualities can not be destroyed as it would mean the destruction of the substance itself. In a mixture of milk and water or combination of Hydrogen and Oxygen, the components continue to retain their natural attributes though in a latent condition, as evidenced on their seperation. That desire is not the essence of soul and is seperable from it is seen by the degrees of desire varying from moment to moment and by the fact that there are found persons quite or almost free from desires This also is every body's experience that peace and other qualities of soul increase in reverse proportion to desires

The existence of Karmas having been shown, now let us see how they function. We have to believe that Karmas are associated with soul ab initio which, considering the eternity of soul, means from times without beginning Because, only two alternatives are possible, either the soul was originally pure and became impure afterwards or the soul has ever been impure These two being contradictory propositions, the falsity of one establishes the truth of the other, and vice versa Now, if the soul had been originally pure, it could not have become impure subsequently, since it is only in an impure condition that soul becomes associated with Karmas The impure condition of soul and the combination of Karmas with soul are interdependent, so that without one the other is not possible. If a substance can become impure even in a pure condition, then pure nature would have been an impossibility So like the connection of husk and grain. or alloy and gold, the connection of soul and Karmas also is from the very beginning, from eternity

A pure consciousness is concerned only with knowing. It knows and believes in its oneness with itself and the foreign nature of the foreign substances. Being immaterial, it can not be affected by foreign substances, nor can its happiness be dependant on objects independant of itself. But, when its pure nature is perverted, then it forgets itself, and feels its oneness with foreign objects. This is called attachment. Under its influence, the soul believes itself to be affected when the object it mistakes to be itself is affected or undergoes any change But, this object being, in fact, independant of soul, is not bound to be or to be affected always in a manner agreeing with the desire of the soul. The result is that the soul feels attachment for those objects also which it believes to be agreeable to its mistaken self and also aversion for those which are believed to be disagreeable. This feeling of agreeableness or disagreeableness also imports attachment and aversion. Thus attachment is the root of all desires which are manifested in various ways. e. g., anger, pride, deceit, greed, sexual passion, sorrow, hatred etc This attachment or misbelief is brought about by the Karmas which themselves are the results of attachment, just as a tree grows from the seed and the seed comes from a tree. These Karmas are nothing but the atoms of a kind of matter which modifies the impure soul and is modified by it. With every movement, whether physical, vocal or mental, the embodied soul also is moved. With every movement of soul, the atoms of Karmas begin to be attracted towards it. If this movement is incited by attachment or aversion, then the Karmas are combined with the soul the duration and effectiveness of the combination being determined by the intensity of the attachment or aversion. Because, a more intense attachment shows a greater infatuation of the soul which must necessarily bind it with Karmas more strongly, make it more forgetful of its real

nature, and therefore, cause a more impure modification of it, make it more dependant on matter, and thus eventually make it more unhappy. On the other hand a less intense attachment indicates less infatuation of the soul, and so causes it to forget its nature less which makes it less dependent on matter for the manifestation of its qualities and thus eventually makes it less happy. This is why what are popularly called bad actions yield unpleasant fruits, because, thay involve greater infatuation of the soul, while the good actions e g., charity etc bear pleasant fruits, because they involve mild infatuation of the soul (the doer). But, even these good actions are, really speaking, not desirable, because, involving attachment, howsover mild, they do not allow the soul to enjoy its true nature fully. However, these can offer facilities to a willing soul for knowing its own true nature and ultimately rid itself of [the Karmas in totality. So the good actions are preferable to the bad ones. This further illustrates that unhappiness is not caused by the objects, but, by one's own attachment or aversion, and so, the true way to happiness is not in collecting or removing material things, but, in subduing and destroying one's own desires.

The infatuation of the soul indicates also the obscuring of its knowledge, perception, and its power of manifesting and retaining its essence in pure condition. This leads us to classify Karmas as infatuating, knowledge-obscuring, perception-obscuring and power-obscuring. These classes of Karmas bring about modifications which are directly connected with the soul. Then the formation of body, the determination of heredity, the duration for which a soul is to remain in a particular body, and the bringing about of the instruments of causing pain or pleasure to the infatuated soul—each of these functions also must be assigned to a particular class of Karmas, but these affect the soul indirectly. So we have eight classess of Karmas, in all, four of which affect the soul directly while the remaining four indirectly. Each of these classes can be further subclassed in innumerable ways. At the time of bondage, the fructiferous capacity of all Karmas is divided into these eight classes, in definite proportions, excepting the Age Karma which is bound only at definite periods. Having been bound with soul, the Karmas lie latent for some time, and then begin to operate till the duration period is completed, and then they shed off. But, owing to their operation, the soul undergoes modification and is stimulated to attachment which brings on bondage of fresh Karmas. Thus the circle goes on. This also should be noted, that the Karmas, whether in a state of latency or of operation, can be changed in quality and quantity of effect by the subsequent motives and actions of the soul, except the Age-Karma which can not be changed in quality after it has been bound and in duration and quality after it has come into operation. A pre-mature shedding of Karmas by anticipating their fruits is also possible. Thus, the soul makes its future fate, and can alter the decrees of the past also by its present actions or motives. This is the story of the Karmas in brief. But, this is not a full description, nor does it claim to be an introduction. The aim of this article is simply to arouse the interest of the reader for this important subject, and the person who is desirous of understanding the subject well is requested to study the ancient books on the subject.

However, before concluding the article, I wish to reply to few objections that can possibly be raised against this theory of Karmas. How is it possible for matter to affect a non—matter? In reply, it can be said that in the first place, it is the nature of the

soul in an impure condition to be affected by the Karmas. Secondly, the Karmas also are very fine atoms of matter. Thirdly, in daily life also we see wine and medicines affecting the knowledge of soul.

Then, when the soul has ever been in combination with Karmas then, how can their separation be possible? In reply to it, it may be stated that though the existing embodied souls have never been free from the Karmas, yet their inherent nature, which is different from matter, has not been destroyed, and that although, like the water of a ceaseless stream, the combination of Karmas has ever been in existence, yet the bondage of each individual Karma is only for some time, so much so that every instant an infinite number of Karmas are shed, an infinite number of fresh Karmas are bound, and an infinite number of Karmas remain in bondage with each soul.

Then, how can the actions attract proper Karmas and the Karmas bear proper fruits? This can be answered by pointing out that just as a magnet attracts iron so the actions attract proper Karmas and that just as by natural progess. Food when eaten gradually changes into the elements of body or poison affects the body fatally so the Karmas produce proper results in a definite manner The truth is that every substance is a group of attributes which constitute its nature It automatically functions in accordance with its nature, as it is fundamentally impossible for it to do otherwise Thus there can be no mistake in the laws of nature, nor do they require any other authority to enforce them.

Lastly, if the infatuation is caused by the Karmas and the Karmas breed infatuation, then how is it possible to get freedom from this circle or get more or less freedom than others? In reply to it, it should be noted that it is through attention that soul becomes aware of an object, and then, owing to the infatuating Karma, it feels attachment or aversion for it Now, the attention being not invariably fixed equally on all objects, the soul, while reaping the fruits of Karmas does not always have the same intensity of attachment or aversion, Sometimes it is mild, sometimes it is strong Owing to mild attachment, the soul gets such facilities as good circumstances, good society less obscuring of knowledge etc, and then, if it is willing and exerts itself, It can know its true nature as distinguished from that of other kinds of substances (the very process of study mitigating the force of Karmas), and then believes in itself, thus cutting off the two big heads—Wrong Belief and Wrong Knowledge of the three headed Arch Fiend, Thus at once weakens for ever the third head (Wrong Conduct consisting of attachment and aversion) also, and then the soul sets to destroying it altogether and thus wins its everlasting freedom, as has been done by innumerable souls

This shows that however dependant on matter the soul may be, yet after all soul is soul and matter is matter, and that having once recognised its true nature and understood the laws of Karmas, it can, if it so wills, turn this knowledge to account and rid itself of all Karmas just in a natural way But, this can be achieved only by self help, as others may show the path, but, who can ever be conceived to put Right Belief and Desirelessness in any other soul? Because these are the states of the soul's own nature, and are not like liquids that can be poured from one vessel into another.

Food.

By:—Mr. Herbert Warren Jain—84, Shelgate Road, Battersea, London S W 11.

There are three or four arguments which are brought up every time the question of vegetarianism crops up. People who come across a vegetarian and are themselves not vegetarians use a set of statements which are generally the same. Let us examine them and see if they are valid.

First, it is said by Christians that animals were created by God for man to eat, or those particular ones which are generally used for food. Secondly these people say that if we did not eat these animals they would overrun the place. Thirdly, that in those climates where it is generally cold, it is necessary to eat meat. Fourthly, that it may be possible for those who do not do manual labour to do without meat, but that it would be impossible for a man to do labourial work on a vegetarian diet. Fifthly, that the teeth of the human being are adapted for a carnivorous diet. And Sixthly, some say that they have given the non-flesh diet a trial, but that they have found it not suitable to them. And occasionally other arguments are put forward.

Is the fact that a vegetarian diet does not agree with a person sufficient reason for eating meat, taking it for granted that the disagreement is a fact? If it did not necessitate the taking of life, it might be a sufficient reason, but as it does mean taking life it is not a sufficient reason. It is not the fault of the animal that the person is ill if he goes without meat, supposing him to be ill when living on a vegetarian diet. And the animal therefore should not suffer death for something for which he is not responsible.

The fact that some of the teeth of human beings are suitable for carnivorous food is another argument frequently put forward. It is like saying that because we find a gun in our house we are obliged to use it. Whatever theory one holds as to the author of the human body,—or rather without introducing this subject we may think the case of the presence of such teeth to be similar to the case of a hunter having a gun in his house after he has given up hunting. His gun is there because he used to hunt the tooth is there because we used to eat meat, possibly at least. It is not necessary to continue using a thing simply because we happen to possess a thing. So this argument falls to the ground as a reason for meat-eating.

The idea that a navvy could not do his work on a vegetarian diet is not based on knowledge. Most navvies if not all in Europe do presumably eat meat, and therefore we do not know what condition they would be in on a vegetarian diet. But there is good evidence to show that muscular strength is not necessarily lost by those who are not carnivorous, and in some cases athletic fitness is greater in the non-flesh eater than in those whose is the ordinary mixed diet. And if we think examples from the animal world can be used as evidence,

there are plenty, the elephant, the horse, the gorilla, as examples of muscular strength on vegetarian food,

With regard to cold climates, if it were not possible to live in them without eating meat, the obvious answer would be that those who wish to avoid meat should not live in cold countries, but should go where they can live without it. But as a matter of fact there are many people in the temperate zones who live on a vegetarian diet and are well and strong

Is it likely, with regard to the next argument, that animals would overrun the place if we did not eat meat? There are animals and birds which man does not use for food, and they do not overrun the place. And the assumption that people eat meat in order to keep the animal world sufficiently depopulated is of course not valid, people eat meat because they have been brought up to do so or because they like it or for almost any reason except this particular one. As a rule any particular kind of animal has some other animal or bird that kills and eats it, and so without man entering into this business the end comes about with all the attendant pain and misery.

As to God creating animals for man to eat, this matter may be left for those who wish to think it out

Another point which is sometimes put forward is that vegetarians ought not to wear leather boots and shoes, or other articles made of leather. This of course is correct, but those who put it forward use it to support their own practice, that because vegetarians wear leather boots it proves that meat-eating is right! And while it is true that leather articles should be avoided, it is better to avoid some killing than none at all, better to do one wrong thing than to do two, better to avoid one wrong practice than none at all.

A reflection here comes in which may be expressed, regarding advocating vegetarianism to a meat-eater. If a person has been born and bred in a community where meat eating is the custom, he may go on all his life without ever raising the question as to whether it is right or wrong. His attachment to it in that case will not have the support of his intellect, he will not have excogitated a lot of false reasons for continuing the practice; he will not have called in his intellect to supply him with arguments in favour of his practice. But if someone doing a propaganda work on vegetarianism comes across this person's path, and this person is not yet ready to give up eating meat, the result of advocating vegetarianism may be to make this person find a lot of false arguments to use in defense of eating meat, and so will strengthen rather than weaken his wrong conduct, by finding false intellectual support for the practice. But this reflection needs to be thought about for it must not be argued that reforms should not be advocated for fear of strengthening existing evils.

H. Warren.

London, 16th November, 1930.

The All-India Jain Congress.

By :—Ramniklal V. Shah,

Chintamani Building, No 21., 2nd Bhoiwada, BOMBAY 2.

Some thoughtful men among us are writing somthing for the amelioration of the All India Jain Association—Mr Adishwar-Lal Jain being one among them With reference to a request appearing in the Special Supplement of 'The Jain Gazette' by Mr. C. S Mallinath asking for opinions on the above subject-here I am to submit the following few lines for keen consideration —

We know that the present condition of Jains is worth nothing. It has three main sects and each sect has many sub-sects The disunion has made its way-the feeling of dissatisfaction towards each other has crept all along and the arrows of that green eyed Monster Jealousy are piercing all the hearts through. Speak the *word* 'Jains' and it means 'nowhere, nothing and of no use'. Utter the *name* 'Jains' and it means 'quarrels, parties and Jealousy' We look to the different spheres of 'activities' nothing in 'different literatures'-nothing in 'Indian Society' as a whole-Nothing in 'athletic sports' and nothing for the 'betterment of their own religious institutions'

In this condition of backwardness, the saner section of Jains has to think, ponder and find out the way. And the tongue of that part articulates the dire necessity of having one standard body of Jains which can make amelioration possible & easy.

The All India Jain Association was in existence and is now also in existence It has found its futility due to some causes (I am not for those given out by Mr. Adishwar Lal Jain' but I believe the real causes to be those put forward by Mr C. S Mallinath) and has now sent for sugestions to improve it. The association was as though for classes in Jains and not for masses as the whole Even now, many, among us are in ignorance of its presence and it is only due to less publicity and scarcity of fund

My Suggestions.

The name of that Standard body which I speak of should be "All India Jain Congress" and it should be made up of two associations, one "All India Jain Political Association' and the other "All India Jain Betterment Association" The first should have its aims & objets as follows —

(1) To attain and to try for the demands of "The Indian National Congress.

(2) To guard the interest of Jain Community by securing special representation for Jains in all Legislative, Municipal and Educational bodies

(3) To have due reperesentaion of the Jain Community in the public services of the country

(4) To guard the interest so far as economic, religious, social and intercommunal matters are concerned.

(5) To have 'Jain-Law' introduced in the 'Indian Government-showing to them what disadvantages the Jains have to suffer at the hands of 'Hindu Law'

In spite of my first object I am of opinion that our Association should be free from

the control of any other political body of the country The association has to frame its own programme and carry it out in its own way as far as Jains are concerned

Now the Second Association with its aims and objects as follows :—

(1) To propogate Jain Literature,

(2) To try to unite all the three sects—of course the sub-sects will look, then to themselves

(3) To help on the education of Jains and to provide for higher education also,

(4) To remove all the Social evils such as child-marriages, old-marriages, caste prejudies & Bhattarak nuissance, terrible expenses after death &, marriage, first pregnancy etc.

(5) To increase numerical strength of Jains.

Now as regards (1) I am of opinion that among other books, one such book should be published as it would contain the real gist of Jainism The religious fact from all the three branches should be seen and the work of writing should be entrusted to those men whom the working committee of the association thinks fit either by selection or election To disseminate the book-of as much size as 'the New Testament' of Christians for the *Graduates*-the committee should work up as the 'British Indo-Foreign Bible Society.' As regards (4) the social evils should be clearly defined. 'That this is the evil should be inculcated and not forced upon the minds of the people by publishing papers and platform speeches As regards (5) the association should send its learned men for explaining the principles of Jainism to masses who can not read and write much As regards the other four the methods suggested by Mr C S Mallinath are in my opinion advisable.

"The Jain Gazette" should be issued in two parts but in one volume. It should be named as the organ of "All India Jain Congress". The articles and notes as suited should be printed and asked for from the pen of good writers-and the work of honorary (if possible) correspondent entrusted.

For money & men-there should be the least yearly subscription for the members. Those who pay for one year *may* continue the next year. There should be provincial branches of the Congress and this work of enrolling and collecting should be entirely entrusted to it. There must be a permanent office of the working committee of the said Congress. There should be the permanent fund and the scheme for having it suggested by Mr. Mallinath is alright. Every member cannot give 1 percent of his income-the richer section who wants to see the community happy and sound will surely help such efforts Of course, the future development depends upon the work that the Congress is able to put forth before the community

वीर-वाणी ।

वीर भगवानके दरबारमें सर्व प्राणियोंको आश्रय मिलता है—पुरुष, स्त्री; वृद्ध, बालक; शूद्र, ब्राह्मण; पशु, पक्षी; शेर, बकरी; सांप, न्योला; चूहा, बिल्ली; दुखी, सुखी; धनी, निर्धन; बली, निर्बल; कुलीन, कुलहीन; राजा, प्रजा; देव, दानव इस दरबारमें सब बराबर हैं। यह दर्बार सबके लिये खुला है; यहां फ़ीस, टिकट, पास, परवानाकी आवश्यक्ता नहीं। बस निर्मल, शुद्ध, विशुद्ध हृदय चाहिये।

और इस दरबारका उपदेश, यह निरक्षरी वाणी, यह दिव्य ध्वनि, यह प्रशस्त गिरा, सबके लिये है। पशु, पक्षी, नर, तिर्यंच सब कोई उसको ग्रहण करके अपना उपकार कर सक्ता है।

वीर भगवानका उपदेश मनुष्य मात्र प्राणीको एक सूत्रमें बांधनेवाला, एक जाति, एक पंक्तिमें करनेवाला है। और वास्तवमें पतित पावन, सौख्य कारण दुःख निवारण है।

प्रत्येक वीर-वाणी-उपासकका कर्तव्य है कि अपने जीवनमें आधुनिक स्वार्थ-प्रणीत रूढ़ियों रुकावटों और आडंबरोंको हटाकर वीर-वाणीका असीम प्रचार करे, सहधर्मीसे प्रेम करे, निकट संबंध करे, पतितोंको हस्तावलम्बन दे, स्वार्थ और कषाय वृत्तिको शमन करते हुये, अपना और अन्य जीवोंका उद्धार करे, जिनवाणीके उपदेशको कर्तव्यशील होकर दैनिक जीवनके व्यवहारमें चरितार्थ करे, जो आत्मोन्नति, जात्युन्नति और जैनधर्म प्रभावनाका निमित्त कारण और अचूक उपाय है।

अजिताश्रम, लखनऊ,
वीर निर्वाण दिवस वीर सं० २४५७ } अजितप्रसाद ।

राष्ट्रीय सत्याग्रहसंग्राममें जेल जानेवाली दि० जैन वीरांगनाएं-



श्रीमती गंगादेवी जैन-मुरादाबाद।



सौ० इन्दुमती गोयन्का,
सुपुत्री, श्री० सेठ पदमराज रानीवाले-कलकत्ता।

"जैन विजय" प्रेस-सूरत।

राष्ट्रीय सत्याग्रह संग्राममें योग देनेवाली दि०जैन वीरांगनाएं।



श्री० अंगूरीदेवी जैन, धर्मपत्नी, श्री० "महेन्द्र"–आगरा।



श्रीमती कस्तूरीदेवी जैन–आगरा।



कुमारी कंचनबाई जैन–आगरा।

सद्दालपुत्रका नियतिवाद

[लेखक—पं० मूलचन्द्रजी जैन "वत्सल"—बिजनौर।]

अनेक देशोंमें विहार करते हुए श्री महावीर स्वामी एक बार पोलासपुर नगरमें पधारे। इस ग्राममें एक धनिक कुंभकार निवास करता था। वह केवल वैभवशाली ही था इतना ही नहीं किन्तु उत्तम बुद्धिशाली व्यक्तियोंमें उसकी गणना थी। कुंभकारके भक्तिपूर्ण आमंत्रणसे महावीर स्वामी उसके गृहपर पधारे। प्रभुको यह उच्च और यह नीच इस प्रकारका तनिक भी भेदभाव नहीं था। जहां जहां सरलता, नम्रता, विनय-विवेक ज्ञात होता और जहां पधारनेसे धर्मका विशेष प्रचार होता उसी स्थानपर वह सदैव जाते आते रहते।

महावीर स्वामीके समयमें गोशालाके मतवादका पूर्ण प्रभाव था। गोशाला एक समय प्रभुका आज्ञाकारी शिष्य था, किन्तु पश्चात उसने अपना पृथक् मत प्रवर्तित किया और अपने लिए सर्वज्ञ कहकर भोले मनुष्योंको भ्रममें डालने लगा। सद्दालपुत्र भी गोशालाका एक अनुयायी था।

प्रभातके समयमें सुखानेके लिए पड़े हुए मिट्टीके नवीन पात्रोंके सन्मुख दृष्टि डालते हुए महावीर स्वामीने सद्दाल पुत्रसे पूछा—'इतने मनोहर पात्र तुम किस प्रकार निर्माण करते हो?"

"प्रथम चिकनी मिट्टी लाकर उसमें जल डालकर उसे खूब मिलाते हैं, पश्चात उसका पिंड बनाकर चाक ऊपर चढ़ानेसे इच्छानुसार वर्तन उतर आते हैं" कुंभकारने अपनी कलाका विस्तारपूर्वक वर्णन किया।

"तब इसमें पुरुषार्थ अथवा उद्योग तो अवश्य करना पड़ता होगा" महावीर स्वामीने दूसरा प्रश्न किया।

बुद्धिमान कुंभकार इस प्रश्नका आशय शीघ्र ही समझ गया। कुंभकार गोशालाका मतानुयायी था और "जिस समय जो वस्तु होनेवाली होती है वह स्वयं होजाती है" इस प्रकारके नियतिवादका माननेवाला था। इस सम्बन्धमें श्री महावीर स्वामी उलटपलट कर प्रश्न कर रहे हैं, उसने यह समझ लिया।

कुंभकार प्रश्नको सरलतापूर्वक बदलनेकी युक्ति सोचने लगा। उसने कहा:—'इसमें पुरुषार्थ कुछ भी नहीं करना पड़ता, जब जिस रूप पात्र बनना होता है उसी रूप बन जाता है"।

प्रभुके मुखमंडलपर मंद हास्य उदित होगया। उन्होंने विचार किया कि बुद्धिशाली होते हुए भी कुंभकार किस प्रकार दुराग्रह कर रहा है, अपना मत खंडित होनेके भयसे किस प्रकार कुयुक्तियोंका जाल बना रहा है?

"किन्तु मानलो यदि कोई मूर्ख मनुष्य तुम्हारे इस समस्त चाकको तोड़ डाले तो तुम्हें कितना दुःख होगा"?

"ऐसे मूर्खको मैं सीधी तरहसे तो नहीं जाने

दूंगा उसका एक एक अंग तोड़कर उसे ठीक कर दूंगा।" कुंभकारके शब्दोंसे उसके क्रोधकी परिपूर्ण मात्रा प्रदर्शित होरही थी।

"नियतिवादीके लिए क्या इतना क्रोध उचित है? जिस समय जो होनेयोग्य होगा वही होगा इस प्रकार माननेवालेके लिए क्रोध अथवा रोष किस प्रकार संभव है? यथार्थमें तुम वचनद्वारा तो नियतिवाद स्वीकार करते हो किन्तु तुम्हारा अन्तःकरण पुरुषार्थको माने विना रह नहीं सकता। धर्मजिज्ञासु पुरुषके लिए इतना दंभ शोभा नहीं देता"।

सद्दालपुत्र लज्जित हुआ, वह महावीर स्वामीकीके चरणकमलोंपर पड़ गया और अपना मिथ्याभाव बदलकर निर्मल भावसे क्षमा मांगी।

विशेष प्रतिबोधित करते हुए भगवानने कहा— "पुरुषार्थ विना कोई भी क्रिया अथवा कार्य होना संभव नहीं। केवल अकेला पुरुषार्थ अथवा केवल नियतिवाद मानना यह दोनों एकान्तवाद होनेसे मिथ्या हैं। एकान्तवादी किसी भी पदार्थका यथार्थ निश्चय नहीं कर सकता। स्याद्वाद वास्तविक सिद्धान्त है। अनेकांतवाद विना सत्यका स्पष्ट दर्शन नहीं होता"।

गोशालाका उपदेश कितना एकान्त मतवादी था और भगवान् श्री महावीरका सिद्धान्त अनेकान्तके अचल पाएपर कितना अचल स्थित है यह सद्दालपुत्रकी समझमें आया। उसने गोशालाके एकान्तवादको तिलांजलि देकर अनेकान्त मत स्वीकार किया और अपनी स्त्री समेत स्वयं श्रावकके बारहव्रत ग्रहण किए। महावीरस्वामी वहांसे अन्यत्र विहार कर गए।

गोशालाको यह बात ज्ञात हुई। वह कितने ही समय पश्चात् सद्दालपुत्रके यहां आया और उसने पूछा—"यहां महामान्य पधारे थे?"।

"आप महामान्य किसे कहते हैं" कुंभकारने प्रतिप्रश्न किया।

'अहिंसा और दयाकी साक्षात् मूर्तिस्वरूप श्री महावीरको मैं महामान्यकी दृष्टिसे देखता हूं इतना ही नहीं किन्तु "महानेता" और "महा सार्थवाहक" और "महा नियंता" के रूपमें उनका सन्मान करता हूं। गोशालाके मुंहसे महावीर भगवान्‌की इस प्रकार प्रशंसा श्रवण कर सद्दालपुत्रका रोमरोम विकसित होगया।

उसने गोशालाका उचित रीतिसे आदरसत्कार किया और अपने भंडारसे भोजन, जल, वस्त्र इत्यादि इच्छित पदार्थ ग्रहण करनेकी प्रार्थना की।

"किन्तु मैं तो महावीर स्वामीका विरोधी! और तू महावीर स्वामीका अनुयायी! मेरा इतना स्वागत किस लिए"? गोशालाने जानना चाहा।

"तुम महावीरके विरोधी हो, भले ही रहो। किन्तु तुम महावीर स्वामीका यशोगान करते हो, मेरे लिए ही इतना बस है। तुम्हारा स्वागत इस यशोगानके आभार स्वरूप है, महावीर प्रभुका गुणगान गानेवाला कोई भी हो। उसके लिए मेरा भंडार सदैवके लिए खुला हुआ है।

सद्दालपुत्रकी इस प्रकार भक्ति और श्रद्धा देखकर गोशालाका हृदय भर आया। उसने कहा—"धर्मानुयायी हो तो ऐसा उदार और विवेकी हो"।*

* अर्पणसे अनुवादित।

नूतन वर्षाभिनन्दन।

[लेखिका-जैन महिलारत्न श्री० ललिताबाईजी, श्राविकाश्रम-बम्बई।]

प्यारी बहिनो और बन्धुओ! महावीर स्वामी को निर्वाण पधारे आज २४५६ वर्ष पूर्ण होकर २४५७ का वर्ष शुरू होता है। महावीरने बाल्यकालमें देवोंके साथ आमोदप्रमोदमें खेलते बिताया, और अपनी आयु फक्त ७१ वर्षकी होनेसे आजन्म ब्रह्मचर्य पालन किया। न्यायसे युवावस्थामें राज्य चलाया और ३० वर्षकी छोटी अवस्थामें ही दीक्षा लेकर घोर तपश्चरण करके अपनी आत्माको कर्म मलसे रहित कर केवलज्ञान प्राप्त कर आश्विन वदी अमावस्याके प्रभातमें मोक्ष प्राप्त कर लिया। उस पवित्र दिनका स्मरण दीपावली है।

असलमें महावीरने कर्म ईन्धनोंको जलानेको ध्यानरूप अग्नि प्रगट कर ज्ञानरूप प्रकाश तीन लोकमें फैलाया था इसलिये ज्ञानरूप प्रकाशके स्मरणमें हम दीपकके प्रकाश करते हैं। यदि योग्य समझसे कार्य किया जाय तो अपने शुद्ध परिणामोंसे अपने आत्माका कल्याण होता है। हम लोगोंको चाहिए कि उस पवित्र दिनका स्मरण करके मंदिरजीमें जाकर निर्वाण लड्डु चढावें, भावपूर्वक निर्वाणभक्ति व निर्वाणकांड पढें, सिद्धोंकी पूजा करें। उन्होंने कौन २ उत्तम कार्य किये हैं, अपनी आत्मासे विशुद्ध परिणामों द्वारा किस तरह कषायोंको उखाडकर अपने आत्माको पवित्र किया उसका विचार करना चाहिए।

हम लोगोंको महावीरके सत्य मार्ग पर चलना चाहिए। उनके सदाचरणका स्मरण करके अपना जीवन सदाचाररूप बनना चाहिए, अन्याय, अभक्ष मिथ्यात्वका त्याग करना चाहिए। बाजारकी चीजें बहोत कर अभक्ष्य होती हैं क्योंकि उन वस्तुओंको बनानेमें दिन, रातका और सोध आदिका विचार नहीं रहता। आज कल स्त्रियोंमें पाकशास्त्रका ज्ञान कम रहता है। कई बहिनें आलससे विविध जातके व्यंजन नहीं बनाती व पुरुष लोग होटलमें जाकर अभक्ष्य पदार्थका आहार करते हैं, बाजारकी सड़ी वस्तु भी खा लेते हैं। उससे उनके शरीरमें अनेक रोग होते हैं। अतः बहिनोंको पाक विद्या सीख कर आलसको छोडकर अपने हाथोंसे बनी हुई नाना प्रकारकी रसोई पुरुषोंको जिमाना चाहिए और रोगोंसे व अधर्मसे अपने कुटुम्बियोंको बचाना चाहिए।

“आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्” यह महावीरका मंत्र प्रतिक्षण अपने हृदयसे नहीं बिसराना चाहिए अर्थात् जो जो बातें, क्रियाएँ, चेष्टाएँ अपनेको अच्छी न लगें उनका व्यवहार दूसरोंसे नहीं करना

चाहिए। जैसे अपनेको कोई गाली देवे तो अच्छी नहीं लगती वैसे दूसरोंको भी अच्छी नहीं लगती, ऐसा समझकर किसीको गाली मत दो, तुम्हारा कोई अविनय करे, मान भंग करे, तुमसे द्वेष रखे, तुम्हारा बुरा विचारे तो तुमको अच्छा नहीं लगता, उसी प्रकार विचारकर तुम भी किसीका अविनय न करो, मानभंग न करो, किसीसे द्वेषभाव न रखो और किसीका बुरा मत विचारो। पूर्व पुण्यके योगसे मनुष्य पर्याय, जैनधर्मकी प्राप्ति हुई है तो बेमतलब न गुमाओ। अपने पास धन हो तो खाली अपनी इंद्रियोंके पुष्ट करनेमें ही नहीं गमाओ परन्तु उसका सदुपयोग करो। भूखेको अन्नदान देकर संतुष्ट करो, रोगियोंके लिए औषधालय, होस्पिटल, प्रसूतिगृह खुलवावो। पैसे न हों तो जो शुभ काम करते हों उनकी तन मनसे सहायता करो। अज्ञानियोंके अज्ञान अन्धकार दूर करानेके लिए कन्याशाला, पाठशाला, श्राविकाश्रम, विधवाश्रम, अनाथाश्रम, जैन बोर्डिङ्ग आदि खोलकर पुण्यके ढेर कमाओ। भयवानोंको भयसे छुटादो। असलमें भय मिथ्यादृष्टियोंको ही होता है। इसलिए निर्भय होनेके लिए सम्यग्दर्शनको धारण करो।

समाजको अधोगतिमें पहुंचाने वाले बाल विवाह, वृद्धविवाह, कन्याविक्रय, व्यर्थव्ययको जलाञ्जली देदो। हमेशह सत्समागम रखो। हिंसा झूठ, चोरी कुशील, और अतिशय लोभसे बचनेका यत्न करते रहो। थोड़ी भी गलती महान रूप धारण करके अपनी हानि करती है यह बात हमेशह याद रखकर थोड़ी भी गलती होती हो तो उसको सुधारनेकी कोशिश करो। अपनेको जब समय मिले तब पत्मिन्दामें न बिताओ परन्तु चर्खा चलाकर पवित्र सूत तैयार करो-उत्पन्न करो, अपने देशके पैसे परदेश जारहे हैं उसको बंद करो। अपने जीवनमें सादगी, सच्चाई और सफाई ये आत्मोन्नति करनेवाले पवित्र गुण हैं उनको धारण करो। अपने परिणामोंको निर्मल रखनेके लिए सच्चे शास्त्रोंका मनन करो, भगवानकी स्तुतिमें अपना अमूल्य समय बिताओ।

आज राष्ट्रीय चळवलसे सारा देश गूंज उठा है। उसमें मेरी विधवा बहिनोंको भी भाग लेना चाहिए। वीर माता बनकर वीरताके कार्य करनेका समय आया है, देश और जातिके लिए तन, मन, धन अर्पण करना चाहिए। अबलाके विचार निकाल कर प्रबला बनो तब नारीका कोई न+अरि याने नारीको कोई शत्रु नहीं है।

अंतमें मेरी यही भावना है कि आप अपने कुविचारोंको दीपावलीकी रोशनीमें अर्थात् ज्ञानाग्निमें जला देवे और ज्ञानज्योति प्रगट करके सद्विचारोंके अनुसार आचरण भी करें जिससे अपना कल्याण होवे।

अमोघवर्ष ।

ई० सन् ८१४-८७७.

[लेखकः—बाबू अनन्तप्रसाद जैन, सहारनपुर ।]

पं० भगवानलाल इन्द्रजीने प्राचीन गुजरातका इतिहास सन् ई० ३१९ पहिलेसे १३०४ तक तय्यार किया था; जिसको जैक्सन साहिबने पूरा किया था। उनके मतानुसार इस गुजरातके प्राचीन विभाग तीन थेः—

(१) आनर्त्त ।
(२) सौराष्ट्र ।
(३) लाट ।

लाट प्रान्त माही नदीसे तापती तक है । टोलिमीने इसे लारिका कहा है । तीसरी शताब्दीके वात्स्यायन रचित कामसूत्रमें मालवाके पश्चिम लाटदेश आया है । छठी शताब्दीमें ज्योतिषी वराहमिहरने भी लाटका नाम लिया है । अजन्ताके पूर्वी शताब्दीके लेखमें भी लाट आया है । मंदसोरका लेख (सन् ई० ४३१) कहता है कि लाट देशमें रेशमके बुनने वाले थे ।

यहांके निवासी राजाओंको राष्ट्रकूट वंशी कहते हैं । महाराज अमोघवर्ष इसही वंशके दीपक थे । आपका राज्य सन् ८१४-८७७ ईस्वी तक रहा । ६२ वर्षके राज्यमें आपने अपने राज्यको बहुत विस्तृत किया । गुजरात, महाराष्ट्र कर्णाटक और हैदराबाद आपके राज्यके देश थे । मान्यखेट इस महान् राष्ट्रकी राजधानी था । इसको अब मलखेड़ कहते हैं । हैदराबादके रेलवे लाइनपर चितापुर नामके स्टेशनसे आगे मलखेड़ ग्राम ४-५ मील है ।

उस कालमें मान्यखेटका ऐश्वर्य और पराक्रम बहुत बढ़ाचढ़ा था । 'आसीदिन्द्रपुराधिकं पुरमिदम्' 'इन्द्रपुरोपहसि' की संस्कृत उक्तियां कवियोंने इसके विषयमें कही थीं । इसका प्रतापी राजा महाराज अमोघवर्ष 'ऊर्जिताहितमण्डलमण्डलीकगुरुः'की उपाधिसे सर्वत्र याद किया जाता था । महाराजकी कोपाग्नि इतनी प्रबल थी कि इन्होंने वेंगीमें किसी चालुक्य राजाको मृत्युधाम पहुंचाकर उसके अपूर्व खाद्य मांससे यमको तृप्त किया था । यही कारण था कि महाराज अपने राज्यमें अमोघवर्ष, नृपतुंगदेव और शर्वदेवके नामोंसे विख्यात थे । 'अङ्गवङ्गमगधमालववेङ्गीशैरर्चितो'का शिलालेख साफ प्रगट करता है कि वंग, अंग, मगध, मालव और वेंगीके राजाओंने महाराजके पराक्रमको स्वीकार किया था । निःसंदेह अमोघवर्ष अपने समयका आसानी राजा था ।

राज्यलक्ष्मी यहां लास्य कर रही थी जहां विद्याका भी चमत्कार कुछ कम नहीं था । भगवत् जिनसेन, महाराजके राज्यासीनके समय ८१ वर्षके थे । भगवत्का स्वर्गवास सन् ई० ८४८ में हुआ । जन्म सन् ई० ७६१ में हुआ था । आप ९१ वर्ष लगभग जिवित रहे ।

महाराजके १७ वर्षके राज्यकालमें भगवत्‌ने साहित्यका वह उपकार किया जिसकी साक्षी वह साहित्य वर्तमानमें है। भगवत्‌के वंश परिचयका कोई उल्लेख इतिहाससे नहीं मिलता परन्तु गुरुपरंपरा के विषयमें बहुत प्रकाश दृष्टिगोचर होता है।

चित्रकूटपुर निवासी एलाचार्यके शिष्य वीरसेन जिनसेनके गुरु थे। वीरसेन बड़े दिग्गज विद्वान थे। इन्द्रनन्दीने अपने श्रुतावतारमें लिखा है कि "गुरु महाराजकी आज्ञासे वीरसेनस्वामी चित्रकूटपुर छोड़कर वाटग्राममें आये। वहां आनतेन्द्रके बनवाये हुये जिनमंदिरमें बैठकर उन्होंने 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' (बप्पदेवगुरु कृत) को प्राप्त करके उसके पहिले जो ६ खंड हैं उनमेंसे छटे खंडको संक्षेप किया और उनकी बंधनादि १८ अधिकारोंमें प्राकृत संस्कृत भाषा 'मिश्रधवला' नामकी टीका ७२ हजार श्लोकोंमें रची और फिर दूसरे कषाय प्राभृतके पहिले स्कन्धकी चारों विभक्तियों पर 'जयधवला' नामकी २० हजार श्लोक प्रमाण टीका लिखकर स्वर्गलोकको सिधारे। पीछे उनके शिष्य श्री जिनसेन गुरुने ४० हजार श्लोक और बना कर जयधवला टीकाको पूर्ण की। जयधवला सर्वत्र प्राप्त नहीं है परन्तु उसका अस्तित्व है। मूडबद्रीके सुप्रसिद्ध जैन मंदिरमें उसकी एक प्रति है। जिनसेनने इस कृतिको महाराजके समयमें सन् ई० ८३७में पूर्ण किया।

इसके पश्चात् श्री जिनसेनने जगत विख्यात 'पार्श्वाभ्युदय' रचा इसमें ३६४ मन्दाक्रान्तावृत्त हैं। भगवान् पार्श्वनाथ जैनोंके २३वें तीर्थंकरके पूर्व भवोंको लेते हुये भगवान्‌ने उनका अभ्युदय एक कथानकके रूपमें कविने बताया है। विलक्षणता इसकी यह है कि कविने कवि सम्राट कालिदासका प्रसिद्ध 'मेघदूत' सबका सब इसमें वेष्टित कर दिया है। मेघदूत काव्यमें जितने श्लोक हैं और उन श्लोकोंके जितने२ चरण हैं वे सब एक२ दोर करके इसके नवीन श्लोकोंमें प्रविष्ट कर लिये गये हैं और काव्यको एक नया रूप देदिया है। संस्कृतमें मेघदूतका अंतिम चरण लेकर तो अनेक ग्रन्थ रचे गये हैं—जैसे नेमिदूत—शीलदूत और उमपादाङ्कदून आदि परन्तु संपूर्ण ग्रन्थको वेष्टित करनेवाला यह एक ही काव्य है।

रायल एशियाटीक सोसाइटीमें 'कुमारिलभट्ट और भर्तृहरि' के विषयमें निबंध पढ़ते हुये प्रो० के० बी० पाठक इसके विषयमें यों लिखते हैं:—

"Jinasen lived on into the reign of Amoghwarsha, as he tells us himself in the Parshwabhudaya. The poem is one of the curiousities of Sanskrit literature. It is atonce the product and the mirror of the literary taste of the age. The first place among Indian poets is allowed to Kalidass by consent of all, Jinasen, however claims to be considered a higher genius than the author of cloud Messenger."

जिसका अभिप्राय यह है कि जिनसेन अमो-

वर्षके राज्यकालमें हुये हैं जैसा कि उन्होंने पार्श्वाभ्युदयमें बतलाया है। यह काव्य संस्कृत साहित्यमें एक अद्भुत पदार्थ है। उस कालके साहित्यिक स्वादकी उपज और उसका दर्पण है। सर्व सम्मतिसे भारतीय कवियोंमें प्रथम स्थान कालीदासका है। परन्तु जिनसेन 'मेघदूत' के रचयितासे उच्चतर बुद्धि समझे जानेके अधिकारी हैं।

हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालयके मालिक श्री० प० नाथूरामजी प्रेमीने अपनी 'विद्वद्रत्नमाला' नामक ऐतिहासिक पुस्तकमें इस काव्यके कुछ श्लोक सार्थ लिखे हैं उनमेंसे कुछ पाठकोंके मनोरंजनार्थ नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

कल्लोलान्तर्वलितशिशिरः शीकरासारवाही,
धूतोद्यानो मदमधुलिहां व्यञ्जयत्सिञ्जितानि।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमंगानुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥११२
त्वद्रूपादस्य मनसि गुणितं कामुकीनां मनोहृत
कामाबाधा लघयितुमथो द्रष्टुकामा विलिख्य।
यावद्रीत्या किल बहुरसं नाथ पश्यामि कोष्णे—
रस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे ॥२४ सर्ग ४॥

उस नगरीमें पानीकी लहरोंके संयोगसे शीतल रहनेवाला, पानीके बिंदुओंको अपने साथ उड़ानेवाला और बगीचोंको कम्पायमान करनेवाला शिप्रानदीका वायु मतवाले भौंरों सरीखा शब्द करता हुवा चलता है और सुरतक्रीड़ा करनेके लिये चाटुकार (खुशामद) करनेवाले पतिके समान स्त्रियोंके अंगोंसे लगकर उनके (पूर्वकृत) सुरतक्रीड़ाके खेदको दूर कर देता है।

हे नाथ! कामवती स्त्रियोंके मनको हरण करनेवाली, नाना रसमयी और जीमें समाई हुई आपकी मूर्तिको ज्यों ही मैं कामकी पीड़ाको कम करनेके लिये चित्रपटपर लिखती हूं और प्रीति पूर्वक देखना चाहती हूं त्यों ही बारबार बहनेवाले गरमगरम आंसू मेरी दृष्टिको रोक देते हैं। आपकी मूर्तिके दर्शन नहीं करने देते हैं।

दोनों श्लोकोंको पढ़कर पाठक स्वयं अनुभव कर सके हैं कि कविने पहिले श्लोकमें मेघदूतके दो चरणोंको लेकर और दूसरेमें एक चरणको लेकर श्लोक निर्माण करनेमें कितना कवि कौशल दिखलाया है। पहिले श्लोकके अंतिम दो चरण और दूसरे श्लोकका अंतिम चरण मेघदूतके चरण हैं। पाठकोंको ज्ञात होगा कि दूसरे श्लोकका भाव 'अभिज्ञान शकुन्तला' के एक श्लोकमें भी पाया जाता है। नग्न वेशधारी (दिगंबर) श्री जिनसेनने 'पार्श्वाभ्युदय' को मान्यखेटमें ही पूर्ण किया था।

तीसरी कृति श्री जिनसेनकी आदिपुराण है। इसकी श्लोक संख्या १२००० है। पर्व इसमें ४७ हैं, जिनमें ४२ पर्व पूरे और ४३ वें पर्वके तीन श्लोक जिनसेन स्वामीके बनाये हुये हैं। शेष पांच पर्व (१६२० श्लोक) गुणभद्र स्वामी—जिनसेनके शिष्य—के बनाये हुये हैं। भगवान् जिनसेन केवल ४३ वें पर्वके तीन श्लोक ही बना पाये थे कि उनका देहोत्सर्ग होगया। गुणभद्र स्वामीने केवल आदिपुराण ही पूर्ण नहीं किया किन्तु ८००० श्लोक और बनाकर उत्तरपुराणमें जिनसेनका कथानक ही पूर्ण कर दिया है, जिसको उनने अमोघवर्षके पुत्र अकालवर्षका सामन्त लोकादित्य राज्य

करता था तब सन् ८९८ ईस्वीमें समाप्त किया।

बंकापुर धारवाड़ जिलेमें है। इसको शाह-बाजार भी कहते हैं। धारवाड़से ४० मील है। वर्द्धमानपुराण, पार्श्वस्तुति और द्रौपदी प्रबंध आदि ग्रंथ भी जिनसेन स्वामीकृत हैं परन्तु वह अप्राप्य हैं।

जिस कालमें विद्याका वैभव और अभ्युदय इतना महान् रह चुका है, वह समझमें नहीं आता कि उसका प्रभाव स्वयं महाराज अमोघवर्ष पर न पड़ा हो। महाराज अमोघवर्षने स्वयं संस्कृतमें प्रश्नोत्तरमाला व कनड़ीमें कविराज मार्ग अलंकार ग्रंथ रचे हैं। प्रश्नोत्तरमालाके विषयमें अबतक दो उक्तियां थीं। श्वेताम्बर जैन इसको अपने भाई विमलदास कविकी बनाई हुई कहते थे और वैष्णव शंकराचार्यकी बनाई हुई कहते थे परन्तु ईसाकी ११ वीं शताब्दीमें इसका जो तिब्बती भाषामें अनुवाद हुआ था उसके प्राप्त होनेपर यह बात निश्चित होगई है कि राष्ट्रकूटवंशी अमोघवर्ष ही इसके रचयिता हैं। अमोघवर्षने ६२ वर्ष राज्य करके सन् ८११ ईस्वीमें अपने पुत्र अकालवर्षके हकमें राज्य परित्याग कर दिया। इनके पितृव्य इन्द्रराजने कुछ काल राज्य किया और फिर इनके पुत्र अकालवर्ष राज्यासीन हुये।

अमोघवर्ष राज्य पद त्याग कर दिगम्बर जैन मुनि होगये और स्वपर हित साधते हुये मोक्ष पुरुषार्थमें लवलीन हुये। महाराजका जीवन भारत नरेशोंके लिये मुख्यतया प्रभावशाली है।

निशान्त शशाङ्क।

(लेखक—प० पन्नालाल जैन 'काव्यतीर्थ'—सागर।)

कुलीन कान्ता: घृत दीप पंक्तिसे,
सुपूजती हैं जिस ही शशाङ्कको।
विलोकते बालक वृन्द चावसे,
मचीलता सिन्धु जिसी शशाङ्कको ॥१॥
विकाशते उत्पल वृन्द कंजसे,
नभोऽङ्क आते जिस ही शशाङ्कके।
हुई मही मोदमयी सभी सही,
सती सुधाकान्ति जिसी शशाङ्कके ॥२॥
अहो अहो द्रावित पुत्र प्रेमसे,
उमंगता सिन्धु जिसी शशाङ्कसे।
अपार सत्प्रीति भरे हुये पृषत्,
विमोचते बाष्प जिसी शशाङ्कसे ॥३॥
सुजन्तु सन्दोह अमन्द मोदसे,
निसेवते शान्ति-सुधा शशाङ्कसे।
विलोकिये भांति नहीं यथा यहां,
सुखप्रथामें जिस ही शशाङ्कसे ॥४॥
अहा! अहा! हाय! उसे विलोकिये,
विनाश होते हततेज देखिये।
यथा यहां नश्वर हीन कौन है,
सदा स्थिति लक्षण वस्तु कौन है ॥५॥
सगर्व होते मदमस्त होकर,
चढ़ैं शिखापर गिरते वही हैं।
सदा समान स्थिति देख करके,
चढ़ैं भला जो गिरते कभी हैं ॥६॥
स्वसौख्यमें था अतिमस्त होकर,
हमें अरे! प्राण दुखोदधि गए।
मिला उसीका फल आज देखिये,
नहीं किया है फल शून्य देखिये ॥७॥
पुनर्निशानाथ यही विचारिये,
गिरे हुए भी निज शोक छोड़िये।
पड़े हुए भी उठते विलोकिये,
सदा न रहते दिन सम निहारिये ॥८॥

प्राचीन जैन स्थान।

[ले०—बा० कामताप्रसादजी जैन, संपादक "वीर" अलीगंज ।]

लोगोंका ख्याल है कि जैनधर्म भारतमें ही सीमित रहा है। भारतके बाहर उसका प्रचार कभी नहीं किया गया। परन्तु यह ख्याल कोरा ख्याली पुलाव ही है। जैन मुनियोंका जीवन इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि उनके द्वारा बिल्कुल मिशनरी ढंगपर धर्मका प्रचार दूर२ देशोंमें होता रहता है। वे वर्षमें केवल वर्षा-ऋतुके समय एक स्थानपर नियतरूपमें ठहरते हैं। वरन् हमेशा सर्वत्र विहार और धर्मप्रचार करते रहते हैं। मुनि कल्याण ऐसे ही एक जैन साधु थे जो सुदूर देश यूनानमें पहुंचकर समाधिलीन हुये थे। एक श्रमणोत्तम मुनिकी निषधि आज भी अथेन्स नगरमें जैन मुनिके धर्मप्रचार प्रेमको प्रकट कर रही है। ऐसे ही अन्य देशोंमें भी जैन धर्मका प्रचार हुआ था, यह खोज करानेसे प्रकट होसक्ता है।

यहांपर हम पाठकोंके समक्ष जसवन्तनगरके एक गुटकेसे उन जैन स्थानोंका दिग्दर्शन करायंगे जहां जैन मंदिर अथवा चैत्य विद्यमान थे। वह गुटका श्री 'स्योचंद पाटणी सांगाकी' का मिती भादव वदि ११ सं० १८९२ वि० का लिखा हुआ है। इसमें एक 'नमस्कारस्तोत्र' संस्कृतमें भाषा अर्थ सहित दिया हुआ है। यह स्तोत्र किसकी रचना है और कब रचा गया है, यह उक्त गुटकेसे कुछ मालूम नहीं होता। परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि लिपिकर्त्ता न तो इसका रचयिता है और न इसका टीकाकार; क्योंकि उसने लिखनेमें भाषाकी बहुत ही मामूली अशुद्धियां की हैं; जैसे कि उसके निम्न उद्धरणोंसे पाठकोंको ज्ञात होगा। पर जो हो, यह रचना है बहुत महत्वकी। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनधर्मके प्राचीन स्थान कहां२ पर रहे हैं और दिगम्बर जैनियोंके निकट पूज्य वे स्थान प्राचीन समयसे रहे हैं।

स्तोत्रकी प्रतिलिपि ज्योंकी त्योंही हम देना उचित समझते हैं; यद्यपि आवश्यकतानुसार उन पर उचित नोट भी देते जायगे। स्तोत्रका प्रारम्भ इस तरह होता है:—

"सं देवे देवलोके रविशशिभवने ॥ विंतराणां निकाये ॥ नक्षित्राणां निवासे ग्रहगणपटले ॥ तारकाणां विमाने ॥ पाताले च नगेंद्रे स्पष्टमणकणे ॥ च्छतमिद्योधकारे ॥ श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यान वंदे ॥ अस्यार्थं ॥ सं देवे कहतां नवग्रैवक ॥ नव निडोतरा ॥ पांच पच्योतरा ॥ ए तेहस विमान उपरिला छे॥ त्यांमे भगवतजीकी जकतम प्रतमांजी छे ॥ त्याहने हमारी नमस्कार छे ॥ सोलह स्वंर्गा कै विषे ॥ सूर्य चंद्रमाका विमाना के विषै ॥ विंतराका स्था-

चक ॥ नक्षत्रांका समूह ॥ ग्रहांका समूह ॥ तारांका समूह ॥ पाताल के विषे ॥ धरणेंद्रका विमानके विषे ॥ इतनी जायगा प्रतिमाजी छे॥ त्यांने हमारो नमस्कार छे ॥ १ ॥"

जैन शास्त्रोंमें लोकको तीन भागमें विभक्त किया है। ऊर्ध्व, मध्य और अधो। ऊर्ध्वमें देवलोक व सूर्यचन्द्रादि ज्योतिषचक हैं। ज्योतिषचक्रके सूर्यचंद्र व नक्षत्रादि एक तरहके विमान बतलाये गये हैं, जिनमें देवगतिके जीव रहते हैं और उनमें जैन मन्दिरों और अकृत्रिम जैन चैत्योंका होना माना जाता है। इसी विश्वासके मुताबिक यहांपर देवलोक और ज्योतिषचक्र आदिकी जैन प्रतिमाओंको नमस्कार किया गया है। तीर्थंकरभक्त उपासक उन स्थानोंपर पहुंच तो सका नहीं है, इसलिये वह अपने भावोंद्वारा उनका स्मरण करता है।

इसी तरह मध्य लोक जिसमेंके असंख्यात द्वीपसमुद्रोंमें हमारी आजकलकी दुनिया भी शामिल है, उसके भी जैन स्थानोंका उल्लेख इस स्तोत्रमें आगाड़ी किया गया है तथा अधोलोकके जैन मंदिरोंको भी भुलाया नहीं गया है। जैनियोंकी इस मान्यताके अनुसार उनके धर्मकी प्राचीन कीर्तियां अवश्य ही भारतवर्षके बाहर मिलना चाहिए। परन्तु आजकल विद्वानोंके मध्य जो यह विश्वास घर कर रहा है कि जैनधर्म भारतके बाहर कभी फैला ही नहीं; इस कारण वे अन्य देशोंसे प्राप्त कीर्तियोंमें जैनत्वको पाना असंभव समझते हैं। तिसपर जैन धर्म व बौद्ध धर्मके बहुत सादृश्यसे ऐसी बहुतसी बातें जो जैनसे सम्बन्ध रखती मिलती हैं बौद्धधर्मकी बतला दीजाती हैं। अशु, मुमाशके सम्बंधमें कुछ ऐसा ही हुआ प्रतीत होता है, किन्तु तो भी वहां जैन प्रभावका होना फ्रेंच विद्वान् लिख्वा लेवी स्वीकार करते हैं। इसके लिए आवश्यक्ता है कि जैन विद्वानोंको विदेशोंमें भेजकर प्राचीन स्थानोंकी खोज कराई जावे और वहांपरके चिन्होंको दिखाया जावे।

हालहीमें भारतके सिंध प्रान्तके मोहिनजो डेरो नामक ग्रामकी खुदाईसे जो करीब ईसासे पूर्व ४००० वर्ष पहलेकी चीजें निकली हैं; उनमें जो मुद्रायें हैं उनपरके चिह्न अवश्य ही जैनधर्मसे सम्बन्ध रखते प्रतीत होते हैं। इनमें कई पर तो बैलकी छाप और चित्रित (Pictographic) भाषामें लेख हैं। एक-पर हाथी अंकित है। बैल जैनधर्मके प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभ अथवा वृषभदेवका मुख्य चिह्न है। तथापि इन मुद्राओंके चित्रित लेखमें एक चक्र ही पहिले पहल अंकित है संभव है यह चक्र तीर्थंकर भगवानके धर्मचक्रका द्योतक हो। अनेक जैन स्थानोंमें धर्मचक्र अंकित मिलता है। इसके लिये मथुराका जैन स्तूप बहु प्राचीन है (देखो दी जैनास्तूप एण्ड अदर एन्टीक्वटीज आफ मथुरा प्लेट नं० ७ व ११) यही कारण है कि चक्र चिह्नको विद्वान् लोग खास रीतिसे जैनोंका मानते हैं। (देखो प्री० हिस्टारिक इन्डिया पृ० १९१-१९३)।

इसी तरह हाथीका चिह्न दूसरे तीर्थंकर

भगवान अजितनाथका माना जाता है। सारांश यह कि इन मुद्राओंपरके चिह्न जैन चिह्नोंसे मिलते हैं। इन्हीं मुद्राओंमेंसे एकपर जिनमुद्रा-वाली मूर्ति अंकित है। इसे विद्वान भी जैन मूर्तिकी द्योतक अनुमान करते हैं। इस कारण इनपरके लेखोंका भाव प्रकट करते हुए पुरातत्व-विदोंको इस बातको भुला देना ठीक न होगा। परन्तु वर्तमान प्रगतिको देखते हुए हमारे इस कथनका उचित उपयोग होना मुश्किल ही दीखता है। किन्तु हमको तो विश्वास है कि इन प्राचीन चीज़ोंसे अवश्य ही जैनधर्मका संबंध होना चाहिये; क्योंकि इन चीज़ोंका सम्बन्ध द्राविड़ लोगोंसे बतलाया गया है और द्राविड़ देशमें जैनधर्मका प्रचार एक प्राचीन कालसे रहा है, यह बात मेजर जनरल फरलांग साहबने अपनी पुस्तकमें स्वीकार की ही है।

साथ ही इस खुदाईमें स्तूप भी निकले हैं; जो भी जैन हो सके हैं, क्योंकि भारतमें जैनों और बौद्धोंके ही स्तूप बनानेकी प्रथा रही है और बौद्धधर्मका अस्तित्व ईसासे पूर्व छठी शताब्दिसे पहलेका सिद्ध नहीं होता। बौद्धोंसे प्राचीन जैनियोंका एक स्तूप ईसासे पूर्व ८ वीं शताब्दिका मथुरामें था। इस अवस्थामें इन स्तूपोंका जैन स्तूप होना बहुत कुछ उचित है। सारांशत: इन चीज़ोंका जैनधर्मसे सम्बन्ध होना संभवित है। उस प्राचीन समयमें प्रथम और द्वितीय तीर्थंकरोंकी मान्यता होना ठीक ही है। जो हो, इतना कहा जासकता है कि जैनधर्मका अस्तित्व केवल भारतमें ही नहीं रहा है। बल्कि-खित स्तोत्र भी इस विषयका एक प्रमाण है। इस स्तोत्रमें अगाड़ी लिखा है:—

"वैताढे मेरुश्रृंगे रुचकनगवरे ॥ कुंडले हस्तिदंते ॥ विक्षारे कुटनाद्रोसुरकनकगिरौ नैषधे नीलवंते ॥ चित्रसैले विचित्रे ॥ यमकगिरवरे चक्रवाले हिमाद्रौ ॥ श्रीमत्तीर्थ० ॥ वैताढि परवतके विषे ॥ मेरुगिरिका सिषरके विषे ॥ रुचकगिर परवत ॥ कुंडलगिर गजदंत ॥ वखार-गिर पर्वत ॥ देवगिर पर्वत ॥ कनकगिर नैषद-गिर ॥ नीलगिर ॥ चित्रगिर ॥ यमकगिर पर्वत ॥ चक्रवाल पर्वत ॥ हिमाचल पर्वत ॥ इत्यादि पर्वताके विषे ॥ प्रतिमांजी छै ॥ त्यांहने हमारो नमस्कार छै ॥२॥"

यहांमें मध्यलोककी प्रतिमाओंको नमस्कार किया गया है। मेरु आदि जिन पर्वतोंका यह उल्लेख किया गया है, उनका पूरा पता आज-कलके भूगोलमें नहीं लगता है। मनुष्य अभी तक इन पर्वतोंपर पहुंच ही नहीं सका है। जैनियोंके यह मेरु पर्वतादि कहांपर किस तरह अवस्थित हैं, इसके लिये "वीर" के द्वितीय वर्षका 'महावीर जयंती अंक' (नं० ११-१२) का 'मेरुपर्वत' शीर्षक लेख व 'भगवान पार्श्वनाथ' नामक पुस्तक देखना चाहिए। उपरान्त इस स्तोत्रमें लिखा हुआ है:—

"श्रीशैले विंध्यश्रृंगे विपुलगिरवरे अर्बुदे पांनवाद्रौ ॥ संमेदे तारके वा कुलगिरसिखरे-ष्टापदे स्वर्णसैले ॥ रत्नाद्रौ चौमंयंते ॥ विमल-गिरवरे अंजने रोहणाद्रौ ॥ श्रीमत्तीर्थ० ॥—श्री शैलपर्वतके विषैं विंध्याचलका श्रृंगके विषे विपुल-

गिरि नाम पर्वत अर्बुदे कहतां आबु पर्वतके विषे मानषाद्री कहतां मानषोत्तर पर्वतके विषे सम्मेद कहतां सम्मेदशिखरके विषे तारागिर पर्वत कुलाचल पर्वतके विषे प्रतिमाजी छे स्वर्ण शैल नाम पर्वत व तीत रक्तगिरि नाम पर्वत उर्ज्जयंतो कहतां गिरिनारि पर्वतके विषे विमलगिरि कहतां शत्रुंजय पर्वतके विषे क्यारि अंमनगिरि पर्वत रोहणाचल पर्वत इतनां पर्वतांके विषे प्रतिमाजी छे त्यांने हमारो नमस्कार छे ॥१॥"

इसमें भारतवर्ष एवं आजकलकी दुनियाके आसपासके अज्ञात स्थानोंमें स्थित जैन चैत्योंको नमस्कार किया गया है। मानुषोत्तर पर्वत वह है जिसके परे मनुष्य नहीं जासक्ता है। इसका पता अभी तक आधुनिक भौगोलिकोंको नहीं लगा है। तथापि विपुलगिरि (विपुलाचल), आबू, सम्मेदशिखिर, तारंगाजी (तारागिरि), रत्नागिरि, शत्रुंजय आदि जैनतीर्थ आज प्रख्यात ही हैं। विंध्याचल, कुलाचल और स्वर्णशैल परके जैन चैत्योंका ठीकतर पता नहीं है। किसी खोजी धर्मप्रेमीको प्रकट करना उचित है।

इन उल्लेखोंसे स्पष्ट है कि इन तीर्थोंपर दिगम्बर जैनियोंका पूज्यपना और हक प्राचीनकालसे चला आरहा है। इसपर भी यदि कोई व्यक्ति उनपर अपनी मालिकी चलाना चाहता हो तो वह उसका खोटा प्रयास होगा। शत्रुंजय, आबू आदि तीर्थोंको वहांके शासक अपनी मिलकियत समझते हैं और उनसे लाभ उठाना चाहते हैं, यह उनकी मिथ्या धारणा और क्रिया है। सब ही तीर्थ देवोत्तर मिलकियत हैं और उनका प्रबंध जैनियोंके अधिकारमें ही होना चाहिये। इस तरह वहांपर हरएक प्राणी भक्तिभावसे प्रेरा विना किसी रोकटोकके जासक्ता है। जो लोग इस प्राकृत प्रथामें बाधक बनते हैं वह सचमुच धर्ममार्गमें रोड़ा अटकाते हैं, जिसका कटुपरिणाम उनको अवश्य ही भोगना पड़ेगा। अस्तु, उक्त स्तोत्रमें अगाड़ी यह बतलाया गया है:—

"सं द्वीपे पंचमेरौ क्षितितटमुकुटे चित्रकूटे त्रिकूटे लाडे नाडेच॥ चाडे विटपिवननटे वेबकूटे विराटे कर्णाटे हेमकूटे विकटतरकटे चक्रकूटे मुटंटे। श्रीमत्तीर्थं०॥ समीचीन द्वीपांके विषे पांच मेरगिरिपर्वत के विषे चित्रकूटपर्वत अंठा आगैं देशाका नांव छे॥ लाडे लाडदेशके विषे नाडदेश चाडदेश वेबकूटदेश वैराटदेश कर्णाटदेश हेमकूटदेश विकटतरकटदेश चक्रकूटदेश मूटटदेश इतनां देशां के विषे प्रतिमाजी छें संनें हमारो नमस्कार छे ॥४॥—अंगे वंगे कलिंगे बहुलजिनगृहे सूरसेने तिलंगे गौडे चोडे मरुदेवत्तरद्राविडे कुंकुणे चापि पुद्रे व्याघ्रे कुंद्रे कलिंबे विजयजनपदे कन्यकूटे सुराष्ट्रे श्रीमत्तीर्थं०॥—अंगदेश वंगदेश कलिंगदेश सूरसेनदेश तिलंगदेश गौडदेश चोडदेश मारवाडिदेश श्रेष्ट द्राविडदेश कुंकुणदेश पुद्रदेश वघेरांको देश कुंडेरांको देश कलिंद्र कहतां अजमेराको देश जनपद देश कन्यकूटे कहतां कांमरूदेश के विषे सोरठ देशके विषे प्रतिमाजी छे त्यांहने हमारो नमस्कार छे ॥५॥ —मेवाडे मालवे वा प्रचुर पुरवरे पुष्कले कच्छले वा॥ नेपाले लाहडे वा कुवंलयतलके॥ सिंधले पुगले वा॥ पंचाले कौसले वा॥ विर-

हितसकडे ॥ अंगडे वा तमाडे ॥ श्रीमत्तीर्थ० ॥ मेवाडदेश ॥ माळवदेश ॥ संघनपुरदेश ॥ पुष्कलदेश ॥ कच्छदेश ॥ नोपाळदेश ॥ बाहडदेश ॥ भमुवणदेश ॥ तिलंकदेश ॥ सिंधकदेश ॥ सुगकदेश ॥ पंचाळदेश ॥ कौशलदेश ॥ विरहित सलिले कहतां थळीको देश ॥ कुरुजांगलदेश ॥ तमाळदेश ॥ इतनां देशांके विषे प्रतिमाजी छे ॥ त्यांहने हमारो नमस्कार छे ॥ ६ ॥—चम्पायां चंद्रपुर्यां ॥ गजपुर मथुरापावके ऊज्जियिन्यां कौसंब्या कौशलाया कनकपुरवरे देवपूर्व्यां तु काश्यां ॥ लंकायां राजग्रिहे दमपुरनगरे ॥ भद्दिले वा विदेहे ॥ श्रीमत्तीर्थ० ॥ ७ ॥ चम्पापुरी चंद्रपुरी ॥ हस्तनागपुर ॥ मथुरा पावापुरी ॥ उजेणी ॥ कौशांबीपुरी ॥ अयोध्यानगरी ॥ कनकपुर ॥ द्वारिका ॥ बाणारसी ॥ लंका ॥ राजग्रहपुर ॥ मंदसोरपुर ॥ भद्दिलापुरी ॥ विदेहनगरी ॥ इतनां नगरांके विषे ॥ प्रतिमाजी छे ॥ त्यांहने हमारो नमस्कार छे ॥ ७ ॥—सद्दर्ये अंतरिक्षे गिरसिखरेश्वते स्वर्णद्वीनीरतीरे ॥ स्वर्लोके नागलोके जलनिधि पुलिने तुरुहाणां निकुंजे ॥ ग्रामे रणे वने वा स्थलजले विषमे दुर्गमध्ये त्रिलोके ॥ श्रीमत्तीर्थ० ॥ सद्दर्ये कहता येकसो सतरि षेत्र आकासके विषे पर्वतोंका सिषरांके विषे तिष्ठे छे ॥ देवगंगाके विषे स्वर्गलोकके विषे नागलोकके विषे ॥ भवनवासी देवांका विमानांके विषे ॥ समुद्रका तटके विषे ॥ वृक्ष्यांका समूहके विषे गांवांके विषे उजाडिका बन वने कहतां बाग बगुके विषे जलके विषे गढकोटके विषे ॥ त्रीलोक कहतां तीन त्रिलोकके विषे ॥ इतना सथानांके विषे श्री तीर्थंकर देवजीकी अकृतिम प्रतिमाजी छे त्यांहने हमारो त्रिकालु नमस्कार छे।"

इस प्रकार यह प्राचीन स्तोत्र पूर्ण होता है और इसमें आये हुये अनेक देश भारतके बाहर प्रतीत होते हैं। भूटान, लंका आदि देश निस्सन्देह भारतके बाहर हैं। तिब्बत, भूटान, नेपाल, लंका, चीन, जावा आदि देशोंमें जैन धर्मके अस्तित्व अथवा प्रभावको बौद्ध ग्रन्थ प्रकट करते हैं! इसी तरह फारस-ईरान, अरब, अफगानिस्तान आदि देशोंमें जैन मुनियोंका विहार होता था, यह बात यूनानी और चीनी यात्रियोंकी साक्षीसे प्रमाणित है। मिश्रके कई प्रदेशोंमें जैन कीर्तियोंका होना संभव है, यह बात हमने अपने ग्रंथ 'भगवान पार्श्वनाथ" में प्रकट की है। अतः इन सब बातोंको देखते हुए, भला यह कैसे माना जासक्ता है कि जैन धर्म भारतमें ही सीमित रहा है—उसका बहुत प्रचार कभी नहीं हुआ! आवश्यक्ता मात्र जैन विद्वानोंको खोज करनेकी है! क्या हम जैन सेठोंसे आशा करें कि वह अपनी लक्ष्मीका सदुपयोग जैन कीर्तियोंका पता चलाने और उनका उद्धार करनेमें करेंगे? भगवान हमारे धनिक वर्गको यह सुबुद्धि दें। इत्यलम्!

प्राचीन जैनस्मारक ग्रन्थ।

बम्बई प्रान्तके जैनस्मारक ।||) मद्रास व मैसूर प्रान्तके जैनस्मारक १=), संयुक्त प्रान्तके जैनस्मारक ।=), मध्यप्रान्त मध्यभारत व राजपूतानाके जैनस्मारक ||=), एक २ प्रति अवश्य मगाइये। लागतसे भी कम मूल्य है।

मैनेजर—दि० जैन पुस्तकालय—सूरत।

क्रोधका कटुक फल ।

(रचयिता-चि० महेन्द्रकुमार जैन काव्यतीर्थ-बिजनौर ।)

अति बढ़ा तब हाय ! जुकाम था,
  बह रहा जलसा मम नाकसे ।
बढ़ रहा निज-मस्तक भार था,
  कठिन था चलना निज सांसका ॥१॥
जब कभी गल जीं महाराज थे-
  खड़े, खड़ै कर भाषण दे रहे ।
मैं कुछ भी मिलता विसराम था,
  वसन, भोजन, पान, हराम था ॥२॥
न मन था लगता कुछ काममें,
  पठन-पाठन या स्तुति-गानमें ।
इसलिये निज माकूत सेज पै,
  पड़ रहे कमती करने उसे ॥३॥
शुभ चिकित्सक जो मम मित्र थे,
  यह व्यथा सुनके झट आगये ।
सहज मित्र वयस्य-विपत्तिमें,
  बिन निमन्त्रण होत शरीक हैं ॥४॥
मम दशा यह वे लख आंखसे,
  घर गये, अपने अति शीघ्र ही-
फिटकरी करपूर सु सुंघने,
  रख शीशियोंमें झट भेज दी ॥५॥
लख दवा, हम भी अति व्यग्र हो-
  त्वरित काग लगे वह खोलने ।
पर अहो ! वह टूट गया वहीं,
  जन लगे हंसने अति जोरसे ॥६॥
न हँसना वह मैं सह था सका,
  "चुप रहो" उनसे कह यों उठा ।
जब लखा चिढ़ना मम तो सभी,
  हँस पड़े फिर पीट स्व-तालियां ॥७॥
पुन लगे कहने " झट खोलिये ",
  हँस पड़े फिरसे सबके सभी ।
लख हँसी फिर मैं अति क्रोधसे,
  बक उठा तब तो अति गालियां ॥८॥
व्यवहृती लख कुत्सित ये मम,
  उठ गये, तब तो सब शीघ्र ही-
पर अहो ! वह बाहिर हो खड़े-
  हँस पड़े स्व-बजाकर तालियां ॥९॥
कर लिये जब बन्द किवाड़ थे,
  पड़ रहे पुन कोमल सेज पै ।
तब हुवा वह स्क्रू स्मृत जो कि था-
  लग रहा निज-बोतल-कागमें ॥१०॥
रख रही वह बोतल ताकमें,
  हम हुवे पुन आलसके वशी ।
कर किया झट ऊपर ताकमें,
  पर रहे हम बिस्तर पै पड़े ॥११॥
वह सुबोतल ज्यों करमें गही,
  सटकके शिर पै हमरे पड़ी ।
बन गये उसके टुकड़े कई,
  मुख हुवा मम लोहू-लुहान था ॥१२॥

तब भरी हमने अति चीख सी,
चकित थे जन बाहिर जो कि थे।
खुल गया झट युग्म किवाड़का,
सब लगे कहने यह क्या हुआ? ॥१३॥

जब कहा हमने जल दीजिये,
मुंह करूं जिससे निज साफ मैं।
तब कई जन थे कहने लगे,
अधमकी कुछ याद करो सखे ॥१४॥

धक-धक्कसे झु निकाल दिया जिन्हें,
जल उन्हीं जनसे तुम मांगते।
न कुछ शर्म तुम्हें, अब तो ज़रा,
फल चखो, अपनी कृतिका भला ॥१५॥

फिर गिड़गिड़ा कर मैं कहने लगा,
यह खता मम माफ करो, सखे!
अब कभी मुझसे नहिं होयगी,
कर कृपा जलदी जल दीजिये ॥१६॥

"विपतमें जब आकर हो पड़े–
तब क्षमा-बिन है वश और क्या ?।
मतलबी ! बस याग चलो ! हटो !
वह यही कह हा! चल थे पड़े ॥१७॥

कइ भले जन जो वहँ थे खड़े,
कह उठे, उनसे, "प्रिय भाइयो !–
शरणमें रिपु भी यदि आपड़े,
उचित है करना न उसे दुखी ॥१८॥

फिर किया इसने यह काम क्या !
कि जिससे हम रिपु-सम यों करें।
वह किया, नहिं जो कि अयुक्त था,
फल जिह्वानका उपयुक्त था ॥१९॥

सब अहो ! सुन वे मिलके सभी,
त्वरित ही जल लेकर आगये।
पुन निजी कपड़ा वह फाड़के,
धर गये फिर धोकर बांधके ॥२०॥

शयन पै हम लेट गये सभी,
पुन लगे मनमें यह सोचने।
यह विलक्षण क्या घटना घटी ?
फल मिला यह हा! किस पापका ॥२१॥

समयकी गति हाय ! विचित्र है,
न जिसको विधि भी कुछ जानता।
तब मनुष्य उसे किस भांतिसे,
भर सकें अपनी अनुभूतियें ॥२२॥

तनिक भी धिक ! अक्षम्य जो किया,
फल मिला उसका यदि मैं सदा ।
अधिक जो यह जाय किया कभी,
फल मिले, उसका तब क्या कहो ॥२३॥

कटुक-भाषण भी अति है बुरा,
न जल भी जिसका फल हा ! मिला ।
नहिं भले जन जो रहते खड़े,
तब सहायक को बनता कहो ॥२४॥

इस प्रकार अनेक विचारकी,
लहरियें बहुधा उठतीं रहीं।
डुबकियां हम भी गहते हुए,
न कुछ ज्ञात किये कब सोगये ॥२५॥

आदर्श ब्रह्मचारी ।

(ले०-श्री० धर्मरत्न पं० दीपचन्दजी वर्णी) ।

लगभग १० बजे होंगे कि मिट्ठनलाल उपाश्रयकी ओर आये, तो क्या देखते हैं कि वहां १ नवयुवक लकड़ीके तख्तपर बैठा हुआ रहंटिया कात रहा है और उसके साथ राग मिलाता हुआ तल्लीन हुआ गा रहा है ।

एक साधू वसन बनावे ॥ टेक ॥
भेद ज्ञानको चर्खा लेकर, तत्व कपास उंठावे ।
आतम रुईसे पुद्गल बीजा, ओट २ अलगावे ॥एक०
स्वपरिणति पींजन ज्ञान धुनकना, सुनर२ तान लगावे ।
मिथ्या मैल दूर कर पौनी, चारित्र शुद्ध बनावे ॥एक०
बारह भावन रहटा लेकर, संयम सूत कतावे ।
समिति गुप्तिका ताना बाना, देकर चित हर्षावे ॥एक०
यह विधि यथाख्यात अंबर बुन, आपहि पहिर जु भावे ।
दीपचन्द्र सो साधु पुंगव तब मुक्ति रमणि ललचावे ॥एक०॥
आप बनावे आपहि पहिरे, पहिरत अति हुलसावे ।
एक साधू वसन बनावे ॥

इस युवकके शरीरपर शुद्ध वस्त्र खादीके हैं, सिर और दाढ़ी मूछ मुंडी हुई हैं, पास ही एक टेबिल पर अनेक पुस्तकें, कागज कलम दावात आदि सामान रखा हुआ है। वह युवक बीच२में कुछ नोट भी करता जाता है और पुनः २ रेंटिया चलाता हुआ गानेमें मग्न हो जाता है ।

मिट्ठनको आये लगभग १५ मिनट होगए, वह दो बार "वंदामि महाराज" भी कह चुका। परन्तु इनका ध्यान उस ओर न गया, इतनेमें सूतका तार टूट गया। तब ध्यान भी छूट गया। साम्हने देखा तो मिट्ठनलाल खड़े हुए वंदामि कहरहे हैं। अहहा! मिट्ठनलालजी हैं दर्शनविशुद्धिः भवतु, आप कबसे आये हैं? आवो बैठो !

मिट्ठन–महाराज १५ मिनट होगए। चलिये भोजन तैयार है ।

युवक–अच्छा चलो कहकर साथ होलिए, वहां पहुंचकर भोजन करनेके अनन्तर इसप्रकार उपदेश करने लगे, भोभव्यो सुनो ! अतिथि संविभाग व्रत प्रत्येक गृहस्थको पालना उचित है, वह इसप्रकार होता है, कि प्रत्येक गृहस्थ अपना चकूचौका (रसोड़ा) शुद्ध करें, अर्थात् नित्यप्रति अपने घरमें शुद्ध भोजन बनाकर जीमनेका अभ्यास रक्खे, और जब उसके पुण्योदयसे कोई उत्तम मध्यम या जघन्य सुपात्र मिल जावे, तो उसके पदके अनुसार उत्साह और आदर पूर्वक वही भोजन जो तैयार हुआ है, देकर पुण्योपार्जन करे, यही आर्ष और आदर्श मार्ग है। इसके सिवाय विशेष स्वादिष्ट मिष्ट व पुष्ट भोजन, मेवा और फलादिक एक त्यागी (मुनि श्रावक आदि) को देना और आरम्भ बढ़ाना उचित नहीं है ।

मिट्ठन–महाराजजी, यह तो ठीक है, परन्तु हम श्रावकोंकी यह तो भक्ति है कि उत्तमसे

राष्ट्रीय सत्याग्रह-संग्राममें योग देनेवाले दि० जैन वीर—



बा० कपूरचन्द जैन—आगरा।



श्रीयुत महेन्द्र—आगरा।



बाबू जैनेंद्रकुमार, देहली।



बा० शामलाल जैन एडवोकेट, रोहतक।



बा० अमोलकचन्द, खंडवा।

जैनविजय प्रेस, सूरत।

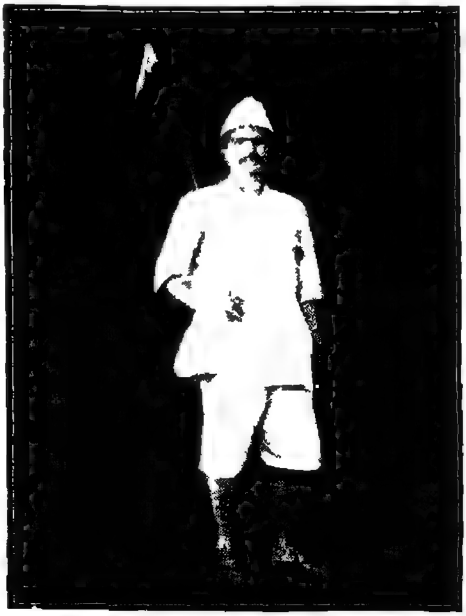
राष्ट्रीय सत्याग्रह–संग्राममें जेल जानेवाले दि० जैन वीर।



वैद्यभूषण डॉ० अभयकुमार एल० एम० टी० एल० एम० एस०–मदुरा।



श्री० आर० सी० नायक उर्फ
[illegible]



सेठ [illegible] जैन–[illegible]।

उत्तम भोजन हम लोग अतिथिजनोंको देवें ? हमारा ऐसा भाग्य कहां जो ऐसे त्यागीजनोंका लाभ मिले ? आप तो कुछ हमसे कहकर बनवाते नहीं हैं, और यदि हम ही ऐसा न करें तो आप तो कुछ कमाते नहीं हैं। तब वे वस्तुएं आपके भोजनमें कभी आ ही नहीं सकीं, दाल रोटी तो नित्य होती है। इसके सिवाय एक बात यह भी है कि आपके निमित्तसे यदि कुछ बना या आया गया, हम लोगोंको भी प्रसाद मिल जाता है।

(युवक) आदर्श ब्रह्मचारी—भाई श्रावकों (गृहस्थों) का कर्तव्य अवश्य ही अतिथियोंको उत्तम भोजन देनेका है, मैं इसका निषेध नहीं करता। परंतु उत्तम भोजनका अर्थ "मिष्ट, पुष्ट, गरिष्ट, व स्वादिष्ट नहीं है, किन्तु हित मित और सादा हलका शुद्ध भोजन है. कि जिससे संयमीके रत्नत्रयकी वृद्धि होवे, वह ध्यान और अध्ययनमें विशेष २ रीत्या प्रवृत्त होते हुए संयमकी वृद्धि कर सके, और यह बात सादे भोजनसे ही हो सकती है, जो गृहस्थ द्वारा ऋतु और प्रकृतिके अनुसार विवेक पूर्वक दिया जाता है, न कि पुष्ट भोजन उत्तम होता है, उससे तो उल्टा विषय और कषाय भावोंकी वृद्धि होकर अंतरंग और बहिरंग संयमका घात होता है। इससे त्यागी अपने आदर्श मार्गसे गिरजाता है, वह लोलुपी हो जाता है, धनिक दाताओंकी खोजमें रहता है। उनसे इच्छित भोजनादि पाकर उनकी अनेक प्रकारसे प्रशंसा करने लगता है, गरीबों या सादा भोजन करनेवालोंसे घृणा करता है। इसके सिवाय प्रबल जिव्हाके वश होकर पीछे मदोन्मत्त हो जाता है और उसकी पूर्तिके लिये "यंत्र मंत्र तंत्रादि" का सहारा लेकर स्वपर धर्मका घात कर बैठते हैं। गृहस्थजन यदि विकारयुक्त होवे, तो उससे धर्म मार्गका विघात नहीं होता, परंतु त्यागीको तो फिर २ भूमि शोधकर चलना चाहिए। शीलव्रतकी भावनामें "पुष्ट रस और स्वशरीरसंस्कार" का भी त्याग बताया है, इसलिये त्यागी (जो वास्तव में ज्ञान वैराग सहित त्यागी हुआ है अर्थात् जिसे अपना आत्महित करना ही ध्येय है सो तो) अपने आप विचारकर चलता है, परंतु यदि वह ज्ञान वैराग बिना केवल भोले भावोंसे, या गृहकलह आदि कारणोंसे, या बिना कमाये उत्तमोत्तम भोजन और ख्याति लाभ पूजा सत्कारादिके लिये ही त्यागी हुआ है, तो उसकी सम्हाल और रक्षा आप गृहस्थोंके ही आधीन है।

और उसका सरल उपाय यही है, कि तुम्हारे यहां कोई त्यागी आवे तो उसको (१) जीव जंतुकी बाधासे रहित प्रकाश और पवनवाला एकान्त स्थान, (जहां स्त्री बालक नपुंसकादिका प्रवेश न हो, और न एक पाईका भी कोई भोलक्षी सामान हो, कि जिसके कारण उसे कलंकका भाजन बनना पड़े) देओ। यदि उसके पदके अनुकूल हो, लकड़ी तृण या घासका आसन दे दो। याद रहे कि गृहस्थोंके उपयोगमें आई हुई कोई भी वस्तु उसे मत

दो, न नरम गद्दे तकिये पलंगादि ही देओ। वह त्यागी है, ये वस्तुएं विकारके हेतु हैं। (२) यदि वस्त्र वास्तवमें जरूरी हो और वह मुनि न हो तो उसके पदके अनुसार पछेड़ी कोपीन आदि शुद्ध खादीके मोटे देओ, (३) भोजन सादा और शुद्ध जो हो, देओ, भले वह रूखा सूखा अलोना, नीरस, केवल अनाजको पानीमें पकाकर ही बनाया गया हो, पर शुद्ध हो देओ (४) जब वह जावे, तो अमुक स्थान तक जानेका प्रबन्ध कर दो, वह प्रबन्ध कमसे कम खर्चमें होवे। किसीको सेकन्ड क्लास रेलवे-का टिकट मत देओ, नवमी प्रतिमासे लेकर ऊपरवाले किसीको रेल मोटर आदि सवारीकी जरूरत नहीं है, इसलिये उसे न पैसा देओ और न सवारीका प्रबन्ध करो, किन्तु एक आदमी मार्ग दिखानेके लिये साथ जाकर अन्य श्राव-कोंके ग्राम तक पहुचा आओ। नीचेकी प्रतिमा-वालोंका यथायोग्य प्रबन्ध कर दो, परंतु लम्बे टिकट लेकर मत दो, क्योंकि लम्बी मुसाफरीमें धर्म साधनमें बाधा पड़ती है। लम्बे टिकटोंको पैसा भी मत दो, किन्तु किसी योग्य श्रावकोंके ग्राम तक पहुंचनेका प्रबन्ध करदो, क्यों कि त्यागियोंकी कोई कोर्ट (अदालत) की पेशी (मुद्दत) नहीं होती कि उन्हें उस दिन अवश्य ही पहुंचना है। तीर्थयात्राकी भी कोई खास तिथि नियत नहीं है, भले वे वर्षोंमें पहुचें, या कदाचित् मार्गमें आयुपूर्ण हो जानेसे न भी पहुंचे, इसकी चिंता नहीं है, उनके शुभ भावों-से उनको पुण्य बंध होता ही रहता है। तीर्थ यात्राका फल भी मिल जाता है। इसलिए उनको ग्रामोग्राम मुकाम करते हुए और श्रावकोंको धर्मलाभ देते हुए यथा समय पैदल या स्वाधीन सवारी द्वारा और जनसरते रेल मोटरादिमें अपने सामायिकादि आवश्यकोंकी रक्षा करते हुए जाना चाहिए। पैसा बिना गृही और पैसा-से त्यागी बिगड़ जाते हैं। इसलिये यदि महावीर प्रभुका बताया हुआ सन्मार्ग जीवोंके हितार्थ यथार्थ चलाना है, तो उक्त ४ बातोंपर विशेष ध्यान रखना चाहिए।

दूसरी बातका उत्तर यह है कि हम लोगोंको स्वादिष्ट अनेक प्रकारका भोजन कहांसे मिलेगा? सो भाई हम लोग त्यागी हैं, यदि भोजनकी ही गृद्धता रखें, तो त्यागी क्यों होवें? हम तो घर छोड़नेके साथ ही स्वाद भी छोड़ चुके हैं। केवल संयमकी वृद्धिके अर्थ शरीरको कुछ खुराक देना पड़ती है, सो तो सादेसे सादा और कमसे कम खर्च और कम आरम्भसे तैयार किये हुए खुराकसे काम चल सकता है। बिना नमकके मात्र खिचड़ी भी यह कार्य कर सकती है। इसलिये जितने कमसे कम खर्चसे तुम एक त्यागीका भोजन कर सकते हो करो, और बहुत कम आरंभ और समय उनके भोजन बनानेमें लगाओ, यही प्रभुके मार्ग चलानेका उपाय है।

स्मरण रक्खो कि जो त्यागी नाम रखकर धन वस्त्रादि एकत्र करते हैं, स्वादिष्ट भोजन चाहते है, गृहस्थोंसे अधिक हेल मेल रखते हैं, यन्त्र मंत्रादि झाड़ाफूंकी करते हैं, हारजीत बताते हैं, धनी जनोंकी हां में हां मिलाते हैं, वे त्यागी नहीं हैं,

धूर्त हैं, ठग हैं, पदभ्रष्ट हैं, वीरके मार्गके कंटक हैं, धर्मकी ओटमें चोट करते हैं। उनसे बचो और सन्मार्गकी रक्षा करो। अब सामायिकका समय हुआ है, इसलिये और चर्चा पश्चात् होगी, ऐसा कहकर आप ने आश्रमको पधार गए।

श्रोतागण—भाइयो! कैसा निष्पक्ष स्पष्ट उपदेश है? हमने तो ऐसा उपदेश आज तक नहीं सुना, कई त्यागी आये, मुनि भी आये परंतु सिवाय चन्दा फन्दाके और तो बात भी नहीं सुनी, भोजनमें तो हम लोगोंकी आपत्ति आजाती थी, यह नहीं वह लाओ, यह बिगड़ गया वह छूगया, भगवान जाने वे जबतक जीम कर यहांसे नहीं चले जाते तब तक शरीर थर थर कांपता रहता है, लोकलाजसे जिमाना तो पड़ता है, परंतु मनमें तो यही रहता है कि फिर कभी इनका समागम न होवे! भाई सच पूछो तो त्यागीके नामसे ही कपकपी छूटने लगती है। परंतु यदि वीर प्रभुका ऐसा सरल मार्ग है जैसा कि महाराज ब्रह्मचारीजीने बताया है, तो हम सबको अवश्य ही स्वीकार करना चाहिए।

महाराजने उपदेश क्या दिया है? हम लोगोंको खरे खोटेकी पहिचान करनेकी कसौटी ही दी है। इससे जो सच्चे त्यागी होंगे, वे पुजेंगे, संसारसे तिरेंगे और हमको तारेंगे और जो नकली ठग होंगे, वे रस्ते पड़ेंगे, और जब ढोंगियोंका सत्कार न होगा तो वे स्वयं या तो सुधर कर सन्मार्गमें आवेंगे या भेष छोड़कर धर्म मार्गका अपवाद मिटावेंगे। अन्य भेषमें कुछ भी करें उसको हम क्या कर सके हैं? परंतु जैन धर्मके पवित्र भेषमें विपरीत कार्य करना नरक निगोदका मार्ग पकड़ना है।

भाई चलो महाराजको कुछ दिन यहां ठहरनेको निवेदन करें, क्योंकि ऐसे आदर्श ब्रह्मचारी समीचीन उपदेशसे ही हमारा सच्चा हित हो सक्ता है। अहहा! ऐसे त्यागी प्रत्येक ग्राममें बीसों क्यों न रहें, लोगोंको उनका कुछ भी भार नहीं हो सक्ता, अपने भोजनमें ही भोजन होजावे और उनके निमित्त अपनेको भी शुद्ध खानेको मिले, यह कैसी सरल और उत्तम बात है! और नित्य घंटे दो घंटे सांझ सवेरे जो समय हमारा गप्पों सप्पोंमें जाता है, उसमें धर्मोपदेश सुनना, शेषकाल अपना यथायोग्य धर्म अर्थ काम पुरुषार्थोंमें लगाना। भाई यदि महाराज थोड़े दिन रहे तो हम लोगोंके बाह्य आभ्यंतर अनेक सुधार होजावेंगे, बुराइएं निकल जावेंगी, भविष्यकी संतानपर अच्छा प्रभाव पड़ेगा, पुण्य वृद्धि होनेसे दुःखोंका भी अंत आवेगा। तात्पर्य यह है कि उभय लोक सुधरेंगे।

सब—सत्य है, अपनी प्रार्थना सच्चे मनसे है तो अवश्य ही स्वीकृत होगी, चलो चलें। श्री वीरप्रभुकी जय!

अक्लमन्दी।

तेरे ज्ञान-मुकुरमें जैसा, झलके मोर भविष्य महेश।
वैसा ही होगा, वैसा ही, होने दे प्यारे निःशेष॥
सुख होवे या दुख होवे, पर मुझे नहीं चिन्ता होवे।
नहीं किसीके आगे जाकर, मुख मेरा दुखड़ा रोवे॥

"चन्द्र", झालरापाटन शहर।

रहन सहन और स्वास्थ्य ।

(लेखिका—पंडिता चन्दाबाईजी, जैन बालाविश्राम, आरा ।)

सब मनुष्य चाहते हैं कि हमारा शरीर अच्छा रहे, परन्तु केवल चाहनेसे ही कुछ नहीं हो सकता है, उसके लिये उचित आहार विहार और रहन सहनकी जरूरत है।

प्रकाश घरमें होना और शान्ति मनमें होनी भी आवश्यक है। भोजन स्वच्छ और समयपर होना चाहिये। वर्तमान समयमें स्त्रियां भोजनके विषयमें बहुत अनियम करती हैं। रूखा सूखा बेसमय खाना वे अपना कर्तव्य समझती हैं। इसी प्रकार टेढी पीठ कर बैठना लज्जाका अंग समझती हैं। परन्तु इन बातोंसे स्वास्थ्य खराब होजाता है, यह नहीं समझती हैं। मनुष्यको सदैव सीधा बैठना चाहिये। झुक कर बैठनेसे हृदय दब जाता है और श्वास ठीक नहीं चलने पाती। शरीरमें श्वासोच्छ्वास ही एक जीवनका मूल है, इसलिये सदैव सतर बैठना चाहिये, झुकना न चाहिये। बच्चोंको भी सतर सीधे बैठनेका अभ्यास कराना उचित है।

लोग समझते हैं कि केवल पौष्टिक पदार्थ खानेसे हम बलवान बने रहेंगे। परन्तु यह भ्रम मात्र ही है। पौष्टिक पदार्थोंके हजम करनेके लिये प्रथम पाचनशक्ति ठीक होनी चाहिये अन्यथा वे विषका काम करने लगते हैं। और यह पाचनशक्ति तभी ठीक रह सकती है जब मनुष्य अपनी रहन सहन ठीक रखे। अपने शरीरको स्वच्छ और सीधा रहनेका अवसर दे, तथा श्वासको अच्छी तरह आवागमनका स्थान दे और रोम कूपोंमें सूर्यका प्रकाश जाने दें।

वर्तमानमें नवीन बहुओंको इस प्रकार बैठाया जाता है कि उनका दम घुटने लगता है, तथा सीने और लिखने पढ़नेका काम भी इसी तरह किया जाता है। यह ठीक नहीं है, खुला प्रकाशवाला स्थान ही नवी बहुओंको देना चाहिये व सीधे बैठकर उजेलेमें सब काम करना चाहिये। रसोईके स्थानमें धुआं निकलनेका पूरा प्रबन्ध रखना चाहिये, बराते आलस्यके कारण बहिनें नेत्रोंका होम करके रसोई बनाती हैं, परिणाम यह होता है कि आंखें खराब होजाती हैं।

रसोईघरमें खिड़की, मोका रखना या ऊपर घमारा रखना और चिमनी रखना कुछ कठिन कार्य नहीं है। परन्तु स्वास्थ्यका खयाल करनेसे ही ये कार्य हो सकते हैं। अतएव प्रत्येक गृह कार्य और नित्यके कार्योंमें स्वास्थ्यका ध्यान रखना चाहिये।

स्त्री हो या पुरुष स्वास्थ्य दोनोंके लिये परमावश्यक है। इसके अभावमें न कोई दुनियाके काम हो सकते हैं और न धर्म साधन ही हो सकता है।

आरोग्य रहनेका उपाय।

[लेखकः—पं० शिखरचन्द जैन वैद्य व ज्योतिषी, फर्रुखनगर।]

मनुष्यको प्रभातमें उठना अत्यन्त गुणदायक है। कारण इसका यह है कि दिन रात्रिके विभागमें यह समय कफसे कोपका है और सोनेसे कफ अत्यन्त वर्द्धित और कुपित होता है, इससे प्रभातमें सोने या पड़े रहनेसे आलस्य शिथिलता मन्द बुद्धि खांसी अजीर्ण प्रमेह मेदवृद्धि आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

सवेरेका उठना केवल भारतवर्षके मनुष्योंको ही उपकारी नहीं है किन्तु समस्त विद्वान इसे स्वीकार करते हैं और उचित मानते हैं। अंग्रेजोंका इस समय उठ खड़े होना तथा मुसलमानोंका सुबा (प्रभात) की नमाज पढ़ना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। हमने अपने देशके बहुतसे अमीरोंको चार२ घड़ी पहर दिन चढ़ेतक सोते देखा और सुना है, शायद उनको शिथिलता आलस्य प्रमेह आदिका यही कारण है।

प्रातःकाल समस्त मलोंका त्याग करना वायुकी वृद्धि करता है और पेटकी गड़गड़ाट अफारा आदि और उदरकी गड़बड़ आदिका नाशक है। यदि प्रभातमें मलोंका त्याग न किया जावे और अधोवायुका निरोध रहे तो इससे अनेक भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं। जैसे अधोवायुके निरोधसे वायु और मूत्रका रुकना मलकोप अफारा-क्लम (बेचैनी) गुल्मादिक उदररोग तथा अनेक शूलादि वात व्याधि उत्पन्न होती है तथा मलके अवरोधसे आटोप (अफारा), शूल, पेटमें कतरनी, वंधकोष आदि होते हैं।

जो प्राणी प्रभात समय शौच नहीं जाते उनको हमने अनेक रोगोंसे पीड़ित देखा है और सवेरे मल त्यागसे शरीर हलका, समस्त इन्द्रिय और मन प्रसन्न, बुद्धि उज्वल और पेटमें पराक्रम होता है।

शंका इसमें यह होसकती है कि बिना वेग (हाजत) सवेरे सवेरे क्योंकर मल त्याग किया जावे? इसका समाधान यह है कि अभ्यास डालनेसे सवेरे अवश्य हाजत होती है। संसारका आचरण इसका नियम है। दूसरी बात यह है कि भोजनका नियत समय होनेसे स्वयं समयपर ही मल त्यागकी हाजत होती है। यदि किसी कारणसे ऐसा नहीं भी हो तो सोते समय एक टंक हड़ बालहरड़ चूर्ण या सोंफ जलके साथ लेनेसे सब उदरविकार शांत होकर सवेरे सवेरे यथोचित मल त्याग होजाता है। मल त्यागके समय स्थूल वस्त्रादिसे शिर अवश्य ढक रखना चाहिये, नहीं तो मलके दूषित परमाणु दिमागकी ओर जाते हैं, जिससे जुकाम, शिरमें दर्द तथा नेत्र रोग आदि होते हैं।

मल त्यागके पीछे अच्छे मलके हाथोंको खूब

शुद्ध करना चाहिये और फिर हाथों और पावोंको भी शुद्ध करना चाहिये, क्यों कि दुर्गन्ध तथा मैलके परमाणु भी मनुष्योंको अनेक रोगोंके होते हैं इसलिये इससे मनुष्योंको बहुत ही बचा रहना चाहिये। इसी कारण धर्मशास्त्रमें भी शुद्धिको बहुत उत्तम और अशुद्धिको अत्यंत निन्दित माना है।

प्रात:काल मलोत्सर्गके पीछे हाथ धोकर दंत धावन दतोन या मंजन करना चाहिये। दतोन चिटली अंगुली बराबर मोटी और १२ आंगुल लम्बी होनी चाहिये। यद्यपि अनेक वृक्षोंकी दतोनके अनेक गुण हैं परन्तु सामान्यतः इन वृक्षोंकी हो तो अच्छा है अर्थात मीठे वृक्षोंमें महुआ, कटुमें करंज, तिक्तमें नींबू और कषायमें खदिर उत्तम है। इनके सिवाय बबूल (कीकर)की दतोन तो श्रेष्ठ है। इससे दांत बहुत दृढ होते हैं और जो दांतों या मसूढोंमें दर्द हो तो पीपा वालेकी दतोन गुणकारी है। दंत धावन या मंजन करनेसे मुख और गलेके रोग तथा जिह्वा और दांतोंके मैलका नाश होता है। दंत धावनमें जिह्वा व गले हलकका मैल भी साफ करना चाहिये। फिर कुल्ला खूब करना चाहिये।

दातन करनेके पीछे शिरपर तेल मर्दन करना चाहिये। इससे शरीर दिव्य स्निग्ध व बलिष्ट होता है, शरीर मुलायम मजबूत होता है, दाद खुजली कुष्ट आदि त्वचाकी व्याधि नहीं होती, सरदी गरमी सहनेकी शक्ति बढ़ जाती है तथा मच्छर आदि विषेले जन्तुओंका विष और दुष्ट पवनका असर कम होता है और सर्व धातु पुष्ट होजाती है। वाग्भट्टमें कहा है कि—

नित्य तेल लेपन करना त्वचाकी भुर्री और थकान और वायुको नाश करता है, दृष्टिकी प्रसन्नता पुष्टि आयु और बलको बढ़ाता है, त्वचाको दृढ करता है। सर्दीके दिनोंमें नित्य और गर्मीके दिनोंमें चोथे आठवें दिन तेल लेपन उचित है तथा कफ और पित्त प्रकृतियोंकी अपेक्षा वातप्रकृति, रुखेसूखे मनुष्योंको इसकी विशेष आवश्यक्ता है। अमीरोंको सर्दीमें कस्तूरी आदि मसाले और गर्मीमें चम्बेलीका तेल मलना तथा गरीबोंको सदा सरसोंका तेल अच्छा है।

सारे शरीरकी अपेक्षा शिर चेहरा और हाथ पांवोंमें इसकी अधिक आवश्यक्ता है। तेल लेपनके पीछे किसी उबटनसे ऊपरकी चिकनाई गंधि और मैल दूर करना योग्य है। तेल और उबटन दोनों काम इस समयके शिक्षित जन स बुन हीसे लेते हैं। यदि वह पवित्र और शुद्ध उत्तम हो। तो शायद अच्छा हो। तेल और उबटनके पीछे स्नान करनेकी आवश्यक्ता होती है। परंतु किसी कारण तेल मर्दन-उबटन न किया जावे तो भी स्नान नित्य हमेशा करना चाहिये।

स्नानको सभी देशोंके लोग गुणदायक जानते हैं और मानते हैं, परन्तु शीत उष्णकी न्यूनाधिकताके कारण इसके समय तथा क्रियामें कहीं२ कुछ भेद पाया जाता है। जैसे गर्म देशोंमें दिनमें कई बार और साधारणमें नित्य एकबार और अति ठन्डे देशोंमें दूसरे तीसरे चोथे दिन स्नान

करना उचित है और हमारे इस क्षेत्रमें बिना किसी विशेष हेतु नित्य एक बार स्नान करना योग्य और उचित है। स्नानके गुण इस प्रकार हैं कि इससे खाज मैल थकान पसीना आलस्य तृषा और गर्मी तथा ग्लानि दूर होती है और जठराग्नि दीपन होती है तथा तेज बल आयु पराक्रम बढ़ता है। आलस्य जाता रहता है तथा भोजनमें रुचि होती है। हृदयका संताप शरीरकी दुर्गंध खून फिसादका नाश करता है। तथा शरीरसे रोम मार्ग और श्वास द्वारा जो एक भांति तरल पदार्थ गैस निकलता रहता है और बल घट जाता है वह भी स्नानसे बढ़ जाता है।

स्नानका समय।

आफ्रिकाके उष्ण देशोंमें मनुष्य: प्राय रात्रिमें स्नान करते हैं और वही उन्हे गुणदायक होता है और इग्लेण्ड रूस आदि ठंडे देशोंमें लोग मध्यान्तेर नहाते हैं परन्तु भारतवर्षमें प्रातःकाल स्नान करना ही उत्तम प्रतीत होता है।

कारण इसका यह है कि अत्यन्त गर्मीके समय पसीना आये हुए पर बलके पीते ही भोजनके पीछे आग या धूपसे तापनेके पश्चात परिश्रम करते ही तथा अति शीतमें स्नान करनेसे (रुधिरविकार अजीरण वातव्याधि आदि) अनेक रोग पैदा होजाते हैं।

और गर्म देशोंमें दिनमें गरमीकी अधिकतासे रूधिर पिघला (द्रव्य) और स्नायु तथा संधि मृदु (मुलायम) रहती है। इसलिये ऐसे समयमें स्नानसे रुधिरकी गतिमें गर्मीकी उतनी अधिकता नहीं रहती इसीसे अति उष्ण देशोंके लोग रात्रिमें नहाते हैं।

इसी प्रकार शीतल देशोंमें प्रातःकाल शीतकी अधिकतासे रूधिर जमा हुआ होता है सो स्नानसे और भी ठढ पहोंच कर उसकी गतिके रुक जानेका भय है और मध्यान्तःमें उतनी शीत नहीं रहती तथा उनकी जठराग्नि प्रबल होनेसे भोजन भी शीघ्र पच जाता है इसीसे मध्याह्न पीछे भोजन पच जानेपर ठंडे देश निवासियोंको स्नान करना सानुकूल कहा है।

और हमारे भारत देशमें न उतनी अधिक सरदी होती है कि जिससे प्रातःकाल नहानेसे रूधिरकी गति रूकनेका भय हो और न उतनी गरमी कि जिससे रात्रिमें स्नान करना ठीक हो किन्तु इस देशमें स्नानका मुख्य समय प्रभात है तथा भोजनसे प्रथम मध्यान्ह तक भी स्नान कर सकते हैं इसके अतिरिक्त और किसी समयमें स्नान करना (बिना किसी हेतुके) अनुचित है इसी कारण हमारे शास्त्रमें प्रातःकाल स्नान उत्तम माना है।

बहुधा हमारे देशीय भ्रातृगण भी अन्य देश निवासियोंकी देखादेखी दोपहर दिन चढ़े पश्चात् स्नान करना अच्छा समझते हैं परन्तु यह सर्वथा अनुचित और अनेक रोगोंका कारण है।

इसी कारण न अति गर्म जलसे स्नान करना भला है न अति ठन्डेसे। अत्यंत उष्ण जलसे स्नान करनेसे त्वचा निर्बल होती है। खून पतला पड़नेमें रक्त पित्त आदि खूनी विकार होते हैं तथा शरीरके जोड़ ढीले होते और

नाडिस्थ बढ़ना, जठराग्नि मन्द तथा प्रमेह और नेत्रोंकी ज्योति कम होती है और अति शीतल जलसे शरीर जम कर कई भांतिके रोग उत्पन्न होते हैं।

सारांश यह है कि ऐसे जलसे स्नान करना चाहिये जो न बहुत तेज गर्म हो न बहुत ठन्डा। अर्थात् स्वास्थ्य (तन्दुरस्त) मनुष्यको सदा सामान्यतः शरीरकी गरमाई जैसे जैसे जलसे स्नान श्रेष्ठ है। भावप्रकाशमें कहा है कि अशीते नांभसा स्नानम् अर्थात् जो जल ठन्डा न हो उससे स्नान करना सदा पथ्य है परंतु अशीत (जो ठन्डा न हो) से गरम एवं अधिक गरम न समझिये किन्तु न ठन्डा हो न गर्म हो।

हां प्रकृति विशेष तथा किसी रोगके कारण गरम या शीतल जलका उपयोग किया जावे तो यह बात पृथक् है देखो भाव प्रकाश—

शीतलपयसा स्नानं–रक्तपित्तप्रशांतिकृत् ।
तथोष्णेन तोयेन बल्यं वातकफापहम् ॥१॥

भावार्थ—रक्तपित्तके विकारोंमें ठन्डे जलसे स्नान करना तथा निर्बल और कफके रोगोंमें गरमसे स्नान करना चाहिये परन्तु फिर भी जलकी गरमाई और शरदीमें एकाएक बहुत अन्तर न करना चाहिये।

यह रीति ऋतुभेदसे भी उचित है। जैसे सर्दीमें गर्म और गर्मीमें ठन्डे जलसे रुचि होती है तो भी उसमें शीत व उष्णकी थोड़ी२ न्यूनाधिकता होनी चाहिये। अर्थात् ९८ वर्ष शरीरकी उष्णता है तो पांच या सात दरजे कम ज्यादा गरम सरद जल ले सकते हैं, अधिक ठन्डा या गरम उचित नहीं।

और गरम और ठन्डा पानी मिलाकर स्नान करना सर्वथा अनुचित है और इसी प्रकार किसी अंगपर गरम और किसीपर ठन्डा जल डालकर स्नान करना भी उचित नहीं है।

जैसा जलस्नानके लिये उचित है वे गुण हम लिख चुके हैं; अब केवल इतना ही विशेष लिखा जाता है कि जिस कूपका जल अधिक निकलता रहता है उसका जल उत्तम है।

स्नानके जलमें इतनी बातोंका और भी ध्यान रहै कि मैला गदला दुर्गंधियुक्त खारी बासी कड़वा चिकनाहटा तथा जिसमें कुछ वस्तु मिली हो या झाग या बुदबुदे अधिक हो ऐसे जल स्नानके लिये उचित नहीं तथा अत्यन्त गरम और अति ठंडा भी न हो, किसी प्रकार अपवित्र न होगया हो एवं कुष्टी आदि संक्रमक रोगीका उससे संपर्क न हुआ हो।

फलतः निर्मल मीठा ताजा और शुद्ध जल होना चाहिये। हमारे देशमें बहुधा मनुष्य खारी जलसे स्नान करते हैं यह भी अनुचित है कि खारी पानीमें एक प्रकारकी चिकनाई और मल तथा नमक और चूने आदिके परमाणु अधिक मिले होते हैं।

वे रोम मार्गसे शरीरमें घुसकर मायकूचिरको बिगाड़ते हैं तथा शरीरके ऊपर जम जाते हैं जिस रोम मार्ग रुककर पसीना और श्वास (एक प्रकारकी समझा) वायु जो रोमोंके रास्ते निकलती रहती है) यथावत नहीं निकलने पाते जिससे ज्वर, पित्ति श्याम (जुकाम) नजला आदि अनेक विकार उत्पन्न होते हैं।

खारी जलसे स्नान करनेवालोंका शरीर कभी स्वच्छ साफ नहीं होता, बल्कि सूक्ष्म मैल और चिपचिपाहट बना रहता है। शरीरकी उष्णताके समान जलसे स्नान करनेमें कुछ अधिक विचार नहीं पर गरम जलसे नहाना हो तो पहिले नीचेका अंग पावोंकी ओरसे भिगोना और ठन्डा जल हो तो पहले ऊपरके अंग मुंहकी तरफसे, परन्तु साधारण क्रिया यही है कि प्रथम शुद्ध हाथ पांव धोकर समस्त शरीर मलना; मलनेके पीछे अधिक जलसे खूब शरीर धोना पश्चात् देशी कपडे (तोलिये) से शरीर पोंछकर निर्मल धोती पहिरना उचित है।

यदि गर्म जलसे स्नान किया हो तो शीघ्रतासे एकाएकी बाहर ठन्डी पवनमें न जावे, इसी भांति ठन्डे जलसे नहाते ही तीव्र धूप, व अग्नि ताप तथा अति शीतसे बचे।

जिस २ अवसर पर स्नान करनेका निषेध है उसका वर्णन ऊपर कर आये हैं, परन्तु विशेष रूपसे कहा जाता है कि ज्वर अतिसार तथा अभिष्यन्दादि नेत्र रोग एव कर्ण रोग और वात तथा आध्मान अफारा पीनस जुकाम अजीर्ण और भोजन किये पीछे स्नान करना ठीक नहीं।

अब हम थोडासा अनुलेपनका भी वर्णन करते हैं। अनुलेपन अर्थात् चन्दन आदि लगानेके गुणोंसे अधीतक प्रायः और देशोंके लोग परिज्ञात नहीं हैं, हमारे पुरुषाओंने बडे युक्तिपूर्वक विचारसे इसका आचार किया था। इससे अनुलेपनमें २ बडे गुण हैं, एक तो सुगंधित द्रव्योंके परमाणुओंसे मलीनकी दुर्गन्ध और २ विकारसे दिमागको हानि नहीं पहुंचती, दूसरे मस्तक आदि ऐसे सूक्ष्म स्थान जिनमें थोडा बाहरका शीत उष्ण वायु हानि पहुंचा सकते हैं, उन्हें गर्मीकी धूप लू और जाडेकी ठन्डी पवन और हिम ओस और बरफके अणु तथा पशुओंकी विषैली वायुसे यह लेपन बहुत ही बचाता है।

सरदीमें केशर चन्दनमें मिलाकर तिलक लगाना और गरमीमें चन्दन कपूर, वर्षाऋतुमें केशर कपूर चन्दन तीनों मिला करके अनुलेपन (तिलक) के स्थान मस्तक बांहु मूंह और हृदय है पर सबसे मुख्य मस्तक है जिससे धूप हिम वृष्टिसे बचा रहनेके लिये अंग्रेज लोग भी टोपीका किनारा तीन तीन चार चार अंगुल अगाडी बढा रखते हैं।

जिन २ स्थानोंपर स्नान करना वर्जित है प्रायः उन्हीं मौकोंमें तैलाभ्यंग और अनुलेपन भी वर्जित ही समझना। स्नान करनेके पीछे तिलक लगाना और तिलक लगानेके पीछे आंखोंमें अंजन डालना चाहिये, जिसके लगानेसे नेत्रोंकी लाल मल दाह आदि उपाधि नष्ट होती है, नेत्र शोभायमान रहते हैं और धूपकी चमक लू तेज पवन सहनकी शक्ति नेत्रोंमें अधिक होजाती है यहांतकके नेत्रोंमें कोई विकार ही न हो इससे नित्य अंजन लगाना उचित है।

यद्यपि नेत्रोंके लिये चश्मा लगाना कार्यकारी है परन्तु वह अंजनकी बराबरी नहीं कर सकता। अंजनसे नेत्रोंकी सर्व विकार नष्ट होकर दृष्टि सर्वकाल एकसी बनी रहती है।

भगवान महावीरका जीवन ।

[लेखकः—डा० भोलानाथ जैन (दरक्शां) मुख्तार-बुलन्दशहर ।]

ईसासे पूर्व छठवीं शताब्दिमें पूर्वीय भारत स्वर्गधाम बना हुआ था। यहां प्रायः इक्ष्वाकु वंशीय क्षत्रियोंका निवास था। इनमें विशेषतः लिच्छवी वशिष्ट गोत्रजोंकी एक विख्यात, प्रतापवान, समृद्धशाली और वीर्यसम्पन्न जाति थी। उसके गार्हस्थ्य व्यवहार, शासनप्रणाली और धर्माचरण अत्यन्त श्रेष्ठ एवं उत्कृष्ट थे।

वर्तमानका अवध प्रान्त जो सदानीर (सरयू) नदीके पश्चिममें उपस्थित है उस समय कौशल देश कहलाता था। जिसकी राजधानी श्रावस्ती (अयुध्या) में थी। सरयूके पूर्व दशावर्ती गङ्गा नदीका उत्तरीय भाग विदेह और दक्षिणीय भाग मगधदेश विख्यात था। जिनके राजस्थान क्रमशः मिथिलापुरी और राजगृहीमें थे। इस समय उपरोक्त विदेह और मगध दोनों देशोंकी संयुक्ति होकर एक विहार प्रान्त बन गया है।

इन मुख्य देशोंके अन्तर्गत कुछ स्वाधीन प्रजातंत्र भी प्रवाहित था और वज्जियन राजसंघको उसका स्वतंत्र आधिपतित्व प्राप्त था।

उस राजसंघकी शासनप्रणाली आधुनिक पार्लीमेंटरी रूपसे थी अर्थात् एक नियत सभागार (विशाल भवन) में बृहद् राजसभा एकत्रित हुवा करती थी, जिसके द्वारा अन्यान्य विषयक नियम प्रस्तावरूपसे प्रस्तुत होकर व्यवहृत होते थे। प्रत्येक गणके अधिपति, संरक्षक अथवा मुख्यतम व्यक्तिको राजाकी उपाधि साधारणतः दीजाती थी। जैसे आजकल महान राज सदस्योंको आनरेबिल और लार्ड आदिकी उपाधि स्वतः प्राप्त होती है।

उस राजसभामें एक सर्वमान्य, प्रभावशाली, वाचाल तथा नीतिनिपुण व्यक्तिको प्रस्तावादि प्रस्तुत करनेका अधिकार होता था, जिसे उस समयकी प्राकृत भाषामें नाति (ज्ञात्रि) नेता या नाथ कहते थे। शायद यह पद आजकलके सेक्रेटरी आफ स्टेटके तुल्य था, परन्तु ऐसा मालूम होता है कि उस समय इस पदाधिकारीका निर्वाचन आजकलकी भांति कुछ नियत समयके लिये नहीं किन्तु जीवनभरके लिये हुवा करता था।

लिच्छवी गणराजके शक्तिशाली वैशाली मण्डल (वर्तमान जिलेके सदृश्य देश भाग)के शासक राजा चेटक थे और वैशालीके निकटवर्ती मण्डलके अध्यक्ष राजा सिद्धार्थ थे जिनकी राजधानी कुण्डलपुर (कुण्डग्राम) में थी। आवश्यकीय सर्वगुण सम्पन्न होनेके कारण यही राजा सिद्धार्थ बृहद् राजसभाके नाति (राज्यमंत्री) भी नियुक्त थे।

वैशाली नरेश राजा चेटककी ज्येष्ठा पुत्री

त्रिशला (उपनाम प्रियकारिणी) का पाणिग्रहण इन्हीं धर्मपरायण कुण्डलपुराधिपति राजा सिद्धार्थके साथ हुआ था। और इन्हीं महारानी त्रिशलाने चैत्र शुक्ला त्रयोदशीको सोमवारकी रात्रिके अंत समय जबकि चंद्रमा उत्तरा फाल्गुणी नक्षत्रपर विद्यमान था भगवान महावीरका आनन्दपूर्वक प्रसव किया था। तात्पर्य—भगवान महावीर लिच्छवीगण नायक नाति पदभूषण कुण्डलपुर नरेश श्रीमान राजा सिद्धार्थके सपुत्र और सौम्य राजकुमार थे। जो अपने पिताके राजसी विरुदकी अपेक्षासे बौद्धशास्त्रोंमें प्रायः नातिपुत्त और जैनशास्त्रोंमें नाथवंशी व्यक्त किये गये हैं।

संसारसृष्टिका यह नियम है कि प्रत्येक जीवात्मा अपने कर्मजनित भावों तथा क्रियाओंके आधीन जगत् गहन वनमें अनादिकालसे भ्रमण कररहा है और जबतक सर्व प्रकारके कर्मावरणसे स्वच्छ होकर मुक्त नहीं होजाता इसी भांति आवागमनके चक्रमें पड़ा हुआ जीवनमरणके आताप सहता रहेगा।

इसी सिद्धान्तके अनुसार भगवान महावीरका जीव भी अनादिसे भ्रमण भंवरमें व्यस्त था परन्तु "होनहार बिरवानके, होत चीकने पात" के चरितार्थ उनके आत्माने उन्नतशील होकर अपने पूर्वभवोंमें पुण्य कृतियों और शुभ भावनाओं द्वारा ऐसे संस्कार संचित कर लिये थे कि इस चरम शरीरमें आकर उन्हें बाल्यावस्थासे ही तत्वनिर्णय तथा अध्यात्ममार्गसे हार्दिक अभिरुचि थी। उनको अकम्प विश्वास था कि जिस अनन्त शांतिकी प्रत्येक जीवात्माको प्रतिक्षण अभिलाषा है उसकी प्राप्ति प्रवृत्ति मार्ग ग्रहण करनेसे न अबतक हुई न भविष्यमें होसकती है। विषयवासनाओंमें संलग्न रहना तथा सांसारिक विभवमें लोलुप होना परिभ्रमणका ही कारण है। वास्तवमें त्यागवृत्तिसे ही इच्छित परमानंद प्राप्त हो सकेगा इसलिये वैरागभाव धारण करके निजस्वरूपका चिंतन तथा आत्माकी शुद्धावस्थाका अनुभव करना ही मानवीय जीवनका मुख्योद्देश्य है।

इसी प्रकारके आत्मिक उद्गारोंमें अहर्निश व्यग्र रहते हुये उन्होंने व्रती श्रावककी अवस्थामें अपनी मूल्यवान आयुके प्रथम ३० वर्ष व्यतीत किये। इन्द्रियजन्य सुखोंकी अनित्यतापर विचार करके उन्होंने अपने प्रेम प्रेरित माता पिताके आग्रहसे भी अपना वैवाहिक संस्कार स्वीकार नहीं किया और वह आजन्म ब्रह्मचारी रहे।

३० वर्षकी पूर्ण यौवन अवस्थामें राज्य सम्पदा और गृह भोगोंको परित्याग करके स्वयं दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली और वनखण्डमें जाकर तपस्या करने लगे। संयम तथा मुनिव्रतका पालन करना, उपसर्ग तथा परीषहोंका जीतना, कायोत्सर्ग तथा उपवासादिका धारना, द्रव्य स्वरूप तथा आत्मध्यानमें तल्लीन रहना आदि रूपसे आत्मोन्नतिके लिये द्वादश वर्ष पर्यंत मौन व्रत सहित दुर्द्धर तपश्चरण किया।

भगवानने छद्मस्थ अवस्थामें योग साधन करते हुये भारतवर्षके विविध स्थानोंमें परिभ्रमण किया। जब वह जम्भक ग्रामके निकट ऋजुकूला नदीके तीर शालि वृक्षके नीचे अपराह्न समयमें

शुक्लध्यान धारण किये हुये आत्मध्यानमें मग्न विराजमान थे तो ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, अन्तराय और मोहनी इन चार घातिया कर्मोंका क्षयकर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया जिसके द्वारा लोकालोकके समस्त पदार्थ यथास्थित अपनी भूत भविष्यत् वर्तमान पर्यायों सहित उनके आत्मज्ञानमें युगपत् प्रतिबिम्बित हो गये।

धार्मिक क्रियाओंकी अपेक्षा उस समय भारतवर्ष अन्धकाराच्छन्न होरहा था। यों तो यह देश सदासे ही अनेक छोटे मोटे मत मतान्तरोंका विवाद स्थल रहा है, परन्तु उस समय जैनधर्म और वैदिकधर्म दो ही उल्लेखनीय मत यहां प्रचलित थे।

यद्यपि जैनधर्ममें बाह्य आडम्बर क्रियाओंका समावेश बहुत कुछ होगया था, तौभी उसमें धार्मिक दृष्टिसे या सैद्धांतिक अपेक्षासे कोई विपरीतता नहीं आई थी। परन्तु वैदिक धर्मकी परिस्थिति अत्यन्त शोचनीय होगई थी। संस्कृत विद्याके ठेकेदार और कर्मकाण्डके प्रतिनिधि ब्राह्मणोंने स्वार्थवश होकर प्रचलित वेदमंत्रके स्वरूपानुसार अर्थ बदलकर या अपने कल्पित नवीन ग्रन्थ बनाकर धार्मिक क्रियाओंको अपनी आजीविकाका साधन बना लिया था। इतना ही नहीं, वरन् अन्य अनेक अधर्मात्मक प्रथा रचकर उस समयकी धर्म पराङ्मुख विषयलोलुप इस मूढ जनताको भ्रष्ट करनेका प्रयत्न कर लिया था। अर्थात् वैदिक सभ्यताके उन्नत समाज ब्राह्मणोंके मायावी चालोंके वशवर्ती बने हुये थे। इस नवीन धर्मप्रणालीके अनुयायियोंमें मद्य, मांस और व्यभिचारका अधिक प्रयोग होगया था। तथा उनके मक्कार गुरुओंने उनको पंच मकारका निम्न श्लोक कण्ठस्थ करा दिया था।

मद्यं मांसञ्च मीनञ्च, मुद्रा मैथुनमेव च।
एते पंच मकाराःस्युर्मोक्षदा हि युगे युगे॥

अर्थात्—मद्य, मांस, मछली, मुद्रा (रुपया) और मैथुन इन पांच मकारोंका सेवन ही युग२ में मोक्षका दाता है।

इसी प्रकारके धर्मनाशक तथा व्यभिचार प्रसारक अनेक श्लोक गढ़कर उस समयके नामधारी धर्मगुरुओंने घोर अन्धकार फैला दिया था। देवी देवताओंकी संख्या भी अनुमान परिमितको लांघ गई थी। देवस्थानोंमें वैदिक यज्ञके नामसे मूक और निर्दोष पशुओंकी बलि हर्षपूर्वक दीजाती थी। इन कल्पित देवताओंको सुराधारासे तृप्त और अन्य प्रकारसे प्रसन्न करनेसे कामनापूर्तिका विश्वास किया जाता था। देवार्पित मद्य, मांसको महाप्रसादके नामसे सप्रेम ग्रहण करके पुरोहित और यजमान तथा उनके मित्रकलत्रादि अपनेको कृतकृत्य समझते थे। वास्तविक वैदिक धर्मके अनुयायी जो अल्पतम रह गये थे इस पापात्मक कर्मकाण्डको घृणाकी दृष्टिसे देखते थे और इस नवीन पाखण्ड मतको आत्मोन्नतिके मार्गसे नितांत विपर्यय होनेके कारण वाम मार्ग कहते थे।

भगवान् महावीरने सर्वज्ञ अवस्थाको प्राप्त होकर जब अहिंसाधर्मका प्रचार किया तो सुरापान और मांस भक्षणका एकदम निराकरण

होगया। भगवानके इस महत्त्वशाली उपदेशसे प्रभावित होकर कर्मकाण्डी ब्राह्मणोंने भी भगवत् प्रचारित "अहिंसा परमो धर्मः" सिद्धान्तको "आत्मवत् सर्वभूतेषु" कहकर स्वीकार कर लिया।

भारतके सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय लोकमान्य तिलकने कहा है कि जैनियोंके "अहिंसा परमो धर्मः" इस उदार सिद्धांतने ब्राह्मण धर्मपर चिरस्मरणीय छाप मारी है। पूर्वकालमें यज्ञके लिये असंख्य पशु हिंसा होती थी, जिसके प्रमाण मेघदूत आदि अनेक काव्य ग्रन्थों तथा अन्य ग्रन्थोंमें मिलते हैं। परन्तु इस घोर हिंसाका ब्राह्मण धर्मसे विदाईका श्रेय महावीर प्रणीत जैनधर्मके ही हिस्सेमें है।"

श्री० वेंकटेश नारायण त्रिपाठी M. A. ने इस विषयको और भी स्पष्ट तथा विस्तारपूर्वक वर्णन किया है जिसका सारांश यह है—

"जब यहां (भारतवर्षमें) ब्राह्मणवाद और कर्मकाण्डका सार्वभौमिक राज्य था। यज्ञप्रथाका प्रभाव समाजको बुरी तरह आच्छादित किये हुये था, याज्ञिक पशुहत्याके कारण मनुष्योंके हृदय कठोर और निर्दय होते जारहे थे, भारतवासी मानवीय जीवनका महत्व और आध्यात्मिक विचारका गौरव भूलते जारहे थे, मनुष्योंमें जड़ पदार्थोंकी महिमा अधिक फैल गई थी, लोगोंको विश्वास था कि पशुयज्ञसे सर्वफल प्राप्त होजाता है तथा यज्ञके मांस दुर्गन्धमिश्रित धूमसे स्वर्गकी प्रत्येक वासना उत्पन्न होजाती परन्तु आत्मसाक्षी ब्राह्मणोंके बाह्य आडम्बरों तथा पाखण्डवादके भारी भारके कारण कोईभी जनता इतना ही वह धर्मोका लाभ उठा सकता था। साधारण परिस्थितिके लोगोंके मनमें यह इच्छा कि धर्म प्राप्त करना संभव न था तो आत्मा अनन्त विचारधारा कर्मकाण्डके विरुद्ध बड़े जोरशोर लोग आत्म शांतिके लिये अन्यत्र मार्ग खोजने लगे। इसी अवसर पर भगवान महावीरने जन्म लेकर उनके मनस्तापको शांत किया"।

"उस समय हठयोगके साधकोंका विश्वास था कि कठिन तपस्यासे ऋद्धि सिद्धि प्राप्त होजाती है। शरीरको हानि पहुंचानेसे ही आत्माका विकास होता है, परन्तु आचार पूर्ण आत्माओंको इस प्रकारकी तपश्चर्यासे शांति न मिली तो इन लोगोंने प्रचलित प्रणालीकी त्रुटियों और धार्मिक कुप्रथाओंका प्रचार किया, जिससे सर्वसाधारणके हृदयोंसे प्रचलित धर्मकी महिमा और देवी देवताओंकी श्रद्धा उठने लगी। इसके पीछे क्षेत्र तो तैयार होगया परन्तु तीन लोकोंकी लोग स्वीकार कर रहे थे कि इतनेमें भगवान् महावीर अवतरित हुये और उन्होंने आत्माका यथार्थरूप और धर्मका महत्व बताया, जिससे वह सन्मार्गमें प्रवृत्त हुये।"

पूज्य स्वामी दयानन्दके गुरु महर्षि विरजानन्द वर्णन जिन्होंने हिन्दू, आर्य, बौद्ध, जैन धर्मोका मननपूर्वक आलोचन किया है, अपना विचार प्रकट करते हैं कि आर्यावर्त्तमें यदि भगवान् महावीरके उपदेशसे धार्मिक आन्दोलन उपस्थित हुआ तो वह प्रभाव, बौद्धसे पूर्व और पश्चात् लोग और दुराचार कार्योंमें उपयोग करने लगे।

गौतम सौगतको भी उसके शिष्योंने भगवान वीरकी देखादेखी बुद्ध नामसे प्रसिद्ध किया परन्तु पूर्ण ज्ञानी और अध्यात्मवादी होनेके कारण भगवान महावीर ही यथार्थ बुद्ध थे।

बौद्धधर्मके संस्थापक सौगत बुद्ध अवश्य उनसे भिन्न थे परंतु वह बुद्ध जिनको हिन्दुओंने विष्णुका २१ वां अवतार माना है सौगत बुद्ध नहीं था बल्कि महावीर बुद्ध था। यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, जब कि जैन धर्मके आदि संस्थापक श्री ऋषभदेवको भी हिन्दुओंने विष्णुका अवतार माना है इसी प्रकार संभव है कि महावीरके आध्यात्मिक उपदेशसे प्रभावित होकर भगवान महावीरको भी विष्णुका अवतार मान लिया हो।

गौतम बुद्धके स्थापित अनात्मवाद और क्षणिक सिद्धांत पर हिन्दुओंको उस समय भी आशंकायें थीं और बादमें रहीं, फिर हिंदू इतने मूर्ख न थे कि ऐसे व्यक्तिको जिसके सिद्धांत और चारित्रसे किसी अंशमें वे सहमत न थे अपने इष्टदेव विष्णु भगवानका अवतार मान् लेते। गौतम बुद्ध अपनी प्रारम्भिक त्याग अवस्थामें एक जैन मुनि पहिताश्रवसे दीक्षित हुये परन्तु जब उन्हें ७ वर्षतक कठिन तपस्या करने पर भी उस आर्हत ज्ञानकी प्राप्ति न हुई जिसका चमत्कार वह अपनी आंखसे भगवान महावीरमें देख चुके थे। तो हताश होकर उन्होंने जिनेंद्र प्रणीत मुनि तपश्चर्या छोड़ दी और यह सिद्धांत स्थापित किया कि "दुःख बुरा है, इससे बचना चाहिये"। क्षतिमें दुःख होता है, तप भी एक प्रकारकी क्षति है, इसलिये दुःखका कारण है। इसके द्वारा उस प्रभु और उत्कृष्ट आर्हत पूर्ण ज्ञानकी जो मानवी बुद्धिसे बाहर है प्राप्ति कदापि नहीं होसकती। इसपर गौतम मुनिके शिष्य उन्हें गुरुलोभके भावसे बुद्ध कहने लगे जैसा कि उस समय जनता भगवान वीरको उनकी सर्वज्ञतासे चकित होकर और प्रभावित होकर प्रायः कहती थी। अंतमें महात्मा बुद्धने भी अहिंसावादको "सर्वभूतानि" सूत्र देकर प्रचरित किया तथा अनात्म और क्षणिकवादकी स्थापना करते हुये भी महावीर प्रणीत कर्म सिद्धांतको रुचिकर प्रतीत किया और भगवान् महावीरके इस सिद्धांतको भी कि ईश्वर नामका कोई विशेष व्यक्ति जगत्कर्ता, कर्म फल दाता, प्रचलित उपासना और कर्मकांडका निर्माता नहीं है, अपने बौद्ध मतका अंग बना लिया। भगवान् महावीरने सर्वज्ञ होनेके पश्चात् अन्यान्य देशोंमें विहार करते हुये ३० वर्ष पर्यन्त प्रभावशाली महत्त्वपूर्ण तथा सर्व हितकारी उपदेश दिया। और अन्तमें कार्तिक कृष्ण अमावास्याको प्रातः-काल स्वाति नक्षत्रमें श्री पावापुरीके निकट उपवनसे परम निर्वाणपदको प्राप्त किया।

उसी दिन भगवानके मुख्य गणधर श्री गौतमस्वामीको केवलज्ञान लक्ष्मीकी उपलब्धि हुई। इन दोनों भव्य प्रसंगोंमें देवोंने महान् उत्सव मनाया। तथा मगधवासी जनताने अपने आनंदका अनेक प्रकारसे प्रकाश किया। आहार मिष्टान्न वितीर्ण किया। श्रीमानोंने भावसे भरे हाट बाजार उन लोगोंके आदरसत्कारके लिये अर्पण

कर दिये। इस महान् उत्सवमें दूरवर्ती स्थानोंसे आकर लोग संमिलित हुये थे, गृह वस्तिकाओं हाट, बाजारों, गलीकूचों, देवालय, धर्मशालाओं आदि समस्त स्थानोंको दीपोंकी पंक्तियोंसे जग-मगा दिया। और इन कार्योंसे निवृत्त होकर रात्रिको निश्चित समयपर घर२ में स्त्री पुरुषोंने शांत हृदयसे भगवान् महावीरका ध्यान पूजन आदि किया। समोशरणका चित्र घरोंकी भीतों-पर खींचकर भगवानका आह्वानन और गौतम गणेशकी ज्ञान लक्ष्मीका पूजन किया। कुछ भगवानके भक्तोंका ऐसा विचार भी है कि जिस समय वीर प्रभुकी परमोत्कृष्ट दिव्य आत्मा अव-शेष चार अघातिया कर्मों—वेदनी, नाम, गोत्र और आयुका नाश करके लोक शिखरकी ओर स्वच्छ आकाशमें ऊर्ध्व गमन कर रही थी तो उस समय कृष्ण पक्षकी रात्रिका अन्धकार होते हुये भी एक अपूर्व देदीप्यमान प्रकाश चहु दि शामें फैल गया था, समस्त लोकमें एक अद्भुत चमत्कार दृष्टिगोचर हुवा था। अतः उस ज्यो-तिर्मान दृश्यको हृदयांकित करते हुये लोगोंने भगवानकी भक्तिसे प्रेरित तथा उनके निर्वाण लाभसे आमोदित होकर उस दिन बड़े आनंद और समारोहके साथ दीपावलीका उत्सव मनाया था।

कारण कुछ हो, परन्तु इसमें तनिक संदेह नहीं कि भगवान वीरनाथका व्यक्तित्व उपरोक्त उद्धरणोंकी साक्षी होते हुये इतना सर्व प्रिय, सर्वमान्य अवश्य था कि उनके निर्वाणोपलक्षका शुभ स्मारक इस आनन्द विधानके रूपमें स्थापित किया गया और उनके मुक्तिलाभकी स्मृति दीपावलीके नामसे आजतक भारत वर्षमें एक आवश्यक अनिवार्य जातीय त्योहारके रूपमें प्रति वर्ष यथासमय आनंद और हर्षपूर्वक मनाई जाती है।

भगवान महावीरका पूर्ण ब्रह्मचर्य, उत्कृष्ट त्याग, धर्मनिष्ठाचरण, शांतिमय धर्मोपदेश तथा स्वतंत्रक्रियात्मक अहिंसावादका द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक निरूपण उनकी जगत् व्यापक प्र-ख्याति और लोक मान्यताका मूल कारण है। और जबतक भारतवासियोंके चित्त सागरमें अहिंसा और अध्यात्मकी हिलोरें आत्मगुण नीरको स्वच्छ करती रहेंगी, विश्वप्रेमी जगदो-पकारी महावीर भगवानके प्रति कृतज्ञताका चिन्ह भी पृथ्वी पृष्ठपर चिरस्मरणीय रूपसे अवश्य अंकित रहेगा।

जैन समाजमें दीपावलीके उपलक्षमें महावीर भगवानका लड्डू चढ़ानेकी प्रथा प्रचलित है परन्तु लड्डू द्वारा निर्वाण पूजा कभी दीपावली उत्सवसे पूर्व प्रातःसमय और कभी उसके पश्चात् प्रतिपदाके प्रातःकालमें होती है। उसका कोई निश्चय नहीं। शायद पंडित जन यह देखकर समय निश्चय करते होंगे कि जिस दिनके प्रातः समय अमावस्या हो उसी दिन लड्डू विधान किया जाय, चाहे उस प्रातः समयके बादका दिन प्रतिपदा हो चाहे अमावस्या। परन्तु यह मान्यता भ्रम मूलक है। क्योंकि जिस दिनके प्रातःकालमें भगवानका निर्वाण हुवा उसके ही सायंकालमें दीपावली उत्सव मनाया गया। इसलिये निश्चय यह करना चाहिये कि दीपा-

की उत्सव किया जाकरके मनाया जावेगा और रात्रिके पूर्व प्रातः समय निर्वाण पूजा होनी चाहिये। अन्यथा यह धारणा अयथार्थ होजायगी कि निर्वाण होनेके उपलक्ष्यमें दीपावली मनाई जाती है जैसा कि कमी२ दीपावलीके बाद निर्वाण उत्सव किया जाता है।

इसके अतिरिक्त अपभ्रंश कविकृत महावीर चरित्रमें भगवानके मोक्षका समय कार्तिक वदी १४की रात्रिका अन्त समय दिया है। जो दीपावलीकी वर्तमान प्रथाको देखते हुये अधिक ठीक जान पड़ता है। भगवान मुक्ति जानेसे दो दिन पूर्वसे योगनिरोध कर ध्यानस्थ आसन आरूढ़ होगये थे और संभवतः उससे १—२ दिन पूर्व सप्तमी व अष्टमीको उनके समोशरणकी रचना विघटित होगई थी। यही वह दिन है जो पूर्वीय और उत्तरीय भारतमें अहोय आठ-मीके नामसे इस प्रकार मनाया जाता है कि स्त्रियां अपने घरोंमें एकांत स्थानोंकी भीतोंपर अनेक चित्र बनाती हैं। अन्यान्य प्रकारसे उनकी पूजा करती हैं और दिनभर उपवास करती हैं। यह सब क्रियायें समोशरणके विघटनकी सूचक हैं। और नामसे भी यही ज्ञात होता है। क्योंकि अहोयका अर्थ है न होनेवाला अर्थात् समोशरणकी रचना इस अवसर्पिणीमें अब होनेवाली नहीं। शायद इसी शोकमें उपवास किया जाता है।

हमारे विचारसे अहोय आठमी भी इस बातकी साक्षी है कि दीपावली उत्सव भगवानकी मोक्ष प्राप्तिका ही स्मारक है, और कुछ नहीं।

जैनियोंको प्रयत्न करना चाहिये कि समोश-रणका चित्र सरल और समीचीन बनाया जाय या समोशरणके छपे हुये चित्र घरोंमें एकांत स्थानपर लटकाये जावें और उनके समक्ष हाट हटरी जो रक्खी जावे और उनमें खील बताशे मेवा पकवानादि भरे जावें। वह स्वयं न खाये जावें। बल्कि दूसरोंको वितीर्ण किये जावें। भगवानका पूजनादि विधिपूर्वक करके समस्त स्त्री पुरुष रात्रिको भगवानका ध्यान करें। मिष्टान्नादि खावें और हर्ष मनावें। उपरोक्त कथनके अनुसार दीपावली उत्सव मनाना और उसका सार्थक रूप देना हम सबका कर्तव्य है। इस महान पर्वमें जो कुप्रथायें रूढ़िवश प्रवेश कर गई हैं उनको दूर करें। ॐ शांति।

समवशरणका नकशा।

यह अनुपम सुन्दर और तिरंगी बड़ा चित्र समवशरणका अच्छा ज्ञान करा देता है। मंदिरों व मकानोंमें जड़ाकर रखने योग्य है। मू० ॥)

राष्ट्रीय सत्याग्रह-संग्राममें जेल जानेवाले दि० जैन वीर।



सेठ छोटालाल गांधी।



छगनलाल उ० सरैया।



साकेरचंद म० सरैया।



(१) डी० आर० पलसे। (२) पद्माकर रणदीव। (३) रंगनाथ रणदीव।



बिंद्रावन इमलया।



वैद्यभू० पं० मथुराप्रसाद।



केशवलाल व० लिंबासी।

राष्ट्रीय सत्याग्रह-संग्राममें जेल जानेवाले दि० जैन वीर–



सुन्दरलाल पावार।



दीपचन्द खंडेलवाल।



शान्तिलाल खंडेलवाल।



विश्वम्भरदास गार्गीय।



हरिश्चंद्र पलसपुरे–काटोल।



चांदबिहारीलाल, अमरोहा।



बुद्धसेन अमरोहा।



कल्याणकुमार "शशि"।



पं० देवेन्द्रकुमार, इन्दौर।

प्रेत भोजका भक्त और आशापर पानी।

पं० परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ—सूरत।

रामलालके मरनेके बाद उनकी धर्मपत्नी विधवा रामदुलारी हृदयविदारक रुदन करती हुई घरमें बैठी थी। माताको इस प्रकार प्रातःकालसे रोता हुआ देखकर उसका नव वर्षका इकलौता पुत्र नारायण माताकी गोदमें शिर रखकर रोरहा था। अभी विधवा हुये पांच दिन ही हुये थे, इसलिये पति वियोगकी चोट रामदुलारीको ताजी ही थी। इसपर भी पतिके मरनेके बाद कारज (नुक्ता) करनेकी चिंताने दुःखको द्विगुणित कर दिया। शोकसागरमें मग्न रामदुलारीको पड़ोसी-जन समझाने लगे कि—"बाई! अब रोनेसे क्या होनेवाला है? अपने पतिका कारज सुधारो। रोनेसे तो व्यर्थमें उनकी आत्मा दुखी होगी, और तुम्हारी भी इसमें देह बिगड़ती है।" इत्यादि कहकर लोग जलेपर नमक छिड़कने लगे। इस बिचारीको कोई आश्वासन देनेवाला नहीं था, उल्टा दुःखमें वृद्धि करनेवाला सब कोई था।

"नारायण! तेरी मांने यह क्या ढोंग रचा है? क्या तेरे बापकी मौत बिगाड़ना है? कल हम कह गये थे सो उसपर क्या विचार किया? ऐसे रोनेसे कोई देनेको नहीं आजायगा। नाहक जातिमें चर्चा चलेगी।" इसप्रकार माधव काकाने आते ही सुनाना शुरू करदी।

माधव काका सारी जातिके काका थे। छोटे बड़े सब उन्हें काका कहते थे। छोटेका मरण हो या युवकका और उसके घरकी स्थिति चाहे खराब हो, तौभी आप समझा बुझा कर, डांट डपट और धमका कर कारज कराके ही रहते थे। और ऐसे प्रेत भोजनसे अपने उदर भरनेकी माधव काकाको आदत ही पड़ गई थी। इस काममें आपका पहिला नंबर था।

रामदुलारी रोती हुई बोली—"आप तो सबसे बड़े हैं, जातिमें आपका किया हुआ होता है और ऐसे प्रसंगपर आप ही सबको समझाते बुझाते हो। मेरी स्थिति आपसे कुछ छिपी हुई नहीं है। मेरा आधार गया! नारायण अभी बालक है। घरमें खानेको ही मुसीबत है! अब क्या करना चाहिये सो कुछ सूझता नहीं है।"

माधवकाका—"तेरई (नुक्ता) करनेका समय बारबार नहीं आता, तुम्हारा पति क्या तुम्हारे पास मांगनेको आयेगा? गहना बेंचो, मकान बेचो या जैसा सूझे सो करो, परन्तु कारज किये बिना कहीं चल सकता है? क्या घरकी आबरू खोना है? तेरे पास तो दो पैसा भी हैं, नहीं होतें तो लोग कर्ज करके भी जाति जीमन कराते हैं।"

रामदुलारी खुलासा करती हुई बोली—"आपको व्यर्थकी शंका है, छः छः महीना तक तो वे बीमार रहे। उनकी दवा दारूमें जो कुछ था सो सब लग गया। अन्तमें गहने भी बेच डाले। मनमें थी कि अच्छे होकर फिर कमावेंगे। जीते रहते तो सब कुछ था, मगर विधाताने

घोर निर्दयतासे काम लिया। रहनेके घरके सिवाय हमारे पास दूसरा कुछ भी नहीं रहा है। ”

माधवकाका—“ अरे मकान तो है न ! तो फिर क्या फिकर है ? मकान रखकर कारजके लिये रुपया मैं दिलवा दूंगा। रामलालके द्वारा बनवाया गया मकान उसके काम न आवे तो किसके काम आयगा ? तुझे एक लड़केका पेट भरना है उसमें क्या ? मजूरी करके खाना, परन्तु कारज नहीं किया तो इज्जत सारी मिट्टीमें मिल जावेगी। इससे तो गांवमें मुह नहीं दिखाया जावेगा और फिर रामलालके जीवको भी असंतोष होगा। अब दिन भी तो थोड़े रहे हैं, इसलिये जल्दी तैयारी करना पड़ेगी। मैं आज ही सेठ लक्ष्मीनारायणसे मिलकर पूछ लेता हूं। ”

रामलाल एक गरीब गृहस्थ थे। मामूली दूकान थी। घरमें रामदुलारी फुरसतके समय बीड़ी बनाती थी, रामलाल दिनभर दुकानपर परिश्रम करके चार पैसे कमाते और संतोषपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे। नारायण प्रतिदिन स्कूल जाता था। धीरे २ दुकानका कारोबार बढ़ चला और कुछ पैसे हाथमें आगये। इसलिये एक निजी मकान खरीद लिया तथा कुछ दिनोंमें ही रामदुलारीके लिये थोड़ेसे गहने भी बनवा दिये। परन्तु दैव इस गरीब एवं सुखी जोड़ाको न देख सका, करीब दो माह ही इस मकानमें रहा होगा कि रामलालको प्राणघातक क्षयरोगने घेर लिया। दो महीनेमें तो उसका शरीर एकदम क्षीण होगया। अब दुकानपर बैठना अशक्य होगया और वह घरके बिछौनेमें ही पड़ा रहता। नारायणको स्कूल छुड़ाकर दुकानपर बैठानेका विचार किया, मगर रामदुलारीने यह बात अस्वीकार कर दुकान उतनेके लिये बंद रखनेका निश्चय किया जबतक कि पति स्वस्थ न होजावे।

रामलालका रोग बढ़ता ही गया। अनेक वैद्य और डाक्टरोंकी दवा कराई। लेकिन कुछ लाभ न हुआ। आखिरकार पीर फकीर और गंडा तावीज कराना प्रारम्भ किये। मगर कुछ भी असर नहीं हुआ। रामदुलारीने पैसेकी तंगीके कारण दुकानका सामान कौड़ीके मोल बेच डाला, और इस आशासे कि पति अच्छा होजावेगा, फिर कमाकर सब बन जावेगा, अपने शरीरपरके गहने भी बेच डाले। बहुत दिनों तक बीमारी रहनेसे जब घरमें कुछ भी नहीं रहा, तब इस खाली घरको उसका देहधारी आत्मा भी खाली करके चला गया। एक तरफसे पतिका मरण, दूसरी ओर घरमें कुछ भी पैसा या गहना न रहा और तीसरे नारायणको पढ़ानेकी चिन्ता। इस प्रकार त्रिविध तापको लेकर रामदुलारीका हृदय जलने लगा। पांच पांच दिनसे उसने अन्न नहीं खाया था, और दिनरात रोती रहती थी। ऐसी दयनीय परिस्थितिमें भी उसके अड़ोसी पड़ौसी और कुटुम्बीजनोंने मकान बेचकर कारज (नुक्ता) करनेकी सलाह दी।

इधर माधवकाका सेठ लक्ष्मीनारायणके घर पहुंचे और बोले कि सेठजी सा० ! आपको तो मालूम होगा कि रामलालका अवसान होगया है। अब उसकी विधवा ढोंग करनेको बैठी है और कहती है कि घरमें कुछ नहीं है। क्या कुछ

महीनेमें सारी कमाई पूरी होगई होगी ? कुछ भी हो, हमने तो विचार किया है कि उसका मकान आपके यहां गिरवी रख दिया जावे। आप कारजके लिये रुपया देदेवें। ठीक है न?

सेठ लक्ष्मीनारायण—यह तो उस रांड़की सरासर बेईमानी है! घरमें काम करनेके लिये पैसा नहीं होगा, यह कौन मान सकता है? फिर भी काकाजी! आप उसके लड़के नारायणको हमारे यहां लाओ, एक वर्षके बायदेकी टीप लिखाकर ३००) हम उसे इस शर्तपर देदेंगे कि एक वर्ष पीछे सवाया रुपया हमारा चुका देवे। माधव काका "ठीक है," कहकर चलते बने।

दूसरे दिन माधवकाका प्रातःकाल रामदुलारीके घर पहुचे और बोले कि देख, मैंने जैसे तैसे सेठ लक्ष्मीनारायणको समझाकर तैयार किया है। नारायणको हमारे साथ भेज दो तो दस्तावेज लिखाकर रुपया ३००) दिलवा देंगे। माधवकाका नारायणको लेकर सेठके घर गये और लिखाने पढ़ानेकी सब विधि कराके ३००) दिलवाये। उसमेंसे २५) सेठने उठा लिये और कहा कि अपनी मासे कह देना कि जब इतना काम करना है तब २५) पुण्य भी करना चाहिये। यह धर्मादा खातेमें रहेंगे। पौने तीनसौ रुपया लेकर नारायण अपनी माके पास गया। और सब बात कह सुनाई। एक वर्ष पीछे पौने तीनसौके पौने चारसौ रुपया देना पड़ेंगे ऐसा विचार कर रामदुलारीका खून सूख गया! और इन लोहूके रुपयोंमेंसे २५) इकट्ठे धर्मादा खातेमें गये जानकर आंखोंमेंसे आंसू निकल पड़े।

माधवकाकाकी व्यवस्थाके बहानेसे ९—१० दिन पहिलेसे ही रामदुलारीके यहाँ खानेपीने और रहने लगे। नुक्ता किया गया, लोग लाल पीली पगड़ी बांध बांधकर आने लगे और उन खूनी लड्डुओंको गलेमें उतारकर मूछोंपर हाथ फेरते हुये अपने२ घर चलते बने! और सब कार्योंका सफाया होगया! बिचारी रामदुलारी ढोरोंकी भांति खूब जोरसे चीख मार मारकर रोती रही, मगर लोगोंका इधर कुछ भी ध्यान नहीं गया!

आखिरकार रामदुलारीने अपनी गुजर चलानेके लिये चर्खा चलाना प्रारम्भ किया। पौनी बनाकर बेचती, सूत तैयार करती और उसमेंसे चार पैसे पैदा करके अपनी गुजर और नारायणके पढ़ाईका खर्च निकालती। नारायण भी फुरसतके समय मांके काममें मदद करता, और जैसे तैसे अपना गुजारा चलाने लगे।

धीरे २ एक वर्ष समाप्त होगया। सेठ लक्ष्मीनारायणका आदमी रुपया मांगनेको आया। रामदुलारीके होश उड़ गये! वह बोली 'कि अभी तो एक पैसाका भी सुभीता नहीं है। मगर सेठजी कब माननेवाले थे। उस बिचारी अनाथिनीका मकान कुड़क करवा लिया गया! उस समय न तो लड्डू खानेवाले पंचोंने सहानुभूति बतलाई और न मित्रपोंमके भक्त माधवकाकाने ही दर्शन दिये।

विधवा रामदुलारीपर आपत्तिका पहाड़ टूट पड़ा। नारायणका पढ़ना छुड़ना पड़ा। अब उसे एक भाड़ेकी कोठरी लेकर रहना पड़ा। लड़केको एक खादी भण्डारमें (१) मासिककी

धार्मिक, सामाजिक व राष्ट्रीय सभ्यता।

(ले०-श्रीमान् ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजी)

इस जगतमें मानव सबसे बड़ा प्राणी है अतएव उसका कर्तव्य है कि सभ्यतासे चले। सभ्यता ही मानवका भूषण है। जिससे अधिकाधिक परस्पर लाभ हो व कमसे कम परस्पर हानि हो वही सभ्यता है। जिससे सुख शांति बढे व आकुलता मिटे वही सभ्यता है। जिससे Sound mind & healthy body शांत मन व स्वास्थ्य युक्त शरीर रहे वही सभ्यता है। जिससे परस्पर मानवोंमें प्रेम व परोपकार बुद्धि बढ़े व हित करनेकी आकांक्षा जागृत हो वही सभ्यता है। जिससे इस लोकमें सुयश व परलोकमें शुभ गति प्राप्त हो वही सभ्यता है। सभ्यतामें परोपकार और स्वोपकार दोनोंका रस गर्भित है। सभ्यता विहीन मानव पशुतुल्य है, सभ्यतासे ही मनुष्यताकी महिमा है।

यह सभ्यता तीन प्रकारकी है—धार्मिक, सामाजिक व राष्ट्रीय।

धार्मिक सभ्यता—सबसे अधिक आवश्यक है। क्योंकि इसमें मुख्यतासे अपने आत्माका सम्बन्ध है। धार्मिक सभ्यताके चार लक्षण हैं—प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य। शांत व विचारशील भावका रहना प्रशम है। धर्मसे प्रेम व अधर्मसे वैराग्य संवेग है। प्राणी मात्रकी तरफ दया गर्भित प्रेम अनुकम्पा है। आत्माकी सत्तापर व उसकी नित्यतापर व उसकी बंध व मोक्ष अवस्थापर विश्वास आस्तिक्य है। इन चार भावोंका समावेश आत्मोन्नति व परोपकार वृत्तिमें हो जाता है। हरएक मानवको उचित है कि वह अपने आत्माको पहचाने व उसकी उन्नति करे। चेतना (Consciousness) एक ऐसा गुण है जो आत्माको अनात्मासे पृथक् करके लक्षित करता है। इसीसे आत्मा सत है, नित्य है। यह सिद्ध है। प्रत्येक आत्मा अपनी सत्ताको भिन्न रखता है क्योंकि प्रत्येकका ज्ञान, सुख, दुःख, अनुभव व इच्छाका प्रवाह भिन्न ही प्रकारका है। यह आत्मा वर्तमानमें अशुद्ध है क्योंकि इसमें अज्ञान व रागद्वेष पाए जाते हैं। इनसे आत्मामें दोष हैं यह सर्वमान्य है। कोई भी व्यक्ति अज्ञानको व राग द्वेष मद क्रोधादिको अच्छा नहीं कह सक्ता है। जब कि ज्ञान व शांत भाव सबको पसंद है।

अतएव ज्ञानकी व शांतभावकी वृद्धि करना ही आत्मोन्नति है। इसका उपाय अपने ही आत्माका यथार्थ श्रद्धान, ज्ञान व आचरण है। जिसको

नौकरीपर रख दिया और स्वयं नित्य चर्खा कातकर जैसे तैसे अपना गुजारा चलाने लगी। अपने पुत्र नारायणको भविष्यमें सेठ या बड़ा कार्यकर्ता बनानेकी आशापर पानी फिर गया।

(गुजरातीसे परिवर्तित और परिवर्द्धित)।

जैन सिद्धांतने रत्नत्रय धर्म कहा है। आत्माकी उन्नति आत्मा ही के द्वारा होती है। आत्मा ही साधन है, आत्मा ही साध्य है। जो कोई अपने आत्माका ध्यान, चिंतवन, भजन, मनन करता है उसीका अज्ञान व राग द्वेष घटता है, उसीका ज्ञान व शांत भाव बढ़ता है। जैन तीर्थंकरोंने इसी आत्मध्यानका अभ्यास किया था व यही उपदेश जीवमात्रको दिया था।

आत्मध्यानका साधन मुनि धर्म है व उसीका एक देश साधन गृही धर्म है। आत्माका ध्यान आत्माके ही शुद्ध गुणोंपर आकर्षण करनेके लिये अर्हत्‌की भक्ति, गुरुकी सेवा, शास्त्र पठन, सामायिकका अभ्यास है। इन चार उपायोंसे गृहस्थ आत्मध्यानकी सिद्धि कर सक्ता है। इसका तुर्त फल सुख शांतिका लाभ है। यही आत्माकी शुद्धिका साधन है। परोपकार धर्म अहिंसाके सिद्धांतमें गर्भित है। जैसा मुझे कष्ट होता है वैसा ही दूसरोंको होता है, यही भाव अहिंसा है। सब सुखी रहना चाहते हैं, सब कोई जीना चाहते हैं, इसलिये इस जगतमें हमें ऐसा जीवन बिताना चाहिये जिससे हम बहुत कम हानि पहुंचा सकें। इसीसे हमें न्याययुक्त रीतिसे असत्य व चोरी न करके धन कमाना चाहिये व आमदके भीतर जीवन निर्वाह करके कुछ बचाना चाहिये। जिसे आहार, औषधि, अभय व विद्यादानमें खर्च करना चाहिये। हमारा आहार शुद्ध व अहिंसक हो। मांस व मद्यका हमको संयम हो, सादा शुद्ध शाकाहार हमारी खुराक हो। प्रकृतिमें धान्य व फलकी उत्पत्ति इसीलिये हो। प्रत्येक मानवको दयावान, सदाचारी, संतोषी व नीतिमार्गी होना चाहिये। परका दुःख सो मेरा दुःख है। परका कष्ट निवारण सो मेरा कष्ट निवारण है। यही भाव परोपकार प्रयोगकी जड़ है।

जो मानव आत्मोन्नति करता हुआ परोपकारका अभ्यास करता है, जगत मात्रसे प्रेम करके जगतका हित करता है, वही धार्मिक सभ्यताका धारी मानव है। हरएक मानव स्त्री या पुरुषको शिक्षा प्राप्त करके इस सभ्यताका अनुयायी होना उचित है। यही श्री ऋषभादि महावीर पर्यन्त सर्व ही तीर्थंकरोंका उपदेश है। यही संक्षेपसे जैनधर्म है। इसी सभ्यताका पालक एक जैनधर्मका अनुयायी है।

सामाजिक सभ्यताका अर्थ यह है कि समाजमें ऐक्य रहे, प्रेम हो, समाज विद्यासम्पन्न हो, धनशाली हो, उदार हो, परस्पर सहायक हो। बहुतसे नरनारियोंका एक विशेष समुदाय एक विशेष समाज कहलाता है। जैसे जैनसमाज, सिक्ख समाज, हिन्दू समाज, मुसलमान समाज। समाजमें स्वाभाविक एकता धर्मकी समानतासे होती है। एक प्रकारका धार्मिक विश्वास सबको एक सूत्रमें बांध लेता है और वे आपसमें पक्के भाईचारेके भावसे परिपूर्ण होजाते हैं। एक विशेष समाजकी सभ्यताके बनानेका अधिकार कुछ समाजके मुख्य नेताओंके ऊपर रहता है। वे पथप्रदर्शक होके सबको अपने साथ लेकर चलते हैं। साधारण समाजका जनसमूह उनहीका अनुकरण करता

है। सामाजिक सभ्यताके नेता बड़े ही विचार शील, देशकालज्ञ, निर्भीक, धर्मके तत्वके मर्मी, व बड़े भारी परोपकारी तथा नीति व न्यायमें निपुण तथा मायाचार रहित होने चाहिये। ऐसे नेताओंका कर्तव्य है कि सामाजिक सभ्यताके लिये नीचे लिखे कार्यपर लक्ष्य देवें:—

(१) समाजके सब बालक बालिकाओंको धार्मिक व लौकिक शिक्षासे विभूषित किया जावे, कोई भी बालक माथमिक शिक्षासे बाहर न रहे।

(२) प्रौढ़ उच्च कोटिके धार्मिक व लौकिक विद्वान समाजमें उत्पन्न किये जावें, इसके लिये उत्साह बढ़ेनार्थ योग्य छात्रवृत्तियें नियत की जावें।

(३) समाजमें गरीबोंको काममें लगानेके लिये शिल्प व उद्योगके कारखाने खोले जावें।

(४) समाजके लोगोंका व्यय विवाहादि कार्योंमें बहुत ही परिमित हो, किसीको भी कर्ज लेनेकी जरूरत न पड़े ऐसी रीति-रिवाजोंका चलन जारी किया जावे।

(५) वीर संतान समाजमें पैदा हो इसलिये प्रौढ़ वयमें योग्य सम्बन्धके साथ विवाह किये जावें। ऐसे विवाहोंको रोका जावे जिससे स्त्रीको या पुरुषको या दोनोंको अपने जीवन कष्टप्रद बनाना पड़े।

(६) समाजोन्नतिके लिये समाजके हाथमें एक भंडार होना चाहिये, उसे एकत्र करनेका उपाय है कि जब कोई पुरुष २१ या उससे अधिकका मरण करे तब उसकी हैसियतके अनुसार जायदादसे लिया जावे। पांच आदमियोंकी एक कमेटी जो नियत करदे उतनी रकम उठावनीके दिन उसकी छोड़ी हुई जायदादमेंसे उसी समय लेजावे। इसी ही फंडसे समाजोन्नतिके किये शालाएँ चलें, औषधिशालाएँ खुलें, अनाथोंकी सहायता हो। इस फंडका ट्रस्ट हो। किसी गरीबके पास पैसा पूंजी नहीं हो उसको इसमेंसे कर्ज देकर धंधा करा दिया जावे।

(७) समाजमें ऐक्यबढ़ेनार्थ सालमें एक दो दफे समाजका सम्मेलन हो, जब सब मिलें और सामाजिक उन्नतिका उत्साह बढ़ाया जावे व समाजको उन्नतिपर लानेका नवीन नवीन उपाय सोचकर काममें लाया जावे तब ही समाज भंडारका हिसाब प्रगट किया जावे।

(८) कभी कभी सर्व समाजको एक पंक्तिमें मिलकर एक साथ खानपान भी करना चाहिये।

(९) समाजमें कोई कन्या व कोई लड़का व्यर्थ ही अविवाहित न रह जावे, ऐसा प्रबन्ध मुखियाओंको करना उचित है।

(१०) समाजकी संख्या न घटने पावे ऐसा यत्न भी मुखियाओंको करना उचित है। इसलिये हर तीसरे वर्ष समाजकी संख्याकी जांचकर लीजिये व जिन कारणोंसे घटी होती है उनको दूर करना चाहिये।

संक्षेपमें समाजकी संख्या व सदाचारकी रक्षा करना व उसको विद्या सम्पन्न, धन सम्पन्न व कार्यकुशल बनाना ही सामाजिक सभ्यताकी रक्षा करना है।

जिस समाजमें संख्या घटती जावे व दरिद्र व बेकारी व अनाचार बढ़ता जावे वह समाज

रम्यतासे पतित होगई है; ऐसा कहना होगा। वर्तमान जैनसमाज इसी कोटिमें दिख रही है। यदि नाम मात्रकी रम्यताको असली रम्यतामें लाना हो तो समाजके भीतर योग्य नेताओंको कमर कसनी चाहिये और जिस तरह जैनसमाज सभ्यताके व सदाचारमें उन्नति करे उसकी योजना करनी चाहिये।

राष्ट्रीय सभ्यता—राष्ट्र एक समान प्रबंधके आधीन होता है। जितना क्षेत्र समान प्रबंधमें हो वह एक राष्ट्र है। राष्ट्रका प्रबन्धक चाहे एक राजा हो या एक सभा हो, उसका यह मुख्य उपाय होना चाहिये कि सर्व ही प्रजा भूखी न रहे, उचित वस्त्र प्राप्त करे, तंदुरुस्त रहे, विद्या सम्पन्न हो, धन सम्पन्न हो, व्यसनी न बने, सदाचारी रहे, वीर हो, स्वतंत्र हो व सुखशांतिकी भोगनेवालीहो, राष्ट्रके प्रबन्धक राष्ट्रके हितार्थ ही हों, वे दूसरे राष्ट्रके लिये एक राष्ट्रको अपना ग्राहक न बनावें।

जैसी बृटिश राज्यकी पद्धति भारतमें होरही है ऐसी पद्धति राष्ट्रीय सभ्यताकी बाधक सर्वथा घातक है। प्रजासे उतना ही कर लिया जाय जिसको प्रजा सुगमतासे देसके। किसानोंके जीवनको पवित्र समझना चाहिये। क्योंकि वे प्रजाके जीवनाधार अन्नके उत्पादक हैं, वे कर्जदार व भूखे न रहे, ऐसी योजना की जावे व उतना ही कर वसूल किया जावे। करका उपयोग किस तरह किया जावे? प्रबंध विभागमें बहुत अधिक वेतन भोगी मंत्री दलको न रक्खा जावे। प्रबंध व रक्षा विभागमें इतना धन खर्च किया जावे कि स्वास्थ्यवृद्धि व शिक्षाप्रचारके लिये उचित धन बच सके।

आजकल जैसे बृटिश राज्यने भारतमें सर्वोच्च अफसरोंकी बड़ी ऊंची ऊंची तनखाएं कर रक्खी हैं उसका व पुलिस विभागमें बेहद खर्च कर रक्खा है, यह भारतकी राष्ट्रीय सभ्यताके लिये हानिकारक होरहा है। राष्ट्रीय प्रजाके लोगोंको सैनिक शिक्षा दी जानी चाहिये। वेतन भोगी सेना थोड़ी रखनी चाहिये। काम पड़नेपर घर२ से सैनिक तैयार होजावें, पुलिसकी संख्या भी अल्प रक्खी जावे। गांव गांवके ग्रामपति बना दिये जावें, वे ग्रामीणोंकी कमेटी द्वारा उस ग्रामकी रक्षा करें। द्रव्यको बचाकर राष्ट्रमें ऐसा प्रबंध हो कि हरएक बालक बालिका कमसेकम प्राथमिक शिक्षासे विभूषित हो जो मुफ्त दी जावे। प्राथमिक शिक्षाके सिवाय माध्यमिक व उच्च शिक्षाके लिये भी पुस्तक व फीसका खर्च कम रक्खा जावे ताकि निर्धन मानवोंके बालक भी पढ़ सकें। स्वच्छता व औषधि उपचारका यथेष्ट प्रबंध हो। औद्योगिक शिक्षा विशेषतया दीजावे। हरएक प्रजाको स्वतंत्रतासे आजीविका करनेके योग्य बना दिया जावे।

भोजन वस्त्र व वर्तन इन तीनोंके लिये यंत्रोंसे काम न लिया जावे। इन तीनोंके लिये नरनारीके हाथरूपी यंत्र ही काममें लिया जावें तो देशमें कभी बेकारी नहीं हो सकती है। इन आवश्यक चीजोंकी सबको जरूरत पड़ती है। एक राष्ट्रकी प्रजा स्वयं उनको उत्पन्न करके काममें लेगी तो कोई भूखा नहीं रह

सक्ता है। सबको परिश्रम करनेको मसाला मिल जायगा। यंत्रोंके द्वारा कपड़ा बनानेसे व बर्तन व खाद्य पदार्थ शक्कर आदि पकानेसे व आटा आदि पीसनेसे धनिक वर्ग तो धन संपन्न होजाते है परन्तु राष्ट्रमें लाखों मजूर बेकार हो जाते हैं। यही कारण है जो इंग्लैंड, जर्मन आदिमें लाखों बेकार हैं। भारतमें भी करोड़ होंगे। परन्तु यहां तो गणना की ही नहीं जाती है। राष्ट्र द्वारा यह प्रबंध हो कि सर्व कोई लौकिक शिक्षाके साथ २ अपने धर्मकी शिक्षा लेवें। धर्मका भाव प्राणियोंको विषयका गुलाम होनेसे बचाता है। हरएक नरनारीका, जो राष्ट्रमें हो, यह पवित्र कर्तव्य है कि वे अपने स्वदेशका बना अन्न लावें, स्वदेशी औषधि लेवें, स्वदेशी वस्त्र पहरें व स्वदेशी ही बर्तन काममें लेवे।

राष्ट्रके प्रबंधकोंका यह पवित्र कर्तव्य है कि उस राष्ट्रके उद्योग व व्यापारकी वृद्धिमें सहायक हो। मदिरा आदि व्यसनोंकी बंदीका कानून बना दे, तथा सामाजिक व सदाचारके दलमें जिन जिन कारणोंसे क्षति आती हो उन२ कारणोंको कानुन द्वारा बंद करादे।

राष्ट्रीय सभ्यताका अर्थ यह है कि प्रजा अंतरंगसे संतोषी रहे। अपनी शारीरिक, वाचिक, मानसिक व आत्मीक उन्नतिको स्वतत्रतासे कर सके। यह भारत कभी राष्ट्रीय सभ्यताकी अंतिम सीमापर था। आज यदि यह अत्यन्त पतित होगया है तो उसमें भारतीयोंकी निर्बलता व प्रमाद है तथा राष्ट्रके प्रबंधकोंका कर्तव्यपथसे विमुख होकर अपने देशको मालामाल करनेकी नीति है।

जिस तरहकी राष्ट्रीय कुसभ्यता भारतमें इस समय है वह भारतका सर्वथा नाश करनेवाली है। अतएव भारतके सच्चे हितैषियोंका कर्तव्य है कि इसके स्थानमें सच्ची सभ्यता स्थापित करें। इसलिये पूर्ण प्रयत्नशील हो, तथा इस प्रयत्नमें जो बलि करनी पड़े उसको भी करें। परन्तु सच्ची राष्ट्रीय सभ्यताको स्थापन करें। जिससे देशवासी दरिद्रताकी आगमें जलकर न मरें व मानवी जीवन विता सकें। अंगरेजोंमें भी यदि मानवीय सभ्यता है तो उनका पवित्र कर्तव्य है कि वे अब भारतको परदेश न समझें। इसे स्वदेश समझकर इसकी उन्नतिमें ही दत्तचित्त होजावें। स्वार्थ बुद्धिसे राष्ट्रीय प्रबंध कभी हो नहीं सक्ता। वह उस राष्ट्रका प्राण रक्षक नहीं, किन्तु प्राण शोषक होता है।

गुलज़ार बनाना होगा।

काम कुछ करके तुम्हें, यार दिखाना होगा।
कोरी बातोंसे न हो, पार-ठिकाना होगा॥
बात जो मुंहसे कही, उसको निभाना होगा।
मादरे हिंदका, उद्धार कराना होगा॥
मिस्ल परवाने हिम्मत, कदम बढ़ाना होगा।
है जो गाफिल उन्हें, यकबार जगाना होगा॥
अपने दुश्मनको तुम्हें, मार भगाना होगा।
सिर्फ हथियार, अहिंसाका चलाना होगा॥
कोने कोनेमें, ये अखबार सुनाना होगा।
खातिरे मुल्क, धुआं धार उड़ाना होगा॥
तौके गुलामीका, 'प्रिये' भार छुड़ाना होगा।
गुलशने हिंदको, गुलज़ार बनाना होगा॥

"प्रिय"

कवि श्री कल्याणकीर्ति और उनका जिनयज्ञफलोदय।

[लेखक:—पं० के० भुजबली शास्त्री, जैन सिद्धान्तभवन, आरा।]

जिनयज्ञफलोदयके अन्तिम भागसे विदित होता है कि यह कवि कार्कलके प्रसिद्ध जैन राजा भैररस ओडेयरके कुलक्रमागत गुरु श्री ललितकीर्तिके शिष्य थे। अतः यहां सर्व प्रथम उक्त भैररस ओडेयरके वंशका परिचय उपस्थित करना आवश्यक प्रतीत होता है। कार्कलमें लगभग १०० वर्षोंतक शासन करनेवाले ये भैररस ओडेयर होम्बुचके राजा जिनदत्तरायके वंशी थे। आगतक उत्कृष्ट शासन एवं अन्यान्य सामग्रियोंसे इस वंशके विषयमें निम्नलिखित उल्लेख मिलता है। उत्तर मथुरा (मथुरा) में उग्रवंश–श्रेष्ठ वीरनारायण आदि अनेक राजा हुए। पीछे इसी वंशज राजा साकारमहाराय उक्त मथुरामें योग्यरीतिसे शासन करता रहा। परन्तु एक समय शत्रुविजयार्थ गया हुआ यह राजा लौटते समय किसी जंगलमें एक पद्मिनी जातिकी भीलकी लड़की पर मोहित हो गया और उसके पितासे उसे मांगा। तब उस लड़कीके पिताने कहा कि अगर मेरी पुत्रीसे उत्पन्न लड़केको राज्य देना स्वीकार हो तो मैं आपको दे सकता हूं अन्यथा नहीं। राजाने इस बातको स्वीकार किया और [illegible] [illegible]। पीछे साकार महाराज उस कुमारी पर विशेष आसक्त हो उनकी बहु प्रियतासे मद्य, मांस आदि सभी चीजोंको खाने लगा। एक दिन पद्मिनी राजाकी पूर्व पत्नी सती श्रियलाके पुत्र जिनदत्तरायको देखकर विचार करने लगी कि सर्वोत्तम पुत्र जिनदत्तरायके रहते हुए मेरे पुत्र मारिदत्तको राज्य नहीं मिल सकता है। अतः जिनदत्तरायको मरवाना ही राज्यप्राप्तिका निष्कंटक उपाय है। अन्तमें इस दुरुपायको राजा साकार-



इसी लेखके जैनइतिहास–अन्वेषक विद्वान् लेखक।

मुख्यरूपसे पद्मिनीको व्यक्त करना ही पड़ा।

विषयलोलुपी दुराचारी राजा भी उसकी इस बात पर सहमत हुआ। एक रोज राजाने अपने रसोईदारको बुलाकर उससे एकान्तमें कहा कि आज एक नीबू लेकर जो कोई अर्थात जिनदत्त हो या मारिदत्त तेरे पास आवेगा उसे तुरत ही कतल कर डालना। पीछे इस कार्यके उपलक्षमें तुझे यथेच्छ पुरस्कार अवश्य मिलेगा।

रसोईदार राजाकी इस कदाज्ञाको पाकर उधर पाकशालामें चला गया। इधर राजाने राजसभामें उपस्थित महा भाग्यशाली जिनदत्तरायको बुलाकर कहा कि तुम स्वयं तुरन्त ही इस नीबूको मेरे रसोई घरमें पहुंचा देना। "भाग्य सर्वत्र बलिष्ट होता है।" पुरुषपुंगव जिनदत्तराय नीबू लेजा रहा था, परन्तु मध्यमार्गमें ही मारिदत्तसे अकस्मात मुलाकात हुई और उन्होंने जिनदत्तरायसे कहा कि हमारा रसोई घर सर्वथा अपवित्र है। ऐसे स्थान पर आपका जाना उचित नहीं है। अतः मैं ही स्वयं इस फलको रसोईघरमें पहुंचा दूंगा। आप इसपर खिन्न मत होना क्योंकि जैसे आपको पिता पूज्य हैं उसी प्रकार मुझे बड़े भाई आप भी पूज्य हैं। जिस प्रकार पिताकी आज्ञा पालना आपका धर्म है उसीप्रकार भाईकी आज्ञा पालना मेरा भी धर्म है। इसप्रकार अनेक विधसे जिनदत्तरायको समझाकर मारिदत्त स्वयं ही उस नीबूको रसोई घरमें लेगया और जिनदत्तराय वहींसे घर लौट आया।

उसी दिन मारिदत्तके कतलका समाचार नगरमें सर्वत्र फैल गया और प्रत्येक व्यक्तिके मुखसे राजाकी निंदा होने लगी।

श्रीयुत बा० कामताप्रसादजी जैन "वीर" के इसी सालके १४ वें अंकमें प्रकाशित अपने "महारानी वीरादेवी" लेखमें लिखते हैं कि "इतनेमें ही एक बात अनहोनी–सी होगई। राजा साकारने भीलनीके पुत्र मारिदत्तके युवराज बनानेकी घोषणा कर दी। जिनदत्तको राजाका यह अन्याय सहन नहीं हुआ। उसने मारिदत्तको मार डाला और स्वयं राजाके भयके कारण मथुरासे भाग गया।" परन्तु "जिनदत्तराय चरिते" "कार्कल चरिते" आदि किसी जैन ग्रंथमें ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है। अत. निःसन्देहरूपसे कह सकते हैं कि मारिदत्तकी हत्या जिनदत्तरायके द्वारा नहीं हुई है बल्कि राजाके रसोईदारके द्वारा हुई थी। मायः बा० कामताप्रसादजीने इस लेखको किसी जैनेतर लेखकके लेखके आधारपर तैयार किया होगा। यदि यह मेरा अनुमान यथार्थ हो तो उनसे इसे सुधारनेके लिये मैं साग्रह अनुरोध करूंगा। उक्त बातके अतिरिक्त उस लेखमें और भी आक्षेप्य दो तीन बातें हैं। परन्तु यहां उन बातोंका उल्लेख करना अप्रासंगिक होगा। अस्तु,

रानी श्रियलाने प्राणभयसे कुलदेवी पद्मावतीकी मूर्तिके साथ पुत्र जिनदत्तरायको उसी रातको मथुरासे विदा किया। जिनदत्तराय वहांसे चलकर वर्तमान मैसूर राज्यांतर्गत होम्बुचमें पहुंचा और वहीं उसी जंगलके भीलोंकी सहायतासे राज्य स्थापित कर सुचारुरीतिसे शासन करने लगा। थोड़े ही दिनमें उक्त राज्य दाक्षिणात्यके समृद्धशाली राज्योंकी श्रेणिमें

गिरा जाने लगा। आज भी जिनदत्तरायके महलका भग्नावशेष एवं अन्यान्य स्मारक उक्त होम्बुचमें पाये जाते हैं। दक्षिणमें होम्बुच एक अतिशय क्षेत्र माना जाता है, और क्रमागत पद्मावतीकी वह मूर्ति आज भी वहां मौजूद है। उस क्षेत्रमें पद्मावतीका बड़ा भारी अतिशय है। सर्व प्रथम जिनदत्तरायने जिस पेड़ पर पद्मावतीकी मूर्तिको विराजमान किया था उसी पेड़के मूलमें वह मूर्ति आज भी ज्योंकी त्यों विराजमान है। सुना है कि देवीका ऐसा ही आदेश था। पीछे उस वृक्षके अस्तित्वके साथ उसी स्थान पर उसका मंदिर बना। वही मंदिर उस वृक्षके साथ२ आज भी विद्यमान है।

होम्बुचके बारेमें और भी एक विशिष्ट बात सुननेमें आती है। वह यह है कि वहां जिस स्थानपर राजा जिनदत्तरायके महलकी नींव है उसे खोदनेसे आज भी चावल, दाल आदि उस समयकी चीजें मिलती हैं। आजकल जिनदत्तरायके द्वारा निर्मापित मन्दिरोंकी रक्षा उनके क्रमागत कुलगुरु भट्टारकजी ही करते हैं। इनके लिये प्रायः मैसूर राज्यसे भी वार्षिक सहायता मिलती है। फिर भी बहुतसे मन्दिर जीर्ण शीर्ण होकर सघन जंगलकी गोदमें कराल कालकी महिमाको गारहे हैं। अस्तु।

होम्बुचके विषयमें यथावकाश अन्वेषणात्मक एक स्वतन्त्र लेख लिखा जायगा।

अब विज्ञ पाठक प्रकृत विषयको लीजिये:— जिनदत्तरायका विवाह दक्षिण मथुराके प्रसिद्ध पाण्ड्यवंशी राजा वीरपांड्यकी पुत्री पद्मिनी और मनोरमाके साथ हुआ था। इनके पार्श्वचन्द्र तथा नेमिचन्द्र नामक दो पुत्र हुए।

पार्श्वचन्द्रने अपने शासनकालमें पहले भैरवी पद्मावतीके द्वारा पिताकी रक्षा हुई थी, अतः अपने नामके साथ भैरव शब्द एवं अपनी माता पाण्ड्य राजाकी पुत्री थी इसलिये पाण्ड्य उपाधि लगाई थी। तभीसे वह राजा "पार्श्वचन्द्र पांड्य भैरव" नामसे विख्यात हुआ। इनके बादके इस वंशके सभी राजा अपने नामके अन्तमें "पाण्ड्य भैरव राजा" लगाते गये (देखो— 'द० क० जैन प्राचीन इतिहास" पृ० ३१८)

यह बात सर्व विदित है कि द्वारसमुद्रके होयसलराजा विट्टिदेवने पीछे जैनधर्मको त्यागकर रामानुजाचार्यके वैष्णवधर्मको ग्रहण किया। सन् ११२३के श्रवणबेलगोलाके एक शिलालेखसे ज्ञात होता है कि राजा विट्टिदेवने होम्बुचके जैनराजाको जीत लिया था। प्रायः तभीसे उक्त होम्बुचके जैनराजा उनकी अधीनतामें रहकर शासन करने लगे। उससमय द० कनड जिलामें कार्कल, वेणूर, पड़ंगडि, केर्वाशे, आरूंढ, नाल्कूर, मूल्की प्रांतोंको कापिट्टु हेग्गडे शासन करता रहा।

वह हेग्गडे प्रजाको बराबर सताया करता था। इसीसे प्रजा बड़ी दुखी थी। इसी समय होम्बुचके भैरवराय आत्मार्थ मूडबिद्री गये हुए थे। तब उक्त कार्कल आदि प्रांतोंकी प्रजाने राजा भैरवरायसे हेग्गडेकी शिकायत की। भैरवरायने सम्मानपूर्वक हेग्गडेको बुलाकर बहुत

[illegible], परन्तु उन्होंने राजकी बात एक भी नहीं सुनी। अन्तमें निरुपाय होकर भैरवरायने [illegible]से अपनी सेना मंगाकर युद्धमें हेग्गडेको परास्त किया और उक्त प्रान्तोंका स्वयं शासन करने लगा। इस समय कार्कलके हिरियंगडिमें जहां भैरवरायका मंदिर रूपान्तरमें मौजूद है वहीं उनकी विशाल राजधानी भी मौजूद थी। इस राजधानीका नाम पाण्ड्यनगर था। (देखो—"द० क० जिल्लेका प्राचीन इतिहास" पृ० ११९–१२०) द० कनड जिलामें शासन करनेवाले इस वंशके राजाओंके नाम निम्नप्रकार हैं—

(१) पाण्ड्य देवरस अथवा पाण्ड्य चक्रवर्ती (२) लोकनाथ देवरस (३) वीरपाण्ड्य देवरस (४) रामनाथ अरस (५) भैरवस ओडेय (सन् १४१८) (६) वीरपाण्ड्य भैरवस ओडेय (७) अभिनवपाण्ड्यदेव ओडेय (८) हिरिय भैरवदेव ओडेय (९) इम्मडि भैरवराय (१०) पाण्ड्यप्प ओडेय (११) इम्मडि भैरवराय (१२) रामनाथ ओडेय (१३) वीर पाण्ड्य (देखो—"द० क० जिल्लेका इतिहास") मैं पहले ही उल्लेख कर चुका हूं कि कवि कल्याणकीर्तिजीके गुरु ललितकीर्तिजी भैरवराजवंशके क्रमागत गुरु हैं। आज भी कार्कल मठकी गद्दी पर बैठनेवाले भट्टारकोंका परंपरागत यही ललितकीर्ति नाम रक्खा जाता है।

मुनि कल्याणकीर्तिजीके 'जिनयज्ञफलोदय''के

"[illegible]

[illegible] वर्षे [illegible]"

इस श्लोकसे इसका समय शक १३५० ज्ञात होता है। यह शक शालिवाहन शक ही होना चाहिये क्योंकि दक्षिणमें यही शक प्रचलित है। मुनि महाराजजीने इसी ग्रन्थके निम्न श्लोकमें भैरवराज तथा उनके पुत्र पाण्ड्यदेवका उल्लेख इस प्रकार किया है:—

"त्रिभुवनकलशोऽपि नेमिनाथः [illegible] भैरवेन्द्रतो जिनेन्द्रः। [illegible] पाण्ड्यदेवनाम्नि [illegible] चकार [illegible] क्षितीशे।"

इनमेंसे भैरवरस ओडेयका समय शालिवाहन शक १३४० (ई० सन् १४१८) एवं पाण्ड्यराजका समय शालिवाहन शक १३५३ (ई० सन् १४३१–३२) माना जाता है।

भैरवराजाका काल कविने उल्लिखित श्लोकमें जिन नेमिनाथ तीर्थंकरका उल्लेख किया है उन्हींके मंदिरके द्वारमें स्थित शासनसे लिया गया है। पाण्ड्यराजा वही वीर पाण्ड्य भैरवस ओडेय हैं जिन्होंने कार्कलमें बाहुबली स्वामीकी विशाल, मनोज्ञ मूर्तिको स्थापित कर अपने नामको अमर कर दिया है। बाहुबली स्वामीकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा शालिवाहन शक १३५३ (ई० सन् १४३१–३२) में हुई थी। यह बात मूर्तिके पासमें संस्कृत तथा कनड शिलालेखोंसे ज्ञात होती है। इस अवसर पर विजयनगराधीश द्वितीय देवराय भी आमंत्रित थे। यह प्रतिष्ठा महोत्सव अधिक धूमधामसे हुआ था।

अब निस्सन्देह रूपसे पाठकोंको मालूम हो जायगा कि कवि कल्याणकीर्तिजी उक्त पाण्ड्यराजाके ही सम समयवर्ती थे। संभवतः [illegible]के कर्ता भी उक्त राजा ही हों (देखो—इसी सालके "जैन [illegible] हितैषी" के विशेषांकमें प्रकाशित मेरा लेख)। मुनिजीने

अपना गुरु तथा पाण्डित्यका परिचय निम्न प्रकार दिया है :–

"जीयाल्ललितकीर्त्याख्यो मद्गुरुर्मुनिपुंगवः।
देवचन्द्रमुनीन्द्राच्यों दयापालः प्रशान्तधीः॥
कल्याणकीर्तिदेवस्य भारतीकविवेधसः।
सतां चेतसि पीयूषधारां धत्ते निरंतरम्॥"
इति श्रयति विशाला कीर्तिश्चलाति निर्मला।
मयापि सुचिरं दृष्टं जिनयज्ञफलप्रदः॥"

इस जिनयज्ञफलोदय ग्रन्थमें कुल २७५० श्लोक हैं। जैसे:–

"द्विसहस्रमिदं प्रोक्तं शास्त्रं ग्रंथप्रमाणतः।
पंचाशदुत्तरैः सप्तशतश्लोकैश्च संगतम्॥"

अब इस लेखके कलेवरको अधिक न बढ़ाकर ग्रन्थ प्रशस्ति एवं ग्रंथ रचनाके संदर्भको उद्धृत कर इसे मैं समाप्त करूंगा।

प्रशस्तिः–

श्रीमूलसंघे मुनिव्रातकतुंगे श्रीकौन्दकुन्दे वरसूरिवृन्दे। वंशे च देशीयगणे गुणाढ्ये महामनुष्ये वर–पुस्तगच्छे॥ आसीदसीमापनसौगपूर्वी-चरचन्द्रपाश्रिगुणरत्नराशिः। सन्नादमूर्धन्य इव यतीन्द्रः श्री देवकीर्तिर्जितमारमूर्तिः॥ ११ ॥ सद्गोत्रमानस्तवनुत्तमाविरूढः सच्छीलवाजिरविभ्रमसुलसवृत्तिः। दोषाकराक्रमणचारुपक्षपातो हंसोऽप्यसौ ललितकीर्तिरगूढहंसः॥ १२ श्रीललितकीर्तियतिमहदुदयगिरेरभवदागमनयूतः। कल्याणकीर्तिमुनिरविरसितवराततमोच-नसमर्थः॥ १३॥ केचित्काव्यकलाप्रवाकुशलिनः केचिच्च सिद्धान्तिनः। केचिद्व्याकरणप्रयोगनिपुणाः केचिन्महातार्किकाः॥ केचित्तीव्रतपः-प्रभावकलिताः केचित् कविताकलाः केचित्सत्प्रकटमहामुनिवरा: शिष्या बभुः॥१४॥ त्रिभुवनचन्द्रोऽपि नेमिचन्द्रः [illegible] चेन्द्रके मितेन्द्रः। [illegible] इदवति [illegible] किरीटे॥१५॥

ग्रन्थरचनासंदर्भः–

अन्यदा ललितकीर्तिमुनीन्द्रः सम्भुतामलसमीप-मयुक्तः। तत्क्षितीश्वरकृतचैत्यनिवासं दर्शिताखिल-गुणः प्रययौ सः॥ ११७॥ एकदिन सद्धर्मे मुनि-नाथी नाकपाला जिनपतिगुणपूर्णा। श्रीमुनीन्द्री विलसीत्कुर्वन्माहात्म्यं यौनि यथावत् च दध्यौ॥११८॥ अहं कथावतारं महाद्विपदिसिते सम्पूर्णामयस्तम्। काव्यं पूर्णानामासे सदगुणगुरुतरबन्धबन्ध-स्रागमगम्॥ तत्संगृह्य विद्वद्वरिष्ठुपनिषदमृत-वागर्भगुंफम्। सिद्धं निर्धूतदोषे श्रुतमलविर-रतस्वविज्ञानसीत्वम्॥ ११९॥ एते सम्मु-निवृन्दाः कविवरमार्गे वाग्मिनः सति धर्मे च प्रवाभिज्ञोऽप्यो·········· मित एव संवमुवुः॥ १२०॥ अवसर कल्याणवरा मुनीश्वरः सुकाव्यतत्त्वागमाद्यौमनः। पुराणं पारीण इह प्रतापनः समर्थ इवेति निश्चित्य स प्रती॥ १२१॥ नानाद्युच·········· ··········मिव विचारीकुर्वत्। [illegible] मुनिरचयन्नत्र [illegible] ॥ १२२॥ एकान्तोत्पत्तासिवर्षचिरो भव्यात्मते भावितं। सहितार्थं [illegible] मुभे [illegible] तथ॥ [illegible] विलसी। [illegible] दिनी॥ १२३॥ [illegible]

संगतार्मरजना च तावकीम् । मेगकी कुरु जिने जयतां समस्तुणीमवसतां गुणस्तुतेः ॥ १२४ ॥ इति मुनिवरविधायिभिः प्रेरितैनापकाभिः । कथु तत्वविकासाकिताप्रारब्धमाभा ॥ अपि च गुरु समीपे अभ्यर्थारंभि पूर्वम् ननु किमकरणीयं सत्प्रावीनवृत्तेः ॥ १२५ ॥ चारित्रचाराश्रितसुधाकरेण कल्याणकीर्तिव्रतिना-(मुनिना)ऽभ्यधायि । जैनेन्द्रयज्ञस्य फलोदयाख्यं काव्यं जयत्वाक्षितिचन्द्रतारम् ॥ १२६ ॥

इस लेखको समाप्त करनेके बाद मुझे 'पंचकल्याण" का स्मरण आया। उसमें श्रीयुत एम० बी० पेगळ ए० कनाड़के जैन कवियोंका परिचय देते हुए कवि कल्याणकीर्तिजीके विषयमें इस प्रकार लिखा है—"यह कवि सन् १४३९ में रहा होगा। इनका दीक्षा गुरु मूलसंघके देशीय गणी ललितकीर्तिजी हैं। यह कवि कार्कलके जैन राजा पांड्य राजाके समकालीन थे। इन्होंने ज्ञानचंद्राभ्युदय, कामकथे, अनुप्रेक्षे, जिन स्तुति, तत्त्वभेदाष्टक, सिद्धराशि इन ग्रन्थोंकी रचना की है।" संभवतः पेगळजीको आपका 'जिनयज्ञफलोदय' ग्रंथ देखनेमें नहीं मिला होगा।

कोल्हूकोसो बैल है।

(कवित)

योवनको मद पाय, ज्ञानहू विसारि डार्यौ,
जानि बूझि रोज करै, खूब बदफैल है,
चारि दिन चांदनी है, सोचत अनारी नांहि,
निपट अंधारी फेरि, सूझे कहां गैल है;
रतन अमोलिक, यों हाथ आयो खोई रह्यौ,
मोइ रह्यौ, बीश चढ़ि आवै जों चुरैल है,
ऐसे जग धंधनुके, बंधनु पर्यौ है 'प्रिय'
"आंखो बनि नाचि रह्यौ, कोल्हूकोसो बैल है"

"प्रिय"

क्या इशारा कर दिया ?

गजल।

भारै क्या गांधीकी नजरोंने, इशारा कर दिया।
जिसको देखो उसको बस, खद्दरका प्यारा करदिया॥
हाथसे छूता न कोई, नेन सुख-तनजेबको।
दूरसे सब दुरदुराते, क्या नजारा कर दिया॥
भूखों मरते थे यहां, कोली जुलाहे रात दिन।
डूबतोंको खूब, तिनकेका सहारा कर दिया॥
बच्चा बच्चा हो गया है, अब तो शैदाए वतन।
क्या हुआ मोती-जवाहिर, न्यारा न्यारा करदिया॥
जिस तरह चाहें, 'प्रिये' वो जेलमें रक्खें हमें।
आराधना करनेको अब, मंदिर हमारा कर दिया॥

"प्रिय", वृन्दावन।

हम अस्वस्थ क्यों होगये हैं ?

[लेखक:—पं० मनोहरलाल जैन वैद्य, शिवपुरकलाँ।]

संसारमें हरएक समाजकी और धर्मकी उन्नति स्वस्थता पर ही निर्भर है, अस्वस्थ (बीमार) समाज सांसारिक और पारमार्थिक उन्नतिकी अधिकारी नहीं। आज हमारी जैनसमाज नाना महा व्याधियों द्वारा ग्रसित हो अस्वस्थ हो रही है और जो कदाचित व्याधियोंका इलाज नहीं किया तो स्मरण रहे कि असाध्य कोटिमें सम्मिलित होनेका रंच मात्र भी संदेह न होगा, और जो अस्वस्थ (बीमार) हैं वह सुतरां निस्तेज और अकर्मण्य होजाता है। जैसे कोई जिह्वा लोलपी मनुष्य लोलुपतावश प्रकृति विरुद्ध अपथ्य सेवन कर असह्य वेदना द्वारा दुखी बन जाता है पश्चात् अपने विपरीत आहार पर बार २ विचार करता हुआ कुछ समय बाद दुखका शमन होनेसे फिर कुपथ्य सेवनमें लग जाता है और दुखको दुख नहीं समझता है, इसी प्रकार हमारी जैनसमाज भी अविद्या, बाल्यविवाह, कन्याविक्रय, वृद्धविवाह, मृत्यु भोजन, अपव्यय, परस्परकी द्वेषद्वेषी आदि अनेक रोगों द्वारा अस्वस्थ होकर घोर असह्य वेदना भोग रही है इन रोगोंने जैनसमाज रूपी शरीरको जर्जरित कर दिया है। इन रोगोंमेंसे अभी किसी अनुभवी वैद्यने एकका भी इलाज नहीं किया और इन रोगोंके न मिटनेके कारण प्रति वर्ष हमारे भाई सहस्रोंकी संख्यामें कम होते जाते हैं, जिसकी हमको कोई परवाह नहीं है।

(१) प्रथम अविद्यारूपी रोगकी वजहसे हम अपनी घातक रूढियोंको नहीं छोड़ सके। समयके अनुसार जो रूढियां चली आती थी जो कि हमको कोई कष्ट नहीं देती थी परन्तु अब हम उन्हींके आधीन होकर दुख उठा रहे हैं और छोड़नेमें लाचार हैं क्योंकि ये पुरानी रूढियां हमारे बापदादाओंसे चली आई हैं। क्यों चली आई, कैसे चली आई, ऐसी तर्कणा शक्ति हममें है नहीं, पोलमें पोल चली जानेसे हताश हो हम अवनतिकी पोलमें धस चुके और पड़े २ दुख उठा रहे हैं। परन्तु कोई प्रौढ शक्तिशाली वीर नजर नहीं आता जो इस गर्तमेंसे निकाल कर पतितोंका उद्धार करें।

(२) दूसरा रोग—अबोध बालक बालिकाओंके असमयमें विवाह सम्बंध कराकर क्षीण वीर्य बना दिया, और अल्पायुमें मृत्युके सन्मुख पहुंचाते हुये सैकड़ों अनाथ विधवाओंकी संख्या बढ़ादी, जिनके द्वारा गुप्त पापोंका संग्रह होता चला जाता है। बहुतसी तो द्रव्याविकी व भूख प्यासकी तकलीफसे अन्य मतावलंबियोंके चुंगलमें फंसकर धर्मसे विमुख हो पवित्र जैनधर्मकी हंसी करारही हैं। परन्तु हमारे दिलपर रंचमात्र

... नहीं होता। हम उनसे प्यारे डॉक्टर वैद्योंको जो कि कालान्तरमें उत्तम मधुर फलोंके समान कल्याण करनेवाले हैं उनको उत्तम [illegible] मारा। जिनका कर सकते नहीं हैं परन्तु उनको बढ़ोंमें विषयवासना रूपी तीव्र कुठार द्वारा भून कर रहे हैं। धन्यवाद उन वीर भक्तोंको और [illegible] रत्नोंको!

धर्मघातक इस बालविवाहरूपी राक्षसने समाजके उत्पत्तिके कारण बालक बालिकाओंके सर्वथा स्वास्थ्य नष्ट करदिया, उनमें कुछ भी पराक्रमकी मात्रा नहीं रही, यहांतक अन्न पचना कठिन हो गया। इससे अपने आपकी रक्षा नहीं होती, धन और धर्मकी रक्षा तो दूर ही रहो, शरीरकी शक्तिमें वीर्य ही मुख्य कारण है। वीर्यकी क्षीणतासे "अग्निमांद्य" रोग पैदा होजाता है जो अन्नको ठीक पाचन नहीं कर सकता। वात, पित्त, कफ, विकृत होकर अस्वस्थता पैदा कर देते हैं। अस्वस्थतामें समस्त कार्य बुरी तरह भयानक मालूम पड़ जाते हैं, राज्यसम्पदा भी दुःखदाई प्रतीत होती है। स्वस्थ मनुष्य सदैव सुखी उत्साही प्रसन्नचित्त रहता है। आयुर्वेद शास्त्रोंमें भी स्वस्थ मनुष्यके लक्षण निम्नप्रकार बतलाये गये हैं। अर्थात् जिसमें इतनी बातें पाई जावें वही मनुष्य स्वस्थ कहा जा सकता है अन्य नहीं। जैसे—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥ (भावप्रकाशे)
[illegible]।

भावार्थ—जिस मनुष्यके दोष, अग्नि, मल और धातु ये समान हों, शरीरके ऐसा चाहिये जैसा उचित होना हो तथा इंद्रियां तथा मन प्रसन्न हो वह मनुष्य स्वस्थ कहा जाता है। तथा अन्यान्यमें भी कहा है—

[illegible] कांक्षाभ्यवहारे रुचि-
र्भुक्तं जीर्यति सुष्ठु वे परिणति स्त्यागावबोधे: सुखम्।
गृहीतो विषमान्वया स्वमुचितान्वृति मनोवृत्तिः,
स्वस्थस्याभिहितं चतुर्दशविध अन्तोरिदं लक्षणम् ॥

जिसमें सम्पूर्ण दोष सम्पूर्ण धातुओंकी समता, अन्नकी इच्छा, रुचिकी इच्छा, शरीरकी कांति, खाये हुये अन्नका पचना, अन्न शुद्ध होनेकी परिणति होना, सुखपूर्वक शयन, सुखपूर्वक जागना, योग्य विषयोंका यथार्थ रीतिसे ग्रहण होना, हर्ष (खुशी) और मनकी निर्मलता, ये चौदह लक्षण जिसमें हो उसको स्वस्थ समझना चाहिये। उक्त स्वस्थताके लक्षण उसी व्यक्तिमें मिलेंगे जिसमें वीर्यकी अधिकता होगी, जो बच्चपनकी अवस्था तक अपने वीर्यको सुरक्षित बनाता चला आया होगा। साथमें बालकबालिकाके पालक माताविताओंका मुख्य कर्तव्य है कि अपने प्यारे पुत्र रत्नोंको सम्भालकर रखा करें, उनको उत्तम शिक्षा (ज्ञान) द्वारा सच्चरित्र बनावें क्योंकि अच्छे बुरे बनानेमें बालकके मातपिता ही कारण है।

शिक्षाके साथ सच्चरित्र बनाना विशेष आवश्यकीय है। यह "सोनेमें सुगंधी" कहनेमें कोई अत्युक्ति न होगी। चूंकि सच्चरित्रता मनुष्यका एक आत्मीक असाधारण गुण है यही गुण वस्तुत: स्वास्थ्यमें विशेषोपयोगी चीज है। संसारमें ज्ञानी (शिक्षित) बहुत मिलेंगे परन्तु सच्चरित्र विरले ही मिलेंगे। प्राचीनकालमें ज्ञानके

साथ चारित्रकी भी विशेषता थी। दृष्टान्तमें पूज्यपाद स्वामी अकलंकदेव ही एक पर्याप्त होंगे पीठाश्रयम तक तो विषयवासनाओंका नाम नहीं जानते थे कि वासना किस चिड़ियाका नाम है। सदैव निष्कलंक (निष्पाप) छल कपट रहित सरलतासे घूमते थे। आजकलके जैसे बालकोंकी तरह द्रोही कपटी चटकीले भड़कीले गुंडों जैसे कृत्य नहीं थे। इसीलिये पृथ्वी पर पुण्यकी आधिक्यता थी। सब प्रकारसे स्मृतिवान ज्ञानवान धनवान बलवान चारित्रवान, और समृद्धिशाली थे। समय पर योग्य जलवृष्टि और सुकाल होता था, परंतु अब वर्तमानमें देखते हैं कि समय पर जलवृष्टि नहीं होती, अन्नकी ठीक उत्पत्ति न होनेसे अनेकों जीव भूखों प्यासों मरते हैं प्रतिवर्ष विकट विकराल बीमारियां फैलती हैं जिससे लाखोंका संहार होता जाता है, सहस्रों घर धनहीन, द्रव्यहीन, ज्ञानहीन, व्यापारहीन हो गये। शरीरकी हालतें बिगड़ गईं, परन्तु हमने अपने पतनकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया कि इसका क्या कारण है।

भाइयो! यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो ये सब हमारे तीव्र पापाचरणोंका ही उदर्क (फल) आंखोंके सामने विकराल रूप धारणकर बुरी तरहसे त्रास दे रहा है और शिक्षा देरहा है कि अब भी सम्भलो, जरा आंखें खोलकर अपने कुआचरणोंकी ओर नजर डालो, केवल इस पंचम कालको ही मत रोओ। अपने पुरुषार्थकी ओर विचार करो कि मैं कौन हूं किस महात्माका अनुयायी हूं मेरा क्या कर्तव्य है। हम भगवान महावीरस्वामीके भक्त हैं ऐसी कोरी डींग मत मारो। सोचो, ध्यान रक्खो, जो कुछ स्वाध्याय करो या सुनो उसका खूब बार२ चिन्तवन करो, कुम्भककी तरह प्रभुके उपदेशको ग्रहण करना सीखो। "मत पठितं तदुदरे निवेदितम्" की नीति चरितार्थ मत करो। हृदयसे कपट कालिमा धोनेकी कोशिश करो। "मनमें हो सो वचन उचरिये, वचन होय सो तन सों करिये" इस समीचीन वाक्यपर अधिक बार२ ध्यान रखनेकी कोशिश करो।

(३) तीसरा रोग वृद्धविवाह है, इस रोगने सहस्रों अबलाओंको अनाथ बना डाला, जो घरोंमें बैठी २ गर्म २ श्वासें ले रही हैं और हृदयके अंधे द्रव्यके लोभी पापी मां बापोंकी दुहाई दे दे कर बुरी तरहसे आर्तनाद सुना रही हैं, परन्तु इन निर्दयी मांबापोंको जरा भी करुणा नहीं आती। इनको तो रुपयोंकी थैली बिना परिश्रमसे मिलती हैं, दया तो उसको होगी जो कष्ट सहकर कार्य करेगा। कसाईको गरीब बकरीके गलेपर छुरी फेरते क्यों दया आएगी? यदि वही छुरी उसके गले पर रखकर दुःखका अनुभव कराया जाय तब तो सम्भव है करुणा होजाय परन्तु इनको तो पैसेसे मतलब तुमको कुछ भी हो। परन्तु स्मरण रहे कि यदि इस रफ्तारको नहीं छोड़ा तो कुछ दिनों बाद समय पर उन गरीब अनाथ अबलाओंकी मुखसे निकलती हुई गर्मउश्वास क्षणभरमें जैसे ज्वालामुखी समुद्रके जलको शीघ्र शोषण कर डालती है उसी प्रकार समाजको भस्म कर डालनेमें [illegible] भी विलम्ब न होगा।

(४) चौथा रोग है—परस्परकी ईर्षाद्वेषी।

ये रोग तो अब प्रायः प्रत्येक स्थानमें हमारा धर्म कहाता है। साधर्मी भाइयोंसे निष्कपट प्रेम करो, उनके सुखदुखमें सामिल होओ, किसीकी बढ़तीमें ईर्षाभाव कदापि मत रक्खो, कृतघ्न॥ अर्थात् किसीके किये उपकारको मत भूलो। ऐसी दूषित बात मत करो जिससे अपने धर्ममें और धर्मात्माओंमें क्षोभ पैदा होजाय। निष्कारण किसीके कार्यमें बाधा मत डालो परन्तु नहीं, हमारी बुरी आदतें नहीं छूटती। मरते २ विरोधी मनुष्यसे वैर नहीं छोड़ते। हरएकसे छलकपटसे काम लेते हैं। हम दूसरोंके दुखमें हर्ष मानते हैं, तालियां ठोकते हैं सुखमें बुराईका ही सदैव विचार किया करते हैं कि कब इसका मेरी आंखोंके सामने बुरा होजाय। साथमें हम ये भी जानते हैं कि बुरा होना, उसके देवाधीन है मेरे द्वारा कुछ भी नहीं हो सकता परन्तु मूर्खतावश आदतें जारी ही रखते हैं, हम अपने मातापिताओंको बुरी तरहसे सताते हैं, उसके उपकारको कुछ भी नहीं समझते फिर अन्यकी तो बात ही क्या कहना, जो मैंने कह दिया वही ठीक है चाहे असत्य और नुकसानदायक क्यों न हो परन्तु कभी नहीं छोड़ना प्रत्युत अपनी गोष्टीका खूब संगठन बनाकर निष्कारण आपसमें क्षोभ पैदा कर लेना अच्छा है, इत्यादि जरा२सी क्षुद्र बातोंपर लड़ना झगड़ा केवल हमारा मुख्य काम रह गया है।

बस अधिक क्या लिखूं? हरएक पत्रमें विज्ञ विद्वानोंके महत्वपूर्ण समाजोपयोगी लेख प्रकाशित होते हैं परन्तु ध्यान नहीं दिया जाता अतएव लिखनेकी अपेक्षा हम लोगोंको खुद ही आगे बढ़कर समाजके रोगोंका पूर्ण उपाय करना चाहिये। रोगोंका इलाज परोपकारी निष्प्रेही परिश्रमी निर्लोभी सब प्रकारसे समर्थ स्वतंत्र प्रौढ़ विद्वान वैद्य द्वारा होसकता है किन्तु स्वार्थवश श्रीमानोंकी हांमें हां मिलानेवाले विद्वानों-द्वारा काम होना बहुत कठिन है। धनी लोग समाजके अगुए कहे जाते हैं उनको न्याय अन्याय करना घरका काम है। इनकी हांमें न कह देना आजीविकासे हाथ धो बैठना है। इसलिये लोभवश हम सत्य समीचीन बात कहनेसे थर२ कांपते हैं फिर भला ऐसे भयवान मनुष्योंके द्वारा निर्भयता कैसे प्राप्त होसकती है, वीर भक्त विद्वानों! समाजके इन रोगोंको दूर करनेकी शक्ति आपलोगोंमें मौजूद है। यदि आप अपनेको थोड़ासा निर्लोभी और सुदृढ़ बनावें तो तुम अपनी आंखोंके सामने वीरप्रभुके स्फटिक सदृश समीचीन मार्गपर समाजकी पोलों द्वारा बट्टा न लगने दो, उनको अन्यायसे रोको समझाओ, गरीबोंके उद्धारका उपाय सोचो।

भगवान महावीरने दुःखोंसे संतप्त प्राणियोंको घोर परिश्रम द्वारा सुखी बनाया था। इसलिये आपको भी अपने दुखी बहिन भाइयोंकी रक्षा करना प्रथम कर्तव्य है। हम सबको मिलकर शीघ्र वर्तमान स्वराज्यके आन्दोलनकी तरह समाजमें अविद्या, बाल्यविवाह, कन्याविक्रय, वृद्धविवाह, मृत्युभोज, अपव्यय आदि जो रोग फैल चुके हैं उनको दूर करनेके लिये सच्चे दिलसे बहुत जल्दी आगे बढ़ना चाहिये। आशा है मेरे तुच्छ निवेदनपर अवश्य ध्यान दिया जायगा। अस्तु।

—⋙⋘—

पं० आशाधरजीका किंचित् विवेचन !

[लेखक—पं० मिलापचन्दजी जैन कटारिया—केकड़ी।]

पं० आशाधरजीने सागारधर्मामृत चौथे अध्यायके श्लोक ५२की टीकामें लिखा है कि—परिगृहीता, अपरिगृहीता और प्रकट स्त्री, इनमें जिसका पति साथमें हो वह परिगृहीता स्त्री है और जो स्वतंत्र हो, जिसका पति परदेश गया हो ऐसी कुलांगना या विधवा कुलांगना अपरिगृहीता स्त्री है। और वेश्याको प्रकट स्त्री कहते हैं। इनमेंसे जो सभीका त्यागकर केवल अपनी स्त्रीमें संतोष रखता है वह स्वदारसंतोष ब्रह्मचर्याणुव्रतका धारी है। तथा जो केवल परिगृहीता अपरिगृहीता रूप परस्त्रीका त्यागी है किंतु प्रकट स्त्री कहिये वेश्याका त्यागी नहीं है वह परस्त्री त्याग नामक ब्रह्मचर्याणुव्रतका धारी है! इस प्रकार ब्रह्मचर्याणुव्रतके दो भेद किये हैं।

जब किसी भी आर्ष ग्रन्थमें ब्रह्मचर्यके इस प्रकारके भेद दृष्टिगोचर नहीं होते तब आशाधरजीको ही ऐसे कथन करनेकी क्यों आवश्यक्ता पड़ी यह विचारणीय है। यद्यपि त्याग सभी भंगसे हो सक्ता है पर इससे किसी खास व्रतका परमागममें वैसा लक्षण नहीं बांधा जा सकता। यों तो कथाग्रन्थोंमें "जो स्त्री मुझे न इच्छे उसे मैं भी न इच्छूं" ऐसा भी त्याग रावणने किया है तथा एक कथामें केवल काक मांसका त्याग भी किया है, तो क्या इससे आचार ग्रंथोंमें भी ऐसा कथन करना योग्य होसकता है? कदापि नहीं।

यही कारण है कि अकलंक, समंतभद्र, विद्यानंदि, जिनसेन, पद्मनंदि, अमितगति, स्वामीकार्तिकेय, श्रुतसागर, शुभचन्द्र, चामुंडराय, आदि ग्रंथकर्ताओंने कहीं भी आशाधरजीकी तरह ब्रह्मचर्यके दो भेद नहीं किये है। सोमदेवसूरिने ऐसा कुछ जरूर लिखा है सो वह भी ऋषि प्रणीत ग्रन्थोंके सामने अमान्य ही है। सोमदेवसूरि कोई ऋषि नहीं थे, खुद आशाधरजी ही उन्हें सोमदेव पंडितके नामसे उल्लेख करते हैं। रहा सूरि कहना सो सूरिका अर्थ तो पंडित होता है और इसीलिये कविवर अर्हद्दासने भी आशाधर नामके साथ सूरि शब्दका प्रयोग किया है। यह तो निर्विवाद है कि आशाधर गृहस्थ थे।

यह कहो कि आचार्य समंतभद्रने भी इस तरह "ब्रह्मचर्याणुव्रतके दो भेद किये हैं" ऐसा कहना सरासर झूठ है, बहुत बड़ा छल है। उनके किसी भी वाक्यसे वैसा भाव नहीं निकलता जैसाकि उनके निम्न श्लोकसे प्रकट है—

न तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।
सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसंतोषनामापि ॥ रत्न० श्रा०

अर्थ—जो पापभीरु न तो आप परस्त्रीके प्रति

गमन करता है और न दूसरोंको गमन कराता है। वह परस्त्रीत्याग नाम अणुव्रती है, वही स्वदारसंतोषनामसे भी कहा जाता है।

इसमें "वेश्यासेवन करनेवाला भी ब्रह्मचर्याणुव्रती होता है" ऐसा अर्थ कहां निकलता है? श्लोकके उत्तरार्द्धमें जो दो नाम दिये हैं वे कोई व्रतके दो भेद नहीं हैं किंतु एक ही अभिप्रायके दो नाम हैं। वेश्या, कन्या आदि मानवमात्र स्त्रीका परस्त्रीत्यागमें शुमार करनेके हेतु आचार्यने उसीका स्वदार संतोष यह दूसरा नाम दिया मालूम होता है। इससे ग्रंथकर्ताकी दूरदर्शिता प्रकट होती है और साथ ही उससे आशाधरके उक्त कथनका चकनाचूर भी होजाता है। यही नहीं ग्रंथांतरोंमें वेश्यासेवीको ब्रह्मचर्याणुव्रती माननेसे ही इंकार किया गया है। यथा—

"यो वेश्या सेवमानस्य कथं चतुर्थमणुव्रतम्"।

सुभाषितरत्नसंदोह।

वेश्या सेवीके चौथा अणुव्रत कैसा?

भगवज्जिनसेनाचार्यने ऐसी मान्यताको विडंबना पूर्ण बताया है। जैसे—

कामशुद्धिर्मता तेषां विकामा ये जितेन्द्रियाः।
संतुष्टाश्च स्वदारेषु शेषाः सर्वे विडंबकाः ॥४१॥ पर्व ३९

अर्थ—जो काम रहित जितेन्द्रिय मुनि हैं उन्हींके काम शुद्धि समझनी चाहिये। अथवा जो गृहस्थ स्वदारसंतोषी हैं उनके भी कामशुद्धि मानी गई है। बाकी तो सब विडंबना है।

इस लिये आशाधरजीका यह कथन बहुत कुछ विचित्रताको लिये हुये हैं। अस्तु, और भी आगे चलिये।

सागारधर्मामृत—चौथे अध्यायके श्लोक ५८ की टीकामें लिखा है कि 'ब्रह्मचर्याणुव्रती श्रावक किसी वेश्या वा दासी आदि व्यभिचारिणी स्त्रीको भाड़े रूप कुछ द्रव्य देकर किसी नियत-काल पर्यंत स्वीकार करता है और उतने समय तक उनमें स्वस्त्रीकी कल्पना कर उसे सेवन करता है। इसलिये उसमें बुद्धिकी कल्पनासे 'स्वस्त्री' ऐसी व्रतकी अपेक्षा होनेसे और उसे कुछ कालतक स्वीकार करनेसे सार्वकालिक व्रतका भंग नहीं होता। और वास्तवमें वह स्वस्त्री नहीं है। इसलिये व्रतका भंग भी होता है। इस प्रकार भंग और अभंग दोनों होनेसे इत्वरिका गमन (व्यभिचारिणी संभोग) भी अतीचार होता है!"

यह जो ब्रह्मचर्याणुव्रतका अतीचार लिखा है वह तो और भी अधिक गजब ढाता है। जब स्वदार संतोषीके अपनी स्त्रीके सिवा अन्य मानव मात्र स्त्रीका त्याग हो जाता है तो वह भाड़ा देकर किसी व्यभिचारिणी स्त्रीको या वेश्याको नियत कालतक सेवन करता है तो उसका वह व्रत नष्ट न होकर उसमें अतीचार ही कैसे आता है? और पैसा दे देने मात्रसे ही वह कैसे परस्त्री सेवनके दोषसे बच जाता है? अगर कोई स्त्री बिना पैसा लिये प्रेमसे ही अनुकूल होजाये तो उसका सेवन भी अतीचार हो सक्ता है या नहीं? क्योंकि पैसा भी उसे अनुकूल बनानेको ही दिया जाता है। और यदि भाड़ा देने तथा नियत कालतक भोगनेकी अपेक्षा वह स्वस्त्री होजाती है तो इस उपायसे अन्य परिगृहीत-स्त्रीका (जिसका पति मौजूद है ऐसी स्त्रीका) सेवन भी अतीचार क्यों न हो सकेगा?

अब जो स्वदार संतोषी परिगृहीता अपरिगृहीता और वेश्याको सेवनकर भी केवल सातिचार मात्र दोषी ही होगा? फिर न जाने वह अनाचारी किस क्रियासे होगा? अनाचारके (व्रतके समूल नष्ट होनेके) फिर कोई सींग पूंछ होते हैं क्या? इसी तरह परस्त्रीत्याग ब्रह्मचर्याणुव्रतीके लिये यह लिखना कि—'वह किसी विधवा कुलांगना या ऐसी सधवा जिसका पति परदेश गया हो उसका सेवन करे तो इससे उसका ब्रह्मचर्य नष्ट न होकर अतीचार मात्र लगता है।' मानों आशाधरजी ऐसी कुलांगनाओंको परस्त्री ही नहीं समझते हैं। आशाधरजीके मतानुसार तो वह स्त्री परस्त्री कही जाती है जो पुरुषके साथ ही हो। अन्यथा पतिके परदेश जाने मात्रसे ही कैसे वह अपरिगृहीत मान ली जाती है, सो समझमें नहीं आता।

लोगोंकी विवेकशून्यता तो देखो कि वे ऐसे २ कथन भी प्रमाणीक और आर्षसिद्ध करनेकी चेष्टा किया करते हैं। उनकी मोटी अकलमें यह भी नहीं आता कि जो कार्य व्रतको समूल नष्ट करनेवाले हैं उन्हें हम किसीके लिख देने मात्रसे कैसे अतीचार मानते हैं। कमसे कम अतीचारका लक्षण तो इसके साथ घटाना चाहिये। ऐसे लोगोंके लिये तो जो पूर्वकालमें संस्कृत प्राकृतमें लिख दिया गया है वही आगम है, वही पूर्ण मान्य है, फिर उसमें चाहे कुछ भी लिखा हो।

आशाधरके इस अद्भुत सिद्धांतके अनुसार अगर कोई विधवा विवाह करता है तो उसको भी ब्रह्मचर्याणुव्रतमें मात्र अतीचार ही लग सकता है। इसकी पुष्टि आशाधरके निम्नवाक्य करते हैं—

"अन्ये त्वपरिगृहीतकुलांगनागमनमप्यब्रह्मचारिणोऽतिचारमाहुः, तत्कल्पनया परस्य भर्तुरभावेन परदारत्वादभंगो लोके च परदारतया रूढेर्भंग इति भंगाभंगरूपत्वात्तस्य"। इसमें लिखा है कि "अनाथकुलांगनाके सेवनमें परस्त्री त्यागीके अतीचार यों होता है कि उसका पति तो मौजूद नहीं है, इसलिये उसे परस्त्री तो कह नहीं सकते अतः उसके सेवनसे व्रतका अभंग हुआ और लोकरूढ़िसे वह परस्त्री मानी जाती है अतः व्रतका भंग भी हुआ। इस प्रकार भंगाभंग होनेसे अतीचार ही कहा जा सकता है।" यही बात विधवा विवाहके संबंधमें भी कही जा सकती है।

यदि कहो कि "किसी नियत कालतक सेवन करनेको ही आशाधरने अतीचार कहा है न कि सार्वकालिक सेवनको और विवाहमें नियत काल नहीं रहता'। इसके उत्तरमें उनकी ओरसे भी कहा जा सकता है कि नियत कालका नियम वहां हो सकता है जो वेश्या लेकर ऐसा करती है। क्योंकि जितने भाड़ेसे जितने समय तक दोनोंका ठहराव हुआ है उसके बाद वह उसकी नहीं रहती है, फिर वह स्वस्त्रीसे परस्त्री हो जाती है। किंतु विवाह करानेवाली उमर भरतक उसकी स्वस्त्री बने रहनेकी शर्त करती है। ऐसी अवस्थामें परस्त्री त्यागी ब्रह्मचारीके लिये विधवाको उसकी मर्जीके माफिक घरमें रख लेने या लौकिक रीतिसे विवाह कर घरमें रख लेनेमें आशाधरजीके मतके अनुसार सिवा अतीचारके

और कोई अतीचार नहीं प्रतीत होता है। बल्कि विवाह करनेवालेके तो अतीचार भी नहीं लगता है। क्योंकि पं० आशाधरने लोकमें परस्त्री माने जानेके कारण भंग कहा है सो जब तो लोकमें इसे विवाह किये बाद कोई परस्त्री भी नहीं कह सकेगा! यदि कहो कि 'यह तो आशाधरने अन्य आचार्योंकी सम्मति लिखी है तो उनका नाम लिखना चाहिये था या वाक्य व श्लोक देने चाहिये थे जैसे कि अन्यत्र भी दिये हैं। तथा अन्यकी सम्मति भी हो तो आशाधर भी तो इसे ठीक समझते हैं तभी तो इसका उल्लेख किया है।

आशाधरके इस 'नियतकाल' रूप अनोखे सिद्धांतके अनुसार तो कोई भी अणुव्रतधारण करना बिल्कुल बच्चोंका खेल होगया है। क्योंकि हत्यारासे हत्यारा भी कौनसा सदा आठ पहर ही खड्गका वार करता रहता है व महा चोर और महा झूंठा भी कौनसा सदा ही चोरी और झूंठ बोला करता है। इससे क्या ये भी अणुव्रती समझे जाने चाहिये?

अगर यही सिद्धांत हम स्त्रियोंके ऊपर घटाने लगें तो वहां भी स्वपतिसंतोष और परपुरुष त्याग नामके दो भेद ब्रह्माणुव्रतके करके स्त्रियोंको खुली आज्ञा देदें कि तुम भी किसी परपुरुषको कुछ द्रव्य देकर किसी नियतकाल उसके साथ संभोग करने लगो तो तुमारे स्वपतिसंतोष और परपुरुष त्याग नाम शील सर्वांशमें नष्ट न होगा!!! साथ ही यहां यह भी पूंछा जा सक्ता है कि आशाधरके इस निरूपणके अनुसार चलनेवाला पुरुष जिस समय वैसी स्त्रीके साथ समागम करेगा उस समय पुरुषकी तरह वह संभोग करानेवाली स्त्री भी अनाचारसे रहित समझी जायेगी या नहीं? अगर नहीं तो क्यों नहीं? जो कारण पुरुषके ब्रह्मचर्याणुव्रतको कायम रखनेमें हैं वे ही यहां स्त्रीके लिये भी हैं। ऐसा कोई उदाहरण बतलाइये कि स्त्री पुरुषकी रति क्रियामें दोनोंमें कोईएक दोषी हो और दूसरा न हो।

मतलब कि आशाधरका भाड़ा देकर नियतकाल स्वस्त्री बनानेका कथन तो बिल्कुल ही शिथिलाचारका पोषक और बहुत ही आक्षेपके योग्य है। बलिहारी है इसको प्रमाणभूत माननेवाले पंडितोंकी बुद्धिको जो ऐसे२ कथन भी उनके दिमाग शरीफमें केवली वाक्य तुल्य मान्य किये जाते हैं!

इस प्रकारके वक्तव्यसे यह आप ही सिद्ध होजाता है कि लोक जिसे व्यभिचारिणी और वेश्या कहते हैं वह आशाधरके मतसे ब्रह्मचारिणी है। क्योंकि ब्रह्मचारी पुरुष भाड़ा देकर जब इनके साथ समागम करते हैं तब ये किसी नियत कालतक उनकी स्वस्त्री बन जाती है तो इन स्त्रियोंके भी वे पुरुष उस वक्त स्वपति बन जाते हैं। अगर स्वपति न माने जाकर वे परपुरुष ही समझे जावें तो ये स्त्रियें भी उनके स्वदार नहीं मानी जा सकती। जहां परपुरुष ऐसी कल्पना है वहां भोगी जानेवाली स्त्री भला कैसे स्वस्त्री समझी जा सकती है?

मजा तो यह है कि पं० आशाधरजी अपने इस व्यभिचार पोषक सिद्धांतमें बड़े२ ऋषि मुनियोंको भी शामिल करना चाहते हैं। वे लिखते

है कि "इत्वरिका परिगृहीतापरिगृहीतागमनं" सूत्रसे उमास्वामीने तत्वार्थ शास्त्रमें भी ऐसा ही कहा है। गमन शब्दका संभोग अर्थ करके आप निज मंतव्यकी पुष्टि करते हैं।

विद्यानंदाचार्यने इसी सूत्रकी व्याख्यामें लिखा हैं—

चतुर्थस्य व्रतस्यान्यविवाहकरणादयः।
पंचेतेतिक्रमा ब्रह्मविघातकरणक्षमा ॥

"स्वदारसंतोषव्रतविहननयोग्या हि तदतीचारा न पुनस्तद्विघातिन एव पूर्ववत्"

इसमें लिखा है कि "ब्रह्मचर्यनाम चतुर्थ अणुव्रतके ये परविवाह करणादि पांच अतीचार कहे हैं वे ब्रह्मचर्यके नष्ट करनेमें समर्थ हैं। यानी इनमें स्वदारसंतोषव्रतके खंडन करनेकी योग्यता है इसलिये अतीचार कहे जाते हैं। वे स्वयं नष्ट नहीं करते हैं"

इससे सिद्ध है कि विद्यानंदिस्वामी उन्हें अतीचार मानते है जो व्रतके नष्ट करनेमें केवल परंपरा कारण पड़ते हों, किंतु स्वयं नष्ट नहीं करते हों। इसीको उन्होने "न पुनस्तद्विघातिन एव" पदसे कहा है। तथा ऐसा ही व्रतोंके अतीचारोंमें कहा है। इस विवेचनसे गमन शब्दका सेवन अर्थ कभी नहीं होसक्ता है जैसा कि आशाधरजीने लिखा है। क्योंकि "सेवन करना" यह ब्रह्मचर्य व्रतके नष्ट करनेमें कारण नहीं होता है इससे तो व्रत ऐसा नष्ट होता है कि कुछ भी बाकी नहीं बचता है। इसलिये गमन शब्दका श्लोकवार्तिकके अनुसार ठीक अर्थ यही हो सकता है कि स्त्रियोंके यहां राग भावसे आना जाना वार्तालाप करना आदि। इनको विना अन्य सभी स्त्रियोंके साथ ऐसे करनेको श्रीविद्यानंदने अतीचार कहा है क्योंकि परिगृहीत और अपरिगृहीतमें सभी स्त्रियें आगई हैं। पं० आशाधरकी तरह यहां वेश्यादिको बाहर नहीं रक्खा है। तथा विद्यानंदकी तरह अन्य अकलंक, पूज्यपाद, अमृतचंद्र आदि आचार्योने भी स्वस्त्रीके सिवा अन्य सभी स्त्रियोंके त्यागको ब्रह्मचर्याणुव्रत कहा है। पुरुषार्थ सिद्ध्युपायमें लिखा है कि—स्वस्त्रीके सिवा अन्य सभी स्त्रियोंके सेवनका त्याग करदेना चाहिये। यथा—

"निःशेषशेषयोषिन्निषेवणं तैरपि न कार्यम्"।

इस प्रकरणको नीचे प्रश्नोत्तरोंसे लिखते हैं—

प्रश्न—गमन शब्दका तो अर्थ सेवन निकलता है क्योंकि किसीको कहा जाये कि अमुक परस्त्री गामी है तो इसका यही मतलब होता है कि वह परस्त्री सेवन करता है?

उत्तर—गमन शब्दका प्रसिद्ध अर्थ तो जाना है न कि सेवन करना। फिर भी शब्दोंका अर्थ प्रकरण देखके तदनुसार ही किया जाता है। अहिंसाणुव्रतमें 'वध' नामक अतीचार लिखा है सो वधका प्रसिद्ध अर्थ तो प्राणव्यपरोपण होता है। जैसे कहते हैं कि रामरावणके युद्धमें करोड़ों मनुष्योंका वध हो गया तो इसका यही मतलब निकलता है कि वहां करोड़ों आदमी मारे गये। इससे क्या 'वध' अतीचारका प्राणव्यपरोपण अर्थ लेलिया जाना चाहिये?

प्रश्न—अतीचारोंका प्रकरण है इसलिये यहां वधका दण्ड चाबुकसे पीड़ा पहुंचाना अर्थ लेना चाहिये। क्योंकि प्राणव्यपरोपण अर्थ ग्रहणसे अतीचार न रहकर अनाचार होजाता है।

उत्तर—तो फिर अतीचारोंका प्रकरण ही नहीं रहता है। यहां भी गमन शब्दका अर्थ जाना जाना चाहिये न कि काम सेवन; क्योंकि इनसे भी अनाचारका प्रसंग आता है।

प्र०—अहिंसाणुव्रतमें तो 'वध' अतीचारका वर्णन करते हुये खुलासा लिख दिया है कि वधका प्राणव्यपरोपण अर्थ नहीं लेना। इसतरह गमन शब्दमें क्यों नहीं लिखा कि गमनका अर्थ नहीं लेना।

उ०—आचार्योंको मालूम न था कि आगे ऐसेऐसे लोगोंका अवतार होगा जो प्रकरणको नहीं देखेंगे और शब्दको पकड़कर यद्वातद्वा अर्थ करने बैठ जायगे। श्री विद्यानंदने वध अतीचारका वर्णन करते हुए लिखा है कि—

'प्राणिपीडाहेतुर्बंधः कशाद्यभिघातमात्रं न तु प्राणव्यपरोपणं तस्य व्रतनाशरूपत्वात'

इसमें वध अतीचारका प्राण व्यपरोपण अर्थ नहीं लेनेमें हेतु दिया है व्रतका नाश होना। इस आगे सब अतीचारोंके अर्थ करनेमें भी इसी हेतुको ध्यानमें रखना चाहिये। विद्यानंदने ब्रह्मचर्याणुव्रतके अतीचारोंके वर्णनमें 'पूर्ववत' पद देकर खुलासा कर दिया है कि इन अतीचारोंका भी ऐसा अर्थ कदापि न करना चाहिये जो व्रतका नाश करनेवाला हो। इससे बढ़कर और क्या स्पष्ट लिखा जा सक्ता है।

प्र० मगर सभी ग्रंथकारोंने इत्वरिकागमन लिखकर ही क्यों विराम लेलिया? किसीको तो खुलासा करना चाहिये था। क्या इसमें कुछ न कुछ रहस्य नहीं है?

उ० किन्हीं ग्रंथकारोंने खुलासा भी किया है। जैसा कि श्रुतसागरी टीकाकार और स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षाके टीकाकारके निम्न वाक्योंसे प्रकट है—

"गमनेइति कोऽर्थः—जघनस्तनवदननिरीक्षणं संभाषणंपाणिभ्रूचक्षुरंगादि संज्ञाविधानमित्येवमादिकं निखिलं रागित्वेन दुश्चेष्टितं गमनमित्युच्यते"

सकलकीर्तिजीने भी प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें इत्वरिकाकी इच्छा करने मात्रको इत्वरिकागमन अतीचार कहा है। न कि संभोग करनेको।

प्र० तुम तो कहते हो पर श्लोकवार्तिक, राजवार्तिकमें कामतीव्राभिनिवेशनामके अतीचारमें दीक्षिता, अतिबाला, तिर्यंचिणी आदिका उल्लेख किया है वह कैसे है?

उ०—ठीक है उसे भी समझ लीजिये। श्लोकवार्तिकमें वे वाक्ये यों हैं—

"दिक्षिताअतिबालातिर्यग्योन्यादीनामनुपसंग्रह इति चेन्न, कामतीव्राभिनिवेशग्रहणात् सिद्धेः" राजवार्तिकमें भी ठीक इन्हीं अक्षरोंमें कहा गया है किन्तु वहां इतना विशेष और है—'उक्तोऽत्र दोषो राजभयलोकापवादादि'।

इनका भावार्थ ऐसा है कि शंकाकारने शंका की है कि दीक्षिता, अतिबाला तिर्यंचिणी इनका समावेश इत्वरिका गमन नामके अतीचारमें इनको लिया गया है। क्या इनके साथ किया हुआ काम भाव ब्रह्मचर्यके लिये बाधक नहीं है? इसका उत्तर आचार्य देते हैं कि इनका समावेश कामतीव्राभिनिवेश नामके अतीचारमें करना चाहिये। क्योंकि श्रृंगार विहीन नीरस

राष्ट्रीय सत्याग्रहसंग्राममें जेल जानेवाले दि० जैन वीर-



बाबू कीर्तिप्रसादजी जैन वकील गुजरानवाला।



ला० तिलकचन्दजी जैन-गुजरानवाला।



बा० अयोध्याप्रसादजी गोयलीय जैन 'दास''-देहली।

राष्ट्रीय सत्याग्रहसंग्राममें जेल जानेवाले दि० जैन वीर–



चंदूलाल जमनादास वखारिया (झवेर)–मुंबाई।



हीरालाल परशोत्तमदास शाह (झवेर)–मुंबाई।



दाहोद नि० (१) जवेरीलाल कस्तूरचंद जैन (२) पन्नालाल डाह्यचंद जैन और (३) कचरामल पृथ्वीराज जैन।

जैनविजय प्रेस, सूरत।

उदासीन वंदनीया दीक्षिता और अविवाहिता व तिर्यंचिनीके प्रति काम विकारके भाव कामकी तीव्रतासे ही हो सकता है।

इन वाक्योंमें तो कहीं भी आशाधरके मतसे अनुकूलता नहीं है। यहां दीक्षिताके साथ संभोगकी कल्पना करना तो असंगत है। दीक्षिता तो क्या तिर्यंचनीका सेवन भी सकलकीर्तिने प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें शीलसे च्युत होना माना है। और जो अकलंकाचार्यने इसमें राजभय लोकापवादका दोष कहा है उसका तात्पर्य यह है कि पर विवाहकरण, इत्वरिका गमन आदि किन्हीं अतीचारोंमें राजभयका दोष नहीं है किंतु दीक्षितादिके साथ की हुई प्रवृत्तिसे राजभय लोकापवादादिका भी दोष है। इसी विशेषबातको दिखलानेके लिये अकलंकस्वामीने 'उक्तोऽत्र-दोषो राजभयलोकापवादादि' का उल्लेख किया है, और कोई कारण नहीं है। कुछ भी हो अतीचारके प्रकरणमें किसी वाक्यका अन्यनात्मक अर्थ तो कदापि तीन कालमें भी नहीं हो सकेगा।

हम पूछते हैं कि आशाधरके मतानुकूल स्वदार संतोषी नामका ब्रह्मचर्याणुव्रती तो अन्य स्त्री और वेश्याको भाड़ा देदेकर व किसी नियत कालतक स्वस्त्रीकी कल्पनासे भोग भोगकर काम करता रहेगा तथा दूसरा भेद परस्त्री त्यागी ब्रह्मचर्याणुव्रती भी जिसके वेश्या सेवनकी तो आज्ञा ही है उसके अतिरिक्त अन्य स्त्रियोंको वह भी भाड़ा देकर स्वस्त्रीकी कल्पनासे सेवन करता रहेगा तो यह समझमें नहीं आता कि आशाधरजीने क्या सो ब्रह्मचर्यके भेद किये और कौनसे आत्महितके वास्ते? इसमें प्रयोजन निकला? यह तो एक प्रकारसे खाली वाग्जाल हुआ। एक महा विद्वानकी कृतिमें इतनी निःसारता! किमाश्चर्यमतः परं!

अगर कहो कि 'ऐसे अतीचार बताये हैं वे छोड़नेके लिये हैं कोई ग्रहण करनेके लिये थोड़े ही हैं' सो तो ठीक है, किंतु हमारा कहना यह है कि इन्हें अनाचार कहना चाहिये था। ऐसा पापाचार अतीचार कहलानेके योग्य नहीं है। अतीचार कहनेसे मुमुक्षु इन्हें इनके दर्जेका पाप समझकर इनके त्यागमें उपेक्षा कर सकता है।

स्ववचन विघात—

पं० आशाधरने सागारधर्मामृतके चौथे अध्यायके श्लोक १८की टीकामें अहिंसाणुव्रतके अतीचारों-का वर्णन करते हुये लिखा है कि—" अंतरंग व्रतके भंग होने और बहिरंगव्रतके पालन होनेसे बधबंधनको अतीचार संज्ञा दीजाती है" इसी बातसे अब हम आशाधरोक्त ब्रह्मचर्याणुव्रतके अतीचारोंका विचार करते हैं तो वे अनाचार सिद्ध हो जाते हैं। क्योंकि इनमें ब्रह्मभाव रूप अंतरंग व्रतका नाश तो है ही और त्यागी हुईका सेवन करनेसे बहिरंग व्रतका नाश भी दिख ही रहा है। इसी तरह उसी अध्यायके श्लोक ५९में जो पं० आशाधरजीने परस्त्री सेवनमें विशेष द्रव्यभाव हिंसाका सद्भाव बताया वह इन अतीचारोंमें भी प्रकट है। इस प्रकार पं० आशाधरजीके वचन खुद अपने ही सिद्धांतके घात करनेवाले हैं।

पूर्वापर विरोध।

आगे इत्वरिकादि अतीचारके विवेचनमें आशाधरजी फरमाते हैं कि—"स्वदार संतोषीके मैंने

वेश्यादिमें मैथुन करनेका ही त्याग किया है विटत्वादिका नहीं' ऐसा समझकर विटत्वादि करे तो अतीचार होता है" । इसमें संभोगके त्यागका उल्लेख है । इससे आशाधरजीने इत्वरिका-गमनमें जो कुछ कहा है वह परास्यायी हो जाता है ।

दूसरे अध्यायके श्लोक १८ में कन्यादानको महापुण्य बतलाया और आगे चलकर परविवाह-करणको जो कि कारितरूपसे महापुण्य होता है अतीचार बतलाया है, इत्यादि कथन बहुत कुछ पूर्वापर विरोधको लिये मालूम होते हैं ।

क्रमभंग कथन ।

परस्त्रीत्यागी ब्रह्मचारीके अध्याय ३ श्लोक २१में 'किसी कन्याके साथ गांधर्व विवाहका निषेध करना और वेश्यासेवनकी छुट्टी देना ऐसा है जैसा कि दिवा भोजनका त्याग कराकर रात्रि भोजन कराना । इससे अधिक और क्या क्रमभंगता होगी ?

विलक्षण कथन ।

चौथे अध्यायके श्लोक ५८ की टीकामें लिखा है कि 'स्वदारसंतोष व्रतका धारी यदि अपना दूसरा विवाह करता है तो उसके परविवाह करण नामका अतीचार लगता है' आपके इस उपदेशने तो चक्रवर्ति पदके धारी तीर्थंकरोंकी भी खूब खबर ली है । हजारों कन्याओंसे विवाह करनेके कारण वे भी स्वदारसंतोष ब्रह्मचर्यसे गिरादिये गये ! इसी श्लोककी टीकामें आगे चलकर लिखा है कि—

"जिस दिन अपने पतिकी बारी किसी सौतके यहां हो उस दिन वह उसे सौतके यहां जानेसे रोककर उससे स्वयं संभोग करने लगे तो उस स्त्रीके ब्रह्मचर्याणुव्रतमें अतीचार लगता है । क्योंकि उस दिन वह अपना पति भी परपुरुषके समान है !"

यह कथन भी कैसा अनोखा है ! इससे स्त्री भर्तारका संबंध एक तरहसे गुड्डा गुड्डीका खेल होजाता है । जांबवतीने सत्यभामाके यहां जाते हुये कृष्णनारायणको जबसे रोककर उनसे संभोग किया, तो पं० आशाधरजीके मतसे जांबवती जैसी पतिव्रता रानी भी व्यभिचारिणी हो गई !

इत्यादि निरूपणसे पं० आशाधरजीके कोई मूल्य नहीं रहता है । और न ऋषि वाक्योंकी समानता नहीं कर सके । उनका यह ग्रंथ खासकर शिथिलाचारका पोषक है ।

आश्चर्य तो यह है कि साधारण ही नहीं कुछ विशेषज्ञ भी ऐसे हैं जो पं० आशाधरजीके परमभक्त हैं और इस ग्रंथको यहांतक चिपटाये बैठे हैं कि इसे विद्यालयोंके पठनक्रममें भी रख दिया है और इस तरह विद्यार्थियोंके लिये उनके प्रारंभिक जीवनमें ही उन्मार्गका बीजा-रोपण किया है । अगर ऐसा ग्रंथ छात्रोंको व्युत्पन्न बनाता है तो भी कुछ कामका नहीं है । क्योंकि—

'मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः'

खेद है कि जिस जैनधर्ममें आप्त तककी परीक्षा की जाती है उसीमें ऐसे कथन भी आगमके नामसे आंख मींचकर माने जाते हैं !

———

चारित्रधर्मः ।

[लेखकः—श्री० पं० रवीन्द्रनाथो जैनः न्यायतीर्थः—रोहतक ।]

अतीतकालेऽस्मिन् ज्ञानिनो बभूवुः बहवः भविष्यन्ति भवन्तश्चेति, परञ्च गीयते तस्यैव महिमा दृश्यते यत्र चारित्रगुणप्रकर्षः ।

जैनसम्प्रदाये चतुर्विंशतिजिनवराः, अन्यत्र बुद्धरामप्रभृतयो येऽपि प्रसिद्धिमगुस्ते चारित्रगुणप्राधान्यतयैव । इदानींतनकालेऽपि महात्मागांधी महाशयोऽपि चारित्रगुणप्रकर्षादेव पूज्यत्वमवाप । सन्ति ततोऽन्ये बहवः विशिष्टज्ञानिनः भारतवर्षे अमेरिकाप्रदेशे च, परञ्च नास्तीयती विश्रुतिस्तेषां । किमत्र कारणं ? चारित्रप्रकर्षे सत्येव भवत्यात्मोन्नतिः । सत्यपि विशिष्टज्ञानवति चारित्रोन्नतिमन्तरेण भौतिकज्ञानोन्नत्यां नास्त्यात्मनो प्रसादः । आत्मप्रसादमन्तरेण नास्ति सुखं, सर्वप्रयासः विफल एव । यस्यात्मप्रसत्तिरासीत तस्य सिद्ध्यन्ति सर्वाणि कार्याणि क्षणेन, शत्रुर्मित्रं भवति । चारित्रप्रकर्षात् अणिमामहिमाद्यो ऋद्धयो जायन्ते । अवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानानि अपि चारित्रप्रकर्षादेव भवंति । नहि कस्यचित् पुस्तकाभ्यासेन चावधिकेवलज्ञानादिकं जातं । चारित्रप्रकर्षे सति कर्माणि निर्जीर्यंते । ततो केवलज्ञानादिकं भवति । केवलज्ञानिनोऽपि चारित्रपूर्त्तिमन्तरेण मुक्तिर्नैव जायते, किन्तु अष्टप्रवचनमात्राणाम् (पञ्चसमितयः तिस्रः गुप्तयः) ज्ञानादेव चारित्रप्रकर्षे सति कैवल्यावाप्तिरिति परमागमे श्रूयते ।

प्रवचने यानि च चतुर्दशगुणस्थानानि संति तान्यपि न ज्ञानहेतुकानि प्रत्युत चारित्रहेतुकान्येव । तथा हि भगवत्कुन्दकुन्ददेवैरुक्तं—

चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समोत्ति णिद्दिट्ठो ।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो ॥

चारित्रमेव धर्मः, धर्मश्च शमरूपः, मोहक्षोभविहीनात्मकः, आत्मनः परिणामो हि शमो भवति । इत्यत्र मोहः मोहनिमित्तकः, क्षोभः योगनिमित्तकः, तयोरभावेन शमो भवति ततश्च चारित्रधर्मः जायते । तत्र मोहनीयो द्विविधः—दर्शनमोहनीयः चारित्रमोहनीयश्चेति । आद्यानि चत्वारि गुणस्थानानि दर्शनमोहनीयहेतुकानि । मिथ्यात्वे मिथ्यात्वोदयः, मिश्रे मिश्रोदयः, सम्यक्त्वे सम्यक्त्वोदयः, सासादने अनंतानुबंधिन उदयः । अष्टौ गुणस्थानानि चारित्रमोहनीयहेतुकानि, त्रयोदशचतुर्दशमयोर्न भावाभावहेतुके, इत्येवं प्रकारेण चारित्रविकासहेतुप्रधानान्येव गुणस्थानानि संति, सत्यां चारित्रपूर्तौ मोक्षो भवति । ईदृशी चारित्रमहिमा ।

किन्तु इदानीं तत्रैव चारित्रधर्मे बहवः स्वच्छन्दचारिणः स्वविषयवासनापुष्टिं कुर्वाणाः यदा

बहुशः पाखण्डान् उपदिशन्ति च, सन्ति ते जिन-
मार्गपराङ्मुखाः। अमयशा सकलचन्द्रेणोक्तं—

स्वच्छन्दवृत्तेर्जगतः स्वभावादुच्चैरनाचारपथेष्वदोषं।
निर्घुष्य दीक्षासममुक्तिमानास्त्वदृष्टिबाह्या बत
विभ्रमन्ति ॥२०॥ युक्त्यनुशासनम्।

किमस्य कारणं ? तत्र वक्ति स्वामी—

कालः कलिर्वा कलुषाशयो वा
श्रोतुः प्रवक्तुर्वचनानयो वा।
त्वच्छासनैकाधिपतित्वलक्ष्मी
प्रभुत्वशक्तेरपवादहेतुः ॥

श्रीवट्टकेरस्वामिना मूलाचारे प्रोक्तं—

अरसस्स जीवियस्स य जिब्भोवत्थ णकारण जीवो।
मरदि य मारावेदि य अणंतसो सव्वकालम्हि ॥९८७

जीवोऽयं अर्थस्य प्रयोजनीभूतवस्तुनः जीवि-
तस्य स्वायुषः जिह्वोपस्थयोः कारणं, स्वयं म्रियते
अपि च सर्वकालम् अनंतशः प्राणिनाम् मारयति।

जिब्भोवत्थणिमित्तं जीवो दुक्खं अणादि संसारे।
पत्तो अणंतसो तो जिब्भो वत्थे जह दाणिं ॥९८८

जीवोऽयं अनादिसंसारे जिह्वोपस्थनिमित्तं अनं-
तशः दुःखं प्राप्तः अतः जिह्वोपस्थस्य इदानीं जयः

चदुरंगुला य जिब्भा असुहा चदुरंगुलो उवत्थो वि।
अट्ठंगुलदोसेण दु जीवो दुक्खं खु पप्पोदि ॥९८९॥

जीवस्य चतुरंगुला जिह्वाशुभा, उपस्थोऽपि
चतुरंगुलोऽशुभः, अष्टांगुलदोषमात्रेणैव जीवः
दुक्खं प्राप्नोति।

अधुनापि बहवः विज्ञानिनोऽपि चारित्रमंतरेण
जिह्वोपस्थयोरवशीकरणेन कुमार्गं पालयन्ति उप-
दिशंति च। सन्तु च ते यतिम्मन्याः ब्रह्मचारि-
मन्याः पंडितमन्याः परस्योपकारस्य नो प्रदक्षा एव
लोकवञ्चनार्थं, स्वप्रतिष्ठार्थं, उदरार्थं, ये जि-
नधर्मविराधना कुर्वंति नास्ति तेषां तरणोपायः।

अतः सर्वेषां भगवतोक्त आचरणीयश्चारित्रधर्मः
क्रमशः वृद्धिं नीत्वा च मोक्षोपायः करणीयः
तदेव नरजन्मनः साफल्यं भवेत्।

यदार्थतो ये मुमुक्षुरात्महितेच्छवः तेषां प्रव-
चने कथितं मार्गं—

भिक्षां चर, अरण्ये वस, स्तोकं जेम, मा बहु
जल्प, दुःखं सह, निद्रां जय, मैत्रीं भावय, सुष्ठु
वैराग्यं पालय व्यवहारबुद्धिर्मा भव, ज्ञानदर्शन
संपत्तिं त्यक्त्वान्यं मा भज। यतश्च—

ममेदमस्याहमितिग्रहेण ग्रस्तो वराकः कथमेष
जन्तुः अणुपमानस्य सुखस्य हेतुः कथं गिरी-
न्द्रोपममभ्युपैति ॥ चन्द्रप्रभकाव्ये। एकाग्रमनाः
भव, निरारंभः वस, कषायपरिग्रहं त्यज,
आत्मनि चेष्टां कुरु, श्रेयोमार्गे कस्यचित्
संगापेक्षां मा कुरु, तदेव कल्याणप्राप्तिर्भविष्यति।
अयमेवास्ति परमचारित्रधर्मः।

लाख टकी एक एक घड़ी है।

सोवत ही खोवतमें, आधी आयु बीति चली।
आधी काम धंधनुमें, आधी हाथ परी है॥

तो हू तू अजान बनि, भूलि रह्यो जग बीच।
भूलि रह्यो भगवान, कौनें मति हरी है॥

सोचै नाहि काहू हाय! माथे-रह्यो मंडराय।
फेरि पछिताय, कहा काज तेरो सरी है॥

अब गुरु ठाढ़े 'प्रिय' टेरत पुकारि तोहि।
जागि! जागि!! लाख टकी एक एक घरी है॥

"प्रिय"

सुधार पंचक ।

[लेखकः—पं० गुलजारीलाल जैन चौधरी–छतरपुर ।]

आज भारतकी अवस्था अत्यंत जीर्ण-शीर्ण है। इसीसे भारतवासी जैनियोंकी अवस्था भी अति शोचनीय होती जाती है। हमको इसका जरा भी ख्याल नहीं आता है। जब हम इस दशाका ध्यान करते हैं तो मालूम पड़ता है कि हम केवल नाम मात्रके जैनी हैं। हमारा सर्वोत्कृष्ट धर्म "अहिंसा" है, वह भी हम नहीं पालते हैं! और अहिंसावादी बनते हैं यही विचित्र बात है। अस्तु।

१. अहिंसा—जबसे अहिंसाको छोड़कर हिंसाको अपनाया है तबसे क्या भारत, या जैन समाज सब ही अवनत हैं। हमारे मंदिर, जो कि परम पवित्र, पूज्यनीय धर्म संस्थापक अर्हंतदेवके गृह हैं उनमें अपवित्र वस्त्रोंकी धूम दृष्टिगोचर होती है। पर्दे रेशमके होते हैं। जिनमें हजारों जीवोंकी घात होती है। पवित्र शास्त्रोंके वेष्टन भी विदेशी वस्त्रोंके हैं, उन्हींको आगे रखकर "ॐकार" की ध्वनि छोड़कर जनताको आगमका अर्थ समझाते हैं। जब कभी किसी अपवित्र वस्तुसे हमारा स्पर्श होजाता है तो हाथ धोते हैं पर यहां तो सब कुछ पवित्र है। और पुजारी लोग भी विदेशी वस्त्रोंको पहिनकर ही पूजन-प्रक्षाल करते हुए भी नहीं लजाते हैं। जब हमारे धर्मी [illegible] क्या दोष! हे युवको! सोचो! इस बहुत जरासी भूलसे अपने अमूल्य धर्मरत्नको मत खोओ। फिर इसका पाना दुर्लभ है। अगर कहींपर हिंसा होती है तो हम लोग नाक-भौं सिकोड़ते हैं, और हाय २ चिल्लाते हैं, परन्तु जिन वस्त्रोंमें हजारों जीवोंकी चर्बी लगी है, वहांपर जरा चींचपड़ भी नहीं, यह क्यों?

हमारे सुन्दर नवयुवकोंको स्वदेशी वस्त्र पसंद नहीं, शरीरमें चुभते, कष्ट देते हैं! और शरीरका सौंदर्य भी मनमोहक नहीं होता है, इसीसे मुलायम, पतले, चर्बीवाले वस्त्रोंसे शरीर सजाते हैं। इनको देश, धर्म, समाजका जरा भी ख्याल नहीं है। यदि हम लोग इन वस्त्रोंका मोह नहीं छोड़ सकते हैं, तो फिर "अहिंसा" की इतनी लम्बी डींग क्यों मारते हैं? हमारा अब कर्तव्य होना चाहिये कि अहिंसा धर्मको न भुलाकर धर्मस्थान, धार्मिक कार्योंके लिये तो शुद्ध स्वदेशी वस्त्र ही काममें लावें। अगर इतना भी नहीं कर सकते हैं तो फिर मैं कहूंगा कि जैनी अहिंसावादी वीरकी संतान नहीं हैं, क्योंकि वीर प्रभुने पहिले भारत व्यापी हिंसाको हटाकर अहिंसाका झंडा फहराया था, तो

क्या वीरकी संतानसे इतना भी सूक्ष्म त्याग नहीं हो सक्ता है ? यदि नहीं हो सक्ता है तो वीरकी संतान कहलाना छोड़ देना चाहिये।

अगर और भी विदेशी वस्त्रोंकी धूमका बाजार देखना हो तो पर्यूषणपर्व, दीपावली आदि पर्वों पर देखिये। बिना विदेशी वस्त्रोंके बड़ा आदमी नहीं, इसीसे आज व्यापार भी नष्टप्राय है। लोग दुखी हैं, कपड़ोंके एजेंट हैं, धनहीन हैं। यह सब एक अहिंसा धर्मको न माननेका फल है। अहिंसा वीरताका पाठ सिखलाती है, शूरवीर बनाती है, देश-धर्मको जाननेवाला बनाती है। यदि भारत और जैनधर्मकी उन्नतिकी जरा भी लगन हमारे हृदयमें है तो अहिंसाको अपनाना होगा। यदि नहीं अपनाया तो फिर सुधार करना दुष्कर है। इसलिये प्रत्येक भारतवासीका प्रधान कर्तव्य है कि वह अहिंसाको सच्चे हृदयसे पालकर सुधार करें।

२-फूट-इसका अर्थ द्वेष, कलह, ईर्षा है। इस महारानीका तो भारतवर्षमें राज्य है। जहांपर दो आदमी हैं वहां पर भी कलह, जहां अनेक हैं वहांकी तो बात क्या। भाई-भाई, पिता-पुत्र, पति-पत्निमें अनबन है। एक दूसरेको कलङ्क लगाकर झगड़ा करते हैं। पर जैन समाज भी इससे छूटा नहीं है। जैनियोंकी संख्या केवल ११॥ लाख है। उसीमें दिगम्बर-श्वेताम्बर ये दो फिरके हैं। दिगम्बरोंमें अनेकों जातियां, जिनकी वजहसे समाजोन्नतिमें बड़ा धक्का पहुंच रहा है। इन जातियोंने बाबू पण्डित पार्टी तैयार की है, जोकि आपसमें एक दूसरेका स्वागत गालियोंसे करते हैं।

एक पार्टीवाले तो लकीरके फकीर रहना ही पसंद करते हैं। जहां सुधारकी बात आई कि "धर्मविरुद्ध धर्मविरुद्ध" चिल्ला २ कर धर्मकी दुहाई देकर समाजको ठगते हैं। समाज भोली है, धर्मको पूरी अंध होकर मानती है, इसी लिये धर्म विरुद्धतासे डरती है। इन धर्म शब्दका भी अर्थ मालूम नहीं होगा। शास्त्रोंके श्लोक उद्धृत करते हैं पर अर्थका अनर्थ किया है। इसीसे ये जबरदस्त दो पार्टीयां जैन समाजकी क्षतिका कारण है। सुधार तो अवश्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, समयकी स्थितिको देख करना चाहिये। अगर पूर्वके जमानेका ख्याल करे तो अब कुछ भी उस समयकी स्थिति नजर नहीं आवेगी। फिर सुधारके विरोधियोंको इस प्रकारसे नहीं रहना चाहिये। मैं बकनेकी अपेक्षा करना श्रेष्ठ समझता हूं। भगवान् "आदिनाथ" ने भी समयानुकूल व्यवस्था की थी। इसलिये पार्टियोंका ख्याल छोड़ देना चाहिये।

श्वेताम्बर-दिगम्बरोंमें जबर्दस्त फूट है। तीर्थों, मन्दिरोंके लिये हजारों रुपया पानीकी तरह बहाया जाता है। धर्म तीर्थस्थान, मंदिर, शास्त्रोंमें नहीं है वह आत्माका धर्म है, तीर्थोंके मामलोंमें हजारों रुपयों पर पानी फिर चुका, और फिर भी उम्मीद है। अगर इस विषय पर दोनों पक्षवालोंने गहन विचार किया होता तो इस प्रकारके मामले कदापि नहीं चलते। और धार्मिक मामलोंके लिये अदालतों जैसे स्थानोंका

शरण लेकर धन और समय नष्ट नहीं होता। इसलिये अब भी जो कुछ हुआ सो हुआ, आगेको विचार करना चाहिये। और आपसी फूटको हटाना उचित है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक स्थानकवासियोंमें अगहद फूट है। विरोधमें ही हजारों रुपया नोटिसोंमें खर्च किये जाते हैं, जिसका नतीजा कुछ भी नहीं होता है। शास्त्रार्थमें कुछ मजा नहीं है। ये तीन फिरके ही जैनधर्मकी अधोगतिके कारण हैं। यदि ये तीनों समाजवाले अपने धार्मिक अंगोंको पालते हुए एक होकर रहें तो उन्नति शीघ्रही दृष्टिगोचर होगी। जैसे हरमोनियम, तबला, सितार ये तीनों ही अपनी२ जातिसे भिन्न होनेपर भी स्वरसे एक हैं, हजारोंकी भीड़को भी एक स्वरसे अपने ऊपर मोहित करलेते हैं। फिर हम लोग एक स्वरसे क्या नहीं कर सकते हैं। इस लिये इस दृष्टिसे शिक्षा लेकर ही इस फूट पिशाचनीको हटाना चाहिये। और एक स्वरमें होकर जैनधर्मका तन, मन, धनसे सुधार करना चाहिये।

३—शिक्षा—शिक्षासे ही आज जर्मन, जापान आदि विदेश उन्नत दीखते हैं। अशिक्षा ही अधःपतनका कारण है। इस गलतीसे सभी जैन निकम्मे एवं अवनत बन रहे हैं। इसका मुख्य दोषी पुरुष वर्ग है, क्योंकि यह महिला शिक्षाका पूरा प्रबंध नहीं करता है। जिस देश या समाजकी स्त्रियां अशिक्षिता हों भला वह देश या समाज कैसे उन्नतिशील कहला सकता है ? स्त्रीको अर्द्धांगिनी माना है। फिर आधे देशकी दुर्गति ! जो हमारी जन्मदातृ माताएं हैं, वे ही जब अज्ञान हैं तब उनकी सन्तान मूर्ख हो इसमें क्या आश्चर्य है ? बिना जड़के वृक्ष नहीं ठहर सकता है, इसी प्रकार मातारूपी शिक्षाकी जड़के बिना संतान वृक्ष कभी फलफूल नहीं सकता है। इससे पहिले माता, बहिनोंके अज्ञानको हटाना चाहिये।

आजकलकी शिक्षा केवल गुलामी ही सिखाती है, इसमें आत्मकल्याणकी जरा भी गंध नहीं है। इस प्रकारकी शिक्षासे जैन समाजका कुछ भी भला नहीं होसकता है। पहिले धार्मिक पीछे इंग्लिशकी शिक्षाकी जरूरत है। कई महाशय कहते हैं कि धर्म पढ़कर हमको मुनिमहाराज तो नहीं बनना है, जिससे हम धर्म पढ़े ? पर कवियोंने कहा है कि "धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः" जो धर्मसे रहित होता है वह मनुष्य होनेपर बिना सींग पूंछका पशु है। इससे धार्मिकज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिये। बिना धर्मको धारण किये मनुष्य शरीरकी शोभा नहीं है। बिना धर्मका व्यापार भी पापका कारण है। इसी प्रकार बिना धार्मिक शिक्षाके अन्य शिक्षाएं केवल अक्षर पढ़ना मात्र है। बिना धर्माचरणके सांसारिक कार्य पापके कारण होते हैं। इसलिये धार्मिक शिक्षाका संस्कार सुयोग्य, शिक्षिता माताासे ही होता है, जो संस्कार अमिट और कुमार्गका निषेधक होकर सुमार्गदर्शक होता है। पहिले कन्या शिक्षाका सुयोग्य प्रबंध करना होगा। आज जैन समाजमें इसकी बड़ी भारी त्रुटि नजर आती है। कुछ आश्रम व कन्याशालाएं हैं पर वे

आवश्यक है या नहीं यह समाज खुद जान ले। पर मेरी समझमें तो कन्या शिक्षाकी पूर्णता तब होगी कि जब एक भी कन्या अशिक्षिता, धार्मिक संस्कार ज्ञानसे शून्य नजर न आवे। इसलिये प्रत्येक ग्राम२में स्कूल वगैरहका इंतजाम समाजको अवश्य करना चाहिये। दूसरी बात यह भी है कि समाजका पक्षपात है। पुत्र पुत्रीपर एकसा ध्यान नहीं है, इसको हटाकर शिक्षाका प्रचार करनेसे ही असली समाजसुधार है।

३—जैन समाजमें विद्यालयोंकी धूम मच रही है। हजारों रुपया समाजका इनमें पानीकी तरह बहाया जाता है। पर इनसे समाजका कुछ भी उपकार नहीं। उपकार है तो पढ़नेवालोंका। विद्यालयोंमें पठित बंधु ही समाजपर कुठाराघात करते हैं। यदि आप लोग उपकार नहीं कर सकते हैं तो अपकार मत करो। पर मैं उन्हीं पर दोषारोपण नहीं करता, कुछ गलती हमारे अधिकारियोंकी भी है जो छात्रोंका ध्यान इस ओर नहीं दिलाते हैं।

१—बालक १२ वर्षकी अवस्थासे लेकर २१ वर्ष पढ़ावें तो समाजका कुछ उपकार होगा। इतने समयमें ही सुयोग्य विद्वान बनकर जैन धर्मका उपकार कर सकते हैं। जो इतना न रहना चाहें उनको दूसरा विभाग खोलें।

२—अविवाहित ही बालक प्रविष्ट हो, जब तक पढ़े शादी नहीं करनी देनी चाहिये। उसके खान-पानका अच्छा प्रबंध रखना चाहिये। इसकी भूल विद्यालयोंमें अवश्य है। बिना विभाग खोले किये कार्य नहीं होता है। स्मरणके लिये ब्रह्मचर्य दृढ़ रूपसे पलवाना चाहिये।

२—धार्मिक शिक्षाके साथ व्यवहारिक औद्योगिक शिक्षाका प्रबंध जरूरी है। आजकल जो अधिकारी वर्ग समाजके सामने लम्बी२ बातें करते हैं पर काम कुछ भी नहीं है, यह समाजको धोखा देकर बालकका समय खोना है।

३—अधिकारी सदाचारी, गृहत्यागी, अनुभवी, हर प्रकारका ज्ञानवान चाहिये। छात्रोंके प्रबंधको अच्छी तरहसे कर सकें। विद्यालयोंके सुधारसे ही समाज सुधार है।

४—ब्रह्मचर्य-वीर्य रक्षाका ही नाम है। वीर्य ही शरीरका रक्षण, दीर्घायु करनेवाला है, चहरे पर ओजको देनेवाला है। गृहस्थाश्रम, प्रभुपन, छात्रावस्था, शरीरकी सुंदरताका कारण वीर्य रक्षा ही है अगर "वीर्य रक्षा" को प्राण कहा जाय अत्युक्ति न होगी। इसके अभावसे सारा समाज ही विह्वल है। बाल-अनमेल विवाहोंने ही ब्रह्मचर्यको खूब बिगाड़ी है। स्वर्गतुल्य समाजको नर्कभूमि बनाई है। अर्जुन भीम सरीखे वीर, ब्रह्मचर्य हीके प्रतापसे हुए थे। ये छात्रवर्ग अपने वीर्यको कृत्रिम उपायोंसे भी नष्ट करते हैं। इसका भी अधिकारियोंको जरा भी ख्याल नहीं। वीर्यरक्षाके बिना कुछ भी काम नहीं होसकता है। इसलिये व्यायामका पूरा प्रबंध करके वीर्यरक्षा करानी चाहिये। इससे वीर्यरक्षामें जरा भी कठिनाई नहीं पड़ती है। व्यायाम ब्रह्मचर्यका साधक है। इसका प्रबंध प्रत्येक विद्यालयमें होना अनिवार्य है। इससे पक्का समाजसुधार हो सकता है।

ન્યાયવાન રાજા.

(લેખક-શ્રી. પ્રભાવતી બ્હેન, સોજીત્રા)

મિથિલાપુર નગરનો રાજા પ્રજાપાલ જ્યારે મરણ પામ્યો ત્યારે તેનો બાળકુંવર ધીરવીરસિંહ નાનો હતો. પ્રજાપાલે પોતાના મુગટ-તાજમાં દૈવી શક્તિ ઉમેરી કહ્યું હતુ કે આ બળતા તાજને શાન્ત કરી જે પોતાના મસ્તક પર ધારણ કરશે તેજ આ ગાદીનો વારસ થશે ને રાજ્ય ચલાવશે (પ્રજાપાલને ખબર હતી કે આ મુગટ ધીરવીરસિંહ સિવાય કોઇ પહેરી શકશે નહિ અને તેથીજ બળતા મુગટની વચમાં અટક રાખી હતી)

ધીરવીરસિંહ નાનો હોવાથી એ રાજ્યના સેનાપતિ વીરસિંહની દાનત ખરાબ થઇ તે ઘણો બળવાન ને બહાદુર હતો તેના મનમા આવ્યું કે બાળકુંવરને મારી નાખી પોતે રાજા બની જવુ, પણ જ્યારે આ વાત તેની પત્નિ વીરમતિના જાણવામાં આવી ત્યારે તેણે પોતાના પતિને ઘણુ ઘણુ સમજાવ્યુ કે તમારે તો તેને રાજ્યાસને બેસાડવા મદદ કરવી જોઇએ બીજા અધિકારી રાજાઓને દબાવવા જોઇએ. આપણે રાજ્ય માટે વફાદાર ન હોઇએ તો રાજ્ય કેવી રીતે ચાલશે? અન્યાયી રાજાના નોકરો પણ અન્યાયી, લોભીયા અને લાંચીઆ હોય છે ને પછી પ્રજા દુઃખી થાય છે. રાજા એ પિતા બરાબર છે અને પ્રજા તેના બાળકો છે. રાજાએ પ્રજાને સુખ થાય તેને માટે બનતો પ્રયત્ન કરવો જોઇએ અને પ્રજાએ રાજાનુ હિત ચાહવુ જોઇએ આપણે પ્રજા કહેવાઇએ એટલે આપણે આપણી ફરજ બજાવવીજ જોઇએ. ઇત્યાદિ આટલું બધું સમજાવ્યા છતા જ્યારે તે માનવાનો નથી એમ માલમ પડયુ, ત્યારે તેણે છેલ્લું એકજ વાકય કહ્યું હતુ કે "ગાદિનો વારસ બાળકુંવરજ છે તેને રાજ્ય અપાવા માટે હું જાતે રજપુતાણી છું. મારું શૌર્ય બતાવીશ, વીરતા દાખવી સગ્રામ ખેડીશ, અને વખત આવે તમે મારા પતિ છો છતાંએ તમારો પ્રાણ લઇશ ને ધીરવીરસિંહને રાજા બનાવીશજ."

વીરમતિ દેશભક્ત, રાજપ્રેમી, અને ન્યાયવાન હતી ધીરવીરસિંહને તે પોતાનો ભાઇ ગણતી હતી આખરે વીરમતીના સમજાવવાથી વીરસિંહ સમજ્યો ને ધીરવીરસિંહને ગાદીએ બેસાડવા માટે વચન આપ્યું ધન્ય છે આવી વીરરમણીને! વીરમતિના સમજાવવાથી વીરસિંહમાં રાજ્યભક્તિ પેદા થઇ ને ધીરવીરસિંહને રાજ્યગાદીએ બેસાડવા માટે અનેક સંકટો આવે તો પણ તેને તે સંકટોમાથી બચાવવા માટે પોતે પ્રણ લીધું. અને જ્યારે ધીરવીરસિંહ રાજ્ય શાસન ચલાવવા યોગ્ય થયો તે વખતે વીરસિંહ, વીરમતી અને બીજાઓ પેલા બળતા મુગટ પાસે ધીરવીરસિંહને લઇ ગયા. ધીરવીરસિંહે જેવો તેને હાથ અડકાડયો કે તરત તે શાન્ત થઇ ગયો-ટાઢો થઇ ગયો ને પછી વીરમતીના હાથે રાજ્ય તિલક લગાવી, મુગટ પહેરી રાજ્ય સિંહાસન અંગીકાર કર્યું

પછી કેટલેક દિવસે ગુણવાન, રૂપવાન, અને વિદ્યાવાન એવી એક તેજકુંવરી સાથે પોતે પરણ્યા હતા

એક વખત એવો બનાવ બન્યો કે તેજકુંવરી પોતાની સખીઓ સાથે વનક્રીડા કરવા ગઈ હતી ત્યા ફરતા ફરતા નિશાન મારવાની રમત શરૂ કરી, તેમા સખીઓના કહેવાથી એક ભરવાડના માથાના ફાળીઆ ઉપર નિશાન તાકયું. તેજકુંવરીની નિશાન તાકવામા ભૂલ થઇ ને ભરવાડના ગળામા વાગ્યુ, તે તરત બેભાન થઇ મરણીઓ થઇ નીચે પડયો એટલામાં ભરવાડણ આવી. તેણે પોતાના ધણીને મરેલો જાણી, બૂમ મારી કહ્યું કે મારા ધણીની આ સ્થિતિ કોણે કરી? હું તો રાજા પાસે ન્યાય કરાવવા લઇ જઇશ. રાણીએ તરત કબુલ કરી દીધું કે હે બાઇ! તારા ધણીની આ સ્થિતિનું કારણ હું બની છુ. મેં ભૂલ કરી

છે. અમે લોકો નિશાન તાકવાની રમત રમતાં હતાં તેમાંથી તારા ધણીના હાળીઆ પર નિશાન તાકવાની રમત રમતાં હતા તેમાંથી તારા ધણીના હાળીઆ પર નિશાન તાકેલું હતું, પણ મારા નિશાન તાકવામા ભૂલ થવાથી તે તારા ધણીના ગળામાં વાગી ગયું છે

પેલી ભરવાડણ ગુસ્સે થઇ બોલી કે તમારા મોટા લોકોની રમત, અને અમારા ગરીબોનો જાન જાય. આનો ન્યાય તો રાજા પાસેજ જશે તરત તે ભરવાડણ પોતાના ધણીને લઇને દરબારમા ગઇ અને પછી ન્યાયસિંહાસન પર બેઠેલા રાજાને ન્યાય આપવા વિનંતિ કરવા લાગી

ભરવાડણ—મારો ન્યાય કરો મહારાજાધિરાજ!

ધીરવીરસિંહ—હે બાઇ! તું શાનો ન્યાય માગવા આવી છે?

ભરવાડણ—મારા ધણીની જેણે આ સ્થિતિ કરી છે તેનો ન્યાય માગવા આવી છું.

ધીરસિંહ—કોણે તારા ધણીની આ સ્થિતિ કરી?

ભરવાડ—મહારાજ! કહેતા જીભ ઉપડતી નથી પણ કહ્યા વગર રહેવાતુ નથી મને નિર્ભયતાનું વચન આપો તો કહું.

ધીરવીરસિંહ—જા, તને નિર્ભય વચન આપુ છું. જે સત્ય બિના બની હોય તે નિડરતાથી કહે

ભરવાડણ—પ્રજા પાલક! આપ મોટા લોક! આપ લોકોની રમતથી અમારા ગરીબ લોકોના પ્રાણ જાય છે. કહેતા ઘણી દિલગીરી થાય છે અને જીભ અચકાય છે, પણ આપની રાણીની રમત ગમતથી મારા ધણીના પ્રાણ ગયા છે

ધીરવીરસિંહે તરત રાણીને બોલાવવા હુકમ કર્યો. થોડીક વારમાં રાણી તેજકુંવર ત્યાં હાજર થઇ. રાજાએ પુછ્યુ—મહારાણી, આ માણસની આવી સ્થિતિ શાથી થઇ છે તે તમો જાણો છો? રાણીએ તરત ઉત્તર વાળ્યો—હા સ્વામીનાથ? અમે વનક્રીડા કરવા ગયા હતા ત્યા નિશાન બાજી રમતાં આ ભરવાડના હાળીઆ પર નિશાન તાક્યું પણ મારી ભૂલથી નિશાન ચૂકીને તેના ગળામાં વાગી ગયુ છે ભૂલ મારાથી થઇ છે ખરી, પણ તે મે જાણી જોઇને કરી નથી જે મારાથી ભૂલ થઇ છે તેની શિક્ષા થવીજ જોઇએ આપ મહારાજ ન્યાયાશને એવી જે શિક્ષા કરશો તે ભોગવવા આ દાસી તૈયાર છે

ધીરવીરસિંહ—લોકોજનો! મારી રાણીએ જેવી આ બાઇના ધણીની સ્થિતિ કરી છે, તેનો હું ન્યાય આપી આ ભરવાડણને કહું છું કે મારા આ તીર કામઠા વડે રાણીના ધણીની એવીજ સ્થિતિ તે કરે કે જેથી રાણીએ જે પ્રકારની ભૂલ કરી છે તેવાજ પ્રકારની તેને શિક્ષા મળી રહેશે. પછી રાજાએ ભરવાડણને તીર કામઠા આપી કહ્યુ. લે આનો ઉપયોગ મારા પર કર કે જેથી તને તારો ન્યાય મળશે

ભરવાડણ—રાજાજી! આવો ન્યાય મારે જોઇતો નથી. હજાર મરો પણ હજારનો પાલનહાર ન મરો. મારાથી આ કામ નહિ થાય

રાજા—વીર સેનાપતિ! તમે મારા પર આ તીર ચલાવો.

વીરસિંહ—આ કાર્ય મારાથી નહિ બની શકે આપણી રાજાનુ પાલન મારાથી નથી. થતુ તે માટે ક્ષમા માગું છું, રાણીએ જાણી જોઇને આ કામ કર્યું નથી માટે આવી શિક્ષા તેને શોભે નહિ આવો ન્યાય આપવાથી તો સર્વ પ્રજાને નુકશાન થાય, માટે આ વિચાર માંડી વાળો.

ત્યાર પછી ધીરવીરસિંહ વિચારમા પડી ગયો કે હવે શુ કરવુ? પછી તેને યુક્તિ સુઝી આવી ને (મનમાં બબડયો—વીરમતિ મારી બ્હેન છે અને તેણે મને રાજ્ય અપાવવામાં ઘણીજ કોશિશ કરી છે મારા પર પ્રેમ રાખે છે તો તે મારો સાચો ન્યાય લોકોને દેખાડી આપશે. તે પણ એક યુક્તિસરજ કહુ ત્યારે કામ થશે તેને તેના પતિના અંગને ખવડાવીશ ને પછી આજ્ઞા કરીશ તો તેને આ પ્રમાણે કરવાની ફરજ પડશે.)

પછી પ્રગટ પણે વીરમતીને ઉદ્દેશીને કહ્યુ-બ્હેન વીરમતી ! તમે મારા હિતેચ્છુ છો. હું જે ન્યાય કરૂં છું, તે ન્યાય સત્યજ છે એમ કરી દેખાડવુ હવે તમારાજ હાથમાં છે. હું તમને તમારા પતિના સોગન આપી વિનંતિ કરૂં છુ કે આ તીર મારા પર ચલાવી દુનિઆને ન્યાયી રાજાની ઓળખાણ આપો વીરમતી વિમાસણમાં પડી ગઈ કે હવે શો ઉપાય લેવો ! પણ તેને પતિના સોગન આગળ કશો ઉપાય સુઝયો નહિ. વીરમતી બોલી-બંધુ ધીરસિંહ ! રાણીએ આ ભૂલ કંઈ જાણી જોઇને કરી નથી માટે આ શિક્ષા અઘટીત છે, છતા સોગન આપ્યા છે તેથી મારે તમારી આજ્ઞાનુ પાલન કરવું પડે છે, પણ સત્યનો બેલી પ્રભુ છેજ એમ કહી તેણે હાથમાં તીર કામઠું લીધુ જેવું તીર છોડવા જાય છે તેજ વખતે (એક સાધુ આવી ચડયા) મોટેથી દિવ્ય અવાજ થયો સબુર સ્ત્રી સબુર ! રાજાની નિસ્વાર્થતાની અને ન્યાયની પરીક્ષા થઈ ચુકી આ ભરવાડ મર્યો નથી. હમણા તેને જાગ્રત કરૂં છું, એમ કહી પેલા ભરવાડ પર પાણી છાંટયુ એટલે તે આળસ મરડી બેઠા થયો અને રાજાને પગે લાગ્યો. ભરવાડણ પણ ખુશી ખુશી થઈ રાજાને પગે લાગી ને ગગનધિરાજ ધીરવીરસિંહનો જય થાઓ અને તમનો ન્યાય અમર રહો એમ કહીને તેઓ ઘેર ગયા

—❦❦❦—

આપણી સ્ત્રી.

(લેઃ—રમણીક વી. શાહ-મુંબઈ.)

૧—ગત લેખાંક વિષે કંઈ પણ કહું તો ત્હેની સાથે નવીન વાંચકોને મ્હારે પ્રથમાંક વિષે પણ કંઇક કહેવુ પડે અલબત કહીશજ. અન્યાય કરવાની શક્તિ મ્હારામા નથી. ખરેખર, થોડું કહીશ-સમાલોચનાજ કહીશ વધુ માટે-પરિપૂર્ણત્વ માટે આખા લેખો વાંચવા વધારે સારા અને તેથી તેમ કરવા હું વાચકોને વિનતી કરીશ.

હિંદની અમુક સ્ત્રીઓ સાથે સરખામણી 'આપણી સ્ત્રી' ક્યાં જઇ પડે-અથવા ઉપલકટે તપાસતા 'આપણી સ્ત્રી' નુ ઉપરછલ્લુ કેમ જાણ-ત્રાઓની સામાન્ય ટેવો જોતાં 'આપણી સ્ત્રી' ની ટેવો કેવી અને કેટલી ફાયદાકારક કે ગેરફાયદા-કારૂ-લગ્ન, સોનુ અને પાથર પર પાણી વિગેરે મ્હે પ્રથમાંકમા લખ્યુ. આપણા લોકોની મનો-વૃત્તિ અને ત્હેમનુ પાણી-મિત્રોને મ્હારા પ્રથમ કાર્ય માટે વિનતી-સ્ત્રી કેળવણી, ત્હેનો અર્થ અને જરૂરીઆત-સ્ત્રીનુ આપણા સમાજમાં સ્થાન આ સઘળું હું ગતાંકમાં કહી ગયો. આ અંકમાં હવે આવે છે-કર્મની વિચિત્રતા અને સ્ત્રીની ભાવના.

આ લેખો વાંચી કોઇ સુજ્ઞ પુરૂષે હસવા જેટલી ભૂલ કરવાની નથી. આપણી નિર્માલ્ય, નિરૂપયોગી, કંફાટી અને હીન દશા જોઈ આપણનેજ હસવું આવે તો બે કારણો હોઇ શકે. એક તો, આપણે ડાહ્યામા ડાહ્યા-વિદ્વાનમાં વિદ્વાન અને ધાર્મિકમા ધાર્મિક પુરૂષો હોઇએ અને બીજું તો આપણે મૂર્ખામા મૂર્ખા અને ઠોઠમા ઠોઠ પુરૂષો હોઇએ. સાધારણ પુરૂષો જેને સાધારણ અક્કલ હોય તે કદી પણ 'આપણી સ્ત્રી'ના આવો દયાજનક ચિતાર જોઈ હસી શકશે નહિ. આપણી

સ્ત્રીના મગજમાં ભરાઇ ગયેલું અનેક વર્ષોનું ભૂસું હવે નીકળી જવાનો વખત આવ્યો છે તે જાણી આપણે કદાચ ખુશી થઇએ પણ તે ક્યારે? લેખ વાંચ્યા પછી. વાંચતાં વાંચતા કદી નહિ જ્યારે લેખમાંજ હાસ્યજનક વાકયો આવે ત્યારે વાંચનારે દિલગીર છતાં હસવું તે એક દીલગીરી-ભર્યું અને સુક્કું હાસ્ય કહેવાય. ત્હેનાથી લોહી વધે નહિ પણ ઘટે ગાલ ફુલે નહિ પણ તેમાં ખાડા પડે. સૌ કોઈ વાંચનારે આ બાબત ધ્યાનમાં રાખવી ઘટે છે.

'સ્ત્રી કેળવણીના અભાવે થયેલી' 'આપણી સ્ત્રી' ની દશા સૌ કોઇ જાણે છે છતા સુધારવા યત્નો થતા નથી કારણ કે ઘણા વર્ષો થયા પીધેલા દારૂનું ઘેન ચઢયુ છે દારૂ આજકાલનો પીધો નથી. એટલે ઘેન ઉતરતાં વાર લાગે–તેમ કરવા માટે 'એમોનીઆ' (Ammonia N,H3.) જોઇએ અને તેવીજ રીતે આજનું ઘેન ઉતારતા પણ દવાઓ જોઇએ અને તે દવાઓ એ આજ-કાલના સુધારકોના પ્રયત્નો (સુધારકની વ્યાખ્યા કોઈ બીજી વખતે આપીશ). આજે મ્હારે લખવી છે. **સ્ત્રીની ટેવો-સારી અને ખરાબ.**

૨—લાજ કાઢવી કોણે બતાવી અને ક્યાથી આવી! આપણે સઘળાં જાણીએ છીએ કે લાજનો રીવાજ કંઇ બહુ જુનો નથી. લગભગ સાતસો કે પાંચસો વર્ષ થયાં હશે તે રીવાજ ધુસ્યે. શાથી? ખબર છે! જુઓ કહુ! મુસલમાનોનુ રાજ્ય હતુ. તે લોક ગુંડા કહેવાતા. આબરૂ લૂટતા ત્હેમને વાર ન લાગે. આપણી આર્ય લલનાઓને તે બહુ વહાલી અને આપણા આર્ય પુરૂષોમા કઇ અક્કલ નહોતી? તરતજ ઘૂંઘટો તાણવાનો રિવાજ કાઢયો કે જેથી મુસલમાનો મ્હો જોઈ શકે નહિ અને સ્ત્રીઓને ઉપાડી જતા બચે. મુસલમાનોથી ઘુંઘટા ખેંચા ચેંચીને કઈ સર્વેના મ્હો ઓછા જોવાય તેમ હતાં? એ તો ઠીક કે જરા સારૂ દેખાય એટલે ઉપાડી જવું, આ ત્હેમની ભાવના એ વખતે એમના રાજ્યમાં હતી. બ્હેનો, આબરૂનો ત્યાં સવાલ હતો. ત્હેમેજ કહો, અત્યારે કંઇ છે એમાનું! કયો મુસલમાન એવી ઉઘાડી રીતે અત્યાચાર કરી શકે? તરતજ ત્હેને કાયદો રોકે જો તેમ કરવા જાય તો! હાલમા ત્યારે એ ઘૂંઘટાની શી જરૂર?

કેટલીક સ્ત્રીઓએ કહેલુ કે લાજથી નવા વહુની આબરૂ વરના પરોણામાથી અથવા વરના મિત્રોમાંથી બચે છે. હુ કહુ કે તે વાત તદ્દન ખોટી. વહુનુ મનોબળ સારૂ હોય, ચોખ્ખુ હોય અને અનત હોય તો કોઇ ત્હેને શું કરી શક! કેટલીક સ્ત્રીઓએ કહેલુ કે ત્હમને પારકા માણસો ત્યા મ્હોટા માણસો જુએ એટલે શરમ આવે અને તેથી લાજ કાઢવી પડે. હુ બતાવી શકું કે લાજ કાઢયા વિના શરમ ભાગવાના ઘણા રસ્તા છે. જે મ્હોટા પુરૂષો સ્ત્રીની કાઢેલી લાજથી અભિમાન લેતા હોય ત્હેમણે શરમાવવુ જોઇએ કે સ્ત્રી ત્હેમનુ મ્હોં જોવા માગતી નથી અથવા તો એવો પડદો ઉભો થયો છે કે જે સ્ત્રીને ત્હેમનું જોતા તે અટકાવે છે; બીજાઓના મ્હોં જોવામા શરમ નહિ પણ નૈતિક હિમત જોઇએ શરમ રાખવી જોઇએ દુષ્ટ કાર્યો કરવામા, નહિ કે પરાયા મુખડાં જોવામા

હવે આપણે રડવુ કુટવુ લઇએ. પ્રથમથીજ કહી દઉ કે આ સઘળુ ખોટુ કોઇ વ્હાલુ, અતરથી અળગું ન થઈ શકે તેવુ સ્વર્ગે જાય તો જે પ્રથમ ટીપુ પડે તેજ સાચું–બાકી છાતી કુટી લાલ બનાવવી તે ટોંગ. ત્હેમા નુકશાન કેટલાં? બૈરાંઓને હૃદયના દર્દો થવાનો સભવ, (બૈરાં પોચા ખરાને! એટલે) વળી સ્વર્ગગત વિષે નદાકારે પાછા નહિ આવવાનો સંભવ (સઘળી સાવિત્રીઓ નહિને! એટલે) રડવા કુટવા ઉપર કેટલુંયે લખાઇ ગયું છે. હવે રડવુ થોડું ઓછું થયું છે પણ તે પુરૂં નથી થયું. રડવુ–અંતરનું રડવું, લોકોને બુમો મારી સભળાવવાનુ ન હોય. આ તો કૂટવા બેસે તો આખું ગામ જોવા ભેગુ થાય! આનો અર્થ શો? આ એક કૂટવું 'આપણી સ્ત્રી' ની

કુટેવ છે. પુરૂષોની નથી. સ્ત્રીઓએ તે દૂર કરવી ઘટે છે; પુરૂષોએ નહિ મ્હોં વાળવા જવું અને બાર દિવસ સુધી એકજ ઘરમાં ધમાચકડી કરવી, તે હવે ફક્ત ઢોંગજ રહ્યા છે. શરૂઆતમાં ત્હેનો અર્થ એવો હતો કે સગા વ્હાલાં જેના ઘેર કોઇ મૃત્યુ પામ્યું હોય ત્યાં જાય અને દરરોજ એક એક ભાવના ઉપર વિચાર કરે—અનિત્ય, અશરણ, સંસાર, એકત્વ, અન્યત્વ, અશુચી, આશ્રવ, સંવર, નિર્જરા, લોક, બોધિ દુર્લભ અને ધર્મ આ બાર ભાવનાઓને આપણે માનીએ મૃત્યુ પામેલા માણસના ઘેર સગાં વ્હાલાં આવી દરરોજ એક એક ભાવનાનુ વિવેચન કરી દુઃખી કુટુંબીઓનો શોક તદ્દન ઓછો કરાવી દે. અને પછી જાણે કઇ બન્યુ નથી તેમ બતાવતા સઘળાં ભેગાં મળી કઇક જમે અને તે વાતની પૂર્ણાહુતી કરે ફરીથી સંભારી અશ્રુપાત કરવાનો નહિ.

બ્હેનો ? અત્યારે શુ થાય છે ! સગા વ્હાલાં ઘેર આવે—મરનારના ગુણ દોષનુ વર્ણન કરી મરનારની બા—વહુ—દીકરી—દીકરો—સર્વેને ફરીથી રડાવે—પોતે રડે તે ફક્ત બતાવવાની ખાતરજ આમ શોક કેમ ઓછો થાય ? બાર દિવસ આવી માથાકુટ ચાલે, અને ત્યારપછી મરનારના માનમા બારમું થાય—લાડવાજ જમાય. બહાર ગામથી સગા વ્હાલાંને બારમુંજ જમવા બોલાવાય, લાડવામા ઘી ઓછુ હાય તો જમનારા ટીકા કરે લોકો જમવા જાય—પછી ભલેને મરનારની સાથે તેઓ સહાનૂભુતિ પણ ન દર્શાવતા હોય ! એકંદરે આજ શું થઇ રહ્યું છે ! મરણ પાછળ શોકની ધાર્મિક ક્રિયાઓને બદલે ઉજાણીના સંસારીક કર્મકાંડો ભજવાઇ રહ્યા છે. આ બધુ બૈરાઓએજ સ્હમજવુ ઘટે. ભેગા મળી ગમે તે જમવુ તે જેટલુ આશ્વાસન કારક હતુ તેટલુજ દુઃખકારક આજે મરણ પછીનું બારમું છે આ બધા ઢોંગ બંધ થવા જોઇએ. વધુ નથી કહી શકતો.

૩—"અરે ભાઇ, આ તો ગદ્ધાનુ પુચ્છું પકડયુ છે" એમ કોઇ માણસ સારી દ્રષ્ટિથી બીજાને કહે તો બીજો જવાબ આપે કે "ભલે પકડયું, સફેદ અને સુંવાળુ છે—મ્હારે તો જોઇએજ." સામો સવાલ પૂછે કે "ગાયનું !" તો જવાબ તરત આવેકે "ભલેને રહ્યું ? ગમે તે કહોને !" ભાઇઓ ! આપણામાં એવી વિચિત્ર ટેવ છે કે એક વખત પૂછડું પકડયુ તે કદી પોતાની બુદ્ધિ અને વિચારથી છૂટે નહિ. એ તો જ્યારે પ્રાણી પોતે—ગધ્ધુ કે ગાય—જ્યારે ખીજવાઇને લાત મારે ને ભાઇના ડાચામાં વાગે ત્યારેજ તે પૂછડુ છૂટે. બ્હેનો ! આવી સ્થીતિ 'આપણી સ્ત્રી' ની પણ છે. કોઇ માણસ પરગામ જતો હોય તો સ્ત્રી કહે કે "ભાઈ આટલું અમારૂ આ ત્યાં લઇ જજો અને ફલાણાના ત્યા આપજો," ભાઇ જવાબ આપે કે "હું બનશે તો લઇ જઇશ" ત્યારે સ્હામો પ્રતિધ્વની આવે કે "લઈ જવુ પડે" બ્હેનો ! તમેજ બોલો કે એમા "પડે" ચાલુ ! ભાઇનામાં અક્કલ ન હોય—ભાઈનામાં એટલી સગવડ અગવડ સ્હમજવા પુરતી બુદ્ધિ ન હોય કે સ્હામેથી ઉપકાર અને દમાણુ દર્શાવતો 'પડે' શબ્દ આવે. પહેલાંના લોકોથી 'ના' નહોતી કહી શકાતી—તેઓ સઘળું કંઇપણ કરતા સ્ત્રીઓ સ્હમજે છે કે હજી તેજ ૧૮૩૦ ની સાલ છે. ખબર નથી કે સો વર્ષ પસાર થઇ ગયા ! હજારો રિવાજો બદલાયા ! માણસોનાં માનસ સંજોગોનુ કુલ વર્તતાં શીખ્યાં !

કોઇનુ લગ્ન આવે એટલે સ્ત્રીઓ વાતો કરી ચૂકે કે ચાર જમણ જોઇએ—વરઘોડો જોઇએ—વાજા જોઈએ—આવા આવા લુગડા જોઇએ—હું પુછુ છુ કે શાનાં જોઇએ ! હિંદ પહેલાના જેટલું પૈસાદાર નથી સઘળું ગરીબ થઈ ગયુ. આપણે હિંદમાજ વસીયે ને ! આપણે ગરીબ નહિ ! હિંદ બદલાયું—આપણે બદલાવવુ નહિ ! જેને જે કરવું હોય તે કરે—ચારને બદલે બે કેમ ન કરે ! વિદેશી ત્રણસો રૂપીઆના લુગડા કરતાં ખાદીના લુગડાં કેમ ન પહેરે !

"એ તો ન પહેરાય" સ્ત્રી જવાબ આપે.

"કેમ ન પહેરાય ?" આપણે પૂછીયે તો જવાબ મલે કે "કોઇ નહોતુ પહેરતું." કહો હવે

ભાઈઓ અને બ્હેનો, આવું નીમ પુંછડું પકડવું નથી ? આ રીવાજો પોતે જ્યારે આપણી આંખે ભયંકર ગેરફાયદામાં લાવી મૂકશે, લાત મારશે, ત્યારેજ 'સ્ત્રી' ને લાગશે કે ચાલો હવે પૂછડાંરૂપી રીવાજ છોડીયે. આવા કેટલાયે નકામા અક્કલ વગરના રીવાજોને આપણે પકડી બેઠા છીએ. "છોડી ન શકીયે !", "છોડીયે." "ત્યારે કેમ છોડતા નથી ?", છોડવાનું ભણ્યા નથી." "કેમ ?" "મા બાપને બીકે" બોલો ત્યારે–આપણા માબાપમાંજ ખૂટેલી અક્કલ અને સ્થિરતા, માબાપમાંજ કેળવણી પ્રત્યેનો અભાવ. સ્ત્રીની આવી સ્થીતિનો ગુન્હેગાર પુરૂષજ છે ત્યારે પુરૂષે હવે કાંઈ કરવું રહ્યું જાગૃતે,' આશા છે કે તેઓ ઊંઘમાંથી જાગશે.

૪—આપણી સ્ત્રીઓમાં ભાવના કઈ કઈ છે ? ક્રોધ, વેર, દ્વેષ, અને અભિમાન કઈ કઈની જરૂર છે ? પ્રેમ, મળતાવડાપણું અને શાંત લાગણી શરૂઆતનાં ચાર હું વર્ણવીશ–બીજા ત્રણ લેખાંક બીજામાં.

અભિમાનથી ફુલેલી, વેર તથા દ્વેષથી જળ-હળતી, અને ક્રોધથી ભભુકતી એવી કોઇપણ મૂર્તિના દર્શન કરવાં હોય તો તે 'આપણી સ્ત્રી' ત્હેનામાં એક ખૂબી છે. ક્રોધથી ભભૂકે એટલે કાંઈ જ્વાળાઓ નીલ પીળી ન નીકળે પણ ફાટે ત્યારે જ્વાળામુખી ફાટે દ્વેષથી જળહળે–કેટલીક ભોળી સ્ત્રીઓ ઝટપટ કબુલ કરી દે પણ ભયંકર ભામિનીઓ કબુલ નહિ કરતાં–બાળપણું નહિ કરતાં–વખત આવે ત્યારે દ્વેષના ધુંવાડાથી ઓતરી ખાય અભીમાનથી ફુલે એટલે કાંઈ શરીર નહિ પણ મન ફુલે એટલે પ્રફુલ્લીત નહિ પણ પોલો દડો થાય–સ્હેજ દબાણ થતાં હવા નીકળી જાય કારણ દડો ફુટી જાય. અને હવા કેટલા જોરમાં બહાર આવે ? ખબર છે ? બળતા કોડીઆને હોલવી નાખે. લેમ્પને તો નહિંજ. કહેવાનો આશય એ કે કોડીયું કે જેનું રક્ષણ કરનાર કોઈ નથી (બલ્કે તેવી સ્ત્રીને) ફુલેલો પોલો દડો હોલવી શકે–ડરાવી શકે, જ્યારે લેમ્પને કે જેનું 'રક્ષણ' કરનાર ચીમની છે, (બલ્કે તેવી સ્ત્રીને). તે કાંઈ ન કરી શકે. અભીમાની સ્ત્રીનું જોર નબળા માણસો ઉપર–નબળી સ્ત્રીઓ પર. સબળા પર આત્મ શક્તિવાન્ પર શું ! કંઈ નહિ. બૈરાઓમાં દ્વેષ આવે ત્હેનું કારણ કોઇ સ્ત્રી ન્યાતના રીવાજ બહાર ગઈ હોય; વેર આવે ત્હેનું કારણ ત્હેનાં છોકરાંને કોઇ બીજા છોકરાએ ઇજા કરી હોય, અભિમાન આવે ત્હેનું કારણ ત્હેનો પતિ પૈસાવાળો હોય, અને, ક્રોધ આવે ત્હેનું કારણ ત્હેને મહારાણી થવામાં ખલેલ પડતી હોય મતલબકે કોઇ ત્હેનો હુકમ ન માનતું હોય બ્હેનો ! ત્હમેજ વિચાર કરો. ઉપરના દુર્ગુણો માટે–ઉપરની દુર્ભાવના માટે ઉપરના કારણો સુસ્થાને છે ! ખરાં છે ! વાસ્તવીક રીતે જોતાં શું ઉપરના કારણો એક સારી અને સુચરિત્રવાન્ કેળવણી પામેલી સ્ત્રીને ઉપરની દુર્ભાવનાઓ પેદા કરી શકે ! હું નથી ધારતો જો કરી શકે તો તે કેળવણી નહિ અને ન કરી શકે ત્યારેજ, તે કેળવણી કહી શકાય

૫—આજે પણ સઘળામાનું થોડું હું કહી ચૂક્યો સ્ત્રીઓને ત્હેમની ભાવનાઓ ખુલ્લા શબ્દોમાં કહી તેથી કોઇ ખોટું લગાડવાનું નથી. અને ખોટું લગાડ્યે, નિરાશ થયે, હતાશ અને ભગ્ન હૃદય બનાવ્યે કંઇ ન્હાડા વળે તેમ નથી. સ્ત્રીના ખોટા રીવાજોને મ્હેં બતાવવા પ્રયત્ન કર્યો–બતાવ્યાં ત્હેમને સ્હમજાવવા બનતું કર્યું સઘળા સ્હમજ્યા હશે તેમ ધારી લઉં છું–સમજી લઉં છું. જુદી જુદી જાતના કોઇપણ પ્રશ્નોનો જવાબ સુધારકની દૃષ્ટિએ હું આપવા પ્રયત્ન કરીશ–કદાચ ધાર્મિક દૃષ્ટિએ મ્હને ન આવડે છતાં ખરી દશામાં પ્રયત્ન તો કરીશજ સ્ત્રીઓને સુધરવાનો વખત છે. સ્ત્રીઓ પર સમાજ ટકી રહેલો છે. સ્ત્રી વિનાનો સમાજ ગાંડો છે–મૂર્ખો છે. મૂર્ખાપણા-માંથી ડાહ્યાપણામાં જવા સ્ત્રીઓએ વિવેક બુદ્ધિ વાપરી મદદ કરવી ઘટે છે કેળવણી પામેલી સ્ત્રી કેળવાયેલા પુરૂષ કરતા સો દરજ્જે ઘરને અને સંસારને તથા સમાજને ઉપયોગી નિવડી શકે છે, માટે બંધુઓ, કંઇક તો કરો નહિ તો પછી 'પત્થર પર પાણી' અસ્તુ.

આદર્શ જીવન.

(લેખક–મોતીલાલ ત્રી. માલવી–બાકરોલ)

સુજ્ઞ મહાશયો !

જે જીવન પોતાના કાર્યો, અભિપ્રાયો, વિચારો, અને પ્રવૃત્તિઓથી બીજાઓને માટે આદર્શરૂપ બને તેનુ નામ આદર્શજીવન.

આદર્શ એટલે દર્પણ છે જે ચીજ આપણે પોતે જોઈ શકતા નથી તે ચીજ દર્પણ અથવા આદર્શ આપણને બતાવે છે જે ચીજ સીધે રસ્તે ન દેખાય તે ચીજ આદર્શથી દેખી શકાય છે. જીવને શુભ રસ્તે લાવવા, તેમજ જીવ શુભ રસ્તેથી કેટલે દૂર છે તે સમજવા માટે તેમજ નપામવા માટે આદર્શની જરૂર છે હવે જીવન ગણ્ડ રમો-સૃષ્ટિમા વનસ્પતિથી માંડીને દરેકને જીંદગી તો મળી છે, પણ જીવન તેજ આદર્શ ગણી શકાય કે જે જીવન પોતાના કાર્યો, અભિપ્રાયો, વિચારો, અને પ્રવૃત્તિઓથી બીજાને માટે આદર્શરૂપ બને.

આદર્શ જીવનનો આ અર્થ છે, પરન્તુ આદર્શ જીવન કોનુ ગણવું તે બાબતમાં મોટો વિચાર-ભેદ રહેલો છે—માણસને જે રસમાં શોખ તે રસમાં તે માણસનુ જીવન આગળ વધ્યુ હોય, તે માણસનુ જીવન સામાન્ય રીતે આદર્શ–જીવન તરીકે સમજી લેવામાં આવે છે, પરન્તુ તે જીવન નથી ખરું આદર્શ–જીવન તો તેનુજ ગણાય કે જે નીતિમાં પ્રવૃત્ત હોય, ઉચ્ચ કાર્યો કરે, નિષ્કલંક હોય, અને પરોપકારી હોય; આવું જીવન આપણો આ ભવ સુધારે છે, તેમજ આપણને પરભવમાં પણ હિતકર્તા થઇ પડે છે. આદર્શ જીવન તેજ ગણાય કે જે જીવન પોતે ઉચ્ચ હોય અને બીજાનુ જીવન પણ ઉચ્ચ બનાવે

હવે આપણે જાણવુ જોઇએ કે—કયા રસમાં જીવન આગળ વધે તો તે જીવન આદર્શ–જીવન તરીકે આપણે સ્વીકારી શકીએ દુનિયામા નાટ્ય શાસ્ત્રો, શુંગાર, હાસ્ય, કરુણા, તેમજ વીર રસ મળી ચાર રસનો સ્વીકાર છે, શાન્ત રસ એ આત્માનો સહજ ગુણ છે, અને તે અભિનય રસ હોવાથી, નાટ્ય શાસ્ત્રમાં તે રસને ચીતરવામા આવ્યો નથી. હવે આ ચાર રસોમા શૃગાર, હાસ્ય, તેમજ કરુણા રસ, એ રસો અમુક હદો સુધીજ સારા છે. આ રસમાં જેમ જેમ આગળ વધાય છે તેમ તેમ સર્વ નુકશાન કરે છે દાખલા તરીકે શૃગાર રસમાં જો માણસ હદથી જ્યાદા ઉતરે–તો જલદી બુઢાપણું, નબળાઈ, જુવાનીનો નાશ, આદિ નુકશાન થાય છે. હાસ્યમાં પણ જો માણસ 'રમીતુ'થી આગળ જાય તો તેથી પણ નુકશાનજ થાય. કરુણ રસમા જો માણસ 'વિલાપ'ની સ્થીતિએ જાય તો તેને નુકશાન કરે છે આ પ્રમાણે આ ત્રણે રસો હદની પેલી બાજુએ જતાં નુકશાન કર્તા છે, અને તેથીજ આ રસમાં આગળ વધેલા જીવનો ખરા આદર્શ–જીવન તરીકે ઓળખી શકાયજ નહિ.

ખરૂ આદર્શ–જીવન વીર રસમાં આગળ વધેલાઓનુજ હોઈ શકે અને થઇ શકે. યાદ રાખજો કે વીર રસમાં ક્રોધને સ્થાન માત્ર નથી. તમને ક્રોધ થયો એટલે તમે 'રૌદ્રરસમાં' ઉતરી પડો છો માટે ક્રોધને અને વીર રસને સહેજ પણ સંબધ નથી વીર રસનો સ્થાયી ભાવ ઉત્સાહ છે. ક્રોધ, માન, માયા, અને લોભને વીર રસમાં અવકાશ નથી જે જીવન વીર રસમાં આગળ વધ્યુ હોય તેજ જીવન ઉચ્ચ છે. અને તેજ જીવન બીજાને આલબન બની શકે છે, આ જીવનના અનુકરણથી લાભજ–થાય છે. અને તેથીજ આપણે વીર રસમાં આગળ વધેલાઓના જીવનનેજ "આદર્શ–જીવન" તરીકે સ્વીકારવુંજ જોઇએ

જે માણસ પોતાનું જીવન આદર્શ બનાવવું હોય તે માણસે વીર બનવું પ્રથમતો તે માણસે દાનવીરજ બનવુ જોઇએ સ્વાર્થનો ત્યાગ કરવો અને સાથે સાથે સ્વાર્થનું સમર્પણ કરવું એ દાન ધર્મનું મુખ્ય લક્ષણ છે શાસ્ત્રમાં દાન,

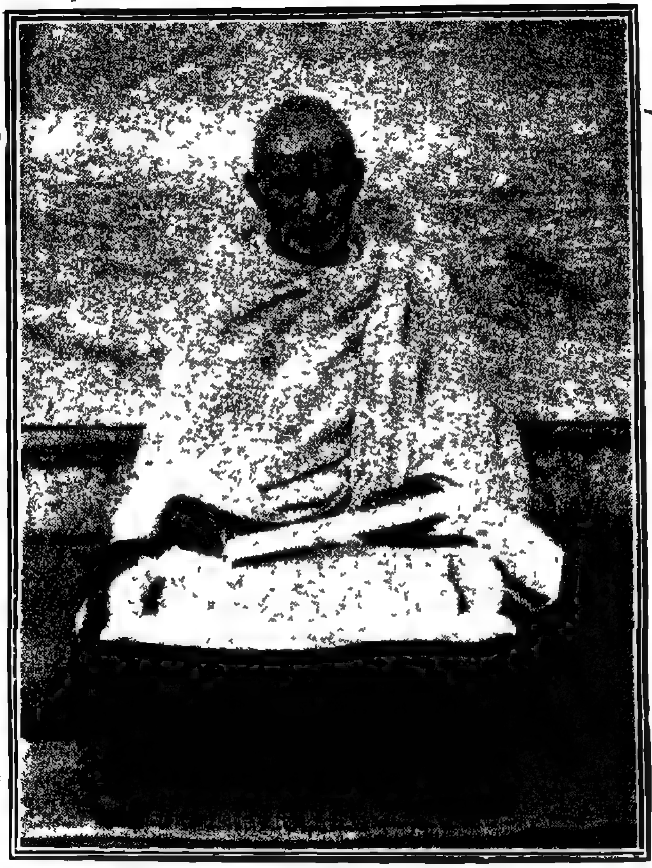
શીલ, તપ, અને ભાવના એ ધર્મના ચાર પ્રકાર વર્ણવ્યા છે. યાદ રાખો કે શાસ્ત્રકારોએ પ્રથમ પદ દાનનેજ આપ્યું છે, દાનને પ્રથમ પદ આપવાનુ કારણ એજ કે—દાનવીર હોય તેજ શીલ—વીર તપ વીર અને ભાવના—વીર બની શકે છે. જેનાથી સ્વાર્થ સમર્પણ થઇ શકયો નહિ એ દાનવીર થઇ શકતોજ નથી. સૌથી મુશ્કેલ ચીજ જે આત્મ કલ્યાણને નડે છે તે સ્વાર્થ છે શાસ્ત્રકાર તેથી આત્મ કલ્યાણ કરવા માગનારને જણાવે છે કે—પ્રથમ તુ સ્વાર્થ સમર્પણ કરતાં શીખ, દુનિયામાં ધન, કળા વસ્ત્રાદિ ચીજો જે મહા મહેનતે આપણે મેળવી છે, અને જે ચીજોમા આપણને ઘણો મોહ છે તે ચીજો સમર્પણ કરતા શીખો સ્વાર્થના ત્યાગ વિના આ સમર્પણ અશકય છે, તમો જ્યારે સ્વાર્થનું સમર્પણ કરો ત્યારે બલાત્કારથી, શરમથી ફક્ત લાગવગથી કરતાજ નહિ. સ્વાર્થ સમર્પણ અથવા દાન કરવુ તે સંપૂર્ણ ઉત્સાહ સાથે કરવુ. જે દાન ઉત્સાહ-પૂર્વક અને તીવ્ર લાગણીથી થાય છે તેજ દાન પોતાનું કલ્યાણ કરે છે જેઓ ઉત્સાહ વિના દાન આપે છે તે શ્રીમત તો બનશે પણ તે લક્ષ્મીનો યોગ્ય ઉપયોગ કરી શકતો નથી

દાન આપતી વખતે કર્મવાદી બની નિરૂત્સાહી નહિ બનવુ. એક કર્મવાદી કહેતો હતો કે—ભાઈ, દાન આપવા તો હું તૈયાર છુ પણ મને ફીકર એ છે કે—જો હુ તને દાન આપીશ તો હુ લેણદાર બનીશ માટે મારે પાછું લેવું બીજે ભવે વસુલ કરવુ પડે અને તારે તે આપવુંજ પડે માટે તુ દેવાદારજ બને તેટલા માટે હુ દાન આપતો નથી. જૈનધર્મ આવો કર્મવાદ સ્વીકારતો નથી. દાન આપનાર કે લેનાર વચ્ચે લેણદાર દેવા-દારનો સબધ ઉત્પન્ન થાય છે જૈન ધર્મ સ્વીકારતો નથી દાન ફક્ત પરોપકાર બુદ્ધિએ સ્પૃહા વિના અને ઉત્સાહથીજ આપવુ કેટલું દાન કર્યું તેની ગણત્રી કરવી નહિ, પણ મારાથી હજુ બાકી રહ્યુ તે પણ પરોપકાર માટે કેમ ખર્ચાતુ નથી તે માટેજ પશ્ચાતાપ કરવો દાન ફક્ત આત્મોન્નતિ માટેજ કરવું અને તે સિવાય બીજી ઇચ્છા નહિ રાખવી. દાનથીજ મમતા તુટે છે. મમતા તુટયા વિના ધર્મમા પ્રવૃત્તિ અશકય છે. આ ભરત ક્ષેત્રમા જીવો નાલાયક છે અને તેવાઓને દાન આપવુ એ કુપાત્ર દાન છે એમ માનનાર મૂર્ખ છે હજુ પણ આ ભરતક્ષેત્રમા દુષમકાલ છતાં પણ એવા પુણ્યશાળી જીવો છે કે—જે અલ્પ સમયમા કેવળજ્ઞાન પામી મોક્ષના અધિકારી બન્યા છે. આવા પુણ્યશાળી જીવો હજી પણ આ ભારત ક્ષેત્રમાં છે, માટે તેઓને દાન કરવું એ કુપાત્ર દાન નથી

વર્તમાન ભારતવર્ષમાં ભારતવર્ષની આઝાદી માટે—મહાનુભાવ મહાત્મા ગાંધીજી, નેહરૂ, પટેલ, ગુપ્તા, બોઝ, અનસારી, કીચલુ, નાયડુ, નરીમાન, આદિ મહાન્ વિભૂતિ ભગીરથ પ્રચલ ઉઠાવી અનેક કષ્ટો સહન કરી રહી છે, તે પણ ભારત-વર્ષના પુણ્યશાળી જીવો છે

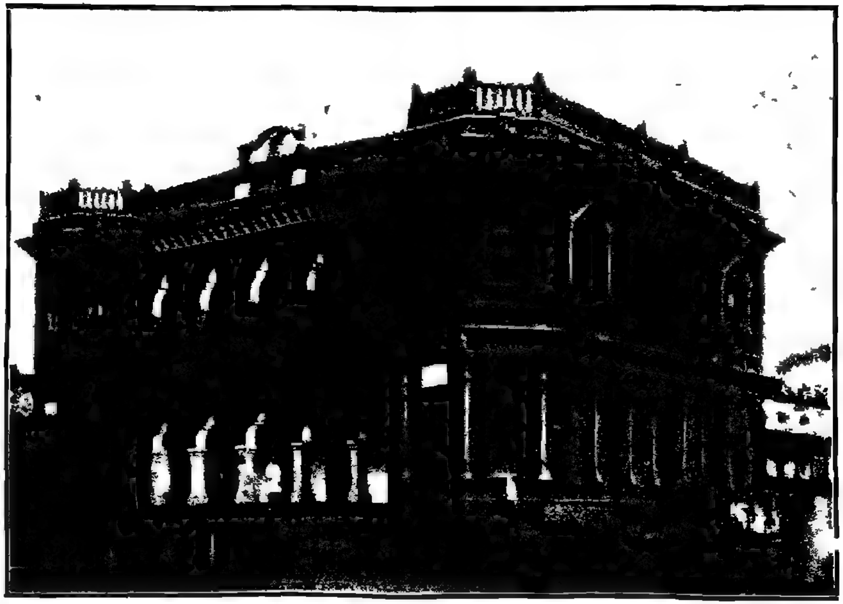
દાન ફક્ત ધનનુ દાન કરવાથી થાય છે તેમ નથી, પોતાની પાસે જે કીમતી વસ્તુ હોય—પછી તે લક્ષ્મી હોય, જ્ઞાન હોય, કળા હોય, વસ્ત્ર હોય, ઔષધ હોય, અન્ન હેય, જે કાંઈ હોય તે બીજાના ભલાને માટે સમર્પણ કરે તે દાનવીર. વીર પ્રભુએ સંસારમા રહી કરોડો સોનૈયાનુ દાન કીધુ, અને દીક્ષા લીધા પછી પણ હજારો જીવોને બલ્કે લાખો જીવોને જ્ઞાન દાન દીધું છે.

દાનવીર બનવાની સાથે આપણે યુદ્ધવીર પણ બનવું જોઇએ. બાહ્ય શત્રુઓ તેમજ મોહાદિ કુટુ-બના નિર્બંધ થઇ પડેલા આપણા આતર શત્રુઓનો નાશ કરવા માટે યુદ્ધવીર બનવુ. આ શત્રુઓથી આપણે દબાઇ જવુ નહિ પણ તેઓના પર આપણે વિજય મેળવવો જોઇએ આત્માના દરેક પરમાણુ પર મોહાદિ કષાયોનો મજબુત પહેરો છે. આ પહેરેગીરોનુ બળ એટલુ બધુ છે કે—તે આત્માને ઉચ્ચ કોટિ પર જવા દેતાજ નથી માટે સંયમ—તપ આદિ સાધનોથી આ પહેરેગીરોનો સંહાર કરી આત્મ કલ્યાણ કરવા માટે યુદ્ધવીર બનો. નીતિ—પૂર્વક ચારિત્ર રાખવાથી તમો યુદ્ધવીર બની શકશો. सुज्ञेषु किम् बहुना ।



श्री० विद्याप्रेमी पं० मोतीलालजी वर्णी-पपौरा।
(संस्थापक, संचालक तथा संरक्षक-श्री वीर दि० जैन विद्यालय पपौरा व
शान्तिनाथ पाठशाला-जतारा, टीकमगढ़)

"जैन विजय" प्रेस-सूरत.



" शान्तिनिकेतन " (दिगम्बर जैन बोर्डिंग हाउस)-कटनी ।

जैनविजय प्रिंटिंग प्रेस-सूरत ।

નુતન વર્ષે શુભાશિષ !!!

પ્રિય પાઠક !

ઘટિકા યંત્રની રેતીની માફક આ કાળચક્ર બદલાએ જાય છે. આપણે પણ કાળ યોગે બદલાવાની જરૂર છે.

આજના નવિન વર્ષના નવલ પ્રભાતે નવિનતામા પગ મુકતા પહેલા આપણે વિચારવાની જરૂર છે. કે-સાંપ્રત કાળે આપણાં સમાજમા-જ્ઞાતિમાં-આપણા કુટુંબમાં શુ શુ ફેરફાર કરવાની જરૂર છે. શુ શુ કરવાથી આપણે-આપણો સમાજ-આપણો દેશ ઉત્કર્ષ પામે-સમૃદ્ધશાળી બને ! તે સબંધી આપણુ કર્તવ્ય છે, તે બતાવવાનો આ જુજ પ્રયાસ માત્ર છે

શ્રી મહાવીર સ્વામીના નિર્વાણ ગમનના પવિત્ર દિવસે-શ્રીગૌતમ સ્વામીના કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્તિના પુણ્ય દિવસે-શ્રી વિક્રમની પવિત્ર જય તિથીએ આપણે આપણા અંતરગનો અપવિત્ર કચરો, દિવાળીની દિપમાળાની પવિત્ર જ્યોતમા હોમી દઈ, આપણે પરમ પવિત્ર બની તે વીર પુરૂષોના વીરતા ભર્યા કામો યાદ કરી તેમના શુદ્ધ ચારિત્રના યશોગાન ગાઇ આપણા આત્માને ઉજ્વલ કરવો જોઈએ !

દિવાળી આવે છે, ને જાય છે પણ તેના સુસ્મરણો જરૂર અમર રહે છે, તેવીજ રીતે કઈ દિવાળીએ-કયા વર્ષે, આપણે-આપણી જ્ઞાતીએ-આપણા સમાજે-આપણા દેશે, શું કર્યુ-શું આદર્યુ-શુ સુધારા કર્યા, તે યાદ રહે છે. બાકી દિવાળી આવી-નવા કપડાં પહેર્યા-દાગીના લટકાવ્યા-મિઠાઇઓ ખાધી-જુગાર રમ્યા-દારૂખાનુ ફોડ્યુ, તે તો એક દુર્ગુણ વધારે ઉત્પન્ન કરી વિસરી જાય છે

વ્યાપારિ વર્ગ દિવાળીના દિવ્ય દિવસે, જુના ચોપડા પૂર્ણ કરી નવા ચોપડા સન્માન પૂર્વક શરૂ કરે છે. સાધુ વર્ગ ચારિત્રમાં આડે આવતા અંતરાયોનું શોધન કરી નવાં વ્રત-નવા જપ-નવા ચારિત્રને હૃદય પૂર્વક ધારણ કરે છે. જૈન લોકો પ્રાતઃકાલે માહાવીર સ્વામીનું પૂજન-અભિષેક કરી ઘણીજ ભક્તિ પૂર્વક નિર્વાણોત્સવ કરી, નિર્વાણ લાડુ ભગવાનનાં ચરણ સમીપ અર્પણ કરે છે. વેષ્ણવ લોકો શ્રી વિષ્ણુ ભગવાનના મંદિરમાં દરેક જાતના અન્ન પદાર્થોની જાત જાતની વાનીઓ તૈયાર કરી, અન્નકુટ મહોત્સવ ઉજવે છે ખેડુત લોકો ચોમાસામાં ઘણાજ કષ્ટ પૂર્વક તૈયાર કરેલું અનાજ ધર્માદા કાર્યોમા ભેટ કરી, નવા અનાજને સન્માન પૂર્વક ગ્રહણ કરે છે. કેટલાક દુષ્ટ અને પાખંડી લોકો, દુષ્ટ દેવ-દેવીની દુષ્ટ ઉપાસના કરી-દુષ્ટ દેવ-દેવીને સિદ્ધ કરે છે

દિવાળી પર્વ એમ જુદા જુદા લોકો જુદા અન્વયથી ઉજવે છે, પણ દિવ્ય વાતાવરણ ઉત્પન્ન કરનાર દિપમાળ તો બધા સરખીજ રીતે પ્રગટાવે છે.

પર્વ એક છે. માનનારા જુદા છે. પર્વની ઉત્પત્તિ દરેક પોતાને મનપસંદ માની લે, પણ **પર્વ દરેકને પવિત્ર ભાસતું હોઇ જગત ભરમાં આદરણીય છે. એની તો કોઇથી પણ ના પડાય તેમ નથી.**

આપણે જૈન લોકો ઘણે ભાગે વ્યાપારી આલમથીજ ઓળખાઇએ છીએ. જે માણસ ભવિષ્યનો વિચાર કરી, ક્રય અને વિક્રયનો વ્યવસાય કરી, નફા ટોટાનો હિસાબ રાખે, ખર્ચનો અંદાજ કાઢે, વ્યવહારમાં નિપુણ હોય, સાલ આખરે પોતાના ધંધાનુ નિરીક્ષણ કરી, વધારે લાભ કયે રસ્તે મળે, તેનો વિચાર કરી, તે મુજબ નવા વર્ષમા વ્યવસાય કરે, તે વ્યાપારી. પછી તે ગમે તે જ્ઞાતિનો હોય, તેવીજ રીતે, આપણા સમાજે ગત વર્ષમા શુ શું સુધારા કર્યા, કયા કુચાલો દૂર કર્યા-મહાવીર સ્વામીનાં ફરમાનોનો અમલ કેટલો કર્યો, જૈન ધર્મ શાસ્ત્રનો ફેલાવો કેવી રીતે-કેટલો કર્યો, બાળ લગ્નો કેટલાં અટકાવ્યાં,

કેટલાં શુદ્ધ ધર્મનો બંધ રખાવ્યાં, કન્યા વિક્રય કેવી રીતે બંધ થયા દીધા—વિધવાઓના અત્યાચાર કેવી રીતે રોકયા, નવા જૈન કેટલા બનાવ્યા, વિગેરે બાબતોનું વ્યાપારિક દ્રષ્ટિએ નિરીક્ષણ કરવું, તે આજના મંગલમય દિવસે આપણી ફરજ છે

દિવાળીની દિપમાળ પ્રગટ થતાંજ જુના વર્ષનો અંધકાર જઈ, દરેક જણુ બેસતા વર્ષના મંગલમય પ્રભાતે, નવા રૂપમાં—નવા વેસમા—નવા ઉત્સાહથી (જયકારથી) વિચરે છે.

દરેક સમજુ વ્યાપારી ગયા વર્ષમાં જે લાઈનમાં ઓછુ લાભ થયો હોય, તે લાઈનનુ વધારે નિરીક્ષણ કરી, વધારે લાભ મેળવવા તે લાઈન તરફ ધ્યાન ખેંચે છે, તેવીજ રીતે જો આપણે, આપણા સમાજને માટે તૈયાર થઈએ, તો શું કામ જૈન ધર્મ વિશ્વવ્યાપી ન બને !

આજકાલના જૈનોમાં સેંકડે નેવું જણુ પુરો ણમોકાર મંત્રનો અર્થજ નહિ જાણતા હોય, તો પછી જૈનતત્વજ્ઞાનમાં તો સમજેજ કયાંથી !

જો જૈનધર્મ જગદ્વ્યાપી બનાવવો હોય તો, જૈન શ્રીમંતોએ લાખોની સખાવતો મંદિરો પાછળ નહિ કરતાં, જૈન ગ્રંથોના દરેક ભાષામાં પ્રકાશ કરવા અર્થે કરવી જોઈએ ?

જ્યાં સુધી શ્રીમંતો મંદિરો તરફની ભાવનાની સાથે શાસ્ત્ર તરફ શ્રદ્ધાવંત નહિ થાય, ત્યાં સુધી જૈન સમાજની ઉન્નતિ न भूतो न भविष्यति। માની લેવાની છે.

જૈન સમાજમા જે જે દુર્ગુણો ઘર ઘાલી બેઠેલા છે, તે બધાને દિવાળીની દિપમાળમા હોમી દઈ સમાજને નિર્મળ કરવાની જરૂર છે

અત્યારના સમયમા જૈન સમાજ એટલા બધાં પાખંડને પોષે છે કે તેનું જો યથોચિત વર્ણન કરવા જઈએ તો આખો ગ્રંથ ભરાય

જુ માકણુની માફક વનસ્પતિ છેદનની પણ હિંસા અટકાવનાર જૈનો કન્યાવિક્રય કરે, તે શું જૈન ધર્મને યોગ્ય છે ?

પાણીમાં વસતા ઝીણામાં ઝીણા પોરાને પણ તેના અસલ સ્થળે પહોંચાડનાર જૈનો બાળલગ્ન કરે તે શું અનુકૂળ છે ?

હાથ કે—પગ પર બેસી ડંખ દેતી માંખ કે—માંકડને પણ ન ઉરાડનાર જૈનો વૃદ્ધ બિજવરો સાથે બાળકીઓને પરણાવે તે શું સંભવિત છે ?

ભૂખે મરતાં કબુતરોના આશ્રય માટે, ચરબડી અને કબુતરખાનાં બંધાવનાર જૈનો, વિધવાઓને સંતાપે તે શું શાસ્ત્રસંમત છે ?

કેસરનો પીળો ચાંલ્લો કરી—પોતાને મહાવીર સ્વામીના વંશજ માનનારા શ્રાવકો આપસમાં લઢે—કોરટે ચઢે—મારામારી કરે—એક બીજાનું ઝુંટવી લેવા પ્રયાસ કરે, તે શું મહાવીર સ્વામીએ કહેલ છે ?

અશક્ત જીવો માટે પાંજરાપોળ ખોલનાર દયાળુ શ્રાવકો, ગજા વિનાના જ્ઞાતિ ભાઈ પાસે હદ ઉપરાંત જમણવાર કરાવે, તે શું તેમને શોભે છે ?

પોતાનાજ તનથી—પોતાનાજ લોહીથી પોતાની કામ પિપાસા પરિતૃપ્તિના ફળરૂપ પ્રાપ્ત થએલ, પોતાની પુત્રીને કજોડા રૂપી કળીયુગ વેરે પરણાવવી તે શું જૈન માતાની ફરજ છે ?

જૈનો જગતમા અહિંસા ધર્મના ઉત્પાદક અને પ્રચારક ગણાય છે. જૈનોએજ યજ્ઞાદિ કાર્યોમા થતો પશુવધ બંધ કરાવ્યો છે—જૈનોએજ અનેક દેવ-દેવી દ્વારા થતી લાખો જીવોની હિંસા અટકાવી છે, તેવીજ રીતે જગત આખામાં તેજ જૈનોએ મનુષ્ય માત્રને જીવ હિંસા તરફ જતા

અટકાવ્યાં છે. તેજ જૈનો, પોતાની ગાય જેવી નિર્મળ કન્યા, બાળલગ્ન કે-વૃદ્ધલગ્નમાં હોમી દઇ, તેના દ્વારા બાળ વિધવાઓ ઉત્પન્ન કરાવી, તેમને રીબાવી-રીબાવી-અત્યાચારો શીખવી-પોતાનાજ નોકર કે-સંબંધીથી વિષય વાસનામાં ઉતારી તેમની કામ વાસનાની નિશાની રૂપ સંતાનોને ઉદરમાંજ નાશ કરાવે, તે શું જૈન નામને યોગ્ય છે ?

ધિક્કાર છે, તે શાસ્ત્ર બંધનને ! ! ! કે-જે ધર્મના નામ પર ચાલી રહેલા હિંસામય કૃત્યો કરવા સમાજને પ્રેરણા કરે છે ! ! !

ધિક્કાર છે, તે રૂઢિઓને, કે-જે આજના ક્રાન્તિના જમાનામાં જૈનોને આગળ આવતાં અટકાવે છે !

જૈનો જાગો ! જાગો, જમાનો બદલાયો છે જગત્ માત્ર ક્રાન્તિને રસ્તે ગમન કરે છે-યુવાનોએ વૃદ્ધો સામે બંડ ઉઠાવ્યાં છે. સ્ત્રીઓએ સ્વતંત્રતા માટે રણયજ્ઞ માંડયો છે-મહાત્મા ગાંધીજીની સરદારી નીચે દેશે આખરે આઝાદ થવા બ્રિટીશ સલ્તનત સામે મોરચા માંડયા છે. જગત માત્ર આઝાદીનો મંત્ર ફુંકી રહ્યું છે, તે વખતે તમો જૈનો શું સુઇ રહેશો !

ઉઠો, બન્ધુઓ ઉઠો, જગત ભરમાં જ્યાં જ્યાં જૈનત્વ હોય, ત્યાં ત્યાંથી ગ્રહણ કરી જગત માત્રને જૈનત્વમાં જોડી દો !

અસહકારના સિદ્ધાંતો જૈનત્વથી ભરેલા છે. પૂજ્ય ગાંધીજીના મંત્રો જૈનત્વથી પરિપૂર્ણ છે-આખો દેશ અત્યારે જૈનત્વને હૃદય પર ધારણ કરે છે. તે વખતે જો આપણે-આપણા શ્રીમંતો-પંડિતો યુવાનો-વૃદ્ધો સર્વે એકત્ર થઇ જૈનતત્વથી ભરેલા જૈન ગ્રંથોનું દરેક ભાષામાં પ્રકાશન કરી, તેનો પ્રચાર કરીશું, તો જૈન ધર્મનો પ્રભાવ મનુષ્ય માત્રના મન પર પૂરેપૂરો પડશે અને તે પ્રભાવ કદાપિ ભુસાશે નહિ.

જૈનો યાદ રાખજો, આ વખતે તમે જરા પણ ચુકશો તો પછી તમારા માટે, ભયંકરમાં ભયંકર પ્રલયજ સર્જાએલો છે.

સમાજના એક અંગ તરીકે આજના જૈન યુવાનોનું કર્તવ્ય છે કે-તેમણે સમાજના યુવાનોને તેમના કર્તવ્યનો બોધ કરી, તેમને સમાજ સુધારવા ફરજ પાડવી !

આજના બેસતા વર્ષના મંગલ દિવસે મારી હૃદયપૂર્વક આશીષ છે-સાલ મુબારક છે. કે-આજનું મંગલમય પ્રભાત આપને-આપના કુટુંબને, જ્ઞાતિને, સમાજને કલ્યાણ કર્તા નિવડો.

સાલ મુબારકનો અર્થ એવો નથી કે-આપણે સારૂં લગાડવું-પણ ગઇ સાલમાં જે જે ભુલો, જે જે ખામીઓ રહી ગઇ હોય, તેને યાદ લાવી શોધી શોધી દૂર કરવી, તેજ સાલ મુબારકનો અર્થ છે.

વાંચક, તું પણ આ નવી સાલમાં, તારા ધર્મને ખાતર-દેશને ખાતર-તારાં સિદ્ધાંતને ખાતર બહેનોને ખાતર-જેઓના લલાટે ગરીબાઇ છે તેને ખાતર, જૈનત્વનો, જૈનિક જ્યોતિ, તારા સમાજમાંથી, બાળ લગ્ન, વૃદ્ધ લગ્ન-કન્યા વિક્રય-કજોડાં-નકામા જમણવાર, આદિ દુર્ગુણોને ગોતી ગોતી દૂર કરવા હિંમતવાન થા, એજ મારા હૃદયની આશીષ છે, પ્રભુ તને સન્મતિ આપે, ૐ શાંતિઃ શાંતિઃ

લખનાર હું પ્રભુ જૈન માત્રને એકત્ર જોવાને ઇચ્છુક,

મોહનલાલ મથુરાદાસ શાહ, કાપડીઆકર,

મુ. કમ્પાલા (યુગાન્ડા) આફ્રિકા.

કયું ઉત્તમ ?

(લેખક—રા. દેશાઇ.)

આપણા દેશનાં મનુષ્યો પરતંત્ર દશામાં રહીને એવી ગુલામી મનોદશાવાળા સરજાયા છે કે, તેમને મન જેલ એ એક જીવતું નરક છે. પરંતુ આ માન્યતા એ એક ગુલામી મનોદશા બતાવતું ચિત્ર છે. વસ્તુસ્થિતિ તેથીજ ઉલટીજ છે. આપણા હાલના આ બ્રિટીશ રાજ્યતંત્ર નીચેના નિત્ય જીવન કરતાં જેલજીવન એ વધુ ઇચ્છવા યોગ્ય છે પરંતુ આપણી પરતંત્ર મનોદશા હાલના જેલજીવનને એક હાઉ રૂપ માની લે છે. કારણકે તે હાલના નિત્યજીવનના સત્ય અંશને ખરા સ્વરૂપમા ઓળખી શકતુ નથી પરંતુ ઉભય જીવનો પૈકી કયું જીવન હાલને માટે વધુ હાનિકારક છે, તે બતાવવાનો અત્રે અલ્પ પ્રયાસ કર્યો છે.

ખોરાક—જીવનને ટકાવી રાખનાર જે ઉપયોગી તત્વ ખોરાક તેની ઉપર આપણે પ્રથમ ધ્યાન આપશું

જેલજીવનમાં—દેશ અને ખોરાકમા વપરાતા અનાજ પ્રમાણે અનાજ મળવાની ગોઠવણ છે જેમકે મદ્રાસ ઇલાકામા ચોખાનો ખોરાક મુખ્ય છે, તો ત્યાં કેદીને સ્હવારના ચોખાની કાંજી, દશ વાગે દાળભાત અને સાંજના ઘઉની રોટલી અને શાક મલે છે. મુંબઇ ઇલાકામા જુવાર બાજરી મલે છે અને બન્ને વખત એટલે સ્હવારના જુવારની કાંજી, બપોરે જુવાર અગર બાજરીના બે રોટલા તથા દાળ મલે છે અને સાજના રોટલા અને શાક મલે છે. તેમજ ઉત્તર હિંદુસ્તાનમાં જુવારને બદલે ઘઉ મલે છે ખોરાકનુ પ્રમાણ એક શકત માણસને જોઇએ તેટલુ હોય છે. એટલેકે સવારમા કાંજી ૨ ઔંસ, બપોરના રોટલા—૧૧ ઔંસ અને દાળ—૪ ઔંસ તથા સાંજના રોટલા—૧૧ ઔંસ અને શાક ૮ ઔંસ મલે છે.

હવે આપણે ખ્યાલ કરીએ કે આપણા નિત્યજીવનનો ખોરાક શુ છે? દાળ ભાત રોટલી એ હિંદુસ્તાનનો નિત્ય જીવનનો ખોરાક ગણી શકાય નહી કારણકે હિંદુસ્તાનની ૮૦ ટકા વસ્તી પોતાનો ગુજારો દાળ રોટલા અગર છાસ રોટલા તેમજ મકાઇ અગર જુવારના ભડકા ઉપર કરે છે દુધ ઘી તો ઘણા થોડા માણસોજ આ રાજ્ય તંત્રના પ્રતાપે મેલવી શકે છે. ત્યા નિત્ય જીવનના ખોરાકમા વિશેષતા શી છે? આથી ઉલટું તો એમ કહેવુજ પડશે કે જ્યારે હિંદુસ્તાનમાં વસનાર માણસની સરેરાશ એક આનો નવ પાઈ છે ત્યારે તેથી વધારે કિંમતનો જેટલો ખોરાક લેવો તે ગરીબોનો રોટલો પડાવી લઈ ખાવા બરોબર છે અને જેલનો ખોરાક એ દોઢ આનાથી વધારે કિંમતનો હોતો નથી, છતા મનુષ્ય જીવન ટકાવી રાખવા જેટલો તો છેજ.

કુદરત—કુદરતના ઉપયોગી તત્વો પાણી અને હવા એ મનુષ્ય જીવનને અનુકુળ હોયજ અલબત્ત વાતાવરણ બદલાવાથી સ્વાભાવિક વિકારો ઉત્પન્ન થાય પરંતુ આખરે તો તે શરીરને પોષક હોઇ માફક આવેજ છે એટલે આપણને કેદી તરીકે એક જગ્યાએથી લઇ બીજા આબોહવાવાલા પ્રદેશમાં લઈ જાય તો શરીર ઉપર સ્વાભાવિક વિકારો થાય પણ આખરે તે અનુકુલ થાય છેજ. તેમજ હાલના આપણા નિત્ય જીવનમાં આપણે આપણા નિર્વાહ અર્થે જન્મ સ્થાન છોડી પરદેશ કયા વેઠતા નથી. કયાં પરદેશની હવા માફક નથી આવતી, તો જેલ જીવનમાં વાંધો કયાં હોઇ શકે?

ટ્રીટમેન્ટ—હવે જેલ જીવનમા વધુ દુ:ખ દાયક ગણાતી વસ્તુ જે આપણી સાથે ચલાવવામા આવતો વ્યવહાર તે છે અને તેના માટે સામાન્ય જનતાનો હંમેશાં પોકાર હોય છે અલબત્ત તે કંઇક અંશે ખરો પણ છે, છતાં આપણા હાલના નિત્ય જીવનમા પણ આ રાજ્યતંત્ર નીચે

એવા અત્યાચારો થાય છે કે જેની સંભાવના જેલ જીવનમા બીલકુલ હોતી નથી આ ચાલુ રાજ્યતંત્ર એવી તો સુલક્ષણુ નીતિવાળું છે કે તેની જરૂરિયાત માટે તે તમારી ઉપર ગમે એવા અત્યાચારો કરતાં જરાય આંચકો ખાય તેમ નથી. અને તે તો કયો સમજદાર મનુષ્ય નથી જાણતો કે શાંત અને અહિંસક સૈનીકો ઉપર ધારાસણામા, વડાલા તથા વીરમગામમા કેવા અત્યાચારો થયા છે આ અત્યાચારોનો તો છાંટોએ જેલ જીવનમા નથી. હાલના નિત્ય જીવનમા તો જીદગીની સહીસલામતી માટે પણ શંકા છે. કારણ કે કયે ટાઇમે સારજંટોની ગોળીઓ શરીર વિંધશે કે લાઠીઓ માથા ફોડશે તેનો ખ્યાલ વટીક પણ કરી શકાતો નથી તે અત્યાચારો યાદ કરતા તો આપણા રોમાંચ પણ ખડા થઇ જાય. આવી પરિસ્થિતીમા પરતંત્ર હોઇ ઘરમાં મરવા કરતા તો સ્વતંત્રતાની જખના કરતા કરતા જેલમા મરવું તે પણ વધુ ભાગ્યશાળી ગણાશે

મહેનત—જેલમા કદીઓ પાસે મહેનત લેવામા આવે છે તેની ઉપર આપણે વિચાર કરીશુ સજા બે પ્રકારની હોય છે—એક સાદી સજા (Simple Imprisonment) અને બીજી સખત સજા (Rigorous Imprisonment) છે તેમા સાદી સજાવાલાને મહેનત હોતી નથી અને કદાચ કામ લેવામા આવે છે તો તે પણ એકદમ લાઇટ વડ હોય છે સખત સજામા દોરડા વણવાનુ, શેતરંજી ગુંથવાની વીગેરે હુન્નર ઉદ્યોગનુ કામ આપવામા આવે છે તેમજ મહેનત પણ તંદુરસ્તી જોઇને આપવામા આવે છે. અને ટાઇમ કામ કરવાનો ૬ કલાક હોય છે. જ્યારે આપણો ખેડુત તેમજ નોકરીયાત વર્ગ સહવારના સાતથી રાતના દશ વાગ્યા સુધી કામ કરે છે. આ દ્રષ્ટિએ જેલ જીવનમા મહેનત એ વધુ ત્રાસદાયક છે, એમ કેવી રીતે કહી શકાશે ?

સુખાકારી—જેલમા કેદીઓની શારિરીક તપાસ રાખવામાં આવે છે. તથા તેના માટે હોસ્પીટલ પણ હોય છે. ત્યારે આ રાજ્યતંત્ર હેઠળ વસતી ગામડાંની ૨૨ કરોડની વસ્તીને માટે દવાખાના માટે શો પ્રબંધ છે તેનો વિચાર કદી કર્યો છે ? ગામડાનો એક માતબર ખેડુત જે આ સરકારને વર્ષે દીવસે બસો પાંચશો કરના ભરે છે તેને પણ દવાખાનાની સગવડ મલતી નથી તો શુ આ દ્રષ્ટીએ પણ જેલ જીવન ઉત્તમ નથી?

આમ આપણે આપણા અજ્ઞાનથીજ જેલ જીવનને નિત્ય જીવન કરતાં વધુ દુ:ખરૂપ માની રહ્યા છીએ, પરંતુ વસ્તુત એમ છેજ નહી માટે જ્યારે દેશ ગુલામી દશામાં સબડતો હોય ત્યારે આપણે નિત્ય જીવનની વિશેષતાઓમાં ભાન ભૂલ્યા થઇ દેશને દગો દઇ પડી રહીએ તે એક જાતનો ચોકખો માતૃદ્રોહ અને દેશદ્રોહ છે. અને તે દ્રોહીઓની સ્થિતિ સ્વાતંત્ર્ય માટે ઝુરતા કેદીઓ કરતા કર્યાય બુરી છે

"ત્યાગનો બોધ."

ગઝલ.

ધરી જો ત્યાગની કફની, સહુ પ્રાણી તમારા છે,
ધરી જો મોહની કફની, સહુ પ્રાણી અનેરાં છે;
ધરી જો સુખની આશા, દુ:ખો સામે ઉભેલા છે,
ધરી જો ભોગની આશા, નિરાશા ફાંસ લાગી છે.
ચહી જો કીર્તિની માયા, તિરસ્કાર સામે ઉભા છે,
ધર્યા જો મદ કષાયોને, નરક દૂતો ઉભેલા છે;
ધરી જો દેહની મમતા, સદા સંસાર વળગ્યો છે,
ધરી જો આત્મની શ્રદ્ધા, પાસે તુમ મુક્તિ લક્ષ્મી છે.
ચહેલા પુણ્ય ફળ ઓછાં, મળેલી માંગ નકામી છે,
શુભાશુભ કર્મનો બદલો, વિના માગ્યે મળેલો છે;
સુખો સંસારના કાચાં, દુ:ખો પાછળથી કરનારાં,
સદા મૃગજળ સમાં રુડાં, અહો ત્રિભુ આત્મ સુખ સાચાં.

ત્રિભુવન રાયચંદ, શાહ—ભાવનગર.

યુવાનોપયોગી સદ્વચનામૃત.

(લે॰ ચંદુલાલ કેશવલાલ, શાહ-કારંજા)

પ્રિય યુવક વાંચક બંધુ !

આપની સમક્ષ આપના હિતને માટે લાભદાયી થઈ પડે એવાં કેટલાક ગુજરાતી સાહિત્યમાંથી ઉધ્ધૃત કરેલા કેટલાક quotations રજુ કરૂં છું ને આશા રાખું છું કે તે આપને ઉપયોગી થઈ પડશે. આ સર્વ વાકયો દરેક યુવાન બંધુને વાંચી તેનો અમલ કરવાની ખાસ ભલામણ છે

૧—દરેક યુવકે પોતાને તથા પોતાના દેશને સ્વાધીન જોવાનીજ અભિલાષા રાખવી, નહિ, કે પરાધીન

૨—જેને પોતાના ધર્મ તથા દેશને માટે લાગણી નથી, અને જેને પોતાના ધર્મ તથા દેશને ઉન્નતિના શિખરે ચડાવવાનો ઉચ્ચ-અભિલાષ નથી તેનું આ સંસારમાં પેદા થવું, નહિ પેદા થવા બરોબરજ છે.

૩—બીજાના સદ્‌ગુણ ઉપર આફ્રીન થવું તે સદ્‌ગુણી થવાનું પહેલું પગથીયું છે

૪—સદાચારનો મોટામાં મોટો અને એકજ બદલો સદાચાર છે

૫—જે માણસ ઉત્તમ રીતે કામ કરે છે તે ઉત્તમ રીતે ભક્તિ કરે છે

૬—મદિરાપાન, સટ્ટો, જમીનગીરી એ ત્રણેનો ત્યાગ કરો

૭–જે માણસને ઉચ્ચાભિલાષ નથી તેને માટે નિયમો સારા છે

૮–પોતાની પાછળ દ્રવ્ય મૂકી મરી જવું એ ઘણું નામોશી ભરેલુ છે

૯—જે ધન સત્યમાર્ગથી અપાય નહિ, પણ ભયાદ તેને આને ત્યાંજ અપાય તે બક્ષિસ કહેવાય નહિ.

૧૦—પુત્રોને મોટામાં મોટો વારસો દરિદ્રતાનોજ છે

૧૧—શ્રીમંત લોકોના મૂર્ખ પુત્રોને વારસામાં પુષ્કળ ધન મળે છે એ તેમના દુર્ભાગ્ય સિવાય બીજો કશો દોષ તેમનો નથી પણ ખરો દોષ તો તેમને મોટા વારસો આપનાર માત પિતાનોજ છે

૧૨—સારી કેળવણી અને સુંદર તંદુરસ્ત શરીર સિવાય કોઇને વારસામાં બીજી એકે વસ્તુ મળે નહિ એવો જો રિવાજ રાખ્યો હોત તો આ દુનિયાના બધા માણસો સુધરી ગયા હોત.

૧૩—જુવાન માણસ માટે સોનાના સિક્કાથી ભરેલા થેલીઓ જેવો એકે બીજો ભારે બોજો નથી.

૧૪—અને દરિદ્રતા કે શ્રીમંતાઈ આપશો નહિ હે દયાળુ પરમાત્મા ! અને દરિદ્રતાના દુઃખમાંથી તેમ ધનની જુમ્મેદારીમાંથી બચાવો.

૧૫-મનને સંયમમાં રાખી આવક પ્રમાણે ખરચ કરવો એ મુડી એકઠી કરવાનો ઉત્તમ માર્ગ છે

૧૬—ખરચ હમેશા આવકની અંદર હોવો જોઇએ

૧૭-મનુષ્યે ધનના ધણી થવું જોઇએ, અને ધનને પોતાના ઉપયોગી નોકર તરીકે ગણવું જોઇએ. પોતે તેના દાસ થવું જોઇએ નહિ, તેમ કંજુસ પણ બનવું જોઇએ નહિ.

૧૮—દરેકે પોતાનો રોટલો પોતાના શરીરના પરસેવાથી કમાવો જોઇએ

૧૯—વ્યાપાર કરવાનોજ નિશ્ચય કરો, સટોડીઆ થવાનો કદી નહિ

૨૦-સારી રીતે ચલાવેલા કોઇપણ ધંધો થોડા વર્ષમાં સારો નફો આપે છે.

૨૧-કોઇપણ વ્યાજબી ધંધો કરવામાં બીલકુલ ખચકાશો નહિ.

૨૨-વ્યાપારનો સરદાર તો વ્યાપારને પોતાનું સર્વસ્વ માને છે, અને પોતાની મહેનતના બદલા તરીકે પોતાના ધંધાની ફતેહ ઉપર આધાર રાખે છે.

૨૩—ફતેહની પહેલી શરત એ છે કે તમારી મહેનત, વિચાર અને મુડી તમે જે ધંધો કરો છો તે એકલામાજ એકત્ર કરો

૨૪–પ્રમાણિક, સત્યવાદી અને શુદ્ધ નિષ્ઠાવાળા ન હશો તો તમને ખરી પ્રશંસનીય કીર્તિ મળવાની નથી

૨૫–સાહસ, વિવેકબુદ્ધિ અને નવીન યોજનાઓ ઘડવા માટે અસાધારણ શક્તિ–એ ત્રણ ગુણો વડેજ લાખોની પ્રાપ્તિ થઇ શકે છે

૨૬–વેપારમાં ધીરજ, અને સતત ધ્યાન હોય તોજ સફળતાનો મહેલો બને છે–અને તે સાવધાનતાથી યોજેલા સાધનો ઉપર આધાર રાખે છે

૨૭–યુવક વેપારીને નિષ્કલંક શાખ જેવી બીજી એકે વસ્તુ આવશ્યક નથી, અને તે શાખ માણસના ચારિત્રની દૃઢતામાં, સિદ્ધાંતોમાં અને બોલવામાં ઉદ્યાપણના વિશ્વાસથી ઉત્પન્ન થાય છે

૨૮–તમારા આધારી વડીલો તમારી મુડી બનતા નથી, પરંતુ મુડી ઉત્પન્ન કરવાના આધારી ગુણો તમારામાં છે કે નહિ તે જુએ છે

૨૯–આરંભમા યુવકોએ છેક નીચલી જગ્યાએથી કામ કરતા શીખવું જરૂરનું છે.

૩૦–તમારા શેઠ ગુણજ્ઞ ન હોય તો તમારે તેમની નોકરી કરવી ઇષ્ટ નથી–જ્યારે બને ત્યારે તાત્કાલીક ભોગે પણ તેનો ત્યાગ કરવો અને બીજા ગુણજ્ઞ શેઠને શોધી કાઢો

૩૧–દરેકે હમેશા ઉંચી ભાવનાઓ રાખવી.

૩૨–મરણાન્તે પણ ધર્મને વિસરવો નહિ અને જ્યા જઇએ ત્યા તેનુ ચિંતવન કર્યા કરવુ

૩૩–દેશને બને તેટલી તન મન અને ધનથી મદદ કરો અને તેને સ્વતંત્ર બનાવવાનો શુદ્ધ અંતઃકરણથી નિશ્ચય કરો

૩૪–સ્વાતંત્ર્ય એજ તમારો જન્મ–સિદ્ધ હક છે, તે કદી ભૂલો નહિ

૩૫–જ્યાં સંપ ત્યાં જંપ છે એ હમેશા યાદ રાખો.

આઝાદીની લડતમાં જૈનોનું કર્તવ્ય.

આજે હિંદુસ્તાનને સ્વતંત્ર કરવાને આ હિલચાલ દેશના ખુણે ખુણે ચાલી રહી છે. તેમાં આપણ જૈનોનો હીસ્સો ઓછો છે. પૂ. મહાત્માજીની આજ્ઞાનુસાર આપણે પણ ચાલવુ જોઇએ. દેશને સ્વતંત્ર કરવાને મુખ્ય ત્રણ કામ છે–કાંતવાનું, પીકેટીંગ કરવાનુ અને વિદેશી કાપડ નહિ પહેરવાનું. અત્યારે આપણે નિરાંતે નજ બેસવુ જોઇએ. જ્યારે સરકાર આપણાં ભાઇ બ્હેનોના માથાં ફોડે છે, ત્યારે બ્રિટીશ વસ્તુઓને બહિષ્કાર કરવાની પ્રતિજ્ઞા શા માટે ન લેવી જોઇએ? બહાર શું ચાલી રહ્યું છે તે જોવુ જોઇએ પૂર્ણ સ્વતંત્રતા મેળવવા આ એકજ ઉપાય છે. અત્યારે ૭૦ વર્ષના ઘરડા માણસો પણ આ લડતમાં પૂર્ણ ભાગ આપી રહ્યા છે–દેશના સેવે છે, તો આપણે આ બધું ક્યા સુધી સાંભળીશુ. એટલામાં એટલુ આપણે વિદેશી વસ્ત્રનો ત્યાગ તો કરવોજ જોઇએ. જ્યારે અટલુ એ ન કરીએ તો જીવીને પણ શું. એના કરતા મરવુ સારૂં. બહિષ્કાર ઉત્તમમાં ઉત્તમ ચીજ છે. એનાજ વડે ધારેલુ કામ પાર પડશે.

આજે સ્ત્રીઓ પણ બહાર ફાળો આપી રહી છે. તેમજ યુવકો પણ હસતે ચહેરે જેલ જવાને તૈયાર થઇ રહ્યા છે. જગતની અંદર આ જમાનામાં કોઇ પણ વ્યક્તિ ન કરી શકે એવુ કામ પૂજ્ય બાપુજીએ કરી બતાવ્યું છે તેઓશ્રી લાંબુ આયુષ્ય ભોગવે એવી આપણે હંમેશાં પ્રભુ પ્રાર્થના કરવી જોઇએ. પરતંત્રતાની બેડીઓ તોડી સ્વતંત્ર થવાને માટે મહા સભાએ જગબહાદુર યુદ્ધ આદર્યુ છે. આપણે પડી રહેવાનો વખત નથી આજે બધી પ્રવૃત્તિઓ દૂર કરવી જોઇએ. દેશની ખાતર બધા બધુ છોડી દેવુ જોઇએ આ જમાનામા આપણે જે જમણો શરૂઆત કરીએ છીએ, તે બધું બંધ કરી દેવુ જોઇએ અને તેટલા પૈસા દેશને અણીના વખતે મહાસભાને મોકલી દેવા જોઇએ આજે ભારતને મુક્તિ કરવા કેટલા વીરો ભોગ આપી રહ્યા છે આપણે પણ દેશના આગેવાનોની આજ્ઞાનુસાર ચાલવુ જોઇએ સ્વદેશીવ્રતની પ્રતિજ્ઞા લેવી જોઇએ. દેશના ઉદ્ધારનો રસ્તો વિદેશી વસ્તુનો બહિષ્કાર અને સ્વદેશીવ્રતની પ્રતિજ્ઞાજ છે,

લે॰–જૈન, વીરબાળા–ઇંદોર.

સ્વરાજ્યવાદીને સંદેશો.

(લેખક:—શા. હાથીભાઈ માણેકચંદ, સોનાસણ.)

રાગ—લાવણી.

રણુસીંગું જ્યાં ફુંકાય, યુદ્ધ મંડાય, નોબતો વાજે,
તન ધન કરો કુરબાન, વિજય છે આજે
ઓ ભારતના સંતાન, ગુમાવ્યું માન સ્થાન ક્યા રાજે,
એ સ્વતંત્રતાને માટ, યુદ્ધ છે આજે
જુઓ ચંદગુમદરબાર, મેગેનીઝ કાળ, લખ્યા જે લેખો,
રે હાલ દીસે ઉત્પાત, સુખ નવ દેખો.
ક્યાં રણજીત ગયા વિવેકી!
રે પ્રતાપ ગયો ક્યા ટેકી!!
દીસે નહિ શૂર શિવાજી!!!
પણ આજ દીસે બહુ પાજી!!!' રણુસીંગુ—૧

જેથી દેશ થયો પરતંત્ર, મરી ગયો મંત્ર, ગુલામી વ્યાપી,
હડધુત કરે પરદેશ, કુલી મહા પાપી
પૃથુ જયચંદ વિખવાદ, લીધો શું સ્વાદ, ગયા બહુ થાકી
થયો છિન્ન ભિન્ન આ દેશ, રહ્યો નહિ બાકી
ડચ ફ્રેન્ચ વલંદા લાભ, પોર્ટુગીજ આભ ચઢીને આવ્યા.
પછી દેશ થયો વેરાન, અંગ્રેજો ફાવ્યા
લુંટ નાદિરશાહ વિખ્યાત!
મારણુ મહમદ પ્રખ્યાત!!
તૈમુર કરવી કયા વાત!!!
હેસ્ટીંગ જુઓ શાક્ષાત!!!! રણુસીગુ—૨

ભલા રીપન ગવરનર આજ, દેવા સ્વરાજ, દશ્ય દેખાડયું.
કાંઈ કરી સુધારા, સરસ નામ દીપાવ્યું
બીડી દાદાએ ત્યાં હામ, કર્યું શુભ કામ, સભા
(કોંગ્રેસ) ત્યાં થાપી,
સન પંચ્યાસીની સાલ, ઓગએ અધાપી
ત્યાં દેશ હિતેચ્છી મળ્યા, લીડરો ભળ્યા અર્થ સરવાને,
ધાતુક્ષય હિન્દે રોગ, દૂર કરવાને.
ધન્ય દાદાભાઈના કામ!
ફિરોજ બેનરજી હામ!!
ગોખલે માલવી દામ!!!
ભળીઆ હે લાવી રામ!!! રણુસીગુ—૩

ડી તિલક લાલાની જોડ, હતી જે ખોડ સઘ સુધારી,
ગુણવંતા ગાંધી, જવાહીર પધારી.
દેઈ હુંડીઆમણુની ચાંટ આવી બહુ ખોટ, ખલકને
ખાળી
હે રાજ્ય કર્યો તારાજ, આપીને તાળી
જોઈ મહા સભાએ રંગ, કાયદા ભંગ, વિનયથી કરવા,
કદી પડે જો દારુણ દુ:ખ, પ્રાણુ પાથરવા.
અહિંસા મય જંગે લડવા!
મળો બ્રીટીશ ગૂડઝ દૂર કરવા!!
મહેસુલ પાઈ નવ ભરવા!!!
હવે જંગ મચાવો તરવા!!!! રણુસીંગુ—૪

સભા ચાલીસ ને વર્ષ પાંચ, આવી નહિ આંચ,
ખુંચી અરવિંનને,
કર્યા જપ્ત સભાના હાઉસ, દૂર કરવાને.
નરનાર બાળ ને વૃદ્ધ, રહો નહિ શુદ્ધ, સાથ દો સાથે,
પડે વિપત્તીનો વરસાદ, કદાપિ માથે
ભલે મરો હના સૌ કરો, સંયમ આદરો, વાત એ છેલ્લી,
ઘરઘર કોંગ્રેસો હાઉસ, રામજી બેલી
ભલે તોપ ચલાવી મારે!
છેદે શીર લઈ તલવારે!!
લાઠીશાહી ભાર ઉતારે!!!
ચઢો જુજવા જંગ અત્યારે!!!! રણુસીંગુ—૫

તકલીની ચલવો તોપ, ચઢાવી ચોપ મીલોપર મારો,
યુરોપ બને બેકાર, ખાદી સંભારો
ભારતમાં થાશે લહેર, રહે નહિ કેર, ગરીબી ઘરમાં,
જ્યાં રાષ્ટ્રધ્વજ ફરકાય, વિજય આંગણમાં.
બને અમાચંદ ધિક્કાર, દેઈ ફિટકાર, ચાલજ્યો ચેતી,
નંદનવન જેવો દેશ, બીડ બહુ એથી
આ સ્વતંત્ર ભારત થાશે!
પછી રામ રાજ્ય ફેલાશે!!
સ્વરાજ્ય આપણ રહેશે!!!
ધન્યવાદ દેશ સહુ દેશે!!!! રણુસીંગુ—૬

બ્યુ રચનાનું આ કામ રાખજો હામ ઐક્યતા સાધી,
હાથીચંદ ચંદ કથે છે કે જરૂર વધે આબાદી
રણુસીંગુ—૬

ત્હમે મ્હને પરણ્યા કે હું ત્હમને પરણી ?

(લેખક—ચંદુલાલ પીતાંબરદાસ શાહ-ઝહેર)

"સાભળો છો કે ? આઠ આઠ વાગ્યા સુધી ઘોર્યા કરો છો ને આ બાબુ રડે છે તે જરા હીંચકો તો નાખો ? રોવું આ તે કેમ સહન થાય ?"

ભગવાન મરિચિમાલિની મોહમયીના ગગન-ચુંબિત મહાલયોને પોતાના રક્તવર્ણા કીરણોનો સોનેરી ઢોળ અર્પી રહ્યા હતા ખેતવાડીમા આવેલ એક જૂના પૂરાણા માળાના ત્રીજા મજલામા ભાડે ઓરડી રાખી હુ સપત્ની રહેતો હતો એ નાનકડી ઓરડી, કોણ જાણે કેવા શુકન જોઈ અમે ઘેરથી નીકળ્યા હતા કે સદાય અમારે વાસ્તે પાણીપતનું મેદાન થઇ પડી સ્હવારે ઉઠૂ કે પત્નીશ્રીના પનોતા મુખરૂપી જવાળામુખીમાથી અવાર નવાર કંઇક ને કંઇક જવાળાના સમૂહ ફાટી નીકળતા

ગઈકાલે નાટક (!) જોવા ગએલ હોવાથી આજે ઉઠતા જરા મોડુ થઇ ગયુ હતું મ્હારા પ્રબળ ભાગ્યને જોરે મ્હારા ઘરવાળાએ જુલાબ લીધા હોવાથી આજે તે વહેલા ઉઠેલા એટલે શ્રી ગણેશાય નમ મડાયા

અર્ધજાગૃત અવસ્થામાં હુ પથારીમા પડ્યો હતો એવામા ઉપરોક્ત શબ્દબાણના છૂટવાથી થએલ ધનુષ્ય ટંકાર કર્ણપટે અથડાયો આજે બેસતો મહીનો હોવાથી કઇ નવાજૂની ન થવા દેવાને આશયે મ્હેં તુરત બાબુને હીંચકો નાખવા માડ્યો, ત્યા તો પાછી ફરીથી ગાડ મભગાઈ

"ઉઠોને, આ ચ્હા ઠંડી થઈ જાય છે ને ? શેઠ થઇને પડ્યા છો તે કહી કહીને માથુ પકવી નાખીએ ત્હોયે ગણકારતા નથી ?"

થોડીકવાર એ અવાજના મોજાં દૂર દૂર કો અનન્તતાને ઓસરે પથરાઇ વળતા બાબુની બા આખના ભવા ચઢાવી ફરીથી રોષપૂર્વક બોલ્યા.

"છોકરૂ તે રોવુ શી રીતે ઉઘે હીંચકો નાખે છે તે પણ જાણે મરતા મરતાં લાવો, મ્હારે તો કઇ હીંચોળવો નથી" એમ કહી વીફરેલી વાઘણ શી છલગ મારી મ્હારા હાથમાથી દોરી ઝુટવી લઇ હીંચકો નાખવા બેસી ગયાં.

આપણા તો રામ રમી ગયા ઝટપટ ઉઠી, મ્હો સાફ કરી ચ્હા ઢીંચવા બેસી ગયો. અરે ! પણ આ શુ ? ચ્હામા તો ખાડને સટે મીઠું ધબકારી દીધુ હતુ ! મનમાં રીસ તો ખૂબજ ચઢી હતી પરતુ બેસતે મહીને નકામો ટંટો ન થાય તે માટે ચુપચૂપ ચ્હાનુ પ્યાલું બાબુની બા ન જાણે એમ મોરીમા ઢોળી દીધુ.

હજી મધી એણે ચ્હા પીધી ન્હોતી. મ્હને થયુ કે જરા ગમ્મત તો જોઉ, એમ ધારી નાહી કરીને હુ તો છાનો માનો એક બાજુએ અડગો જમાવી બેસી ગયો બાબુને ઉંઘાડી બાબુના બા ચ્હા પીવા બેઠા પહેલો ઘુટડો ભરતા વેતજ 'થુ-થુ' કરી ઉભા થઈ ગયા. મ્હારાથી હસવું ખમાયુ નહી હુ તો ખડખડાટ હસી પડ્યો. બરાબર ચાટ પડવાથી શ્રીમતીનો મીજાજ હાથથી ગયો, અને આમ ઇચ્છા નહોતી ત્હોયે પાછા પાણીપતના યુદ્ધ મડાયા

"તે આમ બબુચકની માફક હસો છો શાના ? ભૂલ તો સૌ કોઈ થાય" ઝંખવાણી પડતા તે બોલી

"ત્હારૂ કપાળ થાય મીઠુ અને ખાડ તે વળી અજાણ્યા ત્હા સાભળ્યા છે ? ક્યાથી તુ તે મ્હને પરણી." રોષપૂર્વક મ્હે કહ્યુ.

'શું બોલ્યા ? જરા વિચાર કરીને બોલજો.

હું ત્હમને પરણી કે ત્હમે મ્હને પરણ્યા ?" છંછેડાઇ જતાં તેણે પૂછ્યું

"તું મ્હને પરણી"

"ના ત્હમે મ્હને પરણ્યા."

"પણ મ્હારા ઘેર તુ આવી એટલે તુજ મ્હને પરણીને ?" મ્હેં ભારપૂર્વક કહ્યુ

"અને મ્હારા બાપાને ઘેર જાન લઇને પરણવા ત્હમે આવ્યા હતા કે બીજુ કોઈ ?" મ્હારા પ્રશ્નના જવાબમાં ખંડન કરતી તે બોલી

"પણ વિવાહ કરતી વેળા નાળિએર ને રૂપીયો તો ત્હારો ભાઈ મ્હને આપવા આવ્યો હતો. એટલે એનો અર્થ એજ કે ત્હારા ભાઇએ ત્હને મ્હારી સાથે પરણાવી" જવાબમા મ્હે કહ્યુ.

"નહીં, નહીં, ચોરીમા કોણે કોનો હાથ ઝાલ્યો હતો ? ત્હમેજ મ્હારો હાથ ઝાલ્યો હતો ના ?" પ્રત્યુત્તર આપતા તેણે પૂછ્યુ.

"પણ એ તો ગોરે કહ્યુ કે 'ભાઇ, બ્હેનનો હાથ ઝાલો, એટલે ઝાલ્યો હતો, કંઇ ત્હને પરણવા ઓછો ઝાલ્યો હતો

"હા, ઠીક પણ જરીપગણા દાખલા લ્યો ને ! બોલો, બોલો, ત્યારે નળ દમયતીને પરણ્યો હતો કે દમયતિ નળને પરણી હતી ?"

"ભલે, ત્યારે જણાવશો કે કૃષ્ણ રૂક્મણીને પરણ્યા હતા કે રૂક્મણી કૃષ્ણને પરણ્યા હતા ?" જડબાતોડ જવાબ આપ્યો

' પણ મ્હારી બા તો કહેતી હતી કે મ્હારા બાપાજ એને પરણવા પરણવા જાન લઇને આવ્યા હતા. અને બધાજ પુરૂષો સ્ત્રીને પરણવા જાન લઇને શ્વસુરગૃહે જાય છે. આથી સાબીત થાય છે કે પુરૂષોજ સ્ત્રીયોને પરણે છે" તેણે કહ્યુ

"અને મ્હારા દાદા એમ કહેતા હતા કે દ્રૌપદીએ મનગમતા વરને પરણવા માટે સ્વયંવર રચ્યો હતો ત્યાજ તેણે અર્જુનને વરમાળા આરોપી હતી." મ્હે કહ્યુ.

"પરંતુ પરણ્યો તો અર્જુનજ કહેવાય કારણ કે ગઇકાલે અમે રામાયણમાં એમ વાચ્યુ હતું કે રામચંદ્ર સીતાજીને પરણવા જનકગૃહે ગયા હતા" મ્હારા મતને તોડી પાડવાનો યત્ન આદરતા તે બોલી

"અને ત્યા વરમાળ તો સીતાએજ રામચંદ્રનાં ગળામા આરોપી હતીને ?" મ્હે જવાબમા પૂછ્યું

' વાઉ, વાઉ, પણ દરેક બાબતમા પહેલુ પુરૂષનુજ નામ બોલાય છે કહો જોઇએ કે આપણે નળદમયન્તી કહીએ છીએ કે દમયન્તી નળ ?"

"ત્યારે રાધા કૃષ્ણ કહીએ છીએ કે કૃષ્ણ રાધા ?" મ્હે જવાબમા પુછ્યુ.

રાવણ મંદોદરી કે મંદોદરી રાવણ ?" તે બોલી.

"સીતા રામ કે રામ સીતા ?" મ્હે પુછ્યુ

"વર વહુ કે વહુ વર ?" તે બોલી

' માતા પિતા કે પિતા માતા ?" મ્હે જવાબ વાળ્યો

' રાજા રાણી કે રાણી રાજા ?" તેણે પૂછ્યુ.

"ડોસા ડોસી કે ડોસી ડોસો ?" મ્હે પ્રશ્નમય જવાબ વાળ્યો

આમ અમારૂ દ્વન્દ્વ યુદ્ધ પ્રચંડ મંડાયું કે કે કોઇએ જરીપણ મચક આપી નહી. છતાંય છેવટે મ્હારી પત્નીથી વધુ વાદવિવાદ થઈ શકયો નહી હમેશા નમતુ મુકવાથી મ્હોનો તોબરો ચઢાવી, રાંધવા કરવાનુ કારણ મુકી એમણે તો એક ખુણામા અડ્ડો જમાવ્યો હુ પણ થાકયો તો હતોજ પણ આ વખતે અંત સુધી લડવાની મ્હારી ઇચ્છા હોવાથી વીસીમા જમી લઈ નોકરી ઉપર લાગી ગયો '

(૨)

સાંજે સાત વાગે થાકયો પાકયો હું ઘેર આવ્યો ઓરડીમા પગ તો મુકયો ન્હોતો તે પહેલા અણચીન્યુ પવનનુ વાવાઝોડું આવે એ મીસાલ મારાની અન્ય સ્ત્રીઓ એક સામટી મ્હારી ગૃહદીપીકાનુ ત્રાજવુ નમતુ રાખના એક જણી બોલી–

"કાન્તીલાલ ભાઈ! ત્હમે જૂઠું વદો અમારી સ્ત્રીઓની આબરૂને હલકી પાડો એ અમારાથી જરાય સ્હેવાય તેમ નથી. ત્હમે પુરૂષો ત્હમને રૂચે અને પરવડે એવા કાયદા ઘડો, અને એના બંધન નીચે અમને રાખો, ત્હમને ઇચ્છાનુસાર પરણવાની છૂટ, ત્હમને હરવા ફરવાનાં અનકુશીત ક્ષેત્રો; આવી અને બીજી અનેક બાબતમાં ત્હમે સંપૂર્ણ સ્વતંત્રતા ભોગવો એ બધું તો ઠીક પણ આ વાત તો ચોકખી દીવા જેવી સ્પષ્ટ છે કે હમેશા પુરૂષોજ સ્ત્રીઓ ઉપર મોહી પડે છે, અને તેના નેત્રબાણથી ઘાયલ થઇ તેમને વરે છે—પરણે છે મ્હારા ભાની વાચાળ છતાય અભણ-બીન કેળ-વાએલ એટલે ત્હમે એમને વાદવિવાદમા જીતવા દો એવા નથી બાકી મ્હારીજ વાત કરૂ—તો એમને પૂછી જુઓ કે મ્હારી પાછળ એ કેવા ગાંડા થઇ ગયા હતા અને એજ મ્હને પરણ્યા હતા, નહી કે હું."

એવામા ઉપર પ્રમાણે સંભાષણ કરતા શાન્તા બ્હેનના પતિદેવ આવી પહોંચ્યા મ્હારી રૂમ આગળ થોકબંધ સ્ત્રીઓ જામેલી હોવાથી તે સીધા ત્યાં આવ્યા તેમને નીરખતાજ એક જણી બોલી

'લ્યો આ આવ્યા પંડ્યાભાઇ, એમને પુછી જુઓને,' એક બાઇ બોલી, 'પંડ્યાભાઇ! સાચું બોલજો ત્હમે મ્હારી ભાભીને પરણ્યા હતા કે મ્હારી ભાભી ત્હમને પરણ્યા હતા?'

મ્હે ઇશારતથી સ્હમજાવી દીધુ કે આપણા ગજવામા બેસી જજો એટલે મી. પંડ્યા બોલ્યા, "વાહ, એમા પૂછવાનુ શું? મ્હારી પ્રખર વિદ્યા અને લક્ષ્મીના માયાવિ તેજથી અંજાઇ, સ્હાયબીમા મ્હાલા મ્હાલ કરી મૂકવા વાસ્તે એજ મ્હને પરણી હતી. સ્ત્રીયોને ગરજ હોય તો અમને પરણે, બાકી અમોને તો એક નહી ને અનેક મળી રહે છે"

આ શબ્દતીરોએ એવો તો પ્રબળ ઘા કર્યો, અને એની એવી તીવ્ર અસર થઈ કે શાન્તાબેન છેડાઈ ગયાં, અને બધીજ સ્ત્રીયો આમ અણ-ચીંતી હાર ખા[illegible]ણી પડી ગઇ. વાતાવરણ ઉગ્ર થઇ ગયું. [illegible]ભાઇ બોલ્યા તો બોલ્યા પણ રણચંડીશી શાન્તાભાભીની ભયંકર મૂર્તિ જોતા વ્હેંતજ, મ્હને યાદ છે ત્યાંસુધી, ઓરડી ભણી વળવાની તૈયારી કરવા લાગ્યા એવામા શાન્તાબ્હેન બોલ્યા, 'પુરૂષ પુરૂષનુંજ ખેંચેને? આ આપણા માળામા શીરીન બ્હેન નામનાં એક પારસી બાનુ રહે છે, એમને બોલાવી પૂછો એટલે આપણી વાતનો નીકાલ આવી જશે.

કાન્તા બ્હેન તાબડતોડ દોડી ગયા અને શીરીન બ્હેનને બોલાવી લાવ્યા શાન્તાએ પૂછ્યુ, "શીરીન બ્હેન, એક વસ્તુનો સાચો ન્યાય કરજો ત્હમે મ્હારા ભાઇને પરણ્યા હતાં કે મ્હારા ભઇ ત્હમને પરણ્યા હતા?"

જોગજોગે શીરીનબાઇ પોતાના ધણી ઉપર પ્રથમ આકર્ષાયાં હોવાથી અને તેમણેજ તેના પ્રેમની માગણી કરેલી હોવાથી સત્ય વાત વદતાં તે બોલી, "જુઓ, બ્હેન! મ્હારી પોતીકી વાત કહું તો હું પોતેજ મ્હારા ધણીને પરની હતી. અમારા લોકમા મૂરતીયા બહુ થોડાજ હોય છે, અને સારો ભણેલો માટીડો પરણવા માટે અમારા માબાપને સારીશી રકમ આપવી પડે છે. એટલે અમોને પોયરીયોને પરનવાની ગરજ પોયરાઓ કરતા ઘણીજ વધારે હોય છે"

આમ ઉપરાછાપરી હાર ખાવાથી આંખોએ પલટણનો દેખાવ નિરીક્ષણ કરવા જેવો થઈ પડયો. બીચારી શીરીનબાઈ ઉપર સઘળાં રોષે ભરાયા, અને આખરે હાર ખાવા છતાય પણ તે કબુલ નહીં કરતા સઘળી સ્ત્રીયો પોતપોતાની ખોલીમાં ચાલી ગઈ. જે સ્ત્રીયો પોતાના ધણી હાજર હતા તેમણે તેઓની સાથે ઉપરોક્ત યુદ્ધ આદર્યો. આખોય માળાની રૂમો ગૂંજી રહી. ત્હમે મ્હને પરણ્યા કે હું ત્હમને પરણી? જે સ્ત્રીયોના પતિદેવ પધાર્યા ન્હોતા તેઓ ત્હેમના આગમનની રાહ ઉત્સુકતાથી જોવા લાગી અને પતિદેવ પધારે કે તુરત આ હોમ યુદ્ધમા ઝંપલાવવા તલપાપડ થઇ રહી.

સારીયે રાત આ યુદ્ધમા ઘૂમતાં અને ભવિષ્યમાં શા શા મુદ્દા અને કેવા પાયા ઉપર એ લડતને જારી રાખી વિશ્વવ્યાપી બનાવવી તેના સ્વપ્નાં સેવતાં સ્ત્રી પુરૂષોએ ગાળી.

(૩)

બીજે દિવસે સાંજે આખાયે માળાનું વાતાવરણ ગૂંજી રહ્યું કોઇ બ્હેન દોડાદોડ તો કોઇ બ્હેન ટોળાબંધ ઉભેલી સ્ત્રીયોને કંઇ શિક્ષાપાઠ આપી રહી હતી તપાસ કરતા માલુમ પડ્યું કે ૭ વાગે અમારા માળાની સ્ત્રીયોની એક સભા પુરૂષોના અનુચિત આચરણને વખોડી કાઢવા મળવાની હતી પ્રમુખસ્થાને શાન્તાબ્હેન શોભવાના હતાં, અને કાન્તાબ્હેન તીખું અને તમતમાટ ભાષણ કરવાના હતા

જોત જોતામા ઝના ટકોરા થયા સભાનું કાર્ય ચાલુ થયુ ઘણી બ્હેનોએ પુરૂષો તરફ સખત અણગમો જાહેર કર્યો અને તેમની આપખુદીને સખત ભાષામા વખોડી કાઢી બચુબ્હેને નીચેના ઠરાવો રજુ કર્યા જે કોઇ પણ જાતના સુધારા વધારા વીના એકમતે પસાર કરવામા આવ્યા

ઠરાવ ૧ લો—"આથી શ્રી રાયમહેલમા વસતી સઘળી બ્હેનો એકમતે ઠરાવે છે કે ભાઈ કાન્તીલાલે તેમની પત્ની સાથે વાદવિવાદ કરી તેમની લાગણીને દૂભવી છે અને તે દ્વારા સારીય સ્ત્રીયોના કાયદેસર હક્કનો અનાદર કરી તેમના સન્માનને ધક્કો પહોંચાડયો છે તે અતિવ શોચનીય છે, અને આ સભા વધુમા ભાઈ કાન્તીલાલને જણાવે છે કે તેમણે ઝટપટ તાબડતોડ એમના શરમભરેલા કૃત્ય માટે એમની પત્નીશ્રીની—રમુ બ્હેનની માફી માગવી "

ઠરાવ ૨ જો—સાથે સાથે ભવિષ્યના પગલા તરીકે આ સભા સૂચવે છે કે યદિ ભાઈ કાન્તીલાલ સીધી રીતે તેમ ન કરે તો સ્ત્રીસન્માનના રક્ષણાર્થે બધી બ્હેનોએ પુરૂષોની સામે પ્રચંડ યુદ્ધના મોરચા માંડવા, અને એ યુદ્ધને સર્વવ્યાપી પ્રશ્ન બનાવવા નીચેની બ્હેનોની એક કમિટિ નીમી તેના કાર્યચલનના સર્વ હક્ક તથા કુલ મુખત્યારી તેને આપવી.

શાન્તાબ્હેન હીંમતવાળા	—પ્રમુખ	કમિટિ.
કાન્તાબ્હેન લોટવાળા	—મંત્રી	
કનુબ્હેન ખાંડવાળા	—સભ્ય	
લક્ષીબ્હેન બરફીવાળા	—,,	

અને આખરે સભા બરખાસ્ત કરવામા આવી.

(૪)

ધીમે ધીમે આ પ્રશ્ન સર્વવ્યાપી થઇ પડયો. આખી મુંબાઇમા ઠેરઠેર એની ચર્ચા થવા લાગી. પુરૂષો કહે કે સ્ત્રીયો પુરૂષોને પરણે છે, ત્યારે સ્ત્રીયો કહેવા લાગી કે નહીં, પુરૂષોજ સ્ત્રીયોને પરણે છે આમ આખાય શહેરની સ્ત્રીયો એક બાજુ અને પુરૂષો બીજી બાજુ કોઇ સ્ત્રી પોતાના પતિ સાથે બોલે નહી અને કોઇ પુરૂષ પોતાની સ્ત્રી સાથે બોલે નહી પુરૂષોએ સ્ત્રીયોના અને સ્ત્રીયોએ પુરૂષોના બહિષ્કારના પ્રચંડ પૂર આદર્યા. આખીયે મુંબાઇમાં રીસામણાં મનામણાના રાજ્ય ચાલવા લાગ્યા તાજેતર પરણેલા દંપતિઓની બૂરી હાલત થઈ પડી નૃત્યકારીયો—નર્તકીયોના ધંધા તુટી ગયા. ફીલ્મ અને નાટકશાળાઓવાળા સ્ત્રી-નટો માટે બૂમો પાડવા લાગ્યા ટુંકમા સર્વત્ર મહાભિનિષ્ક્રમણ અને વિપ્લવના પૂર પ્રચંડ વેગે ચઢવા લાગ્યા કેળવાએલા પુરૂષો કહેવા લાગ્યા કે આવી નજીવી બાબતમા આવડી ભયંકર ઝુંબેશ શી ? એ અર્થવિહોણી માથાફોડ તો મુર્ખાઓ માટે તેમના કથનને બીન તકસીરવાર ઠરાવી સ્ત્રીઓ કહેવા લાગી, "ગમે તેમ તોપણ અમારે અમારી બ્હેનોના સાથમા ઉભવું જોઇએ અમે તેને અમારો ધર્મ સમજાવીએ છીએ. સારાય હિંદમા જોઇએ તો ભણેલી સ્ત્રીઓ કરતા બીન ભણેલી સ્ત્રીયોની વસ્તી અત્યન્ત વધુ છે. અને આ પ્રશ્ન હમારા કરતા વધુ લાગુ પડે છે. વળી અમારી લઘુમતિ એમના પ્રવાહમા તણાઇ જાય છે, અને અમારો પડઘો તેમના જોરવન્તા ગગનભેદી અવાજને ભેદી જનતાના કર્ણપટે અથડાઇ શકે તેમ નથી. તદુપરાન્ત અમારા પતિ કેળવાએલા

હોવાથી અમોને તેમના તરફથી બહુ કનગડત પણ નહીં. અમને કઈ અરૂચતું અમારા પતિદેવ આદરે તો અમે તુરત તેનો વિરોધ કરીએ છીએ, અને વખત આવે છૂટાછેડા પણ કરી નાખીએ છીએ, એટલે અમારા સન્માન ક્ષયનો ભય માત્ર અશિક્ષિત સ્ત્રીઓ મારફતેજ છે. અને બાપડી ગરીબડી ગાય શી બ્હેનોને અભયદાન આપી તેમના સાથમાં અમો જરૂર ઊભવાનાં અને વર્ષો થયા જે પુરુષોએ તેમણે ઘડેલા કાયદાની ચકડીમાં અમને પીલ્યા છે, તે ચકડીને અને પુરૂષ જાતને આ વખતે તો અમે જરૂર શાસન આપવાના"

આમ એક દિવસ ગયો, બે દિવસ ગયા પણ કોઈ પણ બોલે નહીં કે ચાલે નહીં સ્ત્રીઓએ પોતાના ધણીઓને મૂકી જુદાં ભોજન પકવવા માંડ્યા. રાંધનકળામાં અકુશળ પુરૂષોને જમાડવાનું વીસીવાળા તથા હોટેલવાળાઓએ માથે લીધું. આમ કરતા અઠવાડિયાં વહી ગયા વ્હેપાર રોજગાર બંધ પડી ગયા સરકાર પણ ગભરાઈ ગઈ સર્વત્ર ગંભીર વાતાવરણ મચી રહ્યુ !!!

એકબાજુ આમ ચાલી રહ્યું છે ત્યારે બીજી બાજુએ સ્ત્રીઓની કાર્યવાહક કમિટિએ ધમધોકાર કાર્ય કરવા માંડ્યુ. મુંબાઈમાં જેટલાં સ્ત્રી–સમાજો હતાં તેમને ઉપરની હકીકત જણાવ્યા પછી આખાયે મુંબાઈની સ્ત્રી શક્તિએ સાથે મળી તે કાર્ય ઉપાડી લીધુ. પ્રથમ તો તેમણે કમિટિ મારફત આખા હિંદુસ્તાનની સ્ત્રીઓને ઉપલા પ્રશ્નની મારામારીની હકીકત જણાવી અને તે પ્રશ્નનો જવાબ પોતાના લાભમાં લાવવા વાસ્તે પુરૂષોની સ્વાર્થવૃત્તિ સામે પ્રચંડ વિરોધ દર્શાવવા, તથા તેમના બહિષ્કારમાં સંપૂર્ણ મદદભૂત થવા વિનંતિપત્રો પાઠવ્યા. તદુપરાન્ત યુરોપ, અમેરીકા, જાપાન, આફ્રીકા વિગેરે સર્વ દેશોની સ્ત્રીઓને પણ તારદ્વારા ટૂંકમાં સઘળી બીના જણાવી, સ્ત્રી સન્માનના રક્ષણાર્થે એક સાથે ઉભવા તથા એ બાબતમાં યોગ્ય ન્યાય ન મળે ત્યાંસુધી પુરૂષો સામે અણનમ ઉભી જંગ મચાવવા હીમાયત કરી !

(૫)

અને ધીમે ધીમે બધાયે દેશોમાં એક બાજુ પુરૂષો અને બીજી બાજુએ સ્ત્રીઓએ સામસામા યુદ્ધ માંડ્યા. પુરૂષો સ્ત્રીઓ તેમને પરણે છે એમ સાબીત કરવા મથવા લાગી. અદાલતો પણ આ પ્રશ્નનો તોડ આણવા નિષ્ફળ નીવડી. ગામે ગામે અને ઘેરે ઘેરે સ્ત્રી પુરૂષોમાં યુદ્ધો મંડાયા. આમ આખાયે જગતની સ્ત્રી અને પુરૂષ શક્તિ મરી પીટવા લાગી સારા સારા વિદ્વાનો પણ શૂન્ય મૂન્ય થઈ ગયા સર્વેની બુદ્ધિને ખિલાડાં ખાઈ ગયાં હોય એમ લાગતુ થોડાક દીવસો પછી તો છોકરીયોએ સભા ભરી જાહેર કર્યું કે પુરૂષોને અમે આથી ચેતવણી આપીએ છીએ કે તેમણે પોતાનું જક્કીપણું તુરત છોડી દેવું અને કબુલ કરવુ કે તેઓજ સ્ત્રીઓને પરણે છે, નહીંતર અમો બાળકીયો પણ હમારી માતાઓનો પક્ષ લઈશું અને એનું પરિણામ સારૂ નહીં આવે.

છોકરીઓ પછી છોકરાઓનો વારો આવ્યો, અને એમણે છોકરીયોની બીજાની વાતમાં ડખલગીરી નાખવાની અન્યાયી રીતને સખત વખોડી કાઢી. આમ આ લડત તો દીવસે દિવસે વધુ મક્કમ થવા લાગી. કોઈ રહેજ પણ નમતું ન મૂકે. સ્ત્રીયો મક્કમ, પુરૂષો મક્કમ. છોકરીઓ મક્કમ, છોકરાઓ મક્કમ, સ્ત્રીયોએ વિચાર્યું કે પુરૂષોનો ગૃહ સંસાર અમારા સિવાય ચાલશે નહીં, એટલે એમની ગરજે અમારા પગમાં પડશે. પુરૂષોએ નિર્ધાર્યું કે આપણી કમાણી વિના સ્ત્રીઓનું નાવ જતે દહાડે ડુબવાનું, એ ભૂખી; ભૂખે મરશે એટલે નમતુ મૂકેજ છૂટકો, પણ તેમની આ માન્યતા ભૂલ ભરેલી નિવડી, કારણ કે યુરોપ અમેરિકાની સ્ત્રીયો પોતાની જાતમહેનતથી સ્વતંત્ર રીતે કમાઈ શકતી હતી, એટલે એમણે પુરૂષોની સ્હેજ પણ પરવા કર્યા વિના હિન્દુસ્તાન જેવા દેશની સ્ત્રીયો કે જેમના ભરણપોષણનો આધાર પુરૂષો ઉપર છે તેમને ખોરાક પૂરતાં નાણાં ઉઘરાવી મોકલવા લાગી. વધુમાં

દેશોની સ્ત્રીયો કે જેઓ વ્યાપાર ધંધા સ્વહસ્તે ચલાવતી હતી તેમણે પણ ખૂબ પૈસા મોકલી આપવા માંડયા. એટલે સ્ત્રીયોના પક્ષમાં પુષ્કળ બળ આવ્યું.

(૬)

મ્હારા ઘરમા જાગેલ લડાઇએ આવડું વ્યાપક રૂપ લીધું હોવાથી સારાય જગતના પુરુષોમા તથા સ્ત્રીયોમા અમ યુગલનું નામ પ્રખ્યાત પામ્યું. કેટલાક દિવસો વહી ગયા. જગત્ આખું વેપાર રોજગારના અભાવે વિપ્લવને પંથે વળ્યું. જોશીઓ જાહેરમા પ્રસિદ્ધ કરવા લાગ્યા કે ટૂંક મુદતમા પૃથ્વી રસાતળ જશે, માટે ઉપરોક્ત બાબતનો ઘટતો ઉપાય યોજવો. સ્ત્રીયો અને પુરુષો—ઉભય એકમેક પ્રત્યે ધીક્કારથી વર્તતા હોવાથી કવિયો કરવા લાગ્યા કે રણેને ભૂપરથી પ્રેમઝરણા નષ્ટ થાય તત્વચિંતકો પણ પ્રેમતત્વોનાં વિવેચન કરવાના નહી રહે એમ ધાર્ગી મુંઝાવા લાગ્યા. મ્હેટા મ્હોટા રાજ્યોની ઉથલપાથલ થઇ જવા લાગી યુરોપ અમેરીકા જેવા દેશોમા સ્ત્રીયોનુ પ્રાબલ્ય વધુ હોવાથી તેમણે પુરૂપ રાજાઓ તથા પ્રેસિડટોને તેમના સ્થાનથી પદભ્રષ્ટ કર્યા, અને તેને ઠેકાણે તેમણે સ્થાન લીધા હિન્દુસ્તાનમા જ્યાં જ્યાં સ્ત્રીઓનુ જોર હતું ત્યાં પુરુષોએ પોતાના હાથ ફેરવ્યા અને તેમના ચલણને ઉંડા દફનાવી દીધાં.

આખરે આખી દુનિયામાથી એક સ્હમજુ વૃદ્ધ પુરુષ નીકળ્યો એ પુરુષ જગ જુગ જૂનો હતો—એના દીદાર આપણા ઋષિમુનિયો સમા હતાં. ભરનિદ્રામાં ઘોરતો હતો. એવે સમયે સ્વપ્નામા મ્હારા ચક્ષુ સમીપ તે ખડો થયો. "છોકરા!" મ્હને ઉદ્દેશીને તે બોલ્યો "આ તુ શુ કરવા બેઠો છે ? નજીવી બાબતમા આવડાં ભયકર ધમપાણ શાં ? છોકરા, જાણે છે તુ આ નાના દીસતા અગ્નિના ભડકામાથી કેવી પ્રચંડ જ્વાલાના સુધ તે જગાડયા છે તે ? સ્ત્રી અને પુરુષ એ તો સસારના આધાર સ્થભ છે. સ્ત્રીપુરુષ બેલડી એ તો કુદરતની સર્જેલ અદ્ભૂત કૃતિ છે. એકેય વિના સસાર નાવ શોભે પણ નહીં અને ચાલે પણ નહીં સ્ત્રીપુરુષનાં પવિત્ર મીલન એ તો સૃષ્ટીની વૃદ્ધિના ઉચ્ચતમ કેન્દ્રો છે એમનામાં વિક્ષેપ એતો પ્રભુની કૃતિમા વિક્ષેપ નાખવા સમું છે જગત્ નિયતાના સર્જનજૂના સમયચક્રને તોડવાં જતા મનુષ્યો ત્હમારોજ કચ્ચરઘાણ વળી જશે એ નિશ્ચે જાણજે. "ઊઠ ! વત્સ ! જલદી જઈ ત્હારી પત્ની સાથે મનામણાની ચેલીશીં રમત આદર. ત્હેને સત્કારી કહે કે 'સ્ત્રી પુરુષને પરણે છે અને પુરૂષ સ્ત્રીને પરણે છે' અડધુ પરણી સ્ત્રી અને અડધુ પરણ્યો પુરુષ, એટલે બેઉ મળી આખુ પરણ્યા કહેવાય એટલા માટેજ પુરુષ એ સ્ત્રીનુ અને સ્ત્રીએ પુરૂષનુ અર્ધું અગ છે, એમ શાસ્ત્રકારો કથી ગયા છે" આટલુ વદી તેમના ચરણમા હુ લોટી જાઉ તે પૂર્વે ના એ વૃદ્ધપુરુષ અનન્તતાની ઊંડી ખીણમા લપાઇ ગયા

સ્હવારે ઉઠી વૃદ્ધ બોલેલાં વચનો તથા તેણે આપેલ ન્યાય મ્હારી પત્નીશ્રીને કહ્યા, અને અમ સખી કર્યા પછી તો આપણાય માર્ગમા આનદનાં પૂર ચઢયા વાત વાયુવેગ એક પછી એક એમ સર્વત્ર એક યા બીજા સાધનો દ્વારા પસરી ગઇ બધેજ સમાધાનીના ધ્વજ ફરકવા લાગ્યા હિન્દ શાન્ત થયુ યુરોપ શાન્ત થયુ, અમેરિકા અને જાપાનને આગણે પણ સલાહસપતી અમી વૃષ્ટિ થઈ આમ અમારા ઘરેથી ઉદ્ભવેલ યુદ્ધ અમારે આગણેજ સમાયા અને પ્રિય વાચક ! જેમ ત્હેના ઉત્પાદક તરીકે અમો યુગલના નામ પૃથ્વીના ત્રણે ખડમા પ્રખ્યાતી પામ્યાં હતા, તે મીશાલ ત્હેના વિનાશક તરીકે પણ હમારા નામો જગતની બત્રીસીએ ચઢી ગયા બતાવી છે આવી બહાદુરી જગત્ આખાનેયે ચગડોળે ચઢાવવાનાં એક દપતીએ કો કાળે ?

લોકો અને ઇતિહાસકારો કહેવા લાગ્યા—"કાન્તીલાલ ! ત્હારૂ અને રમુનુ નામ જગત્ના ઇતિહાસના પૃષ્ઠો પર સુવર્ણ અક્ષરે લખાશે"

અને એમ થાય તો હમારા જેવા ભાગ્યશાળી અન્ય કોઇ ખરાં ?

યુવાનોને હાકલ!

(લેખક—ચંદ્રકાન્ત ચીમનલાલ વકીલ)

હે હિંદવાસીઓ, જાગો અને જુઓ કે દેશ અત્યારે શું માગી રહ્યો છે. હિંદ પોકાર કરી રહ્યું છે કે ઘરદીઠ એકએક સૈનિક થઇ બહાર પડવો જોઇએ અને ત્હેની આઝાદીમાં બનતો પ્રયત્ન કરવો જોઇએ. હું જ ત્હમને પુછું-જ્યારે ત્હમારા જેવા યુવાનો જેલમા સડયા કરે છે, ત્યારે ત્હમે પોતે શું ઘરને ખુણે બેસી રહેવા માગો છો? ત્હમારી ફરજ સંભાળો ત્હમે કોણ છો? ત્હમારૂ ધ્યેય શું છે? શું ત્હમે ઘરમા બેસી રહેવાને લાયક છો? પં મોતીલાલ નેહરૂ જેવાએ પોતાના એકના એક પ્રિય પુત્રને આઝાદીની લડતમા હોમ્યો છે, ત્હેમની સ્થિતિનો વીચાર કરો શું ત્હમારી સ્થિતી તેથી પણ આકરી છે? અત્યારે ત્હમારે તો પ્રતિજ્ઞા કરવી જોઇએ કે જ્યા સુધી સ્વરાજ્ય મળે નહિ ત્યાં સુધી અમે ઝંપીને બેસવાના નથી અને સરકારને પણ ઝંપીને બેસવા દેવાના નથી ત્હમે એમ માનીને બેઠા છો કે ત્હમે નિર્બળ છો લડાઇમા જોડાવવા લાયક નથી યુવાનો—આ ત્હમારી ભૂલ છે ત્હમારી કિંમત હાથે કરી ઓછી કા આંકો છો! સ્વભાન તથા સ્વમાન જરા તો રાખો

હવે બીજી વાત પર આવુ. ત્હમે કેટલાક જમણવાર બંધ કર્યા છે વૃદ્ધ લગ્ન તથા બાળ લગ્ન અટકાવવા પ્રયત્ન પણ કરેલો છે તો શું ત્હમે દેશને ગુલામીમા સડવા દેશો? શું ત્હમે ન્યાતને ઉંચી પંકિતમા આણવા નથી માગતા? દિગંબર જૈનનું નામ હાલ ઘણુંજ ઓછું સાંભળવામા આવે છે. ત્હમે દેશદ્રોહી નથી. ત્હમે હિંદ માતાના સાચા પુત્રો છો જુઓ—શ્વેતાંબર યુવાનો લડાઇમા ભોગ આપી રહ્યા છે, ત્હમને ત્હેની અદેખાઇ નથી આવતી? ત્હમારે ત્હમારો આગેવાન ન હોય તો બીજા આગેવાનના હાથ નીચે રહી કામ કરતાં શીખવું જોઇએ. "કામ કામને શીખવાડે છે." જ્યારે હિંદ માતાની મુક્તિની રણગર્જનાથી આરંભાયેલ રણમેદાનમાં અબળાઓ સબળાઓ થઇને ગુંડાઓના હાથનો લાઠી પ્રહાર તથા વાકબાણ સહન કરે છે, ત્યારે ત્હમે શું ત્હેનાથી પણ ગયા? જ્યારે વકીલો, બેરીસ્ટરો અને મ્હોટા અમલદારો પોતાની નોકરીનાં રાજીનામાં આપી દેશને સ્વતંત્ર કરવા બહાર પડી રહ્યા છે ત્યારે ત્હમે ઘરના ખુણામાં બેસી રહેશો? શું ત્હમારામાં દેશદાઝ નથી! કુડચીનો અત્યાચાર વાંચી ત્હમને નથી લાગતુ કે સરકારની નીતિ કેવી છે! શું તમો ત્હેને સાથ આપશો? ત્હમને ખાદી પહેરવી ખુંચે છે? રેંટીઓ કાંતતા ખૂંચે છે! યુવાનો યતા રમવાનો વખત હાલ નથી સંગ્રામ ખેલવાનો છે આપણી સ્વતંત્રતામા પત્તાં રમવાનો વખત ઘણો મળી રહેશે આપણે સ્વદેશી ધર્મ છોડયો ત્યારથી આપણું પતન છે. આપણે ત્હેને વળગી રહેવુ જોઇએ પ્રથમ તો વેપારાર્થે આવી આપણને સ્વદેશી છોડાવી પરદેશી વપરાવી આખો દેશ આપણો સ્વહસ્તક લીધો અને આપણને ફસાવ્યા યુવાન! સ્વદેશી વાપરીએ તો સ્વરાજ હાથમા છે અને યુવાન! પીકેટીંગ કરીએ તો પરદેશી બંધ થાય અને સ્વદેશી વપરાય અસ્તુ.

તા: ક—ભાઇ ચંદ્રકાન્ત પાંચમી અંગ્રેજી ભણે છે. પોતે કાંતે છે અને પીકેટીંગ કરે છે, તથાજ ઉપલી સલાહ યુવાનોને આપી શકે છે. ત્હેના જેટલા ન્હાના વિદ્યાર્થીઓને કામ કરતા જોઈ મ્હોટા કંઈક ધડો લે તો ઠીક. સંપાદક.

પરિગ્રહ પ્રમાણ.

(લે–મોહનલાલ મથુરાદાસ કાણીસાકર-કપાલા)

આપણાં જૈન શાસ્ત્રોમાં શ્રાવક, અને સાધુ, બંન્ને માટે પરિગ્રહનું પ્રમાણ કરવાનો વિધિ બતાવેલો છે. વર્તમાન કાળે સાધુઓ અને કેટલાક શ્રાવકો તે મુજબ વર્તી રહ્યા છે પણ મને આ વ્રત બાબત એક શંકા ઉપજે છે કે–

શું જૈન મંદિરો માટે પરિગ્રહપ્રમાણ વ્રત નહિ હોય ?

આપણાં મંદિરોમાં હજારો રૂપીયાનાં સોના, ચાંદી, જવાહીરનાં ઉપકરણો આપણે જોઇએ છીએ તે ઉપરાંત હર સાલ નવાં નવાં ઉપકરણો તેમા ઉમેરાતા જાય છે, જેથી કરી તેની કિમત ક્રમશ. વધતી જાય છે, કે પછી તેની ગણત્રી કરવી પણ મુશ્કેલ પડે છે. હવે પ્રશ્ન એ થાય છે કે–

અ. મંદિરોમા ઉપકરણાદિ જંગમ મિલકત કેટલી રાખવી, એવુ કોઈ શાસ્ત્રમા ફરમાન હશે કે નહિ ?

બ. આપણે હર વખત ઉપકરણાદિ ચઢાવી મંદિરનો વૈભવ–દેવની વિભુતી વધારી દઇએ છીએ. તેથી મંદિરને તેમજ તેના માનનારાઓને લાભ શું ? હુ નથી ધારતો કે–કોઇ મંદિરના પ્રબંધ કર્તા, તે ઉપકરણો વેચી તેનાથી જીર્ણ થતા મંદિર સમારાવતા હોય ઉલટુ કેસરીયાજી જેવાં તીર્થસ્થાનોમાં, તો તે કિમતી જવાહીરનો ઉપયોગ, રાજા અને રાજ્યકર્મચારીગણ કરે છે

ક. વ્રતોના ઉદ્યાપન નિમિત્તે સોનારૂપાના વાસણ, રેશમી અપવિત્ર ચદરવા અને શાસ્ત્ર બંધન કરતા શાસ્ત્રનાં ગ્રંથો ભેટ ધરાય, તો શું ધર્મ-વિરૂદ્ધ ગણાય ?

ડ. આપણા કેટલાય પ્રાચીન ગ્રંથો હજી વૃદ્ધ આગેવાનો અને અલ્પજ્ઞ ભટ્ટારકોની અલ્પ બુદ્ધિનો ભોગ થઇ ભોંયરામા પેટીઓ સેવે છે, તેનો ઉદ્ધાર કરવાના કાર્યમા ઉદ્યાપનના નાણા ખરચાય તેમાં કાંઈ ધર્મ બાધ હશે ?

વર્તમાન કાળે ઉપરના ખુલાસા જૈન બંધુઓના લાભાર્થે વિદ્વાન વર્ગ તરફથી પ્રગટ થવાની જરૂર છે.

મારા માનવા પ્રમાણે તો, જો જૈન ધર્મ પાળનારાઓને પરિગ્રહ પ્રમાણ વ્રત રાખવાની આજ્ઞા હોય, તો જૈન મંદિરોની જંગમ મિલકતનુ પણ પ્રમાણ થવાની જરૂર છે.

વર્તમાનકાળ ધર્મની અંધાધુંધીનો છે કેટલેય સ્થળે મંદિરોમાંથી પ્રતિમાઓ અને ઉપકરણો ગુમ થયાની વાતો સંભળાય છે. જે સાંભળી આપણાથી એક હાયનો ધિક્કાર નાખી દેવાય છે માટે આપણા મુનીરાજો, ત્યાગીઓ, વિદ્વાનોને હું વિનંતી સહ જણાવુ છુ કે–તેમણે **પરિગ્રહ પ્રમાણ વ્રતને** પુરા સ્વરૂપમા પ્રકાશિત કરવું અને સમાજમા એવું આંદોલન ઉભું કરવુ, કે–જેથી કરી જૈન બંધુઓ મંદિરોમાં જવાહીર ઠાલવવા કરતાં શાસ્ત્રને દાન કરી કૃતાર્થ થાય, ॐ શાંતિ

નવીન વર્ષે આશિષ.

ધન ધાન્યની વૃદ્ધિ થઇ, પુત્રો ઘણેરા પાકજો,
આનંદ ને આનંદની, રેલો સદાએ જામજો.
આશીષ મારી એટલી, નુતન બનેલા વર્ષમા,
પ્રભુ રાખજો સુખી તમોને, ને સદા ઉત્કર્ષમાં–૧
ભારત તણા ઉદય મહી, આનંદથી આગળ પડો,
પરતંત્ર ભારત માતને, છોડાવીને સૌ સુખ લ્યો
જ્ઞાતિ તમારી આંધળી, હણાય દુર્ગુણ દુષ્ટથી,
નવિન વર્ષે સંપથી, સુધારજો સૌ હર્ષથી–૨
સમાજને સુધારવા, શાળા બધે સ્થાપન કરો,
તમ બાળને આપી સુવિદ્યા, દેશને અર્થે ધરો
બંધુ તમારા બાપડા, ભુખ્યા રહે હરનિશ કંઇ,
છે ધિક તેથી આપને, હૃદયે નહિ જો લાગણી–૩
પરદેશી સત્તા કોરી ખાએ, માત ભારત અંગને,
સુતા તમે ભારત તણા, શાને ધરો અનૈક્યને.
ગાંધી તણા સાથ સર્વે, સંપથી આગળ વધો
મોહન કહે નવ વર્ષમાં, સ્વરાજ્ય જલ્દી મેળવો–૪

મોહનલાલ મથુરાદાસ કાણીસાકર,

रति और कामदेवका सम्वाद।

बैठे विपिनमें पार्श्व प्रभु चिद्रूपको लखने लगे।
रतिने कहा कन्दर्पसे तुमने न इनको क्यों ठगे॥
ठगिनी रतीने यों कहा हे! नाथ ये सुन्दर पुरुष,
देखो न इनके सम अहो! त्रैलोकमें दूजा मनुष॥१॥
कन्दर्प तुम सुन्दर बदन रखती सदा हूँ गर्वमें,
इनका बता दो नाम तुम लूटें इन्हें हम अर्णमें।
प्रेरित किया कन्दर्पको रतिने विवश होकर कहा,
मुझको बता दे नाम इनका तू खड़ा क्या कर रहा॥२॥
कन्दर्पने परमेश पारसनाथका परिचय दिया,
इनके समीप न ठग रहें, इनने परास्त हमें किया।
कन्दर्प औ रतिके दहनको योग था इनने लिया,
जिनदेव पारसनाथ ये, जगको विजय इनने किया॥३॥
जाना न उनके पास तुम वे भस्म कर देंगे तुमें,
रतिने कहा कन्दर्पसे कायर हुवा तू विश्वमें।
मूर्छित हुई बोली प्रभो! मैं पड़ गई आश्चर्यमें,
इतनी न सुन्दरता कहीं जितनी इन्होंके चर्णमें॥४॥
चकरा गये कन्दर्प तुम रतिने कहा सम्वादमें,
कन्दर्प तनका गर्व तुम करते रहे उन्मादमें।
कन्दर्पने रतिसे कहा इनने तजा है मोहको,
मैं मोहका किंकर हुवा प्रभु पार्श्व परखें चोरको॥५॥
कन्दर्पने अपने अधीश्वर मोहका वर्णन किया,
उस मोहको पारस प्रभू! ने नष्ट कर तप धर लिया।
कन्दर्प किंकर मोहका उसको प्रभूने वश किया,
ठगिया न इनको ठग सके कन्दर्पने परिचय दिया॥६॥
ठगिनी बनी रतिने कहा कन्दर्पसे उस अर्णमें,
करना न अब तुम गर्व रक्खो शीश प्रभुके चर्णमें।
दुर्पन जनक ठग औ ठगनिका हाय! हा! नरलोकमें,
करते पराजय पार्श्व प्रभु फँसते नहीं दुर्योगमें॥७॥

पीताम्बरदास उपदेशक-बांसापथरिया।

अहिंसामयी-राष्ट्र-यज्ञ।

राष्ट्र नदीके विद्रवकारी इस कल कलमें।
बने शहीदोंके मठ लाखों जब थल थलमें॥
राष्ट्रनाद जब गूँजे, मिलकर वायु प्रबलमें।
स्वाभिमानकी मूर्ति! जाग ले, ध्वज करतलमें॥१॥

बन्दी बनकर भूला क्या, निज सत्त्व पुराना।
त्याग गुलामी भेष, धार केसरिया बाना॥
सद्गत तूने वीरोंका इतिहास न जाना।
वीर क्षत्रपति शिवा, प्रताप प्रतापी राणा॥२॥

चमक रही हैं अबतक उनकी कीर्तिशिखायें।
देखो! उनके गान गा रहीं चतुर्दिशायें॥
जन्म, मरण अनिवार्य, यथा चक्र क्रम नेमी।
माताके दुख देख द्रवित हो, करुणा प्रेमी!॥३॥

चमके जैनो! नाम तुम्हारा इतिहासों में।
गड़े कीर्तिके स्थंभ, हिमाचल, कैलाशों में॥
"जैन जयति जय" कहें विबुध जन अनुप्रासों में।
फैले परिमल भूमि, गगन, वन उल्लासों में॥४॥

हमने ही तो रक्खा इसका नाम अहिंसा।
हमने ही तो कहा प्रथम, सुखधाम अहिंसा॥
जैनधर्मका अमर रहा है नाम अहिंसा।
क्या न उसीके हेतु करें? संग्राम अहिंसा॥५॥

रामकुमार जैन "स्नातक"–गुजरानवाला।

"जैनविजय" प्रिंटिंग प्रेस, खपाटिया चकला–सूरतमें मूलचन्द किसनदास कापड़ियाने मुद्रित किया
और "दिगम्बर जैन" ऑफिस, चन्दावाड़ी–सूरतसे उन्होंने ही प्रकट किया।

वर्ष विशेषांक

ॐ

दिगंबर जैन



अतिशयक्षेत्र देवगढ़ मन्दिर नं० २८।

सम्पादक और प्रकाशक—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया-सूरत।

विषय-सूची ।

चित्र-सूची ।



अतीव वयोवृद्ध दानवीर श्री० सेठ हीराचन्द नेमचन्द दोशी-सोलापुर।

[डायमंड ज्युबिली फोटो १९३१]



॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

दिगम्बर जैन

नाना कलाभिर्विविधैश्च तत्त्वैः सत्योपदेशैस्सुगवेषणाभिः ।
संबोधयत्पत्रमिदं प्रवर्त्तनाम, दैगम्बरं जैन-समाज-मात्रम् ॥

वर्ष २५वां | वीर सम्वत् २४५८, कार्तिक-मगसिर विक्रम सम्वत् १९८८. | अङ्क १-२.

प्रार्थना ।

[रच०-ताराचंद्रजी जैन पांड्या-झालरापाटन]

विश्व प्राण, विश्व ज्ञान ।
अमर पूज्य, विमल रूप ।
मोह मृत्यु, बल अनूप ॥
सुख निधान, भूप भूप ।
कर्म मुक्त, ध्यान ध्यान ॥विश्व०॥

स्पर्श हीन, स्पर्श ज्ञान ।
गन्ध हीन, गन्ध ज्ञान ॥
स्वाद हीन, स्वाद ज्ञान ।
रूप हीन, रूप ज्ञान ॥विश्व०॥

भारतीय भाग्य आश ।
प्राणि-विश्वका प्रकाश ॥
भव-विपाशका विनाश ।
लघु, महान, शुद्ध ज्ञान ॥विश्व०॥

जय विरक्ति, जय अनाम ।
जय अनन्त, जय अकाम ॥
जय जिनेश, शान्ति धाम ।
आत्म प्राण, आत्म ज्ञान ॥विश्व०॥

स्वागत ।

["वत्सल" विद्यारत्न काव्यकलानिधि ।]

हा ! कैसे निर्वाण मनाएं ।
बने शुष्क अन्तस्तल कैसे प्रेम प्रदीप जलाएं ॥
भग्न हृदय हैं, हा! हम कैसे स्वागत साज सजाएं ।
रूठीहुई ज्ञानलक्ष्मीको कैसे आज बुलाएं ॥१॥

हा ! कैसे निर्वाण मनाएं ।
भक्तिभावसे शून्य हुए क्या
सरस भावना भाएं ॥
दयित दशा है अहे प्रभो !
क्या स्वागत गायन गाएं ।
सोती मधुर कल्पनाओंको
कैसे नाथ जगाएं ॥ २ ॥

हां ! कैसे निर्वाण मनाएं ।
बनें पराश्रित वस्तु आपके
योग्य कहांसे पाएं ।
नहीं, नहीं, रहने दो स्वागत,
साज अरे ! क्या लाएं ॥
शुष्क हृदय आसन पर ही,
आओ ! ऐ नाथ ! बिठाएं ।
स्वागत नाथ ! आपका आएं ॥

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

दिगम्बर जैन

नाना कलाभिर्विविधैश्च तत्त्वैः सत्योपदेशैस्सुगवेषणाभिः ।
संबोधयत्पत्रमिदं प्रवर्त्तनाम, दैगम्बरं जैन-समाज-मात्रम् ॥

वर्ष २५वां | वीर सम्वत् २४५८, कार्तिक-मगसिर विक्रम सम्वत् १९८८. | अङ्क १-२.

प्रार्थना ।

[रच०-ताराचंद्रजी जैन पांड्या-झालरापाटन]

विश्व प्राण, विश्व ज्ञान ।
अमर पूज्य, विमल रूप ।
मोह मृत्यु. बल अनूप ॥
मुख निधान, भूप भूप ।
कर्म मुक्त, ध्यान ध्यान ॥विश्व०॥

स्पर्श हीन, स्पर्श ज्ञान ।
गन्ध हीन, गन्ध ज्ञान ॥
स्वाद हीन, स्वाद ज्ञान ।
रूप हीन, रूप ज्ञान ॥विश्व०॥

भारतीय भाग्य आश ।
प्राण-विश्वका प्रकाश ॥
भव-विपाशका विनाश ।
लघु, महान, शुद्ध ज्ञान ॥विश्व०॥

जय विरक्ति, जय अनाम ।
जय अनन्त, जय अकाम ॥
जय जिनेश, शान्ति धाम ।
आत्म प्राप्त, आत्म ज्ञान ॥विश्व०॥

स्वागत ।

[" वत्सल " विद्यारत्न काव्यकलानिधि ।]

हा ! कैसे निर्वाण मनाएं ।
बने शुष्क अन्तस्तल कैसे प्रेम प्रदीप जलाएं ॥
भग्न हृदय हैं, हा! हम कैसे स्वागत साज सजाएं।
रूठीहुई ज्ञानलक्ष्मीको कैसे आज बुलाएं ॥१॥

हा ! कैसे निर्वाण मनाएं ।
भक्तिभावसे शून्य हुए क्या
सरस भावना भाएं ॥
दयित दशा है अहे प्रभो !
क्या स्वागत गायन गाएं ।
सोती मधुर कल्पनाओंको
कैसे नाथ जगाएं ॥ २ ॥

हा ! कैसे निर्वाण मनाएं ।
बनें पराश्रित वस्तु आपके
योग्य कहांसे पाएं ।
नहीं, नहीं, रहने दो स्वागत,
साज अरे ! क्या लाएं ॥
शुष्क हृदय आसन पर ही,
आओ ! ऐ नाथ ! बिठाएं ।
स्वागत नाथ ! आपका आएं ॥

प्रश्नोत्तर संस्तवन।

[रचयिता–पं० गुणभद्रजी जैन–कलोल।]

भव अरण्यमें चक्कर खाते, आज देव तुमको पाया।
हटा मोह मेरा अनादिका, जो हा! अबतक था छाया॥
तुम ही हो सत्यार्थ देव प्रभु, यह मनमें श्रद्धान हुआ।
पूछो, यदि हम सत्यदेव हैं, कैसे तुमको ज्ञान हुआ! ॥ १ ॥

उत्तर यही एक है निश्चिन, अगणित दोषोंको चूरा।
वचन निरंतर हैं विरोध बिन, और शांत तुममें पूरा॥
यदि फिर आप कहें जड़में भी, क्षुधा तृषादिक दोष नहीं।
उनकी पूजनसे पलभर भी, तुमको क्यों सन्तोष नहीं॥ २ ॥

तो हम कहते नाथ! हमारा उनसे क्या होता उपकार।
और अचेतनमें तिलतुष भी, कहां ज्ञानका है संचार॥
वीतराग सर्वज्ञ और सब, तत्त्वोंका जो वक्ता है।
दृढ मुझको विश्वास लोकमें, देव वही हो सकता है॥ ३ ॥
दोष रहित हम ही हैं जगमें, यह तुमने कैसे जाना?
सत्य तुम्हारी वाणी परसे, हमने तुमको पहिचाना॥
भय न हृदयमें कभी आपके, इससे करमें शस्त्र नहीं।
स्वयं आप रमणीय लोकमें, इससे मण्डन वस्त्र नहीं॥ ४ ॥

तो हम कहते पशुआदिक भी, कभी वस्त्र क्या रखते हैं?
देव मानकर उन्हें विश्वजन, क्यों न पगोंमें पड़ते हैं?
तो हम कहते धनाभावमें, कौन नहीं है वैरागी।
होते हुये अपार सम्पदा, तृणवत् प्रभु तुमने त्यागी॥ ५ ॥
प्रभो! आप ही उच्च त्यागके, हो अपूर्व आदर्श महान्।
सदा तुम्हारी ही सेवासे, होता है जगका कल्याण॥
क्यों होता कल्याण विश्वका, वत्स! हमारे पूजनसे?
देते हम न किसीको किंचित, लेते और न सेवकसे॥ ६ ॥

हमारा देश।

[रचयिता–पं० परमेष्ठीदासजी जैन न्यायतीर्थ–सूरत।]

देशकी विपति हरो भगवान !

दीन दशा है आज हमारी, संकट विकट छा रहे भारी।
भारत भूमि पुकारे सारी, इधर दीजिये ध्यान ॥
देशकी विपति हरो भगवान ॥ १ ॥

हमने दुःख अनेकों भोगे, यह सब आप जानते होगे।
कहो ध्यान अब कब तक दोगे, अटक रहे हैं प्रान ॥
देशकी विपति हरो भगवान ॥ २ ॥

नहीं अन्न घरमें खानेको, तरस रहे दाने दानेको।
तत्पर हैं अब मर जानेको, सात करोड़ किसान ॥
देशकी विपति हरो भगवान ॥ ३ ॥

वस्त्र न उनको मिल पाते हैं, अर्धनग्न ही रह जाते हैं।
अपनी दुख गाथा गाते हैं, अशुभ कर्मको मान ॥
देशकी विपति हरो भगवान ॥ ४ ॥

कहा गया वह समय हमारा, बहती थी अमृतकी धारा।
नष्ट हुआ धन वैभव सारा, बिगड़ गया सब काम ॥
देशकी विपति हरो भगवान ॥ ५ ॥

जो हम सबका प्रतिपालक था, अखिल राष्ट्रका संचालक था।
दीनोंके दुखका भालक था, बना वही दुख खान ॥
देशकी विपति हरो भगवान ॥ ६ ॥

कहां गई वह सम्पति सारी, देश हुआ है हाय! भिखारी।
आती है विपदायें भारी, भारतको पहिचान ॥
देशकी विपति हरो भगवान ॥ ७ ॥

नाथ! सुदिन वह कब आवेंगे, मिलकर सब मंगल गावेंगे।
दुखी न 'दास' यहां पावेंगे, भरा रहे धन धान ॥
देशकी विपति हरो भगवान ॥ ८ ॥

हम कहते हैं नाथ आपकी, महिमा ऐसी है खासी।
सहज टूट जाती है जिससे, भगवन्! कर्मोंकी फांसी॥
और दूसरी बात एक यह, तुममें है सच्चा देवत्व।
बतलाया है बाह्य वेश ही, त्रिभुवनका उत्कृष्ट प्रभुत्व॥ ७॥

तुम ही मेरी शुद्ध आत्माके, जगमें अनुपम प्रतिबिम्ब।
पाता शुद्ध स्वरूप विश्व नित, ले करके तेरा अवलम्ब॥
जबतक जगमें विद्यमान मैं, तेरा बड़ा सहारा है।
तुम बिन ऐसे गहन विश्वमें, बोलो कौन हमारा है॥ ८॥

वत्स! आजतक जिसको पाकर, हमको तुम थे भूल रहे।
पाकर विषय सम्पदा ऐहिक, मन ही मन थे फूल रहे॥
उन देवोका आज सहज ही, करते हो तुम कैसे त्याग?
तुमने भला विचारा है क्या, जो करते मुझसे अनुराग॥ ९॥

यह अनादि अभ्यास चित्तका, क्या योंही छोड़ा जाता।
कहो दीर्घ सेवित देवोंसे, इस विधि मुख मोड़ा जाता॥
प्रभो! आपको लखकर सम्प्रति, कष्टोंका अवसान हुआ।
तेरी विमल कृपासे मुझको, कुछ निजत्वका भान हुआ॥ १०॥

नाथ! कुदेवोंकी सेवासे, पाये मैंने कष्ट महान।
कर न सका निश्चय मैं कुछ भी, कौन विश्वका है भगवान॥
देव नाम रखनेसे कोई, देव नहीं माना जाता।
सिंह नाम रखनेसे कोई, बच्चा उसके बलको पाता॥ ११॥

नित प्रति ही उनकी सेवासे, हुआ और यह दृढ़ संसार।
बैठ मनुज पाषाण नावमें, पहुंच सके क्या सागर पार॥
ज्यों २ उन्हें मनाया मैंने, त्यों त्यों यह मिथ्यात्व बढ़ा।
इसी भांति मुझ पर अनादिसे, महा मोहका नशा चढ़ा॥ १२॥

भूल गया अपना स्वरूप तब, पर द्रव्योंने मोह लिया।
होकरके आधीन मोहके, बस, अनिष्टसे द्रोह किया॥

इसी लिये तुमको भी भगवन ! अबतक नहिं पहिचाना था।
प्रबल शत्रु जो महामोह है, उसको हेय न जाना था ॥ २३ ॥

जिसकी संगतिसे हे भगवन् ! पाये मैंने कष्ट अनन्त।
निज सुखार्थ फिर निश्चय पूर्वक, क्यों नहिं छोड़ूं उन्हें तुरन्त ?

होके भी वे देव, जगतके सुखकी करते अभिलाषा।
बढ़ी हुई है गगन सदृश ही, विषयोंकी उनकी आशा ॥ २४ ॥

काम विवश जो सदा संगमें, रखते हैं सुन्दर दारा।
दिखलाते जो हृदय भीरुता, अपनी हथियारों द्वारा ॥

उन देवोंसे तो हे भगवन ! हम ही हैं सब भांति भले।
क्या तारेगा जीव दूसरोंको, जगमें जो आप रुले ॥ २५ ॥

देनेमें असमर्थ इष्ट हम, फिर पूजनसे है क्या काम।
देते जो धन धान्य सुखादिक, लेते क्यों नहिं उनका नाम ॥

पुत्र मित्र परिवार सम्पदा, विनाशीक सम्पूर्ण पदार्थ।
मिलनेसे ऐहिक विषयोंके, होता नहिं कल्याण यथार्थ ॥ २६ ॥

इनके मिलनेसे अज्ञोंका, बढ़ना है अतिशय अविवेक।
जिसके वश आधीन हुये नर, करते हैं जग पाप अनेक ॥
लौकिक विषयोंके वियोगमें, जग जन सब अकुलाते हैं।
हा ! हा !! बस विषयार्थ निरन्तर, मानव कष्ट उठाते हैं ॥ २७ ॥

निन्दनीक इन विषयोंका तो, योग्य सर्वथा ही है त्याग।
तुम तो एक अलौकिक ही सुख, देते हो हमको बड़भाग ॥

जिस सुखको त्रैलोक्य ज्ञान दे, मनुज प्राप्त नहिं कर सकता।
नर, किन्नर, खेचर, इन्द्रादिक, नहिं कोई भी हर सकता ॥ २८ ॥

प्रभो ! तुम्हारी पूजनसे तो, सधते सभी हमारे काम।
स्व–पर भेद विज्ञान प्राप्त कर, हो जाते हैं हम निष्काम ॥

नाथ आपकी यथाजात मुद्रा, मुझको इतनी प्यारी।
उसहीके उत्कृष्ट ध्यानमें, बीते यह आयू सारी ॥ २९ ॥

अत्याचार और प्रतीकार।

(रच०—श्री० पं० राजकुमार जैन 'विद्याभूषण')

सखी ! सुनाऊँ किन शब्दोंमें ?
अपने दुखकी बतियाँ।
किन वर्णोंमें लिखूं बता मैं ?
अपने दुखकी प्रतियाँ॥
हाय ! दैवकी सर्व जगतमें,
उलटी उलटी गतियाँ।
किन्तु फटा जाता है सीना,
लख समाजकी अवनतियाँ॥१॥

प्रेमामृतके बदले तुमको,
मिली जहरकी प्याली।
छीन लेगये जालिम मेरे,
सुख भवनोंकी ताली॥
चली चली थक जाऊँगी मैं,
इन अनीति राहोंपर।
फिरा प्रलयका पानी आली !
मेरी सुख चाहोंपर॥२॥

हा ! बुलबुलके लिये बिछाता,
माली हा ! दुख जाली।
दिन पहले ही बिगड़े थे,
अब बिगड़ी रातें काली॥
सोचा था सुखसे बीतेंगी,
जीवनकी दो घड़ियाँ।
किन्तु प्रेमकी लड़ियों बदले,
पड़ी कड़ी हथकड़ियाँ॥३॥

क्या समझेंगे व्यथा हमारी,
दौलतके दीवाने।
निकलेंगी अब हमीं हाथमें,
लेकर तीर कमानें॥
अरे ज्योतिषी ! खूब मिलाले,
अपने पत्रा पत्री।
रूढ़ियुद्धमें हम भी निकलीं,
नाना धारे क्षत्री॥४॥

अरे धर्मके ठेकेदारो !
ईश्वरके पैगम्बर।
अबलाएं अब यहां रचेंगी,
अपने स्वयं स्वयंवर॥
मत बोओ तुम अबलाओंके,
मगमें कंटक झाड़ी।
यदि बोओगे, हम फेकेंगी,
जली क्रान्ति चिनगारी॥५॥

ऐ बाधाओ ! आओ ! आओ !!
अरु हम भी आजाएँ।
अपना अपना साहस बल सब,
बढ़ बढ़ कर अजमाएँ॥
हम हारेंगी या जीतेंगी,
तुमको भला फिकर है क्या ?
महा वीर व्रत धारण है,
फिर वहाँ मौतका डर है क्या॥६॥

हृदयोद्गार।

रचयिता:-पं० हजारीलालजी जैन न्यायतीर्थ।

(१)

गया प्यारा दीपावलि पर्व,
सभी पर्वोंके शिरका ताज।
काम, छलछिद्र, दुःखोंसे व्याप्त,
हृदयको शांत बनाने आज॥

(२)

इसी दिन कर्मोंका कर नाश,
गये थे मोक्ष वीर भगवान।
सभीने मिलकर उनका खूब,
किया था भक्ति पूर्ण गुणगान॥

(३)

अहो! पर इस अवसरपर नाथ,
अश्रुओंकी अविरल अतिधार।
निकलती है नयनोंसे शीघ्र,
दुखीकर मनको विविध प्रकार॥

(४)

सबल जन करके अत्याचार,
सताते दीनोंको दिनरात।
दुखी होकर वे करें प्रलाप,
तदपि नहिं पूछे उनकी बात॥

(५)

कहो तब कैसे करुणागार!
मनावें दीपावलिको आज।
भुला करके तुमको जब नाथ!
गमाया अपना सब सुख साज॥

(६)

कृपा करके अब हे करुणेश!
पधारो मन मंदिरमें आप।
दिखाकर सुखका सच्चा मार्ग,
करो सब दूर दुखद संताप॥

(७)

प्रभो! इस मृतक जातिमें शीघ्र,
करो नवजीवनका संचार।
हृदयसे भेदभाव कर दूर,
भरो उसमें अब सुखद विचार॥

(८)

हृदयको स्वच्छ बनाओ देव!
समझ करके अपना प्रिय दास।
पढ़ाओ विश्व-प्रेमका पाठ,
कलह, कायरताका कर नाश॥

(९)

सतत कर पापाचरण महान,
डुबोया प्रभो! तुम्हारा नाम।
छिपाकर 'सार्व-धर्म' को खूब,
न बतलाया जगको सुखधाम॥

(१०)

कहानी कहूं कहांतक नाथ!
हृदय हो उठता अधिक अधीर।
दुखोंका हो जावे अवसान,
शक्ति दो हे सन्मति! हे वीर॥

પ્રાર્થના.

દિન આજનો સોહામણો, ઉગ્યો નુતન આ વર્ષનો;
ગંભીરતા ત્યાગી દીસે, હર્ષિત સૌ સૃષ્ટિ જનો.
બળ બુદ્ધિ ને યશ કીર્તિ મન, ઇચ્છિત ફળો શુભ કામના;
રહેજો અમી દ્રષ્ટિ સહુ પર, એજ છે પ્રભુ યાચના.
જૈ સત્યનો થઈ સર્વદા, સુખ શાંતિમા સૌ જન રહો;
નવચેતના પ્રગટો ભલા, કાર્યોએ સંકટ દુર હો.
નોક સાચવતા હિતાર્થી, હિંદ બળિહાની જનો;
વિરો જીવો એવા કરો, ઉદ્ધાર ભારત ભૂમિનો.
શેતાન સૌ દૂરે થઈને, શાંતિ સુખમાં સૌ વસો;
ષાંતિ ક્ષમા સાર્થક જીવન, દૈવિ ગુણો હૃદયે વસો.
કરજો કૃપા દ્રષ્ટિ ઉપાધિ, આધિ વ્યાધિ ટાળીને;
આ વર્ષ મુબારક હો પ્રભુ, એ પ્રાર્થના છે આપને.

"મુબારક સાલ દિન આજે."

મુબારક સાલ દિન આજે, મનાવો સૌ ખુશી આજે,
બધે આનંદ હર્ષ ગાજે, મુબારક સાલ દિન આજે.
નવિન શક્તિ નવિન ભક્તિ, નવિનતા ભાવ ને પ્રીતિ,
નવિન ચૈતન્ય ને વૃત્તિ, મુબારક સાલ દિન આજે.
ગયા ગત્ વર્ષના સૌ દિન, કંઈ સુખ દુઃખ તણા આધિન,
ઉગ્યો આનંદનો સુદિન, મુબારક સાલ દિન આજે.
પ્રભુની સ્નેહ દ્રષ્ટિથી, પ્રભુના સૌ પ્રતાપોથી,
ફરો જ્યાં ત્યા મળો સૌથી, મુબારક સાલ દિન આજે.
પ્રભુ ગુણ ગીત નિત ગાવો, શરણતા ચાહીને જીવો,
માગો સ્નેહ દૃષ્ટિનો મેવો, મુબારક સાલ દિન આજે.
ભલા કાર્યો ભલાઇનો, ભલા આચાર વિચારોનો,
જીવન સાર્થક ને જીંદગીનો, મુબારક સાલ દિન આજે.

રામચંદ્ર માધવરાવ મોરે–સૂરત.

सम्पादकीय-वक्तव्य ।

पाठकोंको यह जानकर अपार हर्ष होगा कि 'दिगम्बर जैन' एक दो

२५वें वर्षमें प्रवेश । करते करते २४ वर्ष निर्विघ्न पूर्ण करके आज पचीसवें वर्षमें पदार्पण करता है व इस समय हिन्दकी राजकीय परिस्थिति अतीव विकट है तो भी यह अपना सचित्र विशेषांक अनेक सुधारा वधारा सहित प्रकट करनेको भाग्यशाली हुआ है । इस विशेषांकमें कुल २६ चित्र तथा हिंदी गुजराती, अंगरेजी व संस्कृत ऐसी चार भाषाओंके ५७ लेखों व कविताओंका संग्रह पाठकोंको मिलेगा । इस वारके चित्रोंमें विशेषता यह है कि प्राचीन अतिशयक्षेत्र देवगढ़ और समाजके वयोवृद्ध दानवीर सेठ हीराचन्द नेमचन्द दोशी स्थापित संस्थाओंके अनेक चित्र हम प्रकट कर सके हैं। तथा देवगढ़का प्राचीन इतिहास व दानवीर सेठ हीराचन्द नेमचन्द दोशीका विस्तृत परिचय भी प्रकट किया गया है । लेखोंमें ऐतिहासिक, धार्मिक व सामाजिक ऐसे २ लेख प्राप्त हुये हैं कि जो जैन समाजमें व जैन इतिहासमें नवीन जाग्रति उत्पन्न करेंगे व संस्कृत कवितायें पढकर अन्य संस्कृतज्ञोंको नवीन संस्कृत कविताएँ बनानेका प्रोत्साहन होगा ।

इस विशेषांककी पृष्ठ संख्या १३२ होनेपर भी अनेक लेख व कविताएँ छपनेसे रह गई हैं जिनको क्रमशः आगामी अंकोंमें स्थान दिया जायगा । दि० जैन समाजके दानी व उनकी संस्थाओंका सचित्र परिचय प्रगट करनेका समाचार हमने प्रथम प्रकट किया था, उसमें हमें जो कुछ सफलता मिली है वह पाठकोंके सामने है ।

उपहार ग्रन्थ ।

इस वर्षके ग्राहकोंको भी सं० जैन इतिहास दूसरा भाग (बा० कामताप्रसादजी रचित) तथा १ और ग्रन्थ अर्थात् करीब दो रु०के दो ग्रंथ उपहारमें देनेका निश्चय किया गया है । अर्थात हमारे पाठकोंको सिर्फ २।) वार्षिक मूल्यमें ऐसा विशेषांक व २) के उपहार ग्रन्थ भी प्राप्त हो सकेंगे, यह जानकर हमारे पुराने ग्राहक यथाशक्य नवीन ग्राहक बनाकर भी अवश्य भेजेंगे ऐसी हमें पूर्ण उम्मेद है। दिगम्बर जैनका वीर सं० २४५८ का सचित्र जैन तिथिदर्पण सभी ग्राहकोंको गत आश्विनके अंकके साथ भेज दिया गया था और नवीन ग्राहकोंको इस विशेषांकके साथ भेजा गया है, उनको वे सम्हाल लें व वर्ष भर सग्रहीत रक्खें ।

'दिगम्बर जैन' पचीसवें वर्षमें प्रवेश करता है उसपर अनेक महाशयोंकी ओरसे बधाईके पत्र मिले हैं और वे 'दिगम्बर जैन'की सिल्वर (रौप्य) जुबिली हो ऐसी भावना भाते हैं, उनका हम आभार मानते हैं और हमारी उत्कट भावना है कि २५वां वर्ष पूर्ण होते ही जहांतक हो 'दिगबर जैन'का सिल्वर जुबिली अंक निकाला जाय ! अंतमें इस विशेषांकके लिये लेख, कविता, चित्र, परिचय आदि भेजनेवालोंका आभार मानते हैं और आशा रखते हैं कि वे इसीप्रकार लेखादिसे 'दिगम्बर जैन' को हराभरा रखते रहेंगे ।

चर्चासागर या मिथ्यासागर?

दुर्भाग्यका विषय है कि जैनसमाजमें पक्षपात और हठवादके कारण कुछ विद्वान या पण्डित कहे जानेवाले व्यक्ति अनेक वेषोंमें धर्मके नामपर अपना स्वार्थ सिद्ध कररहे हैं। कुछ ही दिन हुये हैं कि चर्चासागरका जैनसमाजमें बाइबिलकी तरह मुफ्त प्रचार किया जारहा है। हमने इस विषयमें गतांकमें पृष्ठ ३८८ पर कुछ लिखा भी था। मगर अब इस ग्रंथने जैन समाजमें भारी हलचल मचा दी है। इसलिये अभी तकका संक्षिप्त हाल लिख देना ठीक होगा।

यह तो निश्चित होचुका है कि चर्चासागरके कर्ता कोई पांडे चम्पालालजी सं० १९१०में हुये हैं। इसकी रचना पंथीय पक्ष और मिथ्याचार एवं अज्ञानसे अंध होकर की गई है। इसमें अनेकों अनाचार, मिथ्याचार, भ्रष्ट चरित्र, धर्मविरोध, सैद्धांतिक भूलें और व्यवहारविरुद्ध कथन भरे पड़े हैं। फिर भी पंडित मक्खनलालजीके सगे भाई पं० लालारामजीने कुछ रुपया लेकर इसका ढूंढारी भाषासे हिन्दी भाषांतर किया है। तथा उन्हींके दूसरे सगे भाई क्षुल्लक कहे जानेवाले पं० नन्दनलालजीने श्रीमान् सेठ चैनसुख गंभीरमलजीको धोखा देकर उनसे ५००) छपानेको निकलवाये तथा आ० शांतिसागरजीके संघमें घूम घूमकर मुफ्तमें ही प्रचार कररहे हैं। उक्त दानी सेठजीको जब चर्चासागरकी भ्रष्टताका पता चला तब उनने स्पष्ट घोषित कर दिया कि 'हमको धोखा दिया गया है, यदि हम पहिलेसे जानते होते तो ऐसे ग्रंथमें कभी सहायता न देते!' इत्यादि।

इस ग्रन्थकी भिन्न२ बातोंका विवेचन किया जाय तब तो अलग एक चर्चासागरमें क्या है? दूसरा चर्चासागर ही बन जाय! इसलिये पाठकोंकी जानकारीके लिये मात्र उसकी कुछ ही मिथ्या प्रवृत्तियोंका दिग्दर्शन कराया जाता है। उसके साथ ही पृष्ठ संख्या भी दी जाती है। पाठक इसे देखकर चर्चासागरकी भ्रष्टताका अन्दाज लगा सकेंगे।

१—पंचमकालमें मुनियोंको मंदिरमें ही रहना चाहिये (१७) इस विषयमें पद्मनंदि पंचविंशतिकाका एक श्लोक उलट पुलट कर रखा है। और उसके अर्थको भी पलट दिया है। २—सोना चांदी मूंगा मोतीकी मालायें हजारों उपवासोंका फल देती हैं। (२२) गोया भावोंकी अपेक्षा मालाओंका दर्जा ऊंचा है। ३—पूजामें वाम और तृणासन तथा पत्थर या खाली जमीनपर बैठनेसे रोग, दुर्भाग्य और अपकीर्ति होती है। (२९) जिन भगवानकी पूजाका आसनके फेरसे ऐसा भयानक फल बताना मूर्खता नहीं तो और क्या है? ४—जप करते समय यदि व्रतभ्रष्ट या शूद्रके दर्शन होजावें या शब्द सुनाई पड़े तो जप छोड़कर आचमन और प्राणायाम करना चाहिये तब शुद्धि होती है (२७) इसमें शूद्रोंसे कितनी घृणा की गई है? जो जैनधर्म पतित-पावन है उसमें शूद्रके दर्शन होनेसे या शब्द सुनाई देनेसे ही इतनी अपवित्रता कैसे होसकती है? दूसरे आचमन और प्राणायामकी वैष्णवी रीति भी जैनियोंमें घुसेड़ना चाही है।

५-घरमें ५, ६, ८ और १० अंगुलकी प्रतिमा रखनेसे धन नाश, उद्वेग, हानि और संपत्तिवि-

नाश होता है (१०४) जिनप्रतिमाओंकी ऊँचाईमें फर्क होनेसे विनाश बताना कहांतक उचित है? ६–शिखरजीकी यात्रा सफेद वस्त्र पहिनकर करनेसे शीघ्र मोक्ष मिलता है, पीलेसे रोग हानि, लालसे लक्ष्मी प्राप्ति होती है (११९) वस्त्रोंसे मोक्षादि मिल जाय, तब तो यह बहुत ही सस्ता सौदा होगया! यह मिथ्यात्व नहीं तो और क्या है? ७–पश्चिमकी ओर मुख करके पूजा करनेसे संतान नाश, दक्षिणमें संततिका उत्पन्न न होना, आग्नेयमें धन हानि, वायव्यमें संतानका अभाव, नैऋत्यमें कुल नाश, और ईशानमें दुर्भाग्य होता है (१३७) देखिये, दिशाओंके फेरसे वीतराग भावनाकी पूजाका फल यह घोर अनर्थ बतलाया गया है! क्या यह मिथ्यात्व और अज्ञान नहीं है? ८–मंदिरके किवाड़ अपने मस्तकसे खोलना चाहिये (१४८) मतलब यह है कि जब मंदिर जावे तब किवाड़ोंको हाथ न लगाकर बैलोंकी भांति (!) मस्तकसे खोलना चाहिये। कैसा विचित्र विधान है?

९–पूजावालेको दर्भासन पर बैठना चाहिये। छोटी चमचीसे मस्तकपर पानी डालना चाहिये, थपेड़ी और चुटकी बजाना चाहिये (१९८) यह सब वैष्णवी रीति नहीं तो और क्या है? १०–भगवानकी पूजामें नदी किनारेकी मिट्टी, भूमिमें नहीं पड़ा हुआ गीला गोबर पात्रमें रखकर आरती उतारना चाहिये!!! इससे अष्ट कर्मोंका विनाश होता है। (१७८) तथा गोबर आदि पवित्र पदार्थ हैं यह मंगल द्रव्य है (२७६) पाठक विचार कर सकते हैं कि यह कितना अनर्थपूर्ण विधान है! क्या कोई भी जैन गोबरसे जिन भगवानकी पूजा या आरती कर सकता है! पृष्ठ १८० पर आचमनकी विधि भी बताई है जो वैष्णवोंकी रीति है।

११–जप होम पितृतर्पण आदि विना तिलक लगाये नहीं करना चाहिये (२२१) इससे मालूम होता है कि चर्चासागरके कर्ता जैनियोंमें पितृतर्पण या श्राद्धका भी प्रचार कराना चाहते हैं! १२–पूजा करनेवाला रूपवान होना चाहिये, बदसूरत न होवे और साहसी न हो! अन्यथा भक्तिवश होकर भी पूजा करने वालेका, उसके देश और राजा तथा साम्राज्यका भी विनाश होजाता है!!! (१८८) पांडेजीकी यह कितनी विचित्र कल्पना है? जिनपूजासे विनाश बताना घोर अज्ञान और निन्दाका कारण है। सोचनेकी बात है कि पूजा करनेवाले सभी स्वरूपवान कहांसे आवेंगे? और यदि काला आदमी पूजा करे तो उससे देश और राज्यका भी विनाश कैसे हो जायगा? यह कुछ समझमें नहीं आता!

१३–यदि श्रावक मांस खावे तो ३ उपवास और विजातीय ब्राह्मणादिके घर भोजन करले तो ९ उपवास करना चाहिये (१९४) कितना विचित्र कोटिका न्याय है? १४–यदि कोई सवारीसे गिरकर या सांपके काटनेसे मरजाय तो घरवालोंको ५० उपवास करना चाहिये (३०१) यह भी कैसा अनोखा न्याय है? १५–जिनमंदिरमें गौदान करनेसे महा पुण्य होता है (३०६) यह भी अन्य मतावलंबियोंकी बात जैन मतमें घुसेड़ी है। कारण कि जैनधर्ममें न तो गायको पूज्य माना है और न गौदानका ही

आर्षग्रंथोंमें विधान है। १६–यदि मुनि नरहत्या करे, आर्जिकासे व्यभिचार करे, चोरी, झूठ, परिग्रह आदि पाप करे और ऐसे ही अनर्थ कर डाले तो मात्र कुछ ही उपवास करके शुद्ध हो जाता है (पृष्ठ ११७के आगे पीछे पूरा प्रायश्चित्त विधान पढ़ जाइये) जब मुनिपद ही इन पापोंसे नहीं रह सक्ता तब मात्र कुछ उपवाससे व्यभिचारी और हत्यारे मुनिकी शुद्धि कैसे होसक्ती है?

१७–शास्त्रसभामें कोई बातें करे तो तमाम सुननेवालोंको वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये (११८) यह भी गजबका न्याय है? बातें करे कोई, और स्नान करना पड़े सुननेवालोंको!

१८–रजस्वलाको यदि बालक स्पर्श करे तो १६ बार स्नान कराना चाहिये। १९–यदि अग्रक रजस्वलाको कोई स्त्री दसबार स्नान करके छुए तो वह रजस्वला बिना नहाये ही शुद्ध होजाती है (११९) यह शुद्धिविधान भी लोकाचारसे विरुद्ध है।

२०–श्रावक, क्षुल्लक और ऐलक तथा आर्यिकाओंको भी सिद्धान्त ग्रन्थ पढ़नेका अधिकार नहीं है (५००) यह भी भट्टारकीय फरमान है! पांडे चंपालालजीने स्वयं गृहस्थ होकर भी सिद्धांत शास्त्र देखे हैं। हमेशासे अभीतक श्रावक सिद्धांत ग्रन्थ पढते आये हैं। फिर भी इसे अनधिकार बतलाना भयकर भूल है।

चर्चासागरमें ऐसे २ अनेकों विचित्र विधान पाये जाते हैं। जो धर्म, सिद्धान्त और लोकाचारके विरुद्ध हैं। इससे मिथ्यात्व, अत्याचार एवं अनर्थोंके प्रचार होनेकी संभावना है। गोबरसे भगवानकी पूजा–आरती करनेकी बात तो एक तरहका घोर अघोर पथ ही है।

चर्चासागर पर लोकमत।

इस चर्चासागरके विषयमें बड़े २ विद्वानों, श्रीमानों और पंचायतोंने घृणा प्रगट की है। जिनमेंसे कुछ नाम प्रगट किये जाते हैं–मुनि श्री सूर्यसागरजी महाराज, पं० पन्नालालजी गोधा, न्यायाचार्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णी, स्याद्वादवारिधि पं० वंशीधरजी न्यायालंकार इन्दौर, पं० गजाधरलालजी न्यायतीर्थ, बैरिष्टर पं० चंपतरायजी जैन, व्याख्यानवाचस्पति पं० लक्ष्मीचंदजी लश्कर, न्यायाचार्य पं० माणिकचदजी शास्त्री, पं० कैलाशचद्रजी शास्त्री काशी, पं० मिलापचदजी कटारिया आदि २।

श्रीमानोंमें–सर सेठ हुकमचंदजी, रा० ब० सर सेठ टीकमचदजी, रा० ब० लाला हुलाशरायजी, रा० ब० सेठ चम्पालालजी रामस्वरूप रानीवाले, सेठ गंभीरमलजी पांड्या, ला० भगवानदासजी महामंत्री बड़नगर आदि २।

पंचायतोंने भी–अनेक जगह चर्चासागरका बहिष्कार किया है। यथा–सतना, बम्बई, रीवां, अम्बाला, पुलगांव, कलकत्ता, देवबन्द, रोहतक, खरगौन, बडवाहा, एत्मादपुर, डीग, ललितपुर, खुरई, मन्दसौर, तथा रीठी आदि २।

इसप्रकार सैकड़ों विद्वानों, श्रीमानों और पंचायतोंकी ओरसे चर्चासागरका बहिष्कार होने पर भी पं० मक्खनलालजी, क्षुल्लक ज्ञानसागरजी, पं० लालारामजी यह तीनो सगे भाई तथा इनकी मंडली उसे भगवद्वाणी मानती है! खेद!!! पं० मक्खनलालजीने तो 'चर्चासागर ग्रंथपर शास्त्रीय प्रमाण' (!) नामक एक ट्रैक्ट

१७२ पृष्ठका निकालकर उसमें चर्चासागरका समर्थन किया है और आचार्योंके नामसे बनावटी पुस्तकों या श्लोकोंका प्रमाण देकर समाजको धोखेमें डाला है। इस ट्रेक्टका 'शास्त्रीय उत्तर' पं० परमेष्ठीदासजी जैन न्यायतीर्थ सूरतने जैनमित्रके अङ्क ५ से ९ तक दिया है। पाठक ।।) की टिकीट भेजकर वे पांचों अंक हमारे यहांसे मगाकर एकवार अवश्य पढ़ जावें। बा० रतनलालजी झांझरी कलकत्ताने भी एक 'मुंह तोड़ उत्तर' लिखा है, जो)।। की टिकिट आनेपर हम मुफ्त भेज देंगे।

* * *

सावधान ! संक्षेपमें कहनेका तात्पर्य यह है कि कोई भी जैन भाई इस महा भ्रष्ट चर्चासागरको जैन शास्त्र न समझे। और जहां २ पहुंचे हों वहांके मंदिरों या पुस्तकालयोंसे निकालकर किसी गुप्तस्थानमें बांधकर डाल देवें। किसीके बहकानेमें न आवें। दुर्भाग्यसे समाजमें कुछ ऐसे भी पंडित हैं कि जो चर्चासागरका समर्थन करते हैं। पाठक उनसे सावधान रहें।

* * *

देशकी वर्तमान परिस्थिति। यदि आप समाचार पत्र पढ़ते होंगे तो आपको देशकी वर्तमान परिस्थितिका ज्ञान अवश्य होगा। महात्मा गांधीजी जिस प्रकार विलायतकी राउण्ड टेबल कान्फरेंसमें गये थे उसी प्रकार खाली हाथ गत २८ दिसम्बरको बम्बई वापिस आगये। इधर देशका वातावरण भी गरम होने लगा। तथा युवकोंके प्राण पं० जवाहरलाल नेहरू और कुछ अन्य नेता गिरफ्तार कर लिये गये। महात्माजीके आते ही बम्बईमें कांग्रेस कमेटीकी वर्किंग कमेटी बुलाई गई। इसीके बीचमें महात्माजीने लार्ड विलिंग्डनसे मिलनेकी इच्छा प्रदर्शित की। मगर वहांसे साफ इन्कार हो गया। आखिरकार कांग्रेसने सत्याग्रह युद्ध प्रारम्भ करनेकी घोषणा कर दी। बस, फिर क्या था! वायसराय महोदयने ४ आर्डीनेन्स प्रकट किये और देखते ही देखते समस्त भारतमें नेताओंकी गिरफ्तारियोंकी झड़ी लग गई जिनमेंसे खास नेताओंके नाम इस प्रकार हैं— महात्मा गांधीजी, सरदार वल्लभभाई पटेल, विट्ठलभाई पटेल, सुभाषचन्द्र बोष, राजेन्द्र बाबू, अब्बास तैयबजी, डा० अन्सारी, महादेवभाई देशाई, काका कालेलकर, मणीलाल कोठारी, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, कस्तूरबा गांधी आदि।

कहनेका मतलब यह है कि देशके प्रायः सभी गण्य मान्य नेता गिरफ्तार कर लिये गये हैं। सर्वत्र कांग्रेस कमेटियां, और राष्ट्रीय संस्थायें गैरकानूनी करार दीगई हैं। पिकेटिंग आदि करना अपराध घोषित किया गया है और पुराना प्रेस एक्ट चालू होगया है। अर्थात् अभी समस्त देश संकटमें है!

* * *

हमारा कर्तव्य। ऐसी परिस्थितिमें हमारा क्या कर्तव्य है, यह तो पाठकोंको अपनी विचारशक्तिसे और परिस्थितिको देखते हुये निर्णय करना चाहिये। मगर हम इतना तो अवश्य निवेदन करेंगे कि आप १—सत्य और

अहिंसाका पूर्ण पालन करें। २—भयानकसे भयानक दमन होनेपर भी शांतिसे कामलें और किसी भी पुलिस या अमलदारका हिंसादिसे सामना न करें। ३—अहिंसाधर्म और देशकी रक्षा करनेवाली शुद्ध खादीका ही उपयोग करें। आपके घरमें, मंदिरोंमें तथा सर्वत्र शुद्ध खादीका ही उपयोग किया जाय। ४—जो चीज अपने देशमें बनती है, विशेष करके उसका ही उपयोग करें। ऐसा करनेसे आपके गरीब देशी भाइयोंके पेटमें रोटी पहुँचेगी। ५—चर्खा कातनेका नियम करें और स्वावलम्बी बनें। इस प्रकारसे देशकी सेवा, गरीबोंका पोषण और होगा, धर्मका पालन तथा पराधीनतासे मुक्ति होगी। आशा है कि हमारे पाठकगण इस निवेदनपर ध्यान देंगे।

❋ ❋ ❋

बम्बईमें जैन युवक परिषद्।

जैन युवक संघ बंबईके प्रयत्नसे बबईमें ता० ३१ दिसम्बर व १ जनवरीको दि० श्वे० और स्थानकवासी जैनोंकी एक सम्मिलित 'जैन युवक परिषद्' राष्ट्रभक्त श्री० मणीलालजी कोठारीके सभापतित्वमें बड़ी ही सफलता एवं ठाठबाटसे हुई थी। इसमें तीनों फिरकोंके स्त्री पुरुष एकत्रित हुये थे। प्रतिनिधि टिकिट २) और दर्शक टिकिट १) रखी गई थी। इसमें अनेक विद्वानोंके साम्यभावसे धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय विवेचन हुये थे। तीनों फिरकाओंके ऐक्यका यह स्तुत्य प्रयास कहना चाहिये।

परिषदमें अनेक देशनेता भी पधारे थे तथा जैनोंको सम्बोधित करते हुये भाषण किये थे। जिनमेंसे कुछ शुभ नाम इस प्रकार है—सर्दार वल्लभभाई पटेल, विट्ठलभाई पटेल, काका कालेलकर, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, गोविंद वल्लभपन्त तथा मोहनलालजी सक्सेना आदि।

❋ ❋ ❋

नेताओंके भाषणका कुछ अंश।

उक्त राष्ट्रीय नेताओंने जो जैन परिषदमें भाषण किये थे उनका कुछ अंश नीचे प्रगट किया जाता है। "विश्वप्रेमका अर्थ ही जैनप्रेम है। अहिंसा वीरोंका धर्म है न कि कायरोंका। जैन धर्म ऊपरी देखनेका धर्म नहीं है, किन्तु उसका अभ्यास भीतर घुसकर किया जाना चाहिये। जैनियोंको अपने जीवनमें त्याग उतारना चाहिये।"

—सरदार वल्लभभाई पटेल।

"जैन धर्म तो सार्वभौम जीवनशास्त्र है। जैन धर्मने तमाम वस्तुओंका उत्तमतासे प्रतिपादन किया है। जैन धर्मने उत्तममें उत्तम समाजवाद बताया है। जैन धर्मके शास्त्र सभीको अद्भुत जवाब देसते हैं। मैं जैन धर्मका विजय देख रहा हूं। जीवन और दुनियाकी सेवा अब जैन लोग बराबर करेंगे यदि वे सच्चे जैनत्वको समझे होंगे तो।" —काका कालेलकर।

"अहिंसा जैनोंकी विशेष संपत्ति है। जगतके किसी भी धर्ममें अहिंसा धर्म इतनी शूक्ष्मतासे नहीं है।" —बाबू राजेन्द्रप्रसाद।

"आज समस्त भारतवर्ष जैन होगया है। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी आदि सभीमें जैन धर्मका प्रचार होरहा है। सभी सिद्धान्तोंसे उत्तम सिद्धांत जैन धर्ममें है।"

—पंडित गोविन्द वल्लभ पंत।

"हिन्दू, सिक्ख और इस्लाम धर्म जितनी सहनशीलता, बहादुरी और मातृभक्ति सिखाता है उतना ही जैनधर्म सत्प्रेम, सद्भाव और अहिंसा सिखाता है।" —मोहनलालजी सक्सेना।

सभापति महोदयका भाषण धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय विवेचन करते हुये हुआ था। आपने ऐक्यपर अधिक जोर दिया था। इस वर्ष परिषदके कार्यकर्ताओंने तीनों फिरकोंको एकत्रित करनेका विचार बहुत देरमें किया था। अब तो नीव डल चुकी है। आशा है कि आगामी वर्ष समस्त भारतमें खूब प्रचार करके किसी योग्य स्थानपर अधिवेशन किया जाय। हम इस परिषदकी हृदयसे उन्नति चाहते हैं। और दि० जैन युवकोंसे आग्रह करते हैं कि "मंत्री जैन युवक परिषद २६-३० धनजी स्ट्रीट बंबई"के पतेसे पत्रव्यवहार करके उसके कार्यमें साथ देवें।

जैनसमाचारावलि।

गिरनारजीमें वेदीप्रतिष्ठा-माघ सुदी ५को होगी तथा पालीताणा व लखनऊमें रथयात्रा होगी तथा छपारामें पंचकल्याणक गजरथ प्रतिष्ठा इसी मितीपर होगी।

दुग-में माघ वदी ९को पंचकल्याणकप्रतिष्ठा व खण्डेलवाल दि० जैन महासभा होगी।

आचार्यश्री-शांतिसागरजीका संघ गुडगांवकी तरफ विहार करके आगे मारवाड़में विहार करेगा। आचार्यश्रीने मगसिर सुदी ९ को गुडगांवमें केशलोंच किया था।

संतोकब्हेन-पाठशाला भावनगरका वार्षिकोत्सव सानंद होगया। यहां ९९ छोटे बड़े भाई शिक्षा पाते हैं। उजेडियाकी पाठशालाका द्वि० वार्षिकोत्सव भी होगया।

जैन युवक परिषद-जो बम्बईमें ता० ३१ दिसम्बरको हुई थी उसमें निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुए हैं-१-स्वर्गस्थ वाडीलाल मोतीलाल शाह जो उत्तम लेखक, वक्ता, विचारक व निडर समाज सेवक थे उनके वियोग पर शोक। २-परिषदका उद्देश अपनी राजकीय, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक उन्नति करना और जैन समुदायमें ऐक्यता स्थापन करना, निडर होना, विचारस्वातंत्र्य प्राप्त करना और प्रगतिबाधक रूढिबंधनोंको तोड़ना है। ३-प्रत्येक जैन राजकीय परिस्थिति व हलचलमें पूर्ण सहयोग दें, खादी धारण करें व वर्षमें १०००

चार सूत्र क्रमसेकम काते। ७—दि० जैन परिषद, श्वे० जैन कान्फरन्स व स्थानकवासी जैन कान्फरन्स तीनों फिरकोंमें जिस बातकी मान्यतामें भेद न हो उनमें ऐक्यता स्थापन करनेका प्रयत्न करें व तीनों आम्नायकी शिक्षा विषयक संस्थायें प्रत्येक जैनके लिये अपने द्वार खुले रखें। ५—जैन तीर्थोंके संबन्धमें दिगम्बर व श्वेतांबरोंके चलते हुए झगड़ोंको कोर्टमें न लेजाकर उनके निबटेरेके लिये जैन व जैनेतरोंकी एक कमेटी नियुक्त हो जिसका चुकादा दोनोंको मान्य हो। ६—परिषदके उद्देशके प्रचारके लिये १५ महाशयोंकी कमेटीकी नियुक्ति।

जोधपुर—में एक ७ वर्षका ऐसा स्था० जैन बालक है जिसने इतनी ही उम्रमें मेट्रिक तककी योग्यता प्राप्त करली है।

थूबौनजीमें माघ सुदीमें वार्षिक मेला होगा।

सोनागिर—के भट्टारक हरेंद्रभूषणजीका स्वर्गवास होगया और खाली गद्दीपर एक १२ वर्षके अबोध बालकको बिठाया है। उसपर विरोध खड़ा हुआ है।

खुरई—में मगसिर मासमें रथयात्रा व विमानोत्सव होगया। व मुनि सूर्यसागरजीके उपदेशसे ४० वर्षकी दो तड़ें एक होगई।

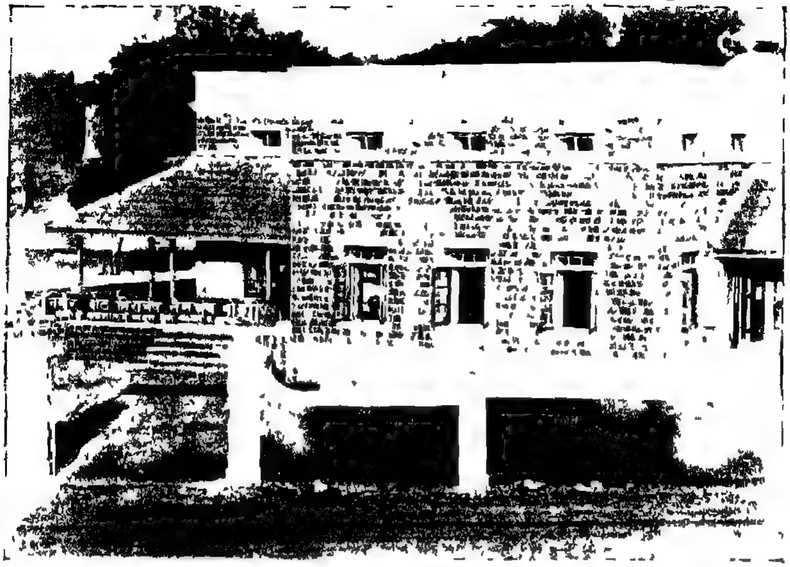
पूना—में जैन विद्यार्थी संघका तीसरा वार्षिक सम्मेलन ता० ६ दिसंबरको होगया। इसमें तीनों फिरकोंकी बोर्डिंगके विद्यार्थी सम्मिलित हुए थे।

जैन समाजका एक नररत्न-श्री०वाडीलाल मोतीलाल शाहका बम्बईमें ता० २१ नवम्बरको स्वर्गवास होगया। केशरियाजी हत्याकांडके समय आपकी जैनसमाजकी सेवा स्मरणीय ही रहेगी।

बड़वाहनि०—दानशीला बेसरबाईजीने समस्त दि० जैन आश्रम व बोर्डिंगोंको मगसिर सुदी १ को जिमाया था।

भूल सुधार—इसी अंकके पृष्ठ ८६ पर 'दर्शन और धर्म' शीर्षक लेखमें लेखकका नाम भूलसे पं० कमलकुमार शास्त्री छप गया है। उसकी जगह 'पं० कैलाशचंद्रजी शास्त्री' पढ़ें।

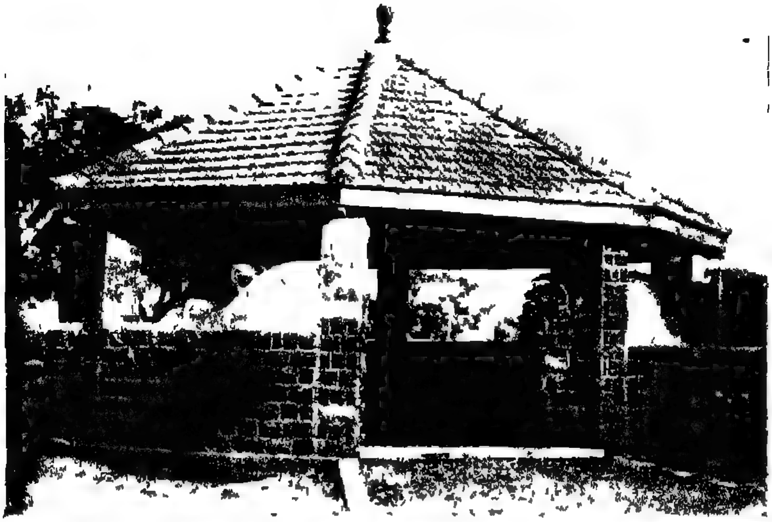
जैन व्रतकथा संग्रह—के विज्ञापनमें पृष्ठ १२८ पर ||=) भूलसे छप गया है। उसके स्थानपर |||) पढ़ें।



श्री० दानवीर सेठ हीराचन्द नेमचन्द दोशी स्थापित—
जनरल लायब्रेरी-सोलापुर।



श्री० दानवीर सेठ हीराचन्द नेमचन्द दोशी स्थापित—
डायमंड ज्युबिली आरोग्य भवन सोलापुर।



श्री० दानवीर सेठ हीराचन्द नेमचन्द शोशी स्थापित—
पशु आषधालयका ओपरेशन रूम–सोलापुर।



श्री दानवीर सेठ हीराचन्द नेमचन्द शोशी स्थापित—
विश्राम। तपोवन–सोलापुर।

चित्र-परिचय।

इस अंकमें दिये हुये चित्रोंका संक्षिप्त परिचय निम्न लिखित है—

(१-१९से २४) प्राचीन अतिशयक्षेत्र देवगढ़।

यह क्षेत्र ललितपुर (झांसी) से १८ मील और जाखलौन ग्रामसे ७ मील दूर है। ललितपुरसे मोटर तथा बैलगाड़ी दोनों जाती है, मगर जाखलौन (स्टेशन जी० आई० पी० झांसी और बीनाके बीचमें है) से बैलगाड़ी जाती है। देवगढ़ छोटासा ग्राम है। जिसमें ६—७ घर ब्राह्मणोंके और बाकी राउत या भीलोंके हैं। जैनियोंमें मात्र एक पुजारी है। पहिले यहां सौ सवासौ घर जैनोंके थे। ठहरनेके लिये ३—४ वर्ष हुये एक धर्मशाला भी बन गई है। और उसके कोठेके ऊपर एक चैत्यालय भी निर्माण करा दिया गया है। जिससे यात्रियोंको हर समय देवदर्शनका सुभीता रहता है। चढ़नेको टूटीफूटी सीढियाँ हैं। सीढ़ियां पार करनेपर कोटका द्वार मिलता है। जिसको तोरणद्वार कहते हैं। यह भी भग्नावशेष है। इसकी कारीगरी आश्चर्यचकित कर देनेवाली है। आगे चलकर किलेकी दूसरी दीवाल मिलती है। इसको तय करके तीसरे कोटकी दीवाल मिलती है। इन्हीं दो दीवालोंके अन्दर जैन मंदिर हैं। किलेके भीतर देवालय होनेसे ही इसका नाम देवगढ़ पड़ गया है। यह पर्वत ३०० फीट ऊंचा है। और सोनागिरके समान चढ़ाई सरल है।

देवगढ़की प्राचीनता—

किलेकी दीवाल बिना सिमेंट गारेके मात्र पत्थरकी ही बनी है। उसकी मोटाई १९ फीट है। किलेके उत्तरी पश्चिमी कोनेसे एक पत्थरकी दीवाल २१ फीट मोटी है, जो ६०० फीट दूरतक पहाड़ीके किनारे चली गई है। मंदिरोंके पत्थरोंमें ८, ११ तथा १४वीं शताब्दीके लेख मिलते हैं। इससे क्षेत्रकी प्राचीनताका पता चलता है। कहते हैं कि इनमेंसे कई मंदिरोंके निर्माता देवपत और खेवपत नामके दो निर्धन जैनी भाई थे। इनको पुण्यप्रभावसे कहींसे पारस पत्थर मिल गया था। जिससे सम्पत्तिवान होकर इन्होंने मंदिर निर्माण कराये थे। प्रतिष्ठाके समय जो देशदेशसे श्रावक आये थे उनके भोजनमें ८ मन तो मात्र मिर्च—मसाला ही खर्च हुआ था। तब अन्दाज लगाया जा सकता है कि लाखों जैन भाई प्रतिष्ठामें आये होंगे।

देवालयोंकी कारीगरी—

इन देवालयोंकी कारीगरी बड़ी ही अनुठी है। पुरातत्वके डाइरेक्टरका कहना है कि देवगढ़के मंदिरोंके अतिरिक्त भारतमें ऐसी अनुपम कारीगरी कहींके देवालयोंकी नहीं है! मंदिर ही नहीं किन्तु मूर्तियोंका कलाकौशल्य देखकर दांतों तले अंगुली दबाना पड़ती है। बहुत ही छोटे२ मंदिरोंको छोड़कर बाकीके मंदिर ३० हैं। उनमेंसे ६ मंदिरोंके चित्र इस अंकमें प्रकट किये गये हैं। इन्हें देखकर ही पाठक अनुमान लगा सकेंगे कि देवगढ़की कारीगरी कितनी विचित्र है।

मूर्तियोंकी पुनर्व्यवस्था—

मंदिरोंके भीतर तो मूर्तियां हैं ही परन्तु



श्री० दानवीर सेठ हीराचन्द नेमचन्द दोशी स्थापित—
पशु औषधालयका ऑपरेशन रूम-सोलापुर।



श्री दानवीर सेठ हीराचन्द नेमचन्द दोशी स्थापित—
निवा[illegible]-सोलापुर।

चित्र-परिचय ।

इस अंकमें दिये हुये चित्रोंका संक्षिप्त परिचय निम्न लिखित है—

(१-१९से २४) प्राचीन अतिशयक्षेत्र देवगढ़।

यह क्षेत्र ललितपुर (झांसी) से १८ मील और जाखलौन ग्रामसे ७ मील दूर है। ललितपुरसे मोटर तथा बैलगाड़ी दोनों जाती है, मगर जाखलौन (स्टेशन जी० आई० पी० झांसी और बीनाके बीचमें है) से बैलगाड़ी जाती है। देवगढ़ छोटासा ग्राम है। जिसमें ६—७ घर ब्राह्मणोंके और बाकी राउत वा भीलोंके हैं। जैनियोंमें मात्र एक पुजारी है। पहिले यहां सौ सवासौ घर जैनोंके थे। ठहरनेके लिये ३—४ वर्ष हुये एक धर्मशाला भी बन गई है। और उसके कोठेके ऊपर एक चैत्यालय भी निर्माण करा दिया गया है। जिससे यात्रियोंको हर समय देवदर्शनका सुभीता रहता है। चढ़नेको टूटीफूटी सीढ़ियाँ हैं। सीढियां पार करनेपर कोटका द्वार मिलता है। जिसको तोरणद्वार कहते हैं। यह भी भग्नावशेष है। इसकी कारीगरी आश्चर्यचकित कर देनेवाली है। आगे चलकर किलेकी दूसरी दीवाल मिलती है। इसको तय करके तीसरे कोटकी दीवाल मिलती है। इन्हीं दो दीवालोंके अन्दर जैन मंदिर हैं। किलेके भीतर देवालय होनेसे ही इसका नाम देवगढ़ पड़ गया है। यह पर्वत ३०० फीट ऊंचा है। और सोनागिरके समान चढ़ाई सरल है।

देवगढकी प्राचीनता—

किलेकी दीवाल बिना सिमेंट गारेके मात्र पत्थरकी ही बनी है। उसकी मोटाई १९ फीट है। किलेके उत्तरी पश्चिमी कोनेसे एक पत्थरकी दीवाल २१ फीट मोटी है, जो ६०० फीट दूरतक पहाड़ीके किनारे चली गई है। मंदिरोंके पत्थरोंमें ८, ११ तथा १४वीं शताब्दीके लेख मिलते हैं। इससे क्षेत्रकी प्राचीनताका पता चलता है। कहते हैं कि इनमेंसे कई मंदिरोंके निर्माता देवपत और खेवपत नामके दो निर्धन जैनी भाई थे। इनको पुण्यप्रभावसे कहींसे पारस पत्थर मिल गया था। जिससे सम्पत्तिवान होकर इन्होंने मंदिर निर्माण कराये थे। प्रतिष्ठाके समय जो देशदेशसे श्रावक आये थे उनके भोजनमें ८ मन तो मात्र मिर्च-मसाला ही खर्च हुआ था। तब अन्दाज लगाया जा सकता है कि लाखों जैन भाई प्रतिष्ठामें आये होंगे।

देवालयोंकी कारीगरी—

इन देवालयोंकी कारीगरी बड़ी ही अनूठी है। पुरातत्वके डाइरेक्टरका कहना है कि देवगढ़के मंदिरोंके अतिरिक्त भारतमें ऐसी अनूपम कारीगरी कहींके देवालयोंकी नहीं है। मंदिर ही नहीं किन्तु मूर्तियोंका कलाकौशल्य देखकर दांतों तले अंगुली दबाना पड़ती है। बहुत ही छोटे २ मंदिरोंको छोड़कर बाकीके मंदिर ३० हैं। उनमेंसे ६ मंदिरोंके चित्र इस अंकमें प्रकट किये गये हैं। इन्हें देखकर ही पाठक अनुमान लगा सकेंगे कि देवगढ़की कारीगरी कितनी विचित्र है।

मूर्तियोंकी पुनर्व्यवस्था—

मंदिरोंके भीतर तो मूर्तियां हैं ही परन्तु

सैकड़ों मूर्तियां पहाड़के ऊपर यत्रतत्र अस्तव्यस्त रूपसे पड़ी हुई थीं, जो मनुष्यों और पशुओंसे पदलित होती रहती थीं, परन्तु धर्मवीर श्रीमान् सेठ पद्मचन्दजी आगराने उन सब मूर्तियोंको एक कोटमें पधीकराकर सुरक्षित करवा दिया है। सेठ सा०ने इस शुभ कार्यमें ९०००) खर्च कर दिये हैं। अभी आपसे और भी आशा है। यदि अन्य श्रीमान् भी इस ओर ध्यान दें तो इस पुरातन क्षेत्रका सहजमें ही जीर्णोद्धार होजाय।

ऐतिहासिक शिलालेख—

देवगढ़में करीब २०० शिलालेख हैं। जिनमें १५७ ऐतिहासिक हैं। महासभाकी ओरसे पं० जिनराजजी शास्त्रीने ३ माह देवगढ़में रहकर शिलालेखोंकी कापी की थी। मगर मालूम नहीं उनका क्या हुआ? महासभाको चाहिये कि उनकी व्यवस्था करके हिन्दी करावे और प्रगट करके जैन इतिहासकी खोजमें कुछ भाग लेवे। शिलालेखोंका महत्व जैन कला और पौराणिक कथाओंके लिये विशेष रूपसे है। यह शिलालेख विक्रम सं० ९१९ से १८७६ तकके हैं। यह नागरी लिपिकी उन्नतिके इतिहासके लिये बड़े महत्वके हैं। श्री शांतिनाथजीका नं० १२का एक बड़ा मंदिर है। जिसमें संस्कृतका एक बृहत शिलालेख है। जो कि इसी अंकमें प्रगट किया गया है। इसकी संस्कृत भाषा बहुत अशुद्ध है। जिस प्रकार हमसे पढ़ी गई है उस प्रकार कुछ परिवर्तित करके चित्रके नीचे छापी गई है। फिर भी उसमें अनेक अशुद्धियां हैं। विद्वानोंको शुद्ध करके पढना चाहिये। और यदि कोई विद्वान उसे बिलकुल शुद्ध पढ़ सकें तो हमें विज्ञ लेखनेकी कृपा करें।

इस शिलालेखका भाव यह है कि 'यह शांतिनाथ चैत्यालय वि० सं० १३९३में दानदानेश्वर सिंघई लक्ष्मणके वंशज सिं० जुगराजने बनवाया है। प्रतिष्ठाचार्य पं० नृसिंह हैं और कारीगर राजपेनसाला हैं। इस मंदिरके उत्तरी दालानमें एक विचित्र शिलालेख है। जिसमें 'ज्ञानशिला' खुदा हुआ है। इसमें १८ भाषाओं और १८ लिपियोंके नमूने खुदे हैं। इसे साह्रा नामदीने लिखाया था।

मंदिर नं० १८ के सामने एक स्तम्भ है। जिसमें लिखा है कि सं० ११२१ में राज्यपालकी मठके आगे दो मानस्तम्भ बनाये गये थे। यहांपर २५—३० फीट ऊंचे अति मनोज्ञ ४ स्तम्भ हैं। राजमती, राजपाल, सती सावित्री आदिकी मूर्तिया हैं। जिनके षोडश श्रृंगारोंपर शिल्पकलाकी हद कीगई है।

कोटके दक्षिण द्वारके नीचे वेतवा नदी बहती है। नदीके जानेके लिये २ घाटियां बनी हैं। यह घाटियां पर्वत काटकर बनाई गई हैं। इनमें तीन शिलालेख ब्राह्मी लिपिमें हैं। नाहरघाटीका शिलालेख ७ पंक्तियोंमें है। उसमें 'अष्टमातारः' का दर्शन कराया गया है। राजघाटीके किनारेका शिलालेख ८ पंक्तियोंमें है। जो सं० ११५४ का है। इसको राजा वत्सने खुदवाया था जो कीर्तिवर्मा चन्देलाका वजीर आजम था। उसीके नामसे किलेका नाम कीर्तिगिरिदुर्ग पड़गया है।

सिद्धगुफा—

यहांसे चलकर एक सिद्ध गुफा है। यह पहाड़में खुदी हुई है। इसका मार्ग पहाड़ोंके

ऊपरसे सीढ़ीद्वारा नीचेको है। इसके भीतर २ द्वार हैं। २ खंभोंपर छत सुरक्षित है। इस गुफाके बाहर एक लेख गुप्त समयका है। एक दूसरा भी है जिसमें लिखा है कि राजा वीरने सं० १३४२ में कुरारको जीत लिया था।

जीर्णोद्धारकी आवश्यक्ता–

ऐसे महान ऐतिहासिक पवित्र अतिशयक्षेत्रके जीर्णोद्धारकी बहुत आवश्यक्ता है। अभी तक यह क्षेत्र अप्रसिद्धसा था। मगर अब उत्साही सिंघई नाथूरामजी जैन, ललितपुर, मंत्री तथा देवगढ़ जीर्णोद्धार कमेटीके मेम्बरोंके प्रयत्नसे प्रकाशमें आरहा है। गत ४-५ वर्षोंमें क्षेत्रका अच्छा सुधार होगया है। जैन समाजसे हमारा निवेदन है कि एकवार इस क्षेत्रके दर्शन अवश्य करना चाहिये। और श्रीमानोंका कर्तव्य है कि इसके जीर्णोद्धारमें अपनी सम्पत्तिको लगाकर सफल बनावें। प्रतिवर्ष अनेक नवीन प्रतिष्ठायें होती हैं, उनकी अपेक्षा यदि इस क्षेत्रका उद्धार किया जाय तो विशेष पुण्यलाभ होगा। जैन इतिहासवेत्ताओंको भी इस क्षेत्रके दर्शन करके इसे विशेष प्रकाशमें लाना चाहिये। तमाम शिलालेखोंका यदि हिन्दी अनुवाद होजाय तो जैनियोंके पुरातन इतिहासका बहुत कुछ पता लग सकेगा। सहायता भेजनेवालोंको "चुन्नीलाल बच्चूलालजी सर्राफ–कोषाध्यक्ष देवगढ़क्षेत्र–ललितपुर" (झांसी) के पतेसे भेजना चाहिये। पत्रव्यवहार मंत्रीके नामसे करना चाहिये। मंत्री सिं० नाथूरामजी–ललितपुरने देवगढ़के फोटो और शिलालेखकी कापी तथा परिचय भेजनेकी जो कृपा की है, उसके लिये हम आपके आभारी हैं।

२–६–श्री० दानवीर सेठ हीराचन्द नेमचंद दोशी ऑ०मजिस्ट्रेट, सोलापुर—सा॰ जैनसमाज आप जैसे दानवीर, धर्मवीर व समाजसेवकसे अच्छी तरह परिचित है तौभी आपकी ७५ वर्षकी आयुमें आपकी डायमंड जुबिलीके समय आप व आपकी संस्थाओंका सचित्र परिचय देना हमने उपयुक्त समझा है। दशाहूमड जाति, उत्तरेश्वर गोत्री आपके पूर्वज दोशी महालचन्द भीमजी वांकानेर (गुजरात) निवासी थे। वे व्यापारार्थ दक्षिणमें फलटण आये थे जहां सेठ नेमचन्दका जन्म हुआ था और सेठ नेमचन्दजी पीछे सोलापुर जा बसे थे, जहाँ सेठ हीराचन्दजीका जन्म सं० १९१३ ई० सन् १८५६में हुआ था। पिताजीका व्यापार व शराफी कपड़ेका था जो आज उत्तरोत्तर अतीव वृद्धिरूप अभीतक चालू है। आपको प्रथम मराठीका ज्ञान कराया गया, फिर एक ब्राह्मणसे संस्कृतका ज्ञान प्राप्त हुआ, उसके बाद कारंजाके भट्टारक राजेंद्रभूषणके पास सोलापुरमें भक्तामरस्तोत्र, सूक्तमुक्तावली आदिका सार्थ अभ्यास किया। सं०१९२६में आपके पिताजी आदिने गिरनारजीपर नवीन मंदिर बनाकर प्रतिष्ठा की तब आपने वहां रत्नकरण्ड श्रावकाचार टीका पढ़कर बहुत ज्ञान प्राप्त किया। वहां आपके पिताजीका स्वर्गवास होगया, अर्थात् सिर्फ १३ वर्षकी आयुमें आपपर गृहभार आपड़ा। सोलापुर आकर आप एक वर्ष बीमार रहे, फिर दूकानका काम सम्हालते हुए घरपर अंग्रेजी शिक्षा भी प्राप्त करली। आप सत्य बोलते हैं इससे आपका विश्वास व्यापारी व ग्राहकोंपर बहुत होगया जिससे आपकी फर्म सत्यतासे उत्तम व्यापारीके लिये प्रसिद्ध है।

आपका प्रथम विवाह १८ वर्षकी आयुमें हुआ। प्रथम पत्नीका ८ वर्ष बाद वियोग होगया। तब आपके एक पुत्री कंकूबाई व माणेकचन्द, जीवराज व वालचन्द ऐसे ४ संतान हुईं थीं। फिर आपने अपनी माताके साथ मालवा, मेवाड़ व गुजरातकी यात्राएं कीं, जहां अनेक व्यापारियोंके सम्पर्कसे व्यापारका विशेष अनुभव भी मिला। स्त्रीशिक्षा पर आपका प्रेम अपार है। आपने अपनी वृद्ध माताको घरपर शिक्षा दी थी। सं० १९४० में आपका

दूसरा विवाह हुआ था। सं० १९४१ में आपने गोमटस्वामीकी अपनी माताके साथ यात्रा की, जहां ब्रह्मसूरि शास्त्रीके पासका ग्रंथसमूह देखकर उसकी सूची लिख ली तथा चन्द्रगिरि उदयगिरिके कई शिलालेखोंकी नकल भी करली। वहां आपको मालूम हुआ कि यहांसे १०० माईल मूडबिद्रीमें धवल, जयधवल और महाधवल ऐसे तीन प्राचीन सिद्धान्तशास्त्र कानडी लीपिमें विराजमान हैं व जीर्ण अवस्थामें हैं जिसकी नकल होनेकी आवश्यकता है। यह जानकर बेलगाडीमें वहां गये तब रास्तेमें हालीबीड, वेणूर, कारकल आदिके मंदिरोंके दर्शन करके वहांके प्राचीन शिलालेखोंकी भी नकल करली व मूडबिद्री पहुंचकर पंचोंसे मिलकर सिद्धान्तशास्त्रोंके दर्शन किये और उनकी कानडी व बालबोध लिपिमें एक २ नकल करने देनेका उनसे निश्चय कराया।

फिर आपने सोलापुर आकर 'जैन बोधक' नामक मराठी मासिकपत्र निकाला (जो आजतक चालू है) उसमें उन शिलालेखोंकी नकलें प्रसिद्ध कीं तथा सिद्धान्त शास्त्रोंकी नकल करानेके लिये १००००)की अपील प्रगट की जिसमें १००)-१००) भरनेको श्रीमानोंसे निवेदन करते ही अल्प समयमें १५०००) का चंदा होगया। फिर ब्रह्मसूरि शास्त्री व गजपति उपाध्यायको मूडबिद्री भेजकर यह कार्य प्रारम्भ कराया जो १२ वर्षमें पूर्ण हुआ था। फिर सवत् १९४१ में सोलापुरमें प्रयत्न करके आपने छोटीसी जैन पाठशाला स्थापन कराई जो आज पन्नालाल दि० जैन पाठशालाके नामसे सुप्रसिद्ध है व इस पाठशालासे अनेक पंडित तैयार होचुके हैं व होरहे हैं। ऐलक पन्नालालजीके केशलोंचके समय इसके लिये २६०००) का फंड हुआ था। सन् १९१३में आपने प्रयत्न करके १२०००) खर्च करवाकर गांधी नाथारंगजी बोर्डिंग बनवाई जहां आज १२५ विद्यार्थी रहकर अभ्यास करते हैं।

जैनधर्मकी पुस्तकें छापनेका उस समय बिलकुल रिवाज नहीं था। अतः उसकी चर्चा जैनबोधकमें प्रारम्भ की तो बहुत विरोध हुआ, जिसका समाधान आपने सयुक्तिक किया और छोटी२ पुस्तकें छापना प्रारम्भ कर दी, जिसका उत्तरोत्तर इतना आदर होने लगा कि आज जो छापेके विरोधी थे वे ही बडे २ ग्रन्थ छाप रहे हैं और छपवा रहे हैं। समाजसुधारके लिये आपकी लेखनीने खूब कार्य किया। जिससे बालविवाह, वृद्धविवाह, कन्याविक्रय अनेक जगह बंद हुए। जैन विधिसे विवाह करनेका फिर प्रचार आपने ही प्रारंभ कराया। सोलापुरमें पर्यूषण पर्वमें तत्वार्थसूत्रके अर्थ बांचनेका प्रारंभ आपने ही खुद बांचकर सन् १८८१से कराया जो आजतक चालू है। सन् १८८२ में आपने बाजार लायब्रेरी स्थापित करवाई। फिर आपने मराठी, गुजराती व हिन्दी भाषामें जैन धर्मपर अनेक व्याख्यान दिये। जिनमें सन् १८९७ में सोलापुर यूनियन क्लबमें 'जैनधर्माची माहिति' नामक आपका व्याख्यान इतना उत्तम हुआ कि उसकी मराठी, गुजराती व हिन्दी भाषामें कई आवृत्तियां छपकर प्रकट होगई हैं। सन् १९०४ में आप दक्षिण महाराष्ट्र जैन सभाके स्तवनिधि अधिवेशनके व १९०५ में पावागढमें बम्बई दिगम्बर जैन प्रा० सभाके अधिवेशनके सभापति हुए थे। तथा सन् १९१४ में मालवा प्रा० दि०जैन सभा इन्दौरके ५० अधिवेशनके सभापति हुए थे। इन्दौरमें आपका हिन्दी व्याख्यान इतना आकर्षक हुआ कि मालवा सभाको १००००) की सहायता मिली व २५०००) देकर श्री० सेठ कल्याणमलजीने कन्या पाठशाला प्रारम्भ करदी। तथा २५०००)का चंदा करवाकर उदासीनाश्रम खुलवा दिया।

सं० १९६२ में आप वहाड मध्य प्रा० दि० जैन सभाके रामटेक अधिवेशनके सभापति हुए, वहां सिद्धक्षेत्रोंके हिसाब प्रसिद्ध करनेकी ऐसी आवश्यकता बताई कि अल्प समयमें रामटेक, मातकुली, मुक्तागिरि आदि तीर्थोंके हिसाब प्रसिद्ध होगये। फिर सं० १९२९में शिखरजीकी यात्राको गये। वहां बीसपंथी कोठीके हिसाबकी अव्यवस्था प्रकट की जिससे आप तथा दानवीर सेठ माणिकचन्दजी, गांधी रामचन्द नाथा आदिने मिलकर तीर्थक्षेत्र कमेटीकी ओरसे केस उठाकर बीसपंथी कोठीकी व्यवस्था एक ट्रस्टके सुपुर्द करवादी, जो आज बाकायदा चल रही है। यहां

यह प्रकट करते हुये हमें हर्ष होता है कि आप हरएक धार्मिक कार्यमें स्व० दानवीर सेठ माणिकचन्दजीको साथ देते थे व अपने कार्यमें उनकी सहायता भी लेते थे। आप दोनोंका सम्बन्ध सगे भाईसे भी अधिक था। और दानवीर सेठ माणिकचन्दजी लाखों रु०का स्थायी दान कर गये हैं उनमें आपकी खास सलाहके लिये आप अधिक यशके भागी हैं। तथा इनकी अनेक संस्थाओंके ट्रस्टी रहे हैं।

सन् १८९३में सोलापुरमें आप ऑनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त हुए। फिर आबकारी खाता, सरकारी होस्पिटल, म्यूनिसिपालिटी आदिमें मेम्बर वर्षोंतक रहे। म्यूनिसिपालिटीमें अनेक प्रकारके सभापति व उपप्रमुख भी रहे थे। आपका व्यापार दिनोंदिन बढ़ता ही गया है। बड़ी२ मीलोंके आप सोल एजन्ट रहे। सं० १९४७ में बम्बईमें व्यापारी फर्म खोली थी सं० १९६१में कौटुंबिक वियोगके कारण बंद की थी।

अब आपकी दानवीरताके दृष्टांत पढ़िये—आपने सन् १९१८ में नाथारंगजी बोर्डिंगमें ३५००) लगाकर क्रीडांगण बनाया। १९२० में जनावर दवाखानेमें २५००) खर्चकर ऑपरेशन वार्ड बनाया। १९२४ में दि० जैन धर्मशाला मंगलवार पेठमें बनवाई। १९२५ में सिविल होस्पिटालमें ६०००) खर्च करके गरीबोंके लिये धर्मशाला बनवाई, जिसका उद्घाटन कलेक्टर सा०ने करते हुए आपकी बहुत प्रशंसा की। सन् १९२८ में सोलापुर जनरल लायब्रेरीके लिये १४५००) लगाकर मकान बनवा दिया। जिसमें जैनधर्मकी पुस्तकोंकी एक आलमारी भी रक्खी। फिर सन् १९२९ में स्त्रियोंका दवाखाना व सूतिका गृह (सोलापुरमें) १२०००) खर्च करके बनवाया। जिसको कमिश्नर मि० हेचने खोला था। उस समय टाइम्स ऑफ इण्डिया (बम्बई)ने भी बड़ा लेख लिखकर आपके सार्वजनिक दानकी प्रशंसा की थी। इसके बाद आपने १०००) जैन महिलाश्रम सांगलीको व कारंजा महावीर ब्र० आश्रमको ५०००) दिये। कारंजा पंचायतसे आपको मानपत्र भी दिया गया था। जीवदया मण्डल मुम्बईको आपने ११००) की सहायता दी थी। फिर आपको सोलापुरके नगरजनोंसे मानपत्र दिया गया।

सोलापुरमें आप सर्वश्रेष्ठ नगरजन गिने जाते हैं। आपको कोई भी दुर्व्यसन नहीं है यहांतक कि तमाकू, पानसुपारी तककी भी आदत नहीं है। तथा ताश, गंजफे, सोगटे आदि रमतें आपको आती ही नहीं हैं। प्राय: सभी दि० जैन यात्रायें आपने की हैं। आपने पार्श्वनाथचरित्र, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, प्रतिक्रमण, चारित्रसार, महावीर चरित्र, अनित्य पंचाशत, जैनधर्म आदि अनेक पुस्तकें मराठी भाषामें लिखकर प्रगट की है। तथा 'भगवानको चढाया हुआ पूजनका द्रव्य निर्माल्य होता है, अत: उसको किसीको न देकर अग्निमें ही क्षेपण करना चाहिये।' ऐसे अनेक शास्त्रीय लेख व उसपर अनेक विद्वानोंकी सम्मतियां आपने प्राप्त करके उनको प्रसिद्ध किया है। आप सत्य सिद्धांतके पूर्ण पक्षपाती हैं व आगमकी ओटमें फैले हुये शिथिलाचारके कट्टर विरोधी व निडरतासे अपने विचार प्रकट करते हैं।

आपकी शारीरिक, सांपत्तिक तथा कौटुम्बिक स्थिति भी बहुत अच्छी है। आपकी सात संतानोंमें ४ पुत्र व एक पुत्री मौजूद हैं। पुत्रोंमें सेठ वालचन्दजी लाखों रु०के व्यापारी हैं व सी० आई० ई० की डिग्री प्राप्त की है। व बम्बई प्रांतमें बड़े नामी व्यापारी हैं। आपकी कन्या चतुरबाई बी० ए० पास है। दूसरे चि० गुलाबचन्दजी सोलापुर म्यूनि०के सभासद हैं। तीसरे चि० रतनचन्दजी एम० ए० होकर विलायत जाकर कानूनके अच्छे अभ्यासी होकर सेठ वालचन्दजीके साथ कार्य करते हैं। चौथे चि० लालचन्दजी बी० ए० होकर विलायत गये और

कॉलेज व अर्थ शास्त्रोंके अभ्यासी हुए हैं। आपकी पुत्री धर्मचंद्रिका ब्र० कंकुबाईजीको आज कौन नहीं जानता ? अर्थात् आप व आपका सारा परिवार सुशिक्षित है।

गत वर्ष आपने अपनी ७५ वर्षकी ज्युबिलीके समय १००००) खर्च करके होस्पिटलमें दि० जैन आरोग्य भुवन बनवाया। तथा ११९२५) खर्च करके कॉन्या हाईस्कूलके लिये मकान बनवा दिया है। तथा आपकी ओरसे पूनेमें हीरा० ने० जैन विद्यार्थी गृह दो तीन वर्षोंसे चालू हुआ है जिसको आप शीघ्र ही स्थायी करनेकी इच्छा रखते हैं। आप वृद्ध होनेपर भी सुबह २॥ घण्टे तक पूजा पाठ व स्वाध्याय करते हैं। व अनेक जैन लेख लिखवा लिखवाकर प्रसिद्ध करते वा करवाते हैं। रात्रिको १० बजे तक आप बराबर कार्यमें व्यस्त रहते हैं। बहुत वर्षोंसे रात्रिको अन्न–पानी लेनेका त्याग है। तथा चाह, काफी, सोडावाटर व कोको आदि कुछ भी नहीं लेते हैं। तथा नाटक देखनेका भी आपको शौक नहीं है। अतीव वृद्ध होनेपर भी रात्रि दिन वाचन लेखन मननेका कार्य आपका चालू ही है। आपने अभीतक लाखों रुपयोंसे भी अधिकका दान किया है। आप दानकी संस्थाओंके कुछ चित्र इस अंकमें दिये गये हैं। आपके विचार मोडरेट हैं तौभी आपके स्वदेशी प्रचारके विरोधी नहीं हैं। आप दीर्घायु होकर अधिक दान पुण्य करनेमें भाग्यशाली हों यही हमारी भावना है।

(१०) श्री० १०८ मुनि श्री सूर्यसागरजी महाराज—आप गृहस्थावस्थामें इन्दौरमें कार्य करते थे। वहां पर मुनिश्री शान्तिसागरजी (छाणी) के उपदेशसे आपने क्रमशः क्षुल्लक, ऐलककी दीक्षा लेकर फिर दिगम्बर जैन मुनिकी दीक्षा ली थी। यह पद धारण किये हुये अभी आपको करीब ८–९ वर्ष हुये होंगे। आपके संघमें २ मुनि दूसरे भी हैं। गत वर्ष मुनि महाराजने खुरई (सागर)में चातुर्मास किया था। उसी समयका लिया हुआ यह फोटो है।

(११) क्षुल्लक श्री धर्मसागरजी महाराज—आप जन्मसे ब्राह्मण हैं, मगर जैन धर्मपर विशेष श्रद्धा होनेसे उसीका अभ्यास करते रहे। ३–४ वर्षसे ब्रह्मचारी हुए थे, तब आपका नाम पं० चुन्नीलालजी शर्मा था और गत वर्ष ईडरमें चातुर्मासके समय मुनि श्री शान्तिसागरजी (छाणी)से आपने क्षुल्लक दीक्षा धारण की है।

(१२) दि० जैन संस्थायें केकड़ी—करीब २९०००) की लागतकी यह भव्य इमारत है। जिसमें चार संस्थायें हैं। १–औषधालयमें करीब १०० रोगी नित्य लाभ लेते हैं। इलाज मुफ्त किया जाता है। २–समन्तभद्र महाविद्यालयमें वर्णमालासे शास्त्री कक्षा तककी पढ़ाई है। महाजनी हिसाब भी सिखाया जाता है। ४ अध्यापक हैं। प्रधानाध्यापक बहुत ही योग्य हैं। ७० विद्यार्थी हैं। शास्त्री कक्षाके ग्रन्थोंमें कई छात्रोंने पारितोषिक भी पाया है। ३–सरस्वती भवनमें करीब दो हजार ग्रन्थ हैं। करीब २ सभी पत्र आते हैं। ४–बोर्डिंगमें बाहरके छात्रोंको भोजनादिका अच्छा इंतजाम है। श्री० लक्ष्मीचंदजी सेठी अधिष्ठाता और प० मिलापचन्दजी कटारिया मंत्री हैं। संस्था ४० वर्षसे चालू है। वार्षिक खर्च ४०००) है। इस प्रान्तमें मात्र यही एक संस्था है। जिससे कुछ धर्मकी जागृति है। आर्थिक स्थिति बहुत खराब

है अतः इसकी सहायता करना चाहिये।

(१३) श्री० दानवीर सेठ रामचन्द्र धनजी—नातेपूते (सोलापुर)—बीसाहूमड़ जातिमें आपका जन्म सं० १९३८ में हुआ था। आपकी १९ वर्षकी आयुमें ही आपके पिताजीका स्वर्गवास हो गया था, तौभी आपने लौकिक व धार्मिक अच्छी शिक्षा प्राप्त की, इससे आप अच्छे गृहकार्यकुशल हुए। छुटपनसे ही व्यायाम करनेसे शरीर सम्पत्ति बहुत अच्छी है। २५ वर्षकी आयुसे धर्मपर आपका अधिक लक्ष्य है। सं० १९६६ में ऐलक पन्नालालजीसे आपने एक लाख रु०का परिग्रहप्रमाण व्रत लिया व उसको बराबर ही निभा रहे हैं। आपने सभी यात्रायें करके बहुत दान किया है। आचार्य श्री शांतिसागरजीके साथमें १० वर्षसे पर्यूषण पर्व करते हैं। तथा आचार्यश्रीसे अनेक व्रत व नियम लिये हैं। श्रावकके नित्य षट्कर्म बराबर करते हैं। व वर्षके ३६५ दिनोंमें सिर्फ ८ दिन छोड़कर स्वस्त्री सेवनका भी त्याग करके निरतिचार ब्रह्मचर्यव्रत पालते हैं। नातेपुतेकी धनगर समाजमें विवाहमें हिंसा होती थी उसको आपने उपदेश देकर बद करवाया है। १० वर्षसे आप हाथकी कती व हाथकी बुनी शुद्ध खादी ही पहनते है व देशहितके कार्यमें भाग लेकर सादगीसे रहते हैं। आपकी उदारता, सहायता व निर्लोभता सराहनीय है। आपको दक्षिण म० जैन सभासे "दानवीर" का पद मिला है। बीसाहूमड़ सभा आपने स्थापित की थी। समाजमें ऐक्य व शांतिके आप इच्छुक हैं। आपने आजतक ७१०००)का दान किया है, जिनमें मुख्य २ रकम यह हैं—२१००१) सरस्वति भवन नातेपुते, १५००१) सांगली बोर्डिंग भवन, ९००१) अनाथ बालाश्रम दिल्ही-बाग, ५००१) माता गंगाबाई औषधालय नातेपुते, ३००१) जैन बोर्डिंग सांगली (आर्योपार्श्व), २०११) पिताके स्मरणार्थ अन्य धर्मकार्य, १२०१) जैन पाठशाला नातेपुते, १००१) गौरक्षण परिषद आदि २। इसके सिवाय आपका फुटकल दान तो हुआ ही करता है। आप दीर्घायु होकर अधिक धर्मकार्य करते रहें यही हमारी भावना है।

(१४) श्रीमती सिरदारबाई चौधरन—आप पथरिया (सागर) नि० स्व० चौधरी गिरधारीलालजी जैनकी विधवा पत्नी हैं। धर्म और दानमें आपकी विशेष परिणति रहती है। सं० १९४८ में आपके यहां पचकल्याणक हुये थे। इसी साल आपने रेशंदीगिरिमें एक मंदिर निर्माण कराया था। सं० १९८० में पथरियामें भी मंदिर निर्माण कराके प्रतिष्ठा कराई थी। दोनों जगह पुजनप्रक्षालके लिये पक्की लगादी है। शेष धनकुल मैदानकूआ करीब ८०००)की जायदाद सतर्क० दि० जैन पाठशाला सागर और जैन पाठशाला बड़ापुरको अर्पण करदी है। अन्य विधवा बहिनोंको भी चौधरनजीका अनुकरण करना चाहिये। आपके प्रान्तमें परदा होनेपर भी आपने हमारी सूचनानुसार अपना फोटो पडाकर भेजा है। अतः आपकी निर्भीकतापर धन्यवाद है।

(१५-१६) अतिशय क्षेत्र मक्सीजी व सिद्धक्षेत्र तारंगाजी—गत वर्ष जब हम मक्सीजीके महा मेलेमें गये थे तब लौटते समय हमारे भानजे जयंतीलाल छगनलाल गांधीकोही

हैन्ड कैमेरासे इन दोनों तीर्थोंके फोटो खींच लिये थे, जो आजतक प्रकट नहीं हुए हैं। इसलिये उनको इस विशेषांकमें प्रकट किया गया है।

(२७) बड़वानी मंदिरके शिखरका दृश्य— दिगम्बर जैन नवीन मंदिर—बड़वानी (इन्दौर) पर अंजड़ नि० सेठ जीवनलालजी चंपालालजी तथा आपकी धर्मपत्नी कलश चढा रहे हैं। इस समय आपने ९००१) दान किये थे। आप मंदिरों, तीर्थों एवं संस्थाओंको यथासमय दान करते रहते हैं। आपकी करीब १९०००)की दानकी लिस्ट हमें प्राप्त हुई है। विशेष दान आपने मंदिरों प्रतिष्ठाओं आदिमें दिया है। यदि ज्ञान-दानकी ओर भी आप लक्ष्य देवें तो और भी अधिक उपकार होगा। उक्त सेठजी सा० सेठ नाथूराम चुन्नीलालजीकी फर्मके अधिष्ठाता हैं। तथा स्थानीय पंचकमेटी और म्यूनिसिपल कमेटीके सदस्य भी हैं।

(१८) सतर्क० दि०जैन पाठशाला सागर— श्री० न्यायाचार्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णी द्वारा संस्थापित यह पाठशाला सागरमें २६ सालसे चालु है। इसमें प्रारम्भसे लेकर शास्त्री और न्याय, व्याकरण तथा काव्यतीर्थ तककी पढाईका प्रबंध है। गत वर्ष बनारस, कलकत्ता और बंबई परीक्षालयोंकी परीक्षायें ३४ विद्यार्थियोंने १०४ विषयोंमें दी थीं। यहांसे करीब १०० विद्यार्थी उच्च शिक्षा ग्रहण करके भारतके ५० भिन्न२ स्थानोंमें अध्यापन आदिका कार्य कर रहे हैं। सागर पाठशालाके अध्यापकगण खास यहींसे अध्ययन करके तैयार हुये हैं, जिनके नाम फोटोंमें छपे हैं। मासिकखर्च ६००) है। स्व० दानवीर श्री० रज्जीलालजी कमरया सागरने करीब ६००००) साठहजार रु० लगाकर विद्यालय और छात्राश्रमके लिये विशाल भवन भी तैयार करा दिया है। इस संस्थाका कार्य अच्छी शैलीसे चल रहा है। यदि औद्योगिक शिक्षाका भी प्रबन्ध किया जावे तो छात्रोंको विशेष कल्याणकारी हो सके। समाजको इस पाठशालाकी सहायता करना चाहिये।

(२९) राजवैद्य पं० सिद्धिसागरजी—आप गोलालारीय जैन जातिमें एक सुयोग्य वैद्य हैं। अनेक परीक्षायें देकर आपने विविध पदवियां प्राप्त की हैं, जो कि चित्रमें ही छपी हैं। वर्तमानमें आपका ललितपुरमें अच्छा दवाखाना चलरहा है। आपने एक 'सिद्धि' नामक मासिक-पत्र भी निकाला है। आपकी समाज सेवाकी उत्कट भावना रहा करती है। ज्योतिष शास्त्रका भी आपको अभ्यास है। आपने २-३ छोटी२ पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं।

(२६) कांतिलाल विमलजी शाह—१७ वर्षके इस अंध नृसिंहपुरा दि० जैन संगीतकारका परिचय (उनकी रचित एक कविता सहित) इनके चित्रके साथ (गुजराती) में दिया गया है। अत: यहां इतना ही लिखते हैं कि यह युवक छ मासकी आयुसे सीतलासे अंध होगये थे तो भी इनके भ्राता हरिलालजीने अतीव परिश्रम करके इनको बंबईकी विक्टोरिया अंधशालामें पढ़ाकर ऐसा तैयार किया है कि आज यह अच्छे पढे लिखे व संगीतकार होगये हैं। धन्य !

New Economics.

(BY —Mr Herbert Warren Jain, 84 Sheldgate Road, London S W II.)

Major C H Douglas, M I Mech E, M I E E, has made a discovery The principal book in which it is presented is "Credit—Power and Democracy," published by Cecil Palmer, 49 Chandos Street, London, W C 2, price 7s/6d It is set as a text book for economic honours at Sydney and Harvard universities The subject matter of it is also contained in a small booklet price six pence called "An Outline of Social Credit,' published at the office of "The New Age' newspaper, 70 High holborn, London, W C I

" The wages and salaries did not represent "at the week end the value or the price of "those goods produced . if true, then "also true in every factory in every week at "the same time Therefore, it was true that "the amount of purchasing power in wages "and salaries during that week was not "sufficient to buy the product according to "the price at that week"

Major Douglas has discovered that the aggregate of prices is always greater than the aggregate of incomes The purchasing power of money in the hands of the community is always insufficient to buy the whole product of industry The income of the community is insufficient to buy all the goods it produces The reason is that all industrial payments may be divided into two groups, Group A all payments made to individuals as wages, salaries, fees, and dividends Group B all payments made to other organisations for raw-material, bank loans, and other non-personal costs

Purchasing power is represented by A; but since all payments go into prices, prices cannot be less than A & B, and since A will not purchase A & B, incomes are insufficient to buy the finished article at the price charged for it, so that the income of the community is insufficient to buy all the goods it produces

Hence the goods are there, people want them, but have not the money to by them Hence poverty in the midst of plenty of the necessities of life, to say nothing of comforts and luxuries,

What has this got to do with Jainism ?

It is the duty of society to lessen the extent of suffering which exists among them This is as I understand it one of the views held by Jains. A layman should help those who are in distress, by helping people in distress he removes bad character and generates good By following some kind of business, trade, or profession which is not of an ignoble nature, in a just and honest way, and in proportion to his capital, or in proportion to his strength in the case of rendering services for pay, he becomes able to relieve the distress existing around him

The relieving of distress thus becomes a meritorious work according to the Jain common rules of conduct said to have been handed down from the teachings of the omniscient

Poverty is one of the main causes of distress Poverty in modern times in Englaud and America is not due to any shortage of the necessaries of life, food, clothing, houses, of the e there are to spare Mass production

by machinery is capable of producing enough and to spare for everybody. The existing poverty is due to shortage of money with which to buy the existing goods lying unsold in shops, warehouses, granaries, it seems that under the terms of the States Convention five-thousand tons of coffee were dumped into the sea in Brazil on the 6th of last June, being part of forty five thousand tons that the Brazilian Gov't proposes to destroy this year, excesses of production, and there are people who cannot have coffee simply because they have not money

So we may say that proposals which are to the end of removing poverty are consistent with the Jain doctrines, and Major Douglas's discovery and his proposals in view of this discovery are worth studying, their title to general support is "that they can make the "poor rich without making the rich poor" (An Outline of Social Credit, page 48) The goods are there but cannot be bought, because the money in sufficient quantity to buy them does not exist anywhere

Money in the modern world is made of paper, the amount of coined money is negligible The bulk of this paper money is in the form of bank-credit circulating by cheque, the small balance of this paper money is State credit circulating as bank-notes,—the small change of society Make the mony in pepole's possession equal to the price of the goods for sale, then they can be bought At present it is not so, and the goods cannot all be bought and so remain unsold, resulting in glut of goods, bankruptcies, and unemployment and poverty in the midst of plenty

Some interesting questions arise by whom is the amount of money in existence determined? The amount of food, clothing, houses, furniture, ornaments, books in existence is brought about by work upon raw-material, how is the amount of money brought about and by whom? Goods are produced to sell, how does the money to buy them with get into people's possession? Where does it come from? What is money? It would seem to be nothing more than a permission to buy, a licence to eat, have clothing, shelter When gold or silver or silver or copper coins are used as money a purchase with a gold coin becomes barter, bartering one object for another, one pretty coin for a hat But as a matter of fact the bulk of the money in the modern world is made of paper and circulates as cheques or bank-notes

Perhaps this is enough to introduce the new economics

H Warren, November 5th, 1931.

Jains & Jainism.

BY—Pandit Ajitprasadji M. A & Advocate, —Lucknow

Jainism is eternal. It has no founder, and it shall never cease to be Expounders it has had, and shall have, but founders none and never It is the truth of things as they are It is Truth, the whole truth, and nothing but the truth There is no mixture of untruth in it. Wherever there is anything which has been engrafted on to Jainism by the press of circumstances, under stress of expediency by pressure of time and place, it is foreign to the True Reality of Things, and may as such be rejected as an interpolation, a foreign growth, extraneous matter which conceals and tarnishes, the Real Aspect Jainism is the religion of the Soul the religion of the Knowing, Thinking Conscious, Intelligent Principle, the Atma, the true knowledge of which raises the Atma into the Parmatma, raises man to Super man, to God, the Omniscient, the Possessor and Enjoyer of Infinite Bliss and Infinite Power It is the religion for all life, for all that lives, human, subhuman, or super-human,

for all times, for all climes, for all ages, and for all stages It has ever been, and it ever shall be.

But what about the Jains, the custodians of Jainism. The Jains have not been keeping up to the principles, which they profess. Ahinsa, the basic doctrine, the foundation, the key-stone, the banner of Jainism is respected by the Jains, only in name They deceive themselves and they deceive others, when they parade the doctrine "Ahinsa is the highest religion" The custodians of Jainism have not been taking due and proper care of what came to be placed in their custody They have not been true to their trust

Jain scriptures have for several hundred years been entombed in underground cellars, where the light of day can not penetrate Palmyra leaves bearing in needlepricked Canarese characters the sacred words of great Acharyas, containing in exposition of the letterless Voice of the Omniscient Lords of Wisdom, have been allowed to crumble into dust or have been used up as food by book-worms And those which have not yet become extinct are still concealed with jealous care, by those who have got them under control, and the devoted votaries of Jain Discourses are satisfied with offering humble homage to the unknown enveloped and tied round with folds of covering cloth The Protectors of the Sacred Scriptures have assumed the role of heartless by tyrannical gaolers, and the sanctity of the scriptures is exploited for the base purpose of obtaining filthy lucre, and filching the credulous believers And again the scriptures which have not been fettered in prison to rot away in utter neglect, are worshipped in word but insulted by deed They are not published, or made available or accessible to the searcher for truth. A critical study of what is accessible is tabbooed, and wrong and misleading glosses, interpolations, and works fabricated with base sinful motives are promulgated as the light of truth. Treachery and Treason to Faith and Reason could not go further and deeper.

The external index of religiosity consists wholly and solely in the construction of new temples or the consecration of fresh images, in taking out images in processions or in the ornamentation of temples, with foreign materials through non—Jain agencies. Religious congregations have been reduced to society meetings and merry **Melas**.

The distinguishing character of a religious person has come to be not the observance of the Five Vows, in the lesser or the Higher Degree, but trivial traits such as not eating grain food after sunset, using dried, and fresh vegetables for 4, 6, or 10 days in the month, rendering lip homage to the images, and a pseudo study of the scriptures.

The consequent decline and fall of the Jains as a community in the inevitable result. And it is a matter for extreme regret that attempts at hastening and intensifying such decline and fall are being vigorously pursued with vulture-like avidity to feast on the dead carcase

The charity of the Jains in the name of religion is very laudable indeed. But deplorable as it is, it is misdirected, perverted, made to flow in wrong channels The result is the drying up of fertile fields, and the growth of bogs and marshes.

It is high time to take stock, to stop waste, to economise and utilise our resources to the best possible advantage

We have more images, and more temples than we require All Bimba Pratishthas and Vedi Pratishthas should be put a stop to say for 50 years. In places where there is no temple at all, one may be consecrated, but it should not be a costly affair, and consecrated images taken from other temples may

be placed there. O'd consecrated images lying in heaps or buried under-ground should be recovered and installed for worship Rathotsava is an unnecessary luxury and may well be given up as such. The extravagance incurred in connection with the Muni Sangh is simply sinful and against the letter and spirit of the Scriptures

The crying need of the hour is Education—a broad and liberal education, and all the charities of all the Jains in India must be diverted towards the establishing and improving of Jain Hostels, until we have a first class Jain Hostel, at every place where there are schools and colleges, and Jain Colleges affiliated to all the Universities in India, and thereafter a Jain University When we have accomplished this, then, and not till then, can we think of other directions for our charities

To this end we should strive, one and all; and the result of our efforts will be the Glory of Jainism. *Ajit Prasada*

"Rationalism."

[BY —*Ramnik Vimalsha Shah, Bombay*]

The interpretation of everything material and spiritual simply by means of reason has been already accepted as real and authoritative Man has already cried out, "Hail Rationalism, hail to thee!" He has already acknowledged the fact, "Rationalism reigns supreme!" Rationalim has in its pure form, no dogma, no superstition no belief and no taking for granted It has in its pure form, a man as the highest potent power and not as the slave of so easily believed God

Science has captured the imagination of the whole world Science has come and has allayed all the other forces of the world by means of its all-prowerful wings of explanation Science has created, Science has destroyed Politely, I should say, "Science is not yet complete, man is not yet the whole Science has yet to go ahead, man has yet to find anew" Science has acknowledged the soul, man has not yet solved the mystery No doubt, man in a man's capacity has progressed In times of yore, when the higher things were attributed to and patronized by gods, man was reduced to a mockery He was being laughed at, being kicked and punished by others if he tried to raise his head a little At present, when everyting is manufactured and patronised by man, man is revered as a king and worshipped as a diety Things have been metamorphosed With the same folly that the man was spitted upon long ago, the man is worshipped now. But still the people realize The proportion is meagre Reason and reason alone has revolutionized the minds of all"

Rationalism does not debar anything from coming to its grasp It allows religion to go in its grip easily It analyses and if the analysis stands to test, it does not fail to co-opt with Science has much to do with rationalism—Science has yet much to do with religion So naturally, the two 'Rs' must find out a third one having intermingled with one another Let me quote Prof Radhakrishnan on the question of science and Religion —

"Scince transcended its own convictions and meant only a perpetual Supersession of one error by another kind of error. Science

of higher criticism & Comparative Religion showed that the history of Religion was nothing but a conflict of competing Statements & dogmas, each claiming absolute finality. There are two different ways in which the knowledge of the world is acquired. There is the perceptual knowledge of the senses by which they get the superficial knowledge of things There is also the logical knowledge This is not enough to get to know the object in its intimate individuality Mere logical or perceptual knowledge would not help them to realize the individuality of an object. By merely narrating the Superficial manifestation or tracing psychological Conditions they cannot realize what is meant by anger or sleep. Self—knowledge is the basis of all truth and they cannot get that knowledge either by perceptuel consciousness or by logicalreasoning It is discovery, hence, of intuition, that make them believe in the higher desitny of humanity."

Thus we are led to see that Religion is not only the outcome of pure reason but also it is a necessity. Here again we shall have to solve one more question. If without religion, man cannot do, what about that Russion Organizing System—Communism? Does Communism include religion? I have thought and thought about the question and have found the following to release for publication —

From the beginning of this world, under any pretext whatsoever the system that is at work is more or less on a Capitalistic basis And because capitalism cannot exist and rule the minds of people a long without its explanation being founded on religion, capitalism had taken latter's resort The generations which have passed have passed totally in these beliefs Now Communism is a new system, its idea being prevalent only a century ago It cannot enter the brains of the people unless it tries first to remove the foundation-stone of Capitalism-religion. Thus Communism has no go-except to totally disbelieve the religion if it wants to overthrow Imperialism and hence religion is not at all at present included in its scheme. we do not know what will happen a century later.

Religious beliefs & principles woven totally in the light of rationalism appeal almost to everyman and woman No other such worked out system is better than Jainism. Its Syadwada, its Karmic theory, its belief about God, its arguments about world creation and its every other detailed principle incites in us a pure and simple sense to believe. Shame to those learned Sadhus and Pandits who by their no-sense clinging to the particular traditional explanation have spoiled and degraded the beauty of Jainism !!! Shame to those young persons of reason who do not stand up to defy these arrogant padagoges of foolish dogmas !!! I should venture to say that every custom, every convention and every mode of living has been well analysed and explained thro' reason by the religious system of Jainas—Jainism. No one should fight shy of it! No one need fear it! Every body's attention is invited and every reasoned being is asked to ponder over its fact! Jainism Shall come to light. Jainism Shall be everything. Real Religion and pure rationalism are the same It is not a menace to humanity in its progress but a Stepping—Stone towards achieving its final goal.

The Arhant or the Jivan-Mukta.

(By — *Babu Tarachandji Pandya Jain, Jhalrapatan*)

THE *Arhant* signifies a soul which has realised its pure nature except that its association with the body has not yet dissolved. This connection with the body implies that the soul is not yet freed from such material forces, i e the *Karmas* as determine the duration of its association with the body, the bodily form, the heredity, and the physical sensations These are the effects of the previously bound *Karmas* which drop off in due course of time, no fresh bondage of Karmas being possible owing to all infatuation and desires having vanised from the soul However, the action of the existing *Karmas* is confined to the body-it does not in any way affect the soul which continues to enjoy its manifested qualities of omniscience, omnipotence and perfect joy Thus, for all practical purposes, the *Arhant* may be said to be the Perfect Soul He is the *Jivan-Mukta* of the popular tongue, and his voice is *One*

How can it be ascertained whether a soul has attained to the status of a *Jivan-Mukta?* The *Jivan-Mukta* is not the name of a place nor is it a material object It is the condition of soul which has realised perfection and which is still living in the body Soul being an immaterial substance, its condition cannot be perceived except by an omniscient being or by itself However, as long as a close connection exists between the soul and the body, it is no wonder that several such outward signs are given out by the body and the surroundings as give a cue to the condition of the soul, and let us discuss some of them here.

(1) *Material glory*—Probably, most of our readers will be imagining a *Jivan-Mukta* as surroundd by all the best kinds of material prosperity and splendour, because to them the idea of perfection and happiness is inconceivable as separate from materialism But, worldly pomp is not in any way related to the purity of a soul which is self-sufficient and quite independent of and different from the material objects Emancipation from the *Karmas* is sought, not for attracting the transient and illusive mundane splendour, but for attaining the true and everlasting independence which consists in enjoying the self-dependent joy and in freedom from the necessity of hankering after other objects Knowledge, Power and Joy are the very nature of soul, and a pure soul enjoys these qualities to the fullest extent, and materialism is not only useless but alien to it True it is that a dazzling worldly grandeur attends on certain *Arhantas*, but then it is to be attributed not to the purity of the *Arhantas* but to some such previously bound *Karmas* as the the world regards as 'auspicious' *(Punya)* This difference of material glory does not cause the best difference between the happiness or conditions of the *Arhantas* surrounded by it and those not surrounded by it In short, all *Arhantas* are essentially equal and similar, but, externally, some of them have unparalleled worldly splendour about them while the others have not. The *Tirthankaras* belong to the former class On their having become *Arhant*, *Indra* the king of the celestial regions, orders for the erection of a *Samavasaran* for them. This

divine edifice is too beautiful to be capable of being described. There is on audience-hall within it where the celestials and the saints, the men and women, and the rational sub-human beings imbibe with devotion the eternal knowledge flowing from the *Tirthankar*. The *Tirthankar's* body itself, though surrounded by the eight emblems of the sovereignty of the Universe, has no apparel or ornament on it—it remains 'sky-clad' as it was in the ascetic life before attaining to *Arhatship*. In fact, the *Arhant's* body is so surpassingly lustrous and handsome that to cover it by any kind of garment or adornment would be simply to obstruct the vision of its beauty.

Other *Arhantas* have only a divine *Gandhkuti* around them. But the bodies of all *Arhantas* become fine, bright shadow-less and free from all filthy materials. This is quite natural for a pure and desire-less soul, considering that our bodies also undergo changes according to our thoughts, character, food and actions. The *Arhantas* move in air—which too is but natural for a divine body moving spontaneously and undirected by any desire. The aura of the *Arhantas*, perfectly calm and happy as they are, is very powerful, extending as far as 800 Miles in all directions. The regions lying within this range do not suffer from famine or epidemic, while the animals remain peaceful and do not feal hatred, pride, hunger, thirst, and other physical or mental sufferings as long as they are within the edifice encircling the *Arhantas*. From this, it can be easily inferred that an *Arhanta's* body the source of such a powerful aura is not liable to any disease or any attack from an opponent.

(2) *Desire-less ness*—The soul of an *Arhant* has neither attachment nor aversion for anything. It is neither revengeful nor angry. It does not grace any person, nor has it any desire to preach the Gospel. If some *Arhantas* move and preach, then it is not due to any desire on their part. Are there not many involuntary movements going on within our bodies? Do we not do many acts involuntarily simply through the force of habits? Persons are sometimes heard speaking or moving in a state of sleep. Clouds thunder and pour down rains on earth, but no body has ever felt the necessity of attaching desire to them. The fact is that the previous strong desires or constant acts for guiding and benefitting the world generate a force and form a habit which aided by the good *Karmas* of the living beings to be benefitted cause the body of an *Arhant* to move and preach. Similarly, the secular grandeur of the *Tirthankars* is due to their *Tirthankar* sub-class of the *body-forming Karma* as well as to the devotional fervour of *Indra* and the *Punya* of the audience. Since, in order to get *Arhantship*, it is not necessary to have the *Tirthankar* sub-*Karma* or become the instrument of imparting knowledge to the world, so, it is not surprising that some *Jivan-Muktas* preach or are encompassed by worldly glory while the others do not. The *Arhantas* have no favourite disciples. The so-called *Ganadharas* are merely those who are so entitled by virtue of their *Punya-Karmas* that the voice of the *Arhant* flows for them. The *Arhantas* are far above the distinctions of fit and unfit, good and evil. Envy and hatred pride and delusion, sorrow and anxiety, fear and sexual passion—in fact all evils vanish from a desireless soul.

(3) *Omnis-cience*.—The soul of *Arhant* is Knowledge itself, encompassing all things, all space and all times, in fact all objects of knowledge. The *Arhantas* know and perceive the objects directly i. e. through the *Self* and not through the senses. The entire universe and all times lie constantly before them as if drawn on a map. In short, their Knowledge and perception of objects is not gradual, nor is it the result of some effort, thinking or reasoning. On account of the imperfectness

of the vehicle of languages, it is only an infinitesimal portion of *Arhant's* knowledge that can be made available for the universe, but even this small portion is worthy of its source. It is infinite for ordinary persons and perfect for all practical purposes. It is potent enough to dispel the darkness of ignorance and doubt. It is sufficient for guiding the people to truth and to destroy the forces of Error. It imparts peace and happiness to the whole universe, and is free from falsehood, ambiguity and invalidity.

(4) *Omnipotence* Knowledge being power, omniscience implies omnipotence also. The omnipotence of the *Arhanta's* soul is reflected in the body also which is consequently not subject to old age, disease, exhaustion, sleep etc.

Do the *Arhantas* take food? Reflection shows that hunger and thirst are the complaints of a body which is exhausted and therefore needs some food to replace the lost energy. As the *Arhantas* are omnipotent, they are not liable to exhaustion nor can there be any possible addition to their already infinite power, so that they do not need any food. Besides this, being desire-less, they have no attachment for their bodies, and consequently, do not feel the pains of hunger or thirst or any physical want. Pain or want is inconsistent with their all—blissful nature. How can they need anything for supporting their life, when they themselves are manifestly, Life and Power? It is true that the body of an *Arhant* is, like all material things, perishable and subject to decay, but it cannot remain uninfluenced by the omnipotence of the soul that inhabits it. It can be sustained by the *Karmic* force through which it exists. If it needs any replacement after all, then, being fine, it can need only fine matter, and this it can spontaneously assimilate from its surroundings. Ordinary human beings cannot assimilate all things—they do not assimilate thoroughly even their usual food much of which passes down as refuse or undigested. This is so because their power is very limited. A grain of food is sufficint even for our gross bodies provided that we have sufficient power to assimilate it completely. It is now well-known that our gross bodies extract food from air and even sun-light. Therefore, it is not surprising that the fine bodies of the omnipotent *Arhantas* assimilate the proper matter spontaneously, and certainly there can be no shortage of such fine food for the body of an *Arhant*. Thus the *Arhantas* may be said to be not eating. For the same reasons, their bodies do not give off any refuse matter, such as excrement, urine and prespiration.

When the force of the *Age-Karma* is exhausted, the *Arhantas'* connection with the bodies also is dissolved, and then they, becomeing free from all *Karmas* at once attain to the final emancipation in which condition they continue to love for all times. In this state they are beyond the ken of senses and mind. They are called the *Siddhas* i. e. those whose all ends have been achieved.

Now, what benefits does the world derive from the *Arhantas*? As we have seem, they are omniscient, desireless and thus impartial, and some of them have such *Karmas* with them as make them the instruments of enlightening and guiding the suffering world. Thus they are the Great masters. It is from their omniscient soul that all Knowledge emanates for the Universe as perfectly as it can through the imperfect channels of languages. Besides this, an *Arhant* is a God in embodiment, the Living Ideal, such as can be worshipped and thought on by the worldly beings whose mind and senses are accustomed to apprehend only the objects having material shape, colour etc. Though the state of the *Siddhas* is the ultimate and real

Ideal, yet, being absolutely non-material, it cannot be grasped by laymen—in fact, even many high ascetics fail to undertand it, so that, considering the practicality of the means and also as a mark of gratefulness for the benefits recieved through the *Arhantas*, a disciple is taught to say first *Namo Arhantanam* (i. e. I bow to the *Arhant*) and then, *Namo Siddhanam* (I bow to the *Siddhas*) Most of the worldly beings are lovers of beauty, wealth, or power To divert their interest from false, miserable, but infatuating and much loved materialism and to turn it towards spiritualism, it is often necessary, at least in the beginning, to present to them such a spiritual Ideal as is associated with beauty, wealth and power also and the *Arhant* serves as such an Ideal. The lovers of [illegible] beauty find his body [illegible] very [illegible] the lovers [illegible] the first [illegible] splendour, which [illegible] power [illegible] him [illegible] the *Devas*, the [illegible] the [illegible] the [illegible] the [illegible] the [illegible] the [illegible] — in short by all who [illegible] small or great, male or female. Everything that is grand or sublime is associated with him, and, side by side, he is [illegible] the very [illegible] of spiritual [illegible], the very essence of spiritual purity and [illegible]. He is the *S[illegible]* of the *[illegible]*, the beauty of the passionate, and the *S[illegible]* Lord of the devotees. He is the merciful Guide of the *K[illegible]*, the father and the Word of the *[illegible]*, and the transcendent Light—the Holy [illegible] of the *[illegible]*. He is *[illegible]* (the Lord of material and spiritual wealth), *Shiva* (the great Benefactor) and *Brahma* (the four-faced Origin of Knowledge). He is the Ideal of the *Yogis*, the Contemplation and the Cotemplated. He is the Liberty of the lovers of freedom. So let us say, *Namo Arhantanam* I bow to the *Arhant*

वीर-स्तवनम् ।

[परमानन्द जैन न्या० सा० शास्त्री-बनारस]

मातुर्यस्य मनोविनोदनविधौ देव्यः कुमार्योऽभवन् ।
नीत्वाय तपनीयशैलशिखरे जिष्णुप्रजानिर्जिनम् ॥
मोदाज्जन्म मह चकार विमलैर्दुग्धाम्बुधेर्वारिभिः ।
भक्त्या तस्य कराञ्जलिं चरणयोर्वीरस्य दद्मो वयम् ॥१॥

चञ्चल्लक्ष्मी हिमकरसुधाश्वेति मान कभन्ती ।
दृष्ट्वा कान्तिं जिनभगवतो दुग्धधाराभकाये ॥
मोघं मेने विधिविरचितं क्षीरसिन्धु निलिम्प ।
मद्र मर्न वि[illegible]तु मदा वीरनाथाभिधोऽसौ ॥ २ ॥

स्वर्गादेत्य मही महस्य विधये लौकान्तिकैर्निर्जरैः ।
प्रेरणा क्षणदा निभः च चलता ताण्डवलक्ष्मी वला ॥
उत्पेत हृदि भावना विदधतः सम्बोधनिस्सम तान ।
भक्त्या तस्य कराञ्जलिं चरणयोर्वीरस्य दद्मो वयम् ॥३॥

रागद्वेषकषायवृक्ष वमवान् धर्मेन्दुसिंहो बुधान् ।
शुक्लध्यानबले यो विजितवान् मोहस्वरूपान् भटान् ॥
तत्र [illegible] महीतले पदं वीराभिधान जिनः ।
भक्त्या तस्य कराञ्जलिं चरणयोर्वीरस्य दद्मो वयम् ॥४॥

जाता यस्य मुखान्महाहिमगिरिगङ्गेव शुभ्रच्छविः ।
दिव्या [illegible] पावनी सुललिता स्याद्वादकल्लोलिनी ॥
यात्रा हन्त च गौतम जलनिधिं कर्माद्रिसौदामिनी ।
भक्त्या तस्य कराञ्जलिं चरणयोर्वीरस्य दद्मो वयम् ॥५॥

दीनोद्धारक सन्नते जिनपते स्याद्वादविद्याप्रभो ।
यस्मै प्राणिवत्सल्यशा करुणयाऽहिंसागमः खण्डितः ॥
ताभ्यां भर्ततिमिदं सुधाधवलितं भूमण्डलं कीर्त्तिभिः ।
भक्त्या तस्य कराञ्जलिं चरणयोर्वीरस्य दद्मो वयम् ॥६॥

चारु जिनभक्त्या [illegible] धर्मामृतं पाययन् ।
नाश हन्त न यत्नैर्विभुत्य [illegible] मनः संस्थितः ॥
मेदन्या विजहार यो मुदितजज्ञानाब्धनीपप्रदः ।
भक्त्या तस्य कराञ्जलिं चरणयोर्वीरस्य दद्मो वयम् ॥७॥

यज्ज्ञाने निमले विभान्ति सततं चेतोहरे पावने ।
ध्रौव्योत्पादविनाशभाजि युगपद् द्रव्याणि सर्वाण्यपि ॥
स्वच्छे मे प्रतिमाप्रकाशति यथाऽऽदर्शे विशाले मुदा ।
भक्त्या तस्य कराञ्जलिं चरणयोर्वीरस्य दद्मो वयम् ॥८॥

સાહિત્યસમાલોચના

પલટાતું કીસ્મત:—લેખક અને પ્રકટ કર્તા–દીનશાહ નશરવાનજી દસ્તુર અને મળવાનું સ્થળ—જે. બી. કરાણીની કંપની, કોટ–મુંબઇ. પૃ. ૩૩૬ પાકું પુઠું, છપાઇ સફાઇ ઉત્તમ અને કિં રૂ. ૨. આ એક સ્વતંત્ર અને રસમય પારસી સમારી સચિત્ર નવલ કથા છે, જે વાંચવાથી પારસી, હિન્દુ, જૈન દરેકને ઘણુંજ જાણવાનું અને સમજવાનું મળે એમ છે. ખાસ કરીને એમાં પારસી સમારની ખુબીઓ અને ખામીઓનો આબેહુબ ચિતાર છે. આ પુસ્તક પ્રકટ કરી લેખકે પારસી સંસાર ઉપર મહાન ઉપકાર કર્યો છે એમ કહ્યા વગર ચાલે તેમ નથી.

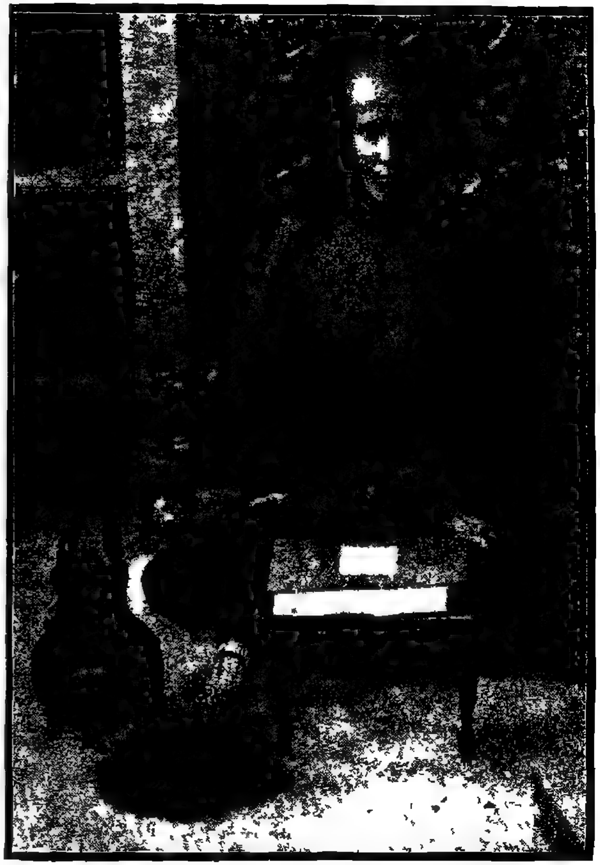
સદ્‌ગુણી સરોજ:—લેખક અને પ્રકટ કર્તા–ઉપરોક્ત મિ. દસ્તુરજી અને મળવાનું સ્થળ—એન એમ ત્રિપાઠીની કંપની, કાલબાદેવી રોડ. મુંબઇ. પૃ. ૧૯૪ પાકું પુઠું ને કિંમત રૂ. ૧॥ આ એક હિંદુ સંસારની રસીલી અને બોધદાયક નવલ કથા છે જે વાચવાથી આજકાલના યુવકોને ઘણી શિખામણ મળી શકે એમ છે વાર્તા એટલી રસમય છે કે વાંચવા માડ્યા પછી પુરી કર્યા વિના રહેવાય એમ નથી. આકારના પ્રમાણમા કિંમત કંઇક વધુ કહેવાય.

જૈન જ્યોતિ—વર્ષ ૧ અંક ૧–૨ તંત્રી ને પ્રકટ કર્તા–ધીરજલાલ ટોકરશી શાહ, રાયપુર–અમદાવાદ. વાર્ષિક મૂલ્ય રૂ ૨॥ જૈન કથા અને સાહિત્યને લગતું આ નવીન સચિત્ર માસિક પત્ર છે જેના બે અંકો જોતા જણાય છે કે આખી જૈન કોમમા આવું ઉત્તમ ને કલામય માસિક આ એકજ છે. છપાઇ સફાઇ અતીવ ઉત્તમ છે. પ્રાચીન જૈન કળાઓના અનેક ચિત્રો તેના પરિચય સહિત હોવાથી જૈન સ્થાપત્ય અને કળા કેટલું ઉચ્ચ સ્થાન ભોગવે છે તેનો સહેજ ખ્યાલ આવે એમ છે. બાળ સંરક્ષણ, આરોગ્ય સંરક્ષણ, શિલ્પ શાસ્ત્રના વિષયો તેમજ ઇનામી હરીફાઇ અને અનેક રસીલી તથા બોધદાયક વાર્તાઓને લીધે આ માસિક ઘણુંજ લોકપ્રીય થઇ પડ્યું છે. દિગંબર જૈન પ્રાચીન સ્થાપત્ય અને કલાને પણ આ પત્ર સ્થાન આપે એવુ ઇચ્છીશું. દિગંબર જૈનના દરેક વાંચકોને આ પત્રના ગ્રાહક થવા ભલામણ કરીએ છીએ.

શેઠ હીરાચંદ ગુમાનજી સ્થાપિત ધર્માદા ખાતાંઓનો રિપોર્ટ—ઇ. સ. ૧૯૨૯–૩૦ સ્વર્ગીય દાનવીર જૈનકુલભૂષણ શેઠ માણેકચંદજી જે. પી. ના અથાગ શ્રમથી સ્થાપિત, ૧–હી. ગુ. જૈન બોર્ડિંગ મુંબાઇ. ૨–હીરાબાગ ધર્મશાળા મુંબાઇ, ૩–પ્રે. મો. દિ. જૈન બોર્ડિંગ અમદાવાદ ૪–માણેકચંદજી જુબિલી બાગ ટ્રસ્ટ ફંડ મુંબાઇ, ૫–સા. પા. દિ. જૈન બોર્ડિંગ રતલામ અને ૬–રતન બ્હેન રૂ. શ્રાવિકાશ્રમ મુંબાઇ આ ૬ સંસ્થાઓના ૨૮૦ પાનાનો આ સવિસ્તર રિપોર્ટ છે, જેના પ્રકાશક શેઠ ઠાકોરદાસ ભગવાનદાસ મંત્રી (ઝવેરી બજાર-મુંબાઇ,) અનેક ધન્યવાદને પાત્ર છે. ૩ રૂપીઆ આપની સુવ્યવસ્થાથી આશરે ૪॥ લાખ રૂપીઆની સ્થાયી સ્થાવર જંગમ મિલકત ધરાવતી આ છયે સંસ્થાઓનું કાર્ય આપ નિયમિત રીતે ચલાવી રહ્યા છો સ્થાનાભાવથી અમે આ રિપોર્ટની બીજી વીગતોમાં ન ઉતરતા માત્ર એકજ બાબત ઉપર અમારા વાચકોનું ધ્યાન ખેંચીશું કે આ હીરાચંદ ગુમાનજી બોર્ડીંગના ટ્રસ્ટ ફંડને બીજી ૧૫ સંસ્થાઓના સ્થાયી ફંડો કે જેની રકમ ૨૦૦) થી માંડીને ૩૫૦૦૦) સુધીની છે તેની વ્યવસ્થા કરવાનું સોંપવામા આવેલું છે અને તેમા લખેલી શરતો પ્રમાણે તે દરેક સંસ્થાનો વહીવટ બરાબર રીતે ચાલી રહ્યો છે. ગુજરાત વર્નાક્યુલર સોસાયટીને જેમ લાખો રૂ. ના ફંડોની વ્યવસ્થા કરવાનું સોંપાય છે તેજ પ્રમાણેની આ એક ઉત્તમ સ્કીમ (યોજના) છે માટે કોઇપણ ભાઇ પોતાની દાનની સ્થાયી રકમ આ ખાતાને પોતાની ઇચ્છાનુસાર શરતોએ સોંપી શકે છે. આવી ઉદારતા દર્શાવવા માટે હી. ગુ. જૈન બોર્ડિંગના ટ્રસ્ટીઓ અનેક ધન્યવાદને પાત્ર છે. આ મોટો રિપોર્ટ મંત્રી પાસેથી મંગાવીને વાચવા દરેક શ્રીમાનને અમે અવશ્ય ભલામણ કરીએ છીએ.



श्री १०८ मुनि श्री सूर्यसागरजी महाराज।
[खुरईके गत चातुर्मासके समय लिया हुआ चित्र]



श्री० क्षुल्लक धर्मसागरजी महाराज।
[ईडरके गत चातुर्मासमें आपने क्षुल्लककी दीक्षा ली है]



दिगम्बर जैन संस्थायें—केकड़ी (अजमेर) की भव्य इमारत ।

[१-औषधालय, २-समन्तभद्र महाविद्यालय, ३-सरस्वतीभवन, ४-छात्राश्रम ।]

जैनविजय प्रेस-सूरत ।

यत्र तत्र समये यथा तथा,
योऽसि सोऽस्यभिधया यथा तथा।
वीतदोषकलुषः स चेद् भवान्,
एक एव भगवान् ! नमोऽस्तु ते ॥

मनुष्य जातिका एक मुख्य लक्षण जिज्ञासा है। यूरोपकी उत्तम सभ्यतावाले अधिवासी अथवा भारतमाताके धार्मिक पुत्र, अफ्रीकाके उष्ण-देशमें रहनेवाले असभ्य नीग्रो अथवा ठंडे पोलर देशोंमे सादा संतोषी जीवन बितानेवाले लोग—सब ही इस जिज्ञासादेवीकी आराधना करते हैं। भला इसमें नवीनता ही क्या है? किन्तु यही नहीं, बल्कि इन विभिन्न देशोंकी जबतककी पुरानी सभ्यता और पुराने इतिहास मिलते हैं, तबतकके उन देशोंमें इस महादेवीकी सेवाके समाचार मिलते हैं। बायबिलके ओल्ड टेस्टामेंटके ग्रंथ, पुराने Norse साहित्यकी अनेक पुस्तिकायें, प्राचीन ग्रीक और लेटिन भाषाओंमें हेरोडोटस, स्ट्रेबो आदि लेखकोंके लिखे हुये अनेक ग्रंथ, वेद, ब्राह्मण, उपनिषद, पुराण, महाभारत, अवस्टा, पहेलवी साहित्य इत्यादि भिन्न भिन्न ग्रंथ इस बातके साक्षी हैं। बस, इसलिए अपनेको भी विशेष जिज्ञासु होना उचित है।

इसमें बुराई ही क्या है? भला जितनी भी फिलासफरोंकी शोध खोज हुई है और होरही है, उसका भी तो कारण यही जिज्ञासा है। सचमुच जिज्ञासा ही समस्त ज्ञान-विज्ञानके आरम्भका कारण है और जिज्ञासाके कारण ही हम लोग सभायें करते, व्याख्यान सुनते और विद्वानोंकी चर्चाओंमें सोत्साह भाग लेते हैं। यही नहीं, बल्कि धर्मशास्त्र-धार्मिक चर्चाका तथा अन्ततः सम्यक्ज्ञान और उससे सम्यक्दर्शन एवं सम्यक्चारित्रका पहला हेतु भी यही जिज्ञासा है।

आधुनिक विज्ञान और जैनधर्म।

लेखिकाः—
जर्मनी जैन विदुषी प्रॉ० डा० चारलोटी क्रौज़ एम. ए., पी. एच. डी.

इहोपपत्तिर्मम केन कर्मणा
कुतः प्रयातव्यमितो भवादिति।
विचारणा यस्य न जायते हृदि,
कथं स धर्मप्रवणो भविष्यति॥

शास्त्रकार क्या ठीक कहते हैं? "किस कर्मके कारण मैं उत्पन्न हुआ हूं? इस भवको छोड़कर कहां जाना है? जिसके दिलमें ऐसे विचार कभी भी नहीं आते, ऐसे मनुष्य धर्ममें अगाड़ी भला कैसे बढ़ सके हैं?"

किस कर्मके हेतुसे मैं यहां उत्पन्न हुआ हूं? यह भव छोडकर कहां जाना है?

जिस पृथिवीमें—जिस जगतमें उत्पन्न होकर मैं जीवन व्यतीत करता हूं, जिस जगतको—जिस पृथिवीको चाहे जितनी मेहनत करनेपर

भी अपनी इच्छा प्रमाण में छोड़ नहीं सका, पर जिसको ही एक दिन—चाहे मेरी इच्छा हो या न हो—अन्तकालके वक्त मुझे छोड़ देनी पड़ेगी—वह पृथ्वी—वह जगत् किस प्रकारका एक स्थान है ? वह कैसे और कब उत्पन्न हुआ है ? जगत्में इस पृथ्वीकी स्थिति कैसी है ? और इस पृथ्वी, सूर्य, चंद्र, तारेवाले जगत्का अंत कहां है ?

इस पृथ्वीपर जुदी जुदी जातके प्राणी किस रीति और किस कारणसे उत्पन्न हुए हैं? तथापि उनका सम्बन्ध क्या है ?

इतनी दूर रहे सूरजकी किरणें किस तरह हमारी आंखके अन्दर आ जाती हैं और इस आंखके भीतर आकाश और वनस्पति, पक्षी और पशु, गांव और पहाड़, तथा माता पिता गुरुजनके उत्तम मुख—इत्यादि वस्तुओंके प्रतिबिंब किस रीतिसे उत्पन्न होते हैं और किस रीतिसे आत्माके ज्ञानमें आते हैं ?

बिजली और लोहचुम्बककी गुप्त शक्तिका रहस्य किस प्रकारका है ?

अपने आत्माकी इच्छा, अपने आत्माके निश्चयके कारणसे अपने पैर चलनेको बनाती है, अपने हाथ लिखनेको निर्माण करती है, अपना शरीर चलने या ठहरनेको रचती है। भला यह सब किस रीतिसे होता है ?

हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य, लोभ युक्त विचार करके, शब्द बोलकर या काम करके प्रत्येक मनुष्यके मनमें घृणा और पश्चात्ताप उत्पन्न होते हैं और विशेष पवित्र जीवनमें अपन विशेष शुद्ध आनंद अनुभव करते हैं, इसका कारण क्या है ?

इस प्रकारकी अनेकानेक प्रश्न सम्बन्धी जिज्ञासा रखकर उनका जवाब पालेनेके लिये मनुष्य जातिने कितनी मेहनत की है ? षट्दर्शन शास्त्रियोंने अटकल और अनुमान करके और विज्ञानवेत्ताओंने Experiment और Observation द्वारा शोध २ कर बहुतसी विभिन्न मान्यतायें—Theories स्थापन करली हैं। यह सब असंख्यात वर्षोंसे स्थापित होती आई हैं और तीन चार हजार वर्ष हुए कि वह सब लिखावटमें भी आगई हैं। किंतु यह देखिये कि बड़े नामवाले उत्तम बुद्धिके धारी उत्कृष्ट विचार कर्ता सो भी भिन्न देश और भिन्न कालके मनुष्योंने विभिन्न पद्धति प्रमाणसे उस विषयमें जो शोध और जो मेहनत की है, उसका परिणाम कैसा है ? उस परिणामसे पूर्वोक्त सर्व मानुषीय जिज्ञासा रूपी तृष्णाकी यथेष्ट तृप्ति हुई है या नहीं यही हमें यहां देखना है।

बीसवीं सदीकी पाश्चात्य वैद्यकला तथा Biologyके क्षेत्रमें अपना ज्ञान जरूर आगे बढ़ा है। जन्म मरणके समय मानवी शरीरमें जो २ विकार होते हैं, वह अब विशेष स्पष्ट हैं। किंतु तो भी ऐसे प्रश्नोंका उत्तर जैसे कि 'गर्भमें किस रीति और कहांसे चैतन्य शक्ति युक्त आत्मा घुस जाती है, वह कहांसे आती और मरणके वक्त शरीरको छोड़कर कहां चली जाती है ?' अभीतक किसी वैद्य डाक्टर या Biology वेत्ताने नहीं दिया है। इस रहस्यकी गंभीरता असीम, अनंत सदृश प्रतिभासित हो रही है। आत्माका रहस्य अभीतक ऐसा अग्राह्य भास रहा है कि उसके सम्बंधमें एक

महान् जर्मन फिलासफर Wilhelm Wundt ने यह मान्यता प्रगट की है कि जिस प्रकार पवन एक ग्राह्य वस्तु नहीं, परन्तु हवाकी क्रिया Movementका परिणाम है, उसीप्रकार आत्मा कोई ग्राह्य वस्तु नहीं है, बल्कि मस्तिष्कमें जो क्षण प्रतिक्षण क्रिया Activity होती है उसका परिणाम अथवा Sum Total है। बस, इसीलिये जब मरणके उपरांत मस्तिष्क नष्ट भ्रष्ट हो जाता है और उसका काम Activity भी लुप्त हो जाता है, तो आत्माका नाश होता है। * इस मान्यताका स्पष्ट अर्थ यह है कि स्वर्ग नर्क आदिकी बातें मात्र दन्त कथायें हैं। और आत्माकी नित्यता एक शश-शृंग एक खपुष्प है कि जो बालकोंको शांत करनेके लिये अथवा eschatogical शोध करनेके वास्ते कदाचित काममें आता है।

इस पृथ्वी संबधी भूगोल विद्या (Geology) और भूस्तरविद्या (Palaeontolgy) आदिके विद्वानोंने विशेष शोध की है और पृथ्वीके भिन्न२ थरोंमें जिस जातिके पत्थर, कंकड, धातु आदि जिस जातिके प्राणियोंकी अस्थियां या शिलीभूत अन्य अवशिष्ट भाग अथवा वनस्पतिके petrifications मिले हैं, उन परसे अनुमान करके यह घोषित किया है कि "क्रोडों वर्ष पहले यह पृथ्वी अपने सूर्यकी भांति उष्ण और प्रकाशमय एक तारा था, जिसमें पत्थर और धातु तरल (liquid) या gaseous स्थितिमें थे और उसमें किसी प्रकारकी जीवोत्पत्ति नहीं हुई थी। धीरे धीरे उष्णताके कम होनेपर अनेक विकारमय स्थिरता उत्पन्न हुई और एक स्कंधवाले एक इंद्रिय सूक्ष्मजीव उत्पन्न हुए। इन जीवोंके विस्तार (propagation) और विकास (evolution) द्वारा उनसे ऊँची जातिके जीव उत्पन्न हुये हैं। जो एक ओर तो वनस्पति और दूसरी ओर कीड़ा, कीड़ेसे मछली, मछलीसे मगर वगैरह होते होते सिंह, बाघ, बंदर जाति तकके प्राणी बने और फिर सबसे अन्तमें बंदरसे मनुष्य उत्पन्न हो गये। यह डार्विन (Darwin)की प्रसिद्ध मान्यता (theory) है।

इस मान्यताका आधार यह है कि पृथ्वीके नीचे रहे थरोंमें नीची जातिके जीवोंकी अवशिष्ट हड्डियां आदि मिलती हैं; जब कि ऊँचे रहे थरोंमें अनुक्रमसे ऊँची और उनसे ऊँची जातिके जीवोंकी अस्थियां petrifications मिलती हैं। और दूसरी बात यह है कि ऐसे जीवोंके भी अवशिष्ट भाग मिलते हैं कि जो अर्ध मछली और अर्ध मगरके शरीररूप अथवा अर्ध मछलीके और अर्ध पक्षीके शरीरवत् या अर्ध मगर और अर्ध पक्षीका शरीर धारण किये हुये थे। और पृथ्वीके बहुत ऊँचे थरोंमें ऐसी हड्डियां भी मिली हैं जिनमें कुछ मनुष्यके और कुछ बंदरके लक्षण मिलते हैं। बस, इन्हीं आधारोंपर डारविन सा०ने उक्त मान्यता निर्धारित की है।

परन्तु प्राणियोंकी किसी भी जातिसे कोई नई प्राणियोंकी जाति उत्पन्न होसक्ती हो, ऐसी बात

---

* आधुनिक Experimental Psychology भी अब आत्माको एक अमर और पुद्गलसे भिन्न पदार्थ माननेकी ओर झुकती जाती है। इस विषयमें प्रो० विलियम मैकडूगलकी Physiologic Psychology" नामक पुस्तक देखना चाहिये।

अपने अनुभव और देखनेमें नहीं आती। अर्थात् बिल्ली, कुत्ता, घोड़ा आदि कैसे भी प्राणियोंकी जातिसे दूसरी दूसरी जातिके जानवर उत्पन्न होते हैं, ऐसी भले ही कोई कल्पना करलें; किन्तु प्रत्यक्षमें अभीतक ऐसा होता देखा नहीं गया है। और इस कारणसे ही आज डारविनकी मान्यता (theory) अश्रद्धेय गिनी जाती है। उसपर, भला किस रीतिसे जीव रहित पृथ्वीमें एकदम अपने आप पहलीबार एक स्कंधवाले जीव उत्पन्न हुये, यह भी किसीने बताया है? हां किन्हींने यह जरूर कहा है कि यह एक स्कंधवाले जीव इस पृथ्वीपर उससे बाहरके एक तारेमेंसे आकर गिरे है। किन्तु सवाल यह है कि वह पहले उस तारेमें किस रीतिसे उत्पन्न हुए थे? और इसका कोई जवाब नहीं है।

अब जरा और देखिये कि पृथ्वीमें जो उष्णता पहले विद्यमान थी और जो उष्णता आज सूर्यमें विद्यमान है, वह कहासे आई? तथा पृथ्वी, चन्द्र और ग्रह जो चलते हैं सो वे किस कारणसे चलते हैं? Rotation और Revolution उसकी यह द्विविध गति किस कारणसे अभीतक बंद नहीं हुई है? ये प्रश्न है और इनका कोई उत्तर विज्ञानसे प्राप्त नहीं है।

बाकी, जोकि सूर्य, चन्द्र, और ताराओंकी परिस्थिति संबंधी बहुशोध चलती है और उनमें उष्णता, हवा, धातु आदिके विषयमें हमारे खगोलवेत्ता बहुत कुछ जानते हैं, तो भी 'पृथ्वी चलती है और सूर्य स्थिर रहता है' या 'सूर्य चलता है और पृथ्वी स्थिर है' इस सम्बंधमें आज नयी शंकायें Keptur की theory के विरुद्धमें उच्चारित की जाती हैं।

सूर्यकी किरणें कितने समयमें पृथ्वी तक पहुंचती हैं? इन किरणोंकी सफेद रोशनी सात भिन्न रंगवाली किरणोंका Mixture है और यह सातों प्रकारकी किरणें सिवाय ultra-red, ultra-violetके अदृश्य किरणें हैं। छाया और दर्पणका प्रतिबिंब किस तरह होता है? इन्द्रधनुष कैसे उत्पन्न होता है? इन सब बातोंके बारेमें हमलोग बराबर सब कुछ जानते हैं और रोशनीके गुणों और नियमोंको Photographic Camera, Telescotse, Microsootse, Stereosape, Cinema, Television आदिमें बराबर प्रयुक्त करते है। और यह भी जानते हैं कि भिन्न रंगवाली रोशनी भिन्न प्रकारकी तरंगोंको बड़ा कर आगे चलती है। किन्तु क्या चीज आगे जाती है? इसका आजतक किसीको पता नहीं है। किन्हीं विद्वानोंने यह जरूर कहा है कि "aether" नामका जो एक पुद्गल है, जिसमेंसे तरंगें उत्पन्न होतीं, वही रोशनी है! किन्तु यह तरंगें किससे उत्पन्न होती हैं, यह किसको मालूम है? और जो यह "aether" की कल्पना करनेमें आती है सो वह "aether" अदृश्य, अतोल्य, सर्वव्यापी—स्पर्श, जीभ, नाक, कानसे अग्राह्य-बुद्धि और किसी भी यंत्र instrumentसे अग्राह्य—संक्षेपमें कल्पना सिवाय सर्वथा अग्राह्य—एक वस्तु है! भला ऐसी भी कोई चीज होसक्ती है क्या? तो भी उसकी कल्पना करना जरूरी है, क्योंकि इसके बिना रोशनीकी प्रकृति समझना असंभव है।

आज aetherमें भी चलनेवाली, परन्तु भिन्न जातिकी तरंगोंको, विद्वान् बिजलीकी व्याख्यामें और लोहचुम्बककी प्रकृति समझनेके लिए कल्पित करते हैं। बिजली और लोहचुम्बकमें रही हुई शक्तियोंको—जिनको इलेक्ट्रिसिटी और मेग्नीटिजम् कहते हैं—मनुष्यने अपना गुलाम बना रक्खा है और वे शक्तियां टेलीग्राफ, टेलीफोन, इलेक्ट्रिक लाइट, डिनेमो मशीन, मोटर, रेडियो आदि विभिन्न वस्तुओंमें मानवोंके लिए दिन-रात काम कर रही हैं। इन भिन्न जातिकी परन्तु एक ही प्रकृतिवाली शक्तियोंका परस्पर स्पर्श होता है। इस तरहपर इलेक्टिसिटि बिजलीमें दृश्य और स्पृश्य होता है, यह विद्वान् मानते हैं। किन्तु यह दोनों शक्तियां कहांसे आगई? किस कारणसे अनन्तवार एकत्र करने पर अलग होजाती हैं? इन प्रश्नों सम्बंधी ज्ञान भी आज किसीको बराबर नहीं है।

जब ऐसी स्थूल बातोंके सम्बन्धमें हमारे ज्ञान विज्ञानके शास्त्री और फिलासफरोंमें इतनी शंकायें और इतना अज्ञान विद्यमान है, तो फिर अपने आत्मबलके कारण किसतरह अपना शरीर काम करता है, किसतरह मनमें चलने वगैरहका निश्चय होनेपर अपने पग चलनेको बनते हैं, किस तरह और क्यों पश्चात्ताप और अकृत्यके लिए घृणा मनुष्यके दिलमें होते हैं? और वे किसीके दिलमें तत्काल और किसीके दिलमें देरसे क्यों होते हैं? इस तरहके सूक्ष्मसे सूक्ष्म प्रश्नोंके संबंधमें हमारे मानसशास्त्र (psychology) वनस्पति (biology) आदि शास्त्रवेत्ता चुपचाप रहें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है!

आज हमारे पास बहुतसा ज्ञान है और प्रकृतिकी बहुतसी शक्तियां हमारी सेवा कर रही हैं। वह हमारी गुलाम बन रही हैं। किंतु तो भी इन विशिष्ट शक्तियोंकी प्रकृति अग्राह्य, हमारे लिये अभीतक रहस्यमय है। और ज्यों २ हम अधिक अन्वेषणा करते हैं त्यों २ हमारी आशा क्षीण होती है कि शायद ही इन विषयोंमें हम अधिक गंभीर ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। यही क्यों? बल्कि विज्ञान-कुशल या आशा रहित होकर हमें प्रतिभाषित होने लगता है कि इनका सपूर्ण ज्ञान प्राप्त करना तो इस मनुष्य जीवनमें अशक्य ही है।

प्रसिद्ध जर्मन कवि गेटे (Goethe) ने एक "Doctor Faust" नामका श्रेष्ठ नाटक लिखा है। उसमें उन्होंने 'इस मनुष्य जीवनका अर्थ क्या है?" इस प्रश्नकी चर्चा की है। उस नाटकमें उसके नायक डॉ॰ फास्टके मुखसे ये सुन्दर शब्द कहलवाये गए हैं कि "फिलासफी, वैद्यक, न्याय, सिद्धांत समस्त ज्ञान-विज्ञानकी इन चार शाखाओंमें मैंने खूब अभ्यास किया है, खूब शोध की है। किंतु इसका परिणाम क्या है? सच जानिये, पहलेसे जो मेरे पास था, उससे अधिक मैंने कुछ भी वास्तविक ज्ञान प्राप्त नहीं किया। 'मास्टर" (M. A) और "डॉक्टर" यह उपाधिया मुझे जरूर मिली हैं और मैं आठ दस वर्षसे अपने शिष्योंको कठोर अभ्यास कराता हूं। किंतु तो भी मुझे यह विश्वास है कि कोई भी वस्तु ठीक २ नहीं जान सक्ता। इससे मेरे दिलमें अत्यन्त दुःख उत्पन्न हुआ है और मेरा आत्मा पीड़ासे दुःखित

है ।" ये उस कविके शब्द हैं जो खुद एक बड़े विज्ञानवेत्ता Scientist थे । Du-Bois Reymond एक दूसरे विज्ञान शास्त्री है और उन्होंने भी एक विशाल सभामें निराश होकर यह प्रसिद्ध शब्द् उच्चारण किये थे कि "ignoramus, ignorabimus" अर्थात् हम लोग कुछ नहीं जानते और कभी भी जानेंगे यह बात भी नहीं है ।"

जब विद्वान लोग ही ऐसी निराशामें रहे हैं तो साधारण शिक्षित लोगोंकी बात ही क्या है ? क्योंकि इन लोगोंका ज्ञान, विद्वानोंके ज्ञान और उनकी मान्यताओंका प्रतिबिंब मात्र है । जब आत्माके संबंधमें पूर्वोक्त मान्यतादि सुनकर यदि कोई मनुष्य आत्माकी नित्यता और मोक्षादिमें संपूर्ण विश्वास रखते हैं तो उसमें आश्चर्य ही क्या है ?

Experiment अनुमान आदि साधनोंद्वारा ज्ञान और धर्मशास्त्रोंमें लिखी हुई बातोंओंमें विशेष विरोध विद्यमान है और धर्मशास्त्रोंमें प्ररूपित अनेक Myths, legends आदि समाचार तो सर्व साधारणके अनुभव और उनके विचारोंसे बहु विरुद्ध हैं । और जब ऐसी बातोंमें ही शंका है, तो फिर इन सिद्धांतोंमें प्ररूपित धार्मिक नियम, धार्मिक commandments के संबंधमें क्या कहना ? उनका पालन आत्मा और जगतके कल्याणका मार्ग है, इसे कौन खातरी पूर्वक स्वीकार करे ? और जो स्वीकार ही नहीं किया जाता उसका मानना कैसा ? किस नियम और किस धर्म प्रमाण जीवन भला किया जाय ? भला क्या है हेय, ज्ञेय और उपादेय ? जब दूसरों द्वारा निर्णित सिद्धांतोंमें शंका है—अविश्वास है, तो अपने दिलकी भावना, हृदयकी इच्छाको माननेके सिवाय और क्या शेष रह जाता है ? इस प्रकारकी धारणा करके किन्हीं लोगोंने "Erlaubt ist wasgefaellt" अर्थात "जो अपनेको रुचे उसकी छूट है" का नियम (device) बनाया है । किंतु इसका भी परिणाम क्या है ? साधारण मनुष्योंका दिल शुद्ध नहीं है—उनकी भावनायें और इच्छायें अधिकतर स्वार्थी, हिंसाकारक, दूसरोंको हानिकारक, विचित्र और अनियमित होती हैं और दूसरोंकी भावनासे, दूसरोंकी इच्छासे, दूसरोंके स्वार्थसे अधिकांश विरुद्ध होती हैं। जो कहीं आज दिलके सिद्धांतको स्थान दिया जाय तो मनुष्यका समुचा जीवन यही नहीं बल्कि समस्त समाज, संपूर्ण देश और सारी दुनियाके अधिवासियोंका जीवन कितना अशुद्ध, कितना अनियमित और नित्य भयसे भरा हुआ हो जायगा, यह हरकोई सोच सक्ता है । ऐसी अवनति क्या यूरोपके जीवनमें हुई है ? यही आओ, हम ढूंढें ।

आजकलके और विशेषकर यूरोपीय European समाजके जीवनकी खोज करिये तो यह कहना पड़ता है कि पुरानी यूरोपीय सभ्यता और हिंदु तथा जैनोंकी सभ्यताको देखते हुए, आजकलकी यूरोपीय सभ्यता अवश्य पीछे हटी या अवनति दिशामें पहुचती जारही है । इस विषयमें Oswald Spengler नामक एक जर्मन विद्वानने "Der untergang des Abendlandes" अर्थात "पाश्चात्य देशकी अवनति" नामकी पुस्तक लिखी है । उसमें

उक्त विद्वान् हमारा लक्ष्य इस बातकी ओर आकर्षित करता है कि आजकल जहां एक ओर पाश्चात्य देशके अधिवासियोंने civilisation अर्थात् Natural Science (प्राकृत विज्ञान) Technic, Mechanics (मशीन) आदि ज्ञानविज्ञानके क्षेत्रोंमें अपूर्व उन्नतिके शिखरपर पहुंचे हैं, वहां दूसरी ओर वे Culture अर्थात् धर्म Morals आदि सभ्यतामें एक अद्वितीय अवनतिको प्राप्त हुए हैं। इसके विपरीत ऐशियावासी Civilisation में पीछे रहनेपर भी "Culture" की रक्षा उत्साह पूर्वक और दृढ़ निश्चयसे कर रहे हैं और अपने प्राचीन धर्मके पालनमें एकाग्र चित्तसे लगे हुए हैं।

इसप्रकार यह मानना ठीक है कि Erlaubt ist was gefaellt अर्थात "जो अपनेको रुचे उसकी छूट है"—इस सिद्धात प्रमाण जो मनुष्य आचरण करते हैं, उनकी धार्मिक स्थिति Moral condition अवनतिको पहुचती है। और उनका जीवन नित्य भयसे, नित्य लोभसे, नित्य अशांतिसे भरा रहता है। यह न्याययुक्त ही है। किंतु आश्चर्यकी बात तो यह है कि यूरोपदेशकी जिस moral अवनतिकी ओर Oswald Spengler ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है, वह अवनति उतनी गहरी नहीं है जितनी होनी चाहिए।

फिर भी आश्चर्यदायक बात तो यह मालूम होती है कि लोग अपने सिद्धांतोंकी authority सम्बन्धी शका रखते हैं, उन्हीं विलायतके लोगोंके सत्य प्रेम और सरलता, प्रतिज्ञापालनकी स्थिरता और विश्वसनीयता, कामकाजकी एकाग्रता आदि गुण दुनियांमें प्रसिद्ध हैं। और इन गुणोंकी प्रशंसा भारतमें बारम्बार सुनाई पड़ती है।

ऐसी ही आश्चर्यदायक बात यह भी है कि जो लोग पुण्य पापके शुभ अशुभ परिणाम सम्बंधमें संशय रखते हैं, वही लोग परोपकार, जीवरक्षा और जीवनकी शुद्धिके सुधार आदि कार्योंमें अद्भुत उत्साह प्रकट करते हैं और ऐसे अनेक मंडल, अनेक Society या association स्थापित करते हैं कि जिनके द्वारा प्राणियोंकी रक्षा, मद्यपान त्याग, मांसाहार विरमण आदि सम्बन्धमें उद्योग किये जाते हैं। और वही मासिकपत्रों तथा भाषणों द्वारा सीधा सादा जीवन बनानेका उपदेश व सूचना करते हैं।

इसी तरह आश्चर्यदायक बात यह भी है कि जिन लोगोंके दिलकी सच्ची भावना, अपने कठोर कर्तव्यके कामकाजमें, इस जीवनकी क्रूर लड़ाईकी चिंतामें मौजशौकके भोगमें, एशोआरामके क्षणिक आनंदमें और हास्यरस वासित चपल विचारों तथा बातचीतोंमें छुपी रहती है; उन्हीं लोगोंके मनमें जैन सिद्धातके पांच मुख्य नियमोंके प्रति विशेष प्रेम विद्यमान है:—

पंचैतानि पवित्राणि सर्वेषां धर्मचारिणाम्।
अहिंसा सत्यमस्तेयं त्यागो मैथुनवर्जनम्॥

इतना ही क्यों? बल्कि सच जानिये, ये पांचों मुख्य नियम समूची यूरोपीय Society के मूलाधार हैं। इन पांचों नियमोंके अतीचारका परिणाम वहां उत्तम लोगोंकी तरफसे अत्यंत अपमान और सारे समाजसे जाहिर बायकॉट boycott होता है। इसके सिवाय और कुछ नहीं।

आश्चर्यदायक यह भी बात है कि जो लोग

सिद्धांतोंमें प्ररूपित आत्माकी नित्यताके विषयमें विश्वास नहीं रखते, वही पाश्चात्य देशोंके मनुष्य Spiritism, occultism आदि चर्चाओंमें विशेष उत्साह पूर्वक भाग लेरहे हैं और परलोकके संबंधमें ऐसी बातें कर रहे हैं जैसी कोई गप्पी गप्पें हांकता है। इतनेपर भी इन्हीं लोगोंके मध्यमें I. I. Rousseau उत्पन्न हुए हैं, कि जिन्होंने जैनधर्ममें मानी हुई आत्माकी सर्व मिहरबानी और सर्व शुद्धिकी प्ररूपणा की है। इन्हीं लोगोंमें एक Leibnitz उत्पन्न हुए हैं कि जिन्होंकी जैन सिद्धांतसे अदभुत रीति मिलती हुई आत्मा इस प्रकार है। "जीव नित्य है, जिसकी इस संसारमें जुदी २ परिस्थितिमें रहे हुए असंख्यात प्राणियों जैसे कि निगोद, कीडे, मछली, पक्षी, पशु, मनुष्य देव और ईश्वरका समावेश होता है।" फिर वह यह भी मानते हैं कि प्रत्येक जीवमें संपूर्ण आनंद संपूर्ण ज्ञानकी स्थितिमें सिद्धगतिमें पहुंचनेकी शक्ति है।

किंतु उन्होंने इसमें अधिक क्या बताया? हमारे जर्मन कविसम्राट गेटे Goetheका एक सुन्दर वाक्य यह है कि:—

"Ein guter Mensch in seinem dunklen Drange
Ist sich des rechten weges wohl bewusst."

अर्थात् जो कोई साधारण मनुष्य अच्छा भव्य होय, तो वह अपने दिलकी गुप्त भावनासे कल्याणका सच्चा रास्ता जरूर मालूम कर लेता है।"

इस कथनपरसे यह विदित होता है कि विशेष साधारण मनुष्योंके हृदयमें विशेष गुप्त-रीतिसे और उत्तम पुरुषोंके दिलमें विशेष स्पष्ट रीतिसे खास जैनधर्ममें माना हुआ सम्यग्ज्ञान और उससे पुनः सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र अर्थात् सम्यक्त्वकी भावनाका एक प्रतिबिंब विद्यमान है, जो कि किसी दफे दृश्य होता है और जिसका प्रभाव सारी दुनियांके सामाजिक जीवनमें सदा ही दिखाई पड़ता है।

इतना ही नहीं, परन्तु जो जो ईसाई धर्ममें, बौद्ध धर्ममें, हिंदू धर्ममें, पारसी धर्ममें, मुसलमान धर्ममें यानी दुनियाके प्रत्येक मुख्य धर्ममें, जो यह खास प्ररूपणा होती है कि 'परोपकार और आत्मशुद्धि द्वारा कल्याणकी ओर पहुंचा जाता है।' वह प्ररूपणा जैनसिद्धान्तमें अद्वितीय विशालता, अद्वितीय सूक्ष्मता, अद्वितीय न्याय और युक्तिपूर्वक तथा अद्वितीय स्पष्टतापूर्वक करनेमें आई है। जैनधर्मकी सारी System इतनी स्पष्ट, इतनी न्याययुक्त है कि चाहे जैसा Critical mind, चाहे जैसा महात्मा, उसके अन्दर प्रवेश करके संपूर्ण संतोष और शांति पा सक्ता है।

जैनसिद्धांतमें प्ररूपित ज्योतिष, प्रमाण, मानस, अर्थतत्व शास्त्र, प्रकृति विद्या, प्राणीविद्या आदि किसी भी शास्त्रमें विद्वान्, सैद्धांतिक गाथाओंकी अत्यन्त रमणीयतामें कविता प्रेमी, स्याद्वाद और नयवादकी Systems में वादी, जीव-अजीव आदि नवतत्वोंकी व्याख्यामें फिलॉसफर, पुरुषार्थ free will के सिद्धांतमें शूरवीर और बहादुर मनुष्य, पुण्य-पापकी व्याख्यामें योगी और त्यागी, दान आदि परोपकारका लाभ लेनेकी सूचनाओंमें लक्षाधिपति, तपस्या और त्याग

करनेके उपदेशमें गरीब मनुष्य इस प्रकार भिन्न भिन्न विषयोंमें भिन्न२ लोग अपने आनन्दका मूल अपने कल्याणकी मार्गदेशिका समझ सक्ते हैं।

जैनधर्ममें पुरुष या स्त्री, सेठ या भिक्षु, गृहस्थ या बाबा सब ही वर्णाश्रमके लोग अपनी मानसिक भावना प्रमाण, अपने कर्तव्य प्रमाण सुख और शांति पासक्ते हैं। कोई भी महाराजाधिराज अपने हीरा, माणिक, मोती जड़ित सोनेके आभूषणोंकी शोभामें और रमणीक भोगोपभोगके आनन्दमें या अपनी राजनीतिके कर्तव्यमें मस्त होकर भी, वस्तुपालकी तरह एक आदर्श जैन होसक्ता है। और कोई उत्तम साधुधर्मको पालनेवाले साधुजी अधिक गहन संवेगमें रहकर जैनधर्मकी मर्यादामें अपना कल्याण कर सक्ते हैं और अपने मनमें शांति संतोष और त्यागवृत्ति सर्वथा भर सक्ते हैं।

कृष्ण और राधा, राम और सीता, लक्ष्मण व हनुमान, शिव और दुर्गा, इन्द्र और इन्द्राणी तथा लोकपाल, लक्ष्मी, सरस्वती, ब्रह्मा आदि किन्हीं भी देवताओंको उनके खास गुणोंको लक्ष्य करके मानना जैनधर्मसे विरुद्ध नहीं है। उल्टे यह कह सक्ते हैं कि कृष्णजी, क्राइस्ट, जरदस्त, मुहम्मद या गुरु नानकका अनुयायी यदि जैनधर्मका अंगीकार करता है तो वह अपने धर्ममें अत्यधिक आगे बढ़ता है। दूसरे शब्दोंमें कहा जा सक्ता है कि जो मनुष्य क्राइस्ट या मुहम्मदके उपदेश प्रमाण सर्व मनुष्यों पर प्रेम रखनेके उपरान्त, श्री महावीरस्वामीके उपदेशके अनुसार पशु पक्षी आदि प्राणियोंपर दयाभाव रखता है अर्थात् जो पारसी जरदस्तके सिद्धांत प्रमाण "humata, huhta, huvarshta" अर्थात् सम्यक् विचार, सम्यक् भाषण, सम्यक् क्रिया करनेके उपरांत, श्री महावीर स्वामीके उपदेश प्रमाण मन, वचन, कायसे सम्यक् आचरण कराता, दूसरोंसे करता और अनुमोदना करता है तो वह व्यक्ति जरूर ही एक ज्यादा ऊँची स्थितिमें पहुच जाता है।

क्रिश्चियन, वैष्णव, शैव, पारसी और मुसलमानके धर्ममें माने हुये नरक और स्वर्ग और उनमें माने हुए इष्टदेवके माननेसे जैनसिद्धांतकी उदार दृष्टिसे कोई अड़चन नहीं। किंतु ध्यानमें यह रखना चाहिए कि अमुक देवकी उच्च स्थितिसे भी रागद्वेष रहित, अनंत सुखमय और अनंत ज्ञानमय आत्माकी सिद्धगति विशेष उच्च है और यह भी कि वह सिद्धगति प्राप्त करना-आत्म शुद्धि करके प्राप्त करना देवता, मनुष्य, पशु और अन्य प्राणियोंके लिये इस जीवनका एक लक्ष्य है—इस जीवनका उत्तम अर्थ है।

इस प्रकार श्री जैनसिद्धांतका विधान अधिक मनुष्योंके लिये अवश्य कल्याणकारक है। कल्याणकारक ही नहीं, बल्कि वैज्ञानिक दृष्टिसे वह मनको संतोषदायक है; क्योंकि नवीनसे नवीन शोध खोजका परिणाम श्री अर्हतके सिद्धान्तके साथ अधिकांश अद्भुत रीतिसे ठीक बैठता है। जिस ज्ञानको हमारे विद्वानोंने अब नियमित और सुविहित Experiments और सूक्ष्म नवीन Instruments का व्यवहार करके प्राप्त किया है, उसे ही महावीरस्वामीने अढ़ाई हजार वर्ष पहिले जाहेर किया था।

ऊँचे रहे हुये धरोंमें (आकाशमें) चढ़नेसे

मालूम होता है कि ऊपर ऊपर हवा ज्यादा पतली और ठंडी होती है। पानी असंख्यात सूक्ष्म जीवोंसे भरा हुआ है। जो उबालने या प्रासुक करनेसे निर्जीव होता है। वनस्पति और धातु, पत्थर आदि पृथ्वी काय सजीव चेतन्य शक्ति युक्त है। यह पूर्वोक्त कथनके कतिपय उदाहरण हैं। शेष जिस प्रकार आधुनिक विज्ञानवेत्ताओंने Molecular combinations molecules, atoms, electrous पुद्गलके ये भेद मानें हैं। उसी प्रकार जैन सिद्धांतके अनुसार स्कंध, देश, प्रदेश और परमाणु ये पुद्गलके विभाग हैं। तथा जिस तरह आजकलके प्रकृति विद्याके विद्वान् स्थिति कारणभूत Gravitation और रोशनी वगैरहकी गति समझनेके लिये "Aether"—ये दो रहस्ययुक्त, अस्पृश्य, अतोल्य अदृश्य, सर्वव्यापी वस्तुयें मानते हैं, उसी-तरह जैनधर्ममें स्थितिका कारणभूत अधर्मास्तिकाय और गतिका कारणभूत धर्मास्तिकाय—ये दो द्रव्य माने गये हैं। तथापि जिस रूपमें Botany और Zoology (आधुनिक वनस्पति शास्त्र और जंतु विद्या) ऐसे जीव मानती है कि जिसका शरीर-Moss, licher, algae आदिके शरीर सदृश—असंख्यात सूक्ष्म जीवोंका समूह होता है, वैसे ही जैन सिद्धांत भी अनन्तकाय वनस्पतिकी व्याख्या करता है।

जिनके पास अढ़ाई हजार वर्ष पहले Telescope, microscope आदि कोई भी साधन नहीं थे, उन्ही लोगोंके पास उपरोक्त प्रकार अद्वितीय ज्ञान था। तो भला कहिये कि यह अरिहंत भगवान् महावीरस्वामी और उनके पूर्वज तीर्थंकर विश्वासपात्र क्यों न मानें जांय?

इसपर भी यह ठीक है कि जैन सिद्धांतमें रहीं हुई बहुतसी मान्यतायें नवीन सायन्सके निश्चित परिणामसे मिलती नहींहैं; किन्तु इस सम्बन्धमें विचार करनेकी बात यह है कि सायन्सके जो परिणाम एक समय निश्चित-से माने जाते थे, उन्हींके विषयमें उपरान्त शंकायें उपस्थित होचुकी हैं; जैसे 'सूर्य स्थिर रहता है और पृथ्वी द्विविध रीतिसे चलती है, केपलर (Kepler) की यह थ्योरी (Theory) अथवा संमूर्च्छन जीवोत्पत्ति न हो सकनेकी मान्यता। इसके अतिरिक्त Aether की कल्पना और Darwin की Theory जैसी सायन्सकी अनेक मान्यतायें Contradiction in adjectee अर्थात् वंध्या पुत्र या आकाश पुष्प सदृश प्रगट हुई है। इस दशामें सायन्सकी मान्यताओंपर अति विश्वास कैसे रक्खा जासक्ता है? हा, इतना कह सक्ते हैं कि जो मान्यतायें Macrocosm और microcosm जगत और मनुष्य सम्बंधी अबतक माननेमें आई हैं, उनका अधिकांश भाग जिस प्रमाणसे सायन्स उन्नति करेगा उस प्रमाणके अनुसार समय आनेपर बदल जायगा—और इस रीतिसे बदल जायगा कि वह जैन सिद्धांतमें प्ररूपित सत्योंके साथ एक लाइनपर आकर मिल जायगा। बस, यह विश्वास हमें रखना चाहिए।

दूसरी ओर यह भी विचारणीय है कि महावीर स्वामीके अर्ध मागधी भाषामें लिखे हुए पवित्र शब्दोंका कैसा अर्थ करना चाहिए? उनकी कौनसी व्याख्या ठीक होगी? इस संबंधमें अब भी जैन विद्वानोंमें अनेक स्थलोंपर एकमत नहीं

मिलता है। इसलिए सायन्स और सिद्धांतकी तुलनात्मक शोध और परीक्षा विशेष विस्तारके साथ करनेके पहले, आधुनिक फैलॉलॉजीकी Critical सूक्ष्म आलोचनात्मक पद्धतिके अनुरूप श्री० सूत्रजीकी शोध-खोज और व्याख्या (Interpretation) बराबर करना आवश्यक है। क्योंकि जिस तरह सोनेका तेज अग्निकी परीक्षासे बढ़ता है, उसीतरह श्री सूत्रजीकी महिमा फैलॉलॉजीकल शोधकी और सायन्सकी तुलनात्मक (Comparative) परीक्षासे और भी स्पष्ट देखनेमें आयगी।

फिर भी यह तो स्पष्ट ही है कि जैन सिद्धांतके प्ररूपक (author) के पास जगत् और मनुष्य—macrocosm और microcosm सम्बन्धी अद्भुत-अपूर्व ज्ञान था और इसलिए उनके सिद्धांतका संदेश दुनियामें फैलाना योग्य है।

पाठकगण ! क्या आप इस उत्तम कार्यकी सिद्धिके रूपका अन्दाजा कर सके हैं ? मेरेमें तो इस सिद्धिकी महिमा बतानेकी शक्ति नहीं है। फिर भी मैं इतना अवश्य कहती हूं कि इस उत्तम कार्यकी सिद्धिके शुभ परिणाम रूप इस दुनियामें करोड़ों निर्दोष पशुओंकी हिंसा बंद होगी; क्योंकि मांसाहार बंद हो जायगा। शराब भी तब कोई नहीं बनायेगा; क्योंकि तब उसे कोई पियेगा ही नहीं। प्रत्येक मनुष्यको दारु मदकी पशुतुल्य स्थितिसे अत्यंत घृणा लगेगी। हिंसाकारक शस्त्र भी तब कोई नहीं बनायेगा, न मंगायेगा और न किसीको उनकी जरूरत होगी; क्योंकि राग द्वेष प्रकट करनेमें लोगोंको शरम मालूम होगी। लड़ाई और झगड़े भी बंद हो जायगे। असत्य और कपट मिट जायगे; क्योंकि क्रोध, मान, माया, लोभ कि जो लड़ाइयों और असत्य तथा कपटके मूल हैं, नष्ट हो जायगे। पुरुष और स्त्रियां और विभिन्न देशोंके विविध वर्ण आश्रमोंके मनुष्य परस्पर प्रेम और शांतिपूर्वक-जैसे महावीरस्वामीके समयमें रहते थे वैसे—रहकर अपने आत्मकल्याणके लिए और मानवीय सभ्यताकी उन्नतिके लिए उत्तम काम करेंगे। बस उस दिन प्राणियोंमें सुख अपूर्व होगा, दुनियांमें शांति होगी और स्वर्गलोक इस दुनियांमें सिरज जायगा, जिस रोज दुनियांमें जैनधर्मका संदेश पहुंच जायगा और दुनियां जैनधर्मके संदेशको सुनने और माननेके लिए तैयार हो जायगी ! ॐ शान्तिः !

अनुवादक—कामताप्रसाद जैन,
सं० 'वीर'—अलीगंज।

प्यारा हिंदुस्तान।

सभी हम भारतकी सन्तान।
हिंदु, मुस्लिम, जैन, पारसी, सिक्ख और क्रस्तान।
प्रेम भावसों एक रहें मिलि, पानी दूध समान॥
मातृभूमिकी वेदी पै हम, हो जावें बलिदान।
काटि दासताकी बेडी सब, बनें सुतंत्र प्रधान॥
सत्य अहिंसा धर्म हमारा, छुटे न जबलग प्रान।
ध्रुवसम अचल रहें जगतीतल, विचलित होय न बान॥
गूंजो करे यही कानूनमें, प्रियवर 'प्रिय' गुंजान।
"देश हमारा प्राणोंसे भी, प्यारा हिंदुस्तान" ॥

—प्रिय वृन्दावन।

पाणिग्रहण।

लेखक:—
श्रीयुत पं० गुणभद्रजी जैन, कलोल।

(१)

चार बज चुके हैं, महेन्द्रने दफ्तरसे आकर कपड़े उतार-कर यथास्थान रख दिये और एक पुस्तक लेकर पंखा डुलाते हुए पढ़ने लगे। इतनेमें ही मनोरमाने अपना पुराना तकादा शुरू किया—पढ़नेके सिवाय दूसरा भी काम है? अन्य समयमें भी पुस्तकोंके पत्ते फेर सकते हो, न जाने पुस्तकोंमें तुम्हें कौनसा स्वर्गीय आनन्द मिलता है! कदाचित् सुन्दर२ तस्वीरें देखकर ही खुश होते होंगे!

महेन्द्रने जरा मुसकाते हुए उत्तर दिया—तुझे पढ़े लिखे हुए आदमियोंसे बड़ी चिढ़ है। यदि यह बात मैं पहलेसे जानता होता तो कभी भी तुम्हारे साथ शादी न करता।

मनोरमाने कहा—शादी तुमने की या मैंने? मैं यदि यह जानती होती कि तुम पुस्तकोंके कीड़े हो तो मैं कभी भी तुम्हारे साथ मायके (पीयर)से न आती।

महेन्द्रने जरा नाराजीसे कहा—व्यर्थकी बातोंमें क्या रखा है? अपना काम कर। न जाने ये स्त्रियां पुरुषोंके कामोंमें विघ्न करके कौनसा पुण्य कमा लेती हैं।

मनोरमाने कहा—पुरुष पुस्तकोंके चित्र देख-कर कौनसे स्वर्गका रास्ता साफ करते हैं? तुम्हें कुछ दुनियादारीकी भी फिकर है?

महेन्द्रने कहा-हां, मुझे तुझसे ज्यादा फिकर है। कमानेकी फिकर पुरुषोंको ही होती है। स्त्रियां तो घरमें गुल-छर्रे उड़ाया करती हैं और उस पर भी यह प्रश्न, बलिहारी तुम्हारी अकलकी!

मनोरमाने नाक सिकोड़ी और कहा—धन्य पतिदेव! मैं क्या कहती हूं और आप क्या अर्थ कर रहे हैं? मैं तो कहती हूं कि मधुकांता विवाहयोग्य होगई है, इसकी भी कुछ फिकर है? उसके साथकी लडकियां दो २ तीन २ बच्चोंकी मां हैं, जब कि उसकी सगाई भी नहीं हुई है। क्या अपनी मधुकांता योंही जीवन बितायेगी?

महेन्द्रने कहा—तू तो पागल है, सदैव एक राग आलापा करती है। १५ वर्ष कोई ज्यादा उम्र नहीं है, अन्य देशोंमें बीस २ और पचीस वर्ष तक कन्यायें कुमारी रहती हैं। इस विषयकी मुझे तुमसे ज्यादा चिंता है। पर क्या करूँ? वर मिलना कठिन होरहा है।

मनोरमाने कुछ तीक्ष्ण स्वरसे कहा—मैं एक नहीं हजारों ऐसे लड़के बतला सकती हूं जो अपनी पुत्रीके सर्वथा योग्य हैं। तुम तो वरोंके दोष देखने बैठते हो, इससे तुम्हें सब ही दोषी दिखाई पडते हैं। यदि तुमने मेरी बुद्धिसे वरकी खोज की होती तो अभीतक मधुकांता एक लड़-केकी मां कहलाती। यह तो एक बहाना है, साफ२ क्यों नहीं कहते कि अभी उसकी शादी नहीं करना चाहते।

महेन्द्रने उत्तर दिया—लड़की अपनी सम्पत्ति नहीं है, एक न एक दिन अवश्य ही दूसरेको

देना पडेगी। पुत्रीका जीवन उनके माता-पितापर निर्भर है। उसके लिये योग्य वर ढूंढ़ना माता पिताका परम कर्तव्य है। शादी कोई गुड्डा-गुड्डियोंका खेल नहीं है, सारे जीवनका सवाल है।

मनोरमा बोली—यों न कहो कि उसे पढ़ा२ कर बैरिष्टर बनाना है। मैंने तो अपनी सारी जिंदगीमें इतनी बड़ी कुमारी लड़की कहीं भी नहीं देखी है। लोग मधुकांताको देखकर क्या कहते होंगे, इसका भी कभी ख्याल किया है? अवस्थाके अनुसार लोगोंमें भी कानाफूँसी हुआ करती है। मैं तो भलेके लिये ही कहती हूं।

महेन्द्रने कहा—पढानेमें कौन तुम्हारे बापकी पोटरी खर्च होती है! जैसी तू अपढ है वैसी उसे भी रखना चाहती है। यह सब अशिक्षाका फल है।

मनोरमा उत्तेजित होकर बोली—बापदादा कौन तुम्हारे यहां खाने आते हैं, जो तुम मेरे बापदादा तक पहुंच गये। परमेश्वरने स्त्रीका अवतार दिया, इससे रोटियोंके लिये तुम्हारी भली बुरी बातें सुननी पड़ती हैं।

महेन्द्रने कहा- मैं तुझे समझाता २ हैरान हो गया हूं। एकवार समझाया, दो बार समझाया, अनन्तवार समझाया, परन्तु तू हमेशा अपनी टायर लगाये रहती है। ऐसी औरत तो मैंने दुनियामें कहीं भी नहीं देखी।

मनोरमाने शांतिसे उत्तर दिया-परमेश्वरने लड़की दी है, उसीके पीछे ये सब बातें सहनी पड़ती हैं। अच्छा होता, जो खाली पेट रहती! इतना कहते२ उसकी आंखोंसे आसुओंका झरना बहने लगा।

महेन्द्रने आंसु पोंछते हुये कहा—इतना पागलपन!

मनोरमाने कहा—मैं लोगोंकी बातें सुनते २ तंग आगई हूं। कल ही जब कुएंपर पानी भरने गई थी तब कितनी ही स्त्रियां इस विषयकी चर्चा कर रही थीं। मैं तो अपना मुँह लेकर रीते घड़े लेकर घर चली आई! शहरकी बुढ़ियायें जान खाये लेती हैं, वे कहती हैं कि "हमने अपनी उम्रमें इतनी सयानी लड़की कभी भी नहीं देखी। कोई कहती है मैं तो जब १२ वर्षकी थी तब एक बेटेकी मां होचुकी थी। माई! जमाना बदल रहा है, परन्तु क्या साथमें लड़कियाँ भी बदल रही हैं? कलिकाल है कलिकाल, जो न हो वही थोड़ा है।"

महेन्द्रने शांतिसे उत्तर दिया—लोगोंका मुँह है, जैसा जीमें आता है बोलते हैं। मैं किसीके मुँहपर ताला तो मार ही नहीं सक्ता। लोगोंको कहने दो।

मनोरमा बोली—लोगोंके मुँह बन्द करनेका यही उपाय है कि मधुकांताकी शीघ्र ही शादी करदी जावे। इसके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है।

महेन्द्रने कहा—लोगोंके कहनेसे मैं प्राणप्यारी पुत्रीका जीवन बर्बाद नहीं कर सक्ता हूं, दुनियां स्वार्थकी सगी है। जब मधुपर किसी प्रकारका दुःख पड़ेगा तब यही लोग अपनेको मूर्ख बनायेंगे और दश पांच जनोंमें मजाक उड़ावेंगे।

(२)

महेन्द्र पक्के सुधारक थे, अन्तमें उन्होंने चुप होजाना ही ठीक समझा। मनोरमाकी इच्छानुसार मधुकान्ताकी सगाई उसी ग्रामके सुप्रसिद्ध सेठके पुत्रके साथ करदी गई। यद्यपि महेन्द्रकी इच्छा कुछ दूसरी ही थी, पर लाचार थे।

मधुकान्ता सगाईकी बात सुनकर फूटफूटकर रोने लगी। उसका रोना अरण्य-रोदन था। सेठके सुपुत्रका नाम था मोहन। मोहन यद्यपि जवान था तो भी बुड्ढासा दिखता था। धनिक था, नौकरों चाकरोंकी कमी नहीं थी, परन्तु बड़ा भारी दोष यह था कि वह व्यसनी था। वह हमेशा यारदोस्तोंके साथ इधर उधर मौज शौख उड़ाया करता था। शरीरपर सौन्दर्य न था, तनमें शक्ति नहीं थी, मनमें वेश्याओंका ध्यान था। बस, दुराचारी मित्रोंके यहा विश्राम था और वहींपर संसारका आराम था। सेठजी खुब ही समझा चुके थे। कुटेवोंके कारण कहीं भी उसका ठिकाना नहीं पडता था। पूर्व पुण्य-वशात् सुन्दर पक्षी सेठजीके जालमें फस गया।

एक शिक्षिता कन्या कैसे ऐसे भद्दे वरको पसन्द कर सकती है? उसे धन नहीं चाहिये था परन्तु पतिका प्यार ही अटूट सम्पदा थी। वह सुन्दर जड़ाऊ आभूषणोंकी भूखी नहीं थी वह हृदयकी इच्छुक थी। मधुकान्तान मोहनकी कितनी ही ऐसी बातें सुनी थीं जिनको विचार कर दुखसे रोमर खडे होजाते थे। पर क्या कर सकती थी, विवश थी। ज्यों ज्यों विवाहकी तिथि समीप आती जाती थी त्यों त्यों उसका हृदय जलकर क्षार हुआ जाता था। जब सबके हृदयमें आनन्द था तब मधुकान्ता शोकसागरमें गोते खारही थी।

(२)

विवाहकी निश्चित तिथि आगई, बाजोंकी गम्भीर ध्वनि कानोंको फोड़े डालती थी, स्त्रियाँ मंगल गान गारहीं थीं, सर्वत्र कोलाहल मचा हुआ था। मधुकान्ताने जाना कि अब तो मैं अवश्य ही बलात्कार विवाहकी भट्टीमें झोंक दी जाऊंगी, इससे बचनेका कुछ उपाय करना चाहिये। उसने बहुत ही विचार किया, परन्तु कुछ न सूझा। अन्तमें एक विचार आया कि अपना अभीष्ट ललितसे कहना चाहिये, वह अपना उद्धार करनेमें समर्थ है। यदि उसकी तरफसे सहायता न मिली तो फिर दूसरा मार्ग शीघ्रही शोध लूगी।

ललित और मधुकान्ता दोनों बालमित्र थे। दोनों परस्पर विशुद्ध प्रेमी थे। ललितकी उम्र मधुकान्तासे चार वर्ष अधिक थी, शरीर भी सुन्दर था और बुद्धिमान भी था। ज्यों२ दोनों बड़े होते गये त्यों२ प्रेमग्रन्थि अन्यरूप होती गई। आज उसकी पराकाष्ठाकी हद होचुकी थी।

मधुकांतासे न रहा गया, वह रात्रिको चुप-चाप अपने घरसे निकली और ललित जहां पढ़ रहा था वहा गई।

ललितने आश्चर्यसे कहा—मधुकांता! इस समय आनेका क्या कारण है? कोई सेवा हो तो कहो।

मधुकाताने लज्जासे मुख नीचा कर लिया। मन ही मन विचारने लगी—क्या कहूं? बोलना चाहती हूं, पर बोलनेके लिये जीभ नहीं उठती है। साहस करके बोली—दो एक दिनमें मेरी शादी होनेवाली है सो तुम जानते ही होंगे। ललितने हंसते हुए कहा—तो क्या तुम निमंत्रण-पत्रिका देने आई हो?

मनोरमाने कहा—मैं कुछ देने नहीं आई हू प्रत्युत आपकी अपूर्व वस्तु लेने आई हूं। यदि वह वस्तु आप मुझे देंगे तो आपकी महती कृपा

होगी। ललितने कहा—क्या कुछ गहनोंकी आवश्यक्ता है? मधुकांता बोली—तुम्हारी कृपासे गहनोंकी कमती नहीं है। ललित—तो क्या चाहती हो? मधुकांताने कहा—यदि आप वस्तु देनेका वचन दें तो मैं मांगूं, अन्यथा प्रार्थना निष्फल जाय इससे क्या फायदा?

ललितने कहा- हां, हां, मैं जरूर दूगा, ऐसी कौनसी वस्तु है जो तुम्हारे लिये न हो?

मधुकांताने जरा दीनतासे कहा—धृष्टताके लिये मुझे माफ करना। मैंने हृदयको खुब ही संभाला, खूब ही समझाया, परन्तु वह पूर्व प्रेम मुझे लाचार कर रहा है। यदि तुम्हें बुरा लगे तो उसके लिये दण्ड देसकते हो। यह दासी सहर्ष उसे स्वीकार करेगी। बस, एक यही अंतिम प्रार्थना है कि हमारा तुम्हारा हृदय एक होजाना चाहिये, यही तीव्र अभिलाषा है!

ललितने गम्भीरतासे उत्तर दिया—यह बात कैसे बन सक्ती है? तुम्हारी सगाई अन्यत्र होचुकी है, एक दो दिनमें तुम पराई होजाओगी, फिर किस अवस्थामें मैं तुम्हें अपनाऊँ?

मधुकांताने पगके अंगूठेसे जमीन खोदते हुए उत्तर दिया—क्या तुम्हें किसी व्यभिचारिणी और बदसूरत कन्याके साथ विवाह करना स्वीकार होगा? पतिके साथ क्या माता पिताको निभना है? निभना तो मुझे है। दो पैसेके घड़ेको भी ठीक बजाकर लेते हैं यह तो जिन्दगीका सवाल है।

ललितने कहा—लोग जब हमारा तुम्हारा संबंध सुनेंगे तब क्या कहेंगे?

मधुकान्ता बोली—तुम सब कुछ कर सकते हो। तुम स्वतंत्र हो, मुझसे तुम्हारी कोई बात छिपी नहीं है। मैं तुम्हें अपना सर्वस्व देनेके लिये तैयार हूं। तुम क्यों पीछे हटते हो? क्या कोई आती लक्ष्मीको भी लात मारता है?

ललितने कहा—मैं तुम्हें ग्रहण करनेके लिये तैयार हू। लेकिन लोकभय, समाजभय और जातिभय मुझे इस कामके लिये मना करता है।

मधुकान्ता आगे बढ़ी और रोते हुये दोनों पांव पकड़कर बोली—देखो, निराश न करो! मुझे तुमपर पूर्ण विश्वास था कि तुम समयपर मुझे अवश्य हस्तावलम्बन दोगे। आज समयपर तुम क्यों विमुख होरहे हो?

ललितने पांव छुड़ाते हुये कहा—तुम तो पागलसी मालूम होती हो, बच्चोंकी तरह रोनेसे क्या फायदा? तुम कहीं भी रहो परन्तु तुमपर मेरा विशुद्ध प्रेम सदैव रहेगा। तुम अपनी शक्तिसे दुराचारीको भी सुधार सकती हो, नर्कको स्वर्ग बना सकती हो, जगतमें भी मंगल कर देना यह तुम्हारा काम है। फिर भावी पतिके लिये खेद करना उचित नहीं है। तुम्हें मेरी आशा छोड़ देना चाहिये।

मधुकान्ता अत्यन्त अधीर बनी और बोली—यह तुम्हारा अंतिम वाक्य मेरी छाती चीरे डालता है- आजसे मैं निराश्रय हूँ! माता-पितासे तो असहकार है ही और आजसे तुमसे भी असहकार करती हू। पतितपावन त्रिलोकीनाथ मेरा एक मात्र आधार है। प्यारे ललित! तुम्हें अब अंतिम प्रणाम है!

मधुकान्ता यों कहकर घोर अन्धकारमें अदृश्य होगई! माता-पिताने खूब खोज की, पर पता न लगा।

स्त्रीशिक्षाकी आवश्यकता।

(लेखिकाः—श्री० सुभद्राबाई जैन श्राविकाश्रम, बम्बई।)

संसारमें प्रत्यक्ष रूपसे इस बातका प्रमाण मिल रहा है कि शिक्षा सर्वोत्तम वस्तु है। वह मनुष्योंके स्वभावको इस तरह पलट देती है कि जिसका वर्णन करना मनुष्यशक्तिसे सर्वथा बाहर है। यहां मुझे केवल यही कहना है कि शिक्षा संसारमें प्राणी मात्रके लिये शुभ फलकी देनेवाली है। शिक्षा मनुष्यके लिये एक अमूल्य रत्न है। जीवनके मार्गमें सफलताके साथ जानेके लिये वाहन है। बहुतसे माता पिताओंका कहना है कि पुत्रोंके लिये शिक्षा देना परमावश्यक है किन्तु पुत्रियोंके लिये नहीं। कहते२ यहांतक कहने लगते हैं कि पुत्रियोंको यदि शिक्षा दी जावे तो वे बिगड़ जाती हैं। लेकिन यह नहीं समझते कि गृहस्थी रूपी गाड़ीके पुरुष, स्त्री रूपी दो पहिये हैं। जिस प्रकार गाड़ीके दोनों पहिये यदि दृढ़ और समान न हों तो गाड़ीका इष्ट स्थान पर पहुंचना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है। उसी भांति गृहस्थी रूपी गाड़ीके दोनों पहिये अर्थात् पुरुष स्त्री यदि शिक्षित कला-कौशलान्वित ज्ञानी और धर्मात्मा न हों तो वह गृहस्थीरूपी गाड़ी भी अपने इष्ट स्थान अर्थात सुखशांति यश इत्यादि तक नहीं पहुँच सकती है।

जिस घरके पुरुष, स्त्री दोनों अथवा दोनोंमें एक भी अशिक्षित, अन्यायी, व्यभिचारी, धर्मद्रोही हुए तो उस घरका सारा सुख नष्ट होकर मिट्टीमें मिल जाता है। भारतका सुधार, अपनी जाति और समाजका सुधार सब शिक्षापर ही अवलंबित है। जो जो देश और जो जो जाति पहिले स्त्रियोंके अशिक्षित होनेके कारण कमजोर थे, एक एक दानेको तरसा करते थे, शरीर ढकनेको एक हाथ वस्त्र नहीं बना सकते थे और जंगली कहलाते थे, वही देश और जातियां आज स्त्रियोंके शिक्षित होनेके कारण समस्त संसारमें अपना प्रभुत्व जमाये हुए हैं। इसके प्रत्यक्ष प्रमाणके लिये इंग्लिस्थान, जर्मन, फ्रांस, जापान, अमेरिका इत्यादिकी तरफ दृष्टि बढ़ाइये, आपको स्पष्ट रूपसे इसका पता चल जायगा। बात तो सत्य यही है कि बिना स्त्रीशिक्षाके कोई भी देश और जाति अपनी उन्नति नहीं कर सकता है। जैसा किसी कविने कहा है कि:—

माइयो निजजातिको जो जगमगाना है तुम्हें।
चाहिये अर्धाङ्गिनी जनको पढ़ाना तो तुम्हें॥
अंगनायें जब जगेंगी देश तब जग जायगा।
कष्ट भारतवर्षका क्षण एकमें भग जायगा॥

संसारमें लोगोंका कहना है कि हीरेकी खानसे हीरा, कोयलेकी खानसे कोयला और सोनेकी खानसे सोना ही पैदा होता है। यथार्थमें उनका कहना सत्य ही है तो फिर बतलाइये कि सुमाताके शुद्ध गर्भसे सुसंतान और कुमाताके कलु-



श्रीमान दानवीर सेठ रामचंद धनजी दावड़ा-नातेपूते।
[आजतक आप ७८००० का दान करचुके हैं]



श्रीमती सिरदार बहू चौधरन-पथरिया (सागर)
[आपने अपनी कुल जायदाद विद्यादानमें देदी है।]



अतिशय क्षेत्र श्री मक्सी पार्श्वनाथजी तीर्थ।



सिद्धक्षेत्र श्री तारंगाजी।

जैनविजय प्रेस–सूरत।

मित हृदयसे कुसंतान क्यों न उत्पन्न होगी ? इसलिये भारतके हितेच्छु भाई बहिनोंका कर्तव्य है कि भारतकी नारी समाजमें विद्याका प्रकाश डाल भारतको मुक्त करनेका उद्योग करें।

एक सुशिक्षिता तथा सदाचारिणी और धर्मात्मा माताकी शिक्षा हजारों गुरुओंकी शिक्षासे कहीं बढ़कर होती है। जिस प्रकार कुम्भकार गिली मिट्टीसे मनमाने बर्तन बना सकता है उसी भांति बाल्यावस्थामें माता बच्चेको चाहे जैसे साचेमें डाल सकती हैं। लेखकोंने तो यहांतक कहा है कि गर्भस्थित बालक बालिकापर माताके रहन, सहन, चाल, ढाल, आचार, विचारका पूर्ण प्रभाव पड़ता है। यदि माता सुमाता है तो सन्तान भी कुसंतान न होगी। इस विद्यारूपी धनको प्राप्त करनेसे स्त्रियोंको यह ज्ञान प्राप्त होजाता है कि मेरा क्या कर्तव्य है और मुझे क्या करना चाहिये इत्यादि बातोंका विचारकर अपना तथा अपने परिवार और संसारके अन्यान्य प्राणियोंका भी कल्याण कर सकती हैं।

मात्र शिक्षा इसीको न समझ लेना चाहिये कि हमने तो ५-६ पुस्तकें पढ़ लीं अब हमको अधिक पढ़कर क्या करना है। इस संसारमें ऐसा कोई भी पदार्थ न होगा कि जिसका पार न हो सकता हो। लेकिन यह विद्यारूपी धन ऐसा खजाना है कि ज्यों २ निकालें त्यों त्यों बढ़ता ही जाता है। अनेक विद्यार्थिनी यह समझ लेती हैं कि उनका विद्यालय ही उनकी शिक्षाके आरम्भ और समाप्तिका स्थान है। परन्तु विद्वानोंका मत है कि शिक्षाका काम विद्यालय हीमें समाप्त न हो। शिक्षा इतनी ऊंची वस्तु है कि जीवनके अन्त तक इसे बटोरना ही चाहिये। जो बहिनें आनन्द प्राप्त करनेकी कामना रखती हैं उनको शिक्षा प्राप्त करना परम आवश्यक है। क्योंकि शिक्षा द्वारा ही हम आत्मसंयमी और आत्मनिग्रही बन सकते हैं। परन्तु यह बात जरूर ध्यानमें रखना चाहिये कि शिक्षा प्राप्त होजानेपर मानको स्थान न देना चाहिये। जो अपनेसे अज्ञान हो उनको घृणाकी दृष्टिसे कदापि न देखना बल्कि उनको शिक्षित बनानेका प्रयत्न करना परम आवश्यक है। जो बहिनें इस विद्यारूपी धनसे वंचित रह जाती हैं उनको अनेक प्रकारके नीचसे नीच काम भी करने पड़ते हैं। अपनी गृहस्थीका पालन करना भी उनको भार रूप मालूम होने लगता है। इस संसारमें आकर न तो ये किसीका उपकार कर सकती हैं न अपने आत्माका ही कल्याण कर सकती हैं। क्योंकि शिक्षासे रहित मनुष्यको किसी प्रकारके तर्क वितर्ककी शक्ति नहीं पैदा होती है इस कारण उनकी इंद्रियां बुरे मार्गकी तरफ लेजानेका ही प्रयत्न करने लगती है।

इस संसारमें मनुष्य जन्म लेनेका मुख्य प्रयोजन यह है कि वह स्व-पर कल्याण कर सके। देखिये शिक्षाहीके कारण रीछ, बन्दर, सांप, बकरे, कुत्ते, हाथी, घोड़े, ऊँट इत्यादि अपनी दुष्टताको छोड़ मनुष्यकी शिक्षा ग्रहण कर अपने नाच गानसे कठोरसे कठोर मनुष्यका भी मन मोहित कर अपने पालनकर्ताका कल्याण करते हैं। जब अज्ञानी पशु भी शिक्षा ग्रहण करनेसे प्रेमी होते हैं तब मनुष्य होकर भी यदि हम शिक्षा न

ग्रहण करें तो कितनी लज्जा और घृणाकी बात है। मैं तो आप लोगोंसे यहांतक कहना चाहती हूं कि पुत्रोंकी अपेक्षा पुत्रियोंको अधिक शिक्षा दी जावे क्योंकि पुरुषोंको तो केवल धन एकत्रित करनेका ही ध्येय रहता है। परन्तु बहिनोंको घरगृहस्थीके कामको संभालना तथा पुत्र पुत्रियोंका पालन पोषण करना, उनको शिक्षा देना इत्यादि बातें बहिनोंके आधीन रहती हैं। अगर बहिनें अशिक्षित हों तो उनको यह भी ज्ञान नहीं रहता कि मैं अपने बच्चेका पालन किस प्रकार करूं, पतिकी कमाईको किस प्रकार व्यय करूं। इत्यादि। इसलिये सभी भाई बहिनोंसे युगल करबद्ध बार२ क्या बरन् सहस्रबार मेरी सानुनय प्रार्थना है कि शिक्षा ग्रहणकर मनुष्यजन्मको सफल करें।

—⁂—

संत परीक्षा।

(रचयिता-पं० नन्हूराम लीलाधर जैन-महाराजपुर)

सच्चे सन्त।

जपते हैं प्रभु नाम, मग्न हो ध्यान जमाते।
काम क्रोध मद राग, विषयक पास न जाते॥
करते इन्द्रिय दमन, घर निर्जनमें रहकर।
वर्षा बाधा शीत ताप, सारे ही सहकर॥
होकर यथा विरक्त ये, गूढ़ ज्ञानमें पगकर।
आत्मरूप लखते वही, कहलाते हैं सन्त वर॥

कलियुगी सन्त।

वेष महान महान केश, नख भले बढ़ावत।
करत सदा बकध्यान, समय पर दाव चलावत॥
पहिर गेरूवा वस्त्र, देशमें फिरत फिरावत।
नीच महा बदजात, सबनसे पाव पुजावत॥
बाटत सुत घर२ फिरत, करत कमाई भरत घर।
देखहु कलियुग नीच यह, कहलाते हैं सतवर॥

नुक्तेपर एक दृष्टि।

लेखक-पं० गुलजारीलालजी चौधरी-उदयपुर।

भारतरूढ़ि प्रधान देश है, यहांपर अगणित रूढ़ियां प्रचलित हैं, जिनका मतलब किसीको मालूम नहीं होनेपर भिड़चालसे मानकर धर्मका बहाना करते हैं। उन रूढ़ियोंसे हमारी जो हानियां हो रही हैं उनपर हमारा ध्यान गया है, पर दूर करनेकी हिम्मत नहीं है। क्यों? इसमें श्रीमानोंका कुछ नुकसान नहीं, मरना गरीबोंका ही होता है। श्रीमान् धनसंपन्न हैं, इससे उनको यदि रूढ़ि परिपालनामें धन खर्च करना पड़े तो कुछ परवाह नहीं। उनकी यही इच्छा रहती है कि गरीब भी हमारे समान कार्य करें, और अवसर आनेपर उसकी पूर्ति करते हैं। जब यह दशा श्रीमानोंकी है तो फिर समाज सुधार कैसे हो?

बालविवाह आदिको रूढ़ि-अंग कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी, उसीका अंश नुक्ता है। इसको हरदेशमें अनेक नामोंसे कहते हैं, पर इसका असली अर्थ मरनेका जीमन है। यह भी कोई कारणको पाकर किसी समय पर्दाकी प्रथाके समान चली होगी। पर रूढ़िभक्त अब उसीका ध्यान करते रहते हैं। और इसको बंद करनेके लिये कहा जाय तो धर्मका अंग है, कैसे बंद करें? अरे! ये नवयुवक तो सभी प्रथाएं बंद करना चाहते हैं, इनकी बुद्धि भ्रष्ट होगई इत्यादि वार्ताएं लोग करते हैं। चाहे धार्मिक कृत्य बंद होजांय पर यह सरकारी

करकी माफिक हर्गिज बंद न होगा। और जबरन मरनेकी जीमन की जाती है। इससे हजारों कुटुम्ब धनहीन होकर कष्ट सहन कर जैन समाजको शाप दे रहे हैं। उन्हीं असहायोंकी हाय सांससे यह समाज-देश गारत होरहा है। इसका जटिल उदाहरण लेखकका प्रत्यक्ष देखा है वह लिखता हूं।

लेखकके ग्राममें एक परवार जैन रहता था उसके ४ पुत्र-पुत्रियां और एक पत्नी थी। उनकी स्थिति साधारण थी, केवल नमक गुडकी दुकानसे कुटुम्बका निर्वाह करता था, पर घरमें कुछ भी नहीं था। कुछ दिन बाद अपुण्योदयसे वह बीमार होगया, अनेक उपचार करनेपर भी अच्छा न हुआ, और कालकवलित हो गया। उसने अपने कुटुम्बको दुःखित छोड़कर संसार यात्रा पूरी नहीं की, परन्तु कुटुम्बी अपनी विधवा स्त्रीपर आपत्तिका पहाड़ ढाह दिया। वह क्यों? श्मशानयात्रामें भी पहले बड़े आदमियोंके नुक्तेकी बातचीत होती रही। बादको इसपर भी चोट आई। और सलाह करली गई। तेरहवां दिन आया। उस दिन नुक्तेके लिये पंचोंसे पूछना था। रात्रिमें पचायत लगी, और पुरानी बातें पेश की गईं। और लड्डू-पूरीकी आज्ञा प्रदान की। उस बेचारी विधवाने बहुत हाथ जोड़ीकी पर पंच टससे मस न हुए। मेरी हैसियत नहीं है कि मैं नुक्ता करूँ। हम लोग पतिदेव द्वारा ही उदरपूर्ति करते थे। परन्तु अब मुझे बड़ा दुःख है कि बालबच्चोंका निर्वाह कैसे होगा। और मेरे पास फूटी कौड़ी भी नहीं है, तथा इसमें १००) से ज्यादः लगेगा मैं रुपया कहांसे लाऊँ? इसपर श्रीमान्जी कड़ककर बोले—जा रांड! तेरे पास नहीं है तो हम लोग क्या करें, कहींसे रुपया कर्जा लेकर नुक्ता करो नहीं तो मंदिर बंद कर दिया जायगा। इस जवाबसे बेचारी विधवा मन मसोस कर रह गई, और कहा जो हुक्म। इसपर मैंने भी कुछ कहा पर मुझे भी उल्टी सीधी सुनाई गई। मैं भी चुप रह गया। यह मूढ़ समाज है, इसको जरा भी ज्ञान नहीं है। दूसरे दिन अपना जेवर-गहना रखकर पचोंका सत्कार किया। और रोकर पति गुणानुवादके साथ पंचोंको गिड़गिड़ा कर उनके दुष्कृत्योंके लिये फटकारा। पर कुछ भी न हुआ।

प्रिय पाठकों! आपने पचोंकी काली करतूतें देखी होंगी। यहांपर यह बात विचारनेकी है कि जिस समाजमें खानेके लिये इतनी जोरावरी की जाती है, दंड दिया जाता है, वह समाज यहां-उन्नति पथपर आरूढ़ हो सक्ता है। वैसे ही आजकल लोगोंकी आमदनी घट रही है, और गुजारा भी कठिनतासे कर रहे हैं, फिर यदि कहींपर किसीकी मृत्यु होगई तो उसकी आफतमें जान। इस प्रथाका जोर मेवाड़ आदि प्रान्तोंमें अधिक है। हजारों रुपया व्यर्थमें खोये जाते हैं। विद्योन्नति देश सेवाके लिये एक पैसा भी नहीं दिया जाता है। और विद्यालयोंकी प्रशंसाकी अपेक्षा बुराई की जाती है, ताकि रुपया न देना पड़े ऐसे बहानेसे बचते हैं। और समाज घातक नुक्ते जैसी प्रथापर हजारों रुपयोंकी धूल कर देते हैं। और यशके भागी बनते हैं, यह प्रथा न तो शास्त्र सम्मत है, न देश समाजोपकारी है।

यह प्रथा कैसे और कब शुरू हुई इसका

इतिहास उपलब्ध नहीं है। पर मेरी बुद्धिमें यह आता है कि मनुष्यके मरनेपर उसके साथ सहानुभूतिके लिये जो रिश्तेदार आते थे उनका सत्कार घरवाला कर देता था, उसीका रूप यह नुकता होगया है। उस समय इसमें पचोंका हस्तक्षेप नहीं था, जैसा कि आजकल है। उसीकी इच्छापर निर्भर था। यहां बात सोचनेकी है कि एक तो उसका आदमी गया। दूसरे घरका रखा धन भी नष्ट हुआ, ये दो दुःखोंका सामना करना पड़ता है। मैं सच कहूंगा कि मृत-आत्माकी अपेक्षा नुकतेका दुःख असह्य होता है।

इस प्रथाका प्रचारक पचोंको कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। यही न्यायकी मूर्ति है। पक्षपातकी खानि है। चाहे ये लोग कानूनका एक अक्षर न जाने पर न्यायका गला जरूर घोंटेंगे। अन्याय करते, धनी-निर्धनपर एकसी दृष्टि नहीं, न गरीबोंपर दया, न देशकालके जानकार, फिर न मालूम कैसे न्याय करके फैसला कर देते हैं। यदि ये लोग समाजको सुधारना चाहें तो सुधार कर सकते है। पर गांधीजीके अस्वाद व्रतका पाठ पढ़ाये जानेपर और उसके गुण समझानेपर सुधार कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। इनका मंदिर बंद करना, जातिच्युत करना ही शस्त्र है। इसीसे आज इन लोगोंने जातिकी संख्या आटेमें नमक बराबर करदी है। फिर भी यदि यही क्रम जारी रखा तो भविष्यमें विनाश ही है। विनाशकाले विपरीत बुद्धिः।

यह समय सुधार शुद्धिका है, इस समय कुप्रथाओंको हटाना चाहिये, उपयोगी सरल नियम बनाना चाहिये। ताकि सर्व साधारण उनका पालन कर सकें। हे प्रभो! ऐसी सुबुद्धि हमारे पंच सरदारोंको प्रदान करो?

हे पंचों! अब तो चेतो, अन्याय मत करो। न्यायकी तलवार पकड़ो, नुक्ते जैसी दुष्ट प्रथाओंको निकाल बाहर करो। तभी आप समाजके हितचिंतक बन सकते हैं।

नुक्तेकी प्रथा बंद करके ये कार्य करना चाहिये—

१—स्त्री शिक्षाका प्रचार करना, जगह जगह कन्यापाठशालाएं खोलना, और माता बहिनोंको समझाना।

२—दीन अनाथोंकी रक्षा करना, उनके वस्त्र भोजनका प्रबंध करना। शिक्षालयमें भेजना।

३—जो असहाय विधवाएं हैं, उनको विधवा आश्रमोंमें भिजवाना, शीलरक्षाकी ओर उत्साहित करना। पढ़ाईका भी योग्य प्रबंध करना।

४—विद्यालयोंमें दान देना, स्वदेशी वस्त्रोंका प्रबंध करना, खादी बनानेका काम छात्रोंको सिखलाना व छात्र वृत्तियां देना।

५—असहाय, अपाहिज, लूले लंगड़े ऐसे मनुष्योंका प्रबंध करना।

इत्यादि जो उपयोगी कार्य हैं, उनको करना। नुक्तेमें सिर्फ एक दिनमें ही हजारों रुपया नाश होजाता है, पूर्वोक्त कार्योंसे नाम अमर होगा। एक जगह एक सज्जनने अपनी स्त्रीका नुक्ता नहीं किया। उतने ही रुपयेको हुन्नरशालामें लगा दिया, जिससे स्वदेशी वस्त्रोंकी उन्नति होरही है, ऐसा करनेसे देशका उपकार होता है, बेकारोंको काम मिलता है। इसलिये मेरी नम्र प्रार्थना है कि नुक्तेकी समाज देश धन घातक प्रथाको दूर कर सुधार करें। और गरीबोंके सहायक बन देशयज्ञमें सामिल होकर पुण्यभागी बनें।

स्वास्थ्यरक्षा।

श्री० वैद्य शिखरचन्दजी जैन ज्योतिषी—फर्रुखनगर।

प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि धनाढ्य निर्धन विद्वान मूर्ख गृहस्थी अतीत स्त्री पुरुष अर्थात सब मनुष्य बल्कि जीव मात्र भले चंगे और निरोग रहकर सुखसे आयु व्यतीत करनेकी अभिलाषा रखते हैं। सच भी है कि सबसे बढ़कर आनद शरीर हीका सुख है और कहावत भी है कि—प्रथम सुख निरोगी काया, दूजा सुख पास हो माया।

यदि विचार कर देखा जावे तो वास्तवमें जिसका स्वास्थ्य (तन्दुरुस्ती) बिगड़ जाता है उसे सर्व प्रकारकी हानि व दारुण दुख सहने पड़ते हैं। यह बात बुद्धि विद्या द्वारा सिद्ध है कि रोग भी किसी न किसी कारणसे पैदा होते हैं तथा बढ़ते हैं। जैसे अधिक गरिष्ट या वासी खानेसे अजीर्ण (बदहजमी) तथा विरुद्ध और उष्ण भोजन और अति मद्य और दूषित जल पीने आदिसे दस्त तथा फिरंग युक्त स्त्रीके संगसे फिरंग (आतशक) रोग उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार अनुचित आहारविहार हीसे और अनेक रोग पैदा होते हैं।

बस यदि विचारकर पहले हीसे रोगोंके कारणका बचाव किया जाय तो हम बलपूर्वक कहते हैं कि कभी रोग उत्पन्न ही नहीं हो और यही परम बुद्धिमानी है।

अंग्रेजी यूनानी देशी अर्थात वैद्यक-इन तीनोंमें हम भारतवासियोंको किसके अनुसार बरताव तथा चिकित्सा करना विशेष गुणदायक है? किसी देशमें सर्दी अधिक पड़ती है, किसीमें गरमी, किसीमें नदीनाले विशेष होते हैं कहीं पहाड़। सूखे मैदान, कहीं वनवृक्षादि होते हैं कहीं नहीं, इससे प्रत्येक देशकी प्रकृति जलपवन (आबहवा) जुदे ही जुदे प्रकारके होते हैं और जिस देशमें जिस जीव व वनस्पतिकी उत्पत्ति है उसी देशका खान-पान आबहवा स्वाभाविकानुकूल (मुवाफिक) होता है अन्य देशका नहीं।

देखो केशर कश्मीरमें पैदा होती है और चन्दन मलयागिर (ट्रावनकोर) में। यहां प्रायः नहीं होते इसका कारण यही है कि यहांकी पृथ्वी व आबहवामें उनके पुष्टिकारक प्रमाण विशेष नहीं हैं।

इसी प्रकार जो मनुष्य जहां पैदा होते हैं और रहते हैं वहां हीकी पृथ्वी जल और वनस्पति आदिके परमाणुओंसे उनके शरीरकी उत्पत्ति वृद्धि होती है और अन्य देशके परमाणुओंसे द्रव्यतरकी न्यूनाधिकताके कारण वहांका खानपान अहार और आबहवा प्रायः सानुकूल नहीं होते।

इससे सिद्ध हुआ कि हरएक मनुष्य क्या जीवमात्रको अपने ही देशके अनुसार खानपान आहार विहारका बरताव तंदुरुस्ती (स्वास्थ्य) कायम रखनेको उत्तम और उपकारी है। सारांश यह कि हम भारतवासियोंको अपना वैद्योक्त सनातन चालका उत्तम बरताव उपयोगी है। अंग्रेजोंको डाक्टरी तथा यूनानियोंको यूनानी।

उपरोक्त विवेचनसे स्वास्थ्यके लिये हम भारतवासियोंको वैद्योक्त आहार विहार उपयोगी सिद्ध हुआ। अब रही चिकित्सा। यह बात प्रमाण योग्य है कि शरीरमें यथोचितके अतिरिक्त किसी पदार्थके अणुवोंकी न्यूनाधिकता तथा विकृतिसे रोग उत्पन्न होते हैं और देशांतरमें शीतोष्ण एवं प्राकृतिक द्रव्यांतर न्यूनाधिकतासे हरएक देश परमाणुओंमें बड़ा भेद है इस हेतु किसी देशमें प्रायः कोई रोग होता है किसीमें कोई अथवा किसी देशमें रोगका कारण कुछ होता है किसीमें कुछ और ही।

और चिकित्सा हरएक रोग और उसके कारण आदिके अनुसार होती है तो हरएक देशकी चिकित्सामें भी भेद होता है अर्थात् स्वीटजरलेन्ड इंग्लैंड जैसे ठण्डे देशको रोग और हेतु चिकित्सासे भारतवर्ष और गर्म देशोंके रोगोंके और कारण हैं तथा चिकित्सामें बड़ा अंतर है। यदि हम देश प्रकृति आदि लिखें तो लेख बहुत बढ़ जाता है। हमको तो स्वास्थ्य रक्षाके नियम दिखाने हैं इससे देशभेदको यहीं छोड़कर स्वास्थ्यरक्षाकी तरफ चलते हैं।

यह हम ऊपर लिख चुके हैं कि भारतसंडका बरताव आयर्लेन्ड फ्रांस जर्मन आदि देशोंमें उपकारी नहीं होता इसी प्रकार इंग्लैंड यूनान आदिका बरताव भारतवासियोंको भी प्रायः सानुकूल नहीं हो सकता।

सवेरे उठना—इसका भलीभांति परिचय तथा दांत धोवन स्नान आदिका वर्णन गतवर्षके खास अंकमें पाठकोंको दिखलाया था, आशा है पाठकोंको स्मरण होगा अन्यथा गत वर्षका खास अंक पेज ९२ से आरोग्य रहनेका उपाय फिर पढ़ जावे।

प्रत्येक मनुष्यके ध्यान रखनेयोग्य १—वायु, २—जल, ३—भोजन, ४—निन्द्रा, ५ वस्त्र, ६—कसरत, ७—महेनत, ८—स्नान, ९- शौच, १०—मकान, जिसमें हो।

प्रथम वायु—ताजी हवा मनुष्यकी जिन्दगीका कारण है। प्रातःकाल तथा शामको ताजी शुद्ध वायुमें फिरना आवश्यकीय है। ग्रीष्मऋतुमें सूर्योदयसे पूर्व और शरदऋतुमें सूर्योदयके समय कमसे कम एक मील धीरे २ टहलना चाहिये। शामको सूर्य अस्तके बाद पेड़ी सड़कों और मैदानोंमें जहां बहुत घने वृक्ष न हो फिरना लाभकारी है और बच्चोंको प्रात काल तथा शामकी भेजना बहुत आवश्यक है।

पानी—जिस पानीमें गन्दकी बू आती हो या शोरे खारा स्वाद आवे वह खराब समझना। जिस कूवे या तालाबमें किसी मैली नालीसे पानी पड़ता हो या जिसपर सर्व साधारण कपड़े धोते हो और उसका पानी कूवेमें गिरता हो या वृक्षोंके पते गिरते हो उस कूवेका पानी पीनेयोग्य नहीं। पानी साफ करना हो तो गर्म करो और जब ठंडा होजावे तो फुलालेनके कपड़ेमें छानलो फिर इसे काममें लावो।

भोजन ऐसा करना चाहिये जो जल्दी हजम होजावे और चित्तको रुचे। हमेशा सादी यानी बहुत तरहका न हो। मक्खी इत्यादिको भोजनपर बैठने न देना चाहिये। कच्चे मेवोंसे परहेज रखना चाहिये और पके भोजनके बाद खाना उचित है। दुग्धका अधिक प्रयोग रखना चाहिये।

साग आदि दिनमें एकबार अवश्य खाने चाहिये। नियत समयपर भोजन करना चाहिये कभी२ मिठाई आदिका खाना भी उत्तम है। भोजनके साथ बार२ और बहुत पानी नहीं पीना चाहिये और न भोजन करके उसी समय कोई कसरत करनी चाहिये।

निन्द्रा-कमसेकम ६ घन्टा दिन रातमें मनुष्यके लिये आवश्यकीय है और ८ घन्टा बहुत ही उत्तम है। जल्दी सोना जल्दी उठना चित्तको प्रसन्न करता है यानी १० बजे सोना ४ बजे उठना चाहिये। छोटे बालकोंको जबतक वह स्वयम् न जागे न जगाना चाहिये। ओसमें सोना हानिकारक है। शरदऋतुमें शिरको किसी टोपीसे ढांककर और पायजामा आदि पहनकर सोना चाहिये और प्रत्येक प्राणी[illegible] सोनेका [illegible] पृथक२ हो। कोमल उज्वल वस्त्र हो। गह शयनागार बड़ा [illegible] खिड़कियोंका अर्धभाग [illegible] होना [illegible] शुद्ध [illegible] विशेष ध्यान रखना चाहिये। मकान [illegible] हो जो एक [illegible] सोना [illegible] प्रतिदिन साफ होता रहे। [illegible] पर्दा लगा रहे। [illegible] केवल पलंगके आसपास दरी रहे पलंगके [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] उस स्थानपर जितना भी [illegible]। बैठनेकी कुर-सियोंपर गद्दे न हों ताकि (गर्दा) न जमें (गर्देका विशेष ध्यान रहे, जमा न हो) कपड़े भी उस कमरेमें अधिक न हो, ताजी हवा आती रहे। कभी२ अग्नि जलाकर वायु शुद्ध करदेनी चाहिये।

वस्त्र समयानुसार सदैव रखने चाहिये परन्तु उज्वल अवश्य हो, मैल न जमें। फुलालैनका कुर्ता या बनियान सबसे नीचे पहनना चाहिये। गर्मीमें जब पसीना आया हुआ हो तो फौरन कपड़े न उतारना चाहिये और जब पंखा चलता हो या मकानमें खसकी टट्टी लगी हो और पसीना आता हो तो बदनको शरद हवासे बचावे। गरमीमें शिर या पांव या नंगे शरीर न निकलना चाहिये।

कसरत-मुग्दर उठाना, दण्ड पेलना, गेंद खेलना, गोला फेंकना आदि शरीरको पुष्टाई देता है। थोड़ा२ सब चीजोंका अभ्यास रखनेसे शरीरके सब अंशोंको ताकत आती है। कसरत इतनी करना चाहिये जिससे थकावट मालूम न हो। भोजनसे पहले ही कसरत करना चाहिये।

मेहनत दिमाग-पढ़ना लिखना सोचना और इस्मी मेहनत ताकतके अनुसार करना चाहिये। बच्चोंको जबतक ताकत अच्छी तरह न आवे पढ़ाने अधिक परिश्रम न करना चाहिये। आजकल ऐसा करनेसे दिमाग खराब होना बहुत देखनेमें आता है।

स्नानका समय और कैसे जलसे स्नान करना चाहिये? यह गत वर्ष बतला चुके हैं। यहां इतना और है कि जल न अधिक ठन्डा हो न गर्म हो या जैसेका अभ्यास हो। प्रातःकाल घूमनेके बाद पसीना सुखाकर और भोजन करनेसे पूर्व स्नान करें, शरीरको अंगो-छेसे खूब पोंछकर उज्वल वस्त्र पहन लें।

शौच-इसका रोज ध्यान रहे कि कब्ज न होने पावे। सवेरे और शाम या सवेरे ही पाखाने जानेकी आदत रक्खे। जबतक पाखाना अच्छी

तरहसे न हो न बढे। सदैव ठन्डेपानीसे आबदस्त लेना चाहिये, गर्म जलसे कभी नहीं लेना चाहिये।

स्थान—साफ रखना चाहिये। सप्ताहमें २वार साफ करके गंधक या काफूरकी एकबार धुनी दें। सबेरे या श्याम घरकी तमाम खिड़कियां खोलदे जिससे गन्दी वायु निकलकर शुष्क वायु प्रवेश करें। मकान चाहे छोटा हो या बड़ा परन्तु उसमें सूर्यकी किरण अवश्य पहुंचनी चाहिये क्योंकि सूर्यकी किरण पहुंचनेसे जितने मलीन वस्तु या मलीन बू कृमि (जो रोग उत्पन्न करती है) का नाश होकर मकान शुद्ध होता है बिना उजवालेका मकान स्वास्थ्यको हानिकारक है। इससे विशेष बैठा उठी उसी मकानमें होना चाहिये जिसमें सूर्यकी किरण पहोंचती हों। स्थान सदैव सुगन्धमें रखना चाहिये, दुर्गन्ध न हों।

मकानके आगे (यदि होसकें तो) मोसमी २–४ पोदे लगाने चाहिये। पोदे जैसे तुलसी, सूर्यमुखी, गेंदा आदि। इनके गुणोंका वर्णन फिर कभी किया जावेगा। इसके लगानेसे अनेक प्रकारके रोग नष्ट होते हैं और अनेक प्रकारकी दुषित वायु इन पौदोंपर होते हुए फूल होकर जीव मात्रकी रक्षा करते हैं।

देखिये, अंग्रेजोंमें चाहे छोटेसे छोटे दरजेका क्यों न हो परन्तु स्वच्छता और वाटिकाका शौक अवश्य पाइयेगा। यही कारण है कि भारतवासियोंकी अपेक्षा वे लोग निरोगी एवं सुदृढ देखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक मनुष्य अपने समयका विभाग करले यानी इतने घंटे यह काम करना। इसके नियमित करनेसे भी आरोग्यतामें बहुत कुछ सहायता मिलती है। जैसे भारतवासियोंको स्नान प्रातः समय करना चाहिये परन्तु बहुतसे प्राणी आलस्यके कारण स्नान तो दूर प्रातः उठने भी नहीं। कोई२ तो १० बजेतक सोकर उठते हैं इससे रोगका भय रहता है क्योंकि 'प्रभाते मैथुन निद्रा सद्यः प्राण हरानिच' प्रातःकालमें मैथुन और सोना प्राण हरता है अर्थात् इस देशमें प्रातःकाल स्नान नित पूजन आदिसे निवृत्त होकर कुछ जलपान करके फिर जो कुछ करना हो सो करे। जो मनुष्य इन नियमोंका पालन करता हुआ जीवन व्यतीत करेगा व कदापि रोगी नहीं होगा।

गांधी गान।

आज मिलि गावो मोहन गान ?।
हमें 'अहिंसा मंत्र' सिखाकर।
उत्तम 'मार्ग स्वतंत्र' दिखाकर॥
'प्रेम सुधारस' बुंद चखाकर।
कायरसे रणवीर बनाकर, फूंका हममें जान॥१॥

'खद्दर' की महिमा प्रगटाई।
'समताभाव' रहे मिलि भाई॥
शुद्ध स्वदेशी हो 'चिवसाई'।
'भारतकला' फेरि बगदाई, भारतके कल्याण॥२॥

"मातृभूमिका मान बढ़ाया"।
'कैसे हो बलिदान सिखाया'॥
"गत गौरवका ध्यान कराया"।
वो प्रतापका गान कराया, खड़े होगए कान॥३॥

"विजयी विश्व तिरङ्गा प्यारा"।
"ऊंचा झण्डा रहै हमारा"॥
"बोलो सब ये ही जैकारा"।
'गांधी जीवैं बरस हजारा, 'प्रिय' भारतके प्रान'॥

"प्रिय"—वृन्दावन।

मूड़बिद्रीकी अमूल्य जैन मूर्तियाँ।

पं० के० भुजबली शास्त्री, जैनसिद्धांतभवन-आरा।

मूडबिद्री मंगलूरु शहरसे २२ मीलपर मद्रास प्रांतके दक्षिण कनड (S. Kanara) जिलेमें अवस्थित है। इस जिलेमें ४०२१ वर्गमील स्थान है। इसकी चौहद्दी इस प्रकार है। उत्तरमें बंबई, पूर्वमें मैसूरु (मैसूर) और कोडगु (कुर्ग), दक्षिणमें कोडगु और मलेबार (मलाबार), पश्चिममें अरबि या अरब समुद्र।

पूर्वमें यह जिला कांचीके पल्लवोंके राज्यमें गर्भित था जिसकी पुरानी राजधानी बिजापुर जिलेमें वातापि या बादामिपुर थी। पीछे दूसरी शताब्दीमें बनवासिके प्राचीन कदंब राजाओंने यहां राज्य किया। यह बनवासि उत्तर कनडमें उपस्थित है। छठीं शताब्दीके अनुमान पूर्वीय चालुक्योंने कदंबोंको दबा दिया। आठवीं शताब्दीके मध्यमें उन्हें पुनः कदंब राजा मयूरवर्माने भगा दिया जिसने पहले इस जिलेमें ब्राह्मणोंको बसाया था। इस कदंब देशके राजा मलखेड्के राष्ट्रकूटोंके तथा कल्याणि (निजाम) के पश्चिम चालुक्योंके अधीन राज्य करते रहे। बारहवीं शताब्दीमें यहां दोरसमुद्र या हलेबीडुके होयसल बल्लालोंने अधिकार किया। चौदहवीं शताब्दीमें यहांपर मुसलमानोंने अधिकार जमाया, परन्तु विजयनगरके राजाओंने उन्हें यहांसे हटा दिया। पीछे सन १५६६ में तालिकोटेके युद्धमें दक्षिणके मुसल्मानोंने मिलकर अंतिम विजयनगरके राजाको हटा दिया।

इस समय स्थानीय जैन शासक स्वतंत्र होगये। किन्तु सत्रहवीं शताब्दीके प्रारंभमें इन सबको लिंगायत राजा इक्केरिके वेंकटप्प नायकने दबा दिया। पश्चात् यह जिला १५० वर्षोंतक इक्केरिके राजाओंका आधीन ही रहा। इनकी राजधानी मैसूर राज्यके बेदनूर नगरमें थी। उस समय भी बहुतसे प्राचीन जैन राजाओंने अपनी स्थानीय स्वतंत्रताकी रक्षा की है। सन् १७२७से यहां अंग्रेजोंका आना आरम्भ हुआ।

यह बात विश्वसनीय है कि महाराज अशोकके समयमें भी जैनधर्म कनडमें फैला हुआ था। पूर्वमें जैनलोग केरल-पुत्रके राज्यतक फैले हुए थे। प्राचीन कदंबवंशी और चालुक्यवंशी राजा निःसन्देह जैन थे। कतिपय विद्वानोंका मत है कि इस जिलेमें सर्व प्रथम शासन करनेवाले पल्लव भी जैन ही थे। संक्षेपमें यह कहा जासकता है कि सदासे इस जिलेके राजाओंका धर्म जैन धर्म था। इस जैन धर्मका प्रभाव उस समय ब्राह्मणोंके प्रभावसे रुकना प्रारम्भ हुआ, जिस समय राजा विष्णुवर्धन होयसल बल्लाल जैन धर्मसे विष्णुधर्मी हुआ। पीछे सत्रहवीं शताब्दीमें लिंगायत राजा वेंकटप्प नायकने जैनियोंके शेष प्रभावको भी जर्जरित कर डाला अस्तु।

मूडबिद्रीमें बड़े बड़े १८ जैन मंदिर

हैं। इस देशमें मंदिरको बस्ती कहते हैं। यह बस्ति शब्द वसुतिका अपभ्रंश ज्ञात होता है। इन मंदिरोंमें "गुरु बस्ती" नामका मंदिर सर्व प्राचीन एवं एक हजार वर्ष पहलेका है। इसमें श्री पार्श्वनाथस्वामीकी कृष्ण पाषाणकी कायोत्सर्ग प्रतिमा बहुत ही मनोज्ञ है। इसी मंदिरमें धवल, जयधवल, महाधवल नामके तीनों ग्रंथराज विराजमान हैं। इसीसे इसको सिद्धांत मंदिर भी कहते हैं।

लगभग शालिवाहन शक १७४७ सन् १८२६ के "जैनाचार" ग्रंथके कर्ता चंदय्य उपाध्यायने मूडबिद्रि तथा उक्त गुरुबस्तीके विषयमें इस प्रकार लिखा है—"इसका प्राचीन नाम मूडुबिदुरे हैं। इसको जैन काशी भी कहते हैं। कदंबवंशी राजाओंके शासन कालमें यह प्रांत अधिक उन्नतावस्थामें रहा। उस समय इस प्रांतमें जैनधर्मका विशेष प्रभाव था। पूर्वसे ही मूडबिद्रीमें प्रतिवर्ष हजारों यात्री यात्रार्थ बाहरसे आया करते थे। गुरुमुखसे प्रसिद्ध होनेके हेतु उक्त पार्श्वनाथ मंदिरका नाम गुरुबस्ति पड़ा। (देखो प्रथम संधि)

आगे इसी ग्रन्थमें पार्श्वनाथ मंदिर गुरुबस्तिके नामसे कब और क्यों प्रसिद्ध हुआ इस बातका खुलासा इस प्रकार दिया है—बनवासिके प्राचीन कदंबवंशी (७७) राजाओंके पीछे यहां बर्बर नामका नीच जातिवाले (२१ राजा क्रमशः) शासन करते रहे। उनके पीछे पुनः हंगलके कदंबवंशी (७७) राजाओंने यहां राज्य किया। बीचमें अर्थात् बर्बर राजाओंके शासनकालमें इस प्रांतमें जैनधर्म बहुत क्षीण होगया था। उस समय मूडबिद्रीका पार्श्वनाथ मंदिर जंगलमें छिपा हुआ था। पीछे हंगलके कदम्ब-वंशी राजाओंके शासनकालमें जैनधर्म पूर्ववत् जाग्रत हुआ। इसी जमानेमें एक रोज एक मुनिमहाराज घूमते२ पार्श्वनाथ मंदिरकी ओर गये। वहां उन्होंने परस्पर वैर रखनेवाले मूषिक, सर्प आदि जानवरोंका एकत्र सम्मेलन देखा। इस दृश्यसे उनको बड़ा आश्चर्य हुआ और वह इधर उधर चारों ओर खोजने लगे। अन्तमें उनको उक्त दिव्य पार्श्वनाथ मंदिरका दर्शन हुआ। तुरंत ही नगरमें आकर उन्होंने इन सब बातोंको श्रावकोंसे कही और शीघ्र ही मंदिरका जीर्णोद्धार भी हुआ। इसीसे अर्थात् गुरुमुखसे प्रसिद्ध होनेके कारण इस मंदिरका नाम गुरुबस्ति प्रसिद्ध हुआ। (देखो—प्रथम संधि) परन्तु इस विषयमें विशिष्ट प्रमाणोंकी आवश्यकता है। क्योंकि इतिहाससे विदित होता है कि प्राचीन कदम्बोंके पीछे हंगलके कदम्बोंके पहले मध्यमें चालुक्योंने इस जिलेमें शासन किया है। मगर वे न जैनधर्मके द्वेषी थे न नीच जातिके ही। कुछ विद्वानोंका मत है कि कई वर्ष पहले श्रवणबेलगोलाके भट्टारकजीने इसका जीर्णोद्धार कराया था इसीसे इसको गुरुबस्ति नामसे पुकारते हैं। परन्तु उपाध्यायजीने लिखा है कि उस समय मूडबिद्रीमें जैनियोंके ७७० घर थे। साथ२ उनका यह भी कहना है कि धवलादि तीनों ग्रन्थ पहले यहां नहीं थे पीछे यहां आये और मूडबिद्रीमें गुरुपीठ शक १७४७ सन् १८२६में श्रवणबेलगोलाके भट्टारकजीके द्वारा स्थापित हुआ। (देखो—क्रमशः संधि प्रथम तथा अठारह)।

अब उक्त गुरुबस्तिमें विद्यमान ३३ अमूल्य जैन मूर्तियोंका विशिष्ट विवरण "दिगंबर जैन" के विज्ञ पाठकोंके सामने उपस्थित किया जाता है:—

क्रम नं०	किनकी मूर्ति	किस चीजकी	अनुमति नाप	वि० विवरण
१	चन्द्रप्रभस्वामी	चान्दी	×	×
२	पार्श्वनाथस्वामी	सुवर्ण	लगभग ४ इंच	×
३	चन्द्रप्रभस्वामी	,,	,, ९ इंच	कायोत्सर्ग
४	पंचपरमेष्ठी	,,	,, ×	बीचमें पार्श्वनाथजीकी मूर्ति अष्टप्रातिहार्य सहित है
५	अर्हंत भगवान्	पन्ना	,, ३ इंच	मूर्ति त्रिमेखलापीठ सहित पद्मासनमें है
६	सिद्ध भगवान्	स्फटिक	,, ६ इंच	×
७	रत्नत्रय	स्फटिक नीलम	, १½ ,,	अगलबगलमें स्फटिक और बीचमें नीलमकी मूर्ति है
८	रत्नत्रय	नीलम, पन्ना, माणिक्य	,, १½ ,,	×
९	पार्श्वनाथ	ताड़पत्रकी जड़	,, ४½ ,,	×
१०	,,	गरुड़मणि	,, ८ ,,	यह रत्नविषको निवारण करनेवाला है
११	,,	पन्ना	,, ५ ,,	सुना है यह रत्न स्पर्शमात्रसे दूधको दही बनाता है।
१२	सिद्धभगवान्	स्फटिक	,, ८ ,,	कायोत्सर्ग
१३	अरहंत भगवान्	गोमेधिक	,, ४ ,,	पद्मासन
१४	,, ,,	पुष्प राग	,, २ ,,	चतुर्मुख
१५	,, ,,	पन्ना	,, २½ ,,	×
१६	,, ,,	वैडूर्यमणि	,, ३ ,,	कायोत्सर्ग
१७	नेमिनाथ	पन्ना	,, ३ ,,	,,
१८	पद्मप्रभ	प्रवाल	,, २ ,,	पद्मासन
१९	मुनिसुव्रत	नीलम	,, ३ ,,	कायोत्सर्ग
२०	पार्श्वनाथ	प्रवाल (मूंगा)	,, २½ ,,	,,
२१	वासुपूज्य	माणिक्य (लाल)	,, २ ,,	पद्मासन
२२	नेमिनाथ	नीलम	,, २ ,,	,,

२३	अरहंत भगवान्	पन्ना	लगभग ३ इंच	पद्मासन
२४	मुनिसुव्रत	नीलम	,, ३ ,,	कायोत्सर्ग
२५	गोम्मटस्वामी	मोती	,, १/२ ,,	पद्मासन
२६	चन्द्रप्रभ	मोती	,, १½ ,,	पद्मासन
२७	पद्मप्रभ	पद्मराग मणि (लाल)	,, १ ,,	,,
२८	पार्श्वनाथ	स्फटिक	,, ६ ,,	,,
२९	आदिनाथ	माणिक्य (लाल)	,, १½ ,,	,,
३०	चन्द्रप्रभ	हीरा	,, २ ,,	,,
३१	अरहंत भगवान्	पन्ना	,, ३ ,,	,,
३२	पार्श्वनाथ	इंद्रनील (पन्ना)	,, ३ ,,	,,
३३	सिद्धभगवान्	स्फटिक	१ फीट २ ,,	,,

उक्त मूर्तियां चतुर्थकालकी कहलाती हैं। इनका दर्शन करनेसे बड़ा आनंद होता है। इन मूर्तियोंसे प्राचीन जैनियोंकी धर्मभक्ति और धनबाहुल्यता स्वयं झलकती है। दक्षिणके धनाढ्य जैन व्यापारी इन मूर्तियोंको बनवानेके लिये अन्यान्य रत्नोपरत्नोंको प्रायः बाहरसे लाए होंगे।

इस मंदिरके एक शिलालेखसे ज्ञात होता है कि यह मंदिर शकवर्ष ६३६ में स्थानीय जैनपंचोंके द्वारा बनवाया गया। इस मंदिरकी लागत ६ करोड़की गिनी जाती है। वह इन रत्न प्रतिमाओंको मिलाकर ही होगी। इस मंदिरकी दूसरी मंजिलपर एक वेदी है। उसमें भी कई अनर्घ्य प्रतिमाएं विराजमान हैं। कहते हैं कि इस मंदिरके बीचमें करोड़ों रुपयेकी भूगत द्रव्यनिधि भी है। मंदिरका प्रबंध स्थानीय भट्टारकजीके द्वारा ही होता है। जैन मठमें लगभग तीन लाखका फंड है। वार्षिक आमदनी भी करीब पांच हजारकी है। जीर्णोद्धार फण्डमें करीब पचास हजार जमा है। स्थानीय जैन पाठशाला भी सन्तोषप्रद चल रही है। इसमें २० हजारका फण्ड है। अस्तु, इन स्थानीय संस्थाओंका विशेष परिचय फिर कभी दिया जायगा क्योंकि वह विषयान्तर है।

क्रांतिकारियोंके प्रति।

मोहनसे नेता 'प्रिय' शांतिके उपासक हैं,
भूलहू परत नाहिं, क्रांतिके झकोरेमें।
देशके ही हितकाज, छोड़िकें सकल साज,
भए हैं लंगोटीबाज, देखिलेउ धौरेमें ॥
संकट विपति सब, झेलत प्रसन्नता सूं।
द्वेषता न राखें नेक, कारे और गोरेमें ॥
काहेकूं अनारी तुम, करिके अनर्थ ऐसे।
भारत लजाते, चढ़ि फांसीके हिंडोरेमें ॥

'प्रिय'

जैनधर्मपर भयंकर अत्याचार।

पं० परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ, सूरत।

[जर्मन जैन विद्वान प्रोफेसर हेल्मुट ग्लाजेनाप (बर्लिन) द्वारा Jainismus नामक एक विद्वत्ता एवं खोज पूर्ण ग्रंथ लिखा गया है। उसका जैन धर्म प्रसारक सभा भावनगरने गुजराती भाषांतर छपाया है। इस ग्रंथमें जैनधर्म सम्बन्धी भिन्न २ विषयोंपर करीब ५०८ पृष्ठमें विवेचन किया गया है। उसमेंसे 'अवनति' नामक पाठका हिंदी अनुवाद पाठकोंके समक्ष उपस्थित किया जाता है। इस प्रकरणको पढ़कर आपके हृदयकी दीवालें हिल जायगी।]

महावीर स्वामीके समयसे ही जैनधर्मको दो प्रतिस्पर्धी शक्तियोंके सामने युद्ध करना पड़ा है। वैदिक ब्राह्मण धर्मके विरुद्ध और जैनधर्मके विरुद्ध। वेदके सिद्धांतोंके सामने पशुबलिके कारण और समाजमें ब्राह्मण दूसरे वर्णोंके उच्च स्थान दबा बैठे थे इस परिस्थितिके कारण जैनधर्मका ब्राह्मण धर्मके साथ युद्ध चलता था।

बौद्धधर्मने थोड़े समय तक तो जैनधर्म पर ऐसा प्रचंड दबाव डाला कि उनको अपने अनेक प्रदेश खाली करना पड़े थे। इनकी मातृभूमि बौद्धोंका ही प्रदेश हो गया और वहां इतने अधिक विहार बंधवाये गये कि जिससे इस प्रदेशका नाम ही विहार होगया ! परन्तु समय बीतनेपर वहांसे उनको खिसकना पड़ा। दक्षिण और पश्चिममें तो यह जैनधर्मकी बराबरी कर ही न सका था।

इसके अतिरिक्त कुमारिलने करीब ई० स० ७००) और शंकरने (ई० स० ७८८-८२०) फिरसे ब्राह्मण धर्मकी स्थापना की ! और समस्त भारतमेंसे बौद्ध धर्मको विदा किया। इस प्रकार यह अपनी जन्मभूमिमेंसे अस्त हो गया। वैदिक यज्ञकांडके पुनरुद्धारक कुमारिलने और मायावाद ब्रह्मवादके स्थापक महान शंकरने वेदधर्म विरोधी जैनधर्मके विरुद्ध अपने तमाम शास्त्रीय शस्त्रोंके द्वारा युद्ध किया। और यह युद्ध धीरे २ ऐसा बलवान हुआ कि जैनधर्मको नम्रीभूत होजाना पड़ा। हालां कि इसने पूर्ण बलसे अपने रक्षणका प्रयत्न किया था फिर भी अनेक कारणोंसे यह कमजोर होगया और डिग गया।

ब्राह्मणधर्मके पुनरुत्थानके कारण वैष्णव और शैवसम्प्रदाय भी नये रूपसे बलवान बन गये, यह दोनों संप्रदाय जैनधर्मके भयंकर शत्रु बन गये और दक्षिण भारतमें इन्होंने जैनधर्मपर भयंकर प्रहार किया।

नाजसंबर और अप्पर (७वीं सदीमें) तथा सुन्दर मूर्ति (८ या ९ वीं सदीमें) और माणिक्कवाचकर (९००के करीब) तथा ऐसे ही अन्य शैव भक्तोंने अपने भजनोंसे अनेकोंको जैनधर्ममेंसे खींच करके शैवधर्ममें ले लिया। अप्परने इसी प्रकारसे पल्लव राजा महेन्द्रवर्माको शैवधर्ममें ले लिया। उसके बाद इस राजाने कडलोरका

जैन मंदिर तोड़कर शिव मंदिर बनवाया !

चोलवंशके राजाओंके दरबारमें तो शैवोंको खास सन्मान प्राप्त हुआ। इनके प्रभावका खास कारण तो यह था कि मदुराके पांड्य राजा भी जो अन्ततक जैन थे वे भी शैव बन गये। पाण्ड्य राजा सुन्दरने (११ वीं सदीमें ?) चोल कन्या राजा राजेन्द्रकी बहिनके साथ विवाह किया और रानीके प्रभावसे सुन्दरने शैव धर्म स्वीकार कर लिया। पीछे सुन्दर इतना दुराग्रही शैव हुआ कि जिनने शैवधर्म स्वीकार नहीं किया उनपर अनेक जुल्म किये। जिन लोगोंने जैन धर्म नहीं छोड़ा ऐसे करीब आठ हजार लोगोंको इसने फांसीपर चढ़ानेका हुकुम किया !!! कहा जाता है कि इन इन भाग्यहीन धर्मवीरोंकी प्रतिमायें उत्तर आर्काटमें आये हुये तिरुवतूरके देवालयोंकी भीतोंपर अंकित हैं।

जैन धर्मके दूसरे प्रचण्ड शत्रु शैवधर्मके लिंगायत संप्रदायी निकाले। बसव नामक ब्राह्मणने लिंगायत धर्मकी स्थापना की अथवा उसका पुनरुद्धार किया। बसव कलचुरि राजा बिज्जलका (११५६–११६७) अमात्य था। जैनोंका कहना है कि 'बसवने विवेकशून्य बनकर अपने महाप्रचंड बलसे अनेक लोगोंको अपने एकेश्वर संप्रदायका शिष्य बनाया !' लिंगायतोंने जैनोंपर असह्य अत्याचार किये। उनकी जानमालका नाश किया, उनके मंदिर तोड़ डाले और उन्हें स्वधर्मी बना लिया। इस नवीन संप्रदायके प्रचारमें आचार्य एकांत दरामय्यका नाम विशेष महत्वशाली है।

लिंगायत अपनेको वीर-शैव कहते हैं। इन्होंने थोड़े समयमें ही कानड़ी और तेलुगु प्रदेशोंमें उत्तम स्थान प्राप्त कर लिया। इन लोगोंका धर्म मैसूर, उम्मतुर, वोडेयर (१३९९–१६१०) तथा केलडीके नायक राजाओंका (१५५०–१७६३) राजधर्म था। अभीतक दक्षिण भारतके पश्चिम किनारेके प्रदेशोंमें बहुसंख्यक लोग यह धर्म पालते है। जैन लोगोंके साथ इन लोगोंका संबंध हमेशासे द्वेष भाव पूर्ण रहा हुआ मालूम होता है। एक शिलालेखसे मालूम होता है कि १६३८ में एक मतांध लिंगायतने हलेबीडके जैनोंके एक मुख्य हस्तिके स्तम्भपर शिवलिंग चिन्हित कराया। जैनोंने इसका घोर विरोध किया। अन्तमें सुलह हुई। सुलहकी शर्त यह हुई कि जैनोंको अपने मंदिरमें शैव क्रियाकाण्डके अनुसार पहिले भस्म और ताम्बूल लाना चाहिये और इसके बाद अपने धर्मकी क्रिया करना चाहिये !

जब दक्षिण भारतमें शैवधर्म इस तरह नये रूपसे महत्वशाली बन रहा था उसी समय वैष्णवधर्ममें भी प्रचण्ड विकाश होरहा था।

प्रसिद्ध आचार्य रामानुज (१०५०–११३७) त्रिचिनोपलीके पास श्रीरंगमें वैष्णवधर्मके विशिष्टाद्वैत मतका सपादन करते थे और लोगोंको अपना शिष्य बनाते थे। चोल–राजाने रामानुजाचार्यसे "विष्णुसे शिव बड़े हैं" इस मतके प्रचार करनेको कहा, मगर आपने यह स्वीकार नहीं किया और वहांसे अन्यत्र चले गये। तब होयसल राजा बिट्टिदेवने उन्हें आश्रय दिया और उनका शिष्य होगया। तथा पहिलेके जिन सहधर्मी जैनोंने इस नये धर्ममें आनेसे

इंकार किया उन्हें घानीमें डालकर पिलवा डाला !!!

सन् १३६८ के एक शिलालेखसे मालूम होता है कि इसके बाद भी वैष्णवोंने जैनियोंपर बहुत जुल्म किये थे। इस शिलालेखमें बताया गया है कि—जैनोंने विजयनगरके राजा बुक्करायाके पास फरियाद की थी कि हमें वैष्णव लोग सताते हैं। तिसपरसे राजाने आज्ञा दी कि "हमारे राज्यमें सभी धर्मके लोगोंको समान भावसे रहने और अपने२ धर्म पालन करनेकी संपूर्ण स्वतंत्रता है।" इस शिलालेखमें यह भी बताया गया है कि "श्रवण-बेलगोलमें गोम्मत (गोमट्टस्वामी) की प्रतिमाको कोई भ्रष्ट न करे, इसीलिये वहां २० आदमियोंका पहरा रखा गया था। और खंडित किये गये देवालयोंके पुनरुद्धारकी आज्ञा दी थी।"

रामानुजके सौ वर्ष बाद कानड़ा प्रदेशमें एक दूसरे वैष्णवाचार्य हुये। उनका नाम मध्व अथवा आनंदतीर्थ (११९९-१२७८) था। इनने द्वैत मतका प्रचार किया। पश्चिम किनारेपर इनके अनेक अनुयायी होगये।

इस संप्रदायने भी जैनधर्मपर बड़ा धक्का लगाया। इसके बाद ब्राह्मण कुलोत्पन्न निम्बार्काचार्यने (१३ वीं सदीमें !) भेदाभेद वादका प्रचार खास करके उत्तर भारतमें मथुरामें किया। परन्तु इनके द्वारा जैनोंको हानि हुई मालूम नहीं होती है। एक लेखसे तो मालूम होता है कि जैनोंने उनके संप्रदायको उखाड़ दिया था, फिर पीछेसे श्रीनिवासने उसका पुनरुद्धार किया था।

पश्चात जैनोंके जबरदस्त विरोधी तैलुगु प्रदेशमें शुद्धाद्वैत संप्रदायके स्थापक वल्लभ (वल्लभाचार्य) नामक ब्राह्मण हुये (१४७८-१५३१) मथुरा, राजपूताना और गुजरात प्रांतमें इस संप्रदायका खूब प्रचार हुआ। विशेषतः तो अनेक धनिक व्यापारी जैन इस संप्रदायमें चले गये। इसके अतिरिक्त बंगाली आचार्य चैतन्यने (१४८६-१५३३) कृष्ण भक्तिके भजन गाये। उनके आध्यात्मिक उपदेशका प्रभाव समस्त भारतमें फैल गया और उसमें अनेक जैन खिंच गए।

हिंदू धर्मकी उन्नत कलाके कारण आम जैनधर्मके अनेक शिष्य उस धर्ममें चले गये हैं। इतना नहीं, मगर अभी इसके जो शिष्य हैं उनमें भी हिंदूधर्मके अनेक आचार विचार प्रवेश कर गये हैं। इसी प्रकारसे हिंदूधर्मके जिन देवी देवताओंको जैनोंमें किंचितमात्र भी स्थान नहीं था उन देवी देवताओंका प्रवेश हो गया है। [नोट—खेद है कि त्रिवर्णाचार, चर्चासागर आदि ग्रंथोंका मुनिसंघ और पांडोंके आश्रयसे प्रचार होकर इसी अवनतिमें पूरी सहायता की जारही है। जिसका भयंकर परिणाम अभी नहीं कहा जा सकता है !] वेदांतके प्रभावसे अनेक पारिभाषिक शब्द भी जैन साहित्यमें घुस गये है। भावनाओं और सामाजिक जीवनमें भी जैन लोग हिंदुभाव स्वीकार करते जा रहे हैं !

मुसलमान राज्यके नीचे जैन।

मुसलमानोंने भारतपर आक्रमण किया और ई० सन् ७१२ में सिंधमें मुसलमान राज्यकी

स्थापना हुई। महमूदगजनवीने (१००१) अनेकवार भारतपर आक्रमण किया। महमूदगोरीने (११७५) भी इस देशपर सवारी की। इस नई सत्ताके बलपर जैन तथा हिंदुधर्मपर अत्याचार होने लगे। सुलतान अलाउद्दीन महमूदशाह खिलजीने (१२९७–९८) गुजरात प्रांत जीत लिया। और वहांपर जो जुल्म किये गये उन्हें वहांके लोग अभी भी याद करते हैं। मूर्तियां खंडित की गईं, मंदिर तोड़े गए, उनकी जगह मस्जिदें बनाई गईं, ग्रंथ जलाए गए, खजाने लुटे गए, और अनेक जैन मारडाले गए।

मतांध मुसलमानोंने जब द्राविड़ राज्योंको नष्ट किया तब दक्षिणमें भी उन्होंने ऐसे ही भयंकर अत्याचार किये। यह समय जैनोंके लिये घोर संकटका था। शैव और वैष्णव धर्ममें चले जानेसे जैनोंकी संख्या कम तो हो ही गई थी, उसमें भी इन मुसलमानोंने विनाश करना शुरू कर दिया। इस संकटमेंसे बचनेका उपाय मात्र भाग जानेके सिवाय कोई दूसरा नहीं था। जैनोंने अपने ग्रन्थ भण्डार भोंयराओंमें भर दिये। और वहांपर कुछ साधुओंके अतिरिक्त कोई प्रवेश न कर सके ऐसी व्यवस्था कर दी। तथा अपने (जैन) मंदिरोंको मुसलमानी राजाओंको कुछ घाट देकर मतान्धोंके अत्याचारोंमेंसे बचा लिया।

अनेक मुसलमान राजाओंने जैनोंका विनाश अग्नि तथा तलवारोंसे किया, उन्हें बलात्कारसे भ्रष्ट किया, और अनेक अत्याचार किये। यह सब सत्य है, मगर इससे यही निश्चय न कर लेना चाहिये कि जैन और मुसलमानोंका सदा वैरभाव ही रहा है। किन्तु इससे उल्टा यह भी मालूम होता है कि अनेक जैन उपदेशसे भी मुसलमान हुये थे! पीर महावीर खमदायत नामका आरब उपदेशक १३०४ में भारतमें आया था। उसने अपने वादविवाद और उपदेशके बलसे दक्षिणमें अनेक जैनोंको मुसलमान बनाया था।।

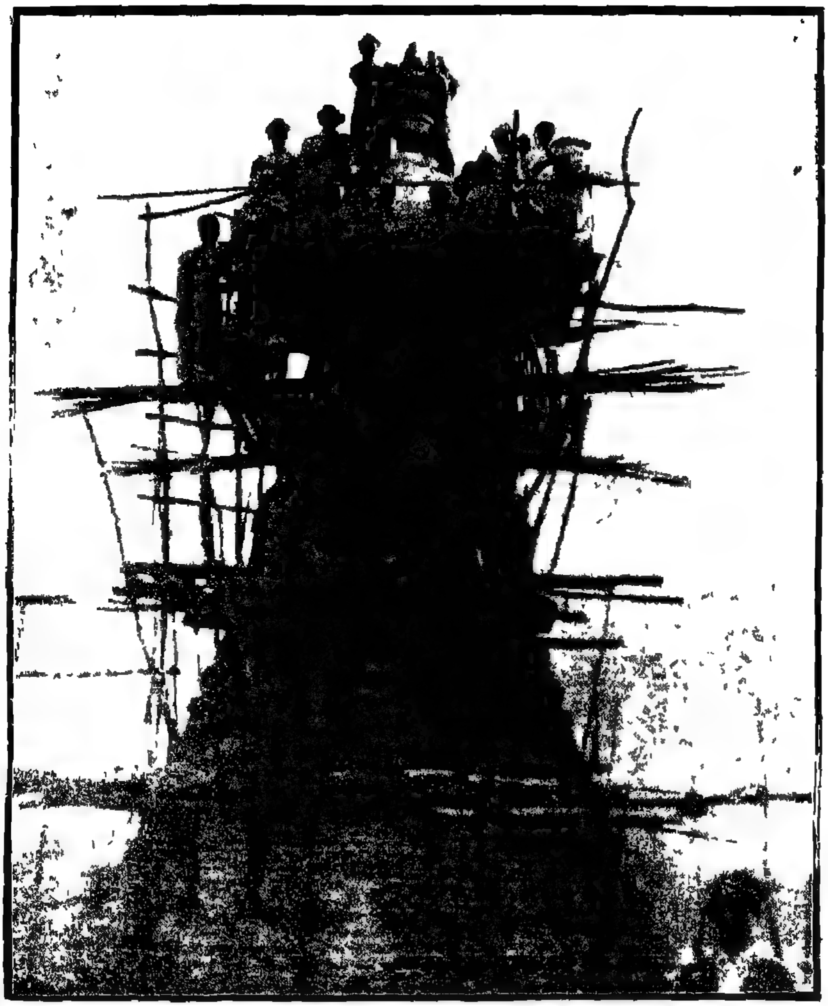
नोट—इस प्रकार न जाने जैनियोंको और कितने ही अत्याचारोंका ग्रास होना पड़ा होगा। एक जर्मन विद्वान द्वारा लिखे गए 'जैनधर्म' नामक ग्रन्थका यह एक उद्धरण है। वर्तमानमें भी जैनियोंका हरतरहसे पतन हो रहा है। अगर अभी भी समाज नहीं चेतेगी—अपनी उन्नतिका उपाय नहीं विचारेगी तो वह समय नजीक है, जब जैनधर्म और जैन समाजका नाम मात्र कागजोंमें ही लिखा रह जायगा!

जैन समाज! सावधान!!!

खादीमें।

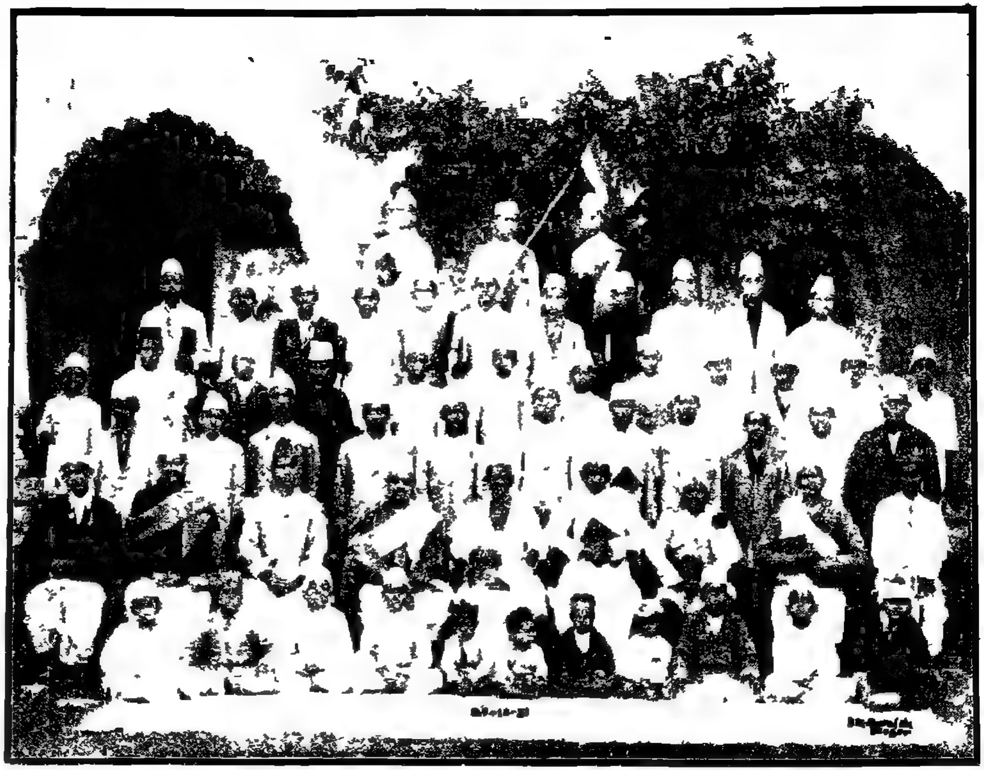
मीलके महीन पहैन, चरबी लपेटे वस्त्र।
ऐसे बुद्धि हीन, जनि बैठे थे समादीमें॥
नाम मिटि जातो, सब भारत कलाको और।
कोरिया जुलाहे, मरिजाते बरबादीमें॥
थोरेसे ही दाममें, सरोश बनिजातो कब।
आबरू बढ़ातो, कौन व्याह और शादीमें॥
मोहनसे नेता 'प्रिय' जो न बतलाते आज।
'समता सुतंत्रताका, सूत्र एक खादीमें॥'

'प्रिय'।



दिगम्बर जैन नवीन मन्दिर-बड़वानीके शिखरका दृश्य।

कलश-ध्वजारोहणके समय अंजड़ नि० श्री० सेठ जीवनलाल चम्पालालजी और उनकी धर्मपत्नी कलश चढ़ारहे हैं।



श्री सतर्कसुधातरंगिणी दि० जैन संस्कृत पाठशाला—सागरके विद्यार्थी व कर्मचारीगण।

कुर्सी पर बैठे हुए—१ छात्र, २-पं० कमलकुमारजी व्याकरणतीर्थ, ३-पं० पन्नालालजी काव्यतीर्थ, ४-पं० दयाचन्द्रजी शास्त्री न्यायतीर्थ, ५-श्री० सेठ पूर्णचन्द्रजी बजाज मंत्री, ६-पं० माणिकचन्द्रजी न्यायतीर्थ, ७-पं० मूलचन्द्रजी जैन सुप्रिन्टेन्डेन्ट, ८-बाबू छोटेलाल आसिस्टेन्ट सुप्रिन्टेन्डेन्ट, ९-छात्र।

जैनविजय प्रेस-सूरत।

स्त्री जीवन सार्थक कब है ?

(लेखिका.-काशीबाई, श्राविकाश्रम-बम्बई)

बाल्यावस्था—माता पिता जिन्होंने कि अनेकों कष्ट सहन कर बड़े लाड़ प्यारसे तुमको जन्म दिया और तुम्हारी तन मन धनसे परवरिश की है, जिनके ऋणसे तुम जीवन पर्यंत निवृत्त नहीं होसक्ती हो, उन माता पिता तथा समस्त कुटुम्बीय आदि गुरुजनोंकी आज्ञा प्रमाण विनयपूर्वक चलना और अपने समस्त लघुजनोंपर प्रेम बर्ताव करना, सुशीलता सहित अपने आचार विचारोंको बिलकुल निर्मल रखते रहनेका प्रयत्न सीखना, और मन लगाकर शिक्षादि उत्तम २ गुण प्राप्त करना, दीनादि दुःखी, रोगीकी सेवा करना आदि सीखना ही बालिकाका परम कर्तव्य है। क्योंकि यह स्त्री पर्यायको किसी किसीने महा निंद्य माना है। इस लिये हमेश इस निंद्यपनेसे छुटकारा पानेकी कोशिश करनी चाहिये।

युवाकाल-सधवाः—विवाहित होनेपर अपने पतिदेवकी सेवामें दत्तचित होना चाहिये। पतिके सुखसे सुखी और दुखसे दुखी होना प्रत्येक सौ०वती बहिनोंका उत्कृष्ट कर्तव्य है। जैसे कुरूपकी शोभा विद्यासे, तपस्वियोंकी सुन्दरता क्षमासे और हाथोंकी शोभा कङ्कणादि गहनोंको छोड़ दान देनेसे तथा मुखकी चमक ताम्बूलादिके सिवाय सत्य मीठी, विनययुक्त कोमल वचनादिके बोलनेसे होती है, वैसे ही कोकिला सदृश विनययुक्त, मीठी बोलीसे तथा मन वचनादिसे गाढ़ी भक्तिपूर्वक पति सेवा करना ही (पतिव्रत धर्म) सधवा बहिनोंका परम भूषण है। यही करना अपना उत्तम कर्तव्य समझें व इसके पथपर चलें क्योंकि पतिको स्त्रीके लिये देवकी उपमा दी है।

सधवा बहिनोंका सुख दांपत्य प्रेमपर ही निर्भर है। जहां दाम्पत्य-प्रेम समुचित नहीं है अर्थात् मूर्ख स्त्री अपने पातिव्रत धर्मसे अनभिज्ञ होती है वहां सारे ऐश्वर्य, सुखशांति, मान, मर्यादा और दंपतिमें अयोग्य बर्ताव दृष्टिमें आने लगते हैं। इसलिये सब सधवा बहिनोंको चाहिये कि पतिके अतिरिक्त अपने पूज्य सास ससुर आदि सब कुटुम्बियोंको अपने मैहर वाले मनुष्योंसे भी ज्यादा मान प्रतिष्ठा करें और तन मनसे उनकी पूर्ण रीतिसे सेवा करती हुई संतान पालनमें तत्पर रहें। और सुन्दर, कुरूप, लूला, बहरा, गूंगा, अंधा, कोढ़ी, निर्धन, धनवान, रूपवान, मूर्ख, पंडित कैसा भी पति हो उसीको अपना सर्वस्व समझ सदैव उन्हें गौरवकी दृष्टिसे देखती हुई उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर स्वार्थको तिलाञ्जलि देकर उनके सुख दुःखमें भाग लेनेमें तत्पर रहना ही श्रेष्ठ समझें। क्योंकि स्त्री पतिकी अर्द्धांगिनी तथा गृहस्थीके समस्त कार्योंकी जड़ कहलानेवाली देवी समझी जाती हैं।

अगर दुर्भाग्यसे पति व्यभिचारी अन्यायी आदि कुमार्गी मिला हो और स्त्री विद्वान हो

तो वास्तवमें वह पत्नी, अपने पतिदेवको उन मार्गोंसे हटानेके लिये योग्य, वैद्य, गुरू, मित्रादिके समान इलाज कर सुमार्गकी ओर आकर्षित कर लेती हैं। इत्यादि जैसे कि पूर्व सतियोंने समस्त सुखोंको तिलांजलि देकर अपने दांपत्य प्रेमकी रक्षाको ही आवश्यकीय समझा, उन्हींका अनुकरण करती हुई जिस प्रकार पति पूर्णतः संतुष्ट रहें वैसे ही कार्य कर सर्वदा अपने पतिको आनंदित रखनेका उचित उपाय सोचती हुई अत्यन्त पातिव्रतको बढ़ावें और ससुरालवालेंके साथ भी यथायोग्य विनय, और प्रेमभाव रखकर सन्तान पालनपर अधिक ध्यान देते हुए निर्मल रत्नरूपी शीलव्रतको दृढ़ता पूर्वक पालन करें, इसके सूक्ष्म रीतिसे तो कई भेद हैं तथापि मुख्य दो ही प्रकार हैं उनमेंसे दम्पतिको स्वस्त्री और स्वपति सतोष यह गृहस्थी रहनेमें पालन करना और पूर्ण ब्रह्मचर्य तो कुमारावस्था और विधवापन हीमें विशेष पालन किया जा सक्ता है।

विधवा-दुर्भाग्यसे अगर विधवा हुई तो इस अवस्थामें और भी पूर्णरूप अखण्ड सद्गीत तथा उत्तम उत्तम रास्ता दिखलाने तथा विघ्न रहित संसारसे तारनेवाले बहुमुल्य ब्रह्मचर्यको दृढ़तासे पालन करना, धर्मध्यान करना, दानादि सत्कर्म करना, अनाथ, दीनादिकी सेवा करती हुई चारों संघको दान देना, उदासीन भावसे निवास करना, श्रृंगार तथा उत्तम उत्तम वस्त्र मिष्टान्न भोजन करना तथा नाच, गान, तमासे आदिकी ओर मनको न डुलाना, मनमें किसी तरहके बुरे भावोंका विचार न लाना इत्यादि विधवाओंका सबसे श्रेष्ठ कर्तव्य है। क्योंकि कुमार और विधवा कालमें ही निष्कलंक बिना खटके इच्छित धर्मध्यान करनेका अवसर मिलता है।

यह स्त्री पर्याय जीवन पर्यंत पराधीन रहती है। इसीसे यह महा निंद्य है। कहा है कि-त्रिया जन्म जिनादियों प्रभुजी, अरज करूँ दुःख भरी भरम्। जनम गमाया सुख नहीं पाया संकटमें गये तीनोंहीपन। क्योंकि जिस समय कन्याका जन्म होता है, उसी समयसे मनुष्य मेरा नाम सुनते ही उदास होजाते और सब अपने २ मुखोंको मोडने लगते हैं। इत्यादि।

वृद्धावस्था-जब प्रत्येक अंग शिथिल पड़ जाते हैं तब कुछ भी उत्तम२ कार्यके करनेमें असमर्थ होजाना तथा दूसरेका मुख देखना पड़ता है। उस समय सब प्रकारसे समान भाव रखते हुये एक धर्मको ही सच्चा हितू समझ उसीमें सब तरफसे मोह छोडकर धर्ममें संलग्न होकर अन्त समयमें समस्त जनोसे क्षमा करवाकर और स्वयं क्षमादि धारण करती हुई दानादि करनेमें अपने मनको लगाना ही उत्तम कर्तव्य समझती रहें। इत्यादि यह स्त्री कर्तव्य अत्यन्त विस्तृत है जिसके वर्णन करनेमें मैं असमर्थ हूं। इसप्रकार यथासमय अपना कर्तव्य पालन करनेमें ही स्त्रीजीवन सार्थक होसकना है।

महात्मा गांधी और गैरिजन।

(प्रो० एच० आर० मस्तके लेखसे अनुवादक:—बाबू अनन्तप्रसाद जैन-देवबन्द।)

इन दिनोंमें जब संसारका ध्यान वेगके साथ भारतकी ओर खींचा जा रहा है और महात्मा गांधीके विचार संसार भरकी उत्तेजना अपनी ओर उत्पन्न कर रहे हैं यह बात नहीं भुलाई जासकी कि अमेरीकनोंको यह स्मरण कराया जावे कि भारतीय देवता उनके स्वतंत्र करानेवालेके प्रति ऋणी है। इस देशमें यह हमारी प्रकृति होगई है कि हम अपने आपको बुरा भला कहते है। कारण यह है कि हममें आत्मीयताकी न्यूनता है। यह स्मरण करना अधिक प्रभावशाली है कि हम भी देवता और ऋषि रखते हैं। मनुष्यकी स्वतंत्रताकी दूसरी बड़ी भारी लड़ाईकी उपस्थितिमें यह बतलाना अच्छा होगा कि यह विचार जिसके द्वारा महात्मा गांधी बृटिश राज्यकी जड़े हिला रहे हैं कोई पूर्वीयक्षेत्रका नवीन आश्चर्यशाली टुकड़ा नहीं नहीं है किंतु संसारके इतिहासके सब समयोंकी कुछ विशेष आत्माओंका स्वामित्व है। हम अमेरिकन होते हुये अपने तत्ववेत्ताकी याद करा सक्ते हैं जिनका विचार और सूक्ष्मदृष्टि किसी सीमा तक भारतीय नेताके उपायों और कार्यपर प्रभाव डालनेकी अधिकारिणी है जिसको भारत देवताके तुल्य समझता है।

श्रीयुत सी. एफ. एंड्रूज अपनी नवीन पुस्तक 'महात्माके विचार' में श्रीयुत जे० जे० डोककी अप्रसिद्ध पुस्तक 'दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय देशप्रेमी' से एक निराकरण लिखते हैं। जिसमें महात्मा गांधीके अपने अहिंसात्मक और सत्यमयी विचारकी शक्तिकी विशेषतापर टिप्पणी करते हैं। उसमें वह एक गुजराती कविताको लिखते हैं जिसको उन्होंने बाल्यकालमें सीखा था। अर्थात यदि कोई व्यक्ति तुम्हें पानी पिलाता है और बदलेमें तुम भी उसको पिलाओ यह कुछ नहीं—बुराईके बदले भलाई करनेमें मुख्य सुन्दरता है। वह लिखते है कि बाल्यकालमें भी कविताका उनपर बलवान प्रभाव पड़ा था। जब उन्होंने 'अचलके उपदेश' को पढ़ा तो वे अधिक प्रसन्न हुये और अपने विचारकी अनुमोदना पाई, जिसकी उनको आशा नहीं थी। भगवद्गीताने उनके विचारको अधिक प्रभावित किया और टाल्सटायकी पुस्तक 'ईश्वरका राज्य तुम्हारे भीतर है, ने स्थायी आकृति देदी। महात्मा गांधी पुन: पुनः टाल्सटायको धन्यवाद देते हैं और दक्षिण आफ्रिकामें तो वह अपने आपको टाल्सटायका शिष्य मानते हैं—यह कारण था कि अपनी दूसरी 'उपनिवेश' का नाम उन्होंने 'टाल्सटाय फार्म' रखा था।

अतः महात्मा गांधीका स्वतंत्रताका विचार और अहिंसा बड़े अमेरीकन नेतासे मिश्रित है। क्योंकि टाल्सटायने यह क्रम गैरीजनसे प्राप्त

किया था। टालसटाय चरट काफ औ' होलाकी लिखित 'टालसटायका संक्षिप्त जीवनचरित्र' नामक पुस्तककी भूमिकामें लिखते हैं–

'मैं आपका कृतज्ञ हूं कि आपने मेरे पास गैरिजनका जीवनचरित्र भेजा जिसको पढ़कर स्वयं ज्ञानकी नदी द्वारा पुनः सच्चे जीवनको अनुभव किया। जब मैं गैरीजनकी वक्तृता और लेख पढ़ रहा था तो मेरे दिलपर बड़ी आत्मीक प्रसन्नता उत्पन्न हुई जिसका मैंने २० साल हुए आनंद उठाया था जब मुझे मालूम हुआ था कि अहिंसाके नियमके अर्थ मैं ईसा धर्मकी शिक्षाको उसके वास्तविक उद्देश्यमें लाकर समझ सका हू और जिसने मुझपर ईसाई जीवनमें आनंद पूर्वक उद्देश्यकी प्राप्ति प्रकाशित की है। केवल गैरीजन (बुलाओंके विषयमें मुझे पश्चात् मालूम हुआ) ने ही चालीस साल व्यतीत हुए नहीं माना और उपदेश किया किंतु उन्होंने निस्वत्वोंकी मुक्तिमें अपनी कर्तव्यशील कार्यप्रणालीमें उसको मूलमंत्र माना है।

मनुष्यकी जीवनचर्याकी शिक्षाके लिये गैरीजनने इस विचारको नियम माना है। इसमें ही उनकी बड़ी भारी सराहना है। यदि तब उन्होंने अमेरिकामें निस्वत्वोंकी शांतिमय मुक्ति प्राप्त नहीं की तो भी ऐसा उपाय अवश्य बता दिया है जिससे मनुष्य अमानुषिक शक्तिसे अवश्य मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं अत' गैरीजन सच्ची मानुषिक उन्नतिके सबसे बड़े सुधारक और उन्नति कर्ताओंमें सदा एक गिना जायगा।

इस प्रकार क्रम टालसटाय द्वारा गैरीजनसे गांधीको पहुंचता है। यह बात नहीं कि महात्मा गांधीके विचार और जीवनके लिये अमेरिकन अभिमान खोजनेका प्रयत्न कियेंगे, ऐसा विचार ही अनुचित होगा परन्तु वे धन्यवाद और नम्रताके साथ भारतीय संतके साथ आत्मीक संबंध यहांतक स्थापित कर सकते हैं जहांतक वे अपने उद्धारकर्ताकी शिक्षाके अनुसार जीवन व्यतीत करते हैं। गैरिजन बहुत सीमातक बिना विचार आदर सम्मान आजतक और हमारे समयमें गत शताब्दीका उत्तमतर अग था। उसके उद्देश ही हमारी समाजके जीवनका शरीर और स्वीकार होनेके लिये अब भी युद्ध कर रहे हैं।

हमको एकवार फिर उस नियमको जो गैरिजनने इतना अच्छा देखा और क्रममें टालसटायने स्वीकार किया और जिसको गांधीजी अपने देशवासियोंके जीवन और राज्यप्रबंधमें जो उनपर शासनकर्ता हैं स्थित करनेकी खोजमें हैं प्रकट कर देना चाहिये। 'भावोंकी घोषणा' नामक पुस्तक जो गैरीजनने 'नई आंगल देश निष्क्रिय प्रतिरोध समाजके लिये सन् १८३८ ई० में लिखी, लिखा है–

'हमारा देश संसार है। हमारे देशवासी मनुष्य मात्र हैं। हम अपने देशका उतना ही प्रेम करते हैं जितना दूसरे देशोंका–अमेरीकनोंके स्वत्व सुख और स्वाधीनताए हमको सब मनुष्य मात्रके सामने अधिक प्रिय नहीं है। हमारा विचार है कि यदि एक जातिको यह स्वत्व प्राप्त नहीं है' कि वह अपने आपको वैरियोंसे बचायें और अपने आक्रमणकारियोंको दड दें तो किसी व्यक्तिको अपने

व्यक्तिगत विषयमें भी ऐसा करनेका अधिकार नहीं होगा। जोड़से एक संख्या अधिक महत्व नहीं रखती है। यदि एक व्यक्ति अपने स्वत्वोंकी रक्षा और प्राप्तिमें दूसरेके प्राण ले सक्ता है तो यह अधिकार अवश्य उपजातियों, जातियों और राज्योंको प्रदान किया जाना चाहिये। मनुष्य जातिका इतिहास ऐसे उदाहरणोंसे भरा हुवा है कि शारीरिक बल नैतिक प्रकाशके लिये उपयुक्त नहीं है। मनुष्यका दोषी स्वभाव प्रेमसे वश किया जा सक्ता है। संसार क्षेत्रसे बुराई भलाईसे दूरकी जा सक्ती है। यह अच्छा नहीं है कि अपने आपको बचानेके वास्ते मांसके हाथ पर या मनुष्यपर जिसका स्वांस उसके नथनोंमें है भरोसा किया जावे। दयावान, निरुपद्रव, सहनशील और सप्रेम होनेमें रक्षा है। नम्र ही ससारके स्वामी होंगे, बलधारी जो तलवारको काममें लाते हैं तलवारके साथ ही नाशको प्राप्त होजायेंगे अतः पूर्ण नीति, रक्षा, स्वत्व, स्वाधीनता व्यक्तिगत और साधारण और राजाओं और महाराजाओंके स्वामी उस परमात्माको नमस्कारके लिये हम निष्क्रिय प्रतिरोध या वे रुकावटके उद्देश्यको हृदयसे अंगीकार करते हैं। हमें विश्वास है कि इसमें सब सभव फलोंके लिये जगह है। इससे सब आवश्यकीय वस्तुएं मिल जावेंगी। इसमें ईश्वरकी शक्ति संमिलित है और अन्तमें प्रत्येक आक्रमणकारी शक्तिपर यह विजय प्राप्त करेगा।

यदि हम अपने उद्देश्योंपर स्थित रहे तो यह असभव है कि हम हट सके या कोई धोखा कर सकें या किसी बुरे काममें भाग ले सकें। हम परमात्माके लिये मनुष्यकी प्रत्येक आज्ञापर शिर झुकायेंगे—राज्यकी सब आवश्यक्ताओंकी आज्ञाका पालन करेंगे जो उद्देश्यकी आज्ञाओंके विरुद्ध न होंगी। अतिरिक्त इसके कि नम्रताके साथ आज्ञा भंगके दंडको स्वीकार करते हुये और किसी दशामें कानूनके कार्यको नहीं करेंगे।"

यह निष्क्रिय प्रतिरोधका उद्देश्य है जिसको गैरिजनने इतना अच्छा प्रगट किया और टालस-टायने पूर्ण स्वीकार किया और जिसको गांधीजीने अपनी जीवनलीला और युद्ध जो उन्होंने दक्षिण आफ्रीका और भारतवर्षमें प्रचलित की हैं, का मूल बनाया है।

श्रीयुत एंड्रूज कहते हैं 'यह कठिन है कि पश्चिमवासी यह जानें कि सब धर्मका उनके लिये यह हृदय है। यह पूर्णतया उनके मस्तिष्कमें सच्चाईसे घर कर गया है। वे मानते हैं कि इस संसारमें जीवन और परमात्माकी सत्यता इस उद्देश्य—प्राणोंकी पवित्रता और हिंसाकी अवज्ञामें पाई जाती हैं।' यह केवल आज्ञाकारी ही उद्देश्य नहीं है, किन्तु सब सम्बंधोंमें स्वीकृत पवित्रता चाहता है।

म० गांधीजी कहते हैं कि हिंसा निष्क्रिय प्रतिरोधके अवज्ञाकारी दृष्टिकोणने ही हमको हिंसाकी दूसरी घृणाकारी दशाओंसे अनभिज्ञ बना दिया है। उदाहरणतः कटुशब्द, कटुआज्ञायें, अहित कामना, क्रोध, ईर्षा और अदयाकी इच्छा, इसने भुला दिया है कि मनुष्य और पशुके सहज अत्याचार मूल और लूट जिसके लिये वे स्वार्थी ईर्षाके कारण अभियुक्त है, निर्बलोंका इच्छित अत्याचार और आधीनता और उनके भाव स्व सम्मानका नाश जिसको हम

आज तक अपने चहुंओर देखते हैं, में सहृदय प्राण होनेसे अधिक हिंसा है। पर निष्क्रिय, प्रतिरोध कर साधारण स्वीकृत उद्देश है जिसको म० गांधीजी त्याग संबंधके भयानक प्रचारमें भारतवर्षमें बृटिश राज्यके दोषोंके विरुद्ध प्रयोग कर रहे हैं। चूंकि हम दूसरे युद्धको—उसकी असफलताको—कष्टको और हिंसाकी घटनाओंको देख रहे हैं, संभव है कि युद्धको जीवन प्रदान करनेवाले भावको वो अधिक समझेंगे, यदि हम गैरिजनके शब्द दोहरायें:—

'जब कि हम उद्देश्य विक्रिय प्रतिरोध और अहिंसाको प्रतिद्वन्दीके विरुद्ध स्वीकार करते हैं तो हम नैतिक और आत्मीक उपायसे परमात्माके नाममें शूरवीर उपायसे जिन्दा और शरीरको काममें लाते हैं। छोटी या बड़ी जगह अन्यायका विरोध करते हैं। सब वर्तमान राजनैतिक कानूनी और धार्मिक दोषोंके लिये अपने उद्देश्योंका प्रयोग करते हैं और वह समय शीघ्र आते हैं जब सब संसारकी आधुनिक राजसत्ताएं हमारे ईश्वर परमात्मा ईसाकी राजसत्ताए होजावेंगी और वह हमपर सदैव आज्ञा करेगा।'

[अमेरिका शिकागोके प्रसिद्ध पत्र 'यूनिटी' से अनुवादित]

नोट—उपरोक्त लेखमें अमेरिकावासी श्रीयुत एच० आर० मसीने जो सम्बन्ध म० गांधीजीसे स्थापित करनेका प्रयत्न किया है वह निःसंदेह प्रशंसनीय है। परन्तु 'अहिंसा' उन्होंने टालसटाय वा गैरिजनसे सीखी हो वा इसके लिये उनके ऋणी हों यह असत्य है। अहिंसाकी छाप वैसे तो लोकमान्य म० तिलकके शब्दोंमें 'हिन्दू धर्म' पर भी 'जैनधर्म' की छाप है परन्तु इतना प्रभाव म० गांधीजीके जीवन पर भी है कि अपने सारे जीवनमें मद्य, मांस, और वेश्याका सेवन नहीं किया है। ऐसी प्रतिज्ञा उन्होंने पठनार्थ जाते हुए जैन साधुके समक्ष अपनी माताकी साक्षीमें की थी। विचारोंपर भी म० गांधीजीके बहुत कुछ प्रभाव जैनधर्मका है ऐसा उनके पत्रोंसे मालूम हुआ है, जो पत्रव्यवहार उन्होंने गुजरातके तत्ववेत्ता और शतावधानी श्रीमत् राजचंद्रसे किया था। फिर भी वह लेख पाठकोंको जाननेके लिये दिया जाता है ताकि वे जान सकें कि अन्य देशवाले उनको किस दृष्टिसे देखते हैं।

उमंग।

१

जिन धर्म कहते है किसे यह विश्वको बतलायगे।
निज धर्म पालनके लिए निकलंक सम होजायगे॥
गिरखम पड़े यदि विघ्न तो हम वज्र सम होजायगे।
जिन धर्म ही है श्रेष्ठतर यह विश्वको दर्शायगे॥

२

मिथ्यात्व रूपी निशाको हम एकबार भगायगे।
सम्यक्त्व रूपी सूर्यसे फिर सत्स्वरुप लखायगें॥
कहते किसे हैं धर्म यह फिर जगतको दिखलायगे।
वीरानुयायी भीत भी हम विश्वमें कहलायगे॥

३

हे प्रभो वह शक्ति दो कर्तव्य निज पालन करें।
न्यायमगके गमनमें निर्भीकतासे पग धरें॥
वी शासनका अदा तब फर्ज कुछ कर पायगें।
हम जैन शासनकी पताका विश्वमें फहरायगें॥

लक्ष्मीचन्द्र जैन—सागर।

वह आए थे !

ले:-विद्यारत्न पं० मूलचन्द्र जैन "वत्सल" काव्यकलानिधि ।

(१)

वह आए ! हृदय कपाट खुल गए !

विश्वने उनका स्वागत किया, प्रार्थना की, स्तुति की, विनय की, भक्ति की ।

विश्व गुंजार उठा, एक कंठसे, एक स्वरसे-एक नादसे ।

देवताओंने कहा—जगदीश्वर ।

अप्सराओंने कहा—परमेश्वर ।

मानवोंने कहा—शरणवत्सल ।

महिलाओंने कहा—दयानिधि ।

वृद्धोंने कहा—तारक ।

बालकोंने कहा—परम पिता ।

अछूतोंने कहा-शरणागत ।

निर्बलोंने कहा—रक्षक ।

पशुओंने कहा—पालक ।

और किसने क्या क्या कहा, गगन गूंज उठा, दिशाएं ध्वनित हो उठीं ।

(२)

वह आए ! विशाल समोशरण था ।

देव, दानव, मानव, पशु प्रत्येकके लिए एक स्थान था।

एक राज्य था, एक शासन था, एक पूज्य था ।

एक अराधना थी, एक सिद्धि थी, एक भावना थी, एक साधना थी ।

वह दिव्य छबि, वह मोहक मूर्ति, वह अपूर्व प्रतिभा।

विश्व उनकी उपासनामें तन्मय होगया ।

(३)

मेघ ध्वनि हुई और धर्मवर्षा ।

सबने अपना २ पात्र भरना प्रारंभ किया ।

कोई रोक टोक नहीं थी, कोई भेद भाव नहीं था।

एक मार्ग था, और एक घाट ।

देव, मानव, धनिक, निर्बल, सबल, छूत, अछूत।

पुरुष, स्त्री, वृद्ध, बालक। सबके लिए आज्ञा थी।

(४)

जनसमुदाय तृषित था, पात्र भरने लगा ।

जिसके समीप जैसा पात्र था ।

कांचका और मिट्टीका, स्वर्णका और ताम्रका ।

चुल्लूसे और पत्तेसे ।

कोई शेष रहने न पाए—कोई कह न दे मिला नहीं।

जो आया, तृप्त होगया, छक गया, कितना मिष्ट था, कितना मधुर था ।

जिसने जितना पाया- उसीमें बेड़ा पार होगया।

(५)

हृद तंत्री झंकरित हो उठी ।

रंग चढ़ गया आत्मोद्धारका,

सब उसके रंगमें रंग गए।

सारा विश्व उनका बन गया। सबने उनको अपना हृदय अधीश्वर बनाया ।

उनके पथके पथिक बने, और निर्दिष्ट पथपर उनकी अगुँलीके इशारेसे चल पड़े ।

वह पथ कंटक शून्य था, उसपर चलनेसे दिशा भूल नहीं होती थी।

उस पथपर चलकर,

उन्होंने प्राप्त किया—

पूर्ण सुख, पूर्ण शांति स्थान ।

उनका जीवन उज्वल बन गया।

(६)

हां ब्राह्मण था, उनका प्रति द्वन्दी ।

उनके नाम, उनके यश और प्रभुत्वसे घृणा रखनेवाला।

महान आश्चर्य, अघटित घटना।

चरणोंमें पड़ा था, शरणागत था।

घुल गया था उसका अहंकार और घुल गया अन्तस्तल।

उनकी शरणागतसे, उनके वात्सल्यसे, उनकी अनुकंपासे।

वह उनके संघका प्रधान था, उनके गणका स्वामी था।

वही उनका प्रतिद्वन्दी ब्राह्मण गौतम।

हां संघपति था गौतम ब्राह्मण।

और–

प्रधान प्रश्न कर्ता, प्रधान मुमुक्षु था।

भूतपूर्व कट्टर बौद्ध।

मगधेश्वर बिंबसार क्षत्रिय।

और–और

प्रधान शिष्या थी–

राजकुमारी चंदना।

क्षत्रिय कन्या।

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, पुरुष, स्त्री किसीका भेद नहीं था।

(८)

उन्होंने पाठ पढ़ाया–

अहिंसाका, सत्याग्रहका, आत्मबलका, स्वतंत्रताका।

उनके अहिंसाका रहस्य था वीरत्व, कायरताकी उसमें गंध नहीं थी।

उसमें आत्मशक्तिका विकाश था पशुबलका नहीं।

उसमें निर्भयताकी प्रभा थी उद्दडता आताप नहीं।

वह झुकती नहीं थी अन्याय और अत्याचारके नीचे, किंतु न्याय और सत्य ऊपर।

उसमें स्वार्थ और वंचकताके लिये स्थान नहीं था।

द्वेष और निर्दयताके लिए सहानुभूति नहीं थी।

उनके सत्याग्रहका रहस्य था।

उपसर्गों, यातनाओं, कठिनाइयों और प्रतिकुलताओंके प्रति अडग निश्चलता, अचल धैर्यता, अक्षय क्षमता,

उनके आत्म बलका रहस्य था।

प्रलोभनाओं, वंचनाओं, वासनाओं और कामनाओंके प्रति

उपेक्षा दृष्टि संकोच।

उनकी स्वतंत्रता थी, विश्व–बंधन–मुक्ति।

उनका आत्मा अहिंसा, सत्याग्रह, आत्मबल और स्वतंत्रताका जीता जागता चित्र था।

वह स्वयं ज्वलंत उदाहरण थे।

धन्य है उन्हें और उनके शासनको।

(९)

हा यही आजका दिन था।

कार्तिक कृष्णामावस्याकी रात्रिका अंतिम शासन।

उसी समय–उनका आत्मा संसार बंधनसे उन्मुक्त होगया था।

उन्होंने वह स्थान प्राप्त किया था।

जो–

अबाधित और अव्यय था।

उन्होंने वह शक्ति प्राप्त की थी, जो–

अनन्त थी, अपरिमित थी।

उनका ज्ञान, उनका सुख, कल्पनातीत था।

वह जीवनमुक्त हो गए थे।

देवताओंने, राजाओंने, और सबने मिलकर उनका निर्वाणोत्सव मनाया॥

(१०)

आज वही उनके निर्वाणकी स्मृतिका दिन है।

किन्तु—

आज हम समझ कहां रहे हैं उनके गूढ़ अहिंसा रहस्यको।

हमारे पास स्थान कहां है उनके उस विश्व धर्म धारण करनेका।

हममें क्षमता कहां है उनके निर्दिष्ट पथपर चलनेकी।

आज हमारे हृदय—

संकुचित, भीरु और द्वेषसे ओतप्रोत हैं।

हमारे अन्तस्तल, उनकी वास्तविक उपासनासे रिक्त हैं।

आज प्रयत्न करनेपर भी उनका उज्वल चित्र हमारे नेत्रोंके सन्मुख चित्रित नहीं होता।

क्या हम वही उनके उपासक हैं जो थे?

(११)

वह आए थे और हैं?

कौन कहता है वह चले गए?

नहीं, वह चले नहीं गए।

अब भी उनका वही धर्मचक्र चल रहा है।

अब भी उनका पवित्र अहिंसा शासन विद्यमान है।

उनकी वह उज्वल मूर्ति अब भी उपस्थित है।

अब भी उनके दर्शन हमें सुलभ है।

यदि हम——

पाखंड, दंभ और दुराग्रहको अपने हृदयसे हटा दें तो,

कायरता और निर्बलताका अस्तित्व मिटा दें तो,

सत्यता, पवित्रता और आत्मश्रद्धासे हृदय सजा लें तो।

(१२)

बंधुओ! आओ!

उनकी वास्तविक निर्वाण-स्मृति मनाओ।

भरलो—

हृदयको विशालतासे—

नेत्रोंको विज्ञानतासे—

वचनको सत्यतासे—

आत्माको पवित्रतासे—

और देखो उन्हें—

हां वह आए थे और तुम उन्हें साक्षात् देखोगे।

विश्वप्रेमी कौन है?

(साहित्यरत्न पं० सिद्धसेन जैन-उजेड़िया।)

"भ्रात मेरा है नहीं यह, और वह मम भात है।
मात मेरी है नहीं वह, और वह मम तात है॥"
कल्पना इस भावकी, होती उन्हें जो क्षुद्र हैं।
सर्व ही संसार भ्राता, मानते जो भद्र हैं[१]॥

× × ×

विश्व प्रेमी है वही जो विश्व अपना जानता।
विश्वके दुख-दाहमें दुख, सौख्यमें सुख मानता॥
स्वार्थ परता युत मनुज हो तो भला पशु कौन है?
विश्वका बस एक प्यारा और होता कौन है?

१—अय निजः परो वेत्ति गणना लघु चेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम॥
"हितोपदेशे"।

क्या 'पउमचरिय'

लेखक:—श्री० पं० मिलापचन्दजी

'विमलसूरिकृत प्राकृत पद्योंमें एक 'पउमचरिय' नामका ग्रंथ है। जिसे १८ वर्ष पहिले 'जैन-धर्म प्रसारक सभा भावनगर' ने छपाया था और जिसका संशोधन प्रोफेसर हर्मनजेकोबी जर्मनने किया था। यह ग्रन्थ ११८ पर्वोंमें विभक्त है जिसमें मुख्यतया रामरावणकी कथा है। एक तरहसे इसे प्राकृत जैन रामायण कहना चाहिये। ग्रन्थके अंतमें उसका निर्माण समय इस प्रकार लिखा है—

पंचेव य वाससया दुसमाए तीसवरिससंजुत्ता ।
वीरे सिद्धिमुवगए तओ निबद्धं इमं चरियं ॥१०३॥

इस गाथापरसे ऐतिहासिक विद्वान इसे वीर निर्वाण संवत ५३० (विक्रम संवत ६०) में बना बताते हैं। इससे यह ग्रंथ बहुत ही प्राचीन मालूम होता है। समग्र जैन संप्रदायमें इतना प्राचीन कथा ग्रंथ अभी कोई उपलब्ध न हुआ होगा। इस ग्रंथके कर्ता अपना परिचय ग्रंथांतमें इस प्रकार देते हैं—

राहू नामायरियो ससमयपरसमयगहियसब्भावो ।
विजओ य तस्स सीसो नाइलकुलवंसनंदियरो ॥११७॥
सीसेण तस्स रइयं राहवचरियं तु सूरिविमलेण ।
सोऊण पुव्वगए नारायणसीरिचरियाइं ॥ ११८ ॥

इन पद्योंमें यह सूचित किया है कि स्वसमय पर समयमें सद्भाव रखनेवाले 'राहू' नामक आचार्यके एक नागिलवंशज 'विजय' नामके शिष्य थे। उनके शिष्य 'विमलसूरि'ने यह राम-चरित्र रचा है।

ग्रन्थकी अंतिम संधिसे यह भी प्रकट होता है कि इस ग्रन्थके कर्ता पूर्व धारी थे। वह संधि इस प्रकार है—

"इइ नाइलवंसदिणयर राहुसूरिपसीसेण पुव्वहरेण विमलायरियेण विरइयं सम्मत्तं पउमचरियं ।"

नागिलवंशके सूर्य जो राहुसूरि उनके प्रशिष्य पूर्वधारी विमलाचार्यरचित पउमचरिय समाप्त हुआ।

अपने दिगंबर संप्रदायमें रविषेणाचार्यकृत पद्मचरितकी भाषा वचनिकाका, जो पद्मपुराणके नामसे मशहूर है काफी प्रचार है। उसके बाबत मैं बहुत दिन पहिलेसे सुन रहा था कि यह प्राकृत पउमचरियसे मिलता हुआ है। अब जब कि वह पद्मचरित माणिकचंद्र ग्रन्थ द्वारा मूल सस्कृतमें छपा तो उसे पउमचरियसे मिलानेका मुझे अवसर मिला। इसीके साथ मैंने हेमचंद्रा-चार्यकृत श्वेतांबर जैन रामायणका हिंदी अनुवाद तथा स्व० पं० दौलतरामजीकृत पद्मपुराण वचनिकाको भी साथ २ मिलान किया है।

इस प्रकार चार ग्रंथोंको परस्पर निरीक्षण करनेसे मुझे कितनी ही नई बातें जाननेमें आई हैं। और वह भेद भी कितने ही अंशोंमें खुल गया है जो अबतक चला आरहा था कि 'यह पउमचरिय दिगम्बर ग्रन्थ है या श्वेताम्बर'।

जैन हितैषी भाग ११ में जैन समाजके ऐतिहासज्ञ विद्वान पं० नाथूरामजी प्रेमीका इस सम्बन्धमें एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें इस ग्रन्थको उस समयका अनुमान किया है जिस समय जैनधर्ममें श्वेतांबर दिगंबर भेद ही

दिगम्बर ग्रंथ है ?

कटारिया जैन केकड़ी।

न हुए थे। साथ ही उन्होंने लिखा था कि "मैं इसे रविषेणके पद्मचरितसे मिला रहा हूं। दोनों संप्रदाय संबंधी कोई खास बात इसमें निकलेगी तो वह आगे प्रकट कर दी जायगी"। इसके बाद फिर कभी इस संबंधमें उन्होंने लिखा या नहीं यह मेरे देखनेमें नहीं आया। संस्कृत पद्मचरितकी भूमिका भी उन्होंने लिखी पर वहां भी प्रेमीजीने एतद्विषयक कोई प्रकाश नहीं डाला। इसके अलावा 'खंडेलवाल जैन हितेच्छु में भी किसी विद्वानने इस सम्बन्धमें लेख छपाया था। जिसमें पउमचरियको दिगम्बर ग्रंथ सिद्ध करनेकी चेष्टा की थी। यह बात उन दिनोंकी है जब 'हितेच्छु' के सम्पादक पं० पन्नालालजी सोनी थे।

मैंने जो इसका यत्किंचित् तुलनात्मक ढंगसे निरीक्षण किया है उससे मैं इस नतीजेपर पहुचा हूं कि 'यह ग्रन्थ न तो उस वक्तका कहा जा सकता, जिस वक्त कि जैनधर्ममें दिगंबर श्वेतांबर भेद ही न हुए थे, और न यह दिगंबर ग्रन्थ ही है। यही सब खोज आज मैं पाठकोंके सामने रखता हूं।

यों तो पद्मचरितमें जो कुछ है वह सब पउमचरियके अनुसार ही है। दोनों ग्रन्थोंका रचनाक्रम शब्द और भाव विन्यास अधिकांशमें समानरूपसे पाया जाता है। ऐसा मालूम होता है कि पउमचरियको सामने रखकर ही उसकी छायाके आधारपर कुछ अधिक विस्तारसे पद्मचरित रचा गया है। यहांतक कि दोनोंका नाम भी एक ही है। प्राकृतमें जिसे पउमचरिय कहते हैं उसका ही संस्कृतनाम पद्मचरित है। नमूनेके तौरपर दोनोंके कुछ अंश यहां लिख देना ठीक होगा—

देहं रोगाउण्णं जीयं तडिविलसिय विय अणिच्चं।
नवरं कव्वगुणरसो जाव य ससिसूरगहचक्कं ॥१७॥
अल्पकालमिदं जतोः शरीरं रोगनिर्भरम्।
यशस्तु सत्कथाजन्म यावच्चंद्रार्कतारकम् ॥ २५ ॥
ते नाम होंति कण्णा जे जिणवरसासणम्मि सुइपुण्णा।
अन्ने विदूसगस्स व दारुमया चेव निम्मविया ॥१९॥
सत्कथाश्रवणौ यौ च श्रवणौ तौ मतौ मम।
अन्यौ विदूषकस्यैव श्रवणाकारधारिणौ ॥ २८ ॥
तं चेव उत्तमङ्गं जं धुम्मइ वण्णणाइ सामन्ने।
अन्नं पुण गुणरहियं नालियरकरंकयं चेव ॥ २० ॥
सच्चेष्टावर्णनावर्णा घूर्णते यत्र मूर्द्धनि।
अयं मूर्द्धान्यमूर्द्धा तु नालिकेरकरंकवत् ॥ २९ ॥
जे वि य समभुल्लावं भणंति ते उत्तमा इहं ओट्ठा।
अन्ने सुत्तजलूगा पट्ठीवुक्कसममरिसा ॥ २४ ॥
श्रेष्ठावोष्ठौ च तावेव यौ सुकीर्तनवर्तिनौ।
न शम्बूकास्यसंभुक्तजलौकापृष्ठसन्निभौ ॥ ३१ ॥
तं चिय हवइ पहाणं मुहकमलं जं गुणेसु तल्लिच्छं।
अन्नं बिलं व भण्णइ भरियं चिय दन्तकीडाणं ॥२६॥
मुखं श्रेयः परिप्राप्तेर्मुखं मुखरकथारं।
अन्यत्तु मलसंपूर्णं दंतकीटाकुलं बिलम् ॥ ३३ ॥
जो पढइ सुणइ पुरिसो सामण्णे उज्जमेइ सत्तीए।
सो उत्तमो हु लोए अन्नो पुण सिप्पियकओ व ॥२७॥
वक्ता श्रोताऽथवा श्रोता श्रेयसां वचसां नरः।
पुमान् स एव शेषस्तु शिल्पिकल्पितकायवत् ॥३४॥

ये सब पद्य दोनों ही ग्रन्थके प्रथम पर्वके हैं। इनमें जो संस्कृतके हैं वे पद्मचरितके हैं और प्राकृतके हैं वे पउमचरियके। आगेके

पर्वोंका भी प्राय: यही हाल है। इतना सादृश्य होते भी कहीं२ कुछ कथनभेद भी दोनोंमें पाया जाता है। जिसकी तालिका बतौर नमूनेके नीचे दीजाती है—

पउमचरियमें–	पद्मचरितमें–
१–'विद्युद्दंष्ट्र मोक्षगया' 'पर्व ५'	१–विद्युद्दंष्ट्र स्वर्ग गया।
२–अजितनाथको दीक्षा लिये बाद १२ वर्षमें केवलज्ञान हुआ। 'पर्व ५'	२–चौदह वर्ष बाद केवलज्ञान हुआ।
३–केकईके भरत, शत्रुघ्न दो पुत्र हुये, दशरथके तीन ही राणियें लिखी हैं–सुप्रभा नामकी चौथी राणीका उल्लेख नहीं है। 'पर्व २५'	३–सुप्रभाराणीके शत्रुघ्न और केकईके भरतका जन्म हुआ। दशरथके चार राणियें थीं जिनके चारों पुत्र हुये।
४–अतिवीर्यको पकड़नेके लिये रामलक्ष्मणके नृत्यकारिणीका स्वांग भवनवासिनी देवीने बनाया। 'पर्व ३७'	४–नृत्यकारिणीका रूप स्वयने बनाया। भवनवासिनीका उल्लेख ही नहीं है।
५–बाहुबलीकी राजधानी 'तक्षशिला' है। 'पर्व ४'	५–बाहुबलीकी राजधानी 'पौदनापुर' है।
६–संस्थानका जिकर ही नहीं।	६–रामचंद्रजीके न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान लिखा है। 'पर्व ४९'
७–रावणकी मृत्यु ज्येष्ठकृष्णा ११को हुई। 'पर्व ७३ के अंतमें'	७–मितीका कोई उल्लेख नहीं है।
८–रावण लक्ष्मण चौथे नरक गये। 'पर्व ११८'	८–तीसरे नरक गये 'पर्व १२३'

इन्हें आदि लेकर कुछ और भी जहां तहां सूक्ष्म फर्क है जो विस्तारभयसे छोड़े जाते हैं। दोनोंकी पर्वसंख्या भी समान नहीं है। पउमचरियमें ११८ और पद्मचरितमें १२३ पर्व हैं। किंतु इसके कारण कथनमें रंचमात्र भी भेद नहीं पड़ा है। सिर्फ कथनके विभाग करनेमें फर्क है। उसमें भी ५६ पर्वतक तो दोनों एक है। आगे ५७, ६७, ६८, ६९ और १०७ वां ये पर्व पद्मचरितमें बढ़ाये गये हैं।

ये तो हुई अन्तर बातें। अब मैं पाठकोंको पउमचरियमेंसे वे बातें बतलाता हूं जो इसे श्वेतांबर ग्रंथ होना सिद्ध करती हैं।

पुराने विद्वानोंने जो दिगम्बर श्वेताम्बरके ८४ अन्तर छांटे हैं उनमेंसे कितने ही अन्तर इस पउमचरियमें पाये जाते हैं। जैसे–भगवानकी माताको चौदह स्वप्न दीखना, हरिवंशकी उत्पत्ति भोगभूमिज युगलसे होना, स्वर्गोंकी संख्या १२ मानना और चक्रवर्तीके ९६ हजारसे कम राणियें बताना। ये सब बातें पउमचरियके निम्न पर्वोंमें देखिये–

१–अह वा सुह पसुत्ता रयणीए पच्छिमम्मि जामम्मि ।
पेच्छइ चउदस सुमिणे पसत्थजोगेण कल्लाणी ॥१२॥
पर्व २१

अर्थ–मुनिसुव्रतकी माताने रात्रिके पिछले प्रहरमें १४ स्वप्न देखे ।

१–सीयल जिणस्स तित्थे सुमुहो नामेण आसि महिपालो ।
कोसंबीनयरीए तत्थेव य वीरयकुविंदो ॥ २ ॥
हरिऊण तस्स महिलं वणमालं नाम नरवई तत्थ ।
भुंजइ भोगसमिद्धं रईए समयं अणंगो व्व ॥ ३ ॥
अह अन्नया नरिंदो फासुयदाणं मुणिस्स दाऊण ।
असणिहओ उववन्नो महिलासहिओ य हरिवासे ॥४॥
कताविओयदुहिओ पोट्ठिलयमुणिस्स पायमूलम्मि ।
घेत्तूणय पव्वज्जं कालगओ सुरवरो जाओ ॥ ५ ॥
अवहिविसएण नाओ देवो हरिवस×सभवं मिहुणं ।
अवहरिऊणय तुरियं चंपानयरम्मि आणेइ ॥ ६ ॥
हरिवाससमुप्पन्नो जेणं हरिऊण आणिओ इहइं ।
तेण चिय हरिराया विक्खाओ तिहुयणे जाओ ॥७॥
पर्व २१ वा ।

अर्थ–शीतलनाथके तीर्थमें कोशाबी नगरीमें एक सुमुख नामका राजा हुआ । वहीं 'वीरक' कुविंद* (जुलाहा) रहता था । उसकी वनमाला स्त्रीको राजाने हरकर उसके साथ कामदेवके समान भोग भोगने लगा । एकदिन राजाने मुनिको प्रासुक दान दिया और वह वज्रपातसे मरकर स्त्री सहित हरिवर्ष (भोगभूमिक्षेत्र) में पैदा हुआ । वह वीरक भी स्त्री वियोगसे दुखी हो पोट्ठिल (प्रोष्टिल) मुनिसे दीक्षा ले मरा और देव हुआ । अवधिज्ञानसे जानकर वह देव हरिवर्षमें उत्पन्न उक्त जोड़ेको हरकर चंपानगरीमें लाया । हरिवर्षमें पैदा होने और वहांसे हरकर लानेके कारण वह हरिराजाके नामसे विख्यात हुआ । (आगे उसीसे हरिवंश चला ।

× 'हरिवस' पाठ अशुद्ध है गल्तीसे छप गया मालूम होता है । 'हरिवास' पाठ चाहिये, हरिवंश तो अभी पैदा ही नहीं हुआ तब उसमें जन्म कैसे बताया जासकता है ? गाथा ४ व ७ में 'हरिवास' पाठ है अत. यहां भी वही होना ठीक है ।

* इसने मुनि दीक्षा ली है, जुलाहा आम तौर पर नीच जाति होता है इसी लिये पद्मचरितमें वीरकको वणिज लिखा जान पड़ता है। शूद्र दीक्षाका यह भी दोनों ग्रंथोंमें साप्रदायिक खास भेद होसकता है ।

३–सो हम्मीसाण सणकुमार माहिंदबम्भलोगो य ।
लंतयकप्पो य तहा छट्ठो वि य होइ नायव्वो ॥३५॥
एत्तो य महासुक्को सहस्सारो आणवो तह य चेव ।
तह पाणओ य आरण अच्चुयकप्पो य बारसमो
॥ ३६ ॥ पर्व ७५ ॥

अर्थ–सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, महेंद्र, ब्रह्मलोक, छठवां लांतव कल्प, आगे महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और बारहवां अच्युत, इस प्रकार १२ कल्प हैं ।

४–"सगरोवि चक्कवट्टी चउसट्ठिसहस्सजुवइकयविहवो"
॥ १६८ ॥ पर्व ५ ॥

सगर चक्रीके चौसठहजार स्त्रियोंका विभव था (पत्र ७ में भी इतनी ही राणियें लिखी है)

इस प्रकारका कथन श्वेतांबर सम्मत है । इसीलिये रविषेणके पद्मचरितमें उन्हीं पर्वो और उन्हीं प्रकरणोंमें बदलकर लिखा गया है । जैसे चौदहके स्थानमें १६ स्वप्न, १२के स्थानमें १६ स्वर्ग, और चौसठ हजारकी जगह चक्रीके ९६ हजार राणियें । हरिवंशकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें भी बदलनेकी चेष्टा कीगई पर वह पूरी तौरसे बदला न जासका । जैसा कि पद्मचरितके निम्न श्लोकोंसे प्रकट है–

जिनेन्द्रे दशमे नीते राजासीत्सुमुखश्रुतिः ।
कौशाम्ब्यामपरोऽस्यैव वणिजो वीरकश्रुतिः ॥ २ ॥

हत्वा तद्दयिता राजा भिक्षा काम यथेप्सितं ।
दत्वा दानं विरागाणां पुरे हरिपुरसंज्ञके ॥ ३ ॥
उत्पन्नौ दंपती क्रीडां कृत्वा रुक्मगिरिं ययौ ।
तत्रापि दक्षिणश्रेण्यां भोगभूमिमधिश्रियत ॥ ४ ॥
दयिताविरहांगारदग्धदेहस्तु वीरकः ।
तपसा देवतां प्राप देवीनिवहसंकुलम् ॥ ५ ॥
विदित्वावधिना देवो वैरिणं हरिसम्भवं ।
भरतेऽतिष्ठपद्यात दुर्गतिं पापधीरिति ॥ ६ ॥
यतोऽसौ हरितः क्षेत्रादानीतो भार्यया समं ।
ततो हरिरिति ख्यातिं गतः सर्वत्र विष्टपे ॥ ७ ॥
'पर्व २१ वां'

इनमें लिखा है कि—दशवें तीर्थंकरके तीर्थमें कौशांबीके राजा सुमुखने वीरक सेठकी स्त्रीको हरकर उसके साथ भोग भोगा। फिर मुनिदान दे मरकर हरिपुरमें दंपति हुये, जो विजयार्द्धकी दक्षिणश्रेणीमें क्रीडाकर भोगभूमिमें पहुंचे। उधर वीरक स्त्रीवियोगसे दग्ध हो तप कर देव हुआ। अवधिज्ञानसे हरि (?) में पैदा हुआ। वैरीको जानकर उसे भरत क्षेत्रमें लेआया। इस प्रकार वह पापबुद्धि दुर्गतिको गया। क्योंकि वह हरिक्षेत्रसे भार्या सहित लाया गया जिससे लोकमें 'हरि' इस नामसे विख्यात हुआ।

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि पद्मचरितका वह कथन कितना अस्पष्ट और संदिग्ध है। श्लोकोंकी रचना भी विलक्षण होगई है। चौथे श्लोकपदोंका एक दूसरेसे सम्बन्ध ही नहीं मिलता। छठवें श्लोकमें हरिके साथ पुर शब्द भी उड़ गया है। और भी विचारिये—"राजा सुमुख और उसकी रखेल स्त्रीका हरिपुरमें दंपति उत्पन्न होना" यह कथन कितना भ्रमपूर्ण है। मरकर दंपति होना तो भोगभूमिमें ही संभव हो सकता है। कर्मभूमिमें तो दोनों ही अलग२ मातापिताओंके यहां जन्म लेकर फिर विवाह होनेपर दंपति बनते हैं। यहां दोनोंके कौन मातापिता थे ऐसा कुछ भी उल्लेख नहीं है। यह सब गड़बड पउमचरियका अनुकरणके कारण हुई मालूम होती है।

यहा मैं इतना और बतला देना चाहता हूं कि दिगम्बर श्वेतांबरमें ८४ बातोंके अतिरिक्त भी अन्य कितना ही अन्तर है जो मुझे इसकी छानबीनमें ज्ञात हुये है उनमेंसे भी एक दो यहां लिख देता हूं—

दिगम्बर सम्प्रदायके मामूली शास्त्रज्ञ भी यह जानते हैं कि तीर्थंकर प्रकृतिकी कारणभूत भावना १६ होती हैं जिसे षोड़शकारण भावनाके नामसे बोलते हैं और यही पद्मचरितमें लिखा है किंतु पउमचरियमें उसकी २० भावना× लिखी है। यथा—' बीस जिणकारणाइ भावेओ ' पर्व २ गाथा ८२।

इसी तरह जहा पद्मचरितमें सुमेरु और सौधर्मके बीच बालाग्र मात्र अंतर बतलाया है वहां पउमचरियमें सौधर्मको मेरुकी चूलिकासे स्पर्शित बताया गया है। यथा—

' बालाग्रमात्रविवरस्पृष्टसौधर्मभूमिकः । '
पद्मचरित पर्व ३ श्लोक १४।

' उवरिं च चूलिआए सोहम्म चेव फुसमाणो । '
पउमचरिय पर्व ३ गाथा २४।

यहांतक तो दिगम्बर मान्यताके प्रतिकूल जो भी कथन ऊपर पउमचरियमेंसे निकालकर बताया गया है उसे एक तरहसे मामूली कहना चाहिये। दिगम्बर श्वेताम्बरमें जो केवलीभुक्ति, स्त्रीमुक्ति

× श्वेतांबरोंके आवश्यक सूत्रादि ग्रन्थोंमें भी २० भावना लिखी है।

और साधुको वस्त्रपात्रादि रखनेका खास भेद है वह पउमचरियमें मिलना चाहिये। इसके लिये मैंने खूब ढूंढ खोज की, आखिर मुझे ऐसा कथन भी मिलगया। केवलीमुक्ति और स्त्रीमुक्तिका कथन तो कहीं न मिला किंतु मुनिके वस्त्र-पात्रादि रखनेका आभास पउमचरियमें अवश्य पाया जाता है जो इस प्रकार है—

पउमचरिय पर्व २२में लिखा है कि—'मांस भक्षी राजा सोदासको राज्यच्युत कर निकाल दिया तो वह घूमता हुआ दक्षिण देशमें श्वेत वस्त्रधारी मुनिको पाकर उनसे श्रावक दीक्षा ली। ग्रन्थके पद्य इस प्रकार हैं—

पेच्छइ परिब्भमंतो दाहिणदेसे **सियंबरं** पणओ।
तस्स सगासे धम्मं सुणिऊण तओ समाढत्तो ॥७८॥
सुणिऊण वयणमे य मुणिवरविहिय भएण दुःखाण।
होउ पसन्नहियओ सोदासो सावओ जाओ ॥ ८० ॥

इसमें साफ तौरपर मुनिके लिये सियंबर शब्द है जो सितांबर यानी सफेद कपडेका वाचक है। पद्मचरितमें इस जगह वस्त्राश्रय रहित मुनि लिखा है। जैसे—

दक्षिणापथमासाद्य प्राप्यानंबरसंश्रयं।
श्रुत्वा धर्मं बभूवाणुव्रतधारी महान् ॥१४८॥

यह तो हुआ मुनिके वस्त्रविधान, अब पात्र रखनेका विधान सुनिये—

अह अमया कयाई साहू मज्झण्हदेसयालम्मि।
उप्पइय नहयलेणं साएयपुरिं गया सव्वे ॥ ११ ॥
भिक्खट्ठे विहरन्ता घरपरिवाडीए माहवो धीरा।
ते सावयस्स भवणं संपत्ता अरहदत्तस्स ॥ १२ ॥
चिंतेइ आरहदत्तो वरिसाकाले कहिं इमे समणा।
हिण्डन्ति अणायारी नियय ठाण पमोत्तूण ॥ १३ ॥
ते सावएण साहू न वंदिया गारवस्स दोसेण।
सुण्हाए तस्स नवरं तत्तो पडिलाभिया सव्वे ॥१७॥
दाऊण धम्मलाभं ते जिणभवण कमेण संपत्ता।
अभिवंदिया जुईणं ठाणनिवासीण समणेणं ॥१८॥
ते तत्थ जिणाययणे मुणिसुव्वयसामियस्स वरपडिमं।
अभिवंदियो निविट्ठा जुइणसमयं कया हारा ॥ २०॥

अर्थ—एक दिन वे सप्तर्षि चारण मुनि मध्याह्न कालमें आकाशमार्गसे चलते हुये 'साकेत'पुरीमें आये वहां भिक्षार्थ घूमते हुये अर्हद्दत्त श्रावकके घर गये। उन्हें देखकर अर्हदत्त विचारता है कि—ये अनाचारी साधु नियतस्थानको छोड़कर वर्षाकालमें कैसे विहार करते हैं। आखिर 'अर्हद्दत्त'ने उनकी वंदना तक न की। तब केवल उसकी स्नुषा कहिये पुत्र वधूने उन मुनियोंको पड़गाहा। वे मुनि धर्मलाभ देकर पैदल जिनभवनको गये। तत्स्थाननिवासी द्युति नामके श्रमणने उनकी वंदना की। वे मुनि वहां जिनालयमें मुनिसुव्रतस्वामीकी प्रतिमाको नमस्कार कर बैठ गये और वहीं 'द्युति' श्रमणके समीप उन्होंने आहार किया।

इस कथनसे यह साफ सिद्ध है कि अर्हद्दत्तके घर मुनियोंने भोजन उदरस्थ किया नहीं। सिर्फ वहांसे तो वे भोज्य सामग्रीको अपने साथ ले आये थे। जिसे उन्होंने 'द्युति' श्रमणके उपाश्रयमें आके जीमा। दाताके घरसे भिक्षा प्राप्त कर उसे उपाश्रयमें लेजाकर जीमना ही उनके पात्र रखनेका निश्चित सुबूत है।

यही कथा श्वेतांबर जैन रामायण×में भी इसी

× हेमचन्द्राचार्यकृत 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र' के सप्तम पर्वमें जो राम रावणकी कथा है उसीका हिन्दी अनुवाद 'ग्रन्थ भण्डार, माटूँगा, बम्बई' ने जैन रामायणके नामसे छपाया है। अनुवादक हैं कृष्ण-लालजी वर्मा 'प्रेम'। ग्रंथ बड़ासा है जिसमें १० सर्ग हैं। कथा पउमचरिय और पद्मचरितसे अधिकांशमें मिलती हुई है, कहीं२ थोड़ा बहुत फर्क भी है।

तरह पाई जाती है। उसके अनुवादको यहां मैं ज्योंका त्यों दे देता हूं—

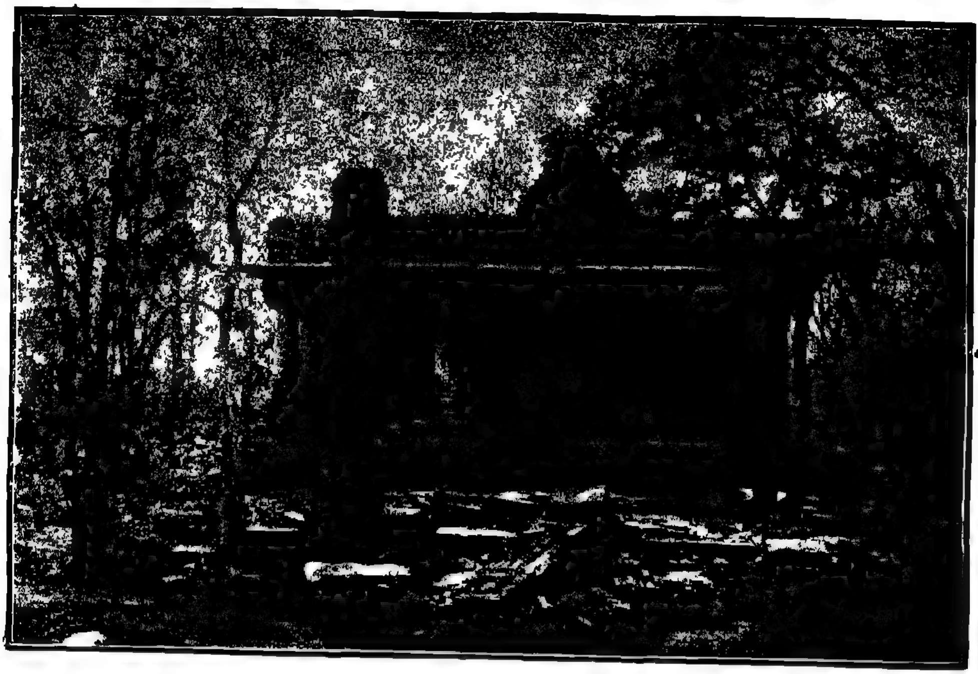
" एकवार वे मुनि पारणा करनेके लिये अयोध्यामें गये। वहां अर्हद्दत्त सेठके घर भिक्षाके लिये गये। सेठने अवज्ञाके साथ उनकी वंदना की और मनमें सोचा कि ये कैसे साधु हैं जो वर्षाऋतुमें भी विहार करते हैं। मैं इनसे कारण पूंछू? नहीं। ऐसे पाखंडियोंसे बात करना वृथा है। सेठकी स्त्रीने उनको आहारपानी दिया। वे आहारपानी लेकर द्युति नामा आचार्यके उपाश्रयमें गये। द्युति आचार्यने उनको आसन दिया उसी पर बैठकर उन्होंने पारणा किया।" पृष्ठ १८७

पाठक सोचते होंगे कि इस जगह पद्मचरितमें कैसा कथन है? पद्मचरितमें और तो सब ऐसा ही कथन है किंतु उसमें चारण मुनियोंका द्युति भट्टारकके यहां आकर भोजन जीमनेका कथन नहीं है।

इसके अलावा एक बात और भी विचारणीय है और वह यह है कि–दोनों ही ग्रन्थोंमें सैकड़ों जगह वाचक शब्द आये हैं। किन्तु पद्मचरितमें जहां जातरूप, नग्न, अचेल, पाणिपात्र, गगनांबर, दिग्वास आदि या इन्हीं अर्थवाले अन्य नाम आते हैं वहां पउमचरियमें मुनिके पर्यायवाची ऐसे नाम भूलकर भी न मिलेंगे (उपर्युक्त 'सियंबर' शब्दको छोड़कर) किंतु वहां मिलेंगे निर्ग्रंथ, मुनि साधु, श्रमण, यति आदि सामान्य शब्द। श्वेतांबराम्नायमें जिनकल्पी साधुका स्वरूप नग्न होते भी इतने बड़े भारी पुराणमें जिसमें चतुर्थकालकी आदिसे लेकर अंत तक होने वाली कितनी ही कथाओंका समावेश है एक भी साधुको नग्न नहीं लिखना ग्रंथकर्ताका नग्नत्वके प्रति अवश्य उपेक्षाभाव जाहिर होता है।

इसप्रकार जिस पउमचरियमें इतनी बातें दिगंबर संप्रदायके विरुद्ध पायी जाती हैं यहां-तक कि मुनिके वस्त्र और पात्र तक रखना जिसमें प्रमाणित होता है और जिसका कर्ता मुनिके लिये दिगंबर शब्द तकका प्रयोग करना नहीं चाहता उसे दिगंबर ग्रंथ बतलाना भारी भूल है। और यह भी नहीं कह सकते कि 'यह ग्रन्थ उस समय बना है जब जैनधर्ममें दिगंबर श्वेतांबर भेद नहीं हुआ था।' फिर भी इतना तो कहा जासकता है कि–शायद यह ग्रंथ उस वक्तका हो जब जैनधर्ममें दिगंबर श्वेतांबर भेद स्पष्ट तौरपर न होकर उसकी परिस्थिति तय्यार होरही हो। कोई एक दल नया मार्ग निकालनेकी फिराकमें हो जिसके लिये धार्मिक ग्रंथोंमें छिपे तौरपर मिलावट भी की जारही हो। यह अनुमान इसलिये भी ठीक होसकता है कि पउमचरिय जैसे एक बड़े ग्रंथमें मुनिके वस्त्र पात्रका उल्लेख सिर्फ एक एक ही मिला है। और वह भी अति संक्षेपसे।

यहांपर 'खंडेलवाल जैन हितेच्छु' के उस लेखपर विचार करना भी आवश्यक प्रतीत होता है, जिसमें पउमचरियको दिगम्बर ग्रन्थ सिद्ध करनेका उद्योग किया गया था। जिसका कि जिकर ऊपर किया गया है। वह लेख जिस अंकमें मैंने पढ़ा था उसमें अपूर्ण था, आगेके अंकोंमें पूरा निकला होगा किंतु वे मेरे देखनेमें नहीं आये। अतः उक्त लेखांशमें जो लिखा था

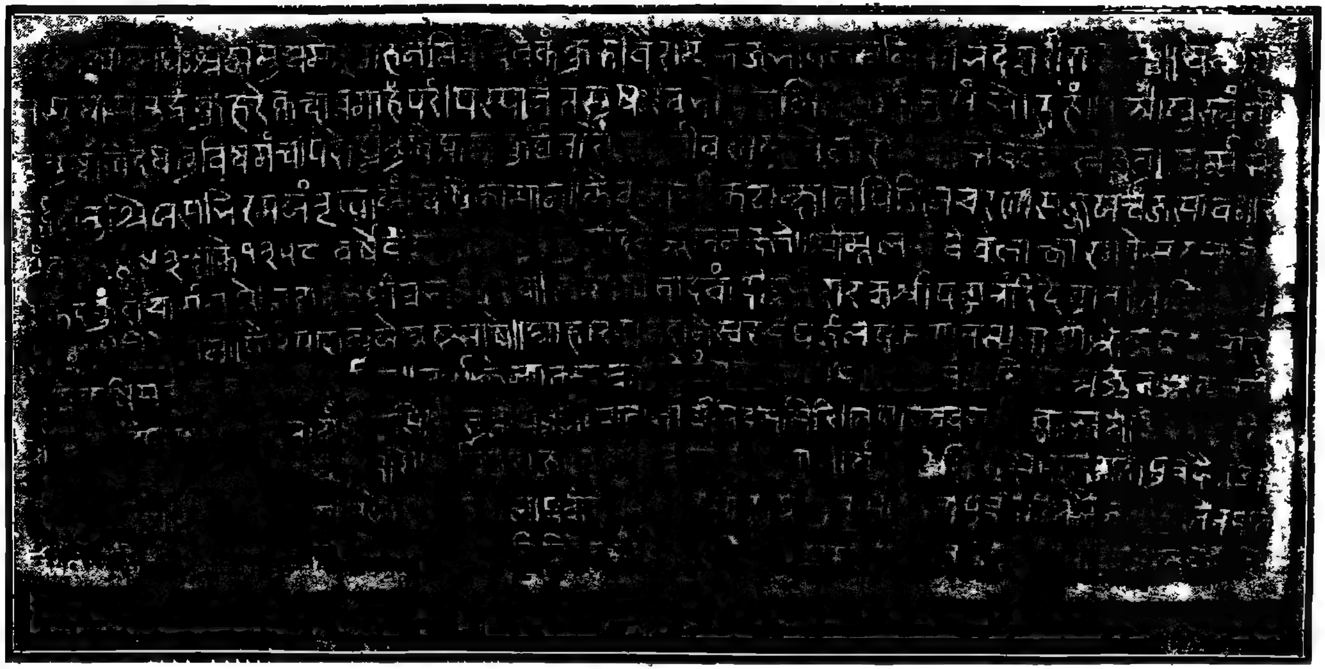


प्राचीन क्षेत्र देवगढ़-मन्दिर नं० १८।



प्राचीन क्षेत्र देवगढ़ मन्दिर नं०

प्राचीन अतिशय क्षेत्र श्री देवगढ़ के मंदिर नं० १२ का एक बृहत् शिलालेख।



प्रतिलिपिः शिलालेखस्य—ॐ॥ आत्मार्थं भय मुञ्च मोहगहनं मित्रं विवेकं कुरु। वैराग्यं भज भावयस्व नियतं भेदं शरीरात्मनः। धर्मध्यानसुधासमुद्रकुहरे कृत्वाऽवगाहं परं। पश्यानन्तसुखस्वभावकलितं मुक्तिं मुखाम्भोरुहं ॥ १॥ आयुस्तन्वन्तु तुष्टिं, विदधतु विविधाश्चापदः घ्नन्तु विघ्नान्। कुर्वन्त्वारोग्यमुर्वीवलयविलसितां कीर्तिवल्ली सृजन्तु। धर्मं सम्वर्धयन्तु, श्रियमभिमतं.........चेष्टि कामान्। केवलश्रीकटाक्षानपि जिनचरणा सजयन्त ...सावः ॥ २॥

सम्वत् १४९३ शाके १३५८ वर्षे वैशाख वदी ५ गुरौ दिने मूलनक्षत्रे श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्रीप्रभाचन्द्रदेवः तच्छिष्यः वादवादीन्द्रभट्टारकश्रीपद्मनन्दिदेव तच्छिष्य श्रीदेवेन्द्रकीर्तिदेवस्तयोरुपदेशान्वये अष्टशाखे आहारदानदानेश्वरः श्री सिंघई लक्ष्मण तस्य भार्या श्री अक्षयश्री तस्याः कुक्षावुत्पन्नः सिंघई अर्जुनतस्य भार्या क्षेमा तत्र जातः खेमराजः तद्भार्या खिमुसिणि संघाधिपतिरर्जुनस्तत्पुत्रः संघाधिपतिः सिंघई जुगराजः तस्य भार्या गुणश्रीः सुबान्धवबंधस्तत्पुत्रभार्या पद्मश्रीः तत्पुत्रः बंदव रामदेव तद्भार्या कालश्रीः तत्पुत्र सिंघई चतुर्भुज तद्भार्या क्षमुश्री. क्षमुराजः तस्य पुत्रः स्युराजश्च स्युश्रीः तस्य भार्या सघनपति. तत्पुत्र भ्राता धेतुः (श्रीशान्तिनाथ चैत्यालये) सकलकलाप्रवीणः पद्मस्तस्य भार्या पूर्णश्री तस्याः पुत्र. पण्डितनयनसिंहस्तेन प्रतिष्ठित संघाधिपतिः सिंघई जुगराजः तेन कर्मक्षयनिमित्तेनेदं कारितं नित्यं प्रणमन्ति। सूत्रधारः, जैनसिपुत्रककर्मचन्द्रः सघनपतिः तत्पुत्रः जिनः तस्य पुत्र संघ पेनसाला सूत्रधारः। लेखकयित्रं चित्र प्रणमन्तीति।

इसीपर मैं यहां विचार करता हूं।

उस लेखमें लिखा था कि—"पउमचरियमें महावीर जिनका गर्भापहरण व उनका विवाह नहीं पाया जाता और केवलीके उपसर्गका अभाव भी उसमें निरूपण किया है इससे वह दिगम्बर ग्रन्थ है।"

बेशक मैं यह मानता हूं कि पउमचरियके दूसरे पर्वमें जो महावीरस्वामीका चरित्र लिखा है, उसमें महावीरका माता त्रिशलाके गर्भमें आना बताया गया है व विवाहका कथन भी नहीं है। जिसका उत्तर यह भी होसकता है कि कथन संक्षेप होनेके कारण वैसा न लिखा गया हो। क्योंकि यहां खासतौरसे महावीरका चरित्र तो कहना ही न था जो सिलसिलेवार पूरा वर्णन करे। यहां तो कथाकी उत्थानिकाके तौरपर मामूली कथन करना था। अथवा संभव है कि गर्भापहरणकी कल्पना श्वेताम्बर ग्रन्थकारोंकी पीछेकी हो। केवलीके उपसर्गका अभाव इसीमें क्या अन्य श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें भी पाया जाता है। वीर जिनके केवली अवस्थामें उपसर्गका होना जो श्वेताम्बर आगममें पाया जाता है वह एक विशेष बात है जिसे उन्होंने भी आश्चर्य नामसे लिखा है। और वह पउमचरियमें संक्षेपताके कारण नहीं लिखा गया है ऐसा जान पड़ता है। लेखकने एकबात अपनी जाणमें बड़े मार्केकी लिखी है। वह पउमचरियके निम्न पद्यको जिसमें पांच तीर्थंकरोंको कुमारावस्थामें दीक्षा लेनेका कथन है महावीरकी अविवाह सिद्धिमें पेश किया है—

······मल्ली अरिट्ठनेमी पासो वीरो य वासुपुज्जो ॥५७॥
एए कुमारसीहा गेहाओ णिग्गया जिणवरिंदा।
सेसा वि हु रायाणो पुहई भोत्तूण णिक्खंता ॥५८॥
पर्व २०

अर्थ—मल्लि, अरिष्टनेमि, पार्श्व, वीर और वासुपूज्य ये पांच तीर्थंकर कुमारपणेमें घरसे निकले—यानी दीक्षा ली, और शेष तीर्थंकर राजा हो पृथ्वीको भोग दीक्षा ली।

यहां भी लेखकने कुमार शब्दमें गल्ती खाई है। यहां कुमारसे मतलब है राज्याभिषेकके पूर्वकी अवस्था, न कि बालब्रह्मचारित्व। नहीं तो ग्रंथकर्ता यों नहीं लिखते कि—'शेष तीर्थंकर राज भोग दीक्षा ली'। इसी तरहका वर्णन श्वेताम्बरोंके 'आवश्यक सूत्र' में भी पाया जाता है। यथा—

वीरं अरिट्ठनेमिं पासं मल्लिं च वासुपुज्जं च।
एए मोत्तूण जिणे अवसेसा आसि रायाणो ॥२४३॥
मय इच्छियाभिसेया कुमारवासंमि पव्वइया।
'आवश्यक सूत्र'

अर्थ—वीर, अरिष्टनेमि, पार्श्व, मल्लि और वासुपूज्य इन पंच तीर्थंकरोंको छोड़कर बाकी तीर्थंकर राजा हो दीक्षा ली। और उक्त पांचोंने राज्याभिषेकको नहीं चाहते हुए कुमारावस्थामें ही दीक्षा ली।

पाठकोंको यह स्मरण रहे कि इसी आवश्यक सूत्रमें महावीर जिनका विवाह ही नहीं उनके संतान तकका उल्लेख है!

इसप्रकार लेखकने पउमचरियको दिगम्बर ग्रन्थ साबित करनेके लिये जो जो दलीलें दीं वे सब निःसार और अकिंचित्कर हैं।

पद्मपुराणकी प्रामाणिकतामें संदेह—

रविषेणके पद्मचरितमें कितना ही कथन ऐसा भी है जो दिगम्बर मान्यताके विरुद्ध पड़ता है। और वह पउमचरियका अनुसरण करते हुये किसी तरह उसमें प्रविष्ट होगया मान पड़ता है। जैसे—

मेरुको कंपित करनेसे महावीर नाम होना× (खण्ड १ पृष्ठ १९) विद्याधर वंशकी उत्पत्ति नमिविनमिसे बताना † (खं० १ पृ० ६८) जंबूद्वीपके अधिपति यक्षकी देवियोंका रावणपर मोहित हो उससे संभोगकी इच्छा करना। (खंड १ पृष्ठ १६४) जिन प्रतिमाके मुकुट धारण, (खंड २ पृष्ठ ३०) दो केवलीका साथ२ रहना और दोनोंकी एक ही गंधकुटी बनना, (खं० २ पृ० १९२) लक्ष्मणका खरदूषणकी स्त्रीपर आसक्त होना,* (खं० २ पृ० २४३) देवोंका परस्परयुद्ध, (खं० ३ पृ० २१) उत्कृष्ट अणुव्रती क्षुल्लकका शस्त्रविद्या सिखाना, (खं० ३ पृ० २४७) मुनिका रात्रिमें मामूली बातके लिये बोलना, (खं० ३ पृ० ३१८)।

इन सबका विशेष कथन लेख बढ़ जानेके भयसे छोड़ा जाता है।

यहां मैं इतना स्पष्ट और कर देता हूं कि पद्मचरितकी उक्त बातें जिन्हें देखना हो उन्हें माणिकचंद्र ग्रन्थमालासे प्रकाशित संस्कृत मूल पद्मचरित‡ देखना चाहिये उसीके ऊपर खंड, पृष्ठ लिखे गये हैं। स्वर्गीय पं० दौलतरामजी कृत वचनिकामें प्रायः ये बातें न मिलेंगी।

वचनिकार तो येही क्या और भी कितनी ही सैकड़ों बातें उड़ा गये हैं और इस तरह ग्रन्थकर्ताके कितने ही अभिप्रायोंसे पाठकोंको वंचित रक्खा है। किसी अनुवादककी ऐसी कृति प्रशंसनीय नहीं रही जासकती। सच तो यह है कि वचनिकाकारकी इस कृपासे ही यह ग्रन्थ अबतक थोड़ा बहुत प्रमाण माना जारहा है। अन्यथा ऐसी बातोंका दिगंबर संप्रदायमें क्या काम? मुझे आश्चर्य और साथ ही खेद भी है कि दिगंबर मतका कहा जानेवाला एक प्राचीन पौराणिक ग्रंथका यह हाल है। यह सब एक विभिन्न आम्नायके ग्रन्थकी नकल करनेका परिणाम है। नकलका रंग तो यहांतक चढ़ा है कि आप सारे पद्मचरितको देख जाइये सैकड़ों जगह मुनि धर्मके कथनका प्रसंग होते भी उसमें २८ मूल गुणोंके नाम न मिलेंगे क्योंकि जब पउमचरियमें नहीं तो पद्मचरितमें कहांसे मिल सकता है। और इसीलिये हरिवंशकी उत्पत्तिमें भी गड़बड़ी हुई है जैसा कि ऊपर कहा गया है। पद्मचरित पर्व ३२ के अंतमें जो जिनप्रतिमाके पंचामृताभिषेकका विवेचन है वह भी हूबहू पउमचरियकी नकल है। आश्चर्य नहीं जो अन्य दि० ग्रथोंमें पंचामृताभिषेकका पाया जाना इसीका प्रताप हो—उत्तरोत्तर ग्रन्थकर्ता देखादेखी ऐसा ही कथन करते चले गये हों और इस तरह पर एक भिन्न संप्रदायकी थोथी क्रियाकांडकी परंपरा चल पड़ी हो। तेरहपंथका उसे न मानना भी इस अनुमानको दृढ़

× असग कविकृत महावीर चरित और श्री धर्मचन्द्रकृत गौतमचरितमें भी ऐसा उल्लेख है वह पद्मचरितपरसे लिया गया ज्ञात होता है। तथा इसकी भी गणना दिगम्बर श्वेतांबरके ८४ अंतरोंमें है। † क्या पहिले विद्याधर नहीं थे। * यह सिद्धान्त विरुद्ध तो नहीं है किन्तु बात नई सी है।

‡ यह ग्रंथ बहुत ही अशुद्ध छपा है। पं० वीरेन्द्रकुमारजी शास्त्री केकड़ीने एक हस्तलिखित प्रतिसे छपी प्रतिको मिलाकर उसकी ढेर अशुद्धियें छांटकर अलग संग्रह किया है। संस्कृत ग्रन्थका इस तरह से बहीं और अशुद्धियोंसे छपना अफसोसकी बात है। इन अशुद्धियोंको शुद्ध कर लेनेपर भी प्राकृत लेखमें उठाये गये आक्षेपोंमें कोई फेरफार नहीं होता।

करता है। कुछ भी हो ये बातें हमको सावधान करनेके लिये पर्याप्त हैं कि किसी प्राकृत प्राकृत ग्रन्थको महज एक प्राचीन होनेकी वजहसे ही मान्य नहीं कर लेना चाहिये। किंतु ऐसे मामलेमें सदसद्विवेक बुद्धिसे पूरा काम लेना चाहिये।

दोनों ग्रंथोंमें एक अत्यंत चिंतनीय स्थल।

चउसट्ठि सहस्साइं वरिसाणं अंतरं समक्खाय।
तित्थयरेहिं महायस भारहरामायणाण तु ॥१६॥ पर्व १०५
'पउमचरिय'।

" षष्टिवर्षसहस्राणि चत्वारि च ततः परं।
रामायणस्य विशेषमंतरं भारतस्य च ॥ २८ ॥
'पद्मचरित' पर्व १०५

इनमें लिखा है कि महाभारत और रामायणमें यानी श्रीकृष्ण पांडवादि और रामरावणादिक समयका अंतर ६४ हजार वर्षका है।" यह अन्तर बहुत ही विचारणीय है। मुनिसुव्रतके तीर्थमें श्रीरामचंद्र हुए और नेमिनाथके वक्त श्रीकृष्ण। तथा दोनों ही ग्रन्थोंके पर्व २० में जो तीर्थंकरोंका अन्तराल कथन है वहां लिखा है कि मुनिसुव्रतके छह लाख वर्षबाद तो हुए नमिनाथ और नमिनाथके पांच लाख वर्ष बाद हुए नेमिनाथ। अर्थात् मुनिसुव्रत और नेमिनाथका अन्तराल समय ११ लाख वर्षका होता है। तब यहां भारत और रामायणका अंतर ६४ हजार वर्ष ही कैसे लिखा है। हमने खूब ही विचार किया पर किसी तरह इस कथनकी संगति नहीं बैठती। अन्य विद्वानोंको भी सोचना चाहिये। इति।

श्वेताम्बर तेरहपन्थ।

(लेखक—श्री० पं० शोभाचन्द्र जैन भारिल्ल न्यायतीर्थ, सम्पादक—'वीर')

आजसे लगभग ८—९ वर्ष पहलेकी बात है। मैं विद्याध्ययन समाप्त कर जब बीकानेर आया तो एक विद्यार्थीने मेरा संप्रदाय पूछा। मैंने बता दिया। उसने फिर पूछा—"दि० संप्रदायमें अवान्तर संप्रदाय हैं या नहीं? आप किस संप्रदायमें हैं?" मैंने तेरापंथ बता दिया। "तेरा-पंथ" नाम सुनते ही वह चौंका और उसकी भावभंगी देख मुझे भी आश्चर्य हुआ। कुछ देर बाद वह कहने लगा—"यदि आपके सामने बिल्ली, चूहेपर झपट रही हो तो आप चूहेकी रक्षा करना धर्म मानेंगे या पाप?" इस प्रश्नको मैंने विद्यार्थीकी अज्ञानताका परिणाम समझा। मैंने उसे अपनी मान्यता बताई। उसीसे पहले-पहल मुझे ज्ञात हुआ कि अहिंसा—प्राण जैनधर्मको माननेवाले समाजमें एक ऐसा भी संप्रदाय है जो हिंसकको एक पाप और रक्षकको अठारह पाप, होना कहता है।

पढ़ते समय इस संप्रदायका मैंने नामतक न सुना था। इससे वर्तमानकालीन शिक्षासंस्थाओंकी पाठनप्रणालीकी बुराई मेरे सामने आई। दि० समाजके अधिकांश विद्वान भी इस संप्रदायके विषयमें कुछ नहीं जानते। वे नैयायिक, वैशेषिक, मीमांसक, सांख्य, बौद्ध आदि भूतकालीन संप्रदायोंका खण्डन मण्डन जानते हैं, पर यह नहीं जानते कि जिस धर्मके हम क्षुद्र अनुयायी

हैं, उसे माननेवाले और कितने हैं। अस्तु।

श्वे० तेरापंथ संवत १८१७में स्थापित हुआ है। स्थानकवासी (ढूंढ़िया) जैन संप्रदायसे पृथक् होकर 'भिक्खु' नामक एक साधुने इसकी स्थापना की थी। 'भिक्खु' कण्ठालिया (मारवाड) के रहनेवाले थे। पहले उन्होंने 'पोतियाबंध' नामक किसी सम्प्रदायकी दीक्षा ली थी। किसी कारणसे जब वह न रुची तो स्थानकवासी संप्रदायमें आये। आचार्य रघुनाथजीके पास उन्होंने सं० १८०८ में स्थानकवासी संप्रदायकी दीक्षा की और जब यह नवीन सम्प्रदाय भी उन्हें नहीं रुचा तो एक अलग ही संप्रदाय उन्होंने स्थापित कर लिया।

भिक्खुजीके संप्रदायका नाम "तेरापंथ" क्यों पड़ा? इस संबंधमें किसी२ का कहना है और जो ठीक मालूम होता है कि १३ आदमियोंने मिलकर इस संप्रदायको स्थापित किया था इसी कारण इसका उक्त नाम पड गया। परन्तु तेरापंथी लोग और ही कारण बताते हैं। वह यह कि भिक्खुजी अपने गुरुसे पृथक् होकर जोधपुर आये। वहां दीवान फतेचंद सिंघी नामक एक व्यक्तिने देखा कि आज उपाश्रममें 'पोसा' (प्रौषध) न करके लोग बाजारमें पोसा कर रहे हैं। लोगोंने उसे सब वृत्तान्त कह सुनाया। उस समय १३ आदमी पोसा कर रहे थे, और १३ ही साधु थे, अतएव इस संप्रदायका नाम तेरापंथ हुआ।

आजकल 'भिक्खुजी' के पदपर कालूरामजी गणी विराजमान हैं। इस सम्प्रदायके माननेवाले प्रायः बीकानेर प्रांतमें ही हैं और ५०-६० हजार बताये जाते हैं। अन्यान्य जैन सम्प्रदायोंकी तरह इसमें अनेक आचार्य नहीं हैं, इसलिए साधुओंका अच्छा संगठन है। यह समाज शिक्षामें अत्यधिक पिछड़ा हुआ है और अन्ध-श्रद्धा इसके रोम रोममें भरी है। नवीन जागृति न करनेवाले साधनोंका एकदम अभाव है। इन्हीं सब कारणोंसे यह निष्कण्टक अस्तित्व भोगरहा है।

श्वे० तेरापंथके सिद्धांत न केवल धार्मिक दृष्टिसे वरन् सामाजिक दृष्टिसे भी अनुचित है। मालूम होता है वे सर्वोच्च अहिंसाका अनुसरण करने जारहे हैं पर वहांतक पहुँच नहीं सकते और ऐसी ठोकर खाते हैं कि निष्प्राण होजाते हैं। आगे हम थोड़ेसे सिद्धांत उद्धृत करते हैं—

(१) यदि कोई क्रूर जानवर किसी मनुष्यके प्राण लेना चाहता है, तो उसे बचा लेना पाप है। क्योंकि प्रथम तो जानवरके भोजनमें अन्तराय पडता है, इसलिए बचानेवालेको अंतराय कर्मका बंध होगा। इसके अतिरिक्त अगर वह आदमी बच गया तो नाना प्रकारके पापोंका आचरण करेगा। उन पापाचरणोंका निमित्त कारण बचानेवाला भी होगा। अतः उसे भी पापका बंध होगा। तीसरी बात यह है कि यह "मोह अनुकम्पा" है और मोह त्याज्य है अतः मरते हुएको बचाना भी त्याज्य है।

इसी सिद्धांतके अनुसार माता यदि अपने गर्भस्थ बालककी रक्षाके लिए अत्यन्त तीक्ष्ण आदि अहितकारी पदार्थोंको खाना छोड़ देती है तो वह भी पापिनी है।

(२) साधुके अतिरिक्त और किसीको दान देना पाप है क्योंकि वे कुपात्र हैं। यहांतक

कि साधर्मी भाईको उपवासके बाद पारना करना भी पाप है।

(३) मिथ्यात्वी जीवकी उपवास आदि क्रिया सम्यग्दर्शनके बिना भी मोक्षका कारण है।

(४) मनःपर्ययज्ञानी अवस्थामें भगवान् महावीरने गोशालकको मृत्युसे बचाकर पापाचरण किया। उसे दीक्षा देकर भूल की।

(५) माता-पिताकी आज्ञाका पालन करना अधर्म है। उनकी सेवा करना, उन्हें साता पहुंचाना आदि भी पाप है, क्योंकि वे कुपात्र हैं।

पाठक देखेंगे कि ये सिद्धान्त समाजके लिए कितने भयकर हैं। गर्भस्थ बालककी रक्षा, भूखे प्यासेको भोजनपानी देना, माता पिताकी सेवा सुश्रूषा करना जब पाप है तो गृहस्थका कर्तव्य ही कुछ नहीं रह जाता। ये सिद्धान्त यदि किसीको लागू होसकते थे तो उच्चश्रेणीके पहुंचे हुए साधुओंके लिए ही। मगर इस सम्प्रदायने गृहस्थोंको भी लागू करके अनर्थ कर दिया है। वह एकान्तवादके चक्करमें ऐसी बुरी तरह फँस गया है कि न इधरका रहा न उधरका। गनीमत यही है कि इस सम्प्रदायके गृहस्थोंने एक "व्यवहारिक खाता" खोल रखा है और व्यवहारके नामपर वे उक्त सिद्धान्तोंके विरुद्ध गर्भस्थ बालककी रक्षा करते कराते हैं, माता-पिताकी सेवा करते हैं तथा और भी ऐसे ही धर्मविरुद्ध (!) कृत्य रहते हैं। अलबत्ता, ऐसे भी कुछ उत्कृष्ट धर्मात्मा हैं जो किसी भी हालतमें धर्मसे विलकुल नहीं होते।

इस संप्रदायमें गृहस्थोंको सूत्र पढ़नेका निषेध है। सिवाय साधुओंके कोई गृहस्थ सूत्र नहीं पढ़ सकता और सूत्रोंके सिवाय अन्य किसी ग्रन्थको ये प्रामाणिक नहीं मानते। इस सिद्धांतका आविष्कार बड़ी चतुराईसे किया गया है। साधु लोग मनमाना आचरण करें, सफेदको काला कहें, पर श्रावक अपनी जीभ नहीं खोल सकता क्योंकि उसे शास्त्र पढ़नेका अधिकार नहीं है। 'स्वाध्याय' को यद्यपि इस संप्रदायमें भी आचरणीय वस्तु माना गया है तथापि वह साधुओंके श्रीमुखसे ही सूत्र पाठ सुन सकता है। अलबत्ता साधुओंकी बनाई हुई कुछ मारवाड़ी भाषाकी पुस्तकें ऐसी हैं जिन्हें ये लोग पढते हैं, पर उन पुस्तकोंमें प्रायः वही बातें हो सकती हैं, जिन्हें साधुलोग श्रावकोंको बतानेमें किसी भी प्रकारकी हानि न समझते हों। इस संप्रदायका सबसे बड़ा प्रसिद्ध ग्रन्थ "भ्रमविध्वंसन" है। भ्रमविध्वंसनमें सिर्फ उन्हीं बातोंका विचार है, जो प्रायः इस संप्रदायकी असाधारण मान्यता है।]

इस संप्रदायके साधु जमीकंद, शहद तथा बहुबीजा आदिका बना हुआ शाक खानेमें परहेज नहीं करते क्योंकि वह अचित्त हो जाता है। वे इस बातका कोई विचार नहीं करते कि यद्यपि उन्हें निर्दोष मिल जाता है, पर उनके इस आचरणसे श्रावकोंको इन चीजोंके खानेकी उत्तेजना मिलती है। अस्तु।

कोई कैसा ही मतान्तर सहिष्णु क्यों न हो, पर इस सम्प्रदायके मानवप्रकृतिके विरुद्ध, सामाजिक भावनासे शून्य, सिद्धांतोंको सहन नहीं कर सकता। इस सम्प्रदायके युवकोंको हम परामर्श देना चाहते हैं कि वे अपने समाजमें जागृति फैलावें और प्रकाशमें आकर सत्यका निरीक्षण करें।

दर्शन और धर्म।

(पं० कमलकुमारजी शास्त्री न्यायतीर्थ-बनारस)

आजकल दर्शन और धर्मके पारस्परिक असद्भावने दार्शनिक और धार्मिक समष्टिमें एक विचित्र संघर्ष उत्पन्न कर दिया है। दार्शनिक समष्टिमें वह महानुभाव सम्मिलित हैं जिनके जीवनका बहुभाग पूर्वीय तथा पाश्चात्यदर्शनोंकी गुत्थियां सुलझानेमें ही व्यतीत हुवा है। और धार्मिक समष्टिमें वह धर्मभीरु सम्मिलित हैं जो ईश्वरीय कोपसे बचनेके लिये देवी देवताओंके सन्मुख मिन्नत करते तथा भेंट पूजा चढ़ाते देखे जाते हैं। प्रति सहस्र मनुष्योंमें यदि एक दार्शनिक है तो नौ सौ निन्यानवें धार्मिक। यदि दार्शनिक महानुभाव धार्मिकोंको अपढ़, गवार, ढोंगी, रूढ़ियोंके दास आदि शब्दोंसे सम्बोधित करते हैं तो धार्मिक दार्शनिकोंको म्लेच्छ, शूद्र, भ्रष्टाचारी आदि नामोंसे पुकारते है। इस पारस्परिक अविश्वास तथा घृणाके भावोंने शिक्षित, अर्द्धशिक्षित और अशिक्षितोंके बीचमें विचार विनिमयका मार्ग ही बन्द कर दिया है जो कि विचारशक्तियोंको पुष्ट एवं संवर्द्धित करनेमें प्रधान सहायक है। इस कलहको मिटानेके लिये हम दोनों पक्षके सन्मुख कुछ समझौतेके स्कीम पेश करते है।

सबसे प्रथम यह प्रश्न उपस्थित होता है कि दर्शन और धर्म दोनों भिन्न २ तत्व हैं या एक ही वृक्षकी दो शाखायें? यदि दोनो भिन्न२ है तो उसके अनुयायियोंमें भेद होना स्वाभाविक है और यदि भिन्न २ नहीं हैं तो द्वैधीभावका कारण अज्ञानता है।

इस प्रश्नको सुलझानेके लिये हमें धर्मका लक्षण जान लेना आवश्यक है। आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं-"वत्थु सुहाओ धम्मो"—वस्तुके स्वभावको धर्म कहते हैं। जैसे अग्निका स्वभाव उष्णता है। यदि अग्निसे उष्णताको पृथक् कर दिया जावे तो अग्निका भी अभाव होजाय। अतः अग्निका धर्म उष्णता है। इस ही प्रकार जिस२ वस्तुका जो कुछ स्वभाव है वही उसका धर्म है।

आचार्य पूज्यपाद "इष्टे स्थाने धत्ते धर्मः" ऐसा कहते हैं जिसका आशय है कि जिसके धारण या पालन करनेसे इष्ट स्थान स्वर्ग मोक्ष आदिकी प्राप्ति हो उसे धर्म कहते है। जैसे राजाका राजधर्म, प्रजाका प्रजाधर्म, गृहस्थका गृहस्थ धर्म और मुनिका मुनिधर्मको पालन करना धर्म कहाता है।

आचार्य समन्तभद्रस्वामी लिखते हैं—

सद्दृष्टि ज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः। —रत्नकरण्ड.

धर्मज्ञ पुरुष सतदृष्टि सतज्ञान और सदाचारको धर्म कहते है इनमेंसे सतदृष्टिका विवेचन किसी पृथक् लेखमें करेंगे। यहांपर सत्यज्ञान और सदाचारको ही लेते है। जो वस्तु जिस स्वभाव तथा गुणसे विशिष्ट है उसको उसी रूपसे जानना सत्यज्ञान कहाता है इससे "वत्थु सुहाओ धम्मो" इस लक्षणकी पुष्टि होती है। सदाचारका अभिप्राय अपनी २ पद मर्यादाके योग्य अपनेको सदाचारी व्रती—कर्तव्यनिष्ठ बनानेसे है इससे भगवत्पूज्यपादके "इष्टे स्थाने धत्ते धर्मः' लक्षणका सम-

र्शन होता है। पुरातन महापुरुषोंके वाक्योंका आलोडन करनेसे यही सारांश निकलता है कि धर्मशब्दका व्यवहार दो अर्थोंमें पाया जाता है। प्रथम वस्तु स्वभाव, दूसरा वस्तु स्वभावके अनुकूल आचरण। वस्तुस्वभावके अनुसार आचरण करना वस्तुके सत्य ज्ञानपर निर्भर है। जबतक हम वस्तुके स्वभावको नहीं जानेंगे तबतक उसके अनुकूल आचरण नहीं कर सकते, और जाननेका साधन ज्ञान है इसलिये वस्तु स्वभावके साथ ज्ञानको भी धर्म कहा है।

धर्म शब्दकी इन दोनों व्याख्याओंका परिशीलन करनेसे दर्शन और धर्म एक ही पिताकी दो सन्तान हैं ऐसा प्रगट होता है। क्योंकि पदार्थोंके गुण, कर्म तथा स्वभावके विषयमें खोजबीन करना दर्शनशास्त्रका मुख्य विषय है और सदुपदेश द्वारा मनुष्योंको शुभकर्ममें निरत करना तथा दुष्कर्मसे बचाना धर्मशास्त्रका मुख्य विषय है।

दर्शन और धर्मतत्वकी एकतामें एक बड़ा प्रमाण और भी है। भारतवर्षके मुख्य२ धर्म संस्थापकोंने केवल आचारशास्त्रका ही उपदेश नहीं किया, किन्तु पहिले अपने२ वस्तु विवेचनका दृष्टिकोण स्थापित करके पीछे उसके अनुकूल आचरण करनेका विधान किया है। इसी लिये वैदिक दर्शनोंमें जहां वस्तुविवेचनमें भेद है वहां धार्मिक क्रियाकांडमें भी अन्तर पड़ गया है। जैनदर्शन तथा बौद्धदर्शन अपना२ एक विशिष्ट धर्मपन्थ रखते हैं क्योंकि दर्शनशास्त्रका प्रधान उद्देश अन्तर्गत तथा बहिर्जगतके विवेचन द्वारा जीवकी मुक्तिके साधन खोजना है और धर्म शास्त्रका प्रधान उद्देश्य उन साधनोंके द्वारा आत्माको भव बंधनसे मुक्त करना है।

वस्तु स्वरूपके निरूपणका असर मनुष्यके आचारपर किस प्रकार पड़ता है इसके निर्णयके लिये चार्वाक दर्शनको ले लीजिये। चार्वाक, परलोक आत्मा आदि वस्तुओंको कपोल कल्पित मानता है। यथा—

> न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।
> नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः॥
> "सर्वदर्शनसंग्रह"

"न स्वर्ग है न मोक्ष, और न कोई परलोकगामी आत्मा ही है। इसी तरह वर्णाश्रम आदिकी क्रिया भी फलदायक नहीं है"।

जिस मतका दृष्टिकोण इस प्रकार है। जो अर्थ और कामको ही परम पुरुषार्थ मानता है उसका आचार कैसा होसक्ता है इस बातका निर्णय हम पाठकोंपर ही छोड़ते हैं।

उक्त बातोंपर विचार करनेसे धर्म और दर्शनकी एकता तथा सहभावके विषयमें कोई विवाद शेष नहीं रह जाता है। किंतु एक प्रश्न उपस्थित होसक्ता है। वह यह है कि जब दर्शन और धर्म दोनों एक धर्म व्यक्तिकी ही संतान है तो धर्मशास्त्र, आचार शास्त्रको ही अपने पूर्वजका कुल क्रमागत 'धर्म' नाम क्यों मिला, दर्शन शास्त्रको क्यों इससे वंचित रक्खा गया ?

इस प्रश्नके समाधानके लिए हमें पूर्वोक्त धर्मके उपदेशपर विचार करना चाहिये। धर्मका मुख्य उद्देश्य मनुष्यकी प्रवृत्तिको सुधार कर मोक्षमार्गके अनुकूल बनाना है। और उसके लिये मनुष्यको अपने अस्तित्व तथा अन्य वस्तुओंके साथ उसके संबंधका ज्ञान होना आवश्यक

है क्योंकि आत्म ज्ञानके बिना आचरण सुधारना अशक्य है। अतः धर्मका प्रथम अंश ज्ञान, उसके मुख्य उद्देश्य आचार शुद्धिका एक मार्ग है। ज्ञान साधन है, आचार शुद्धि साध्य है। यदि साधन-ज्ञान, अपना ध्येय-चारित्र साधन करनेमें असमर्थ है तो उसका होना न होना बराबर है। यदि कोई मनुष्य हाथमें दीपक होते हुए भी कूपमें गिरता है तो उसका दीपक लेना निरर्थक है इसलिये धर्मका मुख्य अर्थ सत्यज्ञानके अनुकूल आचरणमें सन्निहित होनेसे 'धर्म' इस नामका उत्तराधिकार दर्शनको न मिलकर आचार मार्गको मिला।

दर्शन और धर्मके इस एकीकरणको ध्यानमें रखनेसे दार्शनिक और धार्मिक समुदायके बीचमें जो भ्रम पैदा हो गया है उसका विराम तुरन्त होजाता है। प्राचीन समयके दार्शनिक विद्वान वस्तुतत्वके ज्ञाता होनेके साथ ही साथ आचरणमें भी अनुकरणीय होते थे, वे जन समाजके विद्या गुरु तथा आचार गुरु दोनों होते थे। आचार्य श्री कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, पूज्यपाद, अकलंकदेव आदि प्रख्यात दार्शनिक शिरोमणि होनेके साथ ही साथ चारित्र मार्गके आचार्य पदको सुशोभित करते थे। आजकल दर्शन और धर्मने यानी ज्ञान और चारित्रने भिन्न२ आश्रय ले लिया है। जो ज्ञानी कहे जाते है वे मुक्ति और संसारकी कार्य कारण परम्पराके मर्मज्ञ होते हुवे भी उससे अपने जीवनका कोई व्यावहारिक लाभ नहीं उठाते है और जो धार्मिक कहलाते हैं वे क्रिया करते हुए भी उसके वास्तविक आशयसे कोसों दूर है। दोनोंकी दशा उन अंधे तथा लंगड़े मनुष्योंके सदृश है, जो जंगलमें आग लगनेपर उससे बचनेके लिये इधर उधर भटकते हैं। लंगड़ा मनुष्य देखते हुए भी दौड़नेमें असमर्थ है। अंधा मनुष्य इधर उधर दौड़ता है किन्तु दृष्टिहीन होनेसे लाचार है। यदि दोनों मिल जाये तो दोनों पार लग सक्ते हैं। इसी लिये पूर्वाचार्य कह गये हैं—

हतं ज्ञानं क्रिया हीनं हता चाज्ञानिनां क्रिया।
धावन् किलांधको दग्धः पश्यन्नपि च पंगुलः॥

यदि प्राचीनकालकी तरह आजकल भी दर्शन धर्मका और धर्म दर्शनका आंचल पकड़ लें तो सोनेमें सुहागा होजाये और अज्ञानके कारण भाई२में जो विभिन्नता उत्पन्न होगई है उसका नामशेष रह जाये।

क्या दार्शनिक और धार्मिक भाई एक दूसरेकी ओर अपना मित्रतापूर्ण हाथ बढ़ानेका प्रयत्न करेंगे ?

जैनधर्मका महत्व और उपयोग।

(लेखक:—श्रीमान ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजी)

जैनधर्म वीतराग सर्वज्ञ गुणधारी अर्हंत पद प्राप्त सशरीर जीवनन्मुक्त परमात्मा द्वारा प्रकाशित आत्माकी शुद्धि करनेका एक उपाय है। इसका श्रेष्ठत्व इसीलिये है कि जैसा वस्तुका स्वरूप है वैसा ही इस धर्मके आगममें कथन है।

इस जगतमें देखा जाता है कि हरएक द्रव्य सत् है। सत् उसे कहते हैं जो मूलमें सदासे हो व सदा ही रहे। विज्ञान (Science) की खोज यही सिद्ध करती है कि सत्का विनाश नहीं असत्का उत्पाद नहीं Nothing is created & nothing is destroyed अर्थात् जो मूल द्रव्य हैं उनका कभी नाश नहीं होता है और जो नहीं है उनका कभी जन्म नहीं होता है। किसीमें शक्ति नहीं है कि अभावमेंसे कुछ पैदा कर सके व भावको सर्वथा अभाव कर सके। प्रत्यक्ष परीक्षा इसी तत्त्वको सिद्ध करती है। यदि रुई पाई जायगी तो रुईके वृक्षसे मिलेगी। रुईका वृक्ष रुईके बीजके संबंध और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि भिन्न २ जड परमाणुओंके संबंधसे फलता है। पुद्गल द्रव्यके संघात व परिवर्तनसे ही रुईका जन्म है। जो पूरे व गल सके अर्थात् जो मिले व विछुड़ सके उस द्रव्यको पुद्गल कहते हैं।

स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, गुणधारी मूर्तीक (Material) परमाणुओंमें ही मिलने व विछुड़नेकी शक्ति है। अर्थात् बन्धरूप होकर एक कायरूप बन जानेकी व परमाणुओंके बिछड़नेसे कायके बिगड़ जानेकी शक्ति है। अमूर्तिक immaterial पदार्थ दूसरे अमूर्तिक पदार्थसे न तो बंधरूप मिल सकता है और न अमूर्तिक पदार्थके कभी खंड २ भिन्न २ हो सक्ते हैं। मूर्तिक पदार्थहीमें यह शक्ति है, इसी कारण रुईके वृक्षका कलेवर परमाणुओंके संघट्टसे बना है। क्योंकि हरएक द्रव्यमें परिणमन शक्ति है, अवस्थासे अवस्थांतर होनेकी शक्ति है। इसीलिये परमाणुओंका संघट्ट बीजके अनुसार रुईके वृक्षरूप परिणमन कर गया अर्थात् रुईकी अवस्थामें हो गया। रुई मात्र पुद्गल सत्‌रूप द्रव्यकी एक परिवर्तित दशा है। अर्थात् रुई पुद्गल द्रव्यसे बनी है। रुईसे तागे, तागोंसे कपड़ा, कपड़ेसे कुरता बनता है। यह सब अवस्थाका बदलना है। यदि कोई कुरतेका अर्थात् कुरतेके भीतर जिन पुद्गलके परमाणुओंका संघात है उनका सर्वथा नाश करना चाहे तो असंभव है। कुरतेको जलानेसे राखकी अवस्था बन जायगी, राख मिट्टी व हवामें मिल जायगी।

जगतमें जितने परमाणु हैं उतने ही सदा रहते हैं। एक नया कहींसे नहीं आता। पुराना कहीं नहीं जाता। एक भारी महल लकड़ी पत्थर धूल चूना लोहा आदिके संयोगसे बन

जाता है। वही सब गिर पड़ता है लकड़ी पत्थर आदि सब अलग २ टूट पड़ता है। जगतमें यह बात साफ२ प्रगट है (It is self-evident) कि द्रव्य सतरूप होकर भी परिवर्तनशील है। यदि परमाणुओंमें परिणमनेकी या अवस्थान्तर होनेकी शक्ति न होती तो उनसे कोई वस्तुका निर्माण न होता और न कोई वस्तुका बिगाड़ होता। द्रव्यमें परिणमन शक्ति है तब ही गेहूंसे आटा, आटेसे रोटी बनती है। रोटीसे रुधिर रुधिरसे वीर्य बनता है। वीर्यसे इंद्रियोंकी पुष्टि होती है। द्रव्यमें परिणमनशक्ति है तब ही दो वायु मिलकर पानी होजाता है। पानी जमकर बर्फ बन जाता है। पानी मोती होजाता है। द्रव्यमें परिणमनशक्ति है तब ही एक उपवनमें पुद्गलके परमाणुओंके बने नाना रूप मनोहर पत्ते, चित्ताकर्षक पुष्प व सुहावने फल दिखने हैं।

ये दो बातें प्रत्यक्ष प्रगट हैं कि द्रव्य सत् है तथापि परिणमनशील है। इसीलिये द्रव्य सत् होनेकी अपेक्षा नित्य है, परिणमन होनेकी अपेक्षा अनित्य है। हर द्रव्य इसी कारणसे नित्य व अनित्य स्वरूप है। जगत या विश्व अनेक प्रकार जड़ चेतन द्रव्योंका एक समुदाय मात्र है। जगत् कोई एक भिन्न पदार्थ नहीं है, इसी कारणसे यह जगत भी नित्य और अनित्य उभय स्वरूप है अर्थात् सदासे है व सदा रहेगा तथापि परिवर्तनशील है। इस प्रत्यक्ष प्रगट सिद्धांतको जिनवाणी बताती है।

विक्रमसंवत ८१ में प्रसिद्ध श्री उमास्वामी महाराज तत्वार्थसूत्रमें कहते हैं—

सत् द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ । ५ ॥

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥३०।५॥

तद् भावाव्ययं नित्यं ॥ ३१ । ५ ॥

अर्पितानर्पितासिद्धेः ॥ ३२।५ ॥

इन सूत्रोंका यही भाव है कि जो सत् हो सदा ही रहे वह द्रव्य है। सत् वही है जिसमें एक ही समयमें एक साथ तीन शक्तियें पाई जावें—जन्म, नाश और स्थिरपना। इसीसे यह झलकाया है कि द्रव्य अपने मूलमें स्थिर या ध्रुव रहता है परन्तु उसमें सूक्ष्म परिणमन समय समय हुआ करता है। नवीन अवस्थाकी उत्पत्ति जन्म है तब ही पुरानी अवस्थाका नाश व्यय है तब ही मूल द्रव्यका रहना ध्रौव्य है।

जैसे गेहूंको जब पीसा तब गेहूंकी अवस्थाका नाश हुआ, आटेकी अवस्थाका जन्म हुआ। तथापि दोनों अवस्थाओंमें जो पुद्गलके परमाणु थे वे स्थिर है। इसीसे द्रव्य नित्य व अनित्य स्वरूप है। अपने स्वभावका व्यय या नाश होना नित्यपना है, अवस्था बदलना यह अनित्यपना है।

जब द्रव्य नित्य व अनित्य दोनों स्वभावोंको एक ही काल रखता है तब इसको समझानेका क्या उपाय है वह स्वामीने सूत्र ३२।५में कह दिया है कि जब नित्यको समझाना हो तब अनित्यको गौण करो, नित्यको मुख्य या अर्पित करो। जब अनित्यको समझाना हो तब नित्यको गौण व अनित्यको मुख्य करो। इसी सूत्रमें स्याद्वादका सिद्धांत गर्भित है हम कहेंगे स्यात् द्रव्यं नित्यं द्रव्य किसी अपेक्षासे नित्य है व स्यात् द्रव्यं अनित्यं-द्रव्य किसी अपेक्षासे अनित्य है। सर्वथा नित्य भी नहीं। सर्वथा

अनित्य भी नहीं। इन दोनों स्वभावोंका एक साथ होना द्रव्यमें सिद्ध है तथापि वचनोंमें शक्ति नहीं है जो एक साथ कह सके इसीलिये स्यात द्रव्यं अवक्तव्यं किसी अपेक्षासे द्रव्य कथन योग्य नहीं है। इन ही तीन भंगके सात भंग बन जाते हैं। इसीको सप्तभंगी कहते हैं। जो समझते हैं कि जैनोंने स्याद्वादको दूसरोंके खण्डनके वास्ते तैयार किया है उनकी समझ ठीक नहीं है। पदार्थके भिन्न २ प्रकारके भावोंके समझानेका उपाय ही स्याद्वाद है। हम कहते हैं आत्मा है वह अनात्मा नहीं है। इसीसे यह सिद्ध है कि आत्मामें आत्माका तो अस्तित्व है या सद्भाव है परन्तु अनात्माका नास्तित्व या अभाव है तब सिद्ध है कि आत्मामें एक ही समयमें स्यात अस्तित्व व स्यात नास्तित्व है व एक समयमें न कह सकनेकी अपेक्षा स्यात अवक्तव्य है।

इस सत्य वस्तुके स्वरूपको जिन आगम ही बताता है व स्पष्ट समझाता है इसीसे ही जैनधर्ममें श्रेष्ठत्व है। ऊपरके सत्य तत्वको मान लेनेसे सत् पदार्थरूप विश्वके बनानेवालेकी व बिगाड़नेवालेकी आवश्यक्ता नहीं रहती। इसी तत्वसे यह बात खंडन हो जाती है कि कोई ईश्वर जगतको बनाता है व जगतको बिगाड़ता है। सत्का जब जन्म नहीं सत्का विनाश नहीं तब कर्ता व हर्ताकी जरूरत नहीं—यही जैन सिद्धान्त मानता है व कहता है।

अवस्थाका परिवर्तन पदार्थोंमें अपने स्वभावसे होता है। निमित्तकारण अनेक बाहरी पदार्थ होजाते हैं। जैसे पानी अग्निके सम्बन्धसे भाफ बन जाता है, मेघ उष्णताके सम्बन्धसे बरसने लग जाते हैं, भूकम्प होना, तूफान आना यह सब प्राकृतिक कार्य एक दूसरेके निमित्तसे हो जाया करते हैं। बहुतसे विश्वके कार्योंका निमित्तकर्ता रागद्वेष सहित इच्छावान संसारी आत्मा है। खेती करना, कपड़ा बनाना, मकान बनाना, बर्तन बनाना आदि काम मनुष्यकृत हैं।

निर्विकार, कृतकृत्य, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग, आनन्दमय, अमूर्तीक, अशरीर, इच्छा व राग या द्वेषसे रहित ऐसा परमात्मा या ईश्वर इस विश्वके किसी पदार्थका न तो उपादानकर्ता है न निमित्तकर्ता है। इसी सत्यको जिन आगम झलकाता है। यह आत्मा अपने भावोंसे पाप व पुण्य कर्मका बन्धन अपने सूक्ष्म शरीरमें करता है वे ही कर्म पककर फल दिखलाते हैं तब दुःख या सुख होजाता है। जैसे स्थूल शरीरमें भोजन पानी हवा हम स्वयं लेते हैं व वे स्वयं पककर वीर्य रूप बनते हैं उस वीर्यका फल हम स्वय भोगते हैं, वैसे सूक्ष्म शरीरमें होता है। ईश्वर इस प्रपंचमें भी नहीं पड़ता है कि किसीको पापका फल दुःख देवे व पुण्यका फल सुख देवें। उसके संकल्प विकल्प करनेवाला न तो मन है न आज्ञा देनेवाला वचन है न काम करनेवाला शरीर है—वह तो स्फटिक रत्नमई शुद्ध निर्दोष सदा आनन्दमई परम संतुष्ट, जगतके विकारोंसे रहित परमात्मा है।

जिन वचन सर्वज्ञ वीतराग कथित है ऐसा श्री समंतभद्राचार्य स्वयम्भूस्तोत्रमें कहते हैं—

स्थितिजननिरोधलक्षणं चरमचरं च जगत् प्रतिक्षणम्।
इति जिनसकलज्ञलाञ्छनं वचनमिदं वदतां वरस्य ते॥

भावार्थ—हे जिन ! आप वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं व आप सर्वज्ञ हैं इसका चिन्ह यही है कि जैसा यह जीव अजीवरूप विश्व उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूप है, हरसमय पाया जाता है वैसा ही आपने कथन किया है। विज्ञान कहता है कि शब्द मूर्तिक है, जैन सिद्धांत भी कहता है शब्द पुद्गलकी पर्याय है। विज्ञान कहता है कि उद्योत मूर्तिक है, जैन सिद्धांत भी कहता है कि उद्योत पुद्गलकी पर्याय है। विज्ञान कहता है कि वृक्ष अल्प जंतुओंके समान हवा लेते, जीते मरते व क्रोधादि कषाय करते है, जैन सिद्धांत भी उनको सजीव कहता है।

वस्तुका स्वरूप सत है-परिणमन शील है-अनेक स्वभाववाला है जिसकी सिद्धि स्याद्वादसे ही हो सकती है। यह सत्य है इसीको प्रतिपादन करनेवाला जिन आगम है। यही जिनधर्मके श्रेष्ठत्वका एक नमूना है। दूसरा नमूना यह है कि आत्मिक राज्य व आत्म स्वातंत्र्य व मोक्ष किसीको किसीके द्वारा भोगनेसे या प्रार्थनासे या भक्तिसे नहीं मिलता है। जो आत्मा स्वयं पुरुषार्थ करता है वह अपने साधकतम पुरुषार्थके बलसे अपने बन्धनोंको आप ही काटकर स्वयं मुक्त या स्वतंत्र होजाता है। यह स्वतंत्रता या independence का पाठ जिन आगम बताता है। आत्मस्वतंत्रताका लाभ कैसे होता है इसके लिये दसवीं शताब्दीमें प्रसिद्ध स्वामी अमृतचन्द्र महाराज कहते हैं—

विपरीताभिनिवेशं निरस्य सम्यक् व्यवस्य निजतत्त्वम्।
यत्तस्मादविचलनं सएव पुरुषार्थसिद्ध्युपायोऽयम् ॥१५॥

अर्थात्—विपरीत अभिप्रायको दूर करके कि यह आत्मा स्वभावसे रागी द्वेषी है, अज्ञानी है, नर, पशु, देव, नारकी है या इंद्रियसुख सच्चा सुख है तथा अपने आत्माके स्वरूपका पक्का निश्चय करके कि यह आत्मा स्वभावसे परमात्माके समान सर्व पूर्ण ज्ञान दर्शन सुख चारित्रादि गुणोंसे पूर्ण है तथा यह सत् द्रव्य है। यह अवश्य परतंत्रसे स्वतंत्र होसक्ता है, अशुद्धसे शुद्ध होसक्ता है तथा सच्चा सुख आत्मीक है। फिर अपने ही आत्माके निश्चित स्वभावसे चलायमान न होकर आत्माके सच्चे स्वभावका ध्यान करना यही मोक्ष पुरुषार्थकी सिद्धिका उपाय है।

वास्तवमें जैन धर्म बताता है कि आत्मानुभव या आत्मध्यान ही कर्मके मैलको काटता है और आत्माको शुद्ध करता है। इसके लिये पूर्ण मार्ग साधुका चारित्र है, जहां निरंतर आत्मध्यान व आत्ममननका ही कार्य है। अपूर्ण मार्ग गृहस्थका चारित्र है जहां अर्थ व काम पुरुषार्थका साधन करते हुये धर्म पुरुषार्थका साधन है व शनै २ अर्थ व कामको घटाते हुए धर्म पुरुषार्थमें उन्नति करते जाना है। गृहस्थके लिये आत्मध्यान करनेके उपाय चार हैं—ध्यानमई वीतराग परमात्माकी मूर्ति द्वारा दर्शन पूजन करके अपने ही आत्मीक गुणोंकी तरफ अपना मन रोकना, (२) ध्यानी वैरागी साधुओंकी संगतिसे ध्यान सीखना, (३) ध्यानको बतानेवाले जैन शास्त्रोंका अध्ययन करना, (४) प्रातःकाल और संध्याकाल कुछ देरतक आत्मध्यानका अभ्यास करना।

तीसरा महत्वका तत्व जैन सिद्धांतमें अहिंसा है। राग द्वेष छोड़कर समता रखना भाव अहिंसा है। वृक्षादि जंतु आदि, पशु आदि

मानव आदि सर्व प्राणी मात्रकी रक्षा करना द्रव्य अहिंसा है। इस अहिंसाका पूर्ण पालन आरंभ परिग्रहके त्याग किये विना नहीं हो सक्ता इसलिये जैन साधु वीरप्रभुकी तरह वस्त्रादि सर्व परिग्रह छोड़कर बालकवत् नग्न दिगम्बर व निर्विकार होकर जीवदया पालते हुए वर्तते हैं। वस्त्र धोने धुलानेकी आरंभी हिंसासे भी बचते हैं।

एक मानवके लिये जितना हिंसाका त्याग संभव है उतना बचाते हैं। गृहस्थ जन संकल्पी हिंसाको अवश्य त्यागते हैं, जो हिंसा हिंसाके अभिप्रायसे की जाती है जैसे—धर्मके नामसे पशुबध करना, मांस खिलाना, मारनेके लिये हिंसा करना आदि। आरंभी हिंसा जो खेती वाणिज्य, शिल्प काम व राज्य प्रबन्धकी व देशकी रक्षाके अभिप्रायसे की जाती है, उसको गृहस्थी सर्वथा छोड़ नहीं सक्ता किन्तु यथाशक्ति कम करता है व धीरे धीरे छोड़ता हुआ मुनि पद धारनेकी योग्यता प्राप्त कर लेता है। ये तीन ही तत्व जैन धर्मके सिद्धांत बतानेको बस हैं। यदि शासक व शासित इस जैन धर्मपर चलें तो अन्यायमई न्याय विरुद्ध सर्व व्यवहार बंद होजावे। राजा व प्रजा सर्व गृहस्थोंको जैनधर्मका उपदेश है कि मांस, मदिरा, मधु न खाओ—संकल्पी हिंसा न करो, झूठ न बोलो, चोरी न करो, परस्त्री न सेवो, संतोष रक्खो यह यथार्थमें राष्ट्रीय धर्म होनेकी योग्यता रखता है। इस धर्मसे पशुतक पार होते हैं। पतितसे पतित भी धर्मकी शरणमें आकर पवित्र हो जाता है। इसलिये श्री समन्तभद्राचार्यका यह श्लोक प्रमाणमें बस है—

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम् ।
देवादेवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम् ॥ २८ ॥

भावार्थ—यदि चंडालकी देहमें पैदा हुआ भी जीव जैनधर्मकी श्रद्धा करले तो उसे गणधरादि देव देव समान कहते हैं। वह उस अग्निके फुलिंगके समान है जिसपर राख पड़ी है। बड़े २ पापी मानव, मांसभक्षीतक मानव जैनधर्मी होकर शुभ गतिमें पहुचे हैं। किसी समय ५०० कुत्तोंको रखकर शिकार खेलनेवाला राजा श्रेणिक जैनी होकर महावीरस्वामीके समवशरणमें सर्व जैन गृहस्थोंसे ऊंचा माना गया है—इस धर्मको हरएक धारण कर सक्ता है।

वर्णाश्रम व्यवस्था, विवाह केनियम, समुद्रयात्रा, विदेश गमन ये सब लौकिक बातें हैं, लौकिक हरएक पद्धति उतने ही अशमें जैनियोंको मान्य हो सकती है जिससे सम्यक्त व व्रतमें बाधा न होवे।

सर्वमेव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः ।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणं ॥

वर्णव्यवस्था धर्मका अंग नहीं है—मात्र लौकिक अवस्था है।

इस जैनधर्मका, उपदेश द्वारा व साहित्य द्वारा जगतमें प्रचार करना चाहिये। यही सच्चा मानवीय धर्म होसक्ता है। जैन व अजैन बंधु मेरे लेखकी सत्यताकी परीक्षाके लिये जैन ग्रन्थोंको पढ़ें। प्राकृत, संस्कृत व हिन्दीके ग्रन्थ तो दि० जैन पुस्तकालय—सूरतसे मिलेंगे। इंग्रेजीके व इंग्रेजी उल्था किये हुए ग्रन्थ पं० अजितप्रसादजी वकील, अजिताश्रम, लखनऊसे व बाबू राजेन्द्रकुमार जैन, जैन पब्लिशिंग हाउज-बिजनौर (यू० पी०)से मिलेंगे तथा छोटे २ ट्रैक्ट हिन्दी, उर्दू व इंग्रेजी जैनमित्र मंडल, धर्मपुरा, देहलीसे व आत्मानंद जैन सभा, अंबाला शहरसे मिलेंगे।

कविता-कुञ्ज।

(श्री० पं० गुणभद्रजी जैन-कलोल)

प्रतीक्षा।

किसीके भुलाये भरमाये न भुलाऊ तुझे, खोलके कपाट चित्तमें सदा बिठाऊँ मैं ।
भक्ति-वारिधिमें ही निरन्तर लगाऊँ गोते, एकवार वीतराग मूर्ति देख पाऊं मैं ॥
गाऊँ गुणगान बिसराऊँ अन्य काम सब, कोटि बार शीश पद पद्ममें नवाऊँ मैं ।
आके लोचनोंमें बस जाओ वेग दीनबन्धु । केवल प्रतीक्षामें ही समय बिताऊँ मैं ॥

मेरी पूजा।

दाता दिव्य वस्तुओंके आप ही कहाते सदा, इससे समस्त वस्तु आपकी ही पाऊँ मैं ।
चाहिये न आपको कदापि स्वर्गीय वस्तु, धृष्टता विवश यदि कोई वस्तु लाऊँ मैं ॥
तो भी नाथ ! चित्तमें विचार एक आता यही, छोड़ी जब सम्पदा उसे ही क्या चढ़ाऊँ मैं ।
लिये थाल कबका खड़ा हूं आप सन्मुख, चित्तमें विचार आता पीछे अब आऊँ मैं ॥

सरस्वती।

नन्दिनी जिनेन्द्रकी निकन्दिनी है पाप पुंज, हंसिनी समान करे नीर क्षीर न्यारा तू ।
मेटती है चिरकी अनादि भ्रान्ति प्राणियोंकी, सतत पिलाती जिन वच रस धारा तू ॥
जान्हवी समान पावनी है सुखदायिनी है, देती है निराश्रितोंको मंजुल सहारा तू ।
घोर दुख वारसे उबार तो सवेग अब, कुछ तो विचार कर मनमें हमारा तू ॥

दिव्य-लोक।

ठौर ठौर चमक चमेलीकी बहार जहाँ, स्वर्ग रमणीक सब भोगोंका निवास है ।
महा सुखदायी ऋतुराज है वसन्त जहाँ, उस दिव्य-लोकमें न शीत-उष्ण त्रास है ॥
रोग शोक भीति नहीं, प्रीति भग लेश नहीं, होता अलमयमें जहाँ देवोंका न ह्रास है ।
दिव्यलोक क्या है मानों सर्व सम्पदाका धाम, रंग सुखदायी महारत्नोंका प्रकाश है ॥
देव ललनाओंके विलोक मुखमण्डलको, शशि सरसिज सब आप शरमाते हैं ।
दीर्घ-हग देखके जिन्होंके भागते हैं मृग, केशोंको विलोक साप बांबीसे न आते हैं ॥
जिनके उरोज हैं सरोजके समान भव्य, कंचन कलश सम सुन्दर सुहाते हैं ।
मृदु सर्वांगमें भरी है चारुता ही जहाँ, जिसको विलोक हग दोनों फूल जाते हैं ॥

जैन विद्वानोंसे।

(ले०-पं० नाथूलाल जैन, न्यायतीर्थ-इन्दौर)

एक नहीं अनेक लेख जैनधर्मके प्रचारविषयक पत्रोंमें हरसमय प्रगट होते रहते हैं। किन्तु जैन विद्वान् उनपर कभी ध्यान नहीं देते। हम लोग इसी चिंतामें मग्न रहते हैं कि इन जैन समाजके विद्वानोंको किस तरह समझाया जाय कि वे अपनी विद्वत्ता प्राकृतिक, सार्वभौमिक आलमगीर धर्मके विषयमें प्रगट करें जिसे संसारके लोग एकटक दृष्टिसे जानना चाहते हैं।

जब हम किसी क्रिश्चियन और हिन्दू सज्जनसे बात करते हैं और धर्मका प्रकरण आता है उसी-समय बातें करनेवाले सज्जनकी जैनधर्म विषयक जिज्ञासाको किसी ग्रन्थके द्वारा पूरा करनेमें असमर्थ होकर दु:खी होते रहते हैं और अपने अनुपमरत्न कतिपय विद्वानोंका नाम लेकर उन्हें कोसा करते हैं। आजतक ऐसी कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई जिसे जैनेतर विद्वान व साधारण लोग पढ़कर जैन सिद्धांतका मर्म जान सकें। हम उन्हें सर्वार्थसिद्धि, श्री राजवार्तिक अथवा प्रमेयकमलमार्तंड तो दे नहीं सके जिनसे सरलतया वे सभी सिद्धान्तोंसे परिचित होसकें। आजतक इस उपर्युक्त कमीको किसी विद्वान्ने पूरा करनेका संकल्प नहीं किया और यह भारी कमी जब पूर्ण होजायगी तब जैन जाति व इतर जाति उन विद्वानकी चिरकृतज्ञ रहेगी यह नि:संदेह जानना चाहिये।

विश्वमें बढ़ी हुई अशांतिको दूर करनेके लिए जिस परम धर्मकी आवश्यक्ता संसारको है वह परमपावन जैनधर्म भूतकालमें जैसा संसारका त्याग धर्म था आगे भी वही मान्य होगा और बिना उसके संसारका दुख दूर नहीं होसकता, इसमें कोई संदेह नहीं। विश्वधर्मके प्रचारकी नींव उन विद्यार्थियोंपर है जो अपनी विद्यार्थी अवस्थामें शिक्षण और आचरणमें परिपक्व रहे हैं और रहेंगे तथा जिन्होंने अपने जीवनका ध्येय एक मात्र "जैनधर्म प्रचार" बना लिया है। बिना उपर्युक्त नियमके "जैनधर्मका संदेश" संसारके सामने उपस्थित कर सकना खम सदृश होगा।

अमेरिकाके कतिपय विद्यार्थी ऐसे ही हैं जो भारतवर्ष, चीन और योरोपमें भेजे जाते हैं उनका यही उपर्युक्त उद्देश रहता है। डॉक्टर स्टेन्ले जोन्स (Dr. Stanley Jhones) जो भारतवर्षमें धर्मप्रचार करनेके लिये भेजे गये हैं; वे अमेरिकाकी प्रचार सोसायटीके व्याख्यानमें प्रथम श्रेणिमें आये थे इसलिये वे भारतवर्षके लिये निश्चित हुये, जिनकी मनोमोहिनी ओज-स्विनी भाषामें वक्तृता हमने सुनी है, उसे देखकर कौन ऐसा व्यक्ति नहीं होगा जो सहसा उनकी भाषण-शैलीपर मुग्ध नहीं हुआ हो। इसी-प्रकार जबतक जैन समाज ऐसे आदर्श प्रचारक पैदा नहीं करेगी तबतक जैनियोंके विद्यालयोंमें विद्याध्ययन कराकर खर्चा बढ़ानेसे कोई लाभ नहीं होगा। आजकल जो पठनक्रम चालू है उससे केवल परीक्षा पासकर नौकरी तलाश करना ही विद्यार्थियोंका ध्येय रह गया है, क्योंकि बिना इसके उनको और कुछ सूझता

नहीं। तब बतलाइये कैसे वे आदर्श विद्यार्थी बनेंगे ? जैसा मैं लिख रहा हूं ऐसे ही अनेक लेख पत्रोंमें प्रकाशित हो चुके हैं किंतु हमारी समाजके विद्वान् किसी श्रीमान् सेठ साहूकारको नहीं समझाते, जिससे वे एक ऐसा आदर्शछात्राश्रम व विद्यालय खोलें जिसमें चुनेहुए उपर्युक्त ध्येयवाले तीव्रबुद्धि और नियमबद्ध छात्र रहें।

उन्हें यही शिक्षा दी जावे कि अपने धर्मके तत्वको किस तरह समझाना, कैसा व्यवहार रखना और कैसी विद्वत्ता प्राप्त करना आदि। तथा उस स्थानपर तीन चार दिग्गज विद्वान रहने चाहिये जो इतिहास, व्याख्यान, धर्म और विज्ञानके अच्छे ज्ञाता हों। जबतक यह उपर्युक्त कमी दूर नहीं होगी तबतक अनेक विद्यालयोंसे कोई समाजको लाभ नहीं होगा। हमारा मतलब यह नहीं है कि कोई अधिक व्यय लगाकर नवीन संस्था निर्मापित की जाय, किंतु समाजके इंदौर, बनारस, सहारनपुर आदि मुख्य विद्यालयोंमें जहां एकसा पठनक्रम है, किसी एक विद्यालयको उपर्युक्त ध्येय बनाना चाहिये और फिर यह परवाह नहीं करनी चाहिये कि अमुक विद्यार्थी जो मन्दबुद्धि हो और जिसके द्वारा अन्य विद्यार्थियोंमें संक्रामक रोग होनेकी संभावना हो रखना चाहिये क्योंकि वह दीनहीन दशाका है।

चाहे १५ की संख्यामें विद्यार्थी रहे किंतु ऐसे रहें जो भविष्यमें १५ ही स्थानोंको सम्हालकर जैनधर्मका प्रचार कर सकें। इस तरह १५ प्रांतोंमें प्रचार होनेसे कितना लाभ होगा, यह विद्वान स्वयं विचार लेवें। यदि हमारी इस छोटीसी प्रार्थनाको जैन विद्वानोंने सुना और उसका प्रयत्न किया तो उससे जैनसमाज और देशका भला होगा। अन्यथा जाति और देशका विना धार्मिक जीवनके भयंकर पतन होना अवश्यम्भावी है। कुछ नवयुवकोंको इसी ओर अपना तन और मन अर्पण कर देना चाहिये कि हम आजीवन जैनधर्मका विश्वव्यापी प्रचार करेंगे तभी यह कार्य सफल होगा। आशा है हमारी सोई हुई समाज अब भी इस नूतन युगमें अपनी चिरनिद्राको दूरकर आगे बढ़नेके लिये प्रयत्नशील होगी। अन्यथा हम नवजवान मिलकर उस भयंकर क्रांतिके मार्गका अनुसरण करेंगे जो सेठों और पंडिताईका दम भरनेवालोंको संभवतः रुचिकर न हो।

नवीन रंगीन चित्र–

कमठका उपसर्ग।

भगवान पार्श्वनाथको कमठके जीवने जो उपसर्ग किया था उसका जीता जागता दृश्य देखना हो तो यह चित्र मगाइए। मूल्य आठ आने।

भरत चक्रवर्तिके १६ स्वप्न ॥)

चन्द्रगुप्तके १६ स्वप्न ॥) समवसरणका दृश्य ॥)

भगवान भावपूजन भालक।

११२ [illegible]

बड़े [illegible], [illegible] ६४, पृष्ठ ४४० और मूल्य [illegible] ॥

भगवान महावीर [illegible] १॥) २)

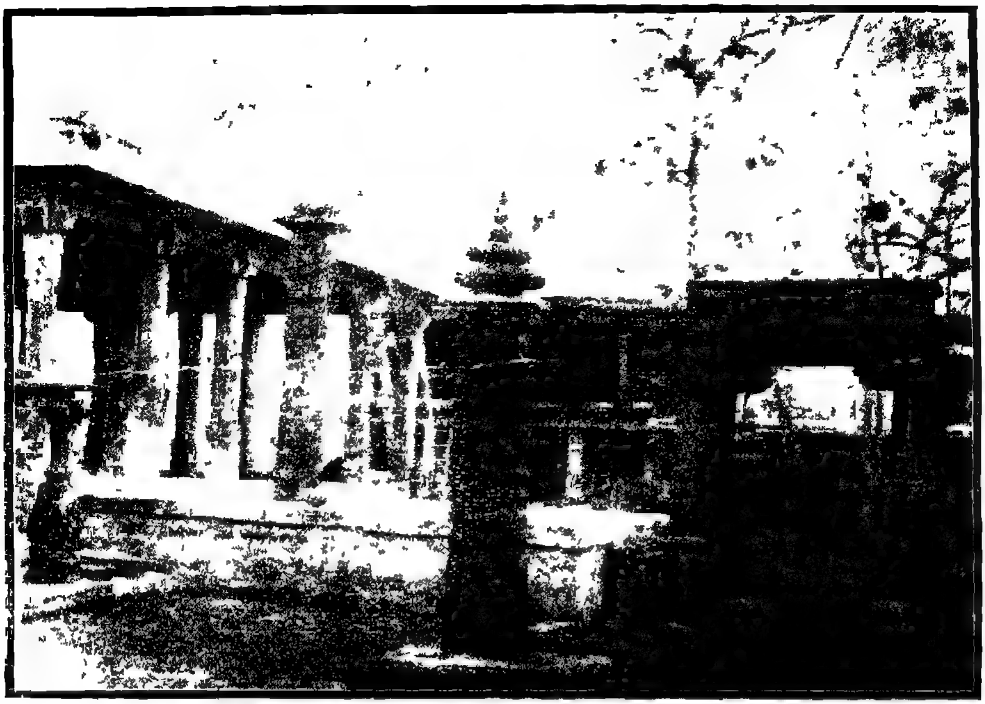
गौतमस्वामी चरित्र ([illegible]) १)

भगवान महावीर व महात्मा बुद्ध १॥)

श्रेणिक महाराजका चरित्र १।॥)

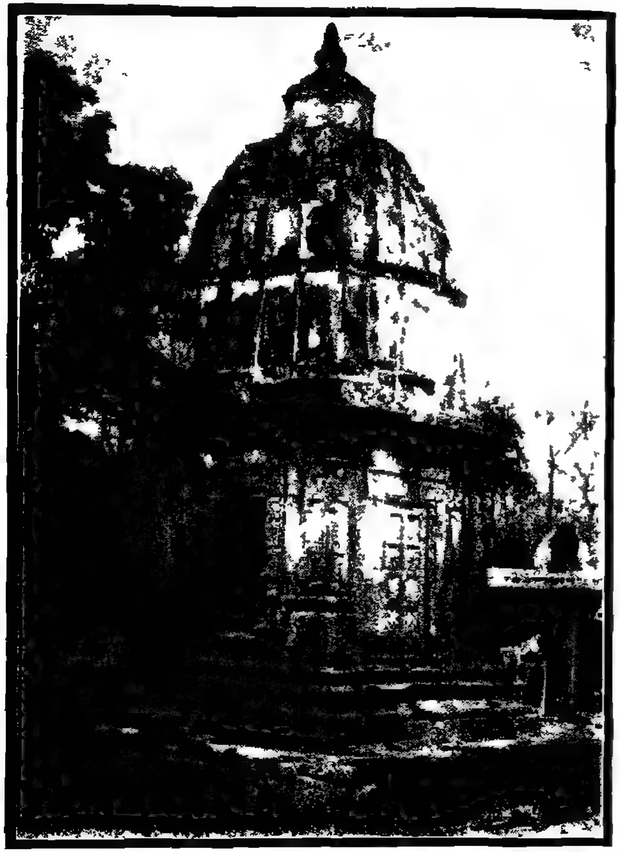
प्रश्नोत्तर श्रावकाचार [illegible] ३॥)

मैनेजर, दि० जैनपुस्तकालय–सूरत।



प्राचीन क्षेत्र ऊनके श्री शान्तिनाथजीके मन्दिरकी सामनेका दृश्य।





प्राचीन क्षेत्र देवगढ़ मंदिर नं० ५ सहस्तकूट चैत्यालय।
[इसकी भीतपर सं० ११२० माघ सुदी ८ मंगलवारका लेख है]



आप एक अच्छे होनहार दिगम्बर जैन वैद्य व ज्योतिषी हैं।

आयुर्वेदके यथार्थ उपदेश।

[लेखकः–वैद्यभूषण वैद्यशास्त्री आयुर्वेदाचार्य पं० अमयचन्द्रजी जैन काव्यतीर्थ–हरदा।]

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥ अष्टांगहृदय ॥

जीवित मनुष्य ही सैकडों कल्याणोंको देखता है। संसारमें धर्म, अर्थ, काम, (सुख) ये तीन प्रधान पुरुषार्थ हैं। इनका साधन आयु है। प्रतिक्षण नाशशील आयुकी किस तरहसे रक्षा, वा पोषण करना चाहिये यह आयुर्वेद वा आयुर्वेदके समकक्ष शास्त्रोंसे ज्ञान होता है। अतः प्रत्येक दीर्घजीवनकी कामना करनेवाले मनुष्यको उचित है कि आयुर्वेदके उपदेशों–ग्रंथोंका अध्ययन वा विचार करता रहे।

आरोग्य सर्वस्वदाता और रोग हर्ता है।

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥चरकसंहिता॥
॥ अ० १७ श्लोक १५ ॥

आरोग्य (तन्दुरुस्ती) धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी उत्तम जड़–मूल कारण है। जैसे कोई वृक्ष विना उत्तम जड़के हराभरा नहीं रह सकता, उसी तरहसे यह जीवन तक भी विना आरोग्यके धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी अपनी शाखा–प्रशाखाओंमें फैलकर सफल नहीं हो सकता।

रोग–जीवनका नाश करता है, और साथ२में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और समस्त कल्याणोंका भी नाश करता है।

आयुर्वेदसे आयुके समस्त अंगोंपर प्रकाश।

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥
चरक० अ० १ श्लोक ४०।

जिसमें हित-आयु, अहित-आयु, सुखायु, दुःखायु, आयुके हितकर पदार्थ, आयुके अहितकर पदार्थ, आयुका प्रमाण और आयुका स्वरूप अच्छी तरहसे कहा गया हो वह आयुर्वेद है।

मूर्ख वैद्योंकी औषधि नहीं खाना चाहिये।

कुर्यान्निपतितो मूर्ध्नि सशेषं वासवाशनिः।
सशेषमातुरं कुर्यान्न त्वज्ञमतमौषधम् ॥
च० अ० १ श्लो० १२६।

मस्तक जैसे मर्मस्थानपर लगी हुई वज्रकी चोट भी कदाचित् प्राणोंका नाश नहीं कर सकती, परन्तु मूर्ख वैद्यके द्वारा दी हुई अन्ट-सन्ट औषधि अवश्य ही रोगीके प्राणोंका नाश कर देती है। किसी उर्दू कविने क्या ही अच्छा कहा है–"नीम हकीम खतरे जान"।

स्वास्थ्यरक्षाके नियमोंका पालन करे।

नगरी नगरस्येव रथस्येव रथी यथा।
स्वशरीरस्य मेधावी कृत्येष्ववहितो भवेत् ॥
च० अ० ६ श्लो० १००।

जिस प्रकार राजा अपने नगरकी रक्षामें तत्पर रहता है, विशेष करके भीतरी शत्रुओंसे रक्षा करता है। और जिस प्रकार रथी (रथका संचालक) बाहिरी गड्ढे, ऊंची, नीची जगह आदिमें

गिरनेसे रथको बचाता है, उसी प्रकार बुद्धिमान मनुष्यको उचित है कि अपने शरीरको नीरोग रखनेवाले कार्योंके करनेमें सावधान रहे।

सब रोगोंका एक निदान।

रोगा: सर्वेऽपि जायन्ते वेगोदीरणधारणै:। अष्टांगहृदय।

नहीं आये हुए अधोवात, मूत्र, पुरीष (पाखानें) आदिके वेगोंको जबर्दस्ती निकालनेसे और आये हुए वेगोंको रोकनेसे सम्पूर्ण रोग पैदा होते हैं। इसलिये नहीं आये हुए वात मूत्रादि वेगोंको जबर्दस्ती नहीं निकालना चाहिये, तथा आये हुए वेगोंको रोकना नहीं चाहिये। मुख्य वेग १३ हैं।

१ अधोवातका वेग, २ मूत्रका वेग, ३ पुरीषका वेग, ४ छींकका वेग, ५ प्यासका वेग, ६ भूखका वेग, ७ निद्राका वेग, ८ खासीका वेग, ९ श्रमश्वास (मिहनत करनेसे श्वासका बार२ चलना) का वेग, १० जँभाईका वेग, ११ आंसुका वेग, १२ वमनका वेग और १३ शुक्रका वेग।

धारण करने योग्य वेग।

इमास्तु धारयेद्वेगान् हितार्थी प्रेत्य चेह च।
साहसानामशस्तानां मनोवाक्कायकर्मणां ॥ २६ ॥
लोभशोकभयक्रोधमानवेगान् विधारयेत्।
नैर्लज्जेर्ष्यातिरागाणामभिध्यायाश्च बुद्धिमान् ॥ २७ ॥
परुषस्यातिमात्रस्य सूचकस्यानृतस्य च।
वाक्यस्याकालयुक्तस्य धारयेद्वेगमुत्थितम् ॥ २८ ॥
देहप्रवृत्तिर्या काचिद्विद्यते परपीडया।
स्त्रीभोगस्तेयहिंसाद्या तस्या वेगान् विधारयेत् ॥२९॥
॥ चरकसंहिता ॥

जो मनुष्य इस लोक और परलोकमें हितको चाहता है उसको उचित है कि वह देश, काल, धर्म आदिके विरुद्ध अशुभ मानसिक वाचनिक और कायिक क्रियाओंके करनेके साहसोंके वेगोंके लोभ, शोक, भय, क्रोध, मान, निर्लज्जता, ईर्षा, अत्यासक्ति, परधनको लेनेकी इच्छाके वेगोंको रोके। कठोर, बहुत, परस्परमें कलह पैदा करनेवाला, झूठा, वे मौकेका, ऐसे वाक्यके वेगको रोके। जिस शरीरकी चेष्टासे दूसरेसे पीड़ा होवे ऐसी व्यभिचार, चोरी, हिंसा आदि चेष्टाओंके वेगोंको रोके।

नीरोग मनुष्यकी पहिचान।

समदोष: समाग्निश्च समधातुमलक्रिय:।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमन: स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥
सुश्रुत संहिता।

जिसके वात, पित्त, कफ, दोष सम हों, रस, रक्त आदि धातुऐं सम हों, मल सम हों तथा क्रियायें भी सम हों। जिसकी इन्द्रियां मन और आत्मा प्रसन्न हो वह स्वस्थ—नीरोग है।

स्वास्थ्य हमेशा ठीक कैसे रह सकता है?

दिनचर्यां निशाचर्यां ऋतुचर्यां यथोदिताम्।
आचरन् पुरुष: स्वस्थ: सदा तिष्ठति नान्यथा ॥
भावप्रकाश।

आयुर्वेद शास्त्रमें कही हुई अनुभूत, दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्याका जो पुरुष अच्छी तरहसे पालन करता है, वह हमेशा नीरोग रहता है। जो पालन नहीं करता है वह रोगी रहता है।

सोकर किस समय उठना चाहिये?

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थमायुष:। अष्टांगहृदय।

प्रत्येक स्वस्थ मनुष्यको आयुकी रक्षाके लिये ब्राह्म मुहूर्तमें जागृत होना चाहिये।

ब्राह्ममुहूर्त किस समयको कहते हैं?

रात्रेश्चतुर्दशो मुहूर्तो ब्राह्मो मुहूर्तो विषुवति समरात्रिंदिवेकाले द्विघटिकालक्षण:। अष्टांगहृदय टीका।

एक रात्रिमें १५ मुहूर्त होते हैं। रात्रिके चौदहवें मुहूर्तका नाम ब्राह्ममुहूर्त है। एक मुहूर्त ४८ मिनिटका होता है इसलिये सूर्योदयसे २ मुहूर्त (१ घंटा ३६ मिनिट) पहिले उठना चाहिये। ब्रह्म शब्दका अर्थ 'ब्रह्मज्ञानं तदर्थमध्ययनाद्यपि ब्रह्म तस्य योग्यो मुहूर्तो ब्राह्मः' ब्रह्मज्ञानको कहते हैं, ज्ञानोत्पत्तिमें सहायक अध्ययन (पढ़ना) आदि भी है। इसलिये ज्ञान संपादनके योग्य जो मुहूर्त हो उसको ब्राह्ममुहूर्त कहते हैं।

ब्राह्ममुहूर्तमें उठनेसे अनेक प्रत्यक्ष वा परोक्ष लाभ हैं। जैसे किसी जलाशयका जल दिनभर पानीके भरते रहनेसे मैला रहता है और रात्रि-भर जल भरने आदिकी क्रिया नहीं होनेसे प्रातःकाल उस जलमें विशेष प्रकारकी शुद्धि और शीतलता आदि गुण आजाते है, उसी तरहसे मनुष्योंके शरीर, मन और आत्मा अनेक प्रकारके शारीरिक और मानसिक परिश्रमोंसे कलुषित होजाते हैं। जिससे कि उनमें उतना किसी कार्यके करनेमें उत्साह तथा निर्मलता नहीं होती है परन्तु जब रात्रिमें निद्रासे पूर्ण विश्राम लेलेते हैं तब वे अपने प्राकृतिक रूपमें आकर अपने२ विषयोंको अच्छी तरहसे ग्रहण करने लगते हैं। संसारमें ज्ञानसे बढ़कर और क्या वस्तु है, जिसको अवश्य प्राप्त करना चाहिये। इसीलिये आचार्योंने ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये ही सर्व प्रथम आज्ञा दी है। ज्ञान प्रत्येक पदार्थको प्रकाशित करनेके लिये प्रदीप है। ज्ञान ही पुण्य है, क्योंकि आत्मा, परमात्माकी प्राप्ति भी ज्ञानसे ही होती है। इसीलिये आचार्योंने यहांतक ब्राह्ममुहूर्तमें जागनेको महत्त्व दिया है और सोनेकी निन्दा की है कि–

ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी।

ब्राह्म मुहूर्तमें नहीं जागनेसे–सोते रहनेसे पुण्यका नाश होता है।

प्रातःकालमें ही मलमूत्रका त्याग करो।

आयुष्यमुषसि प्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम्।
तदन्त्रकूजनाध्मानोदरगौरवकारणम्॥ भावप्रकाश॥

प्रातःकालमें मलमूत्र आदिका त्याग करना चाहिये। वह आयुको हितकर तथा अंतड़ियोंमें गुड़गुड़ ऐसा शब्द (गुड़गुड़ाहट), पेटका फूलना, भारीपन आदिको दूर करता है।

प्रातःकालमें ही मलमूत्रका त्याग करना चाहिये, इस शीर्षकसे कोई महाशय ऐसा अर्थ न लगा लें कि नहीं आये हुए वेगको भी जबर्दस्ती निकालना चाहिये। नहीं, जबर्दस्ती वेगको निकालनेके लिये तो पहिले हीसे निषेध कर आये हैं, परन्तु रात्रिभर विश्राम करनेके बाद स्वयं ही मनुष्य हीको क्या प्रत्येक प्राणीको मल मूत्र आदि त्याग करनेकी प्राकृतिक इच्छा होती है। इस प्राकृतिक प्रेरणाके रहनेपर भी कई एक आलसी मनुष्य उन वेगोंको दबाये बैठे रहते हैं। उनका ऐसा करना अनेक स्वास्थ्य विघातक रोगोंको आमन्त्रण देना है। किसी किसीको प्रातःकालमें मलमूत्र त्याग करनेकी आदत नहीं होती है। उनको जहांतक बन सके प्रातःकालकी ही आदत डालनी चाहिये। अक्सर मल त्यागनेमें ही ऐसी गड़बड़ी देखी जाती है। उसके लिये कुछ समय तक साधारण नियमोंका पालन करना चाहिये। वे नियम निम्नलिखित हैं:–

अच्छी तरहसे चर्वण करके भोजनको निगलना चाहिये।

भोजनमें प्रतिदिन हरी शाकोंका अवश्य उपयोग करना चाहिये।

भोजन विशेषतः दोपहरके भोजनके बाद ताजे फलों–अंगूर, सेव, नासपाती, पपीता आदिको खाना चाहिये। यदि ताजे फलोंके मिलनेकी सुविधा न हो तो मुनक्का दाख सूखी खाना चाहिये। रात्रिके समय दूधके अनुपानके साथ मुनक्का दाख लेनेसे अवश्य मलमूत्र त्यागमें सहायक होती है। गुलाबके फूल और मुनक्काको दूधमें चतुर्थांश जल मिलाकर पकाकर सोने समय पीनेसे शौच साफ होनेमें सहायता मिलती है। सोते समय उष्ण जलका पान करनेसे भी प्रातःकाल शौच जानेकी इच्छा जागृत होजाती है। इन उपायोंमेंसे जिनको जो सुलभ हो उपयोगमें लाना चाहिये। रात्रिको अधिक जागना न चाहिये।

ऐसे नियमोंका पालन करनेसे प्रातःकालमें ही मलत्याग करनेकी आदत होजाती है जो कि जीवनमें बड़ी ही सुखद और स्वास्थ्यवर्धक है।

उषःकालमें जलपान भी कब्जकी अमोघ औषधि है। यद्यपि आचार्योंने अनेक अपूर्व गुण उषःकालिक जलपानके लिखे हैं—

अभसः प्रसृतीरष्टौ रवावनुदिते पिबेत्।
वातपित्तकफाञ्जित्वा जीवेद्वर्षशतं सुखी॥ (भावप्रकाश)

जो सूर्योदयसे कुछ पहिले ८ प्रसृति करीब तीन पाव जल पीता है, उस मनुष्यके वात, पित्त, कफ, सम होजाते हैं। अर्थात् वातपित्त कफ जन्य कोई विकार पैदा नहीं होते हैं और सुखपूर्वक १०० वर्षतक जीवित रहता है।

इसके अतिरिक्त–बवासीर, सूजन, संग्रहणी, ज्वर, उदर रोग, बुढ़ापा, कोढ़, मेदोरोग, मूत्राघात (पेशाबका रुकना), रक्तपित (नाक, मुख आदिसे खूनका गिरना), आख, कान, सिर, गलेके रोग, कटिशूल इत्यादि रोग उषःकालिक जलपानके अभ्याससे समूल नष्ट होजाते हैं।

किन्तु इस उषःकालिक जलपानसे कब्ज रोगमें अवश्य ही लाभ होता है। पानी पीनेके बाद १–२ मील खुले मैदानकी हवामें भ्रमण करनेसे तो कब्ज समूल नष्ट होजाता है। यह प्रयोग तो मेरा स्वयका अनुभूत है।

आये हुए वात, मूत्र, पुरीष आदिके वेगोंको उसी समय त्याग करना चाहिये और अप्राप्त वेगोको जबर्दस्ती नहीं निकालना चाहिये।

पुरीषके वेगको रोकनेसे अनेक रोग।

आटोपशूलौ परिकर्तिका च सङ्गः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः।
पुरीषमास्यादथवा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य॥
(भावप्रकाश)।

पेटमें गुड़गुड़ाहट, शूल, कैंचीसे काटने जैसी पीड़ा, पाखानेका साफ नहीं होना, डकारोंका अधिक आना, मुखसे टट्टीका वमन होना।

अधोवातके रोकनेसे रोग।

वातमूत्रपुरीषाणां सङ्गो ध्मानं क्लमो रुजा।
जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात्॥

अधोवात (पाद), मूत्र, पुरीषका साफ नहीं होना, रुक जाना, पेटका फूलना, थकावट, उदर शूल तथा दूसरे वात जन्य रोग होजाते हैं।

पेशाबके वेगको रोकनेसे रोग।

बस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरो रुजा।
विनामो बक्षणानाहः स्याल्लिंग मूत्रनिग्रहे॥

पेड़ू और लिंगमें दर्द, पेशाबका रुक रुककर शूल सहित आना, शिरमें दर्द, शरीरका संकोच, रागोंमें खींचने जैसी पीड़ा।

गुदा, लिंग आदि मलके निकलनेके मार्गोको हमेशा साफ रखना चाहिये। इनको साफ रखनेसे अनेक लाभ होते हैं।

गुदादिमलमार्गाणा शौचं कान्तिबलप्रदम्।
पवित्रकरमालक्ष्मीकलिपापहृत्॥

गुदा आदि मल मार्गोंकी शुद्धता शरीरमें कांति और बलको देनेवाली, पवित्रता करनेवाली तथा दारिद्य क्लेश और पापोंका नाश करनेवाली है।

पाखानेसे आनेके बाद हाथ पैरोंका शुद्ध जल और मृत्तिकासे धोना परमावश्यक है।

प्रक्षालनं मतं पाण्योः पादयो शुद्धिकारणम्।
मलश्रमहरं वृष्य चक्षुष्य रजसापहम्॥

हाथ पैरोंको अच्छी तरह धोनेसे शुद्धि होती है, मल और थकावट दूर होती है, वाजीकरण नेत्रोंको हितकर और रजोगुणका नाश होता है।

आधुनिक सभ्य पुरुष इन सब कार्योंको ढकोसले बाजी समझते थे परन्तु जब पाश्चात्य डाक्टरोंने बतलाया कि इनके साथ चिपटे हुए अनेक रोगोंके कीटाणु भी मुखके द्वारा उदरमें पहुंचकर अनेक रोगोंको पैदा करते हैं तब कहीं इन महापुरुषोंकी आंखें खुली हैं और अब कुछ२ शुद्धिपर ध्यान देने लगे हैं। परन्तु अपने पूर्वजोंने हजारों वर्ष पहले इन शिक्षाओंका भलीभांति निरूपण कर दिया है।

जिस तरहसे आंख, कान आदि शरीरके अति उपयोगी अवयव हैं, उसी तरहसे व इनसे ज्यादा दांत हैं। दांत प्रकृति प्रदत्त एक बड़ी भारी अमूल्य निधि है, इसलिये दांतोंकी रक्षा करना अत्यावश्यक है। आयुर्वेदमें इनकी रक्षाके लिये अनेक उपाय बताये हैं, उनमें दंतधावन (दातौन करना) एक मुख्य उपाय है।

दंतधावन (दातौन) किस वृक्षकी कितनी बड़ी मोटी और कैसी होना चाहिये, तथा किस समय करना चाहिये?

अर्कन्यग्रोधखदिर करञ्जककुभादिकम्।
प्रातर्भुक्त्वा च मृद्वग्रं कषायकटुतिक्तकम्॥
भक्षयेद्दन्तपवनं दन्तमांसान्यबाधयन्।
कनीन्यग्रसमस्थौल्यं प्रगुणं द्वादशाङ्गुलं॥
॥ अष्टांगहृदय॥

मनुष्योंको अपनी प्रकृति तथा समयके अनुसार यथायोग्य कषाय, कटु, तिक्त, वृक्ष जैसे अकाव, बड़, खैर, करंज, कुंभा, नीम, बंबूल आदिकी छिंगुरी-अंगुलीके बराबर मोटी और १२अंगुली लम्बी, सीधी, गांठ तथा कृमि रहित दातौन होना चाहिये। ऐसी दातौनको ताजी प्रतिदिन लाकर दांतोंसे बारीक चबाकर जब उसकी अच्छी कूँची बन जावे तब उससे धीरे२ दांतोंको घिसकर साफ करें परन्तु यह ध्यान रहे कि दांतोंके मसूड़ोंको बाधा न पहुँचे। दांत घिसनेके समय इच्छानुसार किसी उपयोगी दंतमंजन, सोंठ, मिर्च, पीपलका चूर्ण, सेंधानमक और तिल्लीके तेल आदिका उपयोग कर सकते हैं। दातौन प्रतिदिन दोबार सुबह और दोनों वक्तके भोजन करनेके बाद करना चाहिये। (शेष फिर कभी)

योगचिन्तामणिके कर्ता जैन थे !

(भिषक् शिरोमणि श्री हर्षकीर्तिके जैनत्वकी संभावना।)

[लेखक:—आयुर्वेदाचार्य आयुर्वेदभूषण पं० धरणेन्द्रजी जैन काव्यतीर्थ—छपारा।]

मान्यवर पाठको ! मैं आज आप लोगोंके साम्हने उस महान् पुरुषका परिचय उपस्थित करता हूं कि जिसने आयुर्वेद संसारमें योगचिंतामणि ग्रन्थ रचकर समाजका बहुत उपकार किया है। यद्यपि मैं उक्त आत्माके विषयमें अधिक गवेषणा नहीं कर सका हूं। और न अधिक उनका जीवनचरित भी प्राप्त कर सका हूं तथापि उक्त महात्माके विचार कैसे थे। और उनके विचारोंका झुकाव किस धर्मकी तरफ था, यही बात यहांपर बताना चाहता हूं।

उक्त महोदयने योगचिंतामणि नामक वैद्यक ग्रन्थमें जो मंगलाचरण द्वारा अपना भाव प्रदर्शित किया है वह यह है—

यत्र विनाशमायाति तेजांसि च तमांसि च।
महीयस्तदहं वंदे चिदानन्दमहं महः॥ १॥

उस श्लोकका भाषा अर्थ मथुरा निवासी श्री दत्तराम चौबेजीने किया है वह यह है—

अर्थ—"यत्र कहिये जहां तेज और तम (अंधकार) नाशको प्राप्त होय। ऐसे महान् तेजःपुंज चिदानंदको हम वंदना करते हैं।"

पाठको ! यह अर्थ कहां तक संगत है ? क्योंकि अजैन समाजमें सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण ये तीन गुण मुख्य माने जाते हैं और जहांपर परमात्माके गुणोंका स्मरण वगैरह किया जाता है वहांपर तीनों गुणोंका उल्लेख किया जाता है। सो तो इस मंगलाचरणमें श्रीहर्षजीने नहीं किया। उन्होंने तो तेजगुण और तमोगुण इन दोनों गुणोंका ही वर्णन किया है।

अतएव इस श्लोकका अर्थ वास्तवमें यह है कि—जिस समय तेजभाव (शुभरूप परिणति) और तमोभाव (अशुभरूप परिणति) ये दोनो परिणति नाशको प्राप्त होती हैं और इन दोनो परिणतियोंके नाश होनेसे जो वह शुद्धोपयोगरूप चिदानंदरूप परमात्मादशा प्रकाशमान होती है उस प्रकाशमान अवस्थाको प्राप्त होनेवाले परमात्माको हम नमस्कार करते हैं। अर्थात् जबतक पुण्य और पाप ये दोनों नाशको नहीं प्राप्त होते तबतक यह जीव परमात्मापनेको नहीं प्राप्त होसकता। यह इस श्लोकका वास्तविक अर्थ है। और इसी आशयको लेकर ग्रंथकारने अर्हंत भगवानको नमस्कार किया है। आगेके श्लोकसे तो हर्षजीका जैनत्व और भी स्पष्ट होजाता है। यथा—

जगत्त्रितयलोकानां पापरोगापनुत्तये।
यद्वाक्यभेषजं भाति श्रीजिनः स श्रियेऽस्तु वः॥२॥

अर्थ—जो भाषाकारने लिखा है—

"जिसका वचन त्रिलोकीके पापरूप रोगोंको औषध स्वरूप है ऐसे श्री जिन (तीर्थंकर) लक्ष्मीके देनेवारे हों।" ये जो वाक्य लिखे गये हैं, वास्तवमें उसका अर्थ यह होता है—

अर्थ—जिन तीर्थंकर भगवानके वचन औषधरूप होते हुए तीनों लोकोंके पापरूपी रोगोंको नाश करनेके लिये संसारमें शोभायमान होते हैं वे तीर्थंकर भगवान आप लोगोंको मोक्ष लक्ष्मीको देनेवाले होवें।

अर्थात्—यदि वास्तवमें संसारके प्राणियोंका हित हो सकता है, संसारका परित्याग होकर मोक्षकी प्राप्ति होसकती है तो तीर्थंकर भगवानके उपदेशसे ही हो सक्ती है। यह वास्तविक अर्थ है। तीसरे श्लोकमें भी जैनत्वकी झलक है यथा—

सिद्धौषधानि पथ्यानि रागद्वेषरुजां जयेत्।
जयति यद्वचास्यत्र तीर्थंकृत् सोऽस्तु वः श्रियै ॥३॥

अर्थ—जिन तीर्थंकर भगवानके वचन-सिद्ध औषधी (तुरंत फल देनेवाली) और पथ्यके समान अनादिकालसे लगे हुए राग और द्वेष रूपी रोगोंको नाश करते है, ऐसे तीर्थंकर भगवान तुम लोगोंको अर्थात् संसारके भव्य प्राणियोंको मोक्षरूपी लक्ष्मीको देनेवाले होवें। चौथा श्लोक और भी स्पष्ट है। यथा—

श्रीसर्वज्ञं प्रणम्यादौ मानकीर्तिं गुरुं तत.।
योगचिंतामणिं वक्ष्ये बालानां बोधहेतवे ॥४॥

अर्थ—श्री अर्थात् अनंतज्ञान दर्शन सुख और वीर्यरूपी लक्ष्मीसे सहित सर्वज्ञ भगवानको आदिमें प्रणाम करके और उनके पश्चात् अपने विद्यागुरु मानकीर्ति महाराजको प्रणाम करके वैद्यकशास्त्रसे अनभिज्ञ जो बालक हैं उनको आयुर्वेदका ज्ञान करानेके लिये योगचिंतामणि नामक यह ग्रंथ रचता हूं।

इसप्रकार उपरि लिखित ४ श्लोकोंका भावार्थ हुआ। अब पाठक महोदय समझ सकेंगे कि जिस महात्माने अपने ग्रंथके आरंभमें मंगलाचरण द्वारा जिन तीर्थंकर अर्हंत भगवानके प्रति इतनी प्रबल भक्तिका परिचय दिया है उस महात्माको क्या हम जैनी नहीं कहेंगे? ऐसा कहनेका कौन साहस करेगा कि श्री हर्षकीर्ति जैनी नहीं थे!

योगचिंतामणिके अध्यायके अंतमें जो ग्रन्थकारका नामोल्लेख किया है वह इसप्रकार है—

"इतिश्री नागपुरीययतिगणश्रीहर्षकीर्ति संकलिते वैद्यकसारोद्धारे प्रथम पाकाधिकारोऽयम्।'

तथा अन्य अध्यायोंके अन्तमें ग्रन्थकारके नामके साथ 'भट्टारक' 'उपाध्याय' 'सूरि' 'तपागच्छीय' इत्यादि जैनत्वदर्शक नाम हैं।

तथा ग्रन्थकारने गुटिका प्रकरणमें 'प्रभावती' गुटिकाकी निर्माण विधि कहते समय उसको दीपावलिके दिन मंत्रोच्चारण पूर्वक बनानेका उपदेश दिया है। उस मंत्रमें भी आपने श्रीपार्श्वनाथस्वामीका नामोच्चारण कर अपनेको जैनत्वपनेका परिचय दिया है।

इस प्रकारसे श्री हर्षकीर्तिको जैनी सिद्ध करनेके लिये बहुतसे प्रमाण मौजूद हैं। जिन प्रमाणोंको देखकर प्रत्येक व्यक्तिको यह कहना होगा कि वास्तवमें श्री हर्षकीर्ति जैनी ही थे।

अभी बहुतसे आचार्य हैं जिनकी जैनसमाज खोज नहीं करती और न उनके निर्माण किये हुए ग्रन्थोंका उद्धार भी करती है। समाजको चाहिये कि वर्तमान समयको देखते हुए तथा अपने द्रव्यको सदुपयोगमें लगाते हुए प्राचीन ग्रंथोंका उद्धार करे। जैसे वर्तमानमें माणिकचंद ग्रन्थमाला बहुत काम कर रही है, तथा अभी कारंजामें भी २ ग्रन्थमालाएं स्थापित हुई हैं। इस प्रकार और भी बहुतसी ग्रन्थमालाएं चालू हों जिसमें कि प्राचीन जैन शास्त्रोंका उद्धार हो जाय।

—सत्यंधर।

मानवजन्म-वीरमोक्षश्च।

(रचयिता–पं० प्रेमचंद्रो जैनः काव्यव्याकरणतीर्थः ।)

सारो मे प्रतिभाति मानवभवो गोत्रत्वमुच्चैर्गत.,
सत्कर्मादिसमन्वितो यदि भवेत् तर्हि नु संवर्ण्यते ।
किन्त्वेतान् युगपत्र कश्चिदधुना प्राप्नोति दुःखेन वा,
अन्योऽन्ये महतो महत्तरतमां सीमां भजन्ते यतः ॥१॥
प्रार्घ्यं मानवजन्मनः सुविदितं मूलेऽस्य संभासते,
तेनैवात्र गुरुत्वमस्य कथितं प्राचार्यवर्यैर्महत् ।
यस्मादेव सुरासुरैरपि सदा सम्प्रार्थ्यते मानुजम्,
यस्मिन्नानुभवोऽस्ति मासषट्कात् मृत्योर्विना तस्य वै ॥२॥
तद्दुःखं सुखमेव मानवगतं चारित्रयुक्तश्च यत्,
तत्सौख्यं सुखमेव नास्ति सुरग चारित्रशून्यं च यत् ।
तत्सौख्यं नहि वस्तुतोऽन्तसहितं भूयोऽपि प्राप्यं तु यत्,
तद्दुःखं नहि दुःखमन्तसहितं प्राप्य न भूयोऽस्ति यत् ॥३॥
मन्येऽहं सुखदामतो प्रशमनीं तामेव नूनं गतिं,
या स्यान्मानुषनारकादिगतिषु प्राप्ता तथा कापि मे ।
नैषेच्छा वरवर्ति मन्मनसि सा देवादिरूपेव स्यात्,
सिद्धिस्थादविनाशनीयमिति मे वाञ्छा सदा वर्तते ॥४॥
सिद्धिश्राय महोत्सवे नरगतौ मोक्षङ्गते सन्मतौ ।
प्रत्यक्षीक्रियते विकाससहिता दीपावलेऽर्जितः ॥
साध्येयं सुरता निशान्तसमयं ज्ञात्वा समीपं यया ।
सर्वेषामवधूनिता विनयता नैकापि संधारिता ॥५॥
किं तस्याः कथयामि यौवनमदं एतेन वान्यत् मदम् ।
प्राबल्यं समयस्य नाथ भवतो वीरप्रभा वापि किं ॥
शक्तो नात्र भवामि वापि गदितुं प्राप्तान्त्विद मोहनम् ।
स्वप्ने वा न विलोकयामि सुखदं नक्तान्तनिद्रा गतः ॥६॥
दुःखं मे भवतीह सर्वनिधनं पश्यन्ति नूनं विभोः ।
किन्त्वेतन्नहि सविभाति मनसा सम्भ्रममाने पुन. ॥
वैचित्र्यान्त्विदमेव नात्र निधनं नास्त्येव मृत्युर्यतः ।
नाप्यस्त्यत्र गता तथा निधनता यस्या धनं निर्गतं ॥७॥
लोके स्यान्निधनं तदेव बहुधा शर्मप्रदं भूरिशः ।
यस्मान्नास्ति परं प्रलम्भममपरं न्यूनं ततो वाधिकम् ॥
प्राप्या चात्र महाविभूतिमहिमा स्वल्पेन मूल्येन वै ।
तर्हि वै विषयामि शोकमपरां विद्धिहते स्वामिनि ॥८॥

वीरमानुश्चकाशे।

[रचयिता–पं० रवीन्द्रनाथो जैनन्यायतीर्थः ।]

यस्मिन्काले निखिलभरतक्षेत्रमध्ये महान्तं ।
पापात्मानः सकलवसुधा पापमार्गं दिशन्ति ॥
मृत्योर्भीताः जगति निखिले प्राणिनो धावमानाः ।
यज्ञक्षेत्रेऽशरणगतिका अर्पयन्तः स्वप्राणान् ॥ १ ॥
तस्मिन्काले विपुलगिरितो वीरभानुश्चकाशे ।
मेघाज्ञानं जगति सकले सत्वरं सो ननाश ॥
तस्य तेजोऽमृतरसमिव व्यानशे सर्वदिक्षु ।
पीत्वा धर्मं सकलसुखिनस्तत्क्षणे सम्बभूवुः ॥ २ ॥
अस्मिन् काले तदनुकूलाः सन्ति सन्तश्च केचित् ।
ये सन्मार्गेऽनुगमनपराः पूर्णतो नैव सन्ति ॥
धर्मारूढे शरणमखिलस्तैरनुज्ञायतेऽत्र ।
कुर्वन्तस्ते विविधविधिना द्वेषमङ्गीकृतेषु ॥ ३ ॥
कस्मिन् काले निखिलविधिना मोक्षमार्गे चरन्तः ।
सत्श्रद्धानं निजपदहितं ज्ञानदृष्योदहन्तः ॥
सत्यं तत्वं जगति सकले सप्तभङ्ग्या दिशन्तः ।
भोगाकांक्षारहितसुखिनस्ते जनाः संभवेयुः ॥ ४ ॥
कर्मोघातिप्रकृतिसकला योगसंरोधनेन ।
कृत्वा नाशं विबुधगणनुतः सन्मतिर्मोक्षमाप ॥
श्रीमन्तं तं हृदि शरणगः प्रार्थयामोऽतिभक्त्या ।
मोक्षो ह्यस्मान्भवतु झटिति त्वद्गुणानां प्रसादात् ॥५॥

किन्त्वद्य प्रणमामि नाथमपरं वीरं जिनं मोदतः,
मांगल्यं प्रतनोतु दीनमपरं ज्ञात्वा तु नः पीडितम् ।
ऐश्वर्यं हि तदेव सर्वभुवनं येनेदमुत्पादितं,
लोकेऽस्मिन् बहवो विभूतिसहिताः सन्त्यद्य नः तेन किम् ॥९॥
सततं वयमत्र भूरिविभवं प्राप्ताः सदाहर्निशं,
तेनेन्द्रादिविभूतिसौख्यमपरं नेच्छामि वान्यत्पदम् ।
किन्त्विच्छामि तदेव शाश्वतसुखं प्राप्यञ्च यद्दुःखत.,
दुःखानन्तरमेव सौख्यमहतीं सीमां भजन्ते नराः ॥१०॥

પચ્ચીસમી જયંતિ.

લેખકઃ—મોહનલાલ મથુરાદાસ શાહ
કંપાલા, આફ્રિકા.

મારા ધર્મબન્ધુઓ !

આજના મંગલમય પ્રભાતે દિગંબર જૈન પત્ર, પચ્ચીસમા વર્ષમા પ્રવેશ કરે છે, બાળક મટી યુવાનીમાં પગ મુકે છે, તે અવસરે તેના ભૂતકાળ તરફ દૃષ્ટિપાત કરી, તેણે આપણી-આપણા સમાજની શું શું સેવાઓ કરી છે, તે વિચારવાની આજના મંગળમય પ્રભાતે આપણી ફરજ છે.

"દિગંબર જૈન" પત્ર કેવા સંજોગોમાં શરૂ થયું, તે જાણવા માટે આપણે આ પત્રના આદ્ય સંસ્થાપક મર્હુમ દાનવીર શેઠ માણેકચંદના પુસ્તકના શબ્દો અત્રે ઉતારીશું તો વધુ સરળ પડશે

સને ૧૯૦૭ના ઓકટોબરની વીસમી તારીખે, અમદાવાદમા શ્રી પ્રેમચંદ મોતીચંદ દિગબર જૈન બોર્ડિંગ હાઉસનો (જે બોર્ડીંગ સ્વર્ગસ્થ શેઠ માણેકચંદ તરફથીજ ખોલાએલી છે) ચતુર્થ વાર્ષિક સમારંભ હતો, ગુજરાતમાંથી કેટલાક જાણીતા દિ. જૈનો આવેલા હતા સભાના કામથી પરવાર્યા બાદ, રાત્રે શેઠજીને દિગબર જૈનોમા (ગુજરાતી ભાષામા) એકે પત્ર નથી, તે સંબધી વિચાર થયો. તરતજ શેઠજીએ આમોદવાળા શેઠ હરજીવન રાયચદને વાત કરી, અને સપાદક તરીકે કામ કરવા જણાવ્યું, પણ હરજીવનભાઇએ તે કામ પોતે કરી શકશે નહિ, એમ જણાવ્યુ. શેઠજી ઉદાસ થયા. શીતલપ્રસાદજી શેઠજીનો મનોભાવ સમજી ગયા. તેમણે હાલના સુયોગ્ય સંપાદક શ્રી. મુળચંદભાઇ તરફ નજર કરી, શેઠને જણાવ્યું કે-આ યુવાન એ કામ કરી શકશે શેઠજી પહેલા તો વિચારગ્રસ્ત થયા, પણ મુળચંદભાઇને પુછ્યું કે તમો આપણા ગુજરાતના દિગંબર જૈન સમાજમા જાગૃતી લાવવાના સાધન રૂપ દિગંબર જૈન પત્રના સંપાદક થાઓ. શ્રી. મુળચંદભાઇએ પોતાની લઘુતા બતાવતાં કહ્યું કે-મેં આજ સુધીમા એક પણ લેખ લખ્યો નથી, તેમ મને એવો કોઈ અનુભવ પણ નથી. હું વ્યાપારમાં ફસાએલો છું. મારાથી સંપાદન કાર્ય કેવી રીતે થશે ? શેઠજીએ કહ્યું કે-તમારામા સમાજ સેવાની ધગશ છે, તમને ધર્મ તરફ પ્રેમ છે, જેથી તમો એ કાર્ય કરી શકશો, એમ હુ તથા બ્ર. શીતલપ્રસાદ માનીએ છીએ માટે તમો કબુલ કરો વળી તમને હરજીવનભાઈ તથા અંકલેશ્વરવાળા છોટાલાલ ગાંધી લેખ લખી મદદ કરશે, એમ તેઓ કહે છે. મુળચંદભાઇ આનાકાની કરવા લાગ્યા. એટલે શીતલપ્રસાદજીએ કહ્યું-સાહસ કરો, માસિક ચલાવવું એમા કંઇ મોટું કામ નથી. મેં તો ઘણા કામો હોવા છતાં સાપ્તાહિક પત્ર ચલાવ્યું છે. આમ બધાના દબાણને લઈ શ્રી. મુળચંદભાઇએ કહ્યું કે હુ સુરત ગયા પછી, યથાશક્તિ પ્રયાસ કરીશ, શીતલપ્રસાદજીએ શાબાશી આપી, શેઠજી ઘણાજ પ્રસન્ન થયા

સુરત જઈ મુળચદભાઇએ ઘણીજ મહેનત લઈ ૧૯૬૪ના કાર્તક અને માગસરનો મિશ્ર અંક કાઢી "દિગબર જૈન" પત્રની શરૂઆત કરી દીધી.

આપેલા વચન મુજબ થોડોક ટાઇમ હરજીવનભાઇ અને છોટાલાલ ગાધી લેખ લખવા લાગ્યા લાગ્યા પણ પછી તેઓ પ્રમાદમા પડયા.

અનુભવ, ખંત, સમાજ સેવાની ધગશ અને પત્ર તરફના પ્રેમને લઇ, શ્રી મુળચંદભાઇએ એ પત્રને ઘણુંજ લોકપ્રિય બનાવ્યું, તે એટલે સુધી કે તેને અર્ધ હિંદી બનાવી આપણને હિંદી ભાષાના અભ્યાસનો રસ્તો કરી આપ્યો.

વર્તમાન કાળે એકજ ભાષા હિંદીને રાષ્ટ્ર

ભાષા કરવાના આંદોલનને આ રીતે આપણા **દિગંબર જૈન** પત્રે પુરતી મદદ કરી.

આપણા સમાજમાં એવો કોઇપણ આદમી નહિ હોય કે જે હિંદી ભાષા સમજી શકતો ન હોય

દિગંબર જૈનને હિંદી બનાવી શ્રી. મુળચંદભાઇએ આપણા સમાજની ઘણીજ ઉમદા સેવા બજાવી છે.

શેઠ માણેકચંદજી અત્યારે તો સ્વર્ગમાં બિરાજે છે, પણ તેમણે વાવેલા આમ્ર વૃક્ષ પરથી સાખ થએલી કેરી આપણે ખાઇ રહ્યા છીએ, અર્થાત્ પત્રના ફાયદા આપણે મેળવી રહ્યા છીએ, સ્વર્ગસ્થના આત્માને શાંતિ થશે કે તેમણે સ્થાપન કરેલું પત્ર આજે દિન પ્રતિદીન ઉન્નતિને રસ્તે ગમન કરી ગુજરાત અને હિંદુસ્થાનના દિ૦ જૈનોમાં ધાર્મિક અને સામાજીક ઉન્નતિ કરી, દિગંબર જૈન ધર્મનો ઉદ્યોત કરે છે, તે પાઠકથી અજાણ્યુ નથી.

બીજા સામાજીક અને ધાર્મિક પત્રો જ્યારે ખોટમાં કામ કરે છે, ત્યારે આપણુ દિગંબર જૈન બને પાસા સરખા કરી દર સાલ અનેક ગ્રાહકોને ભેટ આપે છે.

ગુજરાતના ભોળા દિગંબર જૈન સમાજને જો કોઇએ પણ જાગૃત કર્યો હોય તો તે દિગંબર જૈન પત્ર અને તેના સુયોગ્ય સંપાદકેજ.

દિગંબર જૈન ઓફીસે આજ સુધીમા ઘણા પુસ્તકો બહાર પાડી જૈન સમાજમા જ્ઞાન પ્રચાર કર્યો છે. હજારો પુસ્તકો ભેટ આપી લોકોને ધર્મ પર રૂચી વાળા બનાવ્યા છે, ગુજરાતી ભાષા જાણતા જૈનોને હિંદી ભાષાનો રસ ચખાડયો છે, તેવીજ રીતે હિંદી ભાષા જાણનારાને ગુજરાતી ભાષાનો રસ ચખાડયો છે ગુજરાતીઓ અને હિંદુસ્તાની જાણનારાઓને આમ એકત્ર કર્યા છે.

દિગંબર જૈન પત્ર દર સાલ પાંચ ભાષામાં સચિત્ર ખાસ અંક કાઢી સમાજને દરેક ભાષાનુ અમુલ્ય વાંચન પુરૂ પાડે છે કે જેના વખાણ જૈન અને જૈનેતર વિદ્વાનો પણ કરે છે.

શરૂઆતથી આજ સુધી દિગંબર જૈન પત્ર બાળલગ્ન, વૃદ્ધલગ્ન, કન્યા-વિક્રય, નકામા જમણવાર તરફ અણગમો બતાવી, તે કુચાલો બંધ કરાવવા તેની વિરૂદ્ધ લેખ છાપતું આવ્યુ છે તેના ફળરૂપ ગુજરાતમાંથી ઘણા કુચાલો નાશ પામ્યા છે. સામાજીક સેવામા આ પ્રમાણે દિગંબર જૈન અગ્રસ્થાન ભોગવે છે.

ભટ્ટારક સંસ્થાને સુધારવામા પણ તેણે ઘણો સંગીન ફાળો આપ્યો છે. મુનિ પ્રકરણ પણ તેણેજ ઉપાડયું છે, મહાત્મા ગાંધી અને સરદાર વલ્લભભાઇનો દિગંબર જૈન મુનિ વિહાર વિરૂદ્ધના શબ્દો પાછા ખેંચાવવા હાલ તેણે તનતોડ મહેનત ઉઠાવી છે.

આજે ગુજરાતમા જ્યા ત્યા દિગંબર જૈન પુસ્તકો દેખાય છે તે દિગંબર જૈન પત્રનોજ પ્રતાપ છે.

દિગંબર જૈન પત્ર શરૂ કર્યા પછી ઘણાં તડ એકત્ર થયા છે. ઘણાં બાળલગ્ન અટકયા છે. વૃદ્ધલગ્ન તો નાબુદજ થઇ ગયા છે.

દિગંબર જૈન પત્રે તેના બાળપણમાં-પચ્ચીસ વર્ષની કારકીર્દીમા જે સુંદર કાર્ય-જે સમાજ સેવા-ધર્મસેવા કરી છે, તેના દશમા ભાગનુ કામ પણ બીજા ધાર્મિક પત્રોએ ભાગ્યેજ કર્યું કર્યું હશે.

દિગંબર જૈન પત્રને શિર એક આક્ષેપ આજે પંદર વર્ષથી ચાલ્યો આવે છે. કે-ગુજરાતી પત્ર હોવા છતા તેમા જોઇએ તેટલા અને જોઇએ તેવા ગુજરાતી લેખો આવતા નથી, તેના બારામાં મારે મારો વિચાર જણાવવો પડે છે કે, પ્રથમ તો આપણા ગુજરાતમાં લેખ લખવાનો શોખજ નથી બીજુ જેને તેવો શોખ છે તેના ઉપયોગી લેખો હિંદી ભાષામાં જગ્યા રોકાવાને લીધે છપાતા નથી.

બીજા સમાજોની માફક આપણામાં લેખકોને કોઇ ઇનામ કે ઉત્તેજન આપનાર વિદ્યાપ્રેમીઓ નથી તે પણ આડે આવે છે.

સંપાદકજી ઉત્તેજન આપનાર યોજનાઓ પણ અમલમાં મુકતા નથી, તો શેઠીઆઓ ઉત્તેજન આપવા નિકળેજ કેવી રીતે? લેખકો વ્યવહારીક વિટંબણાઓથી પર હોય તોજ જોઈતુ બની શકે એ ભૂલવુ જોઈતુ નથી.

દિગંબર જૈન આજે પચીસમા વર્ષમાં પ્રવેશ કરી અપણી વધુ સેવા કરવા અમર થાય. જુવાનીનો લાભ બાળપણ કરતા વધુ આપે તેના હવે પછીના પ્રૌઢ વિચારો આપણને સમાજ સેવામા સાથ આપે એમ ઇચ્છીશુ.

દિગંબર જૈન પત્ર યુવાન થાય તેવા અણુમોલા ટાઇમે તેને નવા રંગઢંગથી નિકળતુ જોવાને આપણે જરૂર ઇચ્છીશું, દિગંબર જૈન હાલ જુના સ્વરૂપમાં જુની રીતથી બહાર પડે છે, તેને બદલે હવે તે નવા સ્વરૂપે જનતાને અનુકૂળ બની પોતાની યુવાન વયમાં સંપૂર્ણ સુશોભીત અને પ્રૌઢ વિચારોવાળું બની સમાજસેવા કરો એજ મારા અંતરની આશીષ છે. દિગંબર જૈન હોય તેની ફરજ છે કે, દિગંબર જૈન પત્ર ખરીદવું-વાચવું-વિચાર કરવો.

જ્યારે દિગંબર જૈન પત્રનો ઘરઘર પ્રચાર થશે, ત્યારે સમાજમાંથી સર્વે કુચાલો દૂર થશે

છેવટે મારી દરેક દિગંબર જૈન બંધુને નમ્ર અરજ છે કે, તેમણે સમાજમાના આ એકલા પત્રને ખરીદી ઉત્તેજન આપવુ. દિગંબર જૈન પત્ર અને તેના સંપાદક સમાજસેવા કરવા વધુ દૃઢ બને એજ મારી અંતિમ ભાવના છે.

ન્યાયવાન રાજા.

લેખિકા—શ્રી પ્રભાવતીબ્હેન શ્રાવિકાશ્રમ-સોજીત્રા

વાંચક વૃંદ! ગત વર્ષે વિશેષાંકમાં મેં ન્યાયવાન રાજાની વાત લખી હતી તે યાદ હશે, અથવા ભૂલી પણ ગયા હશો. જો તે વિશેષાંક હોય તો ફરી તેના પર એક નજર નાખી જજો; કે જેથી બધી સવિસ્તર વાત સમાજમાં આવી જાય અને જો તે વિશેષાંકનો સંગ્રહ કરી ન રાખ્યો હોય તો તે વાર્તાનો સારાંશ લખીને એની આગળની વાર્તા હું તમારી સમક્ષ મુકુ છુ

મિથિલાપુર નગરનો રાજા પ્રજાપાલ મરણ પામ્યા પછી તેના બાળકુંવર ધીરવીરસિંહને રાજ્ય મળ્યુ હતુ ધિરવીરસીંહ નાનો હતો તેથી તે રાજ્યના સેનાપતિ વીરસિંહે તે પાટવી કુંવરને મારી નાખી રાજનો ધણી થવા વિચાર કર્યો હતો. પણ જ્યારે સેનાપતિની સ્ત્રી વીરમતીએ આ વાત જાણી ત્યારે તેણે પોતાના પતિને ઘણું ઘણું સમજાવી એ દુષ્ટ કૃત્ય કરતા બચાવ્યો ને પછી બાળકુંવર જ્યારે મોટો થયો ત્યારે એને રાજ્ય સિંહાસન પર બેસાડવાની ઘણીજ કોશીશ વીરમતી અને વીરસિંહે કરી હતી. જ્યારે ધીરવીરસિંહ ઘણાજ પ્રેમ ઉત્સાહ, અને પૂર્ણ ન્યાયથી રાજ્ય કરતો થયો ત્યારે એક વખત ન્યાય ચુકવવાનો ખરેખરો વખત આવ્યો હતો તે એવો કે પોતાનીજ રાણી તેજકુંવરીએ રમત કરતા ભૂલ કરી, તીરનું નિશાન ભરવાડના હાંળીઆ પર તાકયુ હતું પણ નજર ચૂકી જતા તે ભરવાડના ગળામા વાગ્યુ ને તે ભરવાડ મરણ તુલ્ય થઈ પૃથ્વી પર પડયો હતો આ વાત ભરવાડણને ખબર પડી એટલે તે ધીરવીરસિંહ પાસે ન્યાય કરાવવા ગઈ.

રાજાએ ચોકખોજ ન્યાય આપ્યો. પોતાની

રાણીને બોલાવીને કહ્યું કે તેં આ ભરવાડણને જે સ્થિતિમાં મુકી છે તેજ સ્થિતિમાં તારે આવવું જોઇએ. તું એ સ્થિતિ ભોગવશે એટલે એનો ન્યાય પૂર્ણ રીતે ચૂકવાશે. એ સ્થિતિ ભોગવવાને માટે ધીરવીરસીંહે તેજકુંવરીને તીર આપ્યું ને કહ્યું કે જે પ્રમાણે ભરવાડ પર તીર માર્યું હતું તેજ પ્રમાણે મારા પર તીર છોડ એટલે **તારા કૃત્યનો તને દંડ મળી રહેશે. અને ભરવાડણ ન્યાય માંગવા આવી છે તો તેને ન્યાય મળી રહેશે.** પણ આ કૃતિ કરી દેખાડવા રાણીએ ચોકખી ના પાડી એટલે ધીરવીરસિંહે વારાફરતી ભરવાડણને અને સેનાપતિને પોતાના પર તીર ચલાવવા કહ્યું પણ તેઓએ ના કહી ને કહ્યું કે, 'હજાર મરો પણ હજારને પાળનાર રાજા ન મરો" આ કૃત્ય અમારાથી ન થાય.

ત્યારપછી રાજાએ વીરમતીને કહ્યુ કે તને મારી બ્હેન બરાબર ગણુ છુ તને તારા પતિના સોગન આપી કહુ છુ કે જો મારો સત્ય ન્યાય જગતમા જાહેર કરવો હોય તો તારે આ તીર મારા પર ચલાવવુજ પડશે હવે વીરમતીનો કંઇ ઉપાય ચાલ્યો નહિ, એટલે ના કહી શકી નહિ એ તીર ચલાવવા માટે તેણે હાથમાં લીધુ. ને જેવી તીર છોડવા જાય છે કે તરત એક સાધુ આવી ચઢયા ને કહ્યુ–સબુર પુત્રી, સબુર. આ અનર્થ કાર્ય કરતા અટક! વીરમતી એકદમ થોભી ગઈ. પછી સાધુએ કહ્યું.–ભરવાડ હજી મર્યો નથી, એને મૂર્છા આવી ગઇ છે હમણાજ હું એની મૂર્છા દૂર કરી દઉં–છું, એમ કહી પેલા ભરવાડ પર મંત્રેલું પાણી છાંટયું એટલે તેની મૂર્છા દૂર થઇ દરેક જણે ન્યાયવાન રાજાના વખાણ કર્યા ને પછી ભરવાડ ને ભરવાડણ રાજાનો જય જયકાર બોલી ચાલ્યા ગયા

ત્યાર પછી કેટલાક વર્ષે રાજા પાસે એક બ્રાહ્મણ પોતાના છોકરાને લઇને આવ્યો. અને નમ્રતા પૂર્વક વિનંતી કરી કે હે મહારાજાધિરાજ! આપની પાસે હું કંઇક માંગવા આવ્યો છુ, મારે મારા પુત્રની ગુરૂ દક્ષિણા આપવાની બાકી છે, મારી પાસે ગુરૂ દક્ષિણા આપવા માટે કંઇજ નથી તો તે મને મહેરબાની કરી આપો. રાજાએ કહ્યું બોલ તને કેટલા રૂપીઆ જોઇએ છે! બ્રાહ્મણે કહ્યુ–અમે ભિક્ષા માગી અમારૂ ગુજરાન ચલાવી લઇએ છીએ પણ એક ફકત ૧। રૂપીઓ આપશો તો તમારો મોટો ઉપકાર માનીશું. રાજાએ કહ્યું–હે બ્રાહ્મણ! ૧। રૂપીઓજ શુ માગ્યો? હું તો તને ૧। લાખ રૂપીઆ આપવા સમર્થ છું. જા ખજાનચી, એને ખજાનામાથી ૧। લાખ રૂપ્યા આપી દેજે જેથી તે દરિદ્રતામાંથી મૂકત થાય. બ્રાહ્મણે કહ્યુ–ના રાજાજી, મને તમારા ખજાનામાથી ૧। લાખ રૂપીઆ જોઇતા નથી મને તો ફકત ૧। રૂપીઓજ જાત મહેનતનો **જાતે કમાયલો** હોય તો આપો.

રાજા—અરે મૂર્ખ બ્રાહ્મણ! તને કંઇ વિચાર નથી. હું જે રાજ્ય ઉપર સત્તા ભોગવું છુ તે આખુ રાજ્ય મારૂં ને તેમા રહેલી સર્વ સંપત્તિનો હુજ માલેક છુ

આમ હોવાથી તુ શા માટે ૧। લાખ રૂપીઆ ગુમાવે છે? જા ૧। લાખ રૂપીઆ લઇ સુખી થા.

બ્રાહ્મણ-રાજાજી! તમે મને મૂર્ખ કહો છો; પણ મારૂ માનવું સત્ય છે

રાજા—તારૂ માનવુ શું છે? બ્રાહ્મણ–જે દેશમાં તમે રાજ્ય કરો છો, ને જે ખજાનામાં તમારી જેટલી સંપત્તિ છે તે સર્વ તમારી નથી, પણ પ્રજાની છે. રાજ્ય પણ તમને વંશ પરંપરાથી મળેલું છે. તમે એ ખજાનામાં એક પાઇ પણ જાત મહેનત કરી, કમાઇને નાખી નથી, તો પછી એ સંપત્તિ તમારી કયાથી? જે સંપત્તિને તમે તમારી માનો છો તે પ્રજા પાસેથીજ કર વગેરે ઉઘરાવીને ભેગી થએલી છે અને તેનો ઉપયોગ પણ પ્રજાના હિતને માટેજ થવો જોઇએ.

ઉપરોક્ત બ્રાહ્મણના વચન સાભળી રાજા વિચારમા પડયો, અને લાંબો વિચાર કરી જોયો, તો તેને માલમ પડયું કે સત્ય વાત છે. હું

આટલી બધી સંપત્તિનો માલેક કહેવાનું પણ એક પાઈ પણ મેં કમાઇ નથી. આ સર્વ વંશ પરંપરાથી ચાલતું આવેલુ રાજ્ય અને પ્રજાનુ ધન છે. વળી તેને બીજુ એ પણ યાદ આવ્યું કે **અકબર રાજાની કેટલી મોટી રાજસત્તા હતી, છતાં પણ તે પોતાનું ગુજરાન થાય એટલું જાત મહેનત કરી ટોપીઓ સીવીને પેદા કરતો હતો.**

રાજા—બોલ બ્રાહ્મણ, હવે મારે શુ કરવુ? બ્રાહ્મણ–તમારે ગમે તેને ત્યાં જઇને નોકરી કરવી ને મને ૧૧ રૂપીઓ આપવો. ત્યાર પછી પોતાનો વેશ બદલીને રાજા એક ખેડુતને ત્યાં ગયો અને કહ્યું કે મને તમે નોકરીએ રાખો છો? ખેડુતે કહ્યું તુ શું કામ કરવાનો છે? અને તેની મજુરી મારે શી આપવી તે કહી નાખ.

રાજાએ કહ્યુ–તમે જે કામ મને સોંપશો તે કામ હું કરીશ અને મને તમારે ૧૧ રૂપીઓ આપવો. ખેડુતે તેને ૧૧ રૂપીઆના રોજે રાખ્યો તેમા રાજાને સખ્ત મજુરીનુ કામ તે એ કે જંગલમા જઈ લાકડાં કાપીને ભારો લાવવાનું સોંપ્યું અને વધેલા વખતમા બીજુ પણ કામ કરવુ પડશે એમ જણાવ્યુ. રાજાએ તો સર્વજ કબુલ કરી લીધુ

ખેડુત—લે આ કુહાડો ને જંગલમાં જા. લાકડાનો ભારો લઇ આવ, પછી બીજુ કામ સોંપીશ.

રાજા—જેવી આપની આજ્ઞા. તમારી આજ્ઞા મારે માટે શીરસાવદ્ય છે રાજાએ કુહાડી ખભે લીધી ને જંગલમા ગયો આખો દિવસ લાકડા કાપી ભેગાં કર્યા જંગલમા તાપ સખ્ત પડયો હતો. પરસેવાના રેલેરેલા રાજાના શરીરમાંથી નીકળે, કદી કોઇ પણ જાતની મહેનત ન કરેલી તેથી આટલી મહેનતમા તે ઘણોજ થાકી ગયો હતો, જેમ તેમ કરી શ્વાસ લેતો લેતો ખેડુતને ત્યા આવ્યો કદી કામ ન કરેલું તેથી એક નાનો લાકડાનો ભારો લાવતાં ઘણીજ વાર લાગી તેથી ખેડુત ને ખેડુતની સ્ત્રી તેનાપર ઘણાજ ખીજવાયા.

ખેડુતણી–અલ્યા તું ક્યારનો ગયોછ? એક ભારો લાવતાં આટલી વાર? તારે ગમ તો બીજું કામ કરવાનું નહિ હોય એમને? રાજા–બાઈ સાહેબ, હું તો આટલો ભારો મહા મુસીબતે ઉંચકી લાવ્યો છું ને ઘણોજ થાકી ગયો છું. ને ઉપરથી તમે મારા પર ગાળોનો વરસાદ વરસાવો છો! જરા જુઓ તો ખરા કે હું કેવો પરસેનાથી નાહ્યો છું!

ખેડુતાણી–તને થાક લાગ્યો ને તું પરસેવાથી નાહ્યો તેમા અમે શુ કરીએ? ૧૧ રૂપીઓ કઇ મફતનો આવવો હશે કેમ? એમ કહી ગાળો દેવા લાગી. બધી ગાળો મુગે મોઢે સહન કરી છતાં એટલાથી ન પત્યું.

ખેડુતાણી–જા ઝટ ઘરમાં વાસણ પડયાંછ તે સર્વ માજી નાખ. રાજાએ તો ઘરમા જઈ વાસણના ઢગલાપર નજર નાખીને વિચાર કરવા લાગ્યો હું કોણ? મિથિલાપુરનો આવડો મોટો રાજા ધિરવિરસિંહ અને તે શું આ ખેડુતના ખાધેલા વાસણ માજે? મારે તો આ વાસણ માંજવા નથી એવો વિચાર કરી બહાર આવી ઉભો રહ્યો. એટલામાંતો ખેડુત પાછો તડુકી ઉઠયો. અલ્યા નોકર, તું આમ કેમ ઉભોછ? વાસણ માજે છે કે લગાવું સોટા. વાસણ માંજ્યા વગર તને પૈસા મળવાના નથી.

રાજા–હે ખેડુત! મે તો કદી વાસણ અજવાળ્યાં નથી અને તે મને માંજતા આવડતાંજ નથી. મેં તો મોટા મોટા રાજાઓના મુગટો અજવાળ્યાં છે ને ઉજાળ્યાં છે. મને આ કામને બદલે રાજાના મુગટો સાફ કરવાનુ સોંપો. ખેડુત તો આ વચન સાંભળી વધારે ચીઢાયો ને હાથમા ચાબુક લઇ સડસડાટ પાંચ સાત લગાવી દીધા ને ફરી કહ્યું–બોલ હવે તો માંજવા છે કે નહી? રાજાએ હાથ જોડી ફરી એ ને એજ વાક્ય કહ્યું કે હે ખેડુત! મને તો વાસણ માજતા આવડતાં નથી, મને તો રાજાના મુગટો સાફ કરતાં આવડે છે. બાલગોળ

થઇ ખેડુત બોલ્યો–પૈસા મફતના લઈ જવા છે છે કેમ ? તારા બાપે પૈસા ભેગા કરી રાખ્યા નથી કે તને મહેનત વગર મળી જશે ? ફરી જેવો તે મારવા જાય છે કે એટલામાં પેલો બ્રાહ્મણ ત્યાં આવી ચઢયો ને ખેડુતને ધમકાવી કહ્યું કે અલ્યા ખેડુત ! તને કંઇ ખ્યાલ છે કે નહિ, આ તો આપણા રાજા ધીરવીરસિંહજી છે. તું કોને મારે છે ! અને કોને ધમકાવે છે ?

ખેડુત તો આ શબ્દ સાંભળી આભોજ બની ગયો, ને પગે લાગ્યો ને બોલ્યો માફ કરો. રાજાજી માફ કરો. મને શી ખબર કે રાજાજી મારે ત્યા નોકરી કરવા આવ્યા છે ? જો મને ખબર હોત તો તેમની પાસે લાકડાનો ભારો ના મગાવત, ને વાસણ માંજવા પણ ના કહેત. ખેડુત ને ખેડુતાણી ધ્રુજવા લાગ્યા, ને વિચારવા લાગ્યા કે રખેને રાજા હવે શુ કરશે ? શું શિક્ષા કરશે ? શું દંડ આપશે ? તેઓ ઘડી ઘડી પગે લાગે ને ક્ષમાની પ્રાર્થના કરે. રાજા–ક્ષમા છે તમને. તમે તમારો ૧૧ રૂપીઆ મારી નોકરીનો આપી મને છુટો કરો. ખેડુતે ૧૧ રૂપીઆ આપી દીધા. તે લઇને ધીરવીરસિંહ બ્રાહ્મણ સાથે ઘેર ગયો.

રાજા—હે બ્રાહ્મણ ! લે આ ૧૧ રૂપીઆ, તું તારા પુત્રની ગુરૂ દક્ષિણા આપજે. (દેવ બ્રાહ્મણનું રૂપ લઇને રાજા પાસે આવ્યો હતો) દેવે બ્રાહ્મણનું રૂપ બદલી નાખ્યું ને ખરૂ રૂપ લઇને કહ્યું–ધીરવીરસિંહ ! ત્હારી ન્યાયવાન રાજા તરીકેની કીર્તિ મેં સાંભળી હતી, પણ તે સત્ય છે કે નૃહિ તેની પરીક્ષા કરવા માટે મેં આમ કર્યું હતું, તે માટે આપના તરફથી ક્ષમા હોવી જોઇએ. મેં ભરવાડણને અપાતો ન્યાય જોયો તેમજ જાત મહેનતથી આપેલી ગુરૂ દક્ષિણાથી હું ઘણો ખુશ થયો છું તું એક ખરો ન્યાયવાન અને પરોપકારી રાજા છે, એટલું કહી દેવ અંતર્ધાન થઇ ગયા. ત્યારપછી રાજાએ પોતાની સંપત્તિને પ્રજાની ગણી પ્રજાનાજ હિતાર્થેજ વાપરી. ધન્ય છે આવા રાજાને અને તેની નિસ્વાર્થતાને !

મળતાવડા થવાના ફાયદા.

લેખિકા—જૈન મહિલારત્ન શ્રી. લલિતાબાઈ શ્રાવિકાશ્રમ, મુંબઇ.

સૂર્યનાં કિરણ અને ગુપ્ત રસાયનિક ક્રિયાઓ કંઇપણ અવાજ કર્યા વિના મહાન ભાવી ઘટનાનો પાયો નાંખીને પરિણામે વીજળી કરતાં પણ અધિક શકિતમાન અને લાભ દાયક નીવડે છે; તેની માફક પ્રેમની શકિત પણ ગુપ્ત હોવા છતાં જગતની મહાનમા મહાન શકિત છે.

મધુરવાણી બોલવાવાળી અને શાન્ત સ્વભાવી, સ્નેહશીળ સ્ત્રી, પુરૂષ ઉપર જેટલી સત્તા ધરાવે છે તેનો શતાંશ પણ વઢકણી સ્ત્રી ધરાવતી નથી. કારણ કે પ્રેમ પ્રેમને ઉપજાવે છે, કલેશ કલેશને ઉપજાવે છે

એક વઢકણી સ્ત્રી આખા મહોલ્લાની શાંતિનો નાશ કરે છે વઢકણી સ્ત્રી જ્યા જાય ત્યાં અશાન્તિ ફેલાવે છે જગતમા જો કોઇ દયા પાત્ર મનુષ્ય હોય તો તે નિરંકુશ સ્વભાવનો માણસ છે. જે મનુષ્ય ક્રોધી સ્વભાવની સ્ત્રી પરણે છે તે પોતાનો આખો ભવ બગાડે છે.

શાન્ત, મધુર અને સંયમી સ્ત્રી દેખાવામા ગમે તેવી સાદી હોય તોપણ તે ચતુર અને સુંદર, પરંતુ ક્રોધી સ્ત્રી કરતાં હજાર ગણી સારી છે. કારણ કે મિલનસારપણાથી આપણે ઘરમા ને બહાર સર્વત્ર શાન્તિ ફેલાવી શકીયે છીએ, અને શાન્તિથીજ આરોગ્ય, દીર્ઘાયુષ્ય તથા સુખની પ્રાપ્ત થાય છે. ત્યારે ક્રોધી અને નિરકુંશી સ્વભાવથી મનુષ્ય અલ્પાયુષી બને છે, તેનું શરીર દુર્બળ રહે છે

બળેલા સ્વભાવની અનેક સ્ત્રીઓને ક્ષય લાગુ પડે છે, જ્યારે આનંદી સ્વભાવવાળી સ્ત્રી ગમે તેવા પ્રસંગમાં પણ દુઃખી થતી નથી, જેનો સ્વભાવ ઇર્ષ્યાળુ હોય છે, અસંતોષી હોય છે, તેને ત્રણ લોકની વિભૂતિ પણ પ્રાપ્ત થાય તો તેને શાન્તિ અને સુખ થતું નથી ત્યારે એક શાન્ત સ્વભાવી ઉદાર અને સંતોષી સ્ત્રી ગમે તે અવસ્થામાં સ્વર્ગીય સુખનો અનુભવ કરે છે.

નિષ્કષાયી શાંત મનુષ્ય જ્યાં જાય ત્યાં શાંતિનું વાતાવરણ ફેલાવે છે. આપણે તીર્થ યાત્રા કરવાને જઇએ છિયે ત્યાં આપણાં પરિણામ ઘણાં શાંત અને ઉજ્વળ પવિત્ર બને તેનું કારણ એજ કે એ તીર્થો પર અનેક મુનિ મહારાજોએ ક્રોધનો ત્યાગ કરીને ઉત્તમ ધ્યાન ધરીને ત્યાંનું વાતાવરણ શાંત બનાવેલું છે. આજ કારણથી આપણે તીર્થ યાત્રાએ જઇએ છીયે કે ત્યાંનું પવિત્ર વાતવરણ આપણે પવિત્ર બનાવે છે. ક્રોધી મનુષ્ય ફક્ત પોતાનુંજ અહિત કરતો નથી પણ આજુબાજુનું આખું વાતાવરણ ક્રોધ રૂપ બનાવીને અનેકનું નુકશાન કરે છે, અનેક જીવોની શાંતિને હરણ કરે છે. એક સ્ત્રીના વદન પર શાંતતા, સુંદરતા અને દિવ્યતા હોવાને બદલે જ્યારે ક્રોધ અને ઇર્ષ્યાના ચિન્હ જણાય ત્યારે તેના જેવુ દુર્ભાગી બીજું કોઇપણ નથી. ક્રોધી-સ્વભાવથી સૌન્દર્યનો નાશ થાય છે, માટે કોઇપણ સ્ત્રીએ ક્રોધી બનવુ નહિ ક્રોધને લીધે સુદરમાં સુદર વદન પણ તરતજ કદરૂપુ અને ઘૃણાસ્પદ બની જાય છે ક્રોધી સ્વભાવ સાથે મધુરતા અને સુદરતા વધારે વાર રહેતી નથી કેટલાક મહાન વૈદ્યોનો મત છે કે, માત્ર એકજ વાર ક્રોધ કરવાથી સ્ત્રીના આયુષ્યમાંથી એક વર્ષ ઓછું થઇ જાય છે, પુરૂષના સબધમા પણ આમજ છે, પરતુ ક્રોધની અસર સ્ત્રીના વદન પર વિશેષ ભયકર દેખાય છે, કારણ કે આપણે સ્વાભાવિક રીતે સ્ત્રીના મુખપર સૌન્દર્ય અને મધુર હાસ્ય જોવાની આશા રાખીયે છીએ, સ્ત્રી જાતિ પ્રાય બીજી વસ્તુઓ કરતા યૌવન અને સૌદર્યને વધારે કિમતી ગણે છે, પરતુ તે પોતાના અજ્ઞાનને લીધે જાણતી નથી કે તે જેટલી જેટલી વાર ક્રોધ કરે છે તેટલી તેટલી વાર તે યૌવન અને સૌન્દર્યતાનો ઘટાડો કરે છે.

જો મનુષ્ય કોઇપણ વસ્તુને સૌથી વિશેષ કીંમતી ગણતો હોય તો તે શારીરિક અને માનસીક આરોગ્ય છે. જે ગૃહમા સદા સર્વદા શાંતિ જળવાઇ રહે છે તે આદર્શ ગૃહ છે એટલુંજ નહિ પણ એક મહાન તીર્થ છે. અને જે માણસ જરા જરામાં ક્રોધ કરે છે, તે પ્રાયઃ બંદુકના દારૂ જેટલોજ ગૃહશાંતિનો નાશ કરનારો થઇ પડે છે. એનું ઘર એક નરકાવાસ સમાન છે.

શાંતિ, આરોગ્ય, દીર્ઘાયુષ્ય અને સુખ પ્રાપ્ત કરવામાં મિલનસારપણું અતિ ઉપયોગી થઇ રહે છે. એ વાત શાળામા બાલકોનાં મન પર ભારપૂર્વક ઠસાવવામા આવતી નથી, એ દુર્ભાગ્યની વાત છે.

કેટલાક માણસો એવા હોય છે કે તેઓ જ્યાં જ્યાં જાય છે, ત્યા ત્યા આનંદની રેલછેલ કરી મુકે છે. તેમની હાજરીજ બળવર્ધક ઔષધની ગરજ સારે છે, તેમના દર્શનથી આપણામાં ઉત્સાહ અને જીવનનો બોજો ઉપાડવાની શક્તિ આવે છે, દાખલા તરીખે પ્રત્યક્ષ દષ્ટાંતરૂપ મહાત્મા ગાંધીજીને લો એમણે આખા હિંદુસ્થાનનેજ નહિ પણ પર રાજ્યમાં પણ ઉત્સાહ અને શક્તિ રેડી છે. આ પ્રભાવ મહાત્માજીનો ક્રોધ રહિત સ્વભાવ અને મિલનસારપણુંજ પ્રગટ કરે છે રાત્રિ ગયા પછી સૂર્યોદય થતાં આપણને જેટલો આનંદ થાય છે તેટલોજ આનંદ આપણને આવા માણસના દર્શનથી થાય છે તેઓ આનંદ અને સ્વાસ્થ્યનાં કિરણો પોતાના મો તરફ ફેંકે છે, તેઓ આપણા ઉપર જાદુ જેવી અસર કરે છે. અને આપણા સમગ્ત નિરૂત્સાહ તથા નિરાશાને હાંકી કાઢે છે. તથા ઉચ્ચ અવસ્થામા લઇ જાય છે.

અતમાં મારી બ્હેનોને મારૂ એ કહેવુ છે કે તમો તમારો ક્રોધી સ્વભાવ હોય તો તે હાનિકારક છે એમ જાણીને છોડી દો અને નિષ્કષાયી શાત, આનંદી અને મિલનસાર બનો જેથી તમે આ જગતમા સુખી રહેશો અને તમારા નિમિત્તથી બીજા પણ સુખી રહેશે બ્હેનો, મહાત્માજીની વાણીમાં જાદુ છે તેનું કારણ એજ કે મહાત્માજીમાં ક્રોધ નથી તેઓ હમેશ પોતાની શાંતિ જાળવી શકે છે, અને તેથીજ તે મહાત્માજી કહેવાય છે, આપણા પરમપૂજ્ય અરિહંત ભગવાનને અમે પૂજીએ છિયે તેનુ કારણ પણ એજ કે તેમણે પોતાની શાતિનો ભંગ ન કરી કષાયનો ત્યાગ કરીને મુક્તિ મેળવી છે ભાઇઓ અને બ્હેનો ! મુક્તિની યુક્તિ એજ છે કે આપણે આપણી શાંતિનો ભંગ ન કરીયે.

ધર્મ અને સમાજ દર્શન.

(લેખકઃ—શા. દેશાઈ.)

ધર્મ એને કહે છે કે જેના દ્વારા આ પ્રાણી અજ્ઞાન અને ક્ષોભથી છુટી આત્મજ્ઞાન અને શાંતિ પ્રાપ્ત કરે. અથવા જેનાથી આ પ્રાણી સર્વ પ્રકારની પરતંત્રતાઓ જીતી પૂર્ણ સ્વતંત્રતા પ્રાપ્ત કરી શકે. આમા સંદેહ નથી કે સંસારી પ્રાણી ક્રોધ માન માયા લોભ કામ ભય શોક આદી કષાયના કારણથી તથા પૂર્ણ જ્ઞાન ન હોવાથી આકુલીત ચીંતાથી ક્ષોભીત રહે છે. એવુ હોવામાં કોઇ ઉપાધીનું નિમીત્ત થાય એ ઉપાધી પૌદ્‌ગલિક સુક્ષ્મ કર્મ વર્ગણાઓના બંધન છે. આ બંધનના કારણથી આ આત્મા અશુદ્ધ છે. યા સ્વતંત્રતાનો યથાર્થ પણે ભોગ કરતા નથી. આથી જે કર્મબંધનનો નાશ જે ઉપાયોથી થાય તેનું નામ ધર્મ. ક્ષણીક સુખનો અર્થી આ જીવ ધર્મ કર્મ આત્મા કંઇજ જેતો નથી. સુખી થવાની ઇચ્છાએ સંસારી જીવ ન કરવાના કામો કરી દુઃખી થાય છે. ધર્મના નામે તેની પકડે રહી ઘોર કૃત્યો કરતા આ જીવ નથી અચકાતો તેથીજ તેની સ્થીતિ કરૂણાજનક થાય છે. સમયને અનુકુળ કંઇ ધર્મ ના બદલાય. ધર્મ તો સર્વકાળે સરખોજ હોય છે. ઘણા મનુષ્યો સત્ય નીતિયુક્ત ધર્મના સિદ્ધાંતોને દફનાવી દઇ સ્વાર્થની જાળ બીછાવી જગતને બતાવવાની ખાતર ટીલા ટપકા કરી દાંભીક ઢોંગ દેખાડી પોપટીયુ શાસ્ત્રાભ્યાસ કરી સમાજ તથા સરલ સ્વભાવી ભોળા દીલા મનુષ્યોને ઉંધે રસ્તે દોરે છે. ઘણા ધર્માચાર્યો પોતાની સ્થીતિલ મનોભાવનાથી પોતાના માનની ખાતર અનેક ગૃહસ્થોને સંસારના અજ્ઞાનના મોહમા નાખી, ધર્મથી છેક અજાણ રાખે છે. પોતે તો અંધારામાં રહે છે પણ બીજાઓને ઉંધે રસ્તે લઇ જાય છે, ધર્મના નામે વ્યવહાર રીત રીવાજથી આજે ઘણી સમાજો તથા જ્ઞાતી બંધારણો જંગલી સ્થીતિ ભોગવી રહ્યા છે. મારો તારો ધર્મ કરી લડી મરતા ધર્મીઓ, સત્ય નીતિયુક્ત ધર્મના સિદ્ધાંતોને ભુલી જઇ પોતાની દાંભીક પ્રતિષ્ઠાની ખાતર દાંભીક ભાવનાઓ ફેલાવી જગતને સત્ય ધર્મથી છેક અજાણ રાખે છે. ઘણાએ પોતાના સુખની ખાતર ધર્મ એ એક પ્રકારની પ્રથા કરી મૂકી છે. આ જીવ જે રસ્તેથી સુખ મળે છે તે રસ્તે તણાઇ સત્યતાને ભુલી જાય છે. સુખની ખાતર ધર્મનો ઢોંગ કરનાર મનુષ્ય રાત દીવસ પ્રપંચ દાવા ખેલી રહે છે અને આખરે નિરાશ થઈ જીંદગીથી કંટાળી જાય છે. ધર્મના નામે દાંભીક ઢાક પીછોડો કરી ઘણા મનુષ્યો જગત તથા પોતાના સત્ય રૂપને છેતરે છે.

હમણાજ જૈન ધર્મમા એક નવીન પથ નીકળ્યો છે. તે પંથ દિગમ્બરને નથી માનતો તેમજ શ્વેતામ્બરને નથી માનતો તેમજ સ્થાનકવાસીને નથી માનતો તેનુ નામ શ્રીમદ રાજચંદ્ર કવી પંથ. જો કે શ્રીમદ રાજચંદ્ર એક મહાન પુરૂષ થઈ ગયા, તેઓના દરેક વાક્યો સત્ય નીતિ યુક્ત સિદ્ધાંતોથી ભરેલા છે તેમાં શક નથી. શ્રીમદ રાજચંદ નહોતા ધારતા કે મારાં મરણ બાદ મારા નામે જુદો પંથ નીકળશે. શ્રીમદ્ રાજચંદ્રની ધર્મ ભાવના કોઇ અજબ હતી તેઓ ગૃહસ્થી હતા તોપણ સાધુઓથી અધિક ચારીત્ર પાળતા. અને આત્મધ્યાનમાં મગ્ન રહેતા. તેઓશ્રી જ્ઞાની હોવાનો ઢોંગ નહોતા કરતા. તેઓના સહવાસમા રહેનારાઓએ તેઓના મરણ બાદ તેઓના નામે બીજા મત આણી જૈનધર્મમા જુદો પથ સ્થાપન કર્યો શ્રીમદ્ રાજચદ્ર એક મહાપુરૂષ હતા પણ ધર્મના નામે દ્વૈષ કરી સત્યને નહોતા છુપાવતા તેઓશ્રીની ઉંચ ધર્મ ભાવનાઓ સત્યતાનો પ્રકાશ પાડે છે મારો તારો ધર્મ કરી લડી નહોતા મરતા. તેઓની વાણી અમૃતથી પણ અધીક ગુણકારી છે તેઓના સિદ્ધાંત પ્રમાણે વર્તનાર હમેશા સત્ય નીતિ યુક્ત રહી સંસારનો મર્મ સમજે છે. બાકી ભિન્ન મત આણી જુદો પંથ સ્થાપન કરી ધર્મના મૂળ સિદ્ધાંતોનો ઘાત કરવો તે તો અયોગ્યજ ગણાય.

-: પ્રભુને :-

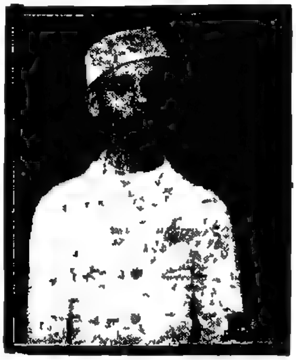
(લલિત છંદ.)

નમન હું કરૂ જગત રાયરે,
નમન હુ કરૂ સરવ વ્યાપીરે,
નમન હુ કરૂં સરવ જ્ઞાનીરે,
નમન હું કરૂ શ્રી જગનાથરે
અરે પ્રભુ તુ છે એક ઈશરે,
જગત ઓળખે સહસ્ર નામરે,

તદપિ હું ત્હને એક ધારીને,
નમન હું કરૂં શીષ નમાવીને
અરે પ્રભુ તું છે શક્તિશાળીરે,
અરે પ્રભુ તું છે બુદ્ધિશાળીરે;
અખિલ જગ ત્હને પ્રેમથી પુજે,
વળી પ્રભુ ત્હને ઇંદ્ર પણ નમે
વિનતી હું કરૂં એટલી પ્રભુ,
કરૂં હું કાર્ય જે સફળ થાયરે,
પ્રભુ આ પ્રાર્થના શ્રવણ માહરી,
પ્રુજ પદે મહિં શીષ નમાવુ રે.

કાંતિલાલ વિ. શાહ.

નરોડા નિ નરસિંહપુરા દિ જૈન
અંધ સંગીતકાર—



કાંતિલાલ વિમળશી શાહ.

આ ભાઇ ન્હાનપણમા ૭ માસની ઉમરે બળીયાને લીધે અંધ થયેલ હાલ એઓ એમના વડીલ ભ્રાત શ્રીયુત હરિલાલ વિમળશીદાસ શાહના સતત પ્રયાસ, અને અથાગ મહેનતને લીધે સત્તર વર્ષની વયે 'ધી વિકટોરીઆ મેમોરીયલ સ્કુલ ફોર ધી બ્લાઇન્ડ'—અંધશાળા, મુંબઈમા ગુજરાતી પાચમા ધોરણનો અભ્યાસ કરી રહ્યા છે. અને અત્યારે જેઓ હાર્મોનીયમ, દિલરૂબા, મેન્ડોલીન, ફીડલ, તબલા અને જલતરંગના સંગીતનો અનુપમ લ્હાવો પોતાની કુશળતાથી સૌ કોઇને ચખાડી શકે છે. મુંબાઇના ઘણાયે જાહેર મેળાવડાઓમા જેઓ પોતાની સ્કુલના પ્રતિનીધી તરીકે નિર્દોષ ગર્વથી જઈ શકે છે સમાજ માટેનો એમનો જુસ્સો અને લાગણી હજી બહાર નથી આવી શકયા કવિ સમ્રાટ મિલ્ટનની માફક પ્રેરણા જેવી નૈસર્ગિક કળાના ઉપહારથી વિભૂષિત જેઓ અંધાપાનેયે દૈવની બક્ષિમ માને છે, અને જેમની વય ન ગણતા અત્યારે ભાવનગર સ્કુલમા સંગીત શિક્ષક તરીકેની માગણી થઇ ચુકી છે !"

આ ભાઈનું રચેલુ એક ગુજરાતી કાવ્ય પણ ઉપર આપવામા આવ્યું છે.

આથીજ રીતે એક ધર્મના સિદ્ધાંતમાંથી જુદા જુદા મત થઇ સત્ય ધર્મના પ્રકાશને ઢાંકી દીધો. જગતમાં સત્ય ધર્મના સિદ્ધાંતનો ભાવાર્થ જુદા જુદા રૂપમાં હોવાથી આપણે ખરી વસ્તુસ્થિતિ જલદી નથી સમજાતી આથીજ આપણે ધર્મના નામે મારામારી કરી. સત્ય ધર્મના સિદ્ધાંતોના મૂળને છેદીએ છીએ. મનુષ્ય જાતિનું કલ્યાણ અવિનાશી સુખની ખરી પ્રાપ્તિ, જીવનની સુકીર્તિ, આ સર્વ ધર્મથી પ્રાપ્ત થાય છે. મનુષ્ય જ્યાં સુધી પોતાનો પુરતો વિચાર નહિ કરે ત્યાં સુધી ખરી વસ્તુની જાણ તેને નહિ થાય કે હું કોણ છું અને ક્યાંથી આવ્યો, મારૂં શું કર્તવ્ય છે. વિગેરે શબ્દોનો યથાર્થપણે વિચાર નહિ કરે ત્યાં સુધી મનુષ્ય પોતાને બરાબર નથી ઓળખી શકતો. મનુષ્ય મનુષ્ય ધર્મથી અજાણ હોવાથી અનંત ભાવ સુધી સંસાર સમુદ્રમાં ફર્યા કરે છે, માટે મનુષ્યે પહેલા પોતાની શી ફરજ છે તેનો પુરતો ખ્યાલ કરવો, કે જેથી પોતાની અનંત શક્તિનો પરિચય થાય. મનુષ્ય જીવનનો આદર્શ જ્યાં સુધી મનુષ્ય ન જાણે ત્યાં સુધી તેને મનુષ્યપણાનો ખ્યાલજ નથી થતો.

હાલની આપણી સમાજો તથા જ્ઞાતિ બધારણો અંધશ્રદ્ધારૂપી રૂઢીઓથી કેવી નિર્માલ્ય સ્થિતિ ભોગવી રહ્યા છે. ઉપરના ચળકાટથી અજાઇ સત્ય અસત્યનું ભાન નથી રહેતું, આથી સંસારમાં આપણું જીવન એક ભાર રૂપ લાગે છે. સમાજની અંધશ્રદ્ધારૂપી રૂઢીઓ લાખો યુવાનો તથા યુવતીઓને નિર્માલ્યતા શીખવી, મનુષ્ય કર્તવ્યથી છેક અજાણ્યું રાખે છે. આપણી વર્તમાન સ્થિતિ અતિ નિરાશાજનક છે. વ્યાપાર આપણા હાથમાંથી ખસતા જાય છે. આથી આર્થિક સ્થિતિ ગંભીર બનતી જાય છે. દાનના ઝરણ સુકાતાં જાય છે. દાનવીરોની સંખ્યા ઘટતી જાય છે. જે હાથ દાન વડે શોભતા તે આજે હીરાની વીંટી વડે શોભવા લાગ્યા. વડીલો અને વિચારકોની આમન્યાઓ તુટી જાય છે. ધાંધલીઆઓ આગળ ધસતા જાય છે સ્વતંત્રતાને નામે સારી પેઠે સ્વચ્છંદ ફેલાતો જાય છે, તેવા પ્રસંગે આપણે આપણા વેડફાઇ જતા બળને સંગઠિત કરવું જોઇએ અને સમાજની પરિસ્થિતિના આખાએ પ્રશ્નનો ગંભીરપણે વિચાર કરવો જોઇએ. પ્રાજ્ઞ અને સમજુ વિચારકોએ આવા પ્રસંગે પ્રમાદવશ ન થવું જોઇએ. કુસંપના બીજને કાપવી દઇ કંઇક પોતાનું તથા પરનું ભલું કરવું જોઇએ કે જેથી વર્તમાન તથા ભવિષ્ય સુખદાઇ નિવડે.

દિગંબર જૈન પાઠશાળા કલોલમાં હાલમાં ૬૫ ઘરની વસ્તીમાંથી પાંચ ૭ વર્ષનાથી માંડી ૨૦ વર્ષ સુધીના યુવકો તથા બાળકો પાઠશાળામાં હાજરી આપી ધર્મજ્ઞાન લે છે. ૬૫ ઘરની વસ્તીમાં કલોલ રહેતા યુવકો તથા બાળકો પાંચ ૭ વર્ષથી માંડીને ૨૩-૨૪ વર્ષ સુધીના આસરે ૯૦ ની સંખ્યા છે તેમાં ૨૫ ટકા ધર્મ લાભ લે છે બાકીનો પોણો ભાગ નિશાળે જતો, તેમ નોકરી કરતો, નકામો વખત કાઢી, ગપાટા સપાટા મારી પોતાની અમુલ્ય તક ગુમાવે છે, તેઓના માબાપો તથા વડીલ સ્નેહીઓને ધર્મપ્રત્યે બીલકુલ કાળજી નથી તેથીજ યુવાનો તથા બાળકો ઉપરવાથી સ્વઇચ્છા પ્રમાણે વર્તે છે. નોકરી કરતો યુવાન તથા નિશાળે જતો બાળક શું તેને સાંજનો એક કલાકનો વખત નથી મળતો? ઘણા યુવાનો તો કહે છે કે અમોને પાઠશાળામાં ધર્મ જ્ઞાન લેવા જતા શરમ આવે છે. અમો મોટા થયા એટલે અમારા માબાપો થોડો ઘણો કામનો બોજો અમારા શિરે મુકી દે છે તેથી વખત નથી મળતો વિગેરે શબ્દો કહી પોતાની ધર્મ પ્રત્યેની નિર્બળતા ખુલ્લી પાડે છે.

મને તો લાગે છે કે ધર્મ જ્ઞાન લેવાથી યુવકોની બુદ્ધિ બગડી જતી હશે! તેઓના સુખમાં વિઘ્ન પડતું હશે! તેઓની વ્યવહારૂ બાબતોમાં ખલેલ પડતી હશે! જો આમ ન હોય તો ધર્મ જ્ઞાનની પાઠશાળામાં આવી લાભ લે ધર્મથી કેટલો લાભ થાય છે, તે તો તમો જ્યારે તેમાં રસ લેતા થાઓ ત્યારે ખબર પડશે. યુવાન, તું ધર્મ વિષેનો ખોટો ભ્રમ કાઢી નાંખ. ધર્મ જ્ઞાનથી તારા

આથીજ તો એક ધર્મના સિદ્ધાંતથી જુદા જુદા પંથ થયા તથા પ્રાંતમાં પેટા ભેદ. જગતમાં સત્ય ધર્મના સિદ્ધાંતો આચારે જુદા જુદા રૂપમાં હોવાથી આપણે ખરી વસ્તુસ્થિતિ જાણી નથી શકતા. આથીજ આપણે ધર્મના નામે આંધળાપણું કરી, સત્ય ધર્મના સિદ્ધાંતોના મૂળને ઉંડાણે જોઈએ. મનુષ્ય જાતિનું કલ્યાણ ભક્તિભાવથી સુખની ખરી પ્રાપ્તિ, જીવનની સુંદરતા, આ સર્વ ધર્મથી પ્રાપ્ત થાય છે. મનુષ્ય જ્યાં સુધી પોતાનો પુરતો વિચાર નહિ કરે ત્યાં સુધી ખરી વસ્તુની જાણ તેને નહિ થાય. હું કોણ છું અને ક્યાંથી આવ્યો, મારૂં શું કર્તવ્ય છે. વિગેરે પ્રશ્નોનો યથાર્થપણે વિચાર નહિ કરે ત્યાં સુધી મનુષ્ય પોતાને બરાબર નથી ઓળખી શકતો. મનુષ્ય મનુષ્ય ધર્મથી અજાણ હોવાથી અનંત ભવ સુધી સંસાર સમુદ્રમાં ફર્યા કરે છે, માટે મનુષ્યે પહેલા પોતાની શી ફરજ છે તેનો પુરતો ખ્યાલ કરવો, કે જેથી પોતાની અનંત શક્તિનો પરિચય થાય. મનુષ્ય જીવનનો આદર્શ જ્યાં સુધી મનુષ્ય ન જાણે ત્યાં સુધી તેને મનુષ્યપણાનો ખ્યાલજ નથી થતો.

હાલની આપણી સમાજે તથા જ્ઞાતિ બંધારણો અંધશ્રદ્ધારૂપી રૂઢીઓથી કેવી નિર્માલ્ય સ્થિતિ ભોગવી રહ્યા છે. ઉપરના ચળકાટથી અંજાઈ સત્ય અસત્યનું ભાન નથી રહેતું, આથી સંસારમાં આપણું જીવન એક ભાર રૂપ લાગે છે. સમાજની અંધશ્રદ્ધારૂપી રૂઢીઓ લાખો યુવાનો તથા યુવતીઓને નિર્માલ્યતા શીખવી, મનુષ્ય કર્તવ્યથી છેક અજાણ રાખે છે. આપણી વર્તમાન સ્થિતિ અતિ નિરાશાજનક છે. વ્યાપાર આપણા હાથમાંથી ખસતા જાય છે. આથી આર્થિક સ્થિતિ ગંભીર બનતી જાય છે. દાનના ઝરણ સુકાતાં જાય છે. દાનવીરોની સંખ્યા ઘટતી જાય છે. જે હાથ દાન વડે શોભતા તે આજે હીરાની વીંટી વડે શોભવા લાગ્યા. વડીલો અને વિચારકોની આમન્યાઓ તુટી જાય છે. બાંધછોડો આગળ ધસતા જાય છે, સ્વતંત્રતાને નામે સારી પેઠે સ્વચ્છંદ ફેલાયો જાય છે, તેમ આપણે આપણી ઓળખાણ ગેરમાર્ગે જતા [illegible] માટે સંગઠિત કરવું જોઈએ અને સમાજની પરિસ્થિતિના કારણો પ્રશ્નોનો ગંભીરપણે વિચાર કરવો જોઈએ. યુવક અને પ્રૌઢ વિચારકોએ આમાં [illegible] વક ન થવું જોઈએ. કુસંપને મીટાવી સંગઠન કરી કંઈક પોતાનું તથા સમાજનું ભલું કરવું જોઈએ કે જેથી વર્તમાન તથા ભવિષ્ય સુખમય નિવડે.

દિગંબર જૈન પાઠશાળા કલોલમાં હાલમાં ૬૫ ઘરની વસ્તીમાંથી પાંચ-૭ વર્ષનાથી માંડી ૨૦ વર્ષ સુધીના યુવકો તથા બાળકો પાઠશાળામાં હાજરી આપી ધર્મજ્ઞાન લે છે. ૬૫ ઘરની વસ્તીમાં કલોલ રહેતા યુવકો તથા બાળકો પ્રાય ૭ વર્ષથી માંડીને ૨૩-૨૪ વર્ષ સુધીના આશરે ૮૦ ની સંખ્યા છે તેમાં ૨૫ ટકા ધર્મ લાભ લે છે. બાકીનો મોટો ભાગ નિશાળે જતો, તેમ નોકરી કરતો, નકામો વખત કાઢી, ભમાટા ભમાટ મારી પોતાની અમુલ્ય વખત ગુમાવે છે, તેઓના માબાપો તથા વડીલ સ્નેહીઓને ધર્મ પ્રત્યે બીલકુલ લાગણી નથી તેથીજ યુવાનો તથા બાળકો બેપરવાહીથી સ્વઇચ્છા પ્રમાણે વર્તે છે. નોકરી કરતો યુવાન તથા નિશાળે જતો બાળક શું તેને સાંજનો એક કલાકનો વખત નથી મળતો! ઘણા યુવાનો તો કહે છે કે અમોને પાઠશાળામાં ધર્મ જ્ઞાન લેવા જતા શરમ આવે છે. અમો મોટા થયા એટલે અમારા માબાપો થોડા ઘણો કામનો બોજો અમારા શિરે મુકી દે છે તેથી વખત નથી મળતો વિગેરે બહાના કાઢી પોતાની ધર્મ પ્રત્યેની નિર્બળતા ખુલ્લી પાડે છે.

મને તો લાગે છે કે ધર્મ જ્ઞાન લેવાથી યુવકોની બુદ્ધિ બગડી જતી હશે! તેઓના સુખમાં વિઘ્ન પડતું હશે! તેઓની વ્યવહારૂ બાબતોમાં ખલેલ પડતી હશે! જો આમ ન હોય તો ધર્મજ્ઞાનની પાઠશાળામાં આવી લાભ લે. ધર્મથી કેટલો લાભ થાય છે, તે તો તમો જ્યારે તેમાં રસ લેતા થાઓ ત્યારે ખબર પડશે. યુવાન, તું ધર્મ વિષેનો ખોટો ભ્રમ કાઢી નાખ. ધર્મ જ્ઞાનથી તારા

જીવનની ઇચ્છાઓ તને સહેજે પુરી પડશે તે તું ના જાણતો. ધર્મ જ્ઞાનનો પુરેપુરો ભાવાર્થ સમજી તારા જીવનની નૌકા તાર. વડીલો પોતાના કુમળી વયના સંતાનોને અતીશય લાડમાં રાખી, તેઓની નવીન ઇચ્છાઓ પ્રમાણે તેઓને વર્તવા દે છે, તેથી તેઓના વિચારો તથા મનોભાવના સ્થિર નથી બનતા, અને આગળ નથી વધી શકતા. સમાજે પાઠશાળા ઉઘાડી તેજ પ્રમાણે સમાજના યુવાનો તથા બાળકોને ફરજીયાત ધર્મ જ્ઞાન લેવા સારૂ ફરજ પાડવી જોઇએ, તેવીજ રીતે કન્યાઓને પણ ફરજીયાત ધર્મ જ્ઞાન આપી તેઓની અજ્ઞાનતા તથા અંધ શ્રદ્ધા ટાળવી જોઇએ.

સમાજ ફાલતુ ખર્ચ ન કરતા પોતાની જ્ઞાતિના યુવાનો તથા યુવતીઓને ધાર્મિક કેળવણી આપવામાં ધન ખર્ચે તો અવશ્ય દરેકના જીવન વ્યવહાર ફળદાયક નીવડે, સમાજ ભવિષ્યનો ખ્યાલ કરી, પોતાના સંતાનોને ધર્મ જ્ઞાન આપી ઉચ્ચ બનાવવામાં સહાયભુત થાય, કુસંપને ત્યાગી સંગઠન બળ પ્રાપ્ત કરી સમાજ પોતાની જ્ઞાતિનું કંઇક હિત કરે તો, ભવિષ્ય જરૂર સુખદાઇ નીવડે કુસંપથી પોતનું, કુટુંબનું, સમાજનું, તથા દેશનું ભયંકર નુકશાન થાય છે, તેનો તમોએ ઇતિહાસ વાચ્યો હશે માટે જ્ઞાતિગણના કુસંપને ત્યાગી સંપ કરો અને પ્રગતિ સાધો એ રટુ.

—»«—

દુઃખ.

ખાવાની ઇચ્છા થાય તે દુઃખ
ખાવાનુ મેળવવા પ્રયાસ કરવો તે દુઃખ.
વ્યાપાર, ચાકરી, મજુરી કરી, ધન પેદા કરવું તે દુઃખ.
આહાર માટે પરાધીન થવુ તે દુઃખ
દીનતા રાખવી તે દુઃખ
અનેક પ્રયત્નોથી પેદા કરેલું, ધન ખર્ચાય તે દુઃખ.
આહારે માટે-સ્ત્રી પુત્ર કે કોઇને તાબે થવુ તે દુઃખ
ખાવાનું થવાની વાટ જોઇબેસી રહેવુ તે દુઃખ.
ખાધા પછી પાચન થવાની વાટ જોવી તે દુઃખ
ઇચ્છા મુજબ ખાવાનુ ન મળે તે દુઃખ.
સારૂં સારૂં ખાવાની લાલસા કરવી તે દુઃખ.

મોહનલાલ મથુરાદાસ કાણીસાકર-કમ્પાલા.

ગુજરાતના મેવાડા બંધુઓ.

(લેખકઃ-રતીલાલ કેશવલાલ શાહ-વડોદરા.)

આપણી સમાજના મુખપત્ર 'દિગમ્બર જૈન' ના ભાદરવો તથા આસો માસના અંકોમાં શ્રીયુત મોહનલાલ મથુરાદાસ શાહના "ગુજરાત દિગમ્બર જૈન સમાજ" નામના લેખમા વર્ણન કરેલી હકીકત વાચી તે બાબતને માટે થોડાક શબ્દો હું વાચકો આગળ રજુ કરીશ તો તે અસ્થાને ગણાશે નહિ

શ્રીયુત મોહનલાલભાઇના દરેક વાક્ય ખરેખર પ્રશંસનીય છે, અને તેનો પુરેપુરી રીતે અમલ કરવા લાયક છે. હાલમા આપણા ગુજરાતના દિગમ્બર જૈન સમાજને માટે તેવા એક સંગઠનની ખાસ આવશ્યકતા છે, અને તે જરૂરીયાત આપણા દિગંબર જૈન બંધુઓ અવશ્ય પુરી પાડશે એવી આશા છે શ્રીયુત મોહનલાલના સ્વપ્નમાં વર્ણવેલી સર્વે હકીકત સત્ય નીવડો અને આપણા ધર્મની ઉન્નતિ થાઓ તેવી મારી શ્રી જિનેન્દ્રદેવ પ્રત્યે પ્રાર્થના છે. ગુજરાતના દરેક દિગમ્બર જૈન બંધુને-પછી ભલે તે મેવાડા બંધુ હોય, હુમડ હોય રાયકવાલ હોય કે નરસીંહપુરા હોય—મારી એજ નમ્ર વિનંતી છે કે તેઓ શ્રીયુત મોહનલાલની તે અભિલાષા હોંશથી વધાવી લઇ તે કાર્યમા પુરેપુરો સાથ આપી એક સંગઠિત સમાજ સ્થાપન કરી તે દ્વારા સમાજમા લાંબા વખતથી મૂળ ઘાલી બેઠેલા અનેક કુરીવાજો અને સડાને દૂર કરી, દરેક યુવકને તેની સામે બંડ કરવા પ્રેરો, સમાજોન્નતિમા પુરેપુરો સાથ આપી, સમાજની દિન પ્રતિદિન થતી જતી અધોગતિને અટકાવી, એક આદર્શ સમાજ બનાવો અને તે દ્વારા તમારા માટે તથા ભવિષ્યની પ્રજા માટે એવી સરસ છાપ પાડો કે જેથી ભરૂચ અને માંડવીના જેવા દિગંબર જૈન મુનિઓના વિહારને અટકાવનારા બનાવ બનવા પામેજ નહિ. ખરેખર મુનિ વિહારની અટકાયતનો બનાવ તે

ગુજરાતના દિગંબર જૈન સમાજને તો શું પણ આખા હિન્દુસ્તાનના જૈન સમાજને માટે શરમાવનારો છે, અને એ માટે જો અત્યારથી સખત પગલા નહિ લેવામાં આવે તો દિગંબર જૈન મુનિઓને કોઇપણ જાહેર રસ્તા ઉપર કે ગામમા નહિ ફરવા દેવામા આવે અને તે આપણા સમાજને માટે કલંક રૂપ... ગણાશે દિગંબર જૈન નામધારી દરેક બંધુની ફરજ છે કે તેમણે આવાં કાર્યોમા પુરતો સાથ આપી પોતાનાથી બનતી મદદ કરવી, માટે નવયુવકો હજુ પણ ચેતો.

અત્રે ખેદનો વિષય એ છે કે આવા કાર્યો માટે આપણા મેવાડા બંધુઓ ભાગ્યેજ તૈયાર દેખાશે. તેઓને નથી પોતાના ધર્મનું, જ્ઞાતિનું, સમાજનું કે દેશનું અભિમાન ! તેઓ તો કોણજાણે હજુ કેટલો સમય ગાડરીયા પ્રવાહ સાથે તણાઇ આવતાં નિદ્રામા ઘોર્યા કરવાના છે ? મેવાડા બંધુઓની વસ્તી મોટી હોવા છતા તેઓમાં નથી પોતાનું સંગઠન કે જે દ્વારા યુવકો પોતાના વિચારો અને આદર્શો રજુ કરી લાંબા સમયથી ચાલી આવતા સડાને દૂર કરી શકે, થોડાં વર્ષો ઉપર કેટલાક બંધુઓના પ્રયાસથી એક મેવાડા યુવક મંડળ સ્થાપવામા આવેલું તથા વડોદરા જેવા શહેરમા પણ તેવા એક મંડળની સ્થાપના થયેલી પણ તે મંડળો કોણજાણે કયા અગાધ સમુદ્રમા ડુબી ગયા છે તે સમજાતું નથી—તેમનુ અસ્તિત્વ જોવામા આવતું નથી. વળી આશરે દોઢ વર્ષ ઉપર સોજીત્રામા કેટલાક બંધુઓના પ્રયાસથી એક મેવાડા યુવક સંઘની સ્થાપના કરવામા આવેલી અને તેના પ્રમુખ તથા મંત્રી વિગેરે સારા કેળવાયેલા યુવકોને પસંદ કરવામાં આવેલા, તે મંડળે શરૂઆતમાં કેટલાક જ્ઞાતિ સુધારાના ઠરાવો પસાર કરી કંઇ ઉન્નતિના ચિન્હ દેખાડયા હતા, પણ હાલમાં તો તેના કામમા પણ શિથિલતા થયેલી દેખાય છે. તે સંઘે કરેલા ઠરાવો કાગળો ઉપરજ રહ્યા છે. એટલે તેવા ઠરાવો કર્યા અગર ન કર્યા તે સરખુંજ છે. જો કે તે સંઘની કાર્યવાહક કમીટીનો એક સભાસદ આ લેખક પોતે છે, પણ મારે તેને માટે આ પ્રમાણે લખવું પડે તે મારા માટે અને સંઘના માટે શોભા ભરેલું નથી. મને સ્વપ્ને પણ ખ્યાલ ન હતો કે ઉછરતા ઉત્સાહી યુવકોમા આવી રીતે શિથિલતા આવશે. મેવાડા બંધુઓને તો પરસ્પર જ્ઞાતિના ઝગડા વધારી તેવા ઝગડાઓમાજ પોતાની energy-શક્તિ બરબાદ કરવી છે માટે મેવાડા બંધુઓ ! અને યુવકો ! હજુ પણ ચેતો અને આપણા સંઘને ચિરસ્થાયી બનાવી, દરેકે દરેક યુવકને તેનો મેમ્બર બનાવી આપણી જ્ઞાતિનું અને સમાજનું એક સંગઠીત બળ સ્થાપી સમાજને અધોગતિએ પહોંચતો અટકાવો. આપણા સંઘને સ્થાપન થયા પછી ઘણા વખતે અને હાલ થોડા મહિનાજ ઉપર સ્થાપન થયેલો સુરત દિગમ્બર જૈન યુવક સંઘ ખરેખર પ્રશંસાને પાત્ર છે તે સંઘે ટુંક સમયમા તમારા કરતાં ઘણા સારાં કાર્યો કર્યાં છે, માટે તેનું અનુકરણ કરી જ્ઞાતિનું કંઇ હિત વિચારો. આપણા દિગમ્બર જૈન સમાજને એકત્ર કરવા માટે આપણા એક ઉત્સાહી મેવાડા બંધુ શ્રીયુત્ મોહનલાલ લાલ, આફ્રિકામા રહ્યા રહ્યા કેટલો પ્રયાસ કરી રહ્યા છે તેનો તમે ખ્યાલ કરો, અને તેઓના તે કાર્યમા તેમને પુરતી મદદ આપી સમાજનુ કંઇક શ્રેય કરો તોજ તમારૂં આ દેશમા જન્મવું સાર્થક ગણાશે.

અંતમા મારે દરેક મેવાડા બંધુને એજ વિનંતી કરવાની કે ઉપર લખેલી દરેક સુચનાઓ ધ્યાનમાં લઇ પરસ્પરના ઝગડાઓમા વખત નહિ બરબાદ કરતા આ કારતક માસથી શરૂ થતા વીર સંવત ૨૪૫૮ ના નવા વર્ષમા કંઇક નવું કાર્ય કરી બતાવશો તો હું મારૂં લખેલું કૃતાર્થ સમજીશ.

ગુજરાતમાં "મધ્યસ્થ સંસ્થાની જરૂર."

(લે.—શ. દેશાઇ.)

ગુજરાતના દિગમ્બર જૈનોના સામાજીક આર્થિક અને કેળવણી વિષયક સુધારા અર્થે ગુજરાતના કોઇ કેંદ્ર સ્થળમા એક ગુ. દિ. જૈનોની મધ્યસ્થ સંસ્થાની જરૂર છે, અલબત એક મંડલ જે મુંબઇ પ્રાંતીય સભા નામધારી છે, પણ તેનું કામ મને લાગે છે કે તેનું મુખપત્ર સાપ્તાહિક "જૈનમિત્ર" આ પ્રગટ કરવું તથા પરીક્ષાલય ચલાવવું એજ હોય તેમ લાગે છે, એથી વધુ તે હાલ સમાજને ઉપયોગી થઇ પડયુ નથી.

આ મંડલની જરૂરિયાતનો દર્શાવવી એ પૂર્ણ તેજસ્વી ચક્ષુઓ ઉપર ચશ્મા ચઢાવવા જેવું છે. કારણ સમાજની દિન પર દીન થતી જતી અધોગતિ જોતાં તેને જલદીથી સુધારવાના પ્રયત્નો થવા જરૂરી છે. અને કોઇ એકલ દોકલ "સરૈયાજી" જેવાના પ્રયત્નો કરતા આ મધ્યસ્થ મંડળ તેમની શુભ મુરાદો બર લાવવા વધુ ઉપયોગી થઇ પડશે, અને આ સંસ્થા એકાદ ગુરૂકુલ કરતા પણ વધુ વ્યવસ્થિત રીતે સમાજ-સેવાનું કામ કરી શકશે. આ મંડલને ફોર્મમા લાવવા માટે હું તેનું બંધારણીય ખોખું નીચે આલેખવાની રજા લઉં છું—

૧—આ મંડળનુ નામ ગુ. દિ. જૈન સંસાર સુધારા મંડલ રાખવુ.

૨—આ મંડલનો ઉદ્દેશ ગુજરાતમા વસતા સર્વ દિ. જૈન ભાઇઓની એકત્ર સમાજ મેળા આર્થિક પરિસ્થિતિઓનો ઉકેલ અને કેળવણી વિષયક પ્રગતિ કરવાનો રહે છે

૩—આ મંડલના સભ્ય ગુ. મા. વસતા કોઇ પણ દિ. જૈન ભાઇ થઇ શકશે.

૪—આ મંડલના સભ્યની ફી વાર્ષિક ફક્ત રૂ. ૧) એક રાખવી,

૫—આ મંડળની એક સ્થાયી પંદર મેમ્બરની મેનેજીંગ કમીટી નીમવી જે વર્ષમાં ઓછામા ઓછી ૭ મીટીંગો ભરી સમાજ સુધારણાર્થે કરવા ઘટતાં સુચનો, યાદી અને પગલા લઇ શકશે.

૬. આ મંડલનો સ્થાયી એક પ્રમુખ અને બે મંત્રીઓ નીમવા જેમાં એક મંત્રી સ્થાનિક રહેવાસી હોવો જોઇએ.

૭. આ મંડલના કેન્દ્ર સ્થલ તરિકે સુરતને પસંદગી આપવી

હું માનુ છુ કે મંડલનુ આ પ્રાથમિક ચિત્ર દોરવામા આવતાં સજ્જન ઘણી ખુશીથી સ્વિકારવામાં આવશે. આશા છે કે દરેક દિ. જૈન યુવક આ મંડલને આસ્તિત્વમા આણવા તેનાથી બનતો પ્રયત્ન કરશે. અને યોગ્ય સુચના અને કર્તવ્યો દ્વારા તેને તેનું કામ સરળ કરી આપવામા મદદ કરશે; તો આ મંડલ ટુંક વખતમા ગુ. ના દિ. જૈનોની સામાજીક સ્થિતિનો જે ભયંકર સડો હજુ પણ ઘણા કેળવાયેલા અને પ્રતિષ્ઠિત કહેવાતા કુટુંબોમા ઘર ઘાલી રહ્યો છે, તેને દૂર કરવા પોતાની સર્વ શક્તિ ખરચશે

અંતે હું સુરત નિવાસી શ્રીયુત સરૈયાજીને વીનવું છુ કે એકલ દોકલ પત્રિકાઓથી કે સાધારણ પ્રવૃત્તિઓથી સમાજની સ્થિતિ એકદમ પલટાવી શકાતી નથી, તેને માટે તો સંગઠિત બળની આવશ્યકતા છે, તે ઉભુ કરવામા જો આપ આપનુ બળ ખર્ચશો તો સમાજના જુલ્મો સામે ઉભવા તમો ઘણું સારૂં બળ એકત્રિત કરી શકશો. આશા છે કે આ શુભ પ્રયાસ આપના હાથે શરૂ થાય અને સફળ નીવડે

નિ:સહાય વિધવાઓ

અને કમીટીની ફરજો.

(લેખક.—શાહ ચુનીલાલ વીરચંદ ગાંધી, મુંબઈ.)

દેશના કલ્યાણ માટે દેશના દીપકો કારાવાસ વેઠે છે, ફાંસીને માંચડે ચઢે છે, અસહ્ય દુ:ખ સહે છે. દેશ મારો છે, એમ બોલતાં જેને શેર શેર લોહી ચઢે છે, તેજ સાચા દેશભક્તો છે ને તેઓજ દેશના સાચા સુકાનીઓ છે. જેઓ કુટુંબને રીઝવી શકે છે, ગરીબોના દુ:ખોને પોતાના ગણી તેમા ભાગ લે છે, કલેશ ને કજીયા જેને પ્રિય નથી, પોતાનો કક્કો ખરો કરાવવાનુ વૃથા ગુમાન નથી. પરન્તુ—સત્ય અને સમાજહિતની બાબત દરેકને સમજાવી તેનુ પાલન કરાવવાનું જેને અભિમાન છે, એવા સમાજ—દીપકોની ભારે જરૂર છે, અને સ્વાર્થ રહિત, નીતિ ને સિદ્ધાન્ત પર સર્વસ્વ અર્પનારા ત્યાગીઓની સમાજને અત્યારે તો મોટી ખોટ દેખાય છે.

ગુજરાતના ખેડુતો...એ સમયને પીછાન્યો છે, ગુજરાતના ખેડુતો—દેશને માટે સર્વસ્વ ત્યાગે છે, ત્યારે ગુજરાતના વણીકોમા દ્વેષ મિથ્યાભિમાન, ખુશામત—બીકતા ને કલેશના વાદળ વીખરાતાજ નથી તેમજ જ્યા સંધિ થાય છે, ત્યા વેર ધુંધવાયા કરે છે.

શેઠાઇ અને **કમીટી**ના પક્ષકારોના ઝગડાઓનો અંત આવી ગયો છે, છતા હજુ શેઠાઇના અનુયાયીઓને શેઠાઇનો મોહ જતો નથી એમ લાગે છે! તેમજ કમીટી પક્ષવાળાઓને 'પાર્લામેન્ટ" ની સ્થાપના પછી પણ અવિશ્વાસ જતો નથી, કેમ જાણે સંસ્થાઓની આયુષ્ય દોરીઓ—અવિશ્વાસ ને અધીરાઇથી મજબુત બને છે, મુત્સદીએ તો સમાજ ને દેશનું નખ્ખોદજ વાળ્યું છે મુત્સદી એટલે કપટકળાનો અવતાર, સાચો મુત્સદી સામી છાતીએ ઝુઝે છે, ત્યારે કપટકળાનો મુત્સદી પાછળથી દોરી સંચાર કરે છે. અને આજના કાચા કાનોના હૃદયવિહોણા ભક્તો—કપટકળાની જાળને પ્રભુત્વ માને છે

આજે કમેટીના ઓઠા નીચે સમાજ એકત્ર બન્યો છે, એ આનંદની વાત છે, છતા અંતરના ઉંડાણમાં ભરી રાખેલી ઝેરની કોથળીઓમાંથી ઝેરને સાવ ઢોળ્યું નથી એવા ભણકારા વાગે છે. સમાજને જે હીડકો કજીયાથી અને પાપાચારથી બચાવે છે અથવા તો બચાવવા આત્મભોગ આપે છે, યા તો પ્રયત્ન કર્યા કરે છે, તેઓજ માનવતાનું ગૌરવ બતાવી શકે છે.

કમેટી—એ કોઇ શબ્દ રચના છે છતા એમાં સંયુક્ત બળ છે. કમેટી એકની નથી પરંતુ સમાજની છે કમેટી સ્વતંત્રવાદીઓની છે. કમેટીનો કારભાર બહુમતી પર રચાયેલો હોય છે. તેમજ કમેટી દરેક પંચો તરફથી ચુંટાયેલા પ્રતિનીધીઓની બનેલી હોય છે.

વડાલીમા કમેટીની એક સભા મળી હતી. ત્યારે જેઓએ હાજરી આપવામાં અખાડા કર્યા હતા તેઓ સમાજને શા ફાયદા કરવાના કામમાં ગુંથાયા હતા, તેજ સમજાતું નથી. કમેટીનું બાંધા ધોરણ સાવ નિર્બળ છે. તેનું કારણ શોધું કરવું જોઇએ કે જેથી નિયમસર કામકાજ ચાલુ રહે

આપણે કમેટીને પરાઇ સંસ્થા માનવાના નથી, પરંતુ જેઓ તેમા બેસી કામ કરવામા કુશળતા બતાવશે—જેઓ સમાજના સેવક બની સમાજ હિત હૈયે રાખશે, તેઓનીજ તે સંસ્થા બની રહેશે.

સમાજના યુવકો—અને સમાજ પ્રેમી વૃદ્ધો કે જેઓનો ઉમંગ એકજ સરખો છે, તેઓ પક્ષકારના હથિયાર મુકીને સમાજના સેવક બને ને કમેટીમા ભાગ લેવાને પોતે કેળવાય, તેમા ભાગ લે, અને પ્રેમથી, નિર્ભયતાથી અને ન્યાયથી પોતાના વિચારો રજુ કરે.

મારા અનુભવથી મારે જણાવવુ જોઇએ કે પ્રગતિને ઘણાએ યુવકો પૂજે છે, તેમજ જુના વિચારવાળાઓને પ્રગતિ ગમે છે. પરંતુ રૂઢીના એ ભક્તોને પ્રતિષ્ઠાનો વાય ગભરાવી નાખે છે.

અમે તેથી તેઓ મૌન સેવે છે. ત્યારે યુવકો પ્રગતિના પૂજક છે, પરંતુ આત્મબળને ભૂલી કુટુંબ મોહમાં ડુબી રહ્યા છે યુવકોએ એટલું તો સમજવાનું છે કે જો તમારે સમાજ પ્રગતિ જોઈતી હોય, અનેક દુઃખીઓના સહભાગી થવું હોય, પ્રભુત્વ ને આદર્શના પાઠ ભણવા હોય ભણાવવા હોય તો—તમે પ્રગતિના પાઠો શીખો, ભાગ લો ને વિનયથી વાણી વદો.

હું ઉપદેશક નથી. હું તો સેવા રૂચે જે રૂચે છે તે લખું છું...ભુલ હોય ત્યાં સુધારે ને વાંચે

પ્રગતિ.

કમેટીને પ્રગતિ મય બનાવવી હોય, તેના સભાસદોને અંકુશ મય બનાવવા હોય—વિવેક-ભર્યા વર્તનથી, ને સાકર જેવા વચનોથી સભાને શોભાવવી હોય, એક પછી એક સમયે એક સભ્યે બોલવાની પ્રથા પાડવી હોય, બોલવાની કીંમત અંકાવવી હોય, વિદ્વાન બનવુંજ જોઈએ, એવા વિચારો લાવવા હોય તો—સમાજ નીચે જણાવેલા મુદ્દાઓ પર વિચાર કરે.

માસિક.

એક સ્વતંત્ર પેપર કાઢવાનું નક્કી કરે ને તેને માટે સ્વતંત્ર વિભાગ કાઢે. ને તે માસિક નિડર ને સ્વતંત્ર સેવા પ્રેમીના તંત્રીપણા નીચે પ્રગટ કરે, જેથી તે માસિકમા સમાજની ચર્ચા છપાય, કમેટીના દરેક ભાષણો ને ચર્ચા છપાય, કમેટીના દરેક ભાષણો ને ચર્ચા છપાય; જન્મ મરણ ને લગ્નો આદી જાહેરાત થાય; સમાજના સડાઓ પ્રગટ થાય, અને કયારે સાફ કરવાને મહેનત કરે.

સોગંદ.

નવી ચુંટણીમા જેટલા સભાસદો ચુંટાઈને આવે—તેઓ સમાજનું ભલું કરવાના સોગંદ લે.

પ્રતિજ્ઞા.

હું પ્રતિજ્ઞા પૂર્વક કહું છું કે—ઘર વિગ્રહને સમાજમાં સ્થાન નહિ આપું. તેમજ સમાજ નિયમોનો ભંગ કરનાર ભલે પછી સગો ભાઈ હોય કે બાપ હોય છતાં તેનો પક્ષ નહિ લઈ ને જેમ બનશે તેમ ચારિત્રશીલ રહી, મારી ફરજ બજાવીશ ને જ્યાં જ્યાં સમાજની ત્રુટીઓ હશે-ત્યાં ત્યાં મારાથી બનતી સેવા આપીશ.

ઉપરના બે મુદ્દાઓને કમેટી અગત્યના ગણી તે અમલમા મુકે તો—જરૂર પ્રગતિ થાય. ઘણાએ વિદ્વાન સભાસદોને બિભત્સ ભાષાનો શોખ પડી ગયો હોય ને તેઓ બોલે ને છાપામાં આવે તો વાચનારને હાસ્યરસ સ્હેજે મળી રહે.

આપણે જો ન ભુલતા હોઈએ તો મને લાગે છે કે અત્યાર સુધી પંચોએ ભેગા થઈને ઘી ગોળના ભાષણ મુક્યા છે. કન્યાઓ કેમ ઠેકાણે પડી જાય તેવા નિયમો ઘડયા છે, પરંતુ કન્યા-ઓની સુરક્ષિતા માટે એક કાયદો ઘડવાની ઉદારતા બતાવી છે! સમાજના કાયદાથી પુત્રનો વેવીશાળ થયો એટલે એજ વર્ષમા કન્યાને ઉતારી દેવાનો જે નિયમ છે, તે નિયમ આજે બીન જરૂરી છે. કારણકે તેથી કન્યા ને વરના બધે જોડલા બંધાય છે. પરંતુ તે જોડા કજોડા થાય છે અને તેથી પરિણામ મીઠું આવે છે

મારા સાંભળવા મુજબ—ઘણાએ કુટુંબમાથી પોકાર થતો કે—દીકરાને કન્યા નથી ગમતી, દીકરો દેવ છે, ને કન્યા કાજળ છે. દીકરાને ગાંડપણ છે, ને દીકરી ડાહી છે. વરને સંન્નીપાત થઈ આવે છે ત્યારે કન્યાને ફેરફ આવે છે. કન્યા વઢકણી છે, વર મૂર્ખ છે એવા એવા પોકારો કરી, અરસ પરસના વાલીઓ—સંસારને બેચેની બનેલો પોકારે છે, છતાં પુત્રનો જન્મ થયો કે દીકરાનો વીવાહ કયારે થાય એની ફિકર કરે છે. તેમજ કન્યાવાળો કોઈ સારા ઘરની શોધમા હોય છે, પરંતુ—ભાવિ સંસારની ઉજ્વળતા વિષે લગારે ચિંતા આ વિવાહ પ્રેમી માનવોને હોતી નથી. આપણે સાંભળીએ છીએ કે—આજે તો તેની માતાએજ તેની બાળીકાને ઝેર આપ્યું! વળી કોઈ કહે છે કે રૂપાળી સતી સુલોચનાએ તો ધણીને અફીણ ખવડાવ્યું!

આ બધું શા માટે? માના બચ્ચાંને પ્રાણથી પણ અધિક ગણે છે, તે માતાઓ અજ્ઞાનતામા

પોતાની ગમર બાળાને ગમે તેવા રોગી કે વ્યસની જોડે બાંધડાવીને હાથ ધોઇ નાખે છે—તે પોતાનાજ હાથે તે બાળાહત્યાણી બને છે—આવા તો દાખલા આપણે ઘણા વાંચીએ છીએ ને સાંભળીએ છીએ આ બધો પ્રતાપ બાળવિવાહ ને બાળલગ્નનો છે.

વૃદ્ધ લગ્ન પણ તેટલાજ ભયાનક છે, તેનો દાખલો પણ આપ્યો છે. વૃદ્ધને જઇને પુછો કે બાર વરસની બાળાના ભરથાર થવના કોડ કેવા છે એ બધું કમેટી જરૂર વિચારે.

\+ + + +

આપણે આ બાબતો કરતાએ એક ગહન વિષયમાં ઉતરવું જોઇશે ને તે પ્રકરણ—વિધવાઓનું છે.

કન્યાઓ જલદી ઠીકરાઓને મળે તેવા નિયમો બાંધ્યા પરંતુ જે હતભાગી કન્યાઓ વિધવા થાય છે, તેમના માટે કઇ પણ વિચાર કર્યો છે? તેઓને ખાવાનું પણ પુરૂ જે કોઇ હક્કના માનવો ન આપતા હોય જે વિધવાઓ સીતમની ચક્કીઓમાં પીસતી હોય, જે બાળાઓ કલેશના હુતાશનમાં બળતી હોય ત્યાં ત્યાં તપાસ કરવાની ફરજ સમજે વિચારી છે? ઘણીએ વિધવાઓને આજીવિકા માટે હરરોજ મહાભારત યુદ્ધના મંડાણ માંડવા પડે છે, તે કઇ અજાણ્યું છે?

ઘણાએ મહેરા સ્ત્રીઓના સ્વભાવની ફરીયાદો કરે છે. પરંતુ આપણે કેટલુંતો વિચારીએ કે—તે બાળિકાઓમાં—શિક્ષણથી ધર્મભાવના કે સ્ત્રી આદર્શના સુંદર અંકુરો વિકાસ થયા છે? નથી શીખવવાની દરકાર વ્યવહાર નીતિની કે નથી શીખવવાની દરકાર ધર્મ રૂચિની પછી તે બિચારી, મીઠું ને સંસ્કારી ક્યાંથી બોલે? આજે ઘણીએ બાળાઓ કુમાઓને પ્રિય બની છે કેટલીએ બાળાઓ લાચારીથી દુખીઓનું વાસસ્થાન થઇ પડે છે ને કેટલીએ બાળાઓને અફીણ ખાવું પડે છે. મારે ખુલ્લે ખુલ્લું કહેવું જોઇએ કે સમાજ તરફથી તેનું લક્ષણ નથી. આજે શેઠાઇ નથી પરંતુ કમેટી છે. આજે લગરગ નથી પરંતુ સ્વતંત્ર સત્તા છે. જ્યાં સુધી કમેટી કંઇપણ પ્રબંધો નહિ યોજે ત્યાં સુધી કમેટી પોતાની અનુકુળતા વધા[…] શકશે નહિ. આપણે વિધવાઓનું કે કન્યાઓના દુઃખથી વિમુખ રહીએ એ પાપ છે, સમાજ તેનું ભાગીદાર છે. પાપથી સમાજનો નાશ જલદી થાય છે.

વાચનાર દરેક રાખશ સમજે છે કે. બીજીવાર લગ્ન (પુનર્લગ્ન) કરવાં એ અધર્મ છે, છતાં સાથે એ પણ ન ભુલવું જોઇએ કે વ્યભિચાર એથી એ પણ અધર્મ છે: આપણે પુનર્લગ્નના હિમાયતી નથી છતાં તેથી ચુપકાઇ બેસી રહીશું તો પુનર્લગ્નો આપોઆપ બળવો કરશે માટે અગાઉથી ચેતો ને વિધવાઓની સ્થિતિ સુધારવા બનતો પ્રયત્ન કરો. મારી નમ્ર વીનતી છે કે. નિરાધાર વિધવાઓને સહાય રૂપ થઇ પડે તેવો નિયમ કરીને તેની તપાસ માટે ચાર જણની કમીટી નીમે ને તે દ્વારા તેમની ફરીયાદો દુર થવાને પ્રયાસો કરે. મારો આ પ્રશ્ન કોઇ સમજુ પ્રેમી પોતાનો કરી તેને સફળ કરે એજ અભિલાષા સાથે હાલ તો વિરમું છું.

બે ઘડી મોજ.

વિચાર કરીને વાંચો!!

૧—બાળકો! સદ્ધર્થી વરતો.
૨—વસુ રાજા અપત્યના પ્રભાવે પાતાળ ગયા.
૩—મુનઇ સમાજ વાંચો.
૪—ફગન! સારી ચોપડી લખી છપાવ.
૫—૧૦૨થી રામને વનવાસ મોકલ્યા.
૬—૨૫માં ૨, ૧૦૬ ને ૫, ૧૫ છે.
૭—રતન! ઉન્હાળામાં ૩૬ ઓઢણી જોઇએ.
૮—સદાજ પાળનાર સ્ત્રીએ રાત્રે ૧૨ ઉઘાડવાં નહિ.
૯—દજુવાનમાં તાકાત ઘણી હોય છે.
૧૦—૨૦નગર મારે જવુ છે.
૧૧—૪૦ગામ જવા ગાડી ઉપડી.
૧૨—કંચન નાપડી માથે પહેરી બહાર જા.
૧૩—નામોર્થિક કામ સારા માણસો કરે છે.
૧૪—ભરત રાજાએ તિમિસ્રા ગુફાના ૧૨ણી ઉઘાડયા હતા.

સર્વને વિનોદ કરાવનાર:—
પ્રભાવતી બ્હેન શ્રી, શ્રાવિકાશ્રમ, સોણગઢ.

વિજાતીય વિવાહ.

આ વિષય પરત્વે ઘણું લખાઇ ગયું છે, પણ હજુ સુધી કોઇપણ જ્ઞાતિ તરફથી, તેનો અમલ જાહેર રીતે થતો જોવામાં આવતો નથી. આમ તો જેને મોટી ઉમર થતા સુધી કન્યા ન મળે, ઘણા જવા મોટી ઉમર થતાં સુધી પુત્ર-પુત્રી ન થાય, યા કુળમાં કંઇ ખામી હોય, યા શરીરમાં કંઇ રોગ હોય-ખામી હોય, જેથી કન્યા ન મળે, તો પોતાની જ્ઞાતિ સિવાયની જ્ઞાતિની, પછી તે ગમે તે જ્ઞાતિની હોય, ભાણે ખપતી હોય, યા ન ખપતી હોય, સ્પર્શ કરવા યોગ્ય હોય કે પછી અસ્પર્શ હોય, ગમે તે જ્ઞાતિની કન્યા, ગમે તે ભોગે લાવી, ઘર માંડેલા પણ જોવામાં આવે છે. ને તેને જ્ઞાતિએ પોતાના વિશાળ હૃદય પર ધારણ કરેલાં જોવામાં આવે છે.

ઘણું ખુશી થવાનું છે કે એમ એક રીતે તો, આપણે વિજાતીય વિવાહ કરવા લાગ્યા છીએ પણ તે ના છુટકેજ. એવા અતિચાર સાથે પણ જ્યારે આપણે એ ના છુટકેજ નામના અત્યાચાર ત્યાગ કરી સ્વયંઇચ્છા, એ મહામંત્ર ધારણ કરી, વિજાતીય લગ્નજ કરવા પ્રતિજ્ઞાવાળા થઇશુ ત્યારે આપણી ઉન્નતિ થતા વાર લાગશે નહિ.

વિજાતીય લગ્નને કેટલાક વર્ણશંકર લગ્ન માની તેની નિંદા કરે છે, ને પોતાને ચોખ્ખા જૈન માની ઉચ્ચ મનાવે છે, તેવઓને મારે પુછવું પડે છે. કે-શું જૈન ધર્મ એ એકજ કોમમાં સંકળાત થએલો ધર્મ છે ! શું જૈનધર્મ દુનિઆના જીવ માત્ર ધારણ કરી શકતા નથી, છે કોઇ શાસ્ત્ર પ્રમાણ સહિત બતાવવાવાળો, તો આવે બહાર, ને મારી વિજાતીય લગ્નની પ્રથાને અનિષ્ટકારક બતાવવા પ્રયત્ન કરે.

પાછળ રહી વાતો કરી બેસી રહેવાથી સુધારો થઇ શકતો નથી, પણ આગળ આવી રસ્તો બતાવેજ આગેવાન થઇ શકાય છે, સમાજ સુધારી શકાય છે.

વર્ણશંકર લગ્ન તેજ કહેવાય, કે જે લગ્નોથી પ્રજા બીજી જાતની કે ભેળસેળ રૂપવાળી પાકે, પણ આ તો મનુષ્ય જાતિના મનુષ્ય જાતિથી લગ્ન કરવાની બાબત છે. નહિ કે મનુષ્ય જાતિ સાથે પશુ-પંખીથી, તો પછી વર્ણશંકર કહેવાયજ કેમ ?

બ્રાહ્મણ પુરૂષ ક્ષત્રિય કન્યાથી પ્રજા ઉપજાવી શકે છે, તેવીજ રીતે, વૈશ્ય પુરૂષ શુદ્ર કન્યાથી પ્રજા ઉપજાવી શકે છે. જો વર્ણશંકર પ્રજા ઉત્પન્ન થતી હોય, તો તેમ બનેજ નહિ, એક કોમનો આદમી, બીજી તેનાથી હલકી કે ઉંચી મનાતી કોમની સ્ત્રીથી પ્રજા ઉપજાવી શકે છે. એજ એક પ્રમાણિક સિદ્ધાંત આંતરજાતીય વિવાહ સિદ્ધ કરે છે.

જો વિજાતીય વિવાહ શાસ્ત્ર સિદ્ધ અને પૂર્વ પરંપરાગત ન હોત તો, કદાપિ પણ બ્રાહ્મણ પુરૂષ શુદ્ર કન્યાથી પ્રજા ઉપજાવી શકત નહિ.

વિજાતીય વિવાહની વાતો કરે, તેમ કરવા કોઇ તૈયાર થતું નથી, પણ જ્યારે દરેક જ્ઞાતિવાળા, ઠરાવ કરે કે-વિજાતીય વિવાહ કરનારને જ્ઞાતિ તરફથી ધન્યવાદ આપવામા આવશે, ઉપરાંત તેમની સંતતિને પહેલી તક કન્યા આપવા અને લેવામા આવશે ત્યારેજ ખરૂ.

વળી દરેક યુવાન પુરૂષ કે સ્ત્રી, કે-જેઓ અપરિણીત છે, તેઓ પ્રતિજ્ઞા કરે કે-હમારે પરણવુ તો બીજી કોમમાજ પરણવું, નહિ તો કુંવારા રહેવું. ત્યારેજ વિજાતીય વિવાહની પ્રથા ચાલુ થાય ને ત્યારેજ સમાજનું વિવાહ ક્ષેત્ર વિશાળ બને.

વાડા વાળી સમાજને સંકુચિત બનાવવાથી, સમાજ પુરા સવાસો વર્ષ પણ જીવી શકે નહિ. કેમકે-આપણો-જૈન સમાજ હમેશ સેંકડોના હિસાબે નષ્ટ થતો જાય છે આપણી સામાજીક ખટપટ, અને છુત અછુતના ભેદ કરી, આપણા સેંકડો ઘર નિર્વંશપણે બંધ થાય છે. સમાજે ત્રિરાશીક હિસાબ માંડી આ બધી વાતોને જાણવાની જરૂર છે, અને પોતાનો સમાજ કેમ વૃદ્ધિ પામે તે વિચારી વિજાતીય વિવાહની પ્રથાને અમલમા મુકવાની જરૂર છે. ૐ શાંતિ:

લી૦ વિજાતીય વિવાહ ઇચ્છુક,
મોહનલાલ મ. કાણીસાકર-કમ્પાલા (આફ્રીકા)

આપણાં લગ્ન.

(એક ત્રિઅંકી નાટક !)

લેખક—રમણિક વિ. શાહ—મુંબાઈ.

[તદ્દન નવીનજ ઢબમાં રજુ કરાતો એક નાટકનો સટીક ટુંકસાર 'આપણાં લગ્ન'જ એક જાતના નાટક હોવાને લીધે હું ત્હેમાંથી નાટક ઉત્પન્ન કરવા માગતો નથી ફક્ત વર્ણન આપવા માગું છું. 'આપણાં લગ્ન' જોનાર દરેક માણસને નાટકના સારા દૃશ્યો બાદ કરતાં બાકી રહેલી ત્હેની ખરાબ બનાવોજ જુએ છે, ત્હેવો ભાસ ન થાય, તો ત્હેમાં વાંક ત્હેની પોતાનીજ ઓછી બુદ્ધિનો છે ત્હેની હું ખાત્રી આપું છું.]

અંક ૧ લો.

પ્રથમ પ્રવેશ:—મ્હારા વિવાહ થવાના છે ત્હેવી ન્યાતમાં વાત ઉડયા પછી ૧૯૧૭ માં જાન્યુઆરી મહીનાની ૧૬ મી તારીખે મ્હારા પતિરાજના પિતાશ્રી મ્હારા બાપાજીને ત્યાં આવ્યા ચાર પાંચ કહેવાતા સ્વાર્થી સગાવ્હાલા ત્યાં હાજર હતા. મ્હારા બાપજીએ આવેલા તે મહેમાનને ચાંદલો કર્યો અને ઉપરથી નાળીએર, કંકુ અને સવા રૂપીઓ પણ આપ્યા. આનો દેખીતો અર્થ તો એમ થાય કે હું મ્હારા પતિરાજના પિતાશ્રીને પરણવાની હતી પણ હાજર રહેલા અને ત્હેવા નિયમો તથા રૂઢીઓ બનાવનારાઓમાં ત્હેવી સ્હમજણ નથી હોતી. તેઓ માની લે છે કે મ્હારે એ વૃદ્ધ પુરૂષના છોકરા સાથે પરણવાનું છે. ત્યારબાદ મ્હારે કેટલું ઓધન જોઇએ તે તે લોકોએ નક્કી કર્યું. મ્હારે મ્હારૂં ઓધન કયા માણસને ત્યાં મુકવું તે પણ તે લોકોએ નક્કી કર્યું. ટુંકમાં જાણે મ્હારે તો કંઇ સબંધજ નથી તેમ મ્હારા નામે સઘળા દાવ તે લોકોએ અજમાવી દીધા! વિવાહ પછી બાદ વર્ષે હું પરણી પણ ચાર વર્ષે તો મ્હને મ્હારા ભવિષ્યના સ્વામીરાજનું સુંદર કે કુરૂપ પણ મુખડું જોવાનું મહા ભાગ્ય અચાનક પ્રાપ્ત થયું.

દ્વિતીય પ્રવેશ:—પતિરાજને સ્હમજાવી રાખ્યું હતું તેમ પોતે ત્હેમના પિતાશ્રીના કહ્યા પ્રમાણે વિવાહ પછી ચારવર્ષે બેચાર ન્યાતીલાઓ લઇ મ્હારા ગામ આવ્યા. રિવાજ શરૂઆતથી ચાલુજ હતો એટલે મ્હારા સિવાયના દરેક મ્હારા લાગતાં વળગતાને આ આગમનની ખબરજ હતી. પતિરાજને મ્હારા ઘેર તેડાવ્યા અને પછી જેવો ઉંબરે પગ મૂકયો કે તરતજ મ્હારી ભાભીએ ત્હેમના મને કે કમને પણ રહીને માન આપીને પગ ધોયા—પાણીથી અને દૂધથી. હું તો શરમની મારી ઉભી ઉભી જોઇજ રહી હતી. ભાભીશ્રીને મ્હારી સાથે જરીયે બનતું નહોતું છતાંયે લોકને બતાવવા ત્હેમણે પોતાના હૃદયને છેતરવાની હિંમત કરી. સાચ્ચે સાચ્ચો ઢોંગ બતાવી ત્હેમણે મ્હારા પતિરાજના પગ ધોઇ ઘરમાં બેસાડયા. વળી તે સમયે ત્હેમના હાથમાં કંઇ રૂપીયા પણ આપ્યા. આપણે લોક ધાર્મિક છતા વ્યવહારમાં એટલા બધા જડવાદી અને પૈસા પ્રેમી બની ગયા છીએ કે દરેક આચરણમાં પૈસાની ભેટ સિવાય અન્ય કાંઇ ધરી શકાયજ નહિ કેમ જાણે પતિરાજ પણ પૈસાના ભુખ્યા ન હોય ! !

તૃતીય પ્રવેશ:—ચાર તો દિવાળીઓ વિવાહ (સગાઇ) પછી વીતી ગઇ અને ચારે વખત મ્હારે ત્યાં મ્હારે માટે મ્હારા પતિરાજના ઘરેથી કંઇક ખાવાનુંજ આવતું રહ્યું હતું. હું ન્હાનું છોકરૂં એટલે મ્હને ખાવાથીજ સંતોષ થાય અને ખાવાનુંજ ભૂખ્યું હોઉં ત્હેવી મ્હારાં માબાપ અને સાસુસસરાની માની લીધેલી માન્યતા હતી. વિવાહ પછી ચાર વર્ષે હું મ્હોટી થઇ એટલે મ્હારે ત્યાં પહેલવહેલું દારૂખાનું આવ્યું. મ્હારી ઉમર અગીયાર વર્ષની હતી. દારૂખાના જેવી ક્ષુદ્ર અને વિનાશકારક વસ્તુઓ વાપરવાના ઉપદેશ અને પ્રોત્સાહન શિક્ષણ અને સ્હમજણ મ્હને અગીઆર વર્ષની વયથી શરૂ થયાં. છોકરી એટલે પટાવતની અને નાલાયકીની

કેવી ઠીંગણી હોય છે તે સહજ઼ું આપણી ન્યાતના આવા જંગલી અને હાનીકારક રિવાજોથી સ્પષ્ટ સ્હમજી શકાશે. મ્હારા પતિરાજમાં, મ્હારી સાસુમાં અને મ્હારા સસરામાં જરીયે અક્કલ હોત તો ત્હેનું દિગ્દર્શન આવી નઠારી રીતે તે ન કરત

ચતુર્થ પ્રવેશઃ—હવે મ્હારૂં વય પદરનું થયું. મ્હારા પિતાશ્રીએ પતિરાજના પિતાશ્રીને પત્ર પાઠવ્યો કે 'હું ઉમ્મર લાયક થઈ છું. મ્હારા લગ્ન હાલ ન કરવામાં આવે તો ત્હેમની આબરૂ જાય અને લોકોમાં તેઓ હલકા દેખાય—વગેરે." પતિરાજના પિતાશ્રીનો સ્હામો હકારમાં જવાબ આવી ગયો અને ત્યાર પછી એક એકની જન્મ-પત્રિકાઓ પોષ્ટદ્વારા રવાના થઈ. ગોરમહારાજના પાપી પેટનું ભરણ પોષણ કરતી તે પત્રિકાઓએ હમારા લગ્ન કોઈ પણ હિસાબે તરતજ ગોઠવાવ્યાં લગ્ન માટે તા. ૨૭ મી જુન ૧૯૨૦ નો દિવસ નક્કી થયો હતો. પતિરાજને તથા ત્હેમના પિતાશ્રીને મ્હારા પિતાશ્રીએ પરણવા આવવા મ્હારા તરફથી કંકોત્રી લખી મ્હને કંઈ પૂછવામાં નહોતું આવ્યું કયાંથી આવે? હમે ન્હાના છોકરાં એટલે ત્હેવું કયાંથી સ્હમજીએ? પણ હું પુછું કે ત્હેવી ન્હાની અણસ્હમજુ અવસ્થામાં હમારી ઉપર લગ્નનો તેટલો બધો ભાર લાદવાની સલાહ હમારા તે માબાપને કયા શાસ્ત્રે આપી? ખરૂં કહું તો પરણ્યા હમે ન કહેવાઈએ પણ મ્હારા અને મ્હારા પતિરાજના માબાપ પરણ્યા કહેવાય. પરણવાપણું હમે કંઈ જોયું નહોતું પણ પરણવા માટેની હમારી બધી જરૂરીઆત અને હમારી બધી ફરજો હમારા માબાપોએ ગોર મહારાજની મદદથી અદા કરી હતી. ત્હેમને તેમ કરવાની કોઈએ રજા નહોતી આપી. ફક્ત તે તો ત્હેમની આપખુદ સત્તાજ. હાલ હું છત્રીસ વર્ષની છું. છતાં હજીયે મ્હને ખબર નથી પડી કે લગ્ન જેવા એક ગંભીર જીવન પ્રશ્નની બાબતમાંયે આ લ્હણા માબાપ શાથી મ્હોટા થઈને બેસતા હશે?

આપણે લગ્ન સમયે નિર્જીવ અને અણસમજુ પુતળાં હોઈએ તો પછી ત્હેમને પરણાવવાનું કહ્યું કોણે? મગર હવે હું સ્વતંત્ર લેખિકા સ્વાર્થી લોકોમાં કોણ જાણે શાથી પરણાવવાના ત્હાવા લેવાની હાનત ફુટતી હશે!!

× × × ×

અંક ૨ જો.

પહેલું દૃશ્ય—લગ્નના બે દિવસજ બાકી હતા અને પતિરાજને **પીઠી** ચોળાવવાનો વખત થયો. બરાબર આંગણામાં પાટલો માંડી એક હજામને તૈયાર રાખી ત્હેમનાં પાંચેક સ્ત્રી સગાં-વ્હાલાં હાથમાં સળીઓ લઈ હાજર થયા. મસાલાવાળી વાટકીમાં એક પછી એક એમ પાંચે જણે આ લાકડાની પાતળી સળીઓ બોળી, વરત ૪ ઉભાં રહેવાનું આવ્યું. ત્હેમાંથી એક જણે જરા લલકાર્યું કે એકી સાથે પાંચે જણે તે સળીઓ પતિરાજને ઘસી અને આઘાં ખસી ગયાં. બાકી રહેલું પીઠી ચોળવાનું કામ ત્યાં તૈયાર રાખેલા હજામને કરવાનું હતું પતિરાજના મ્હાલવાળા તે નમુનેદાર સગાંવ્હાલાંઓ ભુલી ગયા કે પીઠી જેવું ઉત્તમ કર્મ હજામને સોંપાયજ નહિ કોઈ વખત આવો કંઈક અકસ્માત્ બનવાથી તે રીત ને રિવાજ તરીકે સ્વીકારી લેવાય નહિ. પીઠી ચોળાયા પછી ઘરમાં પતિરાજની સ્થીતિ એક બહારથી ઢોર મારીને આવેલા ભંગી કરતાંયે વધુ આકરી થઈ પડી. ઉંબરે અડકાય નહિ પાણીઆરે જવાય નહિ વસ્તુઓ સ્વચ્છ લેવાય નહિ વગેરે આવા બધા પાખંડોની વચ્ચે હવે આવી તે ૨૭ મી જુનની રાત્રિ પતિરાજના પિતાશ્રી જાન તેડી ગામના પાદરે આવ્યા. મ્હારા પિતાશ્રીએ ત્હેમનું સામૈયું કરી રહેવા મકાન આપ્યું. આનું નામ '**જાનીવાસો**'

આ જાનની એક મજા કહું. મ્હારા પતિરાજ કહેવાય તો 'વરરાજા' પણ ત્હેમને હક્ક હોય 'વર ગુલામ' કરતાંયે ઓછા, બાપા કહે ત્યારે ઘોડે ચ્હડવાનું, બાપા કહે ત્યારે પાન ચાવવાનું, બાપા કહે ત્યારે દહેરે દર્શન કરવા જવાનું, બાપા કહે ત્યારે પગમાંથી બુટ અને શરીરથી કોટ ટોપી ઉતારવાનાં, એકંદરે બાપા કહે ત્યારેજ

ત્હેમનાથી બન્યું થાય, જો કંઇક ચહેલું કર્યું અને ભુલ થઇ ગઇ તો ક્યાં તો શાસ્ત્રથી અયોગ્ય હોઇને પાપ લાગે કે પછી ન્યાતના લોકમાં વાતો કર્યાથી તે વર ગુલામને આબરૂનેટ પાળવી પડે. પરણ્યે મ્હને દશ વર્ષ થઇ ગયા છતા સમજું મ્હને જોવું ને ત્હેવું યાદ છે કે ઘણીખરી બાબત તો વધુંવી શકીશ સાચેયું વગેરે થઇ રહ્યા પછી હું ભિખારી છું ત્હેવું ભાન કરાવવા મ્હને વરરાજાને ત્યાં વરણાગી માગવા મ્હારા બાપાજીએ મોકલી. પતિરાજ તરફથી પ્રથમથીજ ગોઠવી રાખેલું હોય તેમ મ્હારા પર દયા દાન કરતા હોય તેમ, પતિરાજના ઘરમા હવે પછી કેદ નખાવી, કામ કરનારી પરતંત્ર બેડી બાંધવાની હોય તેમ–મ્હને ચાર સાડીઓ આપવામાં આવી. પત્તુ, વસંત, વરણાગી અને મંગલ આ ભિક્ષા લઇ હું મ્હારા ઘેર મ્હારાં વ્હાલુડાઓ સહિત પાછી આવી ત્યારે વળી પાછા મ્હારા પતિરાજનાં પિતાશ્રી અને અન્ય સગા વ્હાલા મ્હને ગહલું મ્હાલાવવા આવ્યા.

હવે અહિંથી મ્હારી કીંમતી તરીકેની તમામ ક્રિયાઓ શરૂ થઇ ચૂકી હતી મ્હને ત્હેની માફક શણગારે, મ્હને ત્હેની માફક રહમજાવે અને મ્હને ત્હેની માફક ખવડાવે. વર ગુલામ ઘોડીવાળે ચડી હમારે ઘેર મ્હને પરણવા આવ્યા. ઘોડેથી ઉતારી મ્હારી તેજ ભાભીએ ત્હેમને પોંકવા પોંકવાનો અર્થ કોઇને ખબર નહોતી. મ્હારી ભાભી જ્યારે પરણી અને મ્હારા ભાઇને જેવી રીતે ત્હેની બાએ પોંકવા હશે ત્હેવી રીતે–બરાબર ત્હેવી રીતે રવૈયું, સાંબેલું વગેરે લઇ મ્હારા પતિરાજને પોંક્યા. હા–એક વાત તો ભુલી ગઇ, ઘોડા પરથી તે વર ગુલામ ઉતર્યા કે તરતજ કોઇની નજર ન લાગે તે માટે કહો કે પછી કોણ જાણે ક્યા કારણથી પણ ત્હેમની પાસે કોડીયામા ડાગર મૂકી કોડીયું પગ વડે ફોડાવ્યું, આખરે તે વરગુલામ ચોરીમાં બેઠા. મ્હારા માટે બધી તૈયારીઓ ઘરમાં ચાલી રહી હતી. હું ફક્ત શરમાતી શરમાતી બહારની આ બધી વિચિત્ર ક્રિયાઓ નિહાળી રહી હતી.

દ્રશ્ય બીજું—ગોર મહારાજના થોડા બબડ બગડ પછી મ્હારા મામા મ્હને કીંમતીની માફક ઉંચકી લાવ્યા અને મ્હારા ભવિષ્યના પતિરાજની સાથે બાજઠ પર બેસાડી. ત્હમને હું વિનંતી કરીશ કે તમે વિચાર કરજો—પતિરાજના મનમાં કંઇ વિચારજ આવે ત્હેવી ત્હેમની સ્થીતિજ નહોતી. ખરૂં પુછાવો તો પતિરાજના પિતાશ્રીના મનમાં કોઇ આબાદ વિચારો આવ્યા હશે. પતિરાજના પિતાશ્રી, પતિરાજના સગા વ્હાલાઓ, મ્હારાં પિતાશ્રી, મ્હારા સગાંવ્હાલાઓ મ્હારા ભવિષ્યના સુખની કલ્પનાઓ આવી હશે ! અને ત્હેમની તે કલ્પનાની ઇમારત ચણાયેલી પણ ગુલામગીરીનાજ પાયા ઉપર. હું પતિરાજ સાથે બેઠી. લગભગ કલાકેક પછી ગોર મહારાજે કહ્યું "બોલો પરિગૃહ્ણામિ" પતિરાજની ગુંચવણ પરથી હું સ્પષ્ટ પારખી શકી કે ત્હેમને ત્હેનો અર્થ નહોતો આવડતો. મ્હને તો બેસાડેલી બરાબર છાતી સુધી ઘુંઘટો તણાવીને છતાયે હું તો મ્હારે જોવાનુ કોઇપણ હિસાબે જોતીજ 'પરિગૃહ્ણામિ' નો અર્થ તો મ્હને પણ ખબર નહોતી ગોર મહારાજે ફરી કહ્યું "ભાઇ બોલો પરિગૃહ્ણામિ" પતિરાજ બોલ્યા. ખબર નહોતી કે તે શબ્દથી ત્હેમણે કયો ભાર ઉંચકી લીધો. આમા પણ નર્યો અજ્ઞાનતા અને ઢોંગનુજ પ્રદર્શન" આવીજ રીતે હસ્તમેળાપ, મંગળ ફેરા, કન્યાદાન વગેરે થઇ રહ્યા પછી હમારૂં આ પરણવાનુ ફારસ જોતા પેલા સગા વ્હાલાઓમાંથી પાંચ જણ મ્હને "સૌભાગ્યવંતા" કહેવા આવ્યા. એક તો ખરેખર મ્હારા ઘરનીજ દુશ્મન હતી પણ તે બિચારી શું કરે ? સ્હમજતી હતી કે "સૌભાગ્યવંતા" કહેવુ એ એક ઢોંગ છે—લોકને છેતરવાનો સમાજ તરફથી ખુલ્લો મુકાયેલો એક રસ્તો છે. તે તો માનતી હતી કે ભલેને આ સૌભાગ્યવંતી બીજેજ દિવસે રંડાય પણ આવી માન્યતાએ ધરાવીને, આવા શાપોએ મનમાં દાબીને ફક્ત મ્હોયેથી સારૂ બોલીને સમાજમાં આબરૂ કમાવાતી હોય તો શા માટે ન કમાવવી ? તે

પણ "સૌભાગ્યવંતા" કાનમા કહી ગઈ. મ્હને યાદ છે કે તે પાછળથી ખૂબ હસી–જાણે મ્હને ડહોળ બનાવવામાં વિજય પામી હોય તેમ સઘળાં સગાંવ્હાલાં હસ્યા–હું જોઇજ રહેલી. મ્હને તે વખતે કંઇ ખબર નહોતી પણ હવે ખબર પડેલી છે કે બધાએ મ્હને મૂર્ખી બનાવી હોવી જોઇએ.

આ પછી મ્હારા પતિરાજ મ્હારા ગોત્રજના દર્શને આવ્યા. ત્હેમના વ્હાલેરાંઓએ કહી રાખેલું કે "પગે લાગશો તો ઘરમા બાયડીનુ ચાલશે." અને ખરૂં કહું છુ કે પતિરાજ–બાપલા પતિરાજ–પગે ન લાગ્યા ત્હેમણે માની લીધું કે ત્યાર પછી ઘરમા ત્હેમનુજ રાજ્ય ચાલશે, સત્તા-શાહીનો અમલ થશે. સઘળી ક્રિયા–પ્રથમ દિવસે ચોરીમાં કરાય છે તેટલી–પુરી થઇ અને હમે દહેરે દર્શન કરી જાનીવાસે ગયાં. **પતિરાજની** બ્હેન બારણું રોકી ઉભી હતી. અહિં યાદ આવે છે કે આવીજ રીતે તે બ્હેને પતિ-રાજને પરણવા આવતા પહેલા પણ ઘોડાની લગામ પકડી રોકી રાખ્યા હતા પૈસા મળ્યે લગામ છોડી દીધેલી. અહિ બ્હેનને ફરી લોભ લાગ્યો.

"ચાલ જવાદે" પતિરાજે માગણી કરી

"ના, નહિ, કેટલા આપશો ?" બ્હેને પોતાની વાસના સ્પષ્ટ કરી,

"તું બોલને ?"

"દશ લઇશ." બિચારી બ્હેન પણ શુ કરે ? તેવી આવી રૂઢીઓની ગુલામડી હતીને ?

"ના બે ત્રણ આપીશ."

"ના દશજ જોઇએ '

"મ્હારી મરજીમા આવે તેટલા આપુ. હુ તો ન પણ આપી શકુ."

'તો નહિ જવા દઉં." બ્હેન મક્કમ હતી.

હમે બન્ને ઉભા રહ્યા. મ્હને પરણીને રાખ-વાની શક્તિ ધરાવનાર આ સ્વામિરાજ શરૂઆતમાજ અશક્ત નીવડયા રાતના ત્રણ ચાર વાગેલા હશે મ્હારા પગમાથી પાણી ઉતર્યા. હુ ખરેખર રડી પણ બ્હેને અંદર ન જવા દીધા પતિરાજ બહાદૂરની ઘરમાં જવાની હિંમત ન ચાલી. હું એમ પૂછું છું કે તો પછી આ મ્હારા દેવ મ્હને ત્હેમની બાના જુલમમાથી ત્હેમના–પિતાશ્રીના જુલમમાથી કેવી રીતે છોડાવવાના હતા ? ના–પણ તે બિચારા શું કરે ! તે પણ ક્યા પરણ્યા હતા ? ત્હેમને યે પરણાવવામાજ આવતા હતાને ! ગમે તેમ કરી આખરે પતિરાજના પિતાશ્રીના આવ્યા પછી હમને ઘરમા જવાનુ સદ્ભાગ્ય અર્ધી કલાકે પ્રાપ્ત થયુ.

દૃશ્ય ત્રીજું:—ઓરડામા ગોઠવાયેલા બે પાટલા ઉપર હમે બન્ને ગોર મહારાજના અને સગા હિતેચ્છુ (?) ઓના કહેવા પ્રમાણે બેસી ગયા. એક થાળીમાં કંકુવાળુ પાણી તૈયાર રાખવામાં આવ્યુ હતુ હમને **એકીબેકીની** રમત રમાડ વામા આવી અને નશીબ સજોગે ત્હેમાં તો હું જીતી. હાજર રહેલા બૂમ પાડી ઉઠ્યા કે ઘરમાં હું બળવાન થવાની છું. બીજી રમત **'સોપારી અને રૂપીઆ'**ની હતી ગોરમહારાજ પોતે આ બધું થાળીમા નાખીદે અને હમારે બેમાથી એક જણે રૂપીઆ શોધી ગોર મહારાજને આપી દેવાનો આ રમતમા પતિરાજને જોર બતાવવાનું હોય તેમ શૌર્ય ચઢ્યું દરેક વખતે મ્હારી આગળી દાબી દાબીને પણ તે રૂપીઓ લઇ લેતા. મ્હને તકરાર કરવાનું મન તો થાય પણ મ્હારાથી કંઇ ન બોલાય ત્હેવો સખ્ય અનુલ્લંઘનીય નિયમ હતો આવી રમતો પછી આવી **મીંઢળ ગાંઠ છોડવણી**

પરણતા પહેલા હમને જે મીંઢલ બધાયેલું હોય છે ત્હેની ગાઠ અહિ પ્રથમ હાલેજ છોડવાની. પતિરાજની ગાઠ મજબુત હતી. હું છોડી શકી. મ્હારી ગાઠ ઢીલી હતી. પતિરાજ ન છોડી શકયા. હુ અર્થ સમજી શકી હાજર રહેલા દરેક અક્ક-લના દરિયાને પણ આની સમજ સુદ્ધા નહોતી, અર્થ એમ થતો હતો કે હમારા દાંપત્ય જીવનમા હમારે એકમેકના ઘણાએ સંકટ ટાળવા પડશે. પતિરાજના જબ્બર સંકટો હું ટાળી શકીશ જ્યારે પતિરાજ મ્હાની હલકી ગુંચો પણ ઉકેલી નહિ શકે. અને ખરેખર, આજે પરણ્યા પછી

મ્હને દશ વર્ષ વીતી ગયા તે સત્યજ નીવડ્યું છે. હું મ્હારા નશીબનો વાંક નથી ગણતી. માબાપનો ગણું છું. મ્હારો વાંક મ્હારા કાર્યકર્તૃત્વમાંજ હોઈ શકે—અન્યમાં નહિ. મારૂં આખુ નશીબ મ્હારે ફેરવવું હોય તો હું આજે ફેરવી શકું છું. પતિરાજ મ્હારે યોગ્ય નહિ થાય તો ત્હેમને યોગ્ય બનાવવાને હું પ્રયત્ન કરીશ, સફળ નહિ થાઉં તો તે પ્રયત્નમાંજ મ્હારૂં જીવન વીતાવીશ–પુરૂં કરીશ. 'મીંઢળ ગાંઠ છોડવી' પુરી થયા પછી હમે ઉભાં થયાં. છુટાં પડયાં. પરણતી વખતે જે છેડા બંધાયા હતા તે અહિં પ્રથમજ છુટયા. હું અન્ય સ્ત્રીઓ ભેગી ભળી ગઈ અને પતિરાજ પોતાના પુરૂષો સાથે મળી ગયા. તે રાત્રે મ્હને બેજ કલાકની નિદ્રા મળી હશે.

દૃશ્ય ચોથું—તા. ૨૮ મી જુન સ્હવારે મ્હારા ઘરના સગા વ્હાલાં મ્હારી બ્હેન, ભાભી વગેરે છુપેલ લઈ જાનીવાસે મ્હારા માથામાં તેલ નાખવા આવ્યા ત્હેના બદલામા મ્હારા છેડે જે આઠ આના બાંધેલા હતા તે તેઓ લઈ ગયા. આનો અર્થ તો હું એમ કરૂં છું કે મ્હને બાયજણો તેલ નાખવા આવે અને મજુરીના થોડા પૈસા લઈ જાય તેમ મ્હારાં સગા વ્હાલાઓએ કર્યું. તેલ નાખવા આવે ત્હેનો મૂળ અર્થ તો એમ હોવો જોઈએ કે હું લગ્ન પછી જેને ત્યાં અને જે માણસો વચ્ચે રહેવાની છું ત્હેને અને ત્હેમને મ્હારી તેલ નાખવાની પદ્ધતિની બાબતમાં મ્હોટાઈ દેખાવવી, પણ આવા વર્તનથી કંઈ અર્થ સર્યો નહિ. આ બધું વીતી ગયા પછી લગભગ બાર વાગે મ્હારા પતિરાજના પિતાશ્રી અને માતુશ્રીએ મ્હારા પતિરાજને કહ્યુ કે "હવે વહુને લઈ પંચોકલુ જમવા જવાનુ છે।" હું તો ત્હેમની સાથે ગઈ. પ્રથમ કોળીએ મ્હને શીખવવામા આવ્યું હતુ તેમ હું ત્હેમના હાથને અડકી. ત્હેમણે તો પૈસા કહાડી રાખેલા હતા, હું પૈસાની માગનારી એક ભૂખી ભિખારણ છું, તેમ અર્થ દાખવતા મ્હને મ્હારા પતિરાજે થોડા પૈસા આપ્યા. પછી જમવાનુ શરૂ થયું. નવા પતિરાજની મશ્કરી થતાં થતા જમવાનું પુરૂં પણ થઈ ગયું. હવે સ્હેજે હમારે ત્યાં જમણ હતું. આજ પતિરાજના પિતાશ્રી તરફથી થતી હતી, પતિરાજના સગાં વ્હાલાં મ્હને જ્યાં તેડે ત્યાં તે ન્યાતના જમણ વખતે મ્હારે જવાનું અને દરેક જણ મ્હને કંઈક પૈસા આપે. બીજો કંઈ એવો રિવાજ છે કે તે કન્યા ખુલ્લે માથે ખુરશીમા બેસે અને જે બોલાવે ત્હેની પાસે જાય તથા પૈસા લઈ આવે. ટુંકમાં પૈસા પૈસા સિવાય બીજી વાતજ નહોતી. સ્ત્રીની પરતંત્રતા અખંડ રાખવા માંગતા મ્હારી ન્યાતના આ બધા ડાહ્યાઓને હું એક વખત કહી નાખું કે તમે ગમે તેમ કરો પણ સ્ત્રી પૈસા બાબતમાં કદી સ્વતંત્ર નથી થવાની, ત્હેની ભવિષ્યવાણી દર્શાવતા આ રિવાજો અને તે રિવાજોને ટકાવી રાખવા માગતા મ્હારી ન્યાતના તે ડાહ્યાઓને હું એક વખત કહી નાંખું કે "હવે તો આવા કઢંગા રિવાજો બંધ કરો."

દૃશ્ય પાંચમું:—તા. ૨૯ મી જુન 'વધાઈ'નો દિવસ કહેવાય. મ્હારી બ્હેન મ્હારા પતિરાજના બુટ સંતાડવા ગઈ કાલે ભુલી ગયેલી તેથી આજે જ્યારે હમે પંચોકલું જમવા હમારે ઘેર આવ્યાં ત્યારે ખરેખર પૈસા લેવાની લાલચથી ત્હેણે બુટ સંતાડયા રિવાજ પ્રમાણે પતિરાજ આઠ આના આપવા જેટલા ઉદાર હતા. આ સ્ત્રી જાતની રૂઢી હશે તે હજુએ મ્હને સમજાયું નથી. જમ્યા પછી બપોરે મ્હારે ઘેરથી મ્હારા સગા વ્હાલાંઓ કંકુવાળી થાળી લઈ જાનીવાસે આવ્યા. થાળીમાંથી બીજી થાળીમા કંકુનું પાણી નાખ્યું. અને બંને પક્ષો (મ્હારા અને મ્હારા પતિરાજના) રમવા લાગ્યા. થાળી મ્હારો પક્ષ જીતી ગયો. ગાંડા માણસોની માફક હાજર રહેલા લોકોએ વાહવાહ પણ બોલાવી. હમારે ત્યાં હલકી વર્ણના લોકો જે ધમાલ અને ધીંગામસ્તી કરે છે, ત્હેના કરતાયે જરી વધુ તોફાન મ્હારા અને મ્હારા પતિરાજના ભૈરાંઓએ કર્યું હશે.

હવે રાત્રે 'ઝહેરામણી'નો સમય થયો. વરગુલાબ સગાવ્હાલા સાથે મ્હારે માંડવે આવી પહોંચ્યા. થોડી વારે મ્હને પણ ત્હેમની જોડે પધરાવવામાં

સુધી. ગોરમહારાજના જરીક ભાષણ પછી 'પહેરામણી' નજર આગળ મુકાવી. પાઘડી, ધોતીયું, ચીર, ઘરચોળું અને બેહાં સિવાય ત્હેમાં કંઇ નહોતું. ખરૂં કહું તો મ્હારા પિતાશ્રીને ભાનજ નહોતું કે હું ક્યાં પરણું છું !! કોની સાથે ક્યાં પ્રદેશમાં રહેવાની છું !! પહેરામણી વખતે મ્હારા ભોજાઇઓ એક થાળીમાં કંકુનું પાણી અને સોપારી લઇ હાજર ઉભા રહ્યા હતા. વર ગુલામને સુદ્ધાં, દરેકની પીઠ પર થાપા મારવાનો ન તોડી શકાય ત્હેવો તે રિવાજ પાળી રહ્યા હતા. કપડા હાથે કરીને સૌ કોઇ ખરાબ પહેરીનેજ આવતું. મશાલચીઓના લગનમાં હજી પણ આવી કેટલીક બાબતો મોજુદ છે. હમારેયે આવું ત્હેમની પાસેથી શીખવાનું રહ્યું ભણી મ્હને પરણતી વખતે ઘણો આઘાત થયો હતો. હું શું કરૂં ? ત્યારબાદ આ સરસામાન એક ગાડામાં ગોઠવી હમને લઇ મ્હારા નવાં સગાં વ્હાલાંઓને મ્હારા માતા પિતાએ વિદાય આપી. જાનીવાસે પહોંચી હું બધાને રડી પ્રમાણે મને કે કમને પગે લાગી. બીજે દિવસે હમને સઘળાને ગામમાંથી રજા આપવામાં આવી. હું ઘણુંયે કહેવાનું ભુલી ગઇ છું. આંસુ પતિરાજનાં નાક તાણ્યું, લગ્ન સમયે સ્ત્રીઓ ખરાબમાં ખરાબ ફટાણાં ગાઇ સભળાવે વગેરે, પણ આટલું બધું વર્ણવ્યું, ત્હેમાં તેટલાનો શો હિસાબ ? ત્યારે ચાલો, હવે કહી દઉં કે હમારા માબાપોએ આ બધા ખેલ કરી હમને એક વખત સદાને માટે પરણાવી દીધા.

× × × ×

અંક ૩ જો.

પ્રથમ દૃશ્ય—દિવાળીનું પ્રથમ આણું અને ઘરમાં નવી વહુ. મ્હને બહુ બતાવાય, ખવડાવાય અને રમાડાય, પતિરાજનું મ્હોં મ્હને કોઇપણ હિસાબે પણ ત્યાંજ બતાવવાનો પ્રયત્ન થાય. મ્હને સાચી અને ખુશી રાખવા ઉપર ઉપરના ઢોંગ ઘણો કરવામાં આવે. ઘરમાં મ્હારે ફરવાનું તે મ્હોં ઢંકાઇ રહે ત્હેવી રીતે 'લાજ' કહાડીને. હું ઘણીયે વખત બારણાં સાથે કે કોઇ બીજા સાથે અથડાતી પણ 'લાજ' નહીં કે આંખો મ્હાગથી ન કઢાય. ન્યાતનો કહો કે પછી ઘરનો કહો પણ તે એક જબરજસ્ત કાયદો હતો. પ્રભુને હું તો પ્રાર્થું કે ત્હેવા કાયદાઓ તોડવાનું મ્હારા જેવી બ્હેનોને શક્તિ. બળ પ્રાપ્ત થાઓ ! કોઇ વચ્ચમાં આવે તો ત્હેમને ઉથલાવી પાડવાની મ્હારી બ્હેનોને તાકાત આપો ! હું વિવાહીત થઇ ત્યારની મ્હારા ઘરમાં લાજ બાબત વાતચીત ચાલતી હતી. મુખ્ય કારણ તો એમ સમજી શકી કે સ્ત્રી લાજ ન કહાડે તો બગડી જાય, પુરૂષો લાલચોમાં ત્હેમને લપટાવી જાય ને ત્હેમની આબરૂ લુટી લે' હું તે વખતે તો જવાબ આપવાની શક્તિ નહોતી ધરાવતી પણ અત્યારે કહી શકું કે ત્હેમાં શરમાવવાનું પુરૂષને હોય, સ્ત્રીને નહિ. સ્ત્રીમાં અવિશ્વાસ પ્રથમ પુરૂષે મુક્યો કે પછી સ્ત્રીને વિશ્વાસુ થવાનું મન થતું હોય ત્હોયે તે ન થાય પણ બીજું કહું કે મ્હારી ન્યાતના આવા લગનમાં જ્યાં સ્ત્રી અને પુરૂષ અન્યોન્યની ઓળખાણ વિના ગમે ત્યાંથી પકડી લાવવામાં આવે છે ત્યાં એક બીજા પર શરૂઆતથી વિશ્વાસ કેવી રીતે હોય ? પુરૂષને સ્ત્રી પર વિશ્વાસ નથી માટે સ્ત્રીએ ઘુમટો તાણવો તો પછી જ્યારે સ્ત્રીને પુરૂષપર વિશ્વાસ ન હોય ત્યારે પુરૂષે શું કરવું ? દિવાળીનો લગભગ એક માસ મ્હેં પતિરાજને ત્યાં ગાળ્યો. પછી મ્હારા ભાઇ આવી મ્હને પુતળીની માફક ઉપાડી ગયા. સાથે સાથે કહેવા દો કે આ આખા મહિનામાં મ્હારે મ્હારા પોતાના પતિરાજ સાથે રાત્રે મુલાકાત થઇજ નથી.

દ્વિતીય દૃશ્ય—ઉનાળો હતો. પતિરાજના ગામમાં **કેરીની મોસમ** હતી. નવી વહુને તેડવાનો રિવાજ એટલે મ્હને પણ તેડાવી. મ્હેં દિવાળીમાં શું કર્યું તે ભાભીશ્રીને ઘેર કહેલું તેથી અત્યારે મ્હારે શું કરવું તે ભાભીશ્રીએ મ્હને શીખામણ આપી. મધુ ચંદ્રીકાની પ્રથમ

રાત્રિએ મ્હારે કંઇ પણ કરતાં પહેલાં પતિરાજ પાસે પૈસા માગવા, એવી મ્હને સલાહ હતી. માબાપે શીખવેલી તે પ્રથમ પ્રણય રાત્રિ આવી. મ્હેં તો શીખવ્યા જેમ પૈસાની માગણી કરી, પતિરાજ પૈસા આપી મ્હને શું કરશે ત્હેનું જરીકે ખ્યાલ મ્હને નહોતું. અને કોઇએ મ્હને તે ખુલ્લા શબ્દોમાં કહેલું પણ નહિ પતિરાજે તો પૈસા આપ્યા અને તરતજ ઓરડીમાં બળતું કોડીયું હોલવવા પ્રયત્ન કર્યો હું શરમાળ હતી મ્હેં ના કહ્યું. હમે છાના છાનાં કોઇ ન સાંભળે તેમ વાત કરતા રહ્યા અને છેવટે હમારૂં લગ્નદાન પણ શરૂ થઇ ચૂક્યું. તે દિવસના પતિરાજના વર્તન માટે અત્યારે હું દેવાય તેટલી ગાળો 'પતિરાજને દઇ શકું' છું. બે મહિના આ મોસમમાં હું મ્હને જમાડવામાં આવેલા સાસરામાં રહી. આ વખતે પણ બાઇ આવી મ્હને તેડી ગયા પતિરાજ વિષયનો કીડો હતો તે કહેવાનું હું ન ભૂલું તો બહુ સારૂં

તૃતીય દૃશ્યઃ—પરણે દોઢ વર્ષ વીતી ગયું. ફરીથી દિવાળી આવી, મ્હને ન તેડાવી, હું આ વખતે મ્હારા પિતાશ્રીને ત્યાં રહી બાપને ઘેર પણ મ્હારે ડબલ દુઃખ ભોગવવાનું હતું પરણાવીને પોતાની સઘળી ફરજ પૂરી થઇ ગયેલી સમજનાર મ્હારા ઘરના ડાહ્યાઓને હું શા શા શ્રાપ આપું ? ઢીંગલીની માફક પરણાવી, ઢીંગલી તરીકે બરાબર મ્હોટી કરી. મ્હને અક્કલ આપી સ્વતંત્ર કેમ નહિ કરતા હોય ? શા માટે મ્હારૂં મ્હાણ ભરદરીયે બાળવયમાંજ મૂકી દેતા હશે ? ઘરમાં મ્હારી ભાભીએ, મ્હારી બ્હેને વગેરેએ ટોણાં અને મ્હેણાં મારવા શરૂ કર્યાં. "તું તો અહિં ભારરૂપ પડી પડી નકામી વધી રહી છે" વગેરે ન કહેવાય ત્હેવા શબ્દો મ્હને કહેવામાં આવ્યા. પતિરાજ આ વખતે પોતાના આજીવિકા અર્થે નીકળ્યા હતા, મ્હારા ઘેર પણ આવ્યા. મ્હેં ચોરી છુપકીદીથી પણ ત્હેમની સાથે એકાંત મેળવ્યું. મ્હારૂં દુઃખ કહ્યું. પણ તે આવતા ભણકીન બોલ્યા—"હું શું કરૂં ? મ્હારા હાથમાં શું છે ?!! મ્હારે ફક્ત એટલુંજ પૂછવાનું બાકી રહી ગયું કે "ત્યારે તમ્હારા હાથમાં કંઇ નથી તો શું......મારવા પરણ્યા ?" પણ મ્હારી હિંમત ન ચાલી. મ્હેં વાદ મ્હારાં સઘળાં સાંભળનારાઓનેજ કહાડયો મ્હારાં કયા સુખપર તેઓ રાજી થતા હશે !

ચતુર્થ દૃશ્યઃ—બરાબર સવાબે વર્ષે ૧૯૨૦ ના ઓગસ્ટ માસમાં હમે હમારૂં પરતંત્ર દાંપત્ય જીવન શરૂ કર્યું આ પછી મ્હારે ઘેર જવાય નહિ, કેદીની માફક તાબે થઇને રહેવાનું, બહુ બોલવાનું નહિ અને સાસુને—એ કાળ જેવી સાસુને—સંતોષવા રાત દિવસ કામ કરેજ રહેવાનું. કોઇપણ હિસાબે જુવાનીમાં પણ ઘડપણ આવી બેઠેલી. મ્હારા પતિરાજની તે માતાને મ્હારે પૂર્ણ વિસામો આપવાનોજ. હા એક વાત કહેવાનું ભૂલી ગઇ. જ્યારે હમે ગઇ હોળીની મોસમમાં મળ્યા ત્યારે મ્હારા પતિરાજ મ્હારી સાથે રાત્રે બહુ ખરાબ રીતે વર્ત્યા હતા હું આ વખતે આવી ત્યારે મ્હારે થઇ ગયેલી એક દીકરી સાથે આવી. હમારી ન્યાતમાં માતા થવાની ઉમર સોળ વર્ષની વખતે હોતીજ નથી અને કોઇ હોય છે તો ત્હેને વાંઝણી કહેતા હમારી ન્યાત ચૂકતી પણ નથી. દિકરી આવ્યા પછી થોડાજ દિવસે મરી ગઇ ક્યાંથી જીવે ? હું તો મરી ગઇ ત્હેમાંજ આનંદ માનું છું. બિચારીનું આખું જીવન મારા જેવું અને રોગીષ્ટ બાળ તેના કરતા ત્હેવું જીવન ત્હેને ભોગવવુંજ ન પડ્યું તે કેવું સારૂં ? ન્હાના છોકરાઓ પતિરાજ અને પત્ની દેવી થયા પછી માબાપ થવા હવે ઓછી ઇચ્છા ધરાવશો કે ? દિકરી થઇ ગયા પછી મ્હારી ખરાબ થઇ ગયેલી તબીયતનીયે પરવા તે અંધ પતિરાજને નહોતી એ પતિરાજજી શાના ? માબાપે માન્યા એટલે મ્હેં માન્યા ! મા બાપે મનાવ્યા એટલે મ્હેં કબુલ કર્યા ? મ્હારા અણુસમજુ મગજ પર ખોટી અસર પડી અને

મ્હારા મ્હાના શરીરનો ઉપયોગ કર્યો. વાચક! આ સવાલો વિચારવા હું તમનેજ સોંપું છું. મ્હેં આ આલમમાં મ્હારૂં લગ્ન પછી આઠી વર્ષ સુખીનું જીવન કદી સંભાળ્યું. કંઈક શીખાય તો શીખજો. નજરમાં ઉતરે તો ઉતારજો. આ બાપને ગાળો દીધે કંઈ ત્હારો દહાડો વળિ વળે.

કરમ કથની.

કરી વકહીરમા જેવું, મરી તાબીરમા તેવું,
નહિ જાણે કશુ એવું, કરમની એજ કહાણી છે—૧
વસો જઈ કુમરી કે ઘર, પછી જાઓ સમુદ્રે પણ,
મેળવશો ભાગ્યના જેવું, કરમની એજ કહાણી છે—૨
કદી કોઈ લાખ મેળવશો, કદી કોઈ પાટમાં પડશો,
રહેશે કર્મના જેવું, કરમની એજ કહાણી છે—૩
તમો જો પાપ આદરશો, વળી જો સત્ય પરહરશો,
જશો તમ નીચના પંથે, કરમની એજ કહાણી છે—૪
વિચારી કર્મની રીતો, સદ્ધર્મે ક્રોધને જીતો,
તરત તમ માન મેળવશો, કરમની એજ કહાણી છે—૫
કર્મથી રામજી વનમા, રોળાયો રાવણો પળમા,
હરાએ પાંડવો વનમા, કરમની એજ કહાણી છે—૬
રૂષભ ને વિર જીનદે, સહ્યા ઉપસર્ગ આનંદે,
કરમથી મોક્ષ મોહનને, કરમની એજ કહાણી છે—૭

મોહનલાલ મથુરાદાસ શાહ—કપડવંજ.

ગુજરાતી

જૈનવ્રતકથાસંગ્રહ

પુસ્તકાકાર. કિં. દશ આના.

મેનેજર દિ. જૈન પુસ્તકાલય—સુરત.

નથી.

નખરાળી નારી પાસે કોણ પરવશ નથી થયું !
કામદેવના વિષય બાણ પાસે કોણ નાચ્યું નથી !
ધનવંત થયા પછી કોણે અભિમાન નથી કર્યો !
સ્ત્રીઓ સાથે રહ્યા છતાં, કોણ વિષયવશ નથી થયું !
દ્રવ્યની લાલસા વડે, કોણે કુકર્મ નથી કર્યો !
કનક કામીનિ અને સુખ ભોગ પાસે, કોણ લાલ-
સાવંત નથી થયું !
કોણ શીલભ્રષ્ટ નથી થયું ?
અન્યાયના વર્તનથી શિક્ષા કોણે નથી ભોગવી !
સ્ત્રી તથા હઠથી કુટુંબમા કંકાસ કોણે નથી કર્યો !
સ્વાર્થ સાધનાના ટાઇમે હિંસા કોણે નથી કરી !
કુળવાન ગણાયા પછી, ગાય જેવી દિકરીને કોણે
નથી રીબાવી ?
વૃદ્ધ ઉમરે કોને બાળા સ્ત્રી પરણવાનું દિલ નથી થયું !
પર સ્ત્રીના મુખ, સ્તન, નયન સામે કોણે મીટ
નથી માંડી !
હિતની શિખામણમા કોણ બહેરો નથી થયો !
અમુલ્ય ઉપદેશોમાં કોને ઝોકાં નથી આવ્યા ?
નાટક, અને નાચના જલસા જોવા કોણ રાજી નથી !
મિત્રની મહેરબાની મેળવી, મિત્ર ધર્મ કોણે
છોડયો નથી !
બાળપણામા પુત્રના વિવાહ કે લગ્ન કરી, કોણ
પસ્તાયું નથી ?
ભગવદ્ ભજનમા કોને આળસ નથી આવ્યું ?

એટલાથી જે પર હોય, તે આવો મારા હૃદય-મંદિરમા બિરાજો, હું તેમનું સ્વાગત કરૂં-પૂજન કરૂં, ગુણ ગાઉં અને રાજી થાઉં.

એવા વીર પુરૂષો ઘેરેઘેર ઉત્પન્ન થઇ ભારત માતાના સ્વાતંત્ર્ય યુદ્ધમા સહકાર આપે કે, એજ અંતરની આશીષ છે—મનની ઉમેદ છે—જીવનની લ્હાણ છે. ૐ શાંતિઃ શાંતિ.

લી. નથીથી પર રહેવાને ઉત્સુક-
મોહનલાલ મથુરાદાસ શાહ—કપડવંજ.

રત્ન—માળ.

દોહરા.

પર ધન પત્થર જાણીએ, પર સ્ત્રી માત સમાન,
પર ઉપકારે પ્રાણીઓ, પૂજાએ જગમાય.

દાન કરે ધન શોભતું, તીર્થ કરે પગ તેમ,
ઘર શોભે આતિથ્યથી, દેહ સદ્ગુણે જેમ.

સિદ્ધિમાં સેવા વધે, વધે વધારી વાત,
દોલતમા તો દાન છે, અવગુણમાં અભિમાન.

કો દુઃખી મન દુઃખથી, વળી દુખી દિન રાત,
જર જોરૂનું દુઃખ ત્યમ, સળગાવે સંસાર

દુઃખ દુઃખ ને દુઃખથી, પૂર્ણ ભર્યો સંસાર,
દુઃખી જન દેખાય છે, દુઃખી દેવ અવતાર.

સંસારે સુખ છે નહિ, ભર્યું દુખ ને દુઃખ,
સિંધુ સુતા શરણે છતાં, ભાગી ન કોઇની ભુખ.

દુખ ભર્યું દરિયા સમુ, દારૂણ દ્રવ્યનું દુઃખ,
સંતોષે જે આદમી, પામે નિશ્ચિત સુખ.

પુત્ર પૌત્ર કલત્ર ને, નાર ભ્રાત ને યાર,
ભગિની માતા બાપ પણ, નિશ્ચયથી જાનાર.

સાથે ન આવે સ્નેહી જન, સગા અને સૌ સાથ,
આવે નિશ્ચે દાન જે, કર્યું હોય છે હાથ.

મહેલ ઝરૂખા માળીયા, દામ અને દોલત,
અંત ન આવે એક પણ, માટીમા મળનાર.

દાન કર્મ ને પુણ્ય જે, પાપ અને વળી ધર્મ,
સાથે આવે સ્નેહી સમ, કર્યો હોય જે કર્મ.

દ્વાર લગી દારા હશે, ચોટા તક ચિત્ત ચહાય,
સમશાને સબંધી જન, આગળ કોઇ ન જાય.

ભસ્મ થશે આ દેહડી, માટીમા મિલ જાય,
જીવ થતાં અવિનાશી પદ, કર્મ થકી ઘેરાય.

જીર્ણ થએલાં વસ્ત્રનો, ત્યાગ કરે જન જેમ,
જીવ ગતિ ત્યમ જાણવી, દેહ નુતનશે તેમ.

પાપીના પરીમાણુથી, ધરા ધ્રૂજી જાય,
પગ મુકે જ્યાં પાપી ત્યાં, પૃથ્વી ગોથાં ખાય.

પુન્ય કરો એમ ધારીને, કરો ધરમનાં કામ,
આશ્રય આપી દીનને, ધરો જગતમાં નામ.

જન જો જાણે જીવને, પામે પદ અવિનાશ,
છંદ રચ્યા મોહનજીએ, ભવિ જીવ સુખને કાજ.

પરમ પવિત્ર પરમાત્મા, પામ્યા પૂરણ બ્રહ્મ,
પાર થઇ પોતે પછી, પાર કરે આ બ્રહ્મ.

અનુકૂળતા જો હોય તો, ભોગવવો સંસાર,
અનુકૂળતા ઉલટી થએ, ત્યાગ કરો ઘરબાર.

સંતોષે સુખ છે વસ્યું, વસ્યું વિવેકે વહાલ,
વામા પાસે વૈરવી, જ્યમ વિયોગી હાલ.

મહી પર મોટા માનવી, માનવી મોટા મીર,
મહેર કરે મહીધર કદી, ખાંતે ખાએ ખીર.

નરમા નારિ નરમણિ, નર નારીમાં રત્ન,
નરથી નારી નીપજે, નાર થકી નર રત્ન,

દિન દિન દુર્બળ આવશે, દુનિઆ થશે વિનાશ,
દેવાના દારૂણ દુઃખે, જાશે સત્યાનાશ.

એક થકી એક આકરો, આવે દીન અકાળ,
માતા પણ પુત્રો તણી, લેશે નહિ સંભાળ.

બાપ હશે બરમા મહીં, ચિરંજીવજ ચોન,
સુતા તો સાગર હશે, એ કળી કાળની રીત

લોભ કરે દુઃખ સાંપડે, લોભ થકી જર જાય,
લોભ અતિ કરવા થકી, ખાસા ખત્તા ખાય.

સત્ય તજી જન જે વદે, અસત્ય વચનો નિત,
હલકો પડતા લોકમા, પામે દુઃખ ખચિત.

શ્રીપતિની શરણાગતે, અતિ લાભ તો થાય,
વણ માગ્યું સુખ સાંપડે, રટણ કરે જગરાય.

મોહનલાલ એમ૦ શાહ—કંપાલા (યુગાંડા, આફ્રિકા.)

दिगम्बर जैन

ॐ

वर्ष २६ अंक १-२
कार्तिक-मार्गशीर्ष
वीर सं० २४५१



स्व० पं० टोडरमलजी।

सि[illegible] विशेषांक

सम्पादक और प्रकाशक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया-सूरत।

उपहारी पोस्टेज सहित वार्षिक मूल्य २।) विशेषांक ।।।)

* सीखलो । *

जैनियों ! जिनधर्मपर कुरबान होना सीखलो ।
अकलंक अरु निकलंकका बलिदान होना सीखलो ॥

× × ×

जिस तरहसे कर दिया निकलंकने बलिदान तन ।
उस तरहसे आप भी बलिदान होना सीखलो ॥१॥

× × ×

चाहे तन, मन, धन, चला जावे धरमके वास्ते ।
पर न छोड़ो धर्मको, तुम जान देना सीखलो ॥२॥

× × ×

इक जमाना था वही, जब धर्मका झण्डा खड़ा ।
गिरते हुवे झण्डेको निज, हाथों उठाना सीखलो ॥३॥

× × ×

घट घटके पन्द्रह लाखसे अब, लाख बारह रह गये ।
जैनियों संख्याको अब, अपनी बढ़ाना सीखलो ॥४॥

× × ×

बाल वृद्ध विवाहसे जो, होगये बरबाद हम ।
इन विवाहोंका मिटाना, शीघ्रतासे सीखलो ॥ ॥

× × ×

करके विधवाओंकी उन्नति, उनको विद्यादान दो ।
खोल विधवाश्रम उन्हींमें, दान देना सीखलो ॥६॥

× × ×

स्त्री शिक्षाकी हो उन्नति, नवयुवक निर्भीक हों ।
'चन्द्र' श्री जिन धर्मका, डंका बजाना सीखलो ॥७॥

× × ×

जैनियों जिन धर्मपर कुरबान होना सीखलो ।

[ले०—घासीराम जैन "चन्द्र"—कोलारस]

विषयानुक्रमणिका।

चित्र-सूची।

नये ग्राहकोंको लाभ।

'दिगम्बर जैन' के जो भाई अभी भी नये ग्राहक होंगे उनको गत वर्षकी "लघुजिनवाणीसंग्रह" नामक १)के मूल्यकी पुस्तक और भी भेंटमें दीजायगी तथा चालू वर्षके उपहारकी तीन पुस्तकें १--महिलारत्न मगनबाई, २--नीतिरत्नमाला व ३--पंचरत्न भी उपहारमें मिलेंगी। अतः सिर्फ २।) भेजकर नये ग्राहक शीघ्र ही हो जाइये। — प्रकाशक।



विद्वद्वर्य स्वर्गीय पं० सदासुखदासजी—जयपुर।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार, तत्वार्थसूत्र, भगवती आराधना आदि ग्रन्थोंके भाषाकार।

जन्म—सं० १८५२. स्वर्गवास—सं० १९२३



उदासीन श्रावक पं० पन्नालालजी गोधा इन्दौर।

आप जैनशास्त्रोंके परम अभ्यासी तथा दिगंबर जैन उदासीनाश्रम इन्दौरके अधिष्ठाता हैं। आप अपना सब समय धर्मध्यानमें व उदासीन त्यागियोंके सहवासमें व्यतीत करते हैं।

आप सुप्रसिद्ध [illegible] परिग्रहके [illegible] ध्यानमें ही अपना समय व्यतीत करते हैं।



श्रीमान ब्र० प्रेमसागरजी प[illegible]।

सिल्वर ज्युबिली अंक-

वर्ष २६ वां
अंक
१-२

दिगम्बर जैन

वीरसं० २४५९
कार्तिक मा०
सं० १९८९

प्रासंगिकैः सामयिकैः सुवृत्तैर्लेखैर्विनोदैः कविता-कलाभिः ।
सद्धर्मसाहित्यसमाजवृद्धयै "दिगम्बरो जैन" उदेत्यपूर्वः ॥

वीर-विनय ।

वीर प्रभु शीघ्र करो उद्धार ।

महावीर मम जर्जरी नैया, अटक रही मझधार ।
पार लगादो नाथ ! [illegible], तुम ही हो पतवार ॥वीर०॥
ज्ञान नेत्र मुंद गये पापका, छाया निबिड़ अंधयार ।
जिनका मार्ग [illegible] नहीं, कहां मोक्षका द्वार ॥वीर०॥
नहीं रहा पथदर्शक कोई, फैला पापाचार ।
[illegible] होते अत्याचार ॥वीर०॥
[illegible] भू-का भार ।
[illegible] जगत उपकार ॥वीर०॥
सन्मति ! अब [illegible] नहीं आधार ।
करुणानिधि ! लीजे [illegible] मोह अपार ॥वीर०॥
[illegible] स्वामिन ! तुम करुणा भंडार ।
[illegible] पापी [illegible] भगवन ! [illegible] हो संहार ॥वीर०॥
[illegible] हो, [illegible] पार ।
हे [illegible] वीर [illegible] मंझधार ॥वीर०॥
चार शतक [illegible], [illegible] हजार ।
वर्द्धमान भगवान दास को, अब तो लीजे तार ॥वीर०॥

पं० परमेष्ठी[illegible]जी जैन न्यायतीर्थ-सूरत ।

संपादकीय वक्तव्य।

रजत महोत्सव अंक। यह प्रगट करते हुये हमें अत्यन्त हर्ष होता है कि दिगम्बर जैनको जैन समाजकी सेवा करते हुये आज २५ वर्ष पूर्ण होचुके हैं और यह अब २६ वें वर्षमें प्रवेश कर रहा है। हालां कि २५ वर्षकी अवस्था होनेपर अनेक जगह 'रजतमहोत्सव' मनानेकी पद्धति है, उस समय बहुत कुछ आनन्द प्रदर्शन किया जाता है और कई प्रकारके ठाटवाट करके उत्सव मनाया जाता है, मगर हमने देशकी वर्तमान परिस्थितिको देखते हुए इस 'रजत महोत्सव' की धूमधाम करना ठीक नहीं समझी। इसीलिए अपने पाठकोंके करकमलोंमें मात्र यह दि० जैनका 'रजत महोत्सव अंक' ही समर्पण करके सन्तोष करते हैं। दि० जैनके गत २५ वर्ष निर्विघ्नतया पूर्ण हुए हैं और इसने समाज सेवा एवं धर्मप्रचारका जो कुछ भी कार्य किया है उससे समाज भलीभांति परिचित है। फिर भी इस मौकेपर पाठकोंको उसका संक्षिप्त परिचय करा देना अयुक्त न होगा।

***

दि० जैनने समाजका धीरे २ महान और उपयोगी तथा स्थाई सुधार किया है।

१—समाज सुधार। जहां जैन समाजमें ६ महीने तकके बालक बालिकाओंकी सगाइयां और ९-१० वर्षमें विवाह हो जाया करते थे वहां अब इन कुप्रथाओंसे घृणा होगई है। दिगम्बर जैनने इस बालसम्बन्धके विरोधमें जबरदस्त आवाज उठाई थी। उस समय कोई सरकारी कायदा भी इसके लिये सहायक नहीं था। उस समय इस पत्र द्वारा धीरे २ यह बाल संबंध रोके गये थे। अब तो सरकारी कायदा (शारदा एक्ट) होनेसे कोई भी व्यक्ति या पत्र उसका सहारा ले सकते हैं। दि० जैनके लेखोंने जनताको भलीभांति बतला दिया कि बाल सम्बन्ध गृहस्थ धर्मका विनाशक है, तब लोगोंने इसको छोड़ दिया।

इसके साथ ही दि० जैनके लेखोंद्वारा मिथ्यात्व और अनेक विनाशक रिवाजोंका प्रतिकार भी बड़ी ही सफलताके साथ किया गया है। पच्चीस वर्ष पूर्व जैन समाजमें जो जो कुरिवाज या कुरीतियां प्रचलित थीं वे सभ्य संसारमें हमारे प्रति घृणा उत्पन्न करानेवाली थी। उनके निवारणमें इस पत्रके लेखोंने बहुत सहायता की है। कन्याविक्रय और वृद्ध विवाह जैसी भयानक एवं कलंकित कुप्रथाओंको इतनी दूर पहुचानेमें तथा स्वदेशी वस्तु प्रचारके लिये दि० जैनने काफी प्रयत्न किया है।

***

२—भट्टारक सुधार। दिगम्बर जैनने भट्टारकीय शासनमें जो सुधार किये हैं वे जैन समाजसे छिपे नहीं है। जिस समय गुजरात आदि प्रांतोंमें निरक्षर भट्ट भट्टारकोंका खूब बोलबाला था और मात्र अज्ञान जनताकी भक्तिवश वे जैनियोंके गुरु बनकर स्वेच्छाचारको चला रहे थे तथा जैनसमाज भी जब उन्हें अपना परम कल्याणकर्ता मानकर 'बापजी म्हारा छे' की आवाज लगाया करते थे उस विकट परिस्थितिमें दि० जैनने इस अन्धभक्तिके विरोधमें प्रचंडतासे प्रचार किया था।

जब हमें मालूम हुआ कि लोग तो अज्ञानवश होकर भट्टारकीय लीलाओंकी पहिचान कर नहीं पाते हैं और यह लोग गुरुराज बनकर भोली जनताकी भक्तिका दुरुपयोग करके अनुचित लाभ

उठा रहे हैं तब हमने जनताको भी समझाया और भट्टारकोंको भी सन्मार्गपर लानेका प्रयत्न किया। किन्तु जब उनमें कोई विशेष सुधार होते नहीं देखा तब उनके शिथिलाचार और तमाम कपट-जालोंको खुलाकर देना पड़ा! इसका परिणाम यह हुआ कि गुरुपरंपरागत, अज्ञानी, आचारहीन, जिस चाहे व्यक्तिको भट्टारक बन बैठना कठिन होगया! और लोग योग्यताकी ओर ध्यान देनेलगे।

हमारी 'भट्टारक मत मीमांसा' आदि पुस्तकोंको देखनेसे समाज समझ सकेगी कि हमने जनताको भट्टारकीय जालमें कितना और किसप्रकार बचाया है।

ईडरकी भट्टारककी गद्दी भ० कनककीर्तिजीके बाद वर्षोंतक खाली पड़ी थी उसपर ब्र० नामधारी मोतीलाल जो एक ऐसा आरामी व अयोग्य व्यक्ति थे उनको गद्दीपर नहीं बिठानेके लिये 'दिगम्बर जैन' ने जोरदार आंदोलन किया था तोभी ईडरके भोले भाइयोंने यह बात न मानी, हमसे विरुद्ध होगये और मोतीलालको भ० विजयकीर्ति नाम देकर गद्दीपर बिठाया, तब उसने कई आश्वासन दिये थे परन्तु वे सब पानीमें गये और वह इतने शिथिलाचारी व चारित्रभ्रष्ट हो गए कि उनको गद्दी छोड़कर ईडरसे भाग जाना पड़ा और बम्बई जाकर गृहस्थ जैसा बन गया व वैद्यका व्यापार करने लगा। वह अभी भी बम्बईमें होगा। ईडरके भाई भी पीछेसे बहुत पछताये कि दिगम्बर जैनकी बात मानी होती तो मोतीलालके चगुलमें हम नहीं फँसते।

जब सूरतकी गद्दीपर सुरेन्द्रकीर्ति भट्टारकको अयोग्यता होते हुए भी एक वांड़ने सोजित्रामें आसीन करदिया तब दि० जैनने इसके विरोधमें बहुत भारी आंदोलन उठाया था। उसके फलस्वरूप यहांकी जनताने उनका जबरदस्त बहिष्कार किया और वे कई वर्षोंतक तो सूरत नहीं आसके थे।

जब भ० सुरेन्द्रकीर्तिजीका स्वर्गवास होगया तब सूरतकी गादीके लिये वे एक बालकको तैयार कर गये। हमने इसके विरोधमें दिगम्बर जैनमें लेख लिखते हुये यह प्रगट किया कि "जबतक यह बालक पढ़ लिखकर पूर्ण योग्य न होजाय तथा जनताको उसके आचार विचारकी पवित्रताका ज्ञान न हो तबतक उसे कदापि गादीपर नहीं बैठाया जावे।" इत्यादि। हमारे लिखनेका असर ट्रष्टियोंपर अच्छा हुआ और उन्होंने उस बालकको पढ़नेके लिये भेज दिया। जो अभीतक अध्ययन कर रहा है। दिगम्बर जैनने इसी प्रकारसे भट्टारकीय मार्गमें अनेक सुधार कराये हैं।

* * *

दिगम्बर जैनने यथाशक्ति साहित्य सेवामें भी अच्छा भाग लिया है।

३—साहित्य सेवा इसमें सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि इसके हिन्दी-गुजराती लेखोंको पढ़ते२ आज अनेक हिन्दी जानकार गुजराती जानने लगे हैं, और गुजरातीके ज्ञाता हिन्दी पढ़ने लगे हैं। प्रारम्भमें तो हमने इसके लिये बहुत ही सरल उपाय निकाला था। वह यह था कि गुजराती भाषाके कई लेख व उपहारकी पुस्तकें हिन्दी (बालबोध) लिपिमें छापा करते थे। इससे हिंदी पढ़नेवालोंको गुजराती भाषाका ज्ञान धीरे२ होगया, और गुजराती भाषाके जानकार हिन्दीसे परिचित होगए। अब हमारे अनेक पाठक ऐसे हैं जो हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओंको भलीभांति जानने लगे हैं।

इसके अतिरिक्त दि० जैनने जैन साहित्यके प्रचारमें यथाशक्ति सेवा की है। अनेक विद्वानोंके उच्चकोटिके लेखोंको प्रकट करके जनतामें प्रचार किया और कितने ही प्रारंभिक लेखकों और कवितकारोंको उत्साह वर्धनार्थ उनके लेख व कविता-

ओंको दि० जैनमें प्रेमपूर्वक स्थान दिया गया जिससे हमारे वे कितने ही लेखक आज अच्छे लेखकोंमें गिने जाते हैं।

* * *

४—उपहार प्रदान। हम यह बात तो गौरवपूर्वक कह सकते हैं कि दि० जैनने अपने भाइयोंको जितने उपहार ग्रन्थ दिए हैं उतने किसी भी जैन पत्रने आजतक नहीं दिये होंगे! प्रारम्भमें तो मात्र सवा रुपया—डेढ़ रुपया मूल्य लेकर ही अनेक अपूर्व ग्रन्थ और पत्र भेटमें किए जाते थे। जिनके पास हमारे २९ वर्षके उपहार ग्रन्थ और दि० जैनकी फाइलें होंगी उनकी तो एक अलमारी इसीमें भर गई होगी। एक एक वर्षमें ७—८ ग्रन्थ तक उपहारमें दिये हैं। और वह उपहार प्रथा अभीतक अक्षुण्णरीत्या चालू है। यदि अभीतकके उपहारग्रन्थोंकी कुल गणना की जाय तो कमसे कम १००की संख्या होगी। और दिगम्बर जैनकी २९ वर्षकी २९ फाइलें एकत्रित की जाय तो वह भी इतिहास, धर्म और समाजका ज्ञान करानेवाली उत्तम सामग्री मालूम होगी।

* * *

५—विशेषांक। दिगम्बर जैन समाजमें विशेषांककी पद्धति निकालनेवाला एक मात्र दिगम्बर जैन है। उसके जबसे (करीब २० वर्षसे) विशेषांक निकालना प्रारम्भ किये है तबसे अभीतक बराबर अक्षुण्णरीत्या चालू है व उसका अनुकरण जैनगजट, वीर, खण्डेलवाल जैनहितेच्छु, जैनबोधक आदिने किया है। एक समय वह था कि जब दिगम्बर जैनके विशेषांकमें ७०—७५ चित्र तक रहा करते थे। हमें इसके लिये प्रोत्साहित करनेवाले हमारे पुराने मित्र श्री० बाबू ज्योतिप्रसादजी जैन संपादक जैन-प्रदीप देवबंद थे। हम अभीतक अपने विशेषांकोंमें दि० जैन समाजके प्रायः सभी प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्रों, संस्थाओं, विद्वानों, श्रीमानों तथा सुप्रसिद्ध व्यक्तियोंके करीब ९०० चित्र प्रगट कर चुके हैं।

इस विशेषांकमें हमने नया ही आयोजन किया है। हमें जितने लेखकोंके चित्र प्राप्त होसके हैं उन्हें प्रगट किया गया है और उनके लेख भी प्रगट किये हैं। यदि किसीको जैन समाजके २९ वर्षका पूरा इतिहास जानना हो, और सुप्रसिद्ध स्थानों तथा व्यक्तियोंके दर्शन करना हो तो वह दिगम्बर जैनके तमाम विशेषांकोंको देखकर परिचय प्राप्त कर सकता है। हम अपने विशेषांकोंकी अधिक तारीफ तो क्या करें, किन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि हमारे कितने ही ग्राहक तो विशेषांकके लिये ही होते हैं।

विशेषांकमें एक खास बात तो यह रखी जाती है कि उसमें हिंदी, अंग्रेजी, गुजराती और संस्कृत भाषाके लेख तथा कवितायें रहती हैं। इससे पाठकोंको भिन्न भिन्न भाषाओंका आस्वादन होता है। इस अंकमें करीब ९० लेखों और कविताओंसे पाठकोंको बहुत लाभ होगा ऐसी आशा है। मगर तमाम चित्रोंमेंसे सिद्धांती स्व० पं० टोडरमलजी और स्व० पं० सदासुखदासजीके हस्तचित्रित पुराने चित्रोंको देखकर तो बहुत संतुष्ट होंगे। जब कि इस अंकमें विद्वान लेखकोंके ही चित्र रखे गये हैं तो इन दो महाविद्वानोंके चित्र निकालना भी उपयुक्त समझा गया। इन दोनों महापुरुषोंने जैन शासनकी रक्षा करके और विकृत होते हुये आगमको शुद्ध रूपमें समाजके सामने रखकर जो महान् उपकार किया है वह कभी भी नहीं भुलाया जा सक्ता।

हमारी इच्छा है कि इसी प्रकारसे यदि हमें और भी पुराने विद्वानोंके हस्तचित्रित या छायाचित्र (फोटो) मिलें तो हम उन्हें अपने द्रव्यसे

प्रगट करेंगे। किसी महाशयके पास यदि ऐसे चित्र हों तो हमारे पास भेजनेकी अवश्य कृपा करें। हमें दुःख है कि बहुत कुछ प्रयत्न करनेपर भी सभी अच्छे लेखकोंके चित्र हम नहीं प्राप्त करसके इसलिये जितने मिल सके उतने ही प्रगट किये हैं। तथा इस विशेषांकके लिये इतने लेख मिले हैं कि १४० पृष्ठ होने हुए भी वे सब लेख नहीं छप सके है। अतः शेष अच्छे लेखोंको आगामी अंकोंमें क्रमशः अवश्य प्रगट करेंगे।

* * *

६-वीर संवतका प्रचार। दिगम्बर जैनके द्वारा वीर संवतका प्रचार करनेमें काफी प्रयत्न किया गया है। जब कि अन्य लोग अपने २ ईस्वी, वि०, शक, पारसी, मुहम्मद, हिजरी संवत आदि बड़े ही गौरवके साथ लिखते हैं तब हमारी समाजको अपने सबसे प्राचीन वीर संवतका ख्याल भी नहीं था। तब हमने इसके लिये बहुत आन्दोलन किया और अभीतक इस विषयमें प्रतिवर्ष लिखते ही रहते हैं। इसीलिये हमने प्रत्येक नूतन वर्षके प्रारम्भमें जैन तिथिदर्पण भी अपने ग्राहकोंको भेटमें देना प्रारम्भ किया था, जो अभीतक दिया जाता है। इसका फल यह हुआ कि अनेक स्थानोंपर अब खुशीसे वीर संवत लिखाजाने लगा है।

हमारा पाठकोंसे अनुरोध है कि यदि आपके यहां अभीतक वीर संवतका प्रचार न हो तो अभी भी करिये। वर्तमानमें वीर संवत २४५९ चालू है। जिन नये ग्राहकोंके पास हमारा जैन तीथि दर्पण नहीं पहुंचा है उन्हें इस अंकके साथ प्राप्त होजायगा। इससे वीर संवतका ध्यान रहेगा और प्रत्येक तिथि व्रतादिके, दिन और पर्वोंका जैन रीतिके अनुसार पालन भी हो सकेगा। प्रत्येक जैनका कर्तव्य है कि वह अपने पत्र व्यवहारमें, लेनदेनमें, खातावहीमें और हिसाब किताबमें वीर संवत् अवश्य लिखा करें।

* * *

७-महावीर जयंती। दि० जैन समाजमें २५ वर्ष पहिले महावीर जयंती कहीं भी नहीं मनाई जाती थी, उसका बीजारोपण स्था० जैन पत्रकार स्व० वाडीलाल मोतीलाल शाह, 'जैन' पत्रकार और जैन हितैषीके संपादक प० नाथूरामजी प्रेमीने किया था। उसका दिगम्बर जैनमें लेखों द्वारा इतना जोरदार प्रचार किया गया कि आज सर्वत्र महावीर जयंती चैत्र सुदी १३ के दिन धूमधामसे मनाई जाती है, उसमें देहलीकी महावीर जयंतीने तो सारे हिंदके जैनोंमें नाम करलिया है।

* * *

८-प्रांतिक सभाको उत्तेजना। हमारी बम्बई दि० जैन प्रांतिक सभाको उत्तेजना दिलानेका काम दिगम्बर जैनने काफी प्रमाणमें किया है। जबकि सभाका 'जैन-मित्र' पत्र दो वर्षतक बन्द पड़ा था, सभाके पावागढ़ व तारंगाके अधिवेशन अतीव सफल होनेमें "दिगम्बर जैन" ही कारण रूप था। तथा गुजरातमें बंबई दि० जैन प्रांतिक सभाके प्रस्तावोंपर आन्दोलन करनेमें दिगम्बर जैनने कसर नहीं रखी थी।

* * *

९-हमारी भावना। इस प्रकार दि० जैनकी २५ वर्षोंकी सेवाका यह कच्चा चिट्ठा है। इन २५ वर्षोंमें हमें ऐसे अनेक मौके भी आये हैं कि कई लेखोंके कारण हमपर नोटिसें भी आईं, बहिष्कारकी धमकी भी मिली तौ भी 'दिगम्बर जैन' ने अपना ध्येय नहीं बदला और उत्तरोत्तर समाजसुधार व

धर्मोन्नतिके मार्गपर ही आरूढ रहा है व रहनेकी भावना करता है। हमारी अंतिम भावना है कि दिगम्बर जैन चिरायु हो और इसका गोल्डन जुबिली (५० वर्षका सुनहरी महोत्सव) अंक देखनेका सौभाग्य हमें व समाजको प्राप्त हो।

* * *

सहारनपुरमें परिषद।

श्री भारतवर्षीय दि० जैन परिषदने जैन समाज और धर्मकी सेवायें करके जो ख्याति ५ वर्षोंमें प्राप्त करली है वह आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली है। कौन जानता था कि वह वाल्यकालमें ही इतनी आशातीत सेवायें कर सकेगी। जब हमें अपनी इस परिषदकी सेवावृत्ति, कार्यतत्परता और समाजप्रियता देखकर अत्यन्त हर्ष होता है तब पुरानी भा० दि० जैन महासभाके भयंकर पतनको देखकर अपार दुःख भी होता है। सत्य बात तो यह है कि यदि महासभाकी बागडोर विवेकी महानुभावोंके हाथमें रहती तो उसकी आज इतनी दुर्दशा न होती। किन्तु उसकी जो दयनीय दशा है उसे हम वर्णन नहीं कर सक्ते हैं।

इधर परिषदने अपनी योग्यताके द्वारा थोड़ेसे ही समयमें वह काम कर दिखाए हैं जिन्हें देखकर समस्त दि० जैन समाज उसपर मुग्ध होगई है। द्रव्यकी कमी होते हुए भी परिषदके द्वारा अनेक आदर्श कार्य होरहे हैं, उनका कुछ परिचय इसप्रकार है —

(१) **परीक्षाबोर्ड**—इसके द्वारा जैन स्कूल, बोर्डिंगोंके छात्रोंकी धार्मिक परीक्षा लीजाती है। इसके मंत्री बाबू उग्रसेनजी जैन-वकील बड़ी ही योग्यतासे काम कर रहे हैं। प्रतिवर्ष छात्रोंको पारितोषिक, पदक और शील्ड दी जाती हैं। प्रतिवर्ष करीब ३००) के खर्चामें बहुत काम होता है।

(२) **वीर पत्र**—यह पाक्षिक पत्र बहुत ही उपयोगी लेखोंसे परिपूर्ण रहता है। द्रव्याभावसे इसकी पूर्ण प्रगति नहीं हो सकती है, फिर भी इसके द्वारा जैन इतिहास और समाजकी काफी सेवा होरही है। इसके संपादक सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ बाबू कामताप्रसादजी जैन-अलीगंज हैं। यह पत्र बिजनौरसे प्रगट होता है। यदि इसको आर्थिक मदद मिले तथा ग्राहक बढ़े तो काफी काम हो सकता है।

(३) **पुस्तक प्रकाशन**—का काम भी परिषदने बडी ही सफलताके साथ किया है। परिषद पब्लिशिंग हाउस बिजनौरसे अभीतक हिन्दी और अंगरेजीमें अनेक छोटी बडी पुस्तकें प्रगट होचुकी हैं। इनके द्वारा विदेशोंमें जैन धर्मका अच्छा प्रचार होता है। यदि कोई व्यक्ति इसके तमाम ट्रैक्टोंको एक बार पढ़ जावे तो उसे जैन धर्मका अच्छा ज्ञान हो सकता है। इस विभागमें यदि आर्थिक सहायता दीजावे तो बहुत काम हो सकता है।

(४) **छात्रवृत्ति प्रदान**—कई उच्च शिक्षावाले छात्रोंको छात्रवृत्तियां दी जाती हैं। इससे उन्हें पढ़नेमें बहुत मदद मिलती है। मगर इसका फण्ड काफी नहीं होनेसे अनेक छात्रोंको निराश होना पड़ता है।

(५) **प्रचारक विभाग**—इसके द्वारा आनरेरी उपदेशक भ्रमण करते हैं और वे समाज सुधार तथा धर्मसेवाके लिये प्रयत्न करते रहते हैं।

अगर समाज अच्छी आर्थिक मदद करे तो परिषदके द्वारा प्रभावक एवं स्थाई काम होसकते हैं। अभीतक परिषदके द्वारा समाजकी अनेक घातक कुरीतियोंका निराकरण किया गया है। रोहतकमें जब इसका अधिवेशन हुआ था तबसे परिषदने बहुत प्रगति की है। पंजाब प्रान्तमें परिषदने जो सामाजिक सुधार किये हैं वे धर्मकी ठेकेदार कही जानेवाली मनमानी महासभासे ४० वर्षमें भी नहीं होसके हैं।

इस वर्ष परिषदका १० वां अधिवेशन सहारनपुरमें ता० ३०-३१ दिसम्बरको बड़े ही समारोहके साथ होनेवाला है। इसके सभापति श्रीमान् राय बहादुर साहू जुगमंदरदासजी जैन रईस-नजीबाबाद नियुक्त हुए है और स्वागत समितिके सभापति श्री० ला० प्रद्युम्नकुमारजी रईस-सहारनपुर तथा मंत्री बाबू सुमेरचंदजी जैन एडवोकेट चुने गये हैं। सहारनपुर दिगम्बर जैनोंका केन्द्रस्थान है। यहांपर पुराने अनुभवी समाजसेवक श्रीमानों और विद्वानोंकी अच्छी सख्या है। तथा बाहरसे भी जैन समाजके प्राय. सभी विवेकी एव सुधारप्रेमी सज्जन पधारनेवाले है। इस लिये यह अधिवेशन परिषदके भविष्यको बहुत ही उज्वल एवं प्रतापी बनायेगा ऐसी हमारी धारणा है। हमारा उत्साही युवकोंसे तथा सेवाभावी विद्वानों एव श्रीमानोंसे सानुरोध निवेदन है कि इस अधिवेशनमें अवश्य२ सम्मिलित हों। वहां आपको अपूर्व उत्साह प्राप्त होगा और समाजसेवाकी भावनायें स्फुरित होंगी। जिनदेवसे प्रार्थना है कि यह अधिवेशन अतीव सफल होवे।

आव्या तेवां गया खाली.

[गझल.]

मुसाफर शोच ओ दीले, जगे तुं आज ना काले,
जरा तु जोई जाणी ले, आव्या तेवां गया खाली.
मरे सौ जन्मता प्राणी, आशा आ छोडी दुन्यानी,
गुमानी छोडी मस्तानी. आव्या तेवा गया खाली.

महाराजा श्रीमंत लोको, न जे'ने रही शके थोको,
गया ते पण मूकी पोको, आव्या तेवा गया खाली.
ममत्वी मोह करनारा, म्हारुं त्हारुं जे कहेनारा,
मदोन्मद थईने फरनारा, आव्या तेवा गया खाली.

क्षणिक सौ छे छता अधा, जाणे दीन चारनी चदा,
प्रही फरनार अनित फदा, आव्या तेवा गया खाली.
मूकी धन मान भरा दौलत, मर्या पामी बुरी हालत,
रही मन आश मन उन्मत्त, आव्या तेवा गया खाली.

भले रंक राय के श्रीमत, सहुनो मार्ग एकज अंत,
प्रसारी हाथ गया निजपंथ, आव्या तेवा गया खाली.
करो अहंकार पछी शाने, मुसाफर चालो चेतीने,
थवुं एक दीन मरण शरणे, आव्या तेवां जवु खाली.

अधम निच छोडीने सौ छद, कदी बनशो नहि त्या अध,
दुन्याथी ना सदानो सग, आव्या तेवां जवु खाली.
मळी सौ सम गणी मनथी, भलाई राखजो सौथी,
जगे अन ए तमो साथी, आव्या तेवा जवु खाली.

सगा स्नेही कुटुम्ब व्हाली, जता जीव सौ जवु मेली,
सदा सन्मार्गे ल्यो चाली, आव्या तेवा जवु खाली.
प्रभु ज्यम राखे त्यम रहीने, प्रभु आज्ञाने वंदीने,
करी ल्यो सफल जींदगीने. आव्या तेवा जवु खाली.

जगत आ रगभूमी छे, खेलाडी मानवी सौ छे,
पलकना खेल सौ अहि छे, आव्या तेवा जवु खाली.
भमे शिर काळ निश दीने, मरणनी ना खबर कोने,
चेतो शु ! मत् विचारीने, आव्या तेवा जवु खाली.

रामचन्द्र माधवराव मोरे-सूरत.

जीयात् सुगीर्वाणगीः ।

(रचयिता—व्याकरणाचार्य पं० शम्भुनाथजी त्रिपाठी, न्याय-काव्य-व्याकरण-स्मृतितीर्थ-इन्दौर ।)

यस्यास्स्वादुरसेन मत्तधिषणा विद्वद्वरा भारते ।
देवेति ! व्यपदेशभूषणजुषो गीर्वाणवाणीबुधाः ॥
सा भाषा भुवि मन्दतामुपगता स्वल्पास्तुबद्धादरा ।
हा हा भारतभारतीश्वरि ! कथं स्याज्जीवनं भावि ते ॥ १ ॥

× × × ×

काव्याद्वैतरसैश्चमत्कृतधियः शब्दार्थगुम्फोत्तमै-
राध्यात्मादिसुधामृतैः श्रुतिसुखैः शास्त्रैरशेषैर्हृताः ॥
किं प्राच्यैर्विबुधस्तुतर्कपतयः पाश्चात्यविद्वद्वरा-
स्सोच्छ्वासं च गृणन्ति गद्गदगिरा जीयात्सुगीर्वाणगीः ॥ २ ॥

× × × ×

यद्यप्यद्य कराळकालवशतो गीर्वाणवाणी भुवि ।
लोकाज्ञानवशात् शनैरथशनैर्नामात्रशेषं गता ॥
इत्थं सत्यपि भूरि भारतगिरां नैकाभिधा संभृतां ।
या संपत्यपि याति कारणपदं सा भारती पातु नः ॥ ३ ॥

× × × ×

यद्भाषाललितकाव्यलतांतमधुपाः श्रीहर्षबाणादयो ।
भोजक्ष्मापतिविक्रमेन्दुसदृशं राजेश्वरं संश्रिताः ॥
स्वादं स्वादमनुत्तमं रसमहो संदर्भ्य तन्माधुरी ।
साक्षात्कारयितुं जगज्जनप्रियत काव्यं प्रापन्युर्मुदा ॥ ४ ॥

× × × ×

एतद्भाषा निबद्धा परिमितललिताध्यात्मविद्यानदीष्णा ।
स्वामिश्रीगौतमाद्या गणधरगणनाताद्विवादाद्विरज्ञाः ॥
चक्रुर्यद्भारतेऽस्मिन्नगणितजननाक्षेमहेतोरहो किम् ।
साम्यं तद्भिन्नभाषा प्रवचनपटुभिः कैरपि क्वापि किञ्चित् ॥५॥

Thoughts for Reflection.

[*By: Baboo Tarachand Jain Sethi,–Jhalrapatan City*]

1. Right knowledge is the key of all religions. Truth is existent everywhere but under different covers Right knowledge gives you the eyes to discern Truth. Nothing is wrong in the world–only you may be in the wrong in looking at a thing from a wrong side. Right knowledge enables you to see a thing from the right side.

2. Blind faith in gods, blind faith in *gurus*, and blind faith in religions or opinions–the removal of these is the first qualification for getting an entrance into the edifice of Truth.

3. Sin is a deviation of yourself from your self; and what conduces to your peace, what conduces to your independence, in short, what conduces to your real nature is Virtue.

4. Desire is the dependance of your happiness on things alien to and independent of you. It is misery in other words Desirelessness, independence and peace, these are the same

5. Ahinsa is Perfection, for the Perfect, being perfect in themselves neither molest anything nor are molested by anything.

6 Renunciation is not the narrowing but the broadening of love. O thou false Lover, thy so-called love is for only some states of things and this too lasts but for a short time. Renounce this partiality in love–and lo, thy love embraces all states of all things for all times.

7. Everything is Beauty to the true lover. Ugliness is nought for him.

8. It is not the things, but the thy knowledge of them that thou lovest or hatest Thus in loving or hating a thing, thou art loving or hating thyself.

9 Love thyself–and thou shalt love the whole Universe, for, thou art the knowledge of the whole Universe.

10 Love thyself, know thyself and be as thyself–this is the way to Perfection.

The moment that thou art perfectly one with thyself, thou art omniscient and free, aye, very God.

O Egoist–o *Ahankari*–only know thy true ego–thy true *aham*–and lo, thy pride becomes the envy of the highest saints O selfish man ! only recognise thy true *Self*, and lo, the selfishness becomes the Ideal of selflessness.

11 Sorrows, Dislikes, Griefs, Fears and Such-like evils are the progeny of thy own Fancy–then why dost thou blame others for them ?

12 Thou art the Maker, the Sustainer and the Destroyer of thy World And, what is thy World ? It is thy feelings, thy thoughts, thy desires, and thy conceptions of the relations of outside things to thee.

13. Change and Constancy is the Being–the *Sat* as Conceived in three forms; *Hari*, *Har* and *Brahma*. *Hari* is Constancy, *Har* is the passing away of the old state while *Brahma* is the coming in of the new state. All these three are coexisting, coworking, eternal and omipresent–the Cause, End and Existence of the whole Universe–the Universe itself.

चित्र-परिचय।

इस विशेषांकमें हमने अपने लेखक विद्वानोंके प्राप्त चित्र ही प्रकट किए हैं। और साथमें कुछ परिचय भी छापा गया है। किन्तु स्वर्गीय पंडितप्रवर टोडरमलजी और पं० सदासुखदास-जीका जैन समाजपर अवर्णनीय उपकार है। तथा उनके चित्र भी प्राप्त हुए हैं इसलिए उन भव्य चित्रोंको भी हमने प्रकट करना ठीक समझा है।

१—स्वर्गीय प० टोडरमलजीके विषयमें जैन-हितैषी भाग १३ अंक १में जैन इतिहासज्ञ श्री० प० नाथूरामजी प्रेमीने लिखा है कि १९वीं शताब्दीके सबसे प्रसिद्ध लेखक पं० टोडरमलजी हैं। दि० जैन संप्रदायमें आप ऋषितुल्य माने जाते हैं। केवल ३२ वर्षकी अवस्थामें आप इतना काम करगए हैं कि सुनकर आश्चर्य होता है। आपकी रचनासे जैन समाजमें तत्वज्ञानका बना हुआ प्रभाव फिरसे बहने लगा। जहां कर्मफिलासफीकी चर्चा करना केवल संस्कृत-प्राकृतके विद्वानोंके हिस्सेमें था वहां आपकी कृपासे साधारण हिंदी जाननेवाले लोग कर्मतत्वोंके विद्वान बनने लगे।

आप जयपुरके रहनेवाले खण्डेलवाल जैन थे। १५–१६ वर्षकी आयुमें ही आप ग्रंथ रचना करने लगे थे। आपका सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ 'गोमटसार वचनिका' ४५ हजार श्लोक संख्या प्रमाण है। दूसरा ग्रन्थ त्रिलोकसार वचनिका है। इसकी श्लोक संख्या लगभग १०–१२ हजार होगी। इसके अतिरिक्त आत्मानुशासन वचनिका भी अपने ढगकी निराली ही है। पुरुषार्थ सिद्ध्युपायकी वचनिका अधूरी ही रहगई थी, जिसे पं० दौलत-रामजीने पूरी की थी। दूसरा ग्रंथ मोक्षमार्ग प्रकाशक भी अपूर्ण ही रहगया था। गद्य हिंदीमें जैनोंका यही एक ग्रंथ है जो तात्विक होकर भी स्वतंत्र लिखा गया है। इसे पढ़नेसे मालूम होता है कि यदि टोडरमलजी वृद्धावस्थातक जीते तो जैनसा-हित्यको अनेक अमूल्य रत्नोंसे अलंकृत करजाते। (हर्षका विषय है कि मोक्षमार्ग प्रकाशकका उत्त-रार्ध श्री० ब्र० शीतलप्रसादजीने लिखा है और वह ३४४ पृष्ठोंमें दि० जैन पुस्तकालय सूरतसे अभी ही प्रकट हुआ है।)

प० टोडरमलजीके जन्म और मरणकी तिथियां मालूम नहीं हैं। आपने गोमटसारकी टीका संवत् १८१८में पूर्ण की थी और आपके पुरुषार्थ-सिद्ध्युपायका शेष पं० दौलतरामजीने सं० १८२७ में समाप्त किया है। अर्थात् इससे वर्ष दो वर्ष पहिले आपका स्वर्गवास हो चुका होगा। और यदि आपकी मृत्यु ३२–३३ वर्षकी अवस्थामें हुई हो तो आपका जन्म वि० सं० १७९३ के लगभग माना जा सक्ता है। आपकी लिखी हुई एक 'रहस्यपूर्ण चिट्ठी' भी है जो आपने मुल्तानके पंचोंको लिखी थी।

प० टोडरमलजीके विषयमें एक लेख श्री० चांदमलजी जैन काला पचारने हमारे पास भेजा है। स्थानाभावसे हम उसे पूरा प्रकाशित तो नहीं कर सके हैं किन्तु उसका भाव यह है कि—पं० टोडरमलजी जयपुर राज्यके दीवान थे! ११ वर्षकी अवस्थासे ही आप धर्मकर्ममें रत रहते थे। आपकी मोक्षमार्ग प्रकाशककी होती हुई प्रतिभा-शाली रचनाको देखकर अन्य मतावलम्बी बहुत चिढ़ रहे थे। और कुछ लोगोंने आपके घात करनेकी ठानी! कहा जाता है कि लघुशंका करते समय आपकी अचकनकी जेबमें किसीने शालिगरामकी मूर्ति डालदी और उधर राजासे

फरियाद करदी कि महाराज ! हमारी पूज्य प्रतिमा-पर दीवानजी पेशाब करते हैं, यह हमने देखा है ! पं० जीके राजसभामें आनेपर प्रमाण स्वरूप वह मूर्ति भी उनकी जेबसे निकालकर दिखाई गई। इस अपराधमें आपको हाथीके पैरतले दबवाकर मरवा डला गया !!! इसीलिये मोक्षमार्ग प्रकाश-ककी रचना अधूरी ही रहगई ! (हाला कि इस किवदंतीके लिए कोई आधार नहीं है किंतु जैन समाजमें यह कथा बहुत प्रचलित है)।

आपकी विद्वत्ताके विषयमें यों कहाजाता है कि एक विद्वानने पं० जीसे जयधवल महाधवलकी टीका करनेको कहा। आपने दो श्लोकोंकी भाषा-टीका १५० पृष्ठोंमें करके देखनेके लिए उन विद्वानके पास भेजी। तब उन्हें पं० जीकी विद्वत्ता-पर बड़ा आश्चर्य हुआ। और आपकी जन्मकुण्डली मगाकर देखी। उससे मालूम हुआ कि आपकी आयु अब अधिक नहीं है, इसलिए उन ग्रंथराजोंकी टीका नहीं होसकेगी। यह बात उक्त विद्वानने पं० जी के पास भी लिख भेजी। और वह टीका बंद रक्खी गई। जब पं० जीको राजाने मरणात दंड दिया और वे स्वर्गवासी होगए तब उनके पास रक्खा हुआ वह पत्र राजाने देखा जो उक्त विद्वानने लिखाकर टोडरमलजीके पास भेजा था जिसमें इसीप्रकार मरण होनेकी बात लिखी थी। उसे देखकर राजा बहुत दुखी हुआ !

दु:ख है कि पं० टोडरमलजीका विशेषाधारयुक्त जीवनचरित्र नहीं मिलता है। आपने थोड़ीसी आयुमें वह काम किया है जो जैनियोंका अगणित समयतक उपकार करता रहेगा।

(२) विद्वद्वर्य पं० सदासुखदासजी—के विषयमें भी श्रीमान प्रेमीजीने लिखा है कि बीसवीं शताब्दीके पुराने ढंगके लेखकोंमें पं० सदासुखजी बहुत प्रसिद्ध हैं। इनका रत्नकण्ड श्रावकाचार बहुत बड़ा लगभग १५—१६ हजार श्लोक प्रमाण गद्य ग्रंथ है। जैन समाजमें इसका बहुत अधिक प्रचार है। स्वामी समंतभद्रके १५० श्लोकोंका यह विशाल हिन्दी भाष्य है। एक प्रकारसे इसे स्वतंत्र ग्रन्थ कहना चाहिये। इनका दूसरा ग्रन्थ 'अर्थप्रकाशिका' है। यह तत्वार्थसूत्रका भाष्य है, यह भी लगभग उतना ही बड़ा है। 'भगवती आरा-धना'की टीका भी आपने लिखी है जो २० हजार श्लोक प्रमाण होगी। यह वि० सं० १९०८ में बनी है। आपने इसके अतिरिक्त तत्वार्थसूत्रकी छोटी टीका, अकलंकाष्टक वचनिका, नित्यनियम पूजावचनिका, बनारसीदासजी कृत नाटक समय-सारकी वचनिका टीका आदि भी बनाई हैं। आपका जन्म वि० स० १८५२ और मृत्यु सं०-१९२३—२४ है। आपकी अमर कृतियोंसे जैन समाजका भारी उपकार हुआ है।

परिषदका अधिवेशन—श्री भारत दि० जैन परिषदका नौवां वार्षिक अधिवेशन सहारनपुरमें ता० ३०—३१ दिसम्बरको श्री० रा० ब० साहू जुगमंदिरदासजी जैन रईस—नजीबाबादके सभाप-तित्वमें होगा। स्वागत कमेटीके सभापति श्री० ला० प्रद्युम्नकुमारजी जैन रईस व मंत्री ला० सुमेर-चंद्रजी जैन एडवोकेट सहारनपुर हैं। ठहरने आदि-की बड़ी भारी तैयारियां हो रही हैं।

कुकड़ीमें—जैन मंदिरका काम चालू है। ३००) दि० जैन शास्त्रार्थ संघ—अंबाला द्वारा भेजे गये हैं। और भी १०००)की सहायताकी आवश्यक्ता है। सांगलीके एक गृहस्थने प्रतिमाजी व आरसके सिंहासनके लिये २५०) का वचन दिया है। यथाशक्य सहायता इस कार्यको पूरा करनेके लिये अंबाला भेजनी चाहिये।

सात सखियोंका रुदन !

[रचयिता–पं० सिद्धसैन जैन गोयलीय–कलोल।]

दोहा–

सात सखी मिल एक दिन, करे परस्पर बात।
कथा सभी वे दुखभरी, कहन लगी-सुन भ्रात॥

(१)

कहने लगी पहली सखी, दिन रात कष्टोंको सहूं।
मूर्ख हैं पति-देव मेरे, देखकर कैसे रहूं ?
बैठते वे नीच संगमें, ज्ञानका नहि लेश है,
शिक्षा अगर कोई उन्हें दे, मानते बहु क्लेश हैं॥

(२)

बोलते वे वचन विष-सम, लड़नको तैयार हैं,
आदर न उनका कोइ करता, हसत सब नर नार हैं।
अपमान मेरा भी सदा, होता सखी ! जलता हिया,
मां-बापने सम्बंध मेरा, रुदन करनेको किया॥

(३)

कहने लगी दूजी सखी, पतिदेव यदि गुणहीन है,
मैं तड़फती पर यथा, प्यासी विना-जल मीन है।
रोगी सदा सइया हमारे, खाट पर सोते रहें,
बल-हीन अरु छवि-हीन वे, औषधि सदा खाते रहें॥

(४)

वैद्य डाक्टर बुद्धिमानी, सब दिखा अपनी चुके,
पर, न बालम प्रेम-खटियाका कभी तजते लखे।
दूर दुख होता नहीं, उनका इसीसे मैं दुखी,
साथ रोगीके हमें, व्याहा रहूं कैसे सुखी ?॥

(५)

कहने लगी तीजी सखी, लख, तू रहे धीरज धरी।
पर विपत मेरी कहत लजा, है मुझे आती बड़ी॥
व्यसनी जुएके पति हमारे, हार धन सब ही गए।
चोरी करत पकड़े पुलिसने, जेल वासी वे हुए॥

(६)

आप कारागारका, दुख भोगते हैं आजतक।
मैं पड़ी तड़फूं यहींपर, क्या करूं भगवान अब ?
कर्म खोटेका मिला फल, रात दिन सिरको धुनें।
साथ व्यसनीके मुझे दी, बाप भी अंधे बने !॥

(७)

कहने लगी चौथी सखी, सुनलो हमारी भी कथा।
रहते पिया-मम हैं नशेमें, पी शराब यथा तथा।
गांजा चरस आफ़ीम सुल्फ़ा, खूब खाकर नाचते,
देखती दुनिया तमाशा, हाथ दोनों पीटते॥

(८)

कर टाग ऊपर श्वान भी, जलधार मुहमें छोड़ते।
आती अगर कुछ होश तो वे मारनेको दौड़ते॥
पैसा नहीं घरमें रहे, घरबार ये सब बिक चुके।
नालिश करें नित सेठजी, हम आबरू भी खोचुके॥

(९)

कहने लगी पञ्चम सखी, क्यों दु:ख इतना मानती।
रो, रो, मरी मैं हे सखी, पतिको नहीं पहचानती॥
वे संगमें पर-नारके, पड़कर मुझे भूले फिरें।
धनधान्य इज्जत अरु जवानी सब वहीं खोते फिरें॥

(१०)

दु:साध्य रोग अनेक उनके, तन बसे विश्राम कर।
आजकलका भी भरोसा है नहीं सखि! ध्यान धर!!
मां बापका मैं क्या बिगाड़ा, जो यहां व्याही मुझे।
कन्या अगर रहती न इतना दु:ख भी होता मुझे!!

(११)

कहने लगी छठी सखी, मर जाय मेरे बाप मां !
बेचकर मुझ सुक्ख मांगें, डाल दीनी भाड़ मां॥
अस्सी बरसका वृद्ध खूसट, दांत मुँहमें हैं नहीं।
श्वास कफ़से नींद सारी रात भी आती नहीं॥

(१२)

खों खों करें लाठी शरण लें, थूकते हरदम फिरें।
मानों जगतको इक अनोखा, नाच दिखलाते फिरें॥
इक घड़ी पलमें रांड करके, दुःख पूर्ण बनाएगा।
क्या करूँ मैं हाय! भगवन्! क्या कभी अपनाएगा॥

(१३)

कहने लगी अंतिम सखी प्रीतम कभी देखे नहीं।
मां बाप हैं पर नित्य कहते 'रांड तू तो होगई'॥
हे दीनबंधो! सौख्यसिंधो!! कुछ दया हमपर करो।
धिक्२! हमारा जगत जीवन, पापताप सभी हरो!!

(१४)

ना ज्ञान भी दीना हमें कुछ पेट जिससे भर सकें।
यौवन हमारा पूर्ण है सुख देख हम किस विध सकें!
हे प्रभो! वैधव्य दुख पावे न कोई लोकमें।
ज्ञान ऐसा दो हमें, पितु-मातको सब लोकमें!!

दोहा—

मतलब कहनेका यही, बर देखो वर वीर।
ज्ञानी और विवेकयुत, रहे अभय-मनधीर॥

हस्तिनापुर—में कार्तिकी मेलेपर दि० जैन शास्त्रार्थ संघ व दि० जैन छात्र सम्मेलनके अधिवेशन सफलतापूर्वक हुए थे। शास्त्रार्थ संघमें आर्यसमाजकी सत्यार्थ प्रकाश पुस्तकमेंसे जैन धर्म संबंधी असत्य बातें निकलवानेकी कार्रवाई करनेका तथा बंद पड़े हुए जैन शास्त्रभंडार खुलवानेकी कार्रवाई करनेका प्रस्ताव हुआ है। जिसके लिये १५००) भी भरे गये हैं। धन्यवाद!

मुफ्त मगा लीजिये—पं० परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ कृत "चर्चासागर समीक्षा" नामक ३०० पृष्ठकी पुस्तक पोस्टेजके लिये =)की टिकिट भेजकर विना मूल्य तुर्त मगा लीजिये।

मैनेजर, दिगम्बरजैन पुस्तकालय—सूरत।

द्वादशानुप्रेक्षा।

[रचयिता—विद्यार्थी कन्हैयालाल जैन—पपौरा]

अनित्य।

धन धान्य आदी प्रत्यक्ष जो हैं,
स्थित सदा वे नहिं एक भी हैं।
यथाऽभ्र होते क्षणमें प्रमाथी,
तथा कुटुम्बादिक हैं संगाथी॥
जो उपजै सो विनसही, जानो जगकी रीत।
सो सब अध्रुव जानके, करो धर्मसे प्रीत॥१॥

अशरण।

मृगेन्द्र मारै मृगको सु जैसे,
नरेन्द्र नरको दुष्काल तैसे।
सुमन्त्रतन्त्रादि विभूति भारी,
मृत्यू समै कोई न कार्यकारी॥
राजा रंक जो आदि हैं, खेचर आदि महन्त।
काल पाशके बीचमें, बचै न कोई सन्त॥२॥

संसार।

नटी सुबुद्धी करता कला ज्यों,
त्रिलोकमें जीव अनादि हो त्यों।
दुष्कर्म हेतू दुःखोंको सहता,
सुखी नहीं स्थिर कोई रहता॥
पंच परावर्तन करत, भ्रमत जीव संसार।
काललब्धिके आयतैं, आप करै भवपार॥३॥

एकत्व।

पैरे अकेला नर्कों मझार,
करै अकेला स्वर्गों विहार।
भजै अकेला दुष्कर्मका फल,
सजै अकेला निर्वाणका तल॥

अपनों और न कोई है, पुत्रादिक धनधान।
धर्म दयामय दूसरो, अपने करमें जान ॥ ४ ॥

अन्यत्व।

ज्यों क्षीर नीरादिक अर्थ प्यारे,
निश्चयसे जानों त्यों पुत्र प्यारे।
सम्बन्ध है यद्यपि पूर्वहीसे,
तथापि जानो व्यवहार हीसे ॥
कार्य पूर्तिके होयही, हाय सभी मिट जात।
स्वार्थसिद्धिके बाद ही, कोई न पूछे बात ॥५॥

अशुचि।

रजवीर्यसे ये सज्जै सुदेह,
पुरीष मूत्रादिकका है गेह।
नौ द्वारसे ये मलको बहाता,
क्यों जीव इससे नाता लगाता ॥
इस प्रकारसे जानकर, देह न कीजे प्रीत।
आतम रत्नकरण्डकी, रक्षा कर सब रीत ॥६॥

आस्रव।

रागादि भावों वश कर्म आते,
भोगोंमें जल्दी चेतन लुभाते।
आस्रव इसीको मनमें प्रमाना,
भ्रमे इसीसे यह जीव जानो ॥
होत नावमें छिद्रके, जल आवे चहुँओर।
तैसे आस्रव द्वारसे, कर्म बंध बहु जोर ॥७॥

संवर।

हुई जु श्रद्धा तत्त्वोंमें जियसे,
तजी जु वाञ्छा पुत्री सुतियसे।
जानो हे आत्मन् संवर सुसज्जन,
होता इसीसे दुष्कर्म रुद्धन ॥
नौका छिद्र निरोधसे, जैसे निर्जल होय।
विषय प्रवृत्ति निरोधसे, तैसे संवर होय ॥ ८ ॥

निर्जरा।

तपै तपोंको सुध्यानसे जो,
व्रतादि पाले नितज्ञानसे जो।
ध्याये चिदानंद निवार मोहा,
वैराग्य भावै कर दूर कोहा ॥
कर्म निर्जरा तप सहित, अविपाकी शुभ जान।
साधारण सब जीवके, सविपाकी पहिचान ॥९॥

लोक।

अनादिकालीन त्रिलोक भारी,
न कोई कर्त्ता न च है प्रहारी।
ऊर्ध्वादि भेदों त्रय भेद धारी,
शोभे सदा मानुज रूपकारी ॥
तेतालिस युत तीनसो, राजू गिरदा जान।
ऊँचो चौदह राज है, मनमें धरो प्रमान ॥१०॥

बोधिदुर्लभ।

दुर्लभ्य है नर पर्याय पाना,
तासे प्रदुर्लभ कुल उच्च माना।
ऐसा विचारै जब जीव भारी,
तभी हो जल्दी वश लोक पारी ॥
दुर्लभ ज्ञान विचारके, धर्म अमोलक मान।
सुलभ जान संसारको, तजो इसीसे ज्ञान ॥११॥

धर्म।

दुखसे निकाले सुखमें सुधार,
ये धर्म जानो जिय हितकार।
आगार आदी अनगार दूजा,
तदन्य सबको मिथ्या ही कीजा ॥
'लाल' मोहको त्यागकर, गहो धर्मका पंथ।
नरसे 'नारायण' करत, यती मोक्षका पंथ ॥१२॥

ले०—श्री रामकुमारजी] **वीर संकीर्तन।** [न्याय० हिन्दीप्रभाकर।

बहती अहिंसाकी न धारा विकट संकट कालमें।
तो कालिमा होती न ऐसी आज भारत भालमें॥
कैसे पनपते धर्मअंकुर आप यदि नहिं जन्मते।
हम इसलिए नमते तुम्हें सब शिवगते! हे सन्मते॥ १॥
हा प्रलयकेसे दृश्य थे अवतार जब तुमने लिया।
तूफान भारी मिटगया, प्रमुदित हुआ सबका हिया॥
हे ज्ञानभास्कर! प्रेमके शुभमार्गमें चलते हुए।
तुमने बचाए सैकड़ों पशु अग्निमें जलते हुए॥ २॥
हे हे नरोत्तम! दासताकी पुष्ट बेड़ी काटकर।
शिवपथ दिखाया था तुम्हींने पाप झाड़ी छांटकर॥
यदि शूद्रगणके अर्थ प्रभु हृदद्वार तब खुलता नहीं।
तो मोद उनको विश्वमें अन्यत्र फिर मिलता नहीं॥ ३॥
हा! शृंखलाओंसे कसे पशु यज्ञकुण्डोंके निकट।
तेरी प्रतीक्षा कर रहे थे रुदन था कैसा विकट?॥
तुम ब्रह्मचारी आगए रक्षार्थ करके गर्जना।
तेरी अहिंसा देशना थी दुष्ट जनको तर्जना॥ ४॥
कितना अलौकिक तर्क था पापी अहो! नम्रित हुए।
गौतम सरीखे हे प्रभो! तव ज्ञानसे विस्मित हुए॥
तुमने बहादी विश्वमें शुभ ज्ञानकी मन्दाकिनी।
यह जैन जाति बनी तुम्हींसे धन्य और सनाथनी॥ ५॥
जब और दर्शनकार तत्त्वोंसे निरे अनभिज्ञ थे।
तुमने दिखाया तत्त्वको प्रभु पूर्णतः सर्वज्ञ थे॥
स्याद्वादके सिद्धान्तने सबके दिलोंको हरलिया।
सूखे हुए वृष विपिनको जिसने हरा फिर कर दिया॥ ६॥
जगती तुम्हारे नामको जपती रहेगी प्यारसे।
'जय वीरकी' यह बोल निकलेंगे सदा मुख द्वारसे॥
अब भी तुम्हारी वह प्रभा दीपावलीके व्याजसे।
हर नगर मंदिर मध्यमें है दीपती हुलसाजसे॥ ७॥

जैनसमाचार संग्रह।

बाराबंकीमें—जैन रथोत्सव धूमधामसे होगया। उस समय अनेक सभायें व व्याख्यान होनेसे अवध प्रांतिक जैन परिषद स्थापन होगई। जिसमें सभापति ला० बरातीलालजी लखनऊ व मंत्री ला० कन्हैयालालजी बाराबंकी नियुक्त हुये हैं। वार्षिक अधिवेशनका भी कहींसे निमंत्रण न मिले तो अयोध्याजीपर हुआ करेगा। ३९०)का चंदा भी हुआ।

मुनिश्री जयसागरजी—मांगीतुंगीसे गजपंथाजी पधारे हैं। व मुनिश्री सूर्यसागरजी सोनागिरी पधारे हैं। आ० शांतिसागरजीका संघ जयपुरसे सांगानेर पधारा था।

सम्मेदशिखरजी—में ता० १८ जनवरी माघ वदी ७ को वेदीप्रतिष्ठा होगी।

अंबालामें—वेदीप्रतिष्ठा, कवि सम्मेलन, स्त्री सम्मेलन, सार्वधर्म सम्मेलन ता० १२ से १६ दिसम्बर तक होगया।

ललितपुर—से मोटर द्वारा दक्षिण यात्राका संघ पौष वदी ८ को निकलनेवाला था।

जबलपुर—में स्व० सिं० राजारामकी पत्नी बारीबहूने वहाके औषधालयको २१०००)का दान कर दिया है।

बड़ौत—दि० जैन हाईस्कूलका उत्सव हस्तिनापुरमें मेलेके समय हुआ था जिसमें साइन्स कक्षाके लिये ४०००) का चन्दा हुआ था।

सजा रद—सेठ गुलाबचन्द हीराचन्द दोशी सोलापुरको नोटिस भंगके कारण डेढ वर्षकी सजा व २००००) जुर्माना हुआ था वह सजा व जुर्माना बम्बई हाईकोर्टमें अपील होनेपर रद हो गया है।

पावापुरी केस—के फैसले पर श्वे० जैन समाजने पटना हाईकोर्टमें अपील की थी परन्तु वह अपील रद होकर दि० जैनोंकी ही विजय हुई है। अब श्वे० भाई विलायत अपील करनेवाले हैं ऐसा सुना जाता है।

लश्करमें—श्री० ब्र० सीतलप्रसादजीके उपदेशसे जैन विद्यालय खोलनेके लिये ९२३८) का चंदा हुआ है।

સુરતમાં—તા० ૪ ડિસેંબરે સુરત જિલ્લાના દિ० જૈનોમાંથી પ્રથમ હાઇકોર્ટ વકીલ બનાર ભા. ગીરધરલાલ પુનમચંદને દિ० જૈન યુવક સંઘ તરફથી ભા. ગમનલાલ સુતરીયાના પ્રમુખપદે માનપત્ર આપવામાં આવ્યું હતું

ખાલ—માં સં० ૧૯૮૭ માં હુમડ કોન્ફરંસ તથા હિતવર્ધક સભા થઇ હતી તેનો હિસાબ હજુ સુધી કેમ પ્રકટ નથી થતો ? રાજકોટની ઉઘરાણી વસુલ કેમ નથી થતી ? બાકી રકમ કાયમ રાખી તેનું વ્યાજ પાસના મંદિરની મરમ્મતમાં ખરચવું જોઇયે, શા० હીરાચંદ પદમશી ટોકરકાવાલા પાઠશાળા પાઠશાળા, મંદિર ને બોર્ડિંગ માટે કઢાયેલી રકમ હજુ કેમ નથી અપાતી ? એ માટે એ ગામના આગેવાનો કંઈ કરશે કે ?

પ્રતિમાજી આપીશું—અમદાવાદમાં માંડવીની પોળના ભોંયરા ૧ા મંદિરમાં ઘણી પ્રતિમાઓ છે માટે જ્યાં જરૂર હોય ત્યાં પ્રતિમાજી આપીશું. લખો કે મળો—ચુનીલાલ નાનચંદ—સાકરા (મહીકાંઠા)

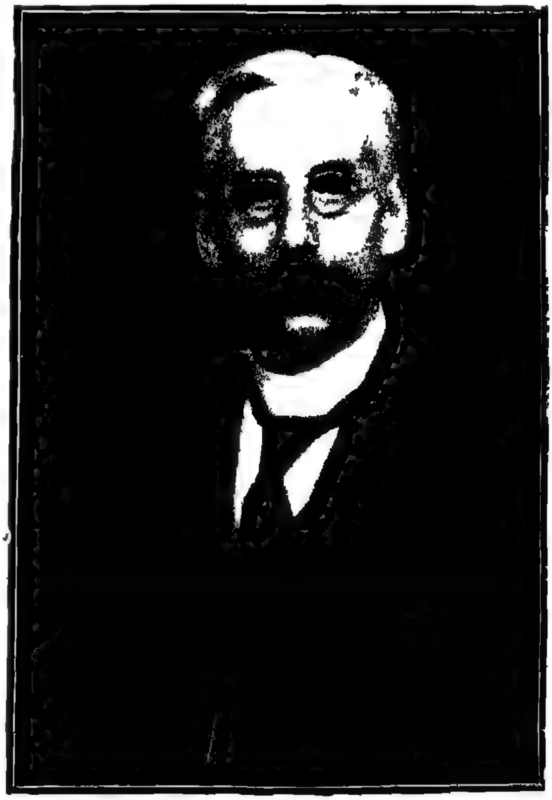
ઝાંબુડી—મા દીવાળીબાઈ શ્રાવિકાશ્રમનો મેળાવડો કોટડીયા મગનલાલ દેવચંદ ગઢડાવાળાના પ્રમુખપણા નીચે થયો હતો. જેમાં સોમચંદભાઇ, કિશોરબહેન વગેરેના ભાષણો થયા હતાં. તથા આશ્રમને કેટલીક સહાયતા મળી હતી.

સોનગઢ—દિ० જૈન બોર્ડિંગના ૧૩ વિદ્યાર્થીઓને સાથે લઇ શા० ચુનીલાલ ફુલચંદ સુપ્રિન્ટેન્ડન્ટ દીવાળીની રજામાં ડાકર, વડાલી, તારંગાજીની યાત્રાએ ગયા હતાં ત્યાંથી ખુબ સ્થળે સારો આવકાર મળ્યો હતો.



विद्यावारिधि जैनदर्शनदिवाकर
पं० चम्पतरायजी जैन बरिस्टर एट-लॉ।
हाल मुकाम लंडन।

आप भारत० दि० जैन परिषदके स्थायी सभापति हैं। अंग्रेजी भाषामें अनेक जैन ग्रन्थोंके लेखक हैं। तीर्थसेवा आपकी जगजाहिर है तथा अभी विलायतमें रहकर जैन धर्मका यथाशक्य प्रचार कर रहे हैं और चिकागो (अमेरिका) में होनेवाले सर्व धर्म सम्मेलनमें आप जैनोंकी ओरसे जानेवाले हैं।



Mr. Herbert Warren Jain, London.
श्री० हर्बर्ट वॉरन जैन-लंडन।

आपने करीब ३० वर्ष पहिलेसे सकुटुम्ब जैन धर्म धारण किया है व अनेक अंग्रेजी ट्रैक्ट जैन धर्मपर लिखे हैं व आजकल लंडनमें जैन लायब्रेरीके आप मंत्री हैं।

वीराष्टकम् [समस्या—कान्ताकटाक्षाक्षतः (क्षताः)]

(रचयिता:—व्याकरणाचार्य, न्यायशास्त्री पं० बंशीधरजी जैन न्यायतीर्थ, ब्यावर ।)

य: कल्याणकरो मतस्त्रिजगतो लोकस्य यं सेवने ।
　　येनाकारि मनोभवो गतमदो यस्मै भवः कुध्यति ॥
यस्मान्मोहमहाभटोऽपि विगतो यस्य प्रिया मुक्तिमा ।
　　यस्मिन्स्नेहगतः स नो भवति कः कान्ताकटाक्षाऽक्षतः ॥ १ ॥
यस्याधृष्यमनं मतं जनहितं सद्धर्मपाणोपक्रम ।
　　नम्रीभूतसुरेन्द्रवृन्दमुकुटे पादच्छलात्सङ्गतम् ॥
भव्यैरप्यनुगीयमानयशसा व्याक्रान्तलोकत्रयं ।
　　यस्माद्योऽस्ति नयार्पणां दधदनेकान्ताऽकटाऽऽक्षाऽक्षतः ॥ २ ॥
यस्य प्रेङ्खदखर्वकांतिमणिभिः प्रोद्योतितामातता—
　　मास्थानावनिभागतैर्दिविरतैः प्रक्रान्ततूर्यध्निकाम् ॥
तामालोक्य भवाङ्गभोगनिरता मिथ्यादृशोऽप्याहताः ।
　　सम्यक्त्वं विभवं भवन्ति कुनयैकान्ताऽऽकटाक्षाऽक्षताः ॥ ३ ॥
ये प्राक् त्रासमुपागता मतिहता वाण्याः कृपाण्याः परेऽ
　　नीतिज्ञानलवोद्धता गतपथास्तत्त्वार्थके सङ्गरे ॥
निक्षिप्ताः सुनयप्रमाणभुवि ते चेतश्चमत्कारिणो ।
　　येन ज्ञानप्रमादिनाः खलु कृताः कान्ताकटाक्षाऽक्षताः ॥ ४ ॥
यस्य प्रार्चनभक्तिचञ्चितमना भेकोऽपि तत्कोपिना ।
　　दैवेन प्रहतोऽप्यभूदमरभूकान्ताकटाक्षाऽऽक्षताः ॥

१—नयार्पणा नयविवक्षा दधत् दधानो योऽनेकान्त एकत्रवर्तमानसत्वासत्वादिरूपस्तस्य, अकट-कटति गच्छति नश्यतीति यावत्, कटम् (पचाद्यच्) विनशनशीलं, न कटमकटमविनाशि तच्च तद् आक्षम्, अक्ष आत्मा, स्वाभाव्येन तत्संबंधि-आक्षं ज्ञानम्, अकटाक्षं केवलज्ञानं, तेन अक्षतो व्याप्त इत्यर्थः । २—कुत्सिता नयाः कुनयास्तद्विषयभूतस्तद्रूपो वा य एकांतस्तस्य, आकटाक्षाः-ईषत्कटाक्षाः (आङ्—ईषदर्थे) तैरपि, अक्षता अविद्धा भवन्तीत्यन्वयः । ३—तत्त्वं स्वसिद्धान्तः शत्रुपक्षे-स्वाभिलाषारूपमर्थः प्रयोजनं यस्य स तस्मिन्, सङ्गरे प्रतिज्ञावाक्ये । अत्रेद तात्पर्यम् प्रतिज्ञावाक्यमुपन्यस्यन्त एव परे त्रासमुपगता न तु तैर्हेत्वाद्युपन्यस्तम्, पक्षे-सङ्गरे युद्धे । ४—अमरभूः स्वर्गस्तस्याः कान्ता अमराङ्गनास्तासां कटाक्षैराक्षतः—आ समन्तात् क्षतः ।

वीराष्टकम् [समस्या—कान्ताकटाक्षाक्षतः (क्षताः)]

(रचयिता:—व्याकरणाचार्य, न्यायशास्त्री पं० वंशीधरजी जैन न्यायतीर्थ, ब्यावर ।)

यः कल्याणकरो मतस्त्रिजगतो लोकश्च यं सेवते ।
येनाकारि मनोभवो गतमदो यस्मै भवः कुप्यति ॥
यस्मान्मोहमहाभटोऽपि विगतो यस्य प्रिया मुक्तिमा ।
यस्मिन्स्नेहगतः स नो भवति कः कान्ताकटाक्षाऽक्षतः ॥ १ ॥

यस्याधृष्यमतं मतं जनहितं सद्धर्मपाणोपक्रम् ।
नम्रीभूतसुरेन्द्रवृन्दमुकुटे पादच्छलात्सङ्गतम् ॥
भव्यैरप्यनुगीयमानयशसा व्याक्रान्तलोकत्रयं ।
यस्माद्योऽस्ति नयार्पणों[1] दधदनेकान्ताऽकटाऽऽक्षाऽक्षतः ॥ २ ॥

यस्य प्रेङ्खदखर्वकांतिमणिभिः प्रोद्योतितामातता—
मास्थानावनिमागतैर्दिविरतैः प्रक्रान्ततूर्यत्रिकाम् ॥
तामालोक्य भवाङ्गभोगनिरता मिथ्यादृशोऽप्याहताः ।
सम्यक्त्वं विभवं भवन्ति कुनयैकान्ताऽऽकटाक्षाऽक्षताः[2] ॥ ३ ॥

ये प्राक् त्रासमुपागता प्रतिहता वाण्याः कृपाण्याः परेऽ
नीतिज्ञानलवोद्धता गतपयास्तत्त्वार्थके[3] सङ्गरे ॥
निक्षिप्ताः सुनयप्रवाणभुवि ते येनश्चमत्कारिणो ।
येन ज्ञानसमाहिताः खलु कृताः कान्ताकटाक्षाऽक्षताः ॥ ४ ॥

यस्य प्रार्थनभक्तिचञ्चितमना भेकोऽपि तत्कोपिना ।
दैवेन प्रहतोऽप्यभूदमरभूकान्ताकटाक्षाऽऽक्षताः[4] ॥

१—नयार्पणा नयविवक्षां दधत् दधानो योऽनेकान्तः एकत्रवर्तमानसत्वासत्वादिरूपस्तस्य, अकट-कटति गच्छति नश्यतीति यावत्, कटम् (पचाद्यच्) विनशनशीलं, न कटमकटमविनाशि तच्च तद् आक्षम्, अक्ष आत्मा, स्वाभाव्येन तत्संबधि-आक्षं ज्ञानम्, अकटाक्षं केवलज्ञानं, तेन अक्षतो व्याप्त इत्यर्थः । २—कुत्सिता नयाः कुनयास्तद्विषयभूतस्तद्रूपो वा य एकातस्तस्य, आकटाक्षाः-ईषत्कटाक्षाः (आङ्—ईषदर्थे) तैरपि, अक्षता अविद्धा भवन्तीत्यन्वयः । ३—तत्व स्वसिद्धान्तः शत्रुपक्षे-स्वाभिलाषारूपमर्थः प्रयोजनं यस्य स तस्मिन्, सङ्गरे प्रतिज्ञावाक्ये । अत्रेद तात्पर्यम् प्रतिज्ञावाक्यमुपन्यस्यन्त एव परे त्रासमुपगता न तु तैर्हेत्वाद्युपन्यस्तम्, पक्षे-सङ्गरे युद्धे । ४—अमरभूः स्वर्गस्तस्याः कान्ता अमराङ्गनास्तासां कटाक्षैराक्षतः—आ समन्तात् क्षतः ।

तत् किं यस्य पदार्चने कृतधियः सामोदभावेन हि।
जायन्ते भवयोषितां शिवरमाकान्ताः कटाक्षाऽक्षताः ॥ ५ ॥
यस्याग्रे भ्रमरावलीव कमले भव्यावलीमन्दिरे।
सम्फुल्लकमलावलीं परिकनदीपावलीं विन्दती ॥
चेतस्याप्तमुदावलीति तु वरं चित्रं विचित्रं निर्वेद-
मेकां कामवशाऽपरा भवति नो कान्ताकटाक्षाक्षता ॥ ६ ॥
वीरः सोऽस्तु मम प्रसन्नमतये तं सङ्गतोऽहं ततः।
सूक्तं तेन हितं मतं जगदतो वीराय तस्मै नमः ॥
अन्यो नास्ति ततः प्रियङ्कर इतस्तस्य स्मृतिर्मे हृदि।
वीरे तत्र गतो भवान्ययमहं कान्ताकटाक्षाऽक्षतः ॥ ७ ॥
वं-शौभाग्यकरोऽप्यसौ नरपतेः सिद्धार्थकस्यात्मभूः।
शी-लेनाधिकृताहतोऽपि तपसास्त्रेण प्रकृन्त कर्मणाम् ॥
ध-न्यानामिति विस्मयं विदधती पूर्वं तु पश्चात्त प्रभो-
र-स्येयं कृतिरातनोतु कर्मनक्काऽन्ताऽकटाक्षाऽऽक्षतः ॥ ८ ॥

१–अद्य श्री वीरभगवतो निर्वाणदिने। २–जलविशिष्टसरोवरे, ३–न्विति नन्वर्थे। ४–भ्रमरावली। ५–भव्यावली। ६–कान्तानां कटाक्षैः आक्षता–इतिच्छेदस्तस्य आ–ईषदपि क्षता विद्धा नो भवतीत्यर्थः इति चित्रम्, भ्रमरावलीभव्यावलीयुगलस्य प्रदर्शितसादृश्येऽपि विरुद्धकरणमिति चित्रत्वं स्पष्टमेव। किञ्च कान्तानां कटाक्षैः अक्षता–इतिच्छेदः तस्य न क्षतेति अक्षता–अविद्धा नो भवतीतत्यर्थः, इति विचित्रं विगतचित्रमित्यर्थः। भ्रमरावलीभव्यावलीद्वयस्य यत्पूर्वं सादृश्यं प्रदर्शितं तदधुनापि वर्तत एवेति चित्रत्वाभाव। परमे तस्मिन्नर्थे भव्यावल्यपि, वीरभगवतो जिनालयं सम्प्राप्तापि, भगवतो निर्वाणमहोत्सवं विदधानापि, तत्रामोदं दधानापि कान्ताकटाक्षैरक्षता न भवतीति विशेषेण चित्रतेति। ७–प्रकर्षेण कृन्तति छिनत्तीति प्रकृत। ८–नश्यतीति नक्, न नक् अनक्, अविनाशि, अनन्तमिति यावत्, तच्च तत्कं सुखं, तद् अन्तः स्वभावो यस्येति अनक्कान्तः अत्र अनन्तसुखसाहचर्याद् अनन्तज्ञानादिकमपि संग्रहीतं भवतीति अनन्तचतुष्टयस्वरूप इति तात्पर्यम्, स चासौ अथ विष्णुर्व्यापक इत्यर्थः। भगवतो वीरस्य सकलपदार्थविषयज्ञानवित्वात् व्यापकत्वमक्षतम् इति, अनक्कान्तः भगवान् वीर एव तस्य कटाक्षाः तेभ्यो जातं यद् आक्षं ज्ञानं तस्मादिति (तसिल् प्रत्ययः) तस्माद्धेतोः अरग प्रभोरियमस्य श्लोकस्य पूर्वार्धे दर्शिता कृतिः क–सुखमातनोतु विस्तारयतु, धन्यानामिति पूर्वेण सम्बन्धः। पूर्वं विस्मयकरी पश्चात्तु भगवत्प्रसादाज्ज्ञानलाभात् सुखकरी भवतु कृतिरियं भगवत इति भाव। एवं वंशीधरस्येयं वीरस्तुतिरूपा कृतिर्भगवतः प्रसादजन्यज्ञानलाभात् सुखकारी भवतु धन्यानामित्यपि बोध्यम्।

कर्तव्यमस्माकम् ।

[ले०—'विद्यार्थी' राजकुमारो जैनः—पपौरा।]

पाठकमहोदयाः ! विदाङ्कुर्वन्तु भवन्तः यच्छ्रीमदर्हत्पार्श्वनाथस्य मोक्षंगते यदा तत्प्रवर्त्तितजैनधर्मस्य 'न धर्मो धार्मिकैर्विना' इत्युक्तेस्तदुपदिष्टधर्मधारकधर्मात्मनामभावादभावो जातस्तदा केचन जनाः स्वकीयकर्तव्याकर्तव्यविचारविरहिताः स्वधर्मविमुखाश्च सन्तो नराश्वमेधादिक यज्ञमारेभिरे। केचनातिदुःखदनरकपातनीं बलिदानादिहिंसाञ्च चक्रुः इत्येव तदा कतिचित्प्रदेशाः रक्तगाधपूरितप्रवाहाः सरित इव लोचनपथगता अभवन्।

एवमन्यायमिथ्यात्वमार्गप्रवृत्तिः हिंसाप्रवृत्तिश्च यदा जाता तदाऽजनि खलु कुण्डलपुराभिधे ग्रामे नीतिधर्मसारपारगतस्य आवश्यकनित्यषट्कर्मनिरतस्य आनम्रराजकशिरोमणिमरीचिमालातपप्रसरचुम्बितपादपद्मस्य निजमतिविक्रमसमाधिनार्थस्य नीतिमार्गचरणानन्दितनिखिलप्रजावर्गस्य त्रिभुवनख्यातमनोहरधवलकीर्तिलतस्य दण्डितदण्ड्यवर्गस्य धरणीरमणस्य सिद्धार्थस्य जिनधर्मे रतचित्ताया पतिव्रताया व्रतशीलसंयमादिगुणपराजितान्यवनितागणायाः षट्कर्मनिरतायाः राज्याः त्रिशलायाश्च स्वजन्मना नारकाणामपि क्षणमात्रसम्पादितसौख्यः, मतिश्रुतावधिज्ञानज्योतिर्जुष्टः, आनन्दितसर्वलोकः, विनयैकधामा श्रीवर्द्धमानाख्यस्तनयः।

देवस्यास्य पञ्चमे निर्वाणमङ्गलमहोत्सवे समागतैः सुमनोभिस्तदीयनिर्वाणानन्तरं मणिमयैः प्रदीपैः निर्वाणमहोत्सवः कृत आसीदित्यार्षवचनं श्रद्दधानाः अस्मदादयः जातमेतद्दिने स्वातिनक्षत्रे विश्वनिखिलसत्वहितकारकस्य विविधविख्यातराष्ट्रोद्धारकस्य तस्यैव श्रीवर्द्धमानस्य निर्वाणमितिमन्यमानाः सन्तोऽद्य श्रीमहावीरनिर्वाणोत्सवं 'दीपमालिके'ति पर्वणामनन्ति।

किन्तु महद्दुःखमिदं यत्साम्प्रतमस्माभिर्दीपप्रज्वालनं, द्यूतक्रीडनं, निर्वाणमोदकार्पणमेव पर्वसार्थक्यं कर्तव्यपूर्णत्वञ्च कल्पितम्! तात्पर्यमिदं यत् संप्रति जनाः प्रकृतपर्वकर्तव्यमजानमानाः द्यूतक्रीडनादिमिथ्याप्रवृत्तिं कुर्वन्ति जानन्ति चैतदेवास्माकं कर्तव्यम्!

तत्परित्यागेच्छुकप्राणिनः आवश्यकमिदं कर्तव्यं यदसौ पूर्वं रूप्यकादिना द्यूतक्रीडनं परित्यज्य पश्चात् सामान्यजयपराजयीयक्रीडनादिकमपि न कुर्यात्। यतोऽनेन केवलं रागद्वेषवृद्धिरेवाविर्भवति न हि कथंचिच्छान्तिलाभः स्यात्। यतो नहि रागद्वेषौ शान्तिहेतुकौ गायेते, स्याच्च रागद्वेषवृद्धिरनेनद्यूतक्रीडनेन। अतः सुखार्थिना नहीदं द्यूतादिक्रीडनं विधेयम्। यतः सुखं निराकुलावस्थायामेव भवति, द्यूतादिक्रीडने च न निराकुलावस्था अत एव निराकुलमोक्षसुखार्थिना तत्परिहारोऽवश्यं विधेयः येन निराकुलसुखावाप्तिः स्यात्।

यस्य च द्यूते मनः प्रसक्तं तस्य पुण्यप्रभावोद्भवमपि यशो नश्यति, उद्योगश्चास्तत्वमुपैति, विद्या विलीयते, प्रतिभाशालिनी प्रज्ञा न संतिष्ठते, नैपुण्यञ्च नितरां विनाशपदवीं प्राप्नोति। द्यूतं निःशेषव्यसनाश्रयं, योग्यायोग्यविवेकदृष्टितिमिरं, सद्धर्मविध्वंसकं, चित्ताकुलताकरं, दुष्टाशयप्रेरकं, दुर्गुणमात्रमूलमफलञ्च विज्ञाय सुखार्थिभिर्बुद्धिमद्भिर्विद्यार्थिभिश्चावश्यमस्य परिहारो विधेयः।

मिथ्यात्वप्रचारश्चापि प्रकृतपर्वदिनेषु प्रायः सर्वत्र दृष्टिपथं प्राप्नोति। यत् केचन जनाः स्वगृहभित्तौ निर्मितं द्विरदवदनं श्रीगणेशमर्चन्ति, अन्ये च चतुष्करिणीं लक्ष्मीं पूजयन्तीति सर्वमिदं मिथ्यात्वम्। जैनेतराणां कर्तव्यत्वेन प्रसिद्धा रूढिश्चेतीयं तेषामेव ग्राह्या, जैनानान्तु सर्वथैव त्याज्या। यतो न हि मिथ्यात्वप्रचारेण मिथ्यात्वपरिसेवनेन वा जीवाना-

श्रीदेशभूषणकुलभूषणचरित्रसारः।

[लेखिका:—श्रीमती सौ० पं० चिमम्मादेवी जैन काव्यतीर्थ–नागपुर ।]

श्रीदेशभूषणं नत्वा, तथा च कुलभूषणम्॥
तयोश्चरितसारं हि, वच्मि भक्त्यनुरोधतः॥ १ ॥
आसीत्सिद्धार्थनगरे, राजा क्षेमन्धरः पुरा॥
महिषी विश्रुता तस्य, विमला ह्यमलागुणा॥ २ ॥
आनन्दकन्दलौ जातौ, दम्पत्योः कुलभूषणौ॥
देशभूषण इत्येक, इतरः कुलभूषणः॥ ३ ॥
प्रथमवाश्रमं भोक्तुं, प्राहिणोत्तौ कुमारकौ॥
गुरोः सागरपूर्वस्य, घोषस्य निकटे पिता॥ ४ ॥
सुतीक्ष्णप्रतिभावन्ता, वह्वायाधीत्य पण्डितौ॥
जातावखिलविद्याया, पुरा विहितपुण्यतः॥ ५ ॥
पितरावेतदालोक्य, विवाहमगल तयोः॥
कर्तव्यमिति मत्वा हि, तत्सन्नाह समुद्यतौ॥ ६ ॥

मिष्टसंप्राप्त्यादिसुखावाप्तिर्भवितुमर्हा । यतोऽस्तीट-मपि वचनम् यत् सर्पमरणन्तु वरं किंतु न वरीवर्तते कुगुरुसेवनादिकं मिथ्यात्वसेवनं क्षेमंकरम् ।

अतोऽस्माकं सर्वेषामेवैतत्कर्त्तव्य यत्सर्वे एकीभूय मिथः द्वेषादिपरित्यागं कुर्वतः पूजाध्ययनध्यानदा-नादिपुण्यकार्यरताः श्री महावीरस्वामिगुणगानपरा-श्च स्युः ।

तथा कर्त्तव्यैवं भावना यत्कदा तत्समयः स्याद्यदा वयमपि तद्गुणविशिष्टाः स्याम इति । 'मिथ्यात्वसम न किञ्चित्पापमस्ति' तथा 'सम्यक्त्वसमं न किञ्चित्पुण्यमस्ति' इति ससारपरिभ्रमणपरम्परा-प्रवर्त्तकं मिथ्यात्व परिहाय, कर्त्तव्यः श्री वीरादेशस्य प्रचारः सामाजिककुरीतिनिवारणं, पारस्परिकसं-गठन, महावीरमण्डलस्थापनादिकश्चानीवावश्यक कर्त्तव्यम् ।

स्वकीयसुतयोर्योग्ये, कन्ये राज्ञा विनिश्चिते॥
तौ हि द्रष्टु समुत्कण्ठौ, कुमारौ निर्गतौ ततः॥ ७ ॥
उभौ गमनवेलायां, दृष्ट्वा वातायने स्थिताम्॥
भगिनीमुत्तमाचान्त्या, कमलां कमलाननाम्॥ ८ ॥
पुष्पचापेन पिष्टौ तौ, परिणेतुङ्क्लिलेषतु.॥
अहम्पूर्वमहम्पूर्व,- मिति चेर्षासमन्वितौ॥ ९ ॥
सुविचारविमूढा हि, मदनासक्तमानसाः॥
इत्यूचुः पौरजाः सर्वे, विलोक्य नृपनन्दनौ॥ १० ॥
कुतोऽपि भगिनीज्ञानात्, सजातावतिविस्मयौ॥
अस्थाने पतितादबुद्धे, पश्चात्तापश्च चक्रतुः॥ ११ ॥
धिक् ता च मदनं चापि, धिगावा ह्यविवेकिनौ॥
आप्नुत. स्मेति वैराग्य, भाव्यधीनं हि मानसम्॥ १२ ॥
दर्शं दर्शं किलादर्शं, मनुजः सम्मुखे स्थितम्॥
यथा मुखस्य मलिन, परिमार्ष्टुमियेषति॥ १३ ॥
अमू विवेकमुकुर, तथाकालस्य लब्धितः॥
लब्ध्वा संसारकूपाग, न्निर्गन्तुङ्क्लिलेषतुः॥ १४ ॥
पितरौ तोषयित्वा स्वौ, दीक्षाश्चाशाम्बरीन्तत.॥
धृत्वा तौ तेपतुर्घोरं, तप.कीनाशनाशकम्॥ १५ ॥
भवान्तरारिदैत्येन, सहित्वोपद्रवं कृतं॥
विनाश्य घातिकर्माणि, प्राप्तौ केवलिनः पदम्॥ १६ ॥
पश्चाच्चत्वारि कर्माणि, वशिष्टानि विनाश्य हि॥
गिरेः कुन्थलपूर्वाच्च, गतिन्तामगतिङ्गतौ॥ १७ ॥
सांप्रतं दर्शन कृत्वा, तीर्थस्थानस्य तस्य च॥
स्वजन्मनः सुमाफल्य, विदधन्ते विवेकिनः॥ १८ ॥
योगत्रयेण तस्माच्च, सदात्महितकांक्षिभिः॥
प्रत्यक्षं च परोक्ष च, क्रियतां स्तवनं गिरेः॥ १९ ॥

निर्वाणसमयेऽस्मदीयभावः कर्तव्यश्च ।

महावीर-दशकं ।

[रचयिता:—पं० रवीन्द्रनाथ जैन न्यायतीर्थ–रोहतक।]

(१)

मुक्ति यदा प्राप हि वर्द्धमानः ।
ज्ञातं जनैरन्यनृणाम्मुखेभ्यः ॥
द्वन्दं तदा सर्वजनस्य चित्ते ।
हर्षस्य क्षोभस्य च संबभूव ।

(२)

शय्या परित्यज्य विहाय कार्यं ।
गेहस्य सर्वे बहुमोदयुक्ताः ॥
पावापुरोद्यानमवाप्नुवन्तो ।
निर्वाणकल्याणकदर्शनार्थं ॥

(३)

कर्माणि निर्जित्य शिव प्रयाति ।
मोदस्य भात्रे हि निमित्तमेतत् ॥
क्षुब्धाः 'प्रयाणे यदि चेद्विलम्ब' ।
प्रभोस्तदा दर्शनवञ्चिताः स्याम ॥

(४)

एकत्रितास्तत्र सुरासुरा हि ।
सख्यामतीताश्च मनुष्यवर्गाः ॥
सम्यक्प्रकारेण विधाय पूजा ।
गेहं गताः द्वन्दमवाप्नुवन्तः ॥

(५)

नूनं प्रभोरद्य विहीन जाताः,
तीर्थंकरोऽग्रेपि भवेन्न कश्चित् ।
जीवाः कुतो दुःखमकालमध्ये,
धर्मोपदेशञ्च कथ लभेयुः ॥

(६)

वीरस्य ज्ञाने खलु लोकमेतत्,
प्रत्यक्षरूपं युगपद्बभासे ।
लोकास्तदीये पथि गच्छमाना–
रज्ञानतोऽधर्मपथ लभेयु. ॥

(७)

मानात्प्रमादादसमर्थतोऽपि ।
स्याद्वादमार्गाश्रयमश्रिताद्वा ।
मार्गाः कुदृग्भि' बहवो भवेयु–
रेतत्स्मरन्तो बहु शोकयुक्ताः ॥

(८)

सन्त्यत्र ये के वलिनस्तथापि,
द्वित्राः भवेयुः श्रुतपारगाश्च ।
वीरोपदेशानधिगम्य तेभ्यः,
तेषा स्वरूपं श्रुतरूप कार्यं ॥

(९)

क्षुब्धा' प्रहृष्टाः खलु शोकयुक्ता. ।
धर्मस्य ह्रासं परिज्ञाय केचित् ॥
तत्रैव दीक्षाञ्च गृहीतवन्तः ।
स्वस्यैव श्रेयोऽर्थहितैषिणो ये ॥

(१०)

अद्यापि ये जैनकुले प्रसूताः,
कार्यञ्च तेषामधुनेदमेतत् ।
आशां परित्यज्य शनैः शनैः स्वां,
वीरोपदिष्टे पथि ते व्रजेयुः ॥

महावीराष्टकम् ।

[रचयिता—राजकुमार जैन वि० बनारस।]

सौवर्णतुल्यकमनीयशरीरकांति. ।
इक्ष्वाकुवंशतरणि: समभूदिलायाम् ॥
वीरोऽत्रकुण्डलपुरे त्रिशलातनूज. ।
त्रैलोक्यसमदविधौ शशिकांतितुल्य: ॥ १ ॥
सिद्धार्थराजात्मजवीरनामा,
जातो हि चन्द्रस्तिमिर प्रमार्ष्टुम् ।
यस्य प्रभावेण सुखं हि लब्ध,
पातालवासैरपि दौर्गत्यै: ॥ २ ॥
त्वरितवेपितपीठसुराधिभू-
रवधिना जिनजन्म विबुद्धवान् ।
अधिगतं सहदर्शनलिप्सुभि.,
सुरवरैर्विहितानतिविभ्रमै. ॥ ३ ॥
भवाब्धिमग्नस्य जगत्य हेतो-
स्तत्याज सम्बन्धमनित्यदेहात् ।
मत्वा सुखं भगुरविद्युदाभ,
सद्य: प्रपेदे हृदये विरक्तिम् ॥ ४ ॥
महावीरं धीरं निखिलसुषमाराजिततनुम् ।
गणेशं गौरीशं हरिमृडमनुपूज्य सुखकरम् ॥
जिनं भूयो भूयो निखिलभवदु:खप्रशमदम् ।
वशीभूतैश्चित्तैर्विजितमदन स्तौमि सतत ॥५॥
पावापुरीयधरणिप्रटतेषु दग्धा,
अष्टौ कुकर्मरिपव: खलु येन पुण्या ।
लोकात्मनीन वचसा तमसां विनाशा-
ल्लब्धं हि केवलमयं ध्रुवमोक्षसौख्यम् ॥६॥
कार्तिककृष्णपक्षान्ते लब्धा कैवल्यवल्लभा ।
उद्भवो विहितस्तत्र समायातसुराधिपै: ॥७॥
वसुगुणै: क्षपिताष्टकुकर्मभि-
र्विजयवाद्यमिव ध्वनितं जिनं ।
तव वृषौषधिसेवनतत्परा-
नवतु वीर जिनेश्वर न: सदा ॥ ८ ॥

समाज सेवा ।

(ले०—प० कमलकुमारजी जैन शास्त्री—हरदा)

संसारमें प्रत्येक मनुष्य श्रेष्ठता प्राप्त करनेकी अभिलाषा करता है, परन्तु प्रत्येककी इच्छा फलीभूत नहीं होती। इसका मुख्य कारण यही है कि इच्छित श्रेष्ठताका मूल्य देनेको वे तैयार नहीं होते हैं! आजकल इस देशका खासकर जैनसमाजका सुशिक्षित वर्ग समाजोन्नतिकी चरचा करता है सही, परन्तु समाजोन्नति करनेवालोंमें आवश्यकीय सेवा बुद्धि और आत्मभोगकी वृत्तिकी बहुत कमी दिखाई पड़ती है। हमारे कहनेका यह आशय कदापि नहीं है कि ऐसे गुण संपन्नव्यक्तियों अथवा संस्थाओंका सर्वथा अभाव है; परन्तु इनी गिनी जैन समाजकी संख्याकी तरफ देखते हुए ऐसे पुरुष और संस्थायें नहींके समान हैं।

परहितके प्रयास रूप सेवा जितने अंशमें निष्कामना पूर्वक होती है उतने ही अंशमें उसकी योजना शीघ्र फलदायी और उच्च परिणाम वाली होती है। प्रात:स्मरणीय आचार्य कहते आये हैं कि परसेवाका सत्य स्वरूप अपनी ही सेवा है। क्योंकि समाजके हितमें व्यक्तिका हित समाया ही रहता है। प्रत्येक धर्म खासकर जैनधर्म अहिंसा तथा दयाकी पूर्ण शिक्षा देता है, परन्तु "कष्ट न देना" इस निषेध वाचक सद्गुणको सर्वस्व मानकर वहीं न अटकते हुए मनुष्यको उसके पश्चातका ही कृत्य जो सेवा है उसे ग्रहण करनेके लिए सदैव तत्पर होना चाहिये।

"दूसरोंकी सेवा करनेके प्रसंगोंको प्राप्त करनेके लिये हम एक पैरसे तैयार हैं" ऐसी वृत्ति यदि समाजके प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें दृढ़ होजावे तो उस समाजका अभ्युदय क्यों न होगा? ऐसे

उदार व्यवहारका पाठ हममेंसे थोड़े ही ने पढ़ा है ! इसमें कोई आश्चर्य नहीं है; क्योंकि इस महामंत्रसे अपने कानोंको पवित्र करनेवाले गुरुओंकी भी न्यूनता दिखाई पड़ती है ।

वे जो दुःख, आधीनता और लाचारी मिटानेके लिये प्रयत्न करते हैं और खासकर वे जो गरीबोंको स्वाश्रयी बनानेमें परिश्रम पूर्वक सहायता देते हैं, वे सच्चे परदुःख भंजन सच्चे जनवल्लभ हैं ।

अनुदारता और लोभवृत्ति ऐसे कामोंमें हाथको रोकती है, नहीं तो मनुष्यकी स्थिति चाहे कैसी ही क्यों न हो परन्तु प्रत्येक मनुष्य अपनी स्थितिके अनुसार अपने द्रव्यसे, शरीरसे, संकल्पसे, समयसे, कुछ न कुछ सेवा कर ही सक्ता है ।

सेवाके कामोंमें प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ बहाने निकाला ही करता है । इतना ही नहीं वरन् बहुतसे मनुष्य अंतसमयतक यों ही बहस करनेमें लगे रहते हैं; और अंतमें कुछ भी सार्थकताके किये बिना खाली हाथ चले जाते है ।

महाशयों ! 'यह नहीं है, और वह नहीं है । ऐसा होता तो वैसा करते' ऐसी वे सिर पैरकी व्यर्थ बातें करनेमें क्यों लगे रहते हो ? तुम्हें जो थोड़ा या बहुत प्राप्त है उसीका तुमसे हिसाब लिया जावेगा। तुमको जो नहीं मिला है उसका तुमसे हिसाब पूछनेवाला कोई नहीं है, इसलिये जितना तुम्हारे पास है उसीमेंसे उसके प्रमाणके अनुसार उपयोगमें लाओ। देश और समाज तुम्हारी शक्तिके अनुसार ही तुमसे आशा करते हैं, विशेष कदापि नहीं। तुमको जितनी बुद्धि, जितना बल, जितना धन, जितना अधिकार, जितनी व्यवस्थाका भंडार दृष्टीकी तरह सौंपा गया है उतने हीका हिसाब तुमसे पूछा जायगा । उस समय तुम्हारा यह उत्तर कि मेरे पास आवश्यकीय धन न था, जो होता तो मैं पाठशालाएं खोलता, तत्वबोधक ग्रन्थ रचवाता समाज-सुधारके प्रयत्नोंको दृढ़ करता इत्यादि, कुछ काम न आवेगा ! तुम्हारे पास ही सादगीसे जीवन निर्वाह कर बचे हुए तीन पैसोंमेंसे तेरह पैसे क्यों नहीं खर्च करते ! ऐसा तो तुमसे कोई पूंछता ही नहीं है । परन्तु पूंछा यही जाता है कि वे तीन पैसे क्यों गाड़ रखते हो या शौकीनी विषयाशक्तिमें उड़ा देते हो; विद्या प्रचार, धर्मनीति, समाज सुधार इत्यादिमें जो बड़ी२ रकमोंकी आवश्यक्ता है वे तुम्हारे जैसोंके तीन२ पैसोंसे ही पूरी होंगी; क्योंकि बूंद २ जलसे समुद्र भर जाता है । तुमसे पूछना है कि जिस दरिद्रिका जीवन मात्र एक पैसेके चनोंसे चल सकता है ऐसे दरिद्रिको धमकाकर निकालकर अनावश्यक पानकी पत्तियां खाकर थूक देनेमें बीड़ीका धुआ उड़ा देनेमें और यशप्राप्त्यर्थ फिजूल खर्ची करदेनेमें तुम्हें जो आनन्द आया वह सेवा धर्ममें क्यों न आया । जो दो मन मिट्टीके लालनपालनमें ही सब आनंद मान बैठे हैं, और जिन्हें ऊपर देखनेमें ही कष्ट होता है वे पशुवत् हैं और सो भी जंगलमें रहने लायक पशु; क्योंकि जंगली पशु अपने पेटके लिए दूसरे प्राणियोंका शिकार करते हैं। उसी प्रकार पेट भरनेवाले मनुष्य बाहरसे चाहे जैसे निर्दोष दिखाई देते हों तो पेट भरनेके लिए ही जीवन है, यह विचार होनेसे आवश्यक्ता पड़नेपर दूसरोंके पेटपर लात मारनेमें कदापि नहीं चूकेंगे। ऐसे मनुष्य समाजको भाररूप ही नहीं वरन भयरूप हैं। जो मनुष्य समाजके बीचमें रहना चाहते हैं उन्हें याद रखना चाहिये कि उन्हें समाजकी सेवा करनेके वचनपत्रोंपर अवश्यमेव सही करना पडेगी । सेवा समाजकी या अपनी दोनोंकी हितकारिणी है । सेवा जगद्वत्सल माता है । सेवा देवोंका देवत्व है, मनुष्योंका मनुष्यत्व है, सेवा परम धर्म है ।

अमूल्य रत्न।

(संकलयिता–विद्यारत्न प० कमलकुमार जैन शास्त्री–हरदा।)

(१) एक आदर्श जननी सौ उस्तादोंसे भी श्रेष्ठ है। "जार्ज हर्बर्ट"

(२) स्त्री पुरुषकी अर्द्धांगिनी है, उसकी सर्व श्रेष्ठ मित्र है, धर्म अर्थ और कामका मूल है। जो उसका अपमान करता है इसका नाश होता है। घरका धन और उसकी शोभा भी स्त्री है। इसलिये सदा उसकी रक्षा करनी चाहिये। "महाभारत"

(३) तेरा स्वर्ग तेरी माताके चरणोंमें है। "मुहम्मद साहब"

(४) मैं जो कुछ करता हूं और जैसा भी हो सक्ता हू वह सब देवी प्रकृतिवाली मेरी माताका ही प्रसाद है! "अब्राहिम लिंकन"

(५) पातिव्रत ही स्त्रियोंका मुख्य सद्गुण है! "एडिसन"

(६) माताके प्रेमका अभाव क्या किसी और वस्तुसे पूरा होसक्ता है! "वाशिंगटन अर्हिङ्ग"

(७) स्त्री मनुष्यका दाहिना हाथ है। "ल्यामर टाइन"

(८) हे परमात्माके भक्तो! सब्र करो, शान्ति रखो, दूसरोंसे शान्तिमें जाओ। अपने निश्चयपर दृढ़ रहो और खुदा (परमेश्वर) का ध्यान रखो, बस यही सुखका मार्ग है। "कुरान"

(९) देवता भी उससे ईर्ष्या करते हैं जो एक कुशल सारथीकी तरह अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता है। जो निरभिमान है, निर्विकार है। "भगवान बुद्ध"

(१०) यदि स्त्री स्त्रीत्वके गुणोंसे रहित हो तो और सब नियामतोंके होते हुए भी गार्हस्थ्य जीवन व्यर्थ है, कंटकाकीर्ण है। यदि किसीकी स्त्री सुयोग्य है तो फिर ऐसी कौनसी चीज है जो उसके पास मौजूद नहीं? और स्त्रीमें योग्यता नहीं तो उसके पास है ही क्या चीज? "ऋषि तिरुवल्लुवर"

(११) बालक सुन्दर हो या कुरूप वह माताके अक्षय प्रेमका हिस्सेदार है! "हर्टर"

(१२) अपने स्थान और अधिकारको ग्रहण करो वहा तुम्हारी संपत्ति है, दूसरे मनुष्य स्वयं सम्मत होजायगे। ससार न्यायवान है, वह प्रत्येक मनुष्यको अपना मास्तित्व जमानेकी पूर्ण स्वाधीनता देता है! "एम रसन"

(१३) वीरत्वका वास्तविक अर्थ 'पुरुषार्थ' है। और इसमें उन सब गुणोंका समावेश है जो मनुष्योचित है, जिनके कारण मनुष्य वास्तविक मनुष्य है। "प्रो० बद्रीनाथ वर्म्मा"

(१४) अस्पतालों और चिकित्सकोंका बढ़ना सच्ची सभ्यताका चिह्न नहीं है। हम शरीरकी अपेक्षा आत्माका घाव भरना चाहते हैं। यद्यपि मैं अपने डाक्टर मित्रोंसे अपना इलाज कराता हूं, फिर भी मैं यह बात दुहराता हू कि हमलोग शरीरके सम्बन्धमें जितना ही संयमसे काम लें उतनी ही हमारी और देशकी भलाई होगी! "म० गांधी"

(१५) गुरु बननेमें गौरव नहीं है, गौरव है कर्मवीर बननेमें, अकर्मण्य गुरुसे कर्मण्य शिष्य कहीं श्रेष्ठ है! "महात्मा ईसा"

(१६) जिस समय माता बालकको गोदमें लेकर बैठती हैं; उस समय उसकी प्रेम-दृष्टि कौनसा कुशल चित्रकार खींचनेमें समर्थ है। "किडजले"

Renunciation of Yoga.

(By—Vidyavaridhi B. Champatrai Jain Bar-at-law, London).

In this article I propose to examine the doctrine of Yoga with the Ratna Trai of the Jaina Siddhanta.

Hinduism divides Yoga into several classes Karma Yoga, Raja Yoga, Bhakti Yoga, Jnana Yoga, Hatha Yoga.

Karma Yoga is the path whereby the aspirant may live in the world and still attain salvation. It consists in the doing of all worldly actions, but with a detached mind. The individual should not become attached to the result of his acts, but he is [illegible] ... a householder [illegible] mind becomes [illegible] ... salvation [illegible] ... complete [illegible] ... the soul [illegible] ... completely [illegible] ... cannot be [illegible] by his soul. The householder who [illegible] to follow [illegible] steps [illegible], however [illegible] his appetite and cravings by [illegible] his mind as much as [illegible] the resulting pleasure or pain of action. This will enable him to become a saint one day. To this extent Karma Yoga is common to the two system.

Raja Yoga aims at the elimination of desire by the Direct action of the mind. It will prevent the mind from dwelling on the pleasurable or painful aspect of an experience by keeping it unperturbed, as if it did not exist at all. If the mind is not able to accomplish this much it is not any where near the goal or even the path of salvation. In Jainism it is taught that the eradication of desires, that is to say, the preventing of the mind from dwelling on the pleasurable or painful aspect of an experience, is not possible unless a good deal of disciplinary training in other directions is undergone at the same time. One must gradually train oneself to undergo hardships and suffering and severe self-denial before the mind will stop dwelling on the effects of an experience.

Bhakti Yoga in Hinduism aims at the attainment of the goal by devotion to a God (perhaps a goddess ?) In Jainism it is stated that no outside God or Goddess can confer Immortality, Bliss, and Omniscience on the Soul. Since these attributes are the very nature of the Soul itself, they can be had from within one's own being, never from the outside. Devotion in Jainism only means devotion to the attributes of Divinity, i.e. that those attributes should also become manifest in the devotee's own life. The outer Gods are only examples of what can be achieved, or what has been achieved by others, who have gone before on the Path. They merely serve the purpose of Guidance *by example*. Devotion thus is a kind of hero-worship in Jainism, in Hinduism it is very different, and is tantamount to an expectation of favour.

Jnana Yoga in Hinduism is deemed to teach the doctrine that knowledge is the equivalent of salvation. In Jainism it is said that Belief and Knowledge and Conduct must combine to lead to the attainment of an ideal. Without belief conduct will not be sustained in the face of difficulty and hardship, without knowledge one will not know

Renunciation of Yoga.

(By—*Vidyavaridhi B Champatraiji Jain Bar-at-law, London*).

In this article I propose to examine the doctrine of Yoga with the Ratna Trai of the Jaina Siddhanta

Hinduism divides Yoga into several classes Karma Yoga, Raja Yoga, Bhakti Yoga, Jnana Yoga, Hatha Yoga.

Karma Yoga is the path whereby the aspirant may live in the world and still attain salvation It consists in the doing of all worldly actions, but with a detached mind. The individual should not become interested in the result of his acts, but he is not asked to cease to act In Jainism it is not considered possible for a householder to obtain salvation A man must become a saint before he can hope to attain salvation Sainthood implies a complete cessation of worldly traffic, that is to say, the total eradication of all forms of worldly appetites and desires and lusts. The reason for this is that the *asrava* of matter which takes place with all forms of bodily activities can only be restrained when household life has completely been eradicated And without the ceasing of the *asravas* freedom from matter cannot be obtained by the soul The householder who is unable to follow in the foot-steps of the Saint is, however, enjoined to curb down his appetites and cravings by detaching his mind as much and as often as he can from the resulting pleasure or pain of actions This will enable him to become a saint one day To this extent Karma Yoga is common to the two systems

Raja Yoga aims at the eradication of desire by the Direct action of the mind. It will prevent the mind from dwelling on the pleasurable or painful aspect of an experience by keeping it unperturbed, as if it did not exist at all. If the mind is not able to accomplish this much it is not any where near the goal or even the path of salvation. In Jainism it is taught that the eradication of desires, that is to say, the preventing of the mind from dwelling on the pleasurable or painful aspect of an experience, is not possible unless a good deal of disciplinary training in other directions is undergone at the same time One must gradually train oneself to undergo hardships and suffering and severe self-denial before the mind will stop dwelling on the effects of an experience

Bhakti Yoga in Hinduism aims at the attainment of the goal by devotion to a God (perhaps also a goddess ?) In Jainism it is stated that no outside God or Goddess can confer Immortality, Bliss, and Omniscience on the Soul. Surely these attributes are the very nature of the Soul itself, they can be had from within one's own being, never from the outside Devotion in Jainism only means devotion to the attributes of Divinity, so that those attributes should also become manifest in the devotee's own life. The outer Gods are only examples of what can be achieved, of what has been achieved by others, who have gone before on the Path, They merely serve the purpose of Guidance *by example* Devotion thus is a kind of hero-worship in Jainism ; in Hinduism it is very different, and is tantamount to an expectation of favour.

Jnana Yoga in Hinduism is deemed to teach the doctrine that knowledge is the equivalent of salvation In Jainism it is said that Belief and Knowledge and Conduct must combine to lead to the attainment of an ideal Without belief conduct will not be sustained in the face of difficulty and hardship; without knowledge one will not know

what one is to do; without conduct, that is the doing of the right thing at the right time, one will remain precisely where one stood before. But Jnana (knowledge) is very necessary, for it is the slayer of desire; it burns up the seed of ignorance and uproots the tree of lust.

Hatha Yoga by itself would only amount to a system of contortions and distortions, so to speak. By Hatha Yoga it may be possible to strengthen the body or develop the bodily organs, (e. g.) breathing exercises may develop one's chest. But salvation is not body—culture. Posture may even help in relaxation of nerves and muscles, but such relaxations can never be complete. Unless the root of desire is not pulled out altogether from the human heart, it will suffice to maintain sufficient tension to prevent the goal being reached. For desires and appetites affect the physical body and produce tension of nerves and muscles. Hatha Yoga, if taken as a system of purely physical training, will be unable to attain to complete relaxation for this reason.

The Ratna Trai path of the Jinas is the method which scientifically combines the merits of Faith, Knowledge and Conduct for the benefit of souls. Faith means belief in one's own Divinity. Knowledge is of the essentials of salvation, and especially of the constitution of man and the nature of its constituents, so that he may never be at a loss in an emergency as to what to do. Conduct is the conduct which prevents the *asravas* (inflowings) of matter into the soul and weakens and ultimately kills out the bodily desires and appetites, producing a state of complete rest and repose and real relaxation from within. Thus equipped the soul marches on to the conquest of Ignorance and Death and Misfortune, and attains to Immortality and Joy and Omniscience. The Jaina Purans contain the biographies of very many Souls, who have attained to Godhood and Perfection with the aid of the Ratna Trai. In the records of no other religion do we find such biographies. These biographies furnish the best evidence in support of the practicability of the Jaina Ratna Trai.

It should be stated that renunciation if incomplete and partial will not lead to salvation. If there be existing in the mind a single desire that has not been given up it will stand in the way of the progress of the soul. The reason for this is that you cannot destroy desires piecemeal, though you can curb them that way. If out of my desires I give up the desire for an orange it does not mean that a part of my soul has thereby become freed from matter. It only means that the amount of agitation of the heart is slighly reduced. For desires are all rooted in the love of the body for which man is constantly agitated in the mind in one way or another from one end of life to the other. If I eat an orange it is only so because it is pleasant to the tongue or good for the blood; if I give up eating a thing or reject one after trial, that is because it is not found to be conducive to the pleasure or well-being of the body. I have in reality no love even for an orange; it is the bodily sensation which is produced by the orange in me that I can like or dislike. Without the intervention of the bodily "I" it will be impossible for me to say that an orange is good. Such a statement will have no meaning whatever, since the same thing is liked by one person and disliked by another and also since the one and the same person may at one time like a thing and at another not. In the scheme of the *gunasthanas* also it can be seen that progress along the Path does mean the purification of the soul substance in bits and parts, but only a gradual thinning of the *avaran* (covering), and its total destruc-

tion at one moment of time. The thinning goes on through the eighth, ninth and tenth *gunasthanas*; but the destruction is brought about only in the twelfth. And while there is the liability to fall back from the high position in the eleventh stage, it is completely gone in the twelfth from which there is no longer a danger of falling down. The fall, too, which is possible from the eleventh stage, may be to the lowest status, which implies a complete sweeping away of the Ratna Trai or whatever there was of it in the shape of Right Faith, Right Knowledge and Right Conduct. Now a fall is always due to a single desire dominating the mind and unbalancing the judgment. Such a catastrophe would not be possible if the other desires than the one that is the cause of the fall had been completely destroyed. For instance, a man in the eleventh stage sees a beautiful woman, and is fascinated by her beauty he would instantly fall down to the tenth stage from the eleventh, and may then even conceive a sexual longing in regard to her. He might then entertain the wish to drink some strengthening wine to enjoy her company better, and may think of praying to some god or goddess to influence and win her love, and may even entertain the wish to renounce the True Path, if it be necessary to do so, to win her favour or hand. Now, if the giving up of the desire for sexual enjoyment and wine had implied their total destruction they could not be formed again. What had happened was merely this that these desires were only subdued in the general subsidence of *Karmas* that takes place in the eleventh *gunasthana*, and revived in the course of the fall from that state. In the twelfth stage there is no longer a subsidence but a total destruction of the *avarana* the soul is rid of the agitations of the heart, and is therefore no longer liable to experience a fall from that high and sublime state. All this shows that the agitations of the heart can be destroyed all together only; not in bits; but they can be curbed and suppressed in increasing degree.

When the faintest tinge of *lobha* (desire) existing in the tenth *gunasthana* is gone then alone will dawn the Sun of Omniscience, the harbinger of Freedom and Joy. This faint and imperceptible taint of lobha may be in respect of one thing only, as was the case with Swami Bahubaliji who had subdued all other desires than the one that had reference to Bharata, and yet that one desire prevented the dawn of Omniscience in His Great Soul for a whole year.

From the above it should be quite clear that if there be present in the heart of the saint a desire to attend to the covering of his private parts, or a longing to obtain the good opinion of men who object to nudity of saints or to please any one individual or community of men in that regard, such a desire alone will suffice to keep up the agitations of the heart and prevent the acquisition of Godhood and Omniscience.

This is why renunciation must be carried to the point of nudity in Jainism.

From the above analysis it follows clearly that all those Persons who have already attained to *nirvana* must have adopted the 'unshaped' garb to do so. Hence if any one will persist in telling me that Bhagwan Parasva Nath retained clothes and became an *arhant* he must not mind if he is told in reply that he is no consistent thinker. As a matter of fact it is easier to preach salvation for the robed in our day than the doctrine of nudity, but philosophy dare not play with i. e., disregard the truth. No amount of historical speculation can ever disprove a scientific fact. The best advice I can give to my friends of the Digambara Faith who think that the "Gotama-Kesi" discourse smacks of history is that they should try to understand the simple fact that Jaina Dharma is *Bastu—swarupa* (scientific) which no *forgeries* may disfigure or falsify

MONEY?

(By—Mr Herbert Warren Jain, London S.W.)

In last year's special number of your magazine I introduced the subject of Major C. H. Douglas's discovery and proposals regarding the present fact of poverty in the midst of the production of plenty of the necessaries of life, food, clothing, shelter, and amusements. The existing poverty is due to a shortage of the necessary money with which to buy the the goods which can be and are produced in abundance and to spare, and is not due to any shortage of these things themselves The goods are there, but they cannot be bought because the money in sufficient quantity to buy them, does not exist actually anywhere.

One of the three jewels is right belief Now, if there is no necessary shortage of money, and we believe that there necessarily is a shortage of money, then our belief will not be right. Is there any necessary shortage of money ? It would seem that there is not, it seems that money can be produced in any quantity required.

That there is a shortage of money is a fact of observation and does not need to be proved. But the fact that money can be produced in any quantity required is perhaps not quite so obvious

Money does not exist by nature, it is man made. It is not made by each member of the community, but, like clothing, for instance, is made by some one or more sections of the community. A cotton manufacturer makes cotton goods, he does not manufacture the money he gets by selling the goods. That is done by the government and by the bankers. The government manufactures the coins, and the Bank of England (in England) manufactures paper notes and grants loans. Other banks also grant loans, and these loans are new money as will be seen "Practically all money is actually created by the banks ... There is now no argument possible about this, nor is it, in fact, denied by bankers themselves" This is quoted from a report of Major C. H Douglas's address delivered at the City Hall, Newcastle-on-Tyne, October 7th, 1932 The report appears in The New Age for November 3rd, 1932, a weekly review of politics, literature and art

Nowadays money is made chiefly of paper, and there is no shortage of paper. There are two kinds of paper of which money is made, namely, good paper in the form of banknotes, and cheap paper in the form of cheques, cheques are accepted in payment of debt and are therefore money

The bulk of this chequemoney comes into existence as bank loans, and goes out of existence when loans are paid off.

When a bank grants a loan, four compensating entries are made in its books, leaving the cash account even and the books balanced; thus the bank's capital and its customers' cash deposits are untouched, so that the loan is absolutely new money, coming into existence when the borrower draws his cheque, and going out of existence when the borrower pays off the loan

The four entries are (1) a credit in the borrower's current account, (2) a debit in the cash account, (3) a credit in the cash account, (4) a debit in the bank's loan account in which the borrower is debited.

The borrower can now draw a cheque and with it buy goods; the cheque is new

money which did not exist before he drew the cheque. The receiver of the cheque pays it into the banking system and is credited with the amount, while the borrower's account is debited. The bank's cash account is again both debited and credited. No cash has passed in the form of coins or notes. When a loan is granted the borrower is in a position to draw a cheque though he has not deposited any money with the bank, and as has already been seen depositors' money is left to their credit untouched.

Thus it is obvious that money can, by means of bankcredits be produced in any quantity required. (Incidentally if the public at any stage of the transactions require coins or banknotes, then of course the central bank gets them made in sufficient quantity, but this is not the point). The point is that money can be made in any quantity required and that there is therefore no necessary shortage of money.

The question now arises, what is that quantity ? What is the quantity required ? It is no use producing more money than is required, for then it becomes valueless like the German Marks did at the end of the war.

When consumable goods are produced an equivalent of money should be produced and distributed to purchasers. The goods could then be bought, the borrowed money be recovered by the seller, and the bank loan be paid off. The right amount of money would thus come into and go out of existence as and when the goods came into and went out of existence or were in the hands of consumers.

As there is nowadays no difficulty in producing in abundance the necessaries of life, so that there can be enough and to spare for everybody, there should be no difficulty in devising some method of producing and having to consume the necessary amount of money with which to obtain the goods thus produced, seeing that money can be made in any quantity required.

Paraphrasing from a pamphlet on the subject, every human being is a consumer, he must consume in order to live; he cannot get consumable things without money; therefore, as the goods are there, the money to buy them with should be in his pocket; the problem is how to get it there; and a solution to the problem is given by Major Douglas in his recent book The Monopoly of credit, 3s/6d, Chapman & Hall Limited, London, 1931, a solution which would make the poor rich without making the rich poor.

H. Warren.

THE LORD MAHAVEER.

(By —Devendra Tanaya, Khot.)

World was under the darkest shade.
There was not a ray of Light !
All the souls were deadly afraid—
Of the time of painful Night !

× × ×

There arose the brilliant Sun !
In the palace at Kundalpur,
King Siddhartha's beloved Son !
So He was The Lord Mahavir !

× × ×

Night expired, and woes ran'way,
Gods of Heaven came to praise,
He was th'only Hope of the Day,
So The Heavens sang the Praise !

Practical Jainizm.

[*By. M. H. Udani Jain M. A. LL B Advocate,—Rajkot.*]

At one time it was believed that Jainism was an offshoot of Budhism. But it is now established beyond any doubt by scholars like Prof. Hermann Jacobi and authorities of Sutras' that Jainism is a very ancient religion. The principles of Jainism are so perfect that if any one were to study and adopt them, he will not only have perfect health and happiness in the present life, but he would gain permanent Bliss

The life of the Tirthankars show how they annihilated the Karmas of several lives and how by a nobler and higher life, austerity and self-denial, they could realize the power of the soul and made the soul free from the Karmas and could attain Moksha. The lives of the Tirthankars show the practical ways by which one can attain Moksha, the final goal of life I would specially request every person interested in Jainism, to read the life of Lord Mahavir, where one can find Jainism in practice and how perfection can be attained In the life of Mahavir, we find living instances of universal Love towards all beings, extreme patience and perseverence, the conquest of his soul over passions and hatred, complete self-denial, pursuit for truth by extreme sufferings, complete mastery over all desires and the final realization of true knowledge and then Moksha.

Ruling Princes of high eminence were amongst his best followers and at a glance of the history of Jainism, it is apparent that it was then the religion of the Ruling races. The lives of other 23 Tirthankars also show the eminence of Jainism and how it made men perfect in everything.

Being an universal faith, which every person can follow, there is no distinction of caste in Jainism Its motto being "Love everyone and Hate none", one can follow its principles without any caste or class distinction and it preaches universal brotherhood There is no distinction of touchables and untouchables amongst the Jains. Any person can go to a Jain Sadhu and can become a Jain and follow Jainism When it is preached by Jainism that we must have love and compassion towards all animals, we cannot have any hatred towards any human being

There is no religion which has analized so accutely the doctrine of Ahinsa as Jainism It preaches Ahinsa by thoughts, words and action in every way towards any Being and the doctrine is explained so minutely in the Sutras that it is worth while to record the same and follow it It preaches the excellent principle of "Doing unto others as you would be done by", not to injure even the feelings of any person, to keep humanity towards all and not to injure even the lowest beings There is life in trees, animals and all sorts of beings, wherever there is life, there is soul, smaller or bigger and we cannot injure the feelings of any life. If the principle of Ahinsa will be properly understood and followed, one will become free from sins, will have no enemies in life and all the disputes and discontent will come to an end. Jainism preaches perfection in life and if perfection can be obtained, there is complete peace of mind and bliss in everything. Then one will feel life as a real bliss on earth.

The Life of a Jain Shdhu is an ideal one.

It is a life of austerity, self-denial and a life of penance and expiation of all sins and we hardly find such a nobler life in any other religions Their life is not a life for their pleasures at all, but a life for simple living, high thinking and dovoted to do good to others The five Vratas of the Sadhus lay down the rituals of an ideal life

The Shrawaks (Jains) are ordained to have twelve Vratas and if any one can observe these Vratas, his life is bound to be highly moral and spiritual and he would be extremely happy throughout his life. I would request every person interesred in Jainism to go through the twelve Vratas prescribed by Jainism for the Shrawaks and to examine the fine threads of every principle, the highest principles of non-killing and morality are prescribed in them and they make a Jain a perfect gentleman in life, who can inspire respect from all

The logic and philosophy of the Jains is too deep and the Sutras have gone thoroughly into all aspects of life The theory of soul is so well explained in it and the relations of soul and body, and how the Karmas are installed and expiated, how life after life, the same Karmas make the soul, to wander, birth and re-birth in human life, Tiryanch, Narki and Deva according as one yields to passions and it is explained how a soul can finally attain to Moksh if he can conquer the desires and expiate all sins. In Jainism we find real Vairagya and how transcient are all the phases of life The philosophy is no difficult to understand and follow, but it is a very interesting subject and many of the well—known scholars have found much to learn from the Jain philosophy.

Gnyan ज्ञान (knowledge), Darshan दर्शन (faith) and Charitra चारित्र (character) are considered as the three necessary ingredients for attaining to the goal of life and on each of these ingredients there are numerous precepts and when we go through these Tatvas (truths) we find real knowledge of truth and highest principles of life, which bring perfection in life in its real aspect

Jainism preaches contentment in every phase of life. It preaches the ways of conquering desires and passions and it shows the means of attaining to perfect peace of mind in every stage of life.

The Jain Sutras are in volumes and in abundance. Some of them are now translated into Hindi, Gujarati and English also, but I still feel that there is practically no propaganda work done by the Jains and hence Jainism has not been brought into light in the civilized countries of the world.

It is at first very necessary that there should be one small book like the Bhagvat Gita, containing a collection of the best principles of Jainism, in English, so that any person interested in Jainism can read and master the principles of Jainism and then it is very likely that many Western scholars might come out to take interest in this ancient religion and would make useful collections from the Sutras

The Missionaries of Christianity have made such a great propaganda work throughout the world and have established so many schools, colleges, hospitals all round and have done so much progress in their Mission work and done much for humanity, there is no reason why the Jains should not take up such propaganda work and make Jain schools, a Central Jain College etc where the principles of Jainism may be taught to the students along with their other subjects and why Jain scholars should not be sent to foreign countries to show the light of this noble faith. I believe, there is a brightest future for Jains and Jainism if they can work unitedly for the good of Humanity.

A Plea for Jain Law.

[By:—Ramnik V. Shah B sc. Bombay]

On the 7th of December 1931, the Jain Students of Poona held a Common Conference and passed certain important resolutions One of them was regarding the introduction of Jain law first into Lagislatures and then into the Indian Courts of law. The resolution there was moved by one D. S. Parwaj M A., LL, B and seconded, if I forget not, most probably by Prof T. K. Tukol M. A., LL. B The speeches made in favour were Somewhat important and exhaustive. There was no opposition and the resolution was unanimously carried

Another time some years before the Conference of the Swetambers alone was held at Junnar and there too, the resolution to the same effect was passed

Now because there is no member of the Indian lagislatures who is a Jain and again if there is any, there is no one who is keen about the pt—the question of Jain law is not at all raised The Jains who are willing to spend money in other matters are not at all fully aware of the hardships and defriments to their honour they suffer at the hands of law under which they are tried I would like to advance the plea of introduction of Jain law and answer the plea "Let the Jains be tried under the existing law as they can be commonly called Hindus"

The Jains want themselves to be called Hindus if by Hindus the meaning is a Community The Jains do not want themselves to be called Hindus if by Hindus is meant an independant Singular religion. There is no religion as 'Hinduism'-'Hinduism' So for as it affects the religion is a misnomer. Hinduism is true so for as it affects the only communal aspect of it Hindus even according to the definition of Hindu Mahasabha can be Jains, Sikhes, Banias, and a host of followers of other branch religions I would pray not to compound religion with a community Hindus is a mass—some following this, some following that Law is based on scriptures If it is framed according to the scriptures (however great majority it may be)—I do not see what earthly reason there is in framing it taking in view the scriptures of only one portion of the Hindus. Why no protection to say, why no honour to the scriptures of other religions ?

My opinion therefore is-let the law be based upon the common social conditions and not upon a particular sectional scriptures. If it based on the latter, there is a clear possibility of doing injustice to the thousand of followers who believe in other religions. It would be much better if the basis of scriptures completely removed but if it cannot be removed, if the orthodox element is so strong, let there be perfect justice and not partial.

All India Jain Graduates Association.

[By —M B Mahajan B. A , LL. B., Akola (Berar)]

Having consulted many of my friends all over India I am making bold to place before the Jain public the present proposal and I am confident that all business—minded young friends will take the matter quite seriously apart from our differences and factions amongst several sections as Digambaris, Shwetambaris and Sthanakwasis, apart from our differences as Pandits and Baboos, there is no gainsaying the fact that all of us are quite unanimous on the point that we owe to the Community and the Country a duty by which the Jain Culture and Jain philosophy Jain History and Jain Literature are to be presented to the world The Culture that had been subjected to several vicissitudes is now decaying in our hands and the danger is very terrible and efforts are necessary immediately It would not be denied that those who have received eductaion and training in the possibly best institutions of our Countiy owe to the Community a sacred duty in this respect

But accepting all this, it is always very difficult to meet and awaken all of us. All our young people who have received education in the modern institution are anxious to do their humble bit· but there are no opportunities for cooperation Not only this but the best amongst us are not known amongst us and they do not get the necessary encouragement and opportunity and thus a great deal of our enrgy is being wasted. It is therefore necessary that there should be an institution which is after the educated. They are the people who can agree amongst them very readily and let us call that institution The All India Graduates Association. This institution will enroll all as its members if they have passed the Matriculation or any entrance examination The members will also be made from those who have received special education provided they know English. Thus all the eductated people who have passed matriculation or the equivalent examination will be brought under the banner of this institution The institution will recruit members from all sections apart from their abbeing Digambari, Shwetambari and Sthankwasi. Their line of work will be nonsectarian and at the same time every member will have to do his humble bit in his own way.

The first important work is to make a list of all such graduates I have been supplied a list from the Deccan and I have been collecting the names from C. P and Berar But this is not one man's work and if my graduate friends particularly of all scetions kindly cooperate in the matter much useful work can be done. For this, it is necessary to establish district and provincial institutions and first to fix the Secretaries province by province. *The Delhi Mitra Mandal* is the best institution which can take up this work. Having thus received the names of the provincial secretaries which should be three—one from; Digambari, one from Shwetambri and one from Sthanakwasi, we shall get all

possible information about our eductated people.

With this material we can do a lot The District Secretries if necessary can be appointed and then we shall relentlessly pursue the indolent graduates who are unjustly charged to be too *selfish and self sufficient* or *who are too dull headed* to find out any suitable work for them The letter to bo addressed to all these yeople may be as follows—

Dear Brother,

We are proud to count on you as one of the most distinguished member of the Educated Jain Community educted at a great cost and sacrifice to you and to those for whom you feel concerned We are confident that you have in you the keen and active desire of serving the Community in your spare hours and making all of us feel proud of the name of the Jain Community particularly in its comepetition with other communities. You will kindly therefore state your full name the birth date the university career and the years and the degrees and distinctions and any of the subjects in which you are willing to work now For your suggestion the list of such subjects is specified overleaf

Yours Sincerely

Secy

Subjects—

Jain Literature, Ancient history, Philosophy. Psychology, Economic and History as it relates to Jains. Jain Economic elevation, Insurance, Trade, Export and Import Trade Foreign Reserach, Industiles, Service Securing, Unemployment solution, Education, etc.

It may be said that it is not necessary to start a new institution There is all India Jain Association. In fact there is nothing in the name. But this work if it is taken up by any institution is welcome. For example if this is taken seriously by the Jain Gazette of Madras it will also increase the circulation of the paper and will also a very useful work. I may again say that the official organ of the institution should be the Jain Gazette as it is an All India cocern and it will also put some life to it

To sum up, this is very urgent We are on only thirteen Lakhs. The majority is amongst the states The political future of Community is very dull Its prestige in the Country is sure to be dimmed if it does not assert itself in the Country by its being unquestionable useful The Jains are a nation of leaders. The Jains have been always at the forefront and then there was no anxiety about leadership But for this it is necessary that our educated community who have spent thousands of their parents should realize that they owe a duty not to their family only but to the Community and they must establish the reputation that the Jain youth when an earning unit outside the ednertional Institutions is a struggling patriot rather that a *selfsufficient hardhearted Samuel Budget* who cares more for the purse than for himself and the Community to which he belongs.

As this has been sufficiently lengthy article, I could not write more by way of its explanation but I fervently request my young friends that for the subsequent work they will write to me so that I may also know and try to work according to their suggestions. After reading this, the reader is requested kindly to drop a card of assent or dissent with his legible postal address of the present writer I also reguest the vernaculer papers to write for or against this suggestion. Again the Shwetambari papers will knidly do well to introduce this idea amongst their readers and thus to help us all.



श्री० धर्मरत्न प० दीपचन्द्रजी वर्णी–चौरासी।

आपने अनेक जैन ग्रन्थोंका सम्पादन किया है। आप अपना समय धर्मध्यान व समाजसेवामें ही व्यतीत करते हैं व ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम चौरासी (मथुरा) के अधिष्ठाता हैं।



श्री० प० परमेष्ठीदासजी जैन न्यायतीर्थ–सूरत।

आप एक उत्तम लेखक व कवि हैं। दानविचार, चर्चासा-[गर] आदि नर्मविरोधी ग्रन्थोंका विरोध कर आपकी लेखनीने जैन समाजमें अच्छा उपकार किया है।

भगवान महावीरका समय।

(लेखक:—पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, न्यायतीर्थ, धर्माध्यापक, स्या० वि०-काशी)

उपरोक्त शीर्षकका एक ट्रैक्ट "चैतन्य" प्रेस बिजनौरसे प्राप्त हुआ था। जैन समाजके प्रसिद्ध इतिहासज्ञ बा० कामताप्रसादजी उसके लेखक हैं, और उस प्रेसके मालिक बा० शांतिचंद्रजी, प्रकाशक।

इसमें कुछ ऐतिहासिक घटना तथा प्रमाणोंके आधारपर प्रचलित वीर निर्वाण सम्वत्में १८ वर्षकी भूल बतलाई गई है अर्थात् इस समय वीर नि० सं० २४९८के स्थानमें २४७६ प्रचारमें आना चाहिये।

प्रकाशक महोदयके निवेदनसे मालूम हुआ कि उनके पिता स्व० बा० विहारीलालजी चैतन्यका भी यही मत था और उन्होंने इसके समर्थनमें जैन समाचार पत्रोंमें कुछ लेख भी प्रकाशित कराये थे[1]। अपने पिताके प्रारम्भ किये कार्यको पूर्ण करनेके लिए आपने स्वखर्चसे इस ट्रैक्टको प्रकाशित करके विद्वानोंकी सम्मति जाननेके लिए विना मूल्य वितरित किया है। आपकी अभिलाषा है कि यदि विद्वान लोग लेखकके उक्त मतसे सहमत हो तो दीपावलीसे प्रचलित सम्वतमें १९[2] वर्षका सुधारकर दिया जावे! प्रकाशककी इस इच्छाने ही मुझे उक्त ट्रैक्टपर विचार करनेके लिए प्रेरित किया है।

वीर भगवानका समय निर्धारित करनेमें उनके समकालीन महापुरुष तथा जैन शास्त्रोंमें उपवर्णित राज्यकाल गणनाका अनुशीलन करना अनिवार्य समझा जाता है। इस निबन्धमें भी क्रमशः दोनोंके आधारपर प्रचलित तथा संशोधित वीर निर्वाण सं०की जाच की जायगी।

समकालीन व्यक्ति।

भगवान महावीरका समय बहुत दिनोंसे विवादग्रस्त बना हुआ है। अनेक एतद्देशी तथा विदेशी विद्वानोंके ऊहापोह करनेपर भी आजतक कोई निर्णय न होसका। महात्मा बुद्धके समयमें भी विद्वानोंके भिन्न २ मत हैं। किन्तु भगवान महावीर तथा महात्मा बुद्ध दोनों समकालीन थे इसमें किसीको भी आपत्ति नहीं है। कुछ विद्वानोंका मत है कि वीरनिर्वाणके बाद बुद्धका निर्वाण हुआ। कुछ विद्वानोंका मत है कि बुद्ध निर्वाणके बाद वीर प्रभुका निर्वाण हुआ। भगवान महावीरकी आयु लगभग ७२ वर्ष थी और बुद्धकी ८० वर्ष।

वर्तमानमें उपलब्ध अनेक बौद्ध आगमोंमें निग्गठ नाटपुत्तके नामसे भगवान् महावीरका उल्लेख यद्यपि साम्प्रदायिकताके रंगमें रंगे हुए हैं फिर भी किसी अंशमें अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं यह निस्संदेह है।

सिंहल आदि बौद्ध देशोंमें बुद्धका निर्वाण सं० प्रचलित है जो वर्तमानमें २४७६ है और जिसके अनुसार ईस्वी सन्से ५४३ वर्ष पूर्व बुद्धका निर्वाण होना कहा जाता है। जैन समाजमें वीर निर्वाण संवत्के प्रचलित रहते हुए भी उसमें विद्वानोंका

१—खेद है मुझे उन लेखोंके देखनेका सौभाग्य प्राप्त न होसका। —लेखक

२—इस एक वर्षकी भूलको आगे देखिये।

जितना मतभेद है, उसमें भी अधिक विवाद और मतभेद बुद्धके निर्वाण सम्वत्में मौजूद है। गत-वर्ष ही बौद्धभिक्षु त्रिपिटकाचार्य पं० राहुलजी सांकृत्यापनने त्रिपिटक ग्रंथोंके आधारपर बुद्धकी जीवनचर्या तथा उपदेशोंको क्रमबद्ध करके "बुद्ध-चर्या" नामक एक बृहत् ग्रंथ लिखा है। आपने भी प्रचलित बुद्ध निर्वाण सम्वत्को ठीक न मानकर उसमें ६० वर्षकी कमीकर दी है। त्रिपिटकमें वर्णित घटनाओंके कालक्रमके विषयमें राहुलजी लिखते हैं कि कालक्रममें कहीं२ मुझे भी संदेह है, तथापि आशा है कि दूसरे संस्करणतक कुछ बातें और साफ होजायगी। सभीके लिये तो उसीवक्त आशा छूट गई जब कि पिटकको कंठस्थ करने-वाले, कालपरम्पराको लिपिबद्ध न करके ही इस लोकसे चले गए।

त्रिपिटकको अप्रमाणीक सिद्ध करना इस लेखका उद्देश्य नहीं है किन्तु बा० कामताप्रसादजी प्रचलित बुद्ध निर्वाण सम्वत् तथा त्रिपिटकोंके उल्लेखोंको सर्वथा प्रमाणीक मानकर प्रचलित वीर नि० संव-त्में १९ वर्ष बढ़ा देनेकी सम्मति देते हैं। अतः एक विद्वान बौद्ध भिक्षुकी दृष्टिमें बौद्ध ग्रन्थोंमें वर्णित कालपरम्परामें कितना ऐतिहासिक तथ्य है, यह बतला देना अनुचित न होगा।

मज्झिमनिकायके उपालिसुत्तमें लिखा है कि निगठ नातपुत्त निगठोंकी बड़ी परिषदके साथ नालंदामें विहार करते थे। उन्होंने अपने श्रावक गृहपति उपालिको बुद्धके साथ वाद करनेके लिये भेजा। गृहपति उपालि बुद्धके उपदेशसे बौद्ध श्रावक होगया। निगठ नातपुत्त उपालिके न लौट-नेसे चिंतित हुए। और समाचार जाननेके लिए उपालिके घर गए। वहा उपालिके मुखसे बुद्धकी प्रशंसा सुनी और बुद्धके सत्कारको न सहन कर, वहीं मुँहसे गर्म लोहू फेंक दिया!

इसके बाद "सामगाम सुत्त" में निगन्ठ नातपुत्तका पावामें मरण, और उनके मरनेपर निगन्ठ साधुओंमें कलह-युद्ध होनेका विवरण है। यह घटना बुद्धके देहत्यागसे दो वर्ष पूर्व घटी थी, अतः प्रचलित मतके अनुसार बौद्ध सम्प्रदायमें जब बुद्धका निर्वाण ५४३ ई० पूर्वमें माना जाता है तब उसमें दो वर्ष बढ़ाकर ५४५ ई० पूर्वमें वीर प्रभुका निर्वाण मानना चाहिये, ऐसा लेखक महोदयका अभिप्राय है।

हम ऊपर लिख आये हैं कि प्रचलित बुद्ध सम्वतमें बहुत विवाद है। प्रतिवर्ष इतिहासज्ञोंके द्वारा उस विवादकी मात्रा बढती ही जाती है। गत जून और जुलाईके माडर्नरिव्यूमें श्री धीरेंद्रनाथ मुखोपाध्यायका "कृत गुप्त शक और दूसरे सवत्" शीर्षक एक महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है। उससे अबतक की हुई खोजपर पानी पड़जाता है। लेखकका मत है कि प्रचलित बुद्ध संवत् बुद्धका निर्वाण यानी बुद्धत्वप्राप्तिका संवत् है। परिनिर्वाण या मृत्यु संवत् नहीं है। उनके मतसे बुद्ध संवत्के ४९ वर्षतक बुद्ध जीवित रहे थे। इसके अलावा प्रच-लित बुद्ध संवत्को जब दूसरे ऐतिहासिक ई० सन्से ५४३ वर्ष ८ मास पूर्व गिनते हैं तब आपने उसमें एक वर्ष बढ़ा दिया है, इस तरह ५४४ वर्ष ८ मास पूर्व मानकर भी आप कहते हैं—कि ज्योतिषकी गणनाके आधारपर उसमें १ वर्ष और भी बढ़ा देनेसे तिथि वार तथा नक्षत्रका मिलान ठीक बैठ जाता है अतः बुद्धका निर्वाण सम्वत् ई० सन्से ५४५ वर्ष ८ मास पूर्व (५४६ ई० पू०) मानना चाहिए। आप लिखते हैं—

"Now according to Buddhist tradition in April A. D. 1932 the Buddha year 2476 will be completed. Therefore according to this tradition Buddha's Nirvana occurred in 2476-1931, or 545 B. C. On astronomical

calculations from the previous year (546 B. C.) as the date of Buddha's Nirvana all other details are found to be exactly true Hence it is clear that 545 B. C. was year 1 of Buddha's Nirvana. the year 0 was 546 B. C. Calculations from other dates assumed by historians do not satisfy all the details."

इन विवादोंके रहते हुए कोई भी बुद्धिमान बौद्ध मान्यताओंको अपनी गणनाका आधार नहीं बना सक्ता। तथा यदि बौद्ध ग्रंथोंके अनुसार ही भगवान महावीरका निर्वाणकाल माना जाए तो श्वेताम्बर दिगम्बर भेदको निर्वाणके बाद ही मानना पड़ेगा, क्योंकि "सामगाम सत्त" में जैन साधुओंकी पारम्परिक कलहका दिग्दर्शन करते हुए लिखा है "निगंठके श्रावक जो गृही श्वेत वस्त्रधारी थे वह भी नाथपुत्रीय निगंठोंमें निर्विण=विरक्त= प्रतिवाण रूप थे।" बौद्ध ग्रंथोंका उक्त उल्लेख श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनों आम्नायके मन्तव्यसे बाधित है। क्योंकि दोनोंके ग्रंथोंमें वीर निर्वाणसे कई सौ वर्ष बाद संघ विच्छेदका उल्लेख पाया जाता है। तथा श्वेताबरोंके "भगवती सूत्र" में अजातशत्रुके राज्यकालमें भगवानका बहुत दिनोंतक विहार करना प्रमाणीत है, जो प्रचलित वीर सं० के अनुकूल पड़ता है।

संयुत्तनिकायके जटिलसुत्तमें लिखा है—एकबार बुद्धकी भेंट कोसलाधिपति प्रसेनजितसे हुई। बुद्धने अपने सर्वज्ञ होनेका दावा किया। तब प्रसेनजितने कहा—हे गौतम! वह जो श्रमण-ब्राह्मण संघके अधिपति, गणाधिपतिगणके आचार्य, ज्ञान यशस्वी तीर्थकर बहुत जनों द्वारा साधु सम्मत हैं जैसे—पूर्णकाश्यप मक्खली, गोशालक, निगंठ नाटपुत्त, संजय बेलट्ठिपुत्त, प्रकुध कात्यायन अजित केशकम्बली, वह भी पूछनेपर यह दावा नहीं करते, फिर जन्मसे अल्पवयस्क और प्रव्रज्यामें नये आप गौतमके लिये तो क्या कहना है। इसके उत्तरमें गौतमने अपनी आयु आदिके बारेमें कोई विरोध नहीं किया। इससे तो यही साबित होता है कि भगवान वीरसे कुछ अल्पवयस्क थे।

श्रेणिक पुत्र अजातशत्रु (कुणिक)के राज्यारोहणके आठवें वर्षमें बुद्धका देहावसान हुआ। इसमें प्रायः सभी इतिहासज्ञ एकमत है। दीघनिकायमें अजातशत्रुसे भेंटके समय भगवान महावीरको अद्धगतो वया लिखा है, जिससे ज्ञात होता है कि भगवानने अजातशत्रुके राज्यमें बहुत दिनों तक विहार किया है। बौद्ध ग्रन्थोंका यह उल्लेख पूर्वोक्त संयुतनिकायसे विरुद्ध पड़ता है और प्रचलित वीर नि० सं०की अनुकूलता करता है। बौद्ध ग्रन्थोंमें वर्णित ऐतिहासिक घटनाओंकी पूर्वापर विरुद्धताका यह एक उदाहरण है।

बुद्धके देहत्यागसे करीब पांचसो वर्ष बाद ईसाकी प्रथम शताब्दीमें, तत्कालीन बौद्ध भिक्षुओंके स्मरणके आधारपर उपलब्ध त्रिपिटक ग्रन्थ लंकामें लिपिबद्ध किये गये थे। इसलिये उनमें वर्णित घटनाओंकी कालपरम्परा अंकित करनेमें गड़बड़ी होना बहुत कुछ सम्भव है। उस समयतक जैनधर्ममें संघ भेद होचुका था। मेरा अनुमान है कि बुद्धके निर्वाणसे पूर्व वीर भगवान्का निर्वाण और उसी समय निर्ग्रंथ साधुओंमें कलहका वर्णन, बौद्ध ग्रन्थोंको लिपिबद्ध करते समय बौद्ध भिक्षुओंके भ्रमसे जोड़ दिया गया है। ऐसी अवस्थामें बुद्ध निर्वाणसे दो वर्ष पूर्व वीर निर्वाण मान लेना युक्तिसंगत नहीं कहा जा सक्ता। अस्तु।

बुद्धसे अलावा भगवान महावीरके समकालीन पुरुषोंमें श्रेणिक और उसके पुत्र अजातशत्रुका नाम भी उल्लेखनीय है। ऊपर बौद्ध उल्लेखके

१ देखो—बुद्धचर्या पृष्ठ ४८१

आधारपर भगवान महावीर तथा अजातशत्रुका समकालीनत्व प्रकट किया जा चुका है। वीर भगवानके जीवनकालमे ही राजा श्रेणिकका देहावसान होगया था।

बा० कामताप्रसादजीको किसी हिन्दी श्रेणिक-चरितकी प्रतिमें कुछ दोहे प्राप्त हुए हैं। जिनसे प्रगट होता है—श्रेणिकको १२ वर्षकी उम्रमें देश निकाला हुआ, मार्गमें किसी बौद्ध मठके स्थविरके उपदेशसे बौद्ध धर्म अंगीकार किया। दो वर्ष तक नन्दश्रीके साथ दाम्पत्य जीवनका सुख भोगा। जिससे १४ वर्षकी उम्रमें उनके अभयकुमार पुत्र पैदा हुए। २२ वर्षकी अवस्थामें राजगृहीमें राज्याभिषेक हुआ। और श्रेणिकके २६ वें वर्षमें भगवान महावीरको केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई।

उक्त कथानकमें वर्णित कुछ घटनाओंके साथ श्रेणिककी जो उम्र निबद्ध की गई है उससे लेखक भी सम्मत नहीं हैं। आप लिखते हैं—"यह बात तनिक जीको खटकनी है कि श्रेणिकको देशनिकाल १२ वर्षकी अवस्थामें हुआ हो।" श्रेणिककी २६वर्ष की वयमें वीर प्रभुको केवलज्ञान होनेके उल्लेखको प्रमाणिक मानकर आप आगे लिखते हैं—"संभव है कि किसी प्राचीन आधारसे भगवानके केवलज्ञानके समय श्रेणिककी उम्र २६ वर्षकी जानकर शेष तिथिया लेखकने अपने आप लिख दी हों?" हमें तो यह सब तिथिया लेखकके दिमागकी ही उपज मालूम होती है, क्योंकि घटनाक्रमके साथ उनका मेल नहीं बैठता है। इसके निर्णयके लिए हमें श्रेणिक चरितमें वर्णित कथानकके घटनाक्रमकी जाच करना आवश्यक प्रतीत होता है।

श्रेणिक चरितमें लिखा है कि वैशालीके राजा चेटकके सात कन्याएं थीं। बड़ी कन्या प्रियकारिणी कुण्डनपुरके महाराज सिद्धार्थकी पत्नी हुई, उनके गर्भसे भगवान महावीरने जन्म लिया था। सबसे छोटी कन्या चेलनाके रूपपर आसक्त होकर महाराज श्रेणिकने राजा चेटकसे उसकी याचना की। किंतु चेटक इस प्रस्तावसे सहमत न हुआ। पिताको निराश और दुःखी देख राजगृहीके मंत्री श्रेणिक पुत्र अभयकुमार व्यापारीका वेष बनाकर वैशालीके राजमहलमें पहुचे। उस समय चेटककी तीन पुत्रियोंका पाणिग्रहण कुण्डनपुर, कौशाम्बी तथा कौशल देशके राजाओंके साथ हो चुका था। शेष चार कन्या अविवाहित थी। जिनमेंसे छोटी चेलना अभयकुमारके साथ चली आई और श्रेणिककी पटरानी हुई। चेलनीके संसर्गसे राजा श्रेणिकने जैनधर्म धारण किया। इन सब घटनाओंके बाद विपुलाचलपर भगवान महावीरका समवशरण आया। जिसमें श्रेणिक तथा चेलनी सपरिवार सम्मिलित हुए और अभयकुमारने जिन दीक्षा धारण की। राजा श्रेणिकके चेलनीके गर्भसे कुणिक (अजातशत्रु) पैदा हुआ। जिसने अपने पिता श्रेणिकको लोहेके पींजरेमे बन्द किया।

अब, यदि वीर प्रभुके केवलज्ञानके समय श्रेणिककी अवस्था २६ वर्ष मानी जाये तो भगवानसे श्रेणिक १६ वर्ष छोटे हुए। भगवानकी माता प्रियकारिणीकी अवस्था—यदि उनकी १८ वर्षकी अवस्थामें भगवानने जन्म लिया हो तो ६० वर्षकी हुई। और भगवानके नाना राजा चेटक कमसेकम ७९ वर्षके तो अवश्य ही होंगे, तब उस समय चेलनीकी क्या अवस्था होनी चाहिए?

यदि चेटककी १९ वर्षकी अवस्थामें प्रियकारिणीने जन्म लिया हो तो ७ कन्याओंकी उत्पत्ति (मय अपने भाइयोंके) अधिकसे अधिक ४० वर्षकी अवस्था तक होजानी चाहिए। हा यदि तीन कन्याओंका जन्म चेटककी युवावस्थामें तथा शेष ४ कन्याओंका वृद्धावस्थामें माना जाये तो किसी

तरह ठीक बैठाया जासक्ता था, किन्तु घटनाक्रमका संयोजन करनेमें फिर भी बाधा उपस्थित होती है। सुनिए-यदि श्रेणिकचरित्रमें उल्लिखित अभयकुमारकी उत्पत्तिके समय श्रेणिककी आयु १४ वर्ष न मानकर १६ वर्ष मानी जाए तो वीरप्रभुको केवलज्ञान प्राप्तिके समय अभयकुमार १० वर्षके हुए और ८ वर्ष बाद श्रेणिककी ३४ वर्षकी अवस्थामें १८ वर्षके अभयकुमार द्वारा हरण की हुई चेलनाके साथ श्रेणिकका विवाह हुआ। यदि विवाहके एकवर्ष बाद ही कुणिककी उत्पत्ति मानी जाय, तो श्रेणिककी ५० वर्षकी अवस्थामें (लेखकके मतानुसार इसी उम्रमें श्रेणिककी करुणाजनक मृत्यु हुई) कुणिक १५ वर्षका हुआ। इस किशोर वयमें प्रौढवय पिताको पींजरेमें कैद करना संगत नहीं बैठता, पाठक विचार करें ।

घटनाक्रमको देखते हुए हमारा अनुमान है कि मृत्यु समय श्रेणिककी वृद्धावस्था और कुणिककी युवावस्था होनी चाहिये, जो घटनाक्रम और प्रचलित वीर नि० सवत् दोनोंके अनुकूल बैठती है अतः केवलज्ञानके समय श्रेणिककी २६ वर्षकी उम्र मानना असंगत है ।

इसके अतिरिक्त, जैन कथानकोंमें-श्रेणिकने देशनिकालेके समय बाल्यकालमें किसी बौद्ध मठके स्थविरके उपदेशसे बौद्धधर्म धारण किया, ऐसा उल्लेख पाया जाता है। जब कि बौद्धोंके "संयुत-निकाय" के आदिय परियाय सुत्त" से प्रगट होता है कि बुद्धने अपने बुद्धत्व प्राप्तिके बाद प्रथम वर्षमें राजगृहीमें राजा श्रेणिकको अपना अनुगत श्रावक बनाया । अस्तु ।

ऊपर की गई आलोचनासे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि समकालीन पुरुषोंके घटनाक्रमके अनुसार प्रचलित वीर नि० सं०में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती ।

अब जरा कालगणनाको भी देखिये—

कालगणना ।

दिगम्बर तथा श्वेताम्बर, दोनों आम्नायोंमें प्रचलित वीर नि० सम्वत्, शक सम्वत्से ६०५ वर्ष ५ मास पूर्व तथा विक्रम सं० से ४७० वर्ष ५ मास पूर्व वीरका निर्वाण मानकर प्रचारमें आता है। अर्थात् वर्तमान शक सं० १८५४ में ६०५ तथा वि० सं० १९८९ में ४७० जोड़ देनेसे इस दीपावलीसे प्रारम्भ होनेवाला २४५९ वीर नि०सं० आजाता है। त्रिलोकप्रज्ञप्ति, त्रिलोकसार, हरिवंश-पुराण, तित्थोगाली पइन्नय आदि प्राचीन जैन ग्रन्थोंमें वीरनि० सं० ६०५ वर्ष ५ मास बाद शक राजाका समय बतलाया गया है। प्राचीन आचार्योंने अपने समयनिर्देशमें भी शक सम्वत्का ही प्रयोग किया है। प्रायः १० वीं शताब्दीके बादके आचार्योंसे विक्रम सं०का उल्लेख किया है। उनमें भी अनेक मान्यतायें हैं—कोई वीर निर्वाणसे ४७० वर्ष बाद विक्रमका जन्म मानते हैं, कोई राज्यारोहण और कोई २ आचार्य मरण मानते हैं। किन्हींका मत है कि विक्रमके राज्यारोहण कालसे विक्रम सं० प्रचारमें आया और कोई कहते हैं कि मरनेपर प्रारम्भ हुआ। विक्रम कौन था ? इसमें भी विद्वानोंको विवाद है। किन्तु प्रचलित विक्रम तथा शक सं०में आजतक किसीने भी कोई आपत्ति उपस्थित नहीं की ।

श्रवणबेलगोलाके एक दो शिलालेखोंमें उक्त तीनों सवतका एक साथ उल्लेख पाया जाता है किन्तु वह भी बहुत अधिक विवादग्रस्त है। आचार्य रविषेणने अपने पद्मचरितमें वीर सं० १२०३का उल्लेख किया है किन्तु उसके साथ किसी अन्य सम्वतका उल्लेख न होनेसे, वह वर्तमान विवादमें विशेष सहायता नहीं पहुंचा सक्ता। अस्तु।

त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें लिखा है—

णिव्वाणे वीरजिणे छव्वाससदेसु पंचवरिसेसु।
पणमासेसु गदेसु संजादो सगणिओ अहवा॥
"अथवा वीरनिर्वाणसे ६०५ वर्ष ५ मास बीत जानेपर शक राजा हुआ"।

आचार्य जिनसेनने भी इसी मतका समर्थन किया है—

वर्षाणां षट्शतीं त्यक्त्वा पञ्चाग्रां मासपञ्चकम्।
मुक्तिं गते महावीरे शकराजस्ततोऽभवत्॥
"हरिवंशपुराण"।

त्रिलोकसारके कर्ता भी इसी मतके पोषक है।

पण छस्सय वस्सं पणमासजुदं गमिय वीरणीव्वुइदो।
सगराजो तो कक्की चदुणवतियमहियं सगमासं॥

"तित्थोगालीपइन्नय" नामक श्वेताबर ग्रन्थके कर्ताका भी यही मत है—

पंच य मासा पंच य वासा छच्चेव होंति वाससया।
परिणिव्वुअस्सऽरिहतो तो उप्पणो सगो राया॥

दिगंबर संप्रदायमें वीर निर्वाणसे १००० वर्ष-बाद शक सं० ३९४–५ में प्रथम कल्किके राज्य-कालका अन्त माना गया है। त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें वीर निर्वाणसे कल्किके राज्यान्त तक १००० वर्षमें होनेवाले प्रधान २ राजवंशोंका क्रमवार उल्लेख किया है जो बहुत महत्वपूर्ण हैं उसे हम नीचे उद्धृत करते हैं—

जं काले वीरजिणो णिस्सेयससपय समावण्णो।
तक्काले अभिसित्तो पालयणामो अवति सुदो॥
पालकरज्जं सट्ठिं इगिसय पणवण्ण विजयवस भवा।
चाल ? मुरुदय वसा तीस वस्सा दु पुस्समित्तम्मि॥
वसुमित्त अग्गिमित्ता सट्ठि गधव्वया त्रिसयमेक्कं।
णरवाहणो य चालं तत्तो भच्छद्धया जादा॥
भच्छद्धणाण कालो दोण्णि सयाइं हवंति बादाला।
तत्तो गुत्ता ताणं रज्जे दोण्णियसयाणि इगतीसा॥
तत्तो कक्की जादो इंदसुदो तस्स चउमुहो णाम।
सत्तरि वरिसा आउ विगुणिय इगवीस रज्जतो॥

"जिस समय (दिन) भगवान महावीरका मोक्ष हुआ उसी समय अवन्ति (चण्डप्रद्योत) का पुत्र पालक (उज्जैनी) में अभिषिक्त हुआ। पालकके ६०, विजयवंश ? के राजाओंके १५५, मौर्यवंशके ४० पुष्पमित्रके ३०, वसुमित्र अग्निके ६०, गंधर्वराजाओंके १००, नरवाहनके ४०, भृत्यान्ध्र राजाओंके २४२, गुप्तोंके २३१ वर्ष बीतनेपर इन्द्रका पुत्र चतुर्मुख नामक कल्कि राजा हुआ। उसकी आयु ७० वर्षकी थी। जिसमें ४२ वर्षतक उसने राज्य किया।

संभवत: इन्हीं गाथाओंके आधारसे श्रीमज्जिन-सेनाचार्यने भी अपने हरिवंशपुराणमें उक्त राज-वंशोंका उल्लेख किया है। पाठकोंके जाननेके लिये हम उन्हें भी उद्धृत करते हैं--

वीर निर्वाणकाले च पालकोऽत्राभिषिच्यते।
लोकेऽवातिसुतो राजा प्रजानां प्रतिपालकः॥
षष्टिवर्षाणि तद्राज्यं ततो विजयभूभुजाम्।
शतं च पञ्चपञ्चाशद्वर्षाणि तदुदीरितम्॥
चत्वारिंशन्मुरुण्डानां ? भूमण्डलमखण्डितम्।
त्रिंशत्तु पुष्पमित्राणां षष्टिर्वस्वाग्निमित्रयोः॥
शत रासभराजानां नरवाहनमप्यतः।
चत्वारिंशत्ततो द्वाभ्यां चत्वारिंशच्छतद्वयम्॥
भद्द्वाणस्य ? तद्राज्यं गुप्तानां च शतद्वयम्।
एकत्रिंशच्च वर्षाणि कालविद्भिरुदाहृतम्॥
द्विचत्वारिंशदेवातः कल्किराजस्य राजता।
ततोऽजितं जयो राजा स्यादिन्द्रपुरसस्थितः॥

१–त्रिलोकप्रज्ञप्तिके "भच्छद्धणाण" शब्दका अनुवाद हरिवंश पुराणमें "भद्द्वाणस्य" किया है। हमने श्रीयुत प्रेमीजीके मतानुसार भच्छद्धणाणके स्थानमें "भच्छद्धणाण" कर दिया है जिसका अनुवाद भृत्यान्ध्राणां किया जासका है। क्योंकि इतिहासमें–शुङ्गवंशके बाद होनेवाले कण्ववंशके राजाको आंध्रवंशी राजाओंने मारकर उसका राज्य छीन लिया था–ऐसा उल्लेख मिलता है। देखो भारतवर्षका इतिहास।
—[प्रो० ईश्वरीप्रसाद]

इन श्लोकोंका भाव पूर्वोक्त गणनाके बिल्कुल अनुकूल है। हां, एक दो राजवंशोंके नाममें कुछ भेद होगया है जिसका खुलासा हम आगे करेंगे।

अब जरा श्वेतांबर आचार्योंकी गणनापद्धतिपर भी दृष्टि देना आवश्यक है। 'तित्थोगाली पइन्नय' नामक ग्रन्थमें वीरनिर्वाणसे शक कालतक ६०५ वर्षमें होनेवाले राजवंशोंकी कालगणना इस प्रकार की गई है—

जं रयणि सिद्धिगओ अरहा तित्थंकरो महावीरो।
तं रयणिमवंतीए अभिसित्तो पालओ राया॥
पालकरण्णो सट्ठि पुण पण्णसयं वियाणि णंदाणम्।
मुरियाणं सट्ठिसयं पणतीसा पुस्समित्ताणम्॥
बलमित्त भाणुमित्ता, सट्ठा चत्ताय होंति नहसेणे।
गद्द भसयमेगं पुण पडिवन्नो तो सगो राया॥

"जिस रातमें अर्हन महावीर तीर्थंकरका निर्वाण हुआ, उसी रात्रिमें अवंति-उज्जैनीमें पालकका राज्याभिषेक हुआ। पालकके ६०, नन्दवंशके १५०, मौर्योंके १६०, पुष्पमित्रके ३५, बलमित्र भानुमित्रके ६०, नभःसेनके ४०, और गर्दभिल्लके १०० वर्ष बीतनेपर शक राजा हुआ।"

"तीर्थोद्धार प्रकरण" नामक ग्रन्थमें वीर निर्वाणसे विक्रमादित्यके राज्यारम्भ तक ४७ वर्षमें होनेवाले राजवंशोंकी कालगणना भी प्रायः उक्त गणनाके अनुकूल है। यथा—

जं रयणि कालगओ अरिहा तित्थंकरो महावीरो।
तं रयणिमवंति वई अभिसित्तो पालओ रायो॥
सट्ठी पालगरण्णो पणपण्णसयं तु होई णदाणम्।
अट्ठसयं मुरियाण तीसं पुण पुस्समित्तस्स।
बलमित्त भाणुमित्ता सट्ठि वरसाणि चत्त नरवहणो।
तह गद्दभिल्लरज्जो तेरस वरिसा सगस्स चउ।

अर्थात्—पालकके ६०, नन्दोंके १५५, मौर्योंके १०८, पुष्पमित्रके ३०, बलमित्र भानुमित्रके ६०, नरवाहनके ४०, गर्दभिल्लके १३ और शकके ४ वर्ष बीतनेपर वीर निर्वाणसे ४७० वर्ष बाद विक्रमादित्य राजा हुआ।

दिगम्बर जैनाचार्योंने वीर निर्वाणसे कल्किके समय तक १००० वर्षमें होनेवाले राजवंशोंकी गणना की है और श्वेतांबराचार्योंने शक संवत् तथा विक्रम संवत्के प्रारम्भ तक क्रमशः ६०५ और ४७० वर्षमें होनेवाले राजवंशोंकी कालगणना की है। दोनोंने वीर निर्वाणके दिन उज्जैनीमें पालक राजाका अभिषेक तथा उसका राज्यकाल ६० वर्ष माना है।

उसके बाद दिगम्बराचार्य विजयवंशका उल्लेख करते हैं। जब कि श्वेताम्बराचार्योंने नन्दवंशको अपनी गणनाका आधार माना है। किन्तु दोनों वंशोंका समय समान है, अतः या तो दिगम्बराचार्योंको लिखनेमें कुछ भ्रम हुआ है या उन्होंने मगधके नन्दवंशको अपनी गणनाका आधार न मानकर, पालकके बाद उज्जैनके राज्यसिंहासनपर अभिषिक्त होनेवाले किसी अन्य वंशका उल्लेख किया है जो विजय नामसे ख्यात था। अस्तु, दोनोंका समय समान है अतः कालगणनामें कोई अन्तर नहीं पड़ सकता। "तित्थोगाली पइन्नय" में नन्दोंके १५० वर्ष लिखे हैं। शेष ५ वर्षकी कमी, पुष्पमित्रके ३५ वर्ष लिखकर पूरी कर दी गई है।

मौर्यवंशके ४० वर्ष।

त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें मौर्यवंशका राज्यकाल केवल ४० वर्ष लिखा है जब कि "तित्थोगालीपइन्नय" में १६० तथा तीर्थोद्धार प्रकरणमें १०८ वर्ष पाए जाते हैं। हमारा विश्वास है कि १६० वर्षका उल्लेख ही प्रमाणीक होना चाहिये। आधुनिक इतिहासलेखक भी मौर्यवंशका राज्यकाल ३२५ ई० पूर्वसे १८० ई० पूर्वके अनुमान मानते हैं। "तीर्थोद्धार" के कर्ताने १६०—१०८ शेष ५२

वर्षकी कमीको गर्दभिल्लोंके १५२ वर्ष मानकर पूर्ण कर दिया है। किंतु त्रिलोकप्रज्ञप्तिकी गणनामें १२० वर्षकी कमी रह ही गई।

जैन हितैषी भा० १३ अंक १२ में प्रकाशित "गुप्तराजाओं काल, मिहिरकुल और कल्कि" शीर्षक प्रो० पाठक महोदयके लेखसे भी उक्त कमी प्रकाशित होती है। पाठक महोदयने मंदसौरके शिलालेख तथा हरिवंशपुराणकी उक्त कालगणनाके आधारपर गुप्त साम्राज्यके नाशक मिहिरकुलको कल्कि सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है। आप लिखते हैं "कुमार गुप्त राजा विक्रम सं० ४९३, गुप्त सं० ११७ और शकाब्द ३५८ में राज्य करता था"। अतः ४९३ मेंसे ११७ वर्ष कम करनेपर वि० सं० ३७६ में गुप्तराज्य या गुप्त संवत्का प्रारभ होना सिद्ध होता है अर्थात् डाक्टर फ्लीटके मतानुसार वि० तथा गुप्त स० में ३७६ वर्षका प्रसिद्ध अन्तर आता है। अब यदि वि० सं० से ४७० वर्ष ५ मास या ४७१ वर्ष पूर्व वीर निर्वाण माना जाय (जो वर्तमानमें प्रचलित है) तो वीर निर्वाणसे ४७१+३७६=८४७ वर्ष बाद गुप्तराज्यका प्रारम्भ होना चाहिये। किंतु त्रिलोकप्रज्ञप्तिके पालकके राज्यसे गुप्तराज्यके प्रारभ तकके गणना अंकोंके जोड़नेसे (६०+१५५+४०+३०+६०+१००+४०+२४२) ७२७ वर्ष ही आते हैं। अतः (८४७–७२७) १२० वर्षकी कमी स्पष्ट होजाती है।

इसका कारण।

त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें शकराजाके बारेमें कई मतोंका उल्लेख किया है। जिनमेंसे एकमत यह भी है कि निर्वाणके ४६१ वर्ष बाद शक राजा हुआ मालूम होता है। ग्रन्थकारको यही मत अभीष्ट था। उन्होंने ६०५–४६१=१४४ वर्ष कम करनेके लिये, १२० वर्ष तो मौर्यकालमें कम किये, शेष २४ वर्ष शक कालके बादके गुप्तवंशके समयमें २३१ की जगह २५५ करके पूर्ण किये। क्योंकि वह लिखते हैं–

णिव्वाणगदे वीरे चउसद इगिसट्ठि वासविच्छेदे।
जादो च सगणरिंदो रज्जं वस्सस्स दुसयबादाला।
दोण्णिसया पणवण्णा गुत्ताणं चउमुहस्स बादालं।
वस्सं होदि सहस्सं केई एवं परूवंति॥

वीर निर्वाणके ४६१ वर्ष बीतनेपर शक राजा हुआ। उसके वंशजोंका राज्यकाल २४२ वर्ष था। उनके बाद गुप्तवंशीय राजाओंने २५५ वर्षतक राज्य किया। फिर चतुर्मुख कल्किने ४२ वर्ष राज्य किया, कोई २ इस तरह एक हजार वर्ष बतलाते हैं।

अतः ऊपरके विवरणसे स्पष्ट होजाता है कि ४६१ वर्षकी मान्यताको पुष्ट करनेके लिये मौर्यराजाके समयमें इतिहासबाधित कल्पना करली गई थी। अस्तु।

मौर्योंके बाद पुष्पमित्र तथा वसुमित्र अग्निमित्र या बलमित्र भानुमित्रकी कालगणनामें दोनों संप्रदायोंके आचार्य एकमत हैं, हां अंतिममें नामभेद होगया है। वसुमित्र अग्निमित्रके बाद त्रिलोकप्रज्ञप्तिके कर्ता गर्धसेन और नरवाहनका उल्लेख करते है, जब कि श्वेताम्बराचार्य नभःसेन या नरवाहनके बाद गर्दभिल्लका राज्य बतलाते हैं। हरिवंशपुराणके कर्ताने गन्धर्वसेनके स्थानमें गर्दभिल्ल मानकर गर्दभका पर्याय शब्द रासभ प्रयुक्त किया है।

बा० कामताप्रसादजी लिखते हैं कि गर्दभिल्लोंके बाद नरवाहन (नहपान) का राज्य होना इतिहाससे सिद्ध है। जैन कालगणनासे भी यही बात प्रमाणीत होती है। क्योंकि "तित्थोगाल्लीपइन्नय" की गणनाके अनुसार मौर्योंसे १६० वर्ष मानकर यदि गर्दभिल्लोंसे प्रथम नरवाहनका राज्य-

काल ४०. वर्ष मान लिया जावे तो गर्दभिल्ल पुत्र विक्रमादित्यका काल वीर निर्वाणसे ५१० वर्षबाद पड़ेगा। अतः इस विषयमें दिगंबराचार्योंका मत ही ठीक प्रतीत होता है।

गंधर्वसेन या गर्दभिल्ल।

गत ज्येष्ठकी माधुरीमें एक लेख विक्रम सम्वतके सम्बन्धमें प्रकाशित हुआ था। उसमें लिखा था कि मालवामें अभीतक ऐसी किंवदन्ती प्रचलित है कि प्रसिद्ध विक्रमादित्य, राजा गन्धर्वसेनके पुत्र थे। इस किंवदन्तीके अनुसार त्रिलोकप्रज्ञप्तिका गन्धर्वसेन नाम सङ्गत प्रतीत होता है। हिन्दू धर्मके "भविष्य पुराण" में भी विक्रमको गन्धर्वसेनका पुत्र बतलाया है। यथा–

देवागना वीरमती शक्रेण प्रेषिता तदा।
गन्धर्वसेनं सम्प्राप्य पुत्ररत्नमजीजनत्॥
पूर्णत्रिंशशतेवर्षे कलौ प्राप्ते भयंकरे।
शकाना च विनाशार्थमार्यधर्मविवृद्धये॥
विक्रमादित्यनामान पिता कृत्वा मुमोदस.?॥

गर्दभी विद्या जाननेके कारण गंधर्वसेन "गर्दभिल्ल नामसे ख्यात हुआ। उसके पूर्वज बहुत पहिलेसे उज्जैनमें राज्य करते थे। किंतु मेरा अनुमान है कि उनकी गर्दभिल्ल संख्या नहीं थी। राजा गंधर्वसेनके समयसे उनके उत्तराधिकारी गर्दभिल्लवंशी कहलाने लगे। जैनाचार्योंने अपनी कालगणनामें उज्जैनके इस राजवंशको गर्दभिल्लके समयसे ही गिना है, उसके पूर्वसे नहीं।

पालकके राज्यकालके प्रारम्भसे वसुमित्र अग्निमित्र राज्यकालके अन्त समयतक ४६५ वर्ष पूर्ण हुए। उस समय उज्जैनके सिंहासनपर गंधर्वसेन थे। इस कामुक राजाने राज्यभार ग्रहण करते ही श्वेतांबराचार्य कालककी बहिनका अपहरण किया। जिससे क्रुद्ध होकर कालकाचार्यने शकोंकी मददसे वीर नि० सं० ४६६ में गर्दभिल्लोंको राज्यच्युत किया और शकोंको उज्जैनका राजा बनाया। अभी शक-राजाको उज्जैनमें राज्य करते हुए ४. वर्ष भी बीतने न पाये थे कि गर्दभिल्लके पुत्र विक्रमादित्यने शकोंको परास्त कर अपना राज्य छीन लिया। और उज्जैनके सिंहासन पर बैठकर शक-विजयके उपलक्षमें वीर निर्वाणसे ४७० वर्ष ५ मास बाद विक्रम सम्वत् चलाया। विक्रमादित्यने ६०, भाइलने ११, नाइलने १४, और नाहडने १० वर्ष राज्य किया। इसके साथ ही गर्दभिल्लोंके १०० वर्ष पूरे होगए।

गर्दभिल्लोंके बाद शकराज नरवाहन (नहपान) ने ४० वर्ष तक राज्य किया। अन्त समय भृत्यवंशके गौतमी पुत्र सातकर्णी (शालिवाहन) ने नहपानको जीतकर शकोंको जीतनेके उपलक्षमें वीर निर्वाणसे ६०५ वर्ष ५ मास बाद शालिवाहन शकाब्द प्रचलित किया। त्रिलोकप्रज्ञप्तिके कर्ता नरवाहनके बाद आन्ध्रभृत्य राजाओंका राज्य काल बतलाते हैं जो उक्त ऐतिहासिक मान्यताके बिलकुल अविरुद्ध पड़ता है। इस प्रकार दिगम्बर तथा श्वेतांबर मान्यताओंसे–जो कि इतिहाससे पूर्णतया सम्मत हैं–प्रचलित वीर निर्वाण सम्वत् बिलकुल ठीक बैठता है।

अब हम पुनः प्रकृत लेखके कालगणना संबन्धी अंशोंपर भी विचार प्रारम्भ करते हैं।

बाबू कामताप्रसादजीने अपने लेखमें विक्रम प्रबन्ध, नन्दिसंघकी पट्टावली तथा वसुनन्दि श्रावकाचारका प्रमाण देकर यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि वीर निर्वाणसे ४७० वर्ष बाद विक्रमका जन्म हुआ और १८ वर्ष बाद वीरनि० सं०

१ देखो—"कालकाचार्य"–अनेकान्त किरण ८-९-१०।

४८८ में विक्रम सम्वत्की प्रवृत्ति हुई। यहां हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि उक्त तीनों उल्लेख भिन्न२ नहीं हैं। किन्तु विक्रम प्रबन्धकी गाथा नन्दिसंघकी पट्टावलीमें उधृत की गई है और वह पट्टावली वसुनंदि श्रावकाचारमें उठाकर रखदी गई है। इस तरहसे एक ही ग्रन्थका भिन्न२ स्थानोंमे उल्लेख होनेसे लेखकने उन्हे भिन्न२ मान लिया है। अस्तु। विक्रम प्रबन्धका उक्त उल्लेख ठीक नहीं है, क्योंकि जैनकालगणनासे वीर नि० सं० ४७० वर्ष बाद विक्रमका राज्यारोहण सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त धनेश्वरसूरीने अपने "शत्रुंजय महात्म्य" में वीर निर्वाणसे ४७० वर्ष बाद विक्रम सम्वतकी प्रवृत्ति होनेका उल्लेख किया है। प्रो० धीरेन्द्रनाथजी उन्हें वि० स० ४७७ में हुआ मानते है। मेरी दृष्टिमें विक्रम सम्वतकी मान्यताके संबन्धमें अबतक जितने उल्लेख प्राप्त हैं उनसे उक्त उल्लेख अति प्राचीन है। अत: उसकी प्रमाणिकतामें कोई सदेहकी संभावना दृष्टिगोचर नहीं होती।

आगे चलकर लेखकने तीर्थोद्धार प्रकरणकी भी गाथाए उद्धत की हैं जो हम उपर कालगणनामें उद्धतकर आये हैं। इन गाथाओंसे वीर निर्वाणके ४७० वर्ष बाद विक्रमका राज्यारोहण ही सिद्ध होता है 'जन्म नहीं' क्योंकि राज्यकालगणना राज्योंके जन्मसे नहीं की जाती, राज्याभिषेकसे की जाती है। बा० कामताप्रसादजी "सगस्स पउ" वाक्यके सगस्स शब्दसे विक्रमादित्य शकारिका ग्रहण करते हैं। यह असंगत है। क्योंकि श्वेताम्बर उल्लेखोंसे उज्जैनके सिंहासनपर गर्दभिल्लके बाद शकोंका राज्य चारवर्षतक होना सिद्ध होता है अत: यह उल्लेख शकराजके ही लिये किया गया है। शकारिके लिये नहीं किया गया।

हम ऊपर लिख आये हैं कि दोनों जैन आम्नायके ग्रन्थोंमें वीर निर्वाणसे ६० वर्ष ५ मास बाद शकराजाका समय बतलाया गया है। हमारा विश्वास है कि वीर निर्वाणके समयनिर्णयमें शक संवत् ही मूलाधार होना चाहिये। क्योंकि उपलब्ध जैनवाङ्मयमें पुरातन लेखकोंने शक सं० का ही आधार लिया है। विक्रम सं०की मान्यता तो दसवीं शताब्दीके बाद पट्टावलियोंके समयमें प्रचलित हुई है। दूसरे, इस उल्लेखके साथ ५ मासका भी उल्लेख है, जो अर्ध कार्तिकसे ५ मास बाद चैत्रार्धसे शक सम्वतकी प्रवृत्ति बतलाता है। मेरे जाननेमें अभी तक अन्य किसी भी उल्लेखके साथ मास गणना नहीं पाई गई। अत: इसकी समीचीनतामें एक यह भी विशेष कहा जासक्ता है, किन्तु लेखक महाशय इसको भी असंगत ठहराते हैं। आप लिखते हैं—"शक संवत प्रवर्तकका ठीक पता नहीं चलता। कोई कनिष्क द्वारा इस संवतको चला हुआ बतलाते हैं तो अन्योंका मत है कि नहपान अथवा चष्टनने इसको चलाया था ××× इसके प्रतिकूल प्राचीन मान्यता यह है कि शक सम्वत शालिवाहन नामक राजा द्वारा शकोंको परास्त करनेके उपलक्षमें चलाया गया था×××रुद्रदमनके अन्धौवाले शिलालेखके आधारपर शक सम्वत्को चलानेवाला गौतमी पुत्र सातकर्णी प्रगट होता है। ××× अत: जैन शास्त्रोंमें जिस शक राजाका उल्लेख है वह शक सम्वत्का प्रवर्तक नहीं हो सक्ता। क्योंकि वह शक वंशका राजा था।" आदि।

इसके बाद लेखक महोदयने नरवाहन या नहपानको जैनोंका शक राजा बतलाया है। और त्रिलोकपज्ञप्तिके विभिन्न दो मतोंके आधारपर वीर निर्वाणाब्द ४६१ से ६०५ तक उसका समय मानकर तथा अपनी कल्पनाके अनुसार प्रचलित वीर निर्वाण सम्वत्को ५२७ के स्थानमें ५४५

ई० पू० निर्धारित करके नहपानका समय ८४ ई० पूर्वसे ६० ई० तक माना है।

" नहपान ही जैनोंका शक राजा है " हम लेखकके इस मतसे सहमत हैं। किन्तु आपका यह लिखना—यह शक सम्वतका प्रवर्तक नहीं हो सक्ता, क्योंकि वह शकवंशका राजा था, बिल्कुल असंगत है। क्योंकि किसी भी जैन ग्रन्थमे शक राजाको "शकसंवतका प्रवर्तक" नहीं लिखा है। जैनाचार्य केवल इतना ही उल्लेख करते हैं कि वीर निर्वाणके ६०५ वर्ष ५ मास बाद शक राजा हुआ। अत: आपकी उक्त आपत्ति निःसार है। त्रिलोकसारमें वीरनिर्वाणसे ६०५ वर्ष ५ मास बाद शक तथा १००० वर्ष बाद कल्किका समय बतलाया गया है।

जैन ग्रन्थोंमें वीर निर्वाणसे कल्किके राज्यान्त तक १००० वर्षमें होनेवाले राजवंशोंका क्रमवार उल्लेख किया है जो हम ऊपर लिख आये हैं। उसमें कल्किका राज्यकाल ४२ वर्ष भी शामिल है। इसी तरह शक राजा तक ६०५ वर्षमें शक राजाका काल भी शामिल समझना चाहिये। जैसा कि उक्त गणना अंकोंसे स्पष्ट होता है यथा ६०×१५५×१६०×३०×६०×१०० और नहपान ४० वर्ष, सबका जोड़ ६०५ वर्ष हुआ अत: नहपानका समय ई० स० ३८ से ७८ तक होना स्पष्ट है। इसे गौमती पुत्र सातकर्णीने ई० स० ७८ में हराकर शक सम्वतकी स्थापना की। हमारी इस मान्यतासे जैनाचार्योंकी काल गणना, जैनग्रन्थोंमें शकराजाका उल्लेख, प्रचलित वीर निर्वाण संवत्, शक संवत्, बा० कामताप्रसादजीका नहपानको जैनोंका शक बतलाना, 'अंबौवाला शिलालेख' इन सबका सामञ्जस्य बिल्कुल ठीक बैठ जाता है।

एक वर्षकी भूल।

प्रचलित वीर निर्वाण सं० में समझके हेरफेरसे एक वर्षकी भूल पड़ गई है। वर्तमानमें वीर नि० सं० २४५८ है और गत दीपावलीसे २४५९ होगया है। प्राय: प्रत्येक व्यक्ति यही समझता है कि इस दीपावलीको वीर निर्वाण हुए २४५८ वर्ष पूर्ण होगए और २४५९ वा वर्ष प्रारम्भ हुआ। किंतु यथार्थ बात इससे विपरीत है। अर्थात् वीर प्रभुका निर्वाण हुए २४५९ वर्ष बीत गए और २४६० वा वर्ष प्रारम्भ हुआ।

इस बातको स्पष्ट समझानेके लिए हम जरा खुलासा करते हैं। जब शक सम्वत् प्रारम्भ हुआ उस समय वीर निर्वाण हुए ६०५ वर्ष ५ माह पूर्ण व्यतीत हुए थे अर्थात् वीर निर्वाण सम्वत् ६०६ प्रारम्भ था। गत चैत्रमें शक सम्वत्के १८५३ वर्ष बीत गये। यदि हम १८५३+६०५ वर्ष ५ मासको जोड़े तो २४५८ वर्ष ५ मास आता है अर्थात् गत चैत्रमें वीर निर्वाणके २४५८ वर्ष ५ मास वीत गये। पुराने समयमें पूर्ण संवत् लिखनेकी प्रथा थी। चालू सम्वत् लिखनेकी प्रथा विक्रम तथा शक सम्वत्के समयमें प्रारम्भ हुई ज्ञात होती है। क्योंकि उक्त दोनों सम्वतके चालू वर्ष ही लिखे जाते हैं, पूर्ण नहीं। इन्हींके भ्रमसे लोग वीर निर्वाण संवतके वर्षोंको पूर्ण वर्ष न मानकर चालू वर्ष मानने लगे, और इस तरह एक वर्षकी भूल पड़ गई। उक्त ट्रैक्टमें इसी एक वर्षकी भूलने प्रकाशक तथा लेखकके मन्तव्यमें एक वर्षका अन्तर डाल दिया है, और जब लेखक १८ वर्षकी कमी सिद्ध करते हैं तब प्रकाशक अपनी प्रस्तावनामें १९ वर्षकी कमी बतलाते हैं। अत: वीर निर्वाण ई०से ५२६ वर्ष २ मास पूर्व हुआ मानना चाहिये।

यही भूल बुद्ध निर्वाण संवतमें भी हुई है।

वर्तमानमें बुद्ध नि० स० २४७६ है जो वैशाखी पूर्णिमासे बदलता है। मुखोपाध्यायजीके मतसे गत वैसाखी पूर्णिमाको २४७६ वर्ष पूर्ण हो गए और २४७७ वां प्रारम्भ हुआ है। (हमने सारनाथ जाकर एक बौद्ध भिक्षुसे भी पूछा, तो उन्होंने इस बातका ही समर्थन किया।) किन्तु विन्सेन्ट स्मिथ आदि अंग्रेज लेखकोंके मतसे २४७५ पूर्ण होकर २४७६ वा चालू वर्ष आता है। इसीलिये उन्होंने बुद्धका निर्वाण, करीब ५४४ वर्ष ८ मास पूर्वके स्थानमें ५४३ वर्ष ८ मास पूर्व मान लिया है। जो असंगत है। आशा है पाठकगण इस एक वर्षकी भूलको समझने समझाने तथा सुधार करनेमें दत्त-चित्त होंगे।

अन्तिम निवेदन।

लेख कुछ बढ़ गया है, जिसका कारण विषयको सरल और स्पष्ट करनेका प्रयत्न है। जिससे साधारण पाठक भी वीर निर्वाण सम्वतमे प्रचलित विवादको समझ सकेंगे। हमें दिगम्बर तथा श्वेताम्बर कालगणनाओंके आधारपर तथा समकालीन व्यक्तियोंकी पर्यालोचनासे प्रचलित वीर सम्वत् ही ठीक प्रतीत होता है। यदि उसे गलत माना जायेगा तो उसके मूल आधार शक सम्वत्में भी कांटछाट करनी पड़ेगी, जिसमें विद्वानोंको कोई भी विवाद नहीं है।

अन्तमें लेखक महोदयसे हमारा नम्र निवेदन है कि वे क्षत-विक्षत बुद्ध निर्वाण सम्वत्की नींवपर वीर सम्वत्की भिति खड़ी करनेका प्रयत्न न करें। बुद्ध सम्वत्के विषयमें इतिहासज्ञोंके आजतक भी भिन्न२ मत प्रगट होते ही जाते है। इस विषयमें शीघ्रता करनेसे पीछे पछताना पड़ेगा। आशा है विद्वान लेखक मेरे नम्र निवेदनपर ध्यान देंगे।

नोट १—बुद्ध संवत्को ५४३ ई० पूर्वमें प्रारंभ हुआ मानकर उसमें दो वर्ष बढा देनेसे ५४५ ई० पूर्व होजाता है और वीर नि० स को ५२७ ई० पू० में विक्रमके जन्मसे ४७० वर्ष पूर्व हुआ मानकर उसमें विक्रमके राज्यारोहणके १८ वर्ष बढ़ा देनेसे ५४५ ई० पू० होजाता है। किंतु जब बुद्ध सं० ५४४ ई० पूर्वसे प्रचारित हुआ माना जाता है तो लेखकके मतसे २ वर्ष बढ़ाकर ५४६ ई० पूर्वमें वीर निर्वाण मानना चाहिये। इस एक वर्षकी अधिकताको विक्रमके संबंधमें किस प्रकार पूर्ण किया जायेगा ?

काल उद्यमको आयौ है।

(१)

चहुंदिशा ख्यात स्वाभिमान सुविशाल भारी,
चाहना न उसकी की व्यर्थ ही गमायौ है।
अपना अरु परका अतीवोपकारक जो,
शिक्षा परचारका कृष्णमुख करायौ है॥
वंश क्रम आगत विख्यात वीरवीरताको,
बिलकुल तिलाजलि दे कोंसो भगायौ है।
मारे विलासिताके धन सब विलाय गयौ,
अतएव दारिद्रय--महासाम्राज्य छायौ है॥

(२)

जबसे उपशांति हुई प्रेम—रसधाराकी,
द्वेषको अपनाना कर्तव्य मन भायौ है।
परिणाम दुखकर कुरीति प्रचार हुआ,
बाल ब्याह और वृद्ध सुखसे रचायौ है॥
ऐसे अन्यायभूत मार्गवृत्ति करनेसे ही,
आके उस हामतीय रोगने सतायौ है।
एवं सोते वीरो! समय बहुत वीत गयौ,
अब तो कर्तव्य काल 'उद्यम' कौ आयौ है॥

राजकुमार जैन बि०—पपौरा।

भगवान महावीरका मिथ्यात्वनिषेध।

(लेखक:-श्रीमान बा० कामताप्रसादजी जैन-अलीगंज।)

भगवान महावीरने दिवालीके रोज मोक्ष लक्ष्मीको पाया था। इस अखूट धनकी राशिको उन्होंने परमोत्कृष्ट सम्यक्त्वके बलपर प्राप्त किया था। उनके निकट मिथ्यात्वको जरा भी स्थान न था। जबतक मनुष्य मिथ्यात्वभावको छोड़कर सम्यक स्वभावको न पाले तबतक वह प्रभू वीरका भक्त नहीं हो सक्ता और न वह मोक्षमार्गका पथिक कहा जासक्ता है। सच्चे देव, सच्चे गुरू और सच्चे धर्मका ठीक-ठीक श्रद्धा करना मोटे तरीके पर मिथ्यात्व निषेध अथवा सम्यक्त्व है। भगवान महावीरकी दिव्यध्वनिमें उसका विशद विवेचन हुआ था। उस विवेचनमें वह प्रकरण ध्यान देने योग्य है जिसमें राजपुत्र अभयकुमारके पूर्व भवोंका वर्णन किया गया है। संक्षेपमें उस प्रकरणपर एक दृष्टि डालकर पाठकोंको हम बतायेंगे कि भ० महावीर किसप्रकार मिथ्यात्वका निषेध करते थे।

राजकुमार अभयने तीर्थंकर भगवानसे पूछा कि "प्रभो! मैं पूर्वभवमें कौन था?" उनके इस प्रश्नका उत्तर भ० महावीरकी दिव्यध्वनिमें हुआ कि "इस भवसे तीसरे भवमें तू एक ब्राह्मणपुत्र था। वेदोंका पाठ करनेमें व्यस्त और पाखण्डमूढ़ता, देवमूढ़ता, तीर्थमूढ़ता और जातिमूढ़तासे सबको मोहित करनेमें लगा हुआ था। इन कार्योंको ही तू अच्छा समझता था। एकदफा तू परदेशको गया-रास्तेमें एक श्रावकका तेरा साथ होगया। मार्गमें पत्थरोंके ढेरके पास एक भूतोंका निवासस्थान पेड़ था।

ब्राह्मणपुत्रने उसे अपना देव मानकर प्रणाम किया और प्रदक्षिणा की! श्रावक उसकी इस क्रियापर ढढाकर हस पड़ा। उसने पेड़परसे कुछ पत्ते तोडे और उन्हें मींडकर फैंक दिये। तेरे कुदेव सम्बन्धी मिथ्यात्वको दूर करनेके लिये उसने तुझे यह भी बताया कि-देख, जिसे तू देव मानता है, उसमें कुछ भी सामर्थ्य नहीं है। वह ब्राह्मणपुत्र उसपर खिसयानासा होगया और बोला-"मैं तेरे देवकी सामर्थ्य देखूँगा।" उसको सम्बोधनेके लिये श्रावकने कहा-"अच्छा भाई! परीक्षा करनी है हमारे देवकी तो देख यह कपिरोमा बेलवृक्ष हमारा पूज्य है।" ब्राह्मणपुत्रने झटसे उसे उखाड़ फैंका और हाथों-पैरोंसे उसे मींढने लगा।

उसके मींढते ही उसके हाथ पावोंमें जलन शुरू होगई। क्योंकि उस वृक्षका यह स्वभाव ही होता है। यह देखकर वह ब्राह्मणपुत्र डरा और अनुभव करने लगा कि "सचमुच, यही सामर्थ्यवान देव है।" और उसने कहा भी यही! श्रावक फिर हस पड़ा और बोला-"इस संसारमें जीवोंको सुख दु:खको देनेवाला पहले किये हुए कर्मोंके सिवाय और कोई नहीं है। इसलिये तप, दान आदि सत्कार्योंको करके तू अपना कल्याण कर

और इस देवमूढ़ताको निकाल फेंक कि "देवता ही सब कुछ करते हैं।" +

देवमूढ़ताका निरसन इस उल्लेखमें किस अच्छे ढंगसे किया गया है। आजकल हमारे बहुतसे भाई बहिन भगवानके इस उपदेशकी ओर ध्यान न देकर मिथ्यात्वका सेवन करते हैं। 'भगवान कोंगे सो होगा,' 'भगवानकी मर्जी' इत्यादि शब्द तो रोजमर्राकी बोलचालमें जैनियोंके मुखसे सुने जा सक्ते हैं। भला भगवानको आपके अच्छे बुरेसे क्या मतलब? यह मान्यता तो वेदानुयायियोंकी है, जिसका खण्डन भगवानने किया है। सम्यक्त्वी होकर उसको भला कैसे माना जा सक्ता है? इसके अतिरिक्त आजकल पीपलको पूजना, देवी भवानी मानना, जिन्दा बकरा न सही तो नारियलको बकरा मानकर चढ़ाना इत्यादि रूपमें भी देवमूढ़ताका प्रचार जैनियोंमें है। पीपल एकेंद्री जीव है। वह स्वय अपनी रक्षा भयादिसे नहीं कर सक्ता तो दूसरोंकी क्या करेगा? देवी भवानी आदिका तो अस्तित्व ही नहीं है। वह किसीका भला कहासे करे? उसपर हिंसा करनेसे किसीका भला नहीं हो सक्ता।

जैसे मनुष्यको अपने प्राण प्रिय हैं, वैसे ही अन्योंको भी हैं। फिर भला दूसरोंके प्राण लेकर—उनको महान् दुःख पहुंचाकर कोई जीव कैसे सुखी होसक्ता है? एक सम्यक्त्वी जानता है कि इंद्रियजनित सुख और सामिग्री क्षणिक है। जब शरीर भी मेरा साथ नहीं देता तब दूसरे पदार्थ मेरा क्या उपकार कोंगे? यह वह जानता है, इसलिये प्रत्येक कार्यको वह कर्तव्य जानकर करता है। जिनेन्द्र भगवानकी पूजा, दान और उपवास वह सासारिक ऐश्वर्यको पानेकी इच्छासे नहीं करता है। निदान करके धर्मकार्य करना निषिद्ध है। वह भी मिथ्यात्वभावका द्योतक है। 'महावीरजीकी बोली बोलना, कार्यसिद्धिके लिये छत्र चढ़ाना, घीका दीवा जलाना, रुपया उठाकर भगवानके नामपर रख देना, अपने सम्यक्त्वमें बट्टा लगाना है। यदि यही कार्य निदान करके इस भावसे कि हमारे इच्छित कार्यकी सिद्धि होजाय—न किये जांय, मात्र धर्मभावसे किये जाय तो विशेष फलको प्रदान कर सक्ते हैं। क्योंकि धर्मभावमें परिणाम विशेष समतारूप होते है और समभाव ही उपादेय है। अतः जैनियोंको ऐसे कार्य न करना चाहिये। जिससे व्यर्थ उन्हें मिथ्यात्व-सेवनका भागी होना पड़े!'

आगे उक्त प्रकरणमें कहा गया है कि "वह श्रावक जब उस ब्राह्मणपुत्रके साथ अगाड़ी बढ़ा तो गगा नदीके किनारेपर पहुचा। ब्राह्मणपुत्रने गगाको एक महातीर्थ समझा और बड़ी भक्तिसे उसने वहा स्नान करके अपनी तीर्थमूढ़ताका परिचय दिया। श्रावकको उसकी इस करनीपर खेद हुआ और उसने करुणा करके उसकी इस तीर्थमूढ़ताको नष्ट करनेका भी निश्चय कर लिया। अज्ञानतिमिरको मेंटना ही महाधर्म है। मिथ्यात्वी जीवोंको बोधिलाभ कराना श्रेष्ठ कार्य है। बस उस श्रावकने झटसे अपने खाये हुये भोजनके बचेखुचे भागमें गगाजल मिलाकर उस ब्राह्मणसे कहा कि—"लो भाई, यह भोजन करलो!" ब्राह्मण इसपर बहुत बिगड़ा और बोला कि 'तेरा उच्छिष्ट भोजन मैं कैसे खाऊ?' श्रावक मुस्कराया और उसे बताया कि "भाई, इसमें गंगाजल मिला है। यदि गगाजल इस उच्छिष्ट भोजनके दोषको दूर नहीं कर सक्ता तो मनुष्योंके पापोंको कैसे धो देगा? भाई, अपने मनसे यह मूढ़ताके विचार निकाल डाल। 'यदि जलसे ही बुरी वासनाओंके पाप दूर हो जाय तो फिर तप, दान आदि पुण्यकार्य करना व्यर्थ हैं। सब लोक जलसे ही पाप

+ देखो [illegible] पत्र ४७९-४८०

दूर कर लिया करें!' लेकिन ऐसा होता नहीं! मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषायसे पापकर्मोंका बन्ध होता है और सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र, तपसे पुण्य कर्मोंका बन्ध होता है, तथा अन्तमें इन्हीं चारोंसे मोक्ष होती है। इसलिये तू अब श्री जिनेन्द्र देवका मत स्वीकारकर।"

इस उल्लेखसे (१) तीर्थ मूढ़ताका निषेध और (२) साथ ही अजैनोंको जैनधर्ममें दीक्षित करनेकी पुष्टि होती है। हिन्दूओंके 'पद्मपुराण' (भूमि खंड ६६ अ०) में एक कथा है जिसमें दिगंबर मुनि राजा वेणको जैनधर्ममें दीक्षित करनेके लिये उपदेश देते बताए गए हैं। उस उपदेशमें वह यह भी कहते हैं कि—

नद्यो जलप्रवाहास्तु तासु तीर्थं श्रुतं कथम्।
जलाशया महाराज तडागाः सागरास्तथा॥
पृथिव्या धारकाश्चैव गिरयो ह्यश्मराशयः।
नास्त्येतेषु च वै तीर्थं जलैर्जलदमुत्तमम्॥
दृष्ट्वा स्नानेन वै सिद्धिर्मीनाः सिध्यन्ति नान्यथा।

भाव यह है कि नदिया तो पानीको वहानेवाली नालिया हैं, उन्हे तीर्थ कैसे माना जावे? राजन्! जलाशय, तालाव, झील, समुद्र, पहाड़ और पृथिवीके धारक पत्थर यह कोई भी तीर्थ नहीं है! यदि जलके कारण यह पवित्र है तो इनके जलके उत्पादक बादल इनसे भी पवित्र मानने चाहिये। यदि स्नान करनेसे ही सिद्धि मिलती है तो मछलीको वह क्यों नहीं नसीब होती, क्योंकि मछली तो हरवक्त पानीमें रहती है। अतः गंगा या पुष्कर स्नानसे पापमोचन होना असंभव है। जिन लोगोंका ऐसा मिथ्या श्रद्धान हो उनका उस झूठे श्रद्धानसे पीछा छुटाकर जैनी बनाना प्रत्येक सम्यक्त्वीका कर्तव्य है। आगे उस श्रावकने एक तपस्वीको पंचाग्नि तपते देखा तो उसके इस हिंसामय कायक्लेशका निषेध किया; क्योंकि जबतक आत्माका सच्चा श्रद्धान और ज्ञान न हो तबतक कोरा कायक्लेश कुछ भी कार्यकारी नहीं है। सच्चा गुरु वही है जो रागद्वेषसे अपनेको बचाता हुआ जीव मात्रकी रक्षा करनेमें तत्पर हो। श्रावकने अपने ब्राह्मण साथीकी पाखण्डमूढ़ताका भी अंत कर दिया।

उपरांत उस ब्राह्मणपुत्रकी जातिमूढ़ताका अन्त करनेका भी उद्योग उस श्रावकने किया। श्री गुणभद्राचार्य इस प्रकरणमें लिखते हैं कि—

"गोमांसभक्षणागम्यगमाद्यैः पतिते क्षणात्।
वर्णाकृत्यादिभेदानां देहेस्मिन्न च दर्शनात्॥
ब्राह्मण्यादिषु शूद्राद्यैर्गर्भाधानप्रवर्तनात्।
नास्ति जातिकृतो भेदो मनुष्याणां गवाश्ववत्॥
आकृतिग्रहणात्तस्मादन्यथा परिकल्पते।"

इन श्लोकोंका अर्थ श्री० पं० लालारामजीने इस प्रकार किया है कि "वह उसकी जातिमूढ़ता दूर करनेके लिये कहने लगा कि गोमांस भक्षण तथा वेश्यादि सेवन, न करने योग्योंका सेवन करनेसे मनुष्य क्षणभरमें पतित होजाता है। इसके सिवाय इस शरीरमें वर्ण वा आकारसे कुछ भेद भी दिखाई नहीं पड़ता और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंमें शूद्रोंसे भी गर्भाधानकी प्रवृत्ति देख पड़ती है। इसलिये मनुष्योंमें गाय और घोड़ेके समान जातिका किया हुआ कुछ भेद नहीं है। यदि आकृतिमें कुछ भेद हो तो जातिमें भी कुछ भेद कल्पना किया जासक्ता है।" (उत्तरपुराण पृ० ६२) उक्त प्रकारके युक्तिपुरस्सर वचनोंके द्वारा श्रावकने ब्राह्मणपुत्रीकी जातिमूढ़ताको मेट दिया! यह भ० महावीरकी दिव्य ध्वनिमें तब भव्य जीवोंको सुन पड़ा था!

किन्तु आजका जैनसंघ ठीक इसके विपरीत व्यवहार कर रहा है। वह जातिमदमें ऐसा मदांध होरहा है कि उसने धर्मको उठाकर ताकमें रख दिया है! उसपर आजकल जो लोग अपनेको जैनाचार्य कहते हैं, वह भी एक मात्र जातिमदको वृद्धि देनेका उद्योग करते मिलते हैं। जैनियोंमें

परस्पर रोटी-बेटी व्यवहारको, यह लोग धर्मघातक समझते हैं। किसलिये? महज कल्पित जातियोंके कारण! जिन ८४ उपजातियोंका मोह इन लोगोंको है उनका पता निशान भी भ० महावीरके समयमें नहीं था। मुसल्मानी जमानेमें यह देशभेद आदिके कारण कल्पित कर ली गई हैं। इनको जन्म देने और पनपानेका श्रेय भट्टारक महाशयोंको है। उन्होंने अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये, क्योंकि उन्होंने श्रावकोंपर राजाओंकी तरह शासन करना आरम्भ कर दिया था, और वे उनसे तरह २ के कर वसूल किया करते थे, अनेक जातियोंको उत्पन्न कर दिया। अब भला कहिये इन झूठी जातियोंके मोहमें धर्मका नाश क्यों किया जाय?

फिर जरा यह भी तो देखिये कि जिस ८४ सख्याका बखान इन जातियोंके विषयमें किया है, वह एक जमाना हुआ नष्ट हो चुकी है। पुराने जमानेमें जो जातियां कल्पित की गई थीं उनका अब कहीं नामनिशान नहीं है और जो उस समय नहीं थीं वह उत्पन्न होगई हैं। अब यदि यह जातियां प्राकृत होतीं तो उनमें भी पशु संसारकी तरह घोड़ा, बैल, बकरी आदि भेद होना चाहिये था; परन्तु यह बात नहीं है। इनमें तो क्या ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र—इन चार मुख्य जातियोंकी कल्पना की गई है, उनमें भी यह प्राकृत भेद नहीं है। उनकी कल्पना मात्र जीवनकी सुविधाके लिये कर्मकी अपेक्षा की गई थी। अत इस समय उनको उस रूपमें पलटा जासक्ता है जिससे हमारे वर्तमान जीवन सुविधामय बने और जिससे हम स्वस्थ्य व शक्तिशाली बनकर धर्मका पालन ठीक२ कर सकें। जातिके स्वास्थ्यके ह्रासके साथ२ धर्मका ह्रास होना अनिवार्य है। यदि यह बात न मानी जाय तो मोक्षप्राप्तिके लिए उत्कृष्ट संहननका विधान ही व्यर्थ होता है।

अतः जैन संघ व धर्मकी उन्नतिके लिये जातिमदको दूर करके श्रावकाचारको पालनेवाले जन्मके जैनियोंकी एक वैश्य जाति बन जाना बहुत जरूरी है। उसमें परस्पर रोटी-बेटी व्यवहार खुल जानेसे वर-कन्याका योग्य सम्बन्ध हुआ करेंगे, जिनसे सन्तान भी हृष्टपुष्ट होगी और उसके धर्मानुरागी होनेसे सदाचारकी भी वृद्धि होगी। बस, जो लोग संघ और धर्मकी उन्नति चाहते हैं, उन्हें उक्त प्रकार संगठन करनेका उद्योग करना चाहिये।

कुछ त्यागी महानुभाव और पंडितजन शूद्र जातिके लोगोंसे घृणाका व्यवहार मात्र जातिमदके वश होकर करते हैं। उनका यह कार्य भ० महावीरके धर्मोपदेशसे उल्टा है। भगवानने शूद्रको धर्मसेवनका अधिकारी बताया है और आदिपुराणजीमें यह कथन भी आया है कि श्रेष्ठ कार्योंके लिए एक राजाके शिविरमें कहार पानी भरते थे। इन्द्रभूति गौतम महाराज अपने पूर्वभवमें एक शूद्र थे और उन्होंने लब्धविधानव्रत एक मुनि महाराजके उपदेश ग्रहण करके किया था। अब यदि शूद्र पास बैठाने लायक न होते तो जैन शास्त्रोंमें उपरोक्त प्रकार वर्णन नहीं मिल सक्ता था। पूर्वोल्लिखित हिन्दू पद्मपुराणमें दिगंबर मुनि यह कहते प्रकट किये गये हैं:—

दयादानपरो नित्यं जीवमेव प्ररक्षयंन्।
चाण्डालो वा स शूद्रो वा स वै ब्राह्मण उच्यते॥

भाव यह है कि वह मनुष्य जो जन्मसे चाडाल व शूद्र है, परन्तु इसपर भी नित्य ही दयादान और जीवोंकी रक्षा करता है, तो निश्चय उसे ब्राह्मण कहना चाहिये अर्थात् यह अपने कर्मसे ब्राह्मण होगया है। जैनाचार्य श्री समंतभद्रस्वामी भी तो अपने रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें यही कहते हैं—

'सम्यग्दर्शन सम्पन्नमपि मातंगदेहजं।
देवादेवं विदुर्भस्मगूढांगारान्तरौजसम्॥'



आप स्याद्वाद महाविद्यालय काशीके धर्माध्यापक व अच्छे लेखक और उच्च कोटिके विद्वान हैं।

सिद्धान्तशास्त्री पं० कैलाशचन्द्रजी जैन न्यायतीर्थ।

आप आयुर्वेद विद्यामें अच्छी उन्नति कर रहे हैं तथा अच्छे लेखक हैं।



आयुर्वेदविशारद पं० मनोहरलाल जैन वैद्यराज वैद्यशास्त्री-झांसी।



विमानमें विलायतसे भारत तककी यात्रा करनेवाले आप प्रथम जैन और प्रथम हिन्दू गृहस्थ हैं तथा आपने बंगाल फ्लाइंग क्लबमें अभ्यास करके विमान चलानेका A पाइलेट लाइसेन्स प्राप्त किया है। आप एक अच्छे लेखक भी हैं।

श्री० सेठ रामचन्द्रजी खावगी कलकत्ता।

आफ्रिका (कंपाला) निवासी आप एक उत्साही लेखक और कवि हैं [illegible] आफ्रिकामें व्यापार द्वारा भारी उन्नति करी [illegible]



श्री० मोहनलाल मथुरादास शाह (कंपाला)

अर्थात्-" जो सम्यग्दृष्टि है वह चाहे नीच चाण्डालके पेटसे भी पैदा हुआ हो, पर उसे जिनदेव, देवतुल्य समझते हैं। उसके भीतर उसी तरहसे सम्यग्दर्शनका ओज या तेज छुपा हुआ है जिस तरह राखसे ढंके हुये अंगारमें।"

इस धर्मविधानसे इस बातका उपदेश मिलता है कि जो सम्यग्दृष्टी जीव धर्मकी प्रभावना करना चाहते हैं उन्हें किसी मनुष्यसे, उसकी लोक कल्पित नीच जातिके कारण घृणा नहीं करना चाहिये, बल्कि उसे धर्मका उपदेश देकर जैनी बना लेना चाहिये। जब वह शूद्र जैनी होजायगा तब उसके साथ समुचित व्यवहार करना उचित ही है। क्योंकि साधर्मी जनकी अवज्ञा करना धर्मकी अवज्ञा है। अत: शूद्र जल त्यागकी बजाय यदि मिथ्यात्वका त्याग कराया जाय तो विशेष उपयोगी और शास्त्रसम्मत है।

भगवान महावीरने इस प्रकार मिथ्यात्व निषेध और सम्यक्त्व प्रचारका विधान अपनी दिव्यध्वनिमें उक्त प्रकरणके द्वारा किया था। अत: वीर भक्तोंका कर्तव्य है कि वह उसीके अनुसार अपना मन, वचन, कायके वर्ताव रक्खें। इसीमें उनका और जगतका कल्याण है। इति शम्।

कहावेंगे।

धनका अभिमान शिक्षा पाकर अज्ञान।
अज्ञान निद्रा सोती इस जातिको जगावेंगे॥
देकर उपदेश सबै हितकर महान।
सब जीवोंको जैन धर्म श्रेष्ठ, बतलावेंगे॥
होकर बलवीर फूटप्रेमी मान्य जनोंको।
ऐक्यके पाठको समझाकर जब आवेंगे॥
तबही धीधारको? समाजनीच आप सब।
सही हम 'उपासक जैन धर्मके' कहावेंगे॥

राजकुमार जैन 'विद्यार्थी'-पपौरा।

सच्चा वीर।

दु:ख-क्षुब्ध-जीवन अब्धिमें, छोड़े न जो मुसकानको।
सुखमें न भूले भाग्य धनको, मौतके तूफानको॥
मन इंद्रिया रखता सदा जो, आत्मके अधिकारमें।
वह वीरवर आदर्श नर है, धन्य है संसारमें॥१॥

× × ×

निज ज्ञानको जिसने न बेचा, स्वर्णके बाजारमें।
जिसकी रमी है बुद्धि केवल, मुक्तिके सुविचारमें॥
जो मानता है स्वार्थ अपना, अन्यके उपकारमें।
वह वीरनर आदर्श नर हैं, धन्य है संसारमें॥२॥

× × ×

अभिलाष जिस नर जन्मकी, सुरवृन्द भी करते सभी।
उसको विनश्वर वस्तुओंमें, जो न खोता है कभी॥
अमरेन्द्रसे जो है बड़ा, सद्ज्ञानयुक्त आचारमें।
वह वीरनर आदर्श नर है, धन्य है संसारमें॥३॥

× × ×

जो ना किसीको दास करता, ना किसीका दास है।
है प्रेम जिसका अपरिमित, अविकार ज्यों आकाश है॥
आनंदको जो खोजता है, आत्मके भण्डारमें।
वह वीरवर आदर्श नर हैं धन्य है संसारमें॥४॥

× × ×

जिसकी अपावन देह पावन, दीन सेवासे बनी।
हितकर मधुर जिसकी गिरा है, प्रेम अमृतसे सनी॥
मन, वचन, करम हैं एक जिसके, सत्यके दरबारमें।
वह वीरवर आदर्श नर हैं, धन्य हैं संसारमें॥५॥

" चंद्र " झालरापाटन।

लेखिका:- **स्वार्पण।** श्री० प्रभावतीबाई, श्राविकाश्रम-सोजित्रा।

रजनीकांत सेठ बम्बईके एक धनाढ्य वेपारी थे। उनकी पत्नीका नाम मृणालिनी था। उनको सुधा व किशोरी नामकी दो पुत्रियां थीं। सुधा बड़ी पुत्री थी, वह बालपनसे विधवा हुई थी। उसकी उम्र १८ वर्षकी थी व किशोरी १६ वर्षकी कुमारिका थी।

रजनीकांत सेठके यहां मधुकांत नामका एक युवक रहता था। वह गरीब था इसलिये सेठने उसे छोटपनसे अपने पास रखा था और विद्याभ्यास करवाया था। मधुकांत बड़ा नम्र व सरलस्वभावी था, इसीलिये वह सबका प्रियपात्र बना हुआ था।

एक दिन दुपहरमें मधुकांत भरनिद्रामें सोता रहा था, उस समय उसके कमरेका द्वार खुला, धीरेसे एक व्यक्ति आई, उसके हाथमें एक पत्र था। मधुकांतके पलंगके पास जाकर पत्र रखनेको हाथ लम्बा किया। उसका हृदय धड़कने लगा, हस्त कांप उठा, नेत्रमें आंसू भर आये। अचानक वे अश्रु मधुकांतके कपोलपर गिर पड़े। मधुकांत जग उठा, और ऊपरको देखा। "कौन सुधा?" उसने प्रश्न किया। वह सुधा ही थी। वह बोल सकी नहीं, हृदयमें प्रेमसे भरा बड़ा भारी बोझ था, उस बोझके मारे नीची गरदन कर खड़ी रही। मधुकांतने उसके हाथसे पत्र ले लिया, उसे पढ़ा, थोड़ी बातचीत हुई। इतनेमें अचानक किशोरीने द्वार खोला। उसकी नजर सुधा व मधुकांतपर पड़ी।

किशोरीने सुधाको कहा-सुधा बहिन ? मैं तो कबसे आपको ढूंढती थी।

सुधा-किस लिये बहिन ?

किशोरी-कलका अधुरा रहा गुंथन (ग्रंथन) काम सीखनेको।

सुधा-हां ! उस बातको तो मैं भूल ही गई, चल मैं सीखाऊं।

ऐसा कह सुधा और किशोरी दोनों वहांसे चली गईं। और वहां तो अकेला मधुकांत विचार तरंगमें गोते लगाता पड़ा रहा।

× × ×

सुधा किशोरीको गुंथनकाम सीखाती थी मगर उसका हृदय शांत न था। किशोरीके हृदयमें भी प्रेमांकुरका उद्भव होरहा था, और उस छोटेसे पौधेको बड़ा करनेका काम मालीकी तरह जलसिंचन करनेका नहीं मगर उसे तो अपनी हृदयवाटिकामें पैदा हुये प्रेमांकुरको प्रेमजलसे सिंचन करनेका काम मधुकान्त मालिको सौंपना था, परन्तु लज्जाके मारे वह कुछ कह न सकती थी।

किशोरी धीरेसे सुधाके पाससे उठी, और मधुकान्तके कमरेमें गई। मधुकान्त पुस्तक पढ़ रहा था।

मधुकान्त-किशोरी, गुंथनकाम सीखी ?

किशोरी-उसको तो सीख चुकी, मगर एक नवीन गुंथनकला सीखनेको आपकी पास आई हूं।

मधुकान्त-वह क्या ? किशोरी-स्नेहगुंथनकला।

मधु-किशोरी ! उसको मैं सीखा नहीं सकता।

किशोरी-कारण ?

मधु-थोड़े दिनोंमें तुम जान जावोगी।

किशोरी-कल सुधा बहिनको आपकी पास देखी तबसे मुझे शंका तो आई, मगर वह तो विधवा है।

मधुकान्त-क्या हुवा ? विधवा पुनर्लग्न नहीं कर सकती ? !

किशोरी—पिताजी संमति नहीं देवेंगे तो ?

मधुकान्त—तो मैं कुमारावस्थामें ही रहूंगा, मगर सुधाके विना कोईके साथ ब्याह नहीं करूंगा।

किशोरी—हाय, क्या मेरी उद्भवित आशा करमा जावेंगी ? क्या ! हृदयके प्रेमांकुरको मुरझाना पडेगा ? ऐसा कह वह वहासे चली गई।

× × ×

थोड़े दिन बाद एक वक्त रजनीकान्त और मधुकान्त दोनों बैठे थे। रजनीकान्तने कहा—मधुकान्त! मुझे एक सलाह तुमसे पूछनी है।

मधु—कौनसी सलाह ?

रजनीकान्त—सलाह तुम दोगे या नहीं ?

मधु—सलाह देने जैसी होवेगी तो जरूर दूगा।

रजनी—मधुकान्त ! अब मेरी किशोरी उमरलायक होचुकी है, उसकी शादी तुम्हारे साथ करना चाहता हूं। बोलो इसमें तुम्हारी क्या सलाह है ?

मधु—क्षमा करो, मैं इसमें सहमत नहीं हूं।

रजनी—कारण ?

मधु- मैं अन्य प्रथासे लग्न करना चाहता हू।

रजनी—कौनसी प्रथा ?

मधु—यदि आप आज्ञा देवें तो सुधाके साथ पुनर्लग्न करना चाहता हूं !

रजनी—सुधाके साथ पुनर्लग्न ? क्या तुमको समाजमें मेरी प्रतिष्ठाको कलंक लगाना है ?

मधु—आप तो दूसरोंको पुनर्लग्नमें सलाह देते हो न ? रजनीकान्त थोड़ी देर अबोल बैठे रहे। फिर बोले—तुम्हारी इच्छा मुजब नहीं हो सकेगा। तुम्हे किशोरीके साथ ब्याह करना पडेगा।

मधु—महाशय, यह मुझसे नहीं होगा।

रजनी—मधुकान्त ! यदि तुम नहीं मानोंगे तो तुमको मेरे घर बाहर जाना पड़ेगा।

मधु—मैं आनन्दसे आज्ञा पालन करूंगा।

रजनी—आजतक तुमको विद्याभ्यास कराया, तुम्हारे पीछे पांच हजार रुपयेका पानी किया, वह क्या मेरे अपमानके लिये ?

मधु—मैं नौकरी करूंगा तब आपकी कौड़ी २ चुका दूंगा। रजनीकात इस उत्तरसे बहुत गुस्से होगए, और कह दिया कि कल सबेरे घरसे निकल जाना।

दूसरे दिन सबेरे मधुकातने सबसे विदायली। हृदयमें दुःख था तो भी पाव उठाए। इस समय रजनीकातके दुराग्रहसे सुधाका हृदय रो उठा। दूसरी ओर किशोरीके चक्षु रो रहे थे। रजनीकातकी पत्नी मृणालिनीने पतिको बहुत समझाया था। लेकिन उन्होंने न माना। आखिरकार मधुकातको जाना ही पड़ा।

× + ×

बहुत दिन बीत चुके। मधुकात राजनगरमें एक श्रीमंतके यहा नौकरी करने लगा। अपने सद्‌गुणोंसे सेठजीने सर्व कारभार मधुकातको सौंप दिया, जब जाना कि सेठजी अपनेपर प्रसन्न हैं, तब एकदिन अपनी पूर्वस्थितिका वर्णन कर, पांच हजार रु०) मागे। सेठको तो उसपर सपूर्ण विश्वास था ही। तुरंत पाच हजार रु० मधुकातको दे दिये।

एकदिन सवेरेका समय था दतधावनसे निवृत्त हो सब जन कुछ काम कर रहे थे, इतनेमें पोष्टमेन आया। उसने रजनीकातको एक पार्सल, पांचहजारका मनिआर्डर और एक लिफाफा दिया। रजनीकातने पार्सल खोला उसमेंसे मधुकातके अंतिम कपड़े जो बंबईसे पहिनकर निकला था वह थे उसे देख रजनीकान्तको बड़ा गुस्सा आया। फिर लिफाफा खोला तो उसमें पत्र था—

राजनगर। ता०-१-१२-३१

परमपूज्य महाशय रजनीकात व

माता तुल्य मृणालिनी देवी।

इसके साथ रु० ५०००) तथा मेरे कपड़े भेजता हू ! ऐसा न समझें कि मैं क्रोधसे भेज

रहा हूं। मैं तो आपका ऋणि हूं। आपने मुझे पुत्र समान रखा था। प्रेमसे चाहते थे। उस भावको मैं कभी भूल नहीं सक्ता। आपने एक प्रमाणिकतासे अलग हुए हैं। इसमें आपका कोई दोष नहीं है, दोष तो केवल भाग्यका है। इसलिये पूर्ववत् स्नेह रखें। आपकी सद्गुणी पुत्रियोंकी ममता मैं भूल नहीं सक्ता। उन्होंको कहना कि मानवी विधिके गुलाम है तौभी पुरुषार्थ छोड़ना न चाहिये। द० मधुकांतके प्रणाम।

× × ×

उसी दिन किशोरीको बड़ा बुखार आया, सुधा किशोरीके कमरेमें गई। उसकी मनोदशाके साथ शरीर प्रकृति देख सुधाको बड़ी चिन्ता हुई। सुधाने कहा—बहिन किशोरी! तेरे हृदयमें कुछ और ही व्यथा होरही है, इसीलिये तुझे बुखार आया है। क्या तेरा हृदय मेरेपास नहीं खोल सक्ती?

बड़ी देर तक किशोरी विचार-मग्न रही फिर बोली—बड़ी बहिन सुधा! तुम्हारी छोटी बहिनको जीलाना चाहती हो? तुम मुझे सौभाग्य सुख देना चाहती हो? यदि तुम मुझे सुखी ही करना चाहती हो तो मधुकांतको बुला लावो, और समझा बुझाकर घरमें रखो। सुधाके विना उन्होंको कोई समझा नहीं सकता। कहो इतना काम क्या छोटी बहिनके लिये नहीं कर सकोगी?

दूसरे दीन सुधा रजनगर जाकर मधुकान्तके पास खड़ी होगई। मधुकान्त सुधाको देख अचम्भेमें पड़ गया। वह सुधाका सत्कार कर उसे घरमें ले गया। बहुत दिनोंके बाद दोनोका मिलाप हुवा। सुधा व मधुकान्तके नेत्रोंसे जल बरसने लगा। अन्तमें हृदयको मजबुत बनाकर मधुकान्त बोला—सुधा! कहांसे एकाएक दर्शन दिये? कहां है वह स्वर्गविमान कि जिसमेंसे यह देवी उतर आई।

सुधा—एक बहुत जरूरी कामके लिये आई हूं।

मधु—क्या मेरी मदद चाहती हो?

सुधा—हां मधुकान्त, मुझे आपका ही काम है।

मधु—क्या?

सुधा—मधुकान्त क्या आप मुझे चाहते हो?

यह निडर प्रश्न सुन मधुकान्त बोला—हां मेरा हृदय तुम्हे चाहता है और मैं हृदय-मंदिरमें स्थापित मूर्तिकी हमेशा पूजन करता हूं।

सुधा—मधुकान्त! मैं इसमें मेरा सद्भाग्य समझती हूं। लेकिन आपके हृदयमें यदि प्रेम है तो आपको आत्म-समर्पण करना चाहिये।

मधु—मैं तुम्हारे कथनका रहस्य कुछ समझ न सकी।

सुधा मैं तो विधवा हूं। शियल (शील) धर्म पालना मेरा कर्तव्य है। लेकिन मेरी बहिन किशोरी मृत्युकी शय्यापर सोरही है. मधुकान्त! वह आपको तन मनसे चाहती है, आपका साथ ब्याह कर उसे सुखी कीजिये। मेरा और आपका संबन्ध तो भाई बहिनके समान रहेगा।

मधु—सुधा, सुधा, तुमने यह क्या किया?

सुधा—मधुकान्त! आपने कहा कि "मैं तुम्हे पूजता हूं" यदि आप मुझे पूजते हो तो फिर पूजनीयका कहना न मानना पड़े?

मधुकान्त कुछ बोल न सका, लाचारीसे मधुकान्तने सेठके पास छुट्टी लेली, और सुधाके साथ बम्बई गया। थोड़े दिन बाद किशोरीके साथ ब्याह होगया। रजनीकान्तने परितोषक १०००) रुपये मधुकान्तको दे दिये। वह रुपये मधुकान्तने सेठ-जीको भेज दिये।

जब किशोरी और मधुकान्त प्रेमानंदमें लीन हो जाते थे तब सुधाकी मूर्ति उन्होंके सामने आ खड़ी होती थी, वे कहने लगते कि सुधा! धन्य है तेरी स्वार्पण भावनाको।

स्त्री स्वभाव।

(ले०:–पंडिता चंदाबाईजी–आरा)

"वस्तुस्वभावो धर्मः" यह आर्षवाक्य जड़ चेतनात्मक समस्त पदार्थोंमें घटित होता है। परन्तु स्वभावमें भी विशेष और सामान्यताका भेद है, कोई स्वभाव तो ऐसा है जो समान ही पाया जाता है जैसे अस्तित्व वस्तुत्व इत्यादि और कई स्वभाव ऐसे हैं जो कि सब वस्तुओंके पृथक् २ रहते हैं। उनमें यदि भिन्नत्व न हो तो सब काम बिगड़ जाय और वस्तु मिलकर सबकी सब एक होजाय, इसीलिये अपना २ स्वभाव भिन्न २ ही रहना आवश्यक है. अन्य वस्तुओंको छोड़कर इस समय हमें अपने स्त्रीस्वभावात्मक धर्मपर विचार करना चाहिये।

मनुष्य होनेपर भी पुरुषसे भिन्न स्वभाव हमारे कौनसे हैं इसपर ध्यान देकर अपना कर्तव्य पालन करनेसे हम कृतकार्य होसक्ती हैं, अन्यथा नहीं।

प्रकृतिने पुरुषसे भिन्न प्रकारका शरीर और भिन्न प्रकारका स्वभाव स्त्रियोंको दिया है। किन्तु वर्तमानकी महिलासमाज इसको पसंद नहीं करती है, वह इसकी अवहेलना करती जाती है। सभ्य महिलाओंकी अभिलाषा इसी ओर झुकती जाती है कि पुरुषोंके समान हम बन जाएं, संतान उत्पन्न करना और भोजनादिका प्रबंध करना हमारे माथेसे उठजाय तो अच्छा होगा। इसीलिये विदेशी स्त्रिया विवाह तक नहीं करती हैं। तथा भारतीय महिलाएं गृहप्रबंध छोड़ती जाती हैं।

इस समय गरीब अमीर दोनो प्रकारके मनुष्योंकी गृहस्थी बिगड़ रही है, जो गरीब अशिक्षित ग्रामीण बहिनें हैं उनको तो अपनी सन्तान और घरको सभालनेका अवकाश और बोध ही नहीं है, खेतीबारीके काममें लगी रहती हैं, कुछ समय भी मिला तो अशिक्षाके कारण कलह विसम्वादमें चला जाता है। न उनको कपड़े सीना आता है न बच्चोको भलीभाति नहलाना आता है, इसलिये उनके बच्चे नग्न शरीर और मैले रहते हैं। न उनको पढ़ना पढ़ाना आता है न पाक विद्याका ही कुछ अधिक ज्ञान है, इसलिये किसीको कुछ सहायता नहीं पहुंचा सकती हैं। धर्मका बोध न होनेसे आत्मलाभ भी यथार्थ नहीं कर सकती है! तथा जो नागरिक शिक्षित महिलाए हैं उनको इन बातोंका पर्याप्त ज्ञान होनेपर भी वे अपने कर्तव्यका पालन नहीं करती हैं।

उनको अब यह धुन सवार होगई है कि हम पुरुषोंके समान बड़े २ कार्य करें, नामवरी पैदा करें इसीसे वे घरके कामकाजोंको तुच्छ समझने लगी हैं।

रसोइयोंसे भोजन बनवाना और नौकरानियोंसे बच्चे पलवाना पसन्द करती हैं।

इसी प्रकार स्त्रियोचित दया धर्म और कोमल परिणामोंका ह्रास होता जाता है। तथा पातिव्रत और शीलव्रतमें महिलाएं नितान्त शिथिल होगई हो ये ही उनके विशेष स्वभात्मक धर्म हैं इन्हींसे स्त्री पर्यायकी शोभा है, परन्तु अपने स्वभावका तिरस्कार करके वे समानाधिकारकी चेष्टामें लगी हैं।

यह नहीं समझतीं कि पतिव्रता स्त्रीको जो पतिप्रेमदान मिलता है वह क्या कभी बराबरी करनेवालीको मिल सकता है? कदापि नहीं। वह तो एक बन्धन है, प्रेमस्नेह नहीं।

अतएव यदि हमको सुखी बनना है तो पूर्वज महिलाओंके समान ही अपने धर्मका पालन करना होगा। पातिव्रत और शीलधर्मकी रक्षा करनी होगी, हृदयमें दया भावोंको जागृत करना होगा, यथार्थ शिक्षाका प्रचार करना होगा। प्रत्येक महिलाको चाहिये कि बाल्यकालसे ही पुत्रियोंमें पति-सेवाकी

भावना उत्पन्न करदे, तथा पुत्रियोंको भी पति-गृहमें जाकर केवल विलासमय जीवन न विताना चाहिये। वरन् कर्तव्य-पथका अनुसरण करना उचित है। अपने घरकी प्रत्येक वस्तुकी संभाल रखना, पतिदेवकी सेवा करना, उनकी आज्ञा पालन करना अपना स्त्री धर्म समझे। अपने व अन्य सब बहिनोंके बालकोंको उन्नत बनाने और धर्मशील बनानेकी चेष्टा करे तभी अपने कर्तव्यका पालन व सन्तानका कल्याण होगा।

पतिसे केवल वस्त्राभरणोंको प्राप्त करना ही मुख्य न समझकर उनसे गुणग्रहण करनेका प्रयत्न करे। वर्तमानमें प्राय देखा जाता है कि पुरुष तो विद्वान् है, शिक्षित है, पत्नी अनपढ रहती है, ऐसी दशामें स्त्रीको अपने पतिको बाध्य करना चाहिये कि वह घण्टा दो घण्टा स्वय पढ़ाए। इस तरह बिना खर्च और दूसरेके सहारेके ही स्त्री कुछ दिनोंमें विदुषी होजाती है, परस्पर सहानुभूति और सात्विक प्रेमका सचार होता है, कोई२ पति स्त्रीको पढ़ाना प्रारम्भ करते हैं। परन्तु महिलाए मन नहीं लगातीं, अपनी हीनताई समझी जाती है। इसलिये यह कार्य प्रारंभ हो कर ही बन्द भी हो जाता है। ऐसा न होना चाहिये, पतिदेवका केवल आमोद प्रमोदमें ही समस्त समय न लगाकर उसमेंसे १ घंटा भी शिक्षा लेनेमें अवश्य लगाना चाहिये। और स्वय जब शिक्षिता होजाय तब दूसरी अशिक्षित बहिनोंको उठाना चाहिये।

स्त्रीके हृदयमें प्रकृतिसे पुरुषोंकी अपेक्षा दया अधिक दी है, उसको बढ़ाते रहना चाहिये, न कि कर्कश कठोर होकर अपने धर्मसे च्युत होना ठीक है। कदापि नहीं। वर्तमानकी जैनेतर समाज कैसे २ परोपकार कर रही है उनको लक्ष्य करके अपनी शक्तिके अनुसार स्वयं भी कुछ करना चाहिये। पारसी महिलाएं कितने ही ऐसे २ कार्य करती हैं जिनसे उनके अंदर गरीबी नहीं घुसने पाती। छोटे २ नगरोंमें जहां कि उनके दश पांच घर भी हैं उन्होंने एक सार्वजनिक स्त्रीसभा कायम कर रक्खी है। उसमें चन्दा करके वे कपड़े तथा सूत (ऊन) मंगाती है और उसको आपसमें बाटकर अपने २ घरमें स्वयं सीती हैं व अपनी बच्चियोंसे स्वेटर बनियान छोटी २ बनवाती हैं। इन सबको वर्षभरमें इकट्ठा करके जाडेके दिनोंमें वही सभा गरीब लोगोंके बच्चोंको स्वेटर बांटती है। इससे हजारों बच्चोंका जाड़ा जाता है। व स्वेटर पहनकर शीतके रोगोंसे बचते है। इधर अपना भी कल्याण होता है। छोटी २ बच्चियां बुनना सीख जाती हैं। उनका हाथ बैठ जाता है। वे बड़ी होकर अपने पति व बच्चोंको स्वय बनाकर पहनाती है। इसी प्रकार शिक्षित सहस्रों उपकार शिक्षित महिलाए करती रहती है।

जैन महिलाओंको भी उचित है कि अपनी बालिकाओंसे कपड़े सिलाकर स्वेटर बुनवाकर गरीबोंको बाटें। इससे उपकार होगा, बाल्यपनसे ही उपकारी भावना बच्चोंके हृदयमें जाग्रत होगी. पुण्य सचय होगा, तथा सीना पिरोना आजायगा. हाथ साफ होगा, प्रमादका नाश होगा।

सभाओंको भी ऐसे२ सच फलप्रद कार्य करने चाहिये तथा सब बहिनोंको स्त्री कर्तव्यका ध्यान रखना चाहिये। अपना स्वभाव छोड़कर परभाव पर आरूढ़ होकर यह आत्मा कभी सुखी नहीं होसकता है।

अपना स्वभाव तो परमात्माके सदृश है, इसीके समान जब होगा तभी पूर्ण सुखी होगा, परन्तु जब तक यह प्राप्त न हो तबतक जिस पर्यायमें जन्म हो उसके कर्तव्यको अवश्य पूरा करना चाहिये।

स्काउटिंग और जैनसमाज ।

[लेखक—श्री० देवकुमारजी जैन बी० ए०, स्काउट मास्टर सर स्व० हु० दि० जैन बोर्डिंग—इन्दौर।]

विश्वस्त होकर भक्त हम, होवें सहायक भी सदा ।
भ्रातृत्वपूर्ण—विनीत हों, होवें दयामय सर्वदा ॥
आदेशकारी—स्मित बदन, होवें मितव्यय भी तथा ।
मनसे वचनसे कर्मसे, हों शुद्ध भी हम सर्वदा ॥

× × ×

स्काउटिंग क्या है ?

स्काउटिंग आधुनिक शिक्षा—प्रणालीका एक अंगसा होगया है । स्काउटिंगमें खेल, कूद द्वारा एवं अन्य मनोरंजक ढंगोंसे वालकों एवं युवकोंके छिपे हुए गुणोंका विकास किया जाता है जिससे कि उनमें हिम्मत, सच्चरित्र तथा स्वावलंबन आजाय, जिससे कि वे समाज, धर्म व देशकी सेवा कर सके तथा उच्च कोटिके नागरिक बन सके ।

प्रत्येक देशकी उन्नति देशके ऊंचे दर्जेके नागरिकोंपर निर्भर होती है । भारतवर्ष इस उन्नतिकी दौड़में पिछड़ा हुआ है । अतः हम वालकों एवं नवयुवकोंका कर्तव्य है कि हम लोग सच्चे नागरिक बनकर अपने पिछड़े हुए देशको अन्य देशोंकी बराबरीपर लाकर आगे बढ़नेका प्रयत्न करें । स्काउटिंग हमको योग्य नागरिक बनाकर सच्ची निस्वार्थ देशसेवा करना सिखाती है । समाज धर्म एवं देशसेवा करनेके लिये तैयारीकी आवश्यक्ता है । सेवा करनेके लिये स्काउटका शरीर स्वस्थ, मन शुद्ध एवं दृढ़ होना चाहिये तथा अनुकरणीय शुद्ध चारित्र होना आवश्यक है।

स्काउटिंगका मुख्य सिद्धांत 'सावधान रहो' है । स्काउटको सदा सेवा करनेके लिये तैयार रहना चाहिये । स्काउट समयपर पहुंचकर घायलोंकी देखभाल करता है, डूबते हुए व्यक्तिको पानीसे निकालकर बचाता है, धधकती आगसे बच्चे, वृद्धों, रोगियों एवं पशुओंकी रक्षा करता है, प्राणरक्षा जो कि जैनधर्मके मूल सिद्धांतोंमेंसे एक मुख्य है, स्काउटिंगके उद्देश्योंमें प्रधान है । स्काउट, सेवा करनेके योग्य बननेके लिए किसी ट्रूपमें रहकर किसी योग्य स्काउट मास्टरकी आधीनतामें शारीरिक, मानसिक, एवं चारित्रकी उन्नतिके लिये शिक्षा ग्रहण करता है ।

स्काउट मास्टर स्काउट तथा उनके शिक्षण एवं मनोरजक खेलोंमे दिलचस्पी लेकर उन्हें अच्छी बाते सिखाता है, जिससे कि स्काउटका भविष्यका जीवन उच्च तथा सेवापूर्ण हो जाता है ! स्काउट मास्टर अपने स्काउट तथा अन्य जनोंके लिए एक सच्चरित्र और आदर्श व्यक्ति होता है । यदि वह सब स्काउट वालक व युवकोंको अपना छोटा भाई समझकर शिक्षण देता है तो उसका प्रभाव उनपर अच्छा पड़ता है ! अच्छे स्काउटका बनना अच्छे स्काउट मास्टर पर निर्भर है !

इसमें कोई भी सदेह नहीं है कि स्काउटिंग आधुनिक शिक्षा—प्रणालीकी कमीको पूरा करके, वालकों एवं नवयुवकोंके सर्वांगसुन्दर विकासमें सहायक हो रहा है । जहा २ स्काउटिंगका सद्-

पयोग हुआ है वहां बालचर्य (स्काउटिंग) की शिक्षा पानेवाले बालक स्वस्थ, सदाचारी, सेवा-भाव सम्पन्न, निडर, स्वावलंबी तथा चारित्रवान पाए गए हैं। सारांश यह है कि स्काउटिंग सहृदय स्काउट मास्टरों जो कि बालकों एवं नवयुवकोंपर भाईके समान प्रेमभाव रखते हैं, की देखरेखमें बालकों तथा नवयुवकोंको शरीर, मन, व चारित्रमें पक्का बनाती हैं तथा उन्हें अच्छी बातें सीखनेका अवसर देती हैं, जिन्हें वे हंसी खेलमें सीख लेते हैं और जिससे उनका खाली समय अच्छे कामोंमें लगता है। इन सबका फल यह होता है कि वे सच्चे देश धर्म व समाजके सेवक एवं अच्छे नागरिक बनते है।

× × ×

संक्षिप्त इतिहास—

बालचर विद्याका रूप किसी न किसी रूपमें प्राचीनकालमें प्राय: सभी सभ्य देशोंमें वर्तमान था! भारतवर्षमें भी यह चरकला उन्नतिके शिखर-पर पहुंच गई थी। वर्तमानकालमें इसको समयकी परिस्थितिके अनुसार नया आकार–प्रकार देकर इंग्लेण्ड निवासी लार्ड बेडेन पावलने संचालित कर यश प्राप्त किया है। पहिले इस स्काउटिंगका प्रचार फौजी सिपाहियोंमें हुआ करता था। जो सिपाही औरोंकी अपेक्षा अधिक चतुर, साहसी तथा चौकन्ने होते थे वे ही स्काउट बनाए जाते थे। उनका कार्य सेनाके आगे २ चलना, मार्ग ढूंढ निकालना, शत्रुदलका पता लगाकर सेनापतिको खबर देना, आहतोंकी प्राथमिक चिकित्सा करना, आदि होता था। यह स्काउट कभी २ पकड़े भी जाते थे तथा मृत्युदंड पाते थे किंतु वे कर्तव्यके आगे मृत्युका भी डर नहीं मानते थे। इन स्काउट नवयुवकोंको युद्धचर (War Scouts) कहते हैं। इन नवयुवक चरोंका कार्य देखकर रोबर्टबेडेन पावेल बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा कि जिसप्रकार युद्धके अवसरोंके लिये स्काउट होते हैं उसी प्रकार शांतिके दिनोंके लिये भी स्काउट होना आवश्यक है। और यदि यह स्काउटिंग बालकों एवं नवयुवकोंको सिखाई जाय तो उनमें परोपकार, समाजसेवा, देशसेवा तथा स्वावलम्बनके भाव जागृत होंगे जिससे कि उनके चारित्रमें उन्नति होगी जिसके फलस्वरूप वे सुयोग्य नागरिक बन सकेंगे। उन्होंने सन् १९०७ में बालचरोंका सबसे पहिला केम्प किया और १९०८ में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "स्काउटिंग फोर बायज" (Scouting for Boys) प्रकाशित की। धीरे२ स्काउटिंग सारे संसारमें फैल गया। थोड़े समय पश्चात् भारत-वर्षमें भी महामना पंडित मदनमोहन मालवीय, डॉक्टर एनीबेसेंट और अन्य महानुभावोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। इसके फल स्वरूप थोड़े समयमें दो बड़े बालचर मण्डल स्थापित होगए। पहिले मण्डलका नाम "दी इंडियन बायस्काउट्स एसोसिएशन।" The Indian Boy Scouts Association था। इसकी संरक्षिका डॉक्टर एनीबेसेंट हुईं। दूसरा मण्डल 'सेवा समिति बालचर मण्डल' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसके अध्यक्ष तथा प्रधान चर पं० मदनमोहन मालवीय हुए।

इन दोनों मण्डलोंने उत्साहके साथ भारत-वर्षमें बालचर्यका प्रचार किया! सन् १९२१ में संसारके प्रधान चर लार्ड बेडेन पावेलके भारतवर्ष आगमनके उपलक्षमें मद्रास, प्रयाग आदि स्थानों-पर बालचरोंकी रैली (Rally) संमेलन हुई! वर्तमानमें भारतवर्षके प्रत्येक भागमें बालचरोंकी संख्या अच्छी पाई जाती है। तथा संख्या दिनपर दिन बढ़ती ही चली जारही है।

स्काउट नियम—

जिस प्रकार जैनधर्मके मुख्य सिद्धांत प्राणी-मात्रकी रक्षा करना, उनपर दयाभाव रखना, एवं सत्य बोलना है उसी प्रकारसे स्काउटिंगके भी मुख्य सिद्धान प्राणी मात्रकी रक्षा करना, उनपर मैत्रीभाव रखना एवं सत्य बोलना है। इन्हीं सिद्धांतोंका ध्येय रखते हुए स्काउटिंगके जो दश नियम हैं वे यहा संक्षेपमें दिये जाते हैं.—

(१) स्काउटके वचनपर विश्वास होता है।

स्काउट जो कुछ कहे उसपर इसलिये विश्वास किया जाता है कि वह सदा सच बोलता है। वह आपत्ति पडनेपर भी झूठ नहीं बोलता और आपत्तिका सामना एक वीरकी भांति करता है। जो स्काउट झूठ बोलता पाया जाता है उसका बैज वापिस लेलिया जाता है।

(२) स्काउट अपने राजा, अपने अफसर, अपने माता पिता, अपने देश, अपने स्वामी, तथा अपने छोटोंका शुभचिंतक होता है। स्काउट इन सबकी भलाई हृदयसे चाहता है।

(३) स्काउटका कर्तव्य है कि वह दूसरोंकी सहायता करे तथा उनके लिये उपयोगी बने!

स्काउटको सदा दूसरोंकी प्राणरक्षाके लिये तथा चोट खाए हुए व्यक्तियोंकी सेवाके लिये तत्पर रहना चाहिये। प्रतिदिन उसे दूसरोंकी सेवाका कमसेकम एक कार्य अवश्य ही करना चाहिये। उसे किसी सेवाकार्यके लिये पुरस्कार नहीं लेना चाहिये।

(४) स्काउट सबका मित्र होता है तथा दूसरे स्काउटको भाईके समान मानता है, वे चाहे जिस जातिपातिके हों।

श्री महावीरस्वामीके आदेशके समान स्काउट प्रत्येक मनुष्यको मित्र समान मानता है तथा उनकी सहायता करता है। स्काउट किसीसे शत्रुता नहीं करता एवं किसीसे की गई बुराईका बदला भी नहीं निकालता है। वह दूसरी जातिके स्काउटको भाईके समान मानकर उसके कार्योंमें सहायता करता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि एक वर्णका स्काउट दूसरे वर्णके स्काउटके साथ भोजन करे। स्काउटका भ्रातृत्व स्नेह मनसे, वचनसे हुआ करता है, खाने पीनेकी दिखावटसे नहीं।

(५) स्काउट नम्र और विनीत होता है।

स्काउट घर या बाहर, हरस्थानपर सुशीलता व नम्रताका व्यवहार करता है। वह सबसे, विशेषकर स्त्रियों, बच्चों, वृद्धों, निर्बल, रोगियों तथा अपाहिजोंसे मीठी वाणी बोलता है! स्काउटके रहन सहन चाल ढालसे नम्रता झलकती है।

(६) स्काउट पशु पक्षियों तथा पौधोंपर दयालु होता है।

वह पशु और पक्षियोंकी तकलीफमें सहायता करता है किसीको मारता भी नहीं है! वह व्यर्थमें पौधों व घासको भी नहीं उखाडता है। यह स्काउट नियम जैन सिद्धातके समान है।

(७) स्काउट अपने माता पिता, टोलीनायक तथा स्काउट मास्टरकी आज्ञा, विना प्रश्न किए हुए मानता है।

जब उसे कोई आज्ञा मिलती है, चाहे वह उसके मनके प्रतिकूल क्यों न हो, उसे पालन करता है, इसके पश्चात् यदि आज्ञा प्रतिकूल हो तो उसके कारण बता सक्ता है, किन्तु पहिले तो आज्ञाका पालन करना ही पड़ता है इसको निग्रह (Discipline) कहते हैं! आज्ञा देनेवाले स्काउटके शुभचिंतक होते हैं। अत: आज्ञा बहुत विचार कर देते है।

(८) स्काउट प्रत्येक दशामें प्रसन्नचित्त रहता है। वह जहा जाता है उसका मुख प्रसन्नतासे मुस्कराता हुआ रहता है। इसमें उसको भी आनन्द होता है तथा दूसरोंको भी आनन्दका

काम होता है, विशेषतः आपदाके समय इससे बड़ा साहस बंधता है।

(९) स्काउट मितव्ययी होता है। वह पैसेका व्यर्थ व्यय नहीं करता है। वह दिखावटी वस्तुओंको त्यागकर सादी व मजबूत वस्तुएं तथा कपड़ा खरीदता हैं तथा पैसा बचाकर आवश्यकताके समय काममें लाता है। इस नियमका यह अर्थ नहीं है कि स्काउट कंजूस व लालची होता है। वह पैसा सदुपयोग तथा आवश्यकीय वस्तुमें व्यय करता है।

(१०) स्काउट मन, वचन और कर्मसे शुद्ध रहता है। वह अपने मनमें कभी गंदे विचार नहीं आने देता है। उसकी भावनाएं शुभ हुआ करती है। वह अपने मुख गंदे व कठोर वचन नहीं निकालता है। वह अपने शरीरको स्वच्छ, स्वस्थ तथा पवित्र रखता है। उसके कार्य तथा व्यवहार शुद्ध होते है।

पाठक! देखिए यह स्काउटके नियम कितने ऊँचे सिद्धांतको लिए हुए हैं। इनके पालन करनेसे एक व्यक्ति चारित्रवान बन कर दूसरोंके लिए उपयोगी एवं आदर्श व्यक्ति बन सक्ता है।

× × ×

स्काउट शिक्षाके मुख्य अंग।

वनोपसेवन—

स्काउट नगरके बाहर जाकर जंगलमें अपने डेरे लगाते हैं तथा झोंपड़ी बनाते हैं। वहा स्काउट खुले मैदानमें रहना, पहाड़ोंपर चढ़ना, प्राकृतिक दृश्योंका देखना, नदीमें तरना, आग जलाना, अपना भोजन आप तैयार करना, संकेतों द्वारा मार्ग ढूंढ निकालना, झंडी द्वारा समाचार देना, खेल खेलना, पशुपक्षियोंके विषयमें जानकारी प्राप्त करना, भील आदि बनवासी स्त्री पुरुषोंसे मिलना, उनके आचार विचार एवं व्यवहारका ज्ञान प्राप्त करना, रात्रिके समय मनोरंजनके लिये कैम्पफायर (Kamp-fire) करना तथा रात्रिको कैम्पका पहरा देना, वनोपसेवन एवं शिबिर जीवनसे सीखते हैं।

वास्तवमें देखा जाय तो वनोपसेवन जीवनसे बहुत लाभ होते है। मनुष्यका खुले मैदानमें रहनेसे, पहाड़ोंपर चढ़ने, तैरने, एवं खेलोंसे स्वास्थ्य बहुत अच्छा होजाता है। प्रातःकाल प्राकृतिक दृश्योंके देखनेसे दृष्टिकी शक्ति बढ़ती है। जंगलमें इधर उधर भ्रमण करनेसे मनुष्यका स्वास्थ्य ही ठीक नहीं होता किन्तु उसमें स्वावलम्बन, धैर्य, वीरता, सहनशक्ति, एवं मैं कुछ कर सक्ता हूं, आदि भाव उत्पन्न होकर अधिक मात्रामें बढ़ते हैं और अपनेको एक समाजका अंग समझने लगता है। भोजन बनाने तथा झोंपड़ी बनानेसे स्काउटके स्वावलंबनका ज्ञान होता है। हमको विश्वास हो जाता है कि वह आपत्तिके समय जंगलमें भी रहकर घबरायगा नहीं तथा एक वीरकी भांति आपत्तियोंका सामना करेगा। संकेतोंद्वारा मार्ग ढूंढ निकालना तथा झन्डे द्वारा तथा अन्य संकेतोंद्वारा समाचार भेजना आदिसे पता चलता है कि स्काउट कितना चतुर, खोजला तथा विचक्षण बुद्धिवाला होता है। स्काउट जंगलमें जाकर वनके पशु पक्षियों, जड़ीबूटियों एवं विषैले पौधोंके विषयमें जानकारी प्राप्तकर ज्ञान बढ़ाता है। स्काउट प्रसन्नचित्त तो सदा ही रहता है। किन्तु अन्य लोगों व स्वयंके दिल बहलावके लिए मनोरंजक नाट्य, गायन, प्रहसन तथा कहानियोंद्वारा दूसरोंका चित्त प्रसन्न करता है। वह जंगलमें रहनेवाले भील आदि निवासियोंसे सभ्रताका व्यवहार करता है तथा उनकी सहायता भी करता है और अच्छी बातें बताता है। स्काउटको जंगलमें दिशाका ज्ञान प्राप्त करना तथा डंडे रस्सी व सायोंकी गाठोंसे पुलका बनाना जानना आवश्यक है।

(२) तैरना व प्राणरक्षा —

स्काउट केवल तैरना ही नहीं सीखता है किंतु डूबते हुए व्यक्तियोंको किस प्रकारसे, स्वयं डूबते हुएके चंगुलमें न फँसकर, पानीसे बाहर निकाल कर बनावटी सास देना चाहिये भी सीखता है। इसमें धैर्य, चालाकी व तैरनेकी शक्तिका होना आवश्यक है।

(३) अग्नि व प्राणरक्षा —

स्काउटको यह जानना भी आवश्यक है कि किस प्रकारसे जलते हुए घरके भीतर प्रवेश करना चाहिये। एवं भीतरसे निःसहाय बच्चों, वृद्धों व रोगियों एवं बछड़ोका उद्धार करना चाहिये। इस उपकारके करनेके लिये स्काउटका मन एवं शरीर बहुत मजबूत होना चाहिये। जिसमें कि वह धधकती अग्निकी लपटों व धुंएसे घबरावें नहीं और निस्सहाय प्राणियोंकी रक्षा भी कर सकते हैं। स्काउटको यह जानना भी आवश्यक ही है कि किस प्रकारसे बढ़ती हुई अग्निको वशमें करना चाहिए तथा बुझाना चाहिए। फायर इंजिनका उपयोग जानना भी लाभदायक होता है।

(४) प्राथमिक चिकित्सा—

आहत प्राणियोंकी जबतक डाक्टर न आवे, चिकित्सा करना स्काउटका कर्तव्य है। स्काउट चोट खाए हुए व्यक्तिका यदि रुधिर बाहर निकल रहा हो, रुधिर बंद करता है, सासकी आवश्यक्ता होनेपर बनावट सास देता है, बेहोशी दूर करता है, मरहम पट्टी करता है, भीड़को हटाकर रोगीको धैर्य बांधता है तथा उसकी पूर्णरूपसे शुश्रूषा करता है। यह प्राथमिक चिकित्साकी शिक्षा बहुत आवश्यक तथा उपयोगी है।

(५) सवारी, दौड़ना, जानकारी—

स्काउटको आवश्यकता एवं जल्दीके समय सहायता करनेके लिए साइकलका चढ़ना जानना बहुत आवश्यक है। यदि वह घोड़ेकी सवारी व मोटर चलाना जानता है तो बहुत ही अच्छा है। स्काउटको दौड़नेका भी अभ्यास होना चाहिए जिससे कि वह ठीक समयपर पहुंचकर सेवा कर सके। उसे नगरके मुख्य व्यक्तियों, जैसे डाक्टर, स्काउट मास्टर एवं राज्याधिकारी व्यक्तियोंके मकान जानना, बड़े२ आफिस, जैसे तार, डाक, पुलिस, टेलीफोन, रेल्वे आफिस जानना आवश्यक है! नगरकी सड़कों, रेल व मोटरगाड़ियोंके आने जानेका समय जानना भी आवश्यक है।

(६) कक्षा परीक्षा एवं दीक्षा -

स्काउट कक्षाओंमें प्रवीण होता है जिसमें बच्चोंके खिलौने बनाना, लकड़ीके चित्र बनाना, चित्र व नकशे बनाना मुख्य है। स्काउटको परीक्षा व योग्यताके अनुसार बैज तथा दक्षताके बैज उत्साहवर्धनके लिए दिये जाते हैं। स्काउट दीक्षा, जिस दिन कि वह स्काउटकी जातिमें भरती होता है, के समय अपने स्काउट भाइयोंके सम्मुख शुद्ध हृदयसे प्रण करता है कि मैं स्काउटकी मर्यादाकी शपथ खाकर कहता हूं कि मैं यथाशक्ति प्रयत्न करूंगा कि मैं—

(१) देश, महेश, और नरेशके प्रति अपने कर्तव्योंका पालन करता रहूं।

(२) सदा दूसरोंकी सहायता करता रहूं, और-

(३) सदा स्काउट-नियमका पालन करूं।

× × ×

जैन समाज व संस्थाएं।

पाठकों! आपने स्काउटिंग तथा स्काउटके देश, धर्म, व समाजसेवा भाव, उसकी मुख्य शिक्षाएं एवं उपयोगिताका पूर्णरूपसे दिग्दर्शन कर लिया है! अब आप अपनी दृष्टि जैनसमाजपर डालिये। दृष्टिपात करनेसे पता चलता है कि इस

एक प्रकाशवान भवनसे निकलकर एक अन्धेरी कोटरीमें जारहे हैं। अच्छा हो यदि अन्धेरी कोठरीमें प्रकाश आजावे। आजकल भारतवर्ष उन्नतिकी दौड़में पीछे दौड़ रहा है और उसमें भी हमारा जैन समाज उसके अंतिम मार्गमें ढकलतासा चल रहा है! जैन समाजकी जो व्यवस्था होरही है वह पाठकोंसे छुपी हुई नहीं है। समाजके व्यक्ति जब स्वयं अपनी ही रक्षा नहीं कर सकते है तथा अपने आपके लिए उपयोगी नहीं बना सकते हैं तो वह अन्य प्राणियोंकी किस प्रकारसे सेवा व प्राणरक्षा कर सकते हैं। इसका कारण यही है कि हम अच्छे नागरिक नहीं है। मुख्य कारण तो यह है कि एक तो समाजके बालकोका लाड प्यारसे शिक्षण ही नहीं होता है और यदि कोई पढ़नेवाले भी होते हैं तो वे विचारे आर्थिक स्थितिकी चक्कीमें दबकर पिचल जाते है। यदि किसीका शिक्षण भी हुआ तो वह पर्याप्त नहीं होता है उन्हे आध्यात्मिक तथा लौकिक शिक्षासे शून्य रक्खा जाता है। इसका फल यह होता है कि वे अच्छे नागरिक नहीं बनपाते है और न उनके हृदयमें सेवा भाव ही उत्पन्न होते हैं। भाव उत्पन्न होकर करे ही क्या जब कि उनका मन व शरीर सेवाकार्य करनेके योग्य ही तैयार नहीं किया गया है। अब व्यर्थ पश्चाताप करनेसे कुछ नहीं हो सकता है। हमारा अब समाजके बढ़ते हुए छोटे छोटे बालकों एवं नवयुवकों, जो कि हमारी भविष्यकी सुसमाजके स्तम्भ होंगे, की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

हमें इन समाजके नवीन पौधोंसे बहुत आशा है। अब समाजको इन बालकोंका शिक्षण सुचारुरूपसे करना चाहिये। जिससे कि वे सच्चे नागरिक बनकर देश धर्म एवं समाजसेवा कर उन्नति कर सकें। उन्हें इस प्रकारसे शिक्षण दिया जाय जिससे कि वे सत्यभाषी बनें, दूसरा निस्सहाय स्त्री बच्चों तथा रोगियोंकी सेवा–सुश्रूषा कर अपनी वीरता दिखा सके, जीवोंकी प्राणरक्षा कर सके, सहनशील बन सके, देशभक्त व सेवक बन सके, तथा इसके अतिरिक्त उनका स्वास्थ्य ठीक हो, शरीर हृष्टपुष्ट हो और वे मनसे दृढ़ हों। वे सदाचारी हो, उनका अनुकरणीय चारित्र व क्रियाएं हो, वे सेवाभाव सम्पन्न हों। उनमें स्वावलम्बनकी मात्रा पूर्ण हो तथा नागरिकताकी योग्यता पूर्ण हो। सारांश यह है कि उनके शिक्षणके साथ २ उन्हें स्काउट शिक्षण दिया जाय। यदि बालकोंका शिक्षण इस प्रकारका हो तो हमें आशा करना चाहिए कि समाजके दिन बहुत शीघ्र अच्छे आनेवाले हैं।

मुझे आशा है कि समाजकी शिक्षा संस्थाए और विद्यालय इस स्काउट शिक्षाकी ओर अवश्य ध्यान देंगे। इससे विद्यार्थियोंका जीवन अधिक अच्छा होगा और वे सेवाभाव लेकर समाज, धर्म व देशकी सेवा करते हुए कार्यक्षेत्रमें पदार्पण करेंगे। श्री० रावराजा सर सेठ हुकमचंदजी जैन बोर्डिंग हाउसमें यह स्काउट संस्था स्थापित होचुकी है और उसमें ४० स्काउट शिक्षण पा रहे हैं! मैं जैन संस्थाओंके अधिकारी वर्गोंसे निवेदन करता हूं कि वे इस बड़ी जैन संस्थाका अनुकरण कर किसी एक योग्य व्यक्तिकी अध्यक्षतामें स्काउट शिक्षा देना प्रारम्भ करदे। विशेष परिचय व पुस्तकें बालचर मंडल-प्रयागसे प्राप्त होसकती हैं। आशा है कि जैन समाजके हित चाहनेवाले सज्जनगण मेरे इस निवेदन पर ध्यान देकर समाजका भावी जीवन अच्छा बनावेंगे। इति।

भगवान महावीर और समाजव्यवस्था।

[लेखकः—पं० शोभाचन्द्रजी जैन भारिल्ल न्यायतीर्थ-ब्यावर।]

भगवान् महावीरका उपदेश अध्यात्म-प्रधान है, यह सच है और यह भी सच है कि वह निवृत्तिप्रधान है। मगर इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि अन्यान्य विषयोंके लिए उसमें कोई स्थान ही नहीं है। भगवान्के उपदेशकी मुख्य एक धारा है, पर जैसे एक महानदीमेंसे अनेकानेक नहरें निकलतीं और वे विभिन्न क्षेत्रोंमें जीवन-जल पहुंचाती हैं, वैसे ही भगवान्के उपदेशसे अनेक उपधाराएं उत्पन्न होती हैं और वे विभिन्न क्षेत्रोंमें जीवन उंड़लती है। समाज, राजनीति आदि कोई विषय ऐसा नहीं, जिसे भगवान्ने अछूता छोड़ दिया हो। जैनोंकी दूषित शिक्षाप्रणालीके कारण ऐसे विद्वान् नहीं तैयार होते हैं, जो विशाल जैन साहित्यका मथन करके उसे आधुनिक शैलीसे सर्वसाधारणके समक्ष उपस्थित कर सकें और यही कारण है कि जनता भगवान् महावीरके अधिकाश सिद्धान्तोंसे अनभिज्ञ रह जाती है।

× × ×

यहा प्रत्येक विषयकी चर्चा करना असंभव है। इस छोटेसे निबंधमें हम भगवान् महावीरके समाज व्यवस्था सम्बन्धी ही कतिपय नियमोंका परिचय करानेका प्रयत्न करेंगे। यहां यह आशंका की जा सकती है कि भगवान् महावीर धर्मतीर्थंकर थे। धर्मकी व्यवस्था करना ही उनका ध्येय था। तब वे समाजव्यवस्थाके पचड़ेमें क्यों पड़े? समाजकी व्यवस्थासे उन्हें क्या लेना-देना था?

इसका उत्तर सीधा सादा है। आचार्य श्री समन्तभद्रने अपने सुप्रसिद्ध वाक्य, न धर्मो धार्मिकैर्विना' में इसका स्पष्टीकरण भी कर दिया है। धर्म ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो स्वतंत्ररूपसे रह सक्ती हो। वह धर्मात्माओंके आश्रित है। धर्मात्मा पुरुष समाजमेंसे ही होते हैं। जिस समाजकी व्यवस्था सर्वांगसुन्दर होती है, जिसमें दोषोंका ही साम्राज्य न होकर सद्गुणोंका ही प्रचार होता है वही समाज धर्मकी ओर उन्मुख होसक्ता है। जो समाज अपनी दुर्व्यवस्थाके कारण शांति पूर्वक जीवन-निर्वाह नहीं कर सक्ता, जिसे उदर-देवकी अभ्यर्थना करतेर दूसरी ओर दृष्टिनिपात करनेका भी अवकाश नहीं मिलता वह धर्मकी क्या खाक चिन्ता करेगा? तात्पर्य यह है कि धर्म धर्मात्माओंपर निर्भर है और धर्मात्माओंका अस्तित्व समाजकी सुव्यवस्थाके आधीन है। इस प्रकार धर्म और समाजका गहरा सम्बन्ध सिद्ध होता है और यही कारण है कि धर्म तीर्थंकर होनेपर भी भगवान्ने समाज व्यवस्था संबन्धी मौलिक एवं व्यापक नियमोंका निर्धारण किया है। ऐसा करना सर्वथा उचित है। समाज नींव है और धर्म उस नींव पर खड़ा किया जानेवाला विशाल प्रासाद है। जो धर्मप्रवर्तक समाजकी सुव्यवस्थाकी ओर ध्यान न देकर केवल धर्म ही धर्मके राग आलापता है, समझिए वह बिना नींवके हवामें महल खड़ा करनेका निष्फल प्रयत्न करता है अथवा विना जड़ोंके वृक्षको जमीनपर रोपनेकी चेष्टा करता है।

दूसरी बात यह है कि राज्यव्यवस्था, समाज व्यवस्था और धर्म व्यवस्थाको हम शब्दोंद्वारा भले ही पृथक्-पृथक् कर दे। उन्हें विभिन्न श्रेणियोंमें विभाजित कर दे, परन्तु जीवनको इस प्रकार विभाजित नहीं कर सकते। जीवन एक ही अविभक्त वस्तु है और सामाजिक राजनैतिक आदि भांति-भांतिके समय संघर्ष उसी एकके साथ हुआ करते है। प्रत्येक व्यवस्था जीवनपर अपना प्रभाव डाले विना नहीं रहती और यही कारण है कि प्रत्येक विचारशील महापुरुष जीवनके एक अंगमें सुधार करनेके लिये दूसरे अंगोंकी ओर भी अवश्य ध्यान देता है। ऐसा किए विना कोई भी प्रयास सफल नहीं होसकता। इसके लिए एक प्रत्यक्ष उदाहरण पर्याप्त होगा। महात्मा गांधीजी राजनैतिक सुधारोंके लिए प्रधान रूपसे उद्योग करते है, पर इस सुधारके लिए क्या वे दूसरे विषयोंकी उपेक्षा करते है? कदापि नहीं। वे अन्यान्य क्षेत्रोंमें भी इतना अधिक काम करते हैं कि साधारण लोग जो इस रहस्यसे अनभिज्ञ हैं, गांधीजीको समझनेमें ही भूल कर बैठते है। वे समाजसुधारके अनेकों आंदोलन सदा करते रहे हैं फिर भी उन्हें जब यह अनुभव हुआ कि विशिष्ट सामाजिक शुद्धिके विना राजनीतिक्षेत्रमें दृढ़ता पूर्वक बढ़ना कठिन है तो उन्होंने इस ओर और अधिक ध्यान दिया; मगर हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि उनका मुख्य कार्यक्षेत्र राजनीति ही है।

अब इस बातको हम आसानीसे समझ सकते हैं कि भगवान्‌ने समाजव्यवस्थाके मौलिक आधारोंको क्यों अपने उपदेशमें आश्रयण दिया।

इस कथनका यह आशय नहीं है कि भगवान् महावीरने समाजके आन्तरिक, क्षुद्रतर, एवं धर्मके साथ जरा भी संबंध न रखनेवाले, सामाजिक मामलोंमें भी अपनी मुहर लगादी है। उन्होंने केवल उन्हीं सामाजिक नियमोंका निर्देश किया है जिनके आधारपर समाज-संस्थाकी नींव डाली जाती है, वह फलती फूलती है, जिनकी बदौलत समाजमें धर्मात्मा उत्पन्न होते है। कुर्ता पहिनना चाहिये या कमीज, धोती पहनी जाय या पाजामा, टोपी लगाई जाय या पगड़ी, इसी प्रकार सवर्णा स्त्रीके साथ ब्याह किया जाय या असवर्णाके साथ भी, सजातियाका ही पाणिग्रहण किया जासक्ता है या विजातियाका भी; इत्यादि ऐसे विषय हैं जिनका धर्मके साथ कोई अविनाभाव नहीं है।

इन बातोंका एक मात्र ध्येय है विषयवासनाको केन्द्रित करना और धीरे२ उसका अंत कर देना। विवाहसंबंध चाहे सजातिया स्त्रीसे कीजिये या विजातियासे, सवर्णासे कीजिये या असवर्णासे, उक्त ध्येयकी हरएक हालतमें पूर्ति होसक्ती है। अतएव ऐसे नियमोंके विषयमें भगवानके फरमान पेश करना एक प्रकारका उन्माद ही कहा जा सकता है। वस्तुतः ये ऐसी अप्राधान्य बातें हैं जो सामयिक परिस्थितिसे संबन्ध रखती हैं और समाजके प्रधान लोग ही एक मूल ध्येय समक्ष रखकर इनके सम्बन्धमें उचित निर्णय दे सकते हैं। वर्णव्यवस्था इसका उदाहरण है। जिसमें थोड़ासा भी विवेक है और वह विवेक किसी प्रकारकी कषायसे विकृत नहीं हुआ है, उसे यह बात समझनेमें कुछ भी कठिनता नहीं होसकती कि वर्णोंकी व्यवस्था सामाजिक सुव्यवस्थाके लिए ही कायम की गई है। धर्मके साथ उसका जरा भी प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। यह बात स्पष्ट समझानेके उद्देश्यसे ही महाराज ऋषभदेवके स्थापित किए हुए तीन वर्णोंमें यथोचित परिवर्तन करके चक्रवर्ती भरतने एक नया वर्ण बना दिया। भगवान् ऋषभदेव, चक्रवर्तीके इस परिवर्तनकी आलोचना करते हैं, उसे अनिष्टमें [illegible]

है। परन्तु यह नहीं कहते कि उसका यह कार्य अनुचित है!

वर्णव्यवस्था यदि धर्मके पायेपर अवलम्बित होती तो श्री ऋषभदेव केवलज्ञानी होनेसे पहले उसे कायम ही न करते और न भरत उसमें परिवर्तन करनेका विचार भी कर सकते। इन सब बातोंसे उसकी सामाजिकता स्पष्ट है फिर भी हम अपने सहज विवेकसे इस सम्बन्धमें विचार कर सकते हैं। अस्तु। सामाजिक बातें, जो सदाके लिए एक रूप नहीं रह सकतीं, समाजके नेताओंपर निर्भर हैं। वे ही उनका संरक्षण और विनाश करनेके अधिकारी हैं। अतएव ऐसी बातोंको किसी सर्वज्ञके सिर मढ़ना विवेकका दीवाला निकालना और सर्वज्ञ तीर्थङ्करका अविनय करना है। इतनी प्रासंगिक चर्चाके बाद अब हम अपने मूल विषय पर आते हैं।

× × ×

समाजकी सुव्यवस्थाके लिए सबसे पहली शर्त जीवन-निर्वाहकी अनिवार्य आवश्यक सामग्री प्राप्त होनेकी समस्याका हल होना है। जिस समाजमें थोड़े या बहुत व्यक्तियोंको भरपेट रोटी नसीब नहीं होती, शीत आदिसे शरीरकी रक्षा करनेके लिए पुराने चीथड़े भी प्राप्त नहीं होते, उसमें कभी शांति नहीं रह सकती। ऐसे व्यक्तियोंकी आवश्यकताओंकी पूर्ति न होनेके कारण समाजमें उनके द्वारा भीषण संघर्ष उपस्थित होजाता है और शांति खतरेमें पड़ जाती है। विशेषकर ऐसे समय जब कि उसी समाजके थोड़ेसे व्यक्ति दोषपूर्ण सामाजिक संगठनके कारण जीवनोपयोगी साधनोंको अपने हाथोंमें ले लेते हैं और लालचके कारण उनका आवश्यकतासे अधिक संग्रह करते चले जाते हैं, तब भूखे और नंगे रहनेवाले वर्गमें प्रतिशोधकी तीव्र भावना पैदा होती है। वे सोचने लगते हैं कि—"समाजके प्रत्येक सदस्यके समान अधिकार हैं। फिर क्या कारण है कि एक सदस्य जीवन-सामग्रीका अनाप-सनाप दुरुपयोग करके चैनकी गुड्डी उड़ाता है, और इतनेसे भी संतुष्ट न होकर व्यर्थ संग्रह भी करता चला जाता है। दूसरी ओर वे नंगे और भूखे मनुष्य हैं, जो खूनका पसीना बना करके भी भरपेट भोजन नहीं पासकते।" इस अनुचित वैषम्यके कारण प्रतिशोधकी जो ज्वाला प्रकट होती है उसमें सामाजिक शक्ति भस्म होजाती है और जीवन एक बला बन जाता है।

तात्पर्य यह है कि समाजमें अमन-चैन एवं धर्मभाव क़ायम रखनेके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्तिके लिए अनिवार्य रूपसे उपयोगी जीवनकी सामग्री उपलब्ध हो। आजकल तो यह समस्या सबसे अधिक कठिन बन गई है और इसको हल करनेके लिए अनेक संस्थाओंका आविष्कार हुआ है। दूरदर्शी भगवान् महावीरने आजसे ढाई हजार वर्ष पहले ही इस समस्यापर विचार कर लिया था। और उसका समाधान भी हमें बता दिया था। मगर अभागा संसार उस रहस्यको न समझा और अपने आप ही उसने अपने सिर पर विपत्ति बुलाली है। ठोकरें खाकर अन्तमें कोई 'साम्यवाद' का नाम देकर कोई 'कम्यूनिज्म' का जामा पहनाकर कोई 'फैसिज्म' का बाना बनाकर, कोई और किसी नामसे, आखिर भगवान् महावीरके आदेशको स्वीकार करनेके लिये बाध्य हुआ है।

× × ×

आइए, अब हम भगवान् महावीरके इस समस्याके समाधानको देखें। भगवानने श्रावकोंके लिये बारह व्रतोंका उपदेश दिया है। उनमेंसे परिग्रह परिमाण और भोगोपभोग परिमाण व्रतपर जरा विचार करें। इन दोनों व्रतोंमें स्थूल साम्यवाद

स्पष्ट है। दोनोंके विधानका एक ही उद्देश्य है। अगर भोगोपभोग परिमाण व्रत, परिग्रह परिमाणका पोषक है और परिग्रह परिमाण व्रत उसका पोष्य है। एकका पालन करनेसे दूसरेका पालन सुगम होजाता है। परिग्रह परिमाणव्रत, मूल व्रतोंमें हैं और भोगोपभोग परिमाण उत्तर व्रतोंमें है। यहापर आशंका होसक्ती है कि मूल व्रत पांच हैं। उन सबके लिये ठीक इसी प्रकारके एकार्थक उत्तर व्रतोंका क्यों विधान नहीं किया गया है? इसके उत्तरमें ही प्रकृत विषय स्पष्ट होजाता है। भगवान् महावीरने इस विषयपर अपेक्षाकृत अधिक जोर दिया है और इसका कारण यही है कि यह सामाजिक सुव्यवस्थाका मूल आधार है।

प्राचीनकालमें इन व्रतोंका पालन किस प्रकार होता था, यह हम नहीं कह सक्ते परन्तु आजकल पालन करनेकी जो पद्धति हैं उसे देखते हुए यही कहना पडता है कि यह व्रत ही व्यर्थ हैं। लोग इस प्रकारकी मर्यादा करते हैं कि जीवनभर उस मर्यादाकी पूर्ति करनेके लिये धर्म–कर्मको तिलाजलि देदेनेपर भी, रातदिन आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान करते रहनेपर भी, वह पुरी ही नही होती। इन व्रतोंका जो वास्तविक उद्देश्य है, वह जरा भी सिद्ध नहीं होता। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं इन व्रतोंमें धार्मिकता और सामाजिकताका तत्त्व भरा गया है। अत. इनका पालन भी इसी प्रकार होना चाहिये जिससे उसी उद्देश्योंकी सिद्धि हो। इसके लिए मर्यादाकी 'मर्यादा' पर खूब ध्यान रखना चाहिए। मर्यादा ऐसी हो जिससे तृष्णामें न्यूनता आजाए और साथ ही साथ सामाजिक उद्देश्यकी भी पूर्ति हो। सामाजिक उद्देश्यकी पूर्तिके लिए परिग्रहकी मर्यादा करते समय कमसे कम अपने देशकी और अधिकसे अधिक समस्त संसारकी आर्थिक अवस्थाका विचार करना चाहिए। और उसकी औसत लगाकर एक व्यक्तिके हिस्सेमें जितनी संपत्ति आना संभव हो, उतनी ही या उससे भी कमकी मर्यादा रखनी चाहिये। यही भगवानका आशय है और इसके विना यह व्रत ही व्यर्थ होजाते हैं।

यदि प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार इन व्रतोंका पालन करे तो संसारके सिरपर मडराने‌वाला भीषण संकट क्षणभरमें दूर होसकता है। चोरी, डकैती, लूट, खसोट बातकी बातमें दूर किये जासक्ते हैं। तब हम देखेंगे कि जैनधर्मके तत्त्व संसारके लिये कितने उपादेय हैं और उनका प्रचार होनेसे संसारमें कैसी अनुपम शान्तिका साम्राज्य होता है। यह स्पष्ट है कि साम्यवाद, कम्यूनिज्म, आदि संस्थाओंके मौलिक आधार भगवान् महावीरके उपदेशोंमें मौजूद है और भगवानने धर्मका एक खास अङ्ग बनाकर जगतके सामने उन्हें रखा था।

इतना ही नहीं जैनशास्त्रोंमें और भी इस विषयपर विवेचन किया गया है। जो प्राकृतिक वस्तुएं हैं और जिनका उपयोग प्रत्येक व्यक्तिको अवश्य करना पड़ता है, ऐसी वस्तुओं पर थोड़ेसे लोगोंका अधिकार नहीं हो सकता। इसीलिए जैन शास्त्रोंमें जंगलको खरीदकर लकड़ी कटाकर व्यापार करनेका और खानें खुदाकर व्यापार करनेका भी निषेध किया गया है। इस सम्बन्धकी सैकडों बातें हैं जिसका फिर कभी दिग्दर्शन कराया जायगा।

इस संक्षिप्त विवेचनसे हम भलीभांति समझ सकते हैं कि भगवान् महावीरने सामाजिक व्यवस्थाके आधारभूत सिद्धान्तोंको अपने उपदेशमे कितना अच्छा स्थान दिया है?



श्री बाबू कामताप्रसादजी जैन अलीगंज।

आप जैन समाजमें कई ऐतिहासिक ग्रन्थोंके सुप्रसिद्ध लेखक तथा 'वीर' पत्रके सुयोग्य सम्पादक हैं।

[illegible]



पं० गुणभद्रजी जैन कवि–अगास।

भोजन-विचार।

लेखक.—आयुर्वेदविशारद पंडित मनोहरलालजी जैन शास्त्री—झांसी।

यह बात तो निर्विवाद स्वतः सिद्ध है कि हमारे शरीरकी स्थितिमें एक मात्र-सहायक भोजन ही है, अत. भोजनके बिना प्राणोंकी रक्षा होना सर्वथा असंभव है, जो कुछ हम खाते पीते है उसे "प्राणवायु" आमाशयमें लेजाकर पहुचाती है। जो खट्ट, मीठे, कडुव रसादि होते है वे ही "रस" आमाशयमे जाकर मीठे और झागदार रूपमें परिणत होजाते है, बाद पाचक पित्तकी उष्णतासे वह रस पककर खट्टा होजाता है। तत्पश्चात् वह आहारका नाभिगत "समानवायु" ग्रहणीमें पहुंचा देती है, वहा पाचक पित्तरूप अग्निसे आहार पचता है। जो पचते समय कटु होजाता है, फिर वही अच्छी तरह पच जानेपर मीठा और स्निग्ध होजाता है। एव पचे हुये आहारके सार भागको "रस" कहते हैं, जो भोजनका सूक्ष्म सार है। निस्सार भागको मल (विष्टा) कहते है, तथा सलीय भाग जो बस्त्याशय (पेडू) मे जाता है उसे मूत्र कहते है। मूत्र और मलको मूत्रेन्द्रिय और गुदा द्वारा "अपान वायु" बाहर निकाल देती है, "समान वायु" रसको हृदयमें ले जाती है, वह "रस" हृदयस्थ नाडियोंमे होता हुआ समस्त धातुओंको पुष्ट करना, शारीरिक अवयवोंको बढ़ाना, धारण करना और जीवित रखना है, किन्तु जब यही रस मंदाग्नि (अजीर्ण)से अपक्व रहकर खट्टा और चरपरा होजाता है, तब विशूचिका (हैजा) आदि अनेक रोगोंको पैदा कर मनुष्यको विषके समान मार डालता है; अतएव आहारके भलीभाति पचनेसे ही रस बनता है, और रससे रक्त, रक्तसे मास, माससे मेद (चरबी), मेदसे अस्थि, अस्थिमे हड्डी, हड्डीसे मज्जा और मज्जासे शुक्र (वीर्य) बनता है। इन सातोंको ही "धातु" कहते हैं, इनमेंसे किसी एकके बिना शरीरकी स्थिति रहना सर्वथा असभव है, इनके क्षय होनेसे ही जीवन क्षय हो जाता है। अतएव यह बात सिद्ध होचुकी कि अन्य छहों धातुओंकी पुष्टि खाये हुये पदार्थ (भोजन) के सार भाग अर्थात् "रस" से होती है, इसीलिये कहा जाता है कि हमारे प्राणोंकी रक्षामें आहार ही सहायक है। यथा—

आहारः प्राणिनः सद्यो बलकृद्देहधारकः।
आयुस्तेजः समुत्साहस्मृत्योजोऽग्निविवर्द्धनः॥

(सुश्रुतः)

भोजन तृप्ति करनेवाला, शीघ्र बलदायक, देहको धारण करनेवाला, आयु, तेज, उत्साह, स्मरणशक्ति और जठराग्निको बढानेवाला है।

अतएव अब भोजनके विषयमें आयुर्वेद मतानुसार भोजन कैसा और कब करना योग्य है, इस बातपर ध्यान दिया जाता है जो मानव जीवनके लिये अत्युपयोगी है। यों तो भोजनका विषय इतना गम्भीर है कि जितना अधिक लिखा जाय उतना ही थोडा है, परन्तु यहांपर कुछ संक्षिप्त रीत्या बताया जाता है, भोजन देश काल (ऋतु) और प्रकृतिके अनुसार भूख लगनेपर नाति शीतल, नाति उष्ण सेवन करे, भोजन रुचिकर शुद्ध ताजा

और विश्वासपात्रका हो बना हुआ हो तथा भोजनमें आये हुये पदार्थोंको क्रमसे लघु गरिष्ट और अन्तमें द्रव (पतले–दुग्धादि) का सेवन करें, इसके विपरीत रूखासूखा, वासी, बाजारू विना भूख अविश्वासी जनका बनाया हुआ भोजन कदापि भक्षण करना उचित नहीं, क्योंकि ऐसे भोजनसे शारीरिक और मानसिक शक्तियां अधिक कमजोर होजाती है। ज्ञान शक्तिशून्य निस्तेज होजाती है लौकिक और पारलौकिक उन्नतिसे वंचित रहकर पशुवत् दुखमय जीवन निताता पडता है। वास्तवमें यह लोकप्रसिद्ध बात है कि—

"जैसा खावै अन्न वैसा होवे मन।"

अर्थात् जैसा अच्छा बुरा अन्न भक्षण किया जायगा वैसा ही आत्मापर प्रभाव पडेगा, इसमें रञ्च मात्र सन्देह नहीं। अतः भोजनोपयोगी चीजोंपर सदैव विचार–दृष्टि रक्खे, बहुतसी चीजें तो स्वभावसे हितकारी और कुछ स्वभावसे अहितकारी होती हैं, ऐसी चीजोंका सेवन या तो कम किया जाय या उनका सर्वथा त्याग देना अच्छा है।

कुछ चीजें अकेली अमृतके समान गुणकारी हैं, और वही किसी अन्य चीजोंके साथ मिल जानेसे विष तुल्य होजाती हैं उनको "संयोग विरुद्ध" कहते हैं, जैसे दुग्ध मूलि आदि।

कुछ चीजें समान भाग सेवन करनेसे विषतुल्य होजाती हैं जैसे, घी, शहद (मध्वादि)

कुछ चीजें "कर्म विरुद्ध" होती हैं जैसे दश दिन तक कांसीके पात्रमें रक्खा हुआ घृत।

तथा भूख लगनेपर भोजन न करके केवल जलद्वारा पेट भर लेनेसे "जलोदर" और प्यास लगनेपर भोजन करनेसे जठराग्नि मंद पड जाती है, अतः भूखपर भोजन और प्यास लगनेपर पानी पीना ही उचित है, इसके सिवाय भोजन करनेके पश्चात् न तो कभी दौडे और न कभी शीघ्र भारी वजनदार वस्तुको ही लेकर चले इससे भी स्वास्थ्यको बडी भारी हानि पहुचती है। इस विषयमें भोजनोत्तर आयुर्वेद मतानुसार क्या करें सो कहते हैं। यथा—

भुक्त्वा शतपदं गच्छेत् वामपार्श्वेन संविशेत्।
शब्दरूपरसस्पर्शास्तेनान्नं साधु तिष्ठति॥

अर्थात् भोजन करके शान्तिसे शनैः शनैः सौ कदम चलै–(टहले) बाद वाम करवटसे कुछ शयन करे जिससे अन्नकी पाचन क्रियाको बहुत अच्छी सहायता मिलती है जो कि हमारे शारीरिक स्वस्थताकी मुख्य विधायक है। साथमें इस बातका ध्यान रखना भी जरूरी है कि भोजनान्तर गीले मचिकण हाथोंको परस्पर रगडकर दोनों आंखोंपर लगाना चाहिये, ऐसा करनेसे आंखोंको अच्छा लाभ पहुंचता है।

भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते।
अचिरेणैव तद्वारि सर्वान् तिमिरान् व्यपोहति॥

(वृन्दमाधव)

अर्थात्–भोजन करके दोनो हाथोंको परस्पर रगडकर आंखोंपर लगानेसे थोडे ही समयमें वह हाथोंका जल समस्त तिमिर (अर्थात् धुन्ध, दृष्टिकी कमजोरी, उष्णता आदि) को नाश कर देता है।

यद्यपि भोजनके विषयमें और भी कई बातोंकी लिखनेकी आवश्यक्ता है परन्तु विस्तार और समयाभावके कारण अधिक बढ़ाना नहीं चाहता हूं। समय मिलनेपर फिर किसी समय कुछ और इस विषयमें अपने विचार प्रगट करूंगा।

प्रभावना ।

(एक आदर्श ब्रह्मचारीका व्याख्यान)

[लेखकः -श्री० धर्मरत्न पं० दीपचन्द्रजी वर्णी-चौरासी ।]

यह सम्यग्दर्शनके अंगोमेंसे आठवां अंग है। जैन समाजमें इसका पालन भी जोरोंसे किया जारहा है। परन्तु वह सब प्रभावनाके असली स्वरूपको समझे विना केवल मृतकके शृङ्गारवत् होरहा है। प्रतिवर्ष प्रत्येक प्रांतमें प्रभावनाके नामसे लाखों रुपयोंका व्यय होता रहता है, परन्तु उसका फल तो दूर किनारे रहा, आजतक व प्रभावना करने करानेवाले व उसमें सम्मिलित होनेवाले यह भी न समझ सके कि प्रभावना किस वस्तुका नाम है। वह कहां कैसे प्राप्त होसक्ती है? उसका फल क्या होना चाहिए! इत्यादि। बस यही कारण है कि इतना सब कुछ होनेपर भी वास्तविक प्रभावना न होसकी। लोगोंने अपना धन पानीकी तरह खर्च किया। शरीरसे भी अथक परिश्रम किया, परन्तु विवेकके विना लाभ न उठाया। रथयात्राएं कीं, प्रतिष्टाएं कीं, पंचकल्याणक कराए, तीर्थयात्राके संघ भी निकले, बडे२ जीमनवार भी किए, मंदिरोंमें सजावटें कीं, चित्राम कराए, चांदी सोनेके उपकरण भेट किए, यह सब कुछ किया और कर रहे हैं, भविष्यमें भी करेंगे। परन्तु कितनी प्रभावना हुई? कितने नए जैनी बने? कितने पुराने जैनी अपने धर्मको समझकर उसमें दृढ हुए? कितने लोगोंपर जैनधर्मका प्रभाव पड़ा? जैन धर्मपर लगते हुए दूसरों द्वारा अपवाद कितने दूर किए गए? जैनधर्मके विरोधी लेखों तथा व्याख्यानोंका युक्तियुक्त प्रतिवाद कितना किया गया? जैनधर्मके प्राचीनत्व व समीचीनत्वको कितने व्यक्तियोंने स्वीकार किया इत्यादि प्रश्न तो अभी जैसेके वैसे खड़े हुए हैं, फिर भी प्रभावना तो होती जाती है।

× × ×

प्रतिवर्ष हजारों जैनी घटते जाते हैं, सैकडों धर्मविहीन होते जाते हैं, हजारों धंधेकी चितामें धर्मको भूल रहे हैं, हजारों द्रव्यादिके मदमें मस्त हुए सट्टा जुआदि कुव्यसनोंमें लग रहे हैं, हजारों पेटकी ज्वालामें जल रहे हैं, यदि सुबहसे शाम तक अपने आपका व कुटुम्बियोंका पेट भर सके, तो वह धन्य दिन उनके जीवनमें माना गया। हजारों नवयुवक होनहार हट्टे कट्टे विना विवाहे यत्रतत्र भटक रहे हैं। हजारों विधवाएं आजकलमें धर्मको जलांजुलि देनेकी तैयारी कर रही हैं, व कितनी कर चुकी हैं। हजारों मृत्युके महिमान (वृद्ध) धन और पक्षके मदमें वर बनने (लग्न करने) के अथवा यों कहो, कि होनहार नवयुवकोंके मुख आगे आए हुए ग्रासको छीनकर, निर्दोष अबलाओंको विधवा बनाने और उनको आजन्म नारकीय वेदना भुगाने, व धर्मच्युत करनेकी धुनमें लगे चले जारहे हैं।

बेचारी विधवाएं जिनका सर्वस्व लुट गया, या छोटे २ अनाथ बच्चे, या वृद्ध माता पिता कि जिनका पति, पिता या हृदयका लाल उठ गया कि जिनको जीवनके दिन काटना भी कठिन होरहा है, उनको भी सताकर पिट्टू लोग नुकतेके नामसे रहासहा धन धान्य भी साफ कर जाते हैं। समाजके

बालक द्रव्यके अभावमें शिक्षासे वंचित होरहे हैं। उनको पेटकी आग बुझानेके लिए, अपनी कोमल वयमें ही जब कि शिक्षा लेनेका समय होता है, लोगोंकी गुलामी करना पड़ती है। वे वहींसे चापलूसी व खुशामद करना सीख जाते हैं, अथवा किसी ऐरे गैरे रस्तेमें पड़ जाते हैं जिससे उनका जीवन ही नष्ट होजाता है। प्यारी बालिकाएं, धनके लोभमें बूढ़े कषाइयों या अयोग्य वरोंके साथ व्याह दी जाती हैं। जिससे वे सासारिक सुखके अभावमें (जो कि १ दम्पतिको होना चाहिए) गुप्त या प्रगट रीत्या मार्गच्युत हो जानेके सन्मुख कर दी जाती है। अनावश्यक व्यय, वेश्यानृत्यादि जैसेके वैसे कायम है।

× × ×

यदि कुछ कमी हुई है तो 'वृद्ध वेश्या महासती' की कहावतके अनुसार केवल उन लोगोंमें जिनके पास खर्चनेको दाम नहीं रहे और उधार भी नहीं मिल रहा है तब लाचार होकर बेचारे सुधारक बन जाते हैं। जो आदमी आजके जमानेमें कमाकर खाले और ज्यों त्यों छलबल आदिसे बच्चे बच्चियोंका विवाह ले, बस वह कृतकृत्य होगया, यही उसके जीवनका पूर्ण पुरुषार्थ है। अब चलिए धर्मकी ओर, तो हमारे पढ़े लिखे विद्वानोंको वैराग्य तो आता ही क्योंकि उनके पास ज्ञान है। इसलिए विना चारित्रके भी शायद वे अपना कल्याण कर सकेंगे! या कि वे वर्तमान द्रव्य क्षेत्र काल भाव चारित्र पालनेके अनुकूल नहीं समझते। जो हो किन्तु इससमय इनेगिने त्यागियोंके सिवाय शेष त्यागी संयमी कहलानेवाले व्यक्ति प्रायः अक्षर ज्ञान रहित पाए जाते हैं, और ज्ञानके अभावमें वैराग्य टिक नहीं सक्ता, यह सिद्धात है, ऐसी परिस्थितिमें कितने ही अयोग्य व अज्ञानी व्यक्ति, घरकी झंझटो (कमाकर गृहीजनोंके पोषणादि करनेके झगड़ो) से कंटालकर त्यागी बन बैठते है, अनेक ऊंचे पदोंके नाम धरा लेते हैं तथा बाह्यरूप भी कुछ उससे मिलता जुलता बना लेते है, और जब वे उसका निर्वाह करनेमें असमर्थ होते है तो उस पदके विरुद्ध अनेक शिथिलाचारोका प्रचार करते देखे जाते है। इनके इस कार्यके पोषक कितनेक स्वार्थी पंडित मिल जाते हैं, जो इनको दिखाकर अपनी जेबें भरते हैं, माल एठते हैं, जब कोई सुयोग्य धर्मका मर्मी विद्वान इनके विरुद्ध लेखनी उठाता है या कुछ वक्तव्य प्रगट करता है, तब ये लोग भोली जनताको जो केवल भेषके ही पुजारी है, भड़काकर झगड़े खड़े कर देते है, जिससे थोटी बहुत चलती हुई ज्ञानसंस्थाओंको हानि उठाना पड़ती है।

जैसे एक बार जब मुनीन्द्रमण्डली मथुरा आई, तब प० दीपचन्द्रजी वर्णी उनके निकट नहीं गये क्योंकि वे इस मंडलीके कुचारित्रोंसे पूर्ण वाकिफ थे, इसपर मुनीन्द्रसागरने जनताके बीचमें उनके नामसे खूब फूल बरसाए, इतना ही नहीं, वे ब्रह्मचर्याश्रमको भी कोसने लगे, लोगोंको इसमें दान देनेमें मना करने लगे, जैन पत्रोंमें बुराई छपानेकी धमकी भी दिखाई इत्यादि। भला ऐसे२ अयोग्य पुरुष भी जब समाजमें मुनि व आचार्यके नामसे पुज रहे है, व समाजका हजारों रुपया इनके लिए खर्च हो रहा है, तथा इनके कुचारित्रके कारण जैन धर्मकी हंसी उड़ रही है, फिर भी लोग प्रभावना समझ रहे है यह कितने खेदकी बात है?

× × ×

एक ओर लोग धर्म व तीर्थकरोंका अपवाद कर रहे हैं—वीर प्रभु सर्वज्ञ नहीं थे, वे एक सुधारक व विशेष विद्वान थे, ऐसे ही पार्श्वनाथ भी थे, उसके पहिले और कोई तीर्थंकर ही नहीं थे, मुनियोंको बस्तीमें वस्त्र पहिरकर आना चाहिए या वनमें ही रहना चाहिए और जो कोई कुछ दे आवे सो ही

ग्रहण करलेना चाहिए, इत्यादि अनेकों आघात हो रहे है, तौ भी हमारी समाजके गणमान्य विद्वान बिल्कुल चुप्पी लगाए बैठे हैं और कहते है वह बहिष्कृत पत्र है, उसे हम पढ़ते ही नहीं, वाह कैसी अच्छी युक्ति है ? आपने न पढ़ा तो क्या उनका खण्डन होगया ? संसार तो पढ़ता ही है। और कहता है कि यदि ये लोग असत्य हैं तो कोई विद्वान क्यों नहीं सन्मुख आते ? क्यों नहीं युक्तियुक्त प्रमाणोंसे खण्डन करते है ? इससे स्पष्ट है, कि वे इसे स्वीकार करते है, उनके पास इनके खण्डनके लिए कोई युक्ति प्रमाण नहीं है इसीसे वे मौन है इत्यादि।

जो यत्र तत्र प्रभावनाकी मूलभूत कुछ शिक्षा-संस्थाएं चल रही है वे ज्यों त्यों करके अपना जीवन निर्वाह कर रही है। कोई भी संस्था सिवाय सर सेठ हुकुमचन्दजी सा० तथा स्व० सेठ माणिक-चन्द्रजीकी संस्थाओंके ऐसी नहीं है, कि जो अपने वर्तमान खर्चकी चिन्तासे भी मुक्त हो, फिर उन्नति करना तो दूर ही रहा। इसके विपरीत जहा द्रव्य खर्च करनेकी बिलकुल भी जरूरत नहीं है, वहा हजारों रुपया विना विचारे खर्च किए जाते है। जैसे किसी ग्राम व नगरमें मुनिराज पधारते है तो वहा डेरा तम्बू गेस बिजली आदि रोशनीमें व अन्यान्य बनावट सजावटोंमें बहुत रुपया व्यय किया जाता है, जहा एक भी पाईके खर्चकी जरूरत नहीं थी, क्योंकि जो भोजन हम अपने व अपने परिवारके लिए बनाते हैं, उसी शुद्ध प्रासुक भोज-नमेंसे कुछ भाग मुनि ग्रहण करते हैं, और जैसे वे अनुद्दिष्ट भोजन लेते हैं वैसे ही अनुदिष्ट बस्तिादि व मंदिरादिमें ठहर जाते है, तब उनके लिए कुछ भी गृहस्थका खर्च नहीं होता।

जब विहार करते हैं तो पाव पैदल ही चलते है, क्योंकि नवमी प्रतिमा जहासे हिरण्य सुवर्णादि परिग्रहका त्याग होजाता है, वहींसे सवारीमें चलना भी छूट जाता है, तथा उनके ऐसी कषाय ही नहीं रहती, कि अमुक मितीपर जैसे बने अमुक स्थानपर पहुंचना ही है कि जिससे उन्हें रेल मोटर आदिका आश्रय लेना पडे; परन्तु हमारे भाई प्रभावनाका नाम लेकर उन्हें भी रेल मोटरों आदिमें घुमाया करते हैं और वे भी अपने सयमका घात करके पराधीन हुए घूमते है। वास्तवमें "**वृथा वृष्टि समुद्रेषु वृथा तृप्तेषु भोजनम**" वाली कहावत होरही है, तात्पर्य-जहा विवेक विना केवल रूढिया पोषी जाती है वहां प्रभावना कैसे होसक्ती है ?

× × ×

इसलिए ऐ प्रभावनाभिलाषी भव्य जीवो ! यदि वास्तवमें आपको प्रभावना करना है, तो आचार्य वाक्योंपर ध्यान दीजिए और द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावानुसार उसकी पूर्त्तिमें दत्तचित्त हूजिए, तभी आप कृतकार्य होसकेंगे, अन्यथा नहीं। सुनिए, स्वामी समन्तभद्र आचार्य रत्नकरण्ड श्रा०मे क्या बता रहे है !-

अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम्।
जिनशासनमहात्म्यप्रकाशः स्यात् प्रभावना॥

अर्थात्-जब मिथ्याज्ञानरूपी अंधकार व्याप रहा हो, उस समय जैसे होसके वैसे जिन शासनके महात्म्यको सबके हृदयोंपर अंकित कर देना अर्थात् प्रकाशित कर देना सो प्रभावना है।

इसका यह आशय है कि जिस क्षेत्र कालमें जिस कारणसे जैन धर्मका महात्म्य प्रगट होसक्ता हो कि जिससे ससारके मुमुक्षु जीव स्वात्महित साधनमें लग सके, वे सांसारिक दु:खोंसे छुटकारा पासकें, उस क्षेत्रकालमें वही प्रभावनाका कारण होगा जैसे जहा श्रावकोंकी यथेष्ट संख्या है परन्तु उनके

धर्म-साधनार्थ कोई भी आयतन नहीं है तो वहा जिन मंदिर बनवाना व सरस्वती भण्डार खुलवाना चाहिये, जहा अन्य धर्मोके उत्सव होते है, रथ निकलते है परन्तु जैनियोको रोका जाता है, वहा रथोत्सवादि निकलवाना जहा पढने योग्य बालक बालिकाएं हो परन्तु उनका साधन न हो, वहा उनके योग्य पाठशालाए खुलवाना, और केन्द्र स्थानोंमें महाविद्यालय, हाईस्कूल, कालेज आदि खुलवाना, उनके साथ दि० जैन छात्रालय भी खुलवाना ताकि बालक धर्माचरण व सदाचारके साथ२ शिक्षा प्राप्त कर सके।

× × ×

इसके अतिरिक्त छात्रवृत्तिया नियुक्त करना, परीक्षोत्तीर्ण बालकोंके उत्साह वर्धनार्थ पारितोषक पदक आदि देना, जन तक ग्वालकर गरीब भाइयोंको पूंजी देकर धंधेसे लगाना, समस्त शिक्षासस्थाओंमें औद्योगिक शिक्षाका प्रबन्ध करना ताकि पढ कर आजीविका विहीन न रह सके, व सच्चे स्वावलम्बी धर्म, देश और समाजके सेवक होनहार सद्‌गृहस्थ या सच्चे स्वपरोपकारी त्यागी इन सस्थाओंसे निकल सके। झगड़ेके कारण मंदिरोंके द्रव्यका सदुपयोग व हिसाब ठीक रखें ताकि झगडे मिटकर ऐक्य होसके, अनाथ बालको व असहाय विधवाओंके लिए अनाथाश्रम, श्राविकाश्रम खुलवावे, आर्षपद्धतिसे ब्रह्मचर्य पूर्वक आदर्श शिक्षा देनेके लिए गुरुकुल व ब्रह्मचर्याश्रम खुलवावें, देशविदेशोंमें नगर और ग्रामोंमें घूम फिरकर शिक्षा देनेवाले सदाचारी विद्वान उपदेशक भेजे जो अनेको भाषाओंके जानकार होवे और जो उनको उन्हींकी भाषामें समझा सके। पुरातत्त्वमंदिर खोले जिनमें जैनधर्मकी प्राचीनता व समीचीनताको सिद्ध करनेवाले प्राचीन स्मारक, शिलालेख, सिक्के तथा जैनेतर मतान्तरोंके ग्रन्थ जिनमें जैन धर्मकी प्राचीनताके प्रमाण मिलते हैं संग्रह किये जाय। जीर्णोद्धार फंड खोले जाय, जिनसे प्राचीन जैन मदिरादि स्मारकोंकी रक्षा की जासके।

जैनधर्मके प्राचीन व समीचीन ग्रन्थोंका संसारकी सब भाषाओंमें अनुवाद कराकर विना मूल्य-या अल्प मूल्य या लागत मात्र मूल्यमें प्रचार किया जाय और संसारकी सभी प्रसिद्ध लायब्रेरियां (पुस्तकालयों) में वे ग्रन्थ विना मूल्य भेंट स्वरूप भेजे जाय। पाठशालाओंमें पढ़ानेवाले पंडितोंके अतिरिक्त ऐसे भी पंडित तैयार किए जाय, जो वैज्ञानिक रीतिसे जैनधर्म संसारके सन्मुख रख सके तथा जैन धर्मपर मिथ्यारोप करनेवालोंको सयुक्तिक उत्तर देसके।

इसलिए यदि हमारी समाजके श्रीमान दानी और विद्वान आगेवान इसपर विचार करके, यदि प्रभावनाके लिए कटिबद्ध होजायगे, और समस्त बाधक कारणोंको दूर करके साधनोंका आयोजन करेंगे, तो प्रभावना पासमें खड़ी पायगे।

इस प्रकार मार्ग प्रभावनाको कहकर आदर्श ब्रह्मचारी सुशीलकुमार बोले—हे भव्यो ! यह बाह्य प्रभावना है, इसके सिवाय आप लोगोंको स्वात्म प्रभावना भी करना चाहिए, जो कि रत्नत्रयके तेजसे प्रभावित होती है। इसका विवेचन किसी अन्य समयमें करूंगा। आप लोगोंने इस समय अपना अमुल्य समय लगाया है उसके लिए मुझे हर्ष है। आशा है आप इस बातको सुनकर भूल न जायगे किन्तु बहुत शीघ्र कार्य रूपमें परिणत करेंगे। यदि आप लोग कुछ भी इस विषयमें कर सके तो आपका यह वीर निर्वाणोत्सव मनाना सफल समझा जावेगा। क्योकि उत्सव मनानेका अर्थ यही है कि वीर प्रभूकी वाणी और उसकी सत्यताका प्रकाश आप सर्वोपरि फैलादें। यही निर्वाणका लड्डू है। ॐश्रीवीराय नमः शांतिः३।

उपलब्ध जैन ग्रन्थोंमें ज्योतिश्चक्रकी व्यवस्था।

(लेखक–पं० मिलापचंद्रजी कटारिया जैन–केकड़ी)

सम्पूर्ण जैन वाङ्मय प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग ऐसे चार अनुयोगोंमें गुंफित है। सृष्टिकी तमाम रचनाओंका हाल करणानुयोगमें पाया जाता है। आजकल करणानुयोगका अधिकांश विषय आक्षेपका स्थान बना हुआ है। सूर्यादिके भ्रमणसे रात्रि दिनकी जैसी कुछ व्यवस्था जैन ग्रन्थोंमें पाई जाती है उसपर तो हमारे कतिपय भाइयोंको विश्वास ही नहीं है। और एक इसी बातसे वे लोग सारे ही जैनधर्मको अश्रद्धाकी नजरसे देखते हैं। ऐसे लोग जितनी तत्परता शंकायें करनेमें दिखाते हैं उसकी शताश भी कोशिस उनके दूर करनेकी नहीं करते। यह भी नहीं कि शंका करनेवालोंने उपलब्ध जैन ग्रंथोंको भी अच्छी तरह देख लिया हो। तत्व निर्णयके इच्छुकका काम केवल शंका खड़ी करनेका ही नहीं है किन्तु उसके समाधानका उद्योग करना भी है। पाठकोंको याद होगा कि बाबू जगत्प्रसादजी वकीलने पहिले एक विज्ञप्ति निकाली थी थी–'जैन शास्त्रोंसे कोई छह मासका रात्रिदिन सिद्ध कर दे तो उसे मैं एक हजार रुपये भेटमें दूंगा।' उत्तरमें मैंने जैनगजटमें छपाया था कि वकील साहब, रुपये किसी मध्यस्थके यहां जमा करादें तो मैं सिद्ध करनेका प्रयत्न करूंगा। बस उसी दिनसे वकील साहब चुप हैं और अब जबानतक नहीं खोलते। इसी एक उदाहरणसे पता लगता है कि लोग इस मामलेमें कितने उच्छृंखल हैं और वे शंका उठानेकी कितनी जल्दी करते हैं। यह विषय कोई बच्चोंका खेल नहीं है जो चुटकियोंमें ही उड़ा दिया जावे। बड़ा गहन है और ऐसा गहन है जिसपर सम्मिलित विचारशील विद्वानोंके द्वारा गम्भीर दृष्टिसे बड़ी शांतिके साथ विचार होना चाहिये। इसकी गूढ़ ग्रंथियोंके सुलझानेके साधन भी वर्तमानमें बहुत ही विकट होचले हैं। अव्वल तो इस विषयके ग्रन्थ ही पूरे नहीं मिलते। अमितगति कृत चन्द्रप्रज्ञप्ति सुनी जाती है वह कहा है? सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिकमें नगनलसे ज्योतिष्कोंकी ऊंचाई निरूपक उक्तं च गाथा आती है वह कहाकी है? त्रिलोकसार, त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें तो वह है नहीं। त्रिलोक-प्रज्ञप्तिकी निम्न दो गाथाओंमें भी 'लोकविभाग' और 'लोक-व्युच्छित्ति' का उल्लेख मिलता है–

जो इइणणयरीणं सव्वाणं संदमाण सारिच्छं।
बहलं तं मण्णंते लोगविभागस्स आइरिया॥ ११५॥
पण्णासाधिय दुमया कोदंडा राहुणयरबहलत्तं।
एव लोयविछिण्णिय कत्ताइरिया परूवेदी॥२०३॥

ये दोनों गाथा पाठान्तर हैं जिनमें अन्य ग्रंथोंके मत दिये गये है।

'लोकप्रकाश' श्वेताम्बर ग्रंथके पत्र २८८ में भी इस विषयके 'कर्मप्रकृत्यादि' नामक दिगम्बर ग्रंथ तथा 'करणविभावना' ग्रंथ, एवं पूर्वाचार्योंकी कितनी ही गाथाओंका उल्लेख है। इत्यादि ग्रन्थ न जाने किस कालकोटडीमें अपनी आयु समाप्त कर रहे हैं।

इस तरह एतद्विषयक बहुतेरा साहित्य लुप्तप्रायः होरहा है। जो कुछ उपलब्ध अमुद्रित साहित्य है उसमेंसे भी कितना ही तो ऐसे अधिकारियोंके हाथमें है जिनके लिये काला

अक्षर भैंस बराबर होनेके साथ ही साथ ऐसे २ बुज्झड़ भी हैं जो न तो उनसे स्वयं लाभ उठाते और न दूसरोंको उठाने देते। अतएव साहित्यका होना न होना बराबर ही है। कुछ साहित्य प्राय: ऐसी संस्थाओंके कब्जेमें है जो समाजभरको लाभ पहुंचानेका दम भरती हैं और सुव्यवस्थित समझी जाती हैं, परन्तु खरी कहना अगर गुनाह न हो तो कहना होगा कि उनका काम केवल ग्रन्थोंका संग्रह भर करना है। विद्वानोंको अध्ययनार्थ मिलनेको कोई सुभीता वहां नहीं है। यह बात मेरी अनुभूत है और इसीलिये ऐसा लिखनेको मुझे बाध्य होना पड़ा है। जयपुरके "सन्मति पुस्तकालय" से त्रिलोकप्रज्ञप्ति प्राप्त करनेको मैंने बहुतेरा अनुनय विनय किया, यहांतक कि मुंह मांगे रुपये डिपाजिट देनेको भी मैं तैयार था। और जिसके लिये बहुत ही कुछ लिखापढ़ी मैंने कि पर आखिर ग्रन्थ न मिला सो नहीं ही मिला।+

बनारसको अमितगति निर्मित "त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति" और "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" के लिये लिखा गया तो पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीसे कोरासा जवाब मिला कि ये ग्रन्थ बाहिर नहीं भेजे जासक्ते। एक दफे "बम्बई सरस्वती भवन" को भी किसी ग्रन्थके लिये लिखा था तो वहांसे ग्रंथ तो क्या उत्तर तक देना मुनासिब नहीं समझा गया। ऐसी हालतमें इन सुव्यवस्थित समझे जानेवाले ग्रंथालयोंसे भी सिवाय तत्स्थानीय थोड़ीसी जनताके, बाहरवालोंका कुछ काम नहीं निकलता। अगर बाहर ग्रन्थ जाते भी हों तो ऐसोंहीके पास जाते होंगे जो सचालकोंके इष्टमित्र हो या कोई धनी मानी हो। अतएव हम जैसोंके लिये तो उनका होना भी न होनेही-

+बादमें यह ग्रंथ श्रद्धेय पं० पन्नालालजी गोधा इन्दौरसे बिना ही प्रयास मुझे मिल गया है तदर्थ गोधाजीका मैं बड़ा ही आभारी हूं।

के बराबर है। मैं समझता हूं कि मेरी ही तरहसे अन्य कितने ही जिज्ञासु भाई भी शायद इसी तरह इन सुव्यवस्थित ग्रन्थालयोंके हस्तलिखित ग्रन्थोंको तरसते होंगे। यह अच्छा हुआ जो कितने ही ग्रन्थ छप गये वर्ना उनका भी मिलना हमारे लिये मुश्किल होजाता। छापेके विरोधियोंको यह एक बड़ा लाभ छापेका दिखाई नहीं देता। वे हस्तलिखित ग्रंथ हमारे क्या काम आये जो अनुनय विनय करनेसे नहीं मिलते, डिपाजिट रुपये देनेसे नहीं मिलते और जो बिक्रीके लिये भी नहीं रक्खे जाते। अस्तु।

इसके अलावे जैनभूगोलका ठीक २ ज्ञान न होनेका एक यह भी कारण है कि कई शताब्दियों पहिले हीसे यह विषय बहुत कुछ विच्छेद होचुका था। इस विषयके जो ग्रन्थ आज मिलरहे हैं उनके कर्ताओंके वक्त ही कोई इसका पूर्णज्ञानी न रहा था। यह आपको निम्न अवतरणोंसे मालूम होगा।

"त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें लिखा है कि–

संपइ कालवसेणं ताराणामाण णत्थि उवदेसो ॥३२

परिहीसु ते चरंते ताण कणयाचलस्स [illegible]ालं।

अण्णंपि पुव्वभणिदं कालवसादो पणट्ठ उवएसं।४५७

ताणं णामप्पहुदी उवएसो संपइ पणट्ठो ॥४९५॥

"ज्योतिर्लोकाधिकार"

अर्थ–कालवशसे ताराओंके नामोंका उपदेश वर्तमानमें नहीं रहा है। ग्रहोंकी परिधियें, उनका मेरुसे अन्तराल तथा अन्य भी पहिले सूर्य चंद्रका कहा हुआ जमा कथन यह सब उपदेश कालवशसे नष्ट होगया है। उन ताराओंके नामप्रभृतिका उपदेश वर्तमानमें नष्ट होगया है।

श्वेताम्बरोंके 'लोकप्रकाश' नामक ग्रन्थके २८८ वें पत्रमें भी लिखा है कि–

अनंतरं नरक्षेत्रात्सूर्यचंद्राः कथं स्थिताः ।
तदागमेषु गदितं सांप्रतं नोपलभ्यते ॥

अर्थ—मनुष्यक्षेत्रके आगे सूर्य चन्द्रमा किस तरह स्थित हैं, तत्प्रतिपादक आगम इस समय उपलब्ध नहीं है ।

इसी ग्रन्थमें ''तत्तु संप्रदायगम्यं'' 'तत्तु बहुश्रुतगम्यं' 'वेत्ति तत्वं तु केवली' इस प्रकारके शब्दोंसे कितनी ही जगह एतद्विषयक ज्ञानकी कमी जाहिर की है ।

ये सब अवतरण इस बातको सूचित करते हैं कि उस समय भी ज्योतिर्लोककी बहुतसी बातें लुप्त होचुकी थीं । 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' के ज्योतिर्लोकाधिकारके उपांतमें जो प्राकृत गद्य पाई जाती है उसके निम्न अंशको देखिये—

''एद वक्खाणं किंणरूज्झदेण (?) सह विरुज्झदि किंतु सुमेण सह ण विरुज्झदि । तेणेदस्स वक्खाणस्स गहण कायव्वं ण परियम्मसुत्तस्स सुत्तविरुद्धतादो ण सुत्तविरुद्धं वक्खाण होदि अदिप्पसंगादो'' ।

''एयंतपरिग्गहो ण असग्गहो कायव्वो, परमगुरुपरपराग (द) उवगसज्जतिवलेण त्रिहृदावेदुमसकियतादो अदिंदिएसु पदत्थेसु छुदुमत्थवियप्पाणमविसंवादणियमाभावादो तहा पुव्वाइरियवक्खाण परिचाएण एस विधि साहेदुवादाणुसारि अउप्पण्ण सिस्साणुग्गह अवप्पागजण उप्पायणद्ध च दरिसेदव्वा। तदो ण णत्थ संपदाग विरोधो कायव्वोत्ति'' ।

इन गद्य वाक्योंका पूरा २ अर्थ बतलानेको तो अभी हम असमर्थ हैं । हा, इसके खंड वाक्योंका जैसा भाव हमें झलका है वह इस प्रकार है—

यह व्याख्यान .. साथ विरुद्ध पड़ता है किंतु सत्यसे इसका कोई विरोध नहीं है इसलिये इस व्याख्यानको ग्रहण करना चाहिये न कि परिकर्म सूत्रको, क्योंकि वह सूत्र विरुद्ध है । सूत्र विरुद्ध व्याख्यान नहीं हुआ करता, नहीं तो अति प्रसंग दोष होगा ।

''एकात और मिथ्या आग्रह नहीं करना चाहिये.............. अतींद्रिय पदार्थोंमें छद्मस्थोंके विसवादक अभाव नहीं हो सकता........ ..यह विधि सहेतुवादके अनुसार अव्युत्पन्न शिष्योंके अनुग्रहार्थ........दिखाई गई है । इससे यहा सम्प्रदायमें विरोध नहीं करना चाहिये ।'' जो अर्थ यहा निकाला गया है वह अगर सही है तो इससे यह बिल्कुल स्पष्ट होजाता है कि उस समय यह विषय बहुत कुछ संदिग्ध हो रहा था । आचार्योंकी धारणा एक दूसरेसे नहीं मिलती थी जिससे यह विषय तब विवादस्थ होरहा था और यही कारण है जो आज इस उपलब्ध ग्रंथोंमें यह बहुत कुछ मतभेदके साथ पाया जाता है जिसका कुछ दिग्दर्शन नीचे करा देना उचित होगा ।

इस विषयके दिगम्बर श्वेताम्बर ग्रन्थ जो हमारे देखनेमें आये उनके नाम—दिगम्बर ग्रन्थ जैसे—त्रिलोकसार, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, सिद्धान्तसारदीपक, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, और हरिवंशपुराण । श्वेताबर ग्रन्थ जैसे—सूर्यप्रज्ञप्ति, लोकप्रकाश, जबूद्वीपप्रज्ञप्ति, बृहत्क्षेत्रसमास टीका, और संग्रहणीसूत्र ।

नीचेका जो कुछ वक्तव्य है वह इन्हीं ग्रन्थोंके आधारपर समझना चाहिये—

(१) त्रिलोकसार गाथा ३३२में समतल भूमिसे ज्योतिष्कोंकी ऊंचाई बताई है वहा चद्रमासे चार२ योजन ऊंचे नक्षत्र और बुध बताकर फिर उनसे तीन तीन योजन ऊंचे शुक्र, बृहस्पति, मंगल और शनिके विमान बताये हैं। किंतु राजवार्तिक, श्लोकवार्तिकमें कुछ फर्क है। वहा चंद्रमासे नक्षत्र, बुध, शुक्र और बृहस्पतिको तीन२ योजन ऊंचे बताकर फिर उनसे मंगल, शनिको चार२ योजन ऊंचे बताये हैं ।

शेष सर्वार्थसिद्धि आदि सभी दि० ग्रन्थों और कुछएक श्वे० ग्रंथोंमें त्रिलोकसारवत् ही कथन है।+ राजवार्तिकादिमें जिस उक्तं च गाथाके आधारसे उक्त कथन किया है वही गाथा सर्वार्थसिद्धिमें भी उक्तं च रूपसे दी है। सिर्फ उसके दूसरे पादके थोड़ेसे अक्षरोंके उलटफेर होजानेसे कथनभेद होगया है।

(२) ज्योतिष्क विमानोंके नापमें भी मतभेद है। त्रिलोकसारमें राहुके विमानकी चोड़ाई कुछ कम एक योजनकी, बृहस्पतिकी कुछ कम १ कोशकी और तारोंके विमानोंकी जघन्य पाव कोश, मध्यम आधकोश, उत्कृष्ट पोन कोशकी बताई है। और जितनी जिसकी चौड़ाई है उससे आधी उसकी मोटाई निरूपण की है। किंतु ग्रन्थांतरोंमें इनका कुछ और ही प्रमाण लिखा है। राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक और हरिवंशपुराणमें राहुकी चौड़ाई पूरे एक योजनकी तथा मोटाई ढाईसो धनुषकी ही बताई है। हरिवंशपुराण और सिद्धांतसार दीपकमें बृहस्पतिकी चौड़ाई पौन कोशकी लिखी है। एव हरिवंशपुराण और राजवार्तिकमें तारोंके विमानोंका विस्तार जघन्य पाव कोश, मध्यम कुछ अधिक पाव कोश, और उत्कृष्ट आध कोश प्ररूपण किया है। यहींपर राजवार्तिकमें लिखा है कि—"ज्योतिष्कविमानाना सर्वजघन्यवैपुल्य पचधनु: शतानि:"

ज्योतिष्क विमानोंका थोड़ासे थोड़ा विस्तार पांचसो धनुषका होता है। इससे कम किसीका नहीं होता। (हिंदी अनुवादमें जो यहां 'वेपुल्य' का अर्थ मोटाई किया है वह भी ठीक नहीं है। क्योंकि मोटाई तो पाचसोसे भी कम ढाईसो धनुषकी राहु, शुक्र आदिकी बतादी गई है) त्रिलोकसारमें शुक्रकी मोटाई आधकोश, बृहस्पतिकी कुछ कम आध कोश और बुध, मंगल, शनिकी पाव पाव कोशकी प्रतिपादन की है। (दोहजार धनुषका १ कोश होता है) इसीको राजवार्तिकमें देखिये तो वहा इन सबकी मोटाई मात्र ढाईसो धनुषहीकी लिखी है।

यही त्रिलोकप्रज्ञप्ति, सो उसमें भी त्रिलोकसारकी भाति ही कथन है। हा, पाठांतर जो दिये हैं उनमें कुछ और कथन है। पाठांतरकी ११९ वीं और २०३ वीं गाथामें लिखा है कि—"सभी ज्योतिष्क विमानोंका जो विष्कंभ है उतनी ही उनकी मोटाई है ऐसा लोकविभागके कर्ता आचार्य कहते हैं। राहुकी मोटाई ढाइसो धनुषकी लोकव्युच्छित्तिके कर्ताओंने कही है।' ये दोनों गाथायें ऊपर उद्धृत होचुकी हैं।

इस सम्बन्धमें श्वेताम्बर आगमोंमें निम्न प्रकार कथन मिलता है—

लोकप्रकाशमें लिखा है कि—"सर्वे ज्योतिर्विमाना हि निजव्यासार्द्धमुच्छ्रिता:" सभी ज्योतिष्क विमान अपने२ विस्तारसे आधे२ ऊंचे हैं। उत्कृष्ट आयुवाले ताराओंके विमान अर्धकोश चौड़े और पाव कोश मोटे हैं। तथा जघन्यायुवाले ताराओंके विमान पावकोश चौड़े और ढाईसो धनुष मोटे हैं। विदित हो कि शुक्र, बृहस्पति, बुध, शनि, मंगलकी चौड़ाई मोटाई किसी भी श्वे० ग्रंथमें उक्त दि० ग्रंथोंकी तरह नहीं बताई है। केवल सभी ग्रहोंकी चौड़ाई आध योजन और मोटाई पाव योजनकी वर्णन की है। इससे राहुकी चौड़ाई भी आध योजन की ही हुई क्योंकि राहुकी गणना ग्रहोंमें ही है! दि० ग्रंथोंमें राहुको एक योजन या उससे कम बताया है। दोनों संप्र-

+हरिवंशपुराणकी हिंदी टीकामें पं० गजाधरलालजी शास्त्रीने मंगलसे ऊपर शनिश्चरको चार योजन ऊँचा लिखकर शेष कथन त्रिलोकसारकी तरह बताया है सो गलत है। मूलग्रन्थमें ऐसतरह है ही नहीं।

दायमें कितना फर्क पड़ गया है।– शेष रहे सूर्य, चंद्रमा, और नक्षत्र सो इनके मापमें सभी जैनग्रन्थ एकमत हैं। सिर्फ ग्रह और तारोंहीके मापमें मत-भेद है।

(३) त्रिलोकसार गाथा ३४२ में चंद्रकलाकी हानि वृद्धि होनेमें आचार्योंके दो मत दिये हैं। एक मत तो यह है कि "चन्द्रमण्डल अपने सोलह भागमेंसे एक २ भाग प्रतिदिन स्वयमेव कृष्ण और शुक्लरूप पद्रह दिनतक परिणमता रहता है"। दूसरा मत यह है कि 'उसका शुक्ल कृष्णत्व अधः-स्थित राहु विमानकी गति विशेषसे होता है।' यही दो मत त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें भी दिये हैं। प्रथम मतका श्वेताम्बरोंके किसी आगममें उल्लेख नहीं है। इस संबधमें उनके शास्त्रोंमें इस प्रकार कथन है–

राहुके विमान दो प्रकारके हैं–एक नित्य राहु और दूसरा पर्व राहु। उसमें नित्य राहु कृष्ण और शुक्लपक्षमें चंद्रमाके ६२ भागमेंसे चारभागको प्रतिदिन अपनी गतिसे क्रमसे ढाकता और उघाड़ता रहता है। होते २ एक पक्षमें अर्थात् अमावसको चंद्रमाके ६२ भागमें ६० भाग राहुसे ढक जाते हैं। शेष दो भाग सदैव प्रकट रहते हैं वे कभी नहीं ढकते। पर्वराहुके कारण ग्रहण होता है। पर्व राहुका विमान जब चंद्र सूर्यके नीचे आजाता है तो ग्रहण होता है। सूर्य चंद्र ग्रहण कमसेकम ६ मासमें होता है। तथा अधिकसे अधिक चंद्र-ग्रहण ४२ मासमें और सूर्यग्रहण ४८ वर्षमें होता है। सग्रहणी सूत्रमें लिखा है कि राहुके समान कभी २ केतुसे भी ग्रहण होता है।

दि० सम्प्रदायमें अमावसको सोलह भागमें एक भाग या यों कहो कि ६४ भागमें चार भाग चंद्रमाका अनावरण रहना बताया है जब कि श्वे०में ६२ भागमें दो भाग अनावरण रहना बताया है। इसके अलावा दि० में चंद्रमा ६४ भागमें ४ भाग प्रतिदिन कृष्णशुक्ल पक्षमें क्रमसे ढकता उघड़ता रहता है। किन्तु श्वे० में ६२ भागमें ४ भाग ढकता उघड़ता रहता है। यानी बनिस्पत दि० के श्वे० मतमें चंद्रबिंबका वृद्धिह्रास अधिक होता रहता है। दि० के किसी ग्रन्थमें चन्द्र सूर्यग्रहणका जघन्योत्कृष्टकालका व्याख्यान देखनेमें नहीं आया। सूर्यग्रहण भी पर्वराहुसे न बताकर केतुसे बताया है। त्रिलोकसारादिमें तो राहुके उक्त दो भेदोंका भी कथन नहीं है। हां तिलोकप्रज्ञप्तिमें दिन राहु और पर्व राहुका उल्लेख मिलता है।

(४) त्रिलोकप्रज्ञप्ति आदि दि० ग्रन्थोंमें तारा-ओंका अंतर (एक दूसरेसे फासला) जघन्य एक कोशका ७वा भाग, मध्यम ५० योजन व उत्कृष्ट एक हजार योजनका लिखा है।

श्वेताम्बरमतमें अन्तर दो प्रकारसे बतलाया है– एक व्याघात और दूसरा निर्व्याघात। किसी चीजके बीचमें आजानेसे जो अन्तर पड़ता है वह व्याघात अन्तर है इससे विपरीत निर्व्याघात अंतर है। निषध, नील, पर्वत चारचार सौ योजन ऊंचे हैं। जिनपर पाच पांचसौ योजनकी ऊंचाई लिये नवनव कूट हैं, इससे कूट समेत ये दोनों पर्वत पृथ्वीसे नो सौ योजन ऊंचे होजाते हैं। इसीके कारण ताराओंमें व्याघात अन्तर पड़ जाता है। उन कूटोंकी अग्र-भागकी चौड़ाई २५० योजनकी है तथा कूटोंके दोनों तरफ आठ २ योजनकी दूरीपर तारोंके विमान विचरते है अतः उनमें २६६ योजनका फासला रहता है।

यह अन्तर त्रिलोकसारमें क्यों नहीं बतलाया? इसलिये कि उसकी गाथा ७२३ में उक्त कूटोंकी ऊँचाई केवल एकसो ही योजनकी बताई है। जिससे

+ एक बहुत बड़ा अन्तर दोनों सम्प्रदायोंमें यह भी है कि ज्योतिष्कोंका यह प्रमाण दोनोंमें प्रमाणांगुलसे होते भी श्वेताम्बरोंके यहां चारसौ उत्सेधांगुलका एक प्रमाणांगुल माना है जब कि दिगम्बरोंमें पांचसौका माना है।

व्याघात नहीं पड़ता* किंतु आश्चर्य है कि राजवार्तिकमें उन्हीं कूटोंकी ऊंचाई श्वेतांबरवत् बतलाई है। उसके अध्याय ३ सूत्र ११ की व्याख्यामें न केवल निषध, नीलके ही बल्कि छहों कुलाचलोंके कूटोंकी ऊंचाई पाच पाचसौ योजन और अग्रभागकी चौड़ाई २५० योजनकी लिखी है। यह भी दि० आचार्योंमें बहुत बड़ा मतभेद समझना चाहिये। इससे भट्टारक अलंकदेवके मतसे ताराओंका अन्तर त्रिलोकप्रज्ञप्तिसे भिन्न होगा।

(५) सभी दि० ग्रंथोंमें पूर्व पश्चिम मध्यलोकके अंत घनोदधिवातवलयतक ज्योतिष्कोंका होना लिखा है। किंतु श्वेतांबर ग्रन्थोंमें ऐसा नहीं है उनमें तिर्यक् मध्यलोकके अंतसे ११११ योजन भीतर तक ही ज्योतिर्गण बताये हैं।

(६) त्रिलोकसारमें ज्योतिर्लोकाधिकारकी करीब १२५ गाथाओंमें इस विषयका वर्णन है। जबकि त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें यही विषय छहसौसे ऊपर गाथाओंमें निबद्ध किया गया है। तिसपर उसमें गद्यभाग फिर और है। इससे पाठक! यह न समझे कि 'प्रज्ञप्ति' की अपेक्षा त्रिलोकसारमें थोड़ासा कथन है। गाथा संख्या कम होते भी त्रिलोकसारमें 'प्रज्ञप्ति' का कोई विशेष तात्विक कथन नहीं छूटा है। जिस किसी एक बातके कहनेमें 'प्रज्ञप्ति' में सौ पचास गाथायें भरी हैं उन सबका तात्पर्य त्रिलोकसारमें पाच चार गाथामें ही आगया है। वास्तवमें नेमिचन्द्राचार्यकी तमाम ही रचनाओंमें गागरमें सागर भरा हुवा है। उनके बनाये ग्रंथोंको सूत्रग्रंथ कहने चाहिये और इसीलिये उनके ग्रन्थनामोंके अंतमें सार शब्द लगा हुआ है। जैसे त्रिलोकसार, लब्धिसार, गोम्मटसार। कोई कोई बात त्रिलोकसारमें त्रिलोकप्रज्ञप्तिसे भी अधिक मिलती है। जैसे त्रिलोकसार गाथा ३७१–३७२ में जंबूद्वीपवर्ती कुलाचलों और क्षेत्रोंमें अलग२ तारासंख्या प्रतिपादन की है। यह बात त्रिलोकप्रज्ञप्ति तो क्या किसी भी दि० ग्रंथमें नहीं है और न श्वे० ग्रन्थोंमें ही है। इसके विपरीत कोई कथन त्रिलोकसारमें भी छूट गया है। ज्योतिष्कविमान किस मणिविशेषके बने हैं यह वर्णन प्रायः सभी दि० ग्रन्थोंमें है पर त्रिलोकसारमें है ही नहीं।

* त्रिलोक प्रज्ञप्तिमें कूटोंकी ऊँचाई त्रिलोकसार जितनी ही लिखी होगी। अन्यथा ताराओंके अंतरका कथन दोनोंमें एक रूपसे नहीं हो सकता था।

(७) निम्न कथन श्वेतांबर शास्त्रोंमें पाया जाता है पर दि० शास्त्रोंमे नहीं मिलता–

(क) तत्वार्थाधिगमभाष्यकी टीकामें लिखा है कि–

"तत्रैव स्थाने स ध्रुवः परिभ्राम्यति, न तु मेरोः प्रादक्षिण्येन गतिं प्रतिपद्यते, तथाहि नद्यापि ध्रुवताराचक्रमाक्रातोत्तरदिक्कं परिवर्तमानमुपलभ्यते प्रत्यक्षप्रमाणेनैव।"

'चौथे अध्यायके १४ वें सूत्रकी व्याख्या'

अर्थ–उसी स्थानमें वह ध्रुवतारा घूमता है उसकी गति मेरुप्रदक्षिणा रूप नहीं है। आज भी उत्तर दिशाकी ओर घूमते हुए ध्रुव ताराकी प्रत्यक्षसे उपलब्धि होती है।

(ख) ठाणांग सूत्रादिकमें लिखा है कि–

'जंबूद्वीपके चतुर्दिग्वर्ती चार ध्रुवतारोंके निकट जो सप्तऋषी आदिक अन्य तारे हैं उनकी गति ध्रुवतारोंकी प्रदक्षिणारूप है न कि मेरु प्रदक्षिणा रूप।'

(ग) संग्रहणी सूत्रमें लिखा है कि–

लवण समुद्रकी शिखा सोलह हजार योजन ऊंची है और ज्योतिष्क विमान नवसो योजन तक ही ऊँचे हैं। अतः वहाके ज्योतिष्क विमान सब उदकस्फटिक रत्नके है जिससे जल फट जाता है ताकि उन विमानोंको फिरनेमें कुछ बाधा नहीं पडती।

(८) कुछ कथन ऐसा भी है जो दि० ग्रंथोंमें

तो मिलता है पर श्वे० ग्रंथोंमें नहीं मिलता। जैसे ज्योतिष्कोंकी किरण संख्याका कथन आदि।

और भी बहुतसी बातें हैं जो यहां संकीर्णस्थानमें नहीं लिखी जासक्तीं। इतना सब कुछ होते भी वर्तमानमें जो कुछ बचा खुचा साहित्य उपलब्ध है वह भी एकदम कम नहीं है। बल्कि आज तो उसके भी जानकार विरले ही हैं। इस विषयकी सभी बातें किसी एक ही ग्रंथमें नहीं मिलतीं। इधर उधर बिखरी हुई हैं। साथ ही किसी एक ग्रन्थसे बहुतसी बातें स्पष्ट भी नहीं होतीं। अत मैं बहुत अरसेसे एतद्विषयक एक ऐसी पुस्तक निकालनेकी आवश्यक्ताका अनुभव कर रहा था जिसमें सारे ही ग्रन्थोंका सार एक नवीन ढंगसे रख दिया गया हो। इसके लिये हमारे शास्त्री पंडितोंसे तो कुछ आशा करना फिजूल है। क्योंकि अव्वल तो उन्हें अन्य झगड़े बाजियोंसे ही फुरसद नहीं है, दूसरे वे इस प्रकारके कष्टसाध्य कामोंमें पड़ अपनी आराम तलबीमें खलल पहुंचाना नहीं चाहते। उनकी अकर्मण्यताका तो यह ज्वलंत उदाहरण है कि शास्त्रिपरिषदके मुखपत्र " जैन सिद्धांत " की कैसी दयनीय दशा है। तीसरे इस विषयसे उन्हें बहुत ज्यादह उपेक्षा भी है और उसीके कारण उनमें घोर अज्ञान छाया हुआ है।

समाजके एक प्रसिद्ध विद्वानका हाल सुनिये—न्यायतीर्थ पं० वंशीधरजी शास्त्री सोलापुरने तत्वार्थसारका हिंदी अनुवाद किया है। उसके पृ० ११८में सूर्य विमानका विस्तार बताते हुये लिखा है कि—

"अड़तालीस योजन तथा एक योजनका इकसठवा भाग इतना व्यास है, कुछ इससे अधिक तिगुनी परिधि है। चौवीस योजन तथा एक योजनका इकसठवा भाग इतनी मोटाई ऊपरकी तरफ है।" देखा शास्त्रीजीको कैसा अच्छा ज्ञान है! जैन ग्रन्थों चाहे वे श्वे० हों या दिगम्बर सभीमें सूर्यका एक योजनसे भी कम व्यास लिखा है तब न जाने यह अड़तालीस योजनका सूर्य शास्त्रीजीके दिमागशरीफमें कहांसे आगया। हद होगई! जिन्हें इतनी मोटीसी बातका ज्ञान नहीं उनसे और क्या आशा की जासकती है? यही सब सोचकर मैं इस विषयकी एक पुस्तक लिख रहा हूं जिसका नाम रक्खा है—'जैन ज्योतिर्लोक प्रबोध।' यह आधीसे ऊपर लिखी जाचुकी है। और इसीके आधारसे यह लेख तैयार किया गया है। यह एक ऐसी पुस्तक होगी जिसमें मुद्रित या अमुद्रित जितने मुझे मिल सकेंगे, उन सभी दि० श्वे० ग्रन्थोंका निचोड़ रख दिया जायगा। और प्रश्नोत्तरोंसे ऐसा खोल खोलकर समझाया जायगा कि फिर किसीको दूसरे ग्रन्थ देखनेकी जरूरत ही न रहेगी। साथ ही उन सब आक्षेपोंका समाधान भी भले प्रकार किया जावेगा जो जैन भूगोलपर अबतक किये गये हैं। उसी प्रसंगमें संभवत: जैन शास्त्रोंमें छह महिनेका रात्रि दिन होना सिद्ध किया जायगा।

ऐसी पुस्तक किसी दिग्गज पंडितकी कलमसे लिखी जाती तो अच्छा था। पर क्या किया जावे। जब उनका इधर ध्यान ही नहीं तब विवश हो मुझ तुच्छ बुद्धिको ही 'अकरणान्मंदकरणं श्रेयः' की नीतिसे यह प्रयास करना पड़ा है। पाठकोंसे इस कार्यमें मैं इतनी ही मदद चाहता हूं कि छपनेपर तो वे इसे अवश्य खरीदेंगे ही किंतु उसके पहिले जितना जिससे होसके कोशिश कर इस विषयके अप्रकाशित ग्रन्थ मेरे पास भिजवावें तो मैं इसे अधिक स्पष्ट लिख सकूंगा। वे चाहेंगे तो डिपाजिट भी मैं देनेको तैयार हूं। खासकर ग्रन्थभण्डारोंके व्यवस्थापक महोदय मेरे इस नम्र निवेदनपर ध्यानदेते हुए ग्रन्थ भेजकर जैनधर्मकी सच्ची प्रभावनामें हाथ बटायेंगे।

जीवनकी सफलता।

लेखक:—
श्री० ब्रह्मचारीजी सीतलप्रसादजी—सूरत।

मानव जीवन सबसे श्रेष्ठ है; मानव जाति एक है, हरएक मानवको अपनी उन्नति करनेका अधिकार अपनीयोग्यताके अनुसार है। मानवको मानव बनाना शिक्षाके ऊपर निर्भर है। शिक्षा ही गुप्त ज्ञानकी शक्तिको व्यक्त कर देती है। जैसे खानसे निकला हुआ माणक व पन्नेका पाषाण रत्न बननेकी शक्तिको रखता है परन्तु सस्कार व शुद्ध किये विना उसकी रत्नपनेकी शक्ति प्रगट नहीं होती है। वैसे हरएक मानवमें पुरुषरत्न या स्त्रीरत्न बननेकी शक्ति है। शिक्षाकी कृपासे ही वे सच्चे पुरुषरत्न वा स्त्रीरत्न बन सक्ते हैं।

शिक्षा उसे कहते हैं जिससे आत्मा, मन, वचन, काय इन शक्तियोंको प्रकाश किया जासके व इनको दृढ सुसंस्कारित किया जासके। जबतक संसारमें आत्माका निवास है वहातक उसके उन्नति करनेके शस्त्र मन, वचन व काय हैं। इनहीके द्वारा धार्मिक सामाजिक व राज्यनतिक उन्नति होसक्ती है। आत्माकी उन्नतिके साधन भी इन तीनोंहीके द्वारा प्राप्त होते हैं।

शिक्षा देना एक पवित्र कर्तव्य है, महान परोपकार है। जैन तीर्थंकरोंका उपदेश प्राणीमात्रके लिये होता है। उनके उपदेशानुसार धर्मध्यानका एक भेद अपायविचय धर्मध्यान है। जिसका भाव यही है कि जगतके प्राणी किस तरह सच्ची सुख शांतिको पावें। किस तरह अज्ञानका नाश करें। किस तरह आत्माका विकाश करें ऐसी भावना भानी। यह भावना मात्र कल्पित ही नहीं होनी चाहिये किन्तु इस भावनाके अनुसार कार्य भी होना चाहिये।

एक सच्चे जैनीका कर्तव्य है कि वह जगतकी आत्माओंको उत्तम शिक्षाका दान करें। हरएक मानव चाहें जंगली हो, ग्रामीण हो, नागरिक हो कोई भी हो शिक्षा लेनेका व उसको शिक्षा देनेका अधिकार है। शिक्षा पा करके मानव सच्चा आर्य मानव बन सक्ता है। शिक्षा विना आर्य नामधारी मानव म्लेच्छ मानव होसक्ता है। क्या ही अच्छा हो यदि जैन धर्मके प्रेमी त्यागीगण चाहे दिगम्बर हों या श्वेताम्बर मूर्तिपूजक या स्थानकवासी हों सबका यह परम कर्तव्य है कि वे पतितोंका उद्धार करें। जहां२ असभ्य व जंगली जातियां रहती हों वहांपर शिक्षाके आश्रम खुलवावें तथा उनमें जैन धर्मकी शिक्षाके साथ लौकिक उपयोगी शिक्षा दिये जानेका प्रबन्ध करें। इसमें सहायता धनकी भी आवश्यक होगी। वे अपने उपदेशसे धनवानोंसे धन प्राप्त करके इस पवित्र सेवा धर्मको पूरा करें। नीच व ऊंचका ख्याल छोड़कर हरएक मानवको यदि पवित्र जिन धर्मकी शिक्षा दी जावे तो वे सब सच्चे जैन धर्मके अनुयायी बनकर अपने जीवनकी सफलता कर सक्ते हैं। यह पतितोद्धारक काम यदि हाथमें लिया जावे तो अनेक जीव वीतराग भगवानके भक्त बन सक्ते हैं, मदिरा मांसके त्यागी हो सक्ते हैं, जीवदयाके प्रचारक हो सक्ते हैं। एक मानवको हिंसकसे अहिंसक बनाना जब महान् पुण्य है तब अनेकोंके उद्धारके होते हुए लाभ अपूर्व ही होगा। प्राचीन कालमें जैन साधुओंने अनेक अजैन जातियोंको जैनधर्मकी दीक्षा देकर उनका कल्याण किया है। ओसा नगरी भरको जैनी बनानेवाले आचार्यने क्या कम महत्वका भी काम किया था? जिन्होंने नगरके चंडाल व चमारों तकको जैनी बनाकर उनको वैश्यकर्म बताया तथा उनको वैश्य बनाकर उनका गोत्र चांडालिया

या चमारिया स्थापित किया। यही कारण समझमें आता है जिससे आजकल ओसवालोंमें उन दो गोत्रोंके नाम मिलते हैं। क्या ऐसा पतितोद्धारका काम आजकलके गृहत्यागी नहीं कर सक्ते हैं? अछूतोद्धारका काम शिक्षासे बढ़कर नहीं है। पतित जीवनको अपतित बनाना, नारकीको सम्यक्ती बनाना, पशुको श्रावक बनाना, मानवको जगत उपकारी बनाना यह सब बड़े परोपकारके काम हैं।

जीवनकी सफलताके लिये जैनधर्मकी शिक्षा बड़ी ही उपयोगी है। जैनधर्मका यह उपदेश है कि सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रमय धर्मका पालन करके सच्ची सुखशांतिका लाभ लेते हुए अपने आत्माको पवित्र किया जावे, कर्मबंधकी पराधीनतासे छूटकर आत्म स्वाधीनता प्राप्त की जावे। इस धर्मको हरएक नीच व ऊँच कहलानेवाला मानव पाल सक्ता है। सम्यग्दर्शन आत्मश्रद्धानको कहते हैं। मैं कौन हूं, इस प्रश्नका उत्तर अपने भीतर समझकर आत्माका यथार्थ विश्वास करना चाहिये। यह आत्मा स्वभावसे शुद्ध है, ज्ञानस्वरूप है, आनन्दमय है, वीतराग है। सर्व सांसारिक विकारोंसे रहित है। जैसे कादेसे जल भिन्न है वैसे रागादि विभावोंसे ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मोंसे शरीरादि नोकर्मोंसे यह आत्मा भिन्न है।

यही स्वयं परमात्मस्वरूप है, ईश्वरस्वरूप है, निरंजन निर्विकार है। यही मैं हूं, मैं मानव, पशु, देव नारकी नहीं हूं ये सब नाम शरीरोंके सम्बधसे लिये जाते हैं। मैं तो सिद्ध सम शुद्ध हूं। केवल समदर्शीपना, ज्ञाताद्रष्टापना मेरा स्वभाव है। न मेरा स्वभाव रागद्वेष पूर्वक किसी मन, वचन, कायकी क्रिया करनेका है न संसारके पदार्थोंमें मोहित होकर उनके निमित्तसे सुखी या दु:खी होनेका है। मैं परमात्माके समान मात्र साक्षीभूत हूं। जबतक शरीरका संबंध है व जबतक क्रोधादि कषायोंका तीव्र मध्यम या जघन्य उदय है तबतक मुझे मन, वचन, कायसे क्रियाएं करनी पड़ती हैं तथापि मेरा कर्तव्य यह है कि अपने आत्मबलसे मैं कषायरूपी रोगसे पीड़ित होनेसे बचनेकी यथाशक्ति कोशिश करूं। यदि कषायका बल अधिक हो व मेरा आत्मबल कम हो तब मेरे भावोंसे कषायकी रंगत अवश्य झलक जायगी व मुझे कषायोंके अनुसार कार्य करना भी पड़ेगा। तथापि उसे किसी भी मन, वचन, कायकी क्रियासे आसक्तबुद्धि न रखनी चाहिये। जैसा अच्छे या बुरे कर्मका उदय हो उसे समताभावसे भोग लेना चाहिये। यदि पापके उदयसे दु:ख पड़े तो अधीर व आकुलित न होना चाहिये। यदि पुण्यके उदयसे संपत्ति हो तो उससे लुभाकर कर्तव्य च्युत न होना चाहिये। जो सुख व दु:खकी बाहरी सामग्रीके मिलनेपर समताभावसे भोग लेते हैं वे ही सम्यग्दृष्टी हैं। वे इन सर्व शुभ या अशुभ क्रियाओंके अपने आत्माका निज कार्य नहीं समझते हैं। मात्र रोगवत् कर्मका उदय समझते हैं। हां, इस साम्यभावके प्रतापसे नवीन कर्मोंके बंधते बहुत अंशमें सम्यक्ती बच जाते हैं व पुराने कर्मोंकी निर्जरा होजाती है।

सम्यक्ती होकर हरएक मानवको आत्मविचार करना जरूरी है। मैं ज्ञाता दृष्टा शुद्ध अविनाशी अमूर्तिक पदार्थ सिद्धवत् शुद्ध हूं, यही मनन परमकार्यकारी है। इस मंतव्यके लिये हरएक मानवको कमसेकम ५ मिनिटसे लेकर ४८ मिनटका किसी एकांत स्थानमें सवेरे शाम बैठकर व सर्व चिंताओंसे निवृत्त होकर उसके भीतर निर्जन जलके समान आत्माको देखकर उसके भीतर बार २ डुबकी लगाना चाहिये। इसीको सामायिक व आत्मध्यानका अभ्यास कहते हैं। इस अभ्यासको जबतक किया जायगा तबतक सर्व संसारकी चिंताओंसे निवृत्ति होगी, आत्मीक

आनंदकी प्राप्ति होगी, भीतरी कर्मोंका मैल कट जायगा। सच पूछो तो जीवनका खरा लाभ उसी समयपर होगा। इस ध्यानके अभ्यासके लिये आत्मध्यानका उपाय या सामायिक पाठ पुस्तकें दि० जैन पुस्तकालय–सूरतसे मंगालेना चाहिये।

इस मुख्य आत्मविचारको सवेरे या शाम करते हुए यथासंभव नीचे लिखे काम भी एक मानवको कर्तव्य हैं–(१) जैन शास्त्रोंका अभ्यास थोड़ी देर अवश्य करना। आत्महितैषियोंको नीचे लिखे हुए ग्रन्थ अवश्य पढ़ जाना चाहिये। (१) तत्वमाला (२) गृहस्थ धर्म, (३) आत्म धर्म, (४) इष्टोप-देश, (५) समाधिशतक, (६) तत्वभावना, (७) पंचास्तिकायदर्पण, (८) नवपदार्थकाय दर्पण, (९) मोक्षमार्ग प्रकाशक दोनों भाग, (१०) पर-मात्म प्रकाश, (११) ज्ञानार्णव, (१२) समयसार (१३) अर्थप्रकाशिका, (१४) भगवती आराधना, (१५) अमितगति श्रावकाचार, (१६) स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा–आदि२। पाच मिनिट भी प्रतिदिन किया हुआ स्वाध्याय परमोपकारी होता है। तीसरा काम यह है कि कहीं जिनवाणीका भाषण विचारशील वक्ताद्वारा होता हो तो उसको कुछ देर नित्य सुनना चाहिये। सुननेसे बड़ा लाभ होता है। चौथा काम है कि श्री जिनेन्द्रकी ध्यानमय मूर्तिका दर्शन करके स्तुति पढ़ना व पूजन करना चाहिये। जीवनकी सफलताके लिये मानवको न्यायपूर्वक धन कमाना चाहिये। असत्य व चोरीका पैसा कभी भी लेना उचित नहीं है। अतरंग जीवनको गंदा करके बाहरी जीवनको बनाना बड़ी भारी मूर्खता है। न्यायसे धन कमाकर आमदनीका कमसेकम दसवा भाग आहार, औषधि, अभय व विद्यादानमें लगाना चाहिये। ज्ञानकी उन्नति करना परमावश्यक है।

हरएक मानवको नीचे लिखे आठ मूलगुण अवश्य पालना चाहिये–(१) मादक पदार्थका त्याग, (२) मांसाहार व मांस मिश्रित आहारका त्याग, (३) मधुका त्याग, (४) संकल्पी वृथा हिंसा न करना, (५) असत्य न बोलना, (७) चोरी न करना, (८) स्वस्त्री सन्तोष रखना, (९) जायदादका जीवन पर्यन्तको प्रमाण कर लेना। जब इच्छा पूर्ण होजावे तब नई आमदनीसे विरक्त हो, धर्म साधन व परोपकारमें जीवन बिताना चाहिये। गृहका भार पुत्रको सौंपकर आप निश्चिंत होजाना चाहिये।

जीवनकी सफलता निराकुल जीवनसे है, इसलिये अपनी आमदनीके भीतर अपना सब खर्च चलाना चाहिये। कभी भी कर्जदार नहीं बनना चाहिये। अपने पुत्र या पुत्रियोंके विवाहमें आमदके भीतर बहुत अल्प व जरूरी खर्च करना चाहिये। उनको पढ़ानेमें बहुत कुछ खर्च करना पड़े तो उसे दिल खोलकर करना चाहिये। विवाह शादी मरणादिकी खरचालु रसमोंको नहीं पालना चाहिये। नामव-रीके लिये कर्ज लेकर खर्च करना अपने पैरोंमें आप बेड़ी डाल लेना है।

जीवनकी सफलता उत्तम ध्यान तथा परोपका-रसे है। हरएक मानवको रोज कुछ न कुछ परोपकार करना चाहिये। धर्मसेवा, समाजसेवा, देशसेवा सब परोपकारमे गर्भित हैं।

धन्य हैं वे स्त्री व पुरुष जो गृहस्थकी कीचसे बचकर उदासीन रहकर अपना सर्व जीवन स्वपरके उपकारमें खर्च करदेते हैं। वेही सच्चे तीर्थंकरके भक्त हैं। जैन समाजमें निस्पृही, सच्चे परोपका-रके धारी ऐसे हजारों नरनारियोंकी जरूरत है। जो गृहत्याग न कर सकें उन्हें कमसेकम एक घंटा परोपकारके कामोंके लिये निकालना चाहिये। उपसर्ग सहकर, गालियोंकी बौछार झेलकर, निंदाकी परवाह न कर, जो सच्ची सेवा एक प्रवीण



स्वर्गीय रसशास्त्री आयुर्वेदाचार्य
पं० अभयचन्दजी जैन वैद्य काव्यतीर्थ-हरदा।

आप अनेक वर्षोंसे आयुर्वेद विषयक कार्य बड़ी ही निपुणताके साथ कर रहे हैं। तथा आप एक अच्छे लेखक हैं।

आप एक उत्साही युवक विद्वान हैं। तथा जैन स्कूल रोहतकमें प्रधानाध्यापक हैं। आपके लेख बहुत विचारपूर्ण होते हैं।



पं० रवीन्द्रनाथजी जैन न्यायतीर्थ-रोहतक।



आप जैनसिद्धान्तभवन आराके व्यवस्थापक हैं। तथा अनेक संस्कृत ग्रन्थोंके अनुवादक और ऐतिहासिक जैनसाहित्यके अच्छे लेखक हैं।

पं० के० भुजबली शास्त्री आरा।

आपको कार्यकुशलताके कारण आपको सुवर्णपदक प्राप्त हुये हैं। आप अच्छे लेखक व कवि हैं।



विशारद पं० कमलकुमारजी जैन शास्त्री-हरदा।

कारस्करके प्रमान करते रहते हैं वे पूज्यनीय परोपकारी महात्मा हैं। वे ही अपने जीवनको सफल कर पाते हैं। जैन समाजमें विद्वान सुआचारी धर्म प्रचारकोंकी बहुत बड़ी आवश्यक्ता है, जो भारतके ग्रामोंमें जाकर व सीलोन, ब्रह्मा, नैपाल, तिब्बत, जावा, चीन, जापान, फ्रांस, आफ्रिका, आस्ट्रेलिया, यूरुप, अमेरिका आदि देशोंमें जाकर धर्मोपदेश करें। तीर्थंकरोंका संदेश संसारभरमें फैलानेकी जरूरत है। हमारा यह विश्वास है कि जैनधर्मका तत्वज्ञान जगत मात्रके लिये परम उपकारी है। यदि इसका प्रचार किया जावे तो मानव समाजको अपना जीवन सफल करनेका अवसर प्राप्त होजावे। जगतके मानव स्वतंत्रता प्राप्तिके लिये स्वात्म विचार कर सकें, परमानन्द भोग सकें व परस्पर उपकार करके अहिंसा धर्मका परम सुहावना रस भोग सकें। जो संसारसे विरागी है, आत्मीक-श्रद्धामें रुचिवान हैं वे ही मानव-जीवनकी सफलता कर सक्ते हैं।

स्वपर सुखदाई जीवन विताना ही जीवनकी सफलता है। जो धर्म रसका प्याला पीते हैं वे इहलोक व परलोक दोनोंमें सुखी रहते हैं। जैन धर्मका तत्वज्ञान जगतमें विस्तृत हो यही जीवन सफलताका उपाय है।

❀ गांधी बाबा। ❀

मूड़को मूड़ाय छोड़ गेह सुनदार सबै,
व्यंजनको छांड़ लेत नीरस अहार हैं।
काम क्रोध छल लोभ स्वार्थके वशी न होय,
विश्वके बचायवेको करत विहार हैं॥
दया सत्य संयम स्वतंत्रता प्रचार करे,
फांसी जेल मारपीट निन्दाको संहारि हैं।
वीर बुद्ध राम अनुयायी आज गांधी बाबा,
शत्रु मित्र जेल गेह एकसे निहारि हैं॥

रवीन्द्रनाथ जैन न्यायतीर्थ-रोहतक।

विनय-स्वदेशी।

बंधुओ विनय सुनो मेरी।
करो ना सोच समझ देरी॥

देश तुम्हारा होरहा, निशिदिन है पामाल।
भाई करोड़ों भूखों मरते, गैर उड़ाते माल॥
दुर्दशा लेओ तनिक हेरी॥१॥

कच्चा माल भिजाकर बाहिर, होते हैं खुश लोग।
कपड़ा, टीन, कांच आदिकको, लेहम भोगें भोग॥
बुद्धि क्यों गई हाय फेरी॥२॥

चीन, जर्मनी, लन्दन, फ्रांस, अमेरिका, जापान।
उन्नति करते निज देशोंकी, हमीं बनें अज्ञान॥
स्वदेशी चहैं नहीं हेरी॥३॥

शब्द "अहिंसा" ही है प्यारा, नहीं सोचते सार।
है बस इसका मूल स्वदेशी, अब तो करो विचार॥
सभीसे कहता हूं टेरी॥४॥

सब उद्योग, कला बिनशाये, भूखों मरते कोट।
फिर भी मनमें बहुत खुशी हैं, लगा दीनको चोट॥
आगई सन पथकी बेरी॥५॥

"निर्बल"

भगवान महावीर और हम।

[ले०-विद्यारत्न पं० मूलचन्द्र जैन "वत्सल" काव्यकलानिधि-बिजनौर ।]

(१)

उनका अवतरण हुआ था, विश्वत्राण करनेके लिए ।

उन्मुख, व्यथित, दलित, अशांत, सत्यधर्म-शून्य, मायामरीचिका बने हुए मानवोंके हृदयोंमें सत्य ज्ञानका अविरल प्रकाश करनेके लिए ।

मानवी शक्तिका दृढ प्रभाव, आत्मोन्नतिकी चरमसीमा, शुद्धात्मतत्वका अचिन्त्य पराक्रम और इंद्रियनिग्रहकी अद्भुत महिमा दिखलानेके लिए।

सरल अहिंसाका दिव्य संदेश, विश्वसेवाका पवित्र भाव, धार्मिक विस्तीर्णताका उच्च आदर्श और विशाल कर्तव्यक्षेत्र दिखलानेके लिए ।

वे धर्मवीर थे, प्रणवीर थे, और महावीर थे ।

(२)

[illegible] धार्मिकताकी ओटमें मनुष्यका गला घोटने-वाले, [illegible] हुए दीन पशुओंके करुण क्रन्दनने [illegible] हृदयविदारकी तलवारके नीचे [illegible] पृथ्वीको कलंकित करनेवाले, [illegible] हृदयविदारक चीत्कारने [illegible] हृदयको द्रवित कर दिया ।

[illegible] और धर्मके [illegible] हुए सत्य और [illegible] करनेवाले, प्रभुताशालियों द्वारा [illegible], और निर्बलोंपर कियेजाने-वाले [illegible] अत्याचारोंसे वे [illegible] हो उठे।

दलित, पतित, धर्मसे वंचित प्राणियोंके धार्मिक भावोंने उनके हृदयको हिला दिया ।

धार्मिक संकीर्णता, मत अनैक्यता, तथा पर-स्परके घृणा और द्वेषभावोंने उनका मन विचलित कर दिया।

बाह्याडंबरपूर्ण आत्मज्ञानसे शून्य क्रियाकांडमें मग्न हुए रूढ़ियोंकी साकलोंमें दृढ़तासे जकड़े हुए "बाबावाक्यं प्रमाणं" को नेत्र बंदकर माननेवाले अविद्या संस्कारमें पले हुए अज्ञान जगतको सत्य-ज्ञानके उज्वल प्रकाशमें लानेके लिये उनका मन लालायित हो उठा ।

सेवाधर्मके पवित्र संस्कारोंको भरनेके लिये, 'सत्वेषु मैत्री'का मंत्र फूकनेके लिये, विस्तीर्ण धर्म-साम्राज्यमें मनुजलोकको विचरण करनेका संदेश सुनानेके लिये, अहिंसा धर्मकी दुंदुभि बजानेके लिये और आत्मिक रहस्य समझानेके लिये वे उत्सुक हो उठे ।

(३)

उन्होंने सर्व प्रथम अपनी आत्मा पर विजय करना, अपनी पूर्ण शक्तियोंको संगठित करना और सांसारिक वासनाओं-विषय प्रलोभनाओंसे मुक्त होना उचित समझा ।

संसारी मानवोंको मुग्ध, विमोहित और आत्म-ज्ञान-शून्य बना देनेवाले अनंत राज्य वैभवको,

कांक्षित कामनियोंके ललित लीलाविलासको, स्वार्थकी दृढ़ सांकलसे सटे हुए बन्धुओंके स्नेहको और दु:ख-ज्वालासे जलते हुए जगतको उन्होंने इन्द्रजाल, मायामरीचिका जल, बुदबुद और वड़वानल सदृश क्षणिक, विमोहक, नश्वर, दाहक और नि:सार समझा।

उन्होंने तृण सदृश, जीर्ण गृह सदृश और दुर्जन मित्र सदृश सासारिक विभूतियोंसे अपने शरीरसे और स्वार्थी जगतसे सर्वथा स्नेह त्याग कर दृढ़ता-निश्चलतापूर्वक आत्मध्यानसे अपने आपको तन्मय कर दिया।

वे दिगम्बर योगिराज, सुमेरु सदृश अचल, गगन सदृश शान्त, वज्र सदृश निश्चल और रत्नाकर सदृश गंभीर होकर मानवी सृष्टिको चकित कर देनेवाले, अचिन्त्यनीय और असहनीय तपश्चरण करनेमें दृढ़ता पूर्वक संलग्न होगए।

अनेक बाधाओं, उपसर्गों और प्रलोभनोंने उनपर आक्रमण किया किन्तु उन्होने अपने आत्मबल, ध्यान, शक्ति और तपके प्रभावसे सबको विजित करते हुए आत्म गुण घातक कर्मसमूहको भस्म कर डाला।

उन्हें विश्व प्रदर्शक दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ। दिव्यज्ञानकी अलौकिक शक्तिसे सम्पूर्ण द्रव्योंके वास्तविक रहस्यको समझकर उन्होंने संसारके आत्मतत्वके स्वरूपको समझाया।

उनके दिव्य उपदेशामृतका पान करनेके लिए लोक समूह लालयित था, उन्हें प्रमाण और नयों द्वारा धर्मके गूढ़ तत्वोंको विस्तीर्णतापूर्वक समझाया, सबके पालन करनेको विश्वधर्मका निरूपण किया। उसे सबने समझा और अपनाया।

उनकी गवेषणापूर्ण अकाट्य युक्तियोंके सम्मुख पाखंडी, मिथ्यात्वी और कुतर्की टिक न सके, वे परास्त होगए। सबने उनके धर्म-झंडेके नीचे अपना मस्तक झुका दिया।

हिंसा ताडव भग्न हुआ, मिथ्यावादोंका किला चूर्ण हुआ, संकीर्णताकी दीवाले नष्ट हुई और सारे संसारमें सत्य धर्मकी जयका गगनभेदी स्वर गूंज उठा।

(४)

वह कौन थे? भगवान् महावीर। वह कैसे थे? स्वात्मलम्बी, दृढ़ पराक्रमी, अचिन्त्य आत्मविक्रमी, विश्व उद्धारक और हमारे हृदय-उपासक देवता।

उनका हृदय कैसा था? अविरल प्रेमधारासे परिप्लुत ज्ञानसे प्रकाशित सत्यतासे परिपूर्ण और विशाल।

हम? हम हैं उनके उपासक! संकीर्ण हृदय, विद्वेषी, कायर, परावलम्बी और साहसहीन!

जहा उनका उपदेश विश्व मानवोंके प्रति सत्वेषु मैत्रीयता का था, वहा हम उनके नामपर दि०, श्वे०, रक्तांबर, शुद्धाम्नायी, त्रिशुद्धाम्नायी, पंडित, बाबू आदि२ अनेक दल और पंथ बनाकर, अपने२ विचारोंको वज्रकी लकीर समझते हुए, पक्षपातका चश्मा चढ़ाए हुए परस्परमें घोर विरोधका बीज बो रहे हैं।

जहां उन्होंने गौतम जैसे मतांधी, प्रगाढ़ मिथ्यादृष्टीको अपनी अकाट्य युक्तियोंके द्वारा, शंकाओंको निर्मूलकर उसे अपना उपासक बना लिया था, वहां हम अपने ही सहधर्मियोंके स्वतंत्र विचारोंको नहीं सुन सकते, उनकी शंकाओंको न्यायपूर्वक निर्मूल नहीं कर सक्ते, उनके हृदयको संतोषित नहीं कर सकते! किंतु, अपनी इच्छाके विरुद्ध उनके उचित विचारोंको भी न सुनकर, हम उन्हे नीच, पापी और कृतघ्नी समझकर सर्व प्रकारसे पतित और पराजित करनेका उद्योग कर रहे हैं।

जहां उन्होंने विस्तीर्ण धार्मिक क्षेत्रमें विद्यमान-वोंको विचरण करनेका उपदेश दिया था, वहा हम पक्षपात, प्रभुता और दुरभिमानके नशेमें मत्त हुए अपने ही सहधर्मियोंको धर्मके पवित्र उपदेशोंसे, धार्मिक अनुष्ठानोंसे वंचित रखकर अपने बड़प्पनका परिचय देरहे हैं ! अपनी समाजके ही अङ्गोंको अपनेसे अलग कर रहे हैं ! उनके प्रति सहानुभूतिका भार तो दूर रहा, उन्हें सत्य पथपर, धर्मके सिद्धान्तोंपर दृढ़–निश्चल करना तो दूर रहा, उनके प्रति सहृदयताका व्यवहार तो दूर रहा, किंतु हम उन्हे धार्मिक संस्कारोंसे विलग करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। और उन्हें धर्मसे सर्वथा विमुख होनेके लिए लाचार कर रहे हैं।

जहापर उन्होंने समयानुकूल नवीन सस्कारों और कार्यप्रणालियोंके अनुष्ठानका संदेश सुनाया था वहापर हम "लकीरके फकीर बने, कूप–मडूक बने" रूढ़ियोंके कट्टर गुलाम बने हुए–पुरातन प्रणाली चाहे समाज और धर्मनाशिनी क्यों न हो, उससे हमारा सर्वनाश ही क्यों न होता हो, उसकी आवश्यक्ता भले ही न हो; किन्तु "बाबा-वाक्य प्रमाणं" की उक्तिको चरितार्थ करते हुए, हम उससे तनिक भी टससे मस नहीं होते !

जहांपर उन्होंने सम्यक् श्रद्धान और सत्यज्ञानके महत्वको बतलाते हुए, क्रियाओंके करनेका उपदेश दिया था, वहापर हम सम्यक्–श्रद्धान और सम्यक् ज्ञानसे शून्य बाह्याडम्बर, कोरे क्रिया–कलाप और अन्ध विश्वासमें मग्न हुए उसीका उपदेश अपने अज्ञान भोले भाइयोंको सुना रहे हैं, शून्य-क्रिया-ओंकी दृढ़ सांकलसे जकड़ रहे हैं।

जहा उन्होंने अपने धर्मके सत्य तत्वोंको संसारके सामने खोलकर रख दिया था, उनका व्यवहार करनेके लिए जगत प्राणियोंको जातिपातिके बंधनोंसे उन्मुक्त कर दिया था वहां हम उनके तत्वों–उपदेशोंको सर्वसाधारणके लिए प्रदान करनेकी निषेधाज्ञा निकाल रहे हैं, वीर वाणीसे वंचित कर रहे हैं और उसे संदूकोंमें सड़ा रहे हैं।

जहां उन्होंने घोर मिथ्यादृष्टि पाखंडियोंके असत् आक्षेपों–विरोधोंको सुयुक्तियोंसे नष्ट कर उन्हें पराजित कर धर्मका सिक्का उनके दिलपर जमा दिया था, वहापर हम अपने ऊपर विजातियों द्वारा नास्तिक, ढोंगी, कायर, और कोरे क्रियाकांडी आदि लगाए हुए अनेक असत् आक्षेपोंको श्रवण कर चुपचाप बैठे हुए संसारके सामने अपनेको उनके अनुयायी सत्यानुवेषी और धर्मोपासक होनेका दावा कर रहे हैं।

किंतु जबतक संसारके सामने अपनी सत्यताको सुयोग्य साधनों द्वारा प्रकट न किया जाय, नवीन आधुनिक प्रणालियों द्वारा उसके रहस्यको समझाया न जाय, उनके हृद्गत विचारोंको परिवर्तित न कर दिया, हमारी थोथी युक्तियोंका कोरी डींगका कोई महत्व नहीं ? सत्यताका कोई प्रमाण नहीं।

क्या हममें वह दिव्य चारित्रबल है ? वही आत्मसम्मान, सत्य दृढ़ता, विशाल प्रज्ञा और निःस्वार्थ सेवाभाव हैं। नहीं, कुछ भी नहीं। हम तुच्छ धन वैभवके नशेमें मत्त हैं, कोरी शानमें व्यस्त है।

(९)

वीर धर्मका अस्तित्व संसारसे नष्ट होरहा है। धर्म–सिद्धान्तोंपर घोर आघात होरहा है, धार्मिक आयतनों, उत्सवोंका अपमान होरहा है, स्वतंत्र धार्मिक अधिकार छिने जारहे हैं, किंतु हम अपनी२ ठसकमें, आपसकी कटाकटीमें, एक दूसरेको नीचा दिखानेकी हवसमें, केवल मात्र शब्दाडम्बर और वाक्य विन्यासोंके गढ़नेमें ही अपना बहुमूल्य समय, शक्ति, धन और जीवनका अपव्यय कररहे हैं।

यह पवित्र वीर निर्वाणपर्व प्रति वर्ष आकर

हमें अपने उच्च आदर्शोंकी स्मृति दिलाता है, हमारे कर्तव्योंका प्रबोध कराता है, किन्तु हमारी निद्रा भंग नहीं होती, हम नेत्र नहीं खोलते, स्वप्न मात्रमें अपनी भयानक स्थितिपर दृष्टि नहीं डालते, अपने भविष्य पर विचार नहीं करते।

क्या इसी प्रकार हम सुख समताका साम्राज्य प्राप्त कर सकेंगे? क्या इसी प्रकार हम वीर धर्मका प्रचार कर सकेंगे? क्या इसी प्रकार पवित्र धर्मको चिरकाल पर्यंत स्थिर रख सकेंगे? क्या इसी प्रकार अपनेको महावीर प्रभुके अनुयायी होनेका परिचय देंगे?

(६)

हम प्रतिदिन अपने सिद्धान्तोंसे च्युत होरहे हैं। आत्मोद्धारके मार्गसे उन्मुख होरहे हैं। विश्व प्रेमभावसे विरक्त होरहे हैं। वास्तविक अहिंसा तत्वके समझनेसे अनभिज्ञ होरहे हैं। अस्तु।

प्यारे बन्धुओ! उठो, हम इस कायरताके जालको तोड़दें, दिखलावटके जामेको फेंकदे, रूढ़ियोंके किलेको चूर्ण करदे और श्री वीर प्रभुकी निर्वाण स्मृतिमें वीर धर्मको अखिल विश्वमें फैलानेका दृढ़ संकल्प करलें।

श्री महावीर प्रभुके अनुयाइयो! अहिंसा धर्मके उपासको! आइए! हम सब एकमेक हो जाएं, पंथ, मत, भेदभाव और आग्रहके कांटोंको कुचल डालें, विद्वेष भावोंको भूल जाए और एक होकर शक्तिको संगठित करलें, उत्साहको उद्दीप्त करलें, छिपे हुए वीर भावोंको जाग्रत करलें, सत्य सिद्धान्तोंसे अपने हृदयको पूरित करलें और वीर धर्मके झंडेके नीचे संसारको झुकानेका दृढ़ संकल्प करलें।

आओ! हां आज ही आओ!! हिचको मत!!! ऐसा पवित्र पुण्य समय और कब प्राप्त होगा? आओ! एक शक्तिसे, एक बलसे, एक स्वरसे सर्वस्व समर्पणके लिए कटिबद्ध होजाएं।

(७)

धर्मपिपासुओंके लिए चिरकालसे बन्द हुए धर्म सरोवरके घाटोंको खोलदें, विशाल धर्मक्षेत्रके प्रवेश-द्वारके कपाट उद्घाटित करदें।

सहधर्मियोंको प्रेरणापूर्वक अपनेमें मिलालें, उन्हें हृदयसे लगालें और धार्मिक उत्तेजनाके लिए उन्हें प्रोत्साहित करें।

संसारके साम्हने वीर वाणीको उन्मुक्त रखदें, वैज्ञानिक प्रकाशमें संसार उसकी अक्षीण सत्य प्रभाको देखे और अपने हृदयोंका पुन: संस्कार करे।

असमर्थ और दीन हीन भाइयों, दु:ख-दग्ध विधवाओं, अनाथ बालकोंकी रक्षाके लिए, धार्मिक सरक्षाके लिए सामाजिक और धार्मिक समस्याओंको हल करें, उनकी जीवन रक्षाके उत्तरदायित्वको अपने हाथमें ले, वह हमसे पृथक् न होसके ऐसी सुविधाएं उपस्थित करदें। उदार बनकर उन्हें हम अपनेमें मिलालें। झूठी मान्यताओं, मिथ्या धारणाओंका मूलोच्छेदन करदें।

सामाजिक कुरीतियें जिसे हमने अपनी मिथ्या धारणाके बलपर अज्ञानतासे धर्म समझ रक्खा है और जिनसे सामाजिक तथा आर्थिक समस्याएं जटिल होरही हैं, अनेक गृह बरबाद होचुके हैं, युवक और युवतियें बलिदान होरहे हैं उनकी अनेक जड़ोंको खोद डालें और समयोचित सरल सुरीतियोंके पल्लवोंको आरोपित करदें।

एकबार संसारमें फिरसे धार्मिक क्रांति करदें। सच्चे आत्मश्रद्धानसे सत्यज्ञानकी दिव्य प्रभासे, सच्चरित्रताके अमूल्य अलंकारोंसे अलंकृत होकर अपने जीवनको परोपकारमें, जातिसुधारमें, धर्मोद्धारमें मानवी कर्तव्योंके पालन करनेमें लगा दें।

आइए! श्री महावीर प्रभुके दिव्य पादपद्मोंमें अपनेको समर्पण करदें और 'श्रीवीरनिर्वाण' को चिरस्मरणीय तथा सफल बनादे।

योगाभ्यास।

ले०—श्री० पं० रवींद्रनाथ जैन न्यायतीर्थ-रोहतक।

भारतवर्षमें योगाभ्यासका अर्थ एक सम्मान प्रद शब्दोंमें लिया जाता है। जिसे लोग योगी समझलेते हैं उसकी ओर स्वयं श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है यहातक कि उसे भूत, भविष्यत, वर्तमानका ज्ञाता भी समझने लगजाते हैं, उसकी सेवा करते हैं, जिससे नानातरहकी सिद्धिया प्राप्त होसकें और इनका योगबलसे प्राप्त होना असंभव भी नहीं। वर्तमान समयमें ऐसे विशिष्ट योगी या तो देखनेमें नहीं आते और हों भी तो क्वचित् विरले, किंतु आजकल जिसको कुछ आसन लगाते हुए या श्वास निरोधको करते हुए देखलेते हैं उसको ही लोग पहुचा हुआ साधु समझ बैठते हैं।

जब कि ससारमें यह विषय इतना अच्छा समझा जाता है तब क्या जैन शास्त्र इसे हेय समझते हैं? यदि नहीं तो इसके प्रतिपादन करनेवाले शास्त्र जैन सप्रदायमें क्यो नहीं मिलते? क्यों लोगोंको इसके लिये औरोंके शास्त्रोंको टटोलना पड़ता है। इसका उत्तर यही है कि लोगोंने हठयोगको ही योग समझ रक्खा है और हठयोगको ही योग समझना जैन सिद्धात अथवा अन्य सिद्धातसे विरुद्ध है। यदि योगका व्यापक अर्थ लिया जावे तो अवश्य जैन सिद्धांतोंमें जगह२ पर योगका वर्णन मिलेगा। यह बात अवश्य होसकती है कि जैन सिद्धातमें योगकी जगह ध्यान अथवा समाधि शब्द व्यवहृत किया गया हो। हा, हठयोगका भी विशेष रूपसे किन्हीं२ शास्त्रोंमें वर्णन किया है, पर हठयोग आत्मकल्याण है। कभी२ साधककी अपेक्षा बाधक होजाता है। अतएव या तो हठयोगका वर्णन ही नहीं है, अथवा है तो बहुत थोड़ा, किसी२ ज्ञानार्णव आदि शास्त्रोंमें कुछ विशेष वर्णन बताया भी है पर इसे वहींपर अश्रेयस्कर भी अंतमें बता दिया गया है। पर जनताका झुकाव शरीरको लाभप्रद होते हुये भी आत्माके लिये किन्हीं अंशोंमें अश्रेयस्कर हठयोगकी ओर ही होरहा है। अत' उसे जैनागममें योगाभ्यास नहीं मिलता है और उसके लिये विधर्मियोंके शास्त्र टटोलने पड़ते है।

योग शब्दका अर्थ श्री राजवार्तिकजीमें "युजेः समाधिवचनस्य ध्यानं समाधिः योग इत्यर्थः" समाधि अर्थ सूचक युज धातुका योग ध्यान समाधि यह अर्थ बताया है। अन्य अजैन शास्त्रोंमें भी युज धातु संगति करण अर्थमें है। उसका अर्थ जिससे आत्मा परमात्माका मेल होसके बताया है, जो जैन सिद्धांतकी समाधि सदृश ही है। हां समाधिमें आत्मा स्वय अपनेको शुद्धानुभवन करता है और संगतिमे एक मानेहुये परब्रह्ममें आत्मलय होता है। अंतर केवल इतना ही है। योगके अन्य शास्त्रोंमें १ ज्ञानयोग (ज्ञान विकाससे आत्मा वैराग्य एवं विवेकमें अपने अस्तित्वको भूल जाती है, वह अपने अस्तित्वके कण कणमें परमात्मरूप देखने लगता है उस समय मुक्तिमें अप्रकट सम्मेलन होने लगता है), २ हठयोग (वायु और अंगोंपर अधिकारकर परमात्म स्वरूप की ओर झुकता है), ३ राजयोग (मन एकाग्र कर परमात्माके दिव्य स्वरूपका वारवार चिंतवन करते हुये आत्माका समाधिस्थ हो परमात्मामें लीन हो जाना है)।

४ कर्मयोग (निष्काम सांसारिक इच्छारहित कर्म करते हुए परमात्मामें लीन होजाते), ५ भक्तियोग (हमारी भावनाओं एवं भावनाओंको प्रेमके साथ प्रभु चरणार्पण कर उसको मनाना), ६ मंत्रयोग (आत्माके नाम या उससे संबंधित किसी मंत्रका उच्चारण करते हुए ध्यानमें निमग्न होजाना है), इस तरह मुख्य भेद बताए हैं। जैन सिद्धांतमें इन्हीं नामोंसे भेद तो नहीं मिलते हैं पर नामान्तरसे उनका उल्लेख अवश्य पाया जाता है। ज्ञानयोगकी जगह रूपातीत ध्यानका संकेत अवश्य है।

चिदानंदमयं शुद्धममूर्तं परमाक्षरम्।
स्मरेद्यत्रात्मनात्मानं तद्रूपातीतमिष्यते॥
(ज्ञानार्णव)

अर्थ—जिस ध्यानमें ध्यानी मुनि चिदानंदमय शुद्ध अमूर्त परमाक्षररूप आत्माको आत्मा ही स्मरण करे अर्थात् ध्यावे सो रूपातीत ध्यान है।

हठयोग राजयोगकी ही पहिली अवस्था है। हठयोग साधनाके पीछे राजयोगपर अभ्यास सुगमतासे होसक्ता है। जैनसिद्धांतमें भी पहिले आसन, दृढ़ता, परीषहजय आदिके पीछे ध्यान पिंडस्थ या रूपस्थ बताया है। पिंडस्थ ध्यान-निर्दोष नये अमृतसे भीगी हुई चन्द्रमाकी किरण सदृश गोरावर्ण श्रीमत्सर्वज्ञ भगवान् समान तथा मेरुगिरिके शिखरके तटपर बैठा समस्त प्रपंचरहित समस्त ज्ञेयोंको जाननेवाला देवेन्द्रोंके समूहसे भी जिसका अधिक प्रभाव हो ऐसे आत्माका चितवन किया जाय उसे पिंडस्थ ध्यान कहते हैं।

रूपस्थ ध्यानमें सर्व अतिशयोंसे पूर्ण अरहंत सर्वज्ञका ध्यान करना कहा है। उसीके अभ्याससे तन्मय होकर उसके समान अपने आत्माको ध्यावना जिससे आत्मा वैसा ही होजाता है। मंत्रयोगकी जगह पदस्थ ध्यानका संकेत है।

पदान्यालम्ब्य पुण्यानि योगिभिर्यद्विधीयते।
तत्पदस्थं मतं ध्यानं विचित्रनयपारगैः॥
(ज्ञानार्णव)।

अर्थ—जिसको योगीश्वर पवित्र मंत्रोंके अक्षर स्वरूप पदोंका अवलम्बन करके चितवन करते हैं उसको अनेक नयोंके पार पहुंचनेवाले योगीश्वरोंने पदस्थ ध्यान कहा है।

भक्तियोग—जो कुछ हमारा पहिली अवस्थामें पूजनपाठ आरती भक्ति विशेष है उसीका यह संकेत है।

कर्मयोग—इसकी जितनी अच्छी व्याख्या जैन सिद्धान्तमें बताई है, अन्यत्र नहीं है। यथा—
"मोक्षेऽपि यस्य नाकांक्षा स मोक्षमधिगच्छति"
—स्वरूपसंबोधन।

अर्थात्—मोक्षमें भी जिसकी इच्छा न हो वही मोक्षमें जाता है। तात्पर्य यह है कि आत्मा जब अशुभसे शुभावस्था और क्रमसे शुद्धावस्थामें जाता है तब उसकी परिवर्तन होतेही ३ अवस्थाएं होती हैं। १—'दासोऽहं' मैं परमात्माका दास हूं। यही भक्तियोग कहना चाहिये। इसके बाद 'दा' छूटकर २—'सोऽहं' जो परमात्मा है वही मैं हूं यह अवस्था रहजाती है, इसे या तो राजयोग, मंत्रयोग, कर्मयोग, ऊंचे दर्जेका कहना चाहिये या इनकी नीची अवस्थाको पहली अवस्थामें गणना करनी चाहिये। किसी प्रकारसे नीचे दरजेके ज्ञानयोगकी हालत इसमें आसक्ती है परंतु 'सो' छूटकर ३ 'अहं' में मात्रकी अवस्था रहती है उसे ही असली ज्ञानयोग कहना चाहिये। योगसे यदि आत्मकल्याण किया जासके तो बहुत लाभप्रद है। किन्तु सबसे पहिले मुमुक्षु पुरुषोंको संसारसे मन हटानेको संसारकी असारता और वैराग्य दृढ़ करनेको शरीरके भीतरी स्वरूपका विचार करना चाहिये। "जगत्कायस्वभावौ वा संवेग-

वैराग्यार्थम् ” उमास्वामि इस लोक और परलोकके फल भोगनेकी इच्छाका अभाव, शम, दम, तितिक्षा-परीषह सहन करनेकी शक्ति, गुरूपदेश श्रवणादर श्रद्धा तथा मुमुक्षुता रूप प्रवृत्ति करनेसे वैराग्य बढ़ता है। पर यह इस कहावतको चरितार्थ होते हैं—

सब सुखमय हैं योगीको।
सब दु:खमय हैं रोगीको॥

इसके बाद मनो निग्रहका अभ्यास करना चाहिये। क्योंकि—

चित्तं जानीहि संसारं बन्धश्चित्तमुदाहृतः।
पादपः पवनेनैव देहश्चित्तेन चाल्यते॥

ऋषियोंका कहना है कि मनही मनुष्यके बंध और मोक्षका कारण है—

“मन एव मनुष्याणा कारणं बंधमोक्षयोः।”

मनको ही संसार समझो, मन ही संसारका बंधन है। जैसे हवाके द्वारा वृक्ष हिलता है उसी प्रकार मनके द्वारा मानवोंका शरीर हिलता है, और जहां मनमें रागद्वेष पैदा होना बंद हुवा कि कैवल्य पद मिला। उसके बाद भी यद्यपि कुछ समयतक वचन और काययोग होता है, पर वह इतना बंधका कारण नहीं है, किन्तु इस मनका निग्रह कैसे हो? उत्तर—अंतरंगमें शुभकर्मका उदय हो और फिर किसी श्रीगुरुसे देशनालब्धि प्राप्त हो। तब मुमुक्षुको एकांत सेवन कर गुरुवचनानुसार योग्य रीतिसे मनोजय करना चाहिये। मनोजयके यद्यपि कई उपाय हैं पर वर्तमानमें लोग श्वासनिरोधके द्वारा मनोनिग्रह बताते है, किन्तु उसके द्वारा जो मनोजय होता है उसमें सिद्धिया अवश्य होती है, परन्तु मुक्ति अवश्य कर मिलती ही हो यह नहीं है।

द्वौ क्रमौ चित्तनाशाय योगो ज्ञानं च राघव।
योगश्चित्तनिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणं॥

योग वा शिष्ट चित्त निग्रहके दो उपाय हैं— १ योग २ ज्ञान। योगचित्तके रोकनेको कहते हैं, और ज्ञान भली प्रकार आत्माको देखनेको कहते हैं।

अब यह जानना चाहिये कि मनोलयके जो दो उपाय बताए हैं उनमें उत्तम कौन है? यद्यपि दोनोंका विषय (उद्देश्य) एक ही है फिर भी जिन पुरुषोंने दोनों रास्तोंका अनुभव प्राप्त किया है उनका कहना है कि भेदज्ञानसे जिस प्रकार मनोलयकी स्थिरता होती है उस प्रकार योगाभ्याससे नहीं, उसका कारण यह है—

प्राणस्यायमने पीडा तस्यां स्यादार्तसंभवः।
तेन प्रच्याव्यते नून ज्ञातं तत्त्वोऽपि लक्षितः॥

अर्थ—प्राणायाममें श्वासके रोकनेसे पीड़ा होती है और पीड़ासे आर्तध्यान उत्पन्न होता है और उस आर्तध्यानसे तत्वज्ञानी मुनि भी अपनी समाधिसे भ्रष्ट करा दिया जाता है॥ ९॥

पूरणे कुम्भके चैव तथा श्वसननिर्गमे।
व्यग्रीभवन्ति चेतांसि क्लिश्यमानानि वायुभिः॥१०॥

अर्थ—पवनके पूरक कुम्भक रेचक करनेमें चित्त व्यग्ररूप होता है क्योंकि पवन क्लेशित होनेसे खेद पाता है, इस कारण प्राणायामका यत्न गौण किया है।

नातिरिक्तं फलं सूत्रे प्राणायामात्प्रकीर्त्तितम्।
अतस्तदर्थमस्माभिः नातिरिक्तः कृतःश्रमः॥११॥
ज्ञानार्णव।

अर्थ—आचार्य कहते हैं कि इस प्राणायामसे सिद्धांतमें कुछ भी अधिक फल नहीं कहा है। अत इसके विशेष कथनका हमने प्रयत्न नहीं किया है।

सारांश यह है कि योगाभ्याससे मनोलय चिरस्थायी नहीं रहता। योग बलसे जबतक चित्तवृत्तियां निरोधित रहती हैं, तबतक मन एक प्रकारसे मूर्छित अवस्थामें रहता है, परन्तु

ज्योंही चित्तवृत्तिका उत्थान होता है त्योंही मनका व्यापार पूर्ववत् होने लगता है। अर्थात् जगतकी असारताकी बजाय सारताका भास होने लगता है, जिसका होना ठीक नहीं। इस प्रकार जगतकी सारताका भास होते ही मनुष्य सुख दुखादि द्वन्दोंका अनुभव करके संसारचक्रमें फँस जाते हैं, पर यह परिणाम भेदज्ञानसे नहीं। अतएव जैनागममें योगाभ्यासपर विशेष जोर नहीं दिया है, बहुत ही कम शास्त्रोंमें मामूली श्वासनिरोध आदि योग प्राणायाम पर जोर दिया है।

हा यह बात अवश्य है कि साधक पुरुषकी बुद्धि यदि मंद होगी और चित्त अशुद्ध तथा मलिन होगा तो वह आत्मज्ञानको कदापि नहीं ग्रहण कर सकेगा। "आत्मा शुद्ध निर्विहार है" आदि-आत्मीक अनुभवके वाक्योंका अर्थ मलिन अंत.करणमें प्रवेश नहीं हो सकता। ऐसी अवस्थामें गुरुका उपदेश भी निष्फल जाता है। आत्मज्ञानके लिये तीक्ष्ण बुद्धिकी बहुत आवश्यक्ता है। गुरुमुखसे सुने हुये महा वाक्योंका अर्थ तीक्ष्ण बुद्धिमें ही प्रतिबिम्बित होसकता है। अतएव यह बात सिद्ध है कि साधक प्रज्ञावान नहीं होगा तो उसकी बुद्धिमें आत्मीकज्ञान प्रवेश नहीं होसकेगा। इसलिये पहिले योगाभ्यास करके मनोनिग्रह करना चाहिये। योगाभ्याससे जब चित्त निरोध हो जायगा और साधककी तीक्ष्ण बुद्धि होजावेगी तब उसमें ग्रहण कर विचार करनेकी योग्यता प्राप्त होजावेगी, यह आत्मज्ञानकी बाह्य तीसरी सीढ़ी है। पहली श्रवण दूसरी मनन है। योगाभ्याससे चित्त शुद्ध होनेपर गुरुपदेशका ठीक २ अर्थ बोध होगा, और तब उसपर बार २ विचारकर आत्मामें लगाना होगा।

मनोजयके विना ध्यान कदापि नहीं होसक्ता—

चित्तमेकं न शक्नोति जेतुं स्वातन्त्र्यवर्जितः।
ध्यानवार्तां वदन्मूढः स किं लोके न लज्जते॥

अर्थ—चित्त जितना बड़ा कठिन है, उसके विना मुक्ति नहीं। मनोजय विना ध्यानका नाम लेना ही अपनेको लज्जित करना है।

मनको जीतनेके लिये पहिले उसके सहायकोंको कमजोर बनाना होगा। जैसे किसी शूरवीरको मारना हो तो उसके सहायक तथा हाथ पैरोंको काट डालना चाहिये फिर पंगु बना शूरवीर क्या कर सक्ता है, इसी तरहके मनके सहायक उसकी पाच वृत्तियोंको काटकर पगु बना दिया जाय तो वह दौड़कर कहाको जायगा? अवश्य ही निश्चल होकर स्वरूपमें लीन होजावेगा।

मनकी ५ वृत्तिया ५ इंद्रियां हैं। उन्हें जितना चाहिये अथवा अन्यत्र १ प्रमाण (सच्चे ज्ञानका होना), २ विपर्यय (उल्टा ज्ञान), ३ विकल्प (व्यवहार नयाश्रित विकल्प ज्ञान), ४ निद्रा, ५ स्मृति भी बताई गई हैं। इनमें ही मन अटका रहता है, इन्हींको नष्ट करना चाहिये।

हमें ३ बातोंका विचार करना चाहिये।

१—मनुष्य विषयासक्त क्यों?

२—मन नियमनमें उदासिनता क्यों?

३—यत्न करनेपर फलप्राप्ति क्यों नहीं?

इनका उत्तर—१—वैराग्याभावमें विषयासक्ति होती है।

२—परमार्थमें अनादर होनेसे उदासीनता होती है।

३—निरंतर अभ्यास न रहनेसे फलप्राप्ति नहीं होती है।

मनोजयके ४ उपाय हैं—

१ सत्संग, २ वासना त्याग, ३ आत्मज्ञान विचार, ४ प्राणस्पंद निरोध। १ सत्संगसे कुत्सित विचारोंका उदय नहीं। २ वासना त्यागसे—चित्तका झुकाव संसारकी ओर नहीं होता। वासना रोकनेका उपाय परिग्रहमें अंतरंग बहिरंग इच्छाका हटाना,

संसारकी अनित्यता सोचना, शरीरके नाशका ख्याल करना! ३ आत्मज्ञान विचारसे—इस जीवका मन अनात्मीक वस्तुसे हट आत्मामें ही लीन होता है। इसे ही भेदज्ञान कहते हैं, इसीसे मुक्ति मिलती है, यही कार्यकारी है, ठीक है, चाहे वह दुनियाको फिर कैसा ही जाने ।

४ प्राणस्पंदनिरोधन—पहिले सर्व (आत्मानभिज्ञ) मनमें जबरदस्ती आसनादि द्वारा जो मन या तत्सम्बंधित वायु ब्रह्मरंध्रमें प्रवेशकी जाती है यही हठयोगकी क्रिया है और यही पहिली हालतमें उपयोगी है ।

इसके ८ भेद हैं—१ यम, २ नियम, ३ आसन, ४ प्राणायाम, ५ प्रत्याहार, ६ ध्यान, ७ धारणा, ८ समाधि ।

यम—पाच पापोंका यावज्जीव त्याग करना ।

नियम—पाच महाव्रतोंके सहायक नियम, समिति, षडावश्यक, तप, १० धर्म आदि। अन्यत्र पवित्रता, संतोष, तप, स्वाध्याय आत्मैकाग्रय आदि बताये है।

आसन—कुछ समयतक शरीरको किसी खास अवस्थामें रखना । ध्यानके योग्य है —

पर्यंकमर्धपर्यंक वज्रं वीरासन तथा ।
सुखारविन्दपूर्वे च कायोत्सर्गश्च सम्मत ।।१०।
येन येन सुखासीना विद्ध्युर्निश्चल मन ।
तत्तदेव विधेय स्यान्मुनिभिर्बन्धुरासनम् ।।११।।
कायोत्सर्गश्च पर्यंकः प्रशस्त कैश्चिदीरितम् ।
देहिनां वीर्यवैकल्यान कालदोषेण संप्रति ।।१२।।
ज्ञानार्णव ।

अर्थ—पर्यंकआसन, अर्द्धपर्यंक, वज्रासन, वीरासन, सुखासन, कमलासन, ये ध्यानयोग्य आसन हैं। जिस२ आसनमे सुखरूप बैठकर मुनि अपना ध्यान जमा सके वही आसन ग्रहण करना चाहिये। कालदोष तथा शक्तिहीनतासे आचार्योंने कायोत्सर्ग और पद्मासन ये २ आसन कहे है।

आसनसे—परिषहजयशक्ति, और उपस्थ व लक्ष्य (लिंग और गुदाके बीच एक सियनसी होती है उसमेंसे नाड़ी द्वारा वीर्य निर्गमन कर उपस्थका बल बढ़ाकर इन्द्रियको कड़ा करता है, पर आसनसे न बल बढ़ता है, न इन्द्रिय कड़ी होती है) प्राणवायु रोकनेकी शक्ति बढ़ाना, शरीरकी हवा धीरे२ चलनेसे जीवन शक्ति बढ़ना आदि अनेक लाभ हैं।

प्राणायामसे—श्वासपर अधिकार, स्नायुकेन्द्रोंपर अधिकार, श्वासोच्छ्वास गति' नादयुक्त एवं नियमित हो मनैकाग्रय होता है ।

वायु—वायुनाड़ियोंपर अधिकार तथा चक्रोंपर अधिकार होता है। वायुनाड़िया शरीरमें ३५००० है। पर १० मुख्य हैं—१ इडा बाई ओर, २ पिंगला दाहिनी ओर, ३ सुषुम्ना मध्यमें, ४ गंधारी बांई आख, ५ हस्तजिह्वा दायीं आख, ६ पुष दाहिने कान, ७ यशस्विनी बायें कान, ८ अलम कुश मुखमें, ८ कुहू लिंगस्थानमें, १० शंखिना मूल स्थानमें। इनमें—१ इडा, २—पिंगला, ३—सुषुम्ना, बहुत कार्यकारी है। वायु मुख्य ५ हैं—१ हृदयमें प्राणवायु, २—गुदामें अपानवायु, ३—नाभिमण्डलमें समानवायु, ४—उदान वायु कण्ठमें, ५—व्यान वायु सब शरीरमें ।

इसी तरह शरीरमें ६ चक्र है.—

१ मूलाधारचक्र मेरु दण्डके नीचे गुदालिंगके बीच रक्तपीला, चार दलवाला जिसमें व श ष स की कल्पना करना चाहिये। इस चक्रस्थानमें त्रिकोणकार वस्तु कुण्डलिनी प्रवेश करती है जिसका आकार ३॥ बार बल खाये सांपकी तरह होती है।

२ स्वाधिष्ठानचक्र—लिंगके मूलमें ६ दलवाला ब भ म य र ल की कल्पना करयुक्त है। इसके वश करनेसे अणिमादि सिद्धि व देवांगना वश होती हैं।

३ मणिपूरकचक्र—नाभिमें १० दलवाला ड ढ ण त थ द ध न प फ की कल्पना कर सहित है।

इससे दूसरेमें प्रवेश, गुप्तज्ञान, नीरोगता आदि लाभ होते हैं।

४ अनाहतचक्र–हृदयमें १२ दलवाला क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ की कल्पना कर युक्त है। लालरंग। आकाशगमन शक्ति तथा विशेषज्ञ-पना इसको वश करनेसे होता है।

५ विशुद्धचक्र–कण्ठमें, चमकते सोनेके रंगवाला दल १६–१६ स्वरयुक्त कल्पना। इसपर अधिकार करनेसे बाह्य विमुख हो आत्मा आनंद पाता है।

६ आज्ञाचक्र–भौंहोंके बीच त्रिकुटीमें, शुक्लवर्ण २ दल, ह क्ष की कल्पना कर सहित। इसके दोनो ओर इडा पिंगली नाड़ी है।

प्राणायाम–की सिद्धिको ३ बन्ध होते है। १ मूलबंध, २ उडियान बंध ३ जालंधर बंध।

मूलबंध–गुदा और लिंगके बीचकी सिवनको एड़ीसे दबाकर अधोगति वायुको ऊपर खींच गुदा या लिंगेन्द्रियका आकुंचन करना।

उडियान बन्ध–रेचकपूर्वक प्राणवायुका प्राणा-याम करते समय अपना पेट पीठकी ओर खींच नाभि ऊपरकी ओर खींचना। इसे रेचक प्राणायाममें करना चाहिये।

जालंधर बन्ध–गलेको संकुचित कर ठुड्डी हृदय-स्थानपर स्थिरतापूर्वक टिकाना। यह कुंभक प्राणा-यामके समय की जाती है।

इन ३ बन्ध युत प्राणायामसे इडा नाड़ी मेरु-दंडके बायीं ओरसे सुषुम्नाके साथ दायीं ओर, और पिंगला नाड़ी दायीं ओरसे बायीं ओर जाती है। सुषुम्ना नाभि प्रदेशसे निकल मेरुदंडमें होकर चक्रोंमें हो ब्रह्मचक्रमें प्रवेशकर कंठके पास २ भागोंमें विभक्त हो एक तो दोनों भौंहोंके बीच पहुच +ब्रह्म-रंध्रमें मिल जाती है, दूसरी सिरके पीछेसे आकर ब्रह्मरंध्रमें मिलजाती है।

सुषुम्नाके सहारे ही कुण्डलिनी नाड़ी जागृत अवस्थामें होती है। सुषुम्नाके भिन्न २ चक्रोंसे होती हुई कुंडलिनी ब्रह्माण्डकी ओर आगे बढ़ती है। इसके आगे बढना ही मानसिक शक्तिका प्राप्त करना है। इस तरह सहस्त्रदल कमल (मुखस्थान) में पहुचते ही योगी मन और शरीरसे अलग हो स्वतंत्र हो जाता है।

सहस्त्रदल कमल तालुमूलमें है। यहीं सुषुम्नाका छिद्र है। ब्रह्मरंध्र भी तालुमूलमें है। इस रंध्रके ६ द्वार है, जिन्हें कुण्डलिनी ही खोलती है।

इस तरह मूलबंधसे अपान वायु ऊपर जलंधरसे प्राणवायु नीचे होती है। इस क्रियासे जठरानल प्रदीप्त होता है, कुण्डलिनी जागृत होती है, सुषु-म्नाका द्वार खुलता है, सुषुम्नामें वायु प्रवेश होनेसे सब वायु ब्रह्मरंध्र तक पहुच जाती है और समाधि भली प्रकार हो सकती है। अतएव ही सुषुम्ना स्वरमें (जब वह सन्ध्या समय चले या अन्य समयमें भी) सामायकादि शुभ कार्य करना चाहिये।

बायी नाड़ीका जीवनदान विशेष फल होता है।

अमृते प्रवहति नूनं केचित्प्रवदन्ति सूर्योऽप्यर्थम्।
जीवन्ति विषासक्ता म्रियते च तथान्यथामृते॥
(ज्ञानार्णव)

अर्थ–बायी नाड़ीसे अमृत झरता है उससे विषासक्त पुरुष भी जी जाता है। दायी नाड़ी चले तो मरजाता है। इस तरह यह जीवन दान देती है।

प्रत्याहारमे–इन्द्रिया मनोनुकूल हों तदनुकूल विषय उपस्थित करती हैं।

धारणामें–मन किसी वायुपर स्थित होकर वस्तुचित्रका दर्शन करने लगता है। यहातक वह चित्र सन्मुख स्पष्ट प्रतीत होने लगता है।

+सम्भवतः ललाटदेशे–निश्चल करणमाम, समत्वमवलम्ब्य च।
ललाटदेशसलीन विदध्यान्निश्चलं मनः॥
[ज्ञानार्णव]

ध्यान—अन्यत्र ध्यानको छोड़ एक वस्तुका निश्चल होना, सब शक्तियां एकही जगह एकत्र करना।

समाधि—आत्म तन्मय होजाना।

इस तरह आजकल लोगोंके द्वारा माने जानेवाले योग (हठयोग), अन्तर्गत ८ अंगोंका (विशेषकर कुछ प्राणायामका वर्णन किया है। जैन शास्त्र ज्ञानार्णव आदिकमें पवनों और स्वरोंसे तत्वोंकी पहिचान और उनके अनुसार बाह्य चीजोंका ज्ञान होना बताया है—पर इस योगकी क्रियाका खास प्रयोजन अपने शरीरकी शुद्धि और मनको नियंत्रित करना है। जहातक यह आत्मध्यानमें बाधक न हो वहातक करना चाहिये। आत्मज्ञानके लिये भेदज्ञान ही कार्यकारी है और ये क्रियायें तो पहिली अवस्थामें निमित्तमात्र होजाती हैं।

वस्त्र मिलके।

(१)

चुरुट दबाये मुंह, चेन लटकाये घड़ी,
चश्मा चढ़ाये नैन, देख रहे खिलके।
धारे सिर फेल्ट केप, नेकटाइ गले डारि,
शर्ट, वेस्टकोट, और कोट लिये किलके॥
पेंट, बेल्ट, मोजे, बूट, छड़ी हाथ लिये चले,
ऊपरसे यूरोपीय काले पर दिलके।
ऋषियोंके बेटे करते है कैसे हेटे कर्म,
पेन्हते हैं चरबी लपेटे वस्त्र मिलके॥

(२)

मातृभूमि आपतिमें पडी सदियोंसे हाय!
ध्यान नहीं होता कुछ, बैठि रहे खिलके।
नित्य प्रति नूतन विपत्ति सिर आय रही,
लूटत विदेशी लोग हाय हमें पिलके॥
आर्य कहलानेवाले, काले गुलाम बनत,
फिर भी नहीं है लाज भीतर इस दिलके।
ऋषियोंके बेटे करते हैं कैसे हेटे कर्म,
पैन्हते हैं चरबी लपेटे वस्त्र मिलके॥

(३)

कहते हैं ऊपरसे हिंसा ना करहु वीर,
हिंसाकी बात सुनत, रहते हैं हिलके।
गर्भपात, शिशू घात, करें, नहीं वे लजात,
ऐंठि ऐंठि बात करें, सभा मध्य खिलके॥
भ्रातृ-द्रोह, द्वेष, दंभ, नीच कर्म सबै करें,
दीननके गले काटि, खाय रहे छिलके॥
ऋषियोंके बेटे करते है कैसे हेटे कर्म,
पेन्हते है चरबी लपेटे वस्त्र मिलके॥

(४)

शुद्ध चरखेसे कते और करघेसे बुने,
उन्हें तजि मूरख, लुभाने दखि किलके।
हाथकी सिलाई उन्हें नेक हू न भावती है,
आते हैं पसन्द वस्त्र पेरिससे सिलके॥
देशके न दास, दुराचार सो बढाई प्रीत,
ऐसे कापुरुष वृथा, भये भार जिलके।
ऋषियोंके बेटे करते हैं कैसे हेटे कर्म,
पेन्हते है चरबी लपेटे वस्त्र मिलके॥

(५)

सत्य औ अहिंसा जप, तप छोड़ बैठे सब,
हिंसा दुराचारके, असत्य बोल किलके।
रीति जो पुरातनकी, ताते विपरीत भये,
भीत भये उनके कलंकी क्रूर दिलके॥
पूर्वजोंके कर्म पै निगाह करते हैं नहीं,
कन्द मूल खाते थे पहनते थे छिलके।
ऋषियोंके बेटे करते है कैसे हेटे कर्म,
पहिनते हैं चरबी लपेटे वस्त्र मिलके॥

शुकदेवप्रसाद तिवारी "निर्बल"—सुहागपुर।

हमारी इन्दौरसे अजंटाकी साइकिल यात्रा ।

(लेखक:-श्री० टीकमचन्दजी जैन पंचोलिया-इन्दौर ।)

" Where there is will there is way."

उत्कट इच्छा होनेपर मार्ग मिल ही जाता है। मेरी कई दिनोंसे अभिलाषा थी भी कि मैं एक लंबी सफर करूं। कुछ दिन बाद निश्चय हुआ कि अजंटाकी यात्रा की जाय। हम आर्टिस्ट तो हैं ही। हमें वहां भारतीय प्राचीन कलाका दर्शन होगा और अपने (सब्जेक्ट) विषयमें विशेष सहायता मिलेगी तथा उसका अनुभव भी होगा। निश्चित किये अनुसार जब घरसे चलनेका समय आया उस समय हम केवल चार यात्री ही रह गये।

मैं और मेरे तीन साथी इन्दौरसे अजंटाके लिये ता० ३-१०-३२ के प्रातःकाल ५॥ बजे साइकलोंपर रवाना हो गये। इन्दौरकी म्यूनिसिपल एरिया छोड़नेके बाद जब दो तीन माईल आगे बढ़े तो मेरेको कुछ थकानसी मालूम हुई। एक विचार तो हुवा कि वापिस घर चलें परन्तु साथमें अपनी हंसी होगी इसका विचार आता था। ख़ैर ! आगे हम बढ़ते ही गये।। और हमने मानपुरका घाटा सुबह ९ बजे तक तय किया। वहां हमने भोजन वगैरा कर फिर यात्रा शुरू की तो खलघाट ५१ माइलपर पहुंच गये। मध्याह्नका समय था। १२ बज चुके थे। नर्मदाकी कल २ ध्वनि होरही थी। हम थक कर चूर भी होरहे थे। यहा थोड़ा विश्राम लेना उचित समझा। नर्मदामें स्नान किया और सभीने कुछ २ खाया और तीन बजेतक विश्राम लिया। यहांसे २८ माईल चलकर सन्ध्याके ६ बजे हम जलवानिया पहुंचे।

हम चारोंका ड्रेस एकसा (यूनीफार्म) था। खाकी-निकर, खाकी कमीज, खाकी मोजे और भगत.. हेट ! जहां २ हम गये हमारे सम्बन्धमें कई कल्पनायें की गई। कोई तो हमें सी० आई० डी० समझते थे, कोई पुलिस, कोई क्रान्तिकारी तो कोई कांग्रेसवाले समझते थे। हमारे कहीं पहुंचते ही हम एक बड़ी भारी भीड़से घिर जाते थे। हम लोगोंका कई जगह सत्कार किया गया। कई जगह तो हमें खाने पीने और ठहरने तककी बहुत अच्छी सहूलियतें मिलीं। जलवानियामें तो एक सज्जनने अपने हाथसे पानी ला दिया, स्थान साफ़ कर दिया, हमें कुछ भी काम नहीं करने दिया।

जलवानियामें हमने रात्रिभर विश्राम किया। मैं सबसे अधिक थक गया था और मुझे नयी २ कई कल्पनायें आती रही थीं। इसलिये मुझे निद्रा नहीं आई। और मेरे साथियोंने तो खूब ख़ुर्राटेकी नींद ली।

यहासे सुबह हम रवाना हुवे तो ९ बजे सेंधवा पहुंचे। सेंधवाके आगे एक नालेका निर्मल जल वह रहा था। वहां स्नान किया और खाया। यहासे चलकर शामको ४ बजे ९९ माईलपर सिरपुर

पहुंचे। यहींपर अपने हाथसे भोजन बनाया और रात्रिभर खूब सोये।

ता० २५-१०-३२ को सुबह हम दूध पीकर आगे बढ़ तो एक मजेदार घटना घटी। थोड़ी दूर जानेपर एक पोस्टमेन डाकका थैला लिये तर्राट जारहा था। धूपके कारण उसने छाता भी लगा रक्खा था। दूरसे हमें देखकर वहीं ठिठक गया। हमारे पास आनेपर एकदम उसने अपना थैला लकड़ी और छाता एकबाजू रख दिया और अटेंशन होकर सभीको सेल्यूट किया। मानों हम उसके आफिसर हों! इसी प्रकार हमें कई जगह समान मिले। सिरपुरके आगे खूब ऊंची नीची सड़क आती है। जिसपर सायकल चलानेमें बहुत कष्ट होता था। मेरा तो घुटना बड़े ही जोरोंसे दर्द होने लगा था। जैसेंतस उसे पारकर हम लोग चोपडा होते हुए तापती तक पहुचे जो ३६ माईल थी। १० बज चुके थे। यहा कुछ विश्राम लिया। यहां कुछ खाकर नावसे तापती पार कर ५॥ बजे शामको धरणगाव जो कि १८ माईल था पहुंच गये। यहाकी पुलिस हमारा पूरा पता नोट करके लेगई। धरणगावमें एक जैन मंदिरमे हम ठहरे। वहा रात बहुत गहरी नींदके साथ निकाली। मैंने तो पहली नींदमें ही दिन निकाल दिया। यहा मेरे भाईके मित्र मि० सी० के० मालते रहते हैं। उन्हें मालूम होनेपर वे हमें घर लिवा लेगए। और वहीं हमने भोजन भी किया।

मुझे तो खानदेशके लोगोंका अनुभव यह हुआ कि वे बड़े भोले मिलनसार अपनी आनशानको रखनेवाले हैं तथा अतिथि सत्कारमें भी अव्वल दरजेके हैं। एक स्थानपर एक किशानसे हमने मूगफली मोल ली। जब उसका मूल्य देने लगे तो उसने कहा कि आपको और चाहिये तो लो और खाओ, मगर मै आपसे पैसा नहीं लूंगा! हम जहां भी जाते वहीं हमें खाने, पीने, ओढ़ने, बिछौनेका पूरा प्रबंध मिल जाता था। जब हम किसीको उनकी मिहनतका पैसा देते तो वे हमें कहते कि क्या हम मगते हैं? हम आपसे क्या लें? बस, मुझे तो असली भारत यहीं नजर आया!

धरणगांवसे जलगांव २० माईल है। हम २६-१०-३२ को सुबह ८ बजे वहा पहुंच गए। जलगावमें फल आदि खानेके बाद अजटा शामको ५ बजे जो ३७ माईल था तय किया। अजंटाकी गुफा देखनेका समय सुबह ९ से शामके ४ तक का है। देरीसे पहुंचनेपर हमें खुदांपुर ठहरना पड़ा जो ५ माईल दूर था। क्योंकि अजटामें जंगली जानवरोंका भय अधिक रहता है।

ता. २७-१०-३२को हमने अजटाकी गुफाओंके दर्शन किये। यहाके प्राचीन चित्रोंको देखकर यही अन्दाज होता है कि जो चीज २२०० वर्ष बाद इतनी सुन्दर है तो उस समय उसमें कितनी सौंदर्यता और चित्ताकर्षण होगा, इसकी हम कल्पना ही नहीं कर सक्ते है। यदि वास्तविक चित्रकलाका दर्शन करना हो तो यह स्थानही भारत है। यहींसे विदेशियोंने कलाओंको अपनाकर अपना नाम ऊचा किया है। वहा सब दिवालोंपर बुद्धके जमानेके चित्र बने हुए है। इस पहाड़के पत्थरोंको कोर२कर ही मूर्तिया बनाई गई हैं। इस पहाड़में २४ बड़े२ हाल हैं। जिनमें एक२में २००, २०० आदमी तकके बैठनेकी जगह है। तथा एक२ हालमें एक२ बड़ी२ मूर्तियां महात्मा बुद्धकी हैं।

इनमें कुछ मुझे पद्मासन मूर्तियें जैनधर्माम्नायकी मालूम हुई। ये सब पद्मासनके साथ जैनधर्मानुसार हाथपर हाथ रखे हुए थीं। शेष सब बुद्धके समान थी। जो लोग जैन धर्मको बुद्ध धर्मका अनुयायी समझते हैं, उन्हें अजंटा जाकर देखना चाहिये।

तब उन्हें मालूम होगा कि जैन धर्म बुद्ध धर्मसे पुराना है। यदि पुराना नहीं होता तो वहां इन मूर्तियोंका होना संभव नहीं था। गुफायें और उनकी प्राचीन चित्रकलाको देखकर यह समझमें आगया कि चित्र कैसे बनाना।

पुराने आर्ट याने कलाको देखकर चित्त प्रफुल्लित हुआ और हमने अपने भाग्यको सराहा कि हमें प्राचीन कलाके दर्शन होगये। हमने अपनी लम्बी यात्राको सफल बनाया और अपने मनोरथको पूरा किया। इन गुफाओंमें ४ कमरे विशेष देखने योग्य हैं। इनमेंके चित्र कुछ२ दिखाई देते हैं और समझमें आता है कि विषय क्या है। चित्रोंके रंग भी सुना गया है कि उसी पहाड़के पत्थरोंसे बने हुए हैं। वह रंग आज भी ऐसा चमकदार दीखता है मानों चित्र आज ही बना हो। जैसे आगरेका ताजमहल भी ऐसा ही मालूम होता है मानों आज ही बनकर तैयार हुआ है।

यहांपर अंधेरा विशेष होनेसे सरकारने देखनेके लिये बिजलीका अच्छा प्रबन्ध कर दिया है। बिजलीसे देखनेका चार्ज सरकारने १॥ घंटेका ५ रु० रक्खा है। यह बहुत अधिक है, बड़ा अच्छा हो यदि फ्री कर दिया जाय।

गुफायें और उनमेंकी चित्रकला देखते२ हमें दुपहरका एक बज गया। जितना देखते उतनी ही देखनेकी अभिलाषा और बढ़ती जाती थी। परन्तु सुबहसे देख रहे थे तो अब पेटने तकाजा शुरू किया। भूख लगनेके कारण हमलोग वापिस लौट आये। स्थानपर आकर खाना बनानेका विचार किया, मगर जब सामान लेने गये तो कहीं भी नहीं मिला।

खुर्दापुरमें आकर हमें एक सज्जनने बड़े आदरभावसे सत्कार कर हमें जुवारीके भुट्टे आदि भूनके खिलाये। अब हम लोग यहांसे ४ बजे दोपहरको चलकर शामके ८ बजे शहर जलगांव पहुंचे। वहां भागीरथ मिलके आसिस्टेन्ट मैनेजर श्री बसंतीलालजी कासलीवालके घरपर ठहरे और वहीं भोजन करके ता० २८-१०-३२ के दोपहरके ४ बजे यहांसे हम चल दिये। हमने अब जिधरसे आये थे उधरसे न जाकर दूसरे रस्ते भुसावल, बरानपुर, खंडवा, आदि होते हुए घर लौटनेका विचार किया। और इसी अनुसार हम जलगांवसे भुसावल होते हुए शामके ७ बजे यावल पहुंचे।

रात्रि यहां काटनेके बाद ३०-१०-३२ के दिन रात्रिके ११ बजे खंडवा पहुंचे। बरानपुरसे खंडवा तक सड़क न होनेके कारण हमें इतनी दूरमें विशेष तकलीफ हुई। खंडवासे दूसरे दिन १२ बजे चलकर ४ बजे सनावद पहुंचे। यहां मेरा घर है।

रात्रि भर यहां विश्राम कर ता० ३१-१०-३२ के सुबह ७॥ बजे हम कुछ खा, पी कर यहांसे चले और रास्तेमें एक सिमरोलका बड़ा भारी घाटा पार करके ५०० मीलकी साइकिलसे यात्रा करके निर्विघ्न १२ बजे इन्दौर आगये।

ऋतुचर्या।

लेखक:—
वैद्यभूषण, वैद्यशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य,
पं० अभयचन्द्जी जैन काव्यतीर्थ–हरदा।

१–ऋतु क्या है ?

२–ऋतुएं कितनी हैं ?

३–ऋतुओंका शरीर आदिपर प्रभाव ?

विश्व परिवर्तनशील है इसमें कोई भी ऐसा सजीव अथवा निर्जीव पदार्थ नहीं है जिसमें प्रतिक्षण कुछ न कुछ परिवर्तन क्रिया न होती हो फिर चाहे वह क्रिया दृश्य हो या अदृश्य। यद्यपि यह परिवर्तन क्रिया प्रत्येक पदार्थमें स्वभावतः ही मौजूद रहती है फिर भी व्यावहारिक दृष्टिसे इसका कर्ता काल माना जाता है। जैसा कि श्रीमान् आचार्य उमास्वामीने कहा है–

वर्तना परिणामक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य।
तत्वार्थसूत्र अ० ५ सू० २२

वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व, अपरत्व, ये कालके उपकार हैं।

कालके दो भेद हैं–एक निश्चयकाल दूसरा व्यवहारकाल। निश्चयकाल अनादि और अनंत है, व्यवहारकाल सादि और सांत है।

व्यवहार कालके अनेक भेद हैं उनमेंसे कुछका दिग्दर्शन यहांपर कराया जाता है।

निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग आदि।

निमेष–जितना काल एक ह्रस्व अक्षरके उच्चारणमें लगता है उतने कालको १ निमेष कहते हैं।

काष्ठा–१५ निमेषकी १ काष्ठा होती है।

कला–३० काष्ठाकी १ कला होती है।

मुहूर्त–२० कला और ३ काष्ठाका १ मुहूर्त होता है।

दिनरात्रि–३० मुहूर्तकी १ दिनरात्रि होती है।

पक्ष–१५ दिन रातका १ पक्ष होता है।

मास–२ पक्षोंका १ मास होता है।

ऋतु—२ मासकी १ ऋतु होती है।

अयन–३ ऋतुओं अर्थात् ६ महिनोंका १ अयन होता है।

वर्ष—दक्षिणायन और उत्तरायण इन दो अयनोंका १ वर्ष होता है।

युग—५ वर्षका १ युग होता है।

---

(१)–सूर्य जिस समय दक्षिण दिशासे होकर गमन करते हैं उस समयको दक्षिणायन कहते हैं। इसमें श्रावण, भाद्रपद, अश्विन, कार्तिक, अगहन, पौष, ये ६ मास होते हैं। इसका दूसरा सार्थक नाम विसर्गकाल है। इसमें सूर्य ठंडे पड़ जाते हैं ग्रीष्म ऋतु सतप्त महीतल, जलसे भरे हुए बादलोंसे, आकाश मण्डलके छाजानेसे, वर्षासे और शीतल वायु (झंझावात) के बहनेसे क्रमशः अति शीतल होजाता है। पृथ्वी व प्राणियोंमें सौम्य गुणोंकी वृद्धि करके बल प्रदान करता है। (२) जिस समय सूर्य उत्तर दिशासे होकर गमन करते हैं उस समयको उत्तरायण कहते हैं। इसमें माघ आदि ६ महिना होते हैं इसका दूसरा सार्थक नाम आदानकाल है। इस कालमें सूर्य और पवन अत्यंत तीक्ष्ण, उष्ण और रूखे होते हैं। इसलिये पृथ्वीके मेद, शीतल और स्निग्ध आदि सौम्य गुण क्रमशः क्षीण होजाते हैं।



श्री० विदुषीरत्न पण्डिता चंदाबाईजी–आरा।

आप एक उत्तम लेखिका, कवि, पण्डिता और "जैन महिलादर्श" की सुयोग्य सम्पादिका तथा जैन बालाविश्राम आराकी संस्थापिका एवं संचालिका है।

आप [illegible] श्राविकाश्रम बम्बईकी संचालिका व मंत्रिणी है तथा "जैन महिलादर्श" की सम्पादिका है।



जैनमहिलारत्न श्री० ललिताबाईजी बम्बई।

कालके इन भेदोंमेंसे यहांपर सिर्फ ऋतुपर विचार किया जाता है।

ऋतुका अर्थ प्रकृति परिवर्तन कहा जाय तो अयुक्त नहीं होगा। मैं पहिले बता चुका हूं कि ऐसा कोई भी क्षण नहीं है जिसमें कि प्रत्येक पदार्थमें कुछ न कुछ परिवर्तन न हो परन्तु ऋतुरूप परिवर्तन स्थूल होता है, उसमें जो जो परिवर्तन होते हैं वे स्पष्टरूपसे दृष्टिगोचर होते हैं। इन ऋतुओंमें केवल बाह्य (जड़) जगतमें ही परिवर्तन नहीं होते हैं किंतु संसर्गसे अध्यात्म जगतमें भी महान परिवर्तन उपस्थित होते हैं। वसंत, ग्रीष्म, और वर्षाऋतुके अनंतर जब ग्रीष्म वर्षा और शरद ऋतुका आगमन होता है तब प्रकृति व प्राणियोंमें जो २ अपूर्व परिवर्तन होते है वे आबाल गोपाल प्रसिद्ध ही है। ये परिवर्तन प्रतिवर्ष होते हैं। इन परिवर्तनोंका कारण सूर्यकी गति विशेष आदि है जैसा आचार्य शार्ङ्गधरने लिखा है–

चयकोपशमाः यस्मिन् दोषाणां संभवन्ति हि।
ऋतुषट्कं तदाख्यातं रवेः राशिषु संक्रमात्॥

ज्योतिषशास्त्रप्रसिद्ध सूर्यके १२ मार्ग हैं जिनको राशियां कहते हैं। प्रत्येक राशिपर सूर्य १ मास गमन करता है जिससे महिनाकी निष्पत्ति होती है। इसी तरह दो राशियोंपर गमन करनेसे २ महीनों अर्थात् एक ऋतुकी निष्पत्ति होती है। इन ऋतुओंमें स्वभावतः ही दोषोंका संचय, प्रकोप, और शांति होती है। अर्थात् यह सर्वत्रका नियम होता है कि थोडासा अपराध मामूली दंड, शिक्षा देकर माफ कर दिया जाता है और यदि उग्र अपराध हो तो फिर तदनुसार उग्र ही दण्डकी योजना की जाती है। यही नियम प्रकृतिका है। प्रकृतिके अनुकूल चलनेवाले न अपराध करते हैं और न दण्डके भागी ही होते हैं, सदा स्वस्थ रहते हैं। जो ग्रीष्मऋतुमें कालके प्रभावको दमन करनेवाले आहार विहारका सेवन नहीं करते हैं उनका वात दोषसंचित होजाता है, वर्षामें प्रकुपित होता है और शरत्कालमें अपने आप शांत होजाता है। इसी तरहसे पित्त और कफ भी वर्षा और हेमन्त ऋतुमें संचित होते हैं। शरत्काल और वसंत ऋतुमें प्रफुल्लित होते हैं और वसंत और प्रावृट ऋतुमें अपने आप शान्त होजाते हैं।

१२ राशियोंके नाम–

१ मेष, २ वृष, ३ मिथुन, ४ कर्क, ५ सिंह, ६ कन्या, ७ तुला, ८ वृश्चिक, ९ धनु, १० मकर, ११ कुंभ, १२ मीन।

इन दो दो राशियोंपर सूर्यके गमन करनेसे क्रमशः ग्रीष्म, प्रावृट्, वर्षा, शरत्, हेमंत, वसंत, ये ६ ऋतुए होती हैं। इनमें नीचे लिखे क्रमशः दो दो महीनें होते हैं।

वैशाख, ज्येष्ठ, अषाढ, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, अगहन, पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र।

ऋतुओंमें मतभेद–

कोई२ आचार्य प्रावृट्ऋतु नहीं मान करके हेमंतसे आगे शिशिर ऋतु मानते हैं। इसका कारण यह है कि सूर्यकी दूरी सब जगहसे एकसी नहीं है अतः जहांपर जितनी दूरी है वहांपर उसीके अनुसार सूर्यकी मंद मध्य व तीक्ष्ण किरणे पडती हैं और इसीके अनुसार ऋतुओंमें भी भिन्नता है। इसके अतिरिक्त समुद्रकी सन्निकटता व दूरी बाहुल्य प्रदेशोंकी उच्चता व नीचता आदि बहुतसे कारण हैं। इन कारणोंसे जहांपर वर्षाका आधिक्य होता है वहांपर ४ मास वर्षा होती है। अतएव प्रावृट् और वर्षाऋतु होती है और जहांपर उपर्युक्त कारणोंसे शीत अधिक अर्थात् ४ महिने पडती है वहांपर प्रावृट् ऋतु न होकर शिशिर ऋतु अधिक होती है। इस विषयमें महर्षि काश्यपने भी प्रकाश डाला है–

[illegible] इस प्रकरणमें ऋतुओंपर विचार किया जाता है।

ऋतुका अर्थ प्रकृति परिवर्तन कहा जाय तो अनुचित नहीं होगा। मैं पहिले बता चुका हूं कि ऐसा कोई भी क्षण नहीं है जिसमें कि प्रत्येक पदार्थमें कुछ न कुछ परिवर्तन न हो परन्तु ऋतुरूप परिवर्तन स्थूल होता है, उसमें जो जो परिवर्तन होते हैं वे स्पष्टरूपसे दृष्टिगोचर होते हैं। इन ऋतुओंमें केवल बाह्य (जड) जगतमें ही परिवर्तन नहीं होते हैं किंतु उसमेंसे अध्यात्म जगतमें भी महान परिवर्तन उपस्थित होते हैं। वसंत, ग्रीष्म, और वर्षाऋतुके अनंतर जब ग्रीष्म वर्षा और शरत ऋतुका आगमन होता है तब प्रकृति व प्राणियोंमें जो २ अपूर्व परिवर्तन होते हैं वे आबाल गोपाल प्रसिद्ध ही हैं। ये परिवर्तन प्रतिवर्ष होते हैं। इन परिवर्तनोंका कारण सूर्यकी गति विशेष आदि है जैसा आचार्य शार्ङ्गधरने लिखा है–

चयकोपशमाः यस्मिन् दोषाणां संभवन्ति हि।
ऋतुषट्कं तदाख्यातं रवेः राशिषु संक्रमात्॥

ज्योतिषशास्त्रप्रसिद्ध सूर्यके १२ मार्ग हैं जिनको राशियां कहते हैं। प्रत्येक राशिपर सूर्य १ मास गमन करता है जिससे महिनाकी निष्पत्ति होती है। इसी तरह दो राशियोंपर गमन करनेसे २ महीनों अर्थात् एक ऋतुकी निष्पत्ति होती है। इन ऋतुओंमें स्वभावतः ही दोषोंका संचय, प्रकोप, और शांति होती है। अर्थात् यह सर्वत्रका नियम होता है कि थोडासा अपराध मामूली दंड, शिक्षा देकर माफ कर दिया जाता है और यदि उग्र अपराध हो तो फिर तदनुसार उग्र ही दण्डकी योजना की जाती है। यही नियम प्रकृतिका है। प्रकृतिके अनुकूल चलनेवाले न अपराध करते हैं और न दण्डके भागी ही होते हैं, सदा स्वस्थ रहते हैं। जो ग्रीष्मऋतुमें कालके प्रभावको दमन करनेवाले आहार विहारका सेवन नहीं करते हैं उनका वात दोषसंचित होजाता है, वर्षामें प्रकुपित होता है और शरत्कालमें अपने आप शांत होजाता है। इसी तरहसे पित्त और कफ भी वर्षा और हेमन्त ऋतुमें संचित होते हैं। शरत्काल और वसंत ऋतुमें प्रकुपित होते हैं और वसंत और प्रावृट ऋतुमें अपने आप शान्त होजाते हैं।

१२ राशियोंके नाम–

१ मेष, २ वृष, ३ मिथुन, ४ कर्क, ५ सिंह, ६ कन्या, ७ तुला, ८ वृश्चिक, ९ धनु, १० मकर, ११ कुंभ, १२ मीन।

इन दो दो राशियोंपर सूर्यके गमन करनेसे क्रमशः ग्रीष्म, प्रावृट्, वर्षा, शरत्, हेमंत, वसंत, ये ६ ऋतुएं होती हैं। इनमें नीचे लिखे क्रमशः दो दो महीनें होते हैं।

वैशाख, ज्येष्ठ, अषाढ, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, अगहन, पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र।

ऋतुओंमें मतभेद–

कोई२ आचार्य प्रावृट्ऋतु नहीं मान करके हेमंतके आगे शिशिर ऋतु मानते हैं। इसका कारण यह है कि सूर्यकी दूरी सब जगहसे एकसी नहीं है अतः जहांपर जितनी दूरी है वहांपर उसीके अनुसार सूर्यकी मंद मध्य व तीक्ष्ण किरणें पडती हैं और इसीके अनुसार ऋतुओंमें भी भिन्नता है। इसके अतिरिक्त समुद्रकी सन्निकटता व दूरी भाडुवप्य प्रदेशोंकी उच्चता व नीचता आदि बहुतसे कारण हैं। इन कारणोंसे जहांपर वर्षाका आधिक्य होता है वहांपर ४ मास वर्षा होती है। अतएव प्रावृट् और वर्षाऋतु होती है और जहांपर उपर्युक्त कारणोंसे शीत अधिक अर्थात् ४ महिने पडती है वहां पर प्रावृट् ऋतु न होकर शिशिर ऋतु अधिक होती है। इस विषयमें महर्षि काश्यपने भी प्रकाश डाला है–

फायदा न करके उलटा नुकसान पहुँचाता है। इससे यह सिद्धान्त स्थिर होता है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और अवस्था आदिके अनुकूल होनेपर विष भी क्यों न हो, हितकर होसक्ता है और प्रतिकूल होनेपर अमृत भी विषरूप परिणत होजाता है। ऋतुचर्या भी यही बात सिखलाती है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और अवस्थाके अनुकूल प्रवृत्ति करो। यदि इनके अनुकूल प्रवृत्ति न करोगे तो जो व्यवस्थायें तुम्हे किसी समय सुखकर, बलवर्द्धक और उत्साहजनक थीं वही दुःखकर, बलको नाश करनेवाली और उत्साहको घटानेवाली होगी। जो करेला शीतल, हल्का और तिक्त होनेकी वजहसे ज्वर, पित्तविकार, कफविकार, रक्तविकार, पाण्डुरोग, प्रमेह और कृमिको नाश करता था वही द्रव्यादिके अनुकूल न होनेसे कुवार मासमें ज्वर, पित्तविकार आदि रोगोंको उत्पन्न करके प्राणघातक होजाता है। ऐसी प्रसिद्धि भी है कि-

"कुंआर करेला कातिक दहा, मरो नहि तो परो सही"। आयुर्वेद शास्त्रके दो प्रधान उद्देश्य-लक्ष्य हैं। स्वस्थोंके स्वास्थ्यकी पूर्ण रक्षा और रोगोंके जालमे फंसे हुए प्राणियोंका परित्राण।

स्वास्थ्यकी पूर्ण रक्षा करनेके लिए आचार्योंने पद२ पर गम्भीर विवेचन किया है। आचार्य भावमिश्रजी लिखते हैं:—

दिनचर्यां निशाचर्यामृतुचर्यां यथोदिताम्।
आचरन् पुरुषः स्वस्थः सदा तिष्ठति नान्यथा॥

—भावप्रकाश चतुर्थप्रकरण श्लोक सं० १३।

जो मनुष्य आयुर्वेदीय शास्त्रोंमे कही गई दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्याको भलीभांति पालन करते हैं, वे हमेशा तन्दुरुस्त रहते है और जो नहीं पालन करते हैं वे हमेशा रोगोंके जालमे फँसकर अकालमें ही काल कवलित होजाते है।

ऋतुओंका परिज्ञान।

ऋतुचर्याका भलीभांति पालन करनेके लिये पहिले ऋतुओंके स्वरूपका परिज्ञान कर लेना अत्यावश्यक है। ऋतुओंका स्वरूप समझे विना यह ज्ञान नहीं होसक्ता कि इस समय कौनसी ऋतु चल रही है और वह पूर्णरूपसे (सम्यग्योगयुक्त) है या हीनरूपसे। जब ऋतुओंके स्वरूपका बोध ही नहीं हुआ तब उनकी चर्याका पालन करना सर्वथा असंभव है। इसीलिये आयुर्वेदज्ञ महर्षियोंने ऋतुओंका स्वरूप जाननेके लिये लक्षणोंका पूर्णरूपसे वर्णन किया है। आचार्य सुश्रुत कहते है—

स्वगुणैरतियुक्तेषु विपरीतेषु वा पुनः।
विषमेष्वपि वा दोषाः कुप्यन्त्यृतुषु देहिनाम्॥

अतियोग—प्रत्येक ऋतुके जो जो विशेष गुण शीत, उष्ण, वर्षा आदि है, ये गुण जिस ऋतुमें अधिक होते हो उसको अतियोग कहते है।

विपरीत योग—जिस ऋतुमें जो विशेष धर्म हैं उनकी विपरीतता होना। जैसे हेमन्त ऋतुमें ठंड न होकर गर्मी पड़ना, गर्मीमें ठंड पड़ना, वरसातमें पानी नही वरसना आदि।

विषम योग—जिस ऋतुमें जो२ खास गुण है उनकी विषमता (अनियमितता) होना। जैसे कभी शरदऋतुमे वर्षाऋतुके चिह्न, कभी ग्रीष्मऋतुके चिह्न और शरदऋतुके चिह्नोंका भी होना।

दोषोंका स्वाभाविक प्रकोप नियमित ऋतुओंमें ही होता है, परन्तु जब ऋतुए अतियोग, विपरीतयोग, और विषमयोगसे विकृत होजाती हैं तो ये दोष नियमित ऋतुओंको छोडकर अन्य ऋतुओंमें भी प्रकुपित होजाते हैं और अनेक रोग पैदा करते हैं, इसलिये इन ऋतुओंके अतियोग, विपरीतयोग, और विषमयोगसे पैदा होनेवाले रोगोंसे बचनेके लिये ऋतुओंका स्वरूप समझलेना बहुत ही आवश्यक है।

भूये वर्षति पर्जन्यो गंगायाः दक्षिणे जलम् ।
तेन प्रावृड् वर्षाख्यौ ऋतू तेषां प्रकल्पितौ ॥
गंगाया उत्तरे कूले हिमवदंबुसंगमे ।
भूयः शीतमतस्तेषां हेमन्तशिशिरावृतौ ॥

गंगाके दक्षिणी तटपर वर्षा बहुत, अधिक समय तक होती है इसलिये इन प्रदेशोंमें प्रावृट और वर्षा ये दो ऋतु होती हैं। वर्षाऋतुसे पहिले कालको प्रावृट् (प्रथम. प्रवृष्टः कालः,) (जिसमें पहिले जल बरसा हो) कहते है और उसका आधिक्य जिसमें हो उसे वर्षाऋतु कहते है।

गंगाजीके उत्तरीय तटपर जहापर हिमालय पर्वतके ऊपरका बर्फका जल पिघलकर वह आता है और इकट्ठा होता है वहापर शीतल जलकणोंसे भरी हुई वायुका प्रचार होनेसे शीत अधिक पडती है। इसलिये इन प्रदेशोंमे हेमन्त और शिशरऋतु मानी जाती हैं।

एकवर्षकी तरह एक दिन रातमें भी ६ छहों ऋतुओंके चिह्न पाये जाते है। जैसे समरात्रि दिवकाल (जिसमें दिन और रात्रि १२-१२ घंटेकी होती है) में प्रातःकाल ६ बजेसे १० बजेतक वसंतऋतुके चिह्न, १० बजे से २ बजेतक ग्रीष्मऋतुके चिह्न, २ बजेसे ६ बजेतक प्रावृट ऋतुके चिह्न, रात्रिके ६ बजेसे १० बजे तक वर्षाऋतुके चिह्न, १० बजेसे २ बजेतक शरद ऋतुके चिह्न और २ बजेसे ६ बजे तक हेमन्तऋतुके चिह्न मालूम पड़ते हैं। यद्यपि प्रसिद्ध ऋतुएं तो वर्षा आदि ही हैं परन्तु उनका स्वरूप दिन रात्रिके इन भागोंमें भी पाये जानेसे ऋतुओंकी कल्पना करना असंगत नहीं है।

कोई भी कार्य विना पूर्ण सामग्रीके निष्पन्न नहीं होता, यही नियम ऋतुओंके ऊपर भी लागू है। ऋतुओंकी उत्पत्ति भी जबतक सूर्यकी गति विशेषसे तीक्ष्ण, मन्द, मध्य किरणोंका पड़ना व वायुकी तीक्ष्ण, मध्य, मन्दता आदि यथायोग्य सामग्रीका लाभ नहीं होता तबतक नहीं होसकती। बल्कि ऋतु बदल जानेपर भी नवागत ऋतुकी पूर्ण सत्ता १ सप्ताहके अनंतर होती है और जोर भी १ सप्ताहसे पहिलेसे ही घट जाता है। आचार्योंने इस कालका नाम ऋतुसंधि रक्खा है। आचार्य वाग्भट्टने लिखा है—

ऋत्वोरन्त्यादिसप्ताहावृतुसंधिरिति स्मृतः।
तत्र पूर्वो विधिस्त्याज्यः सेवनीयोऽपरः क्रमात्॥

पूर्वोक्त दो दो ऋतुओंके अंतिम और प्रथम सप्ताहको ऋतुसंधि[1] कहते है, इस ऋतुसंधिमें पूर्वऋतुकी चर्याका शनैः २ त्याग और आगामी ऋतुकी चर्याका शनैः २ सेवन करना चाहिये। ऐसा नहीं करनेसे अनेक असात्म्यज व्याधियां पैदा होती हैं।

ऋतुचर्या—

पूर्वोक्त ६ ऋतुओंमें जिन २ आहार विहारोंके आचरणसे स्वास्थ्यकी पूर्ण रक्षा हमेशा होती है उन्हीं आचरणोंको ऋतुचर्या कहते हैं। ऋतुचर्याका परिपालन करना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है। अहितकर वस्तु भी जो नित्य सेवन करनेसे हमारे शरीरमें सात्म्य (रुचि प्रद) होजाती है वह विशेष बाधक नहीं होती। फिर हितकर समयानुकूल वस्तुका क्या कहना? वह तो बहुत जल्दी सात्म्य होकर हमारे शरीरमें बल व कान्तिकी वृद्धि करती है। परन्तु विश्वमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो सबको सब कालोंमें फायदा ही करे। यद्यपि दुग्धके समान हितकर दूसरा पदार्थ नहीं है परन्तु वह भी किसी २ को

१-दो ऋतुओंका मेल अर्थात् जिसमें कुछ २ चिह्न दोनों ऋतुओंके पाए जाते जैसे जब शिशिरऋतु समाप्त होने लगती है और वसन्तका प्रारम्भ होता है तब दोनों ऋतुओंके मेलसे सूर्यका ताप दिन २ करके बढ़ने लगता है तथा उतनी अधिक शीत या रूक्षता नहीं रहती है।

ऋतुओंकी विकृतिका प्रधान कारण पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, इन पांच महाभूतोंका विकृत दोषयुक्त होना ही है, और इनके भी विकृत होनेका कारण प्रत्येक प्राणीका पापकर्म हिंसा आदि अधर्म ही है।

जैसा महर्षि चरकने जनपदोध्वंसनीय अध्यायमें कहा है-"सर्वेषामप्यग्निवेश ! वाय्वादीना यद्वैगुण्य-मुत्पद्यते तस्य मूलमधर्मः, तन्मूलंवाऽसत्कर्म पूर्व-कृतम्। महर्षि आत्रेय कहते हैं कि हे अग्निवेश ! जो पांच महाभूतोंमें, सूर्यमें, ऋतुओंमें विकृति पैदा होती है उसका मूल कारण अधर्म है अथवा प्राणियोंके पूर्वकृत असत् पापाचरण हैं।

सम्यग् योगयुक्त-

अच्छी ऋतुओंकी पहिचान।

आयुर्वेदाचार्योंने प्रत्येक ऋतुकी पहिचानके लिये जो लक्षण लिखे हैं उनका यहापर दिग्दर्शन कराया जाता है।

प्रावृट् ऋतुकी पहिचान।

प्रावृट् ऋतुमें आकाशमें मेघ छाजाते है। बादलोंमें बिजली चमकती है और बहुत जोरोंसे गड़गड़ाहट होती है। पश्चिमी हवा बहने लगती है। पृथ्वी कोमल और हरे२ घाससे रंगीन चादर ओढ़ लेती हैं, छोटे२ वीर बहूटी नामके मखमली रंगके कीड़े स्थान स्थानपर नजर आते हैं। कदंब, दुपहरिया, कुटज, राल, केवड़ा आदि वृक्ष पुष्पित होजाते हैं।

वर्षाऋतु।

इस ऋतुमें वर्षा बड़े जोरोसे होती है, नदिया जलसे लबालब भर जाती हैं। इनका प्रखर प्रवाह कहीं२ पर तटस्थ वृक्षोंको उखाड़कर बहा लेजाता है। जलकी अधिकतासे जमीनके ऊँचे नीचे प्रदेश एकसे जलमय होजाते हैं। अर्थात् सर्वत्र जल ही जल दृष्टिगोचर होता है। बादल गर्जते तो बहुत कम हैं परन्तु वर्षते ज्यादा है। सूर्य-चन्द्रमा, तारागणोंका आकाशमें कहीं पता भी नहीं चलता है। तालाव, पुष्करिणी, (छोटी छोटी तलइया) डबरा, पर्वत, नाले, आदि सब छोटे मोटे जलाशय, वर्षाती मेंडकोंके शब्दोंसे गूँज उठते हैं। चारों तरफ अनेक तरहके हरे भरे धान्य दर्शकोंके नेत्रोंको बरबस अपनी ओर खींच लेते हैं। यह ऋतु ठंडी होती है, किसी पूर्व ग्रीष्मऋतुकी व्यापक गर्मीका कुछ२ असर रहनेसे संपूर्ण पदार्थोंका परि-पाक अम्ल होता है और जलन पैदा करता है जिससे इस ऋतुमें अग्निमांद्य, अतिसार, ज्वर आदि अनेक बीमारिया पैदा होती है।

शरदऋतु।

इस ऋतुमें आकाश अत्यत निर्मल होजाता है। कहीं २ पर सफेद परन्तु जल रहित बादलोंके टुकड़े दृष्टिगोचर होते हैं। सूर्यका ताप अत्यन्त प्रखर होजाता है। सरोवर, नदियों आदि समस्त जलाशयोंका जल अत्यन्त निर्मल होजाता है। जला-शयोंमें सर्वत्र कमल खिल जाते हैं और हंस सारस आदि पक्षी किलोलें करते हैं। जगह२ का कीचड़ सूख जाता है। खेतोंमें कास अत्यन्त फूला हुआ दिखाई पड़ने लगता है। कटसरैया, सतौनी, विजै-सार आदि वृक्ष फूल जाते हैं।

हेमन्तऋतु।

इस ऋतुमें वायु क्रमशः अत्यन्त शीत होकर उत्तरकी ओर बहती है। दिशायें और सूर्य कुहरेसे ढके रहते हैं। जलाशयोंमें बर्फ जम जाता है। लोध, फूल प्रियंगु, पुन्नाग आदि वृक्ष फूल उठते हैं। कौआ, गेंडा, हाथी, भैंस और भेड़ आदि प्राणी मस्त होजाते हैं।

शिशिरऋतु।

इस ऋतुमें शीत अत्यन्त पड़ने लगती है, चारों दिशाओंमें झंझावात (जलकणोंसे भरी हुई

हवा) बहती है, चारोंतरफ कुहरा बरसती है, वायु शीतल होनेपर भी रूक्ष बहती है, इससे मनुष्योंके कोमल अंगों (गला, कपोल, हाथों) आदिका चमड़ा फटने लगता है। इस ऋतुमें हेमन्तऋतुके भी संपूर्ण चिह्न पाए जाते हैं।

वसन्तऋतु।

इस ऋतुमें सूर्यका ताप क्रमशः बढ़ने लगता है। शीतल, मंद, सुगंध, मलयानिल बहने लगती है, यह वायु अत्यन्त वृष्य होती है, दिशाए निर्मल होजाती हैं, कानन हरेभरे मनोरम होजाते हैं, जहां देखो वहा ही टेसू, कमल, मौलसिरी, आम्र, अशोक आदि वृक्ष फूलोंसे लदबद होकर पुष्पित होजाते हैं। इनकी माधुरी वा सुगंधि क्या मनुष्य, क्या पक्षी सभीको उन्मत्त कर देती है। विद्वानोंका तो यहातक कहना है " यत्को किलः किलमधौ मधुरं विरौति, ताच्चाम्रचारु कलिकानि ककिहेतुः " वसतमें जो कोकिलाएं मधुर, और चित्तमें उत्कठा पैदा करनेवाले पंचमस्वरसे कूकती हैं उसका एक कारण आमोंके मौरोंका भक्षण ही है। वृक्षोंपर भ्रमरोंकी मधुर झंकार गूजती रहती है। अनेक वृक्षोंमें नवीन लाल२ पल्लवोंका उद्गम होता है।

ग्रीष्मऋतु।

इस ऋतुमें सूर्य अयत्न्त प्रचंड होजाता है। वायु रूक्ष, उष्ण, और नैऋत्य दिशासे ईशानकी तरफ बहने लगती है, और शरीरमें लगनेपर सताप देती है। पृथ्वी अत्यन्त तप्त होजाती है, नदियोंका जल सूख जाता है, दिशाएं प्रज्वलित सी मालूम पड़ती है। चकई चकवेके जोड़े जलाशयकी खोजमें यहा तहां घूमते फिरते हैं, हरिण चारोंतरफ पानीकी टोहमें भटकते फिरते हैं, पौधे, घास, बेलें सूख करके नष्ट भ्रष्ट होजाती हैं, पेड़ पत्तझड़ होनेसे ठूंठ होजाते हैं। इत्यादि लक्षण ग्रीष्मऋतुमें प्रकट होते हैं। (शेष फिर)

हमारा होगा कब उत्थान ?

विश्व चढ़ रहा अमित प्रगतिसे, उन्नतिके सोपान ॥ टे०॥
कहनेमें लज्जा आती है, हमें वीर संतान।
कहां वीर प्रभु कहा पतित हम, कायर कुटिल महान ॥
प्रबल क्रांतिकर किया विश्वका, प्रभुने अभ्युत्थान।
और कहां हम वञ्चक बनते, बगुले हंस समान ॥
आज विश्व कर रहा तत्वकी, पक्ष रहित पहिचान।
हम तत्वोंको किये जारहे, देखा ? अन्तर्द्धान ॥
तिसपर भी क्या दिखा रहे हैं, झूंठी सूखी शान।
मदमें चूर मूर्खता वश, कर रहे गरलका पान ॥
जड़ता तजकर तत्व प्रकाशक बन अकलंक समान।
युवक नवस्फूर्ति साहससे सहकर कष्ट महान ॥
हंसते २ करें धर्म हित प्राणोंका बलिदान।
तब इस जटिल प्रश्नका होगा, सत्वर ही अवसान ॥

नाथूराम डोंगरीय जैन–मुंगावली।

श्रद्धाञ्जलि।

पूजाके हित तव चरणोंमें
आनेका जब किया विचार।
सहसा उथलित हुआ हृदयमें,
झंझावात अनेक प्रकार ॥

पहिन चीथड़े फटे पुराने,
क्या आऊंगा तेरे द्वार।
कैसे तू प्रसन्न होगा,
कैसे होगी पूजा स्वीकार ॥

उत्तर मिला तभी अन्तरसे,
इस प्रकार मुझको भगवान।
मैं उसपर ही मोहित हूं,
जो मैंने तुझे किया है दान !

दूर होगया भारी भ्रम वह,
नाथ क्षमा करदो इस बार।
अब इस पद सेवककी केवल,
श्रद्धाञ्जलि कीजे स्वीकार !

कल्याणकुमार जैन शशि–रामपुर।

कवि चक्रवर्त्ती हस्तिमल्ल।

(ले०-पं० के० भुजबली शास्त्री, श्री जैन सिद्धान्त भवन-आरा।)

इस कविका कुछ विशेष परिचय माणिकचन्द्र ग्रन्थमालामें प्रकाशित विक्रान्तकौरव तथा मैथिली-कल्याण नाटककी भूमिकामें मिलता है। इस भूमिकाके मूल लेखक पं० नाथूरामजी प्रेमी हैं। परन्तु इस भूमिकामें प्रतिपादित एक दो बातोंपर मेरा मतभेद है।

१-प्रेमीजीने लिखा है कि कविने अपने पूज्य पिताके नामके साथ स्वामी तथा भट्टार शब्दको जोड़ा है। इससे ज्ञात होता है कि इनके पिता साधु अथवा भट्टारक रहे होंगे। पर मुझे यह बात खटकती है। क्योंकि अगर इनके पिता गोविन्दभट्ट साधु या भट्टारक होते तो उनके दीक्षा नामका उल्लेख आवश्यक था। बल्कि कवि उस दीक्षा नामको गर्वके साथ उल्लेख कर सकते थे, परन्तु कवि अपनी कृतियोंमें 'भट्टारगोविन्दस्वामिसूनुना' केवल यही उल्लेख करते हैं। गोविन्द स्वामी या गोविन्दभट्ट यह नाम बहुधा दक्षिणके जैनेतर ब्राह्मणोंमें प्रचलित है।

इस बातको तो प्रेमीजी भी मानते हैं कि गोविन्दभट्ट पहले वत्सगोत्रीय हिन्दू ब्राह्मण थे। अब रहा भट्टार शब्द। भट्टार शब्द पूज्य अर्थमें प्रचलित है। जिन्हें सन्देह हो वे शब्दस्तोम महानिधि आदि कोष ग्रन्थोंमें देख सकते हैं। कविके लिये अपने पूज्य पिताके नामके पहले ऐसे प्रशंसा परक शब्दोंका प्रयोग करना सर्वथा स्वाभाविक है।

प्रेमीजीने अपने पक्षको पुष्ट करनेके लिये एक और प्रमाण उपस्थित किया है। वे लिखते हैं कि विक्रान्त कौरवीय प्रशस्तिमें वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्रादि आचार्य-परम्परामें गोविन्दभट्टका उल्लेख मिलता है। मगर प्रेमीजीके इस प्रमाणके उत्तरमें भी मेरी पूर्वोक्त दलील ही काफी मालूम पड़ती है। क्योंकि यहां भी इनका पूर्व नाम अर्थात् जैन होनेके पहलेका नाम गोविन्दभट्ट ही दिया गया है, न कि जैन आगमानुसार परिवर्तित दीक्षानाम। किन्तु यह प्रश्न उठ सकता है कि जिनसेनादि गुरुपरम्परामें इनका उल्लेख गोविन्दभट्ट कहकर कैसे हुआ।

मेरी समझमें तो यही बात आती है कि उन दिनों दक्षिणप्रांतमें जिनसेनादि गुरुपरम्पराकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। अत: गृहस्थ गोविन्दभट्टने भी इस आदर्शभूत गुरुपरम्पराको ही अपनी गुरुपरम्परा मान ली। इसके अतिरिक्त 'तच्छिष्यानुक्रमे या तेऽसंख्येये विश्रुतो भुवि। गोविन्दभट्ट इत्यासीत् विद्वान् मिथ्यात्ववर्जित: ॥' प्रेमीजीके जिनसेन गुरु-परम्पराको प्रमाणित करनेवाले इस श्लोकमें उनको (गोविन्दभट्टको) साधु या भट्टारक सिद्ध करनेवाला कोई पद कमसे कम मेरी स्थूल दृष्टिमें तो नहीं आता।

२-प्रेमीजीने विक्रांत कौरवीय नाटकके प्रथमांकके अन्तमें प्रतिपादित "श्रीवत्सगोत्रजनभूषणगोपभट्ट प्रेमैकधामतनुजो भुवि हस्तियुद्धात्। नानाकलाम्बुनिधिपाड्यमहेश्वरेण। श्लोकै: शतैस्सदसि सत्कृतवान् बभूव ॥ और अञ्जनापवनंजय नाटकमें अंकित श्रीमत्पाड्यमहीश्वरे निजभुजादण्डावलंबीकृते। कर्णाटावनिमंडलं पदनतानेकोऽतिनीकोद्भवती ॥ तत्प्रीत्या-

नुसरन्त्सकंभुविवहेविद्वद्गिरातैस्समं। जैनागारसमेत-संतरनमे (?) श्रीहस्तिमल्लोऽवसत् ॥

इन श्लोकोंमें उद्धृत पाड्यनरेशको मथुराके निकटस्थ पाड्यदेशका शासक बतलाकर उल्लिखित हस्तिमल्ल कविको इसी पाड्य नरेशसे सम्मानित बतलाया है। किंतु राजावलि कथेमें देवचन्द्रने लिखा है कि यह कवि हस्तिमल्ल उभयभाषा कवि चक्रवर्ती थे। उसीके आधारपर प्रेमीजी भी लिखते हैं कि यह कवि हस्तिमल्ल कन्नडके भी कवि प्रतीत होते हैं तथा इस भाषामें भी इनकी कोई रचना होगी। पर यह तो सर्वविदित है कि मदुराकी प्रातीय भाषा सदासे ही द्राविड (तामिल) चली आती है। इससे मैं अनुमान करता हूं कि यह पाण्ड्य नरेश पाड्यदेशके न होकर कारकल (दक्षिण कन्नड) के होंगे जोकि इनका वश भैरव पाड्यके नामसे विख्यात था। (देखो खण्डेलवाल हितेच्छुके वीर निर्वाण सम्वत् २४५७ का विशेषाक) सभव है कि भव्यानन्द शास्त्रके रचयिता विद्वान कवि कारकलके पाड्यक्ष्मापति ही इनके सम्मानक होंगे।

'श्लोकैः शतैः सदसि सत्कृतवान् बभूव' तथा "नानाकलम्बुनिधिपाड्यमहीश्वरेण" इन दो श्लोक चरणोंसे भी मेरा उपर्युक्त अनुमान पुष्ट पड़जाता है।

दूसरी बात यह है कि प्रेमीजी जिस पाड्यनरेशको हस्तिमल्ल कविके सम्मानयिता बतला रहे हैं वह सुन्दापाड्य प्रथमके उत्तराधिकारी हैं। किन्तु मुझे जहातक ज्ञात है कि यह सुन्दरपाड्य जैनधर्मके एकान्त शत्रु थे। ऐसी अवस्थामें उनके उत्तराधिकारी एक जैन विद्वान् कविको आश्रय दे यह बात मुझे बहुत ही खटकती है। कन्नड कवि चरित्रके मान्य लेखक श्रीमान् नरसिंहाचार्यने भी हस्तिमल्ल कविको कन्नड कवि लिखा है। बल्कि इन्होंने इस कविके रचित आदिपुराण नामक एक कन्नडग्रंथका उल्लेख भी दिया है। अतः इस कविको कारकलके पांड्य नरेशका आश्रित मानना अधिक समुचित ज्ञात होता है। इसके अतिरिक्त ऊपर उद्धृत 'श्रीमत्पाड्यमहीश्वरे' इस श्लोकके द्वितीय चरण 'कर्नाटावनिमंडलं पदनतानेकावनीशेऽवति' से भी मेरा कथन सर्वतोभावसे पुष्ट होता है कि यह पाड्यनरेश कर्नाटक देशके ही शासक थे और यह बात सर्वविदित है कि कारकल कर्नाटक प्रातके अंतर्गत है।

प्रेमीजी उक्त नाटकोंकी भूमिकाओंमें हस्तिमल्ल कविके परिचयोंमें "सम्यक्त्वम् सुपरीक्षितु मदगजे मुक्ते सरण्यापुरे। चास्मिन् पाड्यमहीश्वरेण कपटाद्धंतुं स्वमभ्यागते ॥ शैलूषं जिनमुद्रधारिणमपास्यासौ मदध्वंसिना। श्लोकेनापि मदेभमल्ल इति यः प्रख्यातवान् सूरिभिः ॥"

अय्यपार्यकृत जिनेन्द्र कल्याणाभ्युदयका जो कह रहे हैं यह श्लोक मुझे भवनकी प्रतिमें नहीं मिलकर बल्कि इसी कविके द्वारा रचित अमुद्रित नाटिका तथा इन्हींके वंशज ब्रह्मसूरी कृत प्रतिष्ठापाठमें मिलरहा है। ब्रह्मसूरीके प्रतिष्ठापाठमें हस्तिमल्लके परिचयमें उद्धृत और भी कुछ श्लोक मिलते हैं।

गाढ़ा गाढ़ काटैगो।

नैनू, कामदानी, नैनसुखपै न फोर नैन,
कहँलौं बिलानी बन एनी ठाठ ठाटैंगो।
जोड़ा जो सुपेत बेल सब्ज सुनहरी रंग,
ऐसी क्यों खरीदत जो दूब लगे फाटैंगो॥
आंख खोल निरख नरेशों के दिवाला भये,
सहत कसाला हैं दुशाला कौन बाटैगो।
जर औ जमीन शेखी शानमें बिकानी सब,
आजके समैयामें गाढ़ा गाढ़ काटैगो॥

"निर्बल"

कविता-कुंज।

[रचयिता:—पं० गुणभद्रजी जैन–अगास]

हे नाथ !

होती न दृगोंसे दूर तेरी कमनीय छवि,
अन्तरमें बसी मानों टाकीसे उकेरी है।
तेरी सद्भक्तिने हमारी मंत्रके समान,
चित्तकी समस्त वृत्ति एकसाथ फेरी है॥
भक्तिकेसिवाय मन जाता नहीं अन्य ठौर,
रटन लगी है दिनरात एक तेरी है।
अब तो दयालु आप हूजिये कृपा निधान,
पागलके तुल्य दशा तेरेलिये मेरी है॥

अपूर्व श्रद्धा।

जबतक रविमें तेज चंद्रमें शीतलता है,
अग्नीमें उष्णत्व तूलमें कोमलता है।
बहती है निर्बाध भूमिपर गंगा धारा,
तबतक प्रभु निर्विघ्न रहेगा ध्यान तुमारा॥
जबतक तनमें नाम मात्र भी श्वास रहेगा,
तबतक निस्संदेह हृदयमें वास रहेगा।
करता मुझको दुखित तीव्र स्मरण तुम्हारा,
तुमबिन मुझको नहीं यहांपर कोई सहारा॥
जब वह सुन्दर मूर्ति सामने आजाती है।
मनही मन उससमय शांति अद्भुत आती है॥
गिर पड़ती साश्चर्य हर्षकी दृगसे धारा।
त्रिभुवनमें हे नाथ तुही सर्वस्व हमारा॥
क्षणभर भी तेरा वियोग है दुस्सह मुझको।
रो उठता है हृदय देखता जब नहिं तुझको॥
कैसे करूं व्यतीत आज जीवन तेरे बिन।
भागै हा! हो रहा आयुका मेरा क्षण क्षण॥

संसारकी अनित्यता।

इन चक्षुओंके सामने जो वस्तुयें दिखला रहीं।
वे तो निरंतर काल सन्मुख शीघ्र गतिसे जा रहीं॥
जो आज है वह कल नहीं आश्चर्य यह कितना बड़ा।
बोलो जगतमें जन्म लेकर कौन इस यमसे लड़ा॥
जिसके कुशल वृत्तांतको हा आज ही हमने सुना।
कुछ देरमें सुनकर मरण बस शोकसे मस्तक धुना॥
प्रतिदिन बदलती हैं दशाएं चक्षुओंसे देखते।
फिर भी भयंकर खेद है मनमें न हम कुछ सोचते॥
क्या लाए थे परलोकसे क्या साथमें लेजायगे।
सब ही यहां रहजायगा करको पसारे जायेंगे॥
हा! हा! कफनका वस्त्र भी आता नहीं है साथमें।
जाने न फिर किसके लिये यह जीव पड़ता पापमें॥
देके सतत मिष्टान्न सुंदर देहका पालन किया।
साबुन लगा करके जिसे बहु बार प्रक्षालन किया॥
वह देह भी तो अन्तमें सम्बन्ध तज देता अहो।
सर्वस्व ही नश्वर यहां अपना भला किसको कहो॥
सर्वस्व देकर भी अहो मृत्यू न हमको छोड़ती।
थलमें गगनमें और जलमें नेह हमसे जोड़ती॥
उत्पन्न जो होता यहां वह नाश भी होता यही।
पर्यंकपर सोता कभी सोता चितापर भी वही॥

श्री गिरनार।

आते जो यहां हैं अवलोक तेरी सौम्य छटा।
पल भर वे ही अपनेको भूल जाते हैं॥
जिस ओर देखते दिखाते उस ओर दृश्य।

जो कि एक साथ चल चित्तको चुराते हैं ॥
देखो नेमिनाथका पवित्र मोक्ष धाम यही।
आ-आ-जहा भव्यगण दिव्य गान गाते हैं ॥
गाते हैं बजाते हैं निज भक्ति प्रगटाते नित्य।
हर्षके अपार अश्रु आप गिर जाते हैं।

गुरुराज ।

जिनकी सुयशध्वजा फैल रही लोक बीच।
काच और कंचनमें सम भाव वाले हैं ॥
जप, तप, सयममें निराबाध सौख्य जिन्हें।
हृदयसे वासनाके भाव भी निकाले हैं ॥
सिंहके समान करते विहार देशों देश।
कुंजर पिपीलिकाके भी तो रखवाले हैं ॥
उनके पदारविन्दमें सदैव ध्यान रहे।
जो कि गुरुराज इस जगसे निराले हैं ॥

तेरा वियोग।

माता घर द्वार नहीं और परिवार सब,
सुन्दर बगीचोंमें भी राग नहीं पाता हूं।
रुचता न भोजन मधुर स्वादवाला अब,
छोडदिया काम सब कहीं भी न जाता हूं ॥
कोमल पलगपै भी नींद नहीं आती मुझे,
और मृदु कठसे न गीत अब गाता हूं।
पाता नहीं सान्त्वना तुमारे बिन एकपल,
तेरे ही विरहमें दु ख पाता अकुलाता हू ॥
होकर सुमनके समान मृदु आप चित्त,
कौन दिन शात निज मुख दिखलाओगे ?
कौन दिन आप ही हरोगे ये हृदयकी पीर ?
कौन दिन आप दुखियाको अपनाओगे ?
कौन दिन आप निजवाणीका कराके पान,
मनमें हमारे पूर्ण मोद प्रगटाओगे ?
कौन दिन देकरके हाथका सहारा हमें,
अपने समान कब हमको बनाओगे ? ॥

पार्श्वनाथस्तोत्रम्।

[सम्पादक—पं० वीरेन्द्रकुमार शास्त्री, केकड़ी]

नमो देवनागेंद्रमन्दारमाला-
मरन्दच्छटाधौतपादारविंदम् ॥
परानन्दसद्धर्मलक्ष्मीसनाथ ।
स्तुवे देवचिंतामणि पार्श्वनाथम् ॥१॥

शिवश्रीनिवासं नवाम्भोदनील।
नतानां शिवश्रीनिदानेषु लीनं ॥
त्रिलोकस्य पूज्यं त्रिलोकैकनाथं।
स्तुवे देवचिंतामणि पार्श्वनाथम् ॥२॥

तमोरात्रिविध्रासने वासरेशं।
हतक्लेशसंगं श्रिया सन्निवेशं ॥
कमालीनपद्मावतीप्राणनाथं।
स्तुवे देवचिंतामणि पार्श्वनाथम् ॥३॥

हतव्याधिवेतालभूतादिदोषं।
कृताशेषभव्यावलीपुण्यपोषं ॥
मुखश्रीपराभूतदोषाधिनाथ।
स्तुवे देवचिंतामणि पार्श्वनाथम् ॥४॥

नृपस्याश्वसेनस्य वशेऽवतस।
जनाना मनोमानसे राजहस ॥
प्रभावप्रभावाहिनीसिंधुनाथं।
स्तुवे देवचिंतामणि पार्श्वनाथम् ॥५॥

कलौ भाविना कल्पवृक्षोपमान।
जगत्पालने सततं सावधानं।
चिर मेदपाटस्थित विश्वनाथ।
स्तुवे देवचिंतामणि पार्श्वनाथम् ॥६॥

× × ×

इति नागेन्द्रनरामरवन्दितपादाम्बुजः प्रवरतेजाः।
देवकुलवाटकस्थः स जयति चिंतामणिः पार्श्व ॥७॥

एक सामाजिक दृश्य।

(ले०-श्री० बाबू धर्मचंद्रजी श्रावगी B.S.C., कलकत्ता)

क्यों मां तबियत कैसी है ?

तबियत तो वैसी ही है। बेटी! तुम्हारे पिताजी क्या अबतक देवदर्शन करके नहीं आये ? पलंगपर लेटी हुई एक रोगिनीने कहा।

देवदर्शन करके आये तो उन्हें देर होगई। परन्तु तुम्हें निद्रामें देख वे रौशनके कमरेमें चले गये। कहो तो अभी बुला दूं।

रहने दो आजायगे! सहसा रोगिनीको कुछ याद पड़ा। उसने पूछा-शांती! तुमने कुछ नास्ता किया? क्या रोशन और तुम्हारे पिताजी भी यों ही बैठे है?

शांती-पिताजी और रोशनने तो कुछ कुछ खा लिया है, परन्तु मैं तो तुम्हे दवाई पानी देनेके पहिले कुछ भी न खाऊंगी।

रोगिनी जमुना इस बालिका हठसे कुछ खिन्न हुई, परन्तु साथ २ उसे इस बालिकाकी जिदसे प्रसन्नता भी हुई। उसने दो एकबार शांतीको खानेके लिये और समझाया परन्तु वह राजी न हुई। उधर रोशन और बाबू रामकुमारजी जो पासहीके कमरेमें बैठे थे इसकी बातचीत सुनकर आगए।

जमुना शर्माकर चुप होगई।

रामकुमार-तुम दिनोंदिन सूखकर कांटा हुई जारही हो फिर भी अपने शरीरकी तरफ कुछ ध्यान न देकर इन्हींके खानेपीनेकी फिक्रमें पड़ी हो। दवाई लो अच्छी होजाना, फिर लड़ झगड़कर इन्हे अपने हाथों दूना २ खिलाकर इतना मोटा करदेना कि इनसे अपने आप चला न जाय।

रोशनने हँसते हुए कहा-हाँ, मां! तुम पहले अच्छी होजाओ फिर तुम अपने हाथोंसे जितना खिलाओगी हम खा लिया करेंगे। अगर न खाँय तो हमें चपते मार मारकर खिलाना। क्यों बहन शान्ति ठीक है न?

शान्ति-इस शर्तको तो मैं भी माननेको तैयार हूं।

जमुना सबोंकी मीठी चुटकियोंसे बड़ी प्रसन्न हुई। पासके एक परिचित वैद्यजीने आकर दवा पानीका इन्तजाम कर दिया। बाबू राजकुमारजीके पूछनेपर वैद्यजीने रोगिनीकी अवस्था अच्छी ही बतलाई और कहा कि अगर इसी प्रकार अवस्था सुधरती रही तो १५-२० दिनोंमें अच्छी हो जायगी।

रामकुमारजी एक बड़े अच्छे खानदानके व्यक्ति है। उनके अन्य ३-४ भाई थे, परन्तु वे सब अलग होगये। उनके पिताने उन्हे अच्छी शिक्षा दी थी। इस कारण वे एक कुशल व्यापारी गिने जाते हैं। पञ्च पञ्चायतियोंमें भी इनकी पूछ थी। वे दूसरोंके दु:खोंमें हमेशा साथ बटानेके लिए तैयार रहा करते थे। उनके केवल एक पुत्र और एक पुत्री थी जिनकी उच्च शिक्षाका प्रबन्ध उन दोनोंने कर रखा था और जब कभी वे अपने मित्रोंमें बातचीत करते थे तो वे समाजकी आयव्ययकी प्रथापर घोर दु:ख प्रगट करते थे। उनकी पत्नी साध्वी पतिपरायण

जमुना भी एक अच्छे परिवारमें पली थी और इस प्रकारके सज्जन पतिको पाकर अपना गृहस्थ जीवन बड़े सुखके साथ बिताती थी। परन्तु इधर लगभग दो महीनेसे अस्वस्थ होनेके कारण अपनी सन्तानके भविष्यकी ज्यादा चिन्ता किया करती है।

'अच्छा ही हाल है, आप लोग घबराये नहीं' कहते हुए एक हैट कोटधारी व्यक्ति अपनी फीसके रुपये जेबमें डालते हुए मकानसे निकल गया।

रोशन और शान्ती जल्दीमें कुछ न समझनेके कारण एक दूसरेका मुंह देखने लगे। बाबू रामकुमारने आकर कहा--घबरानेकी कोई बात नहीं। डाक्टर साहब कह गये हैं जल्दी अच्छा होजायगी।

रोशन और शान्तीने कुछ जवाब नहीं दिया। चुपचाप माताकी खाटके पास जाकर बैठ गये।

बाबू रामकुमारने बच्चोंको शान्ति करनेके लिए उक्त बातें कहती थीं परन्तु असलमें उनके हृदयमें भी जोरोंसे उथलपुथल मच रही थी, क्योंकि जमुनाको आज सारे दिनमें ५–६ बार मूर्च्छा आगई थी। लगभग ३–४ घण्टेबाद जमुनाको फिर मूर्च्छा आई। डाक्टर साहब फिर बुलाए गए। इसबार नब्जपर हाथ रखते ही वे चौंक पड़े और रामकुमारजीसे कहा Case serious है Night निकलना मुश्किल जान पड़ता है। रामकुमारजी इस कडवी सूचनाको जहरकी घूंटकी तरह पीगए और डाक्टरकी बताई हुई रीतिसे दवा पानीकी व्यवस्था करने लगे। इस समय वे बार २ रोगिनीकी तरफ देखते जाते थे और बराबर उसकी अन्तिम इच्छा पूछनेका प्रयत्न करते थे। दवाईके खाने ही रोगिनीकी अवस्था कुछ सुधरीसी जान पड़ती परन्तु दैवको आज शाती और रोशनको अपनी मातासे अलग करना था। कुछ ही समयबाद जमुनाने एक निराशा भरी दृष्टि लाला रामकुमारजीकी तरफ की। लाला साहब उनकी खाटके पास जा बैठे। उस समय रोशन और शाती भी कातर दृष्टिसे अपनी माताओंका मुँह निहार रहे थे।

जमुनाने लड़खड़ाती जबानसे कहा--क्या आप मेरी एक इच्छा पूरी करेंगे?

रामकुमारजी--कहो क्या कहती हो? तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध तो कोई काम नहीं किया गया फिर यह क्यों?

जमुना--आज मैं जाती हूं, इस कारण आपसे अन्तिम प्रार्थना है!

रामकुमार--ऐसा न कहो। तुम जल्दी ही अच्छी होजाओगी।

जमुना०--मेरी अन्तिम प्रार्थना यही है कि आप शान्ति और रोशनका ख्याल रखें, समाजकी रूढ़ियोंके फेरमें पड़कर इन्हें दुःख न पहुँचायें। उनके भविष्यको सुन्दर बनानेका पूरा प्रयत्न करें।

रामकुमार--तुम्हारी इच्छानुसार ही कार्य होगा। और भी कुछ इच्छा है?

जमुनाने कृतज्ञता पूर्ण नेत्रसे पतिकी ओर देखा और पासमें ही बैठे हुए रोशन और शान्ति पर अपनी दृष्टि स्थिर कर दी, मानों अपने शुभ मनोरथको पूर्ण देखकर अपने बच्चोंसे छुटकारा चाहती हो।

रोशन और शान्तीकी आखोंमें भी आंसुओंकी झड़ी लग गई!

× × ×

शान्तीकी सगाई उसी ग्रामके सेठ जगन्नाथजीके पुत्र मोतीलालजीसे तै हुई है। विवाह भी चैत सुदी २ का पक्का होगया। सगाई करते समय और उसके बाद भी लाला रामकुमारने कई लोगोंद्वारा सेठ जगन्नाथजीसे कहलाया कि आप विवाहमें और जेवर बनानेमें व्यर्थका धन खर्च न करें।

अगर लड़केकी शादीमें कुछ धन अपने खजानेसे खाली करना ही हो तो उसे ऐसे कामोंमें लगाइये जिससे कुछ लाभ भी हो। परन्तु सेठ साहब ये बातें क्यों मानने लगे? वे तो पुरानी रूढ़ियोंके पूर्ण भक्त थे। परन्तु दोनों सम्बन्धियोंके भिन्न विचार होते हुए भी सम्बन्ध छूट नहीं सकता था। एक दिन दोनों जने किसीकी पंचायतसे लौटते समय रास्तेमें मिल गये। बातों बातोंमें ही रामकुमारजीने दहेज और विवाहके व्यर्थ खर्चकी बात छेड़ दी।

जगन्नाथ–साहजी साहब! आपके कहनेका मतलब यह कि हमारे पूर्वज मूर्ख थे।

रामकुमार–जी नहीं! आप मेरे कहनेका मतलब नहीं समझे। असलमें समयके अनुसार ही सारी चीजोंका परिवर्तन हुआ करता है। हमारे पूर्वजोंके समय हमारी आपकी आवश्यक्ताएं इतनी बढ़ी हुई न थीं। वे लोग कम कमाते कम खर्च करते हुए सादा जीवन शांतिसे व्यतीत कर देते थे। हमारी आपकी तरह न तो (Chance) चान्सहीके फेरमें पड़ते थे न खाली हाथ व्यर्थका कर्जकर व्यय करते थे। वे तुच्छ क्षणिक नामवरीके भूखे न थे।

जगन्नाथ–अच्छा तो आप ही कहिये कि विवाहके खर्च और जेवरको छोड़कर किस कार्यमें रुपये लगाना अच्छा है?

रामकुमार–अगर आप मेरी सलाह मानें तो मैं तो यही कहूंगा कि आप उन्हीं रुपयोंको अपने पुत्रको देकर अलग व्यवसाय खुलवाइये। जिससे उसको काम करनेका और ठोकर खाकर बचनेका अनुभव होजाय। गहनोंसे केवल तिजोरिया टूटेंगी, व्याजका नुकसान होगा, अन्य जातियोंको उतने गहने देखनेसे ईर्षा होगी। इसके अतिरिक्त स्त्रियोंका भी ध्यान अच्छे कामोंको छोड़कर उन्हींकी फिकरमें ज्यादा रहेगा। विवाहका व्यर्थ खर्च जैसे रोशनी (बिजली), बायस्कोप, तमाशे, आवश्यक्तासे ज्यादा लोगोंको बुलाकर खिलाना, इनसे न तो विवाहके बंधन मजबूत होते हैं न वर और वधूके भविष्य जीवनपर कुछ अच्छा प्रभाव ही पड़ता है। और न किसीका उपकार ही होता है। फिर न जाने क्यों लोगोंने इसे इतना महत्व दे रखा है।

जगन्नाथ–असलमें मेरे एक ही लड़का है। अगर मैं उपरोक्त बाते न करूं तो लोग क्या कहेंगे। कहेंगे हमेशा कि लोगोंका खाकर मुफ्त कीसी हजम कर गया। अपनी बारी आते ही बहानेबाजी शुरू करदी। मेरी अकल कुछ काम नहीं करती।

रामकुमारजी–अच्छा आप बदनामीसे डरते है तो कोई हरज नहीं, आप जैसा चाहे कीजिये, परन्तु मैं तो केवल बारातके समय पान सुपारीसे खुश करनेकी कोशिश करूंगा और फेरे होनेके बाद आप लोगोंको कुछ अपनी मिठाई और अपनी शक्तिके अनुसार रुपयेके Bank Paper अपनी लड़कीके नामसे देदूंगा। व्यर्थ जिमाना और कपड़ा लत्ता कुछ न दूंगा। मुकाबलेमें भी लड़कीको ४, ५ धोतियों २-४ ओढ़नीको छोड़कर कुछ नहीं दूंगा। केवल बेंकपेपर Bank Paper दूंगा। इससे दो लाभ होंगे-एकतो व्यर्थके कपड़े पड़े सड़ा नहीं करेंगे–आवश्यक्तानुसार नये तर्जके तैयार होते रहेंगे। दूसरे अगर कोई खराब समय भी आजाय तो उन रुपयोंसे बहुत कुछ काम भी निकल सकेगा।

जगन्नाथ–लाला साहब, मैं तो इन बातोंको माननेके लिए तैयार नहीं। मेरे घर शादी तो पुराने तरीकोंसे होगी। मैं अपने घरसे यह प्रथा शुरू कर लोगोंकी अंगुलियोंपर चढ़ना नहीं चाहता। आप कृपया रीतिके अनुसार ही सारा कार्य करें।

लाला रामकुमार लड़कीके बापसे ज्यादा क्या कह सकते थे। अपना मन मसोसकर रह गये। विवाह पुराने रूढ़ियोंके अनुसार ठीक समय पर हो गया।

× × ×

रुक्मणी नई आई हुई 'गृहलक्ष्मी' को पढ रही थी कि किसीकी आहट सुन उसने उसे पास की टेबुलपर रख दिया और खड़े होकर दरवाजेकी तरफ ध्यान पूर्वक देखने लगी। आनेवाले हमारे परिचित रौशनलाल थे। उन्होंने आते ही रुक्मिणीके गालपर हल्कीसी चपत जमाते हुए कहा कहो "गृहलक्ष्मी" का लेख पढ लिया? कैसा मालूम हुआ?

बड़ा अच्छा है, किसने लिखा था?

बहन शान्तीने लिखा था।

इसबार कलकत्ते चलनेपर मैं तुम्हे उससे अवश्य मिलाऊँगा। परन्तु हा, कहो आज कुछ खिलाने पिलानेका इरादा है या कोई दुश्मनी अदा करनी है? रुक्मिणीने हसते हुए कुछ ताजा चीजे लाकर पतिदेवकी भेट की।

इसबार होलीकी छुट्टीमें रोशन कलकत्ते पहुंचा। बहिन शान्तिसे मुलाकात हुई। वह उसके उस परिवर्तनको देखकर बड़ा दु:खित हुआ। परन्तु उस विचारसे कि शायद वह लज्जाके कारण अपना दु:ख भाईसे न बतावे, रोशनने रुक्मिणीसे सारी बातें पूछनेके लिये कह खुद बाजार चला गया।

रुक्मिणीके पूछनेपर शान्तिने कहा—क्या कहूं, बहिन, व्यापारका हाल बहुत बुरा है। घाटेपर घाटा और खर्च किसी प्रकार चलाते २ आज इस अवस्थामें आपहुंचे। जिस व्यापारमें हाथ डाला जाता है उसीमें नुकसान। अन्तमें यह हालत हो चली है कि श्वसुरजीकी संचित सारी सम्पत्ति खतम होगई। मेरे गहने बेचकर जो थोड़े बहुत दाम उठे वे भी स्वाहा हो गये। क्या किया जाय और क्या न किया जाय, कुछ समझमें नहीं आता। पैसा पास न होनेके कारण नित्यप्रतिके आनेवाले लोग भी पास आते शर्माते हैं। जिस समाजकी रूढियोंके फेरमें पड पानीकी तरह धन गँवाया वे अब कुछ काम नहीं आतीं। जो पंचराजजी पैसा होनेपर ससुरजीको आगे बैठाते, उनके बगैर कोई पचायत तक नहीं करते, वे अब उनके लिये बाट जाहना तो दूर रहा बुलावा तक नहीं देते। क्या कहूं बहन, पिताजीके दिये हुए कपडे पड़े२ आलमारी और बक्सोंका बोझ बढ़ारहे हैं। आज अगर परदेश जानेका विचार करते है तो इन वस्तुओंको छोड़कर जानेकी इच्छा नहीं होती। अगर साथ जाय तो काफी रेलकिराया चाहिये। परन्तु तुम लोग कलकत्तेसे जानेके बाद किस हालतमें हो?

रुक्मिणी—वहा बड़े मजेमें काम चलता है। आपके भाईने एक स्वदेशी मिल और पेट्रोल पंपकी एजेन्सी ले रखी है। इस कामके लिए तुम्हारे पिताजी और मेरे पिताजीके दिए हुए (बेक पेपरों) ने बड़ी मदद की, क्योंकि दोनो कम्पनियोंके जमानतकी एवजमें ये ही कागज देदिये गये। अब तो काम चल निकला है। उसके साथ ही कुछ लेनदेनका काम भी होता है। परन्तु यह तो कहो अगर मोतीलालजीको कलकत्ता छोड़ने कहा जाय तो राजी होंगे या नहीं?

शान्ती—वे तो कलकत्तेसे ऊब चुके है।

रुक्मिणी—तो फिर इन मोह करानेवाली वस्तुओंको होलीमें स्वाहा कर आप मेरे साथ चलो। वहीं कोई न कोई कामकी तजवीज बैठ जायगी। मैं समझती हूं आपको तो कोई आपत्ति होगी ही नहीं?

शान्ती—बिलकुल नहीं।

रुक्मिणी–मैं भी कैसी हूं जो आपसे ऐसा सवाल करती हूं। गृहलक्ष्मीमें आपका लेख पढ़नेसे मुझे तो आपके विचारोंका पता लग गया था।

शान्तीने उपरोक्त बातें सुनकर मुस्करा दिया।

× × ×

कलकत्तेसे आनेके बाद मोतीलालजीने रोशनकी सहायतासे एक (Ro d s u) रोड टारका कारखाना खोल दिया। वे बड़े बड़े कारखानेवालोंसे अकलतरा खरीद उसे रोडटार बनाकर आगलरगालकी म्युनिसिपल्टियों और . . . वालोंको बेचते थे। इस कार्यमें काफी लाभ होनेके कारण उपरोक्त उन्नति होती गई और साथ ही साथ अन्य अन्य छोटी छोटी चीजोंका बनाना भी शुरू कर दिया। देशमें स्वदेशीकी लहर जोरोंसे चल रही थी। ज्योंही चीजें तैयार होतीं थीं बिक जाती थीं। मोतीलालजीके दिन फिर चमके।

\+ + +

रोशन अपनी एक पंचवर्षीय कन्या अहल्या और रुक्मिणीके साथ पासके बगीचेमें वायुसेवन कर रहे थे। मोतीलाल और शान्ती भी अपने सप्तवर्षीय कुमार मदनको लिए आपहुंचे। कुछ इधर उधरकी बात होनेके पश्चात् मोतीलालने रोशनसे पूछा–कहिये इसवार अहल्याका विवाह किस तरीकेसे करेंगे?

रोशन–इसका जवाब तो आप दें कि मदनका विवाह कैसे करेंगे? हम तो पहलेसे ही बदनाम हैं। हमारे यहां तो इसका पहिले ही सुधार होचुका है। जिन बच्चोंके मां बापका विवाह विना रूढ़ियोंके हुआ तो फिर उन बच्चोंका तो कहना ही क्या?

मोतीलाल–मेरा विचार तो इन रूढ़ियोंको कतई तोडनेका है। क्योंकि यह तो आप स्वयं सोच सक्ते हैं कि दोनों प्रकारके वर वधुओंमें कौन सुखी है।

दिगम्बर जैन।

(रचयिता–पं० सिद्धसेनजी जैन–कलोल।)

(१)

यह "दिगम्बर जैन" जगमें सर्वदा सन्मान्य हो।
प्रत्येक नर अरु नारीके, हृद पकजोंमें मान्य हो॥
लेखनकलासे नाम अपना, विश्वमें जिसने किया–
भगवन्! अमर करदो इसे, उपकार जगका बहु किया॥

(२)

धर्मका जो मर्म सच्चा, वह सदा कहता रहे।
प्रेम–भावोंमें भरा यह, विश्वको भरता रहे॥
'आनन्द–उत्सव मग्न हो, पावें न कोई शोकको।'
ऐसी सुशिक्षाएं सदा, देता रहे यह लोकको॥

(३)

स्त्री–शिक्षा–अभ्युदयकी सर्वदा हो भावना,
जाति अरु निज देशउन्नतिकी रहे शुभ कामना।
'गोमूत्र, गोमय, श्राद्ध' आदिक बातका खण्डन करे!
'महावीर स्वामी देव थे, सर्वज्ञ थे' मंडन करे॥

(४)

निष्पक्ष होकर भी स्वयं जो सत्यका आग्रह करे,
होकर निडर, स्वाधीन जगमें पाप-भीति चित धरे!
पूज्य पुरुषोंके चरित वर्णन सदा करता रहे!
कर्तव्यताका ज्ञान मनमें सबके भरता रहे!!

(५)

है न इच्छा और कुछ बस, धर्मकी रक्षा करे।
शील, संयम, सत्य, तप, बल, ज्ञानकी वृद्धि करे॥
शुभ भावना जिनदेव! सबकी पूर्ण मंगलरूप हो!
यह "दिगम्बर-जैन सबको हित-प्रदर्शक-भूप हो!!

मित्र-सम्वाद।

[लेखक—श्री० ब्र० प्रेमसागरजी पञ्चरत्न—रामपुर]

मित्र माणिकचन्द्रजी ! लोग कहते हैं कि मेवा, बदाम खानेमें स्वादिष्ट और बलिष्ट तथा गुणकारी होते हैं परन्तु मेरी समझमें तो लोगोंकी बात बिलकुल उलटी जचती है। क्योंकि बदामका स्वभाव बाह्यमें अत्यन्त कठोर है। अतएव वह बलिष्ट और गुणकारी नहीं हो सकती, क्योंकि जो बाह्यमें कठोर होता है वह भीतर नरम नहीं होता। बाह्यके परिणाम भीतरके परिणामोंका प्रदर्शन कराते हैं, ऐसा मैं मानता हूं।

मित्र श्रीचन्द्र ! आपका कहना और समझना ठीक नहीं है क्योंकि आपकी बात प्रत्यक्षमें बाधित है। सुनिए, जो मानव-सज्जन होता है वह अपनी सत्य नीतिमें चाहे बाह्यमें कठोर रहा हो परन्तु अन्दर उसके परिणाम बड़े ही सरल एवं नरम होते हैं। अर्थात् वह बाह्य देखनेमें चाहे जैसा किसीको भासे परन्तु उसे हम असज्जन कदापि नहीं कह सकते। बदाम बाह्यमें कठोर है परन्तु भीतर जो उसके पास गुण है वह बेरमें नहीं है। बेर यद्यपि बाह्यमें नरम है परन्तु भीतर बड़ा ही कठोर है। ऐसा स्वभाव ठीक नहीं। इसीको मायाचारी कहते हैं। जो मनुष्य बाह्यमें नरमाईकी बातें करता है व नरमसा ज्ञात होता है वही हृदयका काला एवं कठोर होता है। इसे सदैव याद रखना चाहिए। देखोना, हीरालाल कपटीने उस दिन जयचन्द्रको कैसा ठगा ?

और सुनों, नारियल बाह्यमें बड़ा ही कठोर होता है परन्तु आप जानते हैं अन्दर कितना नरम और मीठा होता है इसी प्रकार ईख एवं गन्ना बाह्यमें कठोर पदार्थ है परन्तु अन्दर अत्यन्त मीठा है। इसपर भी उसमें बड़ी सहनशीलता है जो कि वह जितना काटा जाता है, छोला जाता है उतनी ही मिष्टता देता है। यही सज्जनोंका स्वभाव है। लोग कहते हैं कि केला और सकरकंदी ही अच्छे पदार्थ हैं क्योंकि वे बाह्य और भीतर एकसे स्वभाव वाले हैं। उन कैसे स्वभाव अन्य पदार्थोंके नहीं। मैं उनकी बातको मानता हूं। परन्तु मित्र श्रीचन्द्र ! आप तनिक मेरे विवेचनपर ध्यान दें। मेरा कहना है कि—केला और सक्करकंदी बाह्य और भीतर एकसे नरम पदार्थ हैं, परन्तु आप समझें कि वह जितने नरम हैं उतने गरिष्ट भी हैं, साधारण जठराग्निवाला उन्हें पचा नहीं सकता। इसका मतलब यह है कि जो मनुष्य बाह्यमें नरम मालूम होते हैं तथा अपने आचरणसे व मायाचारसे भोले लोगोंको यह विश्वास दिलाते हैं कि हम बाह्यके समान भीतर भी सज्जन हैं, वही नं० १ के मायाचारी एवं ठग और केलेके समान गरिष्ट और विकारी होते हैं।

श्रीचन्द्र—मित्रवर ! आपका सारगर्भित विवेचन सुनकर तो मुझे बड़ी खुशी हुई। अब मैं यह जानना चाहता हूं कि मनुष्यके लिये सुख और शांति कैसे प्राप्त हो, क्योंकि वह एक ऐसा प्राणी है जो कि सारे दिन एवं सारी रात अनेक प्रकारकी आकुलताओंमें फँसा रहता है, उसे थोड़े समयके

लिये भी धर्मध्यान करनेको नहीं मिलता।

माणिकचंद्र—आपका प्रश्न बड़े ही महत्वका है, सुनिए मनुष्यके अंदर सुख एवं शांतिका निवास है परन्तु वह उसे बहुत समयसे भूल गया है। वह अपनी आदतोंसे अपनी सुख शांतिको नहीं पाता हुआ दुखी होरहा है। वह जितनी२ अपनी आदतोंको बढ़ाता जाता है उतनी२ ही सुखशांति उससे दूर होती जाती है। उसकी आदतें हैं पंच-इंद्रियोंके भोग। यदि वह पंचेंद्रियोंको अपने वशमें रक्खे तो उसकी आदतें अधिक न बढ़े और न वह इतना अपने कर्तव्यसे च्युत होजावे कि अपनी सुखशांतिको आप न पासकें। पंचेंद्रियोंने मानव मात्रको बहुत ही तंग कर रक्खा है। पंचेंद्रियोंके वशमें पड़े मानव उनकी पूर्ति करनेके लिए अनेकानेक इच्छाएं उत्पन्न करते हैं। इच्छाओंका उत्पन्न होना ही अशांति है और उनको रोकना शांतिको बुलाना है।

पांचों इन्द्रियोंमें स्पर्शन इंद्री पहिली इंद्री है। उसकी सेवामें यह मनुष्य प्रतिक्षण लगा रहता है, उसे साबुनसे धोना, तैल लगाना, वस्त्राभूषणोंसे सजना आदि सेवा उसकी है। फिर भी वह एक दिनकी नहीं है हरदमकी है। उसकी सेवाकी सामग्री जुटानेकी चिन्ता मनुष्यको आकुलता उत्पन्न करती है। इसी प्रकार रसना इंद्री अच्छा अच्छा रस आस्वादन करना चाहती है। घ्राण इंद्री अच्छी सुगंध चाहती है, चक्षु इन्द्री अच्छेसे अच्छे दृश्य देखना चाहती है और कर्ण इन्द्री अच्छे अच्छे मिष्ट गाने सुनना चाहती है। इन्हीं इन्द्रियोंकी विषयपूर्तिमें मानवकी शांति भूली हुई है। अतः प्रथमतः इन्द्रियोंको वशमें करना शांति पैदा करनेका उपाय है।

शांति पैदा करनेके लिए मनुष्यको निम्न बातें उपयोगमें लानी चाहिए। जैसे—" सहनशीलता, शास्त्राध्ययन, आत्मध्यान, माध्यस्थपना, एकान्त, मौनावलम्ब और आपसका प्रेम।

१—क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों कषायोंसे बाकर बचना। दूसरा—इनके द्वारा चाहे जितना सतावें, परन्तु उसे अपनी आत्मीक शक्तिसे सहना। इसके सिवाय चाहे किसी भी प्रकारकी विपत्ति क्यों न आजावे, उसे भलीभांति समता परिणामोंसे सहन करना यही सहनशीलता है। इसके द्वारा मनुष्यके अन्दर शांतिकी झलक होने लगती है।

२—आध्यात्मिक शास्त्रोंका अध्ययन भी शांति उत्पन्न करनेके लिये प्रबल कारण है। अतः उसे दिन प्रति करना चाहिये। वैराग्यकी अपूर्व छटा और संसार भोगोंसे उदासीनता, आध्यात्मिक शास्त्रोंके अध्ययनसे होती है।

३—चाहिये तो तीनों समय परन्तु यदि तीनों समय न होसके तो प्रातःकाल अवश्य ही आत्मध्यान करना चाहिये। प्रातःकालका समय बड़ा ही शांतिमय है अर्थात् उपयोगी है। ऋषि मुनि आदि भी अधिकतर इसी समयमें आत्मध्यान करते हैं। आत्मध्यान करनेवालेको सामायककी पूर्व क्रियाको करके कायोत्सर्ग या बैठकर आत्मध्यान करना चाहिये और उस समय इसप्रकार आत्माका चितवन करना चाहिये—यह आत्मा ज्ञानका एक पिण्ड है। अमूर्ति और अविनाशी शुद्ध चैतन्य मूर्ति है तथा " अणुगुरुदेहप्रमाणो " शरीरके प्रमाण रहनेवाला है। इसका सम्बंध शरीरसे अनादिकालीन, तिलोंमें तैल जैसा तथा दूध और पानी जैसा है। मेरी आत्मा निश्चयनयकी अपेक्षा सिद्धोंके समान है इत्यादि चितवन करना चाहिये और प्रतिदिन करना चाहिये। ऐसा करनेसे आत्मअध्ययनकी आदत अच्छी पड़ जावेगी जो सुखशांति पैदा करनेमें अपूर्व एवं अद्वितीय कारण होगी।



बाबू [illegible]कुमारजी जैन स्काउट मास्टर,

[illegible] दि[illegible] जैन बोर्डिंग, इन्दौर।

आप बी० ए० में पढ़ते हैं व आपने स्काउटिंगका उत्तम ज्ञान प्राप्त किया है तथा विद्यार्थियोंको सिखाते हैं।

[illegible] हैं।



श्रीयुत टीकमचन्दजी जैन पंचोलिया-इन्दौर

४–सामायक पाठमें कहा है "माध्यस्थभावं विपरीतवृत्ती" अर्थात् जो अपने विपरीत रहते हैं उनसे माध्यस्थ रहना चाहिये। माध्यस्थभाव क्या? सुनिए एक सायर कहता है–

सोई खड़ा बजारमें, मनाता सबकी खेर।
ना काहूसे दोस्ती, ना काहूसे वैर॥

माध्यस्थ भाव भानेके लिए यही काफी है कि मानव स्वभाव किसीका किसीसे मिलता नहीं इसलिए विपरीत ख्यालमें विपरीत भाव अपनेमें पैदा नहीं करने चाहिए किन्तु वस्तुस्वरूपको विचारते हुए मध्यम भाव अपनेमें लाना चाहिए। क्योंकि–

जाको जोन स्वभाव जाय न जीसों।
नीम न मीठे होय, खाय गुड़ घीसों॥

५–एकान्तवास भी शांति पैदा करानेमें अच्छा कारण है। किसीने कहा है–

"एकान्त वासा, झगड़ा न झासा।"

किसीने यह भी कहा है कि "जहां चार वर्तन इकट्ठ होंगे वे खनखनावेंगे ही" एकान्तवासके समान दूसरा कारण शांति उत्पन्न करनेवाला नहीं हो सकता; इसीसे तो जितने भी सुखशांति चाहनेवाले साधु पहिले होगए हैं, वे सब एकांतवासी ही थे। वे जंगलोंमें रहा करते थे। सो इसके मायने यह नहीं, कि हम या आप जंगलमें जाकर वस रहें। नहीं ऐसा कोई कदापि नहीं कर सक्ता। हमको या आपको केवल इतना ही काफी है कि २४ घण्टोंमें कमसेकम २ घण्टे एकांतमें रहनेको ही निकालें। मेरी समझमें उसके लिये शामका वक्त हो सक्ता है।

६–अधिक बोलना, आवश्यक्तासे अधिक वचनोंका निकालना, बकवाद करना, किसीको अनुचित वाक्य कह देना, कलह या विसम्वादके वचन बोलना और भण्ड वचन बोल उठना ये सब एक मौनव्रतके विना हुआ करते हैं। और इन्हींसे आत्माके अन्दर अशांति उत्पन्न होती है। अतः सुख शांति चाहनेवालोंको चाहिये कि वे नित्य ही कुछ समयके लिये मौनावलम्व रहा करें।

मौनावलम्बव्रत बड़ा ही शांतिप्रदायक है। इसको पाकर मनुष्य अशांतिकारक कारणोंसे बच सकता है और प्रतिदिन थोड़ा थोड़ा मौन लेता हुआ एक दिन ऐसा उसका महावरा बढ़ जावेगा कि चाहे जिस दिन व जबतक वह मौनसे रह सकता है। यदि कोई मानव सप्ताहमें एक दिन भी मौनसे रहे तो उसे अपूर्व लाभ हो। महात्मा गांधीजी सोमवारको मौनसे रहते हैं।

७–सुख शांति चाहनेवालोंको आपसमें प्रेमपूर्वक रहनेकी बड़ी आवश्यक्ता है। उसे तो मानव मात्रसे क्या पशुओंतकसे सच्चा प्रेम करना चाहिए। प्रेमी मानवका कोई शत्रु नहीं रहता इसलिये उसके पास किसी प्रकारकी अशांति नहीं आती।

मानव मात्रसे मानवीय प्रेम रखनेवाला मानव शत्रुके ऊपर भी मित्रवत् प्रेम प्रगट करता है। उसके प्रेममें किसी प्रकारका कपट व स्वार्थ नहीं रहता। जहां कपट होता है वहां प्रेम नहीं होता किन्तु प्रेमाभास होता है। हमको चाहिये कि हम जब किसीसे मिलें तो प्रेम पूर्वक मिलें। और कपट रहित होकर मिलें। हमको कपट रहित प्रेम उत्पन्न कर अपनेमें सुखशांति उत्पन्न करनी चाहिये।

अपने मित्रका सारगर्भित उत्तर पाकर श्रीचंदको बड़ा ही सतोष हुआ और अंतमें सप्रेम अभिवादन कर निजसदनको चला गया किन्तु फिर कभी इसी प्रकारके शिक्षाप्रद उपदेश सुननेकी इच्छा प्रकट करगया।

जैनी गृहस्थका कर्तव्य !

[श्री० उदासीन श्रावक पं० पन्नालालजी गोधा—इन्दौर]

सर्व जीव सुखको चाहते, तथा दु:खसे डरते हैं तथा रात्रि दिन दोनोंके ही उपायोंमें कोल्हूके बैलकी तरह लगे रहते हैं। परन्तु कोई जीव आजतक सुखी देखनेमें नहीं आता। यदि कोई सुखी होता तो वह शान्तिपूर्वक सन्तोषसे बैठकर अपनेमें सुखकी डींग मारता।

परन्तु राजा महाराजा सेठ साहूकार, करोड़पती, लक्षाधिपती हजारपती वा अमीर गरीब जितने देखनेमें आते हैं वे सब नाना प्रकारकी चिंताओंसे ग्रसित होते हुए अपनेको दुखी ही प्रगट करते हैं। किसी कविने कहा भी है कि—"चिताज्वाल शरीरमें, दव लागी न बुझाय" इत्यादि। यदि वह चिन्ता एक ही प्रकारकी होती तो किसी प्रकार उसका शमन करके प्राणी सुखी होसक्ता था, परन्तु चिंताएं तो हजारों तथा लाखों क्या असंख्यात विकल्प लिये हुये हैं अर्थात् चिंताओंके असंख्यात भेद हैं।

मनुष्य पर्यायके दु:खोंका तो पार ही नहीं। जिनके पुण्यका उदय है उनका ही ऊपर वर्णन किया है। फिर पुण्यहीन पुरुषोंकी तो बात ही क्या है। और इसके सिवाय निर्धनोंके दु:ख तो प्रत्यक्ष ही दीखनेमें आरहे हैं। उनके दु:खोंका वर्णन करनेसे लेख बढ़ता है इससे लेखनीको रोकनी पड़ी। तथा नर्कोंके दु:ख शास्त्रोंद्वारा प्रगट ही है। यद्यपि स्वर्गोंमें तीनो गतियोंकी अपेक्षा दु:खकम है परन्तु इंद्रियजन्य विषय-सुखकी विशेषता होनेसे मानसिक अत्यन्त दु:ख है। जिस मानसिक दु:खका अनुभव कोई भी प्राणी नहीं कर सक्ते तथा जो वचनातीत है। संसारमें ज्यादा दु:ख मरणका है परन्तु मानसिक दु:खसे मरण अच्छा समझकर प्राणी मरण कर जाते हैं। इस प्रकार संसारके दु:खोंको देखकर श्री गुरु उपदेश करते हैं कि ये दु:ख अनतकालसे धर्मके विना सहन कररहा है।

अब बड़ी दुर्लभतासे चौड़े रस्तामें कहीं रत्न पड़ा मिल जावे जो कि सैकड़ों मनुष्योंके चलते फिरते हुयेसे बचा पड़ा है तैसे मनुष्यपना सहज मिल गया। फिर इसमें भी दुर्लभ ऊंच कुल दुर्लभ है फिर इससे भी जैनधर्मका पाना अत्यन्त दुर्लभ है। यदि वह मिल गया तो अब इसको वृथा गमा देना बुद्धिमानोंका काम नहीं। इस वास्ते श्री गुरु कहते हैं कि क्रमसे तुम धर्मको धारण करके परम सुखरूप मोक्षस्थानको प्राप्त करो कि जिससे फिर तुमको संसारके दु:खोंमें न रुलना पड़े तथा उन दु:खोंसे छूटकर अविनाशी सुख जिस सुखका फिर कभी अन्त न हो ऐसे सुखको प्राप्त होजाओ। अब उस सुखके पानेके उपायके क्रमको बताते हैं।

श्री पूज्यपादस्वामीने अपने समाधिशतकमें लिखा है कि अव्रत जो हिंसादिक पाप उनको छोड़कर और व्रतोंमें आरूढ़ होवे, फिर व्रतोंको भी छोड़कर परमपद जो वीतराग चैतन्य स्वरूप मोक्षपदको प्राप्त होओ ॥८४॥ तथा प्रथम अव्रतीको व्रत ग्रहण करना चाहिये और व्रतीको आत्मज्ञान करना चाहिये। जब आत्मज्ञान पूर्ण रीतिसे होजाय तो आप स्वयं परमात्मा होजाता है ॥८६॥

तत्वज्ञान तरंगिणीमें अध्याय १८ में कहा है कि गृहस्थोंको प्रथम षट्कर्म पालनेकी शिक्षा देनी चाहिये, पीछे व्रतोंको अंगिकार करना, पीछे संयम ग्रहण करना ॥ २ ॥

यतिभ्यो दीयते शिक्षा पूर्वं संयमपालने।
चिद्रूपं चिंतने पश्चात् अयमुक्तो बुधैः क्रमात् ॥३॥

अर्थ-जो यति हैं, निर्ग्रन्थरूप धारणकर बनवासी हुये हैं उनको सबसे पहिले संयम पालनेकी शिक्षा देनी चाहिये, पीछे शुद्ध चिद्रूप ध्यानकी शिक्षा देना चाहिये। अर्थात् यहापर आचार्यने धर्मसाधन अर्थात् आत्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये यह अनुक्रम बताया है कि पहिले गृहस्थोंको षट्कर्म पालन करना चाहिये फिर अणुव्रतोंको धारण करना चाहिये जो पाक्षिक रूप है। इसके पीछे ११ प्रतिमारूप उत्तरोत्तर चढते चले जांय और आत्मज्ञानको निर्मल करते जावे। इसके पीछे मुनिरूप संयम ग्रहण कर पाले जोकि जिनकल्प स्थविररूप है अथवा अपहृत उपेक्षा संयम रूप है। जिसमें कि आत्मा जो चिद्रूपका पूर्णरूपसे चिंतवन करता है ऐसे करते २ पूर्ण आत्मज्ञान बारहवें गुणस्थानमें पहुंच जाता है तो तत्काल अंतर्मुहूर्तमें घातिया कर्मोंका क्षय करके तेरवें गुणस्थानको प्राप्त करके केवलज्ञानी परमात्मा हो जाता है। तथा चारघातियाका तो अत्यन्त क्षय होजाता है और चार अघातिया कर्म जो जली जेवरीके समान निर्बल रह जाते हैं।

इसके बाद चार अघातिया कर्मोंकी स्थिति यदि बराबर होती है तो स्थिति निषेकोंको पूर्ण कर-अ, इ, उ, ऋ, लृ, ये पाच लघु अक्षरके उच्चारणके काल प्रमाण चौदहवें गुणस्थानमें व्युपरतिक्रियानिवृत्ति चारित्रका अनुभव करता हुआ एक समय बाद सिद्ध भगवान् निरंजन परमात्मा हो जाता है।

यदि आयु कर्मकी स्थिति, बाकी तीन कर्मोंकी स्थितिसे ज्यादा होती है तो आयु कर्म स्थिति निषेकके बराबर तीन कर्मोंके स्थिति निषेक करनेके लिये दंड कपाट प्रतर लोकपूर्ण रूप समुद्घात करके आयु कर्म स्थिति निषेकके बराबर अन्य कर्म स्थिति निषेकोंके करके चौदहवें गुणस्थानको प्राप्तकर पाच लघु अक्षर प्रमाण ठहरकर एक समय वाली गतिसे सिद्धालयमे जा विराजते हैं और निरंजन अविनाशीपद पालेते हैं। जो चिद्रूप परमानन्द परब्रह्म आदि अनन्तगुणों द्वारा जिसके नाम हैं परम सुख-समुद्रम मग्न होजाते हैं। जो सुख फिर कभी अनन्तानन्त काल तक भी नहीं छूटते।

इस लेखके लिखनेका मेरा कुछ यह भी अभिप्राय है कि बहुतसे भाई केवल आत्मज्ञानकी कथनी समयसारादिमें देखकर तथा सुनकर जिसमें मुख्यता कर निश्चयनयकी कथनी है जिसमें व्यवहार धर्मको गौणकर व्रत तपको अकार्यकारी कहते हैं उसके अनुसार व्रत तपादिकको सर्वथा निष्फल मानकर आत्मज्ञानमे मगन रहते हैं और मनमाने हिंसादिकके कार्य जो अभक्ष्यादि सेवन करते हैं और संयमियोंकी निंदा करते हैं, उनको जानना चाहिये कि संसारमें जितने धर्म हैं वे सब अपने२ शास्त्रोंके अनुसार ही चलते हैं और चलरहे हैं, जैन पुराण, कुरान, बायबिल आदि। परन्तु जैनियोंमें कुछ ऐसे है कि केवलज्ञानको ही धर्म मानते हैं आचार धर्मसे धर्म ही नही समझते जोकि मुख्य धर्म है। और व्यवहारमें भी देखो कि जो देव पूजा आदि षट्कर्म है वा अहिंसादिक व्रत हैं उनको वा उनमेंसे कोई २ एक २ अंगोको जितनी विशेषतासे पालता है उसीको ज्यादा२ धर्मात्मा कहते हैं और विनयादिक भी उसीहीकी जादा की जाती है और चारित्रवान्को ही विनयवान् कहते तथा ज्ञानी कहते है। शास्त्र ज्ञानवान्को विद्वान् पंडित

कहते हैं। जैनधर्म और अन्य धर्ममें फरक है तो मुख्यतासे आचरणके फरकसे फरक है।

इस वास्ते "आचारः प्रथमो धर्मः" तथा कुन्दकुन्दस्वामीने भी कहा है—"चारित्रं खलु धम्मो" परन्तु यहापर ऐसा न समझना कि आत्मज्ञानका निषेध किया है। नहीं, नहीं, आत्मज्ञान तो मुख्य कार्य है ही और चारित्रादि जितने अङ्ग हैं वे सब कारण रूप है। इस वास्ते आत्मज्ञानको लक्ष्यमें रखकर ही चारित्राचारको यथायोग्य पालना। आत्मज्ञानकी सदा भावना रखना चाहिये। क्योंकि गृहस्थीको पूर्ण आत्मज्ञान हो जाना सरल नहीं है।

मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर अविरति चौथे गुणस्थान पर्यंत जीव शुद्ध चिद्रूपके ध्यानी नहीं होते हैं और व्रती भी नहीं होते किंतु देशविरत पंचम गुणस्थानसे अयोग केवली नामक चौदवें गुणस्थान तक ही जीव शुद्ध चिद्रूप के ध्यानी और व्रती होते हैं। इसलिये चिद्रूपका ध्यान व्रत बहुत थोड़े जीवोंमें होता है।

यद्यपि चौथा गुणस्थान सम्यग्दृष्टिके ही होता है परन्तु ज्ञान मात्र ही होता है, ध्यान नहीं होता। इसका अभ्यास ही होता है सो अभ्यास अवश्य ही करना चाहिये और जो भावनायें है सो ही अभ्यास है। सो वह कैसे करना चाहिये, इसका कुछ संक्षेप करि लिखता हूं। अपने व्रतोंको पालते हुये मुमुक्षुओंको पुद्गलीक शरीरसे भिन्न चैतन्य शरीरी अजर अमर आदि अविनाशी आदि अनन्त गुणोंका अधिकारी आनंद घन चिंतवन करना। जैसे म्यानसे भिन्न तलवार होती है, जैसे सर्प काचुलीसे भिन्न होता है अथवा जैसे शरीरसे वस्त्र भिन्न होता है वैसे ही शरीरसे भिन्न आत्मा है। परन्तु जन यह नहीं जानते कि जीव आत्मा क्या वस्तु है, शरीरमेंसे कैसे निकल जाता है, देखनमें क्यों नहीं आता। तथा जो चेष्टा जीवित अवस्थामें होती थी वह किसकी थी। शरीरसे आत्माकी या दोनोंकी इन बातोंको अज्ञानी नहीं जानते इसको सम्यग्दृष्टि पुरुष ही जानते है।

शरीरमें जो हलन-चलनादि चेष्टा होती है, उसमें उपादान कारण पुद्गल ही है और निमित्त कारण आत्माके रागादिक भाव हैं। इसी प्रकार रागादिक भाव होनेमें उपादान कारण आत्मा है और निमित्त कारण पुद्गलीक कर्मका उदय है। इस प्रकार आत्मा न तो पुद्गलकी क्रियाका कर्ता है और न कर्मोंका कर्ता है और न रागादिक भावोंका कर्ता है। जो रागादिक व पुद्गलीक क्रियाए होती हैं वे सब निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धसे होती हैं। इस वास्ते ज्ञानी मुमुक्षुओंको संसारमें मन, वचन, कायकी क्रिया होय वा रागादिक होय उसमें हमेशा उठते, बैठते, चलते, सोते तथा खाते, पीते, बोलते, बतलाते, देते, लेनदेन करते आदि अनेक कार्य करने और उनमें कर्मोंके उदयसे रागादिक होते हरसमय विचार करते रहना चाहिये—भेद विज्ञान करते रहना चाहिये कि यह पुद्गलकी क्रिया है और इसमें आत्माके रागादिक भाव निमित्त हैं, और जो आत्मामें रागादिक भाव होते हैं उसमें निमित्त पुद्गल कर्म है, ऐसा विचार हरसमय करते रहना चाहिये।

परन्तु इस कथनको वाच सुनकर ही स्वच्छंद होकर ऐसा विचार नहीं पकड़ लेना कि ये क्रिया तो सब कर्मोदयकी है हमारा आत्मा न तो रागादिकका करता है न पुद्गल कर्मोंका कर्ता है, तथा न बंध है न मोक्ष है। ये भाव मिथ्याभाव है। आत्मा तो अपना उपयोगका कर्ता है, पुद्गल कर्मोंका कर्ता यथार्थमे नहीं है। परन्तु संसारी आत्माका उपयोग तीन प्रकारका होता है। एक तो अशुभोपयोग दूसरा शुभोपयोग और तीसरा शुद्धोपयोग।

इनमेंसे अशुभोपयोग और शुभोपयोग इन दोनोंका नाम है। अशुद्धोपयोग सो हेय हैं और त्यागने योग्य हैं और जो शुद्धोपयोग है जो परम वीतराग रूप आत्माका परम शुद्ध स्वरूप है वही उपादेय है। उसीके उपायमें जीवोंको तत्पर होना चाहिये। वही कार्यकारी है परन्तु यह शुद्धोपयोग सहज हीमें नहीं होजाता।

इसके प्राप्त करनेको द्रव्यलिंगी मुनि हजारों भव तपस्या करते २ अनेकवार नौग्रीवक हो आये और ग्यारह अंग तथा नव पूर्वतक आगमज्ञान भी कर लिया परन्तु शुद्धोपयोगकी प्राप्ति न हुई और सुगम है तो ऐसा है कि तुषमात्र भिन्न यह शब्द भी शुद्ध बोलना नहीं जानते है उनको भी प्राप्त होगया अथवा नैगम नयकर कदाचित् तिर्यंचोंको भी होजाता है। यद्यपि शुद्धोपयोग पूर्ण रीतिसे बारहवे गुणस्थानके आदिमें ही होता है और प्रारम्भ सातवे गुणस्थानसे होना है इसवास्ते जबतक शुद्धोपयोग न हो तबतक अशुभोपयोगोंको छोडकर शुभोपयोगरूप प्रवृत्ति रखना चाहिये। क्योंकि जब आत्माका उपयोग स्वभाव है तो तीनो उपयोगोंमेंसे जीव किसी न किसी उपयोगरूप रहहीगा। उपयोग विना एक क्षणमात्र भी नहीं रहेगा। सो शुद्धोपयोग तो सहज नहीं है, शुभोपयोग बड़े प्रयत्नसे करना पड़ता है और अशुभोपयोग विना ही प्रयत्न सहज ही रूप हुआ ही करता है। क्योंकि शुभोपयोगका प्रयत्न न किया जायगा तो अशुभोपयोग ही तो सदा ही होता रहेगा।

यह लेख बहुत बढ़ गया है। इस वास्ते संक्षेपसे इन तीनों उपयोगोंकी कुछ प्रवृत्ति बताये देता हूं। क्योंकि नहीं तो मुमुक्षु अनेक उपयोगको कैसे सुधारेंगे।

शुद्धोपयोग वह है जो परम वीतरागता है और शुक्लध्यान रूप मोह कर्मसे रहित अवस्था व अन्य कर्मोंसे रहित होना जो संसार वा संसारिक भावोंसे व उपसर्ग परीषह अनेक प्रकार होते संते उनको कुछ भी खबर नहीं, वह तो आत्मानुभव आनन्दमें मग्न रहते है। इत्यादि विकल्प जालसे रहित अवस्था है सो शुद्धोपयोग है ॥ १ ॥ और देव पूजा आदि षट्कर्म तथा बारह अणुव्रत तथा ११ प्रतिमा इत्यादि श्रावकव्रत तथा पंच महाव्रत, पंच समिति रूप तेरह प्रकार चारित्र तथा २८ मूलगुण रूप मुनिव्रत आदि अनेक प्रकार शुद्धोपयोग होता है और पांचों इन्द्रियोंके विषयोंमें प्रवृत्ति तथा क्रोधादि रूप प्रवृत्ति तथा हिंसादि पापोंरूप प्रवृत्ति इत्यादि अशुभोपयोग होता है ॥२॥ सो शुद्धोपयोगका पूर्व फल तो मोक्ष है और शुभोपयोगका फल स्वर्गादिक अभ्युदय है तथा चक्रवर्ति आदि राज्य व धनादिक सपदा पंचेन्द्रियोंके सुख और परंपरा शुद्धोपयोगका भी कारण होता है ॥३॥ और अशुभोपयोगका फल नरक तिर्यंचोंके दुःखों तथा मनुष्य पर्यायके दारिद्र रोगादि और फिर शुभोपयोग और शुद्धोपयोग तो अत्यन्त दुर्लभ है जैसे रत्नकी कणी बीच समुद्रमें पड़नेसे दुर्लभ होजाती है।

आश्चर्य है कि दुर्लभसे दुर्लभ सामग्री जिन पुरुषोंको प्राप्त होगई अर्थात् श्रावककी ऊँची ऊँची प्रतिमाओंको धारणकर व मुनिव्रत धारणकर आगमके विरुद्ध प्रवृत्ति करना शिथिलाचारका पोषण करना है। प्रवृत्ति चलाना वचन पक्ष पकड़ना है।

इसलिये मुमुक्षुओंको चाहिये कि शुद्धोपयोगको लक्ष्यमें रखकर उसकी भावना सहित शुभोपयोगमें प्रवृत्ति करना, अशुभोपयोग रूप ही रहना योग्य नहीं। अशुभोपयोग रूप प्रवृत्ति स्वप्नमें भी नहीं लाना चाहिये। इस प्रकार क्रमरूप अव्रतसे व्रतादि शुभोपयोगरूप रहकर शुद्धोपयोगको प्राप्त होकर मोक्ष प्राप्त करें तो उत्तम अतीन्द्रिय सुखको प्राप्त होजाय।

जैन समाजका भयंकर चित्र!

[लेखक.—श्री० पं० परमेष्ठीदासजी जैन न्यायतीर्थ-सूरत ।]

एक दिन वह था कि जैन समाजमें स्वामी समंतभद्र, कुन्दकुन्दाचार्य, और अकलंक जैसे उद्भट विद्वान गुरु थे। सम्राट् चद्रगुप्त, अशोक, खारवेल, कुमारपाल और अमोघवर्ष आदि महाराजा थे। खारवेलकी रानी, मेरुदेवी, सावियब्बे, जक्कमब्बे आदि वीरांगनाएं थीं। भामाशाह, तेजपाल, वस्तुपाल जैसे देशभक्त और दानी थे। तथा धन बल विद्यासंपन्न अनेक महापुरुष थे। किंतु आज हमारी जैन समाज सद्गुरुहीन, प्रभावविहीन, राज्याधिकारोंसे रहित, तथा वीर वीरांगनाओं और विद्वानोंसे शून्य सी है! हमारी समाज सर्वत्र अपमानकी दृष्टिसे देखी जाती है। उसका अब भारतीय समाज या राज्यदरबारमें न तो मान है और न प्रतिष्ठा। लोगोंकी धर्मश्रद्धा उठती जारही है, जातीय प्रेमका लेश नहीं है, उन्नति अवनतिका भाव नहीं है, और झूठा अभिमान, जातिमद तथा अहम्मन्यता बढ़ती जाती है। तात्पर्य यह है कि जैन समाजकी परिस्थिति बहुत ही भयानक होरही है!

जैन समाजकी अंतरंग स्थितिपर विचार करते ही आखोंके आगे अंधेरा छाजाता है! हमारा धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, शारीरिक, आर्थिक, और नैतिक पतन बहुत बुरी तरहसे होता जारहा है। किंतु स्वार्थ बुद्धिके कारण इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं जाता है। प्रति दश वर्षोंमें पौनलाख, प्रतिवर्ष ८ हजार और प्रतिदिन दो दर्जनसे अधिक जैनोंका घट जाना हमारे विनाशका चिह्न नहीं तो और क्या है? हिसाब लगाइये कि इस प्रकार १२ लाख संख्यावाली जैन समाजकी स्थिति कितने दिन और रह सक्ती है?

सबसे बड़ा दुःख तो इस बातका है कि ऐसा भयंकर क्षय होते हुए भी हमारी सामाजिक कुरूढ़ियां बराबर अक्षय हैं! जब भारतीय अन्य समाजोंमें अनेक सुधार होरहे हैं तब हमारी समाजमें बालविवाह, वृद्धविवाह, अनमेल विवाह, कन्याविक्रय, नुक्ता, अपव्यय, धर्म और जाति बहिष्कार तथा मिथ्यात्व, अन्धश्रद्धा एवं अनाचारका प्रचार होरहा है! हालांकि इन विषयोंपर प्रकारान्तरसे कईबार लेख लिखे गये हैं और यह विषय सर्वपरिचित है तथापि अपनी यह विषम हालत पुनः२ कहे विना चैन नहीं पड़ती है, इसीलिये पाठकोंके समक्ष जैन समाजका भयङ्कर चित्र उपस्थित कर रहा हूं।

बालविवाहका परिणाम—

हमारी समाजमें बाल विवाहका विष खूब ही प्रसार कर चुका है। इसीसे सामाजिक और शारीरिक शक्तियोंका विनाश हो रहा है। बाल्यकालसे ही निर्दोष बालक-बालिकायें विवाह बन्धनमें फँसकर अपना जीवन बिगाड़ लेते हैं! उन्हें तद्विषयक ज्ञान प्राप्त करनेका अवसर तो मिलता ही नहीं है, साथ ही वे शारीरिक विकाश और बाह्य विवेकसे भी शून्य रह जाते हैं। जिससे उन्हें भले बुरेका ज्ञान प्राप्त नहीं होने पाता और वे कुकर्मों-विषयवासनाओंमें

फँसकर अपना जीवन बिगाड़ लेते हैं तथा अकाल मरण कर जाते हैं। डाक्टरी रिपोर्टके अनुसार २५ गर्भवती स्त्रियोंमेंसे १० तो मर जाती हैं, १२ जन्म रोगिणी होजाती हैं और मात्र ३ ही कुशल रह पाती हैं।

इसके साथ ही बालविवाहके कारण बालविधवाओंकी संख्या भी भयंकरताके साथ बढ़ती जारही है। सरकारी रिपोर्टसे आपको मालूम होगा कि सभ्य और उच्च कहलानेवाली जैन समाजमें बालविवाहका कैसा लज्जाजनक प्रचार है। इस समाजमें माताकी छातीका दूध पीती हुई एक बरससे भी कम उम्रकी ९१ बच्चियां विवाहित पाई गई हैं! तथा इसी उम्रकी १५ बच्चियां विधवा भी हैं।

आपको आश्चर्य होगा कि इतनी छोटी उम्रमें विवाह कैसे होते होंगे? किन्तु जब आप दक्षिणमें सैतवाल आदि कुछ जैनोंकी यह भयानक प्रथा देखेंगे तब आश्चर्यकी बात नहीं रहेगी, किन्तु लज्जासे मस्तक नत हो जायगा। देखिये, हमारी जैन समाजका विवाहित और विधवाओंकी अल्प आयुका कोष्टक इस प्रकार है:—

आयु	विवाहिता	विधवा
१ वर्षतककी	९१	१५
२ ,,	६५	४
३ ,,	१५६	२३
४ ,,	२०९	२६
५ ,,	३८२	९१
१० ,,	४१४५	४८५
१५ ,,	१८६१६	११३२
१ से १५ वर्षतक	२३६२४	१७३६

यदि आप बालविवाहके इस भयंकर परिणामको देखेंगे तो १५ वर्षतककी १७३६ जैन बाल विधवाओंका और २३६२४ बालविवाहिताओंका जीवन मिट्टीमें मिला हुआ ही है। इतना ही नहीं किंतु उन बालविवाहिताओंसे उत्पन्न हुई संतानें क्षीण, हीन और रोगी होकर समाजकी विनाशक ही होंगी। तथा उन बिचारी विधवाओंकी दुर्गतिका तो कहना ही क्या है? इतना भीषण चित्र सामने होते हुये भी हमारी समाज यदि बालविवाहसे घृणा न करे और उसे न रोके तो हमारा दुर्भाग्य ही समझना चाहिये।

बालविवाहकी राक्षसी प्रथाके कारण हजारों कुटुम्बोंका विनाश होगया है। युवावस्था प्राप्त होनेके पहिले ही वे बाल दम्पति वृद्ध होजाते हैं, अपने जीवनको बिगाड डालते हैं और जल्दी २ माता पिता बनकर भावी संतानका भी विनाश करते हैं। परिणाम यह होता है कि बालक बालिकाओंका प्रतिदिन रोमाचकारी मरण होता रहता है! भारतमें प्रतिवर्ष ६० लाख आदमी मरते हैं। इनमेंसे १५ लाख तो ऐसे बच्चे हैं जो पैदा होनेके एक वर्षके भीतर ही मर जाते हैं। इनमें भी ७॥ लाख पैदा होनेके एक माहके भीतर ही मर जाते हैं। तथा ७॥ लाखमेंसे भी ५ लाख बच्चे उसी सप्ताहके भीतर मरते है! तात्पर्य यह है कि बालविवाहके कारण भारतमें जब २५ प्रतिशत बालक मरते हैं तब बालविवाह विनाशक इंग्लैण्डमें १० फीसदी ही बालक मरते हैं! क्या जैन समाज ऊपरके अंकोंको देखकर आंखें नहीं खोलेगी?

बालविवाह विवाह ही नहीं है—

स्वार्थी माता पिता अबोध बालक और बालिकाओंका गठजोड़ा करके निवृत्त होजाते हैं, पचलोग लड्डू खाकर संतोष मानते है, और पण्डितजी महाराज विवाह विधि कराके कलदार बनाते हैं। किन्तु वास्तवमें क्या यह विवाह है? यदि सच पूछा जावे तो विवाह एक समझपूर्वक अपनी जवाबदारीपर कीगई दोनों ओरकी अटल एवं धार्मिक प्रतिज्ञाका नाम है। लेकिन जहा इस बातका भाव ही नहीं होता क्या वहां विवाहबंधन हुआ माना जायगा?

व्यवहारमें देखा जाता है कि नावालिग (कम उम्रके) बालक बालिकाओंके वचन प्रमाण नहीं माने जाते, तब फिर विवाहके समय नावालिग वर–वधूके द्वारा बुलवाई गई सप्तपदी (सात प्रतिज्ञाए) प्रमाण कैसे कही जासक्ती हैं ! सबसे बड़े आश्चर्यकी बात तो यह है कि वह वर–वधूकी प्रतिज्ञायें विवाह विधि करानेवाले स्वार्थी पंडितजी महाराज बोल दिया करते हैं और उनकी जिम्मेवारी उस अबोध नव–दम्पतिपर लाद दी जाती है ! यह कितना भारी अन्याय है ?

असलमें विवाहका उद्देश्य समस्त वनिताओंको त्यागकर स्वदारसन्तोषी होना तथा अनादि प्रवाहरूप गृहस्थ धर्मका पालन करना है। इस उत्कृष्ट संस्कारसे सस्कारित होकर गृहस्थ अपने धर्मका पालन करता हुआ अन्तमें विरक्त होकर मुनिपदको ग्रहण करता है। यथा—

अन्यांगनापरिहृतेर्निजदारवृत्ते-
धर्मो गृहस्थजनताविहितोऽयमास्ते ॥
नादिप्रवाह इति संततिपालनार्थ-
मेव कृतो मुनिवृषे विहितादरः स्यात ॥३॥
—जैन विवाहविधि।

यदि सच पूछा जाय तो बालविवाहमें न तो यह उद्देश्य ही रहता है और न अबोध वर–कन्याको अपने इस महान् उत्तरदायित्वका ज्ञान ही होता है। तब फिर जबरदस्ती उन दो प्राणियोंको बाध देना कितना भयंकर अन्याय है।

विवाह समयकी सप्तपदीसे यह स्पष्ट प्रगट होता है कि वर-वधूको इतना वयपूर्ण, समझदार और गृहस्थ पदके योग्य होना चाहिये कि जो अपने कर्तव्यको जान सके, जवाबदारीको पहिचान सके और परस्पर प्रतिज्ञाबद्ध होसके। जहा इतना विचार नहीं हो सकता वह बालविवाह विवाह ही नहीं है। कारण कि वे बाल वर-वधू समझपूर्वक प्रतिज्ञाबद्ध नहीं होते हैं ! मगर दुःखका विषय है कि स्वार्थान्धताके सामने इन महत्वपूर्ण बातोंका विचार भी नहीं किया जाता है। तथा जैसे तैसे विवाहका तमाशा कर लिया जाता है ! यही कारण है कि भावी गृहस्थ जीवन रोग, शोक, कलह, द्वेष और दुःखपूर्ण व्यतीत होता है। अपूर्ण वयमें ही पति-पत्नीका वियोग होजाता है। उनकी सन्तान भी शक्तिहीन होकर मर जाती है। माता पिताका शरीर नाश होजाता है, और गार्हस्थ्य जीवन नारकीय जीवन बन जाता है। यदि बालविवाहको छट्ठा पाप कहा जाय तो कोई अन्युक्ति नहीं होगी।

वृद्ध विवाह—

जैन समाजमें वृद्ध विवाहका भी कम दौरदौरा नहीं है। योग्यता और अयोग्यताका विचार न करके जहां रुपयोंकी थैलियोंका ही विचार होता है वहाके अन्यायका फिर क्या पूछना ? स्वार्थी नर-पिशाच माता पिता जब अपने हाथोसे पालीपोमी गई, प्यार और लाड़ की गई तथा खिलाई पिलाई गई प्राणस्वरूप कन्याको एक सत्वहीन वृद्धके साथ बाध देते हैं तब उन नरराक्षसोंका हृदय कितना कठोर बन जाता है तथा उस कन्याका अंतरात्मा क्या कहता होगा यह सर्वज्ञ ही जाने ! अथवा जिनके हृदय है वे पहिचाने !

इस राक्षसी एवं आसुरी प्रथाने जैन समाजके नाश होनेमें पूरी सहायता की है। अन्याय, अनर्थ, कलह, व्यभिचार, और न जाने क्या २ बवाल इसीके द्वारा हुए हैं। एक तो जैन समाजमें कन्याओंकी सख्या कुँवारोंकी अपेक्षा बहुत कम है, फिर भी स्वार्थी बुड्ढे एकपर एक कन्याये हड़पते जाय यह कितने अनर्थकी बात है ! ऐसा होनेसे सुयोग्य युवकोंको सदा कुँवारा रहजाना पड़ता है और बुड्ढे बाबा रुपयोंके बलपर व्यर्थ ही एक खिलौना घरमें लेकर बैठ जाते हैं ! वह

बिचारी कन्या बुड्ढेके घर जाकर अपने भाग्यको रोती है, मा बापको कोसती है और पंचोंको गालियां देती हुई अविवाहिता या विधवाकी भांति अपना जीवन व्यतीत किया करती है !

अपन व्यवहारमें देखते हैं कि एक छोटा बालक या बालिका गायके छोटे बछड़ेसे जितना प्रेम करती है उतना बैलसे प्रेम नहीं होसकता। जो प्रेम बराबरीवालेमें होता है, बड़ोंसे वह मुहब्बत नहीं होती, यह बात स्वाभाविक है। मगर स्वार्थी माता पिता अपनी अबोध कन्याको एक खूसट बुड्ढेके गलेसे बांधते समय तनिक भी नहीं हिचकिचाते। और बुड्ढे बाबाको उस नादान कन्याको घसीटते समय शर्म नहीं लगती है! आप इस बातपर विचार करिये कि जैसे एक युवतीका बुड्ढेके साथ विवाह कर दिया जाता है उसी प्रकार यदि एक युवकका किसी बुड्ढीके साथ विवाह किया जावे तो उसे कैसा मालूम होगा ? जैन समाजमें ४० वर्षकी ३७० कुमारियां मौजूद हैं क्या कोई १८ वर्षका युवक उनमेंसे किसीके साथ विवाह करना स्वीकार करेगा ? अगर नहीं तो फिर १२ वर्षकी कन्याका ५०-६० वर्षके बुड्ढेके साथ गटजोड़ा क्यों कर दिया जाता है ? क्या कन्याओंके प्राण नहीं है ? उनके जीवन नहीं है ? उनमें प्रेम नहीं है ? खेद है कि स्वार्थी पुरुष-समाज दोनों ओर समान दृष्टिसे नहीं देखती।

भयंकर परिणाम—

इस वृद्धविवाहका सबसे भयंकर परिणाम विधवाओंकी वृद्धि है ! जैन समाजमें १५ वर्षतक की १७२१ और १५ से २० वर्षकी २६६७ तथा २० से २५ वर्षकी ५७८१ और २५ से ३० वर्ष तककी ९३७१ विधवाएं हैं ! अर्थात् कुल ३० वर्षतककी १९५४० विधवाएं जैन समाजमें मौजूद हैं ! इसमें वृद्ध विवाह ही मुख्य कारण समझना चाहिये। दयाधर्मकी पालक जैन समाजमें ५०-६० वर्षके बुड्ढे रुपयोंके बलपर १२-१३ वर्षकी बालिकाओंके साथ विवाह करते हैं और बड़ी २ पगड़ीवाले पंच परमेश्वर उसमें शामिल होते हैं यह कितनी लज्जाकी बात है ?

विधवाओंकी दुर्दशा—

एक ओर तो इस प्रकार विधवाओंकी वृद्धि होती रहती है और दूसरी ओर उनके साथ पशुतुल्य व्यवहार किया जाता है ! जिसका परिणाम यह होता है कि या तो उन बिचारी अबलाओंको विधर्मी होजाना पड़ता है या वे आत्मघात करनेके लिये कुआ नदी या तालावके घाट उतर जाती हैं ! समाजमें ऐसी घटनाएं तो नित्य नई हुआ ही करती हैं। तथा जैनियोंको यह सब देखते देखते अभ्यास होगया है, इसलिए विधवाओंका विधर्मी होजाना या आत्मघात करलेना एक साधारण सी बात होगई है ! आखिरकार उन बिचारी अबलाओंको दूसरा मार्ग ही तो नहीं रहता, इसलिये वे इसके अतिरिक्त और क्या कर सकती हैं ! वृद्ध-विवाहके भयकर परिणामोंका वर्णन करनेकी सामर्थ्य इस कलममें नहीं है! इस नारकीय कृत्यका समाजमेंसे कब काला मुंह होगा यह अनुमान नहीं किया जासक्ता। (अपूर्ण)

મિત્ર.

(લેખક.-પ્રભાવતીબ્હેન, શ્રાવિકાશ્રમ સોજીત્રા.)

દરેક મનુષ્યને આનંદ, સુખ તથા શાન્તિ આપનાર જગતમા ત્રણ વસ્તુ છે—એક મિત્ર, બીજું સંગિત, અને ત્રીજુ વનસ્પતિ ગાયન કાનને અતિ પ્રિય લાગે છે, ઘણો હર્ષ થાય છે અને મન પ્રફુલ્લ બને છે. વનસ્પતિ આંખને ટાઢક આપે છે અને હૃદયમાં શાન્તિ આપે છે. પણ આ બન્ને કરતાં મિત્ર વધારે સુખ, આનંદ અને શાન્તિ આપનાર છે. મિત્ર વગર કોઇ પણ માણસ જોઇએ તેવો સુખી થઇ શકતો નથી, ખરી શાન્તિ, અત્યંત આનંદનો ભોગી પણ નજ મેળવી શકે.

મિત્ર કેવો જોઇએ ?

જ૦ આપણે સોનું લઇએ છીએ, તે કસોટી પર ઘસીને લઇએ છીએ. નવા જમાનામા પતિ પત્નિનો સબંધ કરે છે તે પણ ગુણ દોષની ઓળખાણ કરીનેજ સંબંધ જોડે છે ગમે તે વસ્તુનો સંગ્રહ કરતા કે ખરીદના પહેલા તે કેવી છે તે તપાસવુ પડે છે તપાસીનેજ ગ્રહણ કરીએ છિએ એમ કહુ તો વાંધો આવશે નહી. જ્યારે દરેક વસ્તુ માટે એ નિયમ લાગુ પડે છે ત્યારે મિત્ર કરવો એ પણ તપાસીને અને તેના ગુણ દોષ જાણીનેજ કરવો જોઇએ એમ ન થાય તો કેટલાકને ઘણી વખત પસ્તાવાનો વખત આવે છે.

મિત્ર સદ્‌ગુણી, નિર્લોભી, અટળ-પ્રેમી, નિસ્વાર્થી અને સારે રસ્તે દોરનાર હોવો જોઇએ જેનામા આવા ગુણ છે તેજ સન્મિત્ર છે નહિ તો પોતાનો સ્વાર્થ સાધનાર, આપદ્‌ કાળે દૂર ખસનાર, કપટી કે લોભી હોય તે મિત્ર નહિ પણ શત્રુજ છે. મનુષ્યના ગુણ દોષની પરીક્ષા સહવાસથી થાય છે માટે મિત્રતા કરતા પહેલાં તેની સાથે વસી તેના ગુણ દોષની પરીક્ષા કરી લેવી ખાસ જેને પતિપત્ની રૂપે જોડાવવું હોય તેણે તો આનો ખાસ વિચાર કરવાનો હોય છે કારણ આખી જીંદગી એની સાથે ગાળવાની હોય છે. પતિ પત્ની એ પણ એક બીજાના મિત્ર હોય છે. કેટલાક માણસો પરીક્ષા માટે નવ જુવાનોને વખત આપે છે પણ જુના જમાનાના લોકોને એ રીત પસંદ નથી પડતી.

મિત્ર શા માટે જોઇએ ?

જ—દરેક માણસને ઘણી વખત ઘણા ઘણા સંકટો આવે છે તે સંકટોને દૂર કરવા, હૃદયને શાન્તિ પમાડવા, મનને આનંદથી ભરપૂર ભરવા, અને સારે માર્ગે જવા સારૂ સલાહ પૂછવા માટે મિત્ર જઇએ ગમે તે વાતે મન અકળાઇ ગયું હોય તો તે અકળાયલા મગજને શાન્તિ આપનાર પણ તેજ છે. ખરે ! તેના વગર તે વખતે બીજુ કોઈ શાન્તિ ને મરજ આપવા સમર્થ નથી. કારણ કે જે વિચાર માતાને ન કહી શકીએ, પિતાને ન કહી શકીએ કે બીજા કોઇપણ ઘર કુટુંબીઓને ન કહેવાય તે એક મિત્રનેજ કહેવાય છે. બન્નેના વિચાર મળતા હોય છે, કદાચ જુદા હોય તો પણ તેમાં સાદશ્યતા લાવવા પ્રયત્ન કરાય છે, અને એક બીજા એક સલાહથી કામ કરે છે. આગ જ્યારે થાય ત્યારે મનનો ભાર તદ્દન હલકો થઇ જાય છે. મિત્રને પોતાની ગુપ્ત વાત કહેવામા ભય હોતો નથી કે લજ્જા આવતી નથી અને કોઇ વાતનો સંકોચ પણ થતો નથી. બે મિત્ર પરસ્પર પોતાના હૃદયનો ખુલાસો ખુલા દિલથી વાત કરીને કે પત્ર લખીને કરે છે.

મિત્ર બે પ્રકારના હોય છે—

એક સ્વાર્થ સાધનારા, કપટી હોય છે, અને બીજો નિઃસ્વાર્થ રીતે પ્રાણ અર્પણ કરનાર હોય

છે જે સ્વાર્થી હોય છે તે હંમેશા પોતાનો સ્વાર્થ કેમ સધાય તેમાંજ પોતાના વિચાર જમાવી બેઠેલો હોય છે. તે પહેલાં તો એટલો બધો પ્રેમ દેખાડે છે કે જાણે આપણે બન્ને એકજ છીએ પણ સ્વાર્થ સધાય એટલે ધીમે ધીમે દૂર ખસવા મંડે છે. નીચે કહ્યા પ્રમાણે તે પોતાનો સ્વભાવ પ્રગટ કરે છે:-

दुर्जनः प्रियवादी च नैतद् विश्वासकारणम्।
मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदये तु हलाहलम्॥

અર્થ—જે દુર્જન માણસ છે તેનાં વચનો પર કોઇ કાળે વિશ્વાસ રાખવો નહિ, કારણ કે તેમના જીભ પર મધુ હોય છે (એટલે સારા સારા પ્રિય વચન બોલી બીજાને ઠગે છે) અને તેના હૃદયમાં તો તત્કાળ મૃત્યુને પ્રાપ્ત કરનાર વિષ હોય છે. (એટલે તેના મનમાં એટલો દગો હોય છે કે સામાનું બૂરું કરવા જરીએ પાછી પાની કરતો નથી ન તરત પેલાને ખરાબ સ્થિતિમાં આણી મૂકે છે) તેથીજ સાધુ પુરૂષોને પણ આવા દુર્જનનોજ ભય હોય છે તેઓને બીજા કોઇનો ભય હોતો નથી. આવા થોડા દિવસોની સ્વાર્થી અને કપટી મિત્રતાને પણ ધિક્કાર છે. ગુણ દોષની પરીક્ષા ન કરી હોય તો વિપરીત પરીણામ આવે છે. સદ્‌ગુણી મિત્ર મળ્યો હોય તો શુદ્ધ પ્રેમમાં હંમેશા બન્ને મિત્ર ઝુલતાંજ રહે છે મિત્ર માત્ર બે અક્ષરનુંજ નામ છે પણ તેમાં શું રસજ્ઞતા ને એકતા ભરાયલી છે તે સમજાતુ નથી.

शोकाराति परित्राणं, प्रीति विश्रंभभाजनम्।
केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरं द्वयम्॥

અર્થ—શોક અને દુખને દુર કરે છે. સાચા મિત્રની પ્રીતિ વિશ્વાસને પાત્ર છે, કોણે આ બે અક્ષરનું મિત્ર રત્ન પેદા કર્યું હશે! કહો જોઇએ.

જો કદાચ કોઇનો કુમિત્રથી પ્રસંગ પડયો હોય અને તેની સાથે અલ્પજ્ઞાની, અધુરું ભણેલો જોડાયો હોય તો તે મૂર્ખ મિત્ર તેને પોતાના બળે કરી પોતાના જેવો અજ્ઞાની, મૂર્ખ અને કુઆચરણી બનાવી દે છે કારણ કે જેના તરફ વધારે બળ હોય તેના તરફ તેનું વલણ આપો આપજ થાય છે જો સારો સદ્‌ગુણી મિત્ર મળ્યો હોય અને તેની સાથે સાધારણ ગુણવાળો જોડાય તો તે પણ સારો કે ઉત્તમ થઇ જાય છે. લોઢું જો પારસમણીનો સ્પર્શ કરે તો તે સુવર્ણરૂપ ધારણ કરે છે. આ ઉપરથી સ્હેજ વિચાર આવશે કે "સોબતે અસર અને તુકમે તાસિર." બીજો એક અનુભવ છે કે જે માણસ જેવો હોય તેને તેવીજ સોબત મળે છે કુદરતેજ સારાને સારી સોબત ગમે છે ને હલકટોને હલકટ સાથે ગમે છે વિદ્વાનને વિદ્વાન સાથે ગમશે, અભણને અભણ સાથે દોસ્તી થશે. વ્યસની લોકોને વ્યસની સાથે ફાવશે. એ કુદરતી નિયમને તોડવા કોઇ સમર્થ નથી.

સારા મિત્રથી ફાયદા અને ઘણોજ આનંદ પ્રાપ્ત થાય છે. જો કોઇ કુરસ્તે દોરાતો હોય તો તેને સુધારી સારે રસ્તે દોરે છે. અજ્ઞાન હોય તેને સુવિચાર સુઝાડી જ્ઞાન આપી સજ્ઞાન કરે છે. કોઈ નાના નાના અવગુણો હોય તો તેને પણ હંમેશા ટોકતા રહી સુધારવા તરફ તેનું મન સતત પ્રયત્ન કરે જાય છે. તે સારો મિત્ર એજ વિચાર કરે છે કે મારા જેવો તે ક્યારે થાય. ખરો મિત્ર જે હોય તે એક વખત બાંધેલી મૈત્રી તોડવા કોઈ કાળે ઇચ્છતો નથી. કહ્યું છે કે 'પિંડાની બરેલી પ્રીત તોએ કરે પંડિત, દુઃખ પામે તોએ ન્હાય ના ઘટી" ખરો મિત્ર ગમે તેવી અવસ્થામાં પણ પોતાના મિત્રને તજતો નથી. ગરીબ હોય કે ધનવાન હોય, સુખી હોય કે દુખી હોય અથવા બીજી કાંઇ પણ ગમે તેવી ભારે આપત્તિ આવે તોપણ તેને તે છોડતો નથી.

उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे शत्रुविग्रहे।
राजद्वारे स्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः॥

અર્થ—ઉત્સવમાં, વ્યસનમાં, દુકાળમાં, શત્રુ સાથે લડાઇમાં રાજદરબારમાં, અને સ્મશાનમાં પણ જે સાથેજ રહે છે તેજ ખરો બન્ધુ છે

મિત્રના સહવાસનો વિચાર કરવાથી પણ અતિશય આનંદ થાય છે. તેનો સહવાસ અત્યંત પ્રિય થઇ પડે છે. અને એનાથી જરીએ દૂર ખસવાનું મન થતું નથી. મિત્રના સંયોગથી આનંદ થાય છે. તે વખતના હૃદયની લાગણીને જણાવવા ખરેખર મારી પાસે શબ્દો પણ નથી સતત તે અટળ પ્રેમમાં મગ્ન થઇ રહે અને તાદાત્મ્યરૂપ ધારણ કરવા ઇચ્છે છે.

જેટલું તેના સહવાસમાં સુખ આનંદ હોય છે તેટલુંજ તેના વિરહમાં દુખ થાય છે અને તે દુખથી હૃદય અત્યંત બળ્યા કરે છે. તેના વિના આખું જગત શૂન્યતામાં સમાઇ જાય છે.

પ્રેમ બે પ્રકારનો હોય છેઃ—એક સંસારિક ઘર કુટુંબનો પ્રેમ અને બીજો પ્રભુપ્રેમ સંસારિક પ્રેમમા અચળતા હોતી નથી પ્રેમથી થોડીવાર સુખ થાય છે અને થોડી વારમાં દુઃખ આવી પડે છે, જરીવાર શાન્તિ મળે છે, અને લાંબો વખત આકુળતા ભોગવવી પડે છે, કેટલીક વખત હર્ષ થાય છે અને કેટલીક વખત શોક થાય છે પણ પ્રભુ પ્રેમમા આ કશીએ ક્રિયાઓ થતી નથી ત્યા તો ફક્ત સુખ, શાન્તિ, નિરાકુલતા અને આનંદ થાય છે, અને એ આનંદથી કેટલીક વખત રોમાંચ થઇ આવે છે. પ્રભુ દર્શન થતા આખું શરીર તનમન પ્રફુલ્લ બની જાય છે, સંસારિક પ્રેમમાજ મિત્રપ્રેમનો સમાવેશ થાય છે.

મિત્રના સંયોગ તથા વિયોગનું દૃષ્ટાંત.

એક મિત્રની બીજા મિત્ર પ્રત્યે જેમ દોસ્તી હોય છે તેમ દૂધ અને પાણીની ભાઇબંધી હતી. એક દિવસ એવું બન્યુ કે કોઇએ દૂધને ઉનું કરવા મૂક્યું. દૂધ ઉનું થવાથી તેમાનું પાણી બળી ગયું ને દૂધ એકલું રહ્યું દૂધે વિચાર કર્યો કે મારો મિત્ર તો ગયો, હવે મારે રહી શું કરવું ! એમ વિચારી દૂધે ઉભરાવવા માંડ્યુ. દૂધ ઉભરાવવાથી લોકોએ તેમા સહજ પાણી રેડ્યુ ત્યારે મિત્રના સંયોગથી દૂધ શાન્ત થઇ નીચે બેઠું. અહા ! કેવી મિત્રતા ! મિત્રતા જોઇએ તો આવીજ જોઇએ. એકતા વિના મિત્રતા કંઇજ કામની નથી.

કેટલાંકની મૈત્રી ઘણો લાંબો વખત કે જન્મ સુધી ટકી રહે છે, અને તેજ મિત્ર બીજા ભવનો પણ સંગાતી થાય છે, અથવા થવું શક્ય, છે. આ ભવમા પણ જે કોઇની સાથે પ્રેમ બંધાયો હોય છે તે પણ પૂર્વ ભવના સંસ્કારથીજ બંધાય છે. માણસ કંઇ કરી શકતા નથી, માત્ર પહેલાનાજ સંસ્કાર એક બીજાના હૃદયનું વલણ કરી એક બીજાને ગાઢ સંબંધમા જોડે છે. ખરૂં જોતા નિશ્ચય પર દૃષ્ટિ ફેંકતા તો કોઇ કોઇનું છેજ નહિ પણ વ્યવહાર દૃષ્ટિથી કોઇપણ માણસ સલાહ પૂછવા જોઇએ છે. હૃદયના ભાવ ગમે તેને કહેવાથી ઘણી વખતે નુકશાન પહોંચે છે. માટે જો એકજ સ્થાન હોય તો તેથી આપણને હાનિ પહોંચતી નથી.

છેલ્લે એજ લખવાનું કે દરેક માણસને કોઇપણ એક સદ્‌ગુણી માણસ સાથે સંબંધ જોડવો જોઇએ, કારણ કે તે આપણને અનેક વિપત્તિ કાળે ધીરજ, શાન્તિ અને ગમે તે વાતે અથવા પૈસે ટકે પણ મદદ કરે છે. એકલાથી કંઇ કામ સારૂં થઇ શકતું નથી માટે દરેકને મિત્રની જરૂર છે.

આપણી ફરજ.

મોહનલાલ મથુરાદાસ શાહ—કપાસા.

સ્વદેશી જન સ્વદેશની જો હોય હૃદયે લાગણી,
ઉદય થતા આ વર્ષમાં, સ્વદેશીની ક્યો આખડી.
ભારત તણા જે થાંભલા તે, જેલમાં આજે સડે,
છે ફર્જ આજે આપણી પરદેશીને કો નવ અડે.
જ્યારે થશો સ્વદેશી જન, સ્વદેશીના રસ ધારશો,
સ્વરાજ્ય ત્યારે પામશો, સંશય નહિ કાંઇ લેશ તો.
નવ વર્ષના નવલ પ્રભાતે, આપ સૌ ઉદ્યમ કરો,
સત્કર્મથી મન મેળવી, સ્વદેશ અર્થે વાપરો.

પરણુવાવાળો!

'એક હાસ્યકટાક્ષમય સ્કેચ.'

(લેખકઃ-ચંદુભાઇ, દિ. જૈન બોર્ડિંગ, ઇડર.)

"વર તો પરણું પરણું કરી રહ્યો રે,

વર તો ઘોડે ચઢીને ચાલીયો રે"—વર તો.

શિયાળાની રાત્રિ હતી. થંડી એવી કકડતી પડતી હતી કે ઘરને ખુણે સોડીયું વાળી પડી રહેવાનું ગમે. આવા સમયે પણ ઇડરનો એક માઢ સ્ત્રીઓના મધુરી ઘંટડીશા ગીતથી ગાજી રહ્યો હતો. લગ્ન મ્હાલતા માનવીને આવી થંડીની જરાએ પરવા નહોતી એમ આથી સ્હેજે લાગતું.

ઉપરનુ ગીત વરપક્ષની સ્ત્રીયો અતીવ જોરથી ગાઇ રહી હતી, ને તેથી સૌ કોઇને વરરાજાને પરણુવાના કેટલા કોડ હોય છે અને પરણી પડવાની કેટલી ઉતાવળ હોય છે તે સમજાતું હતું. અથવા બીજી રીતે કહીએ તો લગ્નને હિંદુજાતિ કેટલા મહત્વનું ગણે છે તેનું ભાન થતું હતુ.

જુવાનને કદાચ ઝટ પરણુવાના કોડ થતા હશે પણ ૪૫-૫૦ વર્ષની ઉંમરના આદમીનેએ શુ એવાજ કોડ થતા હશે? ત્યારે શું એ નકામો 'પરણુ-પરણુ' કરી રહ્યો હશે, કે સ્ત્રીયોએ ખાલી બંધ બેસતુજ કર્યું હશે?

એ તો એક વણઉકેલ્યો કોયડો રહ્યો છે

વરરાજાને સામૈયુ કરી કન્યાના માંડવે સાજનીયા લેવા આવ્યા હતા. કોડીલા સાસુજીએ વરરાજાને પોંખ્યા, ને તેમને વહુરાણીના માંડવે જવાનો પરવાનો મળ્યો.

થોડેક દૂર નગરકન્યાઓ આ સુંદર વરને નીરખી રહી હતી, અને ૪૫ વર્ષની ઉંમરે ૧૪ વર્ષની આશાભરી બાલા માટેની તેની ઉમેદવારી યોગ્ય હતી વા નહીં તેનું માપ આંકતી હતી. તેમની નજર વારંવાર વરરાજા ઉપર પડતી અને ઉમેદવાર તરીકે બહાર પડવાની તેમની ચોકખી નાલાયકી માટે તીરછી દ્રષ્ટિ નાખતી.

"અલી, કહે છે કે વૃંદાનો ભાઇ રમેશ અમદાવાદથી કોલેજ છોડીને આજે આવ્યો ને એ આ લગ્ન ન થવા દેવાની કોશીશ કરી રહ્યો છે. વૃંદા તો બિચારી ચાર દિવસથી નથી ખાતી કે નથી પીતી. આજે સ્હેજ રમેશે આવો ખવરાવ્યું ત્યારે ખાધુ. શી બાપડીની દશા!"

"બાપ, એ છોકરો છે તો પહોંચેલી માયા. ચોક્કસ એ કાંઇ નવાજુની તો કરવાનોજ."

"આજકાલના તે છોકરા! ધારે તે કરે. આ જોને, નિશાળે ભણુવા જાય ત્યા કલાસમાં ઢેડના છોકરા સાથે બેસે ને ઘેર આવી ન્હાવાનું કહીએ તે પહેલા તો આટલી ને રસોડામાંજ ઘૂમી વળે! ધરમ ને કરમ મુકયા નેવે"

"એ તો હવે આ પંચમ આરો છે એટલે એમજ (!) ચાલવાનું પણ રમેશ વૃંદાને બચાવે તો તો આપણને ગમે બિચારી ઘરડા ખુવડ જોડે શી જીંદગી ગાળશે"

"હાસ્તો, બા, પણ મ્હને કોઇ એવા વર સાથે પરણુવેને તો રોયા ને...જ ફૂટી નાંખુ."

'ત્હારોએ વારો આવશે, જો આ વૃંદા ન બચી તો. પણ તેં બીજી વાત જાણી કે?"

"શું?"

"આ વેવીશાળના દાપાના ત્રણ હજાર રૂપીયા ઠરાવ્યા છે. તેમાના અર્ધા તો વિવાહ કરતી વખતે મળ્યા છે ને અર્ધા લગ્ન પુરૂં થએ મળશે."

"ત્હને કોણે કહ્યું?"

"લે, કર વાત, ફીકાના બાપુએજ તે વળી, એ જરા બધા ગામના ગોવાળ છે, એટલે બાતમી ઠીક મળતી રહે."

"તોબા, પૈસા ખાતર માબાપ ગરીબડી ગાય જેવી દીકરીઓને આ માટે વેચતા હશે! જો આ લગ્ન થયાં તો બીજી બધીઓની માઠી દશા!"

'બાપુ, કુદરત રમેશભાઇને મદદ કરે, ને આ લગ્ન અટકે."

"હા, અમે પણ એજ પુચ્છીએ છીએ."

"પણ બા, આજે ધમાલ તો જરૂર થવાની. માબાપ આગળ રમેશ શું કરવાનો વારૂ ?"

"એજ છે ને ! આપણે તો જે થાય તે જોવાનું રહ્યું, ને સર્જનજૂની સમાજની ભીષણ ચક્કીમા કાળે અકાળે પીસાવાનુ રહ્યુ."

આ મડળીમાં જે કુમારિકાઓ હતી તેમના કાળજા કપી ઉઠ્યા, ઉડે ઉડે નિશાસાના શ્વાસ લીધા. એટલામાં તો સામૈયુ ઉપડ્યું, ને લગ્ન મડપે જઇ પહોચ્યું.

(૨)

આ તરફ વૃદા ઘરની પાછળની બારીએ રડતી કકળતી બેઠી હતી તેની જીદગીનું નૂર ઉડી ગયું હતુ તેના ચેહેરા ઉપરથી યૌવનને સુલભ્ય એવી લાલિમા ચાલી ગઈ હતી, દૂર દૂર સમાજ અગ્નિની પ્રચડ જ્વાલા જૂથમા

"બ્હેન ! વૃદા, ગભરાઇશ નહી. જો, હવે હું કહુ એટલું કરી દે ત્હારાં બધા કપડા મને આપ ને તું આ કમલા બ્હેન સાથે મનહરને ત્યા ચાલીજા. ત્હારો વેશ આજે હું ભજવવાનો છું." રમેશે કહ્યું.

"મારે માટે તું શા માટે હેરાન થાય છે ? હુ જાણુ છુ કે ત્હેની મ્હારી સાચી દાઝ છે. પણ, ભાઈ મારૂ જે થવાનું હશે તે થશે. તું નકામી વિટંબણામા શા માટે પડે છે ?"

"ગાડી, આ વાદવિવાદ કરવાનો વખત નથી કમલા બહેન લઇ જાઓને એને ?"

"આ ભાઈ .....ભાઇ હોય ના ત્હારા જેવોજ હજો..."

"રમેશ ભાઈ, અમે જઇએ છીએ, અમારૂ કામ અમારે પાર પાડવાનું, પણ ત્હમારૂ અટપટું છે. ધ્યાન રાખજો કોલેજમા ઉત્સવો વખતે હોશી આરીથી આનો વેશ ભજવી જતા હતા પણ આજ તો એ અનુભવ પ્રત્યક્ષ જીવનમા ઉતારવાનો છે. આજેજ ત્હમારી કસોટી છે." મનહર બોલ્યો.

"મનહર, તમે જરાયે ચિન્તા ન કરો; એ બધા ગમારોને હુંજ સીધા કરવાનો છું. ત્હમે જલદી જાવ, હમણાં પાછી કન્યાની પધરામણીની બૂમ પડશે, ને કોક આવશે. મ્હેં તો કપડા પ્હેરી લીધાં છે કાં, બરાબર લાગુ છુને વૃન્દા જેવીજ !

(બધાના ગાલ ઉપર હાસ્ય લહરી પ્રસરી રહે છે. પાછલી બારી વાટે વૃંદા, કમલા ને મનહર જાય છે.)

"કન્યાનો મામો કન્યાને ચોરીમા લઇ પધારે," સોહાગર ગોરની (અલબત્ત આવા સાટા ચોકઠા બેસાડી આપનારની !) બૂમ પડી, ને મામા હરખભેર ઘરમા ભાણીને લેવા આવ્યા

'બ્હેન, વૃદા ' ડાહી થઇ છે ને જોજે હો ! ગાંડી થતી મા, ને ત્યાં આગળ રડતી બડતી નહીં, નહીં તો આપણી આબરૂ જશે."

પરતુ વૃદાબ્હેન એવા મૂર્ખી નહાના કે જરાએ હઠ કરે કે જવાબ આપે. મામા સમજ્યા કે ભાણી સમજી ગઇ છે. ધીમે રહી કન્યાને ચોરીમાં લાવી બેસાડી મગળ ફેરા ફરવાનો વખત થયો, એટલે વરકન્યા ઉઠ્યા. ત્રીજે ફેરો ફરતી વખતે વરરાજા જરા ચાલાકી બતાવવા ગયા એટલે આસ્તે રહીને ખબર ન પડે એમ વૃંદાએ પગમા આંટી પાડી ને વરરાજા નીચે ગબડ્યા. બધે હસાહસ થઇ રહી સારે નશીબે અગ્નિમાં ન પડ્યા, નહીંતર લગનમા વઘન જાગતે

અને છેવટે લગ્નક્રિયા પુરી થઇ, ને વર કન્યાની જોડી જાનીવાસે આવી પહોચી.

લોકોને ભય હતો કે આજે લગ્ન વખતે રમેશ કાંઇનું કાંઇ તોફાન કરવાનોજ.

"એલ્યા, આવ્યો ત્યારે તો મોટી બૂમો પાડતો હતો ને ખરી વખતે એ ક્યાં છૂપાઇ ગયો ?" એકે ટોકાર કરી.

"ભાઇ દામ કરે કામ ને...કરે સલામ."

"એને બી કલદારનો મોહ લાગ્યો ખરો. ત્રણ હજાર કોને ખારા લાગે !"

"આ તો બાબુજ સારૂ થયું કહેવાય."

"વૃન્દાનો ભવ બગડયો એટલું માઠું, બાકી એનાં માબાપ તો એ લોહીના પૈસા ઉપર ગાગડધીન્ના કરવાના"

"એવા ધનમાં અગ્નિ પ્રગટો, કોઇ એવા પૈસાથી તાલેવન્ત થયું નથી ને થવાનું પણ નથી"

\+ + + +

"રમા, ત્યારે એ રમેશ ક્યાં છૂપાઈ ગયો. આવ્યો ત્યારે તો ખૂબ ધમપછાડા કરતો હતો."

"એ તો આજકાલના જુવાનીયા, થાય કાંઇ નહીં, કરે કાંઈ નહીં અને બોલે ઝાઝું."

"ત્યારે એને પહેરાવોને બંગડીઓ ! રૂપાળા મરદ જાયા છે મરદ. થૂ પડો એમની..." એક જરા ગભરાટ જણાતી યુવતિ બોલી.

(૩)

"વરરાજાને ઓળખો છો કે ?"

"ના."

"ત્યારે ઓળખાવા પડશે, નહિ ચાલે ?"

"બીલકુલ નહીં."

પુરી ૪૫ વર્ષની ઉંમર, વાળ ધોળા થયા હતા પણ કલપ લગાડી જુવાન જેવા કાળા બનાવી દીધા હતા દાંત પડી ગયા હતા પણ પણ ચોકઠું બેસાડી મોના ખાડા ને તે દ્વાર બોડપણ છુપાવવાના પ્રયત્ન કર્યા હતા આમ તો કટીભાગને નમાવી ચાલતા પણ આજે તો જુવાન બની ૧૪ વર્ષની ઉગતી કળીને પરણવા આવ્યા હતા એટલે ટટાર બેસતા ને ચાલતા. અલબત એમ કરવામાં મહેનત તો જરૂર પડતી ને હાંફ પણ ચડતોજ.

આવા ડૂટડા વરરાજા આજે જુવાન બાલાને પરણી લાવ્યા હતા, એટલે એમના આનંદની અવધી ન્હોતી. ક્યારે રાત્રિ પડે અને દેવીની નવધા ભક્તિ કરૂ એજ એ કલ્પી રહ્યા હતા

ઉજાગરાને લીધે બધા ધીમે ધીમે ઉંઘી ગયા. લાડકોડા વરરાજાએ શયનમંદિર તરફ ધીમા પગરણ કર્યાં. બારણું ખુલ્લું હતું, ને શૈયામાં વૃન્દા સૂતેલી હતી.

"પ્રિય ! ઉંઘો છો શું ?" આર્ય પુરૂષને છાજે એવી ભાષામાં તેમણે બોલવું શરૂ કર્યું.

પણ કોણ બોલે દેવ !

"વ્હાલી, વૃન્દા, હું...ત્હારો...ત્હને બોલાવુ છું, જરા...જરા મીઠું હાસ્ય તો ફરકાવો ?"

ત્હોયે શાંતિ વૃન્દા બોલેજ નહીં ને.

અને આથી વરરાજા જરા મુઝાયા પણ પહેલ વહેલી વાત કરતાં એ શરમાતી હશે જાણી નજીક ગયા વૃન્દાનો હાથ પકડયો, ને પાસે ખેંચવા યત્ન આદર્યો

ત્યાં તો વૃન્દા છટકી ગઇ અને બીજે ખુણે જઈ ઉભી. જુવાન વરરાજાને તાન ચઢયું, તેમની તાકાતના માપ અંકાતાં હોય ને તેના મૂલ્ય ઘટતાં હોય એમ તેમને લાગ્યું એટલે એને ફરીથી સંકજામા લેવા દોડયા

પણ વૃન્દા તો ત્યાંથી ત્વરીત પગલે પસાર થઇ ગઇ ને ઓરડાને બીજે ખુણે ઉભી.

"વ્હાલી ! આમ શું કરે છે ? તોફાન ક્યાં સુધી ? મસ્તીની પણ હદ હોય છે." એમ કહી વૃન્દા તરફ ધસ્યા વૃન્દા ત્યાંથી છટકવા ગઇ પણ એમ કરતા મથાવટો માથેથી સરી પડી, અને !

અને તેનું સ્વરૂપ નિરખી વરરાજા સડક થઇ ગયા એમને લાગ્યુ કે એ વૃન્દા ન હોય

"કોણ વૃન્દા ! તું . ?"

'ના, મ્હારા પ્રાણનાથ વૃન્દા નહીં, પણ વન્દો !!!

"નાદાન રમેશ, આટલી હદ સુધી !! મશ્કરી કરવાની ધૃષ્ટતા કરે છે ?"

"આવોને મારા નાથ, બબ્બું હવે કહીએ છીએ ત્યારે આવતા નથી" બેદરકારીથી રમેશે અટ્ટહાસ્ય કરતા કહ્યું.

"બદમાશ, રમલા, વૃન્દા કયા ગઈ ? ને આનું પરિણામ શું આવશે તેની ત્હને ખબર છે કે ?"

"ઓ, મારા ઘેલા નાથ, આ રહી વૃન્દા, આવોને, દૂર કાં ઉભા છો ? હા, તમારે વૃન્દાને પરણવી છે કા ? અલ્યા બોખલા એ જુવાન

ક્યાંથી મ્હારી બ્હેન તું પરણત? અરે તે પહેલાં તો ત્હારા હાડકાં ને ઉતરી જૂદાં થાત જૂદાં. ને આમ આવ, લે ત્હને વૃન્દા પરણાવું." એમ કહી રમેશ કુદયો, વરરાજાને ખોચીમાંથી પકડી નીચે પટક્યા ને અચ્છી તરેહથી મેથીપાક જમાડયો.

રમેશને લાગ્યું કે હવે અહીં વધુ વખત રોકાવામાં સાર નથી, એટલે એણે તુરત વરરાજાને ઉંચક્યા અને પલંગ પર સુવાડી દોરી વડે બરાબર ઝકડીને એવા બાંધ્યા કે એમનો બાપનો બાપ આવે તોયે છુટે નહીં.

અને પછી અંદરથી સાંકળ બંધ કરી, બારી વાટે પસાર થઇ ગયો.

(૪)

વરરાજાને બંદીવાન બનાવી રમેશ વૃન્દા, મનહર, અને કમલાની ખબર લેવા મનહરના ઘેર આવ્યો.

"ઓહો! કેશુભાઇ તો! આવી લાગ્યા ને! કાંઇ ખૂબ મ્હેલા. પાસા તો પોબારને?" કમલાએ પુછ્યું

"હા, કમુ બ્હેન, પણ વૃન્દા મનહર ક્યાં?"

'એમને પણ પરણાવી દીધા. હું બની ગોર ને ઇશ્વર બન્યો સાક્ષી."

"શાબાશ, હવે દુનિયા ઝંપ મારે છે. ક્યાં છે એ બેઉ જણ?"

"એ પેલા ઓરડામાં તમારી ચિન્તા કરતા બેઠાં મનહર ભાઇ! વૃન્દા...અહીં આવો તો, રમેશભાઇ આવ્યા છે"

(વૃન્દા ને મનહર આવે છે.)

"વૃન્દા, બ્હેન સુખી થા, ને ત્હમારૂં જોડું સમાજ સેવા માટે હમેશ તત્પર રહો, એવી મ્હારી આશીષ છે"

(વૃન્દા ને મનહર નમી પડે છે.)

"ભાઇ, ત્હારો ઉપકાર હું નહીં ભૂલું, ત્હારા જેવા બાંધવ સમાજના ઘેરેઘર પેદા થશે, ત્યારેજ એનું ભાવી ઉજળુ બનશે"

"હવે રાત ઘણી થઈ છે, ને આપણે નિંદ્રા લેવી જોઇએ. મનહરભાઈ તમે જાવ, અમે પણ જઇએ છીએ," રમેશે વાત આટોપી લીધી, ને બધાં ત્યાંથી છૂટા પડયાં.

(૫)

બીજા દિવસની સવાર ઉગી, વરરાજા નવ વાગ્યા છતાંય ઉઠેલા નહીં તેથી તેમની બ્હેન શયનગૃહ તરફ ગઇ. બારણું બંધ હતુ એટલે આસ્તેથી બ્હારના કોઈ ન સાંભળે એની કાળજી રાખતાં સાદ દીધો

"ભાઈ—ભાઇ, ઓ ભાઈ! આજ આટલા મોડા તે શું ઉંઘ્યા કરો છો! કોઇ જાણે તો કેવું ખરાબ દેખાય."

પણ બ્હેન તો ક્યાં જાણતી હતી કે અંદર ભાઈ ભાભીના વિયોગ દુઃખથી રીબાતા પડ્યા હતા. જવાબ ન મળ્યો એટલે એણે ફરીથી મોટે અવાજે કહ્યું—

"ભાઇ નીચે ત્હમારી બધાં રાહ જુએ છે, જમવામાં જવું છે, ઉઠોને."

"ચંપા—બ્હેન—મરી ગયો, બૂમ ન પાડ, મોટા ભાઇને બોલાવી બારી વાટે અંદર આવી સાંકળ ખોલાવ, હું તો ખાટલા સાથે ઝકડાયો છુ. તે ત્હારી ભાભી કે ભાભો કોઇ નથી. .એ તો સા . ..."

ચંપા કળી ગઇ કે કાંઈ વિપરીત બન્યું. નીચે જઇ મોટા ભાઇને બોલાવી લાગી મોટાભાઇએ અંદર જઇ બારણું ખોલી નાખ્યું, ને બન્નેએ ચૂપચાપ વરરાજાને બંધનમુક્ત કર્યાં.

વરરાજા! "મોટાભાઇ, આપણને અપેડા બનાવ્યા...ને બદલે તેનો ભાઇ રમેશ સ્ત્રીનો વેશ પહેરી આવ્યો હતો, ને મારી આ દશા કરી લુચ્ચો ચાલી ગયો. એ બેવકુફની પુરેપુરી ખબર લેવી જોઇએ"

મોટાભાઈ જરા વિચારમાં પડયા. પછી બોલ્યા.

"એમાં તો આપણી રેવડી દાણાદાણું થઇ

જાય. ને આખા ગામમાં હોહા થઈ જાય. માટે એ વાતને પડતી મૂકી અહીંથી આગીઆરા ગયો નહીંતો ગામ ઉડતાં ભોય ભેગા થવાના ને લગ્નનો વરઘોડો ફજેત થવાનો."

" બળ્યું આ પરણવું. સા...એ મારો જીવ લીધો. ઓ બાપલીયા...આ તે પરણવું કે હાંસીને લાકડે ચડવું ! ભાઇ, ત્યારે ઝટપટ કોઇ ન જાણે તેમ સ્ટેશન તરફ રવાના થવામાંજ સાર છે વંજો માપો બાપલીયા."

(૬)

"બાપુ, બાપુ, ઓલ્યો જાય, જુવો તો ખરા" કડરના બજારની અટારીએ ઉભેલ એક કુમળી કળીએ તેના બાપને બજાર તરફ આંગળી ચીંધી અટારીએ આવવા હાકલ દીધી.

" શું છે, બેટા."

" એ, પેલો જાય; જોયો કે ?"

" કોણ ?"

" અરે, પરણવાવાળો "

બાપ સમજ્યા કે એ તો પેલો જીંદગીને આરે પહોંચેલ, યુવાન બાળાને પરણી જતાં લટકી પડેલ વરરાજા !

" લ્યો પરણો બેટમજી " પાછળથી તેમના યુવાન પુત્રે આવી ટકોર કરી.

ખલકના ખેલ.

સંસાર તણા-પટમાહિં, દુનિયા ખેલો શું રહિ-૧.
કો, લક્ષ્મી-કુળના અભિમાને કો, ધન દોલત મેળવવાને,
કો, ધર્મ-કર્મના ઢોંગ કરે, કો દુનિયા ભોળી ઠગવાને;
કપટ યંત્રની અવનવી બાજી ખેલાય રહિ
દુનિયા ખેલી શું રહિ-૨.

સત્ય-વક્તાને, શીરપર આફત. પાપીના-પોબાર પડે,
આડંબર-દેખી આલમનો અધ જનો-અજાણ મરે;
સત્ય, ધર્મ, નીતિ ને રીતિ સંતાઇ ગઇ.
દુનિયા ખેલી શું રહી-૩.

નગીનદાસ પુરૂષોત્તમદાસ વખારીઆ-કલોલ

કુરિવાજો છોડો
ને
સુવિચારો આચરો.

(લે:-જૈન મહિલારત્ન લલિતાબ્હેન, મુંબઇ.)

આજે હું કુરીતિ નિવારણ માટે બે શબ્દ લખું છું. દુનિયામાં કુરિવાજો ઘણા છે પરંતુ તેમાંથી મુખ્ય મિથ્યાત્વ, બાલ વિવાહ વૃદ્ધ વિવાહ, વિવાહ સમય ઘણી જગ્યાએ સ્ત્રી ધન અર્થાત્ પલ્લું નક્કી ન થવું આદિ છે.

મિથ્યાત્વના કારણથી દુનિયામાં અનેક દેવી-બાવાને પૂજવામાં આવે છે. બ્હેનો સંતનોત્પત્તિ માટે શીતલા પૂજે છે, પથ્થર પૂજે છે, ઝાડ પૂજે છે, તેથી, મિથ્યાત્વ મજબુત થાય છે. એ કુરિવાજ આપણે જ્ઞાન ચક્ષુથી નિરક્ષણ કરીને કાઢી નાખવો જોઇએ તથા લગ્ન જૈન વિધિ અનુસાર કરવા જોઇએ જેથી મિથ્યાત્વનો દોષ ગણપતિ પૂજવાથી લાગે છે તે અટકે તથા જૈન લૉ પ્રમાણે વિધવાઓને નિસંતાન હોવા છતા પણ પતિની સંપત્તિનો વારસો મળે.

બાળવિવાહ—બંધ કરવાને માટે શારદા બિલ પાસ થયું છે, છતાં પણ ગામડામાં બાળવિવાહ જણાય છે. આથી નાની નાની વિધવાઓ અનેક નજરે પડે છે, અને બિચારી જન્મભર દુઃખ સહન કરે છે. વૃદ્ધ વિવાહની કુપ્રથાથી સંતાન નિર્બલ તથા અનીતિ બેહદ જોવામાં આવે છે અહિંસા ધર્મને પાળનાર ઘણું વખત આવે હિંસાથી બચતા નથી વળી વિવાહ સમય સ્ત્રી ધનનું નક્કી ન થવું એ પણ સ્ત્રીઓને માટે ઘણો ઘાતકી રીવાજ છે. એવી ન્હાની ન્હાની બાળ અનેક વિધવાઓ અમારા શ્રવિકાશ્રમમાં છે, કે જેની પાસે તેમનાં સાસરીયાં પૈસે ટકે સુખી હોવા છતા પણ બ્હેનોને પાંચ પૈસા પણ વાપરવા મળતા નથી, માટે જે જાતિમાં સ્ત્રી ધન અર્થાત્ પલ્લાનો રીવાજ ન હોય તો તે ખાપ

કરીને રાખવા જોઈએ લગ્ન પ્રસંગે અપવ્યય ન કરવો જોઈએ અને લગ્નમાં જેટલો ખર્ચ કરે તેનાથી બમણા પૈસા ખોળામાં ઓછા કરી માટે પક્ષના હોવા જોઈએ. કેટલીક જગાએ પરણતી વખતે સ્ત્રીને અહીં તહીંથી માંગીને ઘરેણાં પહેરાવે છે પણ પરણીને ઘેર આવી કે તરત તે ઉતારી લેવામાં આવે છે એટલે કે સ્ત્રીનો તેના પર હક હોતો નથી. આમ ન થવું જોઈએ.

વળી મરણ પાછળ રોવા કુટવાના ઘાતકી રીવાજ તેમજ મરણ પાછળ જમણ ન થવાં જોઈએ. વળી બ્હેનોએ શરીર પુષ્ટ રાખવા માટે ઘરનો ધંધો દળવું, પાણી ભરવું, રાંધવું, વાસણ માંજવાં વિગેરે હાથે કરવું જોઈએ તેમજ નાના છોકરાંઓને વ્યાયામશાળાઓ ખોલાવી તેમાં કસરત કરાવવી જોઈએ વળી છોકરા છોકરીના પોષણમાં ખાવા પીવામાં અંતર ન રાખવો જોઈએ. છોકરીઓને નાનપણથી સારો ખોરાક ન મળવાથી તેમજ વ્યાયામ ઈત્યાદિ ન મળવાથી નિર્બળ રહે છે અને તે નિર્બળ છોકરી મોટી થઈને માતા થાય તે વખતે તેની સંતાન પણ નિર્બળ ઉત્પન્ન થાય છે માટે બાળાને ખોરાક હલકો અને પુષ્ટિકારક આપવો જોઈએ. છોકરાંને નાનપણમાં અમુક સમયના અંતર વિના ખવડાવવું ન જોઈએ પરંતુ બે કે ત્રણ કલાકનો અંતર હોવો જોઈએ તેમજ ખાતા શીખે પછી થોડો થોડો ખાવા આપી ખાવાનું ... કરીને તેની હોજરી બગાડી ન મૂકવી જોઈએ.

છોકરાઓને વાંચ્ય વર્ષના થાય પછી લગ્ન ગમન સાથે વ્યવહારિક, ધાર્મિક, નૈતિક, અને કલા કૌશલ્યનું પુરતું જ્ઞાન આપવું જોઈએ. ઘરમાં રસોઈ કરવી તે ઋતુના અનુસાર કુટુંબીઓની પ્રકૃતિ માફક આનંદ પૂર્વક કરવી જોઈએ તેમજ આનંદ પૂર્વક ઘરના માણસોને જમાડવા નવરાશના વખતમાં ગપ્પાં મારી બીજાની ખાલી કુથલી કરીને પારકી લડાઈ માથે ન હોરવી જોઈએ, પણ ઉદ્યોગ હુન્નર શીખીને આળસ રહિત થઈને ઘરમાં બેઠા બેઠા બે પૈસાનું કામ કરવું જેથી આપણે ઘરના આદમીને ભારે ન પડીએ. હિતોપદેશમાં કહ્યું છે કે—

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महारिपुः ।
नास्त्युद्यमऽसमो बंधुः कृत्वाऽयं नावसीदती ॥

અર્થ—આળસ મનુષ્યોના શરીરમાં રહેવાવાળો મહાન શત્રુ છે. તથા ઉદ્યમ મનુષ્યોનો બંધુ છે કે જેથી કરીને કદિ નાશ થતો નથી. ઉદ્યોગી મનુષ્ય કદી ભૂખે મરે નહિ માટે ઉદ્યોગ જરૂર કરવો.

અંતમાં આ નાનકડો લેખ વાંચી સાર ગ્રહણ કરવાને મારી નમ્ર પ્રાર્થના છે.

યુવાન,

ગઝલ.

યુવાની તો દિવાના છે, યુવાની જય દાત્રી છે,
યુવાની જુથ જ્યાં મલશે, તહાં ઉન્નતિ રાણી છે.
જહાં જહાં જય ભાળો છો, તહાં તહાં યુવકોમાં છો,
નહિ જ્યાં યુવકો હોશે, નક્કી અપજશ પામો છો.
હૃદયની હાય વિધવાના, પુરાણા પંથના પડદા,
જુઠ્ઠાના બુદ્ધિ વિણ રસ્તા, નિવારે યુથ યુવકના.
મરકનું જોમ નહિ મનશે નહિ જય જ્યાં લગી મલશે
હૃદયના જોમથી લડશે, વિરોની પેઠે વિચરશે.
યુવક કેરે જુથના જોરે, ઘુમે નિજ માતના કાજે,
નહિ નિરાશતા પામે, અચુક સ્વરાજ્ય મેળવશે.
જમાનો જાય છે જુવાન, જુવાનીના દિવાનાનો,
જગતની જોરને ઝાલી, જુલમ સત્તાને ખોનારો,
યુવક દિલ દાઝે છે જેવી, નથી કો અન્તરે તેવી,
મોહન તે દેશમાં દેવી, યુવાની એજ રાણી છે.

મોહનલાલ મ. કાણીસાકર-કપાલા.

"પ્રલોભન અને લોખંડી મુક્કા."

(લે:-શા. ચુનીલાલ વીરચંદ ગાંધી-મુંબાઇ.)

લોખંડી મુક્કો—આ શબ્દોજ ભયંકર છે જો ઊંડાણથી વીચારશું તો આપણુને લાગશે કે-આપણી પ્રગતિને કચડવાને એક તો ખરાબ રૂઢીઓ રૂપી લોખંડી મુક્કા અને બીજો પૈસાના મુગ્ધ બનેલો, આરામગ્રહોની ઠંડી હવામાં નીંદ્રાધીન બનેલો, શ્રીમંતાઇની ધુનમા ગરીબોની સાથે ભળતાં શરમાતો—એવો બેદરકાર લોખંડી પંજો—તે આજની શ્રીમતાઇ અને ડીગ્રી પાછળ ઘેલા બની ચોવીસે કલાક કમાવાની ફીકરમાં કર્મયુગને ભુલી જનારા આધુનીક કેળવણીમાં આગળ વધેલા આપણાજ સામાજ બધુંઓની આપણા પ્રત્યેની બે જવાબદારી આજે આપણુને મુઝવી રહી છે. અને પ્રગતિને કચરનારો લોખંડી મુક્કાની ગરજ સારી રહી છે.

ગરજ મટી એટલે વૈદ્ય વેરી—એ સ્થીતિ માનવ જીવનની છે. ઉછરતા એવા ઘણાએ યુવકોની એ ભાવના હતી કે-ખરેખર મારી સમાજ અજ્ઞાન-સ્વાર્થી, અને મિથ્યાભિમાની છે. જો હું સોલીસીટર થાઉં, જો હું વકીલ થાઉં, જો હું બેરીસ્ટર થાઉં, જો હું ડોકટર થાઉં, તો હું જરૂર કંઇક પણ ભોગ આપીશ. બોર્ડીંગો ગજાવી, સ્કોલરશીપો મેળવી તે સમયે ગરીબોની કીંમત સમજાતી હતી. પરંતુ ભણ્યા, ડીગ્રીઓ મેળવી, વહુ લાવ્યા, ઘરબાર સુધાર્યાં, પ્રેકટીસો શરૂ કરી, ઠંડી હવાની ખુશનુમા ખુશ થવામાં ધ્યાન આપ્યું—સમાજને ભુલી ગયા.

શું ઊકાળ્યું એ પ્રશ્ન સૌ કોઇ આજનો સુધરેલો યા શ્રીમંત યુવક પોતાના દીલને પુછે તો એજ જુવાબ મળે કે—કંઇ કર્યુંજ નથી. બાપદાદાની સખાવતોના વહીવટ યેનકેન ચલાવ્યા, કાશ્મીરના સુરમ્ય પ્રભાતની નોવેલો વાંચી, અગ્નજોના બંધનના નાટક જોયાં, અને સહેલગાહ સાવ-ળીગાના શૃંગારરસ ખેલ્યા, વાતો કરી તે શીવાય કંઇ પણ કર્યું હોય તો તે ભુજજ કંઇકજ નથી એ પ્રશ્ન મુંચે એવોજ છે. મુંબાઇ જેવી વિશાળ ધનાઢય નગરીના આપણા દિગંબર સમાજમાં—જુની સંસ્થા સીવાય, બહારની દુનીયા સાથે નવચેતન પ્રેરતી એક પણ સંસ્થા છે? મંડળોની રચના સામાન્ય વર્ગ કરે છે. પરંતુ અનેક પ્રકારની મુશ્કેલીઓમા કંટાળી તે પડતી મુકે છે મુંબાઇનું ચાલુ યુવક મંડળ પણ ઘણીજ મુશ્કેલીઓમા જીવે છે મંદિરો પર નોટીશ લાગે તો તેના સંચાલકો ઉખેડી નાખે. ઘણાઓ એવા બીકુ લાઇનો નડતરરૂપ બની પથરા ફેંકે છે છતાં તે જીવતા માવે છે અને સુશિક્ષિત બંધુઓનો સાથ ઇચ્છે છે પરંતુ ગરીબો કે સામાન્ય જનતાના સાથે બેસતાં તેને સમજાવતાં શરમાય છે. મહીનામાં એકાદ દીવસ હાજરી આપવાની ફુરસદ તેઓ મેળવી શકતા નથી આશા છે કે શ્રીમંત યુવકો વૃથા ગુમાન છોડી ગરીબોના સેવા સ્વીકારે અને સમાજ સંગઠન કરે, એ સદ્‌ભાગ્યની વાત છે.

ઉપાય છે. પરતું ગરીબોને સ્વમાનજ સમજાતુ નથી. માનવ ગૌરવની મહત્તા એકએક સામાન્ય જન અને સેવા પ્રેમી યુવક પછી કોઇ પણ શ્રીમંત યા ગરીબ હો તે સમજે તો ઉપાય સહેલોજ છે. પરતું ચળકાટમાં આંખો મીંચી જતા, જાહેરજલાલીથી મુગ્ધ થતા અને મીઠા વચનોથી દરિદ્રતાનો નાશ સમજતા મારા નીર્બળ દીલના કર્મને ભુલી જનારા ભાઇઓ ખરેખર પારકી આશાએ અધોગતિ નોતરી રહ્યા છે.

કર્મયુગ આપણુને સમજાવી રહ્યો છે, શીખામણ દઇ રહ્યો છે કે-દરેકનો સાથ ઇચ્છો, દરેકનો પ્રેમ ઇચ્છો, સંપીલા થાઓ, અરસ પરસના પુજન માંડો પરંતુ એ આશા એ વ્યવહાર જો નિષ્ફળ બને તો ક્યાં સુધી ખુશામત કરશો કે-જગત શેઠ આવે ને આપણો ઉદ્ધાર કરે એવી નીર્માલ્ય ભાવના છોડો. આળસ છોડો, સજ્જ થાઓ અને આગળ આવો... મંડળોને સુદૃઢ કરો પ્રમાણીક અને આત્મ

વિશ્વાસથી બની શકે તેટલા ખુલ્લા દીલથી તન, મન, ધન ખરચી વ્યવસ્થીત સંસ્થા ચલાવો, વોલીયન્ટર કોર રચો, ને આજના યુગને દીપતી દરેક તાલીમ મેળવો-તો મદદ તો મળીજ રહેશે. દુર રહેનારા નજીક આવશે, પરંતુ આગળ ધપવું એજ મુશ્કેલીયત છે.

પ્રણાલિકા એવી તો દઢ થઈ ગઇ છે કે જે ભુંસાતીજ નથી. વિનય વીવેક ને પ્રમાણીકતાથી ભરેલું વર્તન ઉંચામા ઉંચો સત્કાર કરતા શીખવે છે. પરંતુ ખુશામત કરવા નથી કહેતો. શ્રીમંતો પૈસા આપી સમાજ સેવા કરે છે, ત્યારે ગરીબો શારિરીક સેવા ને મનની સેવા ધનની પણ આપે છે, છતા આજે પૈસાદારોની છાયામાં-ગરીબો પોતાના પુરૂષાર્થને નીર્માલ્ય ભાવનામાં મુકી તેની છાયા ને તેમની બેપરવાઇ ને દયા વધુ કીંમતી લેખે છે.

લેણાદેણી એ પરાપૂર્વની માનવજીવનની અરસ-પરસમાં, મીઠાસ ને કડવાશ કરાવનારી ગુટીકા છે. લેણાદેણીથીજ સંબંધો દઢ થાય છે, લેણાદેણીથીજ શ્રીમંતનુ ગરીબો ખાય છે. ને ગરીબોને તેથીજ વધુ મહેનત કરી ઓછા પૈસા લઈ ગત જન્મના કરજો ચુકવવા પડે છે. લેણાદેણીથી દુર્જનને સત્કાર ને આસન મળે છે ત્યારે સજ્જનને ઠોકર ને અપયશ મળે છે. લેણાદેણી ને પુન્ય-પાપના આ પ્રકાર છે. દરેક માણસે પોતાનું ઉંચ ધ્યેય ન છોડવું જોઈએ-પુરૂષાર્થ ને પ્રમાણીકતાથી જીવન નૌકા ચલાવવી. પછી ડુબે યા તરે તે કર્મનીજ વાત છે. તેમા નિર્માલ્યતા નથી, પરંતુ મર્દાઈ છે

બે હાથે તાળી પડે એ સમાજને વધુ શોભાસ્પદ છે. શ્રીમંત નૌજવાનો અને સામાન્ય જનતા અહંભાવ છોડી એકજ પ્રેમથી ચાલી સાથે ભળીને સમાજમાં નવ રચના રચે એ વધુ ઉત્તમ છે. મારા જેવા બીન ટાઇમા માણસને માટે તે આવકારદાયક છે. અરસ પરસની ઢુંક અક્યતા અમુલ્ય છે.

મેં સુધારામાં પણ અમુક નજર કરી જોઈ, હોય છે, તે કહેવું મુશ્કેલ છે, છતાં મળતી ખબરોથી સમજી શકીએ છીએ કે સ્વાર્થી અને ખટપટીઆ અભિમાની કંકાસ પ્રીય માનવોનું તે આક્રમણ છે—

(૧) મંદિરો ને અન્ય સંસ્થાના શીરતાજ બનીને ધર્માદા પૈસે વધુ વ્યાજ ખાઉ બનીને ધધો કરનારા ગ્રહસ્થોથી

(૨) સમાજના નીયમો સાચા હોય પરંતુ પોતાની નીતિથી તે મુશ્કેલી રૂપ હોય તો તેની ખટપટમાં સમાજમા કલેશ કરનારા.

(૩) નીયમો આગળ આવી રચે, ને પોતાને તે નીયમ લાગુ પડે ત્યારે કજીયા કરી સમાજથી અલગપણુ બતાવી સમાજ ફંડના પૈસે તાગડ-ધીન્ના કરનારા

(૪) સમાજ કાર્યને અંગે સાચી બાબત પર વાટાઘાટ થતી હોય પરંતુ પોતાને દબાવવાને માટે મોટાઇનું આડંબર ટકાવવાને મુત્સદીપણું બતલાવી કલેશની ચીણગારી મુકે છે. ત્યારે ગૌરવ ભુલેલા નૌજવાનો મુત્સદ્દીગીરીના મોહમા આજી-વીકાના ટુકડામા ને ભાવી મદદની આશામાં અન્યાયીના મદદગાર બની ભણુકી ઉઠે છે. તેવા માનવ હૃદયને ભુલનારા સ્વાર્થીઓથી અનેક પ્રકારની ખટાઓ, ને અન્યાયો સામે મંડળો દ્વારા પોકાર ઊઠાવવાનો હોયજ તે આજના મોટે-રાઓને મારક નથી આવતુ સાચો પ્રકાશ પાડવો નથી લાખોપતિવાળા હજારોપતિ થયા હોય છતા તેને તો લખપતિજ ખપવું છે હજારોપતિ થયા છતા અન્યાયના ભોગે તેમને આડંબર રાખવા છે. એટલે સાચા બોલના બોલ તેઓને કડવા લગે છે આવી ભયંકર બીમારીના ઇલાજ તો સાચો સ્વાશ્રયી, મળે તેમા સંતોષ માનનાર, સંબંધ કરતા પ્રમાણિકતાને ધરમની કીંમત વધુ આંકનાર સાચું શોધનારા નીડર ને સાચા પુરૂષાર્થ-વાદીઓજ આજની ઘનઘોર રાત્રિમાં પ્રકાશ રેલાવી શકે. જગતમા પ્રેમ સેવા ને બંધુ ભાવના નીડરતા ને સાચી સેવાજ લોખંડી મુક્કાના ઘુશ કરી શકે, એવા કર્મવીર યુવકો સમાજમાંથી દીપી નીકળે એજ ભાવના!

ઉછરતા યુવકને....!

(લેખક-રતીલાલ કેશવલાલ શાહ-ભરૂચ.)

વ્હાલા યુવક!

આપણા જૈન સમાજને અધોગતિના પથેથી બચાવવાનો ઉપાય તારા પોતાનાજ હાથમાં છે, અને તે માટે તારે શું શુ કરવાની જરૂર છે તે જણાવીશ તો તે અસ્થાને નહિજ ગણાય.

વહાલા બંધુ ! તારો યૌવનકાળ એ માનવ જીવનનો વસંત કાળ છે. એ કાળમાં એનામાં મહત્વાકાંક્ષાઓમાં પુષ્પ પ્રગટે, કલ્પનાઓની કુંપળો ફુટે અને ભાવિ જીન્દગાનીના આદર્શનું બીજ રોપાય યૌવન એ વિલાસી ઇચ્છાઓ અને વાસનાઓ સળગાવી દેવાનું પુણ્ય પર્વ છે, અને જીવનનાં જાદુ જાણવાનો રહસ્ય કાળ છે

યૌવન નિર્બળતાને ઓળખતું નથી, અશક્તિની એને સ્વપ્ને પણ પીછાન નથી, અધ:પતન શબ્દને એ જાણતુ નથી. એ તો માત્ર એકજ ધ્યેયને ઓળખે છે, અને તે એ કે "હમેશા પ્રગતિ કરો ! આગળ ધસો !" માટે વહાલા યુવક ! તું પણ સમાજની બંધાતી જતી કુંચીઓનો ત્યાગ કરી પ્રગતિના રાજમાર્ગે પ્રતિ કુચ કર. અને તેમ કરતાં સમાજનાં બંધનોની લેશ માત્ર પણ પરવા કરીશ નહિ, અને તારા લક્ષ્યને તું પહોંચે નહિ ત્યાંસુધી આગળ કુચ ચાલુજ રાખજે

"યૌવન અખૂટ શક્તિનો ભંડાર છે, એનામાં વીજળી જેવી ચપળતા, વાવાઝોડાં જેવી રૂદ્રતા અને જવાળામુખીના શીખરો ઉપર બળતા જ્વાળાની ઉડતી સેરો જેવી ચમક છે યૌવન શક્તિએ અત્યાર સુધી શું નથી કર્યું, અને શું ન કરી શકે ! યૌવનના ચિરાગ લખેલા ઇતીહાસ ફેરવી નાખવા સમર્થ છે. સમાજના પાયામાં યૌવન નવજીવન સીંચી શકે છે. અને લાંબો સમય થયા ચાલી આવેલા સમાજના સડાઓને જડમૂળથી ઉખેડી નાખી નવચેતન પ્રેરે છે.

'વ્હાલા યુવક ! યૌવનની અથાગ શક્તિઓનો તારે પરિચય કરવો છે !—નેપોલીયને પચીસમા વર્ષે ઇટલી સર કર્યું. મહાન કવી ટેનીસને પોતાનો પહેલો યશસ્વી ગ્રંથ અઢારમા વર્ષે લખ્યો, વીજેતા સીકંદર જ્યારે તેની વિજય કૂચને મોખરે ઘૂમતો હતો ત્યારે તો માંડ તેની મૂછોના વાળ ડોકીયાં કરતા હતા ! યુવકોએજ રશિયામાં સ્વાતંત્ર્ય આણ્યું, અને 'જુલ્મી રાજતંત્રનો અંત આણ્યો. જ્યાં જુઓ ત્યાં સર્વ ઠેકાણે ક્રાંતિમાં તેમજ દરેક મહદ્ કાર્યોમાં યુવાનોનોજ હાથ છે.

માટે હે યુવક ! તું આ સંસારમાં ક્યાંસુધી ભ્રમણ કર્યા કરીશ ?

ઘાંચીના બળદની માફક તું ક્યાં સુધી સંસારની ઘાણીમાં પીલાયા કરીશ ? કુંભકર્ણની ઘોર નિદ્રાનો ત્યાગ કરી આસપાસની સ્થિતિનું તું ક્યારે અવલોકન કરીશ ? કાયરતાનો ગુલામ બની તું ક્યાં સુધી શાંત બેસી રહીશ ? તું તારી શરમાળ વૃત્તિ ક્યાં સુધી ધારણ કરીશ ? અધોગતિની ચુંગાલમાં તું ક્યાં સુધી પડી રહીશ ! સમાજનો બધો આધાર તારા ઉપર છે એ સ્થિતિનો તું ક્યારે વિચાર કરીશ ? ગાડરીયા પ્રવાહની માફક તું ક્યાં સુધી ખેંચાયા કરીશ !

માટે હે વ્હાલા યુવક ! તું ઉઠ, અને સત્વર તૈયાર થઇ જા, અને તારા દેશ તથા સમાજ માટે આગળ પડી કંઇક સત્કાર્ય કરી બતાવ અને ઉન્નતિને માર્ગે આગળ ધપ, કે જેથી તારૂં નામ ઇતિહાસમાં સુવર્ણ અક્ષરોએ કોતરાઇ જાય ! હવે લખવા વાંચવાનો અને ખાલી વ્યર્થ સમય ગુમાવવાનો વખત વહી ગયો છે. તું જે બોલે અમર લખે તેને અમલમાં મૂકતાં શીખ, અને તેમ કરતાં તારા માર્ગમાં અનેક આપત્તિઓ અને સંકટો આવે તો તનતોડ મહેનત કરી અને તેની સામે માથું ઉંચકી તારા સ્વાર્થને તિલાંજલી આપી, આપત્તિઓમાથી તારો માર્ગ મોકળો ક

તું ચૈતન્યનું સતત ઝરણું છે, તારું યૌવન ધમધમતો જ્વાળામુખી છે; તારા સ્પર્શ માત્રથી ગિરિકન્દરાઓ ખળભળી ઉઠે તેમ છે, અને તમામ સંકટો ઓગળી જાય છે માટે તું આફતો અને મુશ્કેલીઓનું મલકાતા મુખે સ્વાગત કર. સુધારકોનો માર્ગ કંટકથી ભરપુર હોય છે, અને એવા માર્ગ ઉપર મુશ્કેલીની દીવાલો પણ મજબુત ટકેલી હોય છે, એ સર્વ પ્રકારની દીવાલોને તોડી પાડવા તું અખૂટ ધીરજ અને શાન્ત સ્વભાવ ધારણ કર. ધૈર્યથી આપત્તિઓને હઠાવતા જઇ તારું ધ્યેય ચુકયા વગર કાર્ય આરંભ, અને ઉન્નતિના માર્ગે પગલાં માંડ આ જગત પર તારો જન્મ શા માટે થયો છે એ પ્રશ્ન તારા અંતરને પૂછી જો, કેમકે તારા જીવનનો આદર્શ તારા હૃદયમાંજ છુપાયલો છે. દિલમાં ઉંડી દૃષ્ટિ નાખ, અને અંતર્ચક્ષુ ઉઘાડ, એટલે તને તારા અખૂટ સામર્થ્યનું ભાન થશે. તારું જીવન રોદણાં રડવા માટે નથી, કાયરતાના લખાણો લખવા, વાંચવા કે સાંભળવા માટે નથી, પણ ન્યાય અને સત્યતાનો પુનરૂદ્ધાર કરવા માટે છે. મુશ્કેલી કે દુઃખના વિચારો રજુ કર્યે કશું વળવાનું નથી, પણ એ દુઃખદાયક સ્થિતિમાંથી બહાર નીકળવું એજ યુવકનું કર્તવ્ય છે. દુર્બળતા અને ભીરૂતા એ નવજુવાન માટે કલંક સમાન છે. યુવકને તો શૂરવીરતાનાં પરાક્રમો કરવામાંજ આનંદ અને ઉત્સાહ હોય તારા જીવનનું ધ્યેય પાર પાડવા માટે તું સામાજીક બળવો જગાવ, તારો પોતાનો પક્ષ મજબુત કરી માર્ગમાં આડે આવતા જુના વિચારવાળાઓ સામે દરેક બાબતમાં સામાજીક અસહકાર કરવા પણ તૈયાર થા, અને સમાજને અધોગતિમાંથી ઉગાર !

યુવક-યુવતિઓ જાગશે, અને પોતાનાં કર્તવ્યોનું પાલન કરશે ! ! ?

'આપણી અધુનિક પરિસ્થિતિ.'

(લેખકઃ-સાગરમલ તલાટી જૈન-દાહોદ.)

વિસમી સદીમાં આખી સૃષ્ટિમાં જ્યાં ત્યાં નવીનતા અને કુતુહલતાજ નજરે પડે છે. યુરોપમા નિહાળો, અમેરીકાનું અવલોકન કરો, આફ્રીકાનું અધ્યયન કરો કે એશિયાનું દિગ્દર્શન કરો તો આપણને દરેક દેશ, દરેક જાતિ દરેક સમુહ આગળ ધપતો જણાશે પરિષદો નિહાળો, કોનફરંસમાં હાજરી આપો તો દરેક ઠેકાણે આપણને એવો સૂર સંભળાશે કે પ્રગતિ કરો. પાશ્ચાત્ય પ્રદેશો તો એટલા બધા પ્રગતિમાન થયેલા દીસે છે કે તેઓ કુદરતી બનાવોને પણ ઉલ્લંઘન કરી જવા માગે છે. અને તેના સાથે સ્પર્ધામાં ઉતર્યા હોય એવુ ભાસે છે હાલમા આપણા હિંદ દેશમા પણ આની અસર થવા માંડી છે. આપણો દેશ ઘણા ભાગો મળી થયેલો છે એ ભાગો ઘણી જ્ઞાતિઓથી બંધાયલા છે. આ સમુહોમાં આપણી જ્ઞાતિ પણ એક ભાગ છે. આપણે જૈન કહેવાઇએ છીએ. આપણો ધર્મ અને જાતિ પ્રાચીન સમયથી સંસ્કૃતિમય ગણાય છે, આપણે તે ટકાવી રાખી શક્યા નથી. માત્ર એક જ્ઞાતિ અગર સમાજ તરીકેજ ઉભા રહી શક્યા છીયે.

આપણે આખા દેશમા નીહાળીશું તો દરેક જ્ઞાતિ પોતાની સંસ્કૃતિ સુધારવા મથી રહી છે. જ્યાં ત્યાં લગ્ન પ્રથાઓ સુધારો, જ્ઞાતિભોજનમાં સુધારો, આર્થિક સુધારો નજરે પડશે, પરંતુ આપણી જ્ઞાતિમાં કંઇ પ્રયાસો થતા દેખાતા નથી. જો કોન્ફરન્સ અગર પરીષદ મેળવશો તો પાંચ માણસોનું પણ સંગઠન કરવું અશક્ય થઈ પડશે. જો ભેગા થયા તો વાદ વિવાદ કરી કુસંપથી છુટા પડી જશે. અને ઠરાવો માત્ર કાગળ ઉપેજ રહી જશે આપણી જ્ઞાતિનો મ્હોટો અવગુણ 'ઇર્ષા' છે. જો કોઇ ભાઈ સત્ય વાત જાહેર કરે તો બીજો ઇર્ષાથી ખોટી ઠેરવા પ્રયત્ન કરશે.

આજના દરેક જ્ઞાતિમાં યુવક મંડળ, સુધારક મંડળ વિગેરે મંડળો ચાલુ થયા છે અને તે મંડળો સમયાનુકૂળ સુધારા કરવા પ્રયત્નો કરે છે. અને ઠરાવોને વર્તનમાં મુકવા પણ તનતોડ મહેનત કરે છે, પરંતુ આપણી જ્ઞાતિ કુંભકર્ણની નિંદ્રામાં છે. જો કોઇ સુધારાની વાત કરશે તો ઘણો સમૂહ કહેવા માંડે છે-"નકામું ડહાપણ ડહોળે છે."

આપણે સુધારા માટે ચળવળ કરી શકતા નથી અને સામા માણસના દોષ જોવામાં એક્કા છીએ. જ્યાં સુધી આપણા દોષ આપણે જોઇ શકતા નથી ત્યાં સુધી આપણે સુધરવાના નથી. હમેશાં સામાની ભૂલ જોવી એ આપણો બીજો અવગુણ છે. આપણે જોઇશું તો જણાશે કે કોળી મોચી વિગેરે પછાત ગણાતી કોમો પણ પોતાની કોમને સુધારવા મથી રહી છે. જો આ કોમો જોત જોતામાં આગળ જશે, તો આપણી ઉચ્ચ ગણાતી કોમ અધોગતિમાં આવી પડશે. એનાં ચિન્હો આપણને હવે દેખાવવા લાગ્યાં છે. જો આપણે સૂક્ષ્મ દ્રષ્ટિથી નિહાળીશું તો જણાશે કે બીજી કોમો દરેક બાબતમાં આપણાથી સરસાઇ ભોગવવા લાગી છે, જ્યાં ત્યાં જૈનોનીજ દરેક બાબતમાં, આર્થિક સામાજીક, કે રાજકીય વિગેરેમાં પડતીજ દેખાય છે. બીજી દરેક જ્ઞાતિ કરતાં આપણે દરેક વિષયમાં પછાત લાગીયે છીયે.

આપણી જ્ઞાતિ એવા પ્રમાણમાં વહેંચાયલી છે કે સંગઠ્ઠન કરવું મુશ્કેલ પડે છે. તેનું મુખ્ય કારણ વાંચન છે. વાચનનો ફેલાવો ઘણા થોડા પ્રમાણમાં છે. પુરૂષ વર્ગ કરતા સ્ત્રી વર્ગ વધારે અભણ એટલે ઉન્નતિમાં વધારે ઢીલ. આ કારણો ટાળ્યેજ છુટકો નહીંતો આપણે ખૂટી જઇશું યા અધોગતિના ખાડામાં સબડયા કરીશું. જમાનો કુદકે અને ભુસકે પ્રગતિ કરી રહ્યો છે. જો સાથે ચાલીશું તો ગણાઇશું નહીં તો પછાત પડશું. દરેક જાતની અવનતિએ પહોંચીશું આપણી હાલની પરિસ્થિતિ પર ધ્યાન નહિ આપીએ તો આપણે જૈન મટીને કયા ધર્મમાં વિલીન થઇશું તે કહી શકાય નહિ.

સામાજીક પરિસ્થિતિ.

આપણી સમાજ બંધારણ પૂર્વકની છે એમ કોણ કહી શકે છે ! સમાજમાં બંધારણ જેવી કોઇ વસ્તુજ નથી. અને સમાજને બંધારણપૂર્વક ચલાવવાને કોઇ મુખત્યાર પણ નથી. જો બંધારણ પૂર્વક સમાજ રચવામાં આવે તો એક જબર-જસ્ત સંસ્થા થાય અને સમાજનું શ્રેય પણ તેમાંજ છે કોઇ પણ સંસ્થા અગર સમાજ બંધારણ વગર નભી શકતી નથી રીત રીવાજો દરેક પોતાની મરજીમાં આવે તેમ પાળે છે અને મરજીમાં આવે તેમ તે રીવાજોનું ભક્ષણ પણ છે. આવી કફોડી સ્થિતિમાં રૂઢી બંધનનું જોર વધ્યું છે આ આંધળીયા રૂઢીયો સમાજને નુકશાન કરી છે. આંધળીયા રૂઢીયોથી મહાન સંસ્થા પણ જમીન-દોસ્ત થઇ જાય છે. સામાજીક રીવાજો પણ મરજીમાં આવે તેમ પાળે તેથી સામાજીક પરી-સ્થીતિ પણ અસ્તવ્યસ્ત દશા ભોગવે છે. મરણ પાછળનો ખર્ચ અને લ્હાણા પાછળનો ખર્ચ શ્રીમંતો હોંશથી કરે છે અને તે જોઇ ગરીબો તેમ કરવા મથે છે, તેથી દેવાદાર બને છે, માટે શ્રીમંતોએ આવા ખોટા રીવાજો બંધ કરી ધડો આપવો જોઇએ.

નૈતિક પરિસ્થિતિ

જો ઘર પાયા વગરનું હોય તો ઉપરની ઇમારત સહેજ હાલકચાલક દશામાં હોય તેમ જો આપણું બંધારણ રીતસરનુંજ હોય તો આપણી નૈતિક મનોદશા પણ હાલક ચાલકવાળી હોઇ શકે. આ ડામાડોળ સ્થિતી મગજ પર પણ અસર કરે છે, અને આપણું સારાં નૈતિક જીવનથી વેગળું બને છે. જે સંસ્થા અગર મનુષ્યનું ઘડતર નૈતિક ભાવોથી વેગળું હોય તો જરૂર તે નષ્ટ થાય. બીજી બધાની પરિસ્થિતિને અંગે આપણું નૈતિક પરિસ્થતી સ્તુતિ પાત્ર નથી માણસને નિતીવાન બનાવવામાં સમાજ પણ મુખ્ય ભાગ ભજવે છે જો સમાજના નેતાઓ નીતિવાન હોય

તે સમાજ જલદીથી સુધારાપર આવી શકે છે. આપણે આવા જીવનની ખાસ આવશ્યકતા છે.

કેળવણી વિષયક પરિસ્થિતિ.

આપણે હાલમાં કેળવણી તરફ માત્ર સૂક્ષ્મ દ્રષ્ટિથી નિહાળી રહ્યા છીયે. એટલે કે આપણે બહુજ થોડા પ્રમાણમાં કેળવણી લેવા માંડી છે. આપણી આર્થિક સ્થિતિ સારી ન હોવાને લીધે ઝાઝી કેળવણી લઇ શકતા નથી. હાલની કેળવણી શ્રીમંત લોકો લે તેવી મોંઘી છે. શ્રીમંતોના પુત્રો ધનલાલસાને લઈ ભણી શકતા નથી ગરીબ વર્ગ હોંશીયાર છે પણ પૈસાની તંગીને લઇને થોડું ઘણું ભણીને નોકરી લઇલે છે, એટલે આપણે સાર્વજનીક દ્રષ્ટિએ કેળવણી તરફ બેદરકાર છીયે. આપણા સમાજમા કેળવણી લેવાની સંસ્થા જેવું ખાસ કઇ છેજ નહી. આખા દેશમાં મળીને જૈન હાઇસ્કુલો પાંચ કે દશ હશે. કોલેજનુ તો નામ પણ નથી. થોડા ઘણા મહાવિદ્યાલયોમાં સંસ્કૃતની કેળવણી અપાય છે ત્યા કોઇપણ જાતની ઉદ્યમની (Techuicul) કેળવણી અપાતી નથી તેથી તેમાંથી નીકળતા વિદ્વાનોને પોતાના પેટનો આધાર સમાજની દયાપર રાખવો પડે છે. આપણી જ્ઞાતિમાં એકાદ બે બેરીસ્ટર કે એકાદ બે સોલીસીટર એમ જુજ ભણેલા માણસો માલમ પડશે. તેઓ બહાર વસતા હોવાથી તેમની પાસે સારી આશા રાખવી નિરર્થક છે. માટે સ્વાશ્રયી બનો અને પુત્રો આગળ ધપો. તેથી પોતાનુ તેમજ જ્ઞાતિનું ભલું થય

આર્થિક પરિસ્થિતિ.

આપણી જૈન કોમ એક વેપારી કોમ છે. પણ હમણાં વેપાર મંદો છે. જેથી આપણે ગરીબાઇમા પકડાઇ ગયા છીયે આપણે થોડા ઘણા પૈસા સંપાદન કર્યા હોય તો મોજમજામા ઉડાવી દઇએ છીએ. ન્યાતવરામાં, લગ્નવરા વિગેરેમાં લખલુટ ખર્ચ કરી પૈસાદાર ગણાતા આપણે દેવાદાર બનીયે છીયે. આવી રીતે ગણત્રી વગરના ખર્ચે આપણને કેટલી હાલમાં મુક્યા છે. કેટલાકને એક ટંક ભોજનના પણ વલખાં પડે છે. આપણી સ્થિતિ સુધારવાનો ઉપાય ખોટા વરાઓના ખર્ચ સદંતર બંધ કરવાનો છે. અને તેમ કરેજ આપણો છુટકો છે.

અંતમા આખા જ્ઞાતિ સમૂહને મારી વિનંતિ છે કે જેમ બને તેમ સત્કાર્યો કરી પ્રથમ પંક્તિમાં મુકાવુ જોઇએ. કે જેથી આપણો સમૂહ સુધારાની ટોચ ઉપર ચડે. દરેક માણસ સુખી અને સદાચારી બને તેવી અભિલાષા કેળવો, ઉદ્યમી બનો, સંસ્કારી બનો અને સૃષ્ટી પોકારી પોકારી કહે છે કે જૈન કોમ આગળ પડતી છે, તો ઇર્ષ્યાને તજો અને સઘળો સમાજ એક ભાતૃભાવથી વર્તો એટલીજ અભ્યર્થના.

ધંધો કરો ?

હરીગીત છંદ.

ધંધો કરો ધંધો કરો, ધંધા થકી ધન વાધશે,
ધન વાધીને ધારણી પરે, ધાર્યું તમારૂં ચાલશે;
ધંધા થકી ધન મેળવા, ધર્મો મહી ધન વાપરો,
ધારી હૃદયમાં ન્યાય રસ્તો, ધર્મમા ધન પાથરો.
ધંધા મહી જો ધ્યાન હોશે, ધારણા સઘળી થશે,
ધાર્યું થશે તમ લાભમાં, લહાવા ઘણેરા આપશે;
હોશે કદી તમ કર્મ ભુંડાં, પૂર્વના સંચય થકી,
પણ ધર્મના ધાર્યા થકી, તે ભાગશે ચાનો નકી.
જ્યાં જ્યાં જુઓ જનતા મહી, જગમા ધરીજ જણાય છે,
ધંધા થકી ધન લાદશ્ચા, ઉદ્યમ તણી નિશાળ છે;
બુદ્ધિ થકી બળવત થઇ, બહુ હેતથી ઉદ્યમ કરે,
નીતિ તણા રસ્તા થકી, જન ધર્મથી ધન મેળવે.
ધનવત ને ગુણવંત કઇ, વિદ્યા થકી પુજાય છે,
દાની બની યાચક થકી, ગુણવંત માંય ગણાય છે;
સંસારમાં સુખ ભોગવી, સુખ સ્વર્ગનું પણ સાંપડે,
મોહન કહે દાને થકી, નિર્વાણ પણ તે જાય છે.

મોહનલાલ મ. કાણીસાકર-કમ્પાલા.

एवा सुधारा धारजो।

(हरिगीत छंद)

(लेखक—अम्बालाल हाथीचंद, सोनासण।)

जैनो तमे दृष्टि करो दुनिया कया पंथे वहे।
वायरा वाये सुधाराना शीतळ ल्हेरो छहे॥
घोर निद्राने तजी प्रगतितणा पंथे जजो।
तम उन्नतिनो ध्वज उडे एवा सुधारा धारजो॥
आ विश्व सघळुं उन्नति-राज्यासने विराजतुं।
पण नावडुं आ कोमनुं भर सागरे डोली जतुं॥
नूतन सुकानो धारीने एने किनारे आणजो।
कोमोन्नतिनो ध्वज उडे एवा सुधारा धारजो॥
नररत्ननी जे खाण रुप ए बाळिका अज्ञान छे।
तेथीज विद्वानो, विरोनी खोट आज अपार छे॥
आचारशील, गुणवानने कंई शौर्यवत बनावजो।
जैनो उन्नतिध्वज उडे एवा सुधारा धारजो॥
भाग्यनी जे गृहिणीना उच्च शिक्षण पामती।
संतान उत्पति एहनी कंगाल बळहीन पाकती॥
नररत्ननी आशा धरो तो ज्ञान देई सुधारजो।
तम उन्नतिनो ध्वज उडे एवा सुधारा धारजो॥
अवनति आ कोमनी शी बाळलग्ने आदरी।
दूर्बळ प्रजा भारत विषे ए दुष्ट दानवने करी॥
तम कोमना उद्धार अर्थे दुष्टने हंफावजो।
कोमोन्नतिनो ध्वज उडे एवा सुधारा धारजो॥
वीर्य वर्धन थाय एवी औषधिने याचता।
पण एहना विनाशकारक दुष्टने ना त्यागता॥
आ कोमना ने हिन्दना विनाशकारकने तजो।
जैनोन्नतिनो ध्वज उडे एवा सुधारा धारजो॥
ए बाळिकाना जीवनने शुभ सरळ पंथे दोरवा।
रे आश्रमो स्थापो धनिक वीर एहने उगारवा॥
कल्याण कायानुं करे एवुंज शिक्षण आपजो।
तम उन्नतिध्वज उडे एवा सुधारा धारजो॥
विद्याविलासी बाळकोने प्रथम तो शिक्षण धरो।
निपुण थावे सर्वमां तव लग्न ग्रंथीमां पुरो॥
योग्य वय ने योग्य ज्ञानी बाळको परणावजो।
कोमोन्नतिनो ध्वज उडे एवा सुधारा धारजो॥
वैधव्य अग्निकुंडमां बहु बाळविधवाओ बळे।
पूजक अहिंसा धर्मना! जैनत्वने झांखी मळे॥
एनी दया उर धारीने सौ बाळलग्नो त्यागजो।
जैनोन्नतिनो ध्वज उडे एवा सुधारा धारजो॥
विद्या विना विज्ञान नहि विज्ञान वण नव उन्नति।
संतानने शिक्षण दीधा वण दूर थशे ना अवनति॥
छात्रालयो विद्यालयो धन वापरीने स्थापजो।
जैनोन्नतिनो ध्वज उडे एवा सुधारा धारजो॥

नूतन वर्षाभिलाषा.

नूतन वर्षे अति हर्षे, स्मरी चाहुं हृदय मध्ये;
हो! मंगळकारी आ वर्षे, प्रभु छे एज अभिलाषा.
हृदयनी प्रार्थना ए छे, खरी दिल भावना ए छे;
चहुं भिक्षा अरज ए छे, प्रभु छे एज अभिलाषा.
सदा स्नेह सौख्य सुख शांति, अन्योअनमां वधो प्रीति
भलामां हो जीवन मुक्ति, प्रभु छे एज अभिलाषा.
टळो आधि अने व्याधि, वळी सौ स्वार्थी उपाधि;
आरोग्य आयुमां वृद्धि, प्रभु छे एज अभिलाषा.
निरंतर आपनी भक्ति, भला कार्ये दीयो शक्ति;
जगतमां हो! अमर कीर्ति, प्रभु छे एज अभिलाषा.
सदा तन, मन अने धनथी, बनो आ देह परमार्थी;
रहो स्नेह संप जगे सौथी, प्रभु छे एज अभिलाषा.
रोजी रोजगारमां यश हो! रुडा मार्गे जीवन जय हो;
स्मरण हरदम त्हमारुं हो! प्रभु छे एज अभिलाषा.
टळो सर्वस्व आपत्ति, अखंड स्नेहमय अभिवृष्टि;
शरणता पर कृपा दृष्टि, प्रभु छे एज अभिलाषा.

रामचंद्र माधवराव मोरे—सुरत.

आओ !

[रचयिता—श्री० राजमलजी जैन-भोपाल]

आओ सन्मति आओ आओ ।
शांति सुधा बरसाओ आओ ॥
प्रेम पियूष पिलाओ आओ ।
आओ एकबार फिर आओ ॥आओ०

अविनाशी अविकारी आओ,
अविचल सिद्धस्वरूपी आओ ।
निराकार अभिरामी आओ,
आओ केवलज्ञानी आओ ॥आओ०॥

अंतर्यामी स्वामी आओ,
दुखहारी सुखकारी आओ ।
त्रिभुवननामी भगवन् आओ,
आओ शिवतिय स्वामी आओ ॥

अशरण शरण निरंजन आओ,
अजर अमर चिद्रूपी आओ ।
अजय अखंड अनूपी आओ,
आओ प्रेम दयानिधि आओ ॥आओ०॥

परमात्मा परमेश्वर आओ,
भवदधि तारक पारक आओ ।
गुण अनंतके धारक आओ,
आओ सत्य प्रचारक आओ ॥

जग चिंतामणि जगगुरु आओ,
शरणागत जग बांधव आओ ।
सुखदाता जगत्राता आओ,
आओ जगदुद्धारक आओ ॥ आओ० ॥

आज दुखी हैं हम सब आओ ।
भारत देश बचाओ आओ ॥
नाथ ! हृदय बैठायें आओ ।
आओ वीर जिनेश्वर आओ ॥

"जैनविजय" प्रिन्टिंग प्रेस, खपाटिया चकला—सूरतमें मूलचन्द किसनदास कापड़ियाने मुद्रित किया और "दिगम्बर जैन" ऑफिस, चन्दावाड़ी—सूरतसे उन्होंने ही प्रकट किया ।